प्रथम-आवृत्ति
५०० प्रति

वीर संवत २४९२
विक्रम संवत २०२२

※ प्राप्तिस्थान ※

१. भारतीय प्राच्यतत्त्व प्रकाशन समिति,
C/o रमणलाल लालचन्द,
१३५/१३७ झवेरी बजार, बम्बई २

•

२. भारतीय प्राच्यतत्त्व प्रकाशन समिति,
C/o शा. समरथमल रायचन्दजी,
पिंडवाड़ा, स्टे० सिरोहीरोड (राज०).

•

३. शा. मनरूपजी अचलदास,
१, मस्कती मार्केट,
अमदावाद २.

•

४. शा. रमणलाल वजेचन्द,
C/o दिलीपकुमार रमणलाल,
मस्कती मार्केट,
अमदावाद २.

•

मुद्रक

११ थी २२, २५ थी १७६
कृष्णा आर्ट प्रेस, ब्यावर
(राजस्थान)

शेषपेज-ज्ञानोदय प्रिंटिंग प्रेस,
पिन्डवाड़ा, स्टे. सिरोहीरोड
(राजस्थान)

पदार्थसंग्रहकाराः

श्रीमत्तपोगच्छगगनाङ्गणदिनमणि-सिद्धान्तमहोदधि-सच्चारित्रचूडामणि-कर्मशास्त्रनिष्णात-
प्रातःस्मरणीयाऽऽचार्यशिरोमणिश्रीमद्विजयप्रेमसूरीश्वरान्तेवासि-स्याद्वादनयप्रमाण-
विशारद-प्रभावकप्रवचनकार पन्न्यासप्रवरश्रीमद्भानुविजयविनेयमुनिवर्यश्रीधर्म-
घोषविजयान्तिपदो विद्वद्वर्यगीतार्थमुनिश्रीजयघोषविजयाः, पन्न्यासप्रवर-
श्रीभानुविजयगणिवर्यविनेया मुनिश्रीधर्मानन्दविजयाः, पन्न्यासप्रवर-
श्रीभानुविजयविनेय-स्वर्गतपन्न्यासपद्मविजयगणिवर्यविनेया
मुनिश्रीहेमचन्द्रविजयाः पन्न्यासप्रवरश्रीभानुविजय-
विनेयजितेन्द्रविजयशिष्यमुनिगुणरत्नविजयश्च

*

मूलगाथाकारो वृत्तिकारश्च
तपस्विमुनिराजश्रीजितेन्द्रविजयशिष्यो
गुणरत्नविजयः

*

संशोधकाः

न्यायविशारदा आगमादिशास्त्रकुशलाः श्रीमन्त आचार्यदेवा विजयोदयसूरीश्वराः
पदार्थसंग्रहकाराश्च

*

★ चित्र-परिचय ★

आ चित्रमा नीचेना भागमा भिन्न भिन्न सफेतोथी प्रासंगिक-६ गुणस्थानकोनो निर्देश करवामां आव्यो छे ते आ प्रमाणे

(१) एकदम काळारंगथी १लु मिथ्यात्वगुणस्थानक सूचव्युं छे, क्षपक (क्षपकश्रेणि मांडनारा) आत्माओ आ गुणस्थानकने स्पर्शीने ज आवेला होय छे

(२) काळा भाग वच्चे थोडो थोडो सफेद भाग बतावबा द्वारा २जु सास्वादनगुणस्थानक सूचव्युं छे. केटलाक क्षपक आत्माओ आ गुणस्थानकने स्पर्शीने अने केटलाक स्पर्श्या वगर ज आवेला होय छे.

(३) त्रांसा सफेद पट्टाओथी ३जु मिश्रगुणस्थानक सूचव्युं छे सास्वादनगुणस्थानकनी माफक आ गुणस्थानकने पण क्षपक आत्माओ विकल्पे ('भजनाए) स्पर्शीने आवेला होय छे

(४) ऊभा सफेद पट्टाओथी ४थु अविरतसम्यग्दृष्टिगुणस्थानक सूचव्यु छे आ गुणस्थानके जिनोक्त तत्त्व पर सहज रुचि होय छे

(५) ऊभी काळी लीटीओनी वच्चे वधारे पहोळा सफेद पट्टाओथी ५मु देशविरतिगुणस्थानक बताववामां आव्युं छे आ गुणस्थानकने क्षपक आत्माओ विकल्पे स्पर्शीने आवेला होय छे.

(६) छूटी काळी रेखाओ अने आछा काळा रंगथी ६ट्ठुं प्रमत्तसंयतगुणस्थानक बताववामां आव्युं छे, सर्व क्षपक आत्माओ आ गुणस्थानकने नियमा स्पर्शीने आवेला होय छे

क्षपकश्रेणिनो प्रारम्भ

(७) ७मु अप्रमत्तगुणस्थानक-अहींथी क्षपकश्रेणिनो प्रारम्भ थाय छे चित्रमां कर्मक्षपणानो प्रयत्न करतो महाश्रमण आगे कूच करतो देखाय छे, आ गुणस्थानके क्षपक यथाप्रवृत्तकरण करे छे.

(८) ८मु अपूर्वकरण गुणस्थानक आ गुणस्थानके क्षपक आत्मा अपूर्वकरण करे छे

(९) ९मु अनिवृत्तिबादरसम्परायगुणस्थानक आ गुणस्थानके जीव अनिवृत्तिकरण करे छे

१०) १०मु सूक्ष्मसम्परायगुणस्थानक—आ गुणस्थानकना चरमसमये क्षपक दारूनो उपमावाळा मोहनीयकर्मनो नाश करे छे

(१) १ला वर्तुलमा दारूनो बाटलो फूटेलो बताववामां आव्यो छे. आजुबाजु दारू ढोळाई गयो छे. तेनाथी मोहनीयकर्म नाश पामेलुं जाणवुं

(१२) १२मु क्षीणकषायगुणस्थानक—आ गुणस्थानकना चरमसमये आंखे पाटा जेवा ज्ञानावरण, दरवान जेवा दर्शनावरण अने भंडारी जेवा अन्तराय कर्मनो विनाश करे छे

(२) २ जा वर्तुलमां आंख उपरथी पाटो दूर थयेलो अने फाटेलो बताव्यो छे, तेनाथी ज्ञानावरणनो नाश जाणवो

(३) ३ जा वर्तुलमां दरवान-प्रतिहारीनु मृत्यु बताववामां आव्युं छे, तेनाथी दर्शनावरणनो नाश समजवो

(४) ४था वर्तुलमां भंडारी (खजानची) मृत्युशय्या पर पोढी गया छे, तेनाथी अन्तरायकर्मनो नाश जाणवो.

(१३) १३मु सयोगिकेवलिगुणस्थानक बारमा गुणस्थानके ज्ञानावरणादि घातिकर्मोनो नाश थयो होवाथी आ गुणस्थानके आत्माओ अनन्तज्ञानादिविशिष्टगुणयुक्त होय छे

(१४) १४मु अयोगिकेवलिगुणस्थानक—आ गुणस्थानकना चरमसमये मधुलिप्त तलवारनी धार जेवा वेदनीय, बेडी जेवा आयुष्य, चित्रकार जेवा नामकर्म, कुम्भार जेवा गोत्रकर्मनो नाश करे छे.

(५) ५मा वर्तुलमां मधथी लेपायेल तलवारना टुकडा बताव्या छे,तेनाथी वेदनीयकर्मनो नाश समजवो.

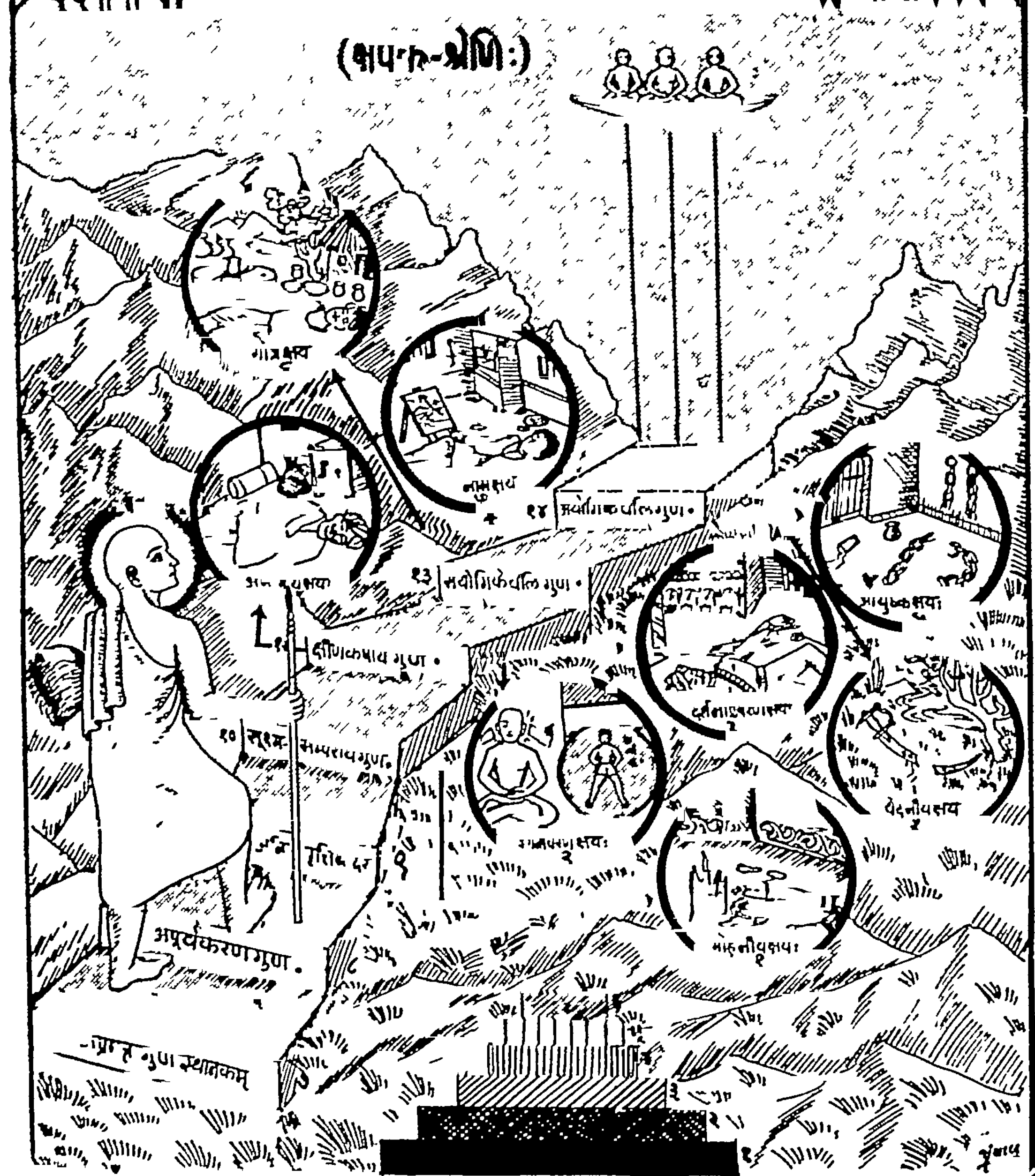
(६) ६ ट्ठा वर्तुलमां बेडी तुटेला बताववामा आवी छे, तेनाथी आयुष्यकर्मनो नाश समजवो.

(७) ७ मा वर्तुलमां चित्रकारनु मृत्यु बताववामां आव्यु छे, तेनाथी नामकर्मनो नाश जाणवो.

(८) ८ मा वर्तुलमा कुम्भारनु मृत्यु बताववामां आव्यु छे, तेनाथी गोत्रकर्मनो नाश समजवो. आठे कर्मोनो नाश थवाथी आत्माओ सिद्ध थाय छे तेथी ते सिद्धात्माओ अयोगिगुणस्थानकनी उपर अर्धचन्द्राकार सिद्धशिला पर बताववामां आव्या छे

स्वोपज्ञवृत्तिसंवलिता

खवग-सेढी



Acharyadeva-Shrimad-Vijaya-Premasurishwara-Karma-Sahitya-Granthamala
GRANTH No 1.

KHAVAGA SEDHI

[Along with commentary]
By
GROUP OF DISCIPLES



Inspired and Guided by
His Holiness Acharya Shrimad Vijaya
PREMASURISHWARJI MAHARAJA
the leading authority of the day
on Karma philosophy.



Published by
Bharatiya Prachya Tattva Prakashana Samiti, Pindwara. (India)

First Edition
Copies 500

Price
Rs [illegible]/-

A. D. 1966

AVAILABLE FROM —

1 BHARATIYA PRACHYA TATTVA PRAKASHANA SAMITI,
C/o Shah Ramanlal Lalchand,
135/37 Zaveri Bazzar,
Bombay-2



2. BHARATIYA PRACHYA TATTVA PRAKASHANA SAMITI,
C/o Shah Samarathmal Rayachandji,
PINDWARA, [St Sirohi Road]
(Rajasthan)



3 Shah Manarupji Achaldas,
2, Maskati Market,
Ahmedabad-2.



4. Shah Ramanlal Vajechand,
C/o Dileepkumar Ramanlal,
Maskati Market,
Ahmedabad-2.



Printed by :

Pages-19 to 22 & 25 to 176
Krishana Art Press, Beawar (Raj)



Remaining
Gnanodaya Printing Press
PINDWARA,
St. Sirohi Road (Raj)

वि. सं. २०१६तमवर्षस्य माघमासस्य शुक्लचतुर्थ्यां सिद्धान्तमहोदधिगच्छाधिपति-श्रीमद्-
विजयप्रेमसूरीश्वरप्रतिष्ठापित-श्रीपिन्डवाडानगरपार्श्ववर्तिसिरोहीरोड(स्टेशन)स्थित-
जिनप्रासादविभूषक-**नमिनाथजिनेन्द्र**-बिम्बप्रतिबिम्बम्

श्रीचन्द्रप्रभस्वामी **श्रीमहावीरस्वामी**



कर्मेन्धनं ज्वलितमाशु जिनेन येन, ध्यानानलेन समवापि शिवं च येन।
यज्ज्ञापसिंहनदनेन पलायते च, कर्मद्विपोऽनवरतं स नमिर्न ईष्टाम् ॥ १ ॥
तद्बिम्बदर्शनात् सर्वो लोकः सम्यक्त्वमश्नुताम्।
क्षपकश्रेणिमारुह्य सम्प्राप्नोतु शिवश्रियम् ॥ २ ॥

सिरोहीरोड. (राजस्थान)



इस 'खवगसेढी' ग्रंथरत्नके प्रकाशनमें द्रव्यसहाय देनेवाले पिन्डवाडानिवासी मान्यवर शा. रतनचन्दजी हीराचन्दजी और शा. खुबचन्दजी अचलदासजीने इस रमणीय जिनप्रासादको अपनी संपत्तिके सद्व्ययसे निर्माण करवाया है।

★ अनुक्रम ★

प्रकाशक की ओर से

तपोगच्छगगनदिनमणि आबालवृद्ध तपस्वी विद्वान शासनप्रभावक करीबन २५० मुनिगणके माननीय नेता दीर्घसंयमी सिद्धान्तमहोदधि पूज्यपाद आचार्यदेव श्रीमद् **विजयप्रेमसूरीश्वरजी** म० सा० ने वि० सं० २०१५ का चातुर्मास **सुरेन्द्रनगर** में किया। वहाँ आपके शिष्यप्रशिष्यों के आगमादिशास्त्रों के पठनपाठन का अवलोकन कर कोई भी अत्यन्त प्रसन्न हुए विना व वारवार जिनेश्वरदेव एवं जिनशासन के ज्ञान व चारित्रमार्ग का मन ही मन अनुमोदन किये विना नहीं रह सकता था।

इसी अर्से में **'जैन साहित्य विकास मण्डल'** अंधेरी-बम्बई के मेनेजिंग ट्रस्टी माननीय महाशय **अमृतलाल कालिदास दोशी B. A** जो कि पूज्यश्री के मुनिओं द्वारा कुछ साहित्य का संशोधन करवाने के लिये आये थे। प्रासंगिक वातचीत से कर्मसाहित्य के विस्तृत-सर्जनको जानकर आपकी निश्रा में लिखे गये व भविष्य में लिखे जाने वाले 'खवगसेढी' आदि कर्मसाहित्य को प्रकाशित करने का सहर्ष स्वीकार किया। पूज्य आचार्यदेवश्री का वि० सं० २०१६ का चातुर्मास शिवगंज में और वि० सं० २०१७ का चातुर्मास पिन्डवाडा में हुआ। उन दिनों में भी श्रीयुत अमृतलाल कालीदास भाई पिन्डवाडा आये और कर्मसाहित्य के प्रकाशन की पूज्यश्री से अनुमति प्राप्तकर बम्बई गये व अपनी 'जैन साहित्य विकास मण्डल' संस्था की मीटिंग बुलाकर प्रस्तुत साहित्य अपनी संस्था की ओर से प्रकाशित करवाने का निर्णय किया।

बडे सौभाग्य की बात है कि पूज्यश्री से कर्मसाहित्यविषयक परामर्श करते ही पिन्डवाडा के धर्मप्रेमी भाईयों को पूर्वकालीन परनारीसहोदर परमार्हत श्रीकुमारपाल महाराजा, श्रीवस्तुपाल, तेजपाल और ३६००० सोनामहोरके न्योछावर से श्रीभगवतीसूत्र का श्रवण करने वाले मांडवगढ के महामात्य श्रीपेथडशाह आदि श्रुतभक्त महाश्रावकों का स्मरण हो आया और श्रुतभक्ति से प्रेरित हो पूज्यश्री से प्रस्तुतकार्य जिसे कि श्रीयुत अमृतलाल कालीदास दोशी ने करवाने का स्वीकार किया था, पिंडवाडा के भाईयों ने करवाने की नम्र प्रार्थना की। प्रथम तो पूज्यश्री ने पिन्डवाडा के भाईयों की मांग का स्वीकार न किया, क्योंकि अमृतलालभाई से साहित्य के प्रकाशनादि संबंधी वातचीत पहेले हो चूकी थी, मगर जब पिन्डवाडा के साधर्मिक बंधुओं का अत्यन्त आग्रह व उत्साह देखा तो आपने श्रुतभक्ति का अपूर्व लाभ प्रदान कर उन बन्धुओं को अनुगृहीत किया। इस मंगल कार्य में पिन्डवाडा श्रीसंघ का पूर्ण सहयोग रहा।

प्रस्तुत कर्मसाहित्य के प्रचार-प्रकाशनादि विराट कार्य की जिम्मेवारी को समझकर पिन्डवाडा के उत्साही भाईयों ने-(१) शेठ रमणलाल दलसुखभाई खंभात (२) शा समरथमल रायचंदजी पिन्डवाडा (३) शा लालचंद छगनलालजी पिन्डवाडा (४) शा खुबचंद अचलदासजी

पिन्डवाडा (५) शा भूरमलजी सरेमलजी पिन्डवाडा (६) शा मन्नालाल रिखवाजी लुणावा (७) शा हिम्मतमल रुघनाथमलजी वेडा इन ७ सदस्यों की वि० सं० २०१८ में 'भारतीय-प्राच्य-तत्त्व-प्रकाशन समिति' की स्थापना की। समिति के सदस्यों ने कर्मसाहित्य को जयपुर और ब्यावर में छपवाना शुरु किया। करीब तीन साल काम चलता रहा, काम सुन्दर होने पर भी जिस गति से हो रहा था सम्भव है उस गति से आज तक एक ग्रन्थ भी पुरा नहीं छप पाता। अतः छपाई शीघ्र व सुन्दर हो इस वास्ते समिति के सदस्यों ने समिति का निजी प्रेस पिन्डवाडा में लगवाया। साहित्य व छपाई आदि का कार्य समिति के सदस्यों के शुभ प्रयत्न से ठीक तरह से चलता था व सदस्यों की उदारता और प्रयत्न से आर्थिक समस्या भी हल हो रही थी। मगर कर्मसाहित्य का प्रकाशन व प्रचार आदि का प्रस्तुत कार्य अति विशाल होने से सदस्यों की संख्या वढाना आवश्यक समझकर सं० २०२१ की साल में शेठ जीवतलाल प्रतापशी आदि महानुभावों को समिति के सदस्य वनाये

आज हमारी समिति का ट्रस्टीमण्डल इस प्रकार है

१	शेठ रमणलाल दलसुखभाई (प्रमुख)	खंभात
२	शेठ माणेकलाल चुनीलाल	वम्वई
३	शेठ जीवतलाल प्रतापशी	वम्वई
४	शा० खुबचंद अचलदासजी	पिन्डवाडा
५	शा० समरथमल रायचंदजी (मंत्री)	पिन्डवाडा
६	शा० शान्तिलाल सोमचन्द (भाणाभाई) (मंत्री)	खंभात
७	शा० लालचन्द छगनलालजी (मंत्री)	पिन्डवाडा
८	शेठ रमणलाल वजेचन्द	अहमदावाद
९	शा० हिम्मतमल रुगनाथमलजी	वेडा
१०	शेठ जेठाभाई चुनीलाल घीवाले	वम्बई
११	शा० इन्द्रमल हीराचंदजी	पिन्डवाडा
१२	शा० मन्नालालजी रिखवाजी	लुणावा

ज्ञानपिपासु जनता को जानकर हर्ष होगा कि स्वल्पकाल में 'खवगसेढी' व 'ठिइबंधो' ये दो ग्रन्थरत्न हम पाठकों के करकमल में अर्पित कर रहे हैं। 'रसबंधो' तथा 'पएसबंधो' जो दो ग्रन्थ छप रहे हैं, वे भी स्वल्पसमय में पाठकों के करकमलों में अर्पित किये जायेंगे।

आत्मकल्याण में हेतुभूतस्वाध्याय के लिये प्रस्तुत ग्रन्थराशि अत्यन्त उपयोगी है, इसका विशेष ख्याल ग्रन्थों की प्रस्तावना विषयपरिचय व भावानुवाद पढने पर पाठक पा सकेंगे।

आत्मिक शान्ति देने वाले तात्त्विक आध्यात्मिक ग्रन्थों का आलेखन करके मुनिभगवंतों ने अपना कर्तव्य वजाया है। आलेखित ग्रन्थों को ताडपत्र व ताम्रपत्र आदि पर प्रतिलेखित करवाकर ज्ञानभंडारों में सुरक्षित रखना व यन्त्रालय आदि द्वारा मुद्रित करवाकर मुमुक्षुजनसमाज में उसका प्रचार करना यह हमारा गृहस्थों का फर्ज है। शास्त्रों में सुनते हैं कि

सम्यग् ज्ञानको पढने पढानें व लिखनें लिखाने वालों की भाँति उसका रक्षण व प्रचार करने वाले भी केवलज्ञानादि आत्मरिद्धि के भोक्ता बनते हैं । इसी शास्त्रवचन को स्मरण में रखकर हमने इन शास्त्रग्रन्थों के प्रकाशन का प्रस्तुत कार्य हाथ में लिया है । ग्रन्थों का प्रकाशन व प्रचारादि सुचारु रूप से हो यह हमारी समिति का उद्देश है । हम गच्छाधिपति सिद्धान्तमहोदधि परमपूज्य आचार्य भगवंत **श्रीमद् विजय प्रेमसूरीश्वरजी महाराज** से अत्यन्त उपकृत हैं, जिन्होंने जैनशासन के निधानरूप इस भव्यातिभव्य कर्मसाहित्य का सर्जन करवाया व जिनकी असीम कृपा से हमने श्रुतभक्ति का अपूर्व अलभ्य लाभ पाया, उन पुण्यपुरुष के पवित्र चरणों में वन्दन कर हम अपनी आत्मा को धन्य मानते है ।

पदार्थसंग्रहकार विद्वान मुनिवरों, **गाथाकार विवेचनकार** मुनिराज इन सब महात्माओं को वन्दना करते हैं , जिन्होंने अथाग परिश्रम लेकर कर्मसिद्धांत को विशद रूप दिया है । तथा अपने अमूल्य समय का व्यय करके इस 'खवगसेढी' ग्रन्थ की समालोचनात्मक सुन्दर-विशद प्रस्तावना लिखकर **पू० मुनिराज श्री हेमचन्द्रविजयजी** महाराज ने बडा अनुग्रह किया है । इन सब पूज्य पुरुषों के प्रति सवन्दन कृतज्ञता प्रदर्शित करते हैं ।

इस '**खवगसेढी**' ग्रन्थ के प्रकाशन में रू० १००००) जैसे प्रचुर द्रव्य का विनियोग कर श्री पिन्डवाडा निवासी सिरोहीरोड रेल्वे स्टेशन के पास भव्यात्माओं के बोधिबीजका अनन्य-निमित्त श्री नमिनाथजिनप्रसाद के निर्माता (१) श्रेष्ठिवर्य **श्राद्धरत्न रतनचन्दजी होराचन्दजी** (२) श्रेष्ठिवर्य साधर्मिकबन्धु **खुबचन्दजी अचलदासजी** (पचहत्तरहजार रूपये के चढावे से पिन्डवाडा गॉव के वीरविक्रम प्रासाद के उपर ध्वजा लहराने वाले व भा० प्रा० त० प्र० समिति के ट्रस्टी साहब) ने हमारी समिति को बड़ा सहयोग दिया है । हम इन दोनों महानुभावों के आभारी हैं । इस प्रकाशन कार्य में जिन्होंने अपने तन मन धन का स्वल्प भी व्यय किया है, उन सबको भी वारवार धन्यवाद ।

भगवान हेमचन्द्रसूरीश्वरजी महाराज विरचित सिद्धहेमशब्दानुशासन की मध्यमवृत्ति का दूसरा भाग जो समिति के ज्ञानोदय प्रेस में छपा है, वह भी इस के साथ पाठकों के कर-कमलों में पेश हो रहा है ।

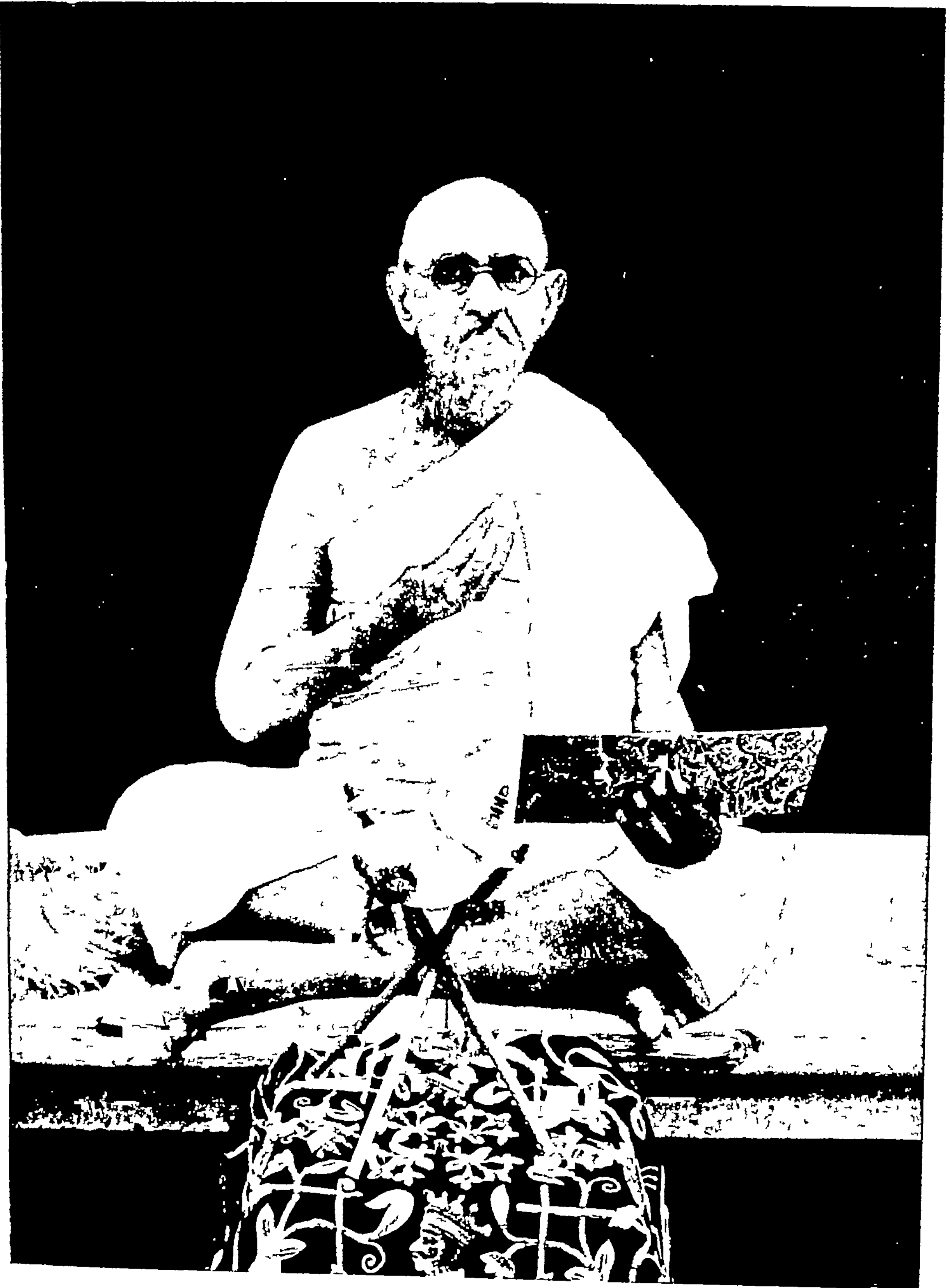
इस अवसर पर **ज्ञानोदय प्रेस** के मेनेजर श्रीयुत **फतहचन्दजी जैन**, प्रेसकॉपी करने वाले **श्री पन्नालालजी सी० जैन** वाफना (थाना पालडी) चित्रकार **पंचाल** व **प्रेस के अन्य कर्मचारी भी** स्मृति पथ में आ रहे हैं, जिन्होंने इस कार्य में आत्मीयता प्रकट की है ।

हस्ताक्षर

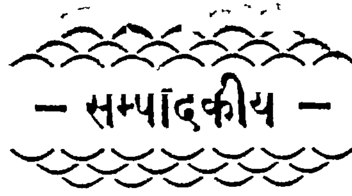
पिण्डवाड़ा
स्टे० सिरोहीरोड (राजस्थान)
१३५/३७ जौहरीबजार
बम्बई २

१ शा० समरथमल रायचन्दजी (मन्त्री)
२ शा० शान्तिलाल सोमचन्द (भाणाभाई) चोकसी (मन्त्री)
३ शा० लालचन्द छगनलालजी (मन्त्री)
भारतीय-प्राच्यतत्त्व-प्रकाशन समिति.

सकलागमरहस्यवेदि-सूरिपुरन्दर-बहुश्रुतगीतार्थ-परमज्योतिर्वित्-परमपूज्य-परमगुरुदेव-



श्रीमद्-विजयदानसूरीश्वराः



— सम्पादकीय —

कोई रंकने राज्यप्राप्तिनुं स्वप्न ज्यारे सत्य ठरे त्यारे अेने केवो आनंद थाय ? 'खवगसेढो' ग्रन्थ तैयार थयेलो जोईने हुं पण अेवो ज कोई अवर्णनीय आनंद अनुभवुं छुं. केटलाक सूक्ष्म,गहन अने अगम्यभावोनो तादशचितार शब्दोमां नथी आपी शकातो. आत्माना केवलज्ञान, केवलदर्शन जेवा महानगुणोने प्राप्त करवामां जे क्षपकश्रेणिनी प्रक्रिया अनिवार्य छे. तेम तेनी प्ररूपणा पण अेक गहन विषय छे. छतां अनंतज्ञानी श्रीतीर्थंकर भगवंतोना वचनना सहारे पूर्वमहर्षिओअे ज्ञानलब्धिथी अे भावोनो उचित शब्दोमां समवतार करी शक्य तेटलुं अेनुं स्वरूप उपसाव्युं छे. ते पूर्वमहर्षिओना पगले मारो पण आ अेक अल्प प्रयत्न छे.

आजे भौतिकविज्ञाननो विकास थई रह्यो छे, तेना प्रत्यक्ष फल रूपे जोई शकाय छे के आध्यात्मिकतानो भव्य वारसो आ भारतदेशमांथी पण झडपथी घसातो जाय छे. ते युगमां पण मने संघकौशल्याधार गच्छाधिपति संयमत्यागतपोमूर्ति सिद्धान्तमहोदधि पूज्यपाद आचार्यदेव श्रीमद् विजयप्रेमसूरीश्वरजी महाराजानो सत्समागम थयो अने तेओश्रीअे मारी मोहवासनाने गाळी वि० सं० २०१० मां मंगलमय चारित्रधर्मनुं दान कर्युं. कर्मसाहित्य जेवा सूक्ष्म, गहन विषयमां रसिक बनाव्यो. असीम उपकार करी व्याकरण न्यायनो अभ्यास करावी क्षपकश्रेणिना विषयमां रस जगाव्यो, तेथी आ ग्रन्थनी सुंदरतानो यश ते पूजनीय अनंत उपकारी महापुरुषना फाळे जाय छे.

पूज्य सिद्धान्तमहोदधि परमगुरुदेवश्रीनी कृपा, प्रेरणा अने प्रोत्साहनना बले ज बे हाथे सागर तरवा जेवुं आ भगीरथ कार्य उत्साहथी करी शक्यो छुं. ग्रन्थ आलेखननी जेम सम्पादननो पण आ मारो प्रथम प्रयत्न छे. तेथी आवा तात्त्विक, सूक्ष्मतमविषयोना ग्रन्थोनां आलेखननी जेम अेनुं शुद्ध सम्पादन पण जवाबदारी भर्युं अने प्रयत्नसाध्य लाग्युं.

खवगसेढीनुं लेखन अने सम्पादन:

परमपूज्य गच्छाधिपति आचार्यभगवंते मने पांच कर्मग्रन्थनुं संगीन अध्ययन कराव्युं. त्यारबाद तेओश्रीनी आज्ञाथी सं० २०१५ मां सुरेन्द्रनगरमां पू० मुनिवर्यश्री हेमचन्द्रविजयजी महाराजे 'कम्मपयडी' नुं अध्ययन कराव्युं, ते समये सुरेन्द्रनगरमां विद्वद्वर्य मुनिवरो पू० श्री जयघोषविजयजी म०, पू० श्री धर्मानंदवि० म०, पू० श्री हेमचन्द्रविजयजी म०, उपशमनाकरण तथा खवगसेढीना पदार्थोनुं संकलन करी रह्या

हता. पदार्थोनी नोंध पू० मु० हेमचन्द्रवि० महाराज करता हता, त्यारे पूज्यपाद परमाराध्यपाद आचार्यभगवंते मने संस्कृतमां कर्मसाहित्यनुं सुंदरशैलीमां आलेखन करवा सूचन कर्युं. पण ते वखते मने जरा य आत्मविश्वास हतो ज नहि के आ कार्य हुं करी शकीश. विनम्रभावे "हुं अज्ञ शी रीते आ सर्जन करी शकुं" अेम में मारी अशक्ति दर्शावी, पण पूज्यश्रीनी वेधकदृष्टि कोई अलौकिक छे. तेओश्रीअे मारा जेवा केई भव्यात्माओनी सुषुप्त शक्तिओने प्रेरणाना बुलंद आवाजथी जाग्रत करी छे. तेओश्रीनी प्रेरणा वारंवार चालु हती. शुक्लध्यानना पायारूप द्रव्यानुयोगना परिशीलननी महत्ता, आवा विषयना आलेखनथी प्राप्त थती आंतरमुखता अने अनेक शास्त्रोनुं प्रासंगिक अवगाहन वगेरे अनेक लाभो दर्शाव्या. तेओश्रीनी वात्सल्यमयी प्रेरणाथी उत्साहित बनी संस्कृतमां लेखन करवानुं नक्की कर्युं अने पूर्वोक्त त्रणे मुनिवरोनी चालती पदार्थसंकलननी प्रवृत्तिमां हुं जोडायो. केटलाक विषयोनुं व्यवस्थित संकलन कर्या पछी उपशमनाकरणनो टीका (विवेचन) लखवानो प्रारंभ कर्यो. ते कार्य पूज्यपादश्रीनी निःसीमकृपाथी अने प्रेरणाथी समाप्त थया बाद क्षपकश्रेणिनो विषय संस्कृतमां गद्यरूपे लखवो शरू कर्यो. ४ थी ५ हजार श्लोक प्रमाण लखाण थया बाद मने विचार आव्यो, के जुदा जुदा ग्रन्थोमां छूटी छवाई वर्णवायेली 'क्षपकश्रेणि' व्यवस्थित कोई अेक ग्रन्थमां जोवामां आवती नथी. जैनशासनमां महत्त्वनी गणाती 'क्षपकश्रेणि' ना जुदा जुदा ग्रन्थोमांथी संगृहीत विषयनो प्राकृतभाषामां स्वतंत्र ग्रन्थ तैयार थाय, तो ते मोक्षाभिलाषी भव्यात्माओने घणो लाभदायी बने. गद्य निबंधरूपे लखाता ग्रन्थ करतां प्राकृतमां गाथा बनावी टीका द्वारा अेनुं स्पष्टीकरण थाय, तो ठीक.........आ विचारधारा पूज्यश्री समक्ष में मूकी. तेओश्रीअे अे शरते मारी वात कबूल राखी के गाथा रात्रे अंधारामां बनाववी अने दिवसे सुधारी लई तेना पर विवेचन लखवुं. तेओश्रीनो शुभाशय अे हतो-के दिवसनो बधु उपयोगी समय गाथा बनाववा पाछळ खर्चाई जवो न जोईअे. पूज्यश्रीनी इच्छानुसार अे रीते रात्रे ४०-५० गाथाओ बनाव्या पछी पूर्वकृत कोई अशातावेदनीयकर्मना उदये हुं टाइफॉईडनी बिमारीनो भोग बन्यो अने गाथा बनाववानुं काम बंध पड्युं. दोढ महिना पछी फरी दिवसे गाथाओ बनाववी शरू करी अने २५० उपर गाथाओमां ग्रन्थनो विषय संकलित थयो. तेना पर टीकानुं आलेखन पण थयुं. त्यारबाद कर्मसाहित्यना मुद्रणनी योजना थई. क्षपकश्रेणिग्रन्थ छपाववानुं नक्की थयुं अने सम्पादननुं कार्य पण मने सोंपायुं.

सम्पादननी शैली

(१) मूलगाथाओनो संस्कृतमां छायारूपे पदसंस्कार आप्यो छे.

(२) मूलगाथाओ, पदसंस्कार, वृत्ति वगेरेनी भिन्नता दर्शाववा जुदा जुदा टाइपोनी पसंदगी करवामां आवी छे.

(૩) મૂળના પ્રતીકો ' ' આવા એકવડા અવતરણચિહ્ન (સિંગલ ઇનવર્ટેડ કોમા)ની અન્દર મૂકી મોટા અક્ષરો (બોલ્ડ ટાઇપો)માં આપ્યાં છે.

(૪) મૂળના જે શબ્દોનું વિવેચન કરવામાં આવ્યું છે, તે શબ્દો સંસ્કૃતભાષામાં પરિવર્તિત કરી એકવડા અવતરણચિહ્ન (સિંગલ ઇનવર્ટેડ કોમા)માં મૂક્યા છે.

(૫) વાચકોની સગવડ માટે અલ્પવિરામ પૂર્ણવિરામ પ્રશ્નચિહ્ન વગેરે યથાસ્થાને મૂકવામાં આવ્યાં છે.

(૬) પ્રમાણતરીકે ઉદ્ધૃત પાઠો બેવડા અવતરણચિહ્ન(ડબલ ઇનવર્ટેડકોમા)માં મૂકી મોટા અક્ષરો (બોલ્ડ ટાઇપો) માં આપ્યા છે.

(૭) પ્રમાણ તરીકે નિર્દિષ્ટ ગ્રન્થ તથા ગ્રન્થકારોના નામો મોટા અક્ષરો(બોલ્ડ ટાઇપો)માં આપવામાં આવ્યાં છે.

(૮) જમણી બાજૂ હેડિંગમાં અધિકારનું નામ તથા તે તે વિષયનું સૂચન કર્યું છે। ડાબી બાજૂ પ્રસ્તુતગ્રન્થનું નામ અને ગાથાઙ્ક સૂચવ્યો છે.

(૯) વિષયની વિશેષ સમજુતી માટે ૪૦ ચિત્રો અને વિષયને યાદ રાખવા ૨૭ યન્ત્રો આપવામાં આવ્યાં છે.

(૧૦) મોક્ષસ્વરૂપવિચાર નામના દાર્શનિક પ્રકરણમાં નૈયાયિક વગેરે દર્શનકારોના પૂર્વપક્ષનું જ્યાં ખણ્ડન કરવામાં આવ્યું છે, ત્યાં પાનાની નીચે લીટી દોરી પૂર્વપક્ષની દલિલોનો પંક્તિના અંક સહિત પૃષ્ઠાઙ્ક આપ્યો છે.

(૧૧) વિષયાનુક્રમ વિસ્તૃત બનાવવામાં આવ્યો છે, જેથી વાંચકો સમ્પૂર્ણ ગ્રન્થના વિષયને સરલતાથી યાદ રાખી શકશે અને ગ્રન્થાન્તરના સંશોધકો ઇષ્ટવિષયનું અવિલંબે નિરીક્ષણ કરી શકશે.

જરૂરી પરિશિષ્ટો

(૧) પ્રથમ પરિશિષ્ટમાં ક્ષપકશ્રેણિગ્રન્થની ૨૭૧ મૂલગાથાઓ આપી છે.

(૨) બીજા પરિશિષ્ટમાં અકારાદિક્રમે ગાથાઓનાં આદ્યપદો આપ્યાં છે.

(૩) ગાથાઓ જે જે છંદોમાં બનાવી છે. તે તે છંદોનાં નામોનો નિર્દેશ ત્રીજા પરિશિષ્ટમાં કર્યો છે.

(૪) પ્રમાણ તરીકે ઉદ્ધૃત ગ્રન્થોનાં નામોનો ઉલ્લેખ ચોથા પરિશિષ્ટમાં કર્યો છે.

(૫) પ્રમાણ તરીકે નિર્દિષ્ટ ગ્રન્થકારોનાં નામો પાંચમા પરિશિષ્ટમાં જણાવ્યાં છે.

(૬-૭-૮) આ ત્રણ પરિશિષ્ટોમાં અનુક્રમે વ્યાકરણસૂત્રો, ન્યાયો અને ગણિતકરણસૂત્રો દર્શાવ્યાં છે.

(૯) આ પરિશિષ્ટમાં શતકચૂર્ણિ ઉપર પૂજ્ય આ૦ મ૦ શ્રી મુનિચન્દ્રસૂરીશ્વર મહારાજે રચેલા ટીપ્પણનો થોડો અત્યુપયોગી ભાગ આપ્યો છે,પ્રસ્તુત ખવગસેઢી ગ્રન્થમાં કિટ્ટિગુણકાર વગેરે પદાર્થોનું સમર્થન કરતો આ ટિપ્પણનો ભાગ ઘણો મહત્ત્વનો છે.

भावानुवाद

गुजराती भाषाना रसिक वांचको पण आ ग्रन्थनो सम्पूर्ण विषय संक्षेपथी सारी रीते समजी शके ते माटे गुजराती भाषामां मूलगाथाओनो भावानुवाद ग्रन्थनी पाछळ आपवामां आव्यो छे.

कृतज्ञता दर्शन

परमाराध्यपाद भवोदधितारक सिद्धान्तमहोदधि कृपावतार पूज्य **आचार्यभगवंत श्रीमद् विजयप्रेमसूरीश्वरजी महाराजाना** उपकारोनी संख्या गणी शकाय अेवी नथी तेओश्री वांची शके, तेवा मोटा अक्षरोथी करावेली आ ग्रन्थनी प्रेसकोपीनुं वृद्धावस्था साथे नरम तबियतमां पण तेओश्रीअे सूक्ष्मदृष्टिथी वाचन, संशोधन करी अेक वधु महान उपकार कर्यो छे.

मारा परमोपकारी स्याद्वादविशारद तपोनिधि प्रभावकप्रवचनकार परमगुरुदेव पू० पन्न्यास प्रवरश्री **भानुविजयजी गणिवरश्रीअे** तथा स्याद्वादविज्ञ **पू० मुनिराजश्री जंबूविजयजी महाराजे** पोताना अमूल्य समयनो भोग आपी '**मोक्षस्वरूपविचार**' नामना छेल्ला प्रकरणनी प्रेसकापीनुं संशोधन करवा महान कृपा करी छे. आ प्रकरणमां **पूज्य मुनिराजश्री गुणानन्दविजयजी महाराजे** पण अविस्मरणीय सहाय करी छे.

पदार्थसंग्रहकार मुनिवरो **पू० श्री जयघोषविजय म०** तथा पूज्य श्री **धर्मानंदविजय महाराजे** प्रेसकोपीनुं तथा प्रूफोनुं संशोधन काळजीपूर्वक करीने अपूर्व सहायकरी छे. पदार्थसंग्रहकार पू० मुनिराजश्री **हेमचन्द्रविजय महाराजे** प्रेसकोपीना संशोधनमां तथा परिशिष्टो बनाववामां घणो सहयोग आप्यो छे.

आगमप्रभाकर **पू० मुनिराज श्री पुण्यविजयजी महाराजे** प्राचीन हस्तलिखित **कर्मप्रकृतिचूर्णिटीप्पन, शतकचूर्णिटीप्पन, संशोधित आवश्यकचूर्णि** वगेरे ग्रन्थो वांचनमाटे आपी उदार सौजन्य दाखव्युं छे. तेओश्रीअे आपेला आ ग्रन्थो प्रस्तुत ग्रन्थनां लेखन अने सम्पादनमां घणा सहायक थया छे.

पूज्य मुनिराजश्री **मित्रानंदविजयजी महाराजे** परिशिष्ट-प्रस्तावनादिना प्रूफसंशोधनादिमां अने भावानुवादना व्यवस्थितसंकलनमां आत्मीयभावे घणी अगत्यनी सहाय करी छे.

जेओश्रीना पावनपगले संयमना मार्गे में प्रयाण आदर्युं ते मारा संसारपक्षे वडिलबन्धु अने मारा परम उपकारी गुरुदेव तपस्विरत्न मुनिपुंगवश्री **जितेन्द्रविजयजी महाराजश्रीना** अमेय उपकारोने वर्णववा मारी पासे शब्दो नथी. ते पूजनीय गुरुदेवे पूज्य आचार्यभगवंतने मने व्याकरण कराववानी विनंति करी हती. तेना परिणामे हुं व्याकरणनो बोध पाम्यो अने आ ग्रन्थ लखवा समर्थ बन्यो. तेओश्रीना चरणोमां अनंतशः वंदना करी कंईक कृतार्थता अनुभवुं छुं.

सुश्रावक **पंडित धीरजलाल डाह्याभाईअे** २० फर्मा जेटली प्रेसकोपीनुं संशोधन करी अनुमोदनीय श्रुतभक्ति करी छे.

ગ્રન્થ મુદ્રિત થયા પછી:

ન્યાયવિશારદ-સિદ્ધાન્તવાચસ્પતિ વાત્સલ્યવારિધિ આગમ-કર્મપ્રકૃતિ-લોકપ્રકાશાદિશાસ્ત્રોના મર્મજ્ઞ પૂજ્ય **આચાર્યદેવ શ્રીમદ્ વિજયોદયસૂરીશ્વરજી** મહારાજાએ ક્ષપકશ્રેણિગ્રન્થના વધાએ ફર્મા વૃદ્ધાવસ્થા સાથે નરમ તબિયતમાં પણ સારી રીતે તપાસી, સંશોધન કરી આપી મારા પર મોટો ઉપકાર કર્યો છે. અવસરે અવસરે અનેક ઉપયોગી સૂચનાઓ પણ તેઓશ્રીએ કરી છે. પૂજ્ય **પંન્યાસપ્રવરશ્રી નીતિપ્રભવિજયજી મહારાજે** ઉત્સાહથી પોતાના સમયનો ભોગ આપી પૂજ્ય આચાર્યભગવંતને ગ્રન્થ વાંચી સંભળાવીને અશુદ્ધિની નોંધ કરી છે, તેથી આ બન્ને પૂજ્યોથી ઘણો ઉપકૃત છું.

શુદ્ધિપત્રકમાં સહાયકો.

આગમપ્રજ્ઞ પૂ૦ આચાર્યદેવ શ્રીમદ્ વિજય **જમ્બૂસૂરીશ્વરજી મહારાજાએ** શરૂઆતના કેટલાક ફર્માઓનું, તથા પૂ૦ મુનિરાજશ્રી **અશોક વિ૦ મહારાજે** શરૂઆતના ૪૦ ફર્માઓનું વાંચન કરી શુદ્ધિપત્રક તૈયાર કરી આપ્યું છે. પૂ૦ મુનિરાજશ્રી **હેમચન્દ્રવિ૦ મ૦** તથા મુનિરાજશ્રી **વીરશેખરવિજયજીએ** સમગ્ર ગ્રન્થનું વાંચન કરી અશુદ્ધિનું સંમાર્જન કર્યું છે.

મહેસાણા જૈન શ્રેયસ્કરમંડલ પાઠશાલાના અધ્યાપક સુશ્રાવક **પુખરાજજી**, વઢવાણનગરની પાઠશાલાના અધ્યાપક સુશ્રાવક **અમુલખભાઈ**, રાજનગરની પાઠશાલાઓના શિક્ષકો સુશ્રાવક **રસિકભાઈ** તથા **બાબુભાઈએ** શરૂઆતના કેટલાક ફર્માઓનું નિરીહપણે શુદ્ધિપત્રક કર્યું છે. પંડિતવર્ય **સુશ્રાવક ધીરજલાલ ડાહ્યાભાઈ** એ સંપૂર્ણ ગ્રન્થનું સંશોધન કરી, શુદ્ધિપત્રક કરી આપી શ્રુતભક્તિનો અપૂર્વ લાભ લીધો છે.

અંતે ઉપર્યુક્ત સર્વ પૂજનીય આચાર્યદેવાદિ મુનિભગવંતો તથા સુશ્રાવક અધ્યાપકો પ્રત્યે યથોચિત કૃતજ્ઞભાવ પ્રકટ કરું છું. આ ગ્રન્થનું સંશોધન તથા શુદ્ધિપત્રક અનેક વિદ્વાનોની પાસે કરાવ્યું છે. છતાં આ ગ્રન્થમાં જિનાજ્ઞા વિરુદ્ધ જે કાંઈ દેખાય, દૃષ્ટિદોષ, પ્રેસદોષ કે છદ્મસ્થતાના કારણે રહી ગએલ ભૂલો જણાય, તે વાચકો મને જરૂર જણાવે એજ વિનંતિ, ભૂલો બદલ મિચ્છા મિ દુક્કડં આપી સૌ કોઈ આ ગ્રન્થનું પઠનપાઠન વધુ ને વધુ કરે અને મોક્ષસુખ પ્રાપ્ત કરે એ જ એક મઙ્ગલકામના.

સ્થલ.
સુશ્રાવક શકરચંદ છોટાલાલ નો બંગલો
૧૩, શ્રીપાલનગર, આશ્રમરોડ
અમદાવાદ ૧૩
સં ૨૦૨૨ મહાવદિ ૬ ગુરુવાર

લિ૦
પૂજ્યપાદ કૃપાનિધિ આચાર્યદેવશ્રીમદ્ વિજય પ્રેમસૂરીશ્વરજી મહારાજશ્રીના શિષ્યરત્ન સ્યાદ્વાદનયપ્રમાણવિશારદ તપોનિધિ પૂ૦પંન્યાસ પ્રવરશ્રી ભાનુવિજયજી ગણિવર્યના શિષ્યરત્ન પૂ૦ મુનિવર્યશ્રી જિતેન્દ્રવિજયજી મહારાજ નો શિષ્ય મુનિ
ગુણરત્નવિજય

સમર્પણ

જે મહાપુરુષે સંસારસાગરમાંથી ઉદ્ધાર કરી સંયમનૌકામાં આરોહણ કરાવ્યું, જેઓ મારી જીવનનૌકાના કાબેલ સુકાની છે, જેઓશ્રીની નિઃસીમકૃપાથી હું અલ્પજ્ઞ આ 'ખવગસેઢી' મહાગ્રન્થનું સર્જન-સમ્પાદન કરી શક્યો છું, તે અનન્ત ઉપકારી જૈનશાસનના પરમપ્રભાવક કર્મશાસ્ત્રનિષ્ણાત સિદ્ધાન્તમહોદધિ સુવિશાલગચ્છાધિપતિ આચાર્યદેવ

શ્રીમદ્ વિજયપ્રેમસૂરીશ્વરજી મહારાજાના

પવિત્ર કરકમલમાં................

શિશુ ગુણરત્નવિજય.

आ ग्रन्थसर्जनना प्रेरक, मार्गदर्शक अने संशोधक



सिद्धान्तमहोदधि सुविशालगच्छाधिपति संघकौशल्याधार कर्मशास्त्ररहस्यवेदी शासनशिरताज

परमपूज्य आचार्यदेव श्रीमद् विजय प्रेमसूरीश्वरजी महाराजा

પ્રસ્તાવના

લેખક—પૂજ્ય મુનિરાજશ્રી હેમચન્દ્રવિજયજી મહારાજ

અનાદિકાળથી સંસારમાં પરિભ્રમણ કરી રહેલા જીવોને જ્યાં સુધી "ક્ષપકશ્રેણિ" ની પ્રાપ્તિ થતી નથી, ત્યાં સુધી ઘાતિકર્મનો ક્ષય થતો નથી અને કેવલજ્ઞાન તથા કેવલદર્શનની પ્રાપ્તિ થતી નથી. કેવલજ્ઞાન અને કેવલદર્શનની પ્રાપ્તિ વિના કોઈ પણ જીવની સંસારમાંથી મુક્તિ થતી નથી, જે કોઈ આત્માઓએ મુક્તિની પ્રાપ્તિ કરી છે, કરી રહ્યા છે અને કરશે, તે બધાય આત્માઓ 'ક્ષપકશ્રેણિ' ઉપર આરોહણ કરીને જ મુક્તિ પ્રાપ્ત કરી શક્યા છે, કરે છે અને કરશે. આમ "ક્ષપકશ્રેણિ" એ મુક્તિ પ્રાપ્ત કરવા માટેનું અસાધારણ કારણ છે, તો આપણને સહેજે પ્રશ્ન થાય કે "ક્ષપકશ્રેણિ" શી વસ્તુ હશે ?

આત્મા અનાદિકાળથી મલિન અવસ્થાવાળો છે. આત્માની આ મલિનતા નવનવા કર્મોની સાથે સંબદ્ધ થવાના કારણે છે, આત્મા સાથે કર્મનો સંબંધ લોહ-અગ્નિવત્ એકમેક થયેલો છે. એ કર્મના વિપાક(ફલ)ભોગવવા અજઅમર એવા આત્માને પણ જન્મ મૃત્યુની ઘટમાલમાં ફસાવું પડે છે. આ સંસારની રંગભૂમિ ઉપર નવનવા વેશ ધારણ કરવા પડે છે યાને સ્વરૂપે અરૂપી આત્માને પણ તેવા તેવા શરીર ધારણ કરી, ક્યારેક મનુષ્ય, તો ક્યારેક દેવ, ક્યારેક તિર્યંચ તો વળી કોઈ વખતે નારક તરીકે ભમવું પડે છે. આત્મામાં કેવલજ્ઞાન, કેવલદર્શનાદિ અનંતગુણો હોવા છતાં એ બધા ગુણો આ કર્મસંબંધના કારણે લગભગ આવરાઈ ગયા છે. તેથી આત્માની સહજસ્વભાવની સ્થિતિ દબાઈ ગઈ છે અને કર્મવિપાકવશ ઘણી વિરામ બની ગઈ છે. ચક્રવર્તીની ભિખારી અવસ્થા જેટલી કરુણાને પાત્ર છે એના કરતાં અનંતશક્તિ અને ગુણોના સ્વામી એવા આત્માની વર્તમાન કર્મપરાધીન, નિર્બલ, ગુણહીન અને દોષપૂર્ણ અવસ્થા અનેકગુણી કરુણાને પાત્ર છે.

ભગવાન શ્રીતીર્થંકરદેવોએ પણ ક્ષપકશ્રેણિ દ્વારા ઘાતિકર્મનો સર્વથા ક્ષય કરી અનાદિકાળથી સંસારમાં મલિનાવસ્થામાં રહેલા પોતાના આત્માને નિર્મળ બનાવ્યો, કેવલજ્ઞાન અને કેવલદર્શનાદિ અનન્તચતુષ્કને પ્રાપ્ત કર્યું અને જગતના જીવો પણ 'ક્ષપકશ્રેણિ' દ્વારા કર્મક્ષય કરી શકે એ માટે ધર્મતીર્થની સ્થાપના કરી.

ભગવાન મહાવીરદેવની વર્તમાન તીર્થસ્થાપના

મગધદેશમાં અપાપાનગરીની નજીકમાં ઋજુવાલિકાનદીના તીરે ભગવાન શ્રીમહાવીરદેવને કેવલજ્ઞાનની પ્રાપ્તિ થઈ. તે પછી અપાપાનગરીની પાસે મહસેનવનમાં પ્રભુએ ધર્મતીર્થની સ્થાપના કરી. તે આ રીતેઃ-

देवताओए प्रभुनी देशनाभूमि तरीके रचेला त्रणगढना समवसरणमां विराजी प्रभुए देशनानो प्रारम्भ कर्यो. ए नगरीमां इन्द्रभूति आदि अगियार मुख्य विद्वान ब्राह्मणो पोताना सेंकडो विद्यार्थीओ साथे यज्ञ कराववा माटे आवेला हता. त्यां पधारेला प्रभुना सर्वज्ञपणानो यश सांभळी तेमने ईर्ष्या थई. तेथी तेओ प्रभुनी साथे वाद करवा माटे आव्या. प्रभुए तेमना जीवादितत्त्वो विषेना संशयो दूर करीने तेमना प्रतिबोध्या अने चुंमालीससो विद्यार्थीओ साथे ते अगियारे ब्राह्मणोने चारित्र आपी गणधरपद उपर स्थापित कर्या. ते ज वखते चंदनबाला आदि अनेक राजकुमारीओ वगेरेए पण प्रभुनी पासे चारित्र ग्रहण कर्युं, तेमज अनेक नरनारीओए श्रावकधर्मनो स्वीकार कर्यो. आम ते समये त्यां वर्तमान अवसर्पिणीना अंतिम तीर्थंकर भगवान श्रीवर्धमानस्वामी द्वारा साधु-साध्वी-श्रावक-श्राविकारूप चतुर्विध संघनी स्थापना थई.

द्वादशांगी

संघनी स्थापना थतां प्रभुए इन्द्रभूति आदि गणधरोने "उपन्नेइ वा, विगमेइ वा धुवेइ वा" रूप त्रिपदी आपी. तेना आधारे अंतर्मुहूर्तकाळमां गणधरभगवंतोए **आचारांग, सूत्रकृतांग, स्थानांग, समवायांग, व्याख्याप्रज्ञप्ति, ज्ञाताधर्मकथांग, उपासकदशांग, अंतकृद्दशांग, अनुत्तरोपपातिकदशांग, प्रश्नव्याकरण, विपाकसूत्र** तथा **दृष्टिवाद** आ बार अंगोनी रचना करी. बारमा दृष्टिवाद अंगमां चौदपूर्व पण गूंथ्या। आ वखते इन्द्र सुगंधी चूर्णनो थाल हाथमां ग्रहण करीने भगवाननी पासे उभा रह्या अने इन्द्रभूत्यादि गणधरदेवो कंईक नमेला मस्तके प्रभु समक्ष उभा रह्या. प्रभुए "द्रव्य-गुण-पर्यायथी तीर्थनी अनुज्ञा आपुं छुं" एम कही तेओनां मस्तक उपर सुगंधिचूर्णनो निक्षेप कर्यो, देवोए पण पुष्प अने चूर्णनी वृष्टि करी. आ रीते श्रुतधर्म अने चारित्रधर्मरूप भगवान महावीरदेवना वर्तमान तीर्थनी आजथी लगभग पचीससो वर्ष पूर्वे वैशाख सुद ११ ना दिवसे अपापापुरीमां मंगल स्थापना थई.

द्वादशांगीनुं स्वरूप

भगवान श्रीमहावीर देव पासेथी प्राप्त थयेल त्रिपदीना आधारे द्वादशांगीनी रचना श्री गौतमादि गणधर भगवंतोए करी. द्वादशांगीना अर्थप्रणेता भगवान श्रीमहावीरदेव छे ज्यारे द्वादशांगीना सूत्रप्रणेता गणधर भगवंतो छे. अगियार गणधरोमांथी पांचमा सुधर्मा गणधर भगवान दीर्घ आयुष्यवाळा होवाथी तेमनी द्वादशांगीनी परिपाटी आगळ वधी अने बाकीना दशे गणधरभगवंतोनी सूत्ररूप द्वादशांगीनो तेमनी पाछळ विच्छेद थयो. द्वादशांगीमां जगतना त्रैकालिकस्वरूपनी यथावस्थित रजूआत होय छे, जगतमां रहेलां धर्मास्तिकायादि सर्वद्रव्यो अने तेना पर्यायोनुं निरूपण होय छे. जगतनी तमाम वस्तुओ अने विषयो द्वादशांगीमां सारी रीते रजू थयेला छे. एटले द्वादशांगीना ज्ञानथी आत्माने समग्र विश्वनी त्रैकालिक अवस्थानुं भान थाय छे, पोताना आत्माना असल

સ્વરૂપનો ખ્યાલ આવે છે અને આત્માની વર્તમાનકર્મબદ્ધપરિસ્થિતિને પણ જાણી શકાય છે, એટલે આત્માના શુદ્ધસ્વરૂપ અને આત્માના વર્તમાનસ્વરૂપના અન્તરની ઓળખાણ થયા પછી સ્વરૂપ-પ્રાપ્તિ તરફ પ્રયાણ થઈ શકે છે.

દ્વાદશાંગીનો વિષય સમુદ્ર જેવો વિશાલ છે. તેમાં જીવ, કર્મ, પુદ્ગલ, પુણ્ય, પાપ, ધર્માસ્તિકાય, અધર્માસ્તિકાય, કાળ, જીવની સંસારમાં ગતિઓ, યોનિઓ, અવસ્થાઓ, પુદ્ગલ(જડદ્રવ્ય)ની અવસ્થાઓ, જીવની શક્તિ, પુદ્ગલની શક્તિ, પુદ્ગલના ભેદો, પુદ્ગલનો જીવ ઉપર પ્રભાવ, જીવ ઉપર કર્મનું બળ, જીવને કર્મના બંધનમાંથી સ્વતંત્ર થવાનો માર્ગ વગેરે અનેક વિષયોનું વિસ્તૃત વર્ણન છે. દ્વાદશાંગીમાં અધ્યાત્મ, સાહિત્ય, ન્યાય, જ્યોતિષ, વૈદક, મંત્ર, યંત્ર, તંત્ર આદિ જગતના સર્વવિષયોનું જ્ઞાન રહેલું છે, દ્વાદશાંગીનો વિષયવિસ્તાર આપણી કલ્પના બહારનો છે. એમ કહીએ તો ચાલે કે દ્વાદશાંગી એ તીર્થંકર ભગવાનના તીર્થનું સર્વસ્વ છે, એટલાજ માટે દ્વાદશાંગીને પણ તીર્થ કહેવામાં આવે છે, દ્વાદશાંગીમાં છેલ્લું અંગ દૃષ્ટિવાદ છે. દૃષ્ટિવાદનો વિષય ઘણો જ વિશાલ છે. દૃષ્ટિવાદના મુખ્ય પાંચ વિભાગ છે, **(૧) પરિકર્મ (૨) સૂત્ર (૩) પ્રથમાનુયોગ (૪) પૂર્વગત (૫) ચૂલિકા.** એમાંના પૂર્વગતની અંદર ચૌદપૂર્વનો અધિકાર છે. ચૌદપૂર્વનો વિષય કરોડો પદ પ્રમાણ વિસ્તૃત છે.

દ્વાદશાંગીની પરંપરા

શ્રી સુધર્મા ગણધર ભગવાનની દ્વાદશાંગી જંબૂસ્વામીને પ્રાપ્ત થઈ, તે પછી તેઓશ્રીના પટ્ટધર શ્રીપ્રભવસ્વામીને એમ પરંપરાએ દ્વાદશાંગીનું જ્ઞાન ઉત્તરોત્તર આચાર્યભગવંતોને પ્રાપ્ત થવા માંડયું પરંતુ અવસર્પિણીકાળના માહાત્મ્યને કારણે જ્ઞાન ઘટતું ઘટતું આવ્યું તેથી શ્રીભદ્રબાહુ-સ્વામી સુધી જ સૂત્ર અને અર્થ ઉભયથી ચૌદપૂર્વનું જ્ઞાન પહોંચ્યું. સ્થૂલભદ્રસ્વામીને સૂત્રથી ચૌદપૂર્વ તથા અર્થથી દશપૂર્વનું જ્ઞાન મળ્યું. ત્યાર પછી ઘટતું ઘટતું વજ્રસ્વામી સુધી દશપૂર્વનું જ્ઞાન પહોંચ્યું, ત્યાર બાદ દશપૂર્વના જ્ઞાનનો પણ વિચ્છેદ થયો. આમ ક્રમશઃ કાળના પ્રભાવે જ્ઞાનમાં ઘટાડો થતો આવ્યો, છતાં હોશિયાર વ્યાપારી સળગતા ઘરમાંથી શક્ય તેટલું બચાવી લે, તેવી રીતે પૂર્વાચાર્ય ભગવંતોએ પણ વિચ્છેદ પામતા પૂર્વના જ્ઞાનમાંથી અનેક પ્રકરણાદિ ગ્રન્થોની રચના કરવા દ્વારા શ્રુતની શક્ય તેટલી રક્ષા કરવાનો પુરુષાર્થ કર્યો, જેના ફલ રૂપે પૂર્વના જ્ઞાનનો સર્વથા અભાવ થવા છતાં પૂર્વોમાંથી ઉદ્ધૃત દશવૈકાલિકાદિ અનેક ગ્રન્થો આજે પણ આપણને ઉપલબ્ધ થાય છે. ચૌદપૂર્વમાંથી બીજા અગ્રાયણીયપૂર્વમાં તેમજ પાંચમા જ્ઞાનપ્રવાદ પૂર્વમાં અને આઠમા કર્મપ્રવાદ પૂર્વમાં કર્મવિષયક સુંદર સંગ્રહ હતો, વર્તમાનમાં ઉપલબ્ધ કર્મ-પ્રકૃતિ, કષાયપ્રાભૃત, શતક, સપ્તતિકા, કર્મપ્રાભૃત આદિ અનેક ગ્રન્થો પૂર્વોમાંથી ઉદ્ધૃત છે.

કર્મનું સ્વરૂપ

વિશ્વમાં અનંતાનંત જીવો છે, તેમ અનંતાનંત પુદ્ગલસ્કંધો છે. પુદ્ગલસ્કંધોના અનેક

विभागो पडी शके छे, अेमांना अेक विभागनुं नाम कार्मणवर्गणा छे. आ कार्मणवर्गणाना पुद्गलो अतिसूक्ष्म छे, गमे तेटला अेकठा थाय तो पण चर्मचक्षुथी देखी शकाय तेवा नथी. कार्मणवर्गणाना आ पुद्गलो समस्त लोकमां व्यापीने रहेला छे, आवा कार्मणवर्गणाना पुद्गलोने संसारी जीव मिथ्यात्वादिना कारणे प्रतिसमय ग्रहण करीने आत्मसात् करे छे. जीव साथे क्षीरनीरनी जेम अेकमेक थयेला आ कार्मणवर्गणाना पुद्गलोने कर्म कहेवाय छे.

जगतनी विचित्रतानुं कारण जो कोई होय तो आ कर्म छे. जगतना जीवोमां सुख दुःख, संपत्ति-विपत्ति, यश-अपयश, श्रीमंताई गरीबी, आ बधुं कर्मने आधीन छे. कर्मना अस्तित्वना अपलापथी जगतनी अनेकप्रकारनी विषमता घटी शकती नथी. अेक सरखां साधनो, संयोगो अने निमित्तो मळवा छतां अेक श्रीमंत बने छे, बीजो दरिद्र रहे छे,अेक पंडित बने छे, बीजो मूर्ख रहे छे, अरे अेकज माताना अेक साथे जन्मेला बे पुत्रोमांथी अेक राजा बने छे, बीजो रंक रहे छे, अेकमहान अैश्वर्यने भोगवे छे, बीजाने पेट भरवानां फांफां होय छे, आ बधुं कर्मना अस्तित्व विना कोई रीते घटी शकतुं नथी,माटे ज सर्व आस्तिक दर्शनकारोअे कर्मना अस्तित्वने अेक या बीजा रूपे स्वीकार्युं छे.

बौद्धोए वासनारूपे, **वेदान्तिओअे** माया-अविद्यारूपे, **सांख्योअे** प्रकृतिरूपे, **वैशेषिकोअे** अदृष्टरूपे, अने **मीमांसकोअे** धर्माधर्मरूपे कर्मने ज मान्युं छे. लोकमां पण दैव, भाग्य, भाविभाव वगेरे शब्दथी कर्मना अस्तित्वने स्वीकारायेल छे, जैनेतरशास्त्रोमां कर्मना अस्तित्वने जणावतां प्रमाणो मले छे. जुओ

"ब्रह्मा येन कुलालवन्नियमितो ब्रह्माण्डभाण्डोदरे, विष्णुर्येन दशावतारगहने क्षिप्तो महासङ्कटे ।
रुद्रो येन कपालपाणिपुटके भिक्षाटनं सेवते, सूर्यो भ्राम्यति नित्यमेव गगने तस्मै नमः कर्मणे" ॥

(भर्तृहरि नीतिशतक)

इत एकनवतितमे कल्पे, शक्त्या मे पुरुषो हतः । तेन कर्मविपाकेनपादे विद्धोऽस्मि भिक्षव ॥
जगतो यच्च वैचित्र्यं सुखदुःखादिभेदत । कृषिसेवादिसाम्येऽपि विलक्षणफलोदयः ॥
अकस्मान्निधिलाभश्च विद्युत्पातश्च कस्यचित् । क्वचित्फलमयत्नेऽपि यत्नेऽप्यफलता क्वचित् ॥
तदेतद् दुर्घटं दृष्टात्कारणाद् व्यभिचारिणः । तेनादृष्टमुपेतव्यमस्य किञ्चन कारणम् ॥

न्यायमञ्जरीउत्तरार्धे पृ०४२

यथैधांसि समिद्धोग्निर्भस्मसात्कुरुते क्षणात् । ज्ञानाग्नि सर्वकर्माणि भस्मसात्कुरुते तथा ॥

भगवद्गीता अध्याय ४श्लोक ३७

जैनतरदर्शनकारोअे कर्मनो वासनादिरूपे स्वीकार मात्र कर्यो छे, पण त्यार पछी कर्मना बन्धादिनी विशेष कोई प्रक्रिया बतावी नथी, ज्यारे जैनदर्शननी अे विशेषता छे, के कर्मने सूक्ष्म, मूर्त पुद्गलरूप मानी तेने लगती बंध, उदय, उदीरणा, संक्रमादि अनेक प्रकारनी विशिष्ट प्रक्रिया बतावी छे. अेनी सूक्ष्मता अने विश्वसंचालन साथेनो सुमेळ जोतां जैनदर्शननो कर्मवाद ज तेना प्रणेता तीर्थंकरभगवंतोनी सर्वज्ञताने साबित करे छे.

जे समये जीव मन वचन कायानी जेवी शुभाशुभ प्रवृत्तिवाळो बने छे, ते समये कार्मण-

વર્ગણાના પુદ્ગલો તેવા તેવા પ્રકારના પરિણામવાળા થઈ આત્મા ઉપર લાગે છે—ચોંટે છે. આને કર્મનો બંધ કહે છે, જીવ પ્રતિસમય આ રીતે કર્મનો બંધ કરે છે જે સમયે કર્મનો આત્માની સાથે આ રીતે સમ્બન્ધ થાય છે, તે જ સમયે જીવના પરિણામાનુસાર તેમાં સુખદુઃખાદિ આપવાનો કે આત્માના તે તે જ્ઞાનાદિગુણોને આવરી લેવાનો સ્વભાવ, આત્માની સાથે સંબદ્ધ રહેવાનો કાલ અને ફલ આપવાની શક્તિ પણ નક્કી થાય છે. કર્મના આ સ્વભાવને પ્રકૃતિ, કાલને સ્થિતિ અને શક્તિને રસ કહે છે. જ્યારે સંબદ્ધ થયેલા કર્માણુના પ્રમાણને પ્રદેશ કહેવાય છે. આ રીતે પ્રતિસમય કર્મના બંધ વખતે પ્રકૃત્યાદિ ચારે વસ્તુ પણ નક્કી થઈ જાય છે અને સ્થિતિ પરિપક્વ થયે તે કર્મો ઉદયમાં આવી શુભાશુભ ફલ આપી આત્માથી છૂટાં પડે છે આમ પ્રતિસમય જીવપ્રદેશો ઉપર કર્મોનો આય-વ્યય ચાલુ છે અને તેના કારણે સુખ-દુઃખ, જન્મ-મરણ, સંસાર પરિભ્રમણ વગેરે ચાલુ છે કર્મની જ આ શક્તિ છે, કે જે જીવોને અનંતકાલથી જગતમાં પરિભ્રમણ કરાવે છે, કાર્મણવર્ગણામાં પહેલેથી જ આવી શક્તિ હોતી નથી પણ ગ્રહણ કરાતા કાર્મણપુદ્ગલોમાં જીવે જ રાગદ્વેષાદિપરિણામો વડે તેવી શક્તિ ઊભી કરી હોય છે, માટે સંસાર-પરિભ્રમણને અટકાવવા આત્માએ પોતે જ પુરુષાર્થથી કર્મની તે શક્તિને તોડવી પડે, અથવા ઓછી કરવી પડે અને તે માટે જીવે પોતાના રાગ-દ્વેષના પરિણામો દૂર કરવા જરૂરી છે.

પૂર્વગત કર્મવિજ્ઞાન તથા વર્તમાનકાલે ઉપલબ્ધ કર્મવિજ્ઞાન

કર્મ જીવના જ્ઞાનાદિગુણોને ઢાંકે છે, વિવિધ પ્રકારનાં કર્મોની વિવિધપ્રકારની શક્તિઓ હોય છે, પ્રતિસમય કર્મ કેવી રીતે બંધાય છે, તેના કેવાં કેવાં ફલ છે, કેવી રીતે છૂટે છે, જુદા જુદા પ્રકારની ગતિમાં રહેલા જીવો કેવા કેવા પ્રકારનાં કર્મો બાંધે છે, કેવી સ્થિતિવાળાં બાંધે, છે, કેવા રસવાળાં બાંધે, કેટલા પ્રમાણમાં બાંધે, કેવા પરિણામથી કેવાં કર્મો બંધાય, બંધાયેલાં કર્મો કેટલા કાલે કેવી રીતે કેટલા પ્રમાણમાં ભોગવાય, એક કર્મ બીજા કર્મરૂપે થાય યા ન થાય, થાય તો કેવી રીતે થાય, વગેરે કર્મને લગતું ઘણું જ ઊંડું તત્ત્વજ્ઞાન અતિશય વિસ્તારથી પૂર્વોમાં હતું. અને એ જે હતું તેની અપેક્ષાએ વર્તમાન કાળમાં ઘણું થોડું છતાં જીવનભર અવગાહીએ તો પણ સંપૂર્ણ પાર પામી ન શકાય તેટલું વિસ્તૃત કર્મવિજ્ઞાન ઉપલબ્ધ કર્મપ્રકૃત્યાદિ ગ્રન્થોમાં મલે છે.

પ્રસ્તુત 'ખવગસેઢી' ગ્રન્થનું સર્જન

કર્મવિજ્ઞાનવિષયક ઉપલબ્ધ પ્રાચીન ગ્રન્થોમાંથી સપ્તતિકા, સપ્તતિકાચૂર્ણિ, કષાયપ્રાભૃત, કષાયપ્રાભૃતચૂર્ણિ, શતક, શતકચૂર્ણિ, કર્મપ્રકૃતિટીકા, પંચસંગ્રહટીકા આદિમાં ક્ષપકશ્રેણિના અધિકારનું સુંદર વિવેચન છે પરન્તુ તે શબ્દસંક્ષિપ્ત અને અર્થગંભીર છે. અલ્પ શબ્દોમાં ઘણા ભાવ તેની અન્દર ભરેલા છે. પૂર્વાચાર્યભગવંતોની લગભગ એ શૈલી હતી કે અલ્પશબ્દોમાં ઘણા પદાર્થોનો સંગ્રહ કરવો, તે મુજબ કર્મપ્રકૃતિ-કષાયપ્રાભૃત વગેરેમાં અલ્પશબ્દોમાં ઘણા પદાર્થોનો સંગ્રહ છે. તે તે સૂત્રોમાંથી તે તે પદાર્થોને ખોલવામાં આવે અને તેમનું વિશદીકરણ કરવામાં

આવે તો જ તે પદાર્થોનો વિશાલ બોધ આપણને થાય અને બીજા જીવોને પણ લાભ થાય, એ દષ્ટિબિંદુને લક્ષ્યમાં લઈને પૂર્વપુરુષોના ગ્રન્થોના આધારે આ 'ખવગસેઢી' ગ્રન્થનું સર્જન થયું છે.

પ્રસ્તુત ગ્રન્થનો વિષય

પ્રસ્તુત ગ્રન્થ 'ખવગસેઢી' જેને આપણે સંસ્કૃતમાં કે ગુજરાતીમાં ક્ષપકશ્રેણિ કહીએ છીએ તે સૂક્ષ્મતત્ત્વજ્ઞાનવિષયક ગ્રન્થ છે. એમાં કર્મવિષયક અત્યન્ત ઊંડું જ્ઞાન ભરેલું છે. ક્ષપકશ્રેણિ એટલે કર્મક્ષપણા માટે ઉદ્યત થયેલા જીવને ગુણસ્થાનકો ઉપર ચડવાની શ્રેણિ અર્થાત્ કર્મનો નાશ કરતા જીવનો વિશિષ્ટ ગુણસ્થાનકો ઉપર આરોહણનો જે ક્રમ તે ક્ષપકશ્રેણિ. પ્રસ્તુત ગ્રન્થમાં ક્ષપકશ્રેણિ પ્રાપ્ત કરવાને યોગ્ય જીવ કોણ છે, ત્યાંથી માંડીને મુક્તિની પ્રાપ્તિ સુધીના વિષયનો નવ અધિકારોમાં સુંદર સંગ્રહ કરાયો છે. ક્ષપકશ્રેણિનો પ્રારમ્ભ કરનાર જીવની કેવી અવસ્થા હોય છે, તે કેટલાં કર્મોનો બંધક હોય છે, કેવી લેશ્યાવાળો હોય, કેવા ઉપયોગવાળો હોય, કેવા યોગવાળો હોય, વગેરે વિસ્તૃત રીતે બતાવીને પછી ક્ષપકશ્રેણિમાં જીવ કેવી રીતે આગળ વધે છે, યથાપ્રવૃત્તકરણમાં શું શું કરે છે, યથાપ્રવૃત્તકરણમાં કેવી વિશુદ્ધિ હોય છે, કેવા અધ્યવસાય હોય છે, અપૂર્વકરણમાં સ્થિતિઘાતાદિ કેવી રીતે કરે છે, કેટલી પ્રકૃતિઓનો બંધમાંથી વિચ્છેદ કરે છે, ત્યાર પછી અનિવૃત્તિકરણમાં પણ સ્થિતિઘાતાદિથી કર્મની સ્થિતિ અને રસને કેવી રીતે ઓછાં કરતો જાય છે, કષાયઅષ્ટક તથા થીણદ્ધિત્રિકાદિ સોલપ્રકૃતિનો ક્ષય કરીને અંતરકરણ કેવી રીતે કરે છે, ત્યાર પછી નવ નોકષાયનો ક્ષય કરી સંજ્વલનક્રોધનો ક્ષય કેવી રીતે કરે છે, ફરીથી માનાદિની પ્રથમસ્થિતિ કરીને કેવી રીતે ક્ષય કરે છે અને છેવટે સંજ્વલનલોભની સૂક્ષ્મકિટ્ટિઓ નવમા ગુણસ્થાનકે કેવી રીતે બનાવે છે, સૂક્ષ્મકિટ્ટિને વેદતા દશમાગુણસ્થાનકે બાકીની કિટ્ટિઓનો ક્ષય કરી ક્ષીણકષાયગુણસ્થાનકને પ્રાપ્ત કરી શેષ ત્રણ ઘાતિકર્મનો ક્ષય કરી જીવ કેવલજ્ઞાન કેવી રીતે પ્રાપ્ત કરે છે, એ બધી વાતો આ ગ્રન્થમાં સુંદર અને વિશાલ વિવેચન પૂર્વક બતાવવામાં આવી છે અને તેમાં પણ સાથે ભિન્ન ભિન્ન કષાય અને વેદના ઉદયથી ક્ષપકશ્રેણિનો પ્રારમ્ભ કરનાર જીવોને પ્રક્રિયાના તારતમ્યનું પણ આલેખન કરવામાં આવ્યું છે. ઉપરાંત તેરમા ગુણસ્થાનકના અંતે થતાં સમુદ્ઘાત, આયોજિકાકરણ અને યોગનિરોધ તથા ચૌદમાગુણસ્થાનકરૂપ શૈલેશીકરણ દ્વારા થતા નવા કર્મબંધનો અટકાવ અને પૂર્વકર્મની નિર્જરાનો અધિકાર બતાવી મુક્તિની પ્રાપ્તિ અને મુક્તિનું સ્વરૂપ વગેરે પદાર્થોનો પણ ગ્રન્થમાં સંગ્રહ કરવામાં આવ્યો છે. જૈનેતરદર્શનકારોએ મુક્તિના કલ્પેલા સ્વરૂપનો યુક્તિપૂર્વક નિરાસ કરવામાં આવ્યો છે, અને જૈનદર્શને બતાવેલ મુક્તિના સ્વરૂપની યથાર્થતા સિદ્ધ કરવામા આવી છે. આ રીતે તર્કશૈલીથી દાર્શનિકવિષય પણ ગ્રન્થમાં સારી રીતે આલેખાયેલો છે.

ગ્રન્થની વિશેષતાઓ

ન્યાય અને દર્શનના વિષય ઉપરાંત ગ્રન્થમાં અનેક સ્થલે શબ્દોની વ્યુત્પત્તિ વગેરે કરતી વખતે વ્યાકરણસૂત્રોની સાક્ષીઓ બતાવેલી છે, ગણિતાનુયોગ પણ પ્રસ્તુતગ્રંથમાં ઘણો છે. અને તે સુંદર રીતે ક્ષળક્યો છે. ગ્રન્થનો લગભગ છઠ્ઠો ભાગ ગણિતાનુયોગમાં રોકાયેલો છે. પુદ્ગલોના આય-વ્યય (આગમન-ગમન),રસની હાનિ, સ્થિતિનો ઘાત, અપૂર્વસ્પર્ધકપ્રરૂપણા, કિટ્ટિઓ વગેરે વિષયોમાં ઊંડાણથી અને સૂક્ષ્મતાથી ગણિતાનુયોગ રજૂ થયેલો છે. ગણિતાનુયોગનો વિષય સરલ કરવા માટે અસંખ્ય અને અનંતના કઠિન ગણિતને ઠેર ઠેર આંકડાઓ દ્વારા અને સંજ્ઞાઓ દ્વારાસમજાવેલ છે, જેથી ગણિતના વિષયમાં અલ્પ બોધવાળા જીવો પણ સુગમતાથી સમજી શકે. સંસ્કૃતભાષામાં ગણિતાનુયોગને સમજાવવામાં ટીકાકાર વિદ્વાન મુનિવર સફલ થયા છે. એટલું જ નહિ પણ ગણિતાનુયોગમાં તદ્દન બિનઅનુભવીને પણ કંટાળો ન ઉપજે એ માટે ગણિતનો વિષય દરેક સ્થળે જુદો પાડી દેવામાં આવ્યો છે. પહેલાં સામાન્યથી પદાર્થનું કથન કરી, જ્યાં ગણિતાનુયોગમાં વિશેષ ઊંડા ઉતરવા જેવું છે ત્યાં 'અથ ગણિતવિભાગઃ' એમ કહીને ગણિતાનુયોગની શરૂઆત કરી, પૂર્ણ કરતી વખતે 'ઇતિ ગણિતવિભાગઃ' એ પ્રમાણે ગણિતાનુયોગની સમાપ્તિ કરી છે, જેથી ગણિતાનુયોગનો બોધ ન હોય તેઓને ગણિતાનુયોગ છોડીને બાકીનો ગ્રન્થ વાંચવામાં વચ્ચે વિષયની સંકલના તૂટતી નથી.

અશ્વકર્ણકરણાદ્ધા અધિકારમાં સ્પર્દ્ધકોની રચના કેવી રીતે હોય છે તેમાં પ્રત્યેક વર્ગણામાં રસ અવિભાગ તથા કર્મપ્રદેશો, ઉત્તરોત્તર વર્ગણાઓમાં રસ-અવિભાગની વૃદ્ધિ અને કર્મપ્રદેશોની હાનિ થતાં થતાં પ્રથમ સ્પર્દ્ધક કરતાં ઉત્તરોત્તરસ્પર્ધકમાં જેટલામું સ્પર્ધક હોય સ્થૂલદષ્ટિથી તેટલા ગુણા અવિભાગો તથા સૂક્ષ્મદષ્ટિથી કિંચિત્ ન્યૂન તેટલા ગુણા અવિભાગો કેવી રીતે થાય, એ બધું અસત્કલ્પનાથી સ્પર્ધકો, વર્ગણાઓ, અવિભાગો, વર્ગણાઓનો ચય, ગુણહાનિ વગેરેની સંખ્યાઓ નક્કી કરી સ્પષ્ટ સમજાઈ જાય તે રીતે વર્ણવવામાં આવ્યું છે. અપૂર્વસ્પર્ધકની રચના પછી પૂર્વ અને અપૂર્વસ્પર્ધકોના અનુભાગને આશરીને સ્થાપના પણ બતાવાઈ છે. કિટ્ટિકરણાદ્ધાના પ્રથમસમયે પૂર્વ અને અપૂર્વ સ્પર્ધકોમાંથી કેટલાં દલિકોને ગ્રહણ કરી તેમાંથી કેટલી કિટ્ટિઓની રચના કેવી રીતે કરે છે. તે પણ બતાવ્યું છે. સંગ્રહ કિટ્ટિઓ, અવાંતર કિટ્ટિઓ વગેરેમાં દલિક વહેંચણીના ગણિતનું પણ ઘણી જ સૂક્ષ્મતાથી નિરૂપણ કર્યું છે. કિટ્ટિકરણાદ્ધા અને કિટ્ટિવેદનાદ્ધાની અંદર દીયમાન અને દશ્યમાન દલિકના વિષયમાં અધસ્તનશીર્ષચયદલિક, ઉભયચયદલ, અધસ્તનકિટ્ટિદલ, અને મધ્યમખંડ દલની પ્રરૂપણામાં તો ખરેખર ગણિતાનુયોગ પરાકાષ્ઠાએ પહોંચ્યો છે. ગણિતાનુયોગના વર્ણનમાં ઠેર ઠેર ભાસ્કરાચાર્ય વગેરેનાં ગણિતસૂત્રો પણ રજૂ કરવામાં આવેલાં છે. ગણિતાનુયોગનું ઊંડું અને વિશાલ વિવેચન જોતાં આ ગ્રન્થ દ્રવ્યાનુયોગનો હોવા છતાં વર્તમાનમાં ઉપલબ્ધ ગણિતાનુયોગના ગ્રન્થોમાં પણ એણે શ્રેષ્ઠ સ્થાન પ્રાપ્ત કર્યું છે.

आ ग्रन्थमां ज्यां ज्यां शक्य बन्युं त्यां त्यां ते विषयने लगता जे कोई मतान्तरो होय ते बधांनो संग्रह करवामां आव्यो छे, तेम ज पूर्वाचार्यभगवंतोना ग्रन्थोनी साक्षीओ पण लगभग बधे रजू करवामां आवी छे. ग्रन्थकार पोते मूल गाथामां पदार्थने संक्षेपमां रजू करी, टीकामां तेने विस्तृत करी दे छे अने पछी तुरत ज पोते ए पदार्थ बतावता पूर्वाचार्य भगवंतोना ग्रन्थोना साक्षी पाठो रजू करी दे छे, एटले वांचनारने ते शोधवा माटे नवो परिश्रम करवानो रहेतो नथी. आटलाथी पण ग्रन्थकारने संतोष थतो नथी एटले ज्यां ज्यां अमुक विषयनुं निरूपण पूरुं थाय छे, त्यां त्यां ते ते पदार्थोनो टूंकमां संग्रह करतां मुद्दासरनां यंत्रोनो स्थापना पण तेमणे करी दीधी छे अने एथी य आगळ वधी ने अमुक अमुक अधिकारोमां पदार्थो बराबर स्पष्ट थई जाय ते माटे तेने लगता चित्रोनुं पण आलेखन करवामां आव्युं छे. जुदा जुदा विषयोने लगता कुल ४० चित्रो अने २७ यंत्रो प्रस्तुत ग्रन्थमां टीकाकारे रजू कर्या छे. टीकाकारनो आ परिश्रम, विशद ज्ञान, पदार्थने रजू करवानी कला वगेरे आपणने तेमना प्रत्ये खूब ज बहुमान उपजावे छे. अने साथे आवा श्रेष्ठ तात्त्विक ग्रन्थोना सर्जननी स्वपरकल्याणकारक सुन्दर शक्तिनुं तेओमां दर्शन करावे छे.

कर्मसाहित्यविषयक प्राचीन ग्रन्थो

हवे आपणे प्रस्तुत ग्रन्थना सर्जनमां आधारभूत ग्रन्थोमांना केटलाक मुख्य ग्रन्थो विषे थोडी विचारणा करी लईए, प्रस्तुत ग्रन्थमां लगभग ८५ ग्रन्थोनी साक्षीओ छे, साक्षीग्रन्थोमां कर्मप्रकृतिमूल तथा तेनी चूर्णि, शतक, शतकचूर्णि, सप्ततिका, सप्ततिकाचूर्णि, कषायप्राभृतमूल तथा तेनी चूर्णि वगेरे मुख्य आधारभूत ग्रन्थो छे. आ बधा ग्रन्थो प्राचीन छे.

कर्मप्रकृति मूलः-आ अतिप्राचीन कर्मविषयक ग्रन्थ छे. ग्रन्थ पद्यमय छे. ग्रन्थमां आठ करण तथा उदय अने सत्तानुं वर्णन छे. आना कर्ता आचार्यदेव शिवशर्मसूरिमहाराजा छे. तेओए अग्रायणीय नामना बीजा पूर्वनी, पांचमी वस्तुना, कर्मप्रकृति नामना चोथा प्राभृत उपरथी प्रस्तुत ग्रन्थनो उद्धार कर्यो छे. जुओ

"इय कम्मपगडीओ जहा सुयं नीयमप्पमइणा वि" (कर्मप्रकृति-सत्ता अधिकार गाथा ५६)

टीका -'अल्पमतिनापि' अल्पबुद्धिनाऽपि सता इति एवमुक्तेन प्रकारेण गुरुचरणकमलपर्युपासनां कुर्वता गुरुपादमूले यथा मया श्रुत तथा 'कर्मप्रकृते.' कर्मप्रकृतिनामकात्प्राभृतात् । दृष्टिवादे हि चतुर्दशपूर्वाणि तत्र च द्वितीयेऽग्रायणीयाभिधानेऽनेकवस्तुसमन्विते पूर्वे पञ्चम वस्तु विंशतिप्राभृतपरिमाणम्, तत्र कर्मप्रकृत्याख्य चतुर्थप्राभृत चतुर्विंशत्यनुयोगद्वारमय तस्मादिद प्रकरण नीतम्-आकृष्टमित्यर्थ । पृ० १६१

आ कर्मप्रकृतिमूल, कर्मप्रकृतिसंग्रहणी तरीके पण ओळखाय छे. चूर्णिकारे पण कर्मप्रकृतिमूलनो 'कर्मप्रकृतिसंग्रहणी' तरीके उल्लेख कर्यो छे, जे चूर्णिना नीचेना पाठ उपरथी जणाय छे. "इममि जिणसासणे दुस्समावलेण खीयमाणमेहाउसद्धासवेगउज्जमारभ अज्झाझिय साहु-

જણં અણુવેત્તુકામેણ 'વિચ્છિન્નકમ્મપયડિમહાગંથત્થસંબોહણત્થં આરદ્ધં આયરિએણં તગ્ગુણણામગં કમ્મપયડીસંગહણી નામ પગરણં ।" (કમ્મપયડિ ચૂર્ણિ પૃ૦ ૧)

પ્રસ્તુત કર્મપ્રકૃતિસંગ્રહણીનો ઉલ્લેખ ઘણા પ્રાચીન ગ્રન્થોમાં પણ જોવામાં આવે છે. **શ્રીપન્નવણાસૂત્રના ૨૩ મા 'કમ્મપયડિ' નામના પદની વૃત્તિમાં હરિભદ્રસૂરિમહારાજાએ પણ** 'કમ્મપયડિસંગહણી' નો ઉલ્લેખ કરી પ્રસ્તુત કર્મપ્રકૃતિસંગ્રહણીની બે ગાથા (૭૯,૮૩) સાક્ષી તરીકે આપી છે. તેવી જ રીતે બીજા એક સ્થાને (મુદ્રિત પૃ૦ ૧૩૯) કમ્મપયડિની ૯૬ મી ગાથાની સાક્ષી આપી છે. **તત્ત્વાર્થસૂત્રની સિદ્ધસેનીય ટીકામાં** તથા **આચારાંગસૂત્રની વૃત્તિમાં** પણ પ્રસ્તુત કર્મપ્રકૃતિસંગ્રહણીની ગાથાઓની સાક્ષી આવે છે, એ ઉપરથી આ કર્મપ્રકૃતિસંગ્રહણી (મૂલ) ગ્રન્થ અતિપ્રાચીન અને અનેક ગીતાર્થ બહુશ્રુત મહાપુરુષોને માન્ય છે એ સિદ્ધ થાય છે.

કર્મપ્રકૃતિના કર્તા તરીકે આચાર્ય શિવશર્મસૂરિ મ૦ ના નામનો ઉલ્લેખ કર્મગ્રન્થાદિ અનેક ગ્રંથોમાં જોવા મળે છે. "યદાહ શ્રીશિવશર્મસૂરિવર કર્મપ્રકૃતૌ" (૪ થો કર્મગ્રન્થ ગાથા ૧૨ ની ટીકા પૃ૦ ૧૧૨ અ) બંધનકરણ તથા બંધશતકચૂર્ણિના નીચેના ઉલ્લેખો પરથી પણ કર્મપ્રકૃતિના કર્તા **આચાર્ય શિવશર્મસૂરિ મહારાજ** સિદ્ધ થાય છે—

"એવ બંધણકરણે પરૂવિએ સહ હિ બંધસયગેણ" (કર્મપ્રકૃતિબંધનકરણ ગાથા ૧૦૨)
મલય૦ ટીકા -"એતેન કિલ શતકકર્મપ્રકૃત્યોરેકકર્તૃતા આવેદિતા દ્રષ્ટવ્યા" ।

તત્થ એય પગરણપમાણણિપ્ફન્નનામગં સતગં તિ । કિં ણિમિત્તં કયં ? તિ ણિમિત્તં ભણિય । કેણ કયં ? તિ શબ્દતર્કન્યાયપ્રકરણકર્મપ્રકૃતિસિદ્ધાન્તવિજાણએણ અણેગવાયસમાલદ્ધવિજએણ સિવસમ્માયરિયણામધેજ્જેણ કયં । (શતકપ્રકરણ ગા૦ ૧ ની ચૂર્ણિ પૃ૦ ૧)

બંધશતક અને કર્મપ્રકૃતિના કર્તા એક છે અને બંધશતકના કર્તા તરીકે શતકચૂર્ણિકારે શિવશર્મસૂરિ મ૦ ના નામનો ઉલ્લેખ કર્યો છે, તે ઉપરથી પણ કર્મપ્રકૃતિના કર્તા તરીકે આચાર્યશિવશર્મસૂરિ મ૦ નક્કી થાય છે.

આ કર્મપ્રકૃતિસંગ્રહણીના કર્તા આચાર્ય શિવશર્મસૂરિ મહારાજ પૂર્વધર હતા, (દૃષ્ટિવાદના જ્ઞાતા હતા) જે શતકની પ્રથમગાથા તથા તેની ચૂર્ણિ ઉપરથી જણાય છે—

"વોચ્છં કઇવયાઓ ગાહાઓ દિટ્ઠિવાયાઓ"—(ગા૦ ૧ લી ઉત્તરાર્ધ પૃ૦ ૧)
દિટ્ઠિવાયાઓ ત્તિ આયરિયપાયમૂલે વિણએણ સિક્ખિયાઓ દિટ્ઠિવાયાઓ કહેમિ"(શતક ચૂર્ણિ પૃ૦૨)

ચૂર્ણિકાર **"દિટ્ઠિવાયાઓ"** નો અર્થ કરતા જણાવે છે કે 'આચાર્યના ચરણકમલમાં વિનયપૂર્વક શીખેલા દૃષ્ટિવાદમાંથી કહીશ' આ ઉપરથી જણાય છે કે શતકના કર્તા આચાર્ય શિવશર્મસૂરિ મ૦દૃષ્ટિવાદના જ્ઞાતા હતા. કર્મપ્રકૃતિની છેલ્લી ગાથાના ઉત્તરાર્ધમાં તેઓશ્રી દૃષ્ટિવાદના જ્ઞાતાઓને પોતાના ગ્રન્થમાં થયેલ અનાભોગજન્ય ભૂલો સુધારવા માટે જણાવે છે તે ઉપરથી

पण कर्मप्रकृतिनी रचना वखते दृष्टिवादना जाणकारो विद्यमान होवानुं जणाय छे. छेल्ली गाथानो उत्तरार्ध आ प्रमाणे छे–"सोढियणामोगकय कहतु वरदिट्ठिवायन्नू"।

कषायप्राभृतचूर्णिकारे देशोपशमना कर्मप्रकृतिमांथी जाणी लेवा सूचव्युं छे ते देशोपशमनानो अधिकार कर्मप्रकृतिनी गाथाओमां प्राप्त थाय छे, ते उपरथी पण प्रस्तुत कर्मप्रकृति-संग्रहणी कषायप्राभृतचूर्णि करतां प्राचीन जणाय छे. जुओ कषायप्राभृतचूर्णिनो पाठ-
"जा सा करणोवसामणा सा दुविहा-देसकरणोवसामणा त्ति वि सव्वकरणोवसामणा त्ति वि। देसकरणोवसामणाए दुवे णामाणि देसकरणोवसामणा त्ति वि। अपसत्थउवसामणा त्ति वि। एसा कम्मपयडिसु।"
(पृ० ७०७)

कर्मप्रकृतिचूर्णि:–कर्मप्रकृतिनां वर्तमान उपलब्ध विवेचनोमां सौथी प्राचीन विवेचन कर्मप्रकृति चूर्णि छे. तेमां तेना कर्तानु नाम उपलब्ध थतुं नथी तेमज अन्यत्र–टीकाओ वगेरेमां पण कर्मप्रकृतिचूर्णिकारनुं नाम प्राप्त थतुं नथी, परंतु प्रस्तुत चूर्णिने अनेक ग्रन्थोना टीकाकार पू० मलयगिरि महाराजे तथा समर्थ शास्त्रकार महोपाध्याय श्री यशोविजयजी महाराजे खूब बहुमानपूर्वक स्वीकारीने तेना आधारे टीकाओ रची छे. अे उपरथी आपणा माटे चूर्णिनी उपादेयता सिद्ध थई जाय छे. जुओ बन्ने टीकाकारोना चूर्णिकार माटेना शब्दो

'अय गुणरचूर्णिकृत समग्रो यदस्मदादिर्वदतीह किञ्चित् (मलयगिरि टीका श्लोक २)
"इह चूर्णिकृद्व्यदर्शकोऽभून्मलयगिरिर्व्यतनोदकपटक तम्।
इति तत्र पदप्रचारमात्रान, पथिकस्येव ममास्त्वभीष्टसिद्धि॥२॥(उपाध्यायजी कृत टीका श्लोक ३)

चूर्णिकारे कर्मप्रकृतिमूलनी गाथाओनुं सुंदर रीते अल्पशब्दोमां विवेचन कर्युं छे. शतकचूर्णि, सित्तरिचूर्णि वगेरेमां कर्मप्रकृतिसंग्रहणीनो अतिदेश जे जे विषयो अंगे कर्यो छे ते ते विषयोमांना केटलाकनुं दर्शन कर्मप्रकृतिमूळमां तथा केटलाकनुं प्रस्तुत चूर्णिमां थाय छे.卐 आ उपरथी आ चूर्णि सप्ततिकाचूर्णि अने शतकचूर्णि करतां प्राचीन जणाय छे.

बंधशतकमूल तथा तेनी चूर्णि: बंधशतक अे पण आचार्य शिवशर्मसूरि महाराजनी कृति छे, जे पूर्वे आपणे जोई गया छीओ. प्रस्तुत ग्रन्थमां कर्मबंधना विषयने लगतुं निरूपण छे. आ ग्रन्थ बीजा अग्रायणीय पूर्वनी पांचमी 'क्षणलब्धि' नामनी वस्तु अंतर्गत ४ था कर्मप्रकृतिनामना प्राभृतमांथी उद्धृत थयेल छे, जे ग्रन्थनी मूलगाथा १ लीना उत्तरार्ध तथा तेनी चूर्णि परथी जणाय छे–

"वोच्छं कइवइयाओ गाहाओ दिट्ठिवायाओ"। (बंधशतक गा० १)

चूर्णिनो पाठ किं, परिकम्म, सुत्त, पढमाणुयोग, पुव्वगय, चूलिगामइयातो सव्वाओ दिट्ठिवायाओ कहेमि? न इत्युच्यते, पुव्वगयाओ, किं उपायपुव्व अग्गेणिय जाव लोगबिंदुसाराओत्ति एयाओ चोद्दसविहाओ सव्वाओ पुव्वगयाओ कहेसि? न इत्युच्यते, अग्गेणियातो बीयाओ पुव्वाओ। किं अट्ठवत्थु परिमाणाओ अग्गेणियपुव्वातो सव्वातो कहेसि? न इत्युच्यते, पुव्वते अवरते, धुवे, अधुवे एत्थ खणलद्धीणाम

卐 जुओ पृष्ठ ३३ ३४

પંચમવત્થુ, તાતો પંચમાતો વત્થુતો કહેમિ । કિં સવ્વાતો વીસઇપાહુડમેત્તાતો કહેસિ, ન ઇત્યુચ્યતે તસ્સ પંચમસ્સ વત્થુસ્સ ચઉત્થં પાહુડં કમ્મપયડીનામધેજ્જં તતો કહેમિ । કિં સવ્વાતો ચઉવીસાણુઓગદારમઇયાતો કહેસિ ? ન ઇત્યુચ્યતે, તસ્સ છટ્ઠમણુઓગદારં બંધણ તિ તત્તો કહેમિ" । તસ્સ ચત્તારિ ભેદા તં જહા બંધો, બંધગો, બંધણીય, બંધવિહાણં તિ । કિં સવ્વાતો ચઉવ્વિહાણુઓગદારાતો કહેસિ ? ન ઇત્યુચ્યતે, બંધવિહાણ ત્તિ ચઉત્થાણુઓગદારં તતો કહેમિ । તસ્સ ચત્તારિ વિભાગા તં જહા પગઇબંધો, ઠિઇબંધો અણુભાગબંધો, પદેસબંધો ત્તિ, મૂલુત્તરપગઇભેયભિન્નો, તતો ચઉવ્વિહાતો વિ કિંચિ કિંચિ સમુદ્ધરિય સમુદ્ધરિય ભણામિ । સત્થ સંબંધો ભણિતો ।

આ રીતે બંધશતક ગ્રન્થ પણ △ બીજા પૂર્વમાંથી ઉદ્ધૃત છે અને પૂર્વધરના કાલમાં રચાયેલો છે. શતકચૂર્ણિ એ પણ શતકગ્રન્થપરનું પ્રાચીન વિવેચન છે, જેના આધારે પાછળથી શતકની ટીકા તથા ભાષ્યની રચના થઈ છે.

સપ્તતિકા તથા તેની ચૂર્ણિ–સપ્તતિકા એ દૃષ્ટિવાદમાંથી ઉદ્ધૃત ગ્રન્થ છે. એમાં બંધ, ઉદય અને સત્તાનો સંવેધ તથા ઉપશમશ્રેણિ અને ક્ષપકશ્રેણિનો અધિકાર છે. આ ગ્રન્થનો પણ બીજા અગ્રાયણીય પૂર્વની ૫મી વસ્તુના ૪થા કર્મપ્રકૃતિ નામના પ્રાભૃતમાંથી ઉદ્ધાર થયેલો છે, જે ગ્રન્થની ૧ લી મૂલગાથા તથા તેની ચૂર્ણિ જોતાં જણાય છે–

"સિદ્ધપએહિં મહત્થં બંધોદયસન્તપગઇઠાણાણં । વોચ્છં સુણ સંખેવં નીસંદં દિટ્ઠિવાયસ્સ ॥ગા૦૧॥

ચૂર્ણિ –'નિસ્સંદં દિટ્ઠિવાયસ્સ'ત્તિ પરિકમ્મ ૧સુત્ત ૨પઢમાણુઓગ ૩પુવ્વગય ૪ચુલિયામય ૫ પંચવિહમૂલભેયસ્સ દિટ્ઠિવાયસ્સ,તત્થ ચોદ્દસણ્હ પુવ્વાણં બીયાઓ અગ્ગેણીય પુવ્વાઓ, તસ્સ વિ પંચમવત્થૂઉ તસ્સ વિ વીસ પાહુડપરિમાણસ્સ કમ્મપયડિણામધેજ્જં ચઉત્થં પાહુડં તઓ નીણિયં, ચઉવિસાણુઓગદારમઇયમહણ્ણવસ્સેવ એગો બિંદૂ, તઓ વિ ઇમે તિણ્ણિ અત્થાહિગારા નીણિયા તમ્હા નીસંદો દિટ્ઠિવાયસ્સ ત્તિ ભણ્ણઇ"।(પૃ૦ ૨)

આમ શતક, સપ્તતિકા અને કર્મપ્રકૃતિ એ ત્રણે ગ્રન્થોનો ઉદ્ધાર બીજા પૂર્વની પાંચમી વસ્તુના ૪થા કર્મપ્રકૃતિ નામના પ્રાભૃતમાંથી થયેલો છે ।

△ કષાયપ્રાભૃતચૂર્ણિની પ્રસ્તાવનામાં પ્રસ્તાવનાકારે શતકગ્રન્થનો ઉદ્ધાર કર્મપ્રવાદ નામના આઠમા પૂર્વમાંથી બતાવ્યો છે, તે બરાબર નથી. તેમણે આ વિષયમાં શતકની અંતિમ ગાથાનો સાક્ષી આપી છે–

"એસો બંધસમાસો બિંદુક્ખેવેણ વણ્ણિઓ કોઇ । કમ્મપ્પવાયસુયસાગરસ્સ ણિસ્સંદમેત્તાઓ॥"

(બંધશતક ગા૦૧૦૪)

પ્રસ્તાવનાકારે અહીં કર્મપ્રવાદરૂપ શ્રુતસાગરનો અર્થ કર્મપ્રવાદનામનું ૮ મું પૂર્વ કર્યો છે, પણ તે બરાબર નથી કારણકે 'કમ્મપવાયસુત્તં' નો અર્થ પ્રસ્તુતમાં 'કર્મપ્રકૃતિ પ્રાભૃત' થાય છે. જુઓ ચૂર્ણિકારે આ જ ગાથાની ચૂર્ણિમાં તે વાત બતાવી છે. "કમ્મપ્પવાદ(ય)સુત્તં" ત્તિ કમ્મવિવાગં જં ભણઇ સત્થં તં કમ્મપ્પવાદં કર્મપ્રકૃતિરિત્યર્થઃ"। તેમજ ગ્રંથના પ્રારંભમાં પણ ચૂર્ણિકારે બીજા પૂર્વની પાંચમી વસ્તુના ચોથા કર્મપ્રકૃતિ નામના પ્રાભૃતમાંથી શતક ગ્રન્થનો ઉદ્ધાર બતાવ્યો જ છે. એટલું જ નહિ બંધશતકની ગા૦ ૧૦૬ માં ગ્રન્થકારે પોતે પણ પ્રસ્તુત ગ્રન્થને કર્મપ્રકૃતિગત કહ્યો છે. જુઓ–

शतक अने कर्मप्रकृतिना कर्ता तरीके आचार्य शिवशर्मसूरिमहाराजना नामनो उल्लेख शतकचूर्णि वगेरेमां मळे छे, ज्यारे सप्ततिकाना कर्ताना नामनो उल्लेख क्यांय मळतो नथी परंतु कर्मप्रकृति, शतक अने सप्ततिका आ त्रणेनी अंतिम गाथामां घणुं ज साम्य छे अने शतक तथा सप्ततिकानी आद्य गाथा पण घणे खरे अंशे मळती छे, तेमज कर्मप्रकृतिनी प्रथम गाथा पण थोडे अंशे मळती छे अने शतक तथा कर्मप्रकृतिना कर्ता तो अेक ज छे. आ बधा उपरथी त्रणे प्रकरणोना कर्ता अेक होवानी कल्पना केटलाक विद्वानो तरफथी कराय छे. त्रणे ग्रंथना आद्य तथा अन्त्य श्लोको आ प्रमाणे छे—

सिद्धं सिद्धत्थसुयं वंदिय णिद्धोय सव्वकम्ममलं।
कम्मट्ठगस्स करणट्ठुदयसताणि वोच्छामि ॥ ॥ (कर्मप्र० गा० १ पृ० २)
सुणह इह जीवगुणसन्निएसु ठाणेसु सारजुत्ताओ।
वोच्छं कइवइयाओ गाहाओ दिट्ठिवायाओ ॥ (शतक० गा० १ पृ० १.)
सिद्धपएहिं महत्थं बंधोदयसन्तपगइठाणाणं।
वोच्छं सुण संखेवं नीसदं दिट्ठिवायस्स ॥ (सप्ततिका गा० १ पृ० १)
इय कम्मपगडीओ जहासुय नीयमप्पमइणा वि।
सोहियणाभोगकयं कहंतु वरदिट्ठिवायन्नू ॥ (कम्मपयडि० गा० ५६ पृ० १६१)
बंधविहाणसमासो, रइओ अप्पसुयमंदमइणा उ।
तं बंधमोक्खणिउणा पूरेऊण परिकहेंति ॥ (शतक गा० १०५ पृ० ५०.)
जो जत्थ अपडिपुन्नो अत्थो अप्पागमेण बद्धोत्ति।
तं खमिऊण बहुसुया पूरेऊण परिकहिंतु ॥ (सप्ततिका गा० ७१ पृ० ६८)

शतक अने सप्ततिकानी आद्य गाथामां घणुं ज साम्य जणाय छे. कर्मप्रकृतिनी आद्य गाथामां पण शतक अने सप्ततिकानी आद्य गाथावत् अभिधेय कहेलुं छे, मात्र जेम छेल्ला बे ग्रन्थनी आद्यगाथामां 'दिट्ठिवायाओ—दिट्ठिवायस्स' द्वारा दृष्टिवादमांथी कहीश अेम कह्युं तेम कर्मप्रकृतिनी

"इय कम्मपयडिपगयं संखेवुद्दिट्ठं निच्छियमहत्थं। जो उवजुञ्जइ बहुसो, सो नाहिति बंधमोक्खट्ठं ॥
(बंधशतक गा०१०६ पृ० ५०)

वळी शतकभाष्यकार पण प्रस्तुतग्रन्थनी उत्पत्ति तथा कर्ता अंगे आ गाथाना विवेचनमां आ ज रीतनो स्पष्ट उल्लेख करे छे, जे नीचेनी भाष्यगाथाओ परथी जणाय छे—

"इय गाहाए एत्थ भावत्थं परिकहंति सुत्तधरा। जह दिट्ठिवायअंगे अग्गेणीए दुइयपुव्वे ॥१०॥
पणिधिकप्पामिहम्मि पंचमवत्थुम्मि कम्मपयडि त्ति। इय नामेण पसिद्ध ति पाहुड सुयविसेसो त्ति ॥११॥
आसि तओ ठाणाओ उद्धरिओ एस सयगगथोत्ति। सिवसम्मसूरिणाणेगवायजयलद्धसद्देण ॥१२॥
इयकम्मपयडिपगयंति कम्मपयडि उ सुयविसेसाओ। अंतरगय ति सयग ग्रंथ इइ वक्कसेसोत्ति ॥१३॥

आ बधा उल्लेखो तथा शतकटीकाना उल्लेख परथी पण प्रस्तुत शतक ग्रन्थ आठमा कर्मप्रवादपूर्वमांथी नहीं, पण बीजा अग्रायणीयपूर्वनी पांचमी वस्तुना ४ था कर्मप्रकृति नामना प्राभृतमांथी उद्धृत छे अेम निश्चित थाय छे.

પ્રથમ ગાથામાં શેમાંથી કહીશ તે કહ્યું નથી. અંતિમ ગાથાઓમાં પણ ઘણી જ સમાનતા છે. ત્રણેમાં ગ્રન્થકાર પોતાની ક્ષતિઓને સુધારવા માટે દૃષ્ટિવાદના જાણકારોને વિનંતિ કરે છે. દૃષ્ટિવાદના જાણકારો માટે કર્મપ્રકૃતિની ગાથામાં "વરદિટ્ઠિવાયન્નૂ" બંધશતકમાં "બંધમોક્ખણિઉણા" અને સપ્તતિકામાં "બહુસુયા" પદનો ઉપયોગ કર્યો છે.

આમ ત્રણે ગ્રન્થની આદ્ય અંતિમ ગાથાઓની સમાનતા, ત્રણેનો કર્મપ્રકૃતિપ્રાભૃતમાંથી ઉદ્ધાર, શતક અને કર્મપ્રકૃતિનું એકકર્તૃત્વ વગેરે જોતાં ત્રણેગ્રન્થના કર્તા એક જ હોય તો સપ્તતિકાના પણ કર્તા આચાર્ય શિવશર્મસૂરિ મ૦ નક્કી થાય, પરંતુ અત્યાર સુધીના ઉપલબ્ધ ગ્રન્થોમાં કે સપ્તતિકાની મલયગિરિ મ૦ કૃત ટીકા વગેરેમાં સપ્તતિકાના કર્તા તરીકે આચાર્ય શિવશર્મસૂરિ મ૦ ના નામનો ઉલ્લેખ જણાતો નથી એટલે અત્યારે તો માત્ર કલ્પના સિવાય તેનો ચોક્કસ નિર્ણય કોઈ પણ પ્રબલ પ્રમાણ સિવાય થઈ શકે નહિ, પરંતુ ગ્રન્થ પ્રાચીનકાલમાં અને પૂર્વધરોના કાલમાં રચાયો હોય એમ તો છેલ્લી ગાથામાં દૃષ્ટિવાદના જાણકારોને ગ્રન્થ શોધવા માટે કરેલી વિનંતિ ઉપરથી જણાય છે, જો કે ત્યાં સપ્તતિકામાં બહુશ્રુતોને શોધવા માટે કહ્યું છે પણ "બહુસુયા" પદનો અર્થ ચૂર્ણિકારે 'દૃષ્ટિવાદના જાણકારો' કર્યો છે. જુઓ ચૂર્ણિનો પાઠ—

"ત ખમિઊણ 'બહુસુતા' ત અવરાહ ખમિઊણ દોસં અવેત્તૂણ બહુસુતા દિટ્ઠિવાયણ્ણે" (પૃ૦ ૬૧.)

વળી સપ્તતિકા મૂલગ્રન્થની સાક્ષી વિશેષણવતી ગ્રન્થમાં આચાર્ય જિનભદ્રગણિ-ક્ષમાશ્રમણે આપેલી છે તે પણ ગ્રન્થની પ્રાચીનતાને સિદ્ધ કરે છે. સપ્તતિકાચૂર્ણિ એ સપ્તતિકા ઉપરનું પ્રાચીન વિવેચન છે. અને એ પણ પ્રાચીન જણાય છે. સપ્તતિકાચૂર્ણિના આધારે પૂ૦ મલયગિરિ મહારાજે સપ્તતિકા ઉપર ટીકાની રચના કરેલી છે.

કષાયપ્રાભૃત મૂલ તથા ચૂર્ણિ

પ્રસ્તુત 'ખવગસેઢી' ગ્રન્થમાં કષાયપ્રાભૃતચૂર્ણિનો પણ સારો એવો આધાર લેવામાં આવ્યો છે. કષાયપ્રાભૃત મૂલગ્રન્થ ઘણો જ પ્રાચીન છે, અને પાંચમા જ્ઞાનપ્રવાદપૂર્વની દશમી વસ્તુના ત્રીજા પ્રાભૃતમાંથી તેનો ઉદ્ધાર થયેલો હોય એવું નીચેના ઉલ્લેખો પરથી જણાય છે—

"પુવ્વમ્મિ પંચમમ્મિ દુ દસમે વત્થુમ્મિ પાહુડે તદિએ। પેજ્જતિ પાહુડમ્મિ દુ હવદિ કસાયાણ પાહુડં ણામ ॥"
(ક૦ પ્રા૦ ગા૦ ૧)

"ણાણપવાદસ્સ પુવ્વસ્સ દસમસ્સ વત્થુસ્સ તદિયસ્સ પાહુડસ્સ પચવિહો ઉવક્કમો।" (ક૦પ્રા૦ ચૂર્ણિ પૃ૦ ૨.)

મુદ્રિત કષાયપ્રાભૃતની ગાથાઓ ૨૩૩ છે જ્યારે "ગાહાસદે અસીદે અત્થે પણ્ણરસધા વિહત્તમ્મિ" એવા ઉલ્લેખ પરથી ૧૮૦ સિવાયની બાકીની ૫૩ ગાથાઓ પ્રક્ષેપ ગાથાઓ હોવાનો સંભવ છે.

જોકે ક૦ પ્રા૦ મૂળગ્રંથ, ચૂર્ણિ તથા જયધવલાટીકા સાથે મૂડબિદ્રીના દિગમ્બરજ્ઞાન-ભંડારમાંથી ઉપલબ્ધ થયો છે અને તેનું હિંદી અનુવાદસહિત અનેક ભાગોમાં ભા૦ દિ૦ જૈનસંઘ

દ્વારા પ્રકાશન થઈ રહ્યું છે, તથા ક૦ પ્રા૦ મૂળગ્રન્થ ચૂર્ણિની સાથે પં૦ હીરાલાલ શાસ્ત્રી દ્વારા સંપાદિત થઈ વીરશાસન સંઘ કલકત્તા દ્વારા વિ૦ સં૦ ૨૦૧૨ માં પ્રકાશિત થયેલ છે, પરંતુ આટલા માત્રથી ક૦ પ્રા૦ મૂળ તથા ચૂર્ણિ દિગમ્બરપરંપરાનાં છે એવો નિર્ણય થઈ શકતો નથી, કેમ કે દિગમ્બરજ્ઞાનભંડારોમાં કાવ્યાનુશાસન, અભિધાનચિંતામણિકોશાદિ શ્વેતામ્બરાચાર્યોના ગ્રન્થો તેમજ શ્વેતામ્બરજ્ઞાનભંડારોમાં દિગમ્બરાચાર્યરચિત સિદ્ધિવિનિશ્ચયટીકાદિ-હસ્તલિખિતગ્રન્થો વર્તમાનમાં પણ ઉપલબ્ધ છે. વળી ક૦ પ્રા૦ ઉપર દિગમ્બરાચાર્યોની ટીકાઓ છે તેથી પણ તે દિગમ્બરાચાર્ય કૃત છે એવો નિશ્ચય થઈ શકતો નથી, કેમ કે શ્વેતામ્બરાચાર્યકૃત ગ્રંથો ઉપર દિગમ્બરાચાર્યોની અને દિગમ્બરાચાર્યકૃત ગ્રન્થો ઉપર શ્વેતામ્બરાચાર્યોની ટીકાઓ છે. જૈનેતરગ્રન્થો ઉપર પણ જૈનાચાર્યોની ટીકાઓ આજે ઉપલબ્ધ થાય છે. પાતઞ્જલયોગદર્શન નામના જૈનેતરગ્રન્થ ઉપર તથા અષ્ટસહસ્રી નામના દિગમ્બરાચાર્યકૃત ગ્રન્થ ઉપર ઉપાધ્યાયજી યશોવિજયજી મહારાજે ટીકા રચી છે જે વર્તમાનમાં ઉપલબ્ધ થાય છે, તેથી કોઈ પાતઞ્જલયોગદર્શન અને અષ્ટ-સહસ્રી ગ્રન્થો શ્વેતામ્બરાચાર્યની કૃતિ તરીકે નથી કહેવાતા. ભગવતીઆરાધનાના ટીકાકારે પોતે દશ-વૈકાલિક ઉપર ટીકા રચ્યાનો ઉલ્લેખ કર્યો છે, છતાં દશવૈકાલિકગ્રન્થ તેમના સમ્પ્રદાયની કૃતિ નથી કહેવાતી, તેવી રીતે ક૦ પ્રા૦ મૂલ તથા ચૂર્ણિસૂત્રો ઉપર જયધવલા નામની દિગમ્બરાચાર્યની ટીકા હોવા માત્રથી તે ગ્રન્થ દિગમ્બરાચાર્યની કૃતિ તરીકે નિશ્ચિત થઈ શકતો નથી. એટલું જ નહીં પણ (૧) કષાયપ્રાભૃત ચૂર્ણિ અંતર્ગત દિગમ્બર પરંપરાને અમાન્ય પદાર્થો (૨) શ્વેતામ્બરાચાર્યોની કૃતિઓમાં કષાયપ્રાભૃતના આધારો, સાક્ષી તથા અતિદેશો (૩) ક૦ પ્રા૦ મૂલ-ગ્રન્થ તથા ચૂર્ણિસૂત્રના રચયિતા (૪) રચનાનો કાલ, વગેરે પ્રમાણો ઉપરથી કષાયપ્રાભૃતમૂલ તથા તેની ચૂર્ણિ બન્ને શ્વેતામ્બરાચાર્યની કૃતિ અથવા દિગમ્બરમતોત્પત્તિપૂર્વની કૃતિ હોવાનું વિશેષે કરીને જણાય છે.

(૧) દિગમ્બર પરંપરાને અમાન્ય તેવા કષાયપ્રાભૃતચૂર્ણિ અંતર્ગત પદાર્થો

(1) ક્ષપકશ્રેણિના અધિકારમાં ક્ષપકને સત્તામાં કયાં કર્મો નિયમા અને કયાં કર્મો વિકલ્પે હોય, તે બતાવતા ચૂર્ણિકાર જણાવે છે, "સવ્વલિંગેસુ ચ ભજ્જાણિ" (પૃ૦ ૮૨૭). ચૂર્ણિસૂત્રનો અર્થ એ છે કે સર્વલિંગમાં બંધાયેલ કર્મો ક્ષપકને વિકલ્પે સત્તામાં હોય છે, અહીં સર્વલિંગમાં નિર્ગ્રન્થલિંગ(દ્રવ્યચારિત્ર) પણ આવી જાય છે, એટલે નિર્ગ્રન્થલિંગમાં બંધાયેલ કર્મ ક્ષપકને સત્તામાં વિકલ્પે હોય છે, અર્થાત્ હોય પણ ખરું અને ન પણ હોય, આ પરથી એ નક્કી થાય છે કે ક્ષપક ચારિત્રવેષમાં હોય પણ ખરો અને ન પણ હોય, ચારિત્રના વેષ વગર અર્થાત્ અન્ય-તાપસાદિના વેશમાં રહેલ જીવ પણ ક્ષપક થઈ શકે છે, એટલે પ્રસ્તુત સૂત્ર દિગમ્બર માન્યતાથી વિરુદ્ધ છે, દિગમ્બરમાન્યતાના હિસાબે નિર્ગ્રન્થલિંગમાં બંધાયેલ કર્મ તો અવશ્ય

સત્તામાં હોવું જ જોઈએ, એની ભજના ન હોઈ શકે, કેમકે દ્રવ્યચારિત્ર વગર (ચારિત્રના લિંગ વગર) તાપસાદિના વેશમાં કેવલજ્ઞાનની પ્રાપ્તિ કે ક્ષપકશ્રેણિ દિગમ્બર પરંપરાને માન્ય નથી. આથી જ ચૂર્ણિનું પ્રસ્તુત સૂત્ર નિર્ગ્રન્થલિંગ (ચારિત્રવેશ) વિના પણ ક્ષપકશ્રેણિની પ્રાપ્તિની શ્વેતામ્બર માન્યતાને જ પુષ્ટિકારક છે, અને એટલા જ માટે જયધવલાટીકાકારને પ્રસ્તુતસૂત્રની વ્યાખ્યામાં 'સવ્વલિંગ' નો 'ણિગ્ગંથવદિરિત્તસેસાણ' એવો અર્થ ખેંચીને કરવો પડ્યો છે. ચૂર્ણિસૂત્રમાંથી આ અર્થ નિકળતો જ નથી. જો ચૂર્ણિકારને નિર્ગ્રન્થલિંગમાં બંધાયેલ કર્મ નિયમા અને નિર્ગ્રન્થવ્યતિરિક્ત લિંગમાં બંધાયેલ કર્મ ભજનાએ કહેવું હોત તો "ણિગ્ગથેસુ ણિયમા સેસલિંગેસુ ભજ્જાણિ" એવું કંઈક જરૂર કહ્યું હોત, કેમ કે ચૂર્ણિકાર આવા સ્પષ્ટ ભેદો પાડે જ છે. ક્ષેત્ર, શાતા અશાતા, લેશ્યાઓ વગેરેમાં બંધાયેલ કર્મોને લગતી સત્તાના ચૂર્ણિસૂત્રોમાં એ સ્પષ્ટ રીતે જણાય છે. જુઓ–'છસુ લેસાસુ સાદેણ અસાદેણ ચ બદ્ધાણિ અભજ્જાણિ। કમ્મસિપ્પેસુ ભજ્જાણિ। ખેત્તમ્હિ સિયા અધોલોગિગં, સિયા ઉડ્ઢલોગિગ, ણિયમા તિરિયલોગિગં।' (ક૦ પ્રા૦ ચૂ૦ પૃ૦ ૮૨૭)

(11) ઋજુસૂત્રનયને કપાયપ્રામૃતચૂર્ણિમાં દ્રવ્યાર્થિકનય તરીકે જણાવ્યો છે. "ણેગમ-સંગહ વવહારા સવ્વે ઇચ્છંતિ ઉજુસુદો ઠવણવજ્જે" (ક૦ પ્રા૦ ચૂ૦ પૃ૦ ૧૭) જયધવલાના પ્રસ્તાવનાકારે કહ્યું છે કે 'દિગમ્બર પરંપરામાં પહેલેથી જ નૈગમ, સંગ્રહ અને વ્યવહારનયને દ્રવ્યાર્થિક અને ઋજુસૂત્રાદિનયોને પર્યાયાર્થિક કહ્યા છે' જુઓ–'दिगम्बर परंपरा में हम पहिले से ही व्यवहार पर्यन्त नयों को द्रव्यार्थिक तथा ऋजुसूत्रादि नयों को पर्यायार्थिक मानने की परम्परा देखते हैं।" જયધવલાકારે પણ દ્રવ્યનયો નૈગમાદિ ત્રણ જ સ્વીકાર્યા છે અને ઋજુસૂત્રનો પર્યાયાર્થિક નયમાં સમાવેશ કર્યો છે. જુઓ–'तत्र द्रव्यार्थिकनयस्त्रिविध सग्रहो व्यवहारो नैगमश्चेति।" (જયધવલા-ભાગ ૧ પૃ૦ ૨૧૯) पर्यायार्थिकनयो द्विविध अर्थनयो व्यञ्जननयश्चेति। तत्र ऋजुसूत्रोऽर्थनयः। (જયધવલા ભાગ ૧ પૃ૦ ૨૨૨) અહીં કપાયપ્રામૃતચૂર્ણિકાર ઋજુસૂત્રનયનો દ્રવ્યાર્થિકનયમાં સમાવેશ કરવા દ્વારા શ્વેતામ્બરાચાર્યોની સૈદ્ધાંતિક પરંપરાને અનુસરે છે કારણકે શ્વેતામ્બરોમાં સૈદ્ધાન્તિક-પરમ્પરા ઋજુસૂત્ર નયનો દ્રવ્યાર્થિક નયમાંસમાવેશ કરે છે. જો કે શ્વેતામ્બર પરંપરામાં સિદ્ધસેનદિવાકરસૂરિ મહારાજ વગેરે ઋજુસૂત્ર નયનો સમાવેશ પર્યાયાર્થિક નયમાં કરે છે પણ તે મતાન્તર સમજવો. સૈદ્ધાન્તિક પરંપરા તો ઋજુસૂત્ર નયનો દ્રવ્યાર્થિકનયમાં જ સમાવેશ કરે છે. જુઓ-"आचार्य सिद्धसेनमतेन चेह ऋजुसूत्रस्य पर्यायास्तिकेऽन्तर्भावो दर्शितः। सिद्धान्ताभिप्रायेण तु संग्रह-व्यवहारवद् ऋजुसूत्रस्यापि द्रव्यास्तिक एवान्तर्भावो द्रष्टव्य तथा चोक्त सूत्रे-उजुसुयस्स एगो अणुवउत्ते आगमओ एगं दव्वावस्सय पुहुत्त नेच्छइ।"(વિ૦ આ૦ ભાષ્યની ટીકા ભાગ ૧ પૃ૦ ૪૨)દિગંબર પરંપરામાં ઋજુસૂત્રનયનો દ્રવ્યાર્થિક નયમાં સમાવેશ જણાતો નથી, જ્યારે પ્રસ્તુત ચૂર્ણિસૂત્ર (તથા પટ્ખંડાગમમૂળસૂત્ર)માં આ રીતનો સમાવેશ જોવામાં આવે છે, જે પ્રસ્તુતચૂર્ણિકાર શ્વેતામ્બર આમ્નાયને અનુસરનારા અથવા તો દિગમ્બરમતોત્પત્તિની પૂર્વે થયાની અમારી માન્યતાને વિશેષ પુષ્ટિ આપે છે.

(૨) શ્વેતામ્બરાચાર્યોના ગ્રન્થોમાં કષાયપ્રાભૃતના આધાર, સાક્ષી તથા અતિદેશો

અનેક પૂર્વાચાર્ય (શ્વેતામ્બરાચાર્ય) ભગવંતોના ગ્રન્થોમાં આપણને કષાયપ્રાભૃતનો આધાર, કષાયપ્રાભૃતની ગાથાનું ઉદ્ધરણ, અતિદેશો વગેરે પ્રાપ્ત થાય છે, જેમાંના કેટલાક નીચે પ્રમાણે છે.

(i) પંચસંગ્રહના કર્ત્તાએ પોતે પંચસંગ્રહગ્રન્થની રચના શતકાદિ પાંચ ગ્રન્થોના આધારે કર્યાનું દ્વિતીય ગાથામાં જણાવ્યું છે. પંચસંગ્રહની પહેલી ગાથાની ટીકામાં મલયગિરિ મહારાજે પણ શતકાદિ પાંચ ગ્રન્થોનાં નામ આપ્યા છે, જેમાં કષાયપ્રાભૃતના નામનો પણ સમાવેશ થાય છે—

'સયગાઇ પંચગથા જહારિહં જેણ એત્થ સંખિત્તા ।
દારાણિ પંચ અહવા તેણ જહત્થાભિહાણમિણ ॥ (પંચસંગ્રહ ગા૦ ૨ પૃ૦ ૩)

ટીકા—પઞ્ચાનાં શતક-સપ્તતિકા-કષાયપ્રાભૃત સત્કર્મ-કર્મપ્રકૃતિલક્ષણાનાં ગ્રન્થાનાં અથવા પઞ્ચાનામર્થાધિકારાણાં યોગોપયોગવિષયમાર્ગણા બન્ધક બન્ધવ્ય-બન્ધહેતુ બન્ધવિધિલક્ષણાનાં સંગ્રહ: પઞ્ચસંગ્રહ યદ્વા પઞ્ચાનાં ગ્રન્થાનામર્થાધિકારાણા વા સંગ્રહો યત્ર ગ્રન્થે સ પંચસંગ્રહસ્તં

(ii) શતકચૂર્ણિના હસ્તલિખિત ટિપ્પણમાં (અદ્યાપિ અમુદ્રિત) ગુણસ્થાનક અધિકારમાં કિટ્ટિઓને લગતા વિષયમાં 'ઉક્તં ચ' કહીને એક ગાથા સાક્ષી તરીકે મૂકેલ છે. તે આ પ્રમાણે

"બારસ નવ છ ત્તિન્નિ ય કિટ્ટીઓ હોંતિ અહવણંતાઓ । એક્કેક્કમ્મિ કસાયે તિગતિગમહવા અણંતાઓ" ॥

પ્રસ્તુત ગાથા મુદ્રિત કષાયપ્રાભૃતમાં ૧૬૩મી છે. તે આ પ્રમાણે—

"બારસ ણવ છ તિણ્ણિ ય કિટ્ટીઓ હોંતિ અધવ અણંતાઓ । એક્કેક્કમ્હિ કસાયે તિગ તિગ અધવા અણંતાઓ ॥
(ક૦ પ્રા૦ ગા૦ ૧૬૩. પૃ૦ ૮૦૬)

અહીં ફેર માત્ર એટલો જ છે કે ગાથાના ઉત્તરાર્ધમાં શતકચૂર્ણિટિપ્પનની હસ્તલિખિત પ્રતમાં 'અહવા' છે, જ્યારે મુદ્રિત ક૦ પ્રા૦ માં 'અધવા' છે. અને શતકચૂર્ણિ ટિપ્પણમાં ગાથાના પૂર્વાર્ધમાં અહવણંતાઓ' છે તો મુદ્રિત ક૦ પ્રા૦ માં 'અધવ અણંતાઓ' છે. આર્યાછંદના હિસાબે હસ્તલિખિતશતકચૂર્ણિ ટિપ્પનગત ગાથા વિશેષ શુદ્ધ લાગે છે.

(iii) સપ્તતિકાચૂર્ણિમાં કેટલાંય સ્થલોમાં ચૂર્ણિકારે કિટ્ટિલક્ષણાદિ અંગે કસાયપાહુડનો અતિદેશ કરેલો છે, જે સપ્તતિકાચૂર્ણિના નીચેના પાઠો ઉપરથી જણાય છે.

(૧) ત વેયતો બિતિયકિટ્ટીઓ તઇયકિટ્ટીઓ ય દલિય ઘેત્તૂણ સુહુમસાંપરાઇયકિટ્ટીઓ કરેઇ। તેસિં લક્ખણં જહા કસાયપાહુડે। (પૃ૦ ૬૬ અ)

(૨) એત્થ અપુવ્વકરણઅણિયટ્ટિઅદ્ધાસુ અણેગાઇં વત્તવ્વગાઇ જહા કસાયપાહુડે કમ્મપગડિસંગહણીએ વા તહા વત્તવ્વ (પૃ૦ ૬૨ વ.)

(૩) ચઉવિહબંધગસ્સ વેદોદએ પુરિસવેદબંધે ય જુગવ ફિટ્ટે એક્કમેવ ઉદયટ્ઠાણં લબ્ભતિ। તં ચઉણ્હ સંજલણાણ એગયર। એત્થ ચત્તારિ ભંગા; કહં ? ભણ્ણઇ, કોયિ કોહેણ ઉવટ્ઠાઇ, કોયિ માણેણ ઉવટ્ઠાઇ, કોઇ માયાએ, કોઇ લોભેણ। એત્થ અણ્ણે ક્ષણ્ણારિસ પઢતિ। તચ્ચેદમ્—

"પંચાઓ ય ચઉક્કં સંકમમાણસ્સ હોંતિ તે ચેવ। વેએહિં પરિહીણા, ચઉરો ચરિમેસુ કસિણેસુ ॥"

તં ચ કસાયપાહુડાવિસુ વિહડતિ ત્તિ કાઉ પરિસેસિયં।"

અહીં 'કસાયપાહુડ' શબ્દથી તેની ચૂર્ણિ પણ અંતર્ગત સમજી લેવાની છે, કેમ કે ઉક્ત-વિષયોનું દર્શન પૂર્ણતયા આપણને ક્ર૦ પ્રા૦ મૂલમાં થઈ શકતું નથી. સપ્તતિકા ચૂર્ણિકારે કર્મ-પ્રકૃતિસંગ્રહણીનો પણ કેટલાંક સ્થલે અપવર્તનાવિધિ આદિ અંગે અતિદેશ કર્યો છે, તે અપવર્તના વિધિ આદિની પ્રાપ્તિ પણ કર્મપ્રકૃતિ મૂલ અને ચૂર્ણિ બન્નેમાં મળીને થાય છે. સપ્તતિકાચૂર્ણિમાં કર્મપ્રકૃતિસંગ્રહણીનાં અતિદેશવાળાં કેટલાંક સ્થાનો આ પ્રમાણે છે—

(૧) ઉવ્વટ્ટણાવિહિ જહા કમ્મપગડીસંગહણીએ ઉવ્વલણસંકમે તહા ભાણિયવ્વં। (સિત્તરી પૃ૦ ૬૧ બ૦)

(૨) તત્થ મિચ્છદિટ્ઠિસ્સ મિચ્છત્તઉવસામણે વિહી જહા કમ્મપગડીસંગહણીએ પઢમસમ્મત્ત ઉપ્પાયંતસ્સ સા ચેવ ભાણિયવ્વા। (પૃ૦ ૬૧. બ)

(૩ અંતરકરણવિહી જહા કમ્મપગડીસંગહણીએ। (પૃ૦ ૬૪ બ)

(૪) પઢમટ્ઠિતિકરણ જહા કમ્મપગડિસંગહણીએ। (પૃ૦ ૬૫ અ.)

(૧) આમાં પ્રથમસ્થાનમાં 'ઉવ્વટ્ટણાવિહિ' એટલે કે, જે અપવર્તનાવિધિ અંગે કર્મપ્રકૃતિસંગ્રહણી-ગત ઉદ્વલનાસંક્રમનો અતિદેશ કર્યો છે, તે અપવર્તનાવિધિનું પ્રતિપાદન ત્યાં જ કર્મપ્રકૃતિની મૂલગાથામાં નીચે મુજબ જોવા મળે છે—

(અથ ઉવ્વલણસંકમસ્સ લક્ખણ ભણતિ ચૂર્ણિ)

"આહારતણૂભિન્નમુહૂત્તા અવિરઇગઓ પઉવ્વલએ। જા અવિરઇઓ ત્તિ ઉવ્વલઇ પલ્લભાગે અસંખતમે॥
અંતોમુહુત્તમદ્ધ પલ્લાસંખિજ્જમેત્તઠિઇખંડ। ઉક્કિરઇ પુણો વિ તહા ઊણૂણમસંખગુણાહં જા॥
તં દલિયં સટ્ઠાણે સમએ સમએ અસંખગુણિયાએ। સેઢીએ પરઠાણે વિસેસહાણીઇ સંછુભઇ॥
જં દુચરિમસ્સ ચરિમે અન્નં સંકમઇ તેણ સવ્વં પિ। અંગુલઅસંખભાગેણ હીરએ એસ ઉવ્વલણા॥"

(કર્મપ્રકૃતિ–સંક્રમકરણ ગા૦૬૧-૬૪)

જો કે ઉદ્વલનાના અધિકારમાં અપવર્તનાનો વિધિ ચૂર્ણિમાં વિસ્તારથી પ્રાપ્ત થાય છે છતાં મૂલમાં પણ અપવર્તના વિધિનું વર્ણન સંક્ષેપમાં સારી રીતે મલે છે.

(૨) સપ્તતિકાકાર મિથ્યાત્વને ઉપશાન્ત કરવાની વિધિ કમ્મપયડિસંગહણીના પ્રથમસમ્યક્ત્વોત્પાદ-પ્રરૂપણામાં જોવા જણાવે છે. કર્મપ્રકૃતિ ઉપશમનાકરણમાં આને લગતો એક જુદો અધિકાર છે. તથા ચૂર્ણિમાં તો તે વિસ્તારથી છે.

(૩) અંતરકરણવિધિ અંગે સપ્તતિકાચૂર્ણિકાર કર્મપ્રકૃતિસંગ્રહણીનો અતિદેશ કરે છે, કર્મપ્રકૃતિ-મૂલમાં પ્રસ્તુત વિષયની તપાસ કરતાં ચારિત્રમોહનીયની ઉપશમનાના અધિકારમાં ગાથા ૪૨માં અંતરકરણને લગતી માત્ર થોડી વાત પ્રાપ્ત થાય છે, પરંતુ અંતરકરણવિધિનું દર્શન થતું નથી. જુઓ—

"સંજમયાઈણંતરમેત્થ ઉ પઢમઠિઈ ય અન્નયરે।
સંજલણાવેયાણં વેઇજ્જંતીણ કાલસમા॥ (પૃ૦ ૪૮ કમ્મ૦ ઉપશમના. ગાથા ૪૨)

પ્રસ્તુત ગાથામાં અંતરકરણ વખતે પ્રથમસ્થિતિના કાલ વગેરેનું દિગ્દર્શનમાત્ર છે, પરન્તુ અંતરકરણનો વિધિ પ્રાપ્ત થતો નથી. પ્રથમસમ્યક્ત્વોત્પાદપ્રરૂપણામાં પણ અંતરકરણને લગતી ગાથાઓ આ પ્રમાણે છે–

અનિયટ્ટિમ્મિ વિ એવ તુલ્લે કાલે સમા તઓ નામ ।સખિજ્જઇમે સેસે ભિન્નમુહુત્તં અહો મુચ્ચા ॥ ગાથા ૧૬
કિંચૂણમુહુત્તસમ ઠિઇબધદ્ધાએ અન્તર કિચ્ચા । આવલિદુગેક્કસેસે આગાલ ઉદીરણા સમિયા ॥ ગાથા ૧૭.

આ ગાથાઓમાં અંતરકરણને લગતી પ્રથમસ્થિતિ, અંતરનો કાલ, અંતરકરણક્રિયાનો કાલ વગેરે જાણવા મલે છે પણ અંતરકરણ વિધિ જાણવા મલતો નથી. અંતરકરણવિધિ એટલે અંતરકરણ જ્યાં કરવાનું હોય છે તે સ્થિતિસ્થાનોમાં રહેલાં તે તે કર્મોનાં દલિકોને ક્યાં ક્યાં નાખીને ખાલી કરવાં તે. આ અંતરકરણવિધિ આપણને બન્ને સ્થલે કર્મપ્રકૃતિચૂર્ણિમાં ઉપલબ્ધ થાય છે, તેમાં પણ પ્રથમસમ્યક્ત્વોત્પાદઅધિકાર કરતાં ચારિત્રમોહોપશમનાધિકારમાં વિસ્તૃત રીતે મલે છે.

"અતરકરમાણે અણિયટ્ટીગુણસેઢીનિક્ખેવસ્સ અગ્ગગ્ગાતો । અસખેજ્જતિભાગ ખણ્ડેતિ । તતુક્કિરિજ્જમાણ દલિયં પઢમટ્ઠિતીતે બિતિયટ્ઠિતીતે ય છુભતિ । એવં અતરકરણ કય ભવતિ" । (ઉપશમનાકરણ પ્રથમસમ્યક્ત્વોત્પાદઅધિકાર ગાથા ૧૬-૧૭ની ચૂર્ણિ)

જાહે અન્તર કરેઉમાઢત્તોતાહે અન્ન ટ્ઠિતિં ચ બધતિ અન્ન ટ્ઠિતિખણ્ડગ અણુભાગખણ્ડગં ચ કરેતિ । અણુભાગસહસ્સેસુ ગતેસુ અન્ન અણુભાગખણ્ડગ ત ચેવ ટ્ઠિતિખણ્ડગ સો ચેવ ટ્ઠિતિબન્ધો, અન્તરસ્સ ઉક્કિરણદ્ધા ય સમગ સમપ્પેતિ । અન્તર કરેન્તો જે કમ્મસે બધતિ વેદેતિ તેસિં ઉક્કિરિજ્જમાણ દલિયં પઢમે બિઇએ ચ ટ્ઠિઈએ દેતિ । જે કમ્મસા ણ બજ્ઝન્તિ વેતિજ્જન્તિ તેસિં ઉક્કિરિજ્જમાણા પોગ્ગલે પઢમટ્ઠિતીસુ અણુક્કિરિજ્જમાણીસુ દેતિ । જે કમ્મંસા બજ્ઝતિ ન વેતિજ્જન્તિ તેસિં ઉક્કિરિજ્જમાણગં દલિય અણુક્કિરિજ્જમાણીસુ બિતિયટ્ઠિતીસુ દેતિ । જે કમ્મંસા ણ બજ્ઝન્તિ ણ વેતિજ્જન્તિ તેર્સિ ઉક્કિરિજ્જમાણ પદેસગ્ગં સટ્ઠાણે ણ દિજ્જતિ પરટ્ઠાણે દિજ્જતિ । એએણ વિહિણા અતર ઉચ્છિન્ન ભવતિ । (ચૂર્ણિ ગાથા ૪૨ પૃ૦ ૪૭)

આમ પ્રસ્તુત અંતરકરણવિધિનું દર્શન મૂળપ્રકૃતિમૂલને બદલે ચૂર્ણિમાં જ વિશેષતયા થાય છે.

(૪) આ વિષયની પ્રાપ્તિ કર્મપ્રકૃતિમૂલમાં નથી થતી પણ કર્મપ્રકૃતિચૂર્ણિમાં માનની પ્રથમસ્થિતિકરણવિધિ બતાવી છે ત્યાં થાય છે, જે આ પ્રમાણે છે–

"જાહે ચેવ કોહસ્સ બંધો ઉદઓ, ઉદીરણા ય વોચ્છિન્નાનિ તાહે ચેવ માણસ્સ પઢમટ્ઠિતિં બીયટ્ઠિતીતો દલિય ઘેત્તૂણ કરેતિ, પઢમસમયવેયગો પઢમઠિતિં કરેમાણો પઢમસમતે ઉદતે પદેસગ્ગ થોવં દેતિ સે કાલે અસખેજ્જગુણાએ સેઢિએ દેતિ જાવ પઢમટ્ઠિતીએ ચરમસમતો ત્તિ ॥" (કર્મપ્રકૃતિ ઉ૦ ગા૦ ૪૮ ની ચૂર્ણિ પૃ૦-૫૭)

આમ 'કર્મપ્રકૃતિસંગ્રહણીનો' અતિદેશ હોવા છતાં ઉક્ત વિષયોની પ્રાપ્તિ આપણને ક્યાંક કર્મપ્રકૃતિમૂલમાં તથા ક્યાંક કર્મપ્રકૃતિચૂર્ણિમાં થાય છે.

હવે આપણે સપ્તતિકા ચૂર્ણિમાં રહેલા કષાયપ્રાભૃતના અતિદેશવાળાં સ્થાનોની વિચારણા કરી લઈએ.

(૧) પ્રથમસ્થાનમાં ત વેયેતો............ ....

....તેસિં લક્ખણં જહા કસાયપાહુડે"

અહીં સૂક્ષ્મસમ્પરાયકિટ્ટીઓના લક્ષણ અંગે કસાયપાહુડનો અતિદેશ કર્યો છે. કિન્તુ સૂક્ષ્મકિટ્ટીઓનું લક્ષણ ક૦ પ્રા૦ મૂલમાં નથી દેખાતું પણ કષાયપ્રામૃતચૂર્ણિમાં આ પ્રમાણે મલે છે–

"તાસિં સુહુમસાંપરાઇયકિટ્ટીણં કમ્હિ ટ્ઠાણ ? તાસિં ટ્ઠાણ લોભસ્સ તદિયાએ સંગ્રહકિટ્ટીએ હેટ્ઠદો । (પૃ૦ ૮૬૨) આ કિટ્ટિનું લક્ષણ છે. અહીં આપણે 'તાસિં' પદથી જો સૂક્ષ્મકિટ્ટીને વદલે સામાન્યથી કિટ્ટીનું લક્ષણ લેવાનું હોય તો તેનો અધિકાર કષાયપ્રામૃતમૂલ તથા ચૂર્ણિ બંનેમાં આ પ્રમાણે મલે છે–"લક્ખણમધ કિં ચ કિટ્ટીએ ત્તિ એત્થ એક્કા ભાસગાહા । તિસે સમુવિકત્તણા ।

"ગુણસેઢિ અણંતગુણા લોભાદિકોધપચ્છિમપદાદો ।
કમ્મસ્સ ય અણુભાગે કિટ્ટીએ લક્ખણ એદં ॥ (ગાથા ૧૬૫ પૃ૦ ૮૦૭.)

વિહાસા । લોભસ્સ જહણ્ણિયા કિટ્ટી અણુભાગેહિં થોવા । વિદિય કિટ્ટી અણુભાગેહિં અણંતગુણા । તદિયા કિટ્ટી અણુભાગેહિં અણંતગુણા । એવમણંતરાણંતરેણ સવ્વત્થ અણંતગુણા જાવ કોધસ્સ ચરમકિટ્ટીત્તિ । ઉક્કસ્સિયા વિ કિટ્ટી આદિફદ્દયઆદિવગ્ગણાએ અણંતભાગો । એવં કિટ્ટીસુ થોવો અણુભાગો । કિસ કમ્મં કદં જમ્હા તમ્હા કિટ્ટી । એદ લક્ખણ ।" (ક૦ પ્રા૦ પૃ૦ ૮૦૮)

(૨) એત્થ . . . .
.... તહા વત્તવ્વં ।

અહીં કષાયપ્રામૃત અને કર્મપ્રકૃતિસંગ્રહણી વન્નેનો, અપૂર્વકરણ અને અનિવૃત્તિકરણને લગતી જે અનેક વાતો અંગે સપ્તતિકાચૂર્ણિકારે અતિદેશ કર્યો છે, તે વાતો આપણને કર્મપ્રકૃતિમૂલમાં તથા ચૂર્ણિમાં વન્નેમાં વિસ્તારથી મલે છે. કર્મપ્રકૃતિમૂલમાં અપૂર્વકરણ અને અનિવૃત્તિકરણના વર્ણનને લગતી પ્રથમોપશમસમ્યક્ત્વોત્પાદઅધિકારમાં કેટલીક ગાથાઓ છે (ગાથા નં૦ ૧૧ થી ૧૭) અને ચૂર્ણિ પણ ત્યાં વિસ્તારથી છે, તથા કષાયપ્રામૃતચૂર્ણિમાં વિસ્તારથી મલે છે.

(૩) ચઉવ્વિહબંધગસ્સ વેદોદએ . .. .
. . . . ઇતિ પરિસેસિયં ।

અહીં 'કષાયપાહુડાદિસુ વિહડતિત્તિ' વગેરે જે સપ્તતિકાકારે કહ્યું છે તે તો સપ્તતિકાચૂર્ણિકારે પોતે ખાસ કષાયપ્રામૃતને જ અનુસરનારું પોતાનું વલણ વતાવેલ છે. ત્યાં મુખ્ય વિષય એ છે કે 'મોહનીયના પાંચના વંધક અને વે(વેદ અને કષાય)ના ઉદયવાળા જીવને પુરુષવેદનો વંધ અને ઉદય સાથે જાય છે' તેથી ચારના વંધે એક પ્રકૃતિના ઉદયસ્થાનની પ્રાપ્તિ થાય છે, એવો કષાયપ્રામૃતનો મત છે. જ્યારે અન્ય આચાર્યોનો મત એવો છે કે 'પુરુષવેદના વંધવિચ્છેદ પછી ઉદય-વિચ્છેદ જાય છે.' તેથી તેઓ ચારના વંધે પણ વે નો ઉદય થોડો કાલ માને છે, સપ્તતિકાર અહીં અન્ય આચાર્યોના મતની "પંચાઓ.........વગેરે ગાથા રજૂ કરી કષાયપ્રામૃતાદિમાં તે મત નથી માન્યો માટે અમે છોડી દઈએ છીએ, એમ સ્પષ્ટ રીતે જણાવે છે.

આમ સપ્તતિકાચૂર્ણિકારે જે વિષયો અંગે કષાયપ્રાભૃતચૂર્ણિનો અતિદેશ કર્યો છે, તે વિષયોની પ્રાપ્તિ આપણને કેટલેક ઠેકાણે કષાયપ્રાભૃતમૂલમાં તથા કેટલાક સ્થળે કષાયપ્રાભૃતચૂર્ણિમાં થાય છે, એટલું જ નહિ, શતકચૂર્ણિમાં પણ વર્ગણાઓના વર્ણન વખતે ધ્રુવાચિત્ત આદિ વર્ગણાઓનાં નામ, પુદ્ગલોનું પ્રમાણ, વર્ગણાઓની સંખ્યા વગેરે આપ્યું છે, પણ વર્ગણાઓનો અર્થ જોવા માટે "एतासिं अत्थो जहा कम्मपयडिसंगहणीए" (शतकचूर्णि पृ० ४३) કહીને કર્મપ્રકૃતિસંગ્રહણીનો અતિદેશ કર્યો છે અને તે અર્થની પ્રાપ્તિ આપણને કર્મપ્રકૃતિમૂલમાં નહિ પણ ચૂર્ણિમાં જોવા મલે છે. આ બધા પરથી એમ નક્કી થાય છે કે કર્મપ્રકૃતિસંગ્રહણી અને કષાયપ્રાભૃતના નામથી અતિદેશોમાં તેની ચૂર્ણિઓ પણ લઈ શકાય છે. કર્મપ્રકૃતિ અંગેની વિચારણામાં આપણે એ પણ જોઈ ગયા છીએ કે કસાયપાહુડમાં અપ્રશસ્તઉપશમના અંગે કર્મપ્રકૃતિનો અતિદેશ છે અને તે અપ્રશસ્તોપશમનાની પ્રાપ્તિ કર્મપ્રકૃતિસંગ્રહણીની મૂલગાથાઓમાં પણ મલે છે, આ બધું જોતાં કષાયપ્રાભૃતમૂલ તથા ચૂર્ણિ બંને અતિપ્રાચીન અને શ્વેતામ્બર પરંપરાને અનુકૂલ ગ્રંથો છે એ સ્પષ્ટ નિશ્ચિત થાય છે.

કષાયપ્રાભૃતમૂલ તથા ચૂર્ણિની રચનાનો કાલ

કષાયપ્રાભૃતમૂલ તથા ચૂર્ણિના રચના કાલની વિચારણા પણ અમારી ઉપરોક્ત માન્યતાને જ વધુ પુષ્ટિ આપે છે. કષાયપ્રાભૃતમૂલમાં કે ચૂર્ણિમાં તેના કર્તાના નામનો ઉલ્લેખ નથી, તેના કર્તાના નામનો ઉલ્લેખ જયધવલાટીકાના મંગલાચરણમાં પ્રાપ્ત થાય છે, અને તે ઉલ્લેખ પણ કષાયપ્રાભૃતમૂલના કર્તા તથા ચૂર્ણિના કર્તા શ્વેતામ્બર પરંપરાને માન્ય હોવાનું અને દિગંબરમતોત્પત્તિથી પૂર્વકાલીન હોવાનું નિશ્ચિત કરવામાં જ વિશેષે કરીને સહાયક છે. કષાયપ્રાભૃતમૂલના તથા ચૂર્ણિના કર્તા અંગે જયધવલાકારનો ઉલ્લેખ આ પ્રમાણે છે.—

"जेणिह कसायपाहुडमणेयणयमुज्जलं अणंतत्थं । गाहाहि विवरियं तं गुणहरभडारयं वंदे ॥६॥
गुणहरवयणविणिग्गयगाहाणत्थोऽवहारियो सव्वो । जेणज्जमंखुणा सो सणागहत्थी वरं देऊ ॥७॥
जो अज्जमंखुसीसो अंतेवासी वि णागहत्थिस्स । सो वित्तिसुत्तकत्ता जइवसहो मे वरं देऊ ॥

(जयधवला भा० १ पृ० ४)

જયધવલાના આ શ્લોકો કષાયપ્રાભૃતમૂલના કર્તા તરીકે ગુણધર અને ચૂર્ણિના કર્તા તરીકે આર્યમંગુના શિષ્ય અને આર્યનાગહસ્તીના અંતેવાસી યતિવૃષભનું નામ જણાવે છે, એટલું જ નહીં પણ એક સ્થળે જયધવલામાં ગુણધરને વાચક તરીકે પણ કહ્યા છે, "एतेनाशङ्का घातिता आत्मीया गुणधरवाचकेन" । કષાયપ્રાભૃતમૂલના કર્તા ગુણધરનો વાચક તરીકે ઉલ્લેખ અને તેમના તરફથી આર્યમંગુ અને આર્યનાગહસ્તીને થયેલ કષાયપ્રાભૃતના અર્થની પ્રાપ્તિ આ બન્ને વાતો કષાયપ્રાભૃતના કર્તા ગુણધર વાચકવંશમાં થયા હોવાનું વિશેષે કરીને સિદ્ધ કરે છે, કેમ કે આર્યમંગુ અને આર્યનાગહસ્તી તો વાચકવંશમાં સુપ્રસિદ્ધ છે અને આર્યનાગહસ્તી કર્મપ્રકૃતિ વગેરેના વિશેષ જાણકાર હોવાનો પણ ઉલ્લેખ છે. આ બધું જોતાં ગુણધરવાચક,

आर्यमंगु–नागहस्तीना समानकालीन अने चूर्णिकार यतिवृषभाचार्य आर्यमंगु नागहस्ती पछी नजीकना कालना होय तेम विशेष करीने जणाय छे. आर्यमंगु, आर्यनागहस्ती वगेरेने लगती वाचकवंशनी पट्टावलि नंदिसूत्रमां आ प्रमाणे आपेली छे

"सुहम्म अग्गिवेसाणं जंबूनाम च कासवं। पभवं कच्चायणं वंदे वच्छं सिज्जंभवं तहा ॥२३॥
जसमद्दं तुंगियं वंदे, संभूयं चेव माढरं। भद्दबाहुं च पाइन्नं थूलभद्दं च गोयमं ॥२४॥
एलावच्चसगोत्तं वंदामि महागिरिं सुहत्थिं च। तत्तो कोसिअगोत्तं बहुलस्स सरिव्वयं वन्दे ॥२५॥
हारियगोत्तं साइं च वंदिमो हारियं च सामज्जं। वंदे कोसियगोत्तं संडिल्लं अज्जजीयधरं ॥२६॥
तिसमुद्दखायकित्तिं दीवसमुद्देसु गहियपेयालं। वंदे अज्जसमुद्दं अक्खुभियसमुद्दगंभीरं ॥२७॥
भणगं करगं झरगं पभावगं णाणदंसणगुणाणं। वंदामि अज्जमंगुं सुयसागरपारगं धीरं ॥२८॥
नाणंमि दंसणंमि अ तवविणए णिच्चकालमुज्जुत्तं। अज्जं नंदिलखमणं सिरसा वंदे पसन्नमणं ॥२९॥
वड्ढउ वायगवंसो जसवंसो अज्जणागहत्थीणं। वागरणकरणभंगियकम्मपयडीपहाणाणं ॥३०॥
(नंदिसूत्र पृ० ४८ थी)

नंदिसूत्रनी आ गाथाओमां आपणने भगवान सुधर्मास्वामीथी आर्यनागहस्ती सुधीनी पाटपरंपरा प्राप्त थाय छे, जो के नंदिसूत्रमां तो तेना कर्ता देववाचके छेक पोताना सुधीनी परंपरा बतावी छे, परंतु अहीं ए बधी उपयोगी नथी माटे आर्य नागहस्ती सुधीनी गाथाओ ज अत्रे बतावी छे. क्रमशः पाटपरंपरामां आवता आचार्योनां नाम आ प्रमाणे छे–

(१) सुधर्मा भगवान (अग्निवेश्य गोत्र)
(२) जम्बूस्वामी (काश्यपगोत्र)
(३) प्रभवस्वामी (कात्यायनगोत्र)
(४) शय्यंभवस्वामी (वत्सगोत्र)
(५) यशोभद्रस्वामी (तुंगिक गोत्र)
(६) संभूतिविजय (माढरगोत्र)
(७) भद्रबाहुस्वामी (प्राचीन गोत्र)
(८) स्थूलभद्रस्वामी (गौतमगोत्र)
(९) आर्यमहागिरि (एलापत्य गोत्र)
(१०) आर्यसुहस्ती (एलापत्य गोत्र)
(११) आर्यबलिस्सह-(कौशिक गोत्र)
(१२) आर्यस्वाति (हारीतगोत्र)
(१३) आर्यश्याम (हारीतगोत्र)
(१४) आर्यशांडिल्य (कौशिक गोत्र)
(१५) आर्य समुद्र
(१६) आर्यमंगु
(१७) आर्यनंदिल
(१८) आर्यनागहस्ती

अहीं 'अज्जजीयधरं' पदनी व्याख्या टीकाकार मलयगिरिमहाराजे आर्य शांडिल्यना विशेषण तरीके करी छे, साथे 'अन्ये तु व्याचक्षते' कहीने आर्यजीतधरने शांडिल्यना शिष्य तरीके बताव्या छे.

उपरनी पट्टावलीथी जाणी शकाय छे, के आर्यमंगु अने आर्यनागहस्ती वगेरे भगवान् सुधर्मास्वामीनी पाटपरंपरामां आ रीते लगभग १६ मा अने १८ मा आवेल छे.

"वड्ढउ वायगवंसो जसवंसो अज्जणागहत्थीणं" आ उक्ति ए पण बतावे छे के आ बधानो वंश वाचक वंश हतो. उपरनी पट्टावलिमां आर्यस्वातिना नामनो उल्लेख छे, संभवतः ते तत्त्वार्थसूत्रना कर्ता

उमास्वाति महाराज छे. आर्यश्याम आर्यस्वातिना शिष्य अने पन्नवणाना कर्ता श्यामाचार्य छे. आ बधा वाचक तरीके प्रख्यात छे, एटलुं ज नहि पण पन्नवणासूत्रनी टीका वगेरेमां वाचकनो अर्थ पूर्ववित् (पूर्वधर) कर्यो छे.

वळी श्रुतावतारमां एवो स्पष्ट निर्देश छे के गुणधरमुनिए कषायप्राभृतमूलनी १८३ गाथा तथा एना विवरणनी ५३ गाथा रची छे अने तेओए तेनी वाचना आर्यमंगु अने आर्य नागहस्तीने आपी छे जुओ **श्रुतावतार** गाथा-१५२-१५३-१५४.

अथ गुणधरमुनिनाथः सकषायप्राभृतान्वयं तत् । प्रायो-दोपप्राभृतकाररसंज्ञा साम्प्रतिकशक्तिनपेक्ष्य ॥१५२॥
त्र्यधिकाशीत्या युक्तं शतं च मूलसूत्रगाथानाम् । विवरणगाथानां च त्र्यधिकं पञ्चाशतमकार्षीत ॥१५३॥
एवं गाथासूत्राणि पंचदशमहाधिकाराणि । प्रविरच्य व्याचख्यौ स नागहस्त्यार्यमंक्षुभ्याम् ॥१५४॥

जो के श्रुतावतारमां इन्द्रनन्दि जणावे छे के 'गुणधर, धरसेनना अन्वय (वंश) ने अमे जाणता नथी' परन्तु गुणधरमुनिए कषायप्राभृतनी आर्यमंगु अने नागहस्तीने वाचना आप्यानी वात तो श्रुतावतारमां स्पष्ट बतावी छे. आ बधा उपरथी नक्की थाय छे के कषायप्राभृतना कर्ता गुणधरवाचक ए वाचक वंशमां आर्यमंगु अने नागहस्तीना समानकालिक होवा जोईए अने तेमनी पासेथी कषायप्राभृतनी प्राप्ति आर्यमंगु अने आर्यनागहस्तीने थई होवी जोईए आर्यमंगु तेमज आर्यनागहस्तीनी पासेथी यतिवृषभाचार्यने क० प्रा० नो अर्थ प्राप्त थयो अने तेना उपरथी यतिवृषभाचार्ये चूर्णिसूत्रोनी रचना करी होवी जोईए. श्रुतावतारमां यतिवृषभे आर्यमंगु अने नागहस्ती पासे कषायप्राभृतनुं अध्ययन करीने चूर्णिसूत्रनी रचना कर्यानो आ प्रमाणे उल्लेख पण छे—

पार्श्वे तयोर्द्वयोरप्यधीत्य सूत्राणि तानि यतिवृषभः । यतिवृषभनामधेयो बभूव शास्त्रार्थनिपुणमति ॥१५५॥
तेन ततो यतिपतिना तद्गाथावृत्तिसूत्ररूपेण । रचितानि षट्सहस्रग्रन्थान्यथ चूर्णिसूत्राणि ॥१५६॥

अहीं पूर्वनी गाथा साथे सम्बन्ध होवाना कारणे 'तयोः' पद थी आर्यमंगु अने आर्य नागहस्ती लेवाना छे.

अहीं एक प्रश्न थाय के वाचकवंशनी उक्त पट्टावलिमां **गुणधरवाचकना** नामनो उल्लेख केम नथी ? एनुं **समाधान** ए छे के पट्टावलिमां पाटपरंपरामां आवनार प्रधानपुरुषोनां ज नामोनो उल्लेख होय छे, ज्यारे ते सिवाय तत्कालीन जे महापुरुषो थया होय तेमनां नामो पट्टावलिमां नथी पण आवतां, तेथी गुणधरवाचक पण आवी ज रीते पाटपरंपरामां न आवता होवाना कारणे तत्कालीन पूर्वधर पुरुष होय, तो पण तेमनो पट्टावलिमां नामनिर्देश न होय ए बने, परंतु तेटला मात्रथी तेमनां अस्तित्वनो निषेध थई शकतो नथी. आर्यमंगुनो काल वीर संवत ४६७ लगभग नो छे. "४६७ वर्षे आर्यमंगु-वृद्धवादि-पादलिप्त-श्रीसिद्धसेनाद्याचार्या बभूवु" (गुरुपट्टावलि- पट्टावलीसमुच्चय पृ० १६६) एटले कषायप्राभृतचूर्णिनी रचनानो काल पण

वीरसंवत ४६७ लगभगनो होई शके छे, केम के चूर्णिकार आर्यमंगुना शिष्य अने आर्यनागहस्तीना अंतेवासी छे. अहीं शिष्य अने अंतेवासी एम बे जुदा शब्दोनुं रहस्य ए होई शके के आर्यनागहस्तीनी निकटमां विशेष श्रुत भणवा माटे रहेनारा अने आर्यमंगुना शिष्य. गमे तेम होय पण यतिवृषभाचार्ये आर्यमंगु अने नागहस्ती बन्ने पासे कषायप्राभृतनो अभ्यास कर्यो छे अने त्यार पछी चूर्णिसूत्रनी रचना करी छे, एटले संभव छे के आर्यमंगु अने नागहस्तीना काल दरमियान ज चूर्णिसूत्रनी रचना थई होय, अथवा तेमना पछी नजीकना कालमां थई होय. दिगंबरमतोत्पत्तिनो काल वीर संवत ६०० पछी छे. एटले प्रस्तुत कषायप्राभृतमूल तथा चूर्णिसूत्रनी रचना दिगंबरमतनी स्थापना पूर्वेनी छे अने तेथी प्रस्तुत बन्ने ग्रन्थो बन्ने परंपराने मान्य बन्या होवानो संभव छे. पूर्वे पण आपणे जोई गया छीए के पंचसंग्रह, सित्तरीचूर्णि, शतकचूर्णि आदिमां कषायप्राभृतने लगती वातो छे तेमज कर्मप्रकृतिनी भलामण कषायप्राभृतचूर्णिमां छे. आथी सूचित थाय छे के कषायप्राभृत तथा तेनी चूर्णिने पंचसंग्रहकार, सप्ततिकाचूर्णिकार, शतकचूर्णिकार वगेरेए मान्य करी छे. कर्मप्रकृतिने कषायप्राभृतचूर्णिकारे पण मान्य करी छे, एटले क० प्रा० चूर्णि अतिप्राचीन तेमज प्रामाणिक ग्रन्थ छे.

कषायप्राभृत चूर्णिनी रचनाना काल अंगे वर्तमान संपादकोनी मान्यता

कषायप्राभृतमूल तथा चूर्णिनी रचनाकालना आपणा अनुमानथी विरुद्ध जयधवलाकारना उल्लेख तथा त्रिलोकप्रज्ञप्तिनी बे गाथा उपरथी कषायप्राभृतचूर्णि तथा जयधवलाना वर्तमान संपादकोए जे मान्यता ऊभी करी छे, तेनी पण आपणे थोडी समीक्षा करी लईए. जयधवलाकारे प्रारम्भमां मंगलाचरणमां कषायप्राभृतमूलना कर्ता गुणधर तथा चूर्णिना कर्ता तरीके आर्यमंगु- आर्यनागहस्तीना शिष्य-अन्तेवासी यतिवृषभाचार्यना नामनो उल्लेख मात्र कर्यो छे, पाछळथी द्रव्यागमनी प्रमाणभूतता बतावता जयधवलाकार कषायप्राभृतमूलनी रचना करनारने तेमज आर्यमंगु, आर्यनागहस्ती अने यतिवृषभाचार्यने वीर संवत ६८३ पछी घणा काळे थयेल बतावे छे. तेमना मत मुजब वीर संवत ६८३ वर्षे लोहाचार्यनो स्वर्गवास थयो अने तेनी साथे आचारांगनो पण विच्छेद थयो, त्यार पछी सर्व आचार्यो अंग तथा पूर्वना एकदेशना ज्ञानवाळा थया अने तेमनी परंपराथी अंग अने पूर्वना एक देशनुं ज्ञान गुणधराचार्यने मळ्युं, तेमणे कालना प्रभावे ग्रन्थविच्छेदना भयथी 'ज्ञानप्रवाद' नामना पांचमा पूर्वनी दशमी वस्तुना त्रीजा पेज्जदोषपाहुडनो कषायप्राभृतग्रन्थरूपे १८० गाथामां उपसंहार (संग्रह)कर्यो. ते पछी आचार्यपरंपराथी चाली आवती ते सूत्रगाथाओ आर्यमंगु अने आर्यनागहस्तीने प्राप्त थई अने ते बन्नेना पादमूलमां गुणधराचार्यना मुखमांथी निकळेली ए १८० गाथाओ (कषायप्राभृतमूल) ने सम्यग् रीते सांभळी यतिवृषभभट्टारके चूर्णिसूत्रनी रचना करी. जयधवलानो आ संपूर्ण उल्लेख तेमना ज शब्दोमां रजू करीए छीए-

"पुणो लोहाइरिए सग्ग गदे आयारंगस्स वोच्छेदो जादो। एदेसिं सव्वेसिं कालाण समासो छसद-वासाणि तेसीदिवासेहि समहियाणि ६८३। वड्ढमाणजिणिंदे णिव्वाण गदे पुणो एत्तिएसु वासेसु अदक्कंतेसु एदम्हि भरहखेत्ते सव्वे आइरिया सव्वेसिमंगपुव्वाणमेगदेसधारया जादा।

तदो अंगपुव्वाणमेगदेसो चेव आइरियपरंपराए आगंतूण गुणहराइरियं संपत्तो। पुणो तेण गुणहर-भडारएण णाणपवादपंचमपुव्व-दसमवत्थुतदियकसायपाहुडमहण्णवपारएण गंथवोच्छेदभएण पवयणवच्छल-परवसीकयहियएण एद पेज्जदोसपाहुड सोलसपदसहस्सपमाणं होंतं असीदिसदमेत्तगाहाहि उवसंघारिदं। पुणो ताओ चेव सुत्तगाहाओ आइरियपरंपराए आगच्छमाणीओ अज्जमंखु- णागहत्थीण पत्ताओ। पुणो तेसिं दोण्हं पि पादमूले असीदिसदगाहाण गुणहरमुहकमलविणिग्गयाणमत्थं सम्मं सोऊण जयिवसह-भडारएण पवयणवच्छलेण चुण्णिसुत्तं कयं।" (जयधवला भाग १ पृ० ८६)

तिलोयपण्णत्तिग्रन्थने अन्ते बे गाथाओ आ प्रमाणे छे.

"पणमह जिणवरवसहं गणहरवसहं तहेव गुणवसहं। दट्ठूण परिसवसहं जदिवसहं धम्मसुत्तपाढर卐वसहं॥ चुण्णिस्सरूवत्थकरणसरूवपमाण होइ किं जं तं। अट्ठसहस्सपमाणं तिलोयपण्णत्तिणामाए॥

त्रिलोकप्रज्ञप्तिनी आ बे गाथा परथी त्रिलोकप्रज्ञप्तिना कर्ता तरीके यतिवृषभने तेओ माने छे अने त्रि० प्र० मां वीर संवत १००० सुधीना राजाओनो इतिहास होवाना कारणे तेनी रचना वीर संवत१००० पछीनी होवानुं सिद्ध करे छे तथा क० प्रा० चूर्णिना कर्ता तरीके यतिवृषभना नामनो उल्लेख जयधवलामां मळे छे, तेथी बन्नेना कर्ता यतिवृषभ एक मानी, कषायप्राभृत-चूर्णिनी रचना पण वीर संवत १००० पछी थी थई होवानुं नक्की करवानो सम्पादकोए प्रयास कर्यो छे.

उक्त मान्यतानी समीक्षा

जयधवलाकारना कथन तथा त्रिलोकप्रज्ञप्तिनी गाथा उपरथी ऊभी करेली उक्त मान्यता युक्तिसंगत नथी. तेनां कारणो आ प्रमाणे छे,

(१) जयधवलाकारना आ उल्लेख तथा श्रुतावतार सिवाय दिगंबर प्राचीन हजारो ग्रन्थोमां तथा पट्टावलिओमां क्यांय वाचकवंशनो, आर्यमंगु, आर्यनागहस्ती के यतिवृषभ वगेरेमांथी कोईनो पण उल्लेख प्राप्त थतो नथी. जयधवलाना प्रस्तावनाकार पोते पण आ बाबत खास जणावे छे, जुओ

"और इन दोनों आचार्योका भी उल्लेख धवला, जयधवला और श्रुतावतारके सिवाय उपलब्ध दिगंबर साहित्यमें अन्यत्र नहीं पाया जाता है।" (पृ० ४४)

जयधवला अने श्रुतावतारमां पण मात्र कषायप्राभृतनी रचना सिवाय गुणधर आर्यमंगु अने नागहस्ती वगेरे विषे कोई विशेष वात जाणवा मळती नथी, श्रुतावतारमां इन्द्रनन्दि जणावे छे के गुणधरवाचकनो वंश तेना जाणकार मुनिजनोना तथा आगमोना अभावे अमने जाणवा मळतो नथी, जुओ

卐 मुद्रित त्रि० प्र० मां 'पाढए' एवो पाठ छे.

卐ગુણધરધરસેનાન્વયગુર્વો: પૂર્વાપરક્રમોઽસ્માભિઃ । ન જ્ઞાયતે તદન્વયકથકાગમમુનિજનાભાવાત્ ॥૧૫૧॥

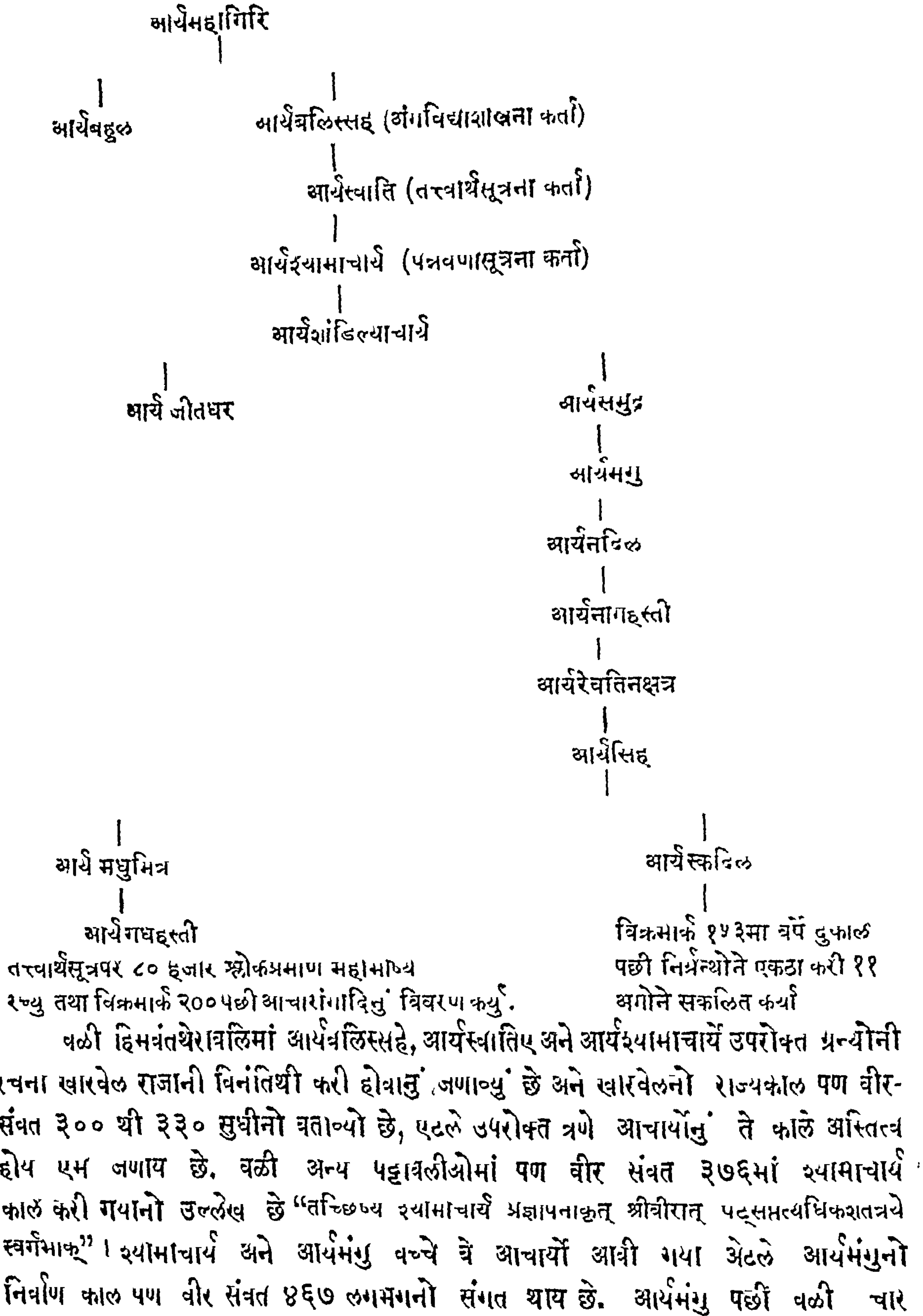
ત્યારે શ્વેતામ્બરોની અનેક પટ્ટાવલિઓ ઉપરાંત નંદિસૂત્ર મૂલ, તેની ચૂર્ણિ, ટીકાઓ, હિમવંત-થેરાવલી વગેરેમાં આર્યમંગુ, આર્યનાગહસ્તી તથા વાચકવંશનો ઉલ્લેખ ઉપલબ્ધ થાય છે, ઉપરાંત △બૃહત્કલ્પ, ઉપદેશમાલા આદિ શ્વેતામ્બરપરંપરામાન્ય ગ્રન્થોમાં આર્યમંગુના નામનો ઉલ્લેખ અનેક સ્થલે છે, એટલું જ નહિ પણ આર્ય મંગુનું કાંઈક ટૂંકું જીવનચરિત્ર પણ ★ નિશીથચૂર્ણિમાં ઉપલબ્ધ થાય છે. જો કે કલ્પસૂત્રની પટ્ટાવલિમાં આર્યમંગુનું તથા આર્યનાગહસ્તીનું નામ નથી આવતું પણ તેનું કારણ એ છે કે કલ્પસૂત્રપટ્ટાવલીમાં શ્રમણ ભગવાન મહાવીરદેવની પાટપરંપરામાં આર્યમહાગિરિ તથા આર્યસુહસ્તી વતાવ્યા પછી આર્યસુહસ્તીની પાટપરંપરા વતાવી છે, જ્યારે આર્યમંગુ અને આર્યનાગહસ્તી આર્યમહાગિરિની પાટપરંપરામાં થયેલ છે. નંદિસૂત્રની પટ્ટાવલી આર્ય-મહાગિરિની પાટપરંપરાની છે, તેથી તેમાં તેમનાં નામ આવે છે. જુઓ નંદિસૂત્રની મલયગિરિ મ૦ ની ટીકા

"તત્ર સુહસ્તિન આરભ્ય સુસ્થિતસુપ્રતિબદ્ધાદિક્રમેણાવલિકા વિનિર્ગતા સા યથા દશાશ્રુતસ્કન્ધે તથૈવ દ્રષ્ટવ્યા ન તયેહાધિકાર, તસ્યામાવલિકાયાં પ્રસ્તુતાધ્યયનકારકસ્ય દેવવાચકસ્યાભાવાત્, તત ઇહ મહાગિર્યાવલિકયાધિકારઃ" (નંદિસૂત્ર મલયગિરિટીકા પૃષ્ઠ ૪૯')

વળી આર્યમંગુનો કે નાગહસ્તીનો કાલ જો કે નંદિસૂત્રની પટ્ટાવલિમાં વતાવ્યો નથી, પરંતુ અન્યત્ર પટ્ટાવલિઓમાં આર્યમંગુનો કાલ વી૦ સં૦ ૪૬૭ લગભગનો વતાવેલ છે. હિમવંતથેરાવલિમાં આર્યમંગુ અને નાગહસ્તીના કાલનો સ્પષ્ટ નિર્દેશ નથી પણ આગળ પાછળના આચાર્યોના કાલનિર્દેશના હિસાવે આર્ય મંગુનો ૪૬૭ લગભગનો અને નાગહસ્તીનો તેની નજીકનો કાલ જણાય છે. હિમવંતથેરાવલિમાં આચાર્યોનો ક્રમ આ રીતે વતાવ્યો છે

卐અહીં ઇન્દ્રનન્દિ, ગુણધર સાથે ધરસેનની પણ વંશપરંપરા પોતે જાણતા નથી એમ જણાવે છે ધરસેનાચાર્યે પાસેથી જ્ઞાનને પ્રાપ્ત કરી ભૂતવલિ અને પુષ્પદન્તે ષટ્ખંડાગમની રચના કરી છે. આ ષટ્ખંડાગમના સૂત્રોમાં આવતી સ્ત્રીને સંયતાદિગુણસ્થાનકોની પ્રાપ્તિ અને ઋજુસૂત્રનયનો દ્રવ્યાર્થિક નયમાં અન્તર્ભાવાદિને લગતી માન્યતાઓ જોતા પ્રસ્તુત ગ્રન્થ પણ શ્વેતામ્બરામ્નાયને વધુ અનુકૂલ છે પણ આ પ્રસ્તાવનામાં એ ગ્રન્થને લગતી વિચારણા અપ્રસ્તુત હોઈ અમે એ વાવતમાં ઉલ્લેખ કરતા નથી. એને લગતું અમે જે સંશોધન કર્યું છે તે પણ અવસરે પ્રકાશમાં લાવવાની ભાવના રાખીએ છીએ

△ જુઓ બૃહત્કલ્પભાગ ૧–પૃ૦ ૪૪ ★ નિશીથચૂર્ણિ ભા૦ ૨ પૃ૦ ૧૨૫, ભા૦ ૩ પૃ૦ ૧૫૨.



વળી હિમવંતથેરાવલિમાં આર્યબલિસ્સહે, આર્યસ્વાતિએ અને આર્યશ્યામાચાર્યે ઉપરોક્ત ગ્રન્થોની રચના ખારવેલ રાજાની વિનંતિથી કરી હોવાનું જણાવ્યું છે અને ખારવેલનો રાજ્યકાલ પણ વીર-સંવત ૩૦૦ થી ૩૩૦ સુધીનો બતાવ્યો છે, એટલે ઉપરોક્ત ત્રણે આચાર્યોનું તે કાલે અસ્તિત્વ હોય એમ જણાય છે. વળી અન્ય પટ્ટાવલીઓમાં પણ વીર સંવત ૩૭૬માં શ્યામાચાર્ય કાલ કરી ગયાનો ઉલ્લેખ છે "તચ્છિષ્ય શ્યામાચાર્ય પ્રજ્ઞાપનાકૃત્ શ્રીવીરાત્ ષટ્સપ્તત્યધિકશતત્રયે સ્વર્गभाक्"। શ્યામાચાર્ય અને આર્યમંગુ વચ્ચે બે આચાર્યો આવી ગયા એટલે આર્યમંગુનો નિર્વાણ કાલ પણ વીર સંવત ૪૬૭ લગભગનો સંગત થાય છે. આર્યમંગુ પછી વળી ચાર

આચાર્યો વીત્યા બાદ આર્યસ્કંદિલ આવે છે, અને તેમને વિક્રમ સંવત ૧૫૩માં એટલે કે વીર સંવત ૬૨૩માં અગિયાર અંગો સંકલિત કર્યાં છે, એટલે આ ઉપરથી નાગહસ્તીનો કાલ આર્યમંગુની નજીકનો હોય એમ જણાય છે.

હિમવંતથેરાવલિના પાઠો આ પ્રમાણે છે

"आर्यमहागिरीणां जिनकल्पितुलनां कुर्वतां बहुलाख्यो विनेयवरो जिनकल्पितुलनामकरोत्। बलिस्सहश्च पश्चात् स्थविरकल्पमभजत्। बलिस्सहशिष्याः स्वात्याचार्याः श्रुतसागरपारगास्तत्त्वार्थसूत्राख्यं शास्त्रं विहितवन्तः। तेषां शिष्यैरार्यश्यामैः प्रज्ञापना प्ररूपिता। श्यामार्यशिष्याः स्थविराः शाण्डिल्याचार्याः श्रुतसागरपारगा अभवन्। तेषां शाण्डिलाचार्याणां आर्यजीतधरा ऽऽर्यसमुद्राख्यौ द्वौ शिष्यावभूताम्। आर्यसमुद्रस्याऽऽर्यमङ्गु नामानः प्रभावकाः शिष्या जाताः। आर्यमङ्गूनां चाऽऽर्यनंदिलाख्याः शिष्या बभूवुः। आर्यनन्दिलानां चाऽऽर्यनागहस्तिनः शिष्या बभूवुः। आर्यनागहस्तिनां चाऽऽर्यरेवतीनक्षत्राख्याः शिष्या अभवन्। आर्यरेवतीनक्षत्राणां आर्यसिंहाख्याः शिष्या अभवन्। ते च ब्रह्मद्वीपिकाशाखोपलक्षिता अभूवन्। तेषामार्यसिंहानां स्थविराणां मधुमित्राऽऽर्यस्कंदिलाचार्यनामानौ द्वौ शिष्यावभूताम्। आर्यमधुमित्राणां शिष्या आर्यगन्धहस्तिनोऽतीवविद्वांसः प्रभावकाश्चाभवन्। तैश्च पूर्वस्थविरोत्तंसोमास्वातिवाचकरचित-तत्त्वार्थोपरि अशीतिसहस्रश्लोकप्रमाणं महाभाष्यं रचितम्। एकादशांगोपरि चाऽऽर्यस्कन्दिलस्थविराणामुपरोधतस्तैर्विवरणानि रचितानि। यदुक्तं तद्रचिताचाराङ्गविवरणान्ते यथा—

थेरस्स महुमित्तस्स सेहेहिं तिपुव्वनाणजुत्तेहिं। मुणिगणविवंदिएहिं ववगयरागाइदोसेहिं ॥१॥
बंभद्दीवियसाहामउडेहिं गंधहत्थिविबुहेहिं। विवरणमेयं रइयं दोसयवासेसु विक्कमओ ॥२॥ (पृ० ९)

तयणंतरं वीराओ णतिसयवासेसु विइक्कंतेसु वुड्ढरायपुत्तो भिक्खुराओ कलिंगाहिवो संजाओ।" (पृ० ६)

इइ ताणं सव्वाणं णिग्गंठाणं विमाइत्ता कयट्ठो भिक्खुरायणिवो कयंजलिपुडो बलिस्सहुमसाइ-सामज्जाइण थेराण णमंसित्ता जिणपवयणमउडकप्पपायस्स दिट्ठिवायस्स संगहट्ठा विण्णवेइ। इइ तेण णिवेण चोइएहिं तेहिं थेरेहिं अन्नेहिं य अवसिट्ठं जिणपवयणं दिट्ठिवायं णिग्गंठगणाओ थोवं थोवं साहित्ता भुज्ज-तालवक्कलाइपत्तेसु अक्खरसन्निवायोववेयं कारइत्ता भिक्खुराय-णिवमणोरहं पूरित्ता अज्जसोहम्मुवएसिय-दुवालसंगीरक्खआ ते संजाया। समणाण णिग्गंठाण णिग्गंठीण य जिणपवयणसुलहबोहट्ठं णं अज्जसामेहिं थेरेहिं य तत्थ पण्णवणा परूविया। उमसाईहिं य थेरेहिं तत्तत्थसुत्तं सणिज्जुइयं परूवियं। थेरेहिं य अज्जबलिस्सहेहिं य विज्जापवायपुव्वाओ अंगविज्जाइसत्थे परूविए। एसो णं जिणसासणप्पभावगो भिक्खुरायणिवो णेगे धम्मकज्जाणि किच्चा सुज्झाणोवेओ वीराओ ण तीसाहियतिसयवासेसु विइक्कतेसु सग्गं पत्तो। (पृ० ७)

दुर्भिक्षान्ते च विक्रमार्कस्यैकशताधिकत्रिपञ्चाशत्संवत्सरे स्थविरैरार्यस्कंदिलाचार्यैरुत्तरमथुरायां जैनभिक्षूणां संघो मेलितः। एकशताधिकपञ्चविंशतिजैनभिक्षवः स्थविरकल्पानुयायिनो मधुमित्रगन्धहस्त्यादयः समिलिताः। सर्वेषां सावशेषमुखपाठान् मेलयित्वाऽऽर्यस्कन्दिलैर्गन्धहस्त्याद्यनुमतैरेकादशाङ्गी पुनर्ग्रथिता। (पृ० १०)

(२) श्वेताम्बर परंपरामां पूर्वधरने वाचक कहेवामां आवता हता.

"वाई य खमासमणे दिवायरे वायग त्ति एगट्ठा। पुव्वगयम्मि य सुत्ते एए सद्दा पउंजंति ॥"

(जैन कथावली)

જયધવલામાં ગુણધરને વાચક કહેલ છે અને તેથી તેઓ પૂર્વધર હતા પણ પૂર્વના એકદેશના ધારક નહીં, કેમકે પૂર્વના એકદેશના ધારક માટે પૂર્વધર માટે વપરાતા વાચકશબ્દનો પ્રયોગ કરવો વિસંવાદી જણાય છે.

(३) दिगंबरग्रन्थकार इन्द्रनन्दिना वचनथी पण जयधवलाकारनुं उक्त वचन बाधित थाय छे. ते आ रीते–

इन्द्रनन्दिना कथन मुजब कषायप्राभृत उपर चूर्णिसूत्रो तथा उच्चारणाचार्यनी टीकानी रचना थया पछी कुंडकुंदपुरमां पद्मनन्दिमुनिने अेनी प्राप्ति थई छे, पद्मनन्दि अे प्रसिद्ध दिगंबराचार्य कुंदकुंदाचार्यनुं ज बीजुं नाम छे, षट्खंडागम अने कषायप्राभृतनी प्राप्ति कुंदकुंदाचार्यने थई छे, अेटलुं ज नहीं पण तेमणे षट्खंडना प्रथम त्रणखंड उपर 'परिकर्म' नामनी बारहजार श्लोकप्रमाण टीका रची छे. जुओ श्रुतावतार

तस्यान्ते पुनरुच्चारणादिकाचार्यसञ्ज्ञकेन तत । सूत्राणि तानि सम्यगधीत्य ग्रन्थार्थरूपेण ॥१५७॥
द्वादशगुणितसहस्रग्रन्थान्युच्चारणाख्यसूत्राणि । रचितानि वृत्तिरूपेण तेन तच्चूर्णिसूत्राणाम ॥१५८॥
गाथाचूर्ण्युच्चारणसूत्रैरुपसंहृतं कषायाख्य । प्राभृतमेवं गुणधरयतिवृषभोच्चारणाचार्यैः ॥१५९॥
एव द्विविधो द्रव्यभावपुस्तकगत समागच्छन् । गुरुपरिपाट्या ज्ञात सिद्धान्तः कुण्डकुन्दपुरे ॥१६०॥
श्रीपद्मनन्दिमुनिना सोऽपि द्वादशसहस्रपरिमाण । ग्रन्थपरिकर्मकर्त्रा षट्खण्डाद्यत्रिखण्डस्य ॥१६१॥

वळी धवलामां पण अनेक स्थळे परिकर्मनी साक्षी आवे छे. जुओ–

(१) त्ति परियम्मवुत्तं" (धवला अ० पृ० १४९)
(२) परियम्मम्मि वुत्त (धवला अ० पृ० ६७८)
(३) परियम्मवयणादो णव्वदे (धवला अ० पृ० १६७)

अेटलुंज नहीं अेक स्थले तो धवलाकारे परिकर्मनो बधा आचार्योने सम्मत ग्रन्थ तरीके उल्लेख कर्यो छे.

"सयलाइरिय सम्मदपरियम्मसिद्धत्तादो" धवला प्रस्तावनाकारना कथन मुजब प्रायः धवलाना परिकर्मसूत्रने लगता उल्लेखो पण षट्खंडागमना त्रणखंडना विषय उपर ज छे, आ सिवाय पण अनेक प्रमाणोथी 'परिकर्म' नामनी टीका रचायानुं जणाय छे.

कुंदकुंदाचार्ये 'परिकर्म' टीकानी रचना करी छे, अे उल्लेख स्पष्ट साबित करे छे के कषायप्राभृतचूर्णिकार अे कुंदकुंदाचार्यथी पूर्ववर्ती छे अने कुंदकुंदाचार्यनो काळ हालनी दिगम्बरमान्यता मुजब गणीये तो पण विक्रमनी पहेली बीजी के त्रीजी सदीनो थाय छे. दिगम्बरपट्टावलीओना आधारे कुन्दकुन्दनो काळ विक्रमना पहेला बीजा सैकानो नकी थाय छे 'विद्वद्‌जनबोधक' मां कुन्दकुन्दाचार्यनो काल वीर संवत ७७० नो अेटले विक्रम संवत ३०० लगभगनो बताव्यो छे.

"वर्षे सप्तशते चैव सप्तत्या च★ विस्मृतौ । उमास्वातिमुनिर्जातः कुन्दकुन्दस्तथैव च ॥१॥

अे सिवाय कुर्ग इन्स्क्रिपशंसमां मर्करानां ताम्रपत्र उपरथी कुन्दकुन्दनो काल जयधवलानी प्रस्तावनामां विक्रमनी त्रीजी सदी पूर्वेनो बताव्यो छे. गमे तेम होय पण जयधवलाना कथन तथा त्रिलोकप्रज्ञप्तिनी गाथाओना आधारे कषायप्राभृतचूर्णिनी वीर संवत १००० पछी रचना थई

★ विस्मृतौ, इति प्रतिभाति ।

होवानी मान्यताना हिसावे कुन्दकुन्दचार्यने उक्त सिद्धान्तनी प्राप्ति थई शके नहीं, केम के कुन्दकुन्दाचार्य ओ वीर संवत १००० पछीना होवानी दिगंबर विद्वानोनी पण मान्यता नथी.

(३) श्रुतावतारना अनुसारे कुंदकुंदाचार्यथी केटलोक काल वीत्या बाद शामकुंडाचार्य ने कषायप्राभृत अने षट्खण्डागमनी प्राप्ति थई छे अने तेना उपर तेमणे पण बार हजार श्लोकप्रमाण संस्कृत, प्राकृत अने कर्णाट (कन्नड) भाषामिश्रित ग्रन्थनी रचना करी छे, त्यार पछी केटलोय काळ वीत्या बाद तुम्बुलूर नामना आचार्य तुम्बुलूर गाममां थया तेमणे पण षट्खण्डना आद्य पांच खण्ड तथा कषायप्राभृत उपर कर्णाटभाषामां ८४ हजार श्लोक प्रमाण चूडामणि नामनी टीका रची छे, षट्खंड उपर ७००० श्लोक प्रमाण पंजिका रची छे, त्यार पछी समंतभद्रस्वामी थया, तेमणे पण षट्खण्डागमना प्रथम पांच खंडो उपर अतिसुंदर अने मृदु संस्कृतभाषामां ८४ हजारश्लोक प्रमाण टीका रची छे, जुओ श्रुतावतार—

काले तत कियत्यपि गते पुन, शामकुण्डसंज्ञेन। आचार्येण ज्ञात्वा द्विभेदमप्यागम कात्स्न्यात् ॥१६२॥
द्वादशगुणितसहस्रं ग्रन्थ सिद्धान्तयोरुभयो। षष्ठेन विना खण्डेन पृथुमहाबन्धसंज्ञेन ॥१६३॥
प्राकृतसंस्कृतकर्णाटभाषया पद्धति परा रचिता। तस्मादारात्पुनरपि काले गतवति कियत्यपि च ॥१६४॥
अथ तुम्बुलूरनामाचार्योऽभूत्तुम्बुलूरसद्ग्रामे। षष्ठेन विना खण्डेन सोऽपि सिद्धान्तयोरुभयो. ॥१६५॥
चतुरधिकाशीतिसहस्रग्रन्थरचनया युक्ताम्। कर्णाटभाषयाऽकृत महतीं चूडामणिं व्याख्याम् ॥१६६॥
सप्तसहस्रग्रन्थां षष्ठस्य च पंचिका पुनरकार्षीत्। कालान्तरे ततः पुनरासंध्यां पलरि तार्किकार्कोऽभूत् ॥१६७॥
श्रीमान्समन्तभद्रस्वामीत्यथ सोऽप्यधीत्य त द्विविधम्। सिद्धान्तमतः षट्खण्डागमगतखण्डपञ्चकस्य पुन ॥१६८॥
अष्टौ चत्वारिंशत्सहस्रसद्ग्रन्थरचनया युक्ताम्। विरचितवानतिसुन्दरमृदुसंस्कृतभाषया टीकाम् ॥१६९॥

आ आचार्योनो काल वीर संवत १००० पूर्वनो छे अने क० प्रा० चूर्णिनी रचना तो आ बधी टीकाओनी रचना पूर्वेनी छे तेथी आ बधी टीकाओनी रचनाना आधारे कषायप्राभृतचूर्णि रचनानो काल वीर संवत १००० पछी मानी शकाय तेम 卐 नथी, तेमज आ अनेकानेक टीकाओनो अपलाप पण थई शके तेम नथी.

वर्णी अभिनंदन ग्रंथमां "स्वामिसमन्तभद्रका समय और इतिहास" नामना लेखमां स्वामिसमन्तभद्रना काल विषे ऐतिहासिक रीते घणी विचारणा बतावी छे अने जुदा जुदा विद्वानोना मत जणाव्या छे. अने ते बधा मतोना अनुसार वीर संवत १००० वर्ष पूर्वनो ज काल नक्की थाय छे वळी ते ज ग्रंथमां 'स्वामिसमन्तभद्र तथा पाटलीपुत्र' लेखमां स्वामिका बहुमान्य समय शक सं० ६० या १३८ ई० है" पृ० ३२० अेम स्पष्ट उल्लेख छे श्वेताम्बरपट्टावलीओमां पण आचार्य

卐 "इन्द्रनंदिने अपने श्रुतावतारमें कषायप्राभृत चूर्णिसूत्रों और उच्चारणावृत्तिकी रचना हो जाने के बाद कुण्डकुन्दपुर में पद्मनन्दिमुनिको उसकी प्राप्ति हुई ऐसा लिखा है और उसके बाद शामकुण्डाचार्य, तुम्बुलूराचार्य और समन्तभद्राचार्य को उसकी प्राप्ति होनेका उल्लेख किया है। यदि यतिवृषभका समय विक्रमकी छट्ठी शताब्दी माना जाता है तो ये सब आचार्य उसके बादके विद्वान ठहरते हैं। जो कि मान्य नहि हो सकता" (जयधवला भा० १ लो प्रस्तावना पृ० ५७)

वज्रसेनसूरि महाराजना पट्टधर आचार्यचंद्रसूरिना पट्टधर तरीके आचार्यसमन्तभद्रसूरिनो उल्लेख छे अने तेमनो काळ वीर संवत ६५० लगभगनो छे.

(४) त्रिलोकप्रज्ञप्तिना कर्ता यतिवृषभ मानवामां पण कोई प्रमाण मळतुं नथी. त्रि० प्र० ना अन्तभागमां आवेली जे बे गाथाओ प्रमाण तरीके रजू कराय छे ते बे गाथाओ परथी त्रिलोकप्रज्ञप्तिना कर्ता यतिवृषभ नक्की थई शकता नथी, ते बे गाथाओ आ प्रमाणे छे

पणमह जिणवरवसहं गणहरवसहं तहेव गुणवसहं। दट्ठूण परिसवसहं जदिवसहं धम्मसुत्तपाढए(र)वसहं॥
चुण्णिस्सरूवछक्करणसरूवपमाण होइ किं ज तं। अट्ठसहस्सपमाणं तिलोयपण्णत्तिणामाए ॥

आ बे गाथा मुद्रित त्रिलोकप्रज्ञप्तिना अन्ते पृ० ८८२ उपर छे. तेमांनी बीजी गाथामां 'चुण्णिस्सरूवछक्करण' छे त्यां हस्तलिखित प्रतमां 'चुण्णिस्सरूवत्थकरण' छे अने 'किं ज तं' ना बदले 'किंजत्तं' छे. मुद्रित त्रि० प्र० ना टिप्पणमां संपादके पोते ज आ हकीकत जणावी छे. प्रथम गाथाना 'जदिवसहं' पद उपरथी त्रिलोकप्रज्ञप्तिना कर्ता तरीके यतिवृषभने मानवामां आवे छे पण ते संगत नथी. गाथामां त्रिलोकप्रज्ञप्तिना कर्ता तरीके यतिवृषभनुं नाम नथी परंतु प्रस्तुत गाथा अंतिम मंगल तरीके छे अने तेमां श्रीजिनेश्वरोने, गुणोथी श्रेष्ठ गणधर भगवंतो वगेरेने नमस्कार करवानुं ग्रन्थकार जणावे छे. गाथानो अर्थ आ रीते थई शके छे– हे भव्यजनो! तमे उत्तम श्रीजिनेश्वर भगवतो तथा पवित्रगुणोने धारण करनार गणधर भगवंतो, उत्तमपर्षदाने धारण करनार (आचार्यभगवंतो) श्रेष्ठयतिओ अने धर्मसूत्रना श्रेष्ठ पाठको(उपाध्याय-भगवंतो) ने देखीने प्रणाम करो. अथवा गाथामां श्री जिनेश्वरदेवो अने गणधर भगवंतोने नमस्कार सूचव्यो छे. गाथानुं उत्तरार्ध केवल विशेषण तरीके छे. एटले गाथानो अर्थ आ रीते थई शके–हे भव्यजनो 'परिसवसहं' एटले उत्तमपर्षदाने तथा 'जइवसहं एटले श्रेष्ठयतिओने 'दट्ठूण' जोईने 'धम्मसुत्तपाढरवसहं' धर्मसूत्रनो उपदेश आपनाराओमां श्रेष्ठ अने 'गुणवसहं'= गुणोथी श्रेष्ठ एवा 'जिनवसहं'=उत्तम तीर्थंकर भगवंतोने 'पणमह' नमस्कार करो 'तहेव गणहर-वसहं' ते ज प्रमाणे गणधर भगवंतोने नमकार करो। अथवा प्रस्तुतगाथा पंचपरमेष्ठिना नमस्कारना अर्थमां पण होई शके छे, 'जिणवरवसहं' थी अरिहंत भगवंतने, 'गणहरवसहं' थी आचार्यभगवंतने, 'गुणवसहं' थी सिद्ध भगवंतने (सिद्धभगवंतो सौथी वधु गुणवाळा छे) (परिसवसहं ए आचार्यनुं विशेषण छे.) तथा 'जइवसहं'थी साधुभगवंतने अने 'धम्मसुत्तपाढरवसहं' थी उपाध्याय भग-वंतने, 'दट्ठूण' पदथी आ बधाने जोईने अने 'पणमह' थी नमस्कार करवानुं भव्यजनने सूचव्युं छे, एटले संपूर्ण गाथानो अर्थ आ रीते थाय–हे भव्यजनो! तमे 'जिणवरवसहं' एटले अरि-हंतोने, गुणवसहं एटले सिद्ध भगवंतोने, 'परिसवसहं गणहरवसहं' एटले श्रेष्ठपर्षदावाळा आचार्य-भगवंतोने तथा 'जदिवसहं' एटले साधुभगवंतोने अने 'धम्मसुत्तपाढरवसहं एटले उपाध्याय भग-वंतोने 'दट्ठूण' एटले जोईने नमस्कार करो.

અહીં કદાચ પ્રશ્ન થાય કે અરિહંતાદિને નમસ્કાર ક્રમપૂર્વક કેમ નથી કર્યો, તેનું સમાધાન એ છે કે શ્લોકરચનામાં છંદના હિસાબે વ્યુત્ક્રમથી પણ પદ ગોઠવાય છે, અથવા પંચપરમેષ્ઠીને અનાનુપૂર્વીથી પણ નમસ્કાર થઈ શકે છે. એ સૂચવવા માટે ગ્રન્થકારે આ રીતે નમસ્કાર કરેલ છે, વર્તમાનમાં આ રીતે અનાનુપૂર્વી નમસ્કાર કરવાની પદ્ધતિ પણ ચાલુ છે, પંચપરમેષ્ઠિજાપના પૂર્વાનુપૂર્વી પશ્ચાનુપૂર્વી અને અનાનુપૂર્વીથી કુલ ૧૨૦ ભાંગા થાય છે, એમાં ૨૭ મો ભાંગો આ નમસ્કારનો છે. અથવા 'ગુણવસહં' ના બદલે 'ગુણહરવસહં' હોય અને 'જદિવસહં' નો અર્થ યતિવૃષભ વિશેષ નામ તરીકે કરીએ તો પણ ત્રિલોકપ્રજ્ઞપ્તિના કર્તા તરીક યતિવૃષભ સિદ્ધ થતા નથી, બલ્કે ગ્રન્થકારે મંગલ તરીકે જિનેશ્વરોને અને ગણધર ભગવંતોને નમસ્કાર કર્યો છે, તેની સાથે ગુણધરાચાર્ય અને યતિવૃષભાચાર્યને પણ નમસ્કાર કર્યો એમ સિદ્ધ થાય છે, જયધવલાકારે પણ સમ્યક્ત્વઅનુયોગદ્વારના મંગલાચરણમાં આવી જ રીતે નમસ્કાર કર્યો છે અને તે ગાથા પણ આ ગાથાને મળતી જ છે. જુઓ—

પણમહ જિણહરવસહં ગણહરવસહં તહેવ ગુણહરવસહં । દુસહપરિસહવિસહં જઇવસહં ધમ્મસુત્તપાઢરવસહં ॥

(જયધવલાપ્રસ્તાવના પૃ૪ ૩૬)

આપણે જોઈ શકીએ છીએ કે તિલોયપન્નત્તિની 'પણમહ' વાળી અંતિમ ગાથા અને આ ગાથા લગભગ સરખી છે, તેથી જયધવલાની ગાથા ઉપરથી તિલોયપન્નત્તિની આ ગાથાની રચના થઈ હોવાનું જણાય છે, કેમ કે વર્તમાન તિલોયપન્નત્તિમાં ઘણી ગાથાઓ બીજા બીજા ગ્રન્થોમાંથી સીધી અથવા થોડા ફેરફાર સાથે લેવામાં આવેલી છે જે આગળ આ પ્રસ્તાવનામાં બતાવવામાં આવશે. ધવલાના પણ અનેક ગદ્ય આલાવા અક્ષરશઃ તિલોયપન્નતિમાં છે. આ બધા ઉપરથી છેલ્લી ગાથામાં પણ જયધવલાનું અનુકરણ થયું હોવાનું વિશેષે કરીને સિદ્ધ થાય છે,એટલે પ્રસ્તુતગાથા પણ જયધવલા પછી ત્રિલોકપ્રજ્ઞપ્તિની રચના થઈ હોવાનું જે અનેક પ્રમાણોથી આગળ સિદ્ધ કરવામાં આવશે, તેને જ બધુ પુષ્ટ કરે છે.

આમ આ ત્રિલોકપ્રજ્ઞપ્તિના કર્તા તરીકે યતિવૃષભનું નામ સિદ્ધ થઈ શકતું નથી એટલું જ નહિ સામાન્યબુદ્ધિથી વિચારીએ તોપણ ગ્રન્થકર્ત્તા પોતે પોતાના ગ્રન્થની પ્રશસ્તિમાં પોતાના વડીલોની સ્તુતિકરે એ બને પણ પોતે પોતાને નમસ્કાર કરે એવું બનતું નથી, એ સમજી શકાય એવી વસ્તુ છે. 'જદિવસહં' નો અર્થ ત્રિલોકપ્રજ્ઞપ્તિના કર્તા યતિવૃષભ કરો તો શું ગ્રન્થકર્તા પોતે પોતાને નમસ્કાર કરે છે ? જો ગ્રન્થ કર્તાને પોતાનું નામ જણાવવું હોત તો ગાથે પોતાના ગુર્વાદિનું નામ જોડત, પણ તેવું કંઈ જ જણાતું નથી. આ બધું જોતાં આ ગાથા પરથી ત્રિલોકપ્રજ્ઞપ્તિના કર્તા તરીકે યતિવૃષભની કલ્પના કરવી અને તેના આધારે ત્રિલોકપ્રજ્ઞપ્તિના કર્તા તેમજ કષાયપ્રાભૃતચૂર્ણિના કર્તા એક જ છે એવી કલ્પના કરી કષાયપ્રાભૃતચૂર્ણિની રચનાનો કાલ

वीर संवत १००० पछीनो नक्की करी लेवो ए कोई पण प्रमाणथी संगत नथी, । बीजी गाथानो अर्थ पण संपादकोए आवी रीते कल्पित कर्यो छे, तेओए बीजी गाथानो पाठ आ प्रमाणे स्वीकार्यो छे-

चुण्णिस्सरुवछक्करणसरूवपमाण होइ किं ज तं। अट्ठसहस्सपमाण तिलोयपण्णत्तिणामाए ॥

मुद्रित त्रिलोकप्रज्ञप्तिमां अर्थनी संगति माटे 'त्थ'ने बदले 'छ' अने 'किं जत्तं' ने बदले 'किं जं तं' स्वीकारीने संपादको आ गाथानो 'चूर्णिस्वरूप तथा छकरणस्वरूप ग्रन्थनुं जेटलुं प्रमाण छे तेटलुं त्रिलोकप्रज्ञप्तिनुं प्रमाण छे' अवो अर्थ करीने शङ्का चिह्न मूके छे अने चूर्णिपदथी संभवतः कषायप्राभृतचूर्णि होय तेवी कल्पना करे छे. एटले तेमने पोताने पण आ अर्थ शंकित अने कल्पित लागे छे तो पछी एवा शंकित अने कल्पित अर्थ उपरथी कषायप्राभृतचूर्णि अने तिलोयपण्णत्तिना कर्ता एक मानवानुं अनुमान पण तेटलुं ज शंकित अने कल्पित बनी जाय छे. वळी त्रिलोकप्रज्ञप्तिनुं प्रमाण गाथामांथी अर्थ तरीके काढवुं होय तो उद्देश्य तरीके त्रि० प्र० आववुं जोईअे पण तेम नथी, अर्थात् प्रस्तुत गाथामां त्रि० प्र० ना प्रमाणनी वात होत तो 'तिलोयपण्णत्तिणामाए होई किं जत्तं' अेवुं पूछाय, पण अेने बदले अहीं तो 'चुण्णिस्सरूवत्थकरणसरूवपमाणं होइ किं ? जत्त अेम पूछ्युं छे अेटले चूर्णिस्वरूपार्थ तथा करणस्वरूपनुं प्रमाण पूछ्युं छे माटे संपादकोअे करेलो अर्थ संगत नथी. वळी चूर्णि शब्दथी कषायप्राभृतचूर्णिनी कल्पना करवी अे पण अप्रस्तुत कल्पना छे. आम आ गाथा उपरथी कल्पनाओ द्वारा अनेक प्रमाणोथी बाधित छतां त्रि० प्र० ना कर्ता तरीके यतिवृषभाचार्यनी अने ते ज क० प्रा० चूर्णिकार छे, अेवी कल्पना करवी अे कोई पण हिसाबे उचित नथी.

★कषायप्राभृतचूर्णिनी प्रस्तावनामां लेखके गाथामांना 'त्थ' ने स्थाने 'ट्ठ' नी कल्पना करी अट्ठकरण अर्थात् आठकरणवाळी कर्मप्रकृतिचूर्णिनी रचना पण यतिवृषभाचार्यना नामे चडावी छे, तेनुं पण निरसन अमे आ प्रस्तावनामां, कषायप्राभृतनी प्रस्तावनामां रजू थयेल केटलीक मान्यताओनी समीक्षा प्रसंगे करीशुं.

तिलोयपन्नत्तिनी आ प्रस्तुत गाथाना अर्थ माटेनी अमारी पण थोडी विचारणा रजू करीअे छीअे, हवे पछी आपवामां आवनार प्रमाणोथी प्रस्तुत त्रि० प्र० करतां प्राचीन बीजी त्रि० प्र० छे अे सिद्ध थाय छे, एथी उपलब्ध त्रि० प्र० अर्वाचीन छे. प्राचीन त्रि० प्र० उपर संभवतः चूर्णिसूत्र तथा तेमां आवतां करणो (गणित प्रक्रिया) नुं पण विवेचन होय (बन्ने अलग होय) अने बन्नेनुं प्रमाण उपलब्ध त्रि० प्र० ना कर्ता अे बतावेल होय तेम लागे छे. अेटले गाथानो अर्थ आ रीते थाय

★ वीरशासन संघ कलकत्ता तरफथी संपादित मुद्रित कषायप्राभृत तथा चूर्णि

(૧) 'ત્રિ૦ પ્ર૦ ની ચૂર્ણિ-સ્વરૂપાર્થનું તથા કરણસ્વરૂપનું પ્રમાણ કેટલું છે ? આઠહજારપ્રમાણ' આ ગાથાના પ્રથમ ત્રણ ચરણનો અર્થ થયો અને ચોથા ચરણ 'તિલોયપણ્ણત્તિણામાએ' નો અર્થ એવો થાય કે 'નામથી પ્રસ્તુત ગ્રન્થ ત્રિલોકપ્રજ્ઞપ્તિ છે' એમ ત્રણ ચરણ અને ચોથા ચરણને જુદાં પાડી અર્થ થઈ શકે છે.

(૨) અથવા ત્રિ૦ પ્ર૦ નામની પ્રજ્ઞપ્તિના (કેમકે 'તિલોયપન્નત્તિણામા' એ સ્ત્રીલિંગશબ્દ છે,) ચૂર્ણિસ્વરૂપાર્થ તથા કરણસ્વરૂપનું પ્રમાણ કેટલું છે ? આઠહજાર શ્લોક પ્રમાણ છે એવો પણ પ્રસ્તુત આખા શ્લોકનો અર્થ થઈ શકે છે. અહીં ચૂર્ણિ તરીકે કષાયપ્રામૃતચૂર્ણિની કલ્પના કરવી તે અપ્રસ્તુત છે જ્યારે ત્રિ૦ પ્ર૦ ચૂર્ણિની કલ્પના કરવી એ પ્રસ્તુત છે, અને ત્રિ૦ પ્ર૦ નામનું પ્રાચીન સૂત્ર છે તે તો વર્તમાન ત્રિ૦ પ્ર૦ માં આવતા 'તિલોયપન્નત્તિસુત્તાણુસારી' પદ ઉપરથી સૂચિત થાય છે, એટલું જ નહીં પણ ધવલાના સૂચન પરથી પ્રાચીન ત્રિ૦ પ્ર૦ હોવાની પણ વિશેષ સંભાવના છે.

(૩) અથવા 'કિં જત્તં' ના સ્થાને "કિજ્જન્તં" પદ હોવાની સંભાવના વિદ્વાનો કરે છે. કિજ્જન્તં એટલે ક્રિયમાણં (કરાતું-ગણાતું), એટલે ગાથાનો અર્થ આ રીતે થાય-'ત્રિલોકપ્રજ્ઞપ્તિનામની પ્રજ્ઞપ્તિનું ચૂર્ણિસ્વરૂપાર્થકરણરૂપ પ્રમાણ ગણતાં આઠહજાર શ્લોક થાય અર્થાત્ ત્રિલોકપ્રજ્ઞપ્તિસૂત્રોનો ચૂર્ણિસ્વરૂપે જે અર્થ કર્યો છે તેનું પ્રમાણ ગણતાં આઠહજાર શ્લોક પ્રમાણ થાય છે. એટલે આ ગાથા દ્વારા પ્રાચીન ત્રિ૦ પ્ર૦સૂત્રની ચૂર્ણિનું પ્રમાણ બતાવ્યું હોય, એમ લાગે છે.

કષાયપ્રાભૃતચૂર્ણિ તથા ત્રિલોકપ્રજ્ઞપ્તિના કર્તા એક નથી તે સૂચવતાં અનેક પ્રમાણો

વર્તમાનમાં ઉપલબ્ધ ત્રિલોકપ્રજ્ઞપ્તિ અને કષાયપ્રામૃતચૂર્ણિના રચયિતા એક નહીં હોવાનું સાબિત કરતાં અનેક પ્રમાણો મળે છે, તેમાંનાં કેટલાંક અમે અત્રે રજૂ કરીએ છીએ

(૧) ત્રિલોકપ્રજ્ઞપ્તિ પૃ૦ ૭૬૪ ઉપર મનુષ્યલોકની બહાર રહેલા ચન્દ્રાદિનું પ્રમાણ લાવવાનું વર્ણન ગદ્યમાં આવે છે, તે લગભગ અક્ષરશઃ ધવલા ભા૦ ૪ પૃ૦ ૭૬૩-૭૬૬ પર છે, અને તે પાઠ ત્રિલોકપ્રજ્ઞપ્તિ કરતાં ધવલામાં વધુ સંગત છે, કેમ કે એમાં ગ્રન્થકારે સ્વયંભૂરમણ સમુદ્રની પેલી બાજુ પણ એક રાજલોકના અર્ધચ્છેદની માન્યતા રજૂ કરી છે, અર્થાત્ સ્વયંભૂરમણ સમુદ્રની વેદિકાના અંતે તિર્છાલોકનો રાજ સંપૂર્ણ થતો નથી એ બતાવ્યું છે. આ માન્યતા ધવલાકારની પોતાની જ છે. એટલું જ નહીં પણ આ માન્યતામાં પૂર્વનાં પરિકર્માદિ સૂત્રોનો વિરોધ પણ આવે છે. ધવલાકારે પોતે કહ્યું છે કે આ માન્યતા અન્ય આચાર્યના ઉપદેશની પરંપરાનુસારી નથી, પરંતુ જ્યોતિષદેવના ૨૫૬ સૂચિઅંગુલરૂપ

भागहारना त्रिलोकप्रज्ञप्तिना सूत्रने अवलंबीने अमे तर्कथी करी छे. अेटलुं ज नहि धवलाकारे बीजी जे बे मान्यताओ पोते ऊभी करी छे तेनी माफक आ मान्यता पण पोतानी ज छे अेम विशेषस्पष्टीकरणार्थे बन्नेमान्यताओ रजू करवा पूर्वक प्रस्तुत वात जणावी छे. धवला तथा त्रिलोकप्रज्ञप्तिनो समानांश पाठ घणो ज लांबो छे, तेथी अत्रे तेनो केटलोक जरूरी भाग अमे वांचकोनी समक्ष रजू करीअे छीअे-

तेण रज्जुच्छेदणासु अण्णेसिं पि तप्पाओग्गाण संखेज्जरूवाण हाणिं काऊण गच्छो ठवेदव्वो। एवं कदे तदियसमुद्दो आदी ण होदि त्ति णासंकणिज्ज सो चेव आदी होदि। सयंभूरमणसमुद्दस्स परभागसमुप्पण्णरज्जुच्छेदणयसलागाणमाणयणकारणादो। सयंभूरमणसमुद्दस्स परदो रज्जुच्छेदणया अत्थि त्ति कुदो णव्वदे। वेछप्पण्णंगुलसदवग्गसुत्तादो। जत्तियाणि दीवसायररूवाणि जंबूदीवच्छेदणाणि च रूवाहियाणि तत्तियाणि रज्जुच्छेदणाणि' त्ति परियम्मेण एदं वक्खाणं किण्ण विरुज्झदे? एदेण सह विरुज्झदि, किंतु सुत्तेण सह ण विरुज्झदि। तेणेदस्स वक्खाणस्स गहणं कायव्वं, ण परियम्मस्स तस्स सुत्तविरुद्धत्तादो। ण सुत्तविरुद्धं वक्खाणं होदि, अइप्पसंगादो। तत्थ जोइसिया णत्थि त्ति कुदो णव्वदे? एदम्हादो चेव सुत्तादो। एसा तप्पाओग्गसंखेज्जरूवाहियजंबूदीवच्छेदणयसहिददीवसायररूवमेत्तरज्जुच्छेदपमाणपरिक्खाविही ण अण्णाइरिओवदेसपरंपराणुसारिणी केवलं तु तिलोयपण्णत्तिसुत्ताणुसारी जोदिसियदेवभागहारपदुप्पाइयसुत्तावलंबिजुत्तिबलेण पयदगच्छसाहणट्ठमम्हेहि परूविदा, प्रतिनियतसूत्रावष्टम्भबलविजृम्भितगुणप्रतिपन्नप्रतिबद्धासंख्यातावलिकावहारकालोपदेशवत्, आयतचतुरस्रलोकसंस्थानोपदेशवद्वा। तदो ण एत्थ इदमित्थमेवेत्ति एयंतपरिग्गहेण असग्गाहो कायव्वो. परमगुरुपरंपरागओवएसस्स जुत्तिबलेण विहडावेदुमसक्कियत्तादो, अदिंदिएसु पदत्थेसु छदुमत्थवियप्पाणमविसंवादणियमाभावादो। तम्हा चिरंतणाइरियवक्खाणापरिच्चाएण एसा वि दिसा हेदुवादाणुसारिवुप्पण्णसिस्साणुरोहेण अवुप्पण्णजणउप्पायणट्ठं च दरिसेदव्वा। तदो ण एत्थ संपदायविरोहासंका कायव्वा त्ति।" (धवला खंड ४ थो पृ० १५८)

तेण रज्जुच्छेदणासु अण्णेसिं पि तप्पाओग्गाण संखेज्जरूवाण हाणिं काऊण गच्छा ठवेयव्वा। एवं कदे तदियसमुद्दो आदि ण होदि त्ति णासंकणिज्ज सो चेव आदी होदि, सयंभूरमणसमुद्दस्स परभागसमुप्पण्णरज्जुच्छेदणयसलागाणमवणयणकरणादो। सयंभूरमणसमुद्दस्स परदो रज्जुच्छेदणाया अत्थि त्ति कुदो णव्वदे। वेछप्पण्णंगुलसदवग्गसुत्तादो। 'जेत्तियाणि दीव-सायररूवाणि जंबूदीवच्छेदणाणि छरूवाहियाणि तेत्तियाणि रज्जुच्छेदणाणि' त्ति परियम्मेण एदं वक्खाणं किं ण विरुज्झदे। ण, एदेण सह विरुज्झदि किंतु सुत्तेण सह ण विरुज्झदि। तेणेदस्स वक्खाणस्स गहणं कायव्व, ण परियम्मसुत्तस्स सुत्तविरुद्धत्तादो। ण सुत्तविरुद्धं वक्खाणं होदि, अदिप्पसंगादो। तत्थ जोइसिया णत्थि त्ति कुदो णव्वदे। एदम्हादो चेव सुत्तादो। एसा तप्पाउग्गसंखेज्जरूवाहियजंबूदीवच्छेदणयसहिददीवसमुद्दरूवमेत्तरज्जुच्छेदणयपमाणपरिक्खाविही ण अण्णाइरियउवदेसपरंपराणुसारिणी केवलं तु तिलोयपण्णत्तिसुत्ताणुसारी, जोदिसियदेवभागहारपदुप्पाइयसुत्तावलंबिजुत्तिबलेण पयदगच्छसाधणट्ठमेसा परूवणा परूविदा। तदो ण एत्थ इदमित्थमेवेत्ति एयंतपरिग्गहेण असग्गाहो कायव्वो, परमगुरुपरंपरागउवएसस्स जुत्तिबलेण विहडावेदुमसक्कियत्तादो, अदिंदिएसु पदत्थेसु छदुमत्थवियप्पाणमविसंवादणियमाभावादो। तम्हा पुव्वाइरियवक्खाणापरिच्चाएण एसा वि दिसा हेदुवादाणुसारिविउप्पण्णसिस्साणुग्गहण अवुप्पण्णजणउप्पायणट्ठं च दरिसेदव्वा, तदो ण एत्थ संपदायविरोधो कायव्वोत्ति।

(त्रि० प्र० पृ० ७६५ ७६६.)

आ बन्ने पाठो उपरथी आपणे जाणी शकीये छीअे के धवलाकार कहे छे के आ मान्यता पूर्वाचार्योना उपदेशानुसारी नथी, परंतु त्रिलोकप्रज्ञप्तिना सूत्रमां आवता ज्योतिषदेवना भाग-

હારના સૂત્રના આલંબનથી, પોતે પ્રરૂપી છે, એ માટે ધવલાકાર "પયદગચ્છસાહણટ્ઠમમ્હેહિ પરૂવિદા"એમ કહે છે, જ્યારે ત્રિલોકપ્રજ્ઞપ્તિમાં બધું લખાણ સરખું છે, માત્ર 'પયદગચ્છ-સાહણટ્ઠમેસા પ્રરૂપણા પરૂવિદા' એટલું લખ્યું છે, અર્થાત્ ત્યાં 'અમ્હેહિ' શબ્દ નથી. ત્રિલોકપ્રજ્ઞપ્તિમાં જો આ માન્યતા પૂર્વેથી ચાલી આવતી હોત તો ધવલાકાર આ આખી માન્યતા ત્રિલોકપ્રજ્ઞપ્તિના નામે લખત 'અમ્હેહિ પરૂવિદા' ન લખત, કેમ કે એમને તો એના પ્રમાણનો ખાસ આવશ્ય-કતા હતી.

અહીં આપણને વિશેષ આશ્ચર્ય લાગે છે, કે ત્રિલોકપ્રજ્ઞપ્તિમાં 'તિલોયપણ્ણત્તિસુત્તાણુસારી' પદ મૂક્યું છે. આ રીતે ત્રિલોકપ્રજ્ઞપ્તિમાં ત્રિલોકપ્રજ્ઞપ્તિનો સાક્ષી શો રીતે આવી શકે ? અથવા એમ કહીએ કે પ્રાચીન ત્રિલોકપ્રજ્ઞપ્તિસૂત્રની સાક્ષી હોય તો આથી પણ સિદ્ધ થાય છે કે આ ત્રિલોકપ્રજ્ઞપ્તિ અર્વાચીન છે અને મૂલ પ્રાચીન ત્રિલોકપ્રજ્ઞપ્તિ જુદી હશે તેથી પ્રસ્તુત ત્રિલોકપ્રજ્ઞપ્તિની રચના ધવલાની રચના થયા પછીથી થઈ હોવાનું વિશેષ સુસંગત થાય છે અને તેના કર્તા એ કષાય-પ્રામૃતચૂર્ણિના કર્તા યતિવૃષભ હોઈ શકતા નથી.

(૨)ધવલામાં ત્રિલોકપ્રજ્ઞપ્તિની સાક્ષી આપવામાં આવી છે તે વર્તમાન ત્રિલોકપ્રજ્ઞપ્તિમાં મળતી નથી. "દુગુણ દુગુણો દુવગ્ગો ણિરંતરો તિરિયલોગો ત્તિ તિલોયપણ્ણત્તિસુત્તાદો ય ણવ્વદે" (ધવલા ૩ પૃ૦ ૩૬) પ્રસ્તુત પાઠ ઉપલબ્ધ ત્રિ૦પ્ર૦માં શોધવા છતાં જોવામાં આવતો નથી. તેવી જ રીતે ધવલામાં 'વુત્તં ચ' કહીને સાક્ષી ગાથાઓ લખી છે. તેમાંનાં કેટલાંક સ્થળે આવતી ગાથાઓ ત્રિલોકપ્રજ્ઞપ્તિમાં અક્ષરશઃ મળે છે, છતાં એક પણ ગાથા આગળ ત્રિલોકપ્રજ્ઞપ્તિનું નામ ધવલામાં જણાવ્યું નથી. ધવલામાં પંચાસ્તિકાયાદિની સાક્ષીઓ કેટલાંક સ્થાને ગ્રન્થના નામપૂર્વક આપી છે, જો ઉક્તગાથાઓ યતિવૃષભરચિત હોય અને ધવલાકારે ત્રિલોકપ્રજ્ઞપ્તિમાંથી લીધી હોય તો ધવલાકાર એકાદ સ્થલે પણ તેનો ઉલ્લેખ કર્યા વગર રહેત નહીં.

(૩) ઉપલબ્ધ ત્રિલોકપ્રજ્ઞપ્તિમાં ઘણી ગાથાઓ એવી છે કે જે કુંદકુંદાચાર્યકૃત સમયસાર પંચાસ્તિકાય, પ્રવચનસાર, મૂલાચાર, ભગવતી આરાધના, લોકવિભાગ વગેરે અન્ય ગ્રન્થોમાં ઉપ-લબ્ધ થાય છે । અહીં પ્રથમ કુન્દકુન્દાચાર્યકૃત પંચાસ્તિકાય તથા સમયસારની ગાથાઓનો વિચાર કરીએ. એ ગાથાઓ ત્યાંથી ત્રિલોકપ્રજ્ઞપ્તિમાં લેવામાં આવી હોવાનું જ વધારે શક્ય દેખાય છે, ત્રિલોકપ્રજ્ઞપ્તિપ્રસ્તાવનાકારે પોતાની પ્રસ્તાવનામાં ગાથાઓ રજૂ કરીને આ વાત સારી રીતે સિદ્ધ કરવાનો પ્રયત્ન કર્યો છે. જુઓ–ત્રિલોકપ્રજ્ઞપ્તિ ભાગ બીજો પ્રસ્તાવના પૃ૦ ૩૮. તેવી જ રીતે પ્રવચનસારની ગાથાઓ પણ ત્રિલોકપ્રજ્ઞપ્તિમાં છે અને આ બધા ઉપરથી સંપાદકોને યતિ-વૃષભની પૂર્વે કુન્દકુન્દાચાર્યને માનવા પડે છે. જયધવલાની પ્રસ્તાવનાના નીચેના ઉલ્લેખ પરથી આ વાત આપણને સ્પષ્ટ સમજાઈ જશે,

"त्रिलोकप्रज्ञप्ति मे नौ अधिकार है। ग्रन्थ के प्रारम्भमें तो ग्रन्थकारने पंचपरमेष्ठिका स्मरण किया है, किन्तु आगे प्रत्येक अधिकारके अन्त और आदिमे क्रमशः एक एक तीर्थंकरका स्मरण किया है। जैसे प्रथम अधिकारके अन्तमें आदिनाथको नमस्कार किया है। दूसरे अधिकारके आदिमें अजितनाथ को और अन्तमें सम्भवनाथको नमस्कार किया है। इसी प्रकार आगे भी प्रत्येक अधिकारमे आदि और अन्तमे एक एक तीर्थंकरको नमस्कार किया है। इस तरह नौवें अधिकारके प्रारम्भ तक १६ तीर्थंकरोंका स्तवन हो जाता है। शेष रह जाते है आठ तीर्थंकर। उन आठोंका स्तवन नौवे अधिकार के अन्तमें किया है। उसमे भगवान महावीर के स्तवनकी "एस सुरासुरमणुसिंदवदिदं" आदि गाथा वही है जो कुन्दकुन्दके प्रवचनसारके प्रारम्भमे पाई जाती है। अब प्रश्न यह है कि इस गाथाका रचयिता कौन है–कुन्दकुन्द या यतिवृषभ ?

प्रवचनसारमें इस गाथाकी स्थिति ऐसी है कि वहाँ से उसे पृथक् नहीं किया जा सकता, क्योंकि इस गाथामे भगवान महावीरको नमस्कार करके उससे आगेकी गाथा 'सेसे पुण तित्थयरे' मे शेप तीर्थंकरोंको नमस्कार किया गया है। यदि उसे अलगकर दिया जाता है तो दूसरी गाथा लटकती हुई रह जाती है। कहा जा सकता है कि इस गाथा को त्रिलोकप्रज्ञप्तिसे लेकर भी उसके आधारसे दूसरी गाथा या गाथाएँ ऐसी बनाई जा सकती हैं जो सुसम्बद्ध हों। इस कथन पर यह प्रश्न किया जा सकता है कि क्या मगल-गाथा भी दूसरे ग्रन्थसे उधार ली जा सकती है ? किन्तु यह प्रश्न त्रिलोकप्रज्ञप्तिकी ओरसे भी किया जा सकता है कि जब ग्रन्थकारने तेईस तीर्थंकरों के स्तवनकी गाथाओं का निर्माण किया तो क्या केवल एक गाथाका निर्माण वे स्वयं नहीं कर सकते थे ? अत. इन सब आपत्तियों और उनके परिहारोंको एक ओर रखकर यह देखने की जरूरत है कि स्वयं गाथा इस सम्बन्धमें कुछ प्रकाश डालती है या नहीं ? हमे गाथाके प्रारम्भका 'एस' पद त्रिलोकप्रज्ञप्तिकारकी दृष्टिसे उतना संगत प्रतीत नहीं होता जितना वह प्रवचनसारके कर्ताकी दृष्टि से सगत प्रतीत होता है। त्रिलोकप्रज्ञप्तिमे प्रथम तो अन्य किसी तीर्थङ्करके स्तवनमे 'एस' पद नहीं आया है दूसरे नमस्कारको समाप्त करते हुए मध्यमें वह इतना अधिक उपयुक्त नहीं जँचता है जितना प्रारम्भ करते हुए जँचता है। तीसरे इस गाथाके बाद 'जयउ जिणवरिंदो' आदि लिखकर 'पणमह चउवीसजिणे' आदि गाथाके द्वारा चौबीसो तीर्थंकरो को नमस्कार किया गया है। उधर प्रवचनसारमे उक्त गाथाके द्वारा सबसे प्रथम महावीर भगवानको नमस्कार किया गया है और उसके पश्चात् 'सेसे पुण तित्थयरे'के द्वारा शेष तीर्थंकरोंको नमस्कार किया गया है। शेप तीर्थंकरोंको नमस्कार न करके पहले महावीरको नमस्कार क्यों किया ? इसका उत्तर गाथाका 'तित्थं धम्मस्स कत्तारं' पद देता है चूं कि वर्तमानमे प्रचलित धर्मतीर्थके कर्ता भगवान महावीर ही हैं इस लिये उन्हें पहले नमस्कार करके 'पुण' उसके बाद शेप तीर्थंकरोंको नमस्कार करना उचित ही है। प्रवचनसारमें पाच गाथाओंका कुलक है अत. उक्त प्रथम गाथाके 'एष' पदकी अनुवृत्ति पाचवी गाथा के अन्तके 'उपसंपयामि सम्मं' तक जाती है और बतलाती है कि यह मैं इन सबको नमस्कार करके वीतराग चारित्रको स्वीकार करता हूँ। इसी सम्बन्धमे अधिक लिखना व्यर्थ है, दोनों स्थलोंको देखने से ही विद्वान पाठक स्वयं समझ सकते हैं कि उक्त गाथा किस ग्रन्थ की हो सकती है ? इसके सिवा यदि प्रवचनसारकी यही एक गाथा त्रिलोकप्रज्ञप्तिमें पाई जाती तो भी एक बात थी, किन्तु इसके सिवा भी अनेकों गाथाएं त्रिलोकप्रज्ञप्तिमे पाई जाती हैं। उनमें से कुछ गाथाओंको प्राचीन मानकर दरगुजर किया जा सकता है किन्तु कुछ गाथाएं तो ऐसी हैं जो प्रवचनसारमें ही पाई जाती हैं और उसमें उनकी स्थिति आवश्यक एवं उचित है। जैसे सिद्धलोक अधिकारके अन्तमें सिद्धपदकी प्राप्तिके कारणभूत कर्मोको बतलाने वाली जो गाथाएं हैं उनमे अनेक गाथाएं प्रवचनसारकी ही है, वे अन्य किसी ग्रन्थ मे नहीं पाई जाती। अतः ये मानना ही पडेगा कि कुन्दकुन्दके ग्रन्थोंकी बहुत सी गाथाएं त्रिलोकप्रज्ञप्तिमे हैं और इसलिये कुन्दकुन्द यतिवृषभके बादके विद्वान नहीं हो सकते। (जयधवला प्रस्तावना पृष्ठ ५७)

જયધવલાના સંપાદકોને પ્રસ્તુત પ્રમાણોથી યતિવૃષભ પૂર્વે કુન્દકુન્દાચાર્યને માનવા પડે છે, જ્યારે શ્રુતાવતારના ઉલ્લેખથી યતિવૃષભ પછી કુન્દકુન્દાચાર્ય આવે છે, આમ બન્ને રીતે મુશ્કેલી ઊભી થાય છે, આ મુશ્કેલીનું કારણ ત્રિલોકપ્રજ્ઞપ્તિના રચયિતા તરીકે ક૦ પ્રા૦ ચૂર્ણિના કર્ત્તા યતિવૃષભની માન્યતા છે, માટે આનું ખરું નિવારણ એ છે કે કષાયપ્રાભૃતચૂર્ણિસૂત્રના કર્તા પછી કુન્દકુન્દાચાર્ય છે અને ત્રિલોકપ્રજ્ઞપ્તિના રચયિતાની પૂર્વે છે. આ રીતના સમાધાનથી બન્ને મુશ્કેલીઓ દૂર થઈ જાય છે. હા, પણ એક મુશ્કેલી ઊભી થાય છે અને તે એ કે કષાયપ્રાભૃત-ચૂર્ણિ તેમના કલ્પિત દિગંબરાચાર્યની કૃતિ તરીકે રહી શકતી નથી.

(૪) ધવલા અને ત્રિલોકપ્રજ્ઞપ્તિ બન્નેમાં શકરાજાના કાલ બાબત માન્યતા જુદી જુદી છે, ત્રિલોકપ્રજ્ઞપ્તિમાં વીર સંવત ૪૬૧ વર્ષ પછી, મતાંતરે ૯૭૮૫ વર્ષ ૫ માસ પછી, અથવા ૧૪૭૯૩ વર્ષ પછી અથવા ૬૦૫ વર્ષ ૫ માસ પછી શકરાજાની ઉત્પત્તિ બતાવી છે

"વીરજિણે સિદ્ધિગદે ચઉસદઇગિસટ્ઠિવાસપરિમાણે । કાલમ્મિ અદિક્કંતે ઉપ્પણ્ણો એત્થ સકરાઓ ॥૧૪૯૬॥
અહવા વીરે સિદ્ધે સહસ્સણવકમ્મિ સગસયબ્ભહિએ । પણસીદિમ્મિ યતીદે પણમાસે સકણિઓ જાદો ॥૧૪૯૭॥
ચોદસસહસ્સસગસયતેણઉદીવાસકાલવિચ્છેદે । વીરેસરસિદ્ધીદો ઉપ્પણ્ણો સગણિઓ અહવા ॥૧૪૯૮॥
ણિવ્વાણે વીરજિણે છવ્વાસસદેસુ પંચવરિસેસુ । પણમાસેસું ગદેસું સંજાદો સગણિઓ અહવા ॥૧૪૯૯॥
(તિલોયપણ્ણત્તિ ભાગ ૧ પૃ૦ ૩૪૦)

જ્યારે ધવલામાં વેદનાખંડમાં શકરાજાની ઉત્પત્તિ ૬૦૫ વર્ષ ૫ માસ પછી, મતાન્તરે ૧૪૭૯૩ વર્ષ પછી, અથવા ૭૯૯૫ વર્ષ ૫ માસ પછી બતાવી છે. એટલું જ નહીં ત્રણે માન્યતાની સાક્ષી ગાથાઓ પણ 'વુત્તં ચ' કહીને ધવલામાં મૂકી છે

પુણો એત્થ (૬૮૩) સત્તમાસાહિયસત્તહત્તરિવાસેસુ $\frac{77}{}$ અવણિદેસુ પચમાસાહિયપંચુત્તરછસ્સદવાસાણિ હવંતિ । એમો વીરજિણિંદણિવ્વાણગદદિવસાદો જાવ સગકાલસ્સ આદી હોદિ તાવદિયકાલો । કુદો ? । $\frac{6}{5}$ । એદમ્હિ કાલે સગણરિંદકાળમ્મિ પક્ખિત્તે વડ્ઢમાણજિણણિવ્વુદકાલાગમણાદો ।
વુત્ત ચ-'પચ ય માસા પંચ ય વાસા છચ્ચેવ હોંતિ વાસસયા। સગકાલેણ ય સહિયા થાવેયવ્વો તદો રાસી' ॥૪૧॥

અણ્ણે કેવિ આઇરિયા ચોદ્દસસહસ્સ-સત્તસદતિણઉદિવાસેસુ જિણણિવ્વાણદિણાદો અઇક્કતેસુ સગણરિંદુપ્પત્તિં ભણંતિ (૧૪૭૯૩) વુત્તં ચ

'ગુત્તિપયત્થ-ભયાઈં ચોદ્દસરયણાઇ સમઇક્કંતાઇં । પરિણિવ્વુદે જિણિંદે તો રજ્જં સગણરિંદસ્સ ॥૪૨॥
અણ્ણે કે વિ આઇરિયા એવં ભણંતિ । તં જહા-સત્તસહસ્સ-ણવસયપંચાણઉદિવરિસેસુ પંચમાસાહિએસુ વડ્ઢમાણજિણણિવ્વુદદિણાદો અઇક્કતેસુ સગણરિંદરજ્જુપ્પત્તી જાદો ત્તિ એત્થ ગાહા
સત્તસહસ્સા ણવસદ પચાણઉદી સપચમાસા ય । અઇક્કંતા વાસાણ જઇયા તઇયા સગુપ્પત્તી ॥૪૩॥
(ધવલા ભાગ-૯ પૃ૦ ૧૩૧-૧૩૩)

અહીં ખાસ ધ્યાનમાં લેવા જેવી એ વાત છે કે ત્રિલોકપ્રજ્ઞપ્તિનો મુખ્ય મત ૪૬૧ વર્ષવાળો ધવલામાં બતાવ્યો જ નથી, જ્યારે ધવલાનો મુખ્ય મત ૬૦૫ વર્ષ ૫ માસવાળો ત્રિલોકપ્રજ્ઞપ્તિમાં

બતાવ્યો છે, જે ત્રિલોકપ્રજ્ઞપ્તિની રચના ધવલા પછી હોવાનું વિશેષે કરીને જણાવે છે. જો વર્તમાન ત્રિલોકપ્રજ્ઞપ્તિ યતિવૃષભાચાર્યની રચના હોય અને તે ધવલાકાર સન્મુખ ઉપસ્થિત હોય તો ધવલાકાર કે જેમને યતિવૃષભાચાર્ય પ્રત્યે ખૂબ જ બહુમાન છે, જેમનાં વચનોને પોતે જયધવલામાં સૂત્ર તરીકે જણાવે છે અને જેમને જયધવલામાં અનેકવાર ખૂબ બહુમાનપૂર્વક યાદ કરે છે, તેમનો મત લેવાનું છોડે જ કેમ ?

આ ઉપરાંત પંડિત ફૂલચંદજીએ પણ જૈન સિદ્ધાન્તભાસ્કરમાં ત્રિલોકપ્રજ્ઞપ્તિની રચના યતિવૃષભની નથી એને લગતી અનેક દલીલો રજૂ કરી છે, જેમાંની કેટલીક નીચે મુજબ છે—

(I) ત્રિલોકપ્રજ્ઞપ્તિના પ્રથમ અધિકારમાં મંગલ આદિ છ અધિકારોનું વર્ણન છે, તે ધવલા ટીકાના આદિ મંગલ સાથે મળતું છે તેથી સંભવ છે કે તે ત્યાંથી લીધું હોય. ❀

(II) 'જ્ઞાનં પ્રમાણમાત્માદેઃ' ઇત્યાદિ શ્લોક લઘીયસ્ત્રયગ્રન્થનો છે. જે પ્રાકૃતરૂપાંતરે ત્રિલોકપ્રજ્ઞપ્તિમાં જોવા મળે છે. લઘીયસ્ત્રયમાં આ શ્લોક જ્યાં છે ત્યાંથી અલગ કરી દેવામાં આવે તો પ્રકરણ અધુરું રહી જાય છે. જ્યારે ત્રિ પ્ર૦ માં આ શ્લોક અલગ કરી દેવામાં આવે તો પણ પ્રકરણ એક રૂપ જ રહે છે. ધવલાકારે પણ આ શ્લોકને ઉદ્ધૃત કર્યો છે. આ શ્લોક ત્રિ૦પ્ર૦ કારે લઘીયસ્ત્રયમાંથી ન લેતા ધવલામાંથી લીધો હોવાનું જણાય છે, કેમ કે ધવલામાં આ શ્લોકની સાથે બીજો પણ જે એક શ્લોક ઉદ્ધૃત છે, તે શ્લોકને પણ ત્રિલોકપ્રજ્ઞપ્તિકારે પ્રાકૃત રૂપાંતર સાથે લીધો છે. ધવલા તથા ત્રિ૦પ્ર૦ના બન્ને શ્લોકો આ પ્રમાણે છે—

प्रमाण नय-निक्षेपैर्योऽर्थो नाभिसमीक्ष्यते । युक्तं चायुक्तवद् भाति, तस्यायुक्तं च युक्तवत् ॥
ज्ञानं प्रमाणमित्याहुरुपायो न्यास उच्यते । नयो ज्ञातुरभिप्रायो युक्तितोऽर्थपरिग्रहः ॥

(ધવલા ભા૦ ૩ પૃ૦ ૧૭)

ધવલાન્તર્ગત આ બે ગાથા પ્રાકૃત રૂપાન્તરથી ત્રિલોકપ્રજ્ઞપ્તિના પ્રથમ અધિકારમાં શ્લોક ૮૨-૮૩ તરીકે આ મુજબ છે

जो ण पमाणनयेहिं णिक्खेवेण णिरक्खदे अत्थं । तस्साजुत्त जुत्त जुत्तमजुत्त च पडिहादि ॥
णाण होदि पमाण णओ वि णादुस्स हिदयभावत्थो । णिक्खेओ वि उवाओ जुत्तीए अत्थपडिगहण ॥

વિશેષે કરીને સંભવ એ છે કે ધવલા પરથી આ બે ગાથા રૂપાન્તરે ત્રિલોકપ્રજ્ઞપ્તિમાં લેવામાં આવી હોય, નહિતર ધવલાકાર સન્મુખ જો ત્રિલોકપ્રજ્ઞપ્તિ હોત તો તેઓને સીધી જ ગાથા મૂકવાને બદલે સંસ્કૃત રૂપાન્તર કરીને લેવાની જરૂર ન પડત.

(III) ત્રિલોકપ્રજ્ઞપ્તિ અંતર્ગત ઘણો ગદ્યભાગ ધવલાન્તર્ગતભાગને મળતો છે.

જયધવલા, શ્રુતાવતાર આદિ ગ્રન્થોમાં પણ ક્યાંય ત્રિલોકપ્રજ્ઞપ્તિના કર્તા તરીકે યતિવૃષભાચાર્યનો ઉલ્લેખ મળતો નથી. જો વર્તમાન ત્રિલોકપ્રજ્ઞપ્તિના કર્તા ક૦ પ્રા૦ ચૂર્ણિસૂત્રકાર યતિવૃષ-

❀ यथार्थत. धवलाकी सहायतासे ही तिलोयपण्णत्ति के मंगलविषयक पाठका संशोधन संभव हुआ है । (ति० प० भा० १ प्रस्तावना. पृ० १८)

આચાર્ય હોત તો કષાયપ્રાભૃતચૂર્ણિસૂત્રોની સાક્ષી વખતે અનેકવાર જેમ યતિવૃષભાચાર્યનો કર્તા તરીકે ઉલ્લેખ કર્યો છે, તેમ ત્રિલોકપ્રજ્ઞપ્તિની સાક્ષીઓ રજૂ કરતી વખતે જયધવલાકારે તેના કર્તા તરીકે પણ યતિવૃષભાચાર્યના નામનો એકાદ સ્થલે પણ ઉલ્લેખ કર્યો હોત પણ એવું કાંઈ જોવા મળતું નથી. એટલું જ નહીં પણ જયધવલાના પ્રસ્તાવનાકાર પણ ઉપલબ્ધ ત્રિલોકપ્રજ્ઞપ્તિ એ યતિવૃષભની કૃતિ હોવામાં શંકાશીલ છે. જુઓ

"वर्तमानमें त्रिलोकप्रज्ञप्ति ग्रन्थ जिस रूपमें पाया जाता है उसी रूपमें आचार्य यतिवृषभने उसकी रचना की थी इस बातमें हमे स देह है। हमें लगता है कि आचार्य यतिवृषभकृत त्रिलोकप्रज्ञप्ति मे कुछ अश ऐसा भी है जो बादमें सम्मिलित किया गया है। और कुछ अश ऐसा भी है जो किसी कारणसे उपलब्ध प्रतियोंमें लिखनेसे छूट भी गया है॥" (पृ० ६५)

આ બધાં પ્રમાણો ઉપરથી આપણે નિશ્ચિત કરી શકીએ છીએ કે વર્તમાનમાં ઉપલબ્ધ ત્રિલોકપ્રજ્ઞપ્તિના કર્તા એ કષાયપ્રાભૃતચૂર્ણિસૂત્રના કર્તા નથી, એટલું જ નહિ પણ ધવલા, જયધવલાની રચના પછી ઉપલબ્ધ ત્રિલોકપ્રજ્ઞપ્તિની રચના થઈ હોવાનું જ વિશેષે કરીને અનુમાન થાય છે.

જયધવલાકારે પણ ગુણધરવાચક, આર્યમંગુ, આર્ય નાગહસ્તી અને યતિવૃષભાચાર્ય અંગે વીર સંવત ૬૮૩ પછી થયાનો જે ઉલ્લેખ કર્યો છે. તે પણ આ રીતે પ્રમાણોથી બાધિત થાય છે. પંડિત જુગલકિશોરજી મુખ્તાર પણ આ બાબતમાં જણાવે છે—

यहाँ पर मै इतना और बतला देना चाहता हूँ कि धवला और जयधवलामें गौतमस्वामी से आचारांगधारी लोहाचार्य तकके श्रुतधर आचार्योंकी एकत्र गणना करके और उनकी रूढकालगणना ६८३ वर्ष की देकर उसके बाद धरसेन और गुणधर आचार्योका नामोल्लेख किया गया है, साथमें इनकी गुरुपरंपराका कोई खास उल्लेख नहीं किया गया और इस तरह इन दोनों आचार्योंका समय यों ही वीरनिर्वाणसे ६८३ वर्ष बादका सूचित किया है यह सूचना ऐतिहासिक दृष्टिसे कहां तक ठीक है अथवा क्या कुछ आपत्तिके योग्य है। इसके विचारका यहां अवसर नहीं है। फिर भी इतना जरूर कह देना होगा कि मूल सूत्र ग्रन्थोंको देखते हुए टीकाकार का यह सूचन कुछ त्रुटि पूर्ण अवश्य जान पडता है। जिसका स्पष्टीकरण फिर किसी समय किया जायगा। (जैन साहित्य और इतिहास पर विशदप्रकाश पृ०८८)

એટલે આ બાબતમાં અમારું અનુમાન એવું છે કે જયધવલાની રચના વખતે પૂર્વથી એક પ્રઘોષ ચાલ્યો આવતો હોય કે ચૂર્ણિસૂત્રની રચના આર્યમંગુ અને આર્યનાગહસ્તીના અંતેવાસીની છે, તે ઉપરથી તેમણે મંગલાચરણમાં આર્યમંગુ અને આર્યનાગહસ્તીનું સ્મરણ કર્યું છે, અને આર્યમંગુ અને આર્ય નાગહસ્તીનાં નામ દિગંબરપટ્ટાવલિમાં ઉપલબ્ધ નહીં થવાના કારણે તથા પ્રસ્તુત ચૂર્ણિસૂત્ર દિગંબરાચાર્યની કૃતિ તરીકે સિદ્ધ કરવા માટે દ્રવ્યશ્રુતના અધિકારમાં લોહાર્ય સુધીની પટ્ટાવલી આપી, ત્યાર પછી ઓઘથી આચાર્યપરંપરા એટલું માત્ર જણાવી ગુણધર, આર્યમંગુ અને આર્ય નાગહસ્તી વગેરેનો ઉલ્લેખ કરી દીધો છે. બાકી વીર સંવત ૧૦૦૦ પછી કષાયપ્રાભૃતચૂર્ણિકાર થયેલ હોય તો દિગંબરમાન્યતાનુસાર ત્યાર પછી માત્ર ૨૦૦ વર્ષના ગાળામાં થએલા વીરસેન કે જિનસેન આવા સમર્થ ગ્રન્થકારના નામ સિવાય તેના વંશ તેની અન્યકૃતિઓ વગેરે વિષે

तद्दन अज्ञात जेवा होय ते पण मानी शकाय तेवुं नथी, वळी इन्द्रनन्दिए श्रुतावतारमां यतिवृषभाचार्यनी चूर्णि अने जयधवला टीका वच्चे कषायप्राभृत उपर अनेक टीकाओनी रचनाओ आंतरे-आंतरे थयानो उल्लेख कर्यो छे. चूर्णिकार यतिवृषभ वीर संवत १००० पछी थयानी मान्यताना हिसाबे आ बधी टीकाओनी रचना अेटला कालमां थयानी संगति लगभग दुःशक्य जेवी लागे छे. आम आटलां स्पष्ट प्रमाणो होवा छतां त्रिलोकप्रज्ञप्तिना अंते रहेली बे गाथाओमांथी प्रथमगाथाना मात्र 'जइवसह' पद अने 'चुण्णिस्सरूवत्थकरणरूवपमाण' वगेरे बीजी गाथा परथी कल्पित अर्थ करीने त्रिलोकप्रज्ञप्तिना कर्ता तरीके यतिवृषभाचार्यने मानी लई, मूळ पायो ज खोटो नक्की करी, ते ज यतिवृषभाचार्यने कषायप्राभृतचूर्णिना कर्ता तरीके मानी, कषायप्राभृतचूर्णिनी रचना वीरसंवत १००० पछीनी मानवानो अने चूर्णिकारने त्रिलोकप्रज्ञप्तिना पण कर्ता तरीके नक्की करवानो जे प्रयास थयो छे ते समुचित प्रमाणोना अभावे सफल थतो नथी.

टूंकमां अमारा आ बधा लखाणनो सार अे छे के कषायप्राभृतचूर्णिनी रचना आर्यनागहस्तीना कालनी आसपास अथवा त्यार पछी थोडा ज काले थई होवानो विशेषे करीने संभव छे अने तेथी ते वीरनिर्वाणथी ५ मा के छट्ठा सैकानी जणाय छे. दिगंबरमतोत्पत्ति वीर संवत ६०० पछी छे, अेटले प्रस्तुत कषायप्राभृतमूल तथा चूर्णिसूत्रनी रचना दिगंबरमतोत्पत्ति पूर्वे थई होवाथी बन्ने परंपराअे आ ग्रन्थ ने मान्य कर्यो होय अेम बनवा संभव छे.

अहीं कदाच कोईने शंका थाय के कषायप्राभृत उपर आटली बधी दिगम्बराचार्यकृत टीकाओनो उल्लेख छे, तो श्वेताम्बराचार्यनी कोई टीका उपलब्ध केम थती नथी? अथवा रचायानो उल्लेख पण केम नथी? अेनुं समाधान अे छे के कोईक गुप्त स्थळे भंडारोमां श्वेताम्बरटीकाओ पडी होय तो पण शुं कही शकाय? अथवा विच्छेद गई होय अेम पण केम न बने? दिगम्बराचार्योनी पण जयधवला सिवाय सघळी टीकाओमांथी आजे क्यां अेक पण टीका उपलब्ध थाय छे? वळी मुसलमान राज्य दरमियान गुजरात-सौराष्ट्रमां अनेक ज्ञानभंडारोनो नाश थयो छे, ज्ञानभंडारो उपर उपद्रवो आव्या छे, ज्यारे दक्षिणमां तेवा उपद्रवो ओछा आव्या छे, तेथी त्यां ग्रन्थोनी रक्षा थई होय तेमज आ बाबतमां विशेष प्रबल कारण तो अमने अे लागे छे के, कषायप्राभृतमूल तथा चूर्णि अमुक काले दक्षिण तरफ चाल्या गया होवानो विशेष करीने संभव छे अने दक्षिण तरफ कालबळे श्वेताम्बराचार्योनो विहार धीमे धीमे ओछो थई गयो अने उत्तर तरफ रहेला आचार्योने तेनी प्राप्ति न थई होवाना कारणे वचगाळामां थयेला श्वेताम्बर आचार्यो द्वारा कषायप्राभृत उपर टीकानी रचनाओ थई न होय, गमे तेम होय पण आ रीते दक्षिणना दिगम्बर ज्ञानभंडारोमां कषायप्राभृत मूल तथा चूर्णि सुरक्षित रही शकी अने वर्तमानमां प्राप्त थई शकी छे ते बदल आपणे दिगम्बरज्ञानभंडारोनो आभार मानीअे.

મુદ્રિત કષાયપ્રાભૃતચૂર્ણિની પ્રસ્તાવનામાં રજૂ થયેલ માન્યતાની સમીક્ષા

અહીં મુદ્રિત કષાયપ્રાભૃતચૂર્ણિના પ્રસ્તાવનાકારે કષાયપ્રાભૃતચૂર્ણિ, કર્મપ્રકૃતિચૂર્ણિ, શતકચૂર્ણિ અને સપ્તતિકાચૂર્ણિના કર્તા અંગે જે વિકૃત રજૂઆત કરી છે, તેની પણ પ્રાસંગિક થોડી સમીક્ષા કરી લઈએ. પ્રસ્તાવનાકાર આ ચારે ચૂર્ણિઓ એકજ કર્તાની કૃતિ હોવાની માન્યતા રજૂ કરે છે અને તેના કારણો તરીકે તેઓ પ્રથમ કષાયપ્રાભૃતચૂર્ણિ અને કર્મપ્રકૃતિચૂર્ણિના પાઠો રજૂ કરી, બન્નેના પાઠોમાં રહેલી ભાષાની તથા પદાર્થોની સામ્યતા બતાવે છે, ઉપરાંતમાં કર્મપ્રકૃતિચૂર્ણિ, શતકચૂર્ણિ અને સપ્તતિકાચૂર્ણિ એ ત્રણેનાં મંગલાચરણ તથા ગ્રન્થની શરૂઆતની ઉત્થાનિકા, વાક્યોની ભાષા તેમજ અર્થના સામ્યપણાને બતાવે છે. આ રીતે ત્રણે ચૂર્ણિના એકકતૃ'કત્વને તથા કષાયપ્રાભૃત અને કર્મપ્રકૃતિના એકકતૃ'કત્વના હિસાબે ચારે ચૂર્ણિઓનું એકકતૃ'કત્વ સિદ્ધ કરવાનો પ્રયાસ કરે છે, એટલુંજ નહિ પણ આગળ વધીને ત્રિ૦ પ્ર૦ ના અંતે—

"ચુણ્ણિસરૂવટ્ઠકરણસરૂવપમાણ હોઇ કિં જત્ત। અટ્ઠસહસ્સપમાણં તિલોયપણ્ણત્તિણામાએ ॥"

આ પ્રમાણે ગાથા છે અને એનો અર્થ "આઠકરણસ્વરૂપવાળી કર્મપ્રકૃતિચૂર્ણિનું જે પ્રમાણ છે તેટલું જ આઠહજાર શ્લોકપ્રમાણ તિલોયપણ્ણત્તિનું છે" એવો થાય છે એમ બતાવી ચારે ચૂર્ણિના કર્તા તરીકે આચાર્ય યતિવૃષભ છે, એમ કલ્પના કરે છે. હવે આપણે પ્રસ્તાવનાકારની ઉક્ત કલ્પનામાં રહેલી સત્યાસત્યતા વિષે થોડી વિચારણા કરી લઈએ.

પહેલી વાત તો એ છે કે સમાન અર્થના કારણે એકકતૃ'કત્વ કહેવું એ યુક્તિસિદ્ધ નથી. તીર્થંકર ભગવંતોના શાસનમાં જે કોઈ સમાનવિષયક શાસ્ત્રો છે તેમાં અર્થથી સમાનપણું તો હોય જ છે, શબ્દથી વિભિન્નતા હોય પણ અર્થથી તો અસમાનતા (વિસંવાદીપણું, પરસ્પર વિરુદ્ધપણું) પૂર્વાચાર્યભગવંતોના ગ્રન્થોમાં જોવામાં આવતી નથી. યદ્યપિ અવસર્પિણી કાલના માહાત્મ્યથી તથાપ્રકારની સામગ્રીના અભાવે, વિશિષ્ટજ્ઞાનીની ગેરહાજરીના કારણે ક્યાંક ક્યાંક જુદા જુદા મતો જોવામાં આવે પણ તે સિવાય મોટા ભાગે તો અર્થોની સામ્યતા જ શ્રીજિનેશ્વરદેવોનાં શાસ્ત્રોમાં હોય છે, તેથી સમાન અર્થવાળા સેંકડો પાઠો વિભિન્નકર્તાના સમાન વિષયક ગ્રન્થોમાં પણ મેળવી શકાય છે, તેટલા માત્રથી ગ્રન્થોને એકકતૃ'ક ન કહી શકાય.

વળી કષાયપ્રાભૃતચૂર્ણિ અને કર્મપ્રકૃતિચૂર્ણિ વચ્ચે પદાર્થોના મતભેદો પણ કેટલાંક સ્થલે જણાય છે, જેમાંના ઉદાહરણ તરીકે કેટલાક અમે રજૂ કરીએ છીએ

(૧) મોહનીય કર્મની સત્તાવીસ પ્રકૃતિની સત્તાના સ્વામી તરીકે કષાયપ્રાભૃતમાં માત્ર મિથ્યાદૃષ્ટિ કહ્યા છે, જ્યારે કર્મપ્રકૃતિચૂર્ણિમાં મિથ્યાદૃષ્ટિ તેમજ સમ્યગ્મિથ્યાદૃષ્ટિ બન્ને કહ્યા છે, જે નીચેના બન્નેના પાઠો ઉપરથી જણાય છે

"સત્તાવીસાએ વિહત્તિઓ કો હોદિ ? મિચ્છાઇટ્ઠિ।" (કષાયપ્રાભૃતચૂર્ણિ પૃ૦ ૬૧)

તિગ સમ્મામિચ્છાદિટ્ઠિસ્સ સંતટ્ઠાણાણિ। તં જહા-૨૮-૨૭-૨૪-....... ... .

मिच्छादिट्ठिणा समत्तं उव्वलियं पच्छा सत्तावीससंतकम्मितो सम्मामिच्छत्तं गतो तं पडुच्च" ।(कर्मप्रकृति-चूर्णि सत्ताधिकार पृ० ३५)

तात्पर्य अे छे के सम्यक्त्वमोहनीयनी उद्वलना थई जाय अेटले मिथ्यादृष्टिने मोहनीय कर्मनुं २७ प्रकृतिनुं सत्तास्थान प्राप्त थाय छे अने आ रीते समकित मोहनीयनी उद्वलना कर्या बाद मिश्रगुणस्थानके जीव जई शके छे. तेवा जीवने त्यां अेटले के मिश्रगुणस्थाके मोहनीयकर्मनुं २७ प्रकृतिनुं सत्तास्थान होय छे, आम कर्मप्रकृतिचूर्णिकारनी मान्यता छे, ज्यारे कषायप्राभृतचूर्णिकारनी मान्यतानुसार प्रथमगुणस्थानके समकितमोहनीयनी उद्वलना कर्या बाद २७ प्रकृतिनी मोहनीयनी सत्तावाळो जीव त्यांथी त्रीजा गुणस्थानके जई शकतो नथी, माटे मोहनीयनुं सत्तावीस प्रकृतिनुं सत्तास्थान त्रीजा गुणस्थानके होई शकतुं नथी।

(२) संज्वलन क्रोधादिनो जघन्य प्रदेशसंक्रम कर्मप्रकृतिचूर्णिकारना मते चरमसमय-प्रबद्धनो अन्यत्र संक्रम करता क्षपकने चरमसमये सर्व संक्रमथी होय छे. ज्यारे कषायप्राभृतचूर्णि-कारना मते उपशामकने चरमसमयप्रबद्धनी उपशमना पूर्ण थवाना काळे होय छे. जुओ बन्नेना पाठो

पुरिसकोहमाणमायासंजलणाणं 'घोलमाणेणं' ति जहण्णजोगिणा चरिमबद्धस्स खवणाए अब्भु-ट्ठियस्स अप्पणो चरिमसमयबद्धस्स 'सगअंतिमे' त्ति अप्पणो चरिमसमए छोभे सव्वसंकमेण जह-ण्णतो पदेससंकमो होतित्ति । कहं ? भण्णइ-एतेसिं चतुण्ह बंधवोच्छेयकाले दुआवलियबद्धलतं मोत्तूण अण्णं णत्थि पदेसग्गं । तं च समए समए खीयमाण अंतिमे समए आइमसमयबद्धस्स असंखेज्जतिभागो सेसो भवति तेण चरिमसमए जहण्णतो पदेससंकमो होइ। (कर्मप्रकृति चूर्णि-संक्रमकरण पृ० १३३)

कोहसंजलणस्स जहण्णओ पदेससंकमो कस्स ? उवसामयस्स चरिमसमयपबद्धो जावे उवसामिज्ज-माणो उवसतो तावे तस्स कोहसंजलणस्स जहण्णओ पदेससंकमो । एवं माणमायासंजलणपुरिसवेदाणं (कषायप्राभृतचूर्णि पृ० ४०८)

(३) प्रथमउपशमसम्यक्त्वनी प्राप्तिना समये मिथ्यात्वमोहनीयना त्रण पुंज थाय छे, तेथी २६ नी सत्ता २८ नी सत्ता थाय छे, अर्थात् समकितमोहनीय अने मिश्रमोहनीय सत्तामां वधे छे, त्यार पछी नवा थयेला मिश्रमोहनीयनो अेक आवलिका सुधी (सम्यक्त्व मोह-नीयमां)संक्रम थतो नथी, अेवी कर्मप्रकृतिचूर्णिकारनी मान्यता छे. ज्यारे मिश्रमोहनीयनी सत्तामां उत्पत्तिना बीजा समयथी ज तेनो सम्यक्त्वमोहनीयमां संक्रम थाय छे, अेवी कषायप्राभृतचूर्णिकारनी मान्यता छे. कर्मप्रकृतिचूर्णिकार अेक स्वतंत्र प्रकृति तरीके उत्पन्न थवाना कारणे मिश्रमोहनीयनी अेक आवलिकानुं वर्जन करे छे, ज्यारे कषायप्राभृतचूर्णिकार मिश्रमोहनीय अे मंदरसवाळा मिथ्यात्वमोहनीयना ज पुद्गलरूप होवाना कारणे आवलिकानुं वर्जन करता नथी, आ बन्ने मतो नीचेना बन्नेना पाठो परथी जणाय छे—

"उवसमसम्मद्दिट्ठिस्स वा अट्ठावीससंतकम्मंसियस्स सम्मत्तलंभातो आवलियाए परतो वट्टमाणस्स

संमत्तं पडिग्गहो त्ति फेडिए सत्तावीसा सङ्कमति तस्सेव आवलिया अब्भंतरतो वट्टमाणस्स सम्मामिच्छत्तस्स सङ्कमो णत्थि त्ति छव्वीसा सङ्कमति ।" (कर्मप्रकृतिचूर्णि-संक्रमकरण पृ० १४)

"सम्मामिच्छत्तस्स संकामओ को होइ ? मिच्छाइट्ठिउव्वेल्लमाणओ सम्माइट्ठी वा णिरासणो । मोत्तूण पढमसमयसम्मामिच्छत्तमंतकम्मियं (कषायप्राभृतचूर्णि पृ० २५६)

(४) पुरुषवेदनी पतद्ग्रहता कषायप्राभृतचूर्णिकारना मते स्त्रीवेद उपशांत थतां ज नष्ट थाय छे, केम के अंतरकरण कर्युं त्यारथी आनुपूर्वी संक्रम शरू थई गयो छे अने आनुपूर्वी संक्रम वखते नोकषायनो संक्रम पुरुषवेदमां थतो नथी, एम कषायप्राभृतचूर्णिनी मान्यता छे, एटले मात्र रह्यो वेदनो संक्रम अने स्त्रीवेद उपशांत थाय एटले पुरुषवेदमां वेदनो संक्रम पण अटकी जाय छे, एटले त्यां पुरुषवेदनी पतद्ग्रहता नष्ट थाय छे, ज्यारे कर्मप्रकृतिचूर्णि मुजब अंतरकरणथी आनुपूर्वीसंक्रम थाय छे, पण आनुपूर्वी संक्रम वखते नोकषायनो संक्रम पुरुषवेदमां थाय छे अने ते पुरुषवेदनी समयन्यून बे आवलिका बाकी रहे त्यां सुधी चालु रहे छे, तेथी पुरुषवेदनी पतद्ग्रहता तेनी प्रथम स्थितिनी समयोन बे आवलिका बाकी रहे त्यारे आगालनी साथे नष्ट थाय छे, बन्नेनी आ मान्यता अंगे पाठो आ मुजब छे

"सव्वस्स मोहणीयस्स आणुपुव्वीय संकमो होदि ।
लोभकसाये णियमा असंकमो होइ णायव्वो ॥" (क० प्रा० गा० १३६)

चूर्णि–अंतरदुसमयकदप्पहुडि मोहणीयस्स आणुपुव्वीसंकमो । आणुपुव्वीसंकमो णाम किं ? कोह-माणमायालोभ एसा परिवाडी आणुपुव्वीसंकमो णाम (पृ० ७६४)

आगळ उपर प्रस्तुतविषयमां नीचेनी गाथा पण बतावी छे,

"संछुहदि पुरिसवेदे इत्थीवेदं णवुंसयं चेव ।
सत्तेव णोकसाये णियमा कोहम्मि संछुहदि" (क० प्रा० गा० १३८)

"पुरिसवेयस्स पढमट्ठितिते दुआवलियसेसाए आगालो वोच्छिन्नो, अणतरावलिगातो उदीरणा एति, ताहे छण्ह नोकसायाणं सछोभो णत्थि पुरिसवेदे, सजलणेसु सछुभति ।" (कर्मप्रकृति चूर्णि उपशमनाकरण पृ० ५५)

"इयाणिं उवसमसम्मदिट्ठिस्स उवसामगसेढिं भणामि-चउवीस सतकम्मातो सम्मत्ते पडिग्गहो त्ति फेडिए तेवीसा पचगे बधे सम्मत्तसम्मामिच्छत्तसहिते सत्तगे संकामति । तस्सेव पचविहबन्धगस्स अतरकरणे कृते लोभसजलणाए अणाणुपुव्विसंकमो णत्थित्ति फेडिते बावीसा संकमति । तस्सेव नपुंसकवेदे उवसंते तेसु चेव सत्तसु एक्कवीसा संकामति । तस्सेव इत्थिवेदे उवसंते तेसु चेव सत्तगे वीसा संकमति । ततो पुरिसवेयस्स पढमट्ठितीयसमयूणदुआवलियसेसाए पुरिसवेदो पडिग्गहो ण होतित्ति वीसा तेसु चेव सत्तसु पुरुसवेयरहिएसु छसु संकमति जाव समयाणा उदो आवलियाउ।("कर्मप्रकृति संक्रमकरण गाथा११नी चूर्णि) ।

क्षपकश्रेणिमां पण संक्रमविधिमां आ ज वात बतावी छे–

ततो तेरसण्ह कम्माणं अन्तरकरणे कते लोभसजलणाए अणाणुपुव्वि संकमो णत्थि त्ति लोभे फेडिते सेसा बारस तमि चेव पचविहे बंधे संकमति अन्तोमुहुत्तं । ततो बारसहिंतो णपुंसगवेदं खविए सेसा एक्कारस भवंति । ते एक्कारस तमि चेव पचविहे बन्धे संकमंति अन्तोमुहुत्तं ततो एक्कारसउ इत्थीवेदे खविए सेसा दस तमि चेव पचविहे संकमति अतोमुहुत्तं ततो पुरिसवेयस्स पढमट्ठितिए समऊणदुआवलिआए सेसाए

પુરિસવેદો પડિગ્ગહો ણ હોતિત્તિ તે વસ પુરિસવેદૂણેસુ ચઉસુ સંજલણેસુ સમયૂણદુઆવલિયમેત્ત સંકમિતિ। (કર્મપ્રકૃતિચૂર્ણિ પૃ૦ ૨૨.)

એટલું જ નહિ પણ ઉપરોક્ત માન્યતાનુસારે મોહનીયની ૧૮ પ્રકૃતિનો સંક્રમ પાંચ અને ચાર પ્રકૃતિના પતદ્ગ્રહમાં કર્મપ્રકૃતિની પ્રક્ષિપ્ત (ભાષ્ય) ગાથામાં માન્યો છે જ્યારે માત્ર ચારના જ પતદ્ગ્રહમાં ૧૮ પ્રકૃતિનો સંક્રમ કષાયપ્રામૃતની પ્રક્ષિપ્ત (ભાષ્ય) ગાથામાં માન્યો છે, ૧૮ પ્રકૃતિનું સંક્રમસ્થાન ઉપશમશ્રેણિમાં ક્ષાયિકસમ્યગ્દષ્ટિને સ્ત્રીવેદનો ઉપશમ થયા પછી પ્રાપ્ત થાય છે, (લોભ નપુંસકવેદ અને સ્ત્રીવેદ સિવાય) અને તે વખતે કર્મપ્રકૃતિકારના હિસાબે પુરુષવેદની પતદ્ગ્રહતા નષ્ટ નથી થઈ, માટે ૧૮ નો સંક્રમ પાંચમાં થાય છે, અને પુરુષવેદની પ્રથમસ્થિતિ સમયોન બે આવલિકા બાકી રહે ત્યારે પતદ્ગ્રહતા નષ્ટ થાય છે, એટલે ચારના પતદ્ગ્રહમાં ૧૮ નો સંક્રમ થાયછે કષાયપ્રામૃતચૂર્ણિના હિસાબે સ્ત્રીવેદ ઉપશાંત થતાની સાથે જ પુરુષવેદની પતદ્ગ્રહતા નષ્ટ થતી હોવાના કારણે ચારના પતદ્ગ્રહમાં જ અઢાર પ્રકૃતિના સંક્રમસ્થાનની પ્રાપ્તિ થાય છે, પાંચના પતદ્ગ્રહમાં અઢાર પ્રકૃતિના સંક્રમસ્થાનની પ્રાપ્તિ થતી નથી એને લગતી પણ કર્મપ્રકૃતિ અને કષાયપ્રામૃતમાં જુદી જુદી ગાથાઓ નીચે પ્રમાણે છે

પંચસુ એગુણવીસા અટ્ઠારસ પચગે ચઉક્કે ય। (કર્મપ્રકૃતિ સંક્રમકરણ ગાથા. ૧૮)
પંચસુ ચ ઊણવીસા અટ્ઠારસ ચદુસુ હોંતિ બોદ્ધવ્વા। (કષાયપ્રામૃત ગાથા ૩૫)
તતો વીસાઓ ણપુંસકવેદે ઉવસામિએ એગુણવીસા ભવતિ। સા એગુણવીસા તમ્મિ ચેવ પંચવિહે સંકમતિ અન્તોમુહુત્તં। તતો એગુણવીસાઓ ઇત્થીવેદે ઉવસામિએ અટ્ઠારસ ભવતિ। તે અટ્ઠારસ તમિ ચેવ પંચવિહે વધે સંકમતિ અન્તોમુહુત્તં। (કર્મપ્રકૃતિચૂર્ણિ સંક્રમકરણ પૃષ્ઠ ૨૧)

અહીં ધ્યાન ખેંચવા જેવી બાબત એ પણ છે કે કર્મપ્રકૃતિના તથા કષાયપ્રામૃતના સંક્રમકરણની કેટલીક ગાથાઓ સમાન છે, અને બન્નેની આ ગાથાઓની ચૂર્ણિ મળતી નથી.

તેમાં આ ગાથાનો પણ સમાવેશ થાય છે, બન્ને ઠેકાણે પ્રક્ષેપ જણાતી ગાથાઓમાં પણ આ રીતે પદાર્થ ભેદ જોવામાં આવે છે, કર્મપ્રકૃતિની આ ગાથાઓ વિષે કર્મપ્રકૃતિચૂર્ણિટિપ્પણમાં મુનિચન્દ્રસૂરિ મહારાજ પાછલથી ભાષ્યકારે કરેલી હોવાનું જણાવે છે.

"છવ્વીસ સત્તવીસાણ સંકમો" ઇત્યાદિ ગાથા એકાદશ ન ચૂર્ણિકૃતા વ્યાખ્યાતા અતો જ્ઞાયતે ચૂર્ણિકારોક્ત-સંક્રમસ્થાનમાર્ગણામુપજીવ્ય ભાષ્યકારેણ પશ્ચાત્કૃતા।"

પ્રસ્તુત પાઠો ઉપરથી જોઈ શકાય છે, કે કર્મપ્રકૃતિચૂર્ણિ અને કષાયપ્રામૃતચૂર્ણિમાં પદાર્થોની ભિન્નમાન્યતાઓ પણ કેટલાંક સ્થલોમાં મળે છે, તેથી પદાર્થોની સમાનતાના કારણે એકકર્તૃકત્વની કલ્પના કરી લેવી ઉચિત નથી.

ભાષાપદ્ધતિનો ભેદઃ—ભાષાની સામ્યતાને પ્રસ્તાવનાકાર એકકર્તૃકત્વના કારણ તરીકે બતાવે છે. પરંતુ કર્મપ્રકૃતિચૂર્ણિ, તથા કષાયપ્રામૃતચૂર્ણિ, બન્નેમાં આવતા અમુક શબ્દોની સામ્યતાના કારણે એકકર્તૃકત્વનો નિર્ણય થઈ શકે નહિ, એટલું જ નહિ કર્મપ્રકૃતિચૂર્ણિ અને કષાયપ્રામૃત

ચૂર્ણિ ની વ્યાખ્યાપદ્ધતિ પણ જુદા જ પ્રકારની છે, કષાયપ્રાભૃતચૂર્ણિમાં ઠેર ઠેર "एत्थ सुत्तगाहा" કહીને સૂત્રની ગાથા કહી છે, કેટલાંક ઠેકાણે અમુક અર્થમાં કેટલી ગાથાઓ છે તે પણ જણાવ્યું છે. જેમકે 'एत्थ तिण्ण सुत्तगाहाओ हवंति तं जहा'। કોઈ કોઈ સ્થલે "पदच्छेदो तं जहा" કહીને સૂત્રગાથાનાં પદોના અર્થ કર્યા છે. "एदासिं गाहाण पदच्छेदो। तं जहा-एस सुत्त फासो" વગેરે પદો કષાયપ્રાભૃતચૂર્ણિમાં અમુક સ્થલે જોવા મળે છે, જ્યારે કર્મપ્રકૃતિચૂર્ણિમાં આ પદ્ધતિ નથી. કર્મપ્રકૃતિચૂર્ણિમાં મુખ્યત્વે પદો ને પ્રતીકરૂપે લઈ તેનો પદચ્છેદ કરવાપૂર્વક વ્યાખ્યા કરી છે, ક્યાંય 'सुत्तफासा सुत्तगाहा' વગેરે કહ્યું નથી, પદચ્છેદ કરવા પૂર્વે પણ 'गाहाण पदच्छेदो' પણ કહ્યું નથી. કષાયપ્રાભૃતચૂર્ણિકારે ઘણાં સ્થલોમાં સૂત્રનાં પદોનું ઉચ્ચારણ કર્યા વિના સૂત્ર દ્વારા સૂચિત અર્થની વિસ્તારથી પ્રરૂપણા કરી છે. આ ઉપરાંત પણ બીજી અનેક રીતે કષાયપ્રાભૃતચૂર્ણિ અને કમ્મપયડિચૂર્ણિમાં વ્યાખ્યાશૈલીના ભેદો જોવામાં આવે છે, જેનો વાંચકોને બન્ને ચૂર્ણિઓ વાંચવાથી સુંદર રીતે ખ્યાલ આવી શકે છે. ભિન્ન કર્તાની ભાષાઓમાં પણ ઘણી વાર સામ્યતા આવે છે, દા૦ ત૦ કર્મપ્રકૃતિની મલયગિરિ મ૦ કૃત ટીકામાં અને ઉપાધ્યાયજી યશોવિજયજી કૃત ટીકામાં ભાષાની ઘણી જ સામ્યતા છે, છતાં બન્ને ટીકાઓના કર્તા ભિન્ન છે, માટે એકકર્તૃકત્વ સાબિત કરવા ભાષાની સામ્યતાનું કારણ ઉપસ્થિત કરાયું છે તે પ્રમાણભૂત નથી.

ટૂંકમાં અમારું કહેવાનું તાત્પર્ય એ છે કે જે કારણો એક કર્તૃકત્વ માટે રજૂ કરાયાં છે, તે કારણો વાસ્તવિક નથી, એટલું જ નહીં પણ અમે જે મતભેદોના પાઠો આપ્યા છે, તે એક કર્તાના પણ જુદા જુદા ગ્રન્થોમાં હોઈ શકે છે, કેમ કે ચૂર્ણિ કે ટીકાના કર્તા જે ગ્રન્થની ચૂર્ણિ કે ટીકા કરતા હોય છે તેઓ મુખ્યત્વે તે ગ્રન્થકારને અનુસરતા હોય છે, એટલે એકજ ટીકાકારની જુદા જુદા ગ્રન્થની ટીકાઓમાં પણ પદાર્થભેદ હોય છે, સમર્થ ટીકાકાર મલયગિરિ મહારાજ કૃત ઘણી ટીકાઓમાં આવા ભેદ જોવા મળે છે, એટલે બીજાં પ્રબલ પ્રમાણો હોય ત્યારે પદાર્થભેદથી ભિન્ન કર્તાની અને બીજાં કોઈ પ્રબલ પ્રમાણ સિવાય એક માત્ર પદાર્થની સામ્યતા, અને ભાષાની આંશિક સામ્યતાના કારણે એક કર્તૃકત્વની કલ્પના કરવી તે ઉચિત નથી. હા, જો એના માટે બીજું કોઈ પ્રબલ પ્રમાણ પ્રસ્તાવનાકારે રજૂ કર્યું હોત તો આ બધી ચૂર્ણિઓનું એકકર્તૃકત્વ જરૂર આપણે માની શકત. તાત્પર્ય એ છે કે ચારે ચૂર્ણિઓ એક કર્તાની નથી જ એમ અમારે નથી કહેવું પરંતુ આ ચારે ચૂર્ણિઓ એક કર્તા દ્વારા રચાયેલી છે એવો નિર્ણય પણ ઉપલબ્ધ પ્રમાણોથી થઈ શકતો નથી. હાલ તો એના કર્તા કોણ છે, તે જ્ઞાની ગમ્ય જ માનવું રહ્યું, ભવિષ્યમાં વિશેષસામગ્રી મળતાં એ બાબતની વિચારણા થઈ શકે.

કદાચ ભવિષ્યમાં બીજાં પ્રમાણોથી ચારે ચૂર્ણિ એકજ કર્તાની છે એવું સાબિત થાય તો પણ ચારે ચૂર્ણિના કર્તા તરીકે ત્રિલોકપ્રજ્ઞપ્તિના કર્તા સાબિત થઈ શકતા નથી, કેમ કે

(१) त्रिलोकप्रज्ञप्तिना कर्ता यतिवृषभ नक्की नथी. (२) चारे चूर्णि त्रिलोकप्रज्ञप्तिना कर्ता यतिवृषभनी रचित छे एम जे गाथा परथी नक्की करवा प्रयास थाय छे, ते गाथानो पाठ प्रमाणभूत नथी, केम के 'चुण्णिस्सरूवत्थकरणं' पाठ हस्तलिखितप्रतमां छे, 'चुण्णिस्सरूवछकरण' एवो पाठ मुद्रित त्रिलोकप्रज्ञप्तिमां छे. परंतु 'चुण्णिस्सरूवट्ठकरण' एवो पाठ क्यांय नथी, जयधवला प्रथमभागनी प्रस्तावना, 'तिलोयपण्णत्ति और यतिवृषभ' नामनो पंडित जुगलकिशोर मुख्तारनो लेख (वर्णी अभिनंदनग्रन्थ पृ० १२३) 'लोकविभाग और तिलोयपण्णति' नामनो नाथूराम प्रेमीनो लेख (जैन साहित्य और इतिहास पृ० ६) वगेरेमां आ गाथा ज्यां जोवामां आवे छे, त्यां क्यां य प्रस्तावनाकारे स्वीकारेल 'चुण्णिस्सरूवट्ठकरण' वाळो पाठ जोवामां आवतो नथी (३) गाथानो अर्थ जे रीते कर्यो छे ते रीते संगत नथी. वळी कर्मप्रकृतिमां मात्र आठ करणनी ज वात नथी, परंतु आठकरण उपरांत उदय अने सत्तानो अधिकार पण छे. (४) उपलब्ध त्रिलोकप्रज्ञप्ति अने कपायप्राभृतचूर्णिना कर्ता एक नथी ए अमे पूर्वे अनेकप्रमाणो थी साबित कर्युं छे.

आम गाथामांना 'त्थ' नो 'ट्ठ' करीने बंधनादि आठकरणरूप अर्थ ग्रहण करी त्रिलोकप्रज्ञप्तिनी अंतिम गाथामां आवता 'जदिवसहं' पद उपरथी त्रिलोकप्रज्ञप्तिना कर्ता तरीके यतिवृषभने कल्पी भापानुं साम्य अने पदार्थोनुं साम्य वगेरे कारणो द्वारा चारे चूर्णिने त्रिलोकप्रज्ञप्तिना कर्ता दिगम्बराचार्य यतिवृपभाचार्यना नामे चडावी देवानो जे प्रयत्न प्रस्तावनाकारे कर्यो छे ते अनेक प्रमाणोथी बाधित थई जाय छे.

कपायप्राभृतचूर्णिना प्रस्तावनाकारे पृ० ५६ उपर कर्मप्रकृतिचूर्णिनी भापानुं छेल्ला अढीसो, त्रणसो वर्षमां जाणीबूजीने परिवर्तन कर्यानो जे आक्षेप कर्यो छे, तेनो पण उत्तर जरूरी लागवाथी अमे सप्रमाण रजू करीये छीए

प्रस्तावनाकारनुं एम कहेवुं छे के कर्मप्रकृतिचूर्णिना संस्कृतटीकागत पाठो करतां कर्मप्रकृतिनी मुद्रित चूर्णिना पाठोनी भाषा जुदी छे अने तेथी भापामां जाणीजोईने कोईए छेल्ला अढीसो त्रणसो वर्षमां परिवर्तन कर्युं छे. आ कथनना समर्थनमां तेमणे संस्कृतटीकामांथी उद्धृत पांच पाठो अने मुद्रित चूर्णिना ते ज पाठो रजू कर्या छे. अमारे आ बाबतमां मात्र एटलुं ज कहेवानुं छे के विद्वान प्रस्तावनाकारे आवो आक्षेप करवा पूर्वे जो कर्मप्रकृतिनी चूर्णिनी तेनी कोई प्राचीन प्रति अथवा फोटोकॉपी लई तेमां पाठोनी भाषा जोई होत तो तेमने आटलुं लखवानो श्रम लेवो न पडत अने अमारे पण आटलो खुलासो करवो न पडत. प्रस्तावनाकारना आपेलां पांचे स्थानो अमे जेसलमेरना भंडारनी संवत १२२२मां लखायेली प्राचीन प्रतिनी फोटो कॉपीमां जोयां छे, तेमां प्रथम स्थानमां चूर्णिनो पाठ (संस्कृतटीकागत) समान छे ज्यारे बाकीना चारे पाठ मुद्रितचूर्णिना पाठने मळता आव्या छे. प्राकृतग्रन्थोनी प्राचीन प्रतिओमां भाषाना अनेक प्रकारना भेदो होय छे.

ટીકાકાર સમક્ષ જે પ્રત આવી હોય તેના હિસાબે તેમને પાઠ લખ્યો હોય, જ્યારે તે વખતે બીજી પ્રતિઓમાં પાઠ જુદા પણ હોઈ શકે છે, 'त' 'च' વગેરે કોઈ કોઈ પ્રતોમાં હોય છે, જ્યારે કોઈ કોઈ પ્રતોમાં તેનો લોપ પણ કરેલ હોય છે. એકજ પ્રતમાં કોઈ કોઈ સ્થાને હોય છે અને કોઈ કોઈ સ્થાને નથી પણ હોતા, માટે 'त' 'च' વગેરે પદો મુદ્રિત પ્રતિમાં દેખાય અને ટીકાગત ચૂર્ણિમાં ન દેખાય તેથી એ પાઠો બદલી નાંખ્યાની કલ્પના કરવી એ ઉચિત નથી. મુદ્રિત ચૂર્ણિનાં પાંચે સ્થાનોના પાઠો, ટીકાગત ચૂર્ણિનાં ઉદ્ધરણો અને જેસલમેર ભંડારની હસ્તલિખિતતાડપત્રીયપ્રતના પાઠો તથા એ સિવાય પણ 'त' 'च' વગેરે લોપાયેલા, અને નહિ લોપાયેલા એવા સંખ્યાબંધ પાઠો હસ્તલિખિત તાડપત્રીયમાંથી અમે અહીં રજૂ કરીએ છીએ, તે જોવાથી વાચકોને ખ્યાલમાં આવી જશે, કે પ્રસ્તાવનાકાર દ્વારા કરાએલ આક્ષેપ તદ્દન નિરર્થક છે

પાંચે સ્થાનોના પાઠો

૧. મુદ્રિતચૂર્ણિઃ-	पिण्डपगडीतो नामपगडीतो ।	बन्धनकरण पृष्ठ ७२ अ.
ટીકાગતપાઠઃ-	पिण्डपगईओ णामपगईओ ।	बन्धनकरण पृष्ठ ७२ ब.
જેસલમેરપ્રતનો પાઠ -	पिण्डपगईओ णामपगईओ ।	ताडपत्र पृ० ३२ ब.
૨ મુદ્રિતચૂર્ણિ -	पुहुत्तसद्दो वहुत्तवाची ।	बन्धनकरण पृ० १९३ व
ટીકાગતપાઠ –	पुहुत्तसद्दो वहुत्तवाइत्ति ।	बन्धनकरण पृ० १९४ अ.
જે૦ પ્રતિનો પાઠઃ–	पुहुत्तसद्दो वहुवाची ।	ताडपत्र पृ० ९३ अ.
૩ મુદ્રિતચૂર્ણિ -	वंधट्ठितीउ संकमठिती संखेज्जगुणा ।	संक्रमकरण पृष्ठ ५९ अ.
ટીકાગતપાઠઃ-	वंधठिईओ सतकम्मठिई संखिज्जगुणा	सक्रमकरण पृष्ठ ५९ ब.
જે૦ પ્રતિનો પાઠ.-	वंधट्ठीतितो संतकम्मठिती संखेज्जगुणा ।	ताडपत्र पृ० ११९ ब.
૪ મુદ્રિતચૂર્ણિઃ-	एत्थ वाघात इति ट्ठितिघातो ।	संक्रमकरण पृ० १४८ अ.
સંસ્કૃત ટીકાગતપાઠ.-	ठिइघाओ एत्थ होइ वाघाओ ।	सक्रमकरण पृ० १४९ ब.
જે૦ પ્રતિનો પાઠઃ-	इत्थ वाघात इति ठितिघातो ।	ताडपत्र १६४ ब.
૫ મુદ્રિતચૂર્ણિ -	त आरिसे न मिलति त्ति ण इच्छिज्जति ।	सत्ता पृ० ३७
ટીકાગતપાઠ -	त आरिसे न मिलई तेण ण इच्छिज्जइ ।	सत्ता पृ० ३७
જે૦ પ્રતિનો પાઠ -	त आरिसे न मिळइ त्ति णेच्छिज्जति ।	ताडपत्र पृ० २८० ब.

જેસલમેરના જ્ઞાન ભંડારની વિ૦ સં૦ ૧૨૨૨ માં લખાયેલી તાડપત્રીય પ્રતના પાનામાં સંક્રમકરણને લગતા વિષયના ફક્ત સવા બે પાનાં વાંચતાં લગભગ ૪૦ જેટલા પ્રયોગો 'त' 'च' ના લોપવાળા જોવા મળ્યા છે તથા સંસ્કૃત ટીકાગત પ્રયોગોને અનુસરતા પણ કેટલાક પ્રયોગો જોવા મળ્યા છે એટલું જ નહીં પણ જ્યાં મુદ્રિત ચૂર્ણિમાં 'त' 'च' વગેરે છે ત્યાં પણ 'त' 'च' ના લોપવાળા તથા મુદ્રિત ચૂર્ણિમાં 'त' 'च' નથી અને હસ્તલિખિતપ્રતમાં છે, એવા પણ કેટલાક પ્રયોગો છે તેને લગતા ઉદાહરણો અમે વાચકો સમક્ષ રજૂ કરીએ છીએ–

પૂજ્યપાદશ્રીની પુનિત નિશ્રામાં મુમુક્ષુ પાઠશાળા દ્વારા વૈરાગ્યવાસિત થયેલા આત્માઓને સંયમમાર્ગની કેળવણી આપવામાં આવી. ચાતુર્માસ બાદ પાલીતાણાથી પૂજ્ય આચાર્યદેવશ્રીનું મુંબઈ તરફ પધારવાનું થયું. પૂ૦ ગુરુદેવશ્રી આગળ પહોંચ્યા. રસ્તામાં સુરત મુકામે ત્રણ ભાઈઓ તથા બે બહેનોને ચારિત્ર પ્રદાન કરી તેઓ મુંબઈ પધાર્યા. ત્યાર પછી પૂ૦ આચાર્યદેવ પણ પધાર્યા. મુંબઈ નગરીમાં તો એક નવું જ આધ્યાત્મિક ચૈતન્ય પ્રગટ્યું. પૂજ્યપાદના પ્રકૃષ્ટ સંયમબલે અને પૂ૦ પંન્યાસજી મ૦ ના વૈરાગ્યમય ઉપદેશે અનેક આત્માઓનો સંસારમાંથી ઉદ્ધાર કર્યો. સંવત ૨૦૦૭-૨૦૦૮ નાં ચાતુર્માસ મુંબઈ લાલબાગમાં થયાં. સંવત ૨૦૦૯ નું ચાતુર્માસ મુંબઈના પરામાં થયું, ત્યાર પછી બે ચાતુર્માસ દક્ષિણમાં કરી પૂજ્ય આચાર્યદેવે સંવત૨૦૧૨ નું ચાતુર્માસ પુનઃ મુંબઈમાં કર્યું. મુંબઈનાં આ ચાતુર્માસો દરમ્યાન સંખ્યાબંધ બાળ, યુવાન અને ઉમરલાયક આત્માઓએ પૂજ્યશ્રીના સત્સમાગમ અને ગુરુદેવશ્રી ના ઉપદેશથી સંસારના બંધનોને ફગાવી દઈ ચારિત્રના પુનિત પંથે પ્રયાણ કર્યું. ચારિત્રમાર્ગની પ્રાપ્તિ પછી પૂજ્ય આચાર્યભગવંતાદિગુરુદેવોની નિશ્રામાં જ્ઞાન, ધ્યાન, વૈયાવચ્ચ, તપ, ત્યાગ, સમિતિ, ગુપ્તિ આદિના સંસ્કારોને ઝીલતા મુનિભગવંતો આધ્યાત્મિક પ્રગતિના પંથે આગળ વધ્યા. ગચ્છહિતચિંતક પૂ૦ (પંન્યાસજી)શ્રી-હેમંતવિજયજી મ૦ તથા પૂજ્ય (પંન્યાસશ્રી) પદ્મવિજયજી મહારાજે પણ મુનિઓના જીવનઘડતર અંગે સારો એવો પુરુષાર્થ કર્યો.

ભવ્યાત્માઓના સંયમનૌકાના સુકાની પૂ૦ આચાર્યભગવંતના મનમાં સંયમરક્ષાની માફક શ્રુતમાર્ગની રક્ષા અને પ્રભાવના અંગેની વિચારણા પણ રમતી જ હતી. તેઓશ્રીનો શ્રુતજ્ઞાનનો રસ આજે ૮૩ વર્ષની ઉમરે શારીરિકસ્વાસ્થ્યની પ્રતિકૂલતા દરમિયાન પણ હાથમાં રહેલાં શાસ્ત્રોનાં પાનાં બતાવી આપે છે. જૈનશાસનનાં નિધાનભૂત આગમો અને કર્મવાદ તેઓશ્રીનો અત્યંત રુચિકર વિષય છે. તેઓશ્રીએ જાતે આગમો અને કર્મસાહિત્ય વિષે ઘણું જ મંથન અને મનન કરેલું છે. આચાર્યપદ જેવા જવાબદારીભર્યા સ્થાને, શાસનની અને ગચ્છની અનેકવિધ ચિંતાઓના બોજ વચ્ચે પણ રાત્રિના સમયે કલાકો સુધી કર્મપ્રકૃતિ, ઓઘનિર્યુક્તિઆદિગ્રન્થોના પદાર્થોનું ચિંતન તેઓશ્રીને ચાલું જ રહેતું. કર્મસાહિત્યના વિશાલ સર્જન માટેની ઝંખના વર્ષોથી તેઓશ્રીના હૃદયમાં રમતી હતી. તેઓશ્રીએ સંક્રમકરણના વિવેચનરૂપ બે ભાગો, કર્મસિદ્ધિ, માર્ગણાદ્વારવિવરણ આદિ કર્મવિષયક ગ્રન્થોનું સ્વહસ્તે આલેખન કર્યું છે. તેઓશ્રીની અંતરેચ્છા કર્મપ્રકૃતિનાં આઠે કરણ ઉપર વિશદ વિવેચન તૈયાર કરવાની હતી. પોતાની અંતરેચ્છા પૂર્ણ કરવા માટે તેમની નજર નવદીક્ષિત મુનિવૃંદ ઉપર પડી. મુનિઓને સસ્કૃત-પ્રાકૃત ભાષાનું અધ્યયન કરાવ્યા પછી આચાર્યભગવંતે પોતે જ કર્મસાહિત્યનો અભ્યાસ કરાવ્યો અને બાર માસ જેવા ટૂંકા ગાળામાં તો કર્મગ્રન્થ, પઞ્ચસંગ્રહ અને કર્મપ્રકૃતિના પદાર્થો મુનિઓને કંઠસ્થ કરાવી દીધા.ત્યાર બાદ સામુદાયિક અધ્યયનમાં પરસ્પરની સહાયથી આ ક્ષેત્રમાં સારું ખેડાણ થયું. કર્મગ્રન્થ, કર્મપ્રકૃતિ, પંચસંગ્રહ વગેરેના પદાર્થો

મૌલિક તૈયાર થયા પછી કર્મ વિષયક ગ્રન્થો—છ કર્મગ્રન્થ, કર્મપ્રકૃતિ, પંચસંગ્રહ, શતક, સપ્તતિકા, પ્રાચીનકર્મગ્રન્થ વગેરેની ટીકાઓ તથા ચૂર્ણિઓનું વાંચન થયું. ત્યાર બાદ પૂજ્ય આચાર્યભગવંતે દિગંબર સંપ્રદાયના ગોમ્મટસાર, ધવલા, જયધવલા ટીકા આદિ ગ્રન્થોનું પણ અવગાહન કરાવ્યું. આ રીતે કર્મ વિષયક સુંદર બોધ પૂજ્ય આચાર્યભગવંતની પુણ્યનિશ્રામાં મુનિઓએ પ્રાપ્ત કર્યો, દરમિયાન સમય મળતાં ન્યાયગ્રન્થોનું અધ્યયન પૂજ્ય ગુરુદેવ પંન્યાસજી શ્રી ભાનુવિજયજી ગણિવર્યે કરાવ્યું. આગમગ્રન્થો અને છેદગ્રન્થોનો પણ બોધ કરાવ્યો.

કર્મસાહિત્યવિષયક મનન અને મંથનથી મુનિઓની બુદ્ધિ કુશાગ્ર બની, અનેક પદાર્થોની હેતુપુરસ્સર વિચારણાઓ અને ચર્ચાઓ મુનિમંડલે કરવા માંડી અને ઊંડાં રહસ્યો પ્રગટ કર્યાં. પૂ૦ આચાર્યભગવંતના હૃદયમાં કર્મસાહિત્યના સર્જનની વાત તો વર્ષોથી રમતી જ હતી. એક પુણ્યપ્રભાતે પૂજ્યપાદશ્રીને પુનઃ મનોરથ થયો કે આઠે કરણો ઉપર હેતુઓની વિચારણાપૂર્વક, વિશાળ વિવેચનયુક્ત, માર્ગણાઓમાં સત્પદાદિ દ્વારો વડે કર્મને લગતા પદાર્થોનો સમાવેશ કરી કર્મસાહિત્ય તૈયાર થાય તો કર્મસાહિત્યની વિશાળતા જગતને જોવા મળે, તેમજ હજારો વર્ષો માટે આ અતિવિશાલ કર્મસાહિત્યનો વારસો ભવ્યજીવોને ઉચ્ચકોટિના દ્રવ્યાનુયોગના ચિંતન દ્વારા અપૂર્વ કર્મનિર્જરાદિ—આત્મકલ્યાણાર્થે ઉપયોગી થાય અને જૈનશાસનમાં કર્મસાહિત્યવિષયક એક મહાન સમૃદ્ધિ ઉત્પન્ન થાય. પૂજ્યપાદશ્રીના આ મનોરથને પ્રગટ થતાંની સાથે તેઓશ્રીના અંતેવાસીઓએ ઝીલી લીધો. સંવત ૨૦૧૫ ના ચાતુર્માસમાં સુરેન્દ્રનગરમાં બારમા તીર્થપતિ શ્રીવાસુપૂજ્યસ્વામીની પુણ્યનિશ્રામાં પૂ૦ આચાર્યભગવંતના શુભાશીર્વાદ અને પૂ૦ પંન્યાસજી કાન્તિવિજયજી ગણિવર્ય, પૂ૦ પં૦ હેમંતવિજયજી ગણિવર્ય પૂ૦ પં૦ ભાનુવિજયજી ગણિવર્ય, અને પૂ૦ પં૦ પદ્મવિજયજી ગણિવર્યાદિના પ્રોત્સાહનપૂર્વક કર્મસાહિત્યના વિશાલ સર્જનના કાર્યનો પ્રારંભ થયો. શરૂઆતમાં ત્રણ મુનિવરોએ કાર્ય શરૂ કર્યું, "ઉપશમશ્રેણિ" અને "ક્ષપકશ્રેણિ" ના પદાર્થોનો સંગ્રહ થયો. બીજા મુનિભગવંતોને કર્મપ્રકૃતિ વગેરે કર્મસાહિત્યના અભ્યાસ દ્વારા આ કાર્ય માટે તૈયાર કરવાનું કામ ચાલું હતું. જેમ જેમ કર્મપ્રકૃતિ વગેરે ગ્રન્થોના અભ્યાસ દ્વારા મુનિઓ તૈયાર થયા, તેમ તેમ તેઓને આ કાર્યમાં પૂજ્ય આચાર્યભગવંતે પ્રવેશ કરાવ્યો. આજે એના ફળરૂપે અનેક મુનિવરો પ૦ પૂ૦ આચાર્યભગવંતની દેખરેખ નીચે કર્મવિષયક સાહિત્યસર્જનમાં પ્રબલ પુરુષાર્થ કરી રહ્યા છે.

ગ્રન્થોની રચના પદ્ધતિ

પૂ૦ મુનિરાજશ્રી જયઘોષવિજયજી મહારાજ તથા પૂ૦ મુનિરાજશ્રી ધર્માનંદવિજયજી મહારાજ પ્રસ્તુત સાહિત્યસર્જન કાર્યના અગ્રણી છે. પદાર્થસંગ્રહમાં અને અન્યમુનિઓને આ સૂક્ષ્મવિષયની દોરવણી આપવામાં તેમનો મોટો હિસ્સો છે. સંગૃહીત પદાર્થોના સ્પષ્ટીકરણમાં જુદાં જુદાં

मु पृ० १ ब तत्थ पगतिट्ठितिअणुभागपदेससंकमाणं सामण्णलक्खणं भण्णइ।
ता. पृ० १७ ब तत्थ पगतिट्ठितिअणुभागपदेससंकमाणं सामण्णलक्खण भवति।

मु. पृ० १ ब० सो संकमो त्ति वुच्चइ जं बंधणपरिणओ पओगेण।
पगयंतरत्थदलियं परिणमयइ तयणुभावे ज॥ १॥

ता० पृ० १८ अ सो संकमो त्ति वुच्चति ज बंधणपरिणतो पओगेणं।
पगतितरत्थदलिय परिणमयति तदणुभावे ज॥ ॥

मु० पृ० १ भणिय पओगेण दलितं दलित अनिथोवमितं भवति
ता० १८ब भणित पओगेणं दलियं दलिय अतिथोवमिय भवति

मु० पृ० २. अ भणितो य सकमति सकमति णियमिज्जइ भणियं सकामिज्जति।
जै० ता० १८अ. भणितो सकमति संकमइ णियमिज्जति भणितं सकामिज्जति।

मु० पृ० २ब. परिणमयति पगतीए परिणमयति वुच्चति
जै० ता० १८ब. परिणमयति पगडीते परिणमयति वुच्चति

मु० पृ० ३अ भण्णति अवगासो णिवारेति णिवारेति दलितं भवति
जै० ता० १८ब. भवति अवगासो णिवारेइ णिवारेइ दलियं भवति

मु० पृ० ३अ पादलियागय होति भणति
जै० ता० १९अ. पादलियागतं होति भणति

मु० पृ० ४ब इच्छिज्जति भणितो
जै० ता० १९अ. इच्छिज्जति भणितो

मु० पृ० ४ ब (गा०५.) समयूणियासु पढमट्ठिती पढमट्ठितीए समयूण
जै० ता० १९ब. समऊणियासु पढमट्ठिती पढमट्ठितीए समऊण

मु० पृ० ४ब. पायन्न
जै० ता० १९ ब. पाउग्ग

मु० पृ० ५ब. नाइ धणाइ धुव अधुवा य सव्वधुव सतकम्माणं।
नाइ अधुवा य सेसा मिच्छा वेयणियनीएहिं॥ गा० ६॥

जै० ता० पृ० १९ बनादि धणादी धुव अधुवा य सव्वधुव सतकम्माण।
णादि य अद्धुव सेसा मिच्छा वेयणियनीएहिं॥

અન્ય ગ્રન્થોનો સાક્ષીઃ-ઉપર્યુક્ત કર્મપ્રકૃતિ, કર્મપ્રકૃતિચૂર્ણિ, શતક, શતકચૂર્ણિ, સપ્તતિકા, સપ્તતિકાચૂર્ણિ, કષાયપ્રાભૃત, કષાયપ્રાભૃતચૂર્ણિ ઉપરાંત પ્રસ્તુત ખવગસેઢી ગ્રન્થમાં બીજા પણ અનેક ગ્રંથોની સાક્ષીઓ આપવામાં આવેલી છે. તેમાં કર્મસાહિત્યવિષયક ગ્રન્થો મુનિચન્દ્રસૂરિકૃત કર્મપ્રકૃતિ-ચૂર્ણિટિપ્પન, કર્મસ્તવ, કર્મપ્રકૃતિટીકા, ગુણસ્થાનક્રમારોહ, ગુણસ્થાનક્રમારોહવૃત્તિ, પ્રાચીન કર્મસ્તવ, પંચસંગ્રહ, પંચસંગ્રહટીકા વગેરે છે.અવસરે અવસરે ટિપ્પણમાં ધવલા, જયધવલા, ગોમ્મટસાર, ક્ષપણા-સાર આદિ ગ્રન્થોનો પણ ઉલ્લેખ કરવામાં આવેલો છે. આ સિવાય આગમો, વ્યાકરણગ્રન્થો, કોશો, પ્રકરણગ્રન્થો, ન્યાયગ્રન્થો વગેરેની પણ અનેક સાક્ષીઓ છે. ઇતરદર્શનોએ માનેલા મુક્તિના સ્વરૂપનો નિરાસ કરવામાં સમ્મતિતર્ક, સ્યાદ્વાદરત્નાકર, રત્નાકરાવતારિકા, સ્યાદ્વાદમઞ્જરી, ષડ્દર્શનસમુચ્ચય, ન્યાયાલોક, ન્યાયકુમુદચન્દ્ર, પ્રમેયકમલમાર્તણ્ડ આદિ ગ્રન્થોનો ગ્રન્થકારે સારો ઉપયોગ કર્યો છે. આ બધા ગ્રંથો તથા તેના કર્તા વગેરે પ્રસિદ્ધ છે એટલે અમે એ બાબત-માં અત્રે વિશેષ લખતા નથી.

વર્તમાનમાં ચાલી રહેલું કર્મસાહિત્યના સર્જનનું કાર્ય

પરમારાધ્યપાદ પુનિતનામધેય કારુણ્યનિધિ સિદ્ધાંતમહોદધિ આચાર્યદેવશ્રીમદ્ વિજયપ્રેમ-સૂરીશ્વરજી મહારાજ સાહેબના પવિત્ર નામથી જૈનસંઘ સુપરિચિત છે. તેઓશ્રીનું જીવન સંયમ-માર્ગની ઉચ્ચ આરાધનાથી અત્યંત સુવાસિત છે. પાંસઠવર્ષના દીર્ઘસંયમપર્યાયમાં તેઓશ્રીએ જાતે રત્નત્રયીની અપૂર્વ સાધના કરી છે અને બીજા અનેક આત્માઓને કરાવી પણ છે. તેઓશ્રીની પુનિત નિશ્રામાં આજે લગભગ અઢીસો મુનિવરો સંયમમાર્ગને સુખપૂર્વક આરાધી રહ્યા છે, તેઓશ્રીએ પોતાની નિશ્રામાં રહેલા મુનિવરોને જ્ઞાનાદિનું એવું સુંદર દાન કર્યું છે કે જેના પરિણામે આજે અનેક પ્રભાવક ઉપદેશક, તત્ત્વજ્ઞાની, તપસ્વી અને વૈયાવચ્ચ કરનાર મુનિભગવંતોથી તેઓશ્રીનો વિશાળ ગચ્છ શોભી રહ્યો છે અને જગત ઉપર મહાન ઉપકાર કરી રહ્યો છે. વર્તમાનકાલે જૈનસંઘ ઉપર અમાપ ઉપકાર કરનાર, પંચાચારના પાલનમાં પ્રવીણ, ષટ્કાયજીવના રક્ષક, સંઘકૌશલ્યાધાર, વાત્સલ્યનિધિ, આચાર્યભગવંતના માર્ગદર્શન મુજબ તેઓશ્રીની અંતરેચ્છાનુસાર કર્મસાહિત્યનું વિશાલ સર્જન થઈ રહ્યું છે, તેમાં પ્રસ્તુત ગ્રન્થ પ્રથમ પુસ્તક તરીકે પ્રગટ થઈ રહ્યો છે એટલે પૂજ્યશ્રીની નિશ્રામાં થઈ રહેલા કર્મસાહિત્યના સર્જનની પ્રવૃત્તિ અંગે પણ થોડો ખ્યાલ આપવો જરૂરી લાગવાથી અત્રે આપવામાં આવે છે.

પૂજ્યપાદ પુનિતનામધેય આચાર્યભગવંતે સંવત ૨૦૦૫ માં પોતાના વિદ્વાન શિષ્યરત્ન મુનિ-રાજશ્રી ભાનુવિજયજી (હાલ પંન્યાસજી તથા મારા પૂ૦ ગુરુદેવશ્રી) મહારાજને ચાતુર્માસ માટે મુંબઈ મોકલ્યા. પૂ. ગુરુદેવશ્રીની વૈરાગ્યમય વાણી અને તપોમય જીવનથી અનેક આત્માઓમાં વૈરાગ્યનાં બીજ વવાયાં અને તેના ફળ રૂપે સંવત ૨૦૦૬ની સાલમાં ત્રણ આત્માઓએ સંયમમાર્ગે પ્રયાણ કર્યું. ત્યાર પછી સંવત ૨૦૦૬માં પૂ૦ આચાર્યદેવશ્રીનું તથા ગુરુદેવશ્રીનું ચાતુર્માસ પાલીતાણા મુકામે થયું. ત્યાં

શાસ્ત્રોના આધારો, અનેકાનેક હેતુઓ અને યુક્તિઓ વગેરેનું પ્રતિપાદન તેઓ કરે છે અને ત્યાર પછી તેના આધારે ગાથાઓ તથા વિવેચનો તૈયાર થાય છે, ગાથા રચનાર મુનિશ્રી પણ ખૂબ કાળજીપૂર્વક સંક્ષેપમાં પદાર્થો સંગૃહીત થાય એ રીતે ગાથાઓની રચના કરે છે અને વિવેચનકારો પણ ઘણા જ પરિશ્રમ પૂર્વક સંસ્કૃતભાષામાં ટીકાગ્રન્થરૂપ લખાણ તૈયાર કરે છે. ગાથા તથા ટીકા તૈયાર થયા પછી બન્ને મુનિભગવંતો ગાથાઓ તથા ટીકાનું લખાણ જોઈ લે છે અને યોગ્ય સુધારાવધારા કર્યા બાદ તૈયાર થયેલી પ્રેસકૉપીનું પૂ૦આચાર્યભગવંત ખૂબજ ઝીણવટથી વાંચન કરી તેમાં રહેલી નાની મોટી ક્ષતિઓનું સમાર્જન કરે છે, ઉપરાંત આ વિષયના બીજા નિષ્ણાતો દ્વારા પ્રેસકૉપીનું સંશોધન થાય છે. આ રીતે તૈયાર થયેલા ગ્રન્થોનું મુદ્રણ કાર્ય **ભારતીય પ્રાચ્ય તત્ત્વપ્રકાશન સમિતિ** સંભાળી લે છે. પ્રૂફોનું સંશોધન અને શુદ્ધિપત્રક ખૂબ કાળજી પૂર્વક ઝીણવટથી થતું હોવાથી શુદ્ધિકરણ સારું થાય છે.

આ સાહિત્ય સર્જનમાં 'ખવગસેઢી' ઉપશમનાકરણ ગ્રન્થો લખાઈ ગયા છે, બંધનકરણના વિષયને લગતા બંધવિધાન નામના મહાશાસ્ત્રનું નિર્માણ થઈ રહ્યું છે. બંધવિધાનશાસ્ત્ર ઘણું વિશાલ અને મહાન થશે. તેમાં પ્રકૃતિબંધ, સ્થિતિબન્ધ, રસબંધ અને પ્રદેશબન્ધ એમ ચાર વિભાગ થશે. દરેકના મૂલ ઉત્તરભેદ તથા ભૂયસ્કારને આશરી લગભગ ૧૪ થી ૧૫ ગ્રન્થપ્રમાણ (દોઢ થી બે લાખ શ્લોકપ્રમાણ) બંધવિધાન શાસ્ત્ર થવાની ધારણા છે. બંધવિધાન ગ્રન્થના પદાર્થ સંગ્રાહક મુનિશ્રી જયઘોષવિજયજી મ. ધર્માનન્દવિજયજી મ૦ તથા મુનિશ્રી વીરશેખરવિજયજી છે. બંધવિધાનશાસ્ત્રની લગભગ ૧૫ હજાર મૂલગાથાની પ્રાકૃતભાષામાં રચના કરનાર મુનિશ્રી વીરશેખરવિજયજી છે. તેમજ જુદા જુદા ભાગોની ગાથાઓ લઈ તેના ઉપર સંગૃહીત પદાર્થોના આધારે તથા બીજાં અનેક શાસ્ત્રોની સહાયથી જુદા જુદા મુનિવરો ટીકાની રચના કરી રહ્યા છે. મૂલપ્રકૃતિના સ્થિતિબંધના અધિકારના ટીકાકાર મુનિશ્રી જગચ્ચન્દ્રવિજયજી મહારાજ છે, તે 'મૂલપયડિઠિઇબંધો' ગ્રન્થ તૈયાર થઈ ગયો છે અને પ્રસ્તુત ગ્રન્થની સાથે જ પ્રકાશિત થઈ રહ્યો છે.

પ્રસ્તુત ગ્રન્થની રચના

ગ્રન્થના પદાર્થો પૂજ્ય મુનિશ્રી જયઘોષવિજયજી મહારાજ, પૂજ્ય મુનિશ્રી ધર્માનન્દવિજયજી મહારાજ, મેં (મુનિ હેમચન્દ્રવિજય) તથા મુનિશ્રી ગુણરત્નવિજયજીએ સંગૃહીત કર્યા છે. સંગૃહીત પદાર્થોના આધારે મુનિશ્રી ગુણરત્નવિજયજીએ પ્રાકૃતગાથાઓ તથા સંસ્કૃતટીકારૂપ ગ્રન્થનું આલેખન કર્યું છે.

પદાર્થસંગ્રહકાર પૂજ્ય જયઘોષવિજય મ૦ તથા પૂ૦ ધર્માનન્દવિ૦ મ૦ બન્ને કર્મવિષયકશાસ્ત્રોના નિષ્ણાત છે. આગમોમાં અને તેમાં પણ વિશેષ કરીને છેદસૂત્રોમાં તેમણે નોંધપાત્ર પરિશ્રમ કર્યો છે, પૂ. આચાર્યદેવશ્રીમદ્વિજયપ્રેમસૂરીશ્વરજી મહારાજાની પુણ્યભાવનાને

મૂર્તસ્વરૂપ આપનાર કર્મસાહિત્યસર્જનકાર્યમાં અગ્રણી આ બે મહાત્માઓ, જ્ઞાન ઉપરાંત ત્યાગ, તપ વૈયાવચ્ચાદિ અનેક ગુણોથી અલંકૃત છે. જગત ભૌતિક વાતાવરણમાં ગળાબુડ ડૂબી રહ્યું છે ! ત્યારે પરમાત્મા જિનેશ્વરદેવના તત્ત્વનિધિને સાચવવાનું સમૃદ્ધ કરવાનું કામ કરનારા આવા મુનિરત્નોથી જૈન સંઘે આજે ગૌરવ લેવા જેવું છે. બન્નેમાં આદ્ય પૂ૦ આચાર્યદેવશ્રીના વિદ્વાન શિષ્યરત્ન ઉગ્રતપસ્વી ન્યાયવિશારદ પૂ૦ પંન્યાસજી શ્રી ભાનુવિજયજી ગણિવર્યના શિષ્ય શાંતમૂર્તિ મુનિરાજ ધર્મઘોષવિજયજી મ૦ ના શિષ્ય છે, જ્યારે દ્વિતીય પૂ૦ પંન્યાસજી મ૦ ના શિષ્ય છે.

મૂલગાથા તથા ટીકા રચનાર મુનિશ્રી ગુણરત્નવિજયજી પૂ૦ પંન્યાસજી શ્રી ભાનુવિજયજી ગણિવર્યના શિષ્ય તપસ્વી મુનિશ્રી જિતેન્દ્રવિજયજી મ૦ના શિષ્યરત્ન (સંસારી લઘુબન્ધુ) છે. વ્યાકરણ, ન્યાય, કર્મસાહિત્ય અને પ્રકરણાદિવિષયોનો સુન્દરબોધ નાની વયમાં જ તેમણે પ્રાપ્ત કર્યો છે. સરલશૈલીમાં ટીકા રચવામાં તથા કઠિન પદાર્થોને પણ અનેક વાર 'इयमत्र भावना' વગેરે દ્વારા તદ્દન સહેલાઈથી સમજાય તે રીતે રજૂ કરવામાં તેઓ સારી રીતે સફલ થયા છે. ગ્રન્થમાં દ્રવ્યાનુયોગ ઉપરાંત ગણિતાનુયોગનો વિષય પણ સારી રીતે ઝલકી ઉઠે છે. મુનિશ્રીમાં સ્વાધ્યાયની સાથે ત્યાગ, તપ, વૈયાવચ્ચ અને સંયમશુદ્ધિ વગેરેનો સુન્દર વિકાસ દેખાય છે.

બાલ અને યુવાન વયમાં ચારિત્ર આપી આત્માઓનું આવું સુન્દર ઘડતર કરવાનો સંપૂર્ણ યશ પૂજ્ય આચાર્યદેવશ્રીના ફાળે જાય છે, એટલું જ નહિ, આવા મુનિરત્નોને તૈયાર કરી તેમની પાસે ભાવી પેઢીઓને ઉપયોગી થાય, તેવા મહાન સાહિત્યનું સર્જન કરાવી પૂજ્ય આચાર્યદેવશ્રીએ માત્ર વર્તમાન જૈન સંઘ પર નહીં પણ ભાવી જૈન સંઘ ઉપર પણ મહાન ઉપકાર કર્યો છે. જૈનસંઘ આવા નિષ્કારણ ઉપકારી પવિત્રપુરુષને કદી નહીં વિસરે. પોતાના મહાન સંયમ, શાસનપ્રેમ બહુશ્રુતતા વગેરે ગુણોથી અને જૈનશાસનના નિધાનરૂપ કર્મ સાહિત્ય સર્જન કરાવવાથી તેઓશ્રીનું પુણ્યનામ જૈન શાસનની ગૌરવ ગાથામાં સુવર્ણાક્ષરે અંકિત થયેલું રહેશે.

ગ્રન્થની ઉપયોગિતા—આ ગ્રન્થનો સ્વાધ્યાય કર્મવિષયક જ્ઞાનની સુંદર રીતે વૃદ્ધિ કરાવનાર, દ્રવ્યાનુયોગ અને ગણિતાનુયોગનો સુન્દરબોધ કરાવનાર, ચિત્તની એકાગ્રતા વધારનાર અને તે દ્વારા અનંતાનંત કર્મની નિર્જરામાં અપૂર્વ સહાયક છે. એટલું જ નહિ પણ શુક્લધ્યાનના કંઈક સ્વાદને પણ ચખાડનાર છે. એક ચોક્કસ તો પગ ચાલે કે આવા ગ્રન્થો દ્વારા સંઘમાં જ્ઞાનનું ધોરણ ઘણું ઊંચું જશે. કર્મવિષયક જે સાહિત્ય વીતરાગશાસનની મહાન સમૃદ્ધિરૂપ છે, પ્રસ્તુત ગ્રન્થે તેને વધુ સમૃદ્ધ બનાવ્યું છે. જૈનદર્શનનો કર્મવાદ જગતમાં મોખરે છે. ઇતર દર્શનો પાસે કર્મવિષયક જ્ઞાનનું બિન્દુ છે, જૈન દર્શન પાસે તેનો સિંધુ છે. જગતના જીવોને શાંતિ, સમાધિ, આબાદી અને સમૃદ્ધિની પ્રાપ્તિમાં 'કર્મવાદ' વિષયક જ્ઞાન ખૂબ મહત્ત્વનું છે, જૈનદર્શનના કર્મવાદનું યથાર્થજ્ઞાન જીવોને-દુઃખમાં સમાધિ, સુખમાં સાવચેતી અને ગમે તેવી કારમી યાતનાઓનો હસતા મુખે

सामनो करवानुं बळ पण आपे छे. दुःखनां कारणभूत जूनां कर्मोने नाश करवाना उपाय जाणीने जीवो तेनो नाश करी शके छे, दुःखोनां कारणभूत कर्मोने जाणीने जीव तेने समाधिपूर्वक भोगवी शके छे, माटे ज कर्मवादनुं ज्ञान जगतने महान आशीर्वाद रूप छे, विश्वशान्तिना हिमायतीओ, अने जाते सुखी थवा इच्छनार सौ कोईनी फरज छे, के कर्मविषयक ज्ञान संपादन करवुं अने जगतमां तेने सारी रीते वहेवडाववुं. प्रस्तुत ग्रन्थ जगतमां कर्मविषयक-ज्ञानने वहेवडाववनार होई विश्व माटे महान उपकारक छे.

अंतिम निवेदन:-कर्मसाहित्यविषयक ऊंडा तत्त्वज्ञानथी भरपूर अनेक शास्त्रोनां नचोड-रूप प्रस्तुत ग्रन्थनां अध्ययन, अध्यापन, मनन अने चिंतनथी भव्यात्माओ कर्मनिर्जराना अपूर्व लाभने प्राप्त करे तथा प्रस्तुत ग्रन्थना प्रेरक अने मार्गदर्शक पूज्य आचार्यदेवनी पुण्यतमनिश्रामां तेओश्रीना अंतेवासीओ द्वारा आवा अनेकानेक तात्त्विक ग्रन्थोनां निर्माण थाय, अने जैन संघ पण आवा ग्रन्थोना सर्जनमां सहायभूत थई श्रुतभक्तिनो लाभ मेळवे ए ज शुभाभिलाष.

प्रस्तावनाना आलेखनमां जिनवचनविरुद्ध लखायुं होय तेनो मिथ्यादुष्कृत दई विरमुं छुं तथा विद्वज्जनोने ते अंगे सुधारो सूचववा नम्र विनंति करुं छुं.

लि०

श्री दानसूरीश्वर ज्ञानमंदिर
काळुपुर रोड
अमदावाद.
वि० सं० २०२२ चैत्र सुद १३

सिद्धान्तमहोदधि पूज्य आचार्यदेव श्रीमद् विजयप्रेमसूरीश्वरजी
अन्तेवासी पू० पंन्यासप्रवर श्रीभानुविजयगणिवर्यना शिष्यरत्न,
स्वर्गत पू. पन्यास श्रीपद्मविजयगणिवरपादपद्मभ्रमर
मुनि हेमचन्द्रविजय.



प्रस्तावनामां उपयुक्त ग्रन्थोनी यादी

ग्रन्थ — प्रकाशक

आचाराङ्गसूत्र-आगमोदय समिति, मुम्बई
कर्मप्रकृति (संग्रहणी) मुक्ताबाई ज्ञानमंदिर, डभोई
कर्मप्रकृतिचूर्णि " " "
" " टीका (मलयगिरीया) " "
" " " (यशोविजयीया) " "
" चूर्णिटिप्पन (हस्तलिखित) जेसलमेर
कर्मसाहित्यनो इतिहास-हीरालाल रसिकलाल कापडिया सूरत
कर्मसिद्धि जैन प्रवचन मुम्बई
कषायप्राभृत- वीरशासन संघ, कलकत्ता
" " चूर्णि " " " "
चतुर्थ कर्मग्रन्थ (षडशीति)-आत्मानन्द जैन सभा भावनगर
जयधवला भाग १ ला भा० दि० जैन संघ चौरासी मथुरा
जैनसाहित्य और इतिहास-हिन्दीग्रन्थरत्नाकर कार्यालय, बम्बई
जैन साहित्य और इतिहास पर विशुद्ध प्रकाश-वीरशासन संघ, कलकत्ता
जैनपरम्परानो इतिहास-चारित्र स्मारक ग्रन्थमाळा वीरमगाम
जैनसिद्धान्त भास्कर भाग ११ किरण १
तत्त्वार्थसूत्र (सटीक)-देवचंद लालभाई, मुम्बई
त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित्र-जैनधर्म प्रसारक सभा, भावनगर
त्रिलोकप्रज्ञप्ति भाग १ ला-जैनसंस्कृति रक्षक संघ सोलापुर
" " " २ रा " "
धवला भाग १ ला-जैनसाहित्योद्धारक फंड कार्यालय
धवला भाग ३ रा " अमरावती
" " ४ था " " "
नन्दिसूत्र (सटीक) आगमोदय समिति, सुरत

ग्रन्थ — प्रकाशक

निशीथचूर्णि-भाग१ला सन्मति ज्ञानपीठ, आगरा
" " २ रा " " "
" " ३ रा " " "
नीतिशतक (भर्तृहरि) महादेव रामचन्द्र जागुष्टे अमदावाद
न्यायमञ्जरी-विजया नगर सिरीझ, काशी
पञ्चसंग्रह भाग१लो मुक्ताबाई ज्ञानमन्दिर, डभोई
पट्टावलिसमुच्चय-चारित्र स्मारक-ग्रन्थमाळा वीरमगाम
पन्नवणासूत्र (सटीक) आगमोदय समिति, सुरत
बन्धशतक (मूल)-वीरसमाज, अमदावाद
" चूर्णि " "
" भाष्य " "
" टीका " "
" चूर्णिटिप्पन (हस्तलिखित) जेसलमेर
बृहत्कल्प भाग१लो-जैन आत्मानन्द सभा, भावनगर
भगवद्गीता-सस्तु साहित्य वर्धक कार्यालय, अमदावाद
वर्णी अभिनन्दनग्रन्थ-श्रीवर्णी हीरक जयन्ति महोत्सव समिति, सागर
विचारामृतसारसंग्रह-ऋषभदेवजी केसरीमलजीनी पेढी, रतलाम
विशेषणवती- " " " "
विशेषावश्यकभाष्य (सटीक) बाई समरथ जैन श्वे. मू० ज्ञानोद्धार ट्रस्ट, अमदावाद
वीरनिर्वाण संवत् और जैन कालगणना क० वि० शास्त्रसमिति, जालोर
श्रुतावतार (तत्त्वानुशासन) श्रीमाणिकचन्द्र दिगम्बर जैन ग्रन्थमाला समिति, बम्बई
सप्ततिका मुक्ताबाई ज्ञानमंदिर, डभोई
सप्ततिकाचूर्णि. " " "
हिमवत थेरावली-हीराचन्द रूपचंद, वडोदरा

卐 गुरुस्तुतिः 卐

यद्यङ्गुल्याऽऽकाशो मेयः प्रसृतादिभिश्च पाथोधिः ।
स्यां च यदि सहस्रमुखस्तदा समर्थस्तदुपकृतीर्[1]वक्तुम् ॥ १ ॥

[स्वोपज्ञक्षपकश्रेणिवृत्तिनी પ્રશસ્તિમાંથી ઉદ્ધૃત, શ્લોકાઙ્ક २१]

१ तस्य=कर्मसिद्ध्यादिग्रन्थकृतः कर्मकृतान्तविद्. सिद्धान्तमहोदधे. पूज्याचार्यदेवश्रीमद्विजयप्रेमसूरीश्वरस्य, उपकृतयः=उपकाराः, ताः ।

इस 'खवगसेढी' ग्रन्थरत्नके प्रकाशनमें उदार आर्थिक सहाय देनेवाले सज्जन



शाह रतनचन्दजी हीराचन्दजी पिन्डवाडा राजस्थान

शाह खुबचन्दजी अचलदासजी पिन्डवाडा राजस्थान

क्षपकश्रेणिग्रन्थस्य विषयानुक्रमः

४-अश्वकर्णकरणाद्धाधिकारः ९३-१४६

६ किट्टिवेदनाद्धाधिकारः २३७-४१८

परिशिष्टानां सूचिः

चित्रसूचिः



स्वोपज्ञवृत्तिविभूषिता

खवग-सेढी

(क्षपकश्रेणिः)

[यन्त्र-चित्र-परिशिष्ट मूलगाथागौर्जरभावानुवादसंशोभिता]

॥ ॐ ह्रीँ अर्हँ नमः ॥

॥ श्रीशङ्खेश्वरपार्श्वनाथो विजयतेतमाम् ॥

सकलागमरहस्यवेदि-श्रीमद्विजयदानसूरीश्वरेभ्यो नमो नमः ।

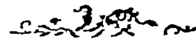
सिद्धान्तमहोदधि-श्रीमद्विजयप्रेमसूरीश्वरेभ्यो नमः ।



श्रीमत्तपोगच्छगगनाङ्गणदिनमणि-सुविहितगच्छाधिपति-सिद्धान्तमहोदधि-सच्चारित्रचूडामणि-कर्मशास्त्र-निष्णात-प्रातःस्मरणीयाचार्यशिरोमणि-श्रीमद्विजयप्रेमसूरीश्वरान्तेवासि-स्याद्वादनयप्रमाण-विशारद-पन्यासप्रवरश्रीमद्-भानुविजयगणिवर्यशिष्यप्रशिष्य-श्रीमद्गच्छनायकप्राव्यापित-वाचं-यममतल्लिका-जयघोषविजय-धर्मानन्दविजय-हेमचन्द्रविजय-गुणरत्नविजय-संगृहीतकर्मक्षपणापदार्थका मुनिपुङ्गवजितेन्द्रविजयचरणारविन्दचञ्चरीकायमाणा-ऽन्तिपदा मुनि-गुणरत्नविजयेन विरचिता स्वोपज्ञवृत्तिविभूषिता

खवगसेढी

[क्षपक-श्रेणिः]



श्रीवीरं तं प्रवन्दे निजजननमहे यः सुरेशाभिषिक्तः,
दत्तं दानं च वर्षं सकलहितकरं भव्यवर्गाय येन ।
प्राव्राजीद्यः स्वकीयं विततमवविप-कर्मशत्रुं निहन्तुं,
येन ध्यानाग्निशक्त्या खलु झटिति कृतो घातिकाष्ठप्रणाशः ॥ १ ॥ (स्रग्धरा)

❀ हरिणाङ्कितततनुरर्जुनरुचिरमृतकरः कलाश्रयो वीरः ।
जनतापापहरः श्रीभाक् सकले विष्टपे जयति ॥ २ ॥ (पथ्यार्या)

❀ (१) हरिणा=सिंहेन "सिंह कण्ठीरवो हरिः" इति हैमवचनात्, अङ्किता=लाञ्छिता तनुः=शरीरा-परपर्याया यस्य, स तथा, श्रीमतो हि भगवतो वर्धमानस्वामिनो लाञ्छनं हरिः, तच्च भगवतः सव्येतरजङ्घा-रूपे शरीरे भवतीत्यागमः । अर्जुनवत्=चामीकरवत् "तपनीय-चामीकर-चन्द्रभर्माऽर्जुन-निष्क कार्तस्वर-कर्बुराणि" (श्लोकाङ्क १०४४) इत्यभिधानचिन्तामणिकोशे सुवर्णवाचकत्वादर्जुनशब्दस्य, रुचिः=छविर्यस्य, स तथा, अमृतं करोतीत्यमृतकरः, शिवकर इत्यर्थः, अमृतशब्दो हि शिववाचकः, यदुक्तमभिधानचिन्तामणिकोशे- "महानन्दोऽमृतं सिद्धिः कैवल्यमपुनर्भवः । शिवं" (श्लो० ७४) इति । कलानां=सर्वकलानाम् आश्रयः= आस्पदं कलाश्रयः, सर्वकलानिपुणत्वाद् भगवतः । हरतीति हरः, "अच्" (सिद्धहेम० ५-१-४९) इत्यनेन सूत्रेण कर्तर्यच्प्रत्ययः । जनानां समूहो जनता, तस्याः पापानि=दुरितानि जनतापापानि, तेषां हरो जनता-पापहरः, सकलजनदुरितविनाशीत्यर्थः, श्रियं=केवलज्ञानरूपामष्टमहाप्रातिहार्यलक्षणां वा भजतीति श्रीभाक् वीरः=अपश्चिमजिनपतिः, सकले=निखिले विष्टपे=विश्वे जयति=इन्द्रिय-विषय-कषाय-परिषहोपसर्ग घाति-कर्मादिशत्रुगणपरिजयात् सर्वानप्यतिशेते । इति प्रथमोऽर्थः ।

ध्येयास्ते सर्वसिद्धा विमलशिखगतौ संस्थिताः कर्ममुक्ता
★लोकन्ते लोकभावान् समभुवनविदो भोगिनः सिद्धिवध्वाः ।
卐यद्ध्यानाऽगं श्रयन्ते शिवगतिफलकं स्वीयकर्माऽऽतपदग्र्नं
संसारस्फारसत्रे जनिमरणजरातापसंतप्तभव्याः ॥ ३ ॥ (स्रग्धरा)

(२) यद्वा हरिणा=अश्वेन, यदुक्तमभिधानचिन्तामणिकोशे-गन्धर्वोऽर्वा सप्तिवीतो वाहो वाजी हयो हरि. (श्लो० १२३३)इति, अङ्कितततनु, श्रीमान् सम्भवनाथस्तृतीयजिनेश्वर इत्यर्थ, तस्य लाञ्छनमागमेऽश्वो निरूप्यते । वीरशब्दश्चात्र यौगिको व्याख्येय । तथाहि-वि=विशिष्टा सकलभुवनाद्भुता स्वर्गापवर्गादिका ई = लक्ष्मी, सा वी, तां राति=भव्येभ्यो यच्छति 'राक् दाने' इति वचनाद् इति वीर', "आतो डोऽह्वावाम." (सिद्धहेम०५-१-७६) इत्यनेन डप्रत्यय । ददाति च भगवान् सर्वभाषापरिणतया स्ववाण्या नि श्रेयसाभ्युदय-साधनोपायोपदेशेन भव्येभ्यो भुवनाद्भुता श्रियम् । शेष पूर्ववद् व्याख्येयम् । इति द्वितीयोऽर्थः ।

(३) यद्वा हरिशब्द: कपिवाचको ज्ञेय, यदुक्तमभिधानचिन्तामणिकोशे-"प्लवङ्गः प्लवगः शाखा-मृगो हरिर्वलीमुखः ॥"(श्लो० १२९२) इति । ततश्चायमर्थ -हरिणा=कपिना अङ्कितततनु',अभिनन्दनस्वामीत्यर्थः, निरूप्यते चागमे चतुर्थस्य भगवतो लाञ्छनं कपिरिति । शेषं पूर्ववद् वर्णनीयम । इति तृतीयोऽर्थ ।

(४) यद्वा हरिणेति पद तृतीयान्तं न व्याख्येयम्, किन्तु समासस्थो हरिणशब्दोऽयम्, स च मृगवाचक. । ततश्चायमर्थ -हरिणेन=मृगेण अङ्किता तनुर्यस्य, स हरिणाङ्किततनुः, षोडशः श्रीशान्तिनाथो भगवानित्यर्थ, तस्य भगवतो लाञ्छनं मृग इत्यागमे प्रतिपाद्यते, शेषं पूर्ववद् वर्णनीयम् । इति चतुर्थोऽर्थ ।

(५) यद्वाऽय श्लोकः श्रीचन्द्रप्रभप्रभुमधिकृत्य व्याख्येय । तथाहि-हरिशब्दोऽत्र चन्द्रवाचको ज्ञातव्य । यदुक्तममरकोशे" यमानिलेन्द्रचन्द्रार्कविष्णुसिंहांशुवाजिषु ॥ शुकाहिकपिभेकेषु हरिर्ना कपिले त्रिषु . ॥ (३-३-१७५) इति, ततश्चायमर्थो भवति-हरिणा=चन्द्रेण अङ्किततनु, श्रीचन्द्रप्रभोऽष्टमस्तीर्थंकर इत्यर्थ', तस्य भगवतो लाञ्छन चन्द्र इति सिद्धान्त उपदिश्यते । अर्जुनशब्दश्चात्र श्वेतवाचको ग्राह्य । यदुक्तमभिधान-चिन्तामणौ" ' श्वेत श्येत सित. शुक्लो हरिणो विशदः शुचिः ।१।" अवदातगौरशुभ्रवलक्षधवलार्जुना .. "(श्लो० १३९३)इति । अर्जुना=श्वेता रुचि =छविर्यस्य,सोऽर्जुनरुचि ,श्वेतकायो हि भगवांश्चन्द्रप्रभ । यदुक्तम्"शुक्लौ च चन्द्रप्रभपुष्पदन्तौ" । इति । शेष तु पूर्ववद्योज्यम् । इति पञ्चमोऽर्थ ।

(६) अथवाऽय श्लोक श्रीपार्श्वनाथमधिकृत्य वर्णनीयः । तद्यथा- हरिशब्दोऽत्र सर्पवाचको बोद्धव्य । यदुक्त विश्वकोशे-"हरिर्वातार्कचन्द्रेन्द्रयमोपेन्द्रमरीचिषु । सिंहाश्वकपिभेकाहिशुकलोकान्तरेषु च ।" इति, ततश्चायमर्थ'-हरिणा=सर्पेण अङ्किततनु, श्रीपार्श्वनाथ इत्यर्थ, तस्य हि भगवतो लाञ्छनं सर्प इति सिद्धान्ते प्रतिपाद्यते, अर्जुनशब्दश्चात्र मयूरार्थको व्याख्येयः । यदुक्त मेदिनीकोशे-"अर्जुन ककुभे पार्थे कार्तवीर्यमयूरयो . ॥" इति, अर्जुनवद्-मयूरवत्-मयूरनीलवर्णवद् रुचि -द्युतिर्यस्य सोऽर्जुनरुचि., नीलविग्रहो हि भगवान् श्रीपार्श्वनाथ. । उक्त चाऽभिधानचिन्तामणिकोशे-"कृष्णौ पुनर्नेमिमुनी, विनीलौ श्रीमल्लिपार्श्वौ कनकत्विषोऽन्ये ॥" इति । शेष पूर्ववद् निरूपणीयम् । इति षष्ठोऽर्थ ।

(७) प्रस्तुतव्याख्यानषट्कं प्रतिपाद्य सम्प्रत्यस्य श्लोकस्याऽप्रस्तुतव्याख्यान दर्श्यते । तथाहि-अर्जुना= श्वेता रुचिः=छविर्यस्य सोऽर्जुनरुचिः,चन्द्रस्य विशेषणमिदम् ,एवमग्रेऽपि । अमृतं करा =द्युतयो यस्य चन्द्रस्य स तथा,कलानां=षोडशभागानाम् आश्रय =निलय कलाश्रयः । विशेषेण ईरयति=प्रेरयतीति वीर ,कामादिविपयाणां हि प्रेरकश्चन्द्र । जनानां=लोकानां ताप.=जनताप , तमपहरतीति जनतापापहर ,शीतलत्वाच्चन्द्रस्य, हरिणेन=मृगेण अङ्किता=लाञ्छिता तनुर्यस्य,स हरिणाङ्किततनु ,चन्द्र इत्यर्थ',सकले विष्टपे जयति,सर्वत्र तदालोकत्वात् । इति सप्तमोऽर्थ । ★लोकन्ते=पश्यन्ति । समभुवनविद -सकललोकविद्या । 卐 अग =वृक्ष ।

वन्दे तं गौतमाख्यं प्रथमगणधरं वीरविम्बाद्यशिष्यं
प्राप्तो योऽष्टापदाद्रिं निजक-बलभराद् निर्वृतेर्निर्णयाय ।
दीक्षव्याजाज्जनेभ्यो य इह खलु ददौ केवलज्ञानदीप्तिं
प्राप्ते श्रीवर्धमानेऽचलमरुजशिवं केवलं येन लब्धम् ॥४॥ (स्रग्धरा)
मिथ्यामोहतमोयुतेऽतुलबलप्रद्युम्नभिल्लाकुले,
★नानाकर्मलताऽऽस्पदे खलु युते 卐 दुर्भेदकर्माद्रिभिः ।
दुर्बोधोग्रवचःकुशादिगहने शोकानलस्याश्रये,
स्तूयन्ते हितकारिणो भववने ध्यानान्विताः सूरयः ॥५॥ (शार्दूलविक्रीडितम्)
वैराग्यामृतपानपुष्टहृदयो यो यश्च गच्छाधिपः,
स्वाध्याये चरणे तथा सुकरणे नित्यं च यत्प्रेरणा ।
दाक्षिण्यैकनिधिस्तथा मधुरगीर्बह्वागमज्ञश्च यः,
सत्सिद्धान्तमहोदधिर्विजयते स प्रेमसूरीश्वरः ॥ ६ ॥ (शार्दूलविक्रीडितम्)
यः स्याद्वादनयप्रमाणविदुरो वैराग्यवाराम्निधि-
र्मोहग्रीष्मसुतप्तभव्यभुवने यद्गीः पयोदायते ।
यो नित्यं तपते तपः कृशतनुः संसारसंतापहं
स श्रीमान् खलु पातु भानुविजयः पन्न्यासपादो गुरुः ॥७॥ (शार्दूलविक्रीडितम्)
भवाब्धेर्निस्तारे प्रवहणसमः क्षान्तिसदन-
स्तपोवह्निव्रातैर्दुरितदलिकं ✱ ज्वालयति यः ।
तथा यः संपूज्यश्चरणकुशलः सोदरवरो
जितेन्द्रः स्तात् सिद्ध्यै स त्रिजयपदान्तो मम गुरुः ॥८॥ (शिखरिणी)
पापानि विलयं यान्ति, यन्नामस्मृतिमात्रतः ।
ते सर्वे मुनयः सन्तु, श्रेयसे भूयसे मम ॥ ९ ॥ (अनुष्टुप्)
❀रचिता क्षपकश्रेणिः स्वपरेषां हिताय या ।
तत्स्वाध्यायसुयोगेन भूयान्नः कर्मसंक्षयः ॥१०॥ (अनुष्टुप्)
श्रुतदेवीं हृदि स्मृत्वा पूज्यानां च प्रसादतः ।
स्वोपज्ञां क्षपकश्रेणिं विवृणोमि यथागमम् ॥११॥ (अनुष्टुप्)

इह खलु बहुभवोपार्जितशुभाशुभकर्मकलापजनितसंयोगवियोगसंकल्पविकल्पादिमच्छकच्छपादिजलजन्तुसंव्याप्ते दुःसहकामवाडवाग्निप्रजाज्वल्यमाने क्रोधादिकषायावर्तपरिपूरिते विषयगिरि-

★कर्माणि व्यापाराः प्रवृत्तय इति पर्यायाः । 卐 कर्माणि—ज्ञानावरणादिलक्षणानि । ✱ दलिक=काष्ठम् ।
❀ प्राकृतभाषायां निबद्धा ।

कूरसंभृतेऽनाद्यनन्तसंसारपारावारे निमज्जता भव्यजन्तुनाऽनेकभवदुष्प्रापां प्रशस्तमानुषजन्मादिसामग्रीं कथमपि संप्राप्य भवाब्धिसमुत्तरणैकप्रवहणसमे सकललोकालोकविलोकनैककुशलविमलकेवलालोकललितलक्ष्मीविलासितीर्थकरप्ररूपिते धर्मे यत्नः कर्तव्यः । यदुक्तम्

"भवकोटीदुष्प्रापामवाप्य नृभवादिसकलसामग्रीम् ।
भवजलधियानपात्रे धर्मे यत्नः सदा कार्यः ॥१॥" इति ।

तत्राऽपि विशेषतः परोपकारकरणे प्रवर्तितव्यम्, तस्याऽन्वय-व्यतिरेकाभ्यामपि पुण्यबन्धकर्मनिर्जरादिनिबन्धनत्वात् । स चोपकारो द्विविधो द्रव्यभावभेदात् । तत्र द्रव्योपकारो भोजनशयनादिप्रदानादिस्वरूपः, स चाऽल्पीयान् अनात्यन्तिक ऐहिकदुःखोच्छेदेऽप्यसमर्थः, भावोपकारस्तु गरीयान् आत्यन्तिक ऐहिकामुष्मिकसर्वदुःखोच्छेदक्षमो जैनेन्द्रप्रवचनोपदेशादिलक्षणः । यदन्यत्रापि

"नोपकारो जगत्यस्मिंस्तादृशो विद्यते क्वचित् ।
यादृशी दुःखोच्छेदाद् देहिनां धर्मदेशना ॥ १ ॥" इति ।

स चोपदेशो यद्यप्युपदेष्टव्यभेदादनेकविधः, तथापि क्षपकश्रेणिविषयः कर्मक्षपणाविधिः प्रथमत उपदेष्टव्यः, तदुपदेशेन स्वबुद्धकर्मक्षपणाप्रक्रियाः प्राणिनः कर्मोच्छेदोपायानुपादाय कर्मोच्छेदं विधाय परमानन्दपदमासादयिष्यन्तीत्यवगत्य बहुविस्तराऽतिगम्भीर-कर्मप्रकृति-शतक-सप्ततिका-कषायप्राभृतादितच्चूर्णिवृत्त्यादिप्रतिपादितक्षपणाप्रक्रियास्वरूपसुबोधार्थं च तत्तद्ग्रन्थोक्तकर्मक्षपणापदार्थान् सङ्गृह्य क्षपकश्रेणिनामकं ग्रन्थं प्रारिप्सुरादौ तावत् समस्तप्रत्यूहव्यूहविध्वंसाय शिष्टसमयपरिपालनाय च मङ्गलगर्भां प्रेक्षावत्प्रवृत्त्यर्थं चाऽभिधेयादिगर्भां प्रथमगाथां प्राह

**पणमिअ सिरिपासजिणं सुरअसुरणरिंदवंदिअं णाहं ।
वुच्छामि खवगसेढिं सपरहिअट्ठं गुरुपसाया ॥१॥**

प्रणम्य श्रीपार्श्वजिनं सुरासुरनरेन्द्रवन्दितं नाथम् ।
वक्ष्यामि क्षपकश्रेणिं स्वपरहितार्थं गुरुप्रसादात् ॥१॥ इति पदसंस्कारः ।

'पणमिअ' इत्यादि, 'प्रणम्य', अत्र प्रशब्दः प्रकर्षार्थकः, ततो मनसा प्रणिधाय वचनेन स्तुत्वा कायेन नत्वा चेत्यर्थः, इत्थं प्रकर्षार्थकप्रशब्देन केवलद्रव्यनमस्कारोऽपाक्रियते, अन्यथा वीरकादिनमनवद् द्रव्यनमस्कारस्याकिञ्चित्करत्वेन फलाभावः स्यात् । तथा प्रकर्षार्थकप्रशब्द-उपहासनमस्कारमपि निराकरोति, अन्यथा "नमस्यं तत्सखि प्रेम घण्टारसितसोदरम् । क्रमक्रशिमनिस्सारमारम्भगुरुडम्बरम् ॥" इत्यादिवदुपहासनमस्कारप्रमोऽपि स्यादिति । कं प्रणम्य ? इत्याह 'सिरिपासजिणं' ति 'श्रीपार्श्वजिनम्' तत्र स्पृशति ज्ञानेन सर्वभावानिति पार्श्वः, यद्वा भगवति गर्भस्थे जनन्या निशि शयनीयस्थयाऽन्धकारे सर्पो दृष्ट इति गर्भानुभावोऽयमिति मत्वा पश्यतीति निरुक्ता-

त्पार्श्वः, अथवा पार्श्वः=पार्श्वनामा यक्षो भगवतो वैयावृत्यकरः, तस्य नाथः पार्श्वनाथः, ततः "ते लुग् वा" (सिद्धहेम०३-२-१०८) इत्यनेन सूत्रेण नाथशब्दस्य लोपः, तेन पार्श्वः, जयति रागद्वेषमोहानिति जिनः, पार्श्वश्चासौ जिनश्च पार्श्वजिनः, उपान्त्यजिनपतिरित्यर्थः, श्रीः—केवलज्ञानलक्ष्मीलक्षणा-ऽष्टमहाप्रातिहार्यस्वरूपा वा, तया युक्तः पार्श्वजिनः श्रीपार्श्वजिनः, तम् । किंविशिष्टं श्रीपार्श्वनाथम् ? इत्याह-'णाहं' ति'नाथम्'"नाथृङ् उपतापैश्वर्याशीःषु च"नाथति= इष्टे—ईश्वरो भवतीति नाथः, नाथ्धातोः "अच्" (सिद्धहेम० ५-१-४९) इत्यनेन सूत्रेण कर्तरि अच्प्रत्ययः, घनघातिकर्मपटलक्षयेण परप्रवादिचेतश्चमत्कार्यष्टमहाप्रातिहार्यैश्वर्ययुक्तत्वात्तस्यैव परमार्थतो नाथत्वं घटते, न त्वैहिकभूपत्यादीनाम् । यद्वा धातूनामनेकार्थत्वात् नाथति=योगक्षेमौ करोतीति नाथः,पूर्ववद् अच्प्रत्ययः । तत्राप्राप्तानां सम्यक्त्वादीनां प्राप्तिर्योगः, प्राप्तानां सम्यक्त्वादीनां संरक्षणं क्षेमः । तीर्थकृतामचिन्त्यमाहात्म्यादेव भव्याः प्रागप्राप्तसम्यक्त्वादीनश्नुवत इति योगकरत्वं तीर्थकृताम् । प्राप्तसम्यक्त्वादयो भव्यास्तीर्थकृन्माहात्म्यात् तत्तद्रागाद्युपद्रवाद्यभावेन सम्यक्त्वादिषु स्थिरीभवन्तीति क्षेमकृत्त्वं तीर्थकृताम् । अतो युक्तियुक्तमेतद्-भव्यानां योगक्षेमकरो भगवानिति, तम् । पुनः किंविशिष्टम् ? इत्याह—'सुरअसुरणरिंदवंदिअं' ति 'सुरासुरनरेन्द्रवन्दितम्' "सुरत् ऐश्वर्यदीप्त्योः" सुरन्ति=विशिष्टैश्वर्यमनुभवन्ति, यद्वा दिव्याभरणकान्त्या सहजशरीरकान्त्या च दीप्यन्त इति सुराः "नाम्युपान्त्य०" (सिद्धहेम०-५-१-५४) इत्यनेन सूत्रेण कर्तरि कप्रत्ययः, यदि वा "राजृ दीप्तौ"सुष्ठु राजन्त इति सुराः, "क्वचित्" (सिद्धहेम० ५-१-१७१) इत्यनेन सूत्रेण डप्रत्ययः, अथवा सुन्वन्तीति सुराः, यद्वा सुरा एषामस्तीति सुराः "अभ्रादिभ्यः" (सिद्धहेम०७-२-४६) इत्यनेन अप्रत्ययः,यतोऽब्धिजा सुरा तैः पीतेति प्रसिद्धम् , देवा इत्यर्थः । "असूच् क्षेपणे" अस्यन्ति=क्षिपन्ति देवानित्यसुराः "वाश्यसि०" (सिद्धहेम० उणादि ४२३) इत्यनेन सूत्रेण उरप्रत्ययः, सुरविरुद्धत्वाद्वा न सुरा असुराः, अनर्थवद् नञ् समासः, दानवा इत्यर्थः । "नृश् नये" नृणन्तीति नराः "अच्" (सिद्धहेम० ५-१-४९) इत्यनेन सूत्रेण कर्तरि अच्प्रत्ययः, मनुष्या इत्यर्थः, सुराश्चाऽसुराश्च नराश्च सुरासुरनराः, "इदु परमैश्वर्ये" इन्दन्तीति इन्द्राः "भीवृधि०" (सिद्धहेम० उणादि-३८७) इत्यनेन सूत्रेण रप्रत्ययः, स्वामिन इत्यर्थः सुरासुरनराणामिन्द्राः सुरासुरनरेन्द्राः, तैः सुरासुरनरेन्द्रैः, इन्द्रशब्दोऽत्र प्रत्येकमभिसम्बध्यते, "द्वन्द्वान्ते श्रूयमाणं पदं प्रत्येकमभिसंबध्यते"इति न्यायोपलम्भात् । ततश्चायमर्थः-सुरेन्द्रैश्चासुरेन्द्रैश्च नरेन्द्रैश्च वन्दितं= स्तुतिगोचरीकृतम् अभिवादनविषयीकृतं वा,एतेन सकललोकालोकप्रकाशककेवलादर्शसङ्क्रान्तसमस्तभावानामुन्मूलितापारसंसारकाननपरिभ्रमणैककारणमोहनीयकर्मणां सकलसत्त्वहितकरपञ्चत्रिंशद्गुणसमन्वितवाचां निजक्रमकमलकोमलक्रमकान्त्योद्द्योतितभक्तिभरभृतहृत्सुरासुरनरनायकनमन्मौलिमुकुटमणिप्रभाणां तीर्थकृतां त्रिभुवनपूज्यत्वमावेदितं तथा विघ्नविघाताय शिष्टसमयपरिपालनाय च मङ्गलोपन्यासः कृतः ।

ननु प्रस्तुतग्रन्थः श्रुतरूपत्वात् श्रुतस्य च ज्ञानपञ्चकान्तःपातित्वेन तस्य भावनन्दित्वात् स्वयमेव मङ्गलम् । यदुक्तम्–"तं च सुयनाणं मंगलं,कम्हा ? भन्नइ णंदी भावमंगलं ति काउं।" इति । अपि च क्षपकश्रेणिग्रन्थो निर्जरार्थः, तथा च सति तपोवत् सर्व एव ग्रन्थो मङ्गलम् । इह "पणमिअ" इत्यादिमङ्गलोपन्यासात् त्वस्य ग्रन्थस्याऽमङ्गलता प्रसज्यते, अमङ्गले मङ्गलोपादानस्य सार्थक्यात् । यदि पुनर्मङ्गलेऽप्यस्मिन् ग्रन्थेऽन्यन्मङ्गलं क्रियते, तर्ह्यनवस्था । तथाहि–यथा मङ्गलस्याऽप्यस्य ग्रन्थस्य सतोऽन्यद् मङ्गलमुपादीयते, तथा मङ्गलस्याऽपि तद्रूपस्य सतोऽन्यद् मङ्गलमुपादेयम्, तस्याऽप्यन्यद्, अन्यस्याऽप्यपरम्, अपरस्याऽप्यन्यदित्येवमनवस्थाऽऽपततीति चेत्, न, अस्य हि ग्रन्थस्य मङ्गलरूपत्वेऽपि "पणमिअ" इत्यादिना कृतस्य मङ्गलस्य न नैरर्थक्यं नवाऽनवस्था । तद्यथा–यतोऽयं क्षपकश्रेणिग्रन्थो मङ्गलम्, तत एवाऽस्यैकदेशोऽभीष्टदेवतास्तुतिव्यापको मङ्गलत्वेन ज्ञापितः । न ह्यमङ्गलपदार्थस्या-ऽवयवे कदापि मङ्गलत्वं सम्भवति, कटुनिम्बैकदेशे माधुर्याऽसम्भववत् । यच्चात्र ग्रन्थैकदेशस्य विभज्य मङ्गलत्वेन प्रादुष्करणम्, तद् अस्य ग्रन्थस्याऽपरिकर्मितमतीनां जनानां मङ्गलत्वप्रत्ययनाय, अनास्वादितमोदकानां तन्माधुर्यविबोधाय तत्कणिकासमर्पणवत् ।

किञ्च यद्येतावानप्यस्य ग्रन्थस्याऽवयवः सर्वेष्टार्थसम्पादनक्षमः,तर्हि समस्तो-ऽयं ग्रन्थोऽस्मत्तोऽस्माकं महते समभ्युदयाय भविष्यतीति विशेषावगमाद् विशेषतः प्रवर्तेरन्निह प्राथमिकाः, तथा शास्त्रकृतामपि सर्वा प्रवृत्तिर्मङ्गलाद्यभिधानपूर्विका भवति । यदुक्तं तैः

"प्रेक्षावतां प्रवृत्त्यर्थं फलादित्रितयं बुधैः ।
मङ्गलं चैव शास्त्रादौ वाच्यमिष्टार्थसिद्धये ॥" इति ।

प्रकृते गाथार्धेन तीर्थकृतः सर्वस्वपरसंपत्संहतिसर्वस्वदेश्याश्चत्वारोऽतिशया अपि संसूचिता भवन्ति । तथाहि–श्रीपार्श्वजिनमित्यत्र जयति रागद्वेषमोहानिति जिनः "जीणृशीदीबुध्यविमीभ्यः कित्" (उणादि–२६१) सूत्रेण नप्रत्ययः, इति व्याख्यानेनाऽपायापगमातिशयः संज्ञापितः, अत्र च श्रीशब्दस्य केवलज्ञानलक्ष्मीरिति व्यक्तीकरणेन ज्ञानातिशयो बोधितः । सुरासुरनरेन्द्रवन्दितमित्यनेन पूजातिशयः प्रकटितः । नाथमित्यनेन वचनातिशयोऽभिव्यज्यते, तथाहि नाथो योगक्षेमकरः, प्रागुक्तौ योगक्षेमौ सर्वजगज्जन्तुजातचित्तचमत्कारिसुरनिकररचिताऽष्टमहाप्रातिहार्यकृतपूजस्य लोकालोकप्रकाशककेवलज्ञानयुक्तस्याऽपगतघातिकर्मणस्तीर्थकृतो मुखारविन्दाद् विनिर्गतयैककालानेकजन्तुसंदेहसंदोहापनयनकारिण्या विश्वसत्त्वस्वस्वभावापरिणामिन्या भारत्याऽपि संभवतः, इत्थं नाथमित्यनेन भगवतो वचनातिशयः संदिष्टः । एते चत्वारोऽपि देहसौगन्ध्यादीनामतिशयानामुपलक्षणम्, तानन्तरेणैषामसंभवात् । तेन चतुरतिशयैश्चतुस्त्रिंशदप्यतिशया गाथायाः पूर्वार्धेन निष्टङ्कयन्ते ।

इत्थं कृतमङ्गलोपन्यासः शास्त्रकृत् क्त्वाप्रत्ययस्योत्तरक्रियासापेक्षत्वात् तां व्याहरति-'वुच्छामि' त्ति 'वक्ष्यामि' भणिष्यामि । काम् ? इत्याह-'खवगसेढिं' ति 'क्षपकश्रेणिं' क्षपकस्य=कर्माणि क्षपयतः श्रेणिः=क्रमः क्षपकश्रेणिः, ताम् . क्षपणाक्रमश्चायम्-आदौ मोहनीयम् , ततो घातित्रयम् , ततोऽघातिचतुष्कं विनाशयति । प्रयोजनं ब्रुवन् पुनः प्राह-'सपरहिअट्ठ' त्ति 'स्वपरहितार्थम् ',स्वस्य=आत्मनः परेषाम्=अन्येषां च, हितं=मोक्षः, स्वपरहितम् , तदेव अर्थः=प्रयोजनं यत्र तत्तथा, क्रियाविशेषणत्वात् "क्रियाविशेषणात्" (सिद्धहेम० २-२-४१) इत्यनेन सूत्रेण द्वितीया विभक्तिः ।

साम्प्रतं स्वस्यौद्धत्यं परिहरन् प्राह-'गुरुपसाय' त्ति 'गुरुप्रसादात्' तत्र गृणन्ति=उपदिशन्ति धर्ममिति गुरवः, अर्थापेक्षया तीर्थङ्कराः, सूत्रापेक्षया तु गणधराः, यत् प्रत्यपादि "अत्थं भासइ अरहा सुत्तं गंथंति गणहरा निउणं ।" इति ।

यद्वाऽस्मदादिगुरुपर्यन्ताः सर्वे गुरुपदवाच्याः, तेषामपि सूत्रार्थप्रदानतो धर्मोपदेशकत्वस्याऽक्षतत्वात् । विशेषतस्तु परमगीतार्थानामशेषशेमुषीशालिकुलविद्वस्यमानानां सकलागमरहस्यज्ञानां भीमकान्तादिगुणैर्गरिष्ठानां श्रीमद्विजयदानसूरीश्वराणां विनेयवृषभा गच्छाधिपतयो-ऽनेकबाल युववृद्धमुनिपुङ्गवव्रजैः संसेव्यमानचरणारविन्दाः प्रातःस्मरणीयाः श्रीमद्विजयप्रेमसूरीश्वरा गुरुपदेन ग्राह्याः, प्रव्रज्याप्रदान-सम्यग्ज्ञानदानादिना तेषामासन्नोपकारित्वात् । तेषाम्, प्रसादात्= अनुग्रहात् , न तु निजबुद्धिप्रतिमादिबलात् । शक्तिविकला अपि जना गुरुप्रसादाद् दुष्कराणामपि कार्याणां पारं प्रयान्तीति श्रद्धानोऽहमपि गुरुप्रसादात् क्षपकश्रेणिग्रन्थग्रथने समर्थो भूत्वा तां वक्ष्यामीति भावः ।

'खवगसेढिं' इत्यनेन प्रेक्षावत्प्रवृत्त्यर्थमभिधेयनिर्देशः कृतः, एतदुक्तौ हि शास्त्रश्रवणादिप्रवृत्तेः । उक्तं च-

"श्रुत्वाऽभिधेयशास्त्रादौ पुरुषार्थोपकारकम् ।
श्रवणादौ प्रवर्तन्ते तज्जिज्ञासादिनोदिताः ॥१॥" इति ।

'सपरहिअट्ठ" इत्यनेन प्रयोजनं दर्शितम् ,तद्विना कृतिनां प्रवृत्त्यभावात् । न्यगादि च-

"प्रयोजनमनुद्दिश्य, न मन्दोऽपि प्रवर्तते ।
एवमेव प्रवृत्तिश्चेच्चैतन्येनास्य किं भवेत् ॥१॥" इति ।

तच्च प्रयोजनं शास्त्रकर्तृश्रोत्रोरनन्तरपरम्परभेदाच्चिन्त्यम् । तत्र शास्त्रकर्तुरनन्तरं प्रयोजनं सत्त्वानुग्रहः,बहुविस्तरशास्त्रपठनाद्यसमर्थानां संक्षिप्तरुचिजन्तूनां संक्षिप्तशास्त्रे प्रवृत्तेः । यदुक्तम्-

"सुयसायरो अपारो आऊ थोवं जिआ य दुम्मेहा ।
तं किं पि सिक्खियव्वं जं कज्जकरं च थोवं च ॥१॥" इति ।

कर्मनिर्जरा वा ग्रन्थग्रथनलक्षणस्वाध्यायादभ्यन्तरतपसो बहुतरनिर्जरासंभवात् । स्वदृढस्मृतिर्वा, ग्रन्थविरचनादिना हि तत्कर्तुः स्मृतिर्दृढा दृढतरा दृढतमा च जायते ।

परम्परप्रयोजनं त्वपवर्गावाप्तिः, धर्मोपदेशदानस्य हि मोक्षफलत्वात् । तथा चोक्तम्

"सर्वज्ञोक्तोपदेशेन, यः सत्त्वानामनुग्रहम् ।
करोति दुःखतप्तानां स प्राप्नोत्यचिराच्छिवम् ॥१॥" इति ।

श्रोतुरनन्तरं प्रयोजनं तु क्षपकश्रेणिविषयकं ज्ञानम्; परम्परं तु निर्वाणावाप्तिः । तथाहि—विज्ञातसारभूतकर्मक्षपणाक्रमाः प्राणिनः प्रकृत्यसारात् संसाराद् विरज्यन्ते । ततः कर्मक्षयाय प्रयत्नं समाचरन्ति,क्षीणे च कर्मणि निःश्रेयसमासादयन्ति । यदुक्तम्

"सम्यक्शास्त्रपरिज्ञानाद् विरक्ता भवतो जनाः ।
क्रियासक्ता ह्यविघ्नेन गच्छन्ति परमां गतिम् ॥१॥" इति ।

मङ्गला-ऽभिधेय-प्रयोजनानि प्रोक्तानि, सम्प्रति प्रेक्षावतां प्रवृत्त्यर्थं सम्बन्धोऽपि वक्तव्यः । यदुक्तम्

"उक्तार्थं ज्ञातसम्बन्धं श्रोतुं श्रोता प्रवर्तते ।
शास्त्रादौ तेन वक्तव्यः, सम्बन्धः सप्रयोजनः ॥१॥" इति ।

स च द्विविधः, गुरुपर्वक्रमलक्षण उपायोपेयस्वरूपश्चेति । तत्राद्यः श्रद्धाऽनुसारिणः प्रति, स च "गुरुपसाया" इत्यनेन दर्शितः । तथाहि—घनघातिकर्मचतुष्के विलयमापादिते लब्धलोकालोकप्रकाशककेवलज्ञानेनाऽष्टमहाप्रातिहार्यपरमार्हन्त्यसम्पत्समृद्धेन भगवता श्रीमहावीरेण संसारमहीरुहोन्मूलनैकहेतुपञ्चत्रिंशद्गुणसमन्वितसर्वजगज्जन्तुजातस्वस्वभाषापरिणामिभारत्या सुरासुरनरेश्वरनिकरपरिकरितपर्षदर्थतः कर्मक्षपणाक्रमः प्रतिपादितः,स च गणभृता सुधर्मस्वामिना सूत्रतो रचितः । तदनु जम्बूस्वामि-प्रभव-शय्यम्भव-यशोभद्र-सम्भूतिविजय-भद्रबाहु स्थूलभद्र-कर्मप्रकृतिकार-सप्ततिकाकार-कषायप्राभृतकार-तच्चूर्णिकार-वृत्तिकारादिभिः स्वकीयस्वकीयशास्त्रेषूपनिबद्धः । ततस्तत्तच्छास्त्राध्ययनाऽध्यापनादिना समानीतो यावदस्मद्गुरुचरणाः । ततो विनयवैयावृत्त्यादिना प्रसन्नैस्तैर्मां प्राध्यापितः । इत्थं परम्परया सर्वज्ञमूलकर्मक्षपणाक्रमो यस्माद् गुरुप्रसादाद् मया प्राप्तः, तमेवाश्रित्य परम्परया समागतं क्षपणाक्रमं क्षपकश्रेणिग्रन्थरूपेण भवन्तं वक्ष्यामीति, तदेवं "गुरुपसाया" इत्यनेन गुरुपर्वक्रमलक्षणः सम्बन्धः सूचितः । उक्तसम्बन्धविरहे तु छद्मस्थावस्थाऽगोचरविविधाऽतीन्द्रियपदार्थसार्थप्रतिपादके शास्त्रे सुधियो न प्रवर्तेरन्, अभिदध्युश्च ते यथा—नाऽऽरम्भणीयमेतच्छास्त्रम्, सम्बन्धवन्ध्यत्वात् स्वेच्छारचितशास्त्रवदिति ।

द्वितीयस्तु तर्कानुसारिणः प्रति । स चैवम् वचनरूपाऽऽपन्नः क्षपकश्रेणिग्रन्थ उपायः, तत्परिज्ञानं चोपेयम् । सामर्थ्यादेव सम्बन्धो ज्ञायते, साक्षात् तु नासौ कथितः ॥१॥

अभिहितं मङ्गलमभिधेयादि । सम्प्रति क्षपकश्रेणिं प्रतिपादयितुकाम आदौ तावत् तस्या नवा-ऽधिकारान् गाथाद्वयेन प्राह

तत्थ य णव अहिगारा अहापवत्तकरणं तह हवेइ ।
करणमपुव्वं हवए सवेअअणियट्टिकरणं च ॥२॥
हयकण्ण-किट्टिकरण-तयणुहव-अवगयकसायअद्धा य ।
तह अत्थि सजोगिगुणट्ठाणमजोगिगुणठाणं च ॥३॥

तत्र च नवाधिकारा यथाप्रवृत्तकरणं तथा भवति ।
करणमपूर्वं भवति सवेदा-ऽनिवृत्तिकरणं च ॥ २ ॥
हयकर्ण-किट्टिकरण-तदनुभवा-ऽपगतकषायाद्धा च ।
तथाऽस्ति सयोगिगुणस्थानमयोगिगुणस्थानञ्च ॥३॥ इति पदसंस्कारः ।

'तत्थ' इत्यादि, 'तत्र च' ग्रन्थरूपायां क्षपकश्रेणौ 'नव' नवसङ्ख्याका अधिकाराः सन्तीत्युपस्कारः । अथाऽधिकारान् नामग्राहं भणति—'अहापवत्तकरणं' इत्यादि, प्रथमोऽधिकारो यथाप्रवृत्तकरणम् , कथयिष्यते च "अणाचउगं" इत्यादिगाथाभिः । तथाशब्दः समुच्चये, एवमग्रेऽपि, 'करणमपूर्वम्' द्वितीयोऽधिकारोऽपूर्वकरणं भवति । भाषिष्यते च "कायव्वं सेकाले" इत्यादिगाथाभिः । 'हवए सवेअअणियट्टिकरणं च' त्ति चकारः समुच्चये, एवमग्रेऽपि, तृतीयोऽधिकारः सवेदाऽनिवृत्तिकरणं भवति, तत्र वेदेन=वेदोदयेन सह सवेदम्, "सहस्तेन" (सिद्धहेम० ३-१-२४) इत्यनेन सूत्रेण बहुव्रीहिसमासः, सवेदं च तदनिवृत्तिकरणं च सवेदाऽनिवृत्तिकरणम् । एतदुक्तं भवति-अनिवृत्तिकरणस्य प्रथमसमयात् प्रभृति पुरुषवेदोदयचरमसमयं यावद् या क्षपणप्रक्रिया भवति, साऽस्मिन्नधिकारे निरूपयिष्यते । प्रतिपादयिष्यते चा-ऽयमधिकारः "सेकाले अनियट्टि" इत्यादिगाथाभिः ।

'हयकण्ण०' इत्यादि, 'हयकर्ण-किट्टिकरण-तदनुभवा-ऽपगतकषायाद्धा च' करणशब्दो द्वाभ्यां सम्बध्यते, अद्धाशब्दश्च प्रत्येकमभिसम्बध्यते, "द्वन्द्वान्ते श्रूयमाणं पदं प्रत्येकमभिसम्बध्यते ।" इति न्यायात् । ततश्चायमर्थः—हयकर्णकरणाद्धा, किट्टिकरणाद्धा, तदनुभवाद्धा= किट्टिवेदनाद्धा, तच्छब्दस्य पूर्ववस्तुपरामर्शित्वेन किट्टेः परामर्शात् , अपगतकषायाद्धा=क्षीणकषायकालो द्वादशगुणस्थानककाल इत्यर्थः, तत्र सर्वथा कषायापगमनदर्शनात् । न चाऽपगतकषायशब्देन सयोगिकेवलिगुणस्थानका-ऽयोगिकेवलिगुणस्थानकेऽपि कुतो न गृह्येते ? इति वाच्यम् , तयोरग्रे वक्ष्यमाणत्वेन तत्र पुनरुक्ततापसङ्गात् । भावार्थः पुनरयम्—चतुर्थोऽधिकारो हयकर्णकरणाद्धा, विवर्णयिष्यते च "हयकण्ण०" इत्यादिगाथाभिः, इहाऽपूर्वकरणवदनिवृत्तिकरणमेकाऽधिकारमनभिधायाऽनिवृत्तिकरणे यत् पृथक्पृथक्सवेदाऽनिवृत्तिकरण-हयकर्णकरणाद्धादिकाऽभिधानम् , तत्प्रयोजनमग्रे वक्ष्यते । पञ्चमोऽधिकारः किट्टिकरणाद्धा, दर्शयिष्यते च "पुण्णे हयकण्णे" इत्यादिगाथाभिः । षष्ठो-ऽधिकारः किट्टिवेदनाद्धा, निरूपयिष्यते "तत्तो य कोहपढमं"

इत्यादिगाथाभिः । सप्तमो-ऽधिकारः क्षीणकषायाद्धा, प्रतिपादयिष्यते च "से कालेऽवगय-कसायगुणं" इत्यादिगाथाभिः ।

'तह' इत्यादि,तथा 'सयोगिगुणस्थानं' "भीमो भीमसेनः" इति न्यायात् पदैकदेशेन पदसमुदायस्य गम्यमानत्वात् सयोगिकेवलिगुणस्थानकमष्टमोऽधिकारोऽस्ति,कथयिष्यते च "सेकाले पावेइ" इत्यादिगाथाभिः । 'अयोगिगुणस्थानञ्च' अयोगिकेवलिगुणस्थानकं च नवमो-ऽधिकारोऽस्ति, वर्णयिष्यते च 'सेकाले लहइ" इत्यादिगाथाभिः ॥२, ३॥

अथ "यथोद्देशं निर्देशः" इति न्यायेन प्रथमाऽधिकारं विवर्णयितुकामः प्राह

अणचउगं दिट्ठितिगं च खविय उज्जमइ सेसखवणाए ।
आढवइ अप्पमत्तो अहापवत्तकरणं समणो ॥४॥

अनचतुष्कं दृष्टित्रिकञ्च क्षपयित्वोद्यच्छते शेषक्षपणायै।
आरभतेऽप्रमत्तो यथाप्रवृत्तकरणं श्रमण ॥४॥ इति पदसंस्कार ।

'अणचउगं' इत्यादि-'अनचतुष्कम्' पदैकदेशेन पदसमुदायस्य गम्यमानत्वाद् अनन्तानुबन्धिचतुष्कम् अनन्तानुबन्धिक्रोध-मान-माया लोभलक्षणम् , 'दृष्टित्रिकञ्च' मिथ्यात्वमोहनीय-सम्यङ्मिथ्यात्वमोहनीय-सम्यक्त्वमोहनीयलक्षणं दर्शनत्रिकं च 'क्षपयित्वा' निःसत्ताकीकृत्य 'शेष-क्षपणायै' शेषाणाम्=अप्रत्याख्यानावरण-प्रत्याख्यानावरण-संज्वलनकषाय-नवनोकषायरूपमोहनीय-स्य ज्ञानावरणादीनां च क्षपणायै=विनाशाय 'उद्यच्छते' चेष्टते जीवः । अयम्भावः—चतुर्गतिकोऽविरत-सम्यग्दृष्टिर्देशविरतस्तिर्यङ् मनुष्यो वा सर्वविरतस्तु मनुष्य आन्तर्मौहूर्तिकानि यथाप्रवृत्तकरणाऽपूर्व-करणाऽनिवृत्तिकरणाख्यानि त्रीणि करणानि कुरुते, तत्रा-ऽपूर्वकरणप्रथमसमयतः प्रभृति स्थितिघातं रसघातमपूर्वस्थितिबन्धं गुणश्रेणि गुणसंक्रमं च करोति,तथाऽनन्तानुबन्धिक्रोध-मान-माया-लोभानां प्रदेशाग्रं गुणसङ्क्रमेणोद्वलनासंक्रमानुविद्धेन विनाशयति=शेषकषायत्वेन स्थापयतीत्यर्थः । अपूर्वकरणं विधायाऽनिवृत्तिकरणं कुरुते । तत्र चाऽनन्तानुबन्धिनां स्थितिं यथाक्रममपवर्तनाकरणेन घातयन् पल्योपमाऽसंख्येयभागप्रमाणां विधत्ते । अपवर्तनाविधिश्च कर्मप्रकृत्युक्तोद्वलनासङ्क्रमवद् बोध्यः । अनन्तानुबन्धिनां पल्योपमाऽसंख्येयभागप्रमाणस्थितिगतमपि दलमधस्तादावलिकामात्रं परित्यज्य बध्यमानमोहनीयप्रकृतिषु प्रतिसमयमसंख्येयगुणक्रमेण परिणमयंश्चरमसमये सर्वसङ्क्रमेण परिणमयति । पञ्चावलिकागतं दलिकम् ,तत् स्तिबुकसङ्क्रमेण वेद्यमानासु परप्रकृतिषु संक्रमयति । ततोऽन्तर्मुहूर्ताद् परतोऽनिवृत्तिकरणपर्यवसाने शेषकर्मणामपि स्थितिघातादीन् न करोति, किन्तु स्वभावस्थ एव भवति ।

आवश्यकचूर्णिकाराद्यभिप्रायेण त्वनन्तानुबन्धिनामनन्ततमभागप्रमाणं दलं मिथ्यात्वे प्रक्षिपति,ततो यदा दर्शनत्रिकक्षपणामारभते, तदा मिथ्यात्वं तदंशेन सहैव क्षपयति । तथा चोक्त-

आवश्यकचूर्णौ–"अणंताणुबंधिकोह-माण-माया-लोभा जुगवं खवेंति, पच्छा ताणं अणंतभागं मिच्छत्तवेयणिज्जे कम्मे छुभन्ति, ताहे तं खवेति ।" इति ।

इह कालान्तरे कश्चिद् मिथ्यात्वोदयाद् भूयोऽप्यनन्तानुबन्धिन उपचिनोति, तद्बीजस्य मिथ्यात्वस्याविनाशात् । अन्यस्तु विनाशितानन्तानुबन्धी जीवो जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्तमात्रं कालमुत्कृष्टतश्च सागरोपमाणां सातिरेके द्वे षट्षष्टी व्यतिक्रम्य दर्शनत्रिकक्षपणाय प्रयतते । तत्र जिनविहरणकालसंभवी वर्षाष्टकस्योपरि वर्तमानः प्रथमसंहननो मनुष्यो दर्शनत्रिकक्षपणार्थं यथाप्रवृत्तादीनि त्रीणि करणानि करोति । तत्राद्यो तावद् यथाप्रवृत्तकरणं करोति, ततोऽपूर्वकरणम् । अपूर्वकरणेऽनुदितयोर्मिथ्यात्व-सम्यङ्मिथ्यात्वयोर्दलिकं गुणसंक्रमेण सम्यक्त्वमोहनीये प्रक्षिपति, उद्वलनासंक्रममपि तयोरारभते । तद्यथा–प्रथमस्थितिखण्डं बृहत्तरमुद्वलयति, ततो द्वितीयं विशेषहीनम्, ततस्तृतीयं विशेषहीनम्, ततोऽपि चतुर्थं विशेषहीनम् । एवं तावद्वाच्यम्, यावदपूर्वकरणचरमस्थितिखण्डम् । ततोऽनिवृत्तिकरणं विधत्ते । तत्र स्थितिघातादयः पूर्ववत् प्रवर्तन्ते । अनिवृत्तिकरणे प्रथमसमयतो दर्शनमोहस्य देशोपशमना-निधत्ति-निकाचनाकरणानि व्यवच्छिद्यन्ते । दर्शनत्रिकस्य स्थितिसत्कर्माऽनिवृत्तिकरणप्रथमसमयादारभ्य स्थितिघातादिभिर्घात्यमानं स्थितिखण्डसहस्रेषु गतेष्वसंज्ञिपञ्चेन्द्रियस्थितिसत्कर्मतुल्यं भवति । ततः स्थितिखण्डसहस्रपृथक्त्वे गते चतुरिन्द्रियस्थितिसत्कर्मसमानं भवति, ततोऽपि तावन्मात्रेषु स्थितिखण्डेषु व्रजितेषु त्रीन्द्रियस्थितिसत्कर्मतुल्यं भवति । ततः पुनस्तावन्मात्रेषु स्थितिखण्डेषु व्यतिक्रान्तेषु द्वीन्द्रियस्थितिसत्कर्मसमानं भवति । ततस्तावन्मात्रेषु स्थितिखण्डेषु व्यतीतेष्वेकेन्द्रियस्थितिसत्कर्मतुल्यं स्थितिसत्त्वं भवति । ततोऽपि तावन्मात्रेषु स्थितिखण्डेषु गतेषु स्थितिसत्त्वं पल्योपममात्रं जायते, ततो दर्शनत्रिकस्य स्थितिसत्कर्मण एकं संख्येयभागं विमुच्य शेषान् संख्येयान् बहून् भागान् विनाशयति । एतच्च कर्मप्रकृतिचूर्णिकाराद्यभिप्रायेण प्रोक्तम् । पञ्चसंग्रहकाराभिप्रायेण तु पल्योपमसंख्येयभागमात्रस्थितिसत्कर्मभवनानन्तरं स्थितिसत्कर्मणः संख्येयान् भागान् विनाशयति । एवं स्थितिघाताः सहस्रशो गच्छन्ति, तदनन्तरं मिथ्यात्वस्याऽसंख्येयभागान् विनाशयति, सम्यक्त्वमोहनीयसम्यङ्मिथ्यात्वमोहनीययोस्तु पूर्ववत् संख्येयान् भागान् विनाशयति । अनेन क्रमेण बहुषु स्थितिखण्डेषु गतेषु मिथ्यात्वमुदयावलिकारहितं सर्वं क्षीणम् । पञ्चावलिकागतम्, तत् स्तिबुकसङ्क्रमेण सम्यक्त्वमोहनीये प्रक्षिपति । तदानीं सम्यक्त्वमोहनीय-सम्यङ्मिथ्यात्वमोहनीययोः स्थितिसत्कर्म पल्योपमाऽसंख्येयभागमात्रमवतिष्ठते । तस्याऽसंख्येयभागान् स्थितिखण्डेन विनाशयति, एकमसंख्येयभागं मुञ्चति । ततः प्रभृतेषु स्थितिखण्डेषु व्रजितेषु सम्यङ्मिथ्यात्वमावलिकामात्रमवतिष्ठते, शेषं सर्वं क्षीणम्, सम्यक्त्वमोहनीयस्य च स्थितिसत्कर्माऽष्टवर्षमात्रं भवति । अष्टवर्षमात्रस्थितिसत्कर्मा निश्चयनयमतेन दर्शनमोहनीयक्षपक उच्यते । ततः परमान्तर्मौहूर्तिकान्यनेकानि स्थिति-

खण्डानि विघातयति। तत्र चरमस्थितिखण्डे घातितेऽसौ क्षपकः कृतकरणो भण्यते। अस्यां च कृतकरणाद्धायां वर्तमानः कश्चित् कालमपि कृत्वा चतसृणां गतीनामन्यतमायां गतो समुत्पद्यते, तदानीं च लेश्यापरावृत्तिरपि भवति। एवं दर्शनत्रिकक्षपणायाः प्रस्थापको मनुष्यो भवति, निष्ठापकस्त्वन्यतमश्चतुर्गतिकः। यदुक्तं कर्मप्रकृतिचूर्णौ-'**पट्ठवगो उ मणूसो निट्ठवगो होइ चउसु गईसु**"इति। विशेषार्थिना त्वस्मत्कृतोपशमनाकरणवृत्तिरवलोकनीया, तत्र विस्तरेण दर्शनत्रिकक्षपणायाः प्रतिपादितत्वात्।

अबद्धायुष्को वेदितसम्यक्त्वमोहनीयशेषोऽन्तर्मुहूर्तं विश्रम्य चारित्रमोहनीयादिक्षपणाय यतते, यद्यसौ न तीर्थकृन्नामसत्कर्मा,तथा चोक्तं श्रीकर्मप्रकृतिचूर्णौ-"**अह न बद्धाउओ तो खवगसेढिमेव पडिवज्जति,जति न तित्थयरसंतकंमिगो।**" इति। बद्धायुष्कः पुनर्यदि तदानीं कालं न करोति,तथापि नासौ तद्भवे चारित्रमोहादिक्षपणाय यतते,किन्तूत्कृष्टतः सातिरेकेत्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाणि व्यतिक्रम्याऽवश्यं चारित्रमोहनीयादिक्षपणाय यतते। चारित्रमोहनीयादिक्षपणाय प्रयतमानो जीव आदौ किं करोति ? इत्यत आह-'आढवइ' इत्यादि, अप्रमत्तः 'श्रमणः' श्राम्यति तपस्यतीति श्रमणः संयत इत्यर्थः, यथाप्रवृत्तकरणमारभते। अयं भावः-क्षीणसप्तकः प्रमत्तगुणस्थानकमप्रमत्तगुणस्थानकं च बहुशः स्पृशति, ततश्चारित्रमोहनीयादिक्षपणायोग्यविशुद्धिं प्राप्तो वर्षाष्टकस्योपरि वर्तमानोऽसौ प्रथमसंहननोऽप्रमत्तसंयतो यथाप्रवृत्तकरणं करोति। तत्र पूर्वविदप्रमत्तश्चेत्, तर्हि शुक्लध्यानोपगतोऽपि, अन्ये तु धर्मध्यानोपगताः। इदं तु **शतकलघुचूर्णिकृदाद्यभिप्रायेण** बोध्यम्, तच्च न विरुध्यते, **ध्यानशतककृद्भिरप्रमत्तानामपि** पूर्वधराणां शुक्लध्यानद्वयस्य स्वीकारात्। तथा च तद्ग्रन्थः

"सव्वप्पमायरहिया मुणओ खीणोवसंतमोहा य।
ज्झायारो नाणधणा धम्मज्झाणस्स निद्दिट्ठा ॥१॥
एएच्चिय पुव्वाणं पुव्वधरा सुप्पसत्थसंघयणा।..." इति।

अयं भावः-ये धर्मध्यानस्य ध्यातारोऽप्रमत्तसंयतादयो भवन्ति, त एव पूर्वयोः-पृथक्त्ववितर्कसविचारैकत्ववितर्काऽविचारलक्षणयोर्ध्यायिनो भवन्ति, अयं तु विशेषः-सुप्रशस्तसंहननाः= आद्यसंहननयुक्ताः पूर्वधराः-चतुर्दशपूर्वविदस्तदुपयुक्ताः, इदं त्वप्रमत्तसंयतानां विशेषणम्, निर्ग्रन्थानां तु माषतुषादिवदन्यथाऽपि शुक्लध्यानोपपत्तेः। तदेवं क्षपकश्रेणिं प्रतिपन्नस्य पूर्वविदः शुक्लध्यानद्वयं न विरुध्यते।

शतकबृहच्चूर्णिकारादीनामभिप्रायेण पुनः सर्वे श्रेणिं प्रतिपत्तुकामा धर्मध्यानोपगता एव भवन्ति,सूक्ष्मसम्परायं यावद् धर्मध्यानस्यैव स्वीकारात्। न चैतत्स्वमनीषिकयाऽभिहितम्, **शतकभाष्यकारै**रप्युक्तत्वात्। तथा च तद्ग्रन्थः

"सुहुमोऽकवेयगो इह सुक्कज्झाणेण डहइ कम्मं ति ।
जं वुत्तं तं आसन्नवीयरागत्तणमवेक्ख ॥ १ ॥
पुव्वमन्नहा ऊ सुहुमस्स उ धम्मझाणमेवेगं ।
होई एवं पुण गुरुपचुन्निभिप्पायओ वुत्तं ॥ २ ॥
लहुचुन्निअभिप्पाएणं सुक्कज्झाण आइयदुभेयं ।
न विरुद्धं पुव्वधराण होइ सुत्ते जओ भणियं ॥ ३ ॥" इति ।

धर्मध्यानशुक्लध्यानयोः स्वरूपं तु क्षीणकषायगुणस्थानकाद्धाप्ररूपणाऽवसरे वक्ष्यामः ॥४॥

सम्प्रति यथाप्रवृत्तकरणेऽध्यवसायस्थानानि तेषां चोर्ध्वमुखीं तिर्यङ्मुखीं च विशुद्धिं निरूपयिषुराह

परिणामट्ठाणाइं अणुसमयमसंखलोगमेत्ताणि ।
उड्ढमुहाऽणंतगुणा सोही तिरिया उ छट्ठाणा ॥५॥

परिणामस्थानान्यनुसमयमसङ्ख्यलोकमात्राणि ।
ऊर्ध्वमुख्यनन्तगुणा शोधिस्तिर्यक् तु षट्स्थाना ॥५॥ इति पदसंस्कारः ।

'परिणामट्ठाणाइं' इत्यादि, 'परिणामस्थानानि' अध्यवसायस्थानानि 'अनुसमयं' समये समय इत्यनुसमयम्, "योग्यतावीप्सा०" (सिद्धहेम० ३-१-४०) इत्यनेन सूत्रेण वीप्सायामव्ययीभावसमासः, प्रतिसमयमित्यर्थः, 'असङ्ख्यलोकमात्राणि' विशुद्धिभेदेनाऽसङ्ख्येयलोकाकाशप्रदेशराशिप्रमाणानि भवन्ति ।

ननु यथाप्रवृत्तकरणं प्रतिपन्नानां कालत्रयापेक्षया जीवानामनन्तत्वेनाऽध्यवसायस्थानानामनन्तत्वं कुतो न भवति ? इति चेत्, उच्यते–सत्यम्, स्यादेवम्, यदि यथाप्रवृत्तकरणं प्रतिपन्नानां सर्वेषां जीवानामध्यवसायस्थानानि पृथक् पृथग् भिन्नान्येव स्युः, तच्चेह नास्ति, बहूनामेकाऽध्यवसायस्थानवर्तित्वात् । यथा कश्चिदशीतिश्चारित्रिणो दशस्वध्यवसायस्थानेषु वर्तन्ते, अष्टानामष्टानां चारित्रिणामेकाध्यवसायस्थानवर्तित्वात्, तथैवेहाऽपि यथाप्रवृत्तकरणं प्रतिपन्नानामनन्तानामनन्तानां जीवानामेकाध्यवसायस्थानवर्तित्वात् तेऽसङ्ख्येयेष्वेवाऽध्यवसायस्थानेषु वर्तन्ते । तेन यथाप्रवृत्तकरणे प्रतिसमयमसंख्येयलोकाकाशप्रदेशराशिमात्राण्येवाऽध्यवसायस्थानानि, न ततोऽधिकानि । अयमत्र विशेषः–यथाप्रवृत्तकरणे प्रतिसमयमध्यवसायस्थानान्यसङ्ख्येयलोकाकाशप्रदेशराशिमात्राण्यभिहितानि, तानि न प्रथमादिसमयेषु मिथस्तुल्यानि भवन्ति, किन्तु यथाप्रवृत्तकरणस्य प्रथमसमयतो द्वितीयसमयेऽध्यवसायस्थानानि विशेषाधिकानि भवन्ति, ततोऽपि तृतीयसमये विशेषाधिकानि, एवं तावद् वक्तव्यानि, यावद् यथाप्रवृत्तकरणचरमसमयः । स्थाप्यमानानि पुनरेतानि विषमचतुरस्रक्षेत्रमास्तृणन्ति ।

अथोक्ताऽध्यवसायस्थानानां विशुद्धिमभिधत्ते–'उड्ढमुहा' इत्यादि, "अणुसमयम्" इति पदस्याऽत्राऽपि सम्बन्धाद्, अनुसमयम् ऊर्ध्वमुखी 'शोधिः' विशुद्धिरनन्तगुणा भवति, 'तिर्यक् तु' तिर्यङ्मुखी विशुद्धिस्तु 'षट्स्थाना' षट्स्थानविशिष्टा षट्स्थानपतितेत्यर्थः। भावार्थः पुनरयम्–उत्तरोत्तरसमयेऽध्यवसायस्य विमृश्यमाना विशुद्धिरूर्ध्वमुखी विशुद्धिर्भण्यते, विवक्षितैकसमयभाविना बहूनामध्यवसायस्थानानां मिथो विमृश्यमाना विशुद्धिस्तिर्यङ्मुखी विशुद्धिर्निगद्यते। इह यथाप्रवृत्तकरणे प्रथमसमयतो द्वितीयसमये विशुद्धिरनन्तगुणा भवति, ततोऽपि तृतीयसमयेऽनन्तगुणा भवति, एवं तावद्वक्तव्या, यावच्चरमसमयः। तेन यथाप्रवृत्तकरणे प्रतिसमयमूर्ध्वमुखी विशुद्धिरनन्तगुणा भणिता। तथा यथाप्रवृत्तकरणविवक्षितैकसमयभाविनामसङ्ख्येयलोकाकाशप्रदेशराशिमात्राणामध्यवसायस्थानानामेकतमस्याध्यवसायस्य विशुद्धिरन्याऽध्यवसायस्थानविशुद्ध्यपेक्षयाऽनन्तभागवृद्धा वा-ऽसंख्येयभागवृद्धा वा संख्येयभागवृद्धा वा सङ्ख्येयगुणवृद्धा वाऽसंख्येयगुणवृद्धा वा-ऽनन्तगुणवृद्धा वा भवति, एवं षड्विधहानिविशिष्टा-ऽपि भवति। तेन यथाप्रवृत्तकरणे तिर्यङ्मुखी विशुद्धिः षट्स्थानपतिता।

इह यथाप्रवृत्तकरणे या प्रतिसमयमूर्ध्वमुखी विशुद्धिरनन्तगुणा प्रतिपादिता, सैकजीवापेक्षयैव बोद्धव्या, नानाजीवाऽपेक्षया तु षट्स्थानपतिता सम्भवति। वक्ष्यमाणाऽपूर्वकरणे त्वनेकजीवापेक्षया-ऽप्यूर्ध्वमुखी विशुद्धिरनन्तगुणा न विरुध्यते, पूर्वपूर्वसमयभाव्युत्कृष्टविशोधितोऽप्युत्तरोत्तरसमयभाविजघन्यविशोधेरनन्तगुणत्वात्। तिर्यङ्मुखी विशुद्धिस्तु सर्वत्र नानाजीवापेक्षयैवाऽवगन्तव्या, एकजीवस्यैकसमये नानाऽध्यवसायानामसम्भवात् ॥५॥

यथाप्रवृत्तकरणे प्रतिसमयमध्यवसायस्थानानि विशोधिभेदेनासंख्येयलोकाकाशप्रदेशराशिमात्राणि प्रोक्तानि। सम्प्रति विशोधितारतम्यमार्यात्रिकेण प्रदर्शयति

करणस्स पढमसमये सव्वत्थोवा जहण्णिया सोही।
तो पढमसंखभागं जाव जहण्णा अणंतगुणा ॥६॥
तत्तो पढमे समये उक्कोसा होअए अणंतगुणा।
तो उवरि पढमसमये होइ जहण्णा अणंतगुणा ॥७॥
एवं हेट्ठे उवरि य जाव जहण्णाऽत्थि चरिमसमयम्मि।
तत्तो सेसुक्कोसा कमेण हुन्ते अणंतगुणा ॥८॥

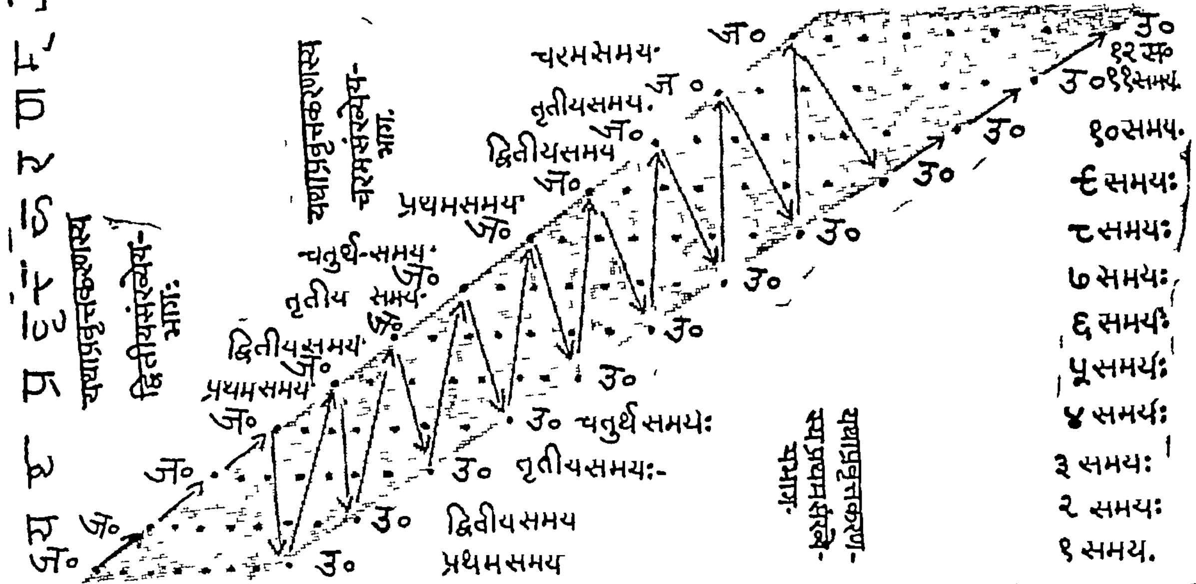
करणस्य प्रथमसमये सर्वस्तोका जघन्या शोधिः।
तत प्रथमसङ्ख्यभागं यावज्जघन्याऽनन्तगुणा ॥६॥
ततः प्रथमे समय उत्कृष्टा भवत्यनन्तगुणा।
तत उपरि प्रथमसमये भवति जघन्या-ऽनन्तगुणा ॥७॥

एवमध उपरि च यावज्जघन्याऽस्ति चरमसमये।
तत: शेषोत्कृष्टा: क्रमेण भवन्त्यनन्तगुणाः ॥८॥ इति-पदसंस्कारः।

'करणस्स.' इत्यादि, 'करणस्य' प्रस्तुतत्वाद् "भामा सत्यभामा" इति न्यायाच्च यथाप्रवृत्तकरणस्य प्रथमसमये जघन्या 'शोधिः' विशोधिः सर्वस्तोका भवति, तदितरासां प्रभूतत्वात्। ततः 'प्रथमसङ्ख्यभागं' यथाप्रवृत्तकरणस्य प्रथमसङ्ख्येयभागं यावज्जघन्या विशोधिरनन्तगुणा। इदमुक्तं भवति—यथाप्रवृत्तकरणप्रथमसमयभाविजघन्यविशोधितो यथाप्रवृत्तकरणस्य द्वितीयसमये जघन्यविशोधिरनन्तगुणा, ततोऽपि तृतीयसमये जघन्यविशोधिरनन्तगुणा, ततोऽपि चतुर्थसमये जघन्या विशोधिरनन्तगुणा। एवंक्रमेण तावद् वक्तव्या, यावद् यथाप्रवृत्तकरणप्रथमसंख्येयभागचरमसमयभाविजघन्यविशोधिः। 'तत्तो' इत्यादि, 'ततः' यथाप्रवृत्तकरणप्रथमसंख्येयभागचरमसमयभाविजघन्यविशोधितः 'प्रथमे समये' यथाप्रवृत्तकरणस्य प्रथमे समये उत्कृष्टा विशोधिरनन्तगुणा भवति, 'ततः' यथाप्रवृत्तकरणप्रथमसमयभाव्युत्कृष्टविशोधितः 'उपरि' यथाप्रवृत्तकरणप्रथमसङ्ख्येयभागस्योपरि प्रथमसमये जघन्या विशोधिरनन्तगुणा भवति। 'एवं' इत्यादि, 'एवम्' अनेन क्रमेणाऽध उपरि च विशोधिर्यत्तदोर्मिथः सापेक्षत्वादुत्तरत्र यच्छब्दोपादानाच्च तावद् वक्तव्या, यावत् 'चरमसमये' यथाप्रवृत्तकरणचरमसंख्येयभागाऽन्तिमसमये जघन्या विशोधिः 'अस्ति' भवति। इयमत्र भावना—यथाप्रवृत्तकरणप्रथमसंख्येयभागोपरितनप्रथमसमयभाविजघन्यविशोधितो यथाप्रवृत्तकरणद्वितीयसमय उत्कृष्टा विशोधिरनन्तगुणा भवति, ततो यथाप्रवृत्तकरणप्रथमसंख्येयभागोपरितनद्वितीयसमये जघन्या विशोधिरनन्तगुणा। ततोऽपि यथाप्रवृत्तकरणतृतीयसमय उत्कृष्टा विशोधिरनन्तगुणा। ततोऽपि यथाप्रवृत्तकरणप्रथमसङ्ख्येयभागोपरितनतृतीयसमये जघन्या विशोधिरनन्तगुणा। एवंक्रमेणाऽध उपरि चोत्कृष्टा जघन्या च विशोधिस्तावदभिधातव्या, यावद् यथाप्रवृत्तकरणचरमसंख्येयभागचरमसमयभाविजघन्यविशोधिः, सा च यथाप्रवृत्तकरणचरमसमयभाविजघन्यविशोधिः। 'तत्तो' इत्यादि, 'ततः' यथाप्रवृत्तकरणचरमसमयभाविजघन्यविशोधितः 'शेषोत्कृष्टाः' यथाप्रवृत्तकरणचरमसंख्येयभागगता या अनुक्ताः शेषा उत्कृष्टा विशोधयः, ताः क्रमेणाऽनन्तगुणा भवन्ति। तद्यथा—यथाप्रवृत्तकरणचरमसमयभाविजघन्यविशोधितो यथाप्रवृत्तकरणचरमसङ्ख्येयभागप्रथमसमयभाव्युत्कृष्टविशोधिरनन्तगुणा भवति, ततोऽपि यथाप्रवृत्तकरणचरमसङ्ख्येयभागद्वितीयसमयभाव्युत्कृष्टविशोधिरनन्तगुणा। ततोऽपि यथाप्रवृत्तकरणचरमसङ्ख्येयभागतृतीयसमयभाव्युत्कृष्टविशोधिरनन्तगुणा। एवमनन्तगुणक्रमेणोत्तरोत्तरसमय उत्कृष्टा विशोधिस्तावद् वक्तव्या, यावद् यथाप्रवृत्तकरणचरमसमयभाव्युत्कृष्टविशोधिः।

अध्यवसायस्थानानामनुकृष्ट्यादयस्त्वस्मत्कृतोपशमनाकरणगतसम्यक्त्वोत्पाद-यथाप्रवृत्तकरणटीकायां निरूपिताः, ततोऽवसेयाः, ग्रन्थगौरवभयान्नाऽत्र वितन्यन्ते॥६-८॥

▲ यथाप्रवृत्तकरणे विशोधितारतम्यमाश्रित्याऽध्यवसायानां स्थापना ▲



••••तिर्यक्स्थापितैरेभिर्बिन्दुभिरध्यवसायस्थानानि सूचितानि, तानि च परमार्थतोऽसंख्येयलोकाकाशप्रदेशराशिमात्राणि,पूर्वपूर्वसमयतश्चोत्तरोत्तरसमये विशेषाधिकानि। स्थाप्यमानानि च विषमचतुरस्रं क्षेत्रमास्तृणन्ति।

ज०= तत्तत्समये प्रथमबिन्दुना यदध्यवसायस्थान सूचितं, तस्य या विशोधि, सा जघन्या।

उ०= तत्तत्समयेऽन्तिमबिन्दुना यदध्यवसायस्थान सूचित, तस्य या विशोधि, सोत्कृष्टा।

शेषबिन्दुभि सूचिताऽध्यवसायस्थानाना या विशोधि., सा मध्यमा, सा च मिथ. षट्स्थानपतिता।

असत्कल्पनया यथाप्रवृत्तकरणस्य १२ समया कल्पिताः, तत्संख्येयभागश्च चतुस्समयमात्रः।

→ एतच्चिह्नमनन्तगुणतां सूचयति।

एतर्हि यथाप्रवृत्तकरणे वर्तमानस्य जीवस्य योगादीन् प्रतिपिपादयिषुराह

मणवयणोरालाणं जोगे वट्टेइ अण्णयरे।

सुअउवजोगे मइ-सुअ-चक्खु-अचक्खूसु वा इगकसाये ॥१॥ (उद्गीतिः)

मनोवचनौदाराणां योगे वर्तते-ऽन्यतरस्मिन्।

श्रुतोपयोगे मति श्रुत-चक्षुरचक्षुष्षु वैककषाये ॥१॥ इति पद्संस्कार।

'मण०' इत्यादि, 'मनोवचनौदाराणां' क्षपकश्रेणिं प्रतिपत्तुकामो मनोयोगचतुष्कवचनयोगचतुष्कौदारिककाययोगानाम् 'अन्यतरस्मिन्' अन्यतमे योगे वर्तते, औदारिकमिश्रकाययोगादिषु क्षपकश्रेणिप्रतिपत्त्यसंभवात्। यदुक्तं कषायप्राभृतचूर्णौ–"जोगे त्ति विहासा अण्णदरो मणजोगो अण्णदरो वचिजोगो ओरालियकायजोगो वा" इति।

'सुअ०'इत्यादि,'श्रुतोपयोगे'क्षपकश्रेणिं प्रतिपत्तुकामः श्रुतोपयोगलक्षणे साकारोपयोगे वर्तते। केचित् तु मत्याद्युपयोगेष्वन्यतम उपयोगे वर्तमानो भवतीति मन्यन्ते, तन्मतं दर्शयितुकाम आह–'मइ०' इत्यादि, 'मतिश्रुतचक्षुरचक्षुष्षु वा' मतिज्ञानोपयोग-श्रुतज्ञानोपयोग-चक्षुर्दर्शनोपयोगाऽचक्षुर्दर्शनोपयोगेष्वन्यतरस्मिन्नुपयोगे वर्तमानो भवति,वाशब्दो मतान्तरद्योतकः। यदेवादि कषायप्राभृतचूर्णौ–"एक्को उवएसो णियमा सुदोवजुत्तो होदूण खवगसेढिं चडदि त्ति एक्को उवदेसो सुदेण वा मदीए वा चक्खुदंसणेण वा अचक्खुदंसणेण वा।" इति।

न च मतिश्रुतज्ञानचक्षुरचक्षुर्दर्शनोपयोगवदवधिज्ञानेन वा मनःपर्यायज्ञानेन वाऽवधिदर्शनेन वा क्षपक-

श्रेणिं कुतो न प्रतिपद्यते ? इति वाच्यम् , सिद्धान्तेऽवधिज्ञानोपयोगेन वाऽवधिदर्शनोपयोगेन वा मनःपर्यायज्ञानोपयोगेन वा क्षपकश्रेणिप्रतिपत्तेरस्वीकारात् ।

'इगकसाये' त्ति 'एककषाये' अनन्तानुबन्धिनां क्षीणत्वाद् अप्रमत्तगुणस्थानके च प्रत्याख्यानावरणादीनामुदयविरहात् संज्वलनक्रोध-मान-माया-लोभानाम् एकस्मिन्=अन्यतमे कषाये वर्तते क्षपकश्रेणेरारोहकः । उक्तं च **कषायप्राभृतचूर्णौ–कसाये त्ति विहासा-अण्णदरो कसायो ।**" इति ॥९॥

सम्प्रति यथाप्रवृत्तकरणं कुर्वतो जीवस्य वेदादिकं प्राह

पुरिसाईणं वेअे अण्णयरम्मि य विसुज्झयरसुक्काए ।
पयइठिइरसपअेसा पडुच्च णेयाणि बन्धुदयसंताइं ॥१०॥ (आर्यागीतिः)

पुरुषादीनां वेदेऽन्यतरस्मिंश्च विशुद्धतरशुक्लायाम् ।
प्रकृति-स्थिति-रस-प्रदेशान् प्रतीत्य ज्ञेयानि बन्धोदयसत्त्वानि ॥१०॥ इति पदसंस्कार ।

'पुरिसाईणं' इत्यादि, **'वट्टेइ'** इति पूर्वगाथोक्तपदमत्राऽप्यनुवर्तते, तेन 'पुरुषादीनां' पुरुषवेद-स्त्रीवेद-नपुंसकवेदानामन्यतरस्मिन् वेदे वर्तते क्षपकश्रेणेः प्रतिपत्ता । यदुक्तं **कषायप्राभृतचूर्णौ-"वेदो य को भवे त्ति विहासा अण्णदरो वेओ ।"** इति । चकारः समुच्चयार्थो भिन्नक्रमश्च, स चोत्तरत्र योज्यः । 'विशुद्धतरशुक्लायां च' पूर्वपूर्वसमयभाविशुक्ललेश्याऽपेक्षयोत्तरोत्तरसमये विशुद्धतरायां शुक्ललेश्यायां वर्तते क्षपकश्रेणेः समारोहकः, अनुभागापेक्षया कषायाणामुदयस्याऽनन्तगुणहीनत्वेन शुभलेश्याया हानेरवस्थानस्य चाऽसम्भवात् । उक्तं च **कषायप्राभृतचूर्णौ–"लेस्सा त्ति विहासा णियमा सुक्कलेसा णियमा वड्ढमाणलेसा ।"** इति ।

अथ यथाप्रवृत्तकरणं विदधानस्य बन्धादिकं सूचयति-'पयइ'० इत्यादि प्रकृति-स्थिति-रस-प्रदेशान् 'प्रतीत्य'समाश्रित्य'बन्धुदयसन्ताइं' ति,इह सदिति निर्देशस्य भावप्रधानत्वात् सच्छब्देन सत्त्वं व्याख्येयम् । बन्धोदयसत्त्वानि 'ज्ञेयानि' स्वयमेवाभ्यूह्यानि, सुगमत्वात् , पाठकेभ्यो वा बोद्धव्यानि । एतदुक्तं भवति–यथाप्रवृत्तकरणं कुर्वतो जीवस्य प्रकृतिबन्धः स्थितिबन्धो रसबन्धः प्रदेशबन्धश्च ज्ञातव्यः, एवं प्रकृत्युदयः स्थित्युदयो रसोदयः प्रदेशोदयश्च बोद्धव्यः, तथा प्रकृतिसत्ता स्थितिसत्ताऽनुभागसत्ता प्रदेशसत्ता चाऽवसेया ।

अथ विनेयबुद्धिवैशद्यार्थं विस्तरेण प्रकृतिबन्धादयः प्रतिपाद्यन्ते–

तत्रादौ तावद् मूलप्रकृतिबन्धः–क्षपकश्रेणिं प्रतिपद्यमान आयुर्वर्जशेषाणि सप्तैव कर्माणि बध्नाति, क्षपकश्रेण्यामायुर्बन्धाऽसम्भवाद् विशुद्धिप्रकर्षाच्च ।

अथोत्तरप्रकृतिबन्धः मतिज्ञानावरण-श्रुतज्ञानावरणा-ऽवधिज्ञानावरण-मनःपर्यवज्ञानावरण केवलज्ञानावरणरूपं ज्ञानावरणप्रकृतिपञ्चकं चक्षुर्दर्शनावरणा-ऽचक्षुर्दर्शनावरणा-ऽवधिदर्शनावरण-

केवलदर्शनावरण-निद्रा-प्रचलारूपं दर्शनावरणप्रकृतिषट्कं सातवेदनीयं संज्वलनक्रोध-मान-माया-लोभ-पुरुषवेद-हास्य रति-भय-जुगुप्सारूपं मोहनीयप्रकृतिनवकमुच्चैर्गोत्रं दानान्तराय-लाभान्तराय-भोगान्तरायोपभोगान्तराय-वीर्यान्तरायलक्षणमन्तरायपञ्चकञ्चेति नामकर्मवर्जशेषकर्मणां सप्तविंशतिं (२७)प्रकृतीर्बध्नाति,नामकर्मणस्तु देवगति-पञ्चेन्द्रियजाति-वैक्रियशरीर-तैजस-कार्मणशरीर-वैक्रियाङ्गोपाङ्ग समचतुरस्रसंस्थान-वर्ण-गन्ध-रस-स्पर्श--देवानुपूर्वी-शुभखगति-त्रस-बादर–पर्याप्त-प्रत्येक स्थिर-शुभ-सुभग-सुस्वरा ऽऽदेय-यशःकीर्त्यगुरुलघूपघात-पराघात-श्वासोच्छ्वास–निर्माणरूपाऽष्टाविंशति-प्रकृतीर्बध्नाति । तेन जघन्यतः क्षपकः पञ्चपञ्चाशत्प्रकृत्यात्मकं (५५) बन्धस्थानं बध्नाति । कश्चिज्जीवस्तु जिननामाऽपि बध्नातीति नामकर्मण एकोनत्रिंशत्प्रकृतीर्बध्नन् जीवः षट्पञ्चाशत्प्रकृत्यात्मकं (५६) बन्धस्थानं बध्नाति । अन्यस्तु नामकर्मणः प्रागुक्तदेवगत्याद्यष्टाविंशतिप्रकृतीराहारकशरीराऽऽहारकाङ्गोपाङ्गलक्षणं चा-ऽऽहारकद्विकं बध्नातीति नामकर्मणस्त्रिंशत्प्रकृतीर्बध्नन् जीवः सप्तपञ्चाशत्प्रकृत्यात्मकं (५७) बन्धस्थानं बध्नाति । कश्चिज्जीवः पुनर्नामकर्मणः प्रोक्तदेवगत्याद्यष्टाविंशतिप्रकृतीराहारकद्विकं जिननाम च बध्नातीति नामकर्मण एकत्रिंशत्प्रकृतीर्बध्नन् जीवोऽष्टपञ्चाशत्प्रकृत्यात्मकं (५८) बन्धस्थानं बध्नाति ।

यन्त्रकम्

बन्धस्थानम्	प्रकृतयः
५५ प्रकृत्यात्मकम्	ज्ञानावरणस्य ५, दर्शनावरणस्य ६, वेदनीयस्य १, मोहनीयस्य ९, नाम्न २८, गोत्रस्य १, अन्तरायस्य च ५
५६ ,,	५५+जिननाम
५७ ,,	५५+आहारकद्विकम्
५८ ,,	५५+आहारकद्विकम+जिननाम

अन्वयव्यतिरेकाभ्यां पदार्थचिन्ता कर्तव्या । इहान्वयेन कृता प्रकृतिबन्धचिन्ता । सम्प्रति व्यतिरेकेण क्रियते

मूलकर्मस्वायुष्कस्य बन्धो व्यवच्छिन्नः ।

उत्तरकर्मसु नामकर्मवर्जशेषकर्मणां स्त्यानर्द्धित्रिका-ऽसातवेदनीय-द्वादशकषाय-मिथ्यात्व-शोका-ऽरति-स्त्रीवेद-नपुंसकवेदाऽऽयुष्कचतुष्क-नीचैर्गोत्ररूपषड्विंशतिप्रकृतीनां बन्धो व्यवच्छिन्नः,नामकर्मणश्च देवगतिवर्जगतित्रिक-पञ्चेन्द्रियवर्जजातिचतुष्कौदारिकशरीरौदारिकाङ्गोपाङ्ग संहननषट्क-प्रथम-संस्थानवर्जशेषसंस्थानपञ्चक-देवानुपूर्वीवर्जशेषानुपूर्वीत्रिकाऽशुभखगत्यातपोद्योत-स्थावर-सूक्ष्माऽपर्याप्तसाधारणा-ऽस्थिरा-ऽशुभ-दुर्भग-दुःस्वराऽनादेया-ऽयशःकीर्तिरूपषट्त्रिंशत्प्रकृतीनां बन्धः स्याऽपग-

च्छति । उक्तं च कषायप्राभृतचूर्णौ—"थीणगिद्धितियमसाद-मिच्छत्त-बारसकसाय अरदि सोग-इत्थिवेद-णवुंसयवेद-सव्वाणि चेव आउगाणि परियत्तमाणियाओ णामाओ असुहाओ सव्वाओ चेव मणुसगइ-ओरालियसरीरंगोवंग-वज्जरिसहसंघडणमणुसगइपाओग्गाणुपुव्वीआदावुज्जोवणामाओ च सुहाओ णीचागोदं च एदाणि कम्माणि बंधेण वोच्छिण्णाणि।" अत्र "परियत्तमाणियाओ णामाओ असुहाओ सव्वाओ चेव" इत्यनेन नरकतिर्यग्गति-जातिचतुष्काद्यवर्जसंस्थानपञ्चकाद्यवर्जसंहननपञ्चक नरकतिर्यगानुपूर्वी कुखगति-स्थावर-सूक्ष्मा-ऽपर्याप्त-साधारणा-ऽस्थिराऽशुभ-दुर्भग-दुःस्वरा-ऽनादेया-ऽयशःकीर्तिरूपाः प्रकृतयो ग्राह्याः, तासां परावर्तमानाऽशुभनामकर्मत्वात् ।

अथ स्थितिबन्धोऽभिधीयते सप्तानामपि कर्मणां स्थितिबन्धोऽन्तःसागरोपमकोटाकोटिप्रमाणो भवति, स च सत्तागतस्थितितः संख्यातगुणहीनो भवति । तथा प्रत्यन्तर्मुहूर्तं पूर्वपूर्वत उत्तरोत्तरस्थितिबन्धः पल्योपमसंख्येयभागेन हीनो हीनतरो जायते । इदमुक्तं भवति—यथाप्रवृत्तकरणप्रथमसमये यः स्थितिबन्धः प्रारभ्यते, सोऽन्तर्मुहूर्तं यावत् प्रवर्तते । तस्मिन् पूर्णेऽन्यः पल्योपमसंख्येयभागेन हीनः स्थितिबन्धः प्रारभ्यते, सोऽप्यन्तर्मुहूर्तं यावत् प्रवर्तते । एवमग्रेऽपि प्रत्यन्तर्मुहूर्तं पल्योपमसंख्येयभागेन हीनो हीनतरः स्थितिबन्धः प्रवर्तते ।

अथाऽनुभागबन्धो विविच्यते शुभप्रकृतीनां चतुःस्थानकमशुभानां प्रकृतीनां पुनर्द्विस्थानकमनुभागं बध्नाति, तमपि प्रतिसमयं शुभानामनन्तगुणवृद्धमशुभानां चाऽनन्तगुणहीनं बध्नाति ।

सम्प्रति प्रदेशबन्धोऽभिधीयते उत्कृष्टयोगी निद्राद्विक-हास्य-रति-भय-जुगुप्सा-देवद्विक-वैक्रियद्विक-प्रथमसंस्थान-शुभखगति-सुभगत्रिकरूपसप्तदशप्रकृतीनामुत्कृष्टं प्रदेशाग्रं बध्नाति । शेषाणां चत्वारिंशत्प्रकृतीनामनुत्कृष्टमेव प्रदेशं बध्नाति । अत्र कारणमस्मत्कृतोपशमनाकरणगतप्रथमौपशमिकसम्यक्त्वटीकातोऽवसेयम् । नामकर्मण एकोनत्रिंशत्प्रकृत्यात्मकं बन्धस्थानं तथा त्रिंशत्प्रकृत्यात्मकं बन्धस्थानं बध्नन्नुत्कृष्टयोगी क्रमेण जिननाम्न आहारकद्विकस्य वोत्कृष्टप्रदेशाग्रं बध्नाति, तदानीं शेषाणां नामप्रकृतीनामनुत्कृष्टप्रदेशाग्रं बध्नाति । अनुत्कृष्टयोगी तु निद्रादीनां सर्वप्रकृतीनामनुत्कृष्टप्रदेशाग्रं बध्नाति ।

अथ प्रकृत्युदयो निरूप्यते

मूलप्रकृत्युदयः अष्टानामपि मूलकर्मणामुदयो विद्यते ।

उत्तरप्रकृत्युदयः—ज्ञानावरणपञ्चकं दर्शनावरणचतुष्कमन्यतरद्वेदनीयं संज्वलनक्रोधादिष्वन्यतमः कषायोऽन्यतमो वेदोऽन्यतरं युगलमन्तरायपञ्चकं मनुष्यायुरुच्चैर्गोत्रं चेति नामवर्जशेषक

र्मणां जघन्यत एकविंशतिप्रकृतीनामुदयः प्रवर्तते । नामकर्मणः पुनर्वर्णचतुष्क-तैजसकार्मणशरीरा-ऽगुरुलघुनिर्माण-स्थिरा-ऽस्थिर-शुभा-ऽशुभरूपद्वादशध्रुवोदयप्रकृतीनां तथा मनुष्यगतिः पञ्चेन्द्रियजातिरौदारिकद्विकं प्रथमसंहननं षट्स्वन्यतमं संस्थानमन्यतरा खगतिः पराघात उच्छ्वास उपघातस्त्रसचतुष्कं सुभग आदेयो यशःकीर्तिः स्वरद्विकेऽन्यतरश्चेत्यष्टादशाऽध्रुवोदयप्रकृतीनामुदयो भवति । एवं सर्वसंख्यया त्रिंशत्प्रकृतीनामुदयः प्रवर्तते । इत्थं जघन्यत एकपञ्चाशत्प्रकृतय उदयन्ति, अन्यस्य जन्तोर्निद्राद्विकेऽन्यतरा भय-जुगुप्सयोरन्यतरा वोदेतीति तस्य जन्तोर्द्विपञ्चाशत्प्रकृत्यात्मकमुदयस्थानकम्, इतरस्य पुनर्भयजुगुप्सयोरन्यतरा तथा निद्राद्विकेऽन्यतरा यद्वा भय-जुगुप्से उदित इति तस्य जन्तोस्त्रयःपञ्चाशत्प्रकृत्यात्मकमुदयस्थानकं निश्चेतव्यम् । कस्यचिज्जन्तोर्निद्राद्विकेऽन्यतरा भयजुगुप्से चोदयन्तीति तस्य जन्तोश्चतुःपञ्चाशत्प्रकृत्यात्मकमुदयस्थानकं भवति । तत्रैकैकमुदयस्थानकं भिन्नभिन्नप्रकृतीराश्रित्याऽनेकविधं भवति । तथाहि—कश्चित् क्रोधोदयविशिष्टो जन्तुः क्षपकश्रेणिमारोहेत् । अन्यो मानोदयविशिष्टः, इतरःपुनर्मायोदयविशिष्टः, अपरस्तु लोभोदयविशिष्टः । एवंविधाश्चत्वारोऽपि जन्तवोऽसातोदयविशिष्टाः सातोदयविशिष्टा वा क्षपकश्रेणिं प्रतिपित्सवो भवेयुः । इत्थं प्रकृतिभेदेनैकस्योदयस्थानकस्य यावन्तः प्रकारा भवन्ति, तावन्तस्तस्योदयस्थानकस्य भङ्गा भवन्ति । तत्र प्रथमस्योदयस्थानकस्य द्वापञ्चाशदधिकैकादशशतानि (११५२), द्वितीयस्याष्टोत्तरषट्चत्वारिंशच्छतानि (४६०८), तृतीयस्य षष्टयधिकसप्तपञ्चाशच्छतानि (५७६०), तुर्यस्य च चतुरधिकत्रयोविंशतिशतानि (२३०४) ।

न्यासस्त्वेवं कार्यः—

प्रथममुदयस्थानकम्, प्रकृतय,	कषाय, वेद., युगलम्, वेदनीयम्, संस्थानम्, खगति, स्वर, निद्रा,	भङ्गाः
५१	४ × ३ × २ × २ × ६ × २ × २	= ११५२
द्वितीयमुदयस्थानकम् प्रकृतय ५२,		
५१ + अन्यतरा निद्रा	४ × ३ × २ × २ × ६ × २ × २ × २	= २३०४
५१ + भय	४ × ३ × २ × २ × ६ × २ × २	= ११५२
५१ + जुगुप्सा	४ × ३ × २ × २ × ६ × २ × २	= ११५२
तृतीयमुदयस्थानकम् प्रकृतय ५३,		४६०८
५१ + अन्यतरा निद्रा + भय	४ × ३ × २ × २ × ६ × २ × २ × २	= २३०४
५१ + " + जुगुप्सा	४ × ३ × २ × २ × ६ × २ × २ × २	= २३०४
५१ + भय + जुगुप्सा	४ × ३ × २ × २ × ६ × २ × २	= ११५२
चतुर्थमुदयस्थानकम्, प्रकृतय.५४,		५७६०
५१ + भयजुगुप्से + अन्यतरा निद्रा	४ × ३ × २ × २ × ६ × २ × २ × २	= २३०४

एवं चतुर्णामुदयस्थानकानां समुदितभङ्गाश्चतुर्विंशत्यधिकाष्टशतोत्तरत्रयोदशसहस्राणि भवन्ति । न्यासः ११५२+४६०८+५७६०+२३०४=१३८२४ ।

ये क्षपकश्रेणौ निद्राप्रचलयोरुदयं न मन्यन्ते, तेषां मतेनाऽष्टाधिकषट्चत्वारिंशच्छतं (४६०८) भङ्गा ज्ञातव्याः ।

ननु के आचार्याः क्षपकश्रेणौ निद्राद्विकोदयं मन्यन्ते के पुनर्न स्वीकुर्वन्ति ? इति चेत्, उच्यते--प्राचीनकर्मस्तवकारादयस्तु क्षीणकषायद्विचरमसमयं यावदभ्युपगच्छन्ति । तथा चाऽत्र प्राचीनकर्मस्तवः--"निद्दापयलाए तहा खीणदुचरिमम्मि उदयवोच्छेओ ।" एतेन सिद्धं यत्क्षपकश्रेणावपि निद्राप्रचलोदयः कर्मस्तवकारादीनां मतेन विद्यते । उक्तं च मेरुतुङ्ग-सूरिपादैः-"अन्ये तु पुनराचार्याः क्षीणमोहद्विचरमसमयं यावदुदये दर्शनावरणस्य चतस्रःप्रकृतयः पञ्चकं वा ब्रुवते,क्षपकस्याऽपि निद्राप्रचलयोरुदयमिच्छन्तीत्यर्थः ।" सप्ततिकाचूर्णिकारादयस्तु क्षपकस्य निद्राप्रचलोदयं न मन्यन्ते । यदुक्तं सप्ततिकाचूर्णौ"खवगा अच्च..विसुद्ध त्ति काउं तेण निद्दापयलाणं उदयओ नत्थि, अविसुद्धस्स चासंकिलिट्ठस्स वा निद्दोदओ त्ति ।" उपशमश्रेणौ तु सर्वेऽपि शास्त्रकारा निद्राप्रचलोदय-मिच्छन्ति ।

न चोपशमश्रेणिं प्रतिपद्यमानः प्रतिसमयमनन्तगुणक्रमेण विशुद्ध्या प्रवर्धमानो भवति, निद्रोदयश्च चैतन्यापायकारणमस्ति, तेनोपशमश्रेणौ निद्रोदयः कथं भवति, विशिष्टचैतन्य-भावादिति वाच्यम्, यतो य उपशमश्रेणौ निद्राद्विकमध्येऽन्यतरस्या उदयः, स तत्र क्षणे सर्वा-धिव्याधिव्याधिविकल्पव्यपगमसमुद्भूताननुभूतपूर्वसमाधिविलयविशेषे सति योगनिद्रारूप एवाऽवसेयः। निद्राप्रचलोदयेऽपि परिणामविशुद्धिरिष्यते एव, अन्यथा यामद्वयशायिनामपि मुनीनामप्रमत्त-गुणस्थानका-ऽनवकाशत्वेन प्रमत्तगुणस्थानकस्याऽन्तर्मुहूर्ताभ्यधिकः कालःप्रसज्येत,न चाऽयमिष्टः, सिद्धांते प्रमत्तगुणस्थानकालस्याऽन्तर्मुहूर्तमात्रत्वप्रतिपादनात् । वैराग्यतरङ्गतरङ्गितचेतसां च निद्रोद-येऽपि तथाविधसुस्वप्नदर्शनात् विशुद्धः परिणामोऽनुभवसिद्धः । एवं ये क्षपकश्रेणौ निद्राद्विकोदयं मन्यन्ते ।तेषां मते निद्राद्विकोदयो न विशुद्धपरिणामस्य प्रतिबन्धको भवति*, इति दिक् ।

अत्रैकजीवमाश्रित्योत्कृष्टतश्चतुःपञ्चाशत्प्रकृतय उदयमानाः प्रोक्ताः, नानाजीवगोचरोदयमानप्र-कृतयस्तु सप्ततिर्भवन्ति । तथाहि—ज्ञानावरणपञ्चकं स्त्यानर्द्धित्रिकवर्जदर्शनावरणषट्कमन्तरायपञ्चकं

*उक्तं च जयधवलाकारैरपि चारित्रमोहक्षपणाऽधिकारे "कध पुण एदस्स खीणकसायस्स विदियसुक्कज्झाणग्गिणा घादिकम्मिवणाणि दहमाणस्स एदम्मि अवत्थतरे णिद्दापयलाणमुदयवोच्छेदसं-भवो, झाणपरिणामविरुद्धसहवत्तादो त्ति णासकणिज्जे, अवत्तव्वसरूवस्स, तदुदयस्स झाणोवजुत्तेसु वि संभव पडि विरोहाभावादो ।"

वेदनीयद्विकं संज्वलनचतुष्कं नवनोकषाया मनुष्यायुरुच्चैर्गोत्रं चेति नामवर्जशेषकर्मणां त्रयस्त्रिंशत्प्रकृतय उदयन्ति। नामकर्मणस्तु ध्रुवोदया द्वादश मनुष्यगति-पञ्चेन्द्रियजात्यौदारिकद्विक-वज्रर्षभनाराचसंहनन-संस्थानषट्क-खगतिद्विक-पराघातोच्छ्वासोपघात-स्वरद्विक-त्रसचतुष्क-सुभगादेय-यशःकीर्तिरूपपञ्चविंशतिप्रकृतयश्चोदयन्तीति नानाजीवापेक्षया सप्ततिप्रकृतीनामुदयो भवति। न च कर्मस्तवादिग्रन्थेष्वप्रमत्तगुणस्थानके षट्सप्ततिप्रकृतीनामुदयो निगदितः,अत्र यथाप्रवृत्तकरणे सप्ततिप्रकृतीनामुदयः कथमुच्यते ? इति वाच्यम्,तत्र सप्तमगुणस्थानकमाश्रित्योक्तत्वादत्र च क्षपकश्रेणेरधिकारत्वेन प्रथमवर्जसंहननपञ्चक-सम्यक्त्वमोहनीयरूपषट्प्रकृतीनामुदयाऽसंभवात् ।

अथोदयेन व्यवच्छिन्नाः प्रकृतय उच्यन्ते

नामकर्मवर्जशेषकर्मणां स्त्यानर्द्धित्रिक-मिथ्यात्व-सम्यङ्मिथ्यात्व-सम्यक्त्वमोहनीय-द्वादशकषाय-मनुष्यवर्जायुस्त्रय-नीचैर्गोत्ररूपा द्वाविंशतिः प्रकृतयो नामकर्मणश्च मनुष्यवर्जगतित्रिकानुपूर्वीचतुष्क-पञ्चेन्द्रियवर्जजातिचतुष्क-वैक्रियद्विकाऽऽहारकद्विक-प्रथमवर्जसंहननपञ्चकाऽऽतपोद्योत-स्थावरसूक्ष्म-साधारणाऽपर्याप्त-दुर्भगाऽनादेयाऽयशःकीर्तिरूपा एकोनत्रिंशत्प्रकृतय उदयेन व्यवच्छिन्ना जाताः । केषांचिज्जन्तूनां जिननामकर्मणस्त्वनुदयो विद्यते,क्षीणकषायगुणस्थानकादूर्ध्वं तेषां तदुदयसंभवात् । उक्तं च कषायप्राभृतचूर्णौ-"थीणगिद्धितियं मिच्छत्तसम्मत्त-सम्मामिच्छत्त-बारसकसाय-मणुसाउगवज्जाणि आउगाणि णिरयगति-तिरिक्खगइ-देवगइपाओग्गणामाओ आहारदुगं च वज्जरिसहसंघडणवज्जाणि सेसाणि संघडणाणि मणुसगइपाओग्गाणुपुव्वी अपज्जत्तणामं असुहतियं तित्थयरणामं च सिया,णीचागोदं एदाणि कम्माणि उदयेण वोच्छिण्णाणि" । अत्र "णिरयगइ-तिरिक्खगइ-देवगइपाओग्गणामाओ" इत्यनेन नरकगति-तिर्यग्गति-देवगति-मनुष्यवर्जानुपूर्वीत्रिक-जातिचतुष्क-वैक्रियद्विका-ऽऽतपोद्योत-स्थावर-सूक्ष्म-साधारणप्रकृतीनां ग्रहणं कर्तव्यम् । "असुहतिगं" इत्यनेन दुर्भगानादेयायशःकीर्तीनां ग्रहणं कर्तव्यम् ।

उदीरणा तु वेदनीयद्विक-मनुष्यायुर्लक्षणप्रकृतित्रयं वर्जयित्वा शेषाणामुदयमानानां प्रकृतीनां भवति । तथा चोक्तं कषायप्राभृतचूर्णौ-"आउगवेदणीयवज्जाणं वेदिज्जमाणाणं कम्माणं पवेसगो ।"

अथ स्थित्युदयोऽभिधीयते सर्वकर्मणामुदयप्राप्तस्यैकस्थितिस्थानकस्य तथोदीरणाकरणेन वेदनीयायुर्वर्जशेषकर्मणामुदयावलिकाया उपरितनानामन्तःसागरोपमकोटाकोटिमात्राणां स्थितीनामुदयो भवति ।

अथानुभागोदयः प्ररूप्यते उदयमानानां प्रकृतीनामनुभागोऽजघन्याऽनुत्कृष्ट उदये वर्तते ।

अथ प्रदेशोदयो निरूप्यते—उदयमानानां प्रकृतीनामजघन्यानुत्कृष्टप्रदेशोदयो भवति ।

सम्प्रति क्रमप्राप्ता प्रकृतिसत्ताऽभिधीयते—दर्शनसप्तक मनुष्यायुर्वर्जशेषायुष्कत्रिकलक्षणदशप्रकृतिवर्जशेषाऽष्टाचत्वारिंशदुत्तरशतप्रकृतयः (१४८) क्षपकश्रेणेरारोहकस्य सत्तायामुत्कृष्टतो भवन्ति । येन जीवेन जिननाम न बद्धम् , तस्य सत्तायां सप्तचत्वारिंशदुत्तरशतप्रकृतयो (१४७) भवन्ति । येन त्वाहारकसप्तकं न बद्धम्, तस्यैकचत्वारिंशदधिकशतं (१४१) प्रकृतयः सत्तायां भवन्ति । येन त्वाहारकसप्तकजिननामरूपाऽष्टप्रकृतयो न बद्धाः, तस्य चत्वारिंशदुत्तरशतप्रकृतयः (१४०) सत्तायां भवन्ति । इत्थं यथाप्रवृत्तकरणे चत्वारि सत्तास्थानानि ।

अथ स्थितिसत्ता भण्यते—मनुष्यायुर्वर्जानां शेषकर्मणां स्थितिसत्ताऽन्तःसागरोपमकोटीकोटीप्रमाणा । **अथ रससत्ता निगद्यते**—अशुभानां कर्मणां द्विस्थानकरससत्ता, शुभानां च चतुःस्थानकरससत्ता भवति । **अथ प्रदेशसत्ता प्रतिपाद्यते**—सर्वप्रकृतीनामजघन्यानुत्कृष्टप्रदेशसत्ता ।

संख्येयेषु स्थितिबन्धेषु गतेष्वन्तर्मुहूर्तप्रमाणं यथाप्रवृत्तकरणं परिसमापयति ॥१०॥

"यथोद्देशं निर्देशः" इति न्यायाद् यथाप्रवृत्तकरणमभिधाय द्वितीयाधिकारमपूर्वकरणं प्रतिपादयितुमनाः प्राह

सेकाले कुणइ अपुव्वकरणमेअम्मि होअइ विसोही ।
गोमुत्तिकमेण जहण्णा उक्कोसा अणन्तगुणा ॥११॥

अनन्तरकाले करोत्यपूर्वकरणमेतस्मिन भवति विशोधि ।
गोमूत्रिकाक्रमेण जघन्योत्कृष्टाऽनन्तगुणा ॥११॥ इति पदसंस्कारः

'सेकाले' इत्यादि, सेशब्दो मगधदेशप्रसिद्धोऽथार्थकः, अथशब्दश्चाऽत्राऽनन्तरार्थको बोध्यः, **'मङ्गला-ऽनन्तरारम्भ-प्रश्न-कार्त्स्न्येष्वथो अथ ।"** इत्यमरकोशवचनात् । एवमग्रेऽपि यथास्थानं व्याख्येयम् । 'अनन्तरकाले' यथाप्रवृत्तकरणचरमसमयादनन्तरसमये 'अपूर्वकरणं' संसारेऽप्राप्तपूर्वत्वाद् अपूर्वकरणव्यपदेशार्हं करणं 'करोति' विदधाति । यदुक्तं **तत्त्वार्थसूत्रवृत्तौ**—

"स ततः क्षपकश्रेणिं प्रतिपद्य चरित्रघातिनोः शेषाः ।
क्षपयन् मोहप्रकृतोः प्रतिष्ठते शुक्लेश्याकः ॥१॥
प्रविशत्यपूर्वकरणं प्रस्थित एवं ततोऽपरं स्थानम् ।
तदपूर्वकरणमिष्टं कदाचिदप्राप्तपूर्वत्वात् ॥२॥" इति ।

अपूर्वाणि करणानि=स्थितिघातादीनां निर्वर्तनादीनि यत्रेति व्युत्पत्तिस्त्वनन्तरगाथया मूल एव दर्शयिष्यते ।

अथाऽपूर्वकरणे विशोधिं प्राह—एअम्मि' इत्यादि, 'एतस्मिन्' अपूर्वकरणे 'विशोधिः' विशुद्धिः 'गोमूत्रिकाक्रमेण' गोमूत्रधारासदृशक्रमेण जघन्योत्कृष्टा चाऽनन्तगुणा भवतीत्युपस्कारः । अयं भावः इहाऽपूर्वकरणस्य प्रथमसमयेऽसंख्येयलोकाकाशप्रदेशराशिमात्राण्यध्यवसायस्थानानि

भवन्ति, द्वितीयसमये तदन्यानि विशेषाधिकानि भवन्ति, ततोऽपि तृतीयसमये विशेषाधिकानि, एवं तावद्वाच्यानि, यावदपूर्वकरणचरमसमयः । एतानि स्थाप्यमानानि विषमचतुरस्रक्षेत्रमभिव्याप्नुवन्ति । ननु द्वितीयादिसमयेष्वध्यवसायानां वृद्धौ किं कारणम् ? इति चेत्, उच्यते-प्रतिसमयं विशुद्ध्यन्तः खल्विह प्रतिपत्तारः स्वभावत एव बहवो विभिन्नेष्वध्यवसायस्थानेषु वर्तन्ते । अत्र यथाप्रवृत्तकरणचरमसमयभाव्युत्कृष्टविशोधितोऽपूर्वकरणप्रथमसमये जघन्यविशोधिरनन्तगुणा । ततस्तस्मिन्नेव समय उत्कृष्टा विशोधिरनन्तगुणाः । ततोऽप्यपूर्वकरणस्य द्वितीयसमये जघन्या विशोधिरनन्तगुणा । ततोऽपि तस्मिन्नेव समय उत्कृष्टा विशोधिरनन्तगुणा, एवंक्रमेण तावद् वाच्या, यावदपूर्वकरणचरमसमयः । अयं क्रमो गोमूत्रिकोपमया दर्शितः । तथाहि—गौः=बलिवर्दः, तस्याध्वनि गच्छतो वक्रतयेतस्ततः पतिता मूत्रधारा गोमूत्रिका भण्यते, यथा गोमूत्रिका वामभागतो दक्षिणभागे दक्षिणभागतश्च वामभागे वक्राकारेणाऽऽस्ते, तथैव जघन्यविशोधित उत्कृष्टविशोधिरुत्कृष्टविशोधितश्चाऽनन्तरसमयभाविजघन्यविशोधिरनन्तगुणक्रमेण तिष्ठति । तेनायं क्रमो गोमूत्रिकोपमया दर्शितः ।

इहाऽपूर्वकरणेऽपि यथाप्रवृत्तकरणवत् प्रतिसमयमूर्ध्वमुखी विशुद्धिरनन्तगुणा, तिर्यङ्मुखी च षट्स्थानपतिता भवति । नवरमूर्ध्वमुखी विशुद्धिर्नानाजीवापेक्षयाऽपि प्रतिसमयमनन्तगुणा भवति ॥११॥

सम्प्रत्यपूर्वकरणं नाम सान्वर्थमिति व्युत्पिपादयिषुराह

बीयकरणपढमसमयओ ठिइघाओ सुहासुहाण तहा ।
गुणसंकमो असुहपयडीणं अणुभागघाओ य ॥१२॥
अण्णो य ट्ठिइबंधो गुणसेढि त्ति अहिगारपंचतयं ।
जुगवं पयट्टइ तओ णाम अपुव्वकरणं अत्थि ॥१३॥

द्वितीयकरणप्रथमसमयतः स्थितिघातः शुभाऽशुभानां तथा ।
गुणसक्रमोऽशुभप्रकृतीनामनुभागघातश्च ॥ १२ ॥
अन्यश्च स्थितिबन्धो गुणश्रेणिरित्यधिकारपञ्चतयम् ।
युगपत्प्रवर्तते ततो नामाऽपूर्वकरणमस्ति ॥ १३ ॥ इति पदसंस्कारः ।

'बीय०' इत्यादि, 'द्वितीयकरणप्रथमसमयतः' अपूर्वकरणप्रथमसमयादारभ्य 'शुभाशुभानां' शुभानाम्=आयुर्वर्जसातवेदनीयादीनाम् अशुभानां=मतिज्ञानावरणादीनां 'स्थितिघातः' स्थितेः=प्रत्यन्तर्मुहूर्तं पल्योपमसंख्येयभागप्रमाणस्थित्या घातः=अपवर्तनाकरणेनाऽल्पीकरणम्, 'तहा' इत्यादि 'तथा' तथाशब्दः समुच्चये, अशुभप्रकृतीनाम्—अबध्यमानानामप्रत्याख्यानावरणादिप्रकृतीनां 'गुणसङ्क्रमः' गुणेन=प्रतिसमयमसंख्येयगुणकारेण सङ्क्रमः=अन्यरूपेण परिणमनम्, 'अणुभागविघाओ य' त्ति, घण्टालालान्यायेन 'असुहपयडीण' ति पदमत्राऽपि सम्बध्यते । ततश्चाऽयमर्थः—अशुभप्रकृतीनां=मतिज्ञानावरणादीनां 'अनुभागघातश्च' अनुभागस्य=बहुनन्तभागप्रमाणस्य रसस्य 'घातः' खण्डनम्, चकारः समुच्चये, एवमग्रेऽपि । 'अण्णो' इत्यादि, 'अन्यश्च स्थितिबन्धः' अन्यो=यथा—

प्रवृत्तकरणस्य चरमस्थितिबन्धतः पल्योपमसंख्येयभागहीन इतरोऽभिनवः स्थितिबन्धः, चकारः समुच्चये, 'गुणसेढी' त्ति 'गुणश्रेणिः' गुणेन-प्रतिसमयमसंख्येयगुणक्रमेण दलिकं गृहीत्वाऽन्तर्मुहूर्तमात्रनिषेकाणामुदयनिषेकादारभ्य प्रतिनिषेकेऽसंख्येयगुणकारेण श्रेणिः-दलरचना, इतिशब्द इयत्ताऽवधारणार्थकः, 'अधिकारपञ्चतयं' स्थितिघातगुणसंक्रमरसघाताऽपूर्वस्थितिबन्धगुणश्रेणिरूपं युगपत्प्रवर्तते । तत्र पञ्चाऽवयवा अस्य समुदायस्येति पञ्चतयम्, "अवयवात् तयट्" (सिद्धहेम० ७-१-१५१) इति सूत्रेण तद्धिततयट्प्रत्ययः, अधिकाराणां पञ्चतयमिति षष्ठीतत्पुरुषसमासः, पञ्चानामधिकाराणां समुदाय इत्यर्थः । न चाऽत्रा-ऽधिकारशब्दस्य पञ्चशब्दस्य चा-ऽभेदान्वये पञ्चशब्दस्या-ऽधिकारशब्दसापेक्षत्वेना-ऽसामर्थ्यात्तद्धिता-ऽनुपपत्तिः, "सापेक्षमसमर्थम्" इति वचनादिति वाच्यम्, यतः पञ्चाऽवयवा अस्य समुदायस्येति पञ्चतयमिति प्रथमं व्युत्पाद्य पञ्चशब्दस्याधिकारशब्दमनपेक्ष्यैव समुदायेऽन्वयान्नास्त्यसामर्थ्यम् । पश्चाच्चा-ऽधिकाराणां पञ्चतयमित्यधिकारशब्दः समुदायेऽन्वेति, तस्य प्रत्ययार्थतया प्रधानत्वात् । न त्वधिकारशब्दस्य पञ्चतयशब्दैकदेशभूतपञ्चशब्देना-ऽभेदान्वयः "पदार्थः पदार्थेनाऽन्वेति न तु तदेकदेशेन", इति न्यायात् । ततश्चाऽधिकारशब्दपञ्चशब्दयोः परस्परवार्ताऽनभिज्ञयोरेव शब्दमर्यादया समुदायेऽन्वये सति पश्चात् संख्यायाः परिच्छेदकत्वस्वभावतया पञ्चत्वस्य परिच्छेद्यपर्यालोचनायां प्रत्यासत्त्याऽधिकारा एव परिच्छेद्यतया सम्बध्यन्ते-पञ्चानामधिकाराणां समुदाय इति ।

"तओ" इत्यादि, 'ततः' अधिकारपञ्चतयस्य युगपत्प्रवर्तनाद् अपूर्वकरणं नाम 'अस्ति' भवति, अपूर्वाणि-अभिनवानि करणानि-स्थितिघातरसघातगुणसंक्रमगुणश्रेणिस्थितिबन्धानां निर्वर्तनानि यस्मिन् तदपूर्वकरणमिति व्युत्पत्तेरित्यर्थः ॥१२-१३॥

अपूर्वकरणं व्युत्पाद्य तत्र प्रवर्तमानस्थितिघाताऽऽदीनां स्वरूपं व्याजिहीर्षुरादौ स्थितिघातस्य स्वरूपं प्रकटयति

उक्कोसं ठिइखण्डं वि पल्लसंखेज्जभागमाणं खु ।
खंडइ अवरत्तो संखेज्जगुणं जाव तक्करणं ॥१४॥

उत्कृष्टं स्थितिखण्डमपि पल्यसंख्येयभागमानं खलु ।
खण्डयत्यपरस्मात् सङ्ख्येयगुणं यावत् तत्करणम् ॥ १४ ॥ इति पदसंस्कारः ।

स्थितिघातो नाम स्थितिसत्कर्मणोऽग्रिमभागात् स्थितिं घातयति । तत्र जघन्यतः पल्योपमसंख्येयभागमात्रं स्थितिखण्डं प्रत्यन्तर्मुहूर्तं विघातयति । प्रथमौपशमिकसम्यक्त्वोत्पाद-देशविरति-सर्वविरत्यनन्तानुबन्धिविसंयोजना-दर्शनत्रिकक्षपणाप्रभृतिषूत्कृष्टतः स्थितिखण्डं सागरोपमपृथ-

चूर्णौ-"जे अपसत्थकम्मंसा ण वज्झंति तेसिं कम्माणं गुणसंकमो जादो।" अयं भावः गुणसंक्रमेणा-ऽपूर्वकरणप्रथमसमये वध्यमानासु परप्रकृतिष्वबध्यमाना-ऽशुभप्रकृतीनां यावद् प्रदेशाग्रं संक्रमयति, ततो द्वितीयसमयेऽसंख्येयगुणं संक्रमयति, ततोऽपि तृतीयसमयेऽसंख्येयगुणम्। एवमग्रेतनेष्वपि समयेषु वक्तव्यम् ॥ १५ ॥

गुणसंक्रममभिधाय रसघातं व्याख्यातुकाम आह

खंडइ अणंतभागा रसस्स णत्थि च सुहाण रसघाओ।
एक्केक्कम्मि ठिइविघाये रसघाया सहस्साइं ॥ १६ ॥

खण्डयत्यनन्तभागान् रसस्य नास्ति च शुभानां रसघात।
एकैकस्मिन् स्थितिविघाते रसघाता सहस्राणि ॥ १६ ॥ इति पदसंस्कार.।

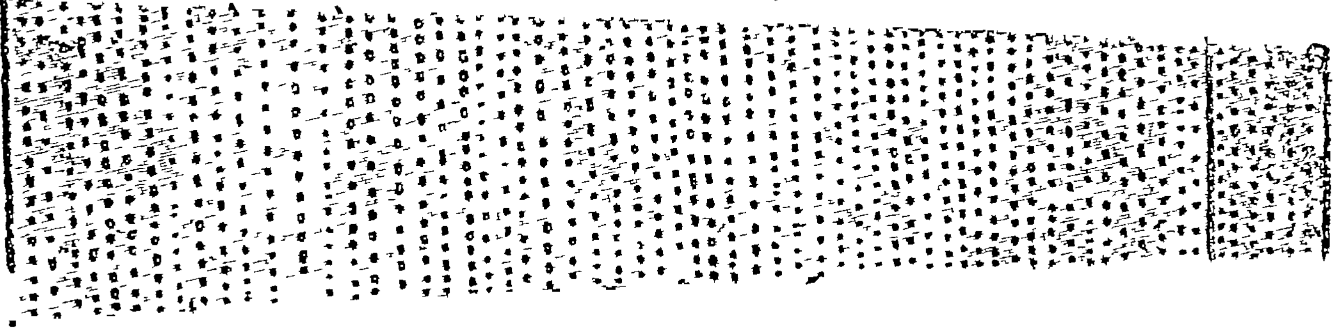
'खंडइ' इत्यादि, तत्र 'रसस्य' शुभप्रकृतीनां प्रतिषेधस्य वक्ष्यमाणत्वात् सामर्थ्याद् सत्तागता-ऽशुभप्रकृतीनामनुभागस्य 'अनन्तभागान्' अनन्तबहुभागान् 'खण्डयति' रसघाताद्धया विघातयति। उक्तं च कषायप्राभृतचूर्णौ "अणुभागखंडयं च आगाइदं, तं पुण अप्पसत्थाणं कम्माणमणंता भागा।" इदमत्र हृदयम्-रसघाताद्धाऽन्तर्मुहूर्तमात्रा भवति। एकस्यां रसघाताद्धायां सत्तागता-ऽनुभागस्या-ऽनन्ता बहुभागा विनाश्यन्ते,एकश्चाऽनन्ततमभागः सत्कर्मणि विमुच्यते। एवं प्रतिरसघाताद्धमनन्तबहुभागान् घातयित्वैकभागं परित्यज्य अत्यन्तमुहूर्तमनुभागसत्त्वमनन्तगुणहीनं करोति। अशुभानां प्रकृतीनामेव रसघातो भवति, अतः शुभानां रसघातनिषेधाय भणति 'णत्थि' इत्यादि, 'नास्ति' न भवति च 'शुभानां' सातवेदनीयादीनां रसघातः। 'एकैकस्मिन्'-एकस्मिन् एकस्मिन् "वीप्सायाम्" (सिद्धहेम० ७-४-८०) इति द्विरुक्त एकशब्दः। "प्लुप् चादावेकस्य स्यादेः" (सिद्धहेम०७-४-८१) इति द्विरुक्तस्यैकशब्दस्य स्यादेर्लुप् भवति, प्रत्येकस्मिन्नित्यर्थः, स्थितिघाते रसघाताः सहस्राणि भवन्तीति शेषः। अयं भावः स्थितिघातेन सहैव रसघातः प्रारभ्यते, तन्निष्ठा तु स्थितिघाततः प्रागेव भवति, एकस्मिन् स्थितिघाते रसघातसहस्राणां दर्शनात्। यदा पुनरभिनवः स्थितिघातः प्रारभ्यते, तदा रसघातोऽपि प्रारभ्यते।

अपूर्वकरणाद्धायां स्थितिघातानां सहस्रत्वप्रतिपादनाद्रसघाता अपि सहस्राणि गच्छन्ति ॥१६॥

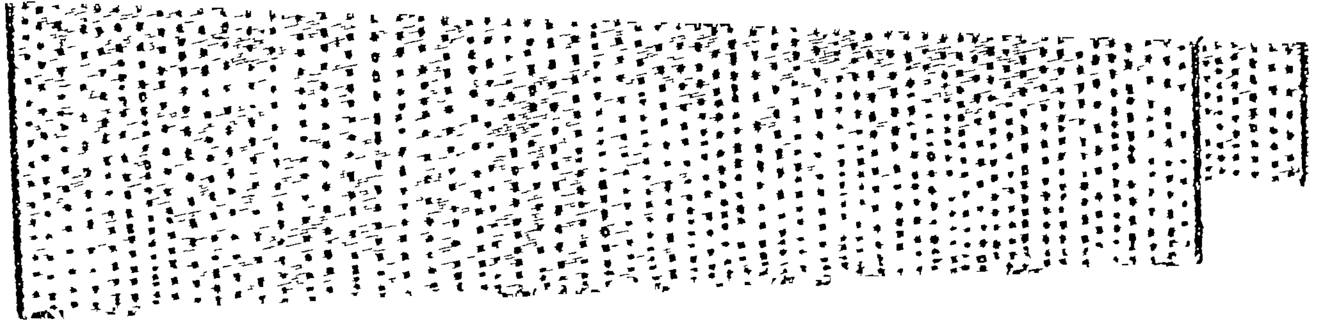
अथाभिनवस्थितिबन्धं व्याचिख्यासुराह

बंधो अंतोकोडाकोडी सत्ताउ संखगुणहीणो।

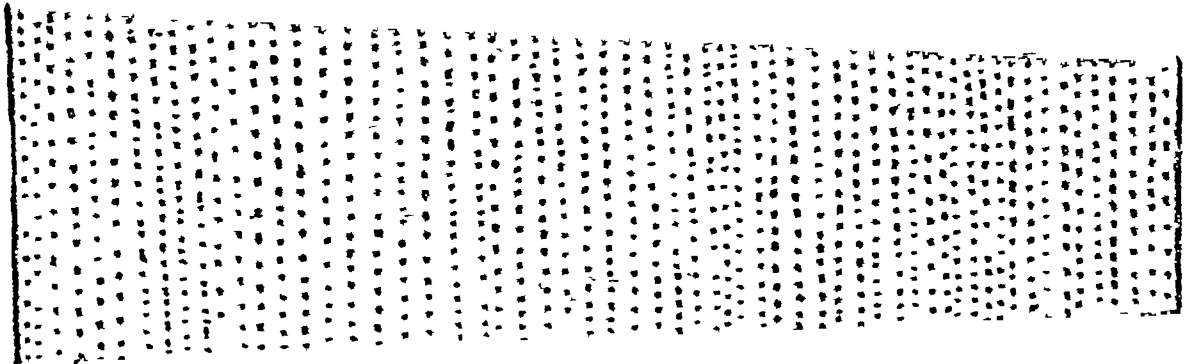
अपूर्वकरणे चित्रेण प्रदर्श्यमानः स्थितिघातः (गाथा–१४)



अपूर्वकरणप्रथमसमये अन्तःसागरोपमकोटीकोटीप्रमाणं स्थितिसत्कर्म
जघन्य स्थितिखण्ड पल्योपमसख्येयभागमात्रम्, ततः सख्येयगुणमुत्कृष्ट स्थितिखण्डम्, तदपि पल्योपमसख्येयभागप्रमाणम्।



स्थितिघाताद्धाद्विचरमसमयं यावत् पल्योपमसख्येयभागप्रमाणा स्थितिर्दलिकापेक्षया तन्वी भवति।



स्थितिघाताद्धाचरमसमये तत्स्थितिखण्डगतसर्वदलिकानि गृहीत्वाऽधस्तात् प्रक्षिपति, तेन तदानीं स्थितिसत्ता पल्योपमसख्येयभागेन न्यूना भवति।

पल्यप्रमितं भवति । इह चारित्रमोहनीयक्षपणायां कियद्भवतीति शङ्कापरिहारार्थमाह "उक्कोसं" इत्यादि, उत्कृष्टमपि अपिशब्दस्य भिन्नक्रमत्वेनाऽत्र योजनात्, स्थितिखण्डं पल्यसंख्येयभाग-मानं खलु 'खण्डयति' विघातयति, दर्शनत्रिकक्षपणायां घातितावशेषस्थितिसत्कर्मणः सागरोपम-पृथक्त्वप्रमाणखण्डा-ऽनर्हत्वात् क्षीणसप्तकस्य स्थितिसत्कर्मणो वृद्धेरसंभवाच्च । उक्तं च कषाय-प्राभृतचूर्णौ–"जहा दंसणमोहणीयस्स उवसामणाए च दंसणमोहणीयस्स खवणाए च कसायाणमुवसामणाए च एदेसिं तिण्हं आवासयाणं जाणि अपुव्वकरणाणि तेसु अपुव्वकरणेसु पढमट्ठिदिखंडयं जहण्णयं पलिदोवमस्स संखेज्जदिभागो उक्कस्सयं सागरोवमपुधत्तं, एत्थ पुण कसायाणं खवणाए जं अपुव्वकरणं तम्हि अपुव्वकरणे पढमट्ठिदिखंडयं जहण्णयं पि उक्कस्सयं पि पलिदोवमस्स संखेज्जदि-भागो ।"

ननूत्कृष्टं स्थितिखण्डं पल्योपमसंख्येयभागमात्रं भवदपि जघन्यतः कियद्गुणं भवति ? इत्यत आह 'अवरत्तो' इत्यादि, 'अपरस्मात्' जघन्यस्थितिखण्डात् संख्येयगुणमुत्कृष्टस्थिति-खण्डं भवति । ननु जघन्यस्थितिखण्डतः उत्कृष्टस्थितिखण्डं संख्येयगुणं कियन्तं कालं भवति ? इत्यतः प्राह–'जाव' इत्यादि, यावत् 'तत्करणम्' अपूर्वकरणम्, अपूर्वकरणे प्रथमस्थितिखण्डादारभ्य चरमस्थितिखण्डं यावत् जघन्यस्थितिखण्डत उत्कृष्टस्थितिखण्डं संख्येयगुणं भवतीत्यर्थः ।

जघन्यस्थितिखण्डं कस्य जन्तोर्भवति, उत्कृष्टं पुनः कस्य भवतीति जिज्ञासानोदिता वयमभिदध्महे

एको जन्तुर्दर्शनमोहनीयं क्षपयित्वा यथासंभवं कालान्तरे उपशमश्रेणिमारोहति, तदानी-मेवा-ऽन्योऽक्षपितदर्शनमोहनीय उपशमश्रेणिं प्रतिपद्यते । तत उभौ पततः । पतित्वा च द्वितीयो जन्तुर्दर्शनत्रिकं क्षपयति । तदनन्तरमुभौ जन्तू युगपत् चारित्रमोहक्षपणामुपक्रमेते । तत्रा-ऽपूर्व-करणे प्रथमजन्तोः स्थितिसत्त्वं द्वितीयजन्तुतः संख्येयगुणं भवति, यत उपशमश्रेणौ उभयोः स्थितिसत्त्वं मिथः सदृशं जातम् । ततः पुनर्दर्शनत्रिकक्षपणा-ऽपूर्वकरणे द्वितीयजन्तुना स्वस्थितिसत्त्वं संख्येयगुणहीनं क्रियते, प्रथमजन्तुना तु स्वस्थितिसत्त्वं संख्येयगुणहीनं न निर्वर्त्यते, उपशमश्रेण्यारोहणतः प्राग् दर्शनत्रिकस्य क्षपितत्वात् । इत्थं द्वितीय-पुरुषतो प्रथमपुरुषस्य स्थितिसत्त्वं संख्येयगुणं भवति । एवं प्रकारान्तरेणाऽपि संख्यातगुणं स्थितिसत्त्वं भावनीयम् । स्थितिखण्डस्य च स्थितिसत्त्वानुसारित्वादपूर्वकरणे द्वितीयपुरुषस्य प्रथमस्थितिखण्डतः प्रथमपुरुषस्य प्रथमस्थितिखण्डं संख्येयगुणं सिध्यति । एवमेव द्वितीयपुरुषस्य द्वितीयखण्डतः प्रथमपुरुषस्य द्वितीयखण्डं संख्येयगुणं भवति, एवं तावद्वाच्यम्, यावदपूर्वकरणस्य चरमस्थितिखण्डम् । उक्तं च कषायप्राभृतचूर्णौ "दो कसायक्खवगा अपुव्वकरणं

समगं पविट्ठो, एक्कस्स पुण ट्ठिदिसंतकम्मं संखेज्जगुणं एक्कस्स ट्ठिदिसंतकम्मं संखेज्जगुणहीणं, जस्स संखेज्जगुणहीणं ट्ठिदिसंतकम्मं तस्स ट्ठिदिखंडयादो पढमादो संखेज्जगुणट्ठिदिसंतकम्मियस्स ठिदिखंडयं पढमं संखेज्जगुणं, विदियादो विदियं संखेज्जगुणं, एवं तदियादो तदियं, एदेण कमेण सव्वम्हि अपुव्वकरणे जाव चरिमादो ठिदिखंडयादो त्ति तदिमादो तदिमं संखेज्जगुणं।"

अपूर्वकरणप्रथमसमयात्प्रभृति प्रतिसमयं पल्योपमसंख्येयभागप्रमाणस्थितिखण्डतो दलिकमुत्किरति, उत्कीर्य चा-ऽधस्तात् प्रक्षिपति। एवं स्थितिघाताद्धाया द्विचरमसमयं यावत् पल्योपमसंख्येयभागप्रमाणां स्थितिं दलिकापेक्षया तन्वीं करोति, चरमसमये तु तद्गतशेषसर्वदलं गृहीत्वा-ऽधस्तात् प्रक्षिपति, तेन तदानीं सत्तायां पल्योपमसंख्येयभागेन स्थितिन्यूना भवति। स्थितिघाताद्धा चा-ऽन्तमुहूर्तप्रमाणा भवति। प्रथमस्थितिघाते पूर्णे पुनः पल्योपमसंख्येयभागमात्रं द्वितीयं स्थितिखण्डमुत्कारितुमारभते, अन्तमुहूर्तप्रमाणस्थितिघाताद्धाया द्विचरमसमयं यावत् स्थितिखण्डगतां स्थितिं प्रदेशापेक्षया तन्वीं करोति, चरमसमये तु तद्गतं शेषं सर्वं प्रदेशाग्रमुत्कीर्या-ऽधस्तात् प्रक्षिपति, तेन तदानीं सत्कर्मणि पुनः पल्योपमसंख्येयभागेन स्थितिर्हीना भवति। इत्थं द्वितीयस्थितिघातः पूर्णो भवति। एवंक्रमेण संख्यातसहस्रेषु स्थितिघातेषु गतेष्वपूर्वकरणं परिसमाप्तिं याति। (पश्यन्तु यन्त्रकम्–१)

स्थितिघातस्य विशेषस्वरूपं तु कर्मप्रकृतिग्रन्थे उपशमनकरणगतसम्यक्त्वोत्पादटीकायां निरूपितम्, विशेषार्थिना ततो-ऽवसेयम् ॥१४॥

सम्प्रति गुणसंक्रमं निगदितुकाम आह

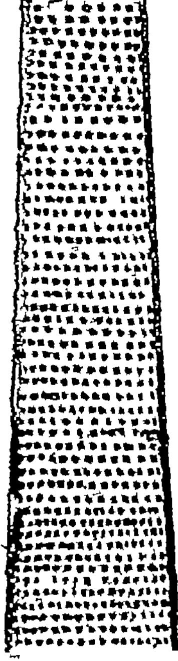
असुहपयडीण-ऽसंखगुणं दलिअं खिवइ अन्नासु।
बंधंतासु सपयडीसु अणुखणं स गुणसंकमो णेयो ॥१५॥ (उद्गीतिः)

अशुभप्रकृतीनामसंख्यगुणं दलिकं क्षिपत्यन्यासु।
बध्यमानासु स्वप्रकृतिष्वनुक्षणं स गुणसंक्रमो ज्ञेयः ॥१५॥ इति पदसंस्कारः।

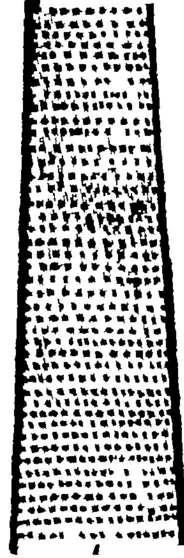
'असुह०' इत्यादि, अपूर्वकरणप्रथमसमयात्प्रभृति 'अशुभप्रकृतीनाम्' "व्याख्यानतो विशेषप्रतिपत्तिः" इति न्यायाद् अबध्यमानानामशुभप्रकृतीनामप्रत्याख्यानावरणादिरूपाणां 'दलिकं' प्रदेशाग्रम् 'अनुक्षणं' प्रतिसमयम् 'असंख्यगुणम्' असंख्यातगुणं येन संक्रमेण यत्तदोः सापेक्षत्वादुत्तरत्र तत्पदोपादानदर्शनाद् यत्पदोपादानम्, बध्यमानासु 'अन्यासु' परासु 'स्वप्रकृतिषु' स्वजातीयप्रकृतिषु 'क्षिपति' संक्रमयति, स गुणसंक्रमो 'ज्ञेयः' बोद्धव्यः। यदुक्तं कषायप्राभृत-

अपूर्वकरणे चित्रेण प्रदर्श्यमानः स्थितिबन्धः

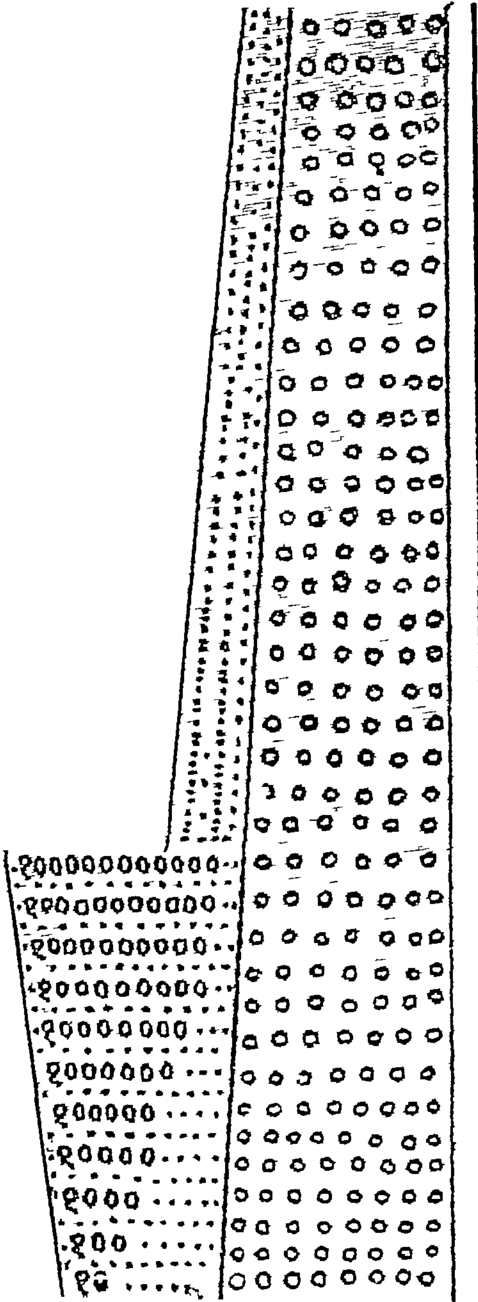
अपूर्वकरणे प्रथमस्थितिबन्धः



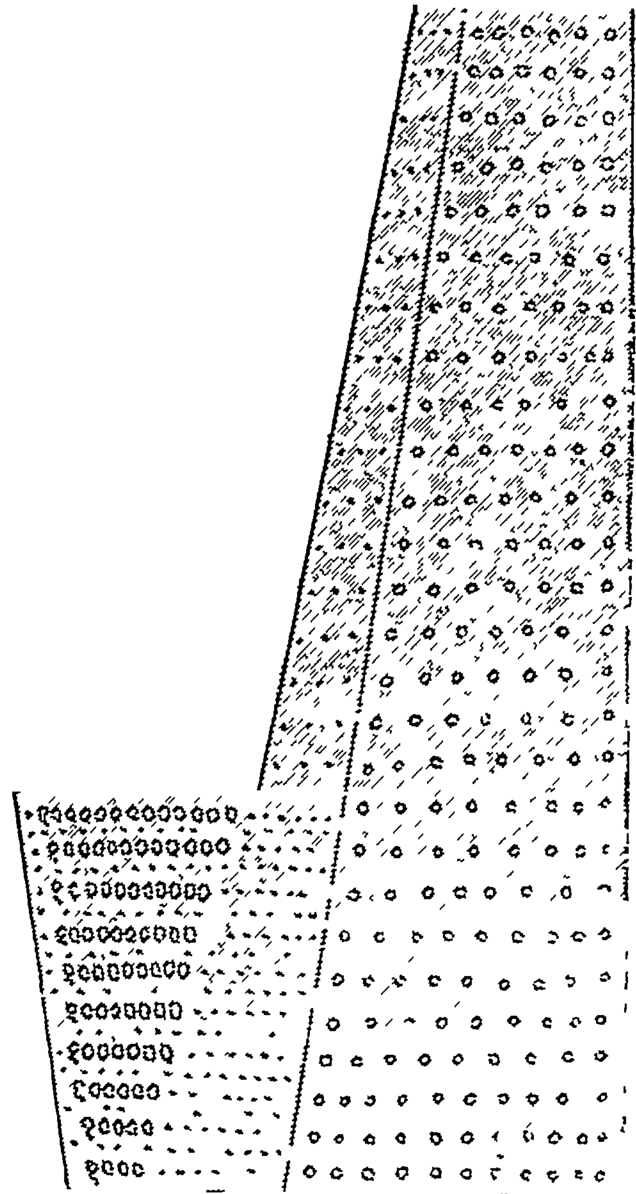
अपूर्वकरणे प्रथमस्थितिबन्धाद्धायां पूर्णायां द्वितीय-स्थितिबन्ध. प्रथमस्थितिबन्धापेक्षया पल्योपम-सख्येयभागेन न्यूनो भवति, एवमग्रेऽपि ।



अपूर्वकरणप्रथमसमय उदयवतीनां प्रकृतीनां गुणश्रेणिः



अपूर्वकरणद्वितीयसमय उदयवतीनां प्रकृतीना गुणश्रेणि



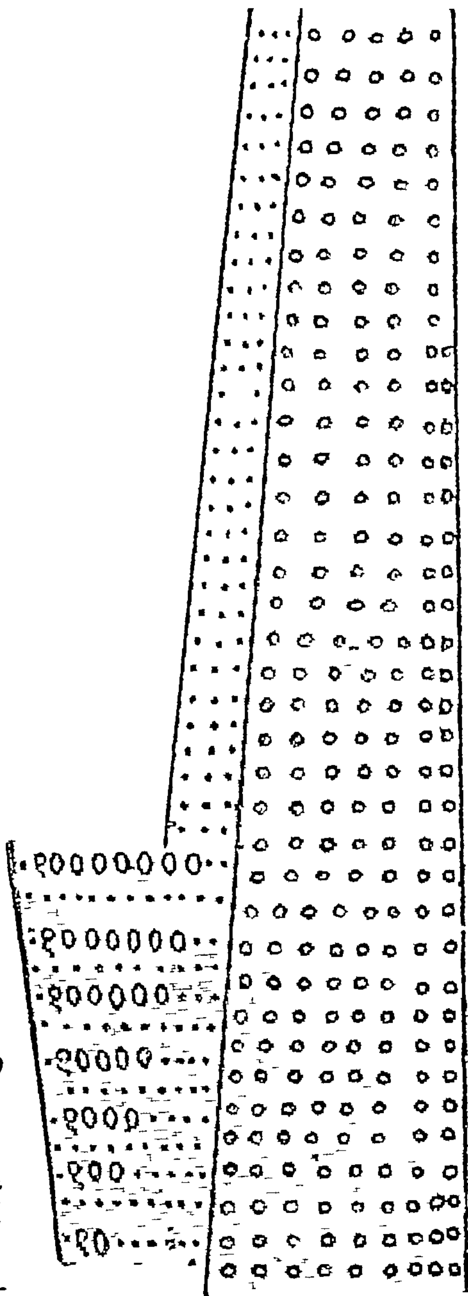
सङ्केतविवरणम्

(१) ००० एभिः शून्यैर्गुणश्रेणितः प्राग् निषेकरचना सूचिता ।

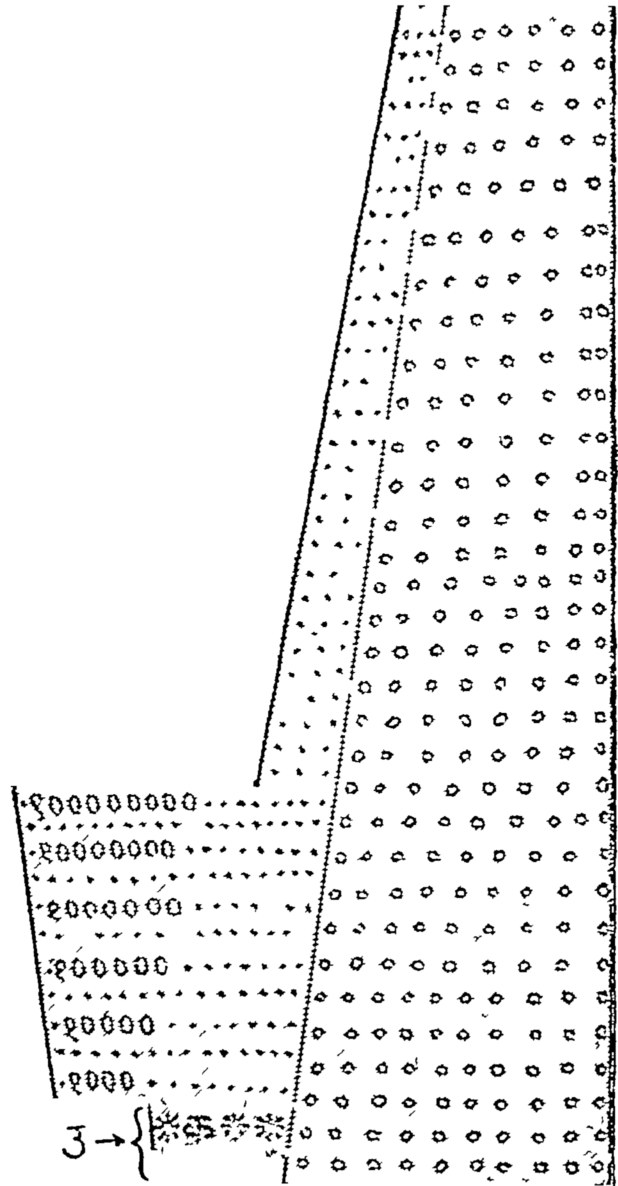
(२) · एतैर्बिन्दुभिरपूर्वकरणप्रथमसमये दीयमानं दलं सूचितम् ।

(३) दशसंख्या-ऽत्राऽसंख्येयत्वेन कल्पिता, तेन गुणश्रेण्यामुत्तरोत्तरनिषेके दशगुणं दलं दीयते, वस्तुत-स्त्वसंख्येयगुणं दलं दीयते । गुणश्रेणिचरमनिषेकतोऽसंख्येयगुणहीनं दलं तदुपरितने निषेके प्रक्षिपति, ततः सर्वत्र विशेषहीनक्रमेण तावत् प्रक्षिपति, यावदतीत्थापनाऽप्राप्ता भवति ।

अपूर्वकरणप्रथमसमयेऽनुसमय उदयवतीनां प्रकृतीनां गुणश्रेणिः



अपूर्वकरणाद्वितीयसमयेऽनुदयवतीनां प्रकृतीनां गुणश्रेणिः



उदयेनैव निषेक क्षीण ।

●●●● अनेन चिह्नेन दीयमानं दलं सूचितम् ।

○○○○ अनेन चिह्नेन दीयमानदलिकतो व्यतिरिक्तं सत्तागत दल सूचितम् ।

उ= उदयावलिका ।

क= अपूर्वकरणप्रथमसमय उदयावलिकाया उपरितनः प्रथमो निषेक आसीत्, सोऽधुना चोदयावलिकायां प्रविष्ट, । तस्मिंश्च यद् दलमपूर्वकरणप्रथमसमये प्रक्षिप्तम्, तद् * अनेन चिह्नेन सूचितम् ।

दशसंख्या त्वत्राऽसंख्येयत्वेन परिकल्पिता । तेनोत्तरोत्तरगुणश्रेणिनिषेके दशगुणक्रमेण दीयमानानि दलिकानि चित्रे दर्शितानि, वस्तुतस्त्वसंख्येयगुणक्रमेण दर्शयितव्यानि ।

गुणश्रेण्या उपरि प्रथमनिषेकेऽसंख्येयगुणहीनं दलं दीयते, ततः परं सर्वत्र विशेषहीनक्रमेण ।

पूरणे ठिइबंधे अरणो होज्जइ पल्लसंखभागोणो ॥१७॥ (गीतिः)

बन्धोऽन्त कोटिकोटि सत्ताया संख्यगुणहीन'।
पूर्णे स्थितिबन्धो-ऽन्यो भवति पल्यसंख्यभागोन. ॥१७॥ इति पदसंस्कार:।

'बंधो' इत्यादि, अपूर्वकरणप्रथमसमये 'बन्ध': स्थितिबन्धः 'अन्तःकोटिकोटि' अन्तःसागरोपमकोटिकोटिप्रमाणः सागरोपमकोटिशतसहस्रपृथक्त्वमात्र इत्यर्थः। ननु तदानीं स्थितिसत्त्वमप्यन्तःसागरोपमकोटिकोटिमितं भवति, द्वाविंशतितमगाथायां तत्प्रतिपादनदर्शनात्, तर्हि किं स्थितिबन्धस्थितिसत्त्वयोस्तुल्यत्वम्, उत वैषम्यमिति शंकापरिहारार्थमाह-'सत्ताउ' इत्यादि, 'सत्तायाः' स्थितिसत्कर्मतः संख्यगुणहीनः स्थितिबन्धो भवति, न तुल्यः। उक्तं च कषायप्राभृतचूर्णौ-"तदो ठिदिसंतकम्मं ठिदिबंधो च सागरोवमकोडिसदसहस्सपुधत्तमंतोकोडाकोडीए बंधादो पुण संतकम्मं संखेज्जगुणं।" कषायप्राभृतचूर्णौ स्थितिबन्धतः स्थितिसत्त्वस्य संख्येयगुणत्वप्रतिपादनात् स्थितिसत्त्वतः स्थितिबन्धः संख्येयगुणहीनः सिध्यति। अपूर्वकरणप्रथमसमये प्रारब्धः स्थितिबन्धोऽन्तमुर्हूर्तं यावत्प्रवर्तते। प्रथमस्थितिबन्धे पूर्णे यो विशेषस्तं दर्शयति-'पूण्णे' इत्यादि, 'पूर्णे स्थितिबन्धे' प्रथमस्थितिबन्धे निष्ठिते 'अन्यः' द्वितीयः 'पल्यसंख्यभागोनः' पल्यस्य-पल्योपमस्य संख्यभागः-संख्यातभागः, तेन ऊनः-हीनः, "ऊनार्थपूर्वाद्यैः" (सिद्धहेम० ३-१-६७) इति तृतीयातत्पुरुषसमासः, स्थितिबन्धो 'भवति' जायते। उपलक्षणमेतद्, तेन द्वितीयस्थितिबन्धे पूर्णे तृतीयस्थितिबन्धः पूर्वतः पल्योपमसंख्येयभागेन हीनः आरभ्यते। एवंक्रमेण पूर्वपूर्वतः पल्योपमसंख्येयभागेन हीनो हीनतरः स्थितिबन्धो जायते। स्थितिबन्धाद्धा स्थितिघाताद्धया तुल्या भवति, तेन स्थितिबन्धः स्थितिघातश्च युगपदारभ्येते युगपन्निष्ठां च यातः। अपूर्वकरणे स्थितिघातानां संख्येयत्वोपलम्भात् स्थितिबन्धा अपि संख्येया व्रजन्ति। (पश्यन्तु यन्त्रकम्-२) ॥ १७ ॥

अथ गुणश्रेणिं विवर्णयिषुराह

गुणसेढीए आयामो हवए करणदुगऽहिओ गलिओ।
खिवइ दलं कमसो घेत्तूण-ऽणुसमयं असंखगुणणाए ॥१८॥ (गीतिः)

गुणश्रेणेरायामो भवति करणद्विकाऽधिको गलित ।
क्षिपति दल क्रमशो गृहीत्वा-ऽनुसमयमसंख्यगुणनया ॥१८॥ इति पदसंस्कार.।

अपूर्वकरणप्रथमसमयादेवायुर्वर्जसप्तकर्मणां गुणश्रेणिः प्रवर्तते। तत्र गुणश्रेणिनिक्षेपः कियान् भवतीत्यत आह-'गुणसेढीए' इत्यादि, गुणश्रेणेः 'आयामः' उदयसमयप्रभृतिगुणश्रेणिशिरःपर्यव-

सानंनिषेकरूपः 'करणद्विकाऽधिकः' करणद्विकेन-अपूर्वकरणानिवृत्तिकरणाभ्यामधिको* भवति। उक्तं च कषायप्राभृतचूर्णौ- "अपुव्वकरणद्धादो अणियट्टिकरणद्धादो च विसेसुत्तर-कालो।" स चाऽऽयामोऽन्तर्मुहूर्तमात्रो भवन्नपि 'गलितः' गलितावशेषमात्रो ज्ञातव्यः, पूर्वपूर्वसमये क्षीणे शेषेषु शेषेषु समयेषु दलिकनिक्षेपो भवतीत्यर्थः। ननु निरुक्तगुणश्रेण्यायामे केन क्रमेण दलिकं गृहीत्वा प्रक्षिपति ? इत्यत आह 'खिवइ' इत्यादि, 'असंखगुणणाए' इति पदं ग्रहण-क्रियायां प्रक्षेपक्रियायां चोभयत्राऽन्वेति। 'असंख्यगुणनया' असंख्येयगुणकारेण 'अनुसमयं' प्रतिसमयं दलं 'गृहीत्वा' आदायाऽसंख्येयगुणकारेण 'क्षिपति' निक्षिपति। इदमत्र हृदयम् अपूर्व-करणप्रथमसमयादुदयमानप्रकृतीनां सत्तागतप्रदेशतो दलं गृहीत्वा नव्यशतककारादीनां मतेनोदय-समयादारभ्या-ऽन्तर्मुहूर्तमात्रा-ऽऽयामे-ऽसंख्येयगुणकारेण दलं रचयति। तथा चा-ऽत्र नव्यश-तकम्- "कथंपुनर्दलरचना ? कस्माच्चारभ्य केन च गुणाकारेण विधीयते ज-ुनेत्याह- अनुसमयं समयं समयमनुलक्षीकृत्य प्रतिसमयमित्यर्थः। उदयादुदयक्षणादार-भ्याऽसंख्येयगुणनयाऽसंख्यातगुणकारेण।" कषायप्राभृतचूर्णिकारादीनामभिप्रायेण तूदयावलिकाया उपरितननिषेकादारभ्या-ऽन्तर्मुहूर्तप्रमाणे आयामे गुणश्रेणिं करोति, असंख्येय-गुणकारेण दलं रचयतीत्यर्थः। तथा च तद्ग्रन्थः- "गुणसेढी उदयावलियबाहिरे णिक्खित्ता।"

भावार्थः पुनरयम् अपूर्वकरणप्रथमसमये दलिकमुत्कीर्य गुणश्रेण्यायामगतोत्तरोत्तरनिषे-केऽसंख्येयगुणक्रमेण तावत् प्रक्षिपति, यावद् गुणश्रेण्यायामसत्कचरमनिषेकः। तदनन्तरोपरित-ननिषेके-ऽसंख्येयगुणहीनं दलिकं निक्षिप्योपरि विशेषहीनक्रमेण तावत् प्रक्षिपति, यावदती-त्थापना-ऽप्राप्ता भवति। पुनर्द्वितीयसमये प्राक्तनसमयगृहीतदलतो-ऽसंख्येयगुणदलमादाय प्रथम-समयत एकसमयोनप्राक्तनगुणश्रेण्यायामे उत्तरोत्तरनिषेके-ऽसंख्येयगुणक्रमेण तावत् प्रक्षिपति, यावद् गुणश्रेण्यायामसत्कचरमनिषेकः, एकसमयस्योदयेन वेदितत्वात्। तदनन्तरोपरित-ननिषेके तु गुणश्रेण्यायामचरमनिषेकतो-ऽसंख्येयगुणहीनं दलिकं निक्षिपति, तत ऊर्ध्वं विशेष-हीनक्रमेण प्रक्षिपति। एवमुत्तरोत्तरसमये पूर्वपूर्वतो-ऽसंख्येयगुणं दलमादाय गलिता-ऽवशेषमात्रे गुणश्रेण्यायामे-ऽसंख्येयगुणक्रमेण निक्षिपति।

अनुदयवतीनां प्रकृतीनां पुनर्गुणश्रेणिरुभयेषां मतेनोदयावलिकाया उपरितननिषेकात्प्रभृति भवति। (पश्यन्तु यन्त्रकम्-३, ४, ५, ६) ॥१८॥

* आधिक्य च जयधवलाकारे-सूक्ष्मसम्परायक्षीणमोहच्छद्मस्थगुणस्थानकाद्धाद्वयेन किञ्चिदधिकं दर्शितम्। तथा च तद्ग्रन्थः- "एत्थ विसेसाहियपमाणं सुहुमसाम्पराइयखीणकसायद्धाहितो विसेसुत्तरमिदि घेत्तव्वं।"

ननु संसारावस्थायां संक्लिष्टपरिणामा मिथ्यादृष्टिप्रभृत्यप्रमत्तसंयतपर्यवसानाः सर्वे जीवाः सर्वाः स्थितीरेकां स्थितिं वा-ऽऽश्रित्योत्कीर्णदलिकतो बहुदलमुद्वर्तयन्ति, स्तोकं त्वपवर्तयन्ति। मध्यमपरिणामास्तु यावद् दलमुद्वर्तयन्ति, तावद् दलमपवर्तयन्ति । विशुद्धपरिणामाः पुनः स्तोकमुद्वर्तयन्ति बहु दलमपवर्तयन्ति । अनुत्कीर्णं सत्तागतदलं तु त्रिविधानामपि जन्तूनामुद्वर्तनातो-ऽपवर्तनातो वाऽसंख्येयगुणं विद्यते । यदुक्तं कषायप्राभृतचूर्णौ–"अवखवगाणुवसामगस्स पुण सव्वाओ ट्ठिदीओ एगट्ठिदिं वा पडुच्च वड्ढीदो हाणी तुल्ला वा विसेसाहिया विसेसहीणा वा । अवट्ठाणमसंखेज्जगुणं ।" करणाभिमुखानां तूद्वर्तनातोऽपवर्तनायामसंख्येयगुणं दलिकं भवति, ततोऽनुत्कीर्यमाणं सत्तागतदलमसंख्येयगुणं भवतीति, तर्हि क्षपकश्रेणिं प्रतिपद्यमानस्य जन्तोरुद्वर्तनादीनामल्पबहुत्वं कथं भवतीति शंकापरिहारार्थमाह

उवट्टणाअ खु असंखगुणा ओवट्टणा तओ सत्ता ।
जं उक्किरणस्स असंखंसो उव्वट्टणाअ होएइ ॥१६॥ (गीतिः)

उद्वर्तनायाः खल्वसंख्यगुणाऽपवर्तना ततः सत्त्वम् ।
यद् उत्कीर्णस्य असंख्यांश उद्वर्तनाया भवति ॥१६॥ इति पदसंस्कारः ।

'उव्वट्टणाअ' इत्यादि, 'उद्वर्तनायाः' उद्वर्तनातः 'खु' त्ति खलु-निश्चयेन "हु खु निश्चयवितर्कसंभावने विस्मये" (सिद्धहेम० ८–२–१९८) इति वचनात् असंख्यगुणा अपवर्तना, 'ततः' अपवर्तनातः सत्ताऽसंख्येयगुणा । अत्र सत्ताशब्देन उद्वर्तनाऽपवर्तनागतदलं वर्जयित्वा शेषप्रदेशसत्ता ग्राह्या । अयं भावः–एकनिषेकं सर्वनिषेकांश्चा-ऽऽश्रित्योद्वर्त्यमानप्रदेशाग्रतोऽपवर्त्यमानप्रदेशाग्रमसंख्येयगुणं भवति, ततः सत्तागतप्रदेशाग्रं यद् नोद्वर्त्यते, नवाऽपवर्त्यते, तदसंख्येयगुणं भवति, सत्तागतदलसत्काऽसंख्येयभागमात्रस्यैव दलस्योत्कीर्णत्वात् ।

ननूद्वर्तनातोऽपवर्तनाऽसंख्येयगुणा कुतो भवतीत्याह 'जं' इत्यादि, 'यद्' यतः 'उत्कीर्णस्य' उत्कीर्णप्रदेशाग्रस्य 'असंख्यांशः' एकोऽसंख्येयभाग उद्वर्तनायां भवति, शेषा बहुभागाऽपवर्तनायां भवन्तीत्यर्थः । तेन क्षपकस्योद्वर्तनागतदलतोऽपवर्तनागतदलमसंख्येगुणं भवति । तथाहि यस्मात्करणाच्चिदपि निषेकात् सत्तागतदलं पल्योपमाऽसंख्यभागरूपभागहारेण भक्त्वैकभागमुत्किरति, शेषान् बहुभागान् सत्तायां विमुञ्चति । पुनरुत्कीर्णदलं पल्या-ऽसंख्येयभागप्रमाणभागहारेण विभज्यैकभाग उद्वर्त्यते बहुभागाश्चाऽपवर्त्यन्ते, तेनेदमल्पबहुत्वं सङ्गच्छते–दलिकस्योद्वर्तनातोऽपवर्तनाऽसंख्येयगुणा, उद्वर्तनातोऽपवर्तनायामुत्कीर्णदलस्याऽसंख्येयबहुभागमात्रत्वात् । अपवर्तनातो-ऽनुत्कीर्यमाणदलिकसत्ता-ऽसंख्येयगुणा, सत्तागतदलिकसत्का-ऽसंख्येयभागस्योत्की-

र्णत्वात् । एवं सर्वनिषेकानाश्रित्याऽपि वक्तव्यम् । तथाहि आगमा-ऽविरोधेन सत्तागतसर्वनिषेकगतदलं पल्योपमाऽसंख्येयभागेन भक्त्वैकभागमुत्किरति । उत्कीर्णदलं पुनः पल्योपमा-ऽसंख्येयभागेन विभज्यैकं भागमुद्वर्तयति बहुभागांश्चा-ऽपवर्तयति । इत्थं सर्वनिषेकानाश्रित्या-ऽप्युद्वर्तनातो दलिकाऽपवर्तनाऽसंख्येयगुणा भवति, ततोऽनुत्कीर्यमाणदलिकसत्ता-ऽसंख्येयगुणा जायते । उक्तं च कषायप्राभृते

"वड्ढीदु होइ हाणी अहिगा हाणीदु तह अवट्ठाणं ।
गुणसेढी असंखेज्जा च पदेसग्गेण बोद्धव्वा ॥ १ ॥"

एवं तच्चूर्णावपि "विहासा, जं पदेसग्गमुक्कड्डिज्जदि सा वड्ढि त्ति सण्णा । जमोकड्डिज्जदि सा हाणि त्ति सण्णा । जं ण ओकड्डिज्जदि,ण उक्कड्डिज्जदि पदेसग्गं तमवट्ठाणं त्ति सण्णा । एदीए सण्णाए एक्कं ठिदिं पडुच्च सव्वाओ ट्ठिदीओ पडुच्च अप्पाबहुअं । तं जहा वड्ढी थोवा, हाणी असंखेज्जगुणा, अवट्ठाणमसंखेज्जगुणं ।"

इयं प्ररूपणोपशमश्रेणिं प्रतिपद्यमानस्या ऽपि ज्ञातव्या, विशेषाभावात् ॥१९॥

सम्प्रत्यपूर्वकरणे बन्धोदयोर्व्यवच्छेदं व्याजिहीर्षुराह

पढमंसेऽपुव्वस्स उ बे णिद्दा सुरगइप्पभिइतीसा ।
छट्ठंसे हासरइभयदुगुच्छाऽन्ते य बंधत्तो ॥२०॥
वोच्छिज्जंति छ हासाई उदयत्तो य ठिइबंधो ।
पढमसमयओ चरिमसमयम्मि संखेज्जगुणहीणो ॥२१॥(उपगीतिः)

प्रथमांशेऽपूर्वस्य तु द्वे निद्रे सुरगतिप्रभृतित्रिंशत् ।
षष्ठांशे हास्य-रति-भय-जुगुप्सा अन्ते च बन्धत ॥ २० ॥

व्यवच्छिद्यन्ते षट् हास्यादय उदयतः स्थितिबन्ध ।
प्रथमसमयतश्चरमसमये सख्येयगुणहीन ॥ २१ ॥ इति पदसंस्कार ।

'पढमंसे' इत्यादि, अपूर्वकरणाद्धायाः सप्तभागाः कर्तव्याः । एकैकभागे संख्येयाः स्थितिबन्धा व्रजन्ति । तत्र 'अपूर्वकरणस्य' अपूर्वकरणाद्धायाः 'प्रथमांशे' प्रथमसप्तभागपर्यवसाने तु 'द्वे निद्रे' स्त्यानर्द्धित्रिकस्य प्रागेव व्यवच्छेदात् निद्राप्रचलारूपे बन्धतो व्यवच्छिद्येते इति क्रियया सहा-ऽन्वयः । इह बध्यते, उत्तरत्र न बध्यते, तद्बन्धाध्यवसायस्थानाभावात् । इतःपरं निद्राद्वि-

कस्य गुणसंक्रमः प्रवर्तते, तस्या-ऽशुभा-ऽबध्यमानत्वात् । उक्तं च कषायप्राभृतचूर्णौ–"एवं ठिदिबंधसहस्सेहिं गदेहिं अपुव्वकरणद्धाए संखेज्जदिभागे गदे तदो णिद्दापयलाणं बन्धवोच्छेदो । ताधे चेव गुणसंकमेण संकमंति ।"

'सुर०' इत्यादि, तत्र 'षष्ठांशे' अपूर्वकरणाद्धायाः षष्ठसप्तमभागप्रान्ते 'सुरगतिप्रभृतित्रिंशत्' सुरगतिप्रभृतीनां त्रिंशत्-त्रिंशत्संख्याका देवगत्यादयो बन्धतो व्यवच्छिद्यन्ते । अयं भावः–देवगति-देवानुपूर्वीपञ्चेन्द्रियजाति-वैक्रियद्विका-ऽऽहारकद्विक-तैजसकार्मणशरीर--समचतुरस्रसंस्थान-वर्णचतुष्क-शुभखगति–त्रसनवक–जिननाम–निर्माणा-ऽऽगुरुलघूपघात-पराघात-श्वासोच्छ्वासरूपास्त्रिंशत्प्रकृतयो-ऽपूर्वकरणाद्धायाः षष्ठसप्तमभागपर्यवसाने बन्धतो व्यवच्छिद्यन्ते, उत्तरत्र न बध्यन्ते इत्यर्थः । अतः परमुपघातस्य गुणसंक्रमः प्रवर्तते, तस्या-ऽशुभा-ऽबध्यमानत्वात् ।

'हास०' इत्यादि, 'हास्य-रति-भय-जुगुप्साः' एताश्चतस्रः प्रकृतयः 'अन्ते' अपूर्वकरणस्य चरमसप्तमभागपर्यवसाने अपूर्वकरणाद्धाचरमसमये इत्यर्थः, बन्धतो व्यवच्छिद्यन्ते, उत्तरत्र न बध्यन्ते इत्यर्थः । अतः परं हास्य-रति-भय-जुगुप्सानां गुणसंक्रमः प्रवर्तते, अशुभा-ऽबध्यमानत्वात् ।

'छ हासाई' इत्यादि, अपूर्वकरणस्य चरमसमये 'षट्' षट्संख्याकाः 'हास्यादयः' हास्य-रति-शोका-ऽरति-भय-जुगुप्सारूपा उदयतो व्यवच्छिद्यन्ते, विशुद्धतरपरिणामत्वादुत्तरत्र तेषामुदयो न भवतीत्यर्थः ।

अथ स्थितिबन्धं प्रकटयितुकामः प्राह–'ठिइ०' इत्यादि, 'स्थितिबन्धः' आयुर्वर्जसप्तानामपि कर्मणां स्थितिबन्धः 'प्रथमसमयतः' अपूर्वकरणसत्का-ऽऽद्यसमयतश्चरमसमये संख्येयगुणहीनो भवति, संख्येयभागमात्रो भवतीत्यर्थः ॥२०–२१॥

अथाऽपूर्वकरणचरमसमये स्थितिसत्त्वं विभणिषुराह

जं ठिइसंतं अंतोकोडाकोडी अपुव्वआइखणे ।
तं संखेज्जगुणूणं अंते ठिइघायसंखेहिं ॥२२॥

यत्स्थितिसत्त्वमन्तःकोटिकोट्यपूर्वा-ऽऽदिक्षणे ।
तत्संख्येयगुणोनमन्ते स्थितिघातसंख्यैः ॥२२॥ इति पदसंस्कारः ।

'जं०' इत्यादि, तत्र 'अपूर्वादिक्षणे' अपूर्वकरणप्रथमसमये यत्स्थितिसत्त्वम् 'अन्तःकोटिकोटि' कोटिकोटीनां-सागरोपमकोटिकोटीनाम् अन्तर् मध्ये, अन्तःकोटिकोटि, "पारेमध्येऽग्रे-ऽन्तः

ष्ठ्या च" (सिद्धहेम० ३-१-३०) इत्यनेना-ऽव्ययीभावसमासः, सागरोपमकोटिशतसहस्रपृथक्त्व-मित्यर्थः, आसीत् इति शेषः, तत् स्थितिसत्त्वं 'स्थितिघातसंख्यैः' संख्यशब्दो-ऽत्र बहुत्ववाची, तेन स्थितिघातसंख्यातसहस्रैर्घातितं सद् 'अन्ते' अपूर्वकरणचरमसमये 'संख्येयगुणोनं' संख्येय-गुणहीनं संख्येयभागमात्रं भवतीत्यर्थः। उपलक्षणमेतद्, तेन स्थितिबन्धो-ऽपूर्वकरणप्रथमसमयत-श्चरमसमये संख्येयगुणहीनो भवतीत्युपलक्ष्यते। एवं स्थितिखण्डसंख्यातसहस्रैरपूर्वकरणं परिसमाप्तं भवति ॥२२॥

प्राक्प्रतिज्ञातनवा-ऽधिकारेष्वधिकारद्वयं निरूप्य तृतीया-ऽधिकारं विस्तरतो निजिगदि-षुराह

से काले अनियट्टि विणासेउं आढवेइ ठिइखंडं।
तं हस्सत्तो संखेज्जभागअहिअं तु उक्कोसं ॥२३॥

अनन्तरकाले-ऽनिवृत्ति विनाशयितुमारभते स्थितिखण्डम्।
तद् ह्रस्वतः संख्येयभागा-ऽधिक तूत्कृष्टम् ॥ २३ ॥ इति पदसंस्कारः।

'से काले' इत्यादि, 'अनन्तरकाले' अपूर्वकरणस्य चरमसमयादनन्तरे समये इत्यर्थः, 'अनि-वृत्ति' अनिवृत्तिकरणं भवति, अनिवृत्तिशब्देन 'भीमो भीमसेनः' इतिन्यायाद् अनिवृत्तिकरणं ग्राह्यम्, न विद्यते निवृत्तिः-तुल्यकाले प्रविष्टानां जन्तूनां सम्बन्धिनामध्यवसायस्थानानां पर-स्परं व्यावृत्तिर्यस्मिन् तदनिवृत्ति, अनिवृत्ति च तत्करणं च अनिवृत्तिकरणम्, अस्य करणस्यो-पर्युक्तव्युत्पत्तेस्तिर्यग्मुखी विशुद्धिरस्मिन् करणे न भवति, केवलं पूर्वत उत्तरोत्तरसमये ऊर्ध्वमुखी विशुद्धिरनन्तगुणक्रमेणा-ऽवतिष्ठते। तेना-ऽध्यवसायस्थानेषु तुल्यकालप्रविष्टजन्तूनां विवक्षित-समये एकमेवाऽध्यवसायस्थानं भवति, न पुनर्यथाप्रवृत्तकरणादिवदसंख्येयलोकप्रदेशमात्राणि। तथाहि अनिवृत्तिकरणप्रथमसमये ये वर्तन्ते ये च वृत्ता ये च वर्तिष्यन्ते, तेषां सर्वेषामप्येक-रूपमेवा-ऽध्यवसायस्थानम्, द्वितीयसमये-ऽपि ये वर्तन्ते ये च वृत्ता ये च वर्तिष्यन्ते, तेषां सर्वेषामेकरूपमध्यवसायस्थानम्। एवं तावद् वाच्यम्, यावदनिवृत्तिकरणचरमसमयः। नवरं प्रथमसमय-भाव्यध्यवसायस्थानतो द्वितीयसमये-ऽध्यवसायस्थानमनन्तगुणं विशुद्धं भवति। ततोऽपि तृतीयसमये ऽनन्तगुणं विशुद्धम्। एवं पूर्वपूर्वसमयत उत्तरोत्तरसमयेऽनन्तगुणं विशुद्धं तावद् वाच्यम्, यावच्चरम-समयः। अत एवा-ऽस्य करणस्य यावन्तः समयास्तावन्त्यध्यवसायस्थानानि पूर्वपूर्वसमयतश्चाऽनन्त-गुणवृद्धानि भवन्ति, स्थाप्यमानानि पुनर्मुक्तावलीसंस्थानेन तिष्ठन्ति। ⁝

अथाऽनिवृत्तिकरणप्रथमसमये कार्यविशेषं प्रतिपादयति-'विणा०' इत्यादि, अनिवृत्तिकरण-प्रथमसमयवर्ती जीवः 'स्थितिखण्डम्' अभिनवं पल्योपमसंख्येयभागमितं स्थितिकण्डकं 'विनाश-

यितुं' विघातयितुम् 'आरभते' उपक्रमते । तत् घात्यमानं स्थितिखण्डं किमपूर्वकरणवज्जघन्यत उत्कृष्टं संख्येयगुणं भवति, उत प्रकारान्तरेणेति शङ्काव्युदासाय भणति–'तं' इत्यादि, 'तत्' घात्यमानं स्थितिखण्डं 'ह्रस्वात्' जघन्यस्थितिखण्डात् 'संख्येयभागाधिकं' संख्येयतमभागेनाऽधिकमुत्कृष्टं भवति । उक्तं च कषायप्राभृतचूर्णौ–"**पढमट्ठिदिखंडयं विसमं जहण्णादो उक्कस्सयं संखेज्जभागुत्तरं ।**" कथमेतदवसीयते ? इति चेद्, शृणुत–अनिवृत्तिकरणप्रथमसमये जघन्यस्थितिसत्कर्मत उत्कृष्टस्थितिकर्मणः संख्येयभागेना-ऽऽधिक्यात् स्थितिखण्डस्य प्रायः स्थितिसत्कर्माऽनुसारित्वाच्च जघन्यत उत्कृष्टं स्थितिखण्डं संख्येयभागेनाऽधिकं भवति, न त्वपूर्वकरणवत् संख्येयगुणम् ।

न चाऽनिवृत्तिकरणप्रथमसमये जघन्यत उत्कृष्टस्थितिसत्कर्म संख्येयगुणं कथं न भवतीति वाच्यम्, तथास्वाभाव्यात् । एतदुक्तं भवति यद्यप्यपूर्वकरणे जघन्यत उत्कृष्टं स्थितिसत्त्वं संख्येयगुणं दृश्यते, तथापि तत्र तेन क्रमेण स्थितिघातं करोति, येना-ऽनिवृत्तिकरणप्रथमसमये घातिता-ऽवशेषस्थितिसत्त्वं जघन्यत उत्कृष्टं केवलं संख्येयभागेना-ऽधिकं भवति ।

अनिवृत्तिकरणप्रथमसमये स्थितिखण्डं विनाशयितुमारभते इत्येतदुपलक्षणम्, तेन तदानीमेवाऽपूर्वकरणचरमस्थितिबन्धतः पल्योपमसंख्येयभागेन हीनमभिनवं स्थितिबन्धमभिनवं च रसघातमारभते इत्युपलक्ष्यते । उक्तं च कषायप्राभृतचूर्णौ–"**पढमसमयअणियट्टिस्स अण्णं ट्ठिदिखंडयं पलिदोवमस्स संखेज्जदिभागो, अण्णमणुभागखंडयं सेसस्स अणंता भागा, अण्णो ट्ठिदिबंधो पलिदोवमस्स संखेज्जदिभागेण हीणो ।**" इति ॥२३॥

सम्प्रत्यनिवृत्तिकरणप्रथमसमये देशोपशमनादिकरणत्रयस्य व्यवच्छेदमनिवृत्तिकरणे प्रथमस्थितिबन्धं च व्याजिहीर्षुराह

पढमखणे देसोवसमणानिकायणनिहत्तिकरणाइं ।
वोच्छिन्नाइं अंतोलक्खं पढमो उ ठिइबंधो ॥ २४ ॥

प्रथमक्षणे देशोपशमना-निकाचना-निधत्तिकरणानि ।
व्यवच्छिन्नान्यन्तर्लक्षं प्रथमस्तु स्थितिबन्ध ॥ २४ ॥ इति पदसंस्कारः ।

'पढम०' इत्यादि, 'प्रथमक्षणे' अनिवृत्तिकरणप्रथमसमये देशोपशमनानिकाचनानिधत्तिकरणानि व्यवच्छिन्नानि भवन्ति, सत्तागतसर्वकर्मणां प्रदेशेषु देशोपशमना-निधत्ति-निकाचनाकरणानि न प्रवर्तन्ते, तथा सत्तागतसर्वकर्मणां सर्वप्रदेशा देशोपशमना-निकाचना-निधत्तिकरणैर्विरहिता

भवन्ति, यथासंभवं चोदयसंक्रमोद्वर्तना ऽपवर्तनाकरणसाध्या भवन्तीत्यर्थः । अनिवृत्तिकरणे प्रथम-स्तु तुर्वाक्यभेदे "स्यात्तु भेदेऽवधारणे" इति वचनात् स्थितिबन्धः 'अन्तर्लक्षम्' लक्षस्य-शतसहस्रस्य अन्तर्-मध्ये 'पारेमध्येऽग्रेऽन्तः षष्ठ्या वा" (सिद्धहेम० ३–१–३०) इत्यनेन सूत्रेणा-ऽव्ययीभावसमासः, सागरोपमसहस्रपृथक्त्वमात्रः स्थितिबन्धो जायत इत्यर्थः । यदवादि कषायप्राभृतचूर्णौ "ट्ठिदिबंधो सागरोपमसहस्सपुधत्तमंतोसदसहस्सस्स ।" इति ॥ २४ ॥

अथा-ऽनिवृत्तिकरणप्रथमसमये स्थितिसत्त्वं प्रतिपिपादयिषुराह

जं ठिइसंतं अंतोकोडाकोडी अपुव्वपढमखणे ।
होज्जा तं अंतोकोडी अनियट्टिपढमखणम्मि ॥ २५ ॥

यत्स्थितिसत्त्वमन्त कोटिकोट्यपूर्वप्रथमक्षणे ।
भवति तदन्त कोट्यनिवृत्तिप्रथमक्षणे ॥ २५ ॥ इति पदसंस्कारः ।

'जं' इत्यादि, यत् स्थितिसत्त्वं 'अपूर्वप्रथमक्षणे' अपूर्वकरणप्रथमसमये 'अन्तःकोटिकोटि' सागरोपमकोटिशतसहस्रपृथक्त्वमात्रमासीत्, तत् 'अनिवृत्तिप्रथमक्षणे' अनिवृत्तिकरणप्रथमसमये 'अन्तःकोटि'कोटेरन्तः सागरोपमशतसहस्रपृथक्त्वं भवतीत्यर्थः । न्यगादि च कषायप्राभृतचूर्णौ–"ट्ठिदिसंतकम्मं सागरोवमसदसहस्सपुधत्तमंतोकोडीए ।" अपूर्वकरणप्रथमसमये सप्तकर्मणो यत् स्थितिसत्कर्म सागरोपमकोटिशतसहस्रपृथक्त्वप्रमितमासीद्, तत् प्रत्येकस्थितिघातेन पल्योपमसंख्येयभागोनं भवत् संख्यातैः स्थितिघातसहस्रैर्घातितं सागरोपमशतसहस्रपृथक्त्वप्रमितं भवतीति फलितार्थः ॥२५॥

स्थितिसत्त्वस्य प्रमाणमभिधाय सम्प्रति त्रिकालगोचरनानाजीवा-ऽपेक्षया-ऽनिवृत्तिकरणे समानं स्थितिसत्त्वं स्थितिखण्डं च प्रतिपिपादयिषुराह

पढमे ठिइखंडे पूण्णे तुल्लं हवइ संतकम्मं तु ।
सव्वेसिं जीवाणं ठिइखंडं य वि हवइ तुल्लं ॥ २६ ॥

प्रथमे स्थितिखण्डे पूर्णे तुल्यं भवति सत्कर्म तु ।
सर्वेषा जीवाना स्थितिखण्ड चा-ऽपि भवति तुल्यम् ॥२६॥ इति पदसंस्कारः ।

'पढमे' इत्यादि, अनिवृत्तिकरणे 'प्रथमे' आदिमे स्थितिखण्डे 'पूर्णे' अपगते 'सर्वेषां जीवानां' युगपत्प्रविष्टानां नानाजीवानां 'सत्कर्म तु' स्थितिसत्त्वं तु 'तुल्यं' समानं भवति । उक्तं

च कषायप्राभृतचूर्णौ–"पढमे ठिदिखंडए हदे सव्वस्स तुल्लकाले अणियट्टिपविट्ठस्स ठिइसंतकम्मं तुल्लं।"

अनिवृत्तिकरणे प्रथमस्थितिखण्डे पूर्णे सर्वेषां जीवानां न केवलं स्थितिसत्कर्म मिथस्तुल्यं भवति, किन्तु स्थितिखण्डमपि। तदेव प्राह–'ठिइखण्डं' इत्यादि, सर्वेषां जीवानां 'स्थितिखण्डं' द्वितीयादिस्थितिखण्डं चा-ऽपि तुल्यं समानं भवति, स्थितिसत्त्वस्य सदृशत्वात् स्थितिखण्डस्य प्रायेण स्थितिसत्त्वानुसारित्वाच्च। एतदुक्तं भवति–अनिवृत्तिकरणे प्रथमे स्थितिखण्डेऽपगते सति तुल्यकाले प्रविष्टेषु नानाजीवेष्वेकतमस्य जीवस्य द्वितीयस्थितिखण्डेनाऽपरस्य द्वितीयस्थितिखण्डं तुल्यं भवति। एवमेकस्य तृतीयस्थितिखण्डेनेतरस्य तृतीयं स्थितिखण्डं सदृक्षं भवति। एवमग्रेऽपि। उक्तं च कषायप्राभृतचूर्णौ–"ठिदिखंडयं पि सव्वस्स अणियट्टिपविट्ठस्स विदियट्ठिदिखण्डयादो विदियट्ठिदिखण्डयं तुल्लं, तदो पहुडि तदियादो तदियं तुल्लं।" इति ॥ २६ ॥

नन्वनिवृत्तिकरणे उत्तरोत्तरस्थितिबन्धे पल्योपमसंख्येयभागेन स्थितिन्यूना न्यूनतरा भवति। तत्र संख्यातैः स्थितिबन्धैरनिवृत्तिकरणस्य संख्येयबहुभागेषु गतेषु स्थितिबन्धः कियान् भवति? इत्यत आह

ठिइबंधसंखगमणे असण्णितुल्लो पहवइ ठिइबंधो।
चउतिदुएगिंदियतुल्लो बंधो अंतरे य बहुबंधा ॥ २७ ॥ (गीतिः)

स्थितिबन्धसंख्यगमने-ऽसंज्ञितुल्यः प्रभवति स्थितिबन्धः।
चतुस्त्रिद्व्येकेन्द्रियतुल्यो बन्धो-ऽन्तरे च बहुबन्धाः ॥ २७ ॥ इति पदसंस्कारः।

'ठिइबंध०' इत्यादि, अनिवृत्तिकरणे 'स्थितिबन्धसंख्यगमने' सति स्थितिबन्धसंख्यातेषु गतेषु सत्स्वित्यर्थः, अनिवृत्तिकरणस्य संख्येयतमे भागेऽवशिष्यमाणे सप्तानां कर्मणां स्थितिबन्धः 'असंज्ञितुल्यः' असंज्ञिस्थितिबन्धेन सदृशः 'प्रभवति' जायते, मोहनीयस्य सागरोपमसहस्रचतुःसप्तभागमात्रः $\left(\frac{1000\times4}{7}\text{ सा०}\right)$, ज्ञानावरण-दर्शनावरण-वेदनीया-ऽन्तरायाणां सागरोपमसहस्रत्रिसप्तभागप्रमाणः $\left(\frac{1000\times3}{7}\text{ सा०}\right)$ स्वस्थाने तु मिथः सदृशः, नाम-गोत्रयोः सागरोपमसहस्रद्विसप्तभागमितः $\left(\frac{1000\times2}{7}\text{ सा०}\right)$ स्वस्थाने परस्परं तुल्यः स्थितिबन्धो भवतीत्यर्थः। उक्तं च कषायप्राभृतचूर्णौ–"एवं संखेज्जेसु ठिदिबंधसहस्सेसु गदेसु तदो अण्णो ठिदिबंधो असण्णिट्ठिदिबंधसमगो जादो।" ततः क्रमेण चतुस्त्रिद्व्येकेन्द्रियतुल्यो 'बन्धः' स्थिति-

प्ररूपणाविशेषे नियमो नास्ति, संख्यातेषु स्थितिबन्धसहस्रेषु गतेषु भवतीति व्याप्तिनियमो नास्तीत्यर्थः, यथा "पुण्णे" इत्यादि द्वात्रिंशत्तमगाथायाम् एकस्मिन् स्थितिबन्धे पूर्णेऽल्पबहुत्वमभिधास्यति, तत् प्राक्तनबन्धतः संख्येषु स्थितिबन्धेषु गतेषु स्थितिबन्धे पूर्णे न वक्तव्यम्, किन्तु तस्मिन्नेव स्थितिबन्धे पूर्णेऽभिधातव्यम् । एवमन्यत्राऽपि, विशेषेण सामान्यस्य बाधदर्शनात् । अथ प्रतिजिज्ञासुराह–'कहिस्सु बंधं' ति 'कथयामः' निरूपयामः 'बन्धं' मोहनीयादीनां स्थितिबन्धम् ॥ २८ ॥

अथ प्रतिज्ञातमेव प्राह

एग-दिवड्ढ-दु-पल्लाणि वीसगाणं य तीसगाणं य ।
मोहस्स य परिवाडीअ दुगस्स उ संखगुणहीणो ॥२९॥

एक-द्व्यर्धं-द्विपल्यानि विंशतिकयोश्च त्रिंशत्कानां च ।
मोहस्य च परिपाट्या द्विकस्य तु सख्यगुणहीनः ॥ २९ ॥ इति पदसंस्कारः ।

'एग०' इत्यादि, एकेन्द्रियबन्धतुल्यस्थितिबन्धभवनात्संख्यातेषु सहस्रेषु स्थितिबन्धेषु व्यतिक्रान्तेषु 'विंशतिकयोश्च' विंशतिसागरोपमकोटिकोटीस्थितिकयोर्नाम-गोत्रयोरित्यर्थः, चकारः समुच्चये,एवमग्रेऽपि 'त्रिंशत्कानां' त्रिंशत्सागरोपमकोटिकोटिस्थितिकानां च ज्ञानावरण-दर्शनावरण-वेदनीया-ऽन्तरायाणां चेत्यर्थः'मोहस्य' मोहनीयकर्मणश्च स्थितिबन्धः 'परिपाट्या' क्रमेण 'एकद्व्यर्ध-द्वि-पल्यानि'एक-सार्ध-द्विपल्योपमानि भवति। इदमुक्तं भवति–नाम-गोत्रयोः स्थितिबन्ध एकपल्योपममात्रो ज्ञानावरणादीनां सार्धपल्योपममानो मोहनीयस्य तु द्विपल्योपमप्रमितो भवति । उक्तं च कषायप्राभृतचूर्णौ–"**एइंदियट्ठिदिबंधसमगादो ट्ठिदिबंधादो संखेज्जेसु ट्ठिदिबंधसहस्सेसु गदेसु णामागोदाणं पलिदोवयट्ठिदिगो बंधो जादो, ताधे णाणावरणीय–दंसणावरणीय-वेदणीय–अंतराइयाणं दिवड्ढपलिदोवमट्ठिदिगो बंधो मोहणीयस्स बे पलिदोवमट्ठिदिगो बंधो ।**" युक्तियुक्तमिदं वचनम् । तथाहि यदि विंशतिसागरोपमकोटिकोटिस्थितिकयोर्नाम-गोत्रयोः स्थितिबन्ध एकपल्योपममात्रो भवति, तर्हि त्रिंशत्सागरोपमकोटिकोटिस्थितिकानां ज्ञानावरणादीनां कियान् स्थितिबन्धो भवेदिति त्रैराशिकेन [२० सा० को० को० । ३० सा० को० को० । १ पल्यो० । लब्धम् १½ पल्यो० ।] ज्ञानावरणादीनां स्थितिबन्धः सार्धपल्योपममात्रः साध्यः । तथा विंशतिसागरोपमकोटिकोटिस्थितिकयोर्नामगोत्रयोः स्थितिबन्धो यदि पल्योपमप्रमाणो भवति, तर्हि चत्वारिंशत्सागरोपमकोटिकोटिस्थितिकस्य मोहनीयस्य स्थितिबन्धः कियान् भवेदिति त्रैराशिकेन [२० सा० को० को० । ४० सा० को० । १ पल्यो० । लब्धे २ पल्यो०] मोहनीयस्य स्थितिबन्धो द्विपल्योपमप्रमितोऽवाप्यते ।

तदानीं स्थितिबन्धाऽल्पबहुत्वमित्थं द्रष्टव्यम्-नामगोत्रयोः सर्वाल्पः स्थितिबन्धः, स्वस्थाने तु मिथः सदृशः,पल्योपममात्रत्वात् । ततो ज्ञानावरण-दर्शनावरण-वेदनीया-ऽन्तरायाणां विशेषाधिकः, सार्धपल्योपममात्रत्वात् । ततो मोहनीयस्य विशेषाधिकः, द्विपल्योपममितत्वात् । इतः पूर्वमप्यनेनैव क्रमेण स्थितिबन्धा-ऽल्पबहुत्वं वक्तव्यम् । यदवादि कषायप्राभृतचूर्णौ—"जाधे णामागोदाणं पलिदोवमट्ठिदिगो बंधो, ताधे अप्पाबहुअं वत्तइस्सामो, तं जहा—णामागोदाणं ठिदिबंधो थोवो, णाणावरणीय-दंसणावरणीय-वेदणीय-अंतराइयाणं ठिदिबंधो विसेसाहिओ, मोहणीयस्स ठिदिबंधो विसेसाहिओ । अदिक्कंता सव्वे ठिदिबन्धा एदेण अप्पाबहुअविहिणा गदा ।" इति ।

यदा नाम-गोत्रयोः स्थितिबन्धः पल्योपममात्रो भवति, तदा-ऽनिवृत्तिकरणस्य प्रथमसमयात् सहस्रैः स्थितिघातैर्घातितं सत् तत्प्रथमसमयतः संख्येयगुणहीनं भवदपि सप्तानामपि कर्मणां स्थितिसत्त्वमद्यापि सागरोपमशतसहस्रपृथक्त्वप्रमाणं विद्यते । उक्तं च कषायप्राभृतचूर्णौ—"ताधे ठिदिसंतकम्मं सागरोवमसदसहस्सपुधत्तं ।" इति ।

'दुगस्स' इत्यादि, नाम-गोत्रयोः पल्योपममात्रे स्थितिबन्धे पूर्णे सति 'द्विकस्य' नाम-गोत्ररूपस्य स्थितिबन्धः संख्यगुणहीनो भवति, प्राक्तनस्थितिबन्धतो नाम-गोत्रयोः संख्येयगुणहीनः पल्योपमसंख्येयभागमितः स्थितिबन्धो जायते इत्यर्थः, यतः प्रभृति यस्य कर्मणः पल्योपममितः स्थितिबन्धो भवति,ततः परं तस्य कर्मण उत्तरोत्तरस्थितिबन्धः संख्येयगुणहीनो जायते इति व्याप्तेः । शेषाणां पञ्चानां कर्मणां तु स्थितिबन्धः प्राक्तनस्थितिबन्धतः पूर्ववत् पल्योपमसंख्येयभागेन हीनो भवति । यदभाणि कषायप्राभृतचूर्णौ—"तदो णामागोदाणं पलिदोवमट्ठिदिगो बंधो, पुण्णे जो अण्णो ठिदिबंधो सो संखेज्जगुणहीणो, सेसाणं कम्माणं ठिदिबंधो विसेसहीणो ।" इति ।

नामगोत्रयोः पल्योपममात्रे स्थितिबन्धे पूर्णे स्थितिबन्धा-ऽल्पबहुत्वमित्थं प्ररूपयितव्यम्—नाम—गोत्रयोः सर्वाल्पः स्थितिबन्धः, स च पल्योपमसंख्येयभागप्रमाणः । ततो ज्ञानावरण—दर्शनावरण—वेदनीया—ऽन्तरायाणां संख्येयगुणः, पल्योपमसंख्येयभागन्यूनसार्धपल्योपममात्रत्वात् । ततो मोहनीयस्य विशेषाधिकः, पल्योपमसंख्येयभागोनद्विपल्योपममितत्वात् । उक्तं च कषायप्राभृतचूर्णौ—"ताधे अप्पाबहुअं-णामागोदाणं ठिदिबंधो थोवो, चदुण्हं कम्माणं ठिदिबंधो तुल्लो संखेज्जगुणो, मोहणीयस्स ठिदिबंधो विसेसाहिओ ।" इति ॥२६॥

ततः परं संख्यातेषु स्थितिबन्धसहस्रेषु गतेषु सत्सु नामगोत्रादीनां स्थितिबन्धं वक्तुकाम आह——

बन्धो भवति, 'अन्तरे च' मध्ये च बहुबन्धा' बहवः स्थितिबन्धा भवन्ति, न पुनरसंज्ञिबन्धतुल्य-बन्धादनन्तरं चतुरिन्द्रियबन्धसमानः स्थितिबन्धो भवति, अपि त्वन्तरे बहुस्थितिबन्धेषु गतेषु-चतुरिन्द्रियबन्धेन तुल्यः स्थितिबन्धो भवति, एवं चतुरिन्द्रियबन्धतुल्यस्थितिबन्धभवनाद् बहुषु-स्थितिबन्धेषु गतेषु त्रीन्द्रियस्थितिबन्धसदृशः स्थितिबन्धो भवति । एवमग्रेऽपि ।

भावार्थः पुनरयम्—असंज्ञिस्थितिबन्धतुल्यस्थितिबन्धभवनात् संख्यातेषु स्थितिबन्धसहस्रेषु गतेषु सत्सु चतुरिन्द्रियस्थितिबन्धेन सदृशः स्थितिबन्धो भवति, मोहनीयस्य सागरोपमशतचतुःसप्तभागमात्रः ($\frac{१०० \times ४}{७}$ सा०), ज्ञानावरण-दर्शनावरण-वेदनीया-ऽन्तरायाणां सागरोपमशतत्रि-सप्तभागमितः ($\frac{१०० \times ३}{७}$ सा०), नाम-गोत्रयोस्तु सागरोपमशतद्विसप्तभागमानः ($\frac{१०० \times २}{७}$ सा०) स्थितिबन्धो भवतीत्यर्थः । ततः पुनः संख्यातेषु स्थितिबन्धसहस्रेषु व्रजितेषु सत्सु त्रीन्द्रिय-स्थितिबन्धसमानः स्थितिबन्धो भवति, मोहनीयस्य पञ्चाशत्सागरोपमचतुःसप्तभागमानः ($\frac{५० \times ४}{७}$ सा०), ज्ञानावरणादीनां चतुर्णां पञ्चाशत्सागरोपमत्रिसप्तभागप्रमितः ($\frac{५० \times ३}{७}$ सा०), नाम-गोत्रयोः पञ्चाशत्सागरोपमद्विसप्तभागप्रमाणः ($\frac{५० \times २}{७}$ सा०) स्थितिबन्धो भवतीत्यर्थः । ततः संख्यातेषु स्थितिबन्धेष्वपगतेषु सत्सु द्वीन्द्रियस्थितिबन्धेनैकादक्षः स्थितिबन्धो भवति, मोहनीयस्य पञ्चविंशतिसागरोपमचतुःसप्तभागप्रमितः ($\frac{२५ \times ४}{७}$ सा०), ज्ञानावरण-दर्शनावरण वेदनीया-ऽन्तरायाणां पञ्चविंशतिसागरोपमत्रिसभागमानः ($\frac{२५ \times ३}{७}$ सा०), नामगोत्रयोः पञ्चविंशतिसागरोपमद्विसप्तभागप्रमाणः ($\frac{२५ \times २}{७}$ सा०) स्थितिबन्धो भवतीत्यर्थः । ततः पुनः स्थितिबन्धसंख्यातसहस्रेषु व्यतिक्रान्तेष्वेकेन्द्रियस्थितिबन्धसदृशः स्थितिबन्धो जायते, मोहनीयस्यसागरोपमचतुःसप्तभागमितः ($\frac{४}{७}$ सा०), ज्ञानावरणदर्शनावरण-वेदनीया-ऽन्तरायाणां सागरोपमत्रिसप्तभागमात्रः ($\frac{३}{७}$ सा०), नामगोत्रयोः सागरोपमद्विसप्तभागप्रमितः ($\frac{२}{७}$ सा०) स्थितिबन्धो भवति । युक्तियुक्तमेतत् सर्वम्, त्रैराशिकेन साधितत्वात् । तथाहि यदि सप्ततिसागरोपमकोटि-कोटिस्थितिकस्य मिथ्यात्वमोहनीयस्यैकसागरोपमस्थितिको बन्ध एकेन्द्रिये भवति, तर्हि चत्वारिंशत्सागरोपमकोटिकोटिस्थितिकस्य चारित्रमोहनीयस्य कियान् स्थितिबन्धो भवेदिति त्रैराशिकेन [७० सा० को० को० । ४० सा० को० को० । १ सा० । लब्धम् $\frac{४}{७}$ सा० ।] मोहनीयस्य सागरोपमचतुःसप्तमात्रः साध्येत । तथा चा-ऽत्र त्रैराशिककरणसूत्रम्

"प्रमाणमिच्छा च समानजातो आद्यन्तयोस्तत्फलमन्यजातिः ।

मध्ये तदिच्छाहतमाद्यहृत् स्यादिच्छाफलं व्यस्तविधिर्विलोमे ॥ १ ॥"

प्रमाणमत्र सप्ततिसागरोपमकोटिकोटयः, इच्छा च चत्वारिंशत्सागरोपमकोटिकोटयः, प्रमाणफलम् पुनः सागरोपमः । ततः प्रमाणफलमिच्छया गुण्यते, ततो गुणितं प्रमाणेन विभज्यते, तदा "**शून्यं शून्येन पातयेत्**" इति वचनात् चत्वारः सागरोपमस्य सप्तभागा लभ्यन्ते । तथा सागरोपमकोटीकोटीस्थितिकस्य मिथ्यात्वमोहनीयस्यैकसागरोपममात्रः स्थितिबन्ध एकेन्द्रिये भवति, तर्हि त्रिंशत्सागरोपमकोटीकोटीस्थितिकानां ज्ञानावरणादीनां कियान् स्थितिबन्धो भवेदिति त्रैराशिकेन [७० सा० को० को० । ४० सा० को० को० । १ सा० । लब्धम् $\frac{3}{7}$ सा०] ज्ञानावरणादीनां सागरोपमत्रिसप्तभागमात्रः स्थितिबन्धः प्राप्तव्यः । तथा सप्ततिसागरोपमकोटिकोटिस्थितिकस्यैकसागरोपमः स्थितिबन्ध एकेन्द्रिये भवति, तर्हि विंशतिसागरोपमकोटीकोटीस्थितिकयोर्नाम–गोत्रयोः कियान् भवेदिति त्रैराशिकेन [७० सा० को० को० । ४० सा० को० को० । १ सा० । लब्धम् $\frac{2}{7}$ सा०] नाम-गोत्रयोः स्थितिबन्धो सागरोपमद्विसप्तभागप्रमितः साध्यः । एवं द्वीन्द्रियादिष्वपि त्रैराशिकेन स्थितिबन्धः साधनीयः, नवरं तत्र यथाक्रमं पञ्चविंशतिगुणः पञ्चाशद्गुणः शतगुणः सहस्रगुणश्च स्थितिबन्धो वक्तव्यः । उक्तं च कषायप्राभृतचूर्णौ–"**तदो संखेज्जेसु ठिदिबंधसहस्सेसु गदेसु चउरिंदियठिदिबंधसमगो जादो । एवं तीइंदियसमगो, बीइंदियसमगो एगिंदियसमगो जादो ।**" इति ॥ २७ ॥

अथ लाघवार्थ्यधिकारगाथां भणति

ठिइबंधबहुसहस्सेसु गयेसु होइ जं तु एक्केक्कं ।
तं भणिहामो णत्थि विसेसे णियमो कहिमु बंधं ॥ २८ ॥

स्थितिबन्धबहुसहस्रेसु गतेषु भवति यत्त्वेकैकम् ।
तद्भणिष्यामो नास्ति विशेषे नियमो कथयामो बन्धम् ॥ २८ ॥ इति पदसंस्कार ।

'ठिइ०' इत्यादि, स्थितिबन्धबहुसहस्रेषु गतेषु यत्त्वेकैकं भवति, तत् भणिष्यामः । इदमुक्तं भवति-बहुशब्दः संख्यातवाची । ततश्चायमर्थः–इतः परं यानि वस्तूनि वक्ष्यामः, तेषामेकं स्थितिबन्धसंख्यातसहस्रेषु गतेषु वक्तव्यम् , ततः पुनः स्थितिबन्धसंख्यातसहस्रेषु गतेष्वन्यदेकं निगदितव्यम् । ततो भूयः स्थितिबन्धसंख्यातसहस्रेषु व्यतिक्रान्तेष्वितरदेकमभिधातव्यम् । एवं संख्यातेषु स्थितिबन्धसहस्रेषु गतेषु गतेष्वेकैकं भाषितव्यम् । यथा-ऽनन्तरगाथायां नामगोत्रादीनां स्थितिबन्धं वक्ष्यति, स एकेन्द्रियबन्धतुल्यस्थितिबन्धभवनात् संख्यातेषु स्थितिबन्धसहस्रेषु गतेषु ज्ञातव्यः । एवं ततोऽप्यग्रे यद्वक्ष्यति तत्तत्संख्यातेषु स्थितिबन्धसहस्रेषु गतेषु वक्तव्यम् । ननु किमियं व्याप्तिः सर्वत्र ज्ञातव्या, उता-ऽस्ति कश्चिद् विशेषः ? इत्यत आह–'णत्थि' इत्यादि, 'विशेषे'

संखंसेगतिभागुत्तरपल्लाइ खलु वीसगाईणं।
ताउ परं तीसाणं तहेव संखेज्जगुणहीणो ॥३०॥

संख्यांशैकत्रिभागोत्तरपल्यानि खलु विंशतिकादीनाम्।
तस्मात्परं त्रिंशतां तथैव सङ्ख्येयगुणहीनः ॥ ३० ॥ इति पदसंस्कारः।

'संख०' इत्यादि, अनन्तरोक्ताऽल्पबहुत्वक्रमेण संख्यातेषु स्थितिबन्धेषु गतेषु सत्सु 'विंशतिकादीनां' विंशतिकत्रिंशत्कचत्वारिंशत्कानां—नामद्विक-ज्ञानावरणचतुष्क-मोहनीयानां क्रमेण स्थितिबन्धः संख्यांशैकत्रिभागुत्तरपल्यानि भवति, खलुर्वाक्यालङ्कारे। एतदुक्तं भवति—प्रागुक्ताऽल्पबहुत्वक्रमेण संख्यातेषु स्थितिबन्धसहस्रेषु गतेषु सत्सु नामगोत्रयोः स्थितिबन्धः पल्योपमसंख्येयभागमानः, ज्ञानावरण-दर्शनावरण-वेदनीया-ऽन्तरायाणां पल्योपममात्रः, मोहनीयस्य तु त्रिभागोत्तरपल्योपममितो जायते। यदुक्तं कषायप्राभृतचूर्णौ—"**एदेण संखेज्जाणि ठिदिबंधसहस्साणि गदाणि, तदो णाणावरणीय-दंसणावरणीय-वेदणीय-अंतराइयाणं पलिदोवमट्ठिदिगो बंधो जादो। ताधे मोहणीयस्स तिभागुत्तरपलिदोवमट्ठिदिगो बंधो जादो।**" इति। इदं वचनं युक्तिमदेव। तथाहि—यदि त्रिंशत्सागरोपमकोटिकोटिस्थितिकानां ज्ञानावरणादीनां स्थितिबन्ध एकपल्योपममात्रो जायते, तर्हि चत्वारिंशत्सागरोपमकोटिकोटिस्थितिकस्य मोहनीयस्य स्थितिबन्धः कियान् भवेदिति त्रैराशिकेन [३० सा० को०को०। ४० सा०को०को०। १ पल्यो०। लब्धम् १$\frac{१}{३}$पल्यो०।] मोहनीयस्य स्थितिबन्धस्त्रिभागाधिकपल्योपममात्रः साध्यते।

'ताउ परं' इत्यादि, 'तस्मात्' ज्ञानावरणादीनां पल्योपममात्रस्थितिबन्धभवनात् परं 'त्रिंशतां' त्रिंशत्सागरोपमकोटिकोटिस्थितिकानां ज्ञानावरण-दर्शनावरण-वेदनीया—ऽन्तरायाणामित्यर्थः, 'तहेव' त्ति 'तथैव' तथाशब्दः साम्ये, नामगोत्रवत् स्थितिबन्धः संख्येयगुणहीनो भवतीति शेषः, प्राक्तनस्थितिबन्धतो ज्ञानावरणादीनां संख्येयगुणहीनः पल्योपमसंख्येयभागमितः स्थितिबन्धो भवतीत्यर्थः। उक्तं च कषायप्राभृतचूर्णौ—"**तदो अप्पणो ट्ठिदिबंधो चदुण्हं कम्माणं संखेज्जगुणहीणो।**" इत्थं नाम-गोत्र-ज्ञानावरण-दर्शनावरण-वेदनीया-ऽन्तरायाणामुत्तरोत्तरस्थितिबन्धः संख्येयगुणहीनो भवति, मोहनीयस्य तु पल्योपमसंख्येयभागेन हीनः संजायते।

ज्ञानावरण-दर्शनावरण-वेदनीया-ऽन्तरायाणां पल्योपममात्रे स्थितिबन्धे पूर्णे स्थितिबन्धाऽल्पबहुत्वं चिन्त्यते। तद्यथा नाम-गोत्रयोः सर्वस्तोकः स्थितिबन्धः, स च पल्योपमसंख्येयभागप्रमाणः। ततो ज्ञानावरण-दर्शनावरण-वेदनीया-ऽन्तरायाणां पल्योपमसंख्येयभागमात्रो भवन्नपि संख्यातगुणो भवति। ततो मोहनीयस्य संख्येयगुणः, पल्योपमसंख्येयभागन्यूनत्रिभागोत्तरपल्योपमप्रमाणत्वात्। उक्तं च कषायप्राभृतचूर्णौ—"**ताधे अप्पाबहुअं—णामागोदाणं**

ठिदिबंधो थोवो, चदुण्हं कम्माणं ठिदिबंधो संखेज्जगुणो मोहणीयस्स ठिदिबंधो संखेज्जगुणो ।" इति ॥ ३० ॥

ततः परं संख्यातेषु स्थितिबन्धसहस्रेषु व्रजितेषु स्थितिबन्धमाविश्चिकीर्षुराह

मोहस्स पल्लमेत्तो सेसाणं पल्लसंखभागमिओ ।
ताउ परं सव्वेसिं कम्माणं संखगुणहीणो ॥ ३१ ॥

मोहस्य पल्यमात्रः शेषाणां पल्यसंख्यभागमितः ।
तस्मात्परं सर्वेषां कर्मणां संख्यगुणहीनः ॥ ३१ ॥ इति पदसंस्कारः ।

'मोहस्स' इत्यादि, निरुक्तस्थितिबन्धा-ऽल्पबहुत्वक्रमेण संख्यातेषु सहस्रेषु स्थितिबन्धेषु व्रजितेषु सत्सु 'मोहस्य' मोहनीयकर्मणः 'पल्यमात्रः' एकपल्योपममात्रः स्थितिबन्धो जायते, 'शेषाणां'उक्तोद्धरितानां नाम-गोत्र-ज्ञानावरण-दर्शनावरण-वेदनीया-ऽन्तरायरूपाणां 'पल्यसंख्यभागमितः' पल्योपमसंख्येयतमभागप्रमाणः स्थितिबन्धो भवति । उक्तं च कषायप्राभृतचूर्णौ– "एदेणेव कमेण संखेज्जाणि ठिदिबन्धसहस्साणि गदाणि, तदो मोहणीयस्स पलिदोवमठिदिगो बंधो, सेसाणं कम्माणं पलिदोवमस्स संखेज्जदिभागो ठिदिबंधो ।" 'ताउ परं' इत्यादि, 'तस्मात्' मोहनीयस्य पल्योपममात्रस्थितिबन्धभवनात् परं 'सर्वेषां कर्मणां' आयुर्वर्जानां सप्तानामपि कर्मणां स्थितिबन्धः संख्यगुणहीनो भवति, प्राक्तनस्थितिबन्धत उत्तरोत्तरस्थितिबन्धः संख्येयगुणेन हीनो हीनतरो जायते इत्यर्थः ॥ ३१ ॥

मोहस्य पल्योपममात्रे स्थितिबन्धे पूर्णे सत्यारभ्यमाणस्थितिबन्धस्याऽल्पबहुत्वमभिधित्सुराह

पुण्णे बंधेऽणुकमं तु वीसगाईण संखगुणो ।
तो वीसगाण जायइ पलियअसंखेज्जभागमिओ ॥३२॥ (उपगीतिः)

पूर्णे बन्धे-ऽनुक्रमं तु विंशतिकादीनां संख्यगुणः ।
ततो विंशतिकयोर्जायते पल्योपमाऽसंख्येयभागमितः ॥ ३२ ॥ इति पदसंस्कारः ।

'पूण्णे' इत्यादि, तत्र 'बंधे' त्ति एकवचननिर्देशात् एकस्मिन् बन्धे–स्थितिबन्धे 'पूर्णे' समाप्तिं गते, मोहनीयस्य यः पल्योपममात्रः स्थितिबन्धः प्रारब्धः, तस्मिन् पूर्णे इत्यर्थः, 'विंशतिकादीनां' विंशतिसागरोपमकोटिकोटिस्थितिकत्रिंशत्सागरोपमकोटिकोटिस्थितिकचत्वारिंशत्सागरोपमकोटिकोटिस्थितिकरूपाणां नाम-गोत्रयोर्ज्ञानावरण–दर्शनावरण–वेदनीया-ऽन्तरायाणां मोहनीयस्य चेत्यर्थः, 'अनुक्रमं तु' क्रममनतिक्रम्य "योग्यता-वीप्सार्था-ऽनतिवृत्तिसादृश्ये" (सिद्धहेम०

३-१-४०) इति सूत्रेणा-ऽनतिवृत्तौ अव्ययीभावसमासः, तुरवधारणे यथाक्रममेवेत्यर्थः, स्थितिबन्धः संख्यगुणो भवति । इदमुक्तं भवति—मोहनीयस्य पल्योपममात्रे स्थितिबन्धे पूर्णे नाम-गोत्रयोः सर्वाल्पः स्थितिबन्धः, स च पल्योपमसंख्येयभागमितः, स्वस्थाने मिथस्तुल्यः, ततो ज्ञानावरण-दर्शनावरण-वेदनीया-ऽन्तरायाणां पल्योपमसंख्येयभागमात्रो भवन्नपि संख्येयगुणो भवति, ततो मोहनीयस्य संख्येयगुणो भवति, सो-ऽपि पल्योपमसंख्येयभागमात्रः, प्राक्तनस्थितिबन्धस्य पल्योपममात्रत्वेन सर्वेषां कर्मणां पल्योपममात्रस्थितिबन्धभवनादूर्ध्वमुत्तरोत्तरस्थितिबन्धस्य संख्येयगुणहानिदर्शनात् । उक्तं च कषायप्राभृतचूर्णौ—"एदम्हि ट्ठिदिबंधे पुण्णे मोहणीयस्स ट्ठिदिबंधो पलिदोवमस्स संखेज्जदिभागो चेव । ताधे चि अप्पाबहुअं—णामागोदाणं ट्ठिदिबंधो थोवो, णाणावरण—दंसणावरण—वेदणीय-अन्तराइयाणं ट्ठिदिबन्धो संखेज्जगुणो, मोहणीयस्स ट्ठिदिबन्धो संखेज्जगुणो ।" इति ।

'तो' इत्यादि, 'ततः' अनन्तरोक्तस्थितिबन्धाल्पबहुत्वतः संख्यातेषु स्थितिबन्धसहस्रेषु गतेषु 'विंशतिकयोः' नाम-गोत्रयोः स्थितिबन्धः 'पल्या-ऽसंख्येयभागमितः' पल्योपमाऽसंख्येयभागमितो* जायते । शेषाणां पञ्चानां तु पूर्ववत्पल्योपमसंख्येयभागप्रमितः स्थितिबन्धो भवति । उक्तं च कषायप्राभृतचूर्णौ "एदेण कमेण संखेज्जाणि ट्ठिदिबन्धसहस्साणि गदाणि, तदो अण्णो ट्ठिदिबन्धो,जाधे णामागोदाणं पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो, ताधे सेसाणं कम्माणं ट्ठिदिबंधो पलिदोवमस्स संखेज्जदिभागो ।" इति । नाम-गोत्रयोः पल्योपमा-ऽसंख्येयभागमिते स्थितिबन्धे जाते स्थितिबन्धाल्पबहुत्वमित्थमभिधातव्यम्—नाम-गोत्रयोः सर्वस्तोकः स्थितिबन्धः, पल्योपमा-ऽसंख्येयभागमात्रत्वात्, ततो ज्ञानावरण-दर्शनावरण-वेदनीया-ऽन्तरायाणां स्थितिबन्धो-ऽसंख्येयगुणः, तस्य पल्योपमसंख्येयभागमात्रत्वात्, ततो मोहनीयस्य स्थितिबन्धः पल्योपमसंख्येयभागमितो भवन्नपि संख्येयगुणो भवति । उक्तं च कषायप्राभृतचूर्णौ "ताधे अप्पाबहुअं—णामागोदाणं ठिदिबन्धो थोवो, चदुण्हं कम्माणं ठिदिबन्धो असंखेज्जगुणो, मोहणीयस्स ठिदिबन्धो संखेज्जगुणो ।" ततः

* अनन्तरोक्ताल्पबहुत्वक्रमेण सख्येयेपु स्थितिबन्धसहस्रेपु गतेषु सत्सु नाम-गोत्रयो पल्योपमाऽसख्येयभागप्रमाणश्चरमस्थितिबन्धो दूरापकृष्टिसञ्ज्ञको भवति । तद्व्याख्या च कर्मप्रकृतिग्रन्थे-ऽस्माभिरुपशमनाकरणटीकाया कृता, ततोऽवसेया । दूरापकृष्टिसञ्ज्ञकबन्धत पर नामगोत्रयोरसख्येयबहुभागा स्थितिबन्धतोऽपगच्छन्ति । तेन तदानीं नामगोत्रयो प्रथमस्थितिबन्ध पल्योपमा-ऽसख्येयभागप्रमाणो भवतीत्याहुर्जयधवलाकारा । तथा च तद्ग्रन्थ "एवमेदेण अप्पाबहुविहिणा सव्वेसिं कम्माणं पलिदो०-संखेज्जभागिगेसु सखेज्जेसु ट्ठिदिबधसहस्सेसु गदेसु तदो णामागोदाणं वा पच्छिमे पलिदोवमस्स सखेज्जभागिगे ट्ठिदिबधे दूरावकिट्टिसण्णिदे सपत्ते तदो असखेज्जे भागे ट्ठिदिबधेणोसरमाणस्स जावे णामागोदाणं पलिदो०असंखभागिओ पढमो ट्ठिदिबधो जादो । ताधे अण्णारिसमप्पाबहुअ होदि त्ति ।" इति ।

प्रभृति नाम-गोत्रयोरुत्तरोत्तरस्थितिबन्धोऽसंख्यातगुणहीनो जायते, शेषाणां तु पूर्ववत् संख्यातगुणहीनो भवति ॥ ३२ ॥

निरुक्ताऽल्पबहुत्वक्रमेण संख्यातेषु स्थितिबन्धसहस्रेषु गतेषु सत्सु ज्ञानावरणादीनां मोहनीयस्य च स्थितिबन्धमाविश्चिकीर्षुराह

तो तीसगाण पल्लस्स असंखंसो तओ य मोहस्स ।
पल्लअसंखंसोऽन्तोलक्खं संतं य सत्तण्हं ॥ ३३ ॥

ततस्त्रिंशत्कानां पल्यस्याऽसंख्यांशस्ततश्च मोहस्य ।
पल्याऽसंख्यांशोऽन्तर्लक्षं सत्त्वं च सप्तानाम् ॥ ३३ ॥ इति पदसंस्कारः ।

'तो' इत्यादि, 'ततः' नाम-गोत्रयोः स्थितिबन्धस्य पल्योपमाऽसंख्येयभागमात्रत्वभवनात् स्थितिबन्धसहस्रेषु गतेषु 'त्रिंशत्कानां' ज्ञानावरण-दर्शनावरण-वेदनीयाऽन्तरायाणां बन्धः 'पल्यस्याऽसंख्यांशः' पल्योपमाऽसंख्येयभागप्रमितो* भवति । उक्तं च कषायप्राभृतचूर्णौ-"तदो संखेज्जेसु ठिदिबन्धसहस्सेसु गदेसु तिण्हं घादिकम्माणं वेदणीयस्स च पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो ठिदिबन्धो जादो ।" यदा ज्ञानावरणादीनां स्थितिबन्धः पल्योपमाऽसंख्येयभागमितो भवति, तदा स्थितिबन्धाऽल्पबहुत्वं निगद्यते नाम-गोत्रयोः सर्वस्तोकः स्थितिबन्धः, स च पल्योपमाऽसंख्येयभागप्रमाणो भवति, स्वस्थाने तु मिथस्तुल्यः । ततो ज्ञानावरण-दर्शनावरण-वेदनीयाऽन्तरायाणां स्थितिबन्धः पल्योपमाऽसंख्येयभागमात्रो भवन्नप्यसंख्येयगुणो भवति । ततो मोहनीयस्याऽसंख्येयगुणः, पल्योपमसंख्येयभागमात्रत्वात् । उक्तं च कषायप्राभृतचूर्णौ "ताधे अप्पाबहुअं-णामागोदाणं ठिदिबन्धो थोवो, चउण्हं कम्माणं ठिदिबन्धो असंखेज्जगुणो, मोहणीयस्स ठिदिबन्धो असंखेज्जगुणो ।" ततो ज्ञानावरणादीनामप्युत्तरोत्तरस्थितिबन्धोऽसंख्यातगुणहीनः प्रवर्तते ।

मोहनीयस्य स्थितिबन्धमाविश्चिकीर्षुर्भणति-'तओ य' इत्यादि, 'ततश्च' ज्ञानावरणादीनां पल्योपमाऽसंख्येयभागप्रमाणस्थितिबन्धभवनाच्च प्रागुक्ताऽल्पबहुत्वक्रमेण संख्यातेषु स्थितिब-

* अनन्तरोक्ताऽल्पबहुत्वक्रमेण सख्यातस्थितिबन्धेषु सहस्रेषु गतेषु ज्ञानावरण-दर्शनावरण-वेदनीयाऽन्तरायाणां चरम पल्योपमसंख्येयभागमानः स्थितिबन्धो दूरापकृष्टिसंज्ञको भवति । ततश्चतुर्णां ज्ञानावरणादीनामसंख्येयबहुभागाः स्थितिबन्धतोऽपगच्छन्ति । तेन ज्ञानावरणादीनां प्रथमस्थितिबन्धः पल्योपमाऽसंख्येयभागमात्रो भवतीति जयधवलाकाराः । अक्षराणि त्वेवम्—"एवमेदेण अप्पाबहुअविधिणा पुणो वि संखेज्जसहस्समेत्तेसु ठिदिबंधेसु समइक्कंतेसु तदो णाणावरण-दंसणावरण वेदणीय-अंतराइयाणं पि दूरावकिट्टीविसये संपत्ते तदो प्पहुडि तेसिं पि असंखेज्जे भागे ठिदिबन्धेणोसरमाणस्स पढमे पलिदो० असंखे० भागिए पडिबंधे जादे तत्तो पाए अण्णारिसमप्पाबहुअं पयट्टदि ।"

न्धसहस्रेषु व्यतिक्रान्तेषु 'मोहस्य' मोहनीयस्य कर्मणः 'पल्या-ऽसंख्यांशः' पल्योपमाऽसंख्येयभागमात्रः* स्थितिबन्धो भवतीत्यर्थः। इत्थं तदानीं सप्तानामपि कर्मणां स्थितिबन्धः पल्योपमा-ऽसंख्येयभागमितो भवति। उक्तं च कषायप्राभृतचूर्णौ- "तदो संखेज्जेसु ट्ठिदिबन्धसहस्सेसु गदेसु मोहणीयस्स वि पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो ट्ठिदिबन्धो जादो।" इतः प्रभृति सप्तानामपि कर्मणां स्थितिबन्धः पल्योपमा-ऽसंख्येयभागमात्रस्तावद् वक्तव्यः, यावत् स्थितिबन्धे विशेषो नाभिधीयेत।

यदा मोहनीयस्य स्थितिबन्धः पल्योपमाऽसंख्येयभागप्रमितो भवति, तदा स्थितिबन्धाल्पबहुत्वं भण्यते—नाम-गोत्रयोः सर्वाल्पः स्थितिबन्धः, स्वस्थाने तु मिथः समानः, ततो ज्ञानावरण-दर्शनावरण-वेदनीया-ऽन्तरायाणामसंख्येयगुणः, स्वस्थाने तु परस्परं तुल्यः, ततो मोहनीयस्याऽसंख्येयगुणः। उक्तं च कषायप्राभृतचूर्णौ "जाधे पढमदाए मोहणीयस्स पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो ट्ठिदिबन्धो जादो, ताधे अप्पाबहुअं—णामागोदाणं ट्ठिदिबन्धो थोवो, चदुण्हं कम्माणं ट्ठिदिबन्धो तुल्लो असंखेज्जगुणो, मोहणीयस्स ट्ठिदिबन्धो असंखेज्जगुणो।" इतः प्रभृति मोहनीयस्या-ऽप्युत्तरोत्तरस्थितिबन्धो-ऽसंख्येयगुणहीनो भवति।

यदा मोहनीयस्य पल्योपमा-ऽसंख्येयभागमितो भवति, तदा स्थितिसत्त्वं विभणिषुराह—'न्तोलक्खं' इत्यादि, सन्धिविश्लेषे सत्यकारे प्राप्ते 'अन्तोलक्खं' ति 'अन्तर्लक्षम्' लक्षस्य—सागरोपमशतसहस्राणामन्तर्–मध्ये सागरोपमसहस्रपृथक्त्वमित्यर्थः, 'सत्त्वं' स्थितिसत्कर्म 'सप्तानाम्' आयुर्वर्जानां कर्मणां भवतीति शेषः। अयं भावः यदा नाम गोत्रयोः स्थितिबन्धः पल्योपममात्रो-ऽभवत्, तदा-ऽऽयुर्वर्जानां सर्वेषां कर्मणां यत् स्थितिसत्त्वं सागरोपमशतसहस्रपृथक्त्वमात्रमासीत्, तत् संख्यातसहस्रैः स्थितिघातैर्घातितं सदिदानीं सागरोपमसहस्रपृथक्त्वप्रमितं भवति। उक्तं च कषायप्राभृतचूर्णौ "ताधे ट्ठिदिसंतकम्मं सागरोवमसहस्सपुधत्तमंतोसदसहस्सस्स।" ॥ ३३ ॥

* ज्ञानावरणादीनां पल्योपमा-ऽसंख्येयभागप्रमितस्थितिबन्धभवनादुक्तस्थितिबन्धा-ऽल्पबहुत्वक्रमेण संख्यातेषु स्थितिबन्धसहस्रेषु गतेषु सत्सु मोहनीयस्य दूरापकृष्टिं प्राप्तस्य जन्तोः पल्योपमसंख्येयभागमितश्चरमस्थितिबन्धो जायते, ततो मोहनीयस्य स्थितिबन्धतो-ऽसंख्येयबहुभागा अपगच्छन्ति, एकभागश्च बध्यते। तदानीं मोहनीयस्य प्रथमं पल्योपमा-ऽसंख्येयभागमानः स्थितिबन्धो भवतीति जयधवलाकारैरुक्तम्। अक्षराणि त्वेवम्—"एवमेदेणाणंतरपरूविदेण अप्पाबहुअविहाणेण पुणो वि संखेज्जसहस्समेत्तेसु ट्ठिदिबंधेसु वदिक्कंतेसु मोहणीयस्स वि दूरावकिट्ठिविसये जहाकमं संपत्ते तदो प्पहुडि तस्स वि असंखेज्जे भागे ट्ठिदिबंधेणोसरमाणस्स पलिदोवमस्सासंखेज्जदिभागिओ पढमो ट्ठिदिबंधो समाढत्तो त्ति।"

ततः संख्यातेषु स्थितिबन्धसहस्रेषु गतेषु मोहनीयस्य स्थितिबन्धः क्रमेण ज्ञानावरणादीनां नाम-गोत्रयोश्चा-ऽधस्ताद् गच्छति, तदाविश्चिकीर्षुराह

ताउ असंखगुणो एक्कपहारेणेइ तीसगाण अहो ।
मोहट्ठिइबंधो तो वीसगहेट्ठा कमेण-ऽसंखगुणो ॥ ३४ ॥ (गीतिः)

तस्मादसंख्येगुण एकप्रहारेणैति त्रिशत्कानामध ।
मोहस्थितिबन्धस्ततो विंशतिका-ऽधस्तात् क्रमेणा-ऽसंख्यगुण ॥३४॥इति पदसंस्कारः ।

'ताउ' इत्यादि, 'तस्मात्' मोहनीयकर्मणः पल्योपमा-ऽसंख्येयभागप्रमाणस्थितिबन्ध-भवनात् स्थितिबन्धसंख्यसहस्रेषु गतेषु 'एक्क०' त्ति "लुक्" (सिद्धहेम०८-१-१०) इति सन्धि-सूत्रेण 'एइ' त्ति पदस्थे एकारे परे णकारोत्तरा-ऽकारस्य लोपो जातः, सन्धिविश्लेषे पुनरकारः प्राप्त इति कृत्वा 'एक्कपहारेण' त्ति 'एकप्रहारेण' एकहेलयैव 'त्रिंशत्कानां' ज्ञानावरण-दर्शनावरण-वेदनीया-ऽन्तरायाणामधो-ऽसंख्येयगुणो 'मोहस्थितिबन्धः, मोहनीयकर्मणः स्थितिबन्धः 'एति' गच्छति, एकप्रहारेण ज्ञानावरणादितो मोहनीयस्य स्थितिबन्धो-ऽसंख्येयगुणहीनो जायते इत्यर्थः, तत्प्राक्तना मोहनीयसंख्येयसहस्रस्थितिबन्धा ज्ञानावरणादितो-ऽसंख्येयगुणवृद्धा व्यतिक्रान्ताः, सम्प्र-त्यनन्तरपूर्वस्थितिबन्धा-ऽपेक्षया मोहनीयस्थितिबन्धस्यैतावद्धानिर्भवति, येन ज्ञानावरणादितो-ऽसं-ख्येयगुणहीनो मोहनीयस्थितिबन्धो जायते, मोहनीयस्या-ऽप्रशस्ततमत्वात् प्रभूता हानिर्न विरुध्यते इति भावः । तदानीमल्पबहुत्वमित्थं प्ररूपयितव्यम् नाम-गोत्रयोः सर्वस्तोकः स्थितिबन्धः स्वस्थाने तु मिथस्तुल्यः, ततो मोहनीयस्या-ऽसंख्येयगुणः, ततो ज्ञानावरण-दर्शनावरण-वेदनीया-ऽन्तरायाणां स्थितिबन्धो-ऽसंख्येयगुणः, स्वस्थाने तु मिथः समानः । उक्तं च कषायप्राभृत-चूर्णौ "एदेण कमेण संखेज्जाणि ट्ठिदिबन्धसहस्साणि गदाणि, तदो जम्हि अण्णो ट्ठिदिबंधो तम्हि एक्कसराहेण णामागोदाणं ट्ठिदिबन्धो थोवो, मोहणीयस्स ट्ठिदि-बन्धो असंखेज्जगुणो, चदुण्हं कम्माणं ट्ठिदिबंधो तुल्लो असंखेज्जगुणो ।" इति ।

'तो' इत्यादि, 'ततः' ज्ञानावरणाद्यपेक्षया मोहनीयस्थितिबन्धस्या-ऽसंख्येयगुणहीनत्व-भवनात् स्थितिबन्धसंख्यातसहस्रेषु गतेषु मोहनीयस्थितिबन्ध एकप्रहारेण 'विंशतिका-ऽधस्तात्' नाम-गोत्रयोरधस्तादसंख्येयगुण एति, नामगोत्रतो-ऽसंख्येयगुणहीनो जायते, मोहनीयस्या ऽप्रश-स्ततमत्वेन प्रभूतहानिसम्भवादित्यर्थः । इदमुक्तं भवति इतः पूर्वं ये संख्येयसहस्राणि मोहनी-यस्य स्थितिबन्धा व्यतिक्रान्ताः, ते सर्वे नामगोत्रयोः स्थितिबन्धतो-ऽसंख्येयगुणवृद्धाः, सम्प्रत्येक-हेलयैव नामगोत्रतो मोहनीयस्थितिबन्धो-ऽसंख्येयगुणहीनो जायते । तदानीमल्पबहुत्वमभिधित्सु-राह "कमेण" इत्यादि, अत्रापि नामगोत्रयोः स्थितिबन्धतो ज्ञानावरणादीनामसंख्येयगुण

आसीत्, मोहनीयस्य तु सम्प्रति नामगोत्रतोऽसंख्येयगुणहीनो जातः । तेन मोहनीयस्य नामगोत्रयोर्ज्ञानावरण–दर्शनावरण–वेदनीया-ऽन्तरायाणां च स्थितिबन्धः क्रमेणाऽसंख्यगुणो भवति । तथाहि मोहनीयस्य स्थितिबन्धः सर्वस्तोकः, ततो नामगोत्रयोरसंख्येयगुणः, स्वस्थाने तु मिथस्तुल्यः, ततोऽपि ज्ञानावरण-दर्शनावरण-वेदनीया-ऽन्तरायाणामसंख्येयगुणः, स्वस्थाने तु मिथः सदृशः । उक्तं च कषायप्राभृतचूर्णौ "एदेण कमेण संखेज्जाणि ट्ठिदिबन्धसहस्साणि गदाणि, तदो जम्हि अण्णो ट्ठिदिबन्धो, तम्हि एक्कसराहेण मोहणीयस्स ट्ठिदिबन्धो थोवो, णामागोदाणं ट्ठिदिबन्धो असंखेज्जगुणो, चदुण्हं कम्माणं ट्ठिदिबन्धो तुल्लो असंखेज्जगुणो ।" इति ॥ ३४ ॥

नामगोत्रा-ऽपेक्षया मोहनीयस्थितिबन्धस्या-ऽसंख्येयगुणहीनत्वभवनात् यद्भवति, तद्वक्तुकाम आह

तो वेअणिज्जबंधो सेसाणं तीसगाण उवरिं उ ।
तो सेसतीसगाणं ठिइबंधो वीसगाण अहो ॥ ३५ ॥

तस्माद् वेदनीयबन्ध शेषाणां त्रिंशत्कानामुपरि तु ।
तस्मात् शेषत्रिंशत्कानां स्थितिबन्धो विंशतिकयोरध ॥ ३५ ॥ इति पदसंस्कार ।

'तो' इत्यादि, 'असंखगुणो एक्कपहारेणं' इति पदत्रयं पूर्वतोऽनुवर्तते । 'तस्मात्' नामगोत्रस्थितिबन्धतो मोहनीयस्थितिबन्धस्याऽसंख्येयगुणहीनत्वभवनात् संख्यातेषु स्थितिबन्धसहस्रेषु गतेषु 'वेदनीयबन्धः' वेदनीयकर्मणः स्थितिबन्ध एकप्रहारेण 'शेषाणां त्रिंशत्कानां' ज्ञानावरणदर्शनावरणाऽन्तरायाणामुपरि असंख्यगुण एति-गच्छति, ज्ञानावरणादितो-ऽसंख्येयगुणो जायते, ज्ञानावरणादीनामप्रशस्ततरत्वेन प्रभूतहानिसंभवादिति भावः । 'तु'तुः पादपूरणे । इदमुक्तं भवति–इतः प्रागुत्तरोत्तरस्थितिबन्धोऽसंख्येयगुणहीनो भवन् ज्ञानावरण-दर्शनावरण-वेदनीया-ऽन्तरायाणां मिथः समान आसीत्, सम्प्रत्येकहेलयैव ज्ञानावरण-दर्शनावरणाऽन्तरायाणां प्रभूतः स्थितिबन्धो हीयते, येन वेदनीयतो ज्ञानावरण-दर्शनावरणा ऽन्तरायाणामसंख्येयगुणहीनः संजायते । ततश्च ज्ञानावरणादितो वेदनीयस्य स्थितिबन्धोऽसंख्येयगुणो भवति । तदानीं स्थितिबन्धाल्पबहुत्वं चिन्त्यते-मोहनीयस्य स्थितिबन्धः सर्वस्तोकः, ततो नाम-गोत्रयोरसंख्येयगुणः,ततो ज्ञानावरण-दर्शनावरणा-न्तरायाणामसंख्येयगुणो भवति, ततो-ऽपि वेदनीयस्या-ऽसंख्येयगुण. । उक्तं च कषायप्राभृतचूर्णौ-"एदेण कमेण संखेज्जाणि ट्ठिदिबंधसहस्साणि गदाणि, तदो जम्हि अण्णो ट्ठिदिबंधो तम्हि एक्कसराहेण मोहणीयस्स ठिदिबंधो थोवो, णामागोदाणं ठिदिबंधो असंखेज्जगुणो तिण्हं घादिकम्माणं ठिदिबंधो असंखेज्जगुणो, वेदणीयस्स ठिदिबंधो असंखेज्जगुणो । 'तो' इत्यादि, 'तस्मात्' घातित्रयतो वेदनीयस्थितिबन्धस्या-ऽसंख्येयगुणत्व-

भवनात् संख्यातेषु स्थितिबन्धसहस्रेषु व्रजितेषु सत्सु 'शेषत्रिंशत्कानां' शेषत्रिंशत्सागरोपमकोटीकोटी-स्थितिकानां ज्ञानावरण-दर्शनावरणा-ऽन्तरायाणामित्यर्थः, स्थितिबन्ध एकप्रहारेण 'विंशतिकयोः' नाम-गोत्रयोः 'अधः' अधस्ताद् असंख्येयगुणो गच्छति, नामगोत्रतोऽसंख्येयगुणहीनो जायते, ज्ञानावरणदर्शनावरणाऽन्तरायाणामप्रशस्ततरत्वेन प्रभूतहानिसंभवादित्यर्थः ॥ ३५ ॥

तदानीं नाम-गोत्रतो वेदनीयस्य स्थितिबन्धः कियान् भवति ? इत्यत आह

ताहे वीसगबंधा तइयस्स विसेसअहिगो खु ।
एवंकमेण गच्छइ बंधो अह भणिमु ठिइसंतं ॥३६॥ (उपगीतिः)

तदा विंशतिकबन्धात् तृतीयस्य विशेषाधिकः खलु ।
एवंक्रमेण गच्छति बन्धोऽथ भणाम स्थितिसत्त्वम् ॥ ३६ ॥ इति पदसंस्कारः ।

'ताहे' इत्यादि, 'तदा' यदा ज्ञानावरणादीनां स्थितिबन्धस्या-ऽधस्तादसंख्यगुणो नाम-गोत्रयोः स्थितिबन्धो गच्छति, तदानीमित्यर्थः, 'विंशतिकबन्धात्' नाम-गोत्रयोः स्थितिबन्धात् 'तृतीयस्य' वेदनीयकर्मणः स्थितिबन्धो विशेषाधिकः खलु—निश्चयेन जायते, न ततो-ऽधिकः, विंशतिसागरोपमकोटीकोटिस्थितिकनामगोत्रतस्त्रिंशत्सागरोपमकोटीकोटीस्थितिकवेदनीयस्थितिबन्धस्य त्रिद्विभागगुणसंभवात् । तदानीं स्थितिबन्धाल्पबहुत्वमित्थं निरूपयितव्यम्-मोहनीयस्य स्थितिबन्धः सर्वस्तोकः, ततो ज्ञानावरण-दर्शनावरण-ऽन्तरायाणामसंख्येयगुणः, ततो नाम-गोत्रयोरसंख्येयगुणः, ततो वेदनीयस्य विशेषाधिकः । उक्तं च कषायप्राभृतचूर्णौ "एवं संखेज्जाणि ठिदिबन्धसहस्साणि गदाणि, तदो अण्णो ट्ठिदिबन्धो एक्कसराहेण मोहणीयस्स ट्ठिदिबन्धो थोवो, तिण्हं घादिकम्माणं ट्ठिदिबन्धो असंखेज्जगुणो, णामागोदाणं ट्ठिदिबन्धो असंखेज्जगुणो, वेदणीयस्स ट्ठिदिबन्धो विसेसाहिओ ।" 'एवंकमेण' इत्यादि, 'एवंक्रमेण' चरमाऽल्पबहुत्वक्रमेण 'बन्धो' अभिनवोऽभिनवः स्थितिबन्धो 'गच्छति' व्यतिक्रामति ।

स्थितिबन्धं विस्तरतो-ऽभिधाय सम्प्रति स्थितिसत्त्वं निजिगदिषुराह 'अह' इत्यादि, 'अथ' अथशब्दोऽनन्तरार्थकः, स्थितिबन्धप्ररूपणा-ऽनन्तरमित्यर्थः, 'स्थितिसत्त्वं' सप्तानामप्यायुर्वर्जानां कर्मणां स्थितिसत्कर्म 'भणामः' शब्दतः प्रतिपादयिष्यामः ॥ ३६ ॥

प्रतिज्ञातमेवा-ऽऽह

तत्तो असण्णितुल्लं ठिइसंतं ताउ बंधव्व ।
तो णेयं जावंतप्पबहुत्तं खलु ण पाविज्ज ॥ ३७ ॥ (उपगीतिः)

ततोऽसंज्ञितुल्यं स्थितिसत्त्व तस्माद् बन्धवत् ।
तावज्ज्ञेयं यावदन्ता-ऽल्पबहुत्व खलु न प्राप्येत ॥३७॥ इति पदसंस्कार. ।

'तत्तो' इत्यादि, 'ततः' मोहनीयस्य स्थितिबन्धः सर्वाल्पस्ततो ज्ञानावरण-दर्शनावरणाऽन्तरायाणामसंख्येयगुणस्ततो नाम-गोत्रयोरसंख्येयगुणस्ततो वेदनीयस्य विशेषाधिक इत्येवंरूपस्थितिबन्धा-ऽल्पबहुत्वभवनात् परं संख्येषु स्थितिबन्धसहस्रेष्वतिक्रान्तेषु 'असंज्ञितुल्यं' असंज्ञिस्थितिबन्धेन तुल्यं-सदृशं 'स्थितिसत्त्वं' आयुर्वर्जसप्तकर्मणां स्थितिसत्कर्म भवति, मोहनीयस्य स्थितिसत्त्वं सागरोपमसहस्रचतुःसप्तभागप्रमितं ($\frac{1000 \times 4}{7}$) ज्ञानावरण-दर्शनावरण-वेदनीया-ऽन्तरायाणां सागरोपमसहस्रत्रिसप्तभागमानं ($\frac{1000 \times 3}{7}$) नाम-गोत्रयोः सागरोपमसहस्रद्विसप्तभागमात्रं ($\frac{1000 \times 2}{7}$) भवतीत्यर्थः । उक्तं च कषायप्राभृतचूर्णौ "एदेणेव कमेण संखेज्जाणि ट्ठिदिबन्धसहस्साणि गदाणि, तदो ठिदिसंतकम्ममसण्णिठिदिबन्धेण समगं जादं ।" इति ।

'ताव' इत्यादि, 'तस्मात्' असंज्ञिबन्धतुल्यस्थितिसत्त्वभवनात्परं 'बन्धवत्' स्थितिबन्धवत् तावज्ज्ञेयम् यावद् 'अन्ता-ऽल्पबहुत्वम्' चरमाऽल्पबहुत्वम्, मोहनीयस्थितिसत्त्वं स्तोकं ततो ज्ञानावरण-दर्शनावरणा-ऽन्तरायाणां स्थितिसत्त्वमसंख्येयगुणं ततो नाम-गोत्रयोरसंख्येयगुणं ततो वेदनीयस्य विशेषाधिकमित्येवंलक्षणं खलु न प्राप्येत । इदमुक्तं भवति—सप्तानामपि कर्मणामसंज्ञिस्थितिबन्धतुल्यस्थितिसत्त्वभवनात् संख्यातेषु स्थितिबन्धेषु सहस्रेषु गतेषु सत्सु सप्तानां कर्मणां चतुरिन्द्रियस्थितिबन्धेन सदृशं स्थितिसत्त्वं भवति, मोहनीयस्य स्थितिसत्त्वं सागरोपमशतचतुःसप्तभागमितम् ($\frac{100 \times 4}{7}$), ज्ञानावरण-दर्शनावरण-वेदनीया-ऽन्तरायाणां सागरोपशतत्रिसप्तभागमात्रम् ($\frac{100 \times 3}{7}$), नाम-गोत्रयोः सागरोपमशतद्विसप्तभागमानं ($\frac{100 \times 2}{7}$), भवतीत्यर्थः । उक्तं च कषायप्राभृतचूर्णौ "तदो संखेज्जेसु ठिदिबन्धसहस्सेसु गदेसु चउरिंदियट्ठिदिबन्धेण समगं जादं ।" इति ।

ततः पुनः संख्यातेषु स्थितिबन्धसहस्रेषु गतेषु सत्सु त्रीन्द्रियस्थितिबन्धसमानं स्थितिसत्त्वं भवति, मोहनीयस्य स्थितिसत्त्वं पञ्चाशत्सागरोपमचतुःसप्तभागप्रमितम् ($\frac{50 \times 4}{7}$), ज्ञानावरणादीनां चतुर्णां पञ्चाशत्सागरोपमत्रिसप्तभागप्रमितम् ($\frac{50 \times 3}{7}$), नाम-गोत्रयोस्तु पञ्चाशत्सागरोपमद्विसप्तभागप्रमितं ($\frac{50 \times 2}{7}$), भवतीत्यर्थः । ततः संख्यातेषु सहस्रस्थितिबन्धेषु व्रजितेषु सत्सु द्वीन्द्रियस्थितिबन्धसदृशं स्थितिसत्त्वं भवति,

मोहनीयस्य स्थितिसत्कर्म पञ्चविंशतिसागरोपमचतुःसप्तभागप्रमाणम् ($\frac{25\times4}{7}$), ज्ञानावरण-दर्शनावरण-वेदनीया-ऽन्तरायाणां पञ्चविंशतिसागरोपमत्रिसप्तभागमितम् ($\frac{25\times3}{7}$), नाम-गोत्रयोः पञ्चविंशतिसागरोपमद्विसप्तभागमानं ($\frac{25\times2}{7}$), भवतीत्यर्थः। उक्तं च कषायप्राभृतचूर्णौ "एवं तीइंदियवीइंदियठिदिबन्धेण समगं जादं।" इति।

ततो भूयः संख्यातस्थितिबन्धसहस्रेषु व्यतिक्रान्तेषु स्थितिसत्त्वमेकेन्द्रियस्थितिबन्धेन सदृशं भवति, मोहनीयस्य सागरोपमचतुःसप्तभागप्रमाणम् ($\frac{4}{7}$) ज्ञानावरण-दर्शनावरण-वेदनीयाऽन्तरायाणां सागरोपमत्रिसप्तभागमात्रम् ($\frac{3}{7}$) नाम-गोत्रयोः सागरोपमद्विसप्तभागप्रमितं ($\frac{2}{7}$) भवतीत्यर्थः। उक्तं च कषायप्राभृतचूर्णौ "तदो संखेज्जेसु ट्ठिदिखंडयसहस्सेसु गदेसु एइंदियठिदिबन्धेण समगं ट्ठिदिसंतकम्मं जादं।" अत्र कषायप्राभृतचूर्णिकारैः स्थितिखण्डसहस्रेषु गतेष्वित्युक्तम्, स्थितिघाताद्धायाः स्थितिबन्धाद्धया तुल्यत्वेनाऽन्यतरोपादाने विरोधाभावात्। तेन वयमपीतः परं स्थितिबन्धसहस्रेषु गतेष्वित्यस्य स्थाने स्थितिखण्डसहस्रेषु गतेष्वित्यभिधास्यामहे।

एकेन्द्रियबन्धतुल्यस्थितिसत्त्वभवनात् संख्यातेषु स्थितिखण्डसहस्रेषु गतेषु सत्सु नाम-गोत्रयोः स्थितिसत्त्वं पल्योपममात्रं भवति, ज्ञानावरण-दर्शनावरण-वेदनीया-ऽन्तरायाणां सार्धपल्योपममितं भवति, मोहनीयस्य तु पल्योपमद्वयमात्रं भवति। उक्तं च कषायप्राभृतचूर्णौ "तदो संखेज्जेसु ट्ठिदिखंडयसहस्सेसु गदेसु णामागोदाणं पलिदोवमट्ठिदिसंतकम्मं जादं। ताधे चदुण्हं कम्माणं दिवड्ढपलिदोवमट्ठिदिसंतकम्मं, मोहणीयस्स वि बेपलिदोवमठिदिसंतकम्मं।" अत्र युक्तिस्तु स्थितिबन्धवदुपन्यसनीया, एवमग्रेऽपि। तदानीं स्थितिसत्त्वा-ऽल्पबहुत्वमित्थं प्ररूपयितव्यम्—नामगोत्रयोः स्थितिसत्त्वं सर्वस्तोकम्, स्वस्थाने मिथस्तुल्यम्। ततो ज्ञानावरण-दर्शनावरण-वेदनीया-ऽन्तरायाणां विशेषाधिकम्, सार्धपल्योपममात्रत्वात्, स्वस्थाने तु परस्परं तुल्यम्। ततोऽपि मोहनीयस्य विशेषाधिकम्, पल्योपमद्वयमात्रत्वात्। इतः परं नाम-गोत्रयोः स्थितिसत्त्वस्य संख्येयगुणहानिर्भवति, प्रतिस्थितिघातेन सत्तागतस्थितेः संख्येयबहुभागा विनाश्यन्त इत्यर्थः, यतः प्रभृति यस्य कर्मणः पल्योपममात्रं स्थितिसत्त्वं भवति, ततः परं प्रतिस्थितिघातेन तस्य कर्मणः स्थितिसत्त्वं संख्येयगुणहीनं भवतीति व्याप्तेः। शेषाणां पञ्चानां कर्मणां तु पल्योपमसंख्येयभागमितं स्थितिखण्डं विनाशयति। तेन नाम-गोत्रयोः पल्योपममात्रस्थितिसत्त्वभवनादेकस्मिन् स्थितिखण्डे घातिते नाम-गोत्रयोः स्थितिसत्त्वं पल्योपमसंख्येयभागप्रमाणं भवति। उक्तं च कषायप्राभृतचूर्णौ "एदम्हि ट्ठिदिखंडये उक्किण्णे णामागोदाणं पलिदोवमस्स संखेज्जदिभागियं ठिदिसंतकम्मं।" ज्ञानावरण-दर्शनावरण-

वेदनीया-ऽन्तरायाणां देशोनसार्धपल्योपममात्रं स्थितिसत्त्वम्, मोहस्य पुनर्देशोनद्विपल्योपममात्रं भवति। तदानीमल्पबहुत्वं चिन्त्यते—नामगोत्रयोः सर्वस्तोकं स्थितिसत्त्वम्, स्वस्थाने तु मिथस्तुल्यम्, तच्च पल्योपमसंख्येयभागमानं भवति। ततो ज्ञानावरण-दर्शनावरण-वेदनीया-ऽन्तरायाणां संख्येयगुणम्, देशोनसार्धपल्योपममितत्वात्, स्वस्थाने तु मिथ एकादृशम्। ततो-ऽपि मोहनीयस्य विशेषाधिकम्, देशोनपल्योपमद्वयमात्रत्वात्। उक्तं च कषायप्राभृतचूर्णौ "ताधे अप्पाबहुअं—सव्वत्थोवं णामागोदाणं ट्ठिदिसंतकम्मं, चदुण्हं कम्माणं ट्ठिदिसंतकम्मं तुल्लं संखेज्जगुणं, मोहणीयस्स ठिदिसंतकम्मं विसेसाहियं।" इति।

अनेन स्थितिसत्त्वा-ऽल्पबहुत्वक्रमेण स्थितिखण्डसंख्यातसहस्रेषु गतेषु सत्सु ज्ञानावरण-दर्शनावरणवेदनीयाऽन्तरायाणामपि पल्योपममात्रं स्थितिसत्त्वं भवति, मोहनीयस्य तु त्रिभागाधिकपल्योपमप्रमितं जायते। न्यगादि च कषायप्राभृतचूर्णौ "एदेण कमेण ठिदिखण्डयपुधत्ते गदे तदो चदुण्हं कम्माणं पलिदोवमट्ठिदिसंतकम्मं, ताधे मोहणीयस्स पलिदोवमतिभागुत्तरं ठिदिसंतकम्मं।" अतः परं ज्ञानावरणादीनां प्रतिस्थितिघातेन स्थितिसत्त्वं संख्येयगुणहीनं भवति, व्याप्तेः प्रागुक्तत्वात्। मोहनीयस्य तु पूर्ववत् प्रतिस्थितिघातेन पल्योपमसंख्येयभागं नाशयति। तेन ज्ञानावरणादीनां पल्योपममात्रस्थितिसत्त्वभवनादेकस्मिन् स्थितिघाते पूर्णे ज्ञानावरण-दर्शनावरण-वेदनीया-ऽन्तरायाणामपि स्थितिसत्त्वं पल्योपमसंख्येयभागप्रमितं भवति। उक्तं च कषायप्राभृतचूर्णौ "तदो ट्ठिदिखण्डये पुण्णे चदुण्हं कम्माणं पलिदोवमस्स संखेज्जदिभागो ट्ठिदिसंतकम्मं।" मोहनीयस्य तु देशोनत्रिभागोत्तरपल्योपममात्रं भवति। तदानीं स्थितिसत्त्वा-ऽल्पबहुत्वं निगद्यते—नाम-गोत्रयोः स्थितिसत्त्वं सर्वस्तोकम्, तच्च पल्योपमसंख्येयभागमानम्, स्वस्थाने मिथस्तुल्यं भवति, ततो ज्ञानावरण-दर्शनावरण-वेदनीया-ऽन्तरायाणां पल्योपमसंख्येयभागप्रमितं भवदपि संख्येयगुणम्, स्वस्थाने तु मिथः सदृशम्, ततो मोहनीयस्य संख्येयगुणम्, तस्य देशोनत्रिभागाधिकपल्योपममात्रत्वात्। उक्तं च कषायप्राभृतचूर्णौ "ताधे अप्पाबहुअं-सव्वत्थोवं णामागोदाणं ट्ठिदिसंतकम्मं, चदुण्हं कम्माणं ट्ठिदिसंतकम्मं तुल्लं संखेज्जगुणं, मोहणीयस्स ट्ठिदिसंतकम्मं संखेज्जगुणं।" इति।

अनेन स्थितिसत्त्वा-ऽल्पबहुत्वक्रमेण स्थितिघातसहस्रेषु व्रजितेषु सत्सु मोहनीयस्य स्थितिसत्त्वं पल्योपममात्रं भवति। उक्तं च कषायप्राभृतचूर्णौ "तदो ठिदिखण्डयपुधत्तेण मोहणीयस्स ठिदिसंतकम्मं पलिदोवमं जादं।" इतः परं प्रतिस्थितिघातेन मोहनीयस्थितिसत्त्वमपि संख्येयगुणहीनं भवति, व्याप्तेः प्रागुक्तत्वात्। इत्थमितः परं सर्वेषां कर्मणां प्रतिस्थितिघातेन स्थितिसत्त्वं संख्येयगुणहीनं जायते। तेन मोहनीयस्य पल्योपममात्रस्थितिसत्त्वभवनादेक-

स्मिन् स्थितिघाते पूर्णे मोहनीयस्या-ऽपि स्थितिसत्कर्म पल्योपमसंख्येयभागमितं भवति । अत एव तदानीं सर्वेषां कर्मणां स्थितिसत्त्वं पल्योपमसंख्येयभागमात्रं भवति । उक्तं च कषायप्राभृत-चूर्णौ "तदो ठिदिखण्डए पुण्णे सत्तण्हं कम्माणं पलिदोवमस्स संखेज्जदिभागो ठिदिसंतकम्मं जादं ।" इति । तदानीं स्थितिसत्त्वाऽल्पबहुत्वमित्थं निगदितव्यम् नाम-गोत्रयोः स्थितिसत्त्वं सर्वस्तोकम्, ततो ज्ञानावरणदर्शनावरणवेदनीयाऽन्तरायाणां संख्येयगुणम्, ततोऽपि मोहनीयस्य संख्येयगुणम् ।

ततः परं संख्यातेषु स्थितिघातसहस्रेषु व्यतिक्रान्तेषु नाम-गोत्रयोः स्थितिसत्त्वं पल्योपमाऽसंख्येयभागप्रमाणं भवति । उक्तं च कषायप्राभृतचूर्णौ-"तदो संखेज्जेसु ट्ठिदिखण्डयसहस्सेसु गदेसु णामागोदाणं पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो ठिदिसंतकम्मं जादं ।" तदानीमल्पबहुत्वं विचार्यते-नाम-गोत्रयोः स्थितिसत्त्वं सर्वस्तोकं स्वस्थाने मिथः समानम्, तच्च पल्योपमाऽसंख्येयभागमानम्, ततो ज्ञानावरण-दर्शनावरण-वेदनीया-ऽन्तरायाणामसंख्येयगुणम्, पल्योपमसंख्येयभागमात्रत्वात्, स्वस्थाने तु मिथः सदृशम्, ततो मोहनीयस्य पल्योपमसंख्येयभागमितं भवदपि संख्येयगुणं भवति । उक्तं च कषायप्राभृत-चूर्णौ "ताधे अप्पाबहुअं-सव्वत्थोवं णामागोदाणं ठिदिसंतकम्मं, चउण्हं कम्माणं ठिदिसंतकम्मं तुल्लमसंखेज्जगुणं, मोहणीयस्स ठिदिसंतकम्मं संखेज्जगुणं ।" इति । इतः प्रभृति नामगोत्रयोः स्थितिसत्त्वं प्रतिस्थितिघातेना-ऽसंख्येयगुणहीनं जायते ।

ततः परमनन्तरोक्ता-ऽल्पबहुत्वक्रमेण स्थितिखण्डेषु संख्यातसहस्रेषु व्यतीतेषु ज्ञानावरण-दर्शनावरण-वेदनीया-ऽन्तरायाणां स्थितिसत्त्वं पल्योपमा-ऽसंख्येयभागप्रमाणं भवति । उक्तं च कषायप्राभृतचूर्णौ- "तदो ठिदिखण्डयपुधत्तेण चउण्हं कम्माणं पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो ठिदिसंतकम्मं जादं ।" मोहनीयस्य तु पल्योपमसंख्येयभागप्रमाणं भवति । तदानीं स्थितिसत्त्वा-ऽल्पबहुत्वं भण्यते नाम-गोत्रयोः सर्वस्तोकं स्थितिसत्कर्म, स्वस्थाने तु मिथस्तुल्यम्, तच्च पल्योपमाऽसंख्यभागप्रमाणं भवति, ततो ज्ञानावरण-दर्शनावरण-वेदनीया-ऽन्तरायाणां पल्योपमा-ऽसंख्येयभागमात्रं भवदप्यसंख्येयगुणं स्वस्थाने तु परस्परं सदृशम्, ततो मोहनीयस्या-ऽसंख्येयगुणम्, पल्योपमसंख्येयभागमात्रत्वात् । उक्तं च कषायप्राभृतचूर्णौ-"ताधे अप्पाबहुअं णामागोदाणं ट्ठिदिसंतकम्मं थोवं, चउण्हं कम्माणं ट्ठिदिसंत-कम्मं तुल्लमसंखेज्जगुणं, मोहणीयस्स ट्ठिदिसंतकम्ममसंखेज्जगुणं ।" इति । इतः प्रभृति ज्ञानावरणादीनामपि स्थितिसत्त्वं प्रतिस्थितिघातेना-ऽसंख्येयगुणहीनं जायते ।

ततो भूयः स्थितिखण्डसंख्यसहस्रेष्वतिक्रान्तेषु सत्सु मोहनीयकर्मणः स्थितिसत्कर्म पल्योपमाऽ-संख्येयभागमानं भवति । उक्तं च कषायप्राभृतचूर्णौ-"तदो ठिदिखण्डयपुधत्तेण मोहणीय-स्स वि पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो ट्ठिदिसंतकम्मं जादं ।" इत्थमितः प्रभृति सर्वेषां

कर्मणां स्थितिसत्त्वं पल्योपमा-ऽसंख्येयभागमितं तावद्वक्तव्यम्, यावद्विशेषो ना-ऽभिधीयेत। साम्प्रतमल्पबहुत्वमित्थं द्रष्टव्यम्-नाम-गोत्रयोः स्थितिसत्त्वं सर्वाल्पं स्वस्थाने तु मिथस्तुल्यम्, ततो ज्ञानावरण-दर्शनावरण-वेदनीया-ऽन्तरायाणामसंख्येयगुणं स्वस्थाने मिथः समानम्, ततो मोहनीयस्या-ऽसंख्येयगुणम्। उक्तं च कषायप्राभृतचूर्णौ-"ताधे अप्पाबहुअं जधा-णामा-गोदाणं ट्ठिदिसंतकम्मं थोवं, चदुण्हं कम्माणं ठिदिसंतकम्मं तुल्लमसंखेज्जगुणं, मोहणीयस्स ठिदिसन्तकम्मं असंखेज्जगुणं।" इति। इतः प्रभृति मोहनीयस्या-ऽपि स्थितिसत्त्वं प्रतिस्थितिघातेना-ऽसंख्येयगुणहीनं जायते।

ततः परमुक्ताल्पबहुत्वक्रमेण स्थितिखण्डसंख्यसहस्रेष्वतिक्रान्तेषु सत्सु मोहनीयस्य स्थिति-सत्त्वमेकप्रहारेणैव ज्ञानावरण-दर्शनावरण-वेदनीया-ऽन्तरायाणामधस्तादसंख्येयगुणं गच्छति, ज्ञानावरणादितोऽसंख्येयगुणहीनं जायते इत्यर्थः। इदमुक्तं भवति इतः प्राग् ज्ञानावरणादीनां चतुर्णां स्थितिसत्त्वतो मोहनीयस्य स्थितिसत्त्वमसंख्येयगुणमासीत्, इदानीं पुनरेकस्थितिघातेन ज्ञानावरणादीनां स्थितिसत्त्वतो मोहनीयस्य स्थितिसत्त्वमसंख्येयगुणहीनं संजायते। इदन्त्ववधेयम्-अनन्तरोक्तस्थितिसत्त्वा-ऽल्पबहुत्वतः परं व्रजितानां संख्यातसहस्रस्थितिघातानां द्विचरमस्थितिघातं यावज्ज्ञानावरण-दर्शनावरण-वेदनीया-ऽन्तरायाणां स्थितिसत्त्वतो मोहनीयस्य स्थितिसत्त्वमसंख्येय-गुणं भवति स्म, चरमस्थितिघातेन तु मोहनीयस्यैतावत्प्रभूतं स्थितिसत्त्वं घातयति, येन ज्ञानावरण-दर्शनावरण-वेदनीया-ऽन्तरायाणां स्थितिसत्त्वतो मोहनीयस्य स्थितिसत्त्वमसंख्येयगुणहीनं भवति। एवमग्रेऽपि यत्रैकप्रहारेणेति वक्ष्यते, तत्रेत्थमेव भावनीयम्। तदानीं स्थितिसत्त्वा-ऽल्पबहुत्वं भण्यते-नामगोत्रयोः सर्वस्तोकं स्थितिसत्त्वं स्वस्थाने तु मिथस्तुल्यम्, ततो मोहनीयस्या-ऽसंख्येयगुणम्, ततोऽपि ज्ञानावरण-दर्शनावरण वेदनीया-ऽन्तरायाणामसंख्येयगुणं स्वस्थाने तु परस्परं तुल्यम्। उक्तं च कषायप्राभृतचूर्णौ-"एदेण कमेण संखेज्जाणि ठिदिखण्डयसहस्साणि गदाणि तदो णामागोदाणं ठिदिसंतकम्मं थोवं, मोहणीयस्स ठिदिसंतकम्ममसंखेज्जगुणं, चदुण्हं कम्माणं ठिदिसंतकम्मं तुल्लमसंखेज्जगुणं।" इति।

ततः परमनन्तरोक्तस्थितिसत्त्वा-ऽल्पबहुत्वक्रमेण संख्यसहस्रेषु स्थितिखण्डेषु व्यतीतेषु मोह-नीयस्य स्थितिसत्त्वमेकप्रहारेणैव नामगोत्रयोरधस्तादसंख्येयगुणं गच्छति, नामगोत्रतोऽसंख्येय-गुणहीनं जायते इत्यर्थः। इतः प्राग् नाम-गोत्रयोः स्थितिसत्त्वतो मोहनीयस्य यत्स्थितिसत्त्वम-संख्येयगुणमासीत्, तदतः प्रभृत्यसंख्येयगुणहीनं जायते। तदानीं स्थितिसत्त्वा-ऽल्पबहुत्वं प्रति-पाद्यते मोहनीयस्य स्थितिसत्त्वं सर्वाल्पम्, ततो नाम-गोत्रयोरसंख्येयगुणम्, स्वस्थाने तु मिथः सदृक्षम्, ततो ज्ञानावरण-दर्शनावरण-वेदनीया-ऽन्तरायाणां स्थितिसत्त्वमसंख्येयगुणम्, स्वस्थाने तु परस्परं समानम्। उक्तं च कषायप्राभृतचूर्णौ "तदो ठिदिखण्डयपुधत्ते

गदे एक्कसराहेण मोहणीयस्स ट्ठिदिसंतकम्मं थोवं, णामागोदाणं ट्ठिदिसंतकम्ममसंखेज्जगुणं, चउण्हं कम्माणं ट्ठिदिसंतकम्मं तुल्लमसंखेज्जगुणं।"इति।

अनन्तरोक्तस्थितिसत्त्वा-ऽल्पबहुत्वक्रमेण स्थितिखण्डसंख्यसहस्रेषु गतेषु वेदनीयस्य स्थितिसत्त्वं ज्ञानावरण-दर्शनावरणा-ऽन्तरायाणामुपर्यसंख्येयगुणं गच्छति, ज्ञानावरणादितोऽसंख्येयगुणं संजायते इत्यर्थः। इतः प्राग् ज्ञानावरण-दर्शनावरणा-ऽन्तरायाणां वेदनीयस्य च स्थितिसत्त्वं परस्परं तुल्यमासीत्, अतः प्रभृति ज्ञानावरण-दर्शनावरणा-ऽन्तरायाणां स्थितिसत्त्वतो वेदनीयस्य स्थितिसत्त्वमसंख्येयगुणं जायते। इदानीं स्थितिसत्त्वा-ऽल्पबहुत्वमित्थं भणितव्यम्—मोहनीयस्य स्थितिसत्त्वं सर्वाल्पम्, ततो नामगोत्रयोरसंख्येयगुणम्, ततो ज्ञानावरण-दर्शनावरणा-ऽन्तरायाणामसंख्येयगुणम्, ततो वेदनीयस्या-ऽसंख्येयगुणम्। उक्तं च कषायप्राभृतचूर्णौ "तदो ट्ठिदिखण्डयपुधत्तेण मोहणीयस्स ट्ठिदिसन्तकम्मं थोवं, णामागोदाणं ट्ठिदिसंतकम्मं असंखेज्जगुणं, तिण्हं घादिकम्माणं ट्ठिदिसंतकम्ममसंखेज्जगुणं, वेदणीयस्स ट्ठिदिसन्तकम्ममसंखेज्जगुणं।"इति।

ततः परं संख्यसहस्रेषु स्थितिखण्डेषु व्रजितेषु ज्ञानावरण दर्शनावरणा-ऽन्तरायाणामुपर्यसंख्येयगुणं नामगोत्रयोः स्थितिसत्त्वं गच्छति, ज्ञानावरणादितोऽसंख्येयगुणं भवतीत्यर्थः, ततो वेदनीयस्य स्थितिसत्त्वं केवलं विशेषाधिकं भवति। प्राक्तु नाम-गोत्रयोः स्थितिसत्त्वतोज्ञानावरण दर्शनावरणा-ऽन्तरायाणां स्थितिसत्त्वमसंख्येयगुणमासीत्, ततो वेदनीयमसंख्येयगुणम्, इदानीं पुनर्ज्ञानावरणादितो नामगोत्रयोः स्थितिसत्त्वमसंख्येयगुणं भवति, नामगोत्रयोश्च स्थितिसत्त्वतो वेदनीयस्य स्थितिसत्त्वं केवलं विशेषाधिकं भवतीति भावः। स्थितिसत्त्वाऽल्पबहुत्वं पुनरित्थमभिधातव्यम्-मोहनीयस्य स्थितिसत्त्वं सर्वस्तोकम्, ततो ज्ञानावरण-दर्शनावरणा-ऽन्तरायाणामसंख्येयगुणम्, स्वस्थाने तु मिथः सदृशम्, ततोऽपि नाम-गोत्रयोरसंख्येयगुणम्, स्वस्थाने तु मिथस्तुल्यम्, ततो वेदनीयस्य विशेषाधिकम्। उक्तं च कषायप्राभृतचूर्णौ—"तदो ट्ठिदिखण्डयपुधत्तेण मोहणीयस्स ट्ठिदिसन्तकम्मं थोवं, तिण्हं घादिकम्माणं ठिदिसंतकम्मं असंखेज्जगुणम्, णामागोदाणं ठिदिसन्तकम्ममसंखेज्जगुणं, वेदणीयस्स ठिदिसंतकम्मं विसेसाहियं।" इति॥ ३७॥

साम्प्रतमनिवृत्तिकरणप्रथमसमयात्प्रभृत्यनन्तरोक्तस्थितिसत्त्वा-ऽल्पबहुत्वं यावत् सर्वा प्ररूपणा यन्त्रके दर्श्यते।

यन्त्रकम्

(i) अनिवृत्तकरणप्रथमसमये देशोपशमनानिधत्तिनिकाचनाकरणानि व्यवच्छिन्नानि ।
(ii) ,, ,, स्थितिबन्धोऽन्त सागरोपमकोटिप्रमित , स्थितिसत्कर्म पुनरन्त सागरोपमकोटीकोटीप्रमाणम् ।
(iii) ,, ,, जघन्यस्थितिखण्डत उत्कृष्टस्थितिखण्ड सख्येयभागाधिकम् ।
(iv) प्रथमे स्थितिखण्डे घातिते सर्वजन्तूना स्थितिखण्ड मिथस्तुल्यम् । एव स्थितिसत्कर्माऽपि ।

	मोहनीयस्य	ज्ञानावरणादीनाम्	नामगोत्रयो	
(१) स्थितिबन्धसख्यातसहस्रेषु गतेष्वनिवृत्तिकरणस्य सख्येयतमभागे शेषे स्थितिबन्ध	४०००/७ सा०	३०००/७ सा०	२०००/७ सा०	असज्ञिबन्धतुल्य
(२) तत स्थितिबन्धसंख्यातसहस्रेषु व्यतिक्रान्तेषु स्थितिबन्ध	४००/७ ,,	३००/७ ,,	२००/७ ,,	चतुरिन्द्रियबन्धतुल्यः
(३) ,, ,, ,, ,, ,,	२००/७ ,,	१५०/७ ,,	१००/७ ,,	त्रीन्द्रियबन्धतुल्य.
(४) ,, ,, ,, ,, ,,	१००/७ ,,	७५/७ ,,	५०/७ ,,	द्वीन्द्रियबन्धतुल्य.
(५) ,, ,, ,, ,, ,,	४/७ ,,	३/७ ,,	२/७ ,,	एकेन्द्रियबन्धतुल्य'

	नामगोत्रयो'	ज्ञानावरणादीनाम्	मोहनीयस्य	अल्पबहुत्वम्
(६) तत स्थितिबन्धसख्यातसहस्रेषु गतेषु बन्ध	१ पल्योपमम् । इत पर बन्ध सख्य-गुणहीन ।	१॥ पल्योपमम् ।	२ पल्योपमे ।	(१) नामगोत्रयो स्थितिबन्ध स्तोक । (२) ततो ज्ञानावरणादीनां सख्येयगुण । (३) ,, मोहनीयस्य विशेपाधिक । स्थितिसत्त्व तु साग०-शतसहस्र-पृथक्त्वम् । प्राक्तना सर्वे बन्धा अनेनाऽल्पबहुत्वक्रमेण गताः ।
(७) ,, ,, ,, ,, ,,	पल्यसख्य-भाग. ।	१ पल्योपमम् । इत पर सख्यगुणहीन ।	१⅓ पल्योपमम् ।	(१) नामगोत्रयो स्थितिबन्धोऽल्प । गाथा-३० (२) ततो ज्ञानावरणादीनां सख्येयगुण । ,, ,, (३) ततो मोहनीयस्य विशेपाधिक । ,, ,,
(८) ,, ,, ,, ,, ,,	पल्यसख्य-भाग ।	पल्यासंख्य-भाग. ।	१ पल्योपमम् । इत पर सख्यगुणहीनः ।	बन्धे पूर्णे (१) नामगोत्रयोर्बन्धोऽल्पः । गा०-३१-३२ (२) ततो ज्ञानावरणादीनां सख्यगुणः ,, ,, (३) ,, मोहनीयस्य ,, । ,, ,,
(९) ततः स्थितिबन्धसख्यातसहस्रेषु गतेषु बन्धः	पल्यासख्य-भाग, इत प्रभृत्यस-ख्यगुणहीन' ।	पल्यसख्य-भाग ।	पल्यसख्य-भाग ।	(१) नामगोत्रयो स्थितिबन्धः स्तोक' । गा०-३२ (२) ततो ज्ञानावरणादीनामसंख्येयगुण' । ,, ,, (३) ,, मोहनीयस्य सख्येयगुण । ,, ,,

अपूर्णम्

यन्त्रकम्

	नामगोत्रयोः	ज्ञानावरणादीनाम्	मोहनीयस्य	अल्पबहुत्वम्
(१०) ततःस्थितिबन्धसख्यसहस्रेपु गतेपु बन्ध.	पल्या-ऽसख्य-भाग.	पल्या-ऽसख्य-भाग इत प्रभृत्यसख्यगुणहीनः	पल्यसंख्य-भाग	(१) नामगोत्रयो स्थितिबन्ध स्तोक गाथा- (२) ततो ज्ञाना० असख्यगुणः ३२ (३) ततो मोहनीयस्या-ऽसंख्यगुणः।
(११) ” ” ” ” ”	पल्या-ऽसख्य-भाग	पल्या-ऽसख्य-भाग.	पल्या-ऽसंख्यभाग इत प्रभृत्यसख्यगुणहीन	(१) नामगोत्रयोर्बन्धोऽल्प. सत्त्व तु (२) ततो ज्ञाना०असख्यगुण। साग०स- (३) ततो मोहस्या ऽसख्यगुण'। हस्रपृथक्त्वम्
(१२) ” ” ” ” ”		अधो मोहबन्धो-ऽसख्यगुणहीन एकप्रहारेण ←—		(१) नामगोत्रयो. स्थितिबन्धोऽल्प। गाथा- (२) ततो मोहनीयस्या-ऽसख्यगुण। ३४ (३) ततो ज्ञाना० असंख्यगुण।
(१३) ” ” ” ” ”	अधो मोहबन्धो-ऽसख्यगुणहीन एकप्रहारेण ←—			(१) मोहनीयस्य स्थितिबन्धोऽल्प। गाथा- (२) ततो नामगोत्रयोरसख्यगुण। ३४ (३) ततो ज्ञाना० असख्यगुण।

	नामगोत्रयो	घातित्रयस्य	वेदनीयस्य	मोहनीयस्य	अल्पबहुत्वम्
(१४) ” ” ” ” ”		उपरि वेदनीयबन्धोऽसख्यगुण एकप्रहारेण			(१) मोहनीयस्य बन्धोऽल्पः। (२) ततो नामगोत्रयोरसख्यगुणः। (३) ततो ज्ञाना० असख्यगुण। (४) ततो वेदनीयस्या-ऽसख्यगुण'।
(१५) ” ” ” ” ”	अधो ज्ञानावरणादिबन्धो-ऽसख्यगुणहीन एकप्रहारेण		नामगोत्रतो विशेषाधिक'		(१) मोहनीयस्य स्थितिबन्ध स्तोकः (२) ततो घातित्रयस्या-ऽसख्यगुण.। (३) ततो नामगोत्रयोरसंख्यगुणः। (४) ततो वेदनीयस्य विशेषाधिकः।
(१६) ” ” ” ” सत्त्वम्।	२०००/७ सा०।	३०००/७ सा०		४०००/७ सा०।	असञ्ज्ञिबन्धतुल्यमित्यर्थः। गा-३७

ततः स्थितिबन्धवत् स्थितिसत्कर्म तावद् वक्तव्यम्, यावत् पञ्चदशस्थानोक्तमल्पबहुत्व न प्राप्येत।

ततः संख्यातेषु स्थितिखण्डसहस्रेषु गतेष्वसंख्येयसमयप्रबद्धोदीरणा जायते, तां व्याजिहीर्षुराह

चरिमप्पबहुत्ताउ असंखखणपबद्धुदीरणा होइ ।
तोऽट्ठकसाया खवए जहण्णठिइसंकमो चरिमे ॥३८॥

चरिमा-ऽल्पबहुत्वादसंख्यक्षणप्रबद्धोदीरणा भवति ।
ततोऽष्टकषायान् क्षपयति जघन्यस्थितिसंक्रमश्चरमे ॥ ३८ ॥ इति पदसंस्कारः ।

'**चरिम०**' इत्यादि, 'चरमाल्पबहुत्वात्' मोहनीयस्य स्थितिसत्त्वं स्तोकं ततो ज्ञानावरण-दर्शनावरणाऽन्तरायाणामसंख्येयगुणं ततो नामगोत्रयोरसंख्येयगुणं ततो वेदनीयस्य विशेषाधिकमित्येवंरूपात् संख्यातेषु स्थितिखण्डसहस्रेषु गतेषु 'असंख्यक्षणप्रबद्धोदीरणा' असंख्येयसमयप्रबद्धोदीरणा 'भवति' जायते। उक्तं च कषायप्राभृतचूर्णौ "**एदेण कमेण संखेज्जाणि ट्ठिदिखंडयसहस्साणि गदाणि, तदो असंखेज्जाणं समयपबद्धाणमुदीरणा ।**" इति । ननु का नामा-ऽसंख्येयसमयप्रबद्धोदीरणा ? इति चेत्, उच्यते—इतः पूर्वमपकृष्टदलं पल्योपमाऽसंख्येयभागेन विभज्य तदेकभागं गुणश्रेण्यर्थं गृह्णाति स्म, शेषांश्चाऽसंख्येयबहुभागान् गुणश्रेण्युपरितननिषेकेषु निक्षिपति स्म। गुणश्रेण्यर्थं गृहीतदलमसंख्येयलोकाकाशप्रदेशमात्रेण भागहारेण भक्त्वा तदेकभागमुदयावलिकायां प्रक्षिप्य बहुभागानुदयावलिकाया उपरितनेषु गुणश्रेणिनिषेकेषु प्रक्षिपति स्म, तेनैकसमयप्रबद्धसत्काऽसंख्येयभागमितं दलमुदीरणायामागच्छति स्म, इदानीं पुनर्गुणश्रेण्यर्थं गृहीतदलं पल्योपमा-ऽसंख्येयभागेन विभज्यैकभागमुदयावलिकायां निक्षिप्य बहुभागानुदयावलिकाया उपरितनेषु गुणश्रेणिनिषेकेषु निक्षिपति। तेनेदानीमुदीरणायां दलमसंख्येयसमयप्रबद्धमात्रं वर्तते। एकसमयेन यावद्दलं बध्यते, तदेकसमयप्रबद्धमुच्यते । इतः प्रभृति क्षपकस्योदीरणायामसंख्येयसमयप्रबद्धदलमागच्छति । तस्मात् कारणाद् इयमसंख्येयसमयप्रबद्धोदीरणा व्यपदिश्यते*, इति भावः । **कर्मप्रकृतिचूर्णिकारादिमतेना**-ऽसंख्येयसमयप्रबद्धोदीरणा नाम यावत्यः स्थितयो बध्यन्ते, तदपेक्षया याः पूर्वबद्धाः सत्तागताः समयादिहीनाः स्थितयस्ता एवोदीरणामुपगच्छन्ति, नान्याः । उक्तं च **कर्मप्रकृतिचूर्णिकारैरुपशमनाकरणे**—"**जाहे पलिओवमस्स असंखेज्जतिभागं ट्ठितिबन्धन्ति, तम्मि**

* जयधवलाकारैरपि इत्थमेव व्याख्याता-ऽसंख्येयसमयप्रबद्धोदीरणा । न्यगादि च तैश्चारित्रमोहोपशमनाधिकारे-"हेट्ठा सव्वत्थेव असंखेज्जलोगपडिभागेण पयट्टमाणा उदीरणा, एण्हि परिणामपाहम्मेण पुव्वुत्तकिरियाकलावस्सुवरि असंखेज्जाणं समयपबद्धाणमुदीरणा च पवत्तदि । दिवड्ढगुणहाणीमेत्तसमयपबद्धाणमोकड्डुणभागहारादो असंखेज्जगुणेण भागहारेण खंडिदेयखंडस्स असंखेज्जसमयपबद्धपमाणस्सेत्थुदीरणासरूवेणुदये पवेसदंसणादो । इति । तथैव चारित्रमोहक्षपणाधिकारेऽपि-"× × × × तदो परिणामप्पाहम्मेण सव्वेसिं कम्माणं वेदिज्जमाणाण असंखेज्जलोगपडिभागिया उदीरणा णस्सियूण असंखेज्जाणं समयपबद्धाणं उदीरणा पारद्धा त्ति एसो एत्थ सुत्तत्थसंगहो त्ति ।" इति ।

…ाले जातो क…ट्ठितीतो वज्झमाणट्ठितीओ समयादिहीणातो तातो ठितीतो उदीरणं एन्ति, उवरिमाउ न इंति उदीरणं।" इति। इतः परं सर्वत्रा-ऽसंख्येयसमयप्रबद्धोदीरणा ज्ञातव्या। अल्पबहुत्वं चेत्थं प्ररूपयितव्यम्, तदानीं प्रदेशोदीरणा स्तोका भवति, ततः प्रदेशोदयोऽसंख्येयगुणो भवति, उदीरणाया असंख्येयसमयप्रबद्धत्वेऽप्युदयस्ततोऽसंख्येयगुणो भवतीत्यर्थः। इद-त्ववधेयम्—सर्वत्र क्षपकश्रेणौ तद्व्यतिरिक्तावस्थायां चोदीरणादलिकत उदयदलिकमसंख्येयगुणं भवति।

सम्प्रत्यष्टकषायाणां क्षपणां भणितुकाम आह 'तो' इत्यादि, 'ततः' असंख्येयसमयप्रबद्धोदीरणातः संख्यातेषु स्थितिखण्डसहस्रेषु गतेषु 'अष्टकषायान्' अप्रत्याख्यानप्रत्याख्यानावरणचतुष्कलक्षणान् 'क्षपयति' वध्यमानासु परप्रकृतिषु संक्रमयन् क्षपयितुमारभते, यद्यप्यपूर्वकरणतः प्रभृति कषायाष्टकस्य गुणसंक्रम आसीत्, किन्त्वतः प्रभृति तस्य विशेषघातो जायते, तेन तस्य क्षपणा निगद्यते। उक्तं च कषायप्राभृतचूर्णौ—"तदो संखेज्जेसु ठिदिखंडयसहस्सेसु गदेसु अट्ठण्हं कसायाणं संकामगो।" इति। अत्रापि 'अट्ठण्हं कसायाणं संकामगो' इत्यनेनाऽष्टानां कषायाणां क्षपणायाः प्रारम्भको ज्ञातव्यः, अन्यथा तेषां संक्रमकस्तु पूर्वमपूर्वकरणेऽप्यासीत्। ततः परं संख्यातेषु स्थितिखण्डसहस्रेषु व्यतिक्रान्तेष्वावलिकाप्रमाणं स्थितिसत्कर्म विमुच्य शेषं सर्वं कषायाऽष्टकं विनाशयति, तदानीं 'जहण्ण०' इत्यादि, चरमे चरमप्रक्षेपे 'जघन्यस्थितिसंक्रमः' कषायाष्टकस्य पल्योपमाऽसंख्येयभागमितो जघन्यस्थितिसंक्रमो भवति। उक्तं च कषायप्राभृतचूर्णौ "तदो अट्ठकसाया ठिदिखंडयपुधत्तेण संकामिज्जंति। अट्ठण्हं कसायाणं अपच्छिमठिदिखंडए उक्किण्णे तेसिं संतकम्ममावलियं पविट्ठं सेसं। ×××× अट्ठण्हं कसायाणं जहण्णट्ठिदिसंकमो कस्स? खवयस्स तेसिं चेव अपच्छिमट्ठिदिखंडयं चरिमसमयसंछुहमाणयस्स जहण्णयं।" इति। तथैव कर्मप्रकृतिचूर्णावपि—"'सेसगाणं' ति वुत्तसेसाणं थीणगिद्धितिगतेरसणामा अट्ठकसायणवणोकसाया कोहसंजलणमाणमायासंजलणाणं-एयासिं छत्तीसाए कम्मपगतीणं 'खवणाकरणेण' त्ति खवणपरिवाडिते चेव अप्पणो चरिमसंछोभे वट्टमाणो अणियट्टिजहण्णट्ठिगतिसंकमसामी।" इति।

तदानीमेव शीघ्रं क्षपणायाऽभ्युत्थितस्य गुणितकर्मांशस्य जन्तोरुत्कृष्टप्रदेशसंक्रमो भवति। उक्तं च कर्मप्रकृतिचूर्णौ "थीणगिद्धितिगछन्नोकसायासत्तणामअट्ठकसायाणं एतासिं चउवीसाए पगतीणं गुणितकंमंसितस्स अणियट्टिकरणे वट्टमाणस्स उक्कोसपदेससंकमो सव्वसंकमेण लब्भति।" इति। एवं कषायप्राभृतचूर्णावपि ॥३८॥

ततः परं कषायाष्टकस्यावलिकामात्रं स्थितिसत्कर्म स्तिबुकसंक्रमेण प्रतिसमयं संक्रम्य कषायाष्टकं सर्वात्मना निर्लेपयति। स्थितिखण्डसहस्रेषु च गतेषु सत्सु स्थावरादिषोडशप्रकृतीः क्षपयितुमारभते, तद्वक्तुकाम आह

तो थावरतिरिनिरयायवदुगसाहारणेगविगलाइं।
थीणद्धितिगं य खवइ तो बंधइ देसघाईणि ॥३६॥

तत स्थावरतिर्यङ्निरया-ऽऽतपद्विकसाधारणैकविकलानि।
स्त्यानर्द्धित्रिक च क्षपयति ततो बध्नाति देशघातीनि ॥३६॥ इति पदसंस्कार ।

'तो' इत्यादि, 'ततः' कषायाष्टकसत्कक्षपणातः परं संख्यातेषु स्थितिघातसहस्रेषु गतेषु 'स्थावरतिर्यङ्निरया-ऽऽ-तपद्विकसाधारणैकविकलानि' स्थावरतिर्यङ्निरयाऽऽतपद्विकमित्यत्र द्विकशब्दः प्रत्येकं सम्बध्यते। ततश्चायमर्थः-स्थावरद्विकम्-स्थावर-सूक्ष्मरूपम्, तिर्यग्द्विकम्-तिर्यग्गति-तिर्यगानुपूर्वीलक्षणम्, निरयद्विकं-नरकगति-नरकाऽऽनुपूर्वीस्वरूपम्, आतपद्विकम्-आतपोद्योताख्यम्, साधारणं-साधारणनामकर्म च 'एकविकलानि' एकेन्द्रियजाति-द्वीन्द्रियजाति-त्रीन्द्रियजाति-चतुरिन्द्रियजातिरूपाणि च, तत इतरेतरद्वन्द्वसमासः, 'स्त्यानर्द्धित्रिकं' निद्रानिद्रा-प्रचलाप्रचला-स्त्यानर्द्धिलक्षणं 'च' चकारः समुच्चयार्थकः 'क्षपयति' अनन्तरोक्तषोडशप्रकृतीर्नाशयितुमुपक्रमते। उक्तं च कषायप्राभृतचूर्णौ-"तदो ठिदिखंडयपुधत्तेण णिद्दाणिद्दा-पयलापयला-थीणगिद्धीणं णिरयगदि-तिरिक्खगदिपाओग्गणामाणं संतकम्मस्स संकामगो।" स्थितिखण्डपृथक्त्वे गते आवलिकाप्रमाणं सत्कर्म विमुच्य शेषं सर्वं षोडशप्रकृतीनां स्थितिसत्त्वं विनाशयति, तदप्यावलिकामात्रं स्थितिसत्त्वं स्तिबुकसंक्रमेण संक्रम्य निरुक्तषोडशप्रकृतीः सर्वथा निर्लेपयति। उक्तं च कषायप्राभृतचूर्णौ-"तदो ठिदिखंडयपुधत्तेण अपच्छिमे ठिदिखंडए उक्किण्णे एदेसिं सोलसण्हं कम्माणं ठिदिसंतकम्ममावलियब्भंतरं सेसं।" इति। एवं कर्मप्रकृतिचूर्णावपि "निरयगतितिरियगति-एगिंदियजाति जाव चोरिंदिजाति णरयाणुपुव्वि तिरियाणुपुव्वि आयावं उज्जोवं थावरं सुहुमं साहारणं एए तेरस, थीणगिद्धितिगेण सह सोलस 'उवरिं' ति अट्ठसु कसातेसु खविएसुवरि संखेज्जेसु ठितिखंडेसु गतेसु सोलस वि जुगवं णस्संति।" इति। एतासां षोडशप्रकृतीनां चरमप्रक्षेपे जघन्यस्थितिसंक्रमो भवति, स च पल्योपमा-ऽसंख्येयभागप्रमाणो ज्ञातव्यः। यथागमं गुणितकर्मांशस्य चोत्कृष्टप्रदेशसंक्रमो भवति। सप्ततिकाचूर्णिकारादिभिः कषाया-ऽष्टकस्थावरादिषोडशप्रकृतीनां क्षपणा त्वित्थं प्रदर्शिता

अणियट्टिबायरे थीणगिद्धितिग-णिरयतिरियणामाउ।

संखेज्जइमे सेसे तप्पाओगाउ खीयंति ॥ १ ॥

अणियट्टिबायरे थीण० गाहा, अणियट्टिअद्धाए [अ]संखेज्जेसु भागेसु गतेसु थीणगिद्धितिगनिरयगति-तिरियगति-एगिंदिय-बे०-ते०-चउरिंदियजाइनिर-यतिरियाणुपुव्वीओ आयाव-उज्जोव-थावर-सुहुम साहारणमिति एएसिं सोलसण्हं कम्माणं उव्वलणविहिणा उव्वट्टिज्जमाणा उव्वट्टिज्जमाणा पलिओवमस्स असंखेज्जइ-भागमेत्ता ठिती जाया । तओ बज्झमाणियासु गुणसंकमेण छुब्भंताणि छुब्भंताणि खीणाणि भवंति ।

एत्तो हणइ कसायट्ठगं पि पच्छा णपुंसगं इत्थिं ।
तो णोकसायछक्कं छुब्भइ संजलणकोहम्मि ॥ १ ॥

'एत्तो हणइ०'गाहा, अट्ठकसाया-अपच्चक्खाणावरणपच्चक्खाणावरणा, एए अट्ठवि पुव्वं खवितुमाढत्ता, अंतोमुहुत्तं खविज्जमाणा खविज्जमाणा गया न ताव खविया । तत्थ किर सोलस पुव्वुत्ताणि कम्माणि खविउमाढत्ताणि खविज्जमाणाणि खविज्जमाणाणि अंतरे खीणाणि भवंति । पच्छा अट्ठकसाया उव्वलणविहिणा अंतोमुहुत्तेणं खीयंति त्ति एयं एगेसिं मतं । अण्णे यायरिया भणंति-सोलसकम्माणि पुव्वं खविउमाढविज्जंति तओ अंतरे पुव्वं अट्ठकसाया खीयंति, पच्छा सोलसकम्माणि, एस सुत्ताएसो ।" इति । सप्ततिकावृत्तिकारैः श्रीमदुपाध्यायपुङ्गवैश्चापीत्थमेव चतुर्विंशतिप्रकृतीनां क्षपणा निरूपिता, नवरं तैरनिवृत्तिकरणाद्धायाः प्रथमसमये कषायाष्टकं पल्योपमाऽसंख्येयभागमित-स्थितिकं भवतीत्युक्तम् । तथा चाऽत्र सप्ततिकावृत्तिः—"तत्राऽपूर्वकरणे स्थितिघातादिभिर-प्रत्याख्यानप्रत्याख्यानावरणकषायाष्टकं तथा क्षपयति स्म यथाऽनिवृत्तिकर-णाद्धायाः प्रथमसमये तत् पल्योपमाऽसंख्येयभागमात्रस्थितिकं जातम् । अनिवृत्ति-करणाद्धायाः संख्येयेषु भागेषु गतेषु सत्सु स्त्यानर्द्धित्रिक-नरकगति-तिर्यग्गति-नरकानुपूर्वी-तिर्यगानुपूर्व्येकद्वित्रिचतुरिन्द्रियजाति-स्थावराऽऽपोद्योत-सूक्ष्म-साधारणरू-पाणां षोडशप्रकृतीनामुद्वलनासंक्रमेणोद्वल्यमानानां पल्योपमाऽसंख्येयभाग-मात्रा स्थितिर्जाता । ततो बध्यमानासु प्रकृतिषु तानि षोडश कर्माणि गुण-संक्रमेण प्रतिसमयं प्रक्षिप्यमाणानि प्रक्षिप्यमाणानि निःशेषतः क्षीणानि भवन्ति । इहाप्रत्याख्यानप्रत्याख्यानावरणकषायाष्टकं पूर्वमेव क्षपयितुमारब्धं परं तन्नाद्यापि क्षीणं, केवलमपान्तराल एव पूर्वोक्तप्रकृतिषोडशकं क्षपितम् । ततः पश्चात्तदपि कषायाष्टकमन्तर्मुहूर्तमात्रेण क्षपयति, तथा चाह—

'अणियट्टिबायरे थीणगिद्धितिगनिरयतिरियनामाउ । संखेज्जइमे सेसे तप्पाउग्गाओ खीयंते ॥१॥ एत्तो हणइ कसायट्ठगं पि पच्छा नपुंसगं इत्थीं । तो नोकसायछक्कं छुभइ संजलणकोहम्मि ॥२॥" अनिवृत्तिबादरगुणस्थानके संख्येयतमे भागे शेषे स्त्यानर्द्धित्रिकं निरयगति-तिर्यग्गतिनामनी 'तत्प्रायोग्याश्च' निरयगतितिर्यग्गतिप्रायोग्याश्च एकेन्द्रिय-द्वीन्द्रिय-त्रीन्द्रिय-चतुरिन्द्रियजाति-निरयानुपूर्वी-तिर्यगानुपूर्वी-स्थावराऽऽतपोद्योत-सूक्ष्म-साधारणरूपाः सर्वसंख्यया षोडश प्रकृतयः क्षीयन्ते । तत 'इतः' प्रकृतिषोडशकक्षयादनन्तरं निःशेषतः कषायाष्टकं हन्ति । अन्ये पुनराहुः षोडश कर्माण्येव पूर्वं क्षपयितुमारभते, केवलमपान्तरालेऽष्टौ कषायान् क्षपयति, पश्चात् षोडश कर्माणि ।" इति । एवं श्रीमदुपाध्यायपुङ्गवविरचितकर्मप्रकृतिटीकायामपि दृश्यते ।

इत्थं केषांचिदाचार्याणां मतेनादौ कषायाष्टकं सर्वथा क्षपयति, ततः संख्यातेषु स्थितिखण्डसहस्रेषु गतेषु स्थावरप्रभृतीः षोडशप्रकृतीः सर्वात्मना क्षपयति । अन्येषामाचार्याणां मतेन प्रथमतः स्थावरप्रभृतीः षोडशप्रकृतीर्निश्शेषं विनाशयति, ततः संख्यातेषु स्थितिखण्डसहस्रेषु व्रजितेषु कषायाष्टकं सर्वथा क्षपयति❀ ।

आवश्यकनिर्युक्तिकारादिमतेन प्राक् कषायाष्टकं क्षपयितुमारभते, ततो दर्शनावरणस्य तिस्रः प्रकृतीर्नामकर्मणश्च त्रयोदशप्रकृतीः सर्वात्मना युगपत् क्षपयति, किन्तु पूर्वतोऽयं विशेषः आतपोद्योतयोः स्थानेऽपर्याप्ताऽप्रशस्तविहायोगतिलक्षणप्रकृतिद्वयं क्षपयति, ततः कषायाष्टकं सर्वात्मना क्षपयति । तथा चात्रावश्यकनिर्युक्तिः

"गतिआणुपुव्वि दो दो जातिनामं च जाव चउरिंदी ।
अपसत्था विहगगती थावरणामं च सुहुमं च ॥ १ ॥
साहारणमपज्जत्तं निद्दानिद्दं च पयलपयलं च ।
थीणं खवेति ताहे अवसेसं जं च अट्ठण्हं ॥ २ ॥

एवमावश्यकचूर्णावपि "तत्थ तहेव संजलणवज्जे अट्ठ वि कसाए एगट्ठे

❀ उक्तं च धवलाकारैरपि—"एवं काऊण अणियट्टिगुणट्ठाणं पविसिय तत्थ वि अणियट्टिअद्धाए संखेज्जे भागे अपुव्वकरणविहाणेण गमिय अणियट्टिअद्धाए संखेज्जदिभागे सेसे थीणगिद्धितियं निरयगइ-तिरिक्खगइ-एइंदिय-बीइंदिय-तेइंदिय-चउरिंदियजादि-णिरयगइ—तिरिक्खगइपाओग्गाणुपुव्वि-आदावुज्जोव-थावर-सुहुम-साहारणा त्ति एदाओ सोलस पयडीओ खवेदि । तदो अंतोमुहुत्तं गंतूण पच्चक्खाणाऽपच्चक्खाणावरण-कोधमाणमायालोभे अक्कमेण खवेदि । एसो संतकम्मपाहुडउवएसो । कसायपाहुडउवएसो पुण-अट्ठकसाएसु खीणेसु पच्छा अंतोमुहुत्तं गंतूण सोलसकम्माणि खविज्जति त्ति ।"

चेव खवेत्ति, जाहे तेसिं अट्ठण्हं कसायाणं संखेज्जति भागं खवेमाणो गतो भवति, ताहे नामस्स कम्मस्स इमाओ तेरस पयडीओ खवेइ। तं जहा-निरयगइनामं तिरियगइनामं एगिंदियजातिनामं बेइंदिय० तेइंदिय० चउरिंदियजातिनामं निरयाणुपुव्वीनामं तिरिक्खजोणियाणुपुव्वीनामं अप्पसत्थविहायोगतिनामं थावरनामं सुहुमनामं साहारणनामं अपज्जत्तं, तहा दरिसणावरणीयस्स इमाओ तिन्नि पयडीओ, तं जहा-निद्दानिद्दा पयलापयला थीणगिद्धीय। तासिं अट्ठण्हं सेसं तं पि।" तथैव बृहत्कल्पचूर्णावप्युक्तम्। तत्त्वं पुनः केवलिनो विदन्ति।

'तो' इत्यादि, 'ततः' षोडशप्रकृतिक्षपणातः स्थितिघातपृथक्त्वे गते 'बध्नाति देशघातीनि' दानान्तरायमनःपर्यवज्ञानावरणादीनि वक्ष्यमाणानि कर्माणि क्रमेण देशघातीनि बध्नाति, अश्रेणिगता अशेषजनास्तानि कर्माणि सर्वघातीन्येव बध्नन्ति, उपशमश्रेणौ क्षपकश्रेण्यां वा महात्मानो विशुद्धिमाहात्म्येन तानि कर्माणि देशघातीनि बध्नन्तीति भावः ॥ ३९ ॥

ननु कानि तानि कर्माणि यानि श्रेणौ देशघातीनि बध्यन्ते ? इत्यत आह

दाणंतरायमणपज्जवाण तो लाभओहिदुगकम्माणं।
तो सुअअचक्खुभोगाण तओ चक्खुस्स अहुवभोगमईणं ॥४०॥ (आर्यागीतिः)
तो वीरियस्स रसबंधो हवए देसघाई उ।
तो तेरसपयडीण-ऽन्तरं कुणेइ ठिइबंधकालेण॥४१॥(उद्गीतिः)

दानान्तराय-मन पर्यवयोस्ततो लाभाऽ-वधिद्विककर्मणाम्।
तत श्रुता-ऽचक्षुर्भोगाना ततश्चक्षुषोऽथोपभोगमत्योः ॥ ४० ॥
ततो वीर्यस्य रसबन्धो भवति देशघाती तु।
ततस्त्रयोदशप्रकृतीनामन्तर करोति स्थितिबन्धकालेन ॥ ४१ ॥ इति पदसंस्कारः।

'दाणं०' इत्यादि, स्थावरादिषोडशप्रकृतिक्षपणातः परं स्थितिघातसंख्यातसहस्रेषु गतेषु सत्सु 'दानान्तरायमन पर्यवयोः' 'रसबंधो हवए देसघाई' इति वक्ष्यमाणं पदत्रय सर्वत्र योज्यम्। तेना-ऽयमर्थः—दानान्तरायमनःपर्यवज्ञानावरणयोः 'रसबन्धो' अनुभागबन्धो देशघाती 'भवति' जायते, अनयोरनुभागो देशघाती बध्यत इत्यर्थः। उक्तं च कषायप्राभृतचूर्णौ—"तदो ठिदिखंडयपुधत्तेण मणपज्जवणाणावरणीयदाणंतराइयाणं च अणुभागो देसघादी जादो।" इति।

'तो' इत्यादि, 'ततः' दानान्तराय-मनःपर्यवज्ञानावरणसत्कदेशघातिरसबन्धभवनात् संख्यातेषु

स्थितिघातसहस्रेषु व्रजितेषु सत्सु 'लाभावधिद्विककर्मणां' पदैकदेशेन पदसमुदायस्य गम्यमानत्वात् लाभा-ऽन्तराया-ऽवधिज्ञानावरणा-ऽवधिदर्शनावरणप्रकृतीनां रसबन्धो देशघाती भवति, एतेषां कर्मणामनुभागो देशघाती बध्यते इत्यर्थः। यदवादि कषायप्राभृतचूर्णौ "तदो ठिदिखंडय-पुधत्तेण ओहिणाणावरणीय-ओहिदंसणावरणीय-लाहंतराइयाणमणुभागो बंधेण देशघादी जादो।" इति।

'तो' इत्यादि, 'ततः' अवधिज्ञानावरणादीनां बन्धे देशघातिरसभवनात् स्थिति-खण्डपृथक्त्वे गते सति 'श्रुता-ऽचक्षुर्भोगानां' श्रुतज्ञानावरणा-ऽचक्षुर्दर्शनावरण-भोगान्तरायाणां कर्मणां रसबन्धो देशघाती भवति। न्यगादि च कषायप्राभृतचूर्णौ "तदो ठिदिखंडयपुधत्तेण सुदणाणावरणीय-अचक्खुदंसणावरणीय-भोगंतराइयाणमणु-भागो बंधेण देशघादी जादो।" इति॥

'ततः' श्रुतज्ञानावरणादीनां बन्धे देशघातिरसभवनात् परं स्थितिघातपृथक्त्वे-ऽतीते 'चक्षुषः' चक्षुर्दर्शनावरणस्य रसबन्धो देशघाती भवति। उक्तं च कषायप्राभृतचूर्णौ "तदो ठिदि-खंडयपुधत्तेण चक्खुदंसणावरणीयस्स अणुभागो बंधेण देशघादी जादो।" इति। 'अथ' चक्षुर्दर्शनावरणस्य देशघातिरसबन्धभवनानन्तरं स्थितिघातपृथक्त्वे गते सति 'उपभोगमत्योः' उपभोगान्तराय-मतिज्ञानावरणयो रसबन्धो देशघाती भवति। उक्तं च कषायप्राभृतचूर्णौ ठिदिखंडयपुधत्तेण आभिणिबोहियणाणावरणीय-परिभोगंतराइयाणमणुभागो बंधेण देशघादी जादो।" इति।

'तो' इत्यादि, 'ततः' उपभोगान्तराय-मतिज्ञानावरणयो रसबन्धस्य देशघातित्वभवनात् स्थिति-खण्डपृथक्त्वे गते 'वीर्यस्य' वीर्यान्तरायस्य रसबन्धो देशघाती भवति। 'तु' तुः पादपूरणे। उक्तं च कषायप्राभृतचूर्णौ "तदो ठिदिखंडयपुधत्तेण वीरियंतराइयस्स अणुभागो बंधेण देसघादी जादो।" इति।

न च दानान्तरायादीनामनुभागबन्धस्य देशघातित्वकरणेऽयं क्रमः कथमवसीयते ? इति वाच्यम्, क्षपकाऽनिवृत्तिकरणेऽनुभागबन्धाल्पबहुत्वक्रमस्य तथाविधत्वेनाऽस्य क्रमस्योपपत्तौ विरोधा-ऽभावात्। तथाहि–क्षपकानिवृत्तिकरणे विवक्षितकालावच्छेदेन मनःपर्यवज्ञानावरण-दानान्तराययोर्यावाननुभागो बध्यते, ततोऽ-नन्तगुणोऽनुभागो-ऽवधिज्ञानावरणा-ऽ-वधिदर्शनावरण-लाभान्तरायाणां बध्यते, स्वस्थाने तु मिथस्तुल्यः। ततो-ऽनन्तगुणः श्रुतज्ञानावरण-चक्षुर्दर्श-नावरण-भोगान्तरायाणामनुभागबन्धो भवति, स्वस्थाने तु मिथः सदृशः। ततश्चक्षुर्दर्शनावरण-स्या-ऽनन्तगुणो-ऽनुभागबन्धो भवति, ततो-ऽनन्तगुणो मतिज्ञानावरणोपभोगान्तराययोः, स्वस्थाने

अथा-ऽनिवृत्तिकरणे ऽन्यं क्रियाविशेषं प्रतिपादयति 'तो' इत्यादि, 'ततः' वीर्यान्तरायस्य बन्धे देशघातिरसभवनात् स्थितिखण्डसहस्रेषु संख्येयेषु गतेषु सत्सु 'त्रयोदशप्रकृतीनां' संज्वलनचतुष्क-नवनोकषायरूपाणां प्रकृतीनाम् 'अन्तरम्' अन्तरकरणम्—अन्तर्मुहूर्तमात्रस्थितौ दलिकाभावलक्षणं 'स्थितिबन्धकालेन' एकवचननिर्देशाद् एकस्थितिबन्धाद्धया 'करोति' अधस्तादुपरि च कियतीञ्चित् स्थितिं विमुच्या-ऽन्तर्मुहूर्तमितमध्यम-स्थितेर्निषेकाणां दलिकशून्यत्वमेकस्थितिबन्धाद्धया सम्पादयतीत्यर्थः। उक्तं च कषायप्राभृत-चूर्णौ—"तदो ट्ठिदिखण्डयसहस्सेसु गदेसु अण्णं ट्ठिदिखंडयमण्णमणुभागखण्डय-मण्णो ट्ठिदिबंधो अंतरट्ठिदीओ च उक्कीरिदुं चत्तारि वि एदाणि करणाणि समग-माढत्तो। चदुण्हं संजलणाणं णवण्हं णोकसायवेदणीयाणमेदेसिं तेरसण्हं कम्माण-मंतर, सेसाणं कम्माणं णत्थि अंतरं।" इति। तथैव सप्ततिकाचूर्णावपि- "तओ अंतो-मुहुत्तेणं णवण्हं नोकसायाणं चउण्हं संजलणाणं च अतरकरणं करेति।" इति।

भावार्थः पुनरयम्—अनन्तानुबन्धिचतुष्क-मिथ्यात्व-सम्यङ्मिथ्यात्व-सम्यक्त्वमोहनीयलक्षणस्य दर्शनसप्तकस्या-ऽप्रत्याख्यानावरणचतुष्क-प्रत्याख्यानावरणचतुष्कलक्षणकषायाष्टकस्य च प्राग् नष्ट-त्वेन वीर्यान्तरायस्य बन्धे देशघातिरसभवनात्स्थितिखण्डसहस्रेषु गतेषु मोहनीयस्या-ऽवशिष्य-माणसंज्वलनचतुष्क-नवनोकषायरूपत्रयोदशप्रकृतीनामन्तरकरणं कर्तुमारभते, तदानीं चाऽभिनवं स्थितिबन्धं स्थितिघातं रसघातं चारभते, अधस्तादुपरि च स्थितिं विमुच्य मध्यस्थाया अन्तर्मुहूर्त-प्रमाणस्थितेर्दलानि प्रतिसमयमुत्किरति। एकस्थितिबन्धकालेना-ऽन्तर्मुहूर्तप्रमाणां स्थितिं सर्वथा दलिकाभाववतीं करोति, तदानीं च स्थितिबन्धाद्धया सह स्थितिघाताद्धा रसघाताद्धा च निष्ठां यातः, किन्तु तावता कालेन रसघाताद्धाः सहस्राणि गच्छन्ति, एकस्मिन् स्थितिघाते रस-घातानां सहस्रत्वप्रतिपादनात्। उक्तं च कषायप्राभृतचूर्णौ "संपहि अवट्ठिदअणुभाग-खंडयसहस्सेसु गदेसु अण्णमणुभागखंडयं जो च अंतरे उक्कीरिज्जमाणे ट्ठिदि-बंधो पबद्धो जं च ठिदिखंडयं जाव अंतरकरणद्धा, एदाणि समगं णिट्ठाणिज्जमाणा-णि णिट्ठिदाणि।" इति ॥४०–४१॥

अन्तरकरणं कुर्वन्नधस्तात् कियतीं स्थितिं परित्यजति ? इत्यत आह

भिन्नमुहुत्तं उदियाणं आवलिया पराण पढमठिई।
संढत्थीण समाऽप्पा पुरिसाईण कमसो विसेसहिया ॥ ४२ ॥ (गीतिः)

भिन्नमुहूर्तमुदितानामावलिका परासां प्रथमस्थितिः।
षण्ढस्त्रियोः समाऽल्पा पुरुषादीनां क्रमशो विशेषाऽधिका ॥ ४२ ॥ इति पदसंस्कारः।

'भिन्न०' इत्यादि, अन्तरकरणे क्रियमाणेऽधस्ताद् या स्थितिर्विमुच्यते, सा प्रथमस्थितित्वेन व्यपदिश्यते। तत्र 'उदितानां' उदयवतीनां प्रकृतीनां 'भिन्नमुहूर्तम्' अन्तर्मुहूर्तं प्रथमस्थितिर्भवति। 'परासाम्' अनुदितानां—उदयरहितानां प्रकृतीनाम् 'आवलिका' आवलिकाप्रमाणा प्रथमस्थितिर्भवति। अयं भावः—चतुर्षु संज्वलनक्रोधादिष्वन्यतमस्य यस्य संज्वलनस्योदयः, त्रयाणां च वेदानां पुरुषादीनामन्यतमस्य यस्य वेदस्योदयः, तयोः कषायवेदयोरन्तर्मुहूर्तमात्रा प्रथमस्थितिर्भवति। शेषाणामेकादशप्रकृतीनां प्रथमस्थितिरावलिकाप्रमाणा भवति, यथा पुरुषवेदोदयारूढजीवस्य पुरुषवेदस्य प्रथमस्थितिरन्तर्मुहूर्तमात्रा, इतरवेदद्वयस्य त्वावलिकामात्रा। एवं स्त्रीवेदोदयेन प्रतिपन्नस्य स्त्रीवेदस्य प्रथमस्थितिरन्तर्मुहूर्तमात्रा, अन्यवेदद्वयस्य पुनरावलिकामात्रा, तथैव नपुंसकवेदोदयेन समारूढस्य नपुंसकवेदस्य प्रथमस्थितिरन्तर्मुहूर्तमिता, अन्यवेदद्विकस्य त्वावलिकामात्रा। तथा क्रोधोदयेन प्रतिपन्नस्य जन्तोः संज्वलनक्रोधस्य प्रथमस्थितिरन्तर्मुहूर्तमिता शेषसंज्वलनत्रिकस्य पुनरावलिकामात्रा, मानोदयेनारूढस्य जन्तोः संज्वलनमानस्यान्तर्मुहूर्तमात्रा प्रथमस्थितिः, शेषसंज्वलनत्रयस्य त्वावलिका प्रमिता। एवं मायालोभयोरपि वक्तव्या। हास्यषट्कस्य त्वावलिकामात्रैव प्रथमस्थितिर्भवति, उदयरहितत्वात्तस्य।

ननूदयमानानां सर्वासां प्रकृतीनां किं प्रथमस्थितिस्तुल्या भवति, उत विषमा? इत्यत आह-'संढ०' इत्यादि, 'षण्ढस्त्रियोः' नपुंसकवेदस्त्रीवेदयोः प्रथमस्थितिः 'समा' मिथः समाना 'अल्पा' स्तोका च भवति, 'पुरुषादीनां' पुरुषवेदक्रोधमानमायालोभरूपाणां प्रथमस्थितिर्विशेषाधिका भवति। तथाहि—एको नपुंसकवेदोदयेन क्षपकश्रेणिं प्रतिपद्यते, अन्यस्तु स्त्रीवेदोदयेन, तत्र प्रथमजन्तोर्नपुंसकवेदस्य यावती प्रथमस्थितिर्भवति, तावत्येव द्वितीयजन्तोः स्त्रीवेदस्य प्रथमस्थितिर्भवति, सा च स्तोका, ततः पुरुषवेदोदयेन क्षपकश्रेणिमारूढस्य जीवस्य पुरुषवेदस्य प्रथमस्थितिः संख्येयतमभागेन विशेषाधिका भवति, संख्येयतमभागश्च वक्ष्यमाणहास्यषट्कक्षपणाकालमात्रो बोद्धव्यः, एतच्चाऽग्रे वेदनानात्वे स्फुटीभविष्यति।

पुरुषवेदस्य प्रथमस्थितितः क्रोधोदयेन क्षपकश्रेणिं समारूढस्य क्रोधस्य प्रथमस्थितिः संख्येयतमभागेन विशेषाधिका भवति, संख्येयतमभागश्च वक्ष्यमाणाऽश्वकर्णकरणाद्धाकिट्टिकरणाद्धामात्रो ज्ञेयः।

क्रोधप्रथमस्थितितो मानोदयेन क्षपकश्रेणिमधिगतस्य मानस्य प्रथमस्थितिः संख्येयभागेन विशेषाधिका भवति, संख्येयतमभागश्च वक्ष्यमाणक्रोधकिट्टिक्षपणाकालप्रमाणो निश्चेतव्यः।

मानप्रथमस्थितितो मायोदयेन क्षपकश्रेणिं प्रतिपन्नस्य मायायाः प्रथमस्थितिः संख्येयभागेन विशेषाधिका भवति, संख्येयतमभागश्च वक्ष्यमाणमानक्षपणाकालप्रमितोऽधिगन्तव्यः।

मायाप्रथमस्थितितो लोभोदयेन क्षपकश्रेणिं समधिगतस्य लोभस्य प्रथमस्थितिः संख्येयतमभागेन विशेषाधिका भवति, संख्येयतमभागश्च मायाक्षपणाकालमितोऽवसेयः। एतत्सर्वमग्रे कषायनानात्वे व्यक्तीभविष्यति ॥ ४२ ॥

नन्वेकचत्वारिंशत्तमगाथायां त्रयोदशप्रकृतीनामन्तरकरणमन्तर्मुहूर्तप्रमाणमध्यमस्थितिगतदलिकाऽभावसम्पादनलक्षण प्रतिपादितम्। तत्रा-ऽन्तर्मुहूर्तप्रमाणस्थितौ दलिका-ऽभावं सम्पादयंस्तत्स्थितिगतदलं कुत्र निक्षिपति ? इत्यत आह

सुदयाणं पयडीणं पढमठिईए खिवेइ उक्किण्णं।
दलिअं बंधंतीण अबाहुवरिमबीयगठिईए ॥४३॥

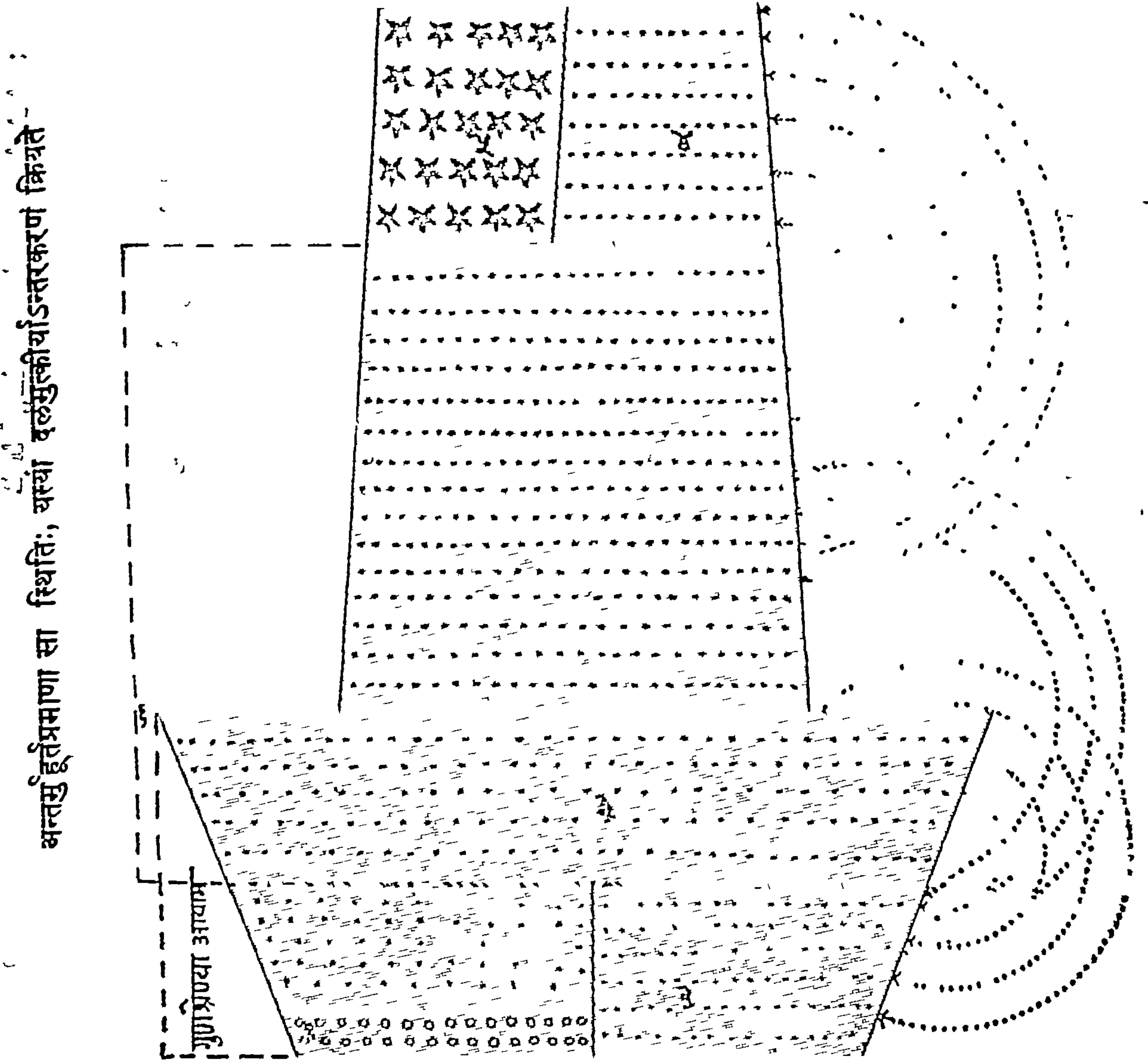
सोदयानां प्रकृतीनां प्रथमस्थितौ क्षिपत्युत्कीर्णम्।
दलिकं बध्यमानानामबाधोपरितनद्वितीयस्थितौ ॥ ४३ ॥ इति पदसंस्कारः।

'**सुदयाणं**' इत्यादि, 'सोदयानाम्' उदयेन सह वर्तन्ते इति सोदयाः "**सहार्थस्तेन**" (सिद्धहेम० ३-१-२४) इत्यनेन बहुव्रीहिसमासः, तासाम्, उदयवतीनामित्यर्थः, प्रकृतीनां प्रथमस्थितौ 'उत्कीर्णम्' अन्तरकरणत उद्धरितं दलिकं 'क्षिपति' निक्षिपति। 'बंधंतीण' इत्यादि, बध्यमानानां प्रकृतीनामनुत्कीर्यमाणायामबाधोपरितनद्वितीयस्थितौ अन्तरकरणत उत्कीर्णं दलिकमुद्वर्तनाकरणेन प्रक्षिपति, उद्वर्तनायामबाधाया अतीत्थापनत्वेन तत्र दलिकं न प्रक्षिपति। उक्तं च कषायप्राभृतचूर्णौ "**जाओ अन्तरट्ठिदीओ उक्कीरंति, तासिं पदेसग्गमुक्कीरमाणियासु ट्ठिदीसु ण दिज्जदि। जासिं पयडीणं पढमट्ठिदी अत्थि, तिस्से पढमट्ठिदीए जाओ संपहि ठिदीओ उक्कीरंति, तमुक्कीरमाणगं पदेसग्गं संछुहदि। अध जाओ बज्झंति पयडीओ तासिमाबाहमधिच्छियूण जा जहण्णिया णिसेगठिदी तमादिं कादूण बज्झमाणियासु ठिदीसु उक्कड्डिज्जदे।**" इति। **भावार्थः पुनरयम्**

(१) यस्याः प्रकृतेर्बन्ध उदयश्च विद्येते, तस्या अन्तरकरणत उत्कीर्यमाणदलं स्वप्रथमस्थितौ बध्यमानोदयमानानां परप्रकृतीनां प्रथमस्थितौ च प्रक्षिपति, तथा-ऽबाधाकालमतिक्रम्या-ऽनुत्कीर्यमाणायां स्वकीयद्वितीयस्थितौ बध्यमानपरप्रकृतिसत्कद्वितीयस्थितौ च प्रक्षिपति, यथा पुरुषवेदारूढः पुरुषवेदस्या-ऽन्तरकरणत उत्कीर्यमाणदलं पुरुषवेदप्रथमस्थितौ बध्यमानोदयमानक्रोधादिरूपपरप्रकृतीनां प्रथमस्थितौ च प्रक्षिपति, तथा-ऽबाधामतिक्रम्या-ऽनुत्कीर्यमाणायां पुरुषवेदद्वितीयस्थितौ बध्यमानक्रोधादीनां च द्वितीयस्थितौ प्रक्षिपति।

(२) यस्याः प्रकृतेर्बन्धो विद्यते, उदयश्च न भवति, तस्या अन्तरकरणत उत्कीर्यमाणदलं

अन्तरकरणं कुर्वतः प्रथमस्थितेश्चित्रम् (गाथा-४२)। तथा
अन्तरकरणं कुर्वतोत्कीर्यमाणदलं यासु स्थितिषु प्रक्षिप्यते, तासां चित्रम् (गाथा ४३)



सङ्केतस्पष्टीकरणम्

१=मोहनीयस्यानुदयवतीनां प्रकृतीनां प्रथमस्थिति, तस्यां चा-ऽन्तरकरणत उत्कीर्यमाणं दलं न प्रक्षिपति, सा चावलिकाप्रमाणा।

२=अन्यतमस्य यस्य वेदस्य यस्य च कषायस्योदय, तयो प्रथमस्थिति, तस्याञ्चा-ऽन्तरकरणत उत्कीर्यमाणं दल प्रक्षिपति। अयन्तु विशेष वेद्यमानवेदप्रथमस्थितितो वेद्यमानकषायप्रथमस्थितिर्विशेषाधिका बोध्या।

३=गुणश्रेणेः सङ्ख्येयतमभाग, त चाऽन्तरकरण कुर्वन् घातयति।

४=बध्यमानाना पुरुषवेद क्रोध-मान माया-लोभानां द्वितीयस्थिति, तस्यां चाऽन्तरकरणत उत्कीर्यमाण दल प्रक्षिप्यते।

५=अबध्यमानाना स्त्री वेद-नपु सकवेद-हास्यषट्कानां द्वितीयस्थिति., तस्यां चा-ऽन्तरकरणत उत्कीर्यमाण दल न निक्षिप्यते।

६=गुणश्रेणिशिर।

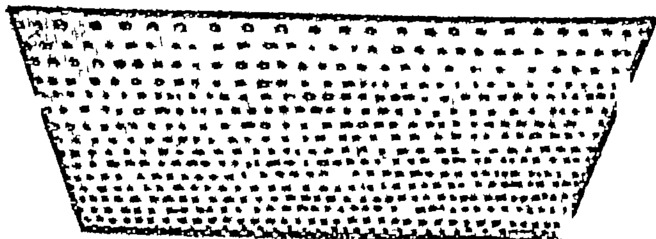
यत्र दलिक प्रक्षिपति, तद् ← अनेन चिह्नेन दर्शितम्।

यन्त्रकम्-८ (चित्रम्-८)

एकस्थितिबन्धाद्धया-ऽन्तरकरणे कृते उदयवतोनं प्रथमस्थिति र्द्वितोयस्थितिश्च

द्वितीयस्थिति

अन्तरकरणगता स्थितिः, तत्र च मोहनीयदलिकस्य सर्वथाऽभावः ।



उदयवतोर्वेद-कषाययोरन्तर्मुहूर्तप्रमाणा प्रथमस्थितिः ।

यन्त्रकम्-९ (चित्रम्-९)

एकस्थितिबन्धाद्धया-ऽन्तरकरणे कृतेऽनुदयवतीनां प्रकृतीनां प्रथमस्थिति र्द्वितीयस्थितिश्च

द्वितीयस्थिति

अन्तरकरणगता स्थिति., तत्र च

मोहनीयदलिकस्य सर्वथाऽभावः ।

अनुदयवतीनां प्रकृतीनामावलिकाप्रमाणा प्रथमस्थितेः

बध्यमानोदयमानपरप्रकृतिप्रथमस्थितौ एव निक्षिपति, तस्या उदयरहितत्वेन तत्प्रथमस्थित्यभावात्✻। तथा-ऽबाधामुल्लङ्घ्या-ऽनुत्कीर्यमाणायां स्वद्वितीयस्थितौ बध्यमानपरप्रकृतिसत्कद्वितीयस्थितौ च प्रक्षिपति। यथा क्रोधोदयारूढो मानादीनामन्तरकरणात उत्कीर्यमाणप्रदेशाग्रं क्रोधपुरुषवेदप्रथमस्थितौ प्रक्षिपति, तथा-ऽबाधामतिक्रम्यानुत्कीर्यमाणायां स्वद्वितीयस्थितौ बध्यमानपुरुषवेद-क्रोधादिरूपपरप्रकृतीनां द्वितीयस्थितौ च प्रक्षिपति।

(३) यस्याः प्रकृतेरुदयो विद्यते, बन्धश्च न भवति, तस्या अन्तरकरणात उत्कीर्यमाणदलं स्वप्रथमस्थितौ बध्यमानोदयमानपरप्रकृतिसत्कप्रथमस्थितौ च प्रक्षिपति, तथा-ऽबाधामुल्लङ्घ्या-ऽनुत्कीर्यमाणायां बध्यमानपरद्वितीयस्थितौ च प्रक्षिपति, न तु स्वद्वितीयस्थितौ, तस्या अबध्यमानत्वेन स्वस्थाने उद्वर्तना-ऽभावात्। यथा स्त्रीवेदक्रोधोदयारूढः स्त्रीवेदस्याऽन्तरकरणात उत्कीर्यमाणदलिकं स्वप्रथमस्थितौ क्रोधप्रथमस्थितौ च प्रक्षिपति, क्रोधस्य बध्यमानत्वे सत्युदयमानत्वात्, तथा-ऽबाधामतिक्रम्याऽनुत्कीर्यमाणायां पुरुषवेदक्रोधादीनां द्वितीयस्थितौ प्रक्षिपति।

(४) यस्याः प्रकृतेरुदयो न विद्यते, ना-ऽपि बन्धः, तस्या अन्तरकरणात उत्कीर्यमाणदलं सबन्धोदय-परप्रकृतिप्रथमस्थितौ एव प्रक्षिपति, तस्या उदयरहितत्वेन तत्प्रथमस्थित्यभावात्, तथा-ऽबाधां विमुच्य-ऽनुत्कीर्यमाणायां बध्यमानपरद्वितीयस्थितौ एव प्रक्षिपति, न तु स्वद्वितीयस्थितौ, तस्या अबध्यमानत्वेन स्वस्थाने उद्वर्तना-ऽभावात्। यथा पुरुषवेदोदयारूढः नपुंसकवेदस्याऽन्तरकरणात उत्कीर्यमाणं दलं पुरुषवेदादीनां प्रथमस्थितौ अबाधामतिक्रम्य चाऽनुत्कीर्यमाणायां पुरुषवेदादीनां द्वितीयस्थितौ प्रक्षिपति। पश्यन्तु पाठका यन्त्रकाणि ७-८-६। इति॥४३॥

अन्तरकरणात उत्कीर्यमाणप्रदेशानां निक्षेपमभिधाया-ऽधुना निष्पादिता-ऽन्तरकरणानां क्षपकाणां वक्ष्यमाणाः सप्ता-ऽधिकारा युगपत् प्रवर्तन्ते, तान् व्याजिहीर्षुराह

मोहस्स संखवरिसा बंधो इगठाणिआ य बंधुदया।
तस्सेव आणुपुव्वीसंकमणमसंकमो य लोहस्स ॥४४॥ (गीतिः)
तह आवलिगासु छसुं उदीरणा संढवेअखवणा य।
कयअंतराण सत्त-ऽहिगारा जुगवं पयट्टंते ॥४५॥

मोहस्य सङ्ख्यवर्षो बन्ध एकस्थानिकौ बन्धोदयौ।
तस्यैवा-ऽऽनुपूर्वीसंक्रमणमसंक्रमश्च लोभस्य॥ ४४॥

✻यद्यप्युदयरहितानां प्रकृतीनामावलिकामात्रा प्रथमस्थितिर्भवति, तथाप्युदयरहितप्रकृतीनामुदयावलिकाया दलनिक्षेपो न सम्भवति, अतस्तत्प्रथमस्थित्यभावादित्युक्तम्। एवमग्रेऽपि यथास्थानं भावनीयम्।

तथा-ऽऽवलिकासु षट्सूदीरणा पण्ढवेदक्षपणा च ।
कृता-ऽन्तराणा सप्ताऽधिकारा युगपत् प्रवर्तन्ते ॥ ४५ ॥ इति पदसंस्कार ।

'**मोहस्स**' इत्यादि, (१) 'मोहस्य' मोहनीयकर्मणः 'संख्यवर्षाः' संख्येयवर्षप्रमितो 'बन्धः' स्थितिबन्धो भवतीति शेषः । इदमुक्तं भवति—इतः पूर्वमन्तरकरणसमाप्तिं यावत् सप्तानामपि कर्मणां स्थितिबन्धो-ऽसंख्येयवर्षप्रमाणो भवति स्म, अतः प्रभृति मोहनीयस्य संख्यातवार्षिकः स्थितिबन्धो जायते. स च पूर्वपूर्वत उत्तरोत्तरः संख्येयगुणहीनो भवति, बन्धस्य संख्येयवार्षिकत्वभवनात्, न तु पूर्ववदसंख्येयगुणहीनः, द्वितीयस्थितिबन्धस्या-ऽन्तर्मुहूर्तमात्रत्व-प्रसङ्गात् । शेषकर्मणां तु पूर्ववदसंख्येयवर्षप्रमाणः स्थितिबन्धो भवन्नुत्तरोत्तरो-ऽसंख्येयगुणहीनो भवतीति प्रथमो-ऽधिकारः ।

'इग०' इत्यादि, एकस्थानकौ च बन्धोदयौ, चकारः समुच्चयार्थकः, ततश्चा ऽयमर्थः- (२) इतः प्रभृति मोहनीयकर्मण एकस्थानको-ऽनुभागो बध्यते, प्राग् हि द्विस्थानको बध्यते स्मेति द्वितीयो-ऽधिकारः । (३) प्राग् मोहनीयस्य द्विस्थानको-ऽनुभागोदय आसीत्, इतः प्रभृति मोहनीयस्यैकस्थानको-ऽनुभागोदयो जायते, इति तृतीयो-ऽधिकारः ।

'तस्सेव' इत्यादि, (४) 'तस्यैव' मोहनीयस्यैव 'आनुपूर्वीसंक्रमणम्' आनुपूर्व्या-परिपाट्या संक्रमणम्-संक्रमो भवति । तथाहि अन्तरकरणक्रियासमाप्त्यनन्तरं नपुंसकवेदस्य स्त्रीवेदस्य च दलं पुरुषवेदे संक्रमयति, ना-ऽन्यत्र । तथा पुरुषवेद-हास्यषट्करूपसप्तप्रकृतीनां दलं संज्वलन-क्रोधे संक्रमयति, ना-ऽन्यत्र । यदभाणि कषायप्राभृते

"संछुहदि पुरिसवेदे इत्थीवेदं णवुंसयं चेव ।
सत्तेव णोकसाये णियमा कोहम्हि संछुहदि ॥१॥" इति ।

तथैव तच्चूर्णावपि "एदिस्से तदियाए गाहाए विहासा, तं जहा—इत्थीवेदं णवुंसयवेदं च पुरिसवेदे संछुहदि, ण अण्णत्थ । सत्तणोकसाये कोहे संछुहदि, ण अण्णत्थ ।" इति । तथा संज्वलनक्रोधदलं संज्वलनमाने संक्रमयति, संज्वलनमानस्य प्रदेशाग्रं संज्वलनमायायां संक्रमयति, संज्वलनमायाया दलं संज्वलनलोभे संक्रमयति । उक्तं च कषाय-प्राभृते

"कोहं च छुहइ माणे माणं मायाए णियमसा छुहइ ।
मायं च छुहइ लोहे पडिलोमो संकमो णत्थि ॥ १ ॥" इति ।

अनेन क्रमेण मोहनीयकर्मणः प्रदेशाग्रं संक्रमयति, तेना-ऽऽनुपूर्वीसंक्रम उच्यते । प्राक्तु-

नानुपूर्व्या संज्वलनक्रोधप्रदेशाग्रं पुरुषवेदे मानादिषु च, संज्वलनमानस्य तु पुरुषवेदे क्रोधे माया-दिषु च संक्रमयति स्मेति चतुर्थो-ऽधिकारः ।

'असंकमो' इत्यादि,(५) तत्र 'लोभस्य' संज्वलनलोभस्य 'असंक्रमः' संक्रमा-ऽभावो जायते । एतदुक्तं भवति–प्राग् हि संज्वलनलोभस्य प्रदेशाग्रं शेषसंज्वलनत्रिके पुरुषवेदे च संक्रमयति स्म, इतः प्रभृत्यानुपूर्वीसंक्रमसद्भावेन प्रतिलोमसंक्रमा-ऽभावात् संज्वलनलोभस्य संक्रमो न भवति । न चा-ऽऽनुपूर्वीसंक्रमनिर्देशादेव संज्वलनलोभस्य संक्रमाऽ-भावः सिध्यति, पुनः कुतः प्रतिपाद्यते ? इति वाच्यम्, शिष्यबुद्धिवैशद्यार्थं मन्दधीलोका-ऽनुग्रहार्थं च तत्प्रतिपादनात्, इति पञ्चमो-ऽधिकारः ।

'तह आवलि०' इत्यादि, (६) 'तथा षट्स्वावलिकासु' बन्धसमयादारभ्य षट्स्वावलिकासु व्यतिक्रान्तास्वेव 'उदीरणा' सर्वकर्मणामुदीरणा भवति । अयं भावः–मोहनीयकर्मण इतरकर्मणां च याः प्रकृतयो बध्यन्ते, तासां षण्णामावलिकानां मध्ये उदीरणा न भवति, किन्तु षट्स्वावलिकासु व्यतिक्रान्तास्वेव, अधुनातननूतनबन्धस्य तथाविधस्वभावत्वसंभवात् । इतः पूर्वं तु बद्धदल बन्धाव-लिकायां व्यतिक्रान्तायामुदीरणायामायाति स्म । न्यगादि च कषायप्राभृतचूर्णौ–"छसु आव-लियासु गदासु उदीरणा णाम किं भणिदं होइ ? विहासा-जहा णाम समयपबद्धो बद्धो आवलियादिक्कंतो सक्को उदीरेदुमेपमतरादो पढमसमयकदादो पाए जाणि कम्माणि बज्झंति मोहणीयं वा मोहणीयवज्जाणि वा, ताणि कम्माणि छसु आव-लियासु गदासु सक्काणि उदीरेदुं, ऊणिगासु छसु आवलियासु ण सक्काणि उदी-रेदुं । एसा छसु आवलियासु गदासु उदीरणा त्ति सण्णा ।" इति । षष्ठो-ऽधिकार ।

"संढवेअखवणा" इत्यादि, (७) 'षण्ढवेदक्षपणा च' चकारः समुच्चये, षण्ढवेदस्य नपुंसकवेदस्य क्षपणा–विनाशनं प्रवर्तते । एतदुक्तं भवति अन्तरकरणे कृते नपुंसकवेदं क्षपयितुमुपक्रमते । यदुक्तं सप्ततिकाचूर्णौ "अंतरं करेत्तु नपुं-सगवेयं खवेत्तु माढवेति ।" क्षपणाविधिश्चायम्-प्रथमसमये नपुंसकवेदस्य स्तोकं दलं पुरुषवेदे निक्षिप्य क्षपयति, द्वितीयसमये-ऽसंख्येयगुणं प्रक्षिप्य क्षपयति, ततोऽपि तृतीयसमये-ऽसंख्येयगुणं निक्षिप्य क्षपयति । एवं प्रतिसमयमसंख्येयगुणक्रमेण नपुंसकवेददलं पुरुषवेदे प्रक्षिप्य क्षपयति । इति सप्तमो-ऽधिकारः । इत्येते 'कृतान्तराणां' कृतं–निष्पादितम् अन्तरम्–अन्तरकरणं यैः क्षपकैः, ते कृतान्तराः, तेषां सप्त सप्तसंख्या अधिकारा युगपत् प्रवर्तन्ते, न तु व्यवधानेनेत्यर्थः । उक्तं च कषायप्राभृतचूर्णौ ताधे चेव णवुंसयवेदस्स आउत्तकरणसंकामगो । मोहणीयस्स संखेज्जवस्सट्ठिदिगो बंधो । मोहणीयस्स एगट्ठाणिया बंधोदया । जाणि कम्माणि बज्झंति, तेसिं छसु आवलियासु गदासु उदीरणा । मोहणीयस्स आणु-पुव्वीसंकमो । लोहसंजलणस्स असंकमो । एदाणि सत्त करणाणि अंतरदुसमयकदे आरद्धाणि ।" इति ।

अन्तरकरणे निष्पादिते घातिकर्मणामनुभागसत्कर्म सूक्ष्मैकेन्द्रियतोऽनन्तगुणहीनं जायते । न्यगादि च कर्मप्रकृतिचूर्णौ खवयगस्स अणुभागो जाव अंतरकरणं न कीरति,ताव 'घातीणि' सव्वघातिदेसघातीणं सुहुमएगिंदियस्स अणुभागसंतकम्मातो अणंतगुणितो होइ । अंतरकरणे कते सुहुमस्स अणुभागतो हेट्ठा भवति ।" इति ॥४४-४५॥

यन्त्रकम्

अन्तरकरणे कृते सप्त पदार्थाः युगपत् प्रवर्तन्ते । (गाथा-४४-४५)

(१) मोहनीयस्य सङ्ख्यातवार्षिक स्थितिबन्ध. ।	(५) सञ्ज्वलनलोभस्या-ऽसंक्रम. ।
(२) मोहनीयस्यैकस्थानको-ऽनुभागबन्ध ।	(६) षट्स्वावलिकासु गतासु नूतनबद्धकर्मणामुदीरणा।
(३) मोहनीयस्यैकस्थानको-ऽनुभागोदय ।	(७) नपुंसकवेदस्य क्षपणा ।
(४) मोहनीयप्रकृतीनामानुपूर्वीसंक्रम ।	घातिनामनुभागसत्त्व सूक्ष्मैकेन्द्रियतोऽनन्तगुणहीनम् ।

नन्वन्तरकरणे कृते सति प्रथमसमयादारभ्य मोहनीयकर्मणो-ऽनुभागविषयको बन्ध उदयः संक्रमश्च परस्परं किं समा हीना अधिका वा भवन्ति ? इति शङ्काव्युदासायव्याहरति

कयअंतराण मोहस्स बंधुदयसंकमा रसे होन्ति ।
कमसो अणंतगुणसेढोए अह ते दले भणिमो ॥ ४६ ॥

कृतान्तराणां मोहस्य बन्धोदयसंक्रमा रसे भवन्ति ।
क्रमशो-ऽनन्तगुणश्रेण्या ऽथ तान् दले भणाम ॥ ४६ ॥ इति पदसंस्कार ।

'कयअंतराण' इत्यादि, कृतान्तराणां' निष्पादिता-ऽन्तरकरणानां जीवानां 'रसे' विषयसप्तमीयम्, ततश्चा-ऽयमर्थः-अनुभागविषया 'मोहस्य' मोहनीयकर्मणो बन्धोदयसंक्रमाः 'क्रमशः' क्रमेण अनन्तगुणश्रेण्या भवन्ति । एतदुक्तं भवति-अन्तरकरणक्रियासमाप्तितः परं विवक्षितसमये मोहस्य यावाननुभागो बध्यते, ततस्तदानीमेवा ऽनन्तगुणो-ऽनुभाग उदयेना-ऽनुभूयते, सत्तागतपुरातना-ऽनुभागस्या-ऽनन्तगुणत्वेनोदयेना-ऽनुभूयमानस्या-ऽनन्तगुणत्वे विरोधाभावात् । ततोऽप्यनन्तगुणो-ऽनुभागः संक्रम्यते । कुतः ? इति चेत्, उच्यते-क्षपकश्रेणौ सत्तागता-ऽनुभागो-ऽनन्तगुणहीनीभूयोदये आगच्छति, संक्रमे तु सत्तागतो-ऽनुभागो यावान् भवति, तावान् परप्रकृतिषु संक्रामति । तेनोदयतः संक्रमेऽनुभागो-ऽनन्तगुणो भवति । यदुक्तं कषायप्राभृते-

"बंधेण होइ उदओ अहिओ उदएण संकमो अहिओ ।
गुणसेढी अणंतगुणा बोद्धव्वा होइ अणुभागे ॥१॥" इति ।

तथैव तच्चूर्णावपि-"विहासा-अणुभागेण बंधो थोवो, उदओ अणंतगुणो, संकमो अणंतगुणो ।" इति । 'मोहस्स' इति पदं पञ्चाशत्तमगाथां यावदनुवर्तते ।

'अह' इत्यादि, अथशब्दो-ऽनन्तरार्थकः, 'तान्' तच्छब्दस्य पूर्ववस्तुपरामर्शित्वात् बन्धोदयसंक्रमान् 'दले' प्रदेशविषयान् 'भणामः' भविष्यत्यर्थे "सत्सामीप्ये सद्वद् वा" (सिद्धहेम. ५-४-१) इत्यनेन वर्तमाना, प्रदेशाग्रमाश्रित्य बन्धादीनामल्पबहुत्वं वक्ष्याम इत्यर्थः ॥४६॥

अथ प्रतिज्ञाताल्पबहुत्वमुत्तरोत्तरसमये ऽनुभागबन्धोदयौ च वक्तुकाम आह

होन्ति पएसे कमसो, बंधउदयसंकमा असंखगुणा।
से काले से काले रसबंधुदया अणंतगुणहीणा ॥४७॥ (गीतिः)

भवन्ति प्रदेशे क्रमशो बन्धोदयसंक्रमा असंख्यगुणाः।
अनन्तरकाले-ऽनन्तरकाले रसबन्धोदयावनन्तगुणहीनौ ॥४७॥ इति पदसंस्कारः।

'होन्ति' इत्यादि, 'प्रदेशे' प्रदेशविषया मोहनीयकर्मणो बन्धोदयसंक्रमाः 'क्रमशः' क्रमेण असंख्यगुणा भवन्ति। तथाहि—अन्तरकरणे कृते सति विवक्षितसमये पुरुषवेदादीनां बध्यमानप्रकृतीनां यावद् प्रदेशाग्रं बध्नाति, ततस्तदानीमेवोदयेना-ऽसंख्येयगुणं दलमनुभवति, किं कारणम्? इति चेद्, उच्यते—विवक्षितसमये एकसमयप्रबद्धदलिकं बन्धे वर्तते, उदीरणायां पुनरसंख्येयसमयप्रबद्धमात्रं दलिकं वर्तते, तदानीमसंख्येयसमयप्रबद्धोदीरणायाः प्रवर्तमानत्वात्। उदीरणातश्चाऽभ्युदये दलिकमसंख्येयगुणं भवति, गुणश्रेण्या प्रभूतदलिकस्य रचितत्वात्। अतो बन्धतः सुतरामुदये प्रदेशाग्रमसंख्येयगुणं सिध्यति। ततो-ऽपि संक्रम्यमाणं दलमसंख्येयगुणं भवति। अत्र संक्रमशब्देन गुणसंक्रमो यथाप्रवृत्तसंक्रमश्च ग्राह्यः। तेन यासां नपुंसकवेदादीनां प्रकृतीनां गुणसंक्रमोऽस्ति, तासामुदयमानप्रदेशतो गुणसंक्रमेण संक्रम्यमाणं दलमसंख्येयगुणं भवति। यासां पुरुषवेदसंज्वलनक्रोधादीनां प्रकृतीनां पुनर्यथाप्रवृत्तसंक्रमो-ऽस्ति, तासां प्रकृतीनामुदयमानदलतो यथाप्रवृत्तसंक्रमेण संक्रम्यमाणं दलिकमसंख्येयगुणं भवति। ननु गुणसंक्रमभागहारस्योत्कर्षणापकर्षणभागहारतो-ऽसंख्येयगुणहीनत्वेनोदयमानदलिकतो गुणसंक्रमेण संक्रम्यमाणं दलिकमसंख्येयगुणमस्तु, यथाप्रवृत्तसंक्रमेण संक्रम्यमाणं दलिकमुदयगतदलिकतो-ऽसंख्यातगुणं कथं घटते? यथाप्रवृत्तसंक्रमभागहारस्योत्कर्षणापकर्षणभागहारतो-ऽसंख्येयगुणत्वात्। उक्तं च कषायप्राभृतचूर्णौ—"ओकड्डुक्कड्डुणाए कम्मस्स अवहारकालो थोवो, अधापवत्तसंकमेण कम्मस्स अवहारकालो असंखेज्जगुणो।" इति। यथाप्रवृत्तसंक्रमभागहारस्य प्रभूतत्वे संक्रम्यमाणं दलमुदयदलिकतः स्तोकं संभवतीति चेद्, उच्यते—समीचीनमेतद्, किन्तूत्कर्षणा-ऽपकर्षणभागहारेण विभज्य यावद्दलमपवर्तयति, तत्सर्वं गुणश्रेणौ न निक्षिपति, अपि तु तदसंख्येयभागमात्रमेव। यथाप्रवृत्तसंक्रमभागहारेण पुनर्विभज्यगृहीतं सर्वं दलं संक्रमयति। तेन यथाप्रवृत्तसंक्रमभागहारस्य प्राधान्येनोदयगतदलिकतो यथाप्रवृत्तसंक्रमेण संक्रम्यमाणं दलमसंख्येयगुणं सिध्यति। इत्यादि चेदमल्पबहुत्वं कषायप्राभृते

"बंधेण होइ उदओ अहिओ उदएण संकमो अहिओ।
गुणसेढी असंखेज्जा च पदेसग्गेण बोद्धव्वा ॥१॥" इति।

तथैव तच्चूर्णावपि–"विहासा, जहा-पदेसग्गेण वंधो थोवो, उदयो असंखेज्जगुणो, संकमो असंखेज्जगुणो ।" इति ।

नन्वनुभागबन्धोदयौ किं स्वस्थाने तुल्यौ वा-ऽधिकौ वा हीनौ वा प्रवर्तेते ? इति जिज्ञासा-नोदित आह 'से काले' इत्यादि 'अनन्तरकालेऽ-नन्तरकाले' विवक्षितसमयादनन्तरोपरितन-समये ततः परं तदनन्तरोपरितनसमये, उत्तरोत्तरसमये इत्यर्थः, मोहनीयस्य रसबन्धोदयौ अनन्तगुणहीनौ भवतः, पूर्वपूर्वसमयत उत्तरोत्तरसमये-ऽनुभागबन्धोऽनन्तगुणहीनो भवति । एवं पूर्वपूर्वसमयत उत्तरोत्तरसमयेऽनन्तगुणहीनो-ऽनुभागोदयः प्रवर्तत इत्यर्थः । इदमत्र हृदयम्–अन्तरकरणे कृते सति प्रथमे समये मोहनीयस्य यावाननुभागो बध्यते, ततो-ऽनन्तरभाविसमये-ऽनन्तगुणहीनो-ऽनुभागो बध्यते, ततस्तृतीयसमये-ऽनन्तगुणहीनो-ऽनुभागो बध्यते, ततश्चतुर्थ-समयेऽनन्तगुणहीनो बध्यते, विशुद्धेरनन्तगुणत्वाद् । एवमुत्तरोत्तरसमये वक्तव्यम् । तथा-ऽन्त-रकरणे कृते सति प्रथमसमये यावाननुभाग उदेति, ततो-ऽनन्तगुणहीनो-ऽनुभागो द्वितीयसमये उदेति, ततस्तृतीयसमये-ऽनन्तगुणहीन उदेति, ततोऽपि चतुर्थसमये-ऽनन्तगुणहीन उदयते । एवमुत्तरोत्तरसमये निश्चेतव्यः । उक्तं च कषायप्राभृते

"बंधोदएहिं णियमा अणुभागो होदि णंतगुणहीणो × × × ×॥१॥
गुणसेढी अणंतगुणेणूणाए वेदगो दु अणुभागे × × × ×॥२॥
गुणदो अणंतगुणहीणं वेदयदि णियमसा दु अणुभागे ।× × × ×॥३॥" इति ।

तथैव कषायप्राभृतचूर्णावपि–"विहासा-अस्सिं समये अणुभागबंधो बहुओ, से काले अणंतगुणहीणो । एवं समये समये अणंतगुणहीणो । एवमुदओ वि कायव्वो । अस्सिं समए अणुभागुदयो बहुगो, से काले अणंतगुणहीणो, एवं सव्वत्थ ।" इति । इदन्त्ववधेयम्-अनेन क्रमेण प्रतिसमयं हीयमानो-ऽनुभागो यथाप्रवृत्तकरण-प्रथमसमयात्प्रभृति बध्यते उदेति च, तथापि मन्दबुद्धिजनानां स्मृत्यै अत्राऽप्यभिहितः ॥४७॥

उत्तरोत्तरसमयेऽनुभागबन्धोदयौ व्याहृत्या-ऽनुभागसंक्रमं प्रदेशबन्धं चा-ऽभिधित्सुराह

रससंकमो उ खण्डे पुण्णे होज्जइ अणंतगुणहीणो ।
से काले से काले पएसबंधो चउविहो य ॥ ४८ ॥

रससंक्रमस्तु खण्डे पूर्णे भवत्यनन्तगुणहीनः ।
अनन्तरकाले-ऽनन्तरकाले प्रदेशबन्धश्चतुर्विधश्च ॥ ४८ ॥ इति पदसंस्कारः ।

'रससंक्रमो' इत्यादि, 'रससंक्रमस्तु' तुः पुनरर्थे, मोहनीयकर्मणो-ऽनुभागसंक्रमः पुनः 'खण्डे' एकवचननिर्देशाद् एकस्मिन् रसखण्डे 'पूर्णे' निष्ठां गते 'अनन्तगुणहीनः' प्राक्तना-ऽनुभागसंक्रमतो-ऽनन्तगुणहीनो भवति, नार्वाक्, रसघाताद्धाया अन्तर्मुहूर्तप्रमाणत्वात् । रस-खण्डं यावन्न घातयति, तावदनुभागसंक्रमस्तुल्यो भवति । ततो-ऽन्यद् रसखण्डं घातयितुमुपक्रमते तस्मिन्नपि घातिते सत्यनुभागसंक्रमो-ऽनन्तगुणहीनो जायते, ततोऽर्वागनुभागसंक्रमः सदृशो जायते । भावार्थः पुनरयम्—यावद्विवक्षिता-ऽनुभागखण्डं परिसमाप्तं न भवति, तावदनुभागसंक्रमः सदृशो भवति । तस्मिन्ननुभागखण्डे परिपूर्णे-ऽन्यदनुभागखण्डं प्रारभ्यते, तदा पूर्वतो-ऽनन्तगुण-हीनोऽनुभागसंक्रमो भवति, प्राक्तनाऽनुभागखण्डविनाशेना-ऽनुभागसत्कर्मणो-ऽनन्तगुणहीनत्वसम्पा-दनात् । सोऽपि चैकादशस्तावत् प्रवर्तते, यावदनुभागखण्डं निष्ठां न याति । कथमेतदवसीयते ? इति चेद् उच्यते, रसघातकालस्याऽन्तर्मुहूर्तमात्रत्वेनाऽन्तर्मुहूर्तं यावदेकादशोऽनुभागसंक्रमो जायते, ततः परमभिनवरसघातारम्भे पूर्वतो-ऽनन्तगुणहीनो-ऽनुभागसंक्रमः प्रवर्तते, प्राक्तनाऽनु-भागखण्डविनाशेनानुभागसत्कर्मणोऽनन्तगुणहीनत्वसम्पादनात् । ततः परमनुभागसंक्रमः सदृशो भवन् रसघाताद्धायां पूर्णायामनन्तगुणहीनो भवति । उक्तं च कषायप्राभृतचूर्णौ "संकमो जाव अणुभागखंडयमुक्कीरेदि, ताव तत्तिगो तत्तिगो अणुभागसंकमो । अण्णम्हि अणुभागखंडए आढत्ते अणंतगुणहीणो अणुभागसंकमो ।" इति ।

'से काले से काले' त्ति 'अनन्तरकाले ऽनन्तरकाले' पूर्वपूर्वत उत्तरोत्तरसमये इत्यर्थः, 'प्रदेशबन्धः' स्थितिरसनिरपेक्षदलिकसंख्याप्रधानरूपो बन्धश्चतुर्विधो वृद्धो हीनो वा संभवति । चकारः समुच्चयार्थः, स चाऽवस्थितो-ऽपि प्रदेशबन्धः संभवतीति संचिनोति, योगस्य चतुर्विध-वृद्धिहान्यवस्थानसंभवेन तत्प्रयोज्यप्रदेशबन्धस्य चतुर्विधवृद्धिहान्यवस्थानत्वे विरोधा-ऽभावात् । इदमुक्तं भवति—अन्तरकरणे कृते सति कश्चिज्जीवो विवक्षितसमये मोहस्य यावत् प्रदेशाग्रं बध्नाति, ततो-ऽनन्तरसमये योगानुसारेणाऽसंख्येयभागवृद्धं वा संख्येयभागवृद्धं वा संख्येयगुण-वृद्धं वा-ऽसंख्येयगुणवृद्धं वा बध्नाति । एवमन्यो योगानुरूपमसंख्येयभागहीनं वा संख्येयभाग-हीनं वा संख्येयगुणहीनं वा-ऽसंख्येयगुणहीनं वा बध्नाति । यद्वाऽपरो-ऽवस्थितयोगेन तावदेव बध्नाति । उक्तं च कषायप्राभृते "से काले से काले भज्जो बंधो पदेसग्गे ।" तथैव तच्चूर्णावपि—"पदेसबंधो चउव्विहाए वड्ढीए चउव्विहाए हाणीए अवट्ठाणे च भजियव्वो" । इति ॥ ४८ ॥

उत्तरोत्तरसमये प्रदेशबन्धमभिधाय प्रदेशोदयं प्रदेशसंक्रमं चाभिधातुकाम आह

से काले से काले पएसउदओ असंखगुणो ।
से काले से काले दलसंकमणं असंखगुणं ॥४९॥ (उपगीतिः)

अनन्तरकाले-ऽनन्तरकाले प्रदेशोदयो-ऽसंख्यगुणः ।
अनन्तरकाले-ऽनन्तरकाले प्रदेशसंक्रमणमसंख्यगुणम् ॥४९॥ इति पदसंस्कारः ।

'से काले' इत्यादि, 'अनन्तरकाले-ऽनन्तरकाले' उत्तरोत्तरसमये इत्यर्थः, 'प्रदेशोदयो' मोहनीयकर्मणः प्रदेशोदयो-ऽसंख्यगुणो भवति । इदमुक्तं भवति—अन्तरकरणे कृते सति प्रथमसमये मोहनीयकर्मणः प्रदेशोदयः स्तोको भवति, ततो द्वितीयसमये-ऽसंख्येयगुणो भवति, ततो-ऽपि तृतीयसमये ऽसंख्येयगुणो जायते । एवमुत्तरोत्तरसमये वक्तव्यम्, गुणश्रेण्योत्तरोत्तरनिषेकेऽसंख्येयगुणदलिकस्य रचितत्वात् । अभाणि च कषायप्राभृतचूर्णौ "पदेसुदयो अरिस समए थोवो, से काले असंखेज्जगुणो, एवं सव्वत्थ ।" इति ।

'से काले' इत्यादि, अन्तरकरणे कृते 'अनन्तरकालेऽनन्तरकाले' उत्तरोत्तरसमये 'दलसंक्रमणं' प्रदेशसंक्रमो-ऽसंख्यगुणो भवति । एतदुक्तं भवति—अन्तरकरणे कृते सति विवक्षितसमये मोहनीयस्य यावत्प्रदेशाग्रं संक्रम्यते, ततो द्वितीयसमये-ऽसंख्येयगुणं संक्रम्यते, ततो-ऽपि तृतीयसमयेऽसंख्येयगुणं संक्रम्यते, एवमुत्तरोत्तरसमयेऽसंख्येयगुणक्रमेण प्रदेशसंक्रमो वक्तव्यः । अभ्यधायि च कषायप्राभृते "गुणसेढी असंखेज्जा च पदेसग्गेण संकमो उदओ ।" इति । तथैव तच्चूर्णावपि "पदेसुदओ अरिसं समये थोवो, से काले असंखेज्जगुणो, सव्वत्थ । जहा उदओ, तहा संकमो वि कायव्वो ।" इति । अत्र दलसंक्रमशब्देन यासां प्रकृतीनां गुणसंक्रमो भवति, तासां दलसंक्रमः प्रतिसमयमसंख्येयगुणकारेण भवतीति ज्ञातव्यम् । यासां प्रकृतीनां पुनर्यथाप्रवृत्तसंक्रमः प्रवर्तते, तासां श्रेणिवर्जस्थाने प्रदेशसंक्रमः प्रतिसमयमसंख्येयगुणो न भवतीति सुप्रतीतम् । श्रेणौ तु यथा-ऽऽगमं भावनीयः ॥ ४९ ॥

साम्प्रतं वर्तमानभाविलक्षणकालद्वयमाश्रित्याऽनुभागबन्धोदयौ विभणिषुराह

संपइ बहुगो उदयो तत्तो बंधो-ऽत्थि ताउ अणुभागे ।
से काले उदयो तत्तो बंधो-ऽणंतगुणहीणो ॥ ५० ॥

सम्प्रति बहुक उदयस्ततो बन्धोऽस्ति तस्मादनुभागे ।
अनन्तरकाले उदयस्ततो बन्धो-ऽनन्तगुणहीन ॥ ५० इति पदसस्कार ।

'संपइ' इत्यादि, 'अणुभागे' त्ति पदं डमरुकमणिन्यायेन सर्वत्र सम्बध्यते । 'सम्प्रति' अन्तरकरणे कृते सति विवक्षितवर्तमानसमये इत्यर्थः, 'अनुभागे' मोहस्या-ऽनुभागविषय उदयो 'बहुकः' प्रभूतो भवति, 'ततः' निरुक्तसमयसत्कानुभागोदयात् तदानीमेवा-ऽनुभागविषयो बन्धो-

ऽनन्तगुणहीनो 'अस्ति' भवति । 'अणंतगुणहीणो' इति दूरस्थं पदमत्रा-ऽपि सम्बध्यते । एवमग्रेऽपि योजनीयम् । 'तरणात्' निरुक्तसमयसत्काऽ-नुभागबन्धात् 'अनन्तरकाले' निरुक्तसमयस्या-ऽनन्तरोपरितनसमये इत्यर्थः, अनुभागविषय उदयोऽनन्तगुणहीनः प्रजायते, प्रतिसमयमनुभागोदयस्य विशुद्धिमाहात्म्येना-ऽनन्तगुणहीनत्वदर्शनात्, स चा-ऽधस्तनसमयभाविबन्धतोऽप्यनन्तगुणहीनो जायते, इति सिद्धमनेन विधानेन । 'ततो' निरुक्तसमयस्या-ऽनन्तरोपरितनसमये योऽनुभागोदयः, ततः इत्यर्थः, निरुक्तसमयस्या-ऽनन्तरोपरितनसमये एवा ऽनुभागविषयो बन्धो-ऽनन्तगुणहीनो भवति । उक्तं च कषायप्राभृते

"उदओ च अणंतगुणो संपहिबंधेण होइ अणुभागे ।
से काले उदयादो संपहिबंधो अणंतगुणो ॥ १ ॥" इति ।

तच्चूर्णावपि– 'से काले अणुभागबंधो थोवो, से काले चेव उदओ अणंतगुणो, अस्सिं समए बंधो अणंतगुणो, अस्सिं चेव समए उदओ अणंतगुणो ।" इति ।

एवं गाथापञ्चकेना-ऽन्तरकरणे कृते सति बन्धादीनामल्पबहुत्वादिकमभिहितम् । एता एव पञ्चगाथा प्रागप्यपूर्वकरणादौ यथा-ऽऽगमं व्याख्येयाः ॥ ५० ॥

अन्तरकरणे निष्पादिते मोहनीयमाश्रित्या-ऽल्पबहुत्वानि (यन्त्रकम्)

(१) अनुभागबन्धोदयसक्रमा-ऽल्पबहुत्वम्(गा.४६)
(i) मोहनीयस्यानुभागबन्धोऽल्प. ।
(ii) ततो मोहस्यानुभागोदयोऽनन्तगुण ।
(iii) ततो मोहस्यानुभागसक्रमोऽनन्तगुण. ।

(२) प्रदेशबन्धोदयसक्रमा-ऽल्पहुत्वम् (गाथा-४७)
(i) मोहनीयस्य प्रदेशबन्ध स्तोक. ।
(ii) ततो मोहनीयस्य प्रदेशोदयोऽसख्यगुणः ।
(iii) „ „ प्रदेशसंक्रमो-ऽसख्यगुण ।

(३) उत्तरोत्तरसमये रसबन्धाल्पबहुत्वम् (गा -४७)
(i) प्रथमसमये मोहस्य रसबन्धो-ऽल्प ।
(ii) ततो द्वितीयसमये मोहस्य रसबन्धोऽनन्तगुणहीन ।
(iii) ततस्तृतीयसमये „ „ „ गुणहीनः । एवमुत्तरोत्तरसमये रसबन्धोऽनन्तगुणहीनक्रमेण भवति ।

(४) उत्तरोत्तरसमये रसोदया-ऽल्पबहुत्वम् (गा.-४७)
(i) प्रथमसमये मोहस्य रसोदयोऽल्प ।
(ii) ततो द्वितीयसमये मोहस्य रसोदयोऽनन्तगुणहीनः ।
(iii) ततस्तृतीयसमये „ „ „ न्तगुणहीन. । एवं मुत्तरोत्तरसमये रसोदयोऽनन्तगुणहीनक्रमेण भवति ।

(५) उत्तरोत्तरसमये-ऽनुभागसक्रम –(गाथा ४८)
(i) प्रथमसमये मोहस्य यावान् रससक्रमो भवति ।

(६) उत्तरोत्तरसमये प्रदेशबन्धः (गाथा-४८)
प्रथमसमयतो द्वितीयसमये मोहस्य प्रदेशबन्धश्चतुर्विधहान्या चतुर्विधवृद्ध्या-ऽवस्थानेन वा

(ii) द्वितीयसमयेऽपि मोहस्य तावानेव रससंक्रमो भवति ।
(iii) ततस्तृतीयसमयेऽपि मोहस्य तावानेव रससंक्रमो भवति, एवं तावद्वक्तव्यम्, यावदन्तर्मुहूर्तम् ।
(i) ततोऽनन्तरसमये मोहस्य रससंक्रमोऽनन्तगुणहीनः ।
(ii) ततो द्वितीयसमये मोहस्य रससंक्रमस्तावानेव । एवं तावद्वक्तव्यम्, यावदन्तर्मुहूर्तम् । इत्थमन्तर्मुहूर्तं यावद् रससंक्रमस्तुल्यो भवति, पूर्णे त्वन्तर्मुहूर्तेऽनन्तगुणहीनो जायते ।

भवति, योगानुरूपत्वात्तस्य । एवं शेषसमयेष्वपि भावनीयम् ।

(७) उत्तरोत्तरसमये प्रदेशोदया-ऽल्पबहुत्वम् (गा ४६)
(i) प्रथमसमये मोहस्य प्रदेशोदयो-ऽल्पः ।
(ii) ततो द्वितीयसमयेऽसंख्येयगुणः ।
(iii) ततस्तृतीयसमये-ऽसंख्येयगुणः ।
एवमुत्तरोत्तरसमये-ऽसंख्येयगुणक्रमेण वक्तव्यः ।

(८) उत्तरोत्तरसमये प्रदेशसंक्रमा-ऽल्पबहुत्वम्-(गाथा-४६)
(i) प्रथमसमये प्रदेशसंक्रमोऽल्पः ।
(ii) ततो द्वितीयसमये ऽसंख्येयगुणः ।
(iii) ततस्तृतीयसमयेऽसंख्येयगुणः ।
एवमुत्तरोत्तरसमयेऽसंख्येयगुणक्रमेण वक्तव्यः ।

(९) रसबन्धोदयोर्मिथो-ऽल्पबहुत्वम्--(गाथा-५०)
(i) प्रथमसमये मोहस्य रसोदयः स्तोकः ।
(ii) ततस्तस्मिन्नेव समये मोहस्य रसबन्धोऽनन्तगुणहीनः ।
(iii) ततो-ऽनन्तरसमये मोहस्य रसोदयोऽनन्तगुणहीनः ।
(iv) ततस्तदानीमेव मोहस्य रसबन्धोऽनन्तगुणहीनः ।

(९) न्यास

अनन्तरसमये ४ रसबन्धः	३ अनन्तरसमये रसोदयः
वर्तमान समये २ रसबन्ध	१ वर्तमानसमये रसोदयः

→एतच्चिह्नमनन्तगुणहीनतां बोधयति ।

पुरुषवेदोदयारूढस्य जीवस्य नपुंसकवेदसत्कां निःशेषतः क्षपणां स्त्रीवेदक्षपणां च निवर्णयिषुराह

ठिइखंडेसु गयेसुं संढं सव्वं खवेइ तत्तो थिं ।
खवणद्धासंखंसे, बंधो संखवरिसा तिघाईणं ।। ५१ ।। (गीतिः)

स्थितिखण्डेषु गतेषु षण्ढं सर्वं क्षपयति ततः स्त्रियम् ।
क्षपणाद्धासंख्यांशे बन्धः संख्यवर्षास्त्रिघातिनाम् ।। ५१ ।। इति पदसंस्कारः ।

'ठिइखंडेसु' इत्यादि, अन्तरकरणे कृते सति प्रथमसमये द्वितीयस्थितिगतं नपुंसकवेदस्य

स्तोकं प्रदेशाग्रं पुरुषवेदे संक्रम्य क्षपयति, ततोऽसंख्येयगुणं द्वितीयसमये क्षपयति। एवंक्रमेण 'स्थितिखण्डेषु' स्थितिखण्डसहस्रेषु 'गतेषु' व्रजितेषु सत्सु 'षण्ढं' सर्वं नपुंसकवेदं 'क्षपयति' नपुंसकवेदक्षपणाद्धाचरमसमये नपुंसकवेदं पुरुषवेदे सर्वसंक्रमेण संक्रम्य सर्वात्मना विनाशयतीत्यर्थः। उक्तं च कषायप्राभृतचूर्णौ "तदो संखेज्जेसु ठिदिखंडयसहस्सेसु गदेसु णवुंसयवेदो संकामिज्जमाणो संकामिदो।" सप्ततिकाचूर्ण्यादौ नपुंसकवेदं परप्रकृतिषु संक्रम्य विनाशयति, न केवलं पुरुषवेदे इत्युक्तम्। तथा च तद्ग्रन्थः—"अंतरकरणस्स उवरिमठितिदलियं उव्वट्टिज्जमाणं उव्वट्टिज्जमाणं पलिओवमस्स असंखेज्जइभागमेत्तं जायं, तओ तं परपगईसु असंखेज्जगुणेणं संछुभमाणं संछुभमाणं अंतोमुहुत्तेण संछूढं भवति। एवं नपुंसगवेदो खीणो।" इति। एवं कर्मप्रकृतिटीकायां श्रीमदुपाध्यायपादैरपि न्यगादि "अन्तरकरणं च कृत्वा नपुंसकवेददलिकमुपरितनस्थितिगतमुद्वलनविधिना क्षपयितुमारभते, तच्चाऽन्तर्मुहूर्तमात्रेण पल्योपमाऽसंख्येयभागमात्रं भवति। ततः प्रभृति बध्यमानासु प्रकृतिषु गुणसंक्रमेण तद्दलिकं प्रक्षिपति। तच्चैवं प्रक्षिप्यमाणं प्रक्षिप्यमाणमन्तर्मुहूर्तमात्रेण निःशेषं क्षीयते।" इति।

तदानीं चरमप्रक्षेपे शीघ्रं क्षपणायोद्यतस्य गुणितकर्मांशस्य जन्तोर्नपुंसकवेदस्योत्कृष्टप्रदेशसंक्रमो भवति। उक्तं च कर्मप्रकृतिचूर्णौ "अट्ठवासिगो सत्तमासब्भतिगो, तस्स खवणाए अब्भुट्ठितस्स 'णपुंसगे सव्वसंकमेण' णपुंसगवेदस्स सव्वसंछोभे गुणितकम्मंसितस्स उक्कोसो पदेससंकमो लब्भति।" इति।

'तत्तो' इत्यादि, 'ततः' नपुंसकवेदक्षपणासमनन्तरं 'स्त्रियं' स्त्रीवेदं क्षपयति, 'खिवेइ' इति पदस्य देहलीदीपकन्यायेनाऽत्राऽपि सम्बन्धात्। तत्र स्त्रीवेदक्षपणाद्धाप्रथमसमये स्त्रीवेददलं स्तोकं क्षपयति, ततो द्वितीयसमयेऽसंख्येयगुणं क्षपयति, ततोऽपि तृतीयसमयेऽसंख्येयगुणं क्षपयति। एवंक्रमेण प्रतिसमयमसंख्येयगुणकारेण क्षपयति। स्त्रीवेदक्षपणारम्भसमयादभिनवः स्थितिघातः स्थितिबन्धो रसघातश्चारभ्यन्ते। 'क्षपणाद्धासंख्यांशे' प्रक्रमात् स्त्रीवेदक्षपणाद्धायाः संख्येयतमे भागे गते—नपुंसकवेदक्षयस्याऽनन्तरसमयात् प्रभृति स्त्रीवेदक्षपणाद्धाचरमसमयं यावद् योऽन्तर्मुहूर्तप्रमाणः कालः, स स्त्रीवेदक्षपणाद्धा व्यपदिश्यते, तस्याः संख्येयतमे भागे नपुंसकवेदक्षयात् परं स्थितिखण्डपृथक्त्वेन व्रजिते इत्यर्थः, 'त्रिघातिनां' त्रयाणां घातिकर्मणां—ज्ञानावरणदर्शनावरणाऽन्तरायाणामित्यर्थः, 'बन्धः' स्थितिबन्धः 'संख्यवर्षाः' संख्येयवर्षप्रमाणो भवति। प्राग् य एतेषां कर्मणां स्थितिबन्धोऽसंख्यवर्षप्रमाण आसीत्, सोऽसंख्यगुणहान्या हीयमानः सन् सम्प्रति संख्यातवार्षिको जायते इति फलितार्थः। उक्तं च कषायप्राभृतचूर्णौ "तदो से काले इत्थिवेदस्स पढमसमयसंकामगो, ताधे अण्णं ठिदिखंडयमण्णमणुभागखंडयमण्णो ठिदिबंधो च आरद्धाणि। तदो ठिदिखंडयपुधत्तेण इत्थिवेद-

खवणद्धाए संखेज्जदिभागे गदे णाणावरण-दंसणावरण-अंतराइयाणं तिण्हं घादिकम्माणं संखेज्जवस्सट्ठिदिगो बंधो।" इति। इत ऊर्ध्वं ज्ञानावरण-दर्शनावरणा-ऽन्तरायाणां स्थितिबन्धः प्रत्यन्तर्मुहूर्तं संख्येयगुणेन हीनो हीनतरो भवति॥ ५१॥

स्त्रीवेदस्य निःशेषतः क्षपणां मोहस्य च स्थितिसत्त्वमभिधित्सुराह

तत्तो ठिइखंडपुहुत्तेणं इत्थिं खवेइ णिस्सेसं।
ताहे संतं मोहस्स संखवासपमिअं होई॥५२॥

ततः स्थितिखण्डपृथक्त्वेन स्त्रियं क्षपयति निश्शेषम्।
तदा सत्त्वं मोहस्य सङ्ख्यवर्षप्रमितं भवति॥५२॥ इति पदसंस्कारः।

'तत्तो' इत्यादि, 'ततः' घातित्रयसत्कस्थितिबन्धस्य संख्येयवर्षमात्रत्वभवनात् स्थितिखण्ड-पृथक्त्वेन स्त्रीवेदक्षपणाद्धायाः शेषेषु संख्येयेषु बहुभागेषु गतेषु 'स्त्रियं' स्त्रीवेदं 'निःशेषं' सर्वा-त्मना 'क्षपयति' विनाशयति। ततः परं सत्कर्मणि स्वस्वरूपेण स्त्रीवेदस्यैकमपि दलं न विद्यते इत्यर्थः। उक्तं च कषायप्राभृतचूर्णौ- "तदो ट्ठिदिखंडयपुधत्तेण इत्थिवेदस्स जं ठिदिसंतकम्मं, तं सव्वमागाइदं।" इति। गुणितकर्मांशस्य शीघ्र क्षपणायोद्यतस्य जीवस्य स्त्रीवेदस्योत्कृष्टप्रदेसंक्रमो भवति। उक्तं च कर्मप्रकृतिचूर्णौ- "अट्ठवासिगो सत्तमास-ब्भहिओ खवणाए अब्भुट्ठितो सो, 'सव्वसंछोभे' इति गुणियकम्मंसिगो चरिम-सच्छोभे वट्टमाणो इत्थिवेदस्स उक्कोसपदेससंकमगो।" इति।

तदानीं मोहनीयकर्मणः स्थितिसत्त्वं निगदितुकाम आह 'ताहे' इत्यादि, 'तदा' यस्मिन् समये स्त्रीवेदः सर्वथा क्षपितस्तस्मिन् समये इत्यर्थः, 'मोहस्य' मोहनीयकर्मणः 'सत्त्वं' स्थितिसत्कर्म 'संख्यवर्षप्रमितं' संख्यातवर्षप्रमाणं 'भवति' जायते। उक्तं च कषायप्राभृत-चूर्णौ "ताधे चेव मोहणीयस्स ट्ठिदिसंतकम्मं संखेज्जाणि वस्साणि।" इति। अतः परं प्रतिस्थितिखण्डेन मोहनीयकर्मणः संख्यातगुणहीनं स्थितिसत्त्वं जायते, शेषाणां कर्मणां पुनरसंख्येयगुणहीनं भवति, यतो ज्ञानावरण-दर्शनावरण वेदनीया-ऽन्तराय-नाम-गोत्राणां स्थिति-सत्त्वमद्यापि पल्योपमा-ऽसंख्येयभागप्रमाणं विद्यते॥ ५२॥

स्त्रीवेदक्षपणाया अनन्तरसमयात् पुरुषवेदहास्यषट्कलक्षणसप्तनोकषायान् क्षपयितुमारभते इति सप्तनोकषायक्षपणां स्थितिबन्धस्थितिसत्त्वयोरल्पबहुत्वं च प्ररूपयिषुराह

से काले खवए सत्तणोकसाये-ऽप्पबहुअं य।
मोहस्स ट्ठिइबंधो थोवो घाईण संखगुणो॥५३॥ (उपगीतिः)

तो वीसाए असंखगुणो तो तइयस्स खलु विसेसहिओ ।
ठिइसंतं मोहस्सप्पं घाईणं असंखगुणं ॥ ५४ ॥
तो वीसाए असंखगुणं तो तइयस्स खलु विसेसऽहिअं ।
खवणद्धासंखंसे-ऽघाईणं संखवासिगो बंधो ॥५५॥

अनन्तरकाले क्षपयति सप्तनोकषायानल्पबहुत्वं तु ।
मोहस्य स्थितिबन्धः स्तोको घातिनां सख्यगुणः ॥ ५३ ॥
ततो विंशतिकयोरसंख्यगुणस्ततस्तृतीयस्य खलु विशेषाधिकः ।
स्थितिसत्त्वं मोहस्याऽल्पं घातिनामसंख्यगुणम् ॥ ५४ ॥
ततो विंशतिकयोरसंख्यगुणं ततस्तृतीयस्य खलु विशेषाधिकम् ।
क्षपणाद्धासंख्यांशेऽघातिनां संख्यवार्षिको बन्धः ॥ ५५ ॥ इति पदसंस्कारः ।

'से काले' इत्यादि 'अनन्तरकाले' स्त्रीवेदक्षपणाया अनन्तरसमये 'सप्तनोकषायान्' स्त्रीनपुंसकवेदयोः क्षीणत्वात् हास्यषट्क-पुरुषवेदलक्षणान् 'क्षपयति' युगपत्क्षपयितुमुपक्रमते । उक्तं च कषायप्राभृतचूर्णौ-"से काले सत्तण्हं णोकसायाणं पढमसमयसंकामगो ।" एवं सप्ततिकाचूर्णावपि-"तओ सत्त वि नोकसाए जुगवं खवेतुमाढवेत्ति ।" इति । सप्ततिकाचूर्णिकारादीनां मतेनाऽतः प्रभृति हास्यषट्कं पुरुषवेदे न संक्रमयति, किन्तु संज्वलनक्रोधे । तथा चाऽत्र सप्ततिकाचूर्णिः 'तओ पभिति छण्णोकसाया पुरिसवेदम्मि न संकमंति, कोहसंजलणाए संकमंति ।" एवमुपाध्यायपुङ्गवैरप्युक्तम् "ततः षड्नोकषायान् युगपत् क्षपयितुमारभते । ततः प्रभृति तेषामुपरितनस्थितिगतं दलिकं पुंवेदे न संक्रमयति, अपि तु संज्वलनक्रोधे ।" इति । कषायप्राभृतचूर्णिकारादीनामभिप्रायेण पुनरन्तरकरणक्रियानिष्ठातः प्रभृति हास्यषट्कं क्रोधे एव संक्रमयति । तथा च तद्ग्रन्थः "अन्तरादो दुसमयकदादो पाये छण्णोकसाये कोहे संछुहदि, ण अण्णम्हि कम्हि वि ।" इति ।

अकारस्य लुप्तत्वात् 'अप्पबहुअं य' त्ति 'अल्पबहुत्वं च' चकारः समुच्चये, तदानीं च स्थितिबन्धस्थितिसत्त्वयोः स्तोकबहुत्वं वक्तव्यमिति शेषः । आदौ तावत् स्थितिबन्धा-ऽल्पबहुत्वमभिधातुकाम आह 'मोहस्स' इत्यादि, 'मोहस्य' मोहनीयकर्मणः स्थितिबन्धः 'स्तोकः' अल्पः, उपरि भण्यमानकर्मणां स्थितिबन्धस्य प्रभूतत्वात् । स च संख्येयवर्षप्रमाणः । ततः 'घातिनां' मोहनीयस्योक्तत्वात् ज्ञानावरण दर्शनावरणा-ऽन्तरायलक्षणानां कर्मणामित्यर्थः, स्थितिबन्धः संख्येयवर्षमात्रो भवन्नपि 'संख्यगुणः' संख्येयगुणो भवति । 'तो' इत्यादि, 'ततः' घातित्रयस्य स्थितिबन्धाद् 'विंशतिकयोः' विंशतिसागरोपमकोटिकोटिस्थितिकयोर्नामगोत्रयोरित्यर्थः,

'असंख्यगुणः' असंख्येयगुणः स्थितिबन्धो भवति, तस्या-ऽसंख्येयवर्षप्रमाणत्वात्। 'ततः' नाम-गोत्रस्थितिबन्धतः 'तृतीयस्य' वेदनीयकर्मणः 'खलु' खलुर्वाक्यालङ्कारे स्थितिबन्धो-ऽसंख्येयवर्ष-प्रमितो जायमानोऽपि विशेषाधिको भवति। उक्तं च कषायप्राभृतचूर्णौ "सत्तण्हं णोक-सायाणं पढमसमयसंकामगस्स ट्ठिदिबंधो मोहणीयस्स थोवो णाणावरण दंसणा-वरण अंतराइयाणं ट्ठिदिबंधो संखेज्जगुणो, णामागोदाणं ट्ठिदिबंधो असंखेज्जगुणो वेदणीयस्स ट्ठिदिबंधो विसेसाहिओ" इति। पूर्ववत् स्थितिबन्धो घातिकर्मणां प्रतिस्थिति-घाताद्धं संख्येयगुणहीनो जायते, नामगोत्रवेदनीयानामसंख्येयगुणहीनो भवति। अन्यथापि च कषायप्राभृतचूर्णौ "ट्ठिदिबंधो णामा-गोद-वेदणीयाण असंखेज्जगुणहीणो, घादिकम्माणं ट्ठिदिबंधो संखेज्जगुणहीणो।" इति।

अथ सप्तनोकषायक्षपणाप्रथमसमये स्थितिसत्त्वाऽल्पबहुत्वं निगदति 'ठिइसंतं' इत्यादि, 'स्थितिसत्त्वं' स्थितिसत्कर्म 'मोहस्य' मोहनीयकर्मणः 'अल्पं' स्तोकं भवति, उपरि भणिष्यमाणकर्मणां स्थितिसत्त्वस्य प्रभूतत्वात्, तच्च संख्येयवार्षिकं भवति, ततः घातिनां' मोहनी-यस्याऽभिहितत्वात् ज्ञानावरण-दर्शनावरणा-ऽन्तरायरूपाणां कर्मणां स्थितिसत्त्वमसंख्यगुणं भवति, तस्या-ऽसंख्येयवर्षप्रमाणत्वात्। 'ततः' घातित्रयस्थितिबन्धत 'विंशतिकयोः' नामगोत्रयोः स्थितिसत्त्वमसंख्येयवर्षप्रमाणं भवदप्यसंख्येयगुणं भवति। 'ततः' नामगोत्रस्थितिसत्त्वात् 'तृतीयस्य' वेदनीयकर्मणः खलु विशेषाधिकं स्थितिसत्त्वं भवति। उक्तं च कषायप्राभृतचूर्णौ— "ताधे ठिदिसंतकम्मं मोहणीयस्स थोवं, तिण्हं घादिकम्माणं ट्ठिदिसंतकम्ममसंखे-ज्जगुणं, णामागोदाणं ट्ठिदिसंतकम्ममसंखेज्जगुणं, वेदणीयस्स ट्ठिदिसंतकम्मं विसेसाहियं।" इति।

स्थितिखण्डपृथक्त्वे गते नाम-गोत्र-वेदनीयानां स्थितिबन्धमभिधातुमना आह—'खवण-द्धासंखंसे' इत्यादि, 'क्षपणाद्धासंख्यांशे' सप्तनोकषायक्षपणाप्रारम्भतः परं स्थितिखण्डपृथ-क्त्वेन हास्यषट्कपुरुषवेदसत्कक्षपणाद्धायाः संख्येयतमे भागे गते सतीत्यर्थः 'अघातिनाम्' नाम-गोत्र वेदनीयानां 'संख्यवार्षिकः' संख्यातवर्षप्रमाणो 'बन्धः' स्थितिबन्धो भवति, प्रागेतेषां कर्म-णामसंख्येयवर्षप्रमितः स्थितिबन्ध आसीत्, सम्प्रति संख्येयवर्षप्रमाणो भवतीति फलितार्थः। उक्तं च कषायप्राभृतचूर्णौ "तदो ट्ठिदिखंडयपुधत्ते गदे सत्तण्हं णोकसायाणं खवणद्धाए संखेज्जदिभागे गदे णामा-गोद-वेदणीयाणं संखेज्जाणि वस्साणि ट्ठिदिबंधो।" इति। इत्थं सर्वेषां कर्मणां स्थितिबन्ध इदानीं संख्येयवर्षमात्रो जायते। तथा चोत्तरोत्तरः स्थितिबन्धः संख्येयगुणहीनो भवति॥ ५३—५४—५५॥

सप्तनोकषायसत्कक्षपणाद्धायाः संख्येयेषु बहुभागेषु गतेषु घातिकर्मणां स्थितिसत्त्वं पुरुषवेदस्या-ऽऽगालप्रत्यागालयोर्व्यवच्छेदं च वक्तुकाम आह

खवणाद्धासंखंसेसु संतं संखवासिअं घाईणं ।
आगालो पडिआगालो आलिदुगे य सेसगे वोच्छिन्ना ॥५६॥ (आर्यागीतिः)

क्षपणाद्धासंख्यांशेषु सत्त्व संख्यवार्षिकं घातिनाम् ।
आगाल प्रत्यागाल आवलिकाद्विके च शेषे व्यवच्छिन्नौ ॥५६॥ इति पदसंस्कारः ।

'खवणाद्धा०' इत्यादि, 'क्षपणाद्धासंख्यांशेषु' अघातित्रयस्य संख्येयवर्षमात्रस्थितिबन्धप्रारम्भात् परं स्थितिखण्डपृथक्त्वेन सप्तनोकषायाणां क्षपणाद्धायाः संख्यातेषु बहुभागेषु गतेषु सत्स्वित्यर्थः, 'घातिनां' स्त्रीवेदक्षपणाद्धाचरमसमये एव मोहस्य स्थितिसत्कर्मणः संख्यातवार्षिकत्वप्रतिपादनात् ज्ञानावरण-दर्शनावरणा-ऽन्तरायरूपाणां त्रयाणां कर्मणां 'सत्त्वं' स्थितिसत्कर्म संख्यवार्षिकं भवति, संख्येयवर्षप्रमितं जायते इत्यर्थः । उक्तं च कषायप्राभृतचूर्णौ **"तदो ट्ठिदिखंडयपुधत्ते गदे सत्तण्हं णोकसायाणं खवणाद्धाए संखेज्जेसु भागेसु गदेसु णाणावरणदंसणावरण अंतराइयाणं संखेज्जवस्सट्ठिदिसंतकम्मं जादं ।"** इति । ततः परमुत्तरोत्तरस्थितिघाते पूर्णे मोहनीयवद् ज्ञानावरण-दर्शनावरणा-ऽन्तरायाणामपि स्थितिसत्त्वं संख्येयगुणहीनं भवति, स्थितिसत्कर्मणः संख्येयवार्षिकत्वात् , अघातित्रयस्य च पूर्ववदसंख्येयगुणहीनं संजायते, स्थितिसत्कर्मणो-ऽसंख्येयवर्षप्रमाणत्वात् । उक्तं च कषायप्राभृतचूर्णौ—**"तदो पाए [घादिकम्माणं] ट्ठिदिबंधे ट्ठिदिखंडए च पुण्णे पुण्णे ट्ठिदिबंधट्ठिदिसंतकम्माणि संखेज्जगुणहीणाणि,णामागोदवेदणीयाणं पुण्णे ट्ठिदिखंडए असंखेज्जगुणहीणं ठिदिसंतकम्मं ।"** इति ।

'आगालो' इत्यादि, आगालः प्रत्यागालश्च, उत्तरस्थस्य चकारस्य व्यवहितसम्बन्धत्वेना-ऽत्र योजनात् 'आवलिकाद्विके' पुरुषवेदस्य प्रथमस्थितौ आवलिकाद्वये 'शेषे' अवशिष्टे व्यवच्छिन्नौ भवतः । एतदुक्तं भवति—आगलनम्—आगालः, आपूर्वको गलिधातुः, **"गल भक्षणे स्रावे च"** ततः **'भावाकर्त्रोः'** (सिद्धहेम० ५-३-१८) इत्यनेन भावे घञ् , द्वितीयस्थितितः कर्मप्रदेशानामुदीरणाप्रयोगेणोदये आगमनमित्यर्थः । न्यगादि च **कर्मप्रकृतिचूर्णौ सम्यक्त्वोत्पादाधिकारे "जं वितीयठितीतो आणेउ पोग्गले छुभति, तस्स आगाल त्ति सण्णा ।"** इति । प्रत्यागलनं प्रत्यागालः, प्रथमस्थितितः कर्मप्रदेशानामुद्वर्तनया द्वितीयस्थितौ गमनमित्यर्थः । पुरुषवेदस्याऽऽगालप्रत्यागालौ तावत् प्रवर्तेते, यावत् प्रथमस्थितेरावलिकाद्वयं शेषं

भवति, ततो व्यवच्छिद्येते, न प्रवर्तेते इत्यर्थः । उक्तं च कषायप्राभृतचूर्णौ–"पुरिसवेदस्स दो आवलियासु पढमट्ठिदीए सेसासु आगालपडिआगालो वोच्छिण्णो ।"※ इति । आगालप्रत्यागालव्यवच्छेदात् परं प्रथमस्थितितः पुरुषवेदस्योदीरणा पूर्ववत् प्रवर्तते ॥५६॥

अथ पुरुषवेदस्य जघन्योदीरणां चरमोदयं च व्याजिहीर्षुराह

समयाहिअआवलिसेसाअ जहण्णा उदीरणा होइ ।
चरिमे समयूणदुआवलिबद्धमुदयठिई सेसा ॥ ५७ ॥

समयाधिकावलिकाशेषायां जघन्योदीरणा भवति ।
चरमे समयोनद्व्यावलिकाबद्धमुदयस्थिति शेषा ॥५८॥ इति पदसंस्कारः ।

'समया०' 'समयाधिकावलिकाशेषायां' पुरुषवेदसत्कायां प्रथमस्थितौ समयाधिकावलिकायां शेषायां 'जघन्योदीरणा' एकसमयस्थितिका जघन्यस्थित्युदीरणा जघन्यानुभागोदीरणा च भवति । उक्तं च कषायप्राभृतचूर्णौ "समयाहियाए आवलियाए सेसाए जहण्णिया ठिदिउदीरणा ।" ××××× पुरिसवेदस्स जहण्णाणुभागउदीरणा कस्स ? पुरिसवेदखवगस्स समयाहियावलियचरिमसमयसवेदस्स ।' इति । तथैव कर्मप्रकृतिचूर्णावपि "ताए पढमठितीए समयाहियावलिसेसाए मिच्छत्तस्स तिण्हं वेयाणं चउण्हं संजलणाणं सम्मत्तस्स च जहण्णिया ठितिउदीरणा भवति । पंचविहअंतराइय-केवलणाणकेवलदंसणावरण-चउण्हं संजलणाणं णवण्हं णोकसायाणं एयासिं वीसाए पगईणं अप्पप्पणो उदीरणंते जहण्णिया अणुभागउदीरणा होति ।" इति । पुरुषवेदस्य प्रदेशोदीरणा तु तदानीं गुणितकर्मांशस्य महात्मन उत्कृष्टा भवति । तथा चोक्तं कषायप्राभृतचूर्णौ–"पुरिसवेदस्स उक्कस्सिया पदेसुदीरणा कस्स ? खवगस्स समयाहियावलियचरिमसमयपुरिसवेदगस्स ।" इति । तथैव कर्मप्रकृतिचूर्णावपि "वेयाणं तिण्हं पि अप्पप्पणो समयाहियावलियचरिमसमयवेयगो ।" इति । ततः परं पुरुषवेदस्य प्रथमस्थितेरावलिकायां शेषायामित्यर्थः, पुरुषवेदस्योदीरणा व्यवच्छिन्ना भवति । केवलमुदयः प्रवर्तते, कथमेतदवसीयते ? इति चेद्, शृणुत, वेदस्य जघन्या-ऽनुभागोदयः क्षपकश्रेण्यामेव प्राप्यते, विशुद्धेः प्राबल्यात् । स च जघन्या-ऽनुभागोदयो जघन्या-ऽनुभागोदीरणया सदृशो न भवति, यतो वेदस्योदीरणायां व्यवच्छिन्नायां परत आवलिकामतिक्रम्य तच्चरमसमये

※ एवं जयधवलाकारैरपि– पढमविदियट्ठिदीणमुक्कड्डणोकड्डणवसेण परोप्परं विसयसंकमो आगालपडियागालो त्ति भण्णदे । सो पुरिसवेदपढमट्ठिदीए आवलियपडिआवलियमेत्तसेसाए उप्पादाणुच्छेदेण वोच्छिण्णो त्ति भणिद होदि ।" इति ।

जघन्या-ऽनुभागोदयो जायते । उक्तं च ✽कर्मप्रकृतौ

"अणुभागुदओ वि जहण्णं नवरि आवरणविग्घवेयाण ।
संजलणलोभसम्मत्ताण य गंतूणमावलिगं ॥ १ ॥" इति ।

तथैव तट्टीकायामपि- "नवरं ज्ञानावरणपञ्चका-ऽन्तरायपञ्चक-दर्शनावरण-चतुष्टय-वेदत्रय-संज्वलनलोभ-सम्यक्त्वादीनामुदीरणाव्यवच्छेदे सति परत आवलिकां गत्वा-अतिक्रम्य तस्या-आवलिकायाश्चरमसमये जघन्याऽनुभागोदयो वक्तव्यः ।" इति । तेनोदीरणायां व्यवच्छिन्नायामपि केवलं शुद्ध उदयः प्रवर्तते इति सिद्धम् । न केवलं युक्त्या साध्यते, सप्ततिकाचूर्णिकारैरप्युक्तम् । अक्षराणि त्वेवम् "तिण्हं वेयाण तेण तेण वेदेण सेढिं पडिवण्णस्स अंतरकरणे कए पढमट्ठितीए जाव आवलिया सेस त्ति ताव उदओ य उदीरणा य जुगवं । तत्तो आवलियामेत्तं कालं उदओ चेव । उदीरणा णत्थि ।" इति । पुरुषवेदं केवलेन शुद्धेनोदयेना-ऽनुभवन् पुरुषवेदोदयस्य द्विचरम-समये संख्येयवर्षस्थितिकं हास्यषट्कं संज्वलनक्रोधे सर्वसंक्रमेण सर्वात्मना क्षपयन् पुरुषवेदस्य चरमस्थितिखण्डं घातयति । कथमेतदवसीयते ? इति चेत्, शृणुत-पञ्चप्रकृत्यात्मकसत्तास्थानस्य कालो जघन्यत उत्कृष्टतश्च समयोनद्व्यावलिकामात्रो भवति, यदुक्तं कषायप्राभृतचूर्णौ प्रकृति विभक्त्यधिकारे "पंचण्हं विहत्तिओ केवचिरं कालादो ? जहण्णुक्कस्सेण दोआवलिओ समयूणाओ ।" इति । स च जघन्योत्कृष्टकाल इत्थं भावनीयः पुरुषवेदोदयेन क्षपकश्रेणिं प्रतिपन्नः पुरुषवेदप्रथमस्थितेर्द्विचरमसमये सर्वं हास्यषट्कं पुरुषवेदस्य चैकामुदय-स्थितिमावलिकाद्वयबद्धनूतनदलं च वर्जयित्वा शेषं पुरुषवेदं सर्वात्मना क्षपयति । ततोऽनन्तर-समये-ऽर्थात् पुरुषवेदप्रथमस्थितिचरमसमये पुरुषवेदसंज्वलनचतुष्करूपाः पञ्चप्रकृतयः सत्कर्मणि विद्यन्ते । तेन ततः प्रभृति पञ्चप्रकृत्यात्मकं सत्तास्थानं प्राप्यते, तच्च तावद् भवति, यावत् सम-योनावलिकाद्वयेन बद्धनूतनपुरुषवेदः क्रोधे निश्शेषतः संक्रान्तो न भवति ✽ । इदं तु नयविशेषेण बोध्यम्, सामान्येन तु पुरुषवेदप्रथमस्थितिद्विचरमसमये हास्यषट्के क्षीणे आवलिकाद्वयं यावत् पञ्चप्रकृत्यात्मकं सत्तास्थान संभवति,एतच्च सूक्ष्मधिया परिभावनीयम् । न च क्षपयतु हास्य-

✽एवं धवलाकारैरप्युदयप्ररूपणायामुक्तम् । तथा च तद्ग्रन्थः "पचणाणावरणीय-चत्तारिदंसणावरणीय-सम्मत्त-तिण्णिवे-दलोहसजलण-पचअतराइयाणं जहण्णओ अणुभागउदओ कस्स ? जो एदेसिं कम्माण जहण्णअणुभागउदीरओ होदूण तदो आवलियाए अदिक्कंताए सो चेव जहण्णाणुभागवेदओ होदि ।" इति ।

✽ भावितश्चैवमेव जयधवलाकारैरपि, तथा च तद्ग्रन्थः —कुदो ? कोधसंजलणपुरिसवेदोदएण क्खवगसेढि चडिदस्स सवेदियदुचरिमसमए छण्णोकसाएहिं सह खविदपुरिसवेदचिराणसतस्स सवेदियचरिमसमए समयूणदोआवलियमेत्तपुरिसवेदणवकसमयपबद्धाणमुवलभादो ।

रादिवत् स्त्रीवेदे क्षीणे । यदुक्तं **कर्मप्रकृतिचूर्णौ संक्रमकरणाधिकारे**–"**ततो पुरिसवेयस्स पढमट्ठितीए समऊणदुआवलिआए सेसाए पुरिसवेदो पडिग्गहो ण होदि त्ति ।**" इति । एवं स्त्रीवेदे क्षीणे-ऽपि पुरुषवेदस्य पतद्ग्रहत्वात् हास्यषट्कं पुरुषवेदे संक्रमयति **कर्मप्रकृतिचूर्णिकारमतेन** । तेन पुरुषवेदस्य प्रभूतसञ्चयः पुरुषवेदोदयारूढस्य जीवस्य भवति । यद्यपि परवेदोदयारूढापेक्षया प्रथमस्थितेर्विशेषाधिकत्वेन प्रतिसमयमुदयेनाऽसंख्येयसमयप्रबद्धं प्रदेशाग्रं पुरुषवेदस्य निर्जरति, किन्तु हास्यषट्कतः प्रतिसमयं दलिकं गुणसंक्रमेणा-ऽऽगच्छति, अतः पुरुषवेदोदयेन प्रतिपन्नस्य क्षपकस्य गुणितकर्मांशस्य जीवस्य पुरुषवेदस्योत्कृष्टप्रदेशसञ्चयो भवति, व्ययत आयस्य प्रभूतत्वात् । तेन **कर्मप्रकृतिचूर्णिकारादीनां** मतेन स्वोदयारूढस्य जीवस्य पुरुषवेदसत्कोत्कृष्टप्रदेशसंक्रमो भवति । **कषायप्राभृतचूर्णिकारादीनां** मतेन पुनः परोदयेनारूढस्यैव जीवस्य पुरुषवेदसत्कोत्कृष्टप्रदेशसंक्रमो भवति, स्त्रीवेदे क्षीणे पुरुषवेदस्य पतद्ग्रहत्वाभावेना-ऽऽयतो व्ययस्य प्रभूतत्वात् ।

अथ पुरुषवेदस्य चरमोदयं तदानीं चा-ऽवशिष्यमाणं पुरुषवेदस्य दलं प्ररूपयिषुराह– '**चरिमे**' इत्यादि, 'चरमे' पुरुषवेदोदयचरमसमये 'समयोनद्व्यावलिकाबद्धं' पुरुषवेदस्य समयोनावलिकाद्वयेन बद्धं नूतनप्रदेशाग्रं शेषं विद्यते, द्वितीयस्थितौ समयोना-ऽऽवलिकाद्वयबद्धदलं सत्कर्मण्यवशिष्यते इत्यर्थः, तथा 'उदयस्थितिः शेषा' पुरुषवेदस्यैकोदयस्थितिः शेषा भवति, शेषः सर्वः पुरुषवेदः सर्वात्मना क्षीणः । यदादि च **कषायप्राभृतचूर्णौ**–"**तदो चरिमसमयसवेदो जादो, ताधे छण्णोकसाया संछुद्धा । पुरिसवेदस्स जाओ दो आवलिआओ समयूणाओ, एत्तिगा समयपबद्धा विदियठिदीए अत्थि, सेसं पुरिसवेदस्स संतकम्मं सव्वं संछुद्धं ।**" इति ।

ननु समयोनद्व्यावलिकाबद्ध-नूतनपुरुषवेददलं प्रथमस्थितिचरमसमये कुतो न सर्वथा क्षपयति ? इति चेत्, शृणुत – पुरुषवेदस्य प्रथमतो बन्धः प्रवर्तते, तेन यथा चिरकालबद्धदलं क्षपयति, तथैव नूतनबद्धदलिकमपि क्षपयति, किन्तु बन्धावलिकायां व्यतिक्रान्तायामेव, नार्वाग्, बन्धावलिकायाः सकलकरणा-ऽयोग्यत्वात् । अतः पुरुषवेदप्रथमस्थितिसत्कद्विचरमाऽऽवलिकायाः प्रथमसमये पुरुषवेदस्य बद्धं दलिकं बन्धसमयादारभ्याऽऽवलिकाचरमसमयं यावत्तदवस्थं तिष्ठति, तत्क्षपणं नास्ति, बन्धावलिकायाः सकलकरणा-ऽयोग्यत्वात् । तदनन्तरं प्रथमस्थितिचरमाऽऽवलिकाप्रथमसमयात् प्रभृति क्षपयितुमारभते, एकसमयेन बद्धं दलिकं क्षपयितुमावलिकाप्रमाणः कालो गच्छतीति कृत्वा प्रथमस्थितिसत्कद्विचरमावलिकाप्रथमसमयेन बद्धं दलं चरमावलिकायाश्चरमसमये सर्वथा क्षपयति, द्विचरमावलिकाद्वितीयसमयेन बद्धं दलं चरमाऽऽवलिकायाः प्रथमसमयं यावत्तदवस्थं तिष्ठति । ततश्चरमावलिकाया द्वितीयसमयात् प्रभृति प्रतिसमयं क्षपयंश्चरमावलिका-

चरमसमये न सर्वथा क्षपयति, किन्त्वपगतवेदप्रथमसमये सर्वथा क्षपयति, एवं द्विचरमावलिकासत्कतृतीयादिसमयैरपि बद्धदलिकं पुरुषवेदोदयचरमसमये न सर्वात्मना क्षपयति। तेन पुरुषवेदोदयचरमसमये समयोना-ऽऽवलिकाद्वयबद्धदलिकं न निश्शेषतः क्षीणं भवति, तावता कालेन बद्धदलं तदानीं सत्कर्मणि विद्यते इत्यर्थः, इत्यलं प्रपञ्चेन। तच्च नूतनदलमश्वकर्णकरणाद्धायां तावता कालेन क्षपयिष्यति।

पुरुषवेदोदयचरमसमये जघन्यस्थित्युदयो जघन्याऽनुभागोदयश्च भवति। उक्तं च कर्मप्रकृतौ

"ठिइउदओ वि ठिइक्खयपयोगसा ठिइउदीरणा अहिगो।
उदयठिईए हस्सो छत्तीसा एगउदयठिई ॥ १ ॥
अणुभागुदओ वि जहण्णं नवरि आवरणविग्घवेयाण।
संजलणलोभसम्मत्ताण य गंतूणमावलिगं ॥ २ ॥" इति।

तदानीमेव गुणितकर्मांशस्य जीवस्य पुरुषवेदस्योत्कृष्टप्रदेशोदयो भवति। उक्तं च कर्मप्रकृतिचूर्णौ "संमत्तस्स चउण्हं संजलणाणं तिण्हं वेयाणं तेसिं अट्ठण्ह खवगस्स गुणियकम्मंसिगस्स अप्पप्पणो उदयचरिमसमते वट्टमाणस्स उक्कोसतो पदेसुदओ।" इति ॥ ५७ ॥

पुरुषवेदस्य चरमस्थितिबन्धं स्थितिसत्त्वं च निजिगदिषुराह-

पुरिसस्स अट्ठवरिसा सोलसवरिसाणि संजलणगाणं।
बंधो संतं घाइअघाईणं संखऽसंखवासाइं ॥५८॥ (गीतिः)

पुरुषस्याऽष्टवर्षा षोडशवर्षाणि संज्वलनानाम्।
बन्धः सत्त्वं घात्यघातिनां सङ्ख्याऽसङ्ख्यवर्षाणि ॥ ५८ ॥ इति पदसंस्कारः।

'पुरिसस्स' इत्यादि, 'पुरुषस्य' पुरुषवेदस्य 'बन्धः' स्थितिबन्धः 'अष्टवर्षाः' अष्टवर्षप्रमाणो भवति। 'संज्वलनानां' संज्वलनक्रोधमानमायालोभानां 'षोडशवर्षाणि' षोडशवर्षप्रमाणः स्थितिबन्धो जायते, शेषाणां षट्कर्मणां स्थितिबन्धः पूर्ववत् संख्येयवर्षसहस्रप्रमाणो भवति। न च स्त्रीवेदक्षपणाद्धासंख्येयतमे भागे गते त्रयाणां घातिकर्मणां, सप्तनोकषायक्षपणाद्धासंख्येयतमभागे च व्रजिते-ऽघातित्रयस्य संख्येयवर्षमात्रः स्थितिबन्धो-ऽभिहितः, इदानीं पुनः संख्येयवर्षसहस्रप्रमितः कुत उच्यते ? निरुक्तस्थानतः प्रभृति निरुक्तकर्मणां स्थितिबन्धे प्रत्यन्तर्मुहूर्तं संख्येयगुणहानिदर्शनादिति वाच्यम्, तदानीमसंख्येयवार्षिकत्वनिषेधायाऽभिहितत्वात्, वस्तुतस्तदानीमपि संख्यातसहस्रवर्षमितस्थितिबन्धस्येष्टत्वेऽपि संख्यातराशेरनेकविधत्वेन संख्यातसहस्राणामपि

षट्कं पुरुषवेदोदयद्विचरमसमये, पञ्चप्रकृत्यात्मकसत्तास्थानसत्कस्य कालस्य समयोनावलिकाद्वयमात्रत्वात्, पुरुषवेदस्य चरमस्थितिखण्डं तदानीमेव घात्यते इत्येतद् कथमवगन्तव्यम् ? इति वाच्यम्, कषायप्राभृतचूर्णौ प्रदेशविभक्त्यधिकारे उक्तत्वात् । तथाहि पुरुषवेदोदयद्विचरमसमये पुरुषवेदस्य चरमस्थितिखण्डं सर्वात्मना घात्यते । तथा चाऽत्र कषायप्राभृतचूर्णिः "दुचरिमसमयसवेदस्स चरिमट्ठिदिखंडगं चरिमसमयविणट्ठं।" तथा कर्मप्रकृतिचूर्णावपि सत्ताधिकारे प्रथमस्थितेर्द्विचरमसमये पुरुषवेदस्य चरमस्थितिघाताद्धायाश्चरमसमये यज्जघन्यं प्रदेशसत्त्वं भवति, तत आरभ्य एकैकपरमाणुना वृद्धमुत्कृष्टप्रदेशसत्त्वं यावद् यावन्ति स्थानानि लभ्यन्ते, तेषामेकं स्पर्धकं विहितम् । तथा चाऽत्र कर्मप्रकृतिचूर्णिः दुचरिमसमयपुरिसवेयगस्स अपच्छिमठितिखंडगस्स चरिमसमए जहण्णगं पदेससंतं आदि काऊण जाव अप्पणो उक्कोसं पदेससंतं निरंतराणि ठाणाणि लब्भंति ।" इति । अत्र वेदोदयद्विचरमसमये-ऽर्थात् पुरुषवेदप्रथमस्थितिद्विचरमसमये स्थितिघाताद्धायाश्चरमसमयप्रतिपादनाद् एतद् सूपपद्यते, यद् पुरुषवेदोदयद्विचरमसमये पुरुषवेदस्य चरमस्थितिखण्डं घात्यते ।

अन्ये पुनराहुः-पुरुषवेदोदयचरमसमये हास्यषट्कं सर्वथा क्षीयते, हास्यषट्कक्षयसमकाले पुरुषवेदबन्धस्य व्यवच्छेदप्रतिपादनात् । उक्तं च श्रीमदुपाध्यायपुङ्गवैः "यस्तु पुरुषवेदेन क्षपकश्रेणिं प्रतिपन्नस्तस्य नोकषायषट्कक्षयसमकालं पुरुषवेदस्य बन्धव्यवच्छेद इति ।" एवं पुरुषवेदोदयचरमसमये नवकबद्धपुरुषवेदं विहाय शेषः पुरुषवेदः क्षीयते इति मन्यन्ते ।

अन्यच्च कर्मप्रकृतिचूर्णिकृता पुरुषवेदस्य प्रथमस्थितौ समयोनद्व्यावलिकायां शेषायां पुरुषवेदस्य पतद्ग्रहत्वं निषिद्धम् । अक्षराणि त्वेवम्-"ततो पुरिसवेयस्स पढम ठितिए समऊणदुआवलिआए सेसाए पुरिसवेदो पडिग्गहो ण होति त्ति ते दस पुरिसवेदूणेसु चउसु संजलणेसु समयूणदुआवलियमेत्तं संकमंति ।" इति । तच्च मतान्तरमन्यथा वा परिभावनीयम् । कषायप्राभृतचूर्णिसप्ततिकाचूर्णिकारादिमतेन तु स्त्रीवेदे क्षीणे पुरुषवेदः पतद्ग्रहो न भवति, यतः कषायप्राभृतचूर्णिकारमतेना-ऽन्तरकरणनिष्ठातः प्रभृति हास्यषट्कं पुरुषवेदे न संक्रमयति, केवलं स्त्रीनपुंसकलक्षणवेदद्वयं संक्रमयति, तस्य च क्षीणत्वात् न कांचिदपि प्रकृतिं पुरुषवेदे संक्रमयति । सप्ततिकाचूर्णिकाराद्यभिप्रायेण स्त्रीवेदे क्षीणे हास्यषट्कं संज्वलनक्रोधे संक्रामन्ति, न पुरुषवेदे, तच्च प्राग् दर्शितम् । आनुपूर्वीसंक्रमसद्भावाच्च क्रोधादयः पुरुषवेदे न सक्रामन्ति ।

हास्यषट्कस्य चरमस्थितिखण्डं संक्रमयतो जन्तोर्हास्यषट्कस्य जघन्यस्थितिसंक्रमो

जघन्योऽनुभागसंक्रमश्च भवति, प्रदेशसंक्रमस्तु गुणितकर्मांशस्य जन्तोरुत्कृष्टो भवति। उक्तं च कर्मप्रकृतिचूर्णौ "सेसगाणं ति वुत्तसेसाणं थीणगिद्धितिग-तेरसणामा अट्ठकसायणवणोकसाया कोहसंजलणमाणमायासंजलणाणं एयासिं छत्तीसाए कम्मपगतीणं 'खवणाकमेण' त्ति खवणपरिवाडिते चेव अप्पणो चरिमसंछोभे वट्टमाणो अनियट्टिजहण्णट्ठितिसंकमसामो। ×××× अंतरकरणे कए उवरि जासिं घातिकम्माणं जहिं जहण्णगो ट्ठितिसंकमो भणितो, तासिं अप्पप्पणो ठाणे तहिं जहण्णाणुभागसंकमो। ××× थीणगिद्धितिग-छन्नोकसायासत्तणाम-अट्ठकसायाणं एतासिं चउवीसाए पगतीणं गुणितकंमंसितस्स अणियट्टिकरणे वट्टमाणस्स उक्कोस्सो पदेससंकमो सव्वसंकमेण लब्भति।" इति। एवं कषायप्राभृतचूर्णावपि।

तदानीमेव कर्मप्रकृतिकारादीनामभिप्रायेण पुरुषवेदोदयारूढस्य गुणितकर्मांशस्य क्षपकस्य पुरुषवेदस्योत्कृष्टप्रदेशसंक्रमो भवति। अक्षराणि त्वेवम् "ततो चुतो 'लहुं'ति मासपुहुत्तठवासिगो 'पुरिसं संछुभमाणस्स' त्ति खवणाए उवट्ठियस्स पुरिसवेदं चरिमसंछोभणाए संछुभमाणस्स पुरिसवेदस्स उक्कोस्सगो पदेससंकमो संसारे उवचियस्स दलियस्स गुणसंकमेण संचियस्स चरिमसंछोभे होइ। दोहिं आवलियाहिं बन्धवोच्छेदो होहिति त्ति जं तम्मि काले दलितं बद्धं, तण्ण होति संसारोवचियं। मोत्तुं सेसस्स उक्कोसो पदेससंकमो भवति।" इति। कषायप्राभृतचूर्णिकारादीनां मतेन पुनर्यो गुणितकर्मांशः स्त्रीवेदोदयेन वा नपुंसकवेदोदयेन वा क्षपकश्रेणिं प्रतिपद्यते, स एव पुरुषवेदस्योत्कृष्टतः प्रदेशाग्रं संक्रमयति, न पुरुषवेदोदयारूढः, कथमेतदवसीयते इति चेत्? उच्यते, यः पुरुषवेदोदयेन क्षपकश्रेणिमधिगच्छति, तस्य जीवस्य वेदस्य प्रथमस्थितिः स्त्रीवेदोदयारूढस्य वेदप्रथमस्थितितः सङ्ख्येयभागेनाऽधिका भवति, स्त्रीवेदे क्षीणे कषायप्राभृतकारादीनां मतेन पुरुषवेदोदयारूढस्य जीवस्य पुरुषवेदे न काचिदपि प्रकृतिः संक्रामति, तेन स्त्रीवेदक्षयादुपरि केवलं बन्धेनैकसमयप्रबद्धदलिकमागच्छति, उदयेन तु प्रतिसमयमसंख्यसमयप्रबद्धदलं निर्जरामेति, एवमायतो व्ययः प्रभूतो भवति, तेन पुरुषवेदस्योत्कृष्टप्रदेशसंक्रमो गुणिताकर्मांशस्य स्त्रीवेदोदयारूढस्य नपुंसकवेदोदयारूढस्य च जीवस्य पुरुषवेदसत्कचरमखण्डाद्धाचरमसमये भवति, तस्यैवोत्कृष्टप्रदेशसञ्चयसम्भवात्।

न च कर्मप्रकृतिचूर्णिकारादयोऽपि पुरुषवेदस्योत्कृष्टप्रदेशसंक्रमः परवेदोदयेनाऽऽरूढस्य गुणितकर्मांशस्य जीवस्य कुतो न मन्यन्ते? इति वाच्यम्, मतान्तरसम्भवेन विरोधाभावात्, तथाहि कर्मप्रकृतिचूर्णिकारादयः पुरुषवेदस्य पतद्ग्रहता पुरुषवेदप्रथमस्थितौ समयोनद्व्यावलिकाशेषायामपगच्छतीति मन्यन्ते, न तु कषायप्राभृतचूर्णिसप्ततिकाचूर्णिका-

संख्यातराशौ समावेशात् । उक्तं च कषायप्राभृतचूर्णौ "सत्तण्हं णोकसायाणं संकामयस्स **चरिमो ठिदिबंधो पुरिसवेदस्स** अट्ठवस्साणि, संजलणाण सोलसवस्साणि, सेसाणं कम्माणं संखेज्जाणि वस्ससहस्साणि ठिदिबंधो ।" इति ।

अथ स्थितिसत्त्वं विभणिषुराह 'संतं' इत्यादि, 'सत्त्वं' स्थितिसत्त्वं 'घात्यघातिनां' घातिकर्मणामघातिकर्मणां च यथासंख्यं 'संख्या-ऽसंख्यवर्षाणि' संख्यवर्षाण्यसंख्यवर्षाणि च भवति । सप्तनोकषायक्षपणाद्धासत्कसंख्येयभागशेषतः प्रभृति संख्येयः स्थितिखण्डगहस्रैर्घातितं सद् इदानीमपि ज्ञानावरण-दर्शनावरण-ऽन्तराय-मोहनीयानां स्थितिसत्त्वं संख्येयवर्षमात्रं नाम-गोत्र-वेद-नीयानां चा-ऽसंख्येयवर्षप्रमितमवतिष्ठते इत्यर्थः । अमाणि च कषायप्राभृतचूर्णौ "**ठिदि-संतकम्मं पुण घादिकम्माणं चदुण्हं पि संखेज्जाणि वस्ससहस्साणि, णामा-गोद-वेदणीयाणमसंखेज्जाणि वस्साणि ।**" इति ।

तदानीमेव पुरुषवेदस्य बन्धोदयौ व्यवच्छिद्यमानौ व्यवच्छिन्नौ भवतः । केचित्तूदीरणा सहैव बन्धोदयौ व्यवच्छिद्येते, न त्वावलिकायाः पूर्वमुदीरणा व्यवच्छिद्यते इत्याहुः । तथा चा ऽत्र सप्ततिकाचूर्णिः "**तओ खविज्जमाणा खविज्जमाणा अंतोमुहुत्तेणं तो नोकसायछक्कं पि छुब्भति, संजलणकोहम्मि' त्ति छन्नोकसाया कोहसंजलणाए सछुभा । तम्मि चेव समए पुरिसवेयस्स बंधोदयोदीरणवोच्छेओ ।**" इति । तथैवोक्तं श्रीमदुपाध्याय-पुङ्गवैः कर्मप्रकृतिटीकायाम् "**तत्समये एव च पुंवेदस्य बन्धोदयोदीरणोच्छेदः ।**" इति । एतच्च मतान्तरं संभवति, अन्यथा सप्ततिकाचूर्णावेवोदयविच्छेदतः प्रागुदीरणाविच्छेदो य उक्तः, अक्षराणि त्वेवम् "**तिण्हं वेयाण तेण तेण वेदेण सेढिं पडिवण्णस्स अंतरकरणे कए पढमठितीए जाव आवलियासेस त्ति ताव उदओ य उदीरण य जुगवं । ततो आवलियामेत्तं कालं 'उदओ चेव, उदीरणा नत्थि ।**" इति । स न घटेत । अत्र मतद्वय-संग्रहार्थं सप्ततिकाचूर्णिकारैरुभयथा प्ररूपितम्, यद्वा कारणान्तरेण, तदभिप्रायं तु वयं न विद्म. । अन्ये पुनराहुः–बन्धोदयौ युगपन्न व्यवच्छिद्येते, किन्तु प्राग् बन्धो व्यवच्छिद्यते, तत उदयः । कथमेतदवसीयते ? इति चेद्, उच्यते–केचित् संज्वलनक्रोधादिचतुष्प्रकृत्यात्मकबन्धस्थानकाले पुरुषवेदसंज्वलनक्रोधत्रिकरूपचतुष्प्रकृत्यात्मकसंक्रमस्थानसद्भावे वेदोदयं मन्यन्ते, तेन तेषां मतेन चतुर्विधबन्धकस्य जन्तोर्वेद-कषायलक्षणद्विकोदये द्वादशभङ्गाः संभवन्ति । तथा चात्र पञ्चसंग्र-हमूलटीका "**चतुर्विधबन्धकस्याप्याद्यविभागे त्रयाणां वेदानामन्यतमस्य वेद-स्योदयं केचिदिच्छन्ति, अतश्चतुर्विधबन्धकस्याऽपि द्वादश द्विकोदयात् जानी-हीति ।**" इति । तथैव सप्ततिकाचूर्णि. "**एत्थ अण्णे अण्णारिसं पढंति । तच्चेदम्-पंचाओ चउक्कं संकममाणस्स होंति ते चेव । वेएहिं परिहीणा चउरो चरिमेसु**

कसिणेसु ।" इति । तथैव सप्ततिकावृत्तावपि न्यगादि- 'इह केचिच्चतुर्विधबन्धसंक्रमणकाले त्रयाणां वेदानामन्यतमस्य वेदस्योदयमिच्छन्ति, ततस्तन्मतेन चतुर्विधबन्धकस्याऽपि प्रथमकाले द्वादश द्विकोदये भङ्गा लभ्यन्ते ।" इति । इत्थमिदं स्फुटीभवति, यत् पुरुषवेदस्योदये-ऽपि तद्बन्धो नास्ति, वेदकषायलक्षणद्विकोदयेऽपि क्रोधमानमायालोभात्मकचतुष्प्रकृत्यात्मकबन्धस्थानस्योपलम्भात्※ ।

नपुंसकवेदक्षयप्रभृतयो यन्त्रके प्रदर्श्यन्ते ।

(१) (i) अन्तरकरणनिष्पादनात संख्येयसहस्रस्थितिबन्धेषु गतेषु नपुंसकवेद. सर्वथा क्षीणो भवति । गा०-५१
(ii) तदानीं गुणितकर्मांशस्य क्षीप्रक्षपकस्य जीवस्य नपुंसकवेदस्योत्कृष्टप्रदेशसंक्रमो भवति ।
(२) तत. स्त्रीवेद क्षपयितुमारभते । गाथा-५१
(३) स्थितिखण्डपृथक्त्वेन स्त्रीवेदक्षपणाया. सङ्ख्येयतमे भागे गते त्रिघातिकर्मणां संख्येयवार्षिक. स्थितिबन्धो भवति । इत ऊर्ध्वं घातित्रयस्य स्थितिबन्ध सङ्ख्येयगुणहीन । गाथा-५२
(४) (i) तत. स्थितिखण्डपृथक्त्वेन शेषेषु स्त्रीवेदक्षपणाद्धाया सङ्ख्येयबहुभागेषु गतेषु स्त्रीवेदः सर्वात्मना क्षीण ।
(ii) तदानीं गुणितकर्मांशस्य जीवस्य स्त्रीवेदस्योत्कृष्टप्रदेशसंक्रमो भवति । गाथा-५२
(५) तदनन्तरसमये सप्तनोकषायाणा क्षपणारम्भः । गाथा-५३-५४-५५

(i) तदानीं स्थितिबन्धाल्पबहुत्वम्
(१) मोहनीय स्थितिबन्ध. स्तोक ।
(२) ततो घातित्रयस्य स्थितिबन्ध सङ्ख्येयगुण ।
(३) ततो नामगोत्रयो स्थितिबन्धोऽसङ्ख्येयगुणः
(४) ततो वेदनीयस्य स्थितिबन्धो विशेषाधिक. ।

(ii) तदानीं स्थितिसत्त्वाल्पबहुत्वम्
(१) मोहनीयस्य स्थितिसत्त्व स्तोकम्
(२) ततो घातित्रयस्य स्थितिसत्त्वमसङ्ख्येयगुणम्
(३) ततो नामगोत्रयोः " " "
(४) ततोऽपि वेदनीयस्य स्थितिसत्त्वं विशेषाधिकम् ।

(६) तत स्थितिखण्डपृथक्त्वेन सप्तनोकषायक्षपणाद्धाया सङ्ख्येयतमे भागे गतेऽघातिनां कर्मणां सङ्ख्येयवार्षिक स्थितिबन्धो जायते । गाथा-५५
(७ तत स्थितिखण्डपृथक्त्वेन सप्तनोकषायक्षपणाद्धाया सङ्ख्येयेषु बहुभागेषु गतेषु ज्ञानावरणदर्शनावरणाऽन्तरायाणां सङ्ख्येयवर्षप्रमितं स्थितिसत्त्वं जायते । गाथा-५६
(८) पुरुषवेदस्य प्रथमस्थितावावलिकाद्वयशेषायामागालप्रत्यागालौ व्यवच्छिन्नौ ।
(९) (i) पुरुषवेदस्य प्रथमस्थितौ समयाधिकावलिकाशेषायां पुरुषवेदस्य जघन्या स्थित्युदीरणा जघन्यानुभागोदीरणा च भवति ।
(ii) तदानीमेव गुणितकर्मांशस्य जीवस्योत्कृष्टप्रदेशोदीरणा भवति ।
(१०) (i) तत आवलिकायां गतायां पुरुषवेदस्य चरमोदय ।
(ii) तदानीं हास्यषट्कं निश्शेषं क्षीणं समयोनद्व्यावलिकाबद्धनूतनदल च वर्जयित्वा शेष. पुरुषवेद क्षीण ।

अपूर्णम्

※ उक्तञ्च गोमटसारटीकायामपि 'पुरुषवेदोदयेन श्रेण्यारूढे पुंवेदस्य बन्धव्युच्छित्ति उदयव्युच्छित्तिश्च द्वे युगपदेव । अथवा चक्षब्दाद् बन्धव्युच्छित्तिः उदयद्विचरमसमये स्यात् ।" इति ।

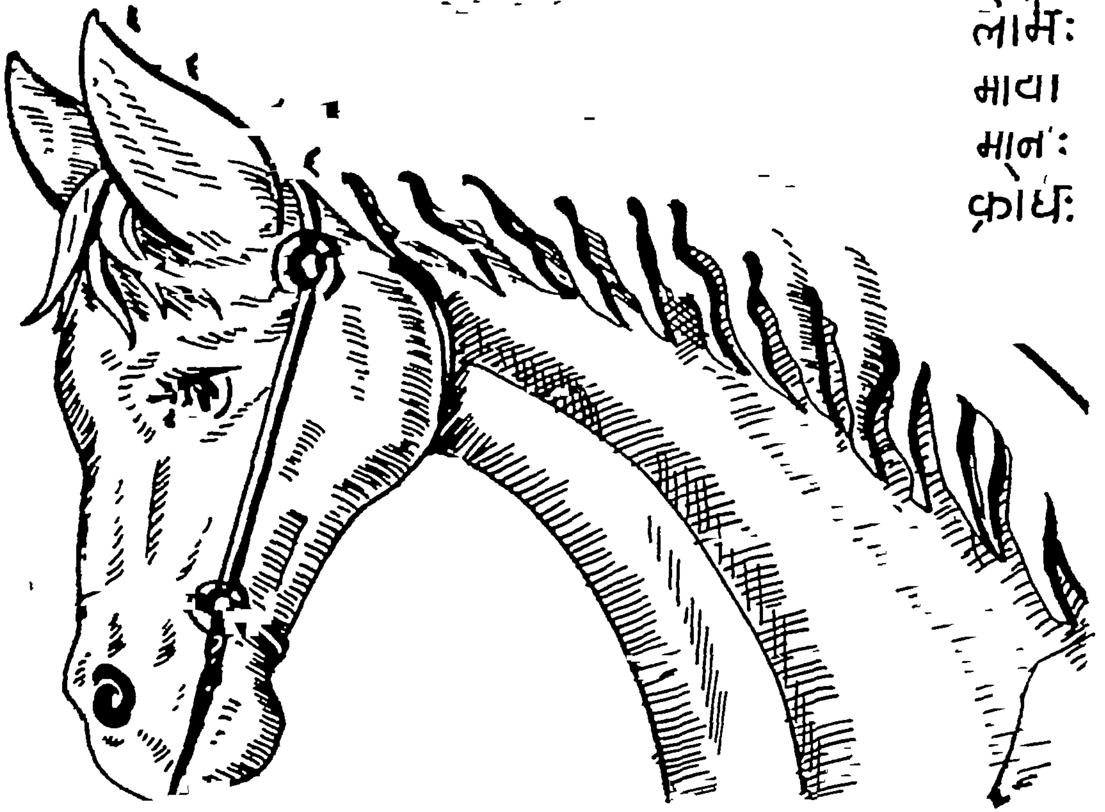
(iii) पुरुषवेदस्य बन्धोदयौ व्यवच्छिद्यमानौ व्यवच्छिन्नौ ।
(iv) केचित् बन्धोदयाभ्यां सहैवोदीरणा व्यवच्छिन्ना भवतीति मन्यन्ते ।
(v) केचिदाहु.-पुरुषवेदस्य बन्ध प्राग् व्यवच्छिद्यते, तत उदय ।
(vi) पुरुषवेदस्य जघन्यस्थित्युदयो जघन्यानुभागोदयो गुणितकर्मांशस्य चोत्कृष्टप्रदेशोदयो भवति ।
(vii) स्थितिबन्धः पुरुषवेदस्याष्टवर्षप्रमाण. ।
(viii) „ „ सञ्ज्वलनचतुष्कस्य षोडशवार्षिक ।
(ix) शेषाणां षण्णां कर्मणा स्थितिबन्ध सख्यातवार्षिक. ।
(x) घातिकर्मणां स्थितिसत्त्वं सख्येयानि वर्षाणि, (xi) अघातिनां चाऽसख्येयानि वर्षाणि ।
(११) ततोऽश्वकर्णकरणाद्धाप्रारम्भ, पुरुषवेदस्य बद्धनूतनदल यथागम प्रतिसमय सक्रमयति ।

पुरुषवेदस्य चरमोदयस्थितिमनुभूयाऽश्वकर्णकरणाद्धायां प्रविशति । तत्रा-ऽश्वकर्णकरणाद्धाया॰ प्रथमसमयात् पुरुषवेदस्य समयोना-ऽऽवलिकाद्वयेन बद्धनूतनदलं संज्वलनक्रोधे संक्रमयन् तावता कालेन सर्वथा क्षपयति । तत्र पुरुषवेदक्षपणाचरमसमये पुरुषवेदस्य जघन्यस्थितिसत्कर्म जघन्याऽनु-भागसत्कर्म जघन्ययोगिना बद्धपुरुषवेददलिकस्य जघन्यप्रदेशसत्त्वं भवति । उक्तं च कषाय-प्राभृतचूर्णौ-' पुरिसवेदस्स जहण्णट्ठिदिविहत्ती कस्स ? पुरिसवेदखवयरस चरिमस-मयअणिल्लेविदपुरिसवेदस्स । ×××× पुरिसवेदस्स जहण्णाणुभागसंतकम्मं कस्स? पुरिसवेदेण उवट्ठिदस्स चरिमसमयअसंकामयस्स । ×××× पुरिसवेदस्स जहण्णयं पदेससंतकम्मं कस्स ? चरिमसमयपुरिसवेदोदयक्खवगेण घोलमाणजहण्णजोग-ट्ठाणे वट्टमाणेण जं कम्मं बद्धं, तं कम्ममावलियसमयअवेदो संकामेदि । जत्तो पाए संकामेदि, तत्तो पाए सो समयपबद्धो आवलियाए अकम्मं होदि । तदो एगसमय-मोसक्किदूण जहण्णयं पदेससंतट्ठाणं ।'' इति ।

तदानीं च स्वबन्धचरमसमयेन बद्धं पुरुषवेदं निःशेषत. सर्वसंक्रमेण संक्रमयतो जन्तोः पुरुषवेदस्य जघन्यः स्थितिसंक्रमो ऽनुभागसंक्रमश्च भवति । उक्तं च कषायप्राभृतचूर्णौ-' कोह-संजलणस्स जहण्णट्ठिदिसंकमो कस्स ? खवयस्स कोहसंजलणस्स अपच्छिमट्ठिदि-बंधचरिमसमयसंछुहमाणयस्स तस्स जहण्णयं, एवं माणमायासंजलणपुरिस-वेदाणं । ×××× कोहसंजलणस्स जहण्णाणुभागसंकामओ को होइ ? चरिमाणु-भागबंधस्स चरिमसमयअणिल्लेवगो, एवं माणमायासंजलणपुरिसवेदाणं ।'' इति तथैव कर्मप्रकृतिचूर्णावपि ''ततो पुरिसवेदं खवेति, तस्स समयूणदुआवलियबधो सव्वजहन्नगो ठितिसंकमो लब्भति । अंतरकरणे कए उवरि जासि घातिकम्माणं जहिं जहण्णगो ट्ठितिसंकमो भणितो, तासिं अप्पप्पणो ठाणे तहिं जहण्णाणुभागसंकमो ।''

तदानीमेव कर्मप्रकृतिचूर्णौ जघन्यप्रदेशसंक्रमोऽप्युक्तः । तथा च तद्ग्रन्थः ''पुरिस-कोहमाणमायासंजलणाणं 'घोलमाणेणं' ति जहण्णगजोगिणा 'चरिमबद्धस्स'

अश्वकर्णकरणाद्धायाश्चित्रम्



संक्षेपतो विवरणम्

अस्मिंश्चित्रेऽश्वस्य कर्णो दर्शित, स च मध्यभागे बाहल्यत' प्रभूत, ततो हीनो हीनतर, एवमेवाऽश्वकरणाद्धाया प्रथमेऽनुभागखण्डे विनाशिते संज्वलनक्रोधादीनां क्रमश सत्तागतोऽनुभागो हीनो हीनतर भवति। इहाऽश्वकर्णोऽनन्तगुणक्रमेण हीनो हीनतरो न सम्भवति, किन्तु विशेषहीन. सङ्ख्यातगुणहीनो वा सम्भवति, तेन सादृश्यं केवलहीनत्वहीनतरत्वाद्यपेक्षया बोध्यम्, न त्वनन्तगुणहीनत्वाद्यपेक्षया।

"लोभवेदनकालस्याद्यत्रिभागोऽश्वकर्णकरणाद्धा, यथाह्यश्वकर्णस्तले बहुस्थूल क्रमेणाऽपकर्षतो यावदन्तेऽतीवतनुरूपस्तथावस्थितस्योपशमकस्योपरितनस्थिते पूर्वस्पर्द्धकानामपूर्वतया विधानेन तदाकृतिभावादनुभागोऽश्वकर्ण इवाश्वकर्णस्तस्य करणाद्धेति।" इति श्रीमुनिचन्द्रसूरिपादै श्रीशतकचूर्णिटिप्पनेऽश्वकर्णकरणाद्धार्थो व्याख्यात, सोऽपि नाऽत्र विरुध्यते क्षपकैरप्यपूर्वस्पर्धकाना निर्वृत्तेः।



आन्दोलकरणाद्धायाश्चित्रम्

क्रोध

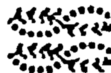
मानः

माया

लोभ

संक्षेपतो विवरणम्

अस्मिंश्चित्रे आन्दोलो दर्शितः, तत्र वृक्षशाखाया रज्ज्वाश्चान्तरालगत आकारस्त्रिकोणीभूय क्रमेण हीनो हीनतरो भवति, एवमेवास्यामद्धायां प्रथमेऽनुभागखण्डे घातिते संज्वलनक्रोधादीनामनुभागसत्कर्माऽनन्तगुणक्रमेण हीनं हीनतरं भवति, इह चित्रे त्रिकोणाकारो विशेषहीनक्रमेण सम्भवति, न त्वनन्तगुणहीनक्रमेण, तेन सादृश्यं केवलहीनत्वाद्यपेक्षया बोध्यम् ।



खवणाए अब्भुट्ठियस्स अप्पप्पणो चरिमसमयबद्धस्स 'सगअंतिमे'त्ति अप्पप्पणो चरिमसमए छोभे सव्वसंकमेणं जहण्णातो पदेससंकमो होति त्ति । कहं ? भण्णइ-एतेसिं चतुण्हं बंधवोच्छेयकाले दुआवलियबद्धलतं मोत्तूण अण्णं णत्थि पदेसग्गं, तं च समए समए खोयमाणं अंतिमे समए अंतिमसमयबद्धस्स असंखेज्जतिभागो सेसो भवति, तेण चरिमसमए जहण्णातो पदेससंकमो होइ ।" इति । कषायप्राभृत-चूर्णिकारैस्तु चरमसमयबद्धप्रदेशाग्रं संक्रमयत उपशमकस्य जघन्यप्रदेशसंक्रमोऽभिहितः । तथा च तद्ग्रन्थः "कोहसंजलणस्स जहण्णओ पदेससंकमो कस्स ? उवसामयस्स चरिमसमयबद्धो जाधे उवसामिज्जमाणो उवसंतो, ताधे तस्स कोहसंजलणस्स जहण्णओ पदेससंकमो, एवं माणमायासंजलणपुरिसवेदाणं । इति ॥ ५८ ॥

तदेवमभिहितस्तृतीयो-ऽधिकारः । सम्प्रति "हयकण्ण०" इत्यनेनोद्दिष्टस्य चतुर्था-ऽधिकारस्या-ऽवसरः । यद्यपि चतुर्थाधिकारः पञ्चमा ऽधिकारो बादरकिट्टिपर्यवसानः षष्ठोऽधिकारश्चेत्येते-ऽनिवृत्तिकरणे एव भवन्ति, बादरकिट्टिवेदनचरमसमयं यावदनिवृत्तिबादरसम्परायगुणस्थानस्योपलम्भात् , तथापि क्रियाविशेषप्रतिपादनार्थमनिवृत्तिकरणतः पृथगधिकारत्वेन हयकर्णकरणाद्धादयो निर्दिष्टाः । अनिवृत्तिकरणं तु बादरकिट्टिवेदनाद्धाचरमसमये व्यवच्छेत्स्यति । पुरुषवेदोदयेऽपगते क्रोधवेदनाद्धायास्त्रयो भागाः कर्तव्याः । तत्र प्रथमभागे हयकर्णकरणाद्धा, द्वितीयभागे किट्टिकरणाद्धा, तृतीयभागे च क्रोधकिट्टिवेदनाद्धा । अथ चतुर्था-ऽधिकारं हयकर्णकरणाद्धालक्षणं विभणिषुरादौ तावद् हयकर्णकरणाद्धायाः पर्यायनामानि प्राह

हयकण्णादोलोव्वट्टणउव्वट्टणकरणअद्धा ।
हयकण्णकरणकालस्स तिन्नि णामाणि णेयाणि ॥५९॥ (उपगीतिः)

हयकर्णा-ऽऽदोला-ऽपवर्तनोद्वर्तनकरणा-ऽद्धा ।
हयकर्णकरणकालस्य त्रीणि नामानि ज्ञेयानि ॥५९॥ इति पदसंस्कारः ।

'हयकण्ण०' इत्यादि, 'हयकर्णा-ऽऽदोलापवर्तनोद्वर्तनाकरणाद्धा' करणाद्धाशब्दः प्रत्येकमभिसम्बध्यते । ततश्चा-ऽयमर्थः हयकर्णकरणाद्धा आदोलकरणाद्धा अपवर्तनोद्वर्तनकरणाद्धा च 'हयकर्णकरणकालस्य' अश्वकर्णकरणाद्धायाः 'त्रीणि' त्रिसंख्याकानि 'नामानि' पर्यायनामानि 'ज्ञेयानि' सार्थकानि ज्ञातव्यानि । उक्तं च कषायप्राभृतचूर्णौ "अस्सकण्णकरणे त्ति वा आदोलकरणे त्ति ओव्वट्टणउव्वट्टणाकरणे त्ति तिण्णि णामाणि अस्सकण्णकरणस्स ।" इति । एतदुक्तं भवति-हयति हिनोति वा हयः " अच्" (सिद्धहेम० ५-१-४९) इत्यनेन सूत्रेण हिधातोः कर्तरि अच्प्रत्ययः, अश्व इत्यर्थः ।

"घोटकस्तुरगस्तार्क्ष्यस्तुरङ्गो-ऽश्वस्तुरङ्गमः ।
गन्धर्वोऽर्वा सप्तवीति वाहो वाजो हयो हरिः ॥१॥ इति वचनात् ।

तस्य कर्णः, कर्ण्यते-ऽनेनेति कर्णः, "भावाकर्त्रोः" (सिद्धहेम० ५-३-१८) इत्यनेन घञ् प्रत्यय, यद्वा किरत्यनेन "इणुवी०" (उणादि० १८२) इत्यनेन णप्रत्ययः । श्रोत्रमित्यर्थः, "कर्णः श्रोत्रं श्रवणं च" इति वचनात्, हयकर्णवत् करणं-प्रथमे-ऽनुभागखण्डे-ऽपगते संज्वलनक्रोधप्रभृतिसंज्वलनलोभपर्यवसानानां कषायाणां यथाक्रममनन्तगुणहीनाऽनुभागव्यवस्थापनम् हयकर्णकरणम्, तस्य अद्धा-कालः, हयकर्णकरणाद्धा अश्वकर्णकरणाद्धेत्यर्थः, यथा-ऽश्वकर्णो मध्यात् प्रभृत्या-ऽग्रं हीनो हीनतरो भवति, तथैवा ऽस्यामद्धायामपि प्रथमे-ऽनुभागे खण्डे विनष्टे संज्वलनक्रोधादीनां सत्तागतो-ऽनुभागः क्रमशो-ऽनन्तगुणहीनत्वेन व्यवस्थाप्यते । सम्प्रत्यादोलकरणाद्धा व्युत्पाद्यते—आदोल्यते-ऽस्मिन्निति आदोलः "भावकेर्त्रोः" (सिद्धहेम० ५-३-१८) इति अधिकरणे घञ्प्रत्ययः, प्रेङ्खोलनमित्यर्थः । आदोल इव करणं संज्वलनक्रोधादीनां यथाक्रममनन्तगुणहीनाऽनुभागव्यवस्थापनम् आदोलकरणम् , तस्या-ऽद्धा आदोलकरणाद्धा । यथा आदोले वृक्षशाखाया रज्ज्वोश्चाऽन्तरालगत आकारस्त्रिकोणीभूय क्रमेण हीयमानो दृश्यते, तथैवाऽस्यामद्धायामपि संज्वलनक्रोधादीनामनुभागसत्कर्मा-ऽनन्तगुणहीनक्रमेण दृश्यते । अथ अपवर्तनोद्वर्तनकरणाद्धा व्युत्पाद्यते-अपवर्तनं नाम हानिः, उद्वर्तनं नाम वृद्धिः । अस्यामद्धायां प्रथमे-ऽनुभागखण्डे व्रजिते सति क्षपकः संज्वलनक्रोधादीनामनुभागसत्कर्म क्रमशो-ऽनन्तगुणहीनं करोति, संज्वलनलोभादीनामनुभागसत्त्वं पुनर्यथाक्रममनन्तगुणवृद्धत्वेन व्यवस्थापयतीत्यपवर्तनोद्वर्तनकरणाद्धा व्यपदिश्यते । यद्वा-ऽस्यामद्धायां प्रथमा-ऽनुभागखण्डे-ऽनुभागस्पर्धकानि संज्वलनलोभादीनां विशेषहीनक्रमेण दृश्यन्ते, संज्वलनक्रोधादीनां पुनर्विशेषाधिकक्रमेण दृश्यन्ते इत्यपवर्तनोद्वर्तनकरणाद्धा व्यपदिश्यते । पश्यन्तु पाठका यन्त्रकाणि १०-११ इति ॥५९॥

सम्प्रत्यश्वकर्णकरणाद्धायाः प्रथमसमये स्थितिसत्त्वं स्थितिबन्धं च निभणिषुराह

ठिइसंतं संखसहस्सवासमेत्तं तयाणि मोहस्स ।
अंतोमुहुत्तऊणो सोलसवासपमिओ बंधो ॥ ६० ॥

स्थितिसत्त्व सख्यसहस्रवर्षमात्र तदानीं मोहस्य ।
अन्तर्मुहूर्तोन षोडशवर्षप्रमितो बन्ध ॥६०॥ इति पदसंस्कार. ।

'ठिइसंतं' इत्यादि, तत्र 'तदानीं' प्रत्यासत्तेरश्वकर्णकरणाद्धायाः प्रथमसमये 'मोहस्य' मोहनीयकर्मणः संज्वलनचतुष्कस्येति यावत् , स्थितिसत्त्वं संख्यसहस्रवर्षमात्रं भवति, पूर्वमपि स्त्रीवेदक्षपणाद्धाचरमसमये मोहनीयकर्मणः स्थितिसत्त्वं संख्येयसहस्रवर्षप्रमितमासीत्, स्थितिखण्डसहस्रैर्घातितं सत् सम्प्रत्यपि संख्येयसहस्रवर्षप्रमाणं भवति, किन्तु पूर्वतः संख्येयगुणहीनं भवतीत्यर्थः

न च स्त्रीवेदक्षपणाद्धाचरमसमये पुरुषवेदक्षपणाद्धाचरमसमये च मोहनीयसत्कर्म संख्येय-

वार्षिकमभिहितम् । निरुक्तस्थानतः प्रभृति संख्येयगुणहानिदर्शनाद् इदानीं संख्येयसहस्रवर्षप्रमितं मोहनीयस्थितिसत्त्वं कुतो भण्यते ? इति वाच्यम् , तदानीमपि संख्येयसहस्रवर्षप्रमाणसत्कर्मण इष्टत्वे-ऽपि संख्यातराशेरनेकविधत्वात् संख्यातसहस्राणामपि संख्यातराशौ समावेशात् । एवमन्यत्रा ऽपि बोद्धव्यम् । स्थितिखण्डसहस्रैर्घातितं सत् पूर्ववच्छेषघातिकर्मणामपि स्थितिसत्त्वं संख्येयसहस्रवर्षप्रमाणं नामगोत्रवेदनीयानां चा-ऽघातिकर्मणामसंख्येयवर्षप्रमितं ज्ञातव्यम् ।

घण्टालालान्यायेन "तयाणि मोहस्स" इति पदद्वयमुत्तरत्राऽपि सम्बन्धनीयम् । 'अंतो' इत्यादि, तदानीं 'मोहस्य' सञ्ज्वलनचतुष्कस्य 'बन्धः' स्थितिबन्धो 'अन्तर्मुहूर्तोनः' अन्तर्मुहूर्तन्यूनः षोडशवर्षप्रमितो भवति । एतदुक्तं भवति पुरुषवेदोदयचरमसमये संज्वलनचतुष्कस्य षोडशवर्षप्रमाणः स्थितिबन्ध आसीत् , सम्प्रत्यन्तर्मुहूर्तन्यूनषोडशवर्षप्रमाणं स्थितिबन्धमारभते, अतः प्रभृति हि सञ्ज्वलनस्थितिबन्धस्या-ऽन्तर्मुहूर्तप्रमाणा हानिर्भवति । उक्तं च कषायप्राभृतचूर्णौ "ट्ठिदिबंधो सोलसवस्साणि अंतोमुहूत्तूणाणि ।" इति । शेषकर्मणां तु पूर्ववत् स्थितिबन्धः सख्येयवर्षप्रमाणो ज्ञातव्यः, पूर्वपूर्वतश्च संख्येयगुणेन हीनो हीनतरो भवति ॥६०॥

अथा-ऽश्वकर्णकरणाद्धाप्रथमसमयेऽनुभागसत्कर्मविषयकमल्पबहुत्वमभिधित्सुराह

रससंतं माणस्सप्पमह विसेसाहिअक्कमेण खलु ।
होज्जाइ कोहमायालोहाणं तव्व बंधो वि ॥६१॥

रससत्त्व मानस्याल्पमथ विशेषाधिकक्रमेण खलु ।
भवति क्रोधमायालोभाना तद्वद् बन्धो-ऽपि ॥६१॥ इति पदसस्कार ।

'रससंतं' इत्यादि, 'रससत्त्वम्' अश्वकर्णकरणाद्धायाः प्रथमसमये ऽनुभागसत्कर्म मानस्य 'अल्पम्' स्तोकम् , उपरि भण्यमानक्रोधादीनामनुभागसत्कर्मणः प्रभूतत्वात् । 'अह' त्ति 'अथ' अथशब्द आनन्तर्यार्थकः, मानस्याऽनुभागसत्त्वं स्तोकमभिहितं तदनन्तरमित्यर्थः, विशेषाधिकक्रमेण भवति क्रोधमायालोभानां रससत्त्वमिति गम्यते । एतदुक्तं भवति--अश्वकर्णकरणाद्धाप्रथमसमये संज्वलनमानस्या-ऽनुभागसत्त्वं सर्वाल्पम् , ततः संज्वलनक्रोधस्या-ऽनुभागसत्कर्म विशेषाधिकम् , आधिक्यं चा-ऽनन्तै रसस्पर्धकैर्द्रष्टव्यम् । ततो-ऽपि मायाया विशेषाधिकम् , ततो लोभस्य विशेषाधिकम् । उक्तं च कषायप्राभृतचूर्णौ "अणुभागसंतकम्मं सह आगाइदेण माणे थोवं, कोहे विसेसाहियं, मायाए विसेसाहियं, लोहे विसेसाहियं ।" इति । अत्र 'अणुभागसंतकम्मं सह आगाइदेण' इतिपदत्रयेणा-ऽश्वकर्णकरणाद्धायां प्रविशता जन्तुना यदनुभागखण्डं घात्यते, तेन सह तात्कालिका-ऽनुभागसत्कर्म बोध्यम्* ।

* तथा चाहुर्जयधवलाकारा अपि "एत्थ सह आगाइदेण त्ति वुत्ते अस्सकण्णकरणमाढवेंतेण जमणुभागखंडयमागाइद तेण सह तक्कालभावियस्स अणुभागसतकम्मस्स एदमप्पाबहुअं कीरदि त्ति भणिद होदि । एत्थ विसेसाहियपमाणमणंताणि फद्दयाणि ।" इति ।

अथा-ऽश्वकर्णकरणाद्धाप्रथमसमयेऽनुभागबन्धस्याऽल्पबहुत्वमतिदिदिक्षुराह–'तव्व' इत्यादि, 'तद्वत्' अनुभागसत्कर्मवत् 'बन्धो-ऽपि' अनुभागबन्धो-ऽपि भवति । उक्तं च कषायप्राभृत-चूर्णौ "बंधो वि एवमेव ।" इति । इदमुक्तं भवति अश्वकर्णकरणाद्धाप्रथमसमये मानस्या-ऽनुभागबन्धः स्तोकः, ततः क्रोधस्य विशेषाधिकः, ततो मायाया विशेषाधिकः, ततो-ऽपि लोभस्य विशेषाधिकः ॥६१॥

अनुभागसत्त्वं रसबन्धं च प्ररूप्या ऽश्वकर्णकरणाद्धायाः प्रथमसमये प्रथमाऽनुभागखण्डेन संज्वलनचतुष्कस्य घात्यमानमनुभागं व्याजिहीर्षुराह

रसखंडं कोहादीण कमेण विसेसअहिअमह ।
घाइअऽवसेसफड्डाइं लोहादीणऽणंतगुणणाए ॥६२॥ (उद्गीतिः)

रसखण्डं क्रोधादीनां क्रमेण विशेषाधिकमथ ।
घातिता ऽवशेषस्पर्धकानि लोभादीनामनन्तगुणनया ॥ २॥ इति पदसंस्कारः ।

'रसखंडं' इत्यादि, अश्वकर्णकरणाद्धाप्रथमसमये 'रसखंडम्' अनुभागखण्डं क्रोधादीनां क्रमेण विशेषाधिकं भवति । एतदुक्तं भवति अश्वकर्णकरणाद्धाया प्रथमे-ऽनुभागखण्डे क्रोध-स्या-ऽनुभागस्पर्धकानि स्तोकानि, ततो मानस्य विशेषाधिकानि, ततो मायाया विशेषाधिकानि, ततो ऽपि लोभस्य विशेषाधिकानि विद्यन्ते । उक्तं च कषायप्राभृतचूर्णौ–"अणुभागखंडयं पुण जमागाइदं, तस्स अणुभागखंडयस्स फद्दयाणि कोधे थोवाणि, माणे फद्दयाणि विसेसाहियाणि, मायाए फद्दयाणि विसेसाहियाणि, लोभे फद्दयाणि विसेसाहि-याणि ।" इति । इतः प्रागनुभागखण्डे घात्यमानस्पर्धकानामल्पबहुत्वमित्थमासीत् मानस्य स्पर्धकानि स्तोकानि, ततः क्रोधस्य विशेषाधिकानि, ततो-ऽपि मायाया विशेषाधिकानि, ततो-ऽपि लोभस्य विशेषाधिकानि, अनुभागसत्त्वस्य तथात्वेनाऽनुभागखण्डस्य चाऽनुभागसत्कर्मानु-रूपत्वेनाऽनुभागखण्डगताऽनुभागस्य तथाविधा-ऽल्पबहुत्वसंभवात् । न चा-ऽश्वकर्णकरणाद्धा-प्रथमसमये-ऽपि मानक्रोधमायालोभानां यथाक्रममनुभागसत्त्वं विशेषाधिकं क्रमेण तिष्ठति, तर्हि रसखण्डा-ऽल्पबहुत्वस्य सत्त्वाऽल्पबहुत्वेन सह वैषम्यं कुतो दृश्यते ? इति वाच्यम्, अश्वकर्णकरणा-द्धायां प्रथमे-ऽनुभागखण्डे विनष्टे संज्वलनक्रोधादीनां यथाक्रममनुभागसत्कर्मणो-ऽनन्तगुण-हीनत्वदर्शनात् । यदि च सत्त्वानुरूपेणैवा-ऽश्वकर्णकरणाद्धाप्रथमा-ऽनुभागखण्डे रसस्पर्धकानि भवेयुः, तर्हि तस्मिन्ननुभागखण्डे पूर्णे-ऽनुभागसत्त्वं क्रोधादीनामनुक्रममनन्तगुणहीनं न स्यात् । यदा-ऽपूर्वस्पर्धककिट्टिकरणादिभिर्विनाशयिष्यमाणं यस्या-ऽनुभागसत्कर्म मन्दं मन्दतरं कृत्वा पश्चाद् निःशेषतः क्षपयिष्यते, तस्या-ऽनुभागः प्रभूतः प्रभूततरो घात्यते इति ।

'अह' इत्यादि, 'अथ' अथशब्दोऽत्र प्रकरणान्तरसूचकः, प्रथमाऽनुभागखण्डे स्पर्धकाऽल्पबहुत्वमुक्तम्, सम्प्रति घातिताऽवशेषाऽनुभागस्पर्धकानामल्पबहुत्वमभिधीयते इति सूचयति। घातिताऽवशेषस्पर्धकानि' अश्वकर्णकरणाद्धायां प्रथमाऽनुभागखण्डेन यदनुभागसत्कर्म घात्यते, तेन रहितमनुभागसत्कर्म पूर्वस्पर्धक-वक्ष्यमाणाऽपूर्वस्पर्धकलक्षणानि घातिताऽवशेषस्पर्धकान्युच्यते, तानि 'लोभादीनां' लोभ-माया-मान-क्रोधानां क्रमेण 'अनन्तगुणनया' अनन्तगुणकारेणाऽवतिष्ठन्ते इति गम्यते, लोभस्य घातिताऽवशेषस्पर्धकानि स्तोकानि तिष्ठन्ति, ततो मायाया अनन्तगुणानि, ततो मानस्या ऽनन्तगुणानि, ततोऽपि क्रोधस्याऽनन्तगुणानि तिष्ठन्तीत्यर्थः। उक्तं च कषायप्राभृतचूर्णौ-"आगाइदसेसाणि पुण फद्दयाणि लोभे थोवाणि, मायाए अणंतगुणाणि, माणे अणंतगुणाणि, कोधे अणंतगुणाणि।" इति। नन्वश्वकर्णकरणाद्धाप्रथमसमये ऽनुभागसत्त्वं मान-क्रोध-माया-लोभानां यथाक्रमं विशेषाधिकमासीत्, तथाऽश्वकर्णकरणाद्धायां प्रथमानुभागखण्डेन क्रोधादीनामनुक्रमं केवलं विशेषाधिकानि स्पर्धकानि घात्यन्ते, तर्हि घातिताऽवशेषाऽनुभागस्पर्धकानि लोभादीनां क्रमेणाऽनन्तगुणानि कथं सम्पद्यन्ते? इति चेत्, उच्यते-अश्वकर्णकरणाद्धाप्रथमसमये मानस्यानुभागसत्कर्मतः क्रोधस्याऽनुभागसत्कर्म विशेषाधिकं भवति। मानस्यानुभागसत्त्वतः क्रोधस्य यावन्ति स्पर्धकान्यधिकानि, तावन्ति स्पर्धकानि बुद्ध्याऽपनीय पृथक् स्थापयितव्यानि। ततः क्रोधस्याऽनुभागखण्डेन समानं मानस्याऽनुभागखण्डं बुद्ध्या गृहीतव्यम्। ततश्चाऽधस्तनमनुभागसत्कर्म मानक्रोधयोर्मिथस्तुल्यं दृश्यते, बुद्ध्योभयोरपि सदृशखण्डग्रहणात्। अथ मानस्याऽवशिष्टाऽनुभागसत्कर्मणोऽनन्तानि खण्डानि कृत्वैकं खण्डं तत्रैव विमुच्य शेषाणि बहूनि खण्डानि प्रागुक्ताऽनुभागखण्डेन सह विघाताय गृह्णाति, इमानि च गृह्यमाणान्यनन्तानि खण्डानि मानस्य सकलाऽनुभागसत्कर्मणोऽनन्ततमभागमात्राण्युपरितनपृथक्स्थापित-क्रोधाऽनुभागस्पर्धकतो ऽनन्तगुणानि भवन्ति। उपरितनपृथक्स्थापित-क्रोधाऽनुभागस्पर्धकानि क्रोधस्याऽनुभागखण्डेन सह विघातयति। इत्थमश्वकर्णकरणाद्धायां प्रथमाऽनुभागखण्डे क्रोधस्य घात्यमानस्पर्धकतो मानस्य घात्यमानस्पर्धकानि विशेषाधिकानि भवन्ति। ततो घातितेषु तेषु स्पर्धकेषु घातिताऽवशेषस्पर्धकानि मानतः क्रोधस्याऽनन्तगुणानि तिष्ठन्ति।

प्रदर्श्यते एतत्सर्वमसत्कल्पनया अश्वकर्णकरणाद्धाप्रथमसमये क्रोधस्याऽनुभागसत्त्वं त्रयोदशाधिकपञ्चशतान्यनुभागस्पर्धकानि (५१३) कल्पयितव्यम्, मानस्य तु द्वादशाधिकपञ्चशती (५१२)। चतुःसंख्या चाऽनन्तराशित्वेन परिकल्पनीया। एवमुपरितनं क्रोधस्यैकं स्पर्धकं मानतोऽधिकं भवति, तत् पृथक्स्थापयितव्यम्। ततः क्रोधस्य चतुरशीत्यधिकशतत्रयस्पर्धकमात्रखण्डेन (३८४) सदृशं मानस्य चतुरशीत्यधिकत्रिशतस्पर्धकमात्रं खण्डं (३८४) गृह्णाति। अथ मानस्याऽवशिष्टाष्टाविंशत्युत्तरशतस्पर्धकानाम् (१२८) अनन्तानि खण्डानि कृत्वैकखण्डं

द्वात्रिंशत्स्पर्धकप्रमाणं (३२) तत्रैव विमुच्य शेषाणि षण्णवतिस्पर्धकानि (९६) चतुरशीत्यधिकत्रिशतस्पर्धकात्मकानुभागखण्डेन (३८४) सह विघाताय गृह्णाति । इमानि च गृह्यमाणानि षण्णवतिस्पर्धकानि (९६) मानस्य सकला-ऽनुभागसत्कर्मणो द्वादशाधिकपञ्चशतस्पर्धकलक्षणस्या-ऽनन्ततमभागमात्राण्युपरितनपृथक्स्थापितक्रोधैका-ऽनुभागस्पर्धकतो-ऽनन्तगुणानि भवन्ति । उपरितनपृथक्स्थापितक्रोधैका-ऽनुभागस्पर्धकं चतुरशीत्यधिकत्रिशतस्पर्धकात्मकाऽनुभागखण्डेन सह घातयति । इत्थं प्रथमखण्डे क्रोधस्य घात्यमानपञ्चाशीत्युत्तरत्रिशतस्पर्धकतो (३८५) मानस्य घात्यमानान्यशीत्यधिकचतुःशतस्पर्धकानि (४८०) विशेषाधिकानि भवन्ति । तेन प्रथमा-ऽनुभागखण्डे घातिते घातिता-ऽवशेषस्पर्धकानि क्रोधस्या-ऽष्टाविंशत्युत्तरशतं (१२८) तिष्ठन्ति, मानस्य तु द्वात्रिंशत् (३२)। इत्थं मानस्य घातिता-ऽवशेषद्वात्रिंशत्स्पर्धकतः क्रोधस्या-ऽनन्तगुणानि घातिता ऽवशेषस्पर्धकान्यष्टाविंशत्युत्तरशत (१२८) भवन्ति, चतुःसंख्याया अनन्तत्वेन परिकल्पनात् ।

एवं मानस्या ऽनुभागसत्कर्मतो मायाया अनुभागसत्कर्म विशेषाधिकं विद्यते । मानतो यावन्ति स्पर्धकान्यधिकानि, तावन्ति बुद्धया पृथक् स्थापयितव्यानि । ततो मानस्या-ऽनुभागखण्डेन सदृशं मायाया अनुभागखण्डं बुद्धया गृहीतव्यम् । ततो-ऽधस्तनमनुभागसत्कर्म मानमाययोः समानं दृश्यते, बुद्धयोभयोरपि सदृशखण्डग्रहणात् । अथ मायाया अवशिष्टा-ऽनुभागसत्कर्मणो-ऽनन्तानि खण्डानि कृत्वैकं खण्डं तत्रैव विमुच्य शेषाणि बहुभागमात्राण्यनन्तानि खण्डानि प्रागुक्ता-ऽनुभागखण्डेन सह विघाताय गृह्णाति । इमानि च गृह्यमाणान्यनन्तानि खण्डानि मायायाः सकला-ऽनुभागसत्कर्मणोऽनन्ततमभागप्रमाणानि भवन्ति, उपरितनपृथक्स्थापित-माया-ऽनुभागस्पर्धकतो-ऽनन्तगुणानि भवन्ति । तत उपरितनपृथक्स्थापित-मायास्पर्धकान्यपि मायाया अनुभागखण्डेन सह घातयति । इत्थं मानस्य घात्यमानस्पर्धकतो मायाया घात्यमानस्पर्धकानि विशेषाधिकानि भवन्ति । ततः प्रथमे-ऽनुभागखण्डे विनाशिते घातिता-ऽवशेषस्पर्धकानि मायातो मानस्या-ऽनन्तगुणानि भवन्ति ।

भाव्यते चेदमसत्कल्पनया अश्वकर्णकरणाद्धाप्रथमसमये मायाया अनुभागसत्कर्म चतुर्दशाधिकपञ्चशतान्यनुभागस्पर्धकानि (५१४) कल्पयितव्यम्, मानस्य तु पूर्ववद् द्वादशाधिकपञ्चशतानि (५१२) । अथोपरितने मायाया द्वे स्पर्धके मानतो-ऽधिके स्तः, ते पृथक्स्थापयितव्ये । ततो मानस्या-ऽशीत्यधिकचतुरशतस्पर्धकप्रमाणखण्डेन (४८०) सदृशं मायाया अशीत्युत्तरचतुःशतस्पर्धकप्रमाणं (४८०) खण्डं गृह्णाति । अथ मायाया अवशिष्टद्वात्रिंशत्स्पर्धकानाम् (३२) अनन्तानि खण्डानि कृत्वैकं खण्डमष्टस्पर्धकमात्रं (८) तत्रैव विमुच्य शेषाणि चतुर्विंशतिस्पर्धकान्यशीत्यधिकचतुःशतस्पर्धकात्मकानुभागखण्डेन सह विघाताय गृह्णाति । इमानि च गृह्यमाणानि चतुर्विंशतिस्पर्धकानि (२४) मायाया सकला-ऽनुभागसत्कर्मणश्चतुर्दशाधिकपञ्चशतस्पर्धकरूपस्या-नन्ततमभागमात्राणि भवन्ति, उपरितनपृथक्स्थापित-मायासत्कस्पर्धकद्वयतश्चा-ऽनन्तगुणानि । तत

उपरितनपृथक्स्थापित-माया ऽनुभागस्पर्धकद्वयं मायाया अनुभागखण्डेन सह घातयति । इत्थं प्रथमे ऽनुभागखण्डे मानस्य घात्यमाना-ऽशीत्यधिकचतुःशतस्पर्धकतो (४८०) मायाया घात्यमानषडुत्तरपञ्चशतस्पर्धकानि (२+४८०+२४=५०६) विशेषाधिकानि भवन्ति । ततः प्रथमे-ऽनुभागखण्ड विनाशिते मानस्य घातिता-ऽवशेषस्पर्धकानि द्वात्रिंशत् मायाया घातिता-ऽवशेषाष्ट-स्पर्धकतो-ऽनन्तगुणानि भवन्ति, चतुःसंख्याया अनन्तत्वेन ग्रहणात् ।

एवं मायालोभयोरपि वक्तव्यम् । तथाहि—अश्वकर्णकरणाद्धाप्रथमसमये मायाया अनुभाग-सत्कर्मतो लोभस्या-ऽनुभागसत्कर्म विशेषाधिकं भवति । यावद्भिः स्पर्धकैरधिकं भवति, तावन्ति स्पर्धकानि बुद्ध्या पृथक् स्थापयितव्यानि । ततो मायाया अनुभागखण्डेन सदृशं लोभस्या ऽनु-भागखण्डं बुद्ध्या गृहीतव्यम् ततो-ऽवस्तनमनुभागसत्कर्म मायालोभयोः सदृशं भवति, बुद्धयो-भयोरपि सदृक्खण्डग्रहणात । अथ लोभस्या-ऽवशिष्टानुभागसत्त्वस्या-ऽनन्तानि खण्डानि कृत्वैकं खण्डं तत्रैव विमुच्य शेषाण्यनन्तानि खण्डानि प्रागुक्ता-ऽनुभागखण्डेन सह विघाताय गृह्णाति । इमानि च गृह्यमाणान्यनन्तानि खण्डानि लोभस्य सकला-ऽनुभागसत्कर्मणो-ऽनन्त-तमभागप्रमाणानि भवन्ति, उपरितनपृथक्स्थापितलोभसत्का-ऽनुभागस्पर्धकतश्चा-ऽनन्तगुणानि भवन्ति । तत उपरितनपृथक्स्थापितलोभस्पर्धकानि लोभस्या-ऽनुभागखण्डेन सह घातयति । इत्थं लोभस्य घात्यमानस्पर्धकानि मायाया घात्यमानस्पर्धकतो विशेषाधिकानि जायन्ते । ततः प्रथमे-ऽनुभागखण्डे घातिते मायाया घातिता-ऽवशेषस्पर्धकानि लोभतो-ऽनन्तगुणानि भवन्ति ।

भाव्यते चेदमसत्कल्पनया अश्वकर्णकरणाद्धाप्रथमसमये लोभस्या-ऽनुभागसत्कर्म पञ्चदशाधिकपञ्चशतानि (५१५) अनुभागस्पर्धकानि कल्पयितव्यम्, मायायाश्च पूर्ववत् चतुर्दशा-धिकपञ्चशतानि (५१४) अथोपरितनमेकं स्पर्धकं लोभस्य मायातो-ऽधिकमस्ति, तत् पृथक्स्था-पयितव्यम् । ततो मायाया षडुत्तरपञ्चशतस्पर्धकप्रमाणखण्डेन (५०६) सदृशं लोभस्य षडुत्तर-पञ्चशतस्पर्धकप्रमाणं (५०६) खण्डं गृह्णाति । अथ लोभस्याऽवशिष्टाष्टस्पर्धकानामनन्तानि खण्डानि कृत्वैकं खण्डं द्विस्पर्धकमितं (२) तत्रैव परित्यज्य शेषाणि षट् स्पर्धकानि (६) षडधिक-पञ्चशतस्पर्धकात्मकखण्डेन (५०६) सह विघाताया-ऽऽददाति । इमानि चादीयमानानि षट्स्पर्धकानि (६) लोभस्य सकला-ऽनुभागसत्त्वस्य पञ्चदशाधिकपञ्चशतस्पर्धकलक्षणस्याऽनन्ततमभागमात्राणि भवन्ति, उपरितनपृथक्स्थापितलोभसत्कैकस्पर्धकतश्चा-ऽनन्तगुणानि भवन्ति । तत उपरितन-पृथक्स्थापितलोभसत्कैका-ऽनुभागस्पर्धकं लोभस्या-ऽनुभागखण्डेन सह घातयति । इत्यमश्वकर्ण-करणाद्धायाः प्रथमे-ऽनुभागखण्डे मायाया घात्यमानषडुत्तरपञ्चशतस्पर्धकतो (५०६) लोभस्य घात्यमानत्रयोदशाधिकपञ्चशतस्पर्धकानि (१+५०६+६=५१३) विशेषाधिकानि भवन्ति । ततः प्रथमे-ऽनुभागखण्डे-ऽपगते मायाया घातिता-ऽवशेषस्पर्धकान्यष्टसंख्याकानि (८) लोभस्य घातिता-ऽवशेषस्पर्धकद्वयतो-ऽनन्तगुणानि भवन्ति, चतुःसंख्याया अनन्तत्वेन परिकल्पनात् ॥ ६२ ॥

स्थापना

	क्रोधस्य	मानस्य	मायाया	लोभस्य
अश्वकर्णकरणाद्धाप्रथमसमये-ऽनुभागसत्कर्मणि स्पर्धकानि –	५१३	५१२	५१४	५१५
अश्वकर्णकरणाद्धाया प्रथमखण्डे घात्यमानस्पर्धकानि –	३८५	४८०	५०६	५१३
घातिता-ऽवशेषस्पर्धकानि –	१२८	३२	८	२

० ० ० इमानि शून्यानि स्पर्धकानि सूचयन्ति ।

अश्वकर्णकरणाद्धा-प्रथमसमयेऽनुभागसत्कर्म

क्रोधस्य प्रथमखण्डे घात्यमानस्पर्धकानि ३८४ + १ = ३८५

घातितावशेषस्पर्धकानि १२८ — खण्डे ३८४ स्पर्धकानि — स्प. १

क्रोधस्य ५१३ स्पर्धकानि ०

मानस्य प्रथमाऽनुभागखण्डे घात्यमानस्पर्धकानि ३८४ + ९६ = ४८०

घातितावशेषस्पर्धकानि ३२ — स्पर्धं ९६ — ३८४ स्पर्धकानि

मानस्य ५१२ स्पर्धकानि ०

मायाया प्रथमरसखण्डे घात्यमानस्पर्धकानि ४८० + २४ + २ = ५०६

घातितावशेषस्पर्धकानि ८ स्पर्धं २४ — मानवत् ४८० स्पर्धकानि — स्पर्ध. २

मायायाः ५१४ स्पर्धकानि ०

लोभस्य प्रथमरसखण्डे घात्यमानस्पर्धकानि ५०६ + ६ + १ = ५१३

घातितावशेष-स्पर्धके २ — स्पर्धं ६ — मायावत् ५०६ स्पर्धकानि — स्पर्ध. १

लोभस्य ५१५ स्पर्धकानि ०

अश्वकर्णकरणाद्धायाः प्रथमसमये स्थितिसत्त्वादीनामल्पबहुत्वादीनि

(१) प्रथमसमये स्थितिसत्कर्म, गाथा-६०
(१) मोहनीयस्य स्थितिसत्त्वं सङ्ख्येयसहस्रवर्षाणि।
(२) ज्ञानावरणादीनामपि सत्त्वं सङ्ख्येयसहस्रवर्षाणि।
(३) नामगोत्रवेदनीयानामसङ्ख्येयवर्षाणि।

(२) प्रथमसमये स्थितिबन्ध, गाथा- ६०
(१) मोहस्य बन्धोऽन्तर्मुहूर्तन्यूनषोडशवर्षमात्रः।
(२) शेषकर्मणां बन्धः सङ्ख्यातवार्षिकः।

(३) प्रथमसमयेऽनुभागसत्कर्माऽल्पबहुत्वम्, गाथा-६१

अङ्कतः
(१) प्रथमसमये मानस्याऽनुभागसत्कर्म स्तोकम्। (५१२)
(२) ततः क्रोधस्यानुभागसत्कर्म विशेषाधिकम्। (५१३)
(३) ततो मायाया अनुभागसत्कर्म विशेषाधिकम्। (५१४)
(४) ततो लोभस्याऽनुभागसत्कर्म विशेषाधिकम्। (५१५)

(४) प्रथमसमयेऽनुभागबन्धाल्पबहुत्वम्, गाथा-६१
(१) प्रथमसमये मानस्याऽनुभागबन्धः स्तोकः।
(२) ततः क्रोधस्याऽनुभागबन्धो विशेषाधिकः।
(३) ततो मायाया अनुभागबन्धो विशेषाधिकः।
(४) ततो लोभस्याऽनुभागबन्धो विशेषाधिकः।

(५) अश्वकर्णकरणाद्धाया प्रथमरसखण्डवर्तिस्पर्धकानामल्पबहुत्वम् गाथा-६२

अङ्कतः
(१) क्रोधस्यानुभागस्पर्धकानि स्तोकानि घात्यन्ते। (३८५)
(२) ततो मानस्यानुभागस्पर्धकानि विशेषाधिकानि घात्यन्ते। (४८०)
(३) ततो मायाया अनुभागस्पर्धकानि विशेषाधिकानि घात्यन्ते। (५०६)
(४) ततो लोभस्यानुभागस्पर्धकानि विशेषाधिकानि घात्यन्ते। (५१३)

(६) घातितावशेषस्पर्धकानामल्पबहुत्वम्, गाथा-६२

अङ्कतः
(१) लोभस्य घातिताऽवशेषस्पर्धकानि स्तोकानि। (२)
(२) ततो मायाया घातिताऽवशेषस्पर्धकान्यनन्तगुणानि। (८)
(३) ततो मानस्य घातिताऽवशेषस्पर्धकान्यनन्तगुणानि। (३२)
(४) ततः क्रोधस्य घातिताऽवशेषस्पर्धकान्यनन्तगुणानि (१२८)

अश्वकर्णकरणाद्धाप्रथमसमयात् प्रभृति संज्वलनचतुष्कस्या-ऽपूर्वस्पर्धकानि कर्तु मारभते। तान्यपूर्वस्पर्धकानि कथं करोति? इत्यत आह

संजलणजहण्णगपुव्वफड्डगत्तो अणंतगुणहीणं ।
कुणए उक्कोसमपुव्वफड्डगं तं कयं न पुव्वं ति ॥ ६३ ॥ (गीतिः)

सञ्ज्वलनजघन्यपूर्वस्पर्धकादनन्तगुणहीनम् ।
करोत्युत्कृष्टमपूर्वस्पर्धकं तत् कृतं न पूर्वमिति ॥ ६३ ॥ इति पदसंस्कारः ।

'संजलण०' इत्यादि, अश्वकर्णकरणाद्धाप्रथमसमये 'संज्वलनजघन्यपूर्वस्पर्धकात्' संज्वलनक्रोध-मान-माया-लोभसत्कस्वस्वजघन्यपूर्वस्पर्धकात उत्कृष्टमपूर्वस्पर्धकमनन्तगुणहीनं 'करोति' निर्वर्तयति। नन्वपूर्वस्पर्धकं कुत उच्यते? इत्यत आह 'तं' इत्यादि, 'तत्' अपूर्वस्पर्धकं 'पूर्वम्' अश्वकर्णकरणाद्धातः प्राग् न कृतं–निष्पादितमिति हेतोरपूर्वस्पर्धकमुच्यते। तात्पर्यार्थः पुनरयम् संसारा-ऽवस्थायामप्राप्तस्वरूपाणि हयकर्णकरणाद्धायामेव जघन्यपूर्वस्पर्धकतो-ऽनन्तगुणहीनरसतामापाद्य निर्वर्त्यमानानि स्पर्धकान्यपूर्वस्पर्धकान्युच्यन्ते, अश्वकर्णकरणाद्धायामेव लब्धस्वरूपत्वात्। तेषामपूर्वस्पर्धकानां यत् तीव्रानुभागकं सर्वोत्कृष्टस्पर्धकम्, तदपि जघन्यपूर्वस्पर्धकतो-ऽनन्तगुणहीनं भवति।

अपूर्वस्पर्धकस्वरूपपरिज्ञानस्य पूर्वस्पर्धकस्वरूपपरिज्ञानपूर्वकत्वात् प्रथमतस्तावत् पूर्वस्पर्धकस्वरूपमुच्यते

सत्तागते एकैकपरमाणौ जघन्यतो-ऽपि सर्वजीवा-ऽनन्तगुणा रसाऽविभागास्तिष्ठन्ति। रसा-ऽविभागो नाम केवलिप्रज्ञाच्छेदनकेनाऽविभाज्यो रसस्या-ऽन्तिमोंऽशः।

सत्कर्मण्यनन्तकर्मपरमाणवो विद्यन्ते, तत्र येषु कर्मपरमाणुषु सर्वस्तोका रसाऽविभागा भवन्ति, तेषां समूहः प्रथमा वर्गणा, तस्यां च कर्मपरमाणवः प्रभूततमाः। तत एकेन रसाऽविभागेनाधिका ये परमाणवः, तेषां समुदायो द्वितीया वर्गणा, प्रथमवर्गणात एते परमाणवो विशेषहीना भवन्ति। तत एकेन रसाऽ-विभागेन वृद्धानां परमाणूनां समुदायस्तृतीय वर्गणा। एवंक्रमेणा-ऽभव्येभ्यो-ऽनन्तगुणाः सिद्धानामनन्ततमभागतुल्या वर्गणा वाच्याः। तावतीनां वर्गणानां समूहः स्पर्धकमुच्यते, एकोत्तररसाऽविभागवृद्ध्या परस्परं स्पर्धन्ते वर्गणा यत्र तत् स्पर्धकमिति व्युत्पत्तेः। एतच्च स्पर्धकं प्रथमं ज्ञातव्यम्। इत ऊर्ध्वमेकेन रसाऽविभागेन वृद्धः कश्चिदपि परमाणुः सत्कर्मणि न प्राप्यते, नाऽपि द्वाभ्यां रसा-ऽविभागाभ्यां वृद्धः परमाणुः सत्कर्मणि तिष्ठति, नापि संख्येयैः, नाप्यसंख्येयैः, नाप्यनन्तैः, किन्तु प्रथमस्पर्धकचरमवर्गणातः सर्वजीवा-ऽनन्तगुणै रसाविभागैरधिकाः परमाणवः प्राप्यन्ते, तेषां समुदायो द्वितीयस्पर्धकस्य प्रथम-

वर्गणा। द्वितीयस्पर्धकं कुतो भण्यते ? इति चेत्, उच्यते-प्रथमस्पर्धकचरमवर्गणात एकोत्तररसोऽविभागक्रमेण वृद्धेरदर्शनात् द्वितीयस्पर्धकमुच्यते, एवमग्रेऽप्यन्तरस्य दर्शनादेकोत्तरक्रमेण च वृद्धेरदर्शनात् नवानि नवानि स्पर्धकानि ज्ञातव्यानि। ततो द्वितीयस्पर्धकेऽपि पूर्ववदेकोत्तरसाविभागवृद्ध्या-ऽभव्येभ्योऽनन्तगुणाः सिद्धानामनन्तभागकल्पा वर्गणा वक्तव्याः, तासां समुदायो द्वितीयस्पर्धकम्। ततः पुनः सर्वजीवा ऽनन्तगुणरसाऽविभागैरन्तरमभिधाय सर्वजीवा ऽनन्तगुणैरभ्यधिकाः परमाणवः प्राप्यन्ते, तेषां समुदायस्तृतीयस्पर्धकस्य प्रथमवर्गणा। तत एकोत्तररसाविभागवृद्ध्या परमाणूनां वर्गणा अभव्येभ्यो-ऽनन्तगुणाः सिद्धानामनन्तभागकल्पा वक्तव्याः। ततः सर्वजीवानन्तगुणैरन्तरमभिधातव्यम्। एवंक्रमेण सत्कर्मणि सर्वाण्यभव्येभ्यो-ऽनन्तगुणानि सिद्धानन्तभागप्रमितानि स्पर्धकानि भवन्ति।

अथाऽनन्तरोपनिधा—उपनिधानम्-उपनिधा मार्गणमित्यर्थः, अनन्तरेणोपनिधा अनन्तरोपनिधा। सा चा-ऽत्राऽनुभागं प्रदेशाग्रं चाश्रित्य द्विधा। तत्र आद्या-ऽनुभागापेक्षया-ऽनन्तरोपनिधा नामाऽनन्तरवर्गणातस्तदुत्तरवर्गणायां रसाऽविभागमार्गणम्। द्वितीया प्रदेशापेक्षया-ऽनन्तरोपनिधा नामा-ऽनन्तरवर्गणातस्तदुत्तरवर्गणायां प्रदेशाग्रमार्गणम्। अनुभागोपेक्षयाऽनन्तरोपनिधाऽग्रे वक्ष्यते।

अथ प्रदेशापेक्षया-ऽनन्तरोपनिधा विविच्यते। प्रदेशाऽपेक्षया-ऽनन्तरोपनिधा प्रथमस्पर्धकस्य प्रथमवर्गणायां सर्वप्रभूतं प्रदेशाग्रं भवति, ततो द्वितीयवर्गणायां विशेषहीनं प्रदेशाग्रं भवति, एवंक्रमेणोत्तरोत्तरवर्गणायां प्रदेशाग्रं पूर्वपूर्ववर्गणातो विशेषहीनं विशेषहीनं वक्तव्यम्।

परम्परोपनिधा—परम्परया उपनिधा-मार्गणम्=परम्परोपनिधा। सा-ऽपि द्विधा, अनुभागप्रदेशभेदात्। स्पर्धकवर्गणायां रसाऽविभागानां परम्परया मार्गणमनुभागा-ऽपेक्षया परम्परोपनिधा। स्पर्धकवर्गणायां प्रदेशानां परम्परया मार्गणं प्रदेशाश्रिता परम्परोपनिधा व्यपदिश्यते। अनुभागा-ऽपेक्षया परम्परोपनिधा-ऽग्रे वक्ष्यते।

अथ प्रदेशापेक्षया परम्परोपनिधा भण्यते। प्रदेशापेक्षया परम्परोनिधा-प्रथमस्पर्धकस्य प्रथमवर्गणात उत्तरोत्तरवर्गणायां विशेषहीनक्रमेण विद्यमानाः प्रदेशाः कतिपयेष्वनन्तेषु स्पर्धकेषु गतेषु प्राप्यमाणस्पर्धकस्य प्रथमवर्गणायां प्रथमस्पर्धक प्रथमवर्गणातोऽर्धा भवन्ति। ततः पुनस्तावन्मात्रेषु स्पर्धकेषु व्यतिक्रान्तेषु तत्रत्यस्पर्धकस्यप्रथमवर्गणायामर्धाः पुद्गला भवन्ति। एवमग्रे-ऽपि वक्तव्यम्। तत्र प्रथमस्पर्धकप्रथमवर्गणातो विशेषहीनक्रमेण विद्यमाना यावत्यायामे गते प्रथमस्पर्धकप्रथमवर्गणातः प्रदेशा अर्धा भवन्ति, तावान् आयामो

द्विगुणहानिरिति परिभाष्यते। तस्यां चा-ऽभव्येभ्यो-ऽनन्तगुणानि सिद्धानन्तभागप्रमाणानि स्पर्धकानि भवन्ति। एकैकस्मिन् स्पर्धके वर्गणास्त्वभव्येभ्यो-ऽनन्तगुणाः सिद्धानन्तभागमात्राः आयुक्ता एव। तत्रैकद्विगुणहानौ स्पर्धकानि स्तोकानि भवन्ति, तत एकस्मिन् स्पर्धके वर्गणा अनन्तगुणा विद्यन्ते।

नानाद्विगुणहानयः—प्रथमस्पर्धकप्रथमवर्गणातो यावत्यायामे गते तत्रत्यस्पर्धकसत्कप्रथमवर्गणायां प्रदेशा अर्धा भवन्ति, स आयामः प्रथमा द्विगुणहानिः, ततः पुनस्तावत्यायामे गते तत्रत्यस्पर्धकस्य प्रथमवर्गणाया प्रदेशा अर्धा भवन्ति, प्रथमस्पर्धकप्रथमवर्गणा-ऽपेक्षया तु चतुर्भागमात्रा भवन्ति, स आयामो द्वितीयद्विगुणहानिः। ततः पुनस्तावत्यायामे व्रजिते तत्रत्यस्पर्धकस्य प्रथमवर्गणायां प्रदेशा अर्धा भवन्ति। प्रथमवर्गणा-ऽपेक्षया त्वष्टभागमात्राः। स आयामस्तृतीया द्विगुणहानिः। एवं सत्तागतस्पर्धकेषु यावत्यो द्विगुणहानयो लभ्यन्ते, ता नानाद्विगुणहानय उच्यन्ते, नानारूपा द्विगुणहानयो नानाद्विगुणहानय इति व्युत्पत्तेः। ताश्च प्रगणनातो-ऽनन्ता भवन्ति।

अत्रा-ऽल्पबहुत्वम्—(१) नानाद्विगुणहानयः स्तोकाः। (२) ततो-ऽनन्तगुणा द्विगुणहानिः, एकद्विगुणहानिगतवर्गणास्थानान्यनन्तगुणानीत्यर्थः*। तथा (१) एकद्विगुणहानौ स्पर्धकानि स्तोकानि भवन्ति, (२) तत एकस्मिन् स्पर्धके वर्गणा अनन्तगुणाः, ततो-ऽपि नानाद्विगुणहानयो-ऽनन्तगुणा भवन्ति। प्रत्येकं द्विगुणहान्यां स्पर्धकानां राशिस्तुल्या भवति। एवं वर्गणानामपि।

चयः प्रथमस्पर्धकस्य प्रथमवर्गणातो द्वितीयवर्गणायां यावन्तः प्रदेशा हीयन्ते, तावतां परमाणूनां समूहश्चय उच्यते, एवं द्वितीयवर्गणातस्तृतीयवर्गणायां हीयमानानां प्रदेशानां समुदायो-ऽपि चयो निगद्यते। उत्तरोत्तरवर्गणायां हीयमानपरमाणूनां समुदायश्चय उच्यते इति यावत्। एकस्यां द्विगुणहानौ चयः पूर्वपूर्ववर्गणात उत्तरोत्तरवर्गणायां समानस्तिष्ठति। तथा प्रथमद्विगुणहान्यां यश्चयो भवति, ततो-ऽर्धश्चयो द्वितीयद्विगुणहानौ भवति। ततो-ऽपि तृतीयद्विगुणहानौ अर्धो भवति। एवं पूर्वपूर्वत उत्तरोत्तरद्विगुणहान्यां चयोऽर्धोऽर्धो भवति, किं कारणम्? इति चेत्, उच्यते प्रथमद्विगुणहानिगतप्रथमवर्गणातो द्वितीयद्विगुणहानिगतप्रथमवर्गणायां प्रदेशा अर्धा भवन्ति, ततो-ऽपि तृतीयद्विगुणहानिगतप्रथमवर्गणायां प्रदेशा अर्धा भवन्ति, एवमग्रे-ऽपि। तत्र विवक्षितद्विगुणहानिगतप्रथमवर्गणाप्रदेशा द्वाभ्यां द्विगुणहानिभ्यां विभज्यन्ते, तदा卐 लब्धि-

*उक्तं च धवलाकारैरपि—"सव्वत्थोवा णाणापदेसगुणहाणिट्ठाणंतरसलागाओ। एगपदेसगुणहाणिट्ठाणंतरमणंतगुणं। को गुणगारो? अभवसिद्धिएहिं अणंतगुणो सिद्धाणमणंतभागमेत्तो।" इति।

卐 भाज्याद्भाजको यावद्वार विशुद्ध्यति, तद्वारसंख्या लब्धिसंज्ञिका भवति, भजनफलं लब्धिसंज्ञकं भवतीत्यर्थः। यथा २५६, ३२, अनयो संख्ययो षट्पञ्चाशदधिकशतद्वयलक्षणसंख्यातो द्वात्रिंशद्रूपसंख्या-ऽष्टवार विशुद्ध्यति। भाज्योऽत्र २५६, भाजक ३२, लब्धिश्च ८। अत्र षट्पञ्चाशदधिकद्विशतसंख्या द्वात्रिंशत्संख्यया विभक्ता चेल्लब्धिरष्टसंख्या भवतीति व्यवह्रियते।

लब्धिस्तद्द्विगुणहानिसत्कचयो भवति । तेन प्रथमद्विगुणहानिगतप्रथमवर्गणाप्रदेशा द्वाभ्यां द्विगुणहानिभ्यां विभज्यन्ते, तदा लब्धिः प्रथमद्विगुणहानिचयो भवति । प्रथमद्विगुणहानिप्रथमवर्गणातोऽर्धा द्वितीयद्विगुणहानिगतप्रथमवर्गणाप्रदेशा द्वाभ्यां द्विगुणहानिभ्यां विभज्यन्ते, तदा द्वितीयद्विगुणहानिचयः प्राप्यते, स च प्रथमद्विगुणहानिचयतोऽर्धो भवति, द्विगुणहानिद्वयलक्षणभाजकस्य समानत्वे सति भाज्यस्यार्धमात्रत्वात् । एवमुत्तरोत्तरद्विगुणहानौ चयोऽर्धोऽर्धः साधयितव्यः ।

प्रदर्श्यते चैतदसत्कल्पनया।

(१) कल्प्यन्तां प्रथमद्विगुणहानिप्रथमवर्गणायां षट्पञ्चाशदधिकद्विशती (२५६) प्रदेशाः । तेन द्वितीयद्विगुणहानिसत्कप्रथमवर्गणायां परमाणवोऽष्टाविंशत्यधिकशतं (१२८) तिष्ठन्ति ।

(२) द्विगुणहानिः षोडशवर्गणामात्रा कल्प्यते ।

अथ प्रथमद्विगुणहानिगतप्रथमवर्गणासत्कप्रदेशाः षट्पञ्चाशदुत्तरद्विशती (२५६) द्विगुणहानिद्वयरूपद्वात्रिंशता (३२) विभज्यते, तदा लब्धश्चयोऽष्टौ (८) प्रदेशाः, तेन प्रथमद्विगुणहान्यां चयोऽष्टप्रदेशमात्रो भवति । द्वितीयगुणहानिगतप्रथमवर्गणाप्रदेशा अष्टाविंशत्यधिकशतं (१२८) द्विगुणहानिद्वयलक्षणद्वात्रिंशता (३२) भज्यते, तदा लब्धश्चयश्चत्वारः (४) प्रदेशाः । तेन प्रथमद्विगुणहानितो द्वितीयस्यां द्विगुणहानौ चयोऽर्धो जायते । एवमन्यस्यामप्यनन्तरानन्तरद्विगुणहानौ चयोऽर्धोऽर्धो भवति ।

अथ गणितविभागः

अथ सत्तागतपरमाणूनां वर्गणास्पर्धकादिरचनाऽसत्कल्पनया प्ररूप्यते

कल्प्यन्तां (१) सत्तागतकर्मप्रदेशा अशीत्युत्तराष्टपञ्चाशच्छतानि (५८८०) ।

(२) नानाद्विगुणहानयश्चतस्रः (४) ।

(३) द्विगुणहानिः षोडशवर्गणामात्रा (१६) ।

(४) तत्रैकैकद्विगुणहानौ स्पर्धकानि चत्वारि (४) ।

(५) एकैकस्मिन् स्पर्धके वर्गणाश्चतस्रः (४) ।

(६) किञ्चिन्न्यूनसार्धद्विगुणहानिः पुन पञ्चत्रिंशदुत्तरसप्तशतानि द्वात्रिंशद्भागाः (किञ्चिन्न्यून $\frac{७३५}{३२}$) कुतः ? इति चेत्, उच्यते द्विगुणहानिः षोडशवर्गणाप्रमाणा, तेन सार्धद्विगुणहानिश्चतुर्विंशतिवर्गणाप्रमिता सिध्यति, किन्तु प्रकृते सा किञ्चिन्न्यूनाऽपेक्षिता, तेन द्वाविंशतिर्वर्गणा एकत्रिंशच्च द्वात्रिंशद्भागाः ($२२\frac{३१}{३२}$) इति कल्प्यते ।

यद्यप्येकद्विगुणहानिगतस्पर्धकत एकस्पर्धके वर्गणा अनन्तगुणाः, ततो नानाद्विगुणहानयो-ऽनन्तगुणा भवन्ति, किन्तु गणितप्रक्रियासौकर्यार्थं त्रीण्यपि पदानि चतुःसंख्यकानि कल्पितानि ।

अथ प्रथमद्विगुणहानिगतप्रथमवर्गणायां कर्मप्रदेशा निरूप्यन्ते सत्तागतकर्मप्रदेशेषु किञ्चिन्न्यूनसार्धद्विगुणहान्या विभक्तेषु प्रथमद्विगुणहानिगतप्रथमवर्गणासत्ककर्मप्रदेशा लभ्यन्ते । अतः प्रकृते पञ्चत्रिंशदुत्तरसप्तशतैर्द्वात्रिंशद्भागैः सत्तागतकर्मप्रदेशेष्वशीत्युत्तराष्टपञ्चाशच्छतमितेषु विभाजितेषु प्रथमद्विगुणहानिगतप्रथमवर्गणासत्काः प्रदेशाः षट्पञ्चाशदधिकद्विशती (२५६) लभ्यन्ते ।

न्यासः प्रथमद्विगुणहानिप्रथमवर्गणाकर्मप्रदेशाः = सत्तागतपरमाणव ÷ किञ्चिन्न्यूनसार्धद्विगुणहानिः

प्रकृतेऽङ्कत " " " $= ५८८० \div \frac{७३५}{३२}$

" " " $= ५८८० \times \frac{३२}{७३५}$

" " " $= २५६$

चयः—विवक्षितद्विगुणहानिसत्कप्रथमवर्गणागतपरमाणवो द्वाभ्यां द्विगुणहानिभ्यां विभज्यन्ते, तदा तद्द्विगुणहानिसत्कश्चयो लभ्यते इति करणम् । प्रकृते द्विगुणहानिद्वयलक्षणद्वात्रिंशता (३२) षट्पञ्चाशदधिकशतद्वये भाजिते चयो-ऽष्टपरमाणुमात्रः प्राप्यते ।

न्यास

$$\text{तत्तद्द्विगुणहानिचयः} = \frac{\text{तत्तद्द्विगुणहानिप्रथमवर्गणाप्रदेशाः}}{\text{द्वे द्विगुणहानी}}$$

$$\text{प्रकृतेऽङ्कत: प्रथमद्विगुणहानिचय} = \frac{२५६}{२ \times १६}$$

$$= ८$$

प्रथमद्विगुणहानौ प्रथमवर्गणातः परमुत्तरोत्तरवर्गणायामष्टपरमाणुभिर्हीना हीनतराः प्रदेशा भवन्ति, चयस्या-ऽष्टपरमाणुमात्रत्वात् । तथाहि—प्रथमद्विगुणहानिसत्कप्रथमस्पर्धकस्य प्रथमवर्गणायां परमाणवः षट्पञ्चाशदुत्तरद्विशती (२५६), द्वितीयवर्गणायामष्टचत्वारिंशदधिकद्विशती (२४८), तृतीयवर्गणायां चत्वारिंशदुत्तरद्विशती (२४०), चतुर्थवर्गणायां द्वात्रिंशदधिकद्विशतमिता (२३२) भवन्ति । ततः प्रथमद्विगुणहानिसत्कद्वितीयस्पर्धकस्य प्रथमवर्गणायां द्विशती चतुर्विंशतिश्च (२२४), द्वितीयवर्गणायां षोडशोत्तरद्विशती (२१६) । एवमेकैकचयेन हीना हीनतराः कर्मपरमाणवस्तावदभिधातव्याः, यावच्चतुर्थस्पर्धकस्य चतुर्थवर्गणा । तस्यां च षट्त्रिंशदधिकशतं (१३६) कर्मप्रदेशा भवन्ति ।

द्वितीयद्विगुणहानिसत्कप्रथमादिवर्गणासु कर्मप्रदेशाः प्रथमद्विगुणहानेश्चतुर्थस्पर्धकचतुर्थवर्गणासत्केभ्यः षट्त्रिंशदधिकशतप्रदेशेभ्योऽष्टपरमाणुमात्रैकचयो विशोध्यते, तदा-ऽष्टा-

ननु प्रथमद्विगुणहानिप्रथमस्पर्धकप्रथमवर्गणाप्रदेशप्राप्त्यर्थं किञ्चिन्न्यूनसार्धद्विगुणहान्या कुतो विभज्यन्ते सत्तागतसर्वप्रदेशा ? इति चेत्, उच्यते-इहादौ तावत् प्रथमद्विगुणहानिप्रथमस्पर्धकप्रथमवर्गणाप्रदेशतुल्यप्रदेशका द्विगुणहानिवर्गणामात्र्यो वर्गणा स्थाप्या., असत्कल्पनया षट्पञ्चाशदधिकद्विशतप्रदेशका (२५६) षोडश(१६) वर्गणा । सत्तामाश्रित्य सर्ववर्गणास्तुल्यप्रदेशका न भवन्ति, परन्तु प्रथमवर्गणापेक्षया द्वितीयवर्गणायामेकचयेन हीना. प्रदेशा भवन्ति, तृतीयस्या द्वाभ्यां चयाभ्यां हीना., चतुर्थ्यां त्रिभिश्चयैर्हीना भवन्ति, एवक्रमेण प्रथमद्विगुणहानेश्चरमस्पर्धकचरमवर्गणाया प्रथमस्पर्धकप्रथमवर्गणापेक्षयैकोनद्विगुणहानिवर्गणाराशिमात्रैश्चयैर्हीना: प्रदेशा भवन्ति । तांश्चयान् सङ्कलय्य तेषां प्रथमवर्गणाप्रदेशतुल्यप्रदेशका वर्गणा निष्पादयितव्याः, निष्पाद्य च तासु प्राक्स्थाप्याभ्यो द्विगुणहानिवर्गणाप्रमाणाभ्यो वर्गणाभ्यो विशोधितासु शेषा प्रथमवर्गणाप्रदेशतुल्यप्रदेशका वर्गणा प्रथमद्विगुणहानिसर्वप्रदेशनिष्पन्नाः। इह चयाना सङ्कलन वर्गणादिनिष्पादनादिक चैवम्-"सैकपदघ्नपदार्धमथैकाद्यङ्कयुति. किल सङ्कलिताख्या" इत्यनेन करणसूत्रेण सर्वचयाः सङ्कलयितव्या, पद चेह द्विगुणहानिवर्गणाराशि, असत्कल्पनया १६ । अनेन करणसूत्रेणाऽसत्कल्पनामाश्रित्य सङ्कलिताश्चया $(१५+१)\times\frac{१५}{२}=१२०$ । प्रथमद्विगुणहानिसङ्कलितचयै. प्रथमद्विगुणहान्येकचयप्रदेशा गुण्यन्ते, तदा प्रथमद्विगुणहानिसर्वचयप्रदेशाः प्राप्यन्ते, असत्कल्पनया $१२०\times८=९६०$, ते च प्रथमद्विगुणहानिप्रथमस्पर्धकप्रथमवर्गणाप्रदेशैर्विभज्यन्ते, तदैकवर्णोनद्विगुणहानेश्चतुर्भागप्रमाणाः प्रथमद्विगुणहानिप्रथमस्पर्धकप्रथमवर्गणाप्रदेशतुल्यप्रदेशका वर्गणा लभ्यन्ते, असत्कल्पनया $\frac{९६०}{२५६}=\frac{१५}{४}, \frac{१६-१}{४}=\frac{१५}{४}=३\frac{३}{४}$ । ताश्च द्विगुणहानिवर्गणाप्रमाणाभ्यो वर्गणाभ्यो विशोधयितव्याः, विशोधने कृते प्रथमवर्गणाचतुर्भागाधिकद्विगुणहानित्रिचतुर्भागप्रमाणा. प्रथमद्विगुणहानिप्रथमस्पर्धकप्रथमवर्गणाप्रदेशतुल्यप्रदेशका वर्गणा., ताश्चाऽसत्कल्पनया $१६-३\frac{३}{४}=१२\frac{१}{४}$, । प्रतिवर्गणं प्रदेशास्तु २५६, २५६, २५६, २५६, २५६, २५६, २५६, २५६, २५६, २५६, २५६, २५६, ६४ । इत्थ यथोत्तरमेकैकचयहीनप्रदेशकत्वेनाऽवतिष्ठमाना. प्रथमद्विगुणहानिसर्ववर्गणाः स्वप्रथमवर्गणाप्रदेशतुल्यप्रदेशकाः क्रियन्ते, तदा स्वप्रथमवर्गणाप्रदेशतुल्यप्रदेशका वर्गणा स्वप्रथमवर्गणाचतुर्भागाधिकद्विगुणहानित्रिचतुर्भागप्रमाणा भवन्ति, असत्कल्पनया $१२\frac{१}{४}$ । एव शेषद्विगुणहानीनामपि वर्गणा स्वस्वप्रथमस्पर्धकप्रथमवर्गणाप्रदेशतुल्यप्रदेशका क्रियन्ते,तदा स्वस्वप्रथमवर्गणाप्रदेशतुल्यप्रदेशका वर्गणा स्वस्वप्रथमवर्गणाचतुर्भागाधिकद्विगुणहानित्रिचतुर्भागप्रमाणा लभ्यन्ते, असत्कल्पनया $१२\frac{१}{४}$ । यदि पुनस्ता प्रथमद्विगुणहानिप्रथमस्पर्धकप्रथमवर्गणाप्रदेशतुल्यप्रदेशका क्रियन्ते, तदा पूर्वपूर्वद्विगुणहानिवर्गणातोऽर्धा अर्धा भवन्ति, असत्कल्पनया $६\frac{१}{८}$, $३\frac{१}{१६}$ $१\frac{१७}{३२}$, उत्तरोत्तरद्विगुणहानिप्रथमवर्गणाप्रदेशाना द्विगुणहीनत्वात् । अथ प्रथमद्विगुणहानिवर्जशेषद्विगुणहानीनां प्रथमद्विगुणहानिप्रथमस्पर्धकप्रथमवर्गणाप्रदेशतुल्यप्रदेशका वर्गणा सङ्कलयितव्याः, सङ्कलिताश्च ताश्चरमद्विगुणहानिप्रदेशनिष्पन्नप्रथमद्विगुणहानिप्रथमस्पर्धकप्रथमवर्गणाप्रदेशतुल्यप्रदेशकवर्गणाहीनप्रथमद्विगुणहानिसत्कस्वप्रथमवर्गणाप्रदेशतुल्यप्रदेशकसर्ववर्गणाप्रमाणा भवन्ति, असत्कल्पनया $६\frac{१}{८}+३\frac{१}{१६}+१\frac{१७}{३२}=१०\frac{२३}{३२}$, $(१२\frac{१}{४}-१\frac{१७}{३२})=१०\frac{२३}{३२}$। ताश्च स्वप्रथमवर्गणाचतुर्भागाधिकद्विगुणहानित्रिचतुर्भागप्रमाणासु प्रथमद्विगुणहानिवर्गणासु प्रक्षिप्यन्ते, तदा प्रथमद्विगुणहानिप्रथमस्पर्धकप्रथमवर्गणाप्रदेशतुल्यप्रदेशका वर्गणाः किञ्चिन्न्यूनसार्धद्विगुणहानिप्रमाणा लभ्यन्ते, असत्कल्पनया $१२\frac{१}{४}+१०\frac{२३}{३२}=\frac{७३५}{३२}=२२\frac{३१}{३२}$ । एतावत्प्रथमवर्गणामात्रा प्रदेशा सत्तायां भवन्ति। यत एतावत्प्रथमवर्गणामात्रा प्रदेशा सत्ताया भवन्ति, तत एतावतीभिर्वर्गणाभिर्विभक्तेषु प्रदेशेषु प्रथमद्विगुणहानिप्रथमस्पर्धकप्रथमवर्गणाप्रदेशा लभ्यन्ते। तथा यत एव द्विगुणहानीना सर्वप्रदेशा स्वस्वप्रथमस्पर्धकप्रथमवर्गणाचतुर्भागाधिकद्विगुणहानित्रिचतुर्भागप्रमाणस्वस्वप्रथमस्पर्धकवर्गणाप्रदेशतुल्यप्रदेशकवर्गणामात्रा भवन्ति, ततस्ताभि $(\frac{३}{४}$ द्विगुणहानि. $+\frac{१}{४})$ तत्तद्द्विगुणहानिसकलप्रदेशेषु विभक्तेषु तत्तद्द्विगुणहानिप्रथमस्पर्धकप्रथमवर्गणाप्रदेशा लभ्यन्ते । तेन नवोत्तराधिकशततमपृष्ठे एकोनविंशतितमपङ्क्तौ 'द्विगुणहानि त्रिचतुर्भागी कृत्यै०' इत्यादिकरणमुक्तम् ।

विंशत्यधिकशतपरमाणवो-ऽवशिष्यन्ते, ते च द्वितीयद्विगुणहानिसत्कप्रथमस्पर्धकप्रथमवर्गणागता भवन्ति, न च ते-ऽसिद्धाः, करणसूत्रेण तावतामेव लाभात् । तथा चा-ऽत्र करणसूत्रम् प्रथमद्विगुणहानिसत्कप्रथमवर्गणागतपरमाणुषु द्विकेन हृतेषु द्वितीयद्विगुणहानिसत्कप्रथमवर्गणागतकर्मप्रदेशाः प्राप्यन्ते । एतेन षट्पञ्चाशदुत्तरद्विशतयोर्द्विकेन भाजितयोरष्टाविंशत्यधिकशतप्रमिता द्वितीयद्विगुणसत्कप्रथमवर्गणागतपरमाणवो लभ्यन्ते ।

न्यास

$$\text{द्वितीयद्विगुणहानिप्रथमवर्गणाप्रदेशा} = \frac{\text{प्रथमद्विगुणहानिप्रथमवर्गणाप्रदेशा}}{२}$$

$$\text{प्रकृते-ऽङ्कतो} \quad ,, \quad ,, \quad ,, \quad = \frac{२५६}{२}$$

$$= १२८$$

चयः प्रथमद्विगुणहान्यां यश्चयः प्राप्तः, तदर्धो द्वितीयद्विगुणहान्यां भवति । तेन द्विकेन विभक्तः प्रथमद्विगुणहानिगतचयश्चतुष्परमाण्वात्मको द्वितीयद्विगुणहानिगतचयो लभ्यते ।

न्यास.

$$\text{द्वितीयद्विगुणहानौ चय.} = \frac{\text{प्रथमद्विगुणहानिचयः}}{२}$$

$$\text{प्रकृते-ऽङ्कतो} \quad ,, \quad ,, \quad ,, \quad = \frac{८}{२}$$

$$= ४$$

यदा द्वितीयद्विगुणहानिसत्कप्रथमवर्गणास्थितपरमाणवो द्विगुणहानिद्वयेन विभज्यन्ते, तदा द्वितीयद्विगुणहानिसत्कचयः प्राप्यते । अनेन विधिनाऽप्यष्टाविंशत्यधिकशते द्विगुणहानिद्वयरूपद्वात्रिंशता विभक्ते चयश्चतुष्परमाण्वात्मको लभ्यते ।

न्यास

$$\text{द्वितीयद्विगुणहान्या चय} = \frac{\text{द्वितीयद्विगुणहानिप्रथमवर्गणागतपरमाणव}}{\text{द्वे द्विगुणहानी}}$$

$$\text{प्रकृतेऽङ्कतो} \quad ,, \quad ,, \quad ,, \quad = \frac{१२८}{२ \times १६}$$

$$= \frac{१२८}{३२}$$

$$= ४$$

एवं पूर्वपूर्वत उत्तरोत्तरद्विगुणहानौ प्रथमवर्गणायां परमाणवो-ऽर्धा अर्धा भवन्ति, तथैव पूर्वपूर्वत उत्तरोत्तरद्विगुणहानौ चयो-ऽप्यर्धो-ऽर्धो भवति । उत्तरोत्तरवर्गणायां च कर्मप्रदेशा एकैकचयेन हीना वक्तव्याः ।

सत्तागत-सर्वपरमाणूनां वर्गणास्पर्धकादीनि दर्शयद्-यन्त्रकम्

	प्रथमं स्पर्धकम्	द्वितीयं स्पर्धकम्	तृतीयं स्पर्धकम्	चतुर्थं स्पर्धकम्
द्विगु०-चय, वर्गणा-	प्र० द्वि० तृ० च०	प्र० द्वि० तृ० च०	प्र० द्वि० तृ० च०	प्र० द्वि० तृ० च०
प्रथमा ८ परमाणव -	२५६,२४८,२४०,२३२	२२४,२१६,२०८,२००	१९२,१८४,१७६,१६८	१६०,१५२,१४४,१३६
द्वितीय ४ ,,	१२८,१२४,१२०,११६	११२,१०८,१०४,१००	९६, ९२, ८८, ८४	८०, ७६, ७२, ६८
तृतीया २ ,,	६४, ६२, ६०, ५८	५६, ५४, ५२, ५०	४८, ४६, ४४, ४२	४०, ३८, ३६, ३४
चतुर्थी १ ,,	३२, ३१, ३०, २९	२८, २७, २६, २५	२४, २३, २२, २१	२०, १९, १८, १७

सम्प्रति प्रकारान्तरेणैव वक्तव्यता प्रदर्श्यते कर्मप्रदेशादीनामसत्कल्पना पूर्ववत् कर्तव्या ।

अन्तिमद्विगुणहानौ परमाणवः नानाद्विगुणहानिसंख्याप्रमाणद्विकानां परस्परं गुणनं कृत्वा गुणिततो रूपं विशोध्या-ऽवशिष्टेन सत्तागतपरमाणवो विभक्तव्याः, लब्धौ प्राप्यमाण-परमाणवश्चरमद्विगुणहानिसत्का भवन्ति । एतदुक्तं भवति सत्कर्मणि यावत्यो द्विगुणहानयो भवन्ति, तावन्ति द्विकानि स्थापयितव्यानि । ततो द्विकानि परस्परं गुणयितव्यानि, गुणिततो रूपं विशोध्या-ऽवशिष्टेन सत्तागतपरमाणवो विभक्तव्याः, लब्धिस्तु चरमद्विगुणहानिगतसकल-परमाणुराशिर्भवति ।

न्यास.

$$\text{अन्तिमद्विगुणहानिगतपरमाणवः} = \frac{\text{सत्तागतपरमाणवः}}{(२)^{\text{नानाद्विगुणहानय}} - १}$$

$$\text{प्रस्तुतेऽङ्कतो} \quad ,, \quad ,, \quad = \frac{५८८०}{(२)^{४}-१}$$

$$= \frac{५८८०}{(२\times२\times२\times२)-१}$$

$$= \frac{५८८०}{१६-१}$$

$$= ३९२$$

शेषासु द्विगुणहानिषु परमाणूनामुपलब्धिः पूर्वानुपूर्व्या यतितमद्विगुणहान्याः परमाणवो-ऽभिप्रेता भवन्ति, तावत्संख्यान्यूननानाद्विगुणहानिसंख्याप्रमाणद्विकानि मिथो गुणयित्वा गुणितैश्चरमद्विगुणहानिगतपरमाणवो गुण्यन्ते, तदा निरुक्तद्विगुणहानिगतपरमाणवो लभ्यन्ते । भावार्थः पुनरयम्—यतितमद्विगुणहानेः परमाणवो-ऽभिप्रेता भवेयुः, तावतीं संख्यां नानाद्विगुण-हानितो व्यवकलय्या-ऽवशिष्टा यावती संख्या भवति, तावन्ति द्विकानि स्थापयित्वा परस्परं गुणयितव्यानि, गुणनफलं च पुनश्चरमद्विगुणहानिगतपरमाणुभिर्गुण्यते, तदा विवक्षितद्विगुण-हानिगतपरमाणवः प्राप्यन्ते ।

न्यासः　　　　　　　　　　　　　　　　　　नानाद्विगुणहानयः—४८द्विगुणहानिः

विवक्षितद्विगुणहान्यां परमाणवः = चरमद्विगुणहानिपरमाणवः × (२)

प्रकृतेऽङ्कतः प्रथमद्विगुणहान्यां प्रदेशाः = ३९२ × (२ $^{४-१}$

= ३९२ × (२)^{३}

= ३९२ × (२×२×२)

= ३९२ × ८

= ३१३६

द्वितीयद्विगुणहान्यां प्रदेशाः = ३९२ × (२)$^{४-२}$

= ३९२ × (२)^{२}

= ३९२ × (२×२)

= ३९२ × ४

= १५६८

तृतीयद्विगुणहान्यां परमाणवः = ३९२ × (२)$^{४-३}$

= ३९२ × (२)^{१}

= ३९२ × २

= ७८४

विवक्षितद्विगुणहानिगतप्रथमादिवर्गणासु कर्मपरमाणूनां निरूपणम्— द्विगुणहानिं त्रिचतुर्भागीकृत्यैकरूपस्य चतुर्भागं संकलय्य सङ्कलितेन तद्द्विगुणहानिगतपरमाणुषु विभक्तेषु तद्द्विगुणहानिगतप्रथमवर्गणासत्काः परमाणवः प्राप्यन्ते इति करणम् ।

अनेन करणेन प्रथमद्विगुणहानिगतप्रथमादिवर्गणासु कर्मप्रदेशा निरूप्यन्ते

न्यासः

विवक्षितद्विगुणहानिगतप्रथमवर्गणायां परमाणवः = $\frac{\text{तद्द्विगुणहानिगतपरमाणवः}}{(\frac{३}{४}\ \text{द्विगुणहानिः}) + \frac{१}{४}}$

प्रकृतेऽङ्कतः प्रथमद्विगुणहानिगतप्रथमवर्गणायां परमाणवः = $\frac{३१३६}{(\frac{३}{४} \times १६) + \frac{१}{४}}$

= $\frac{३१३६}{१२ + \frac{१}{४}}$

= $\frac{३१३६}{\frac{४९}{४}}$

= $\frac{३१३६}{४९} \times ४$

= २५६

उत्तरोत्तरवर्गणायामेकैकचयेन परमाणवो हीयन्ते, चयस्त्वष्टपरमाणुमात्रः प्रथमविकल्पवत् साधनीयः ।

सम्प्रत्यनन्तरोक्तकरणेन द्वितीयद्विगुणहानिगतप्रथमादिवर्गणासु कर्मप्रदेशा निरूप्यन्ते—

$$\text{द्वितीयद्विगुणहानिगतप्रथमवर्गणायां परमाणव.} = \frac{१५६८}{(\frac{३}{४}\times१६)+\frac{१}{४}}$$

$$= \frac{१५६८}{१२+\frac{१}{४}}$$

$$= \frac{१५६८}{\frac{४९}{४}}$$

$$= \frac{१५६८}{४९}\times४$$

$$= १२८$$

तत उत्तरोत्तरवर्गणायामेकैकचयेन परमाणवो हीना हीनतरा वक्तव्याः, चयस्तु चतुष्परमाणुप्रमितः प्रथमविकल्पवत् साध्यः। एवं शेषद्विगुणहान्योः प्रथमादिवर्गणासु कर्मप्रदेशाः साधयितव्याः।

अथवा द्वितीयविकल्पमाश्रित्यैकैकद्विगुणहानिगतपरमाणून् प्राप्य वक्ष्यमाणप्रकारेण प्रथमादिवर्गणासु कर्मप्रदेशा अभिधातव्याः।

तत्तद्द्विगुणहानिगतपरमाणवः पदेन विभक्तव्याः। लब्धिश्च मध्यमधनं भवति। मध्यमधनं पुनरेकोनपदार्धन्यूनाभ्यां द्वाभ्यां द्विगुणहानिभ्यां विभज्यते, तदा तत्तद्द्विगुणहानिगतचयः प्राप्यते। चये तु द्विगुणहानिद्वयेन गुणिते तत्तद्द्विगुणहानिसत्कप्रथमवर्गणागतपरमाणवः प्राप्यन्ते, तत उत्तरोत्तरवर्गणायामेकैकचयेन हीनाः परमाणवो वक्तव्याः। पदं चाऽत्र द्विगुणहानिमात्रं बोध्यम्।

न्यास.

$$\text{मध्यमधनम्} = \frac{\text{तत्तद्द्विगुणहानिगतसकलपरमाणव.}}{\text{पदम्}}$$

$$\text{चय} = \frac{\text{मध्यमधनम्}}{\text{द्वे द्विगुणहानी} - \frac{\text{पदम्}-१}{२}}$$

तत्तद्द्विगुणहानिगतप्रथमवर्गणायां परमाणव = चय × द्वे द्विगुणहानी

उत्तरोत्तरवर्गणायामेकैकचयेन परमाणवो हीना वक्तव्या।

अनया रीत्याऽङ्कत प्रथमद्विगुणहानिगतप्रथमादिवर्गणासु कर्मप्रदेशा.

प्रथमद्विगुणहानौ सकलपरमाणव = ३१३६

$$\text{मध्यमधनम्} = \frac{३१३६}{१६}$$

$$= १९६$$

$$\text{चय} = \frac{१९६}{(२\times१६)-\frac{१६-१}{२}}$$

असत्कल्पनया पूर्वस्पर्द्धकानां रचना

प्र थ म द्वि गु ण हा निः द्वितीयद्विगुणहानिः

तस्यामसत्कल्पनया सर्वसख्यया स्पर्धकानि चत्वारि (४), षोडश (१६) वर्गणा, षट्त्रिंशदधिकैकत्रिंशच्छतसख्याका. (३१३६) तस्या कर्मप्रदेशाः १५६८ कर्मप्रदेशा, परमार्थतस्तु स्पर्धकानि वर्गणा कर्मप्रदेशाश्चा ऽनन्ता भवन्ति ।

⊡ - कर्मप्रदेशा, उत्तरोत्तरवर्गणायाश्च ते एकैकचयेन हीना ।

प्रथमस्पर्धकम्	कर्मप्रदेशा २५६	र० १०००००
	कर्मप्रदेशा २४८	र० १००००१
	कर्मप्रदेशा २४०	र० १००००२
	कर्मप्रदेशा २३२	र० १००००३
अन्तरम्	९९, ९९७ रसा०	
द्वितीयस्पर्धकम्	कर्मप्रदेशा. २२४	र० २०००००
	कर्मप्रदेशा २१६	र० २००००१
	कर्मप्रदेशा २०८	र० २००००२
	कर्मप्रदेशा २००	र० २००००३
अन्तरम्	९९, ९९७ रसा०	
तृतीयस्पर्धकम्	कर्मप्रदेशा. १९२	र० ३०००००
	कर्मप्रदेशा १८४	र० ३००००१
	कर्मप्रदेशा. १७६	र० ३००००२
	कर्मप्रदेशा १६८	र० ३००००३
अन्तरम्	९९, ९९७ रसा०	
चतुर्थस्पर्धकम्	कर्मप्रदेशा १६०	र० ४०००००
	कर्मप्रदेशाः १५२	र० ४००००१
	कर्मप्रदेशा. १४४	र० ४००००२
	कर्मप्रदेशा १३६	र० ४००००३
	९९ ९९७ रसा०	
प्रथमस्पर्धकम्	कर्मप्रदेशा १२८	र० ५०००००
	कर्मप्रदेशा १२४	र० ५००००१
	कर्मप्रदेशा १२०	र० ५००००२
	कर्मप्रदेशा ११६	र० ५००००३

सङ्केतस्पष्टीकरणम्—

१=प्रथमवर्गणा । २=द्वितीयवर्गणा । ३=तृतीयवर्गणा । ४=चतुर्थवर्गणा ।

र०=एकप्रदेशे रसाविभागा रसा०=रसाविभागा

प्रदेशापेक्षया-ऽनन्तरोपनिधा—

प्रथमद्विगुणहान्यां चयोऽष्टप्रदेशात्मकः, द्वितीयद्विगुणहान्यां तु तदर्धश्चतुष्प्रदेशात्मक. । तेन प्रथमद्विगुणहान्यामुत्तरोत्तरवर्गणायामष्टभिरष्टभि प्रदेशैर्हीना हीनतरा प्रदेशा भवन्ति, द्वितीयद्विगुणहान्यां तु चतुर्भिश्चतुर्भिर्हीना हीनतरा भवन्ति, असत्कल्पनयेह चित्रे प्रथमद्विगुणहानिप्रथमवर्गणायां प्रदेशाः २५६, द्वितीयवर्गणायाम् २४८, तृतीयवर्गणायाम् २४०, एवमग्रेऽपि ।

प्रदेशापेक्षया परम्परोपनिधा—

अत्र षोडशवर्गणाप्रमाणा द्विगुणहानि' कल्पिता । तेनाऽसत्कल्पनया प्रथमद्विगुणहान्याः प्रथमवर्गणायां ये षट्पञ्चाशदधिकद्विशतसंख्याका (२५६) प्रदेशा भवन्ति, तदर्धाः प्रदेशा द्वितीयद्विगुणहानिप्रथमवर्गणायामष्टाविंशत्युत्तरशतसङ्ख्याका (१२८) भवन्ति, तदर्धास्तृतीयद्विगुणहानिप्रथमवर्गणायां चतुष्षष्टिः (६४) । एवमग्रेऽपि ।

अनुभागापेक्षया-ऽनन्तरोपनिधा—

प्रथमद्विगुणहानिप्रथमवर्गणायां रसाविभागा १००००० , एकाधिकास्ते द्वितीयवर्गणायाम् १००००१, एवमुत्तरोत्तरवर्गणायामेकैकेनाऽधिका ज्ञातव्या , इहैकस्पर्धके चतुर्वर्गणाना कल्पनात् चरमवर्गणायाम् १००००३ । ९९,९९७ रसाविभागाऽनन्तरत्वेन कल्पिताः, तेन प्रथमद्विगुणहानिद्वितीयस्पर्धकप्रथमवर्गणाया रसाविभागा २०००००, एवमग्रे-ऽपि वक्तव्याः ।

अनुभागाऽपेक्षया परम्परोपनिधा—

प्रथमद्विगुणहानिप्रथमस्पर्धकप्रथमवर्गणागतरसाविभागतः [१०००००] द्वितीयस्पर्धकप्रथमवर्गणायां द्विगुणा. २००००० रसाविभागा. । तृतीयस्पर्धकप्रथमवर्गणायां तु त्रिगुणा ३०००००, एवमग्रेऽपि प्रथमद्विगुणहानिप्रथमवर्गणापेक्षया यतिसंख्यं स्पर्धकं भवति, तत्संख्यगुणा रसाविभागास्तत्स्पर्धकप्रथमवर्गणायां भवन्ति ।

अथ प्रथमस्पर्धकप्रथमवर्गणागतरसाविभागतो [१०००००] द्वितीयस्पर्धकप्रथमवर्गणायां रसाविभागा द्विगुणाः २००००० भवन्ति, द्वितीयस्पर्धकप्रथमवर्गणागतरसाविभागत [२०००००] तृतीयस्पर्धकप्रथमवर्गणायां त्रिद्विभागगुणा [२०००००× $\frac{3}{2}$] ३००००० भवन्ति, ततश्चतुर्थस्पर्धकप्रथमवर्गणाया चतुस्त्रिभागगुणा [३०००००× $\frac{4}{3}$] ४००००० भवन्ति । एवमग्रेऽपि ।

$$= \frac{१९६}{३२ - \frac{१५}{२}}$$

$$= \frac{१९६}{\frac{४९}{२}}$$

$$= ८$$

प्रथमवर्गणायां कर्मप्रदेशाः $= ८ \times (२ \times १६)$

$$= ८ \times ३२$$

$$= २५६$$

तत उत्तरोत्तरवर्गणायामष्टपरमाणुलक्षणैकैकचयेन हीना हीनतराः कर्मप्रदेशा निगदितव्याः । एवं शेषद्विगुणहानिगतवर्गणासु कर्मप्रदेशा निश्चेतव्याः । पश्यन्तु पाठका यन्त्रकम्—१२ ।

गणितविभागः समाप्तः ।

स्पर्धकेषु वर्गणास्तत्र च परमाणून्निरूप्य सम्प्रति रसाऽविभागानभिदध्महे ।

अनुभागा-ऽपेक्षया-ऽनन्तरोपनिधा प्रथमस्पर्धकस्य प्रथमवर्गणायां सर्वस्तोका रसाऽविभागा भवन्तोऽपि सर्वजीवेभ्योऽनन्तगुणा विद्यन्ते । तत एकेनाधिका रसाऽविभागा द्वितीयवर्गणायां भवन्ति । ततोऽप्येकेना-ऽधिकास्तृतीयवर्गणायाम्, एवं तावद् वक्तव्यम्, यावत् प्रथमस्पर्धकस्य चरमवर्गणा । ततो द्वितीयस्पर्धकस्य प्रथमवर्गणायां रसाऽविभागाः सर्वजीवानन्तगुणैरधिका भवन्ति, प्रथमस्पर्धकस्य चरमवर्गणातो द्वितीयस्पर्धकस्य प्रथमवर्गणायां रसा-ऽविभागानां मार्गणमप्यनन्तरोपनिधा भण्यते, प्रथमस्पर्धकचरमवर्गणातो द्वितीयस्पर्धकप्रथमवर्गणाया अनन्तरत्वात् । द्वितीयस्पर्धकस्य प्रथमवर्गणातस्तद्द्वितीयवर्गणायां रसाऽविभागा एकेनाधिका भवन्ति, ततस्तत्तृतीयायामेकेनाधिकाः । एवंक्रमेण यत्र यत्र स्पर्धकद्वयस्य सन्धिर्भवति, तत्र तत्र प्राक्तनवर्गणातो-ऽनन्तरोत्तरवर्गणायां रसाऽविभागाः सर्वजीवाऽनन्तगुणैरधिका वक्तव्याः, अन्यत्रैकेन रसाऽविभागेनाऽधिका वक्तव्याः । एवं तावद्वक्तव्यम्, यावच्चरमस्पर्धकस्य चरमवर्गणा ।

अनुभागापेक्षया परम्परोपनिधा प्रथमस्पर्धकस्य प्रथमवर्गणातस्तत्स्पर्धकस्याऽन्यासु वर्गणास्वनन्ततमभागेनाधिका रसा-ऽविभागा भवन्ति, न पुनरसंख्येयभागादिभिर्वृद्धाः तथा प्रथमस्पर्धकप्रथमवर्गणायां यावन्तो रसा-ऽविभागा भवन्ति, ततो द्विगुणा रसाऽविभागा द्वितीयस्पर्धकस्य प्रथमवर्गणायां भवन्ति, तृतीयस्पर्धकस्य प्रथमवर्गणायां तु त्रिगुणाः, चतुर्थस्य स्पर्धकस्य प्रथमवर्गणायां तु चतुर्गुणा भवन्ति । एवं प्रथमद्विगुणहानौ यतिसंख्यं यतिसंख्यं स्पर्धकं चिन्त्यते, तावत्संख्यागुणिताः प्रथमस्पर्धकसत्कप्रथमवर्गणागता रसाऽविभागास्ततिसंख्यस्य ततिसंख्यस्य स्पर्धकस्या-ऽऽदिवर्गणायां वक्तव्याः । तदेवं प्रथमद्विगुणहानौ परम्परोपनिधा गता, शेषद्विगुणहानिषु तु यथागमं भावनीया ।

अथ गणितविभागः

अथ पूर्वपूर्वस्पर्धकत उत्तरोत्तरस्पर्धकस्य प्रथमवर्गणायां रसाऽविभागाः सुबोधार्थं निरूप्यन्ते प्रथमस्पर्धकस्य प्रथमवर्गणातो द्वितीयस्पर्धकस्य प्रथमवर्गणायां द्विगुणा रसाऽविभागा भवन्ति, द्वितीयस्पर्धकस्य प्रथमवर्गणातस्तृतीयस्पर्धकस्य प्रथमवर्गणायां त्रिद्विभागगुणा रसाऽविभागा भवन्ति, तृतीयस्पर्धकस्य प्रथमवर्गणातश्चतुर्थस्पर्धकगतप्रथमवर्गणायां चतुस्त्रिभागगुणा रसाऽविभागा भवन्ति, चतुर्थस्पर्धकस्य प्रथमवर्गणातः पञ्चमस्पर्धकगतप्रथमवर्गणायां पञ्चचतुर्भागगुणा रसाऽविभागा भवन्ति, पञ्चमस्पर्धकस्य प्रथमवर्गणातः षष्ठस्पर्धकगतप्रथमवर्गणायां षट्पञ्चभागगुणा रसाऽविभागा भवन्ति ।

इदमत्र करणम्–प्रथमद्विगुणहानौ यतिसंख्यं स्पर्धकमुद्दिष्टं भवति, एकोनतत्संख्याविभक्ततत्संख्यागुणा रसाऽविभागा उद्दिष्टस्पर्धकस्य प्रथमवर्गणायां तत्प्राक्तनस्पर्धकप्रथमवर्गणातो भवन्तीति ।

न्यास

विवक्षितस्पर्धकप्रथमवर्गणाया रसाविभागास्तत्प्राक्तनस्पर्धकप्रथमवर्गणात $= \frac{\text{यतितम स्पर्धक तत्संख्या}}{\text{रूपोनतत्संख्या}}$ गुणा

नन्वनन्तरोक्तकरणेन शततमस्पर्धकगतप्रथमवर्गणायां रसाविभागास्तत्प्राक्तनस्पर्धकप्रथमवर्गणातः कियद्गुणा रसाविभागा भवन्ति ? इति चेत्, उच्यते–शत-नवनवतिभागगुणा भवन्ति ।

न्यासः

शततमस्पर्धकप्रथमवर्गणायां रसाविभागास्तत्प्राक्तनस्पर्धकवर्गणात $= \frac{१००}{१००-१}$ गुणा

$= \frac{१००}{९९}$

ननु कतितमस्य स्पर्धकस्य प्रथमवर्गणायां रसाऽविभागास्तत्प्राक्तनस्पर्धकप्रथमवर्गणातः प्राक्तनस्पर्धकगतप्रथमवर्गणासत्करसाऽविभागानामुत्कृष्टसंख्येयभागेना-ऽधिका भवन्ति ? इति चेत्, शृणुत-जघन्यपरित्ता-ऽसंख्येयतमस्य स्पर्धकस्य प्रथमवर्गणायां भवन्ति, कथमेतदवगन्तव्यम् ? इति चेद्, उच्यते जघन्यपरित्ता-ऽसंख्येयतमस्य स्पर्धकस्य प्रथमवर्गणायां रसाऽविभागाः प्रथमस्पर्धकस्य प्रथमवर्गणातो-ऽसंख्येयगुणा भवन्ति, तत्पूर्ववर्तिस्पर्धकस्य च प्रथमवर्गणायामुत्कृष्टसंख्येयगुणा विद्यन्ते, उत्कृष्टसंख्येयतमस्पर्धकस्य जघन्यपरित्ताऽसंख्येयतमस्पर्धकतोऽनन्तरपूर्ववर्तित्वात् ।

असत्कल्पनया प्रथमस्पर्धकप्रथमवर्गणायां रसाविभागाः 'क' इति, तेन जघन्यपरित्ताऽसंख्येयतमस्पर्धकस्य प्रथमवर्गणायां रसाविभागाः क×जघन्यपरित्तासंख्येयमिति, जघन्यपरित्ताऽसंख्येयतमा-

स्पर्धकात्पूर्ववर्तिनः स्पर्धकस्योत्कृष्टसंख्येयतमस्पर्धकरूपस्य प्रथमवर्गणायां पुना रसाऽविभागाः=क ×उत्कृष्टसंख्यातमिति ।

जघन्यपरित्ताऽसंख्येयतमस्पर्धकस्य प्रथमवर्गणागतरसाऽविभागत उत्कृष्टसंख्येयतमस्पर्धकस्य प्रथमवर्गणागतरसाऽविभागान् विशोध्य शेषा रसाऽविभागा उत्कृष्टसंख्येयतमस्पर्धकसत्कप्रथमवर्गणागतरसाऽविभागाऽपेक्षयाऽधिका भवन्ति । तेन जघन्यपरित्ताऽसंख्यातम् ×क इत्येतस्मात् उत्कृष्टसंख्यातम् ×क इत्येतद्विशोध्य शेषं 'क' विद्यते । एवं जघन्यपरित्तासंख्येयतमस्पर्धकप्रथमवर्गणायामुत्कृष्टसंख्येयतमस्पर्धकसत्कप्रथमवर्गणाऽपेक्षया 'क' इत्येतै रसाऽविभागैरधिका भवन्ति ।

न्यासः (जघन्यपरित्ताऽसंख्यातम् ×क) (उत्कृष्टसख्यातम् ×क)

=(जघन्यपरित्ताऽसख्यातम् − उत्कृष्टसख्यातम्) ×क

जघन्यपरित्ताऽसंख्यातम् = उत्कृष्टसख्यातम् + १

=(उत्कृष्टसख्यातम् + १ − उत्कृष्टसख्यातम्) ×क

=१ ×क

=क

'क' इत्येते रसाऽविभागा उत्कृष्टसंख्यातम् ×क इत्येतेषां रसाऽविभागानामुत्कृष्टसंख्येयतमभागमात्रा भवन्ति

न्यासः क= उत्कृष्टसख्यातम् ×क / उत्कृष्टसंख्यातम् = जघन्यासंख्यतमस्पर्धकापेक्षपूर्ववर्तिस्पर्धकाद्यवर्गणाऽविभागाः / उत्कृष्टसंख्यातम्

अतो यस्मिन् स्पर्धके तत्पूर्ववर्तिस्पर्धकप्रथमवर्गणात उत्कृष्टसंख्येयभागेनाऽधिका रसाविभागा भवन्ति, तत्स्पर्धकं जघन्यपरित्ताऽसंख्याततमं भवति ।

इयमत्र व्याप्तिः प्रथमद्विगुणहानौ प्रथमस्पर्धकतः प्रभृति विवक्षितस्पर्धकापेक्षप्राक्तनस्पर्धकं यतितमं भवति, तत्स्पर्धकप्रथमवर्गणागतरसाविभागानां ततिभागेना-ऽधिका रसाविभागा विवक्षितस्पर्धकस्य प्रथमवर्गणायां पूर्ववर्तिस्पर्धकापेक्षया भवन्ति ।

न्यासः

इष्टस्पर्धकाद्यवर्गणायां रसाविभागा प्राक्तनस्पर्धकाद्यवर्गणातः= पूर्वस्पर्धकप्रथमवर्गणारसाविभागाः / यतितमं पूर्वस्पर्धकं, तत्सख्या एतैरधिकाः

अतो विवक्षितस्पर्धकप्रथमवर्गणायां रसाविभागा=पूर्वस्प०प्र०व०रसाविभागाः+ पूर्वस्प० प्र० व० / यतितमं पूर्वस्पर्धकं, तत्सख्या

अत एव जघन्यपरित्ता-ऽसंख्येयतमस्पर्धकं यावत् पूर्वपूर्वत उत्तरोत्तरस्पर्धकस्य प्रथमवर्गणायां रसाविभागाः संख्येयभागेना-ऽधिका भवन्ति, ततः परं जघन्यपरित्ता-ऽनन्ततमस्पर्धकं यावत् पूर्व-

पूर्वत उत्तरोत्तरस्पर्धकस्य प्रथमवर्गणायां रसाविभागा असंख्येयभागेना-ऽधिका भवन्ति । तथा जघन्यपरित्ता-ऽनन्ततमस्पर्धकप्रथमवर्गणायां रसाऽविभागास्तत्पूर्ववर्तिस्पर्धकसत्कप्रथमवर्गणास्थित-रसाविभागतः पूर्ववर्तिस्पर्धकसत्कप्रथमवर्गणागतरसाविभागानामुत्कृष्टासंख्याताऽसंख्यातभागेना-ऽधिका विद्यन्ते । ततः परं सर्वत्र पूर्वपूर्वत उत्तरोत्तरस्पर्धकस्य प्रथमवर्गणायां रसाविभागा अनन्ततम-भागेना-ऽधिका भवन्ति ।

सम्प्रति वर्गणासु रसाविभागाः सूक्ष्मगणितानुसारेणाऽभिधीयन्ते, अनन्त-रोक्तप्ररूपणायाः स्थूलगणितानुसारेण दर्शितत्वात् । कथमेतदवगन्तव्यम् ? इति चेद्, उच्यते यद्यपि प्रथमस्पर्धकप्रथमवर्गणासत्कैकैकपरमाणुगतरसाऽविभागतो द्वितीयस्पर्धकप्रथमवर्गणागतै-कैकपरमाणौ रसाऽविभागा द्विगुणा भवन्ति, तथापि प्रथमस्पर्धकप्रथमवर्गणासत्कसकलपरमाणुस्थित-निखिलरसा-ऽविभागतो द्वितीयस्पर्धकप्रथमवर्गणासत्कसकलपरमाणुगता-ऽशेषरसाऽविभागा द्वि-गुणा न भवन्ति, किन्तु किञ्चिन्न्यूनद्विगुणाः, प्रथमस्पर्धकप्रथमवर्गणातो द्वितीयस्पर्धकप्रथम-वर्गणासत्कसकलपरमाणूनां विशेषहीनत्वात् । एवमुत्तरोत्तरस्पर्धकप्रथमवर्गणायां परमाणूनां हीयमानत्वात् प्रथमस्पर्धकप्रथमवर्गणागतसर्वरसाऽविभागतस्तृतीयस्पर्धकप्रथमवर्गणायां सकल-रसाऽविभागाः किञ्चिन्न्यूनत्रिगुणा भवन्ति, चतुर्थस्पर्धकप्रथमवर्गणायां च सर्वरसाऽविभागाः किञ्चिन्न्यूनचतुर्गुणा भवन्ति ।

ननु तेषां न्यूनत्वं कियद्भवति ? इति चेत्, उच्यते—प्रथमस्पर्धकप्रथमवर्गणातस्तद्द्वितीयवर्ग-णायां परमाणवो विशेषहीना भवन्ति, एकचयेन हीना भवन्तीत्यर्थः । ततोऽप्येकेन चयेन हीना-स्तृतीयवर्गणायां परमाणवो भवन्ति, ततश्चतुर्थवर्गणायामेकचयेन हीना भवन्ति, ततोऽप्येकचयेन हीनाः पञ्चमवर्गणायां भवन्ति । एवमेकचयहीनक्रमेण तावद् वाच्याः, यावच्चरमस्पर्धकस्य चरमवर्गणा । तस्मात् कारणात् प्रथमस्पर्धकस्य प्रथमवर्गणातो द्वितीयवर्गणायामेकचयेन हीनाः परमाणवो भवन्ति, प्रथमवर्गणातस्तृतीयवर्गणायां चयद्वयेन हीना भवन्ति, चतुर्थवर्गणायां त्रिभिश्चयैर्हीना भवन्ति, पञ्चमवर्गणायां चतुर्भिश्चयैर्हीना भवन्ति, अनेन क्रमेण चरमवर्गणायामे-कोनैकस्पर्धकवर्गणाराशिमात्रैश्चयैर्हीना भवन्ति, द्वितीयस्पर्धकस्य प्रथमवर्गणायां तु प्रथमस्पर्धक-प्रथमवर्गणात एकस्पर्धकगतवर्गणाराशिमात्रचयैर्हीनाः परमाणवो भवन्ति, तृतीयस्पर्धकप्रथम-वर्गणागतपरमाणवः स्पर्धकद्वयगतवर्गणाराशिप्रमाणचयैर्हीना भवन्ति ।

इयमत्र व्याप्तिः प्रथमद्विगुणहानौ यतितमं विवक्षितस्पर्धकं भवति, एकोनतत्संख्या-गुणितैकस्पर्धकवर्गणाराशिमात्रचयगताः परमाणवः प्रथमद्विगुणहानौ विवक्षितस्पर्धकस्य प्रथमवर्गणायां प्रथमस्पर्धकप्रथमवर्गणातो हीना भवन्ति ।

न्यासः

प्रथमद्विगुणहानौ प्रथमस्पर्धकादिवर्गणातो विवक्षितस्पर्धकादिवर्गणायां हीयमानचयाः

— यतितमं विवक्षितस्पर्धकम्, एकोनतत्संख्या × एकस्पर्धकवर्गणाः

∴ प्रथमद्विगुणहानौ प्रथमस्पर्धकादिवर्गणातो विवक्षितस्पर्धके हीयमानपरमाणवः

हीयमानचयाः × एकचयगतपरमाणवः

तस्मात् कारणात् प्रथमस्पर्धकप्रथमवर्गणागतनिखिलरसाविभागतो द्वितीयस्पर्धकप्रथमवर्गणायां निखिलरसाविभागा एकस्पर्धकगतवर्गणाराशिमात्रचयगतपरमाणुभिर्द्विगुणान् प्रथमस्पर्धकप्रथमवर्गणासत्कैकपरमाणुगतरसाविभागान् गुणयित्वा गुणितैर्न्यूना द्विगुणा भवन्ति, तृतीयस्पर्धकप्रथमवर्गणागतनिखिलरसाविभागास्तु स्पर्धकद्वयगतवर्गणाराशिमात्रचयगतपरमाणुभिस्त्रिगुणान् प्रथमस्पर्धकप्रथमवर्गणासत्कैकपरमाणुगतरसाविभागान् गुणयित्वा गुणितैर्न्यूनास्त्रिगुणा भवन्ति ।

न्यास.

सङ्केतसूचि.

(१) प्रथमस्पर्धकप्रथमवर्गणासत्कैकपरमाणुगतरसाविभागाः = र

(२) प्रथमस्पर्धकप्रथमवर्गणागतपरमाणवः = प

(३) एकस्पर्धकगतवर्गणाः = व

द्वितीयस्पर्धकादिवर्गणागतसकलरसाविभागाः = २ (र×प) — { (व×चय)×२×र }

तृतीय " " " " = ३ (र×प) — { (२×व×चय.)×३×र }

इयमत्र व्याप्तिः प्रथमद्विगुणहानौ प्रथमस्पर्धकप्रथमवर्गणागतपरमाणुतो विवक्षितस्पर्धकप्रथमवर्गणायां यावन्तः परमाणवो हीयन्ते, तावद्गुणितैः, यावतिथं प्रथमद्विगुणहानिसत्कं विवक्षितं स्पर्धकं भवति तत्संख्यागुणैः प्रथमस्पर्धकप्रथमवर्गणासत्कैकपरमाणुगतरसाविभागैर्न्यूनाः, यतितमं विवक्षितस्पर्धकं भवति, तत्संख्यागुणाः प्रथमस्पर्धकप्रथमवर्गणासत्कसकलपरमाणुस्थितसर्वरसाविभागा विवक्षितस्पर्धकप्रथमवर्गणासत्कसर्वपरमाणुस्थितसर्वरसाविभागा भवन्ति। एतदुक्तं भवति प्रथमद्विगुणहानौ प्रथमस्पर्धकप्रथमवर्गणागतपरमाणूनपेक्ष्येष्टस्पर्धकप्रथमवर्गणायां यावन्तः परमाणवो हीयन्ते, तावतः परमाणूनिष्टस्पर्धकेन गुणयित्वा गुणितं पुनः प्रथमस्पर्धकप्रथमवर्गणासत्कैकपरमाणुगतरसाविभागैस्ताडयित्वा प्राप्यमाणैर्न्यूना इष्टस्पर्धकेन गुणिताः प्रथमस्पर्धकप्रथमवर्गणासत्कसकलपरमाणुप्रतिबद्धनिखिलरसाविभागा इष्टस्पर्धकप्रथमवर्गणासत्कनिखिलपरमाणुस्थितसर्वरसाविभागा भवन्ति ।

न्यास:

सङ्केतसूचिः

		असत्कल्पनया-ऽङ्कतः
(१) विवक्षितस्पर्धकम् (इष्टस्पर्धकम्)	= अ	३
(२) प्रथमस्पर्धकादिवर्गणातो हीयमानपरमाणवः	= व	६४
(३) प्रथमस्पर्धकप्रथमवर्गणासत्कैकपरमाणुगतरसाविभागाः	= स	१,००,०००
(४) ,, ,, सत्कसर्व ,, ,, सर्वरसाविभागा.	= ह	२,५६,००,०००

प्रथमस्पर्धकादिवर्गणा-ऽपेक्षया विवक्षितस्पर्धकप्रथमवर्गणायां रसाविभागाः

= अ×ह { व (अ×स)

अङ्कतः = ३×२,५६,००,००० { ६४ (३×१,००,०००) }

= ७,६८,००,००० { ६४×३,००,०००}

= ७,६८,००,००० १,९२,००,०००

= ५,७६,००,०००

अत्र प्रथमस्पर्धकप्रथमवर्गणायां यावन्तः परमाणवो भवन्ति, तावन्त एव यदि द्वितीयस्पर्धकस्य प्रथमवर्गणायां भवेयुः, तर्हि द्वितीयस्पर्धकस्य प्रथमवर्गणायां सकलपरमाणुगतसकलरसाऽविभागा द्विगुणाः स्युः, द्वितीयस्पर्धकस्य प्रथमवर्गणायामेकैकपरमाणौ रसाऽविभागानां प्रथमस्पर्धकप्रथमवर्गणासत्कैकैकपरमाणुगतरसाविभागतो द्विगुणत्वदर्शनात् । परन्तु प्रथमस्पर्धकप्रथमवर्गणागतपरमाणुतो द्वितीयस्पर्धकस्य प्रथमवर्गणायामेकस्पर्धकगतवर्गणाराशिमात्रचयैः परमाणवो हीना भवन्ति । न यावन्तः परमाणवो हीयन्ते, तावद्गुणितैर्द्विगुणैः प्रथमस्पर्धकप्रथमवर्गणासत्कैकपरमाणुगतरसाऽविभागैर्न्यूनाः प्रथमस्पर्धकप्रथमवर्गणागतसकलरसाऽविभागतो द्विगुणा द्वितीयस्पर्धकप्रथमवर्गणातः सकलरसाऽविभागा भवन्ति । एवं प्रथमस्पर्धकप्रथमवर्गणागतपरमाणुतस्तृतीयस्पर्धकप्रथमवर्गणायां यावन्तः परमाणवो हीयन्ते, तावद्गुणितैस्त्रिगुणैः प्रथमस्पर्धकप्रथमवर्गणासत्कैकपरमाणुगतरसा-ऽविभागैर्न्यूनाः प्रथमस्पर्धकप्रथमवर्गणागतसकलरसा-ऽविभागतस्त्रिगुणास्तृतीयस्पर्धकप्रथमवर्गणागत-सकलरसाऽविभागा भवन्ति । एवमग्रे-ऽपि वाच्यम् ।

ननु प्रथमद्विगुणहान्यां विवक्षितस्पर्धकस्य प्रथमवर्गणायां प्रथमस्पर्धकप्रथमवर्गणातः कया व्याप्त्या परमाणवो हीयन्ते ? इति चेत्, उच्यते प्रथमद्विगुणहानौ यतितमं विवक्षितस्पर्धकं भवति, एकोनतत्संख्यागुणितैकस्पर्धकवर्गणाराशिमात्रचयगताः परमाणवः प्रथमद्विगुणहानौ विवक्षितस्पर्धकस्य प्रथमवर्गणायां प्रथमस्पर्धकप्रथमवर्गणागतो हीना भवन्ति । (एषा व्याप्तिः ११४ तमपृष्ठे प्रोक्ता)

न्यासः

प्रथमद्विगुणहानौ प्रथमस्पर्धकादिवर्गणातो विवक्षितस्पर्धके हीयमानचयाः

= यतितमं स्पर्धकम् , एकोनतत्संख्या × एकस्पर्धकवर्गणा. × चयः

∴ प्रथमद्विगुणहानौ प्रथमस्पर्धकादिवर्गणातो विवक्षितस्पर्धके हीयमानपरमाणवः

= हीयमानचयाः × एकचयगतपरमाणवः

अनन्तरोक्तवचनाव्यक्ता वर्गणासु रसाविभागादीन् परिकल्प्य स्फुटीक्रियते । तथाहि प्रथमद्विगुणहानौ पूर्वपूर्वस्पर्धकचरमवर्गणात उत्तरोत्तरस्पर्धकप्रथमवर्गणायां सप्तनवत्युत्तरनवशताधिकनवनवतिसहस्रैः (९९,९९७) रसाविभागैरधिका रसाविभागाः कल्प्यन्ते, ते चेहाऽन्तरत्वेन व्यपदेष्टव्याः । चयोऽष्टपरमाणुमात्रः कल्पयितव्यः, एकस्मिन् स्पर्धके वर्गणाश्चतस्रः परिकल्प्यन्ते । अथ प्रथमस्पर्धकस्य प्रथमवर्गणायां परमाणवः षट्पञ्चाशदधिकद्विशती (२५६) कल्प्यन्ते, तत्र चैकैकपरमाणौ रसाविभागा एकलक्षं (१,००,०००) परिकल्प्यन्ते । द्वितीयवर्गणायां परमाणवोऽष्टचत्वारिंशदधिके द्वे शते (२४८) अभिधातव्याः, चयस्याऽष्टपरमाणुमात्रत्वपरिकल्पनात् एकैकपरमाणौ चैकाधिकलक्षं(१,००,००१)रसाविभागा वाच्याः,उत्तरोत्तरवर्गणायामेकैकरसाविभागस्य वृद्धेः प्रतिपादितत्वात् । एवं तृतीयवर्गणायां परमाणवः द्वे शते चत्वारिंशच्च (२४०) एकैकपरमाणौ च रसाविभागा द्व्युत्तरलक्षम् (१०००००२), चतुर्थवर्गणायां परमाणवो द्वात्रिंशदधिके द्वे शते (२३२) एकैकपरमाणौ च रसाविभागास्त्र्युत्तरलक्षम् (१,००,००३) ।

तथा द्वितीयस्पर्धकस्य प्रथमवर्गणायां परमाणवश्चतुर्विंशत्युत्तरे द्वे शते (२२४), एकैकस्मिंश्च परमाणौ रसाविभागा द्वे लक्षे (२,००,०००), सप्तनवत्युत्तरनवशताधिकनवनवतिसहस्राणां (९९९९७) रसाविभागानामन्तरत्वेन परिकल्पनात् । द्वितीयस्पर्धकस्य द्वितीयवर्गणायां परमाणवः षोडशाधिकद्विशती (२१६) प्रत्येकस्मिंश्च परमाणौ रसाऽविभागा एकाधिके द्वे लक्षे (२००००१), तृतीयवर्गणायां चाष्टाधिकद्विशती (२०८) परमाणवो रसाविभागाश्च एकैकपरमाणौ द्व्यधिके द्वे लक्षे (२००००२) । चतुर्थवर्गणायां च परमाणवो द्विशती (२००), एकैकपरमाणौ च रसाविभागास्त्र्युत्तरे द्वे लक्षे (२००००३) । तृतीयस्पर्धकप्रथमवर्गणायां परमाणवो द्विनवतं शतं (१९२) एकैकस्मिंश्च परमाणौ रसाविभागास्त्रीणि लक्षाणि (३,००,०००),द्वितीयवर्गणायां परमाणवश्चतुरशीत्यधिकशतं (१८४), रसाविभागाश्चैकाधिकानि त्रीणि लक्षाणि (३००००१) तृतीयचतुर्थवर्गणयोरेकैकचयेन हीनाः परमाणव एकोत्तरवृद्ध्या च रसाविभागा वक्तव्याः ।

सम्प्रति प्रथमस्पर्धकप्रथमवर्गणातो द्वितीयादिस्पर्धकप्रथमवर्गणायां रसाविभागा भाव्यन्ते—प्रथमस्पर्धकप्रथमवर्गणातो द्वितीयस्पर्धकप्रथमवर्गणायामेकस्पर्धकगतवर्गणामात्रश्चत्वारश्चया हीयन्ते, एकचयश्चाऽष्टपरमाणुमात्रः, तेन द्वात्रिंशत् परमाणवो हीयन्ते, तथा प्रथमस्पर्धकप्रथमवर्गणातस्तृतीयस्पर्धकप्रथमवर्गणायां स्पर्धकद्वयगतवर्गणामात्रा अष्टौ चया हीयन्ते, परमाणवस्तु चतुःषष्टिर्हीयन्ते, प्रथमद्विगुणहानौ यतितमं विवक्षितं स्पर्धकं भवति, एकोनतत्संख्यागुणितैकस्पर्धकवर्गणाराशिमात्रचयगताः परमाणवः प्रथमद्विगुणहानौ विवक्षितस्पर्धकस्य प्रथमवर्गणायां प्रथमस्पर्धकप्रथमवर्गणातो हीना भवन्तीति व्याप्तेरुक्तत्वेनेहैकस्पर्धके चतसृणां वर्गणानां कल्पितत्वात् एकचयस्य चाऽष्टपरमाणुमात्रत्वपरिकल्पनात् ।

न्यासः - द्वितीयस्पर्धकादिवर्गणायां हीयमानाश्रयो =(२ - १) × ४
=१ × ४
=४

द्वितीयस्पर्धकादिवर्गणायां हीयमाना. परमाणवः=४ × ८
=३२

तृतीयस्पर्धकादिवर्गणायां हीयमानाश्रया. =(३—१) × ४
=२ × ४
=८

तृतीयस्पर्धकादिवर्गणायां हीयमाना परमाणव.=८ × ८
=६४

एवं शेषस्पर्धकप्रथमवर्गणायां हीयमानपरमाणवो भावनीयाः ।

अथ प्रथमस्पर्धकप्रथमवर्गणासत्कसकलपरमाणुस्थितसर्वरसाविभागाः परमाणुसंख्यया षट्पञ्चाशदुत्तरद्विशतरूपया गुणिता एकपरमाणुस्थितैकलक्षरसाविभागाः षट्पञ्चाशल्लक्षोत्तरद्विकोटिमिताः (२५६ × १,००,००० = २,५६,०००००) भवन्ति । द्वात्रिंशत्परमाणुगुणितैर्द्विगुणैः प्रथमस्पर्धकप्रथमवर्गणासत्कैकपरमाणुगतैकलक्षरसाविभागैर्न्यूना द्विगुणाः प्रथमस्पर्धकप्रथमवर्गणासत्कसकलपरमाणुस्थितषट्पञ्चाशल्लक्षोत्तरद्विकोटिरसाविभागा द्वितीयस्पर्धकस्य प्रथमवर्गणायां भवन्ति, तथा चतुःषष्टिपरमाणुगुणितैस्त्रिगुणैः प्रथमस्पर्धकप्रथमवर्गणासत्कैकपरमाणुस्थितैकलक्षरसाविभागैर्न्यूनास्त्रिगुणाः प्रथमस्पर्धकप्रथमवर्गणासत्कसकलपरमाणुगतषट्पञ्चाशल्लक्षद्विकोटिरसाविभागास्तृतीयस्पर्धकप्रथमवर्गणायांभवन्ति, प्रथमद्विगुणहानौ प्रथमस्पर्धकप्रथमवर्गणागतपरमाणुतो विवक्षितस्पर्धकप्रथमवर्गणायां यावन्तः परमाणवो हीयन्ते, तावद्गुणितैः, यावतिथं प्रथमद्विगुणहानिसत्कं विवक्षितं स्पर्धकं भवति, तत्संख्यागुणैः प्रथमस्पर्धकप्रथमवर्गणासत्कैकपरमाणुगतरसाविभागैर्न्यूनाः, यावतितमं विवक्षितस्पर्धकं भवति तत्संख्यागुणाः प्रथमस्पर्धकप्रथमवर्गणासत्कसकलपरमाणुगतसकलरसाविभागा विवक्षितस्पर्धकप्रथमवर्गणासत्कसर्वपरमाणुस्थितसकलरसाविभागा भवन्तीति व्याप्तेरुक्तत्वात् ।

न्यास :

द्वितीयस्पर्धकप्रथमवर्गणायां सकलरसाविभागा = २ × २५६००००० {३२ × (२ × १०००००)}
=५१२००००० {३२ × २०००००}
=५१२००००० — ६४०००००
=४४८०००००

तृतीय „ „ „ = ३ × २५६००००० — {६४ × (३ × १०००००)}
=७६८००००० {६४ × ३०००००}
=७६८००००० — १९२०००००
=५७६०००००

तदेवं द्वितीयस्पर्धकप्रथमवर्गणायां सर्वपरमाणुस्थितसकलरसाविभागा अष्टचत्वारिंशल्लक्षोत्तर-चतुष्कोटिमिताः, तृतीयस्पर्धकादिवर्गणायां पुनः षट्सप्ततिलक्षाधिकपञ्चकोटिप्रमाणा लभ्यन्ते । न चैतदसिद्धम्, त्रैराशिकविधिना-ऽपि यथोक्तमानोपलब्धेः, तथाहि-द्वितीयस्पर्धकादिवर्गणासत्कैकपरमाणौ द्वे लक्षे (२०००००) रसाविभागाः परिकल्पिताः, परमाणवः पुनश्चतुर्विंशत्युत्तरे द्वे शते (२२४)। यदि एकपरमाणौ द्वे लक्षे रसाविभागा भवन्ति, तर्हि चतुर्विंशत्यधिकद्विशतप्रमाणेषु परमाणुषु कियन्तो भवेयुरिति त्रैराशिकेना-ऽष्टाचत्वारिंशल्लक्षाधिकचतुष्कोटिमिता रसाविभागा लभ्यन्ते । एवं तृतीय-स्पर्धकप्रथमवर्गणासत्कसकलपरमाणुस्थितनिखिलरसाविभागास्त्रैराशिकविधिना भणितव्याः । त्रैराशिककरणसूत्रं च सप्तविंशतितमगाथायाष्टीकायां निरूपितम् ।

न्यासः प्रमाणम्	प्रमाणफलम्	इच्छा	इच्छाफलम्
१	२०००००	२२४	४४८०००००० लब्धा द्वितीयस्पर्धकाद्यवर्गणायाम्
१	३०००००	१९२	५७६०००००० लब्धास्तृतीयस्पर्धकाद्यवर्गणायाम्

एवं पूर्वोक्तव्याप्त्या चतुर्थादिस्पर्धकप्रथमवर्गणायां सकलपरमाणुस्थितसर्वरसाविभागाः प्रथम-स्पर्धकप्रथमवर्गणासत्कसकलपरमाणुस्थितसर्वरसाविभागतः किञ्चिन्न्यूनाश्चतुरादिगुणाः साध्याः ।

तथा (१) यतिसंख्यं स्पर्धकमुद्दिष्टं भवति, एकोनतत्संख्याविभक्ततत्संख्यागुणा रसाविभागा उद्दिष्टस्पर्धकस्य प्रथमवर्गणायां तत्प्राक्तनस्पर्धकप्रथमवर्गणातो भवन्ति, (२) प्रथमस्पर्धकतः प्रभृति प्रथमद्विगुणहानौ विवक्षितस्पर्धकापेक्षप्राक्तनस्पर्धकं यतितमं भवति, तत्स्पर्धकप्रथमवर्गणागत-रसाविभागानां ततिभागेना-ऽधिका रसाविभागा विवक्षितस्पर्धकस्य प्रथमवर्गणायां पूर्ववर्तिस्पर्ध-कापेक्षया भवन्ति, इति यद्व्याप्तिद्वयं प्रागुक्तम्, तत्रा-ऽपि विवक्षितस्पर्धकप्रथमवर्गणासत्कसकल-परमाणुस्थितसर्वरसाविभागाः किञ्चिन्न्यूनाः सूक्ष्मगणितानुसारेण वाच्याः, न्यूनप्रमाणं चा-ऽन-न्तरोक्तविधिनैव साध्यम् ।

प्रथमव्याप्तिमाश्रित्य स्थापना

विवक्षितस्पर्धकादिवर्गणागतसकलरसाविभागास्तत्प्राक्तनस्पर्धकादिवर्गणागतसकलरसाविभागतः

$= \frac{\text{यतितमं स्पर्धकं, तत्संख्या}}{\text{रूपोनतत्संख्या}}$ गुणाः $\{ व \times (अ \times स) \}$

द्वितीयव्याप्तिमाश्रित्य स्थापना

विवक्षितस्पर्धकप्रथमवर्गणायां सकलरसाविभागास्तत्प्राक्तनस्पर्धकादिवर्गणागतसकलरसाविभागतः

$= \frac{\text{पूर्वस्पर्धकप्रथमवर्गणागतैकपरमाणुस्थितरसाविभागा}}{\text{यतितमं पूर्वस्पर्धकं तत्संख्या}}$ इत्येतैरधिकाः $\{ व \times (अ \times स) \}$

समाप्तो गणितविभागः ।

साम्प्रतं घातिप्रकृतीराश्रित्या-ऽनुभागस्पर्धकेषु देशघात्यादिरसप्ररूपणा

जघन्यरसस्पर्धकादारभ्याऽनन्तरसस्पर्धकान्येकस्थानकाऽनुभागविशिष्टानि भवन्ति । तेषामुपर्य-

नन्तरसस्पर्धकानि द्विस्थानका-ऽनुभागकानि भवन्ति । पुनस्तेषामुपर्यनन्तानि रसस्पर्धकानि त्रिस्थानकाऽनुभागकानि विद्यन्ते, भूयस्तेषामुपर्युत्कृष्टरसस्पर्धकपर्यन्तान्यनन्तानि रसस्पर्धकानि चतुःस्थानकाऽ-नुभागकानि तिष्ठन्ति ।

जघन्यरसस्पर्धकात् प्रभृति सर्वाण्येकस्थानका-ऽनुभागकानि द्विस्थानका-ऽनुभागकानां च रसस्पर्धकानामाद्याऽनन्ततमभागकल्पानि रसस्पर्धकानि देशघातीनि वक्तव्यानि । तेषां सर्वोत्कृष्टं रसस्पर्धकमुत्कृष्टं देशघातिरसस्पर्धकमुच्यते ।

ततो द्विस्थानका-ऽनुभागकानां रसस्पर्धकानामनन्ततमभागस्योपरि प्रथमं जघन्यसर्वघातिरसस्पर्धकं वक्तव्यम् । ततः परं शेषद्विस्थानका-ऽनुभागकानि स्पर्धकानि त्रिचतुःस्थाना-ऽनुभागविशिष्टानि च सर्वाणि रसस्पर्धकानि सर्वघातीनि भणितव्यानि । तेषां सर्वोत्कृष्टं रसस्पर्धकमुत्कृष्टसर्वघातिस्पर्धकमुच्यते ।

न्यास

एकस्थानकानुभागकानि	द्विस्थानानुभागकानि	त्रिस्थानानुभागकानि	चतुःस्थानानुभागकानि
[१]०००००००००००००० । ०००[२] । ०[३]००००० ।		०००००००० ।	००००००००[४] ।

१=सर्वजघन्यदेशघातिस्पर्धकम् । ३=सर्वजघन्य सर्वघातिस्पर्धकम् ।
२=सर्वोत्कृष्टदेशघातिस्पर्धकम् । ४=सर्वोत्कृष्टं सर्वघातिस्पर्धकम् ।

घातिप्रकृतयो द्विविधा भवन्ति, देशघातिसर्वघातिभेदात् । सत्कर्मणि सम्यक्त्वमोहनीयवर्जदेशघातिप्रकृतीनां रसस्पर्धकानि देशघातीनि सर्वघातीनि च भवन्ति, सम्यक्त्वमोहनीयस्य तु देशघातीन्येव, सर्वघातिप्रकृतीनां पुना रसस्पर्धकानि सर्वघातीन्येव भवन्ति ।

अथ देशघातिप्रकृतीनां रसस्पर्धकानि विविच्यन्ते केवलज्ञानावरणं वर्जयित्वा शेषज्ञानावरणचतुष्कं चक्षुरचक्षुरवधिदर्शनावरणलक्षणं दर्शनावरणत्रिकं संज्वलनचतुष्कं नवनोकषायाः सम्यक्त्वमोहनीयं पञ्चाऽन्तराया इति षड्विंशतिदेशघातिप्रकृतीनां जघन्यरसस्पर्धकस्य प्रथमवर्गणायां प्रत्येकस्मिन् परमाणौ रसाऽविभागा मिथस्तुल्या भवन्ति । इदमुक्तं भवति-अक्षपकजीवमाश्रित्य मतिज्ञानावरणस्य जघन्यस्पर्धकसत्कप्रथमवर्गणागतैकैकपरमाणौ यावन्तो रसाऽविभागा भवन्ति, तावन्त एव रसाऽविभागाश्चक्षुर्दर्शनावरणस्य जघन्यस्पर्धकसत्कप्रथमवर्गणागतैकैकपरमाणौ विद्यन्ते । एवं सर्वासां देशघातिप्रकृतीनां परस्परं वक्तव्याः । उक्तं च **कषायप्राभृतचूर्णौ** **"सव्वस्स अक्खवगस्स सव्वकम्माणं देसघादिफद्दयाणमादिवग्गणा तुल्ला।"** इति । एवंविधाद् देशघातिप्रकृतीनां जघन्यरसस्पर्धकात् प्रभृत्युत्कृष्टदेशघातिरसस्पर्धकं यावद् रसस्पर्धकानि देशघातीनि वक्तव्यानि । तेषामुपरि सम्यक्त्वमोहनीयवर्जशेषपञ्चविंशतिदेशघातिप्रकृतीनां सर्वाणि रसस्पर्धकानि सर्वघातीन्यवतिष्ठन्ते । सम्यक्त्वमोहनीयस्य तु सर्वोत्कृष्टदेशघातिरसस्पर्धकात् परं रसस्पर्धकं न विद्यते, तस्य सर्वघातिरसस्पर्धका-ऽभावात् ।

अथ सर्वघातिप्रकृतीनां रसस्पर्धकानि विविच्यन्ते सत्कर्मा-ऽपेक्षया केवलज्ञानावरणं केवलदर्शनावरणं निद्रापञ्चकं संज्वलनवर्जद्वादशकषाया मिश्रमोहनीयं मिथ्यात्वमोहनीयं चेत्येकविंशतिप्रकृतीनां देशघातीनि रसस्पर्धकानि सत्कर्मणि न विद्यन्ते, अपि तु सर्वघातीन्येव । तत्र मिथ्यात्ववर्जशेषविंशतिप्रकृतीनां जघन्यसर्वघातिरसस्पर्धकस्य प्रथमवर्गणासत्कैकैकपरमाणौ रसाऽविभागाः परस्परं तुल्या भवन्ति । इदमुक्तं भवति-केवलज्ञानावरणस्य जघन्यरसस्पर्धकसत्कप्रथमवर्गणागतैकैकपरमाणौ यावन्तो रसविभागा भवन्ति, तावन्त एव रसाऽविभागाः केवलदर्शनावरणस्य जघन्यरसस्पर्धकसत्कप्रथमवर्गणागतैकैकपरमाणौ विद्यन्ते, एवं विंशतिप्रकृतीनामन्यो-ऽन्यं द्रष्टव्याः । उक्तं च कषायप्राभृतचूर्णौ—**"सव्वघादीणं पि मोत्तूण मिच्छत्तं, सेसाणं कम्माणं सव्वघादीणमादिवग्गणा तुल्ला ।"** इति ।

मिथ्यात्वमोहनीयस्य तु जघन्यरसस्पर्धकप्रथमवर्गणागतैकैकपरमाणुस्थितरसाऽविभागास्तदितरसर्वघातिप्रकृतेर्जघन्यस्पर्धकप्रथमवर्गणागतैकैकपरमाणौ विद्यमानै रसाविभागैः सदृशा न भवन्ति । किं कारणम् ? इति चेत्, उच्यते—सम्यक्त्वमोहनीयस्य सर्वोत्कृष्टदेशघातिरसस्पर्धकानन्तरं सम्यङ्मिथ्यात्वस्य जघन्यरसस्पर्धकं प्राप्यते, तत्प्रथमवर्गणायां मिथ्यात्ववर्जशेषसर्वघातिप्रकृतीनां जघन्यस्पर्धकसत्कप्रथमवर्गणागतरसाविभागैः सदृशा रसाऽविभागास्तिष्ठन्ति । सम्यङ्मिथ्यात्वस्य जघन्यरसस्पर्धकादारभ्य द्विस्थानकाऽनुभागविशिष्टानां स्पर्धकानामनन्ततमे भागे गते एव मिथ्यात्वस्य जघन्यं रसस्पर्धकं प्राप्यते,तेन मिथ्यात्वस्य जघन्यरसस्पर्धकगतप्रथमवर्गणायां रसा-ऽविभागा इतरसर्वघातिप्रकृतिसत्कजघन्यरसस्पर्धकप्रथमवर्गणागतरसाऽविभागैस्तुल्या न भवन्ति ।

इदं त्ववधेयम्-मिश्रवर्जशेषसर्वघातिप्रकृतीनां सर्वघातिस्पर्धकानि तावद्वक्तव्यानि, यावत्सर्वोत्कृष्टं चतुःस्थानकाऽनुभागविशिष्टं रसस्पर्धकं प्राप्यते, मिश्रस्य तु सर्वोत्कृष्टं सर्वघातिस्पर्धकं मध्यमद्विस्थानकाऽनुभागकं भवति, अग्रे मिश्रस्याऽभावात् । तथा सम्यक्त्वमोहनीयवर्जानां सर्वासां देशघातिप्रकृतीनामुत्कृष्टरसस्पर्धकं चतुःस्थानकं भवति, तच्च सर्वघाति । सम्यक्त्वमोहनीयस्य तूत्कृष्टस्पर्धकं द्विस्थानकरसोपेतं भवति, तथा देशघाति भवति ।

सप्तचत्वारिंशतो घातिकर्मणामुत्कृष्टस्पर्धकचरमवर्गणागतरसाऽविभागा मिथस्तुल्या न भवन्ति, तथाहि (१) सम्यक्त्वमोहनीयस्योत्कृष्टस्पर्धकचरमवर्गणायां रसाऽविभागा स्तोका भवन्ति, देशघातित्वात् । (२) ततः सम्यङ्मिथ्यात्वमोहनीयस्योत्कृष्टस्पर्धकचरमवर्गणायां रसाऽविभागा अनन्तगुणा भवन्ति, सर्वघातित्वात् । (३) ततो हास्यमोहनीयस्योत्कृष्टस्पर्धकस्य चरमवर्गणायां रसाऽविभागा अनन्तगुणा भवन्ति, सर्वघातित्वे सति चतुःस्थानकानुभागवत्त्वात् । (४) ततो रतिमोहनीयस्योत्कृष्टस्पर्धकस्य चरमवर्गणायां रसाविभागा अनन्तगुणा भवन्ति । (५) ततः पुरुषवेदस्योत्कृष्टस्पर्धकचरमवर्गणायां रसाविभागा अनन्तगुणा

भवन्ति । (६) ततः स्त्रीवेदस्योत्कृष्टस्पर्धकचरमवर्गणायां रसाविभागा अनन्तगुणा भवन्ति । (७) ततः प्रचलाया उत्कृष्टस्पर्धकचरमवर्गणायां रसाविभागा अनन्तगुणा भवन्ति । (८) ततो निद्राया उत्कृष्टस्पर्धकचरमवर्गणायां रसाविभागा अनन्तगुणा भवन्ति । (९) ततः प्रचला-प्रचलाया उत्कृष्टस्पर्धकचरमवर्गणायां रसाविभागा अनन्तगुणा भवन्ति । (१०) ततो निद्रा-निद्राया उत्कृष्टस्पर्धकचरमवर्गणायां रसाविभागा अनन्तगुणा भवन्ति (११) ततो जुगुप्सा-मोहनीयस्योत्कृष्टस्पर्धकचरमवर्गणायां रसाविभागा अनन्तगुणा भवन्ति । (१२) ततो भयमोहनीयस्योत्कृष्टस्पर्धकचरमवर्गणायां रसाविभागा अनन्तगुणा भवन्ति । (१३) ततः शोक-मोहनीयस्योत्कृष्टस्पर्धकचरमवर्गणायां रसाविभागा अनन्तगुणा भवन्ति । (१४) ततोऽरति-मोहनीयस्योत्कृष्टस्पर्धकचरमवर्गणायां रसाविभागा अनन्तगुणा भवन्ति । (१५) ततो नपुंसक-वेदस्योत्कृष्टस्पर्धकचरमवर्गणायां रसाविभागा अनन्तगुणा भवन्ति । (१६-१७-१८) ततो मनः-पर्यवज्ञानावरण-स्त्यानर्द्धि-दानान्तरायाणामुत्कृष्टस्पर्धकचरमवर्गणायां रसाऽविभागा अनन्तगुणा भवन्ति, स्वस्थाने तु मिथस्तुल्याः । (१९-२०-२१) ततोऽवधिज्ञानावरणा-ऽवधिदर्शनावरण-लाभान्तरायाणामुत्कृष्टस्पर्धकचरमवर्गणायां रसाऽविभागा अनन्तगुणा भवन्ति, स्वस्थाने तु मिथः समानाः । (२२-२३-२४) ततो भोगान्तराया-ऽचक्षुर्दर्शनावरण-श्रुतज्ञानावरणानामुत्कृष्टस्पर्धक-चरमवर्गणायां रसाऽविभागा अनन्तगुणा भवन्ति, स्वस्थाने तु परस्परं तुल्याः । (२५) ततश्चक्षु-र्दर्शनावरणस्योत्कृष्टस्पर्धकचरमवर्गणायां रसाविभागा अनन्तगुणा भवन्ति । (२६-२७) ततो मति-ज्ञानावरण-परिभोगान्तराययोरुत्कृष्टस्पर्धकचरमवर्गणायां रसाऽविभागा अनन्तगुणा भवन्ति, स्वस्थाने तु मिथः समानाः । (२८) ततोऽप्रत्याख्यानावरणमानस्योत्कृष्टस्पर्धकचरमवर्गणायां रसाऽविभागा अनन्तगुणा भवन्ति । (२९) ततोऽप्रत्याख्यानावरणक्रोधस्योत्कृष्टस्पर्धकचरमवर्गणायां रसाविभागा विशेषाधिका भवन्ति । (३०) ततोऽप्रत्याख्यानावरणमायाया उत्कृष्टस्पर्धकचरमवर्गणायां रसाविभागा विशेषाधिका भवन्ति । (३१) ततोऽप्रत्याख्यानावरणलोभस्योत्कृष्टस्पर्धकचरमवर्गणायां रसावि-भागा विशेषाधिका भवन्ति । (३२) ततः प्रत्याख्यानावरणमानस्योत्कृष्टस्पर्धकचरमवर्गणायां रसाविभागा अनन्तगुणा भवन्ति । (३३) ततः प्रत्याख्यानावरणक्रोधस्योत्कृष्टस्पर्धकचरमवर्गणायां रसाविभागा विशेषाधिका भवन्ति । (३४) ततः प्रत्याख्यानावरणमायाया उत्कृष्टस्पर्धकचरमवर्ग-णायां रसाविभागा विशेषाधिका भवन्ति । (३५) ततः प्रत्याख्यानावरणलोभस्योत्कृष्टस्पर्धक-चरमवर्गणायां रसाविभागा विशेषाधिका भवन्ति । (३६) ततः संज्वलनमानस्योत्कृष्टस्पर्धक-चरमवर्गणायां रसाविभागा अनन्तगुणा भवन्ति । (३७) ततः संज्वलनक्रोधस्योत्कृष्टस्पर्धक-चरमवर्गणायां रसाविभागा विशेषाधिका भवन्ति । (३८) ततः संज्वलनमायाया उत्कृष्टस्पर्धक-चरमवर्गणायां रसाविभागा विशेषाधिका भवन्ति । (३९) ततः संज्वलनलोभस्योत्कृष्टस्पर्धक-चरमवर्गणायां रसाविभागा विशेषाधिका भवन्ति । (४०) ततोऽनन्तानुबन्धिमानस्योत्कृष्टस्पर्धक-

चरमवर्गणायां रसाविभागा अनन्तगुणा भवन्ति । (४१) ततोऽनन्तानुबन्धिक्रोधस्योत्कृष्टस्पर्धकचरमवर्गणायां रसाविभागा विशेषाधिका भवन्ति । (४२) ततोऽनन्तानुबन्धिमायाया उत्कृष्टस्पर्धकचरमवर्गणायां रसाविभागा विशेषाधिका भवन्ति । (४३) ततोऽनन्तानुबन्धिलोभस्योत्कृष्टस्पर्धकचरमवर्गणायां रसाविभागा विशेषाधिका भवन्ति । (४४-४५-४६) ततः केवलज्ञानावरणकेवलदर्शनावरणवीर्यान्तरायाणामुत्कृष्टस्पर्धकचरमवर्गणायां रसाविभागा अनन्तगुणा भवन्ति, स्वस्थाने तु परस्परं तुल्याः । (४७) ततो मिथ्यात्वमोहनीयस्योत्कृष्टस्पर्धकचरमवर्गणायां रसाविभागा अनन्तगुणा भवन्ति ।

अनन्तरोक्तसप्तचत्वारिंशत्प्रकृतितोऽनिवृत्तिकरणस्थक्षपकस्य सत्कर्मणि संज्वलनचतुष्कं विना द्वादशकषाया दर्शनत्रिकं च न विद्यन्ते, प्रागेव क्षपितत्वात् । तेन तेषां रसस्पर्धकमपि सत्कर्मणि न भवति । शेषाणां द्वात्रिंशत्प्रकृतीनां क्षपकस्य सत्कर्मण्यनुत्कृष्टस्पर्धकमेव विद्यते, घातिकर्मणामुत्कृष्टानुभागस्य मिथ्यात्वगुणस्थानके एवोपलम्भात् ।

सम्प्रत्यघातिकर्मणां रसस्पर्धकानि प्ररूप्यन्ते अघातिप्रकृतीनां जघन्यरसस्पर्धकात् प्रभृति चतुःस्थानकानुभागविशिष्टोत्कृष्टरसस्पर्धकपर्यवसानानि रसस्पर्धकानि वाच्यानि । तत्र जघन्यरसस्पर्धकस्य प्रथमवर्गणायां रसाविभागाः परस्परं समाना अवतिष्ठन्ते, उत्कृष्टस्पर्धकचरमवर्गणायां तु विषमाः । तद्यथा (१) तिर्यगायुष उत्कृष्टस्पर्धकस्य चरमवर्गणायां रसाविभागाः स्तोका भवन्ति । (२) ततो मनुष्यायुष्कस्योत्कृष्टस्पर्धकचरमवर्गणायां रसाविभागा अनन्तगुणा भवन्ति । (३) ततो नरकायुष उत्कृष्टस्पर्धकचरमवर्गणायां रसाविभागा अनन्तगुणा भवन्ति । (४) ततो देवायुष उत्कृष्टस्पर्धकचरमवर्गणायां रसाविभागा अनन्तगुणा भवन्ति । (५) ततस्तिर्यग्गतेरुत्कृष्टस्पर्धकचरमवर्गणायां रसाविभागा अनन्तगुणा भवन्ति (६) ततो नरकगतेरुत्कृष्टस्पर्धकचरमवर्गणायां रसाविभागा अनन्तगुणा भवन्ति । (७-८) ततोऽयशःकीर्तिनीचैर्गोत्रयोरुत्कृष्टस्पर्धकचरमवर्गणायां रसाविभागा अनन्तगुणा भवन्ति, स्वस्थाने मिथस्तुल्याः । (९) ततोऽसातवेदनीयस्योत्कृष्टस्पर्धकचरमवर्गणायां रसाविभागा अनन्तगुणा भवन्ति । (१०) तत औदारिकशरीरनामकर्मण उत्कृष्टस्पर्धकस्य चरमवर्गणायां रसाविभागा अनन्तगुणा भवन्ति । (११) ततो मनुष्यगतेरुत्कृष्टस्पर्धकचरमवर्गणायां रसाविभागा अनन्तगुणा भवन्ति । (१२) ततो वैक्रियशरीरनामकर्मण उत्कृष्टस्पर्धकचरमवर्गणायां रसाविभागा अनन्तगुणा भवन्ति । (१३) तत आहारकशरीरनामकर्मण उत्कृष्टस्पर्धकचरमवर्गणायां रसाविभागा अनन्तगुणा भवन्ति । (१४) ततस्तैजसशरीरनामकर्मण उत्कृष्टस्पर्धकचरमवर्गणायां रसाविभागा अनन्तगुणा भवन्ति । (१५) ततः कार्मणशरीरनामकर्मण उत्कृष्टचरमस्पर्धकवर्गणायां रसाविभागा अनन्तगुणा भवन्ति । (१६) ततो देवगतेरुत्कृष्टस्पर्धकचरमवर्गणायां रसाविभागा अनन्तगुणा भवन्ति । (१७-१८) ततो यशःकीर्त्युच्चैर्गोत्रयोरुत्कृष्टस्पर्धकस्य

चरमवर्गणायां रसाविभागा अनन्तगुणा भवन्ति । (१६) ततः सातवेदनीयस्योत्कृष्टस्पर्धकचरमवर्गणायां रसाविभागा अनन्तगुणा भवन्ति । तत्र वैक्रियशरीरादीनां पञ्चप्रकृतीनामुत्कृष्टानुभागः क्षपकेणाऽपूर्वकरणगुणस्थानके सञ्चितः । सातवेदनीय-यशःकीर्त्युच्चैर्गोत्राणामुत्कृष्टानुभागं सूक्ष्मसम्परायचरमसमये क्षपकः संचेष्यति । शेषाणामुत्कृष्टानुभागं यथागमं संसारा-ऽवस्थायां संचिनोति जीवः । क्षपकस्य सत्कर्मणि देवनारकतैर्यगायुष्काणां तु सर्वथा-ऽभावः प्राग् दर्शित एव ।

तदेवं प्रसङ्गतो वात्यधातिकर्मणां रसस्पर्धकानि विवर्णितानि । सम्प्रति प्रकृतमनुसरामः एवंविधेषु पूर्वस्पर्धकेषु संज्वलनचतुष्कस्य यानि पूर्वस्पर्धकानि, तेभ्योऽसंख्येयभागमितं प्रदेशाग्रं गृहीत्वा स्वस्वजघन्यपूर्वस्पर्धकगतप्रथमवर्गणातो-ऽनन्तगुणहीनानुभागकान्यनन्तान्यपूर्वस्पर्धकान्यश्वकर्णकरणाद्धाप्रथमसमये निर्वर्तयति । उक्तं च कषायप्राभृतचूर्णौ **"तदो चदुण्हं संजलणाणमपुव्वफद्दयाइं णाम करेदि । ताणि कधं करेदि ? लोभस्स ताव लोहसंजलणस्स पुव्वफद्दएहिंतो पदेसग्गस्स असंखेज्जदिभागं घेत्तूण पढमस्स देसघादिफद्दयस्स हेट्ठा अणंतभागे अपणाणि अपुव्वफद्दयाणि णिव्वत्तयदि ।× × × × × × × × × × × जहा लोभस्स अपुव्वफद्दयाणि परूविदाणि पढमसमए, तहा मायाए माणस्स कोधस्स परूवेयव्वाणि ।"** एवं शतकचूर्णावपि

सो पुव्वफड्डगाणं हेट्ठा अपणाणि फड्डगाइं तु ।
पकरेइ अपुव्वाइं अणंतगुणहीयमाणाइं ॥ १ ॥

न चाऽत्राऽश्वकर्णकरणाद्धायां पुरुषवेदस्य समयोनाऽवलिकाद्वयबद्धनूतनाऽनुभागसंभवात् पुरुषवेदस्या-ऽपूर्वस्पर्धकानि कुतो न निर्वर्तयति ? इति वाच्यम्, **कषायप्राभृतचूर्णिकारैः सप्ततिकाचूर्णिकृद्भिश्च** संज्वलनचतुष्कस्यैवा-ऽपूर्वस्पर्धकानामुपदिष्टत्वात् । तथा-चाऽत्र **कषायप्राभृतचूर्णिः "तदो चदुण्हं संजलणाणमपुव्वफद्दयाइं णाम करेदि ।"** इति । तथैव **सप्ततिकाचूर्णिः–"तत्थ अस्सकण्णकरणद्धाए वट्टमाणो अणंताइं समए समए अपुव्वफड्डगाइं चउण्हं संजलणाणं करोति ।"** इति । पुरुषवेदस्य त्वपूर्वस्पर्धकनिर्वृत्तिं विना समयोनाऽवलिकाद्वयेन बद्धनूतनाऽनुभागं बन्धावलिकाऽपगमेऽश्वकर्णकरणाद्धायां तावता कालेन संज्वलनक्रोधे संक्रमयति ॥६३॥

नन्वश्वकर्णकरणाद्धाप्रथमसमये-ऽपूर्वस्पर्धकानि कति निर्वर्तयति ? इत्यत आह

ताणि अपुव्वाणिगदुगुणहाणिफड्डाणऽसंखइमभागो ।
एत्थ पुण भागहारो ओकड्डणओ असंखगुणो ॥६४॥

तान्यपूर्वाण्येकद्विगुणहानिस्पर्धकानामसंख्यतमभागः ।
अत्र पुनर्भागहारोऽपकर्षणतो-ऽसंख्यगुणः ॥६४॥ इति पदसंस्कारः ।

'ताणि' इत्यादि, 'तानि' संज्वलनचतुष्कस्य पूर्वस्पर्धकानामनन्तगुणहीनरसतामापाद्य निर्वर्त्यमानानि 'अपूर्वाणि' अपूर्वस्पर्धकानि 'एकद्विगुणहानिस्पर्धकानाम्' एकस्यां द्विगुणहानौ यावन्ति स्पर्धकानि भवन्ति, तेषां 'असंख्यतमभागः' असंख्येयतमभागप्रमितानि भवन्ति, एतानि चाऽनन्तानि। उक्तं च कषायप्राभृतचूर्णौ-"ताणि पगणणादो अणंताणि, पदेसगुणहाणिट्ठाणंतरफद्दयाणमसंखेज्जदिभागो, एत्तियमेत्ताणि ताणि अपुव्वफद्दयाणि।" इति। नन्वस्मिन् प्रस्तावे भागहारः कियन्मानः? इत्याह 'एत्थ' इत्यादि, 'अत्र' अस्मिन्नश्वकर्णकरणाद्धाप्रथमसमयाख्यप्रकरणे भागहारः पुनः 'अपकर्षणतः' उत्कर्षणाऽपकर्षणभागहारतोऽसंख्यगुणो ज्ञातव्य इति शेषः। एतदुक्तं भवति प्रथमपूर्वस्पर्धकप्रथमवर्गणागतपरमाणुत उत्तरोत्तरवर्गणायामेकैकचयेन न्यूना भवन्तः परमाणवो यावत्यायामे गतेऽर्धा भवन्ति, तावान् आयामो द्विगुणहानिरुच्यते इति प्रागपि प्रतिपादितम्। तत्रैकद्विगुणहानौ यावन्ति स्पर्धकानि लभ्यन्ते, तावन्त्येकद्विगुणहानिस्पर्धकानीति व्यवह्रियते। तानि च गणनातोऽभव्येभ्योऽनन्तगुणानि सिद्धानन्तभागकल्पानि भवन्ति। तथा येन पल्योपमाऽसंख्येयभागेनाऽश्वकर्णकरणाद्धाप्रथमसमये सत्तागतदलिकानि विभज्योत्किरति जीवः, स भागहार इहोत्कर्षणाऽपकर्षणभागहारो व्यपदिश्यते। तत्रैकद्विगुणहानिस्पर्धकान्युत्कर्षणापकर्षणभागहारतोऽसंख्येयगुणेन भागहारेण विभज्यैकभागमात्राण्यपूर्वस्पर्धकानि निर्वर्त्यन्ते ॥ ६४ ॥

ननूत्कर्षणापकर्षणभागहारस्य पल्योपमाऽसंख्येयभागप्रमाणत्वेन ततोऽसंख्येयगुणो भागहारोऽसंख्येयपल्योपममितोऽपि स्यात्? इति परमाशङ्क्य प्राह -

सो पुण असंखभागो पल्लपढमवग्गमूलस्स।
कमसो अपुव्वगाणाइवग्गणाऽत्थि य विसेसऽहिआ ॥६५॥ (उपगीतिः)

स पुनरसंख्यभागः पल्यप्रथमवर्गमूलस्य।
क्रमशोऽपूर्वेषामादिवर्गणाऽस्ति च विशेषाधिका ॥६५॥ इति पदसंस्कारः.

'सो' इत्यादि, 'सः' अश्वकर्णकरणाद्धाप्रथमसमयभाव्युत्कर्षणाऽपकर्षणभागहारतोऽसंख्येयगुणो भागहारः पुनः 'असंख्यभागः' असंख्येयतमभागः कस्य? इत्याह-'पल्ल०' त्ति पल्योपमप्रथमवर्गमूलस्याऽसंख्येयतमभागकल्पो भवतीत्यर्थः।

न च निरुक्तभागहार उत्कर्षणापकर्षणभागहारतोऽसंख्येयगुणः पल्योपमप्रथमवर्गमूलस्य चाऽसंख्येयभागकल्प इत्येतत् कथमवसीयते? इति वाच्यम्, तत्प्रतिपादकाऽल्पबहुत्वस्य दर्शनात्। तथा चाऽत्र कषायप्राभृतचूर्णिः-"पढमसमयअस्सकण्णकरणकारयस्स जं पदेसग्गमोकड्डिज्जदि, तेण भागहारस्स अवहारकालो थोवो, अपुव्वफद्दएहिं पदेसगुणहाणिट्ठाणंतरस्स अवहारकालो असंखेज्जगुणो, पलिदोवमवग्गमूलमसंखेज्जगुणं।" इति।

चूर्ण्युत्तराणामिदं व्याख्यानम् अश्वकर्णकरणाद्धाप्रथमसमये यावत्प्रदेशाग्रमपकर्षति, तेन प्रमाणेन कर्मण्यपह्रियमाणे यो-ऽपहारकालो गच्छेत्, सो-ऽपहारकाल उत्कर्षणापकर्षणभागहार-नामा स्तोको भवति। ततो निर्वर्त्यमानैरपूर्वस्पर्धकैरपह्रियमाणे एकप्रदेशगुणहानिस्थानान्तरे यो-ऽपहारकालो व्यतिक्रामेत्, स पल्योपमा-ऽसंख्येयभागप्रमितो भवन्नप्यसंख्येयगुणो भवति। इदमुक्तं भवति प्रथमस्पर्धकप्रथमवर्गणातः प्रभृत्युत्तरोत्तरवर्गणायां परमाणवो विशेषहीनक्रमेण तिष्ठन्ति। तत्र प्रथमस्पर्धकप्रथमवर्गणातो-ऽभव्यानन्तगुण-सिद्धानन्तभागमात्रेषु स्पर्धकेषु गतेषु प्रथमस्पर्धकादिमवर्गणा-ऽपेक्षया द्विगुणहीना भवन्ति, ततः पुनस्तावन्मात्रेषु स्पर्धकेषु व्रजितेषु प्रदेशा द्विगुणहीना भवन्ति, पुनस्तावन्मात्रेषु स्पर्धकेषु गतेषु प्रदेशा द्विगुणहीना भवन्ति। तत्र द्वयोर्द्विगुणहान्योरपान्तराले यत् स्पर्धकजातं भवति, तद् एकप्रदेशगुणहानिस्थानान्तरमुच्यते, यद्रपामिद्विगुणहानिरिति प्राक् परिभाषितम्। अश्वकर्णकरणाद्धाप्रथमसमयभाव्युत्कर्षणापकर्षण-भागहारतो-ऽपूर्वस्पर्धकैरपह्रियमाणानामेकप्रदेशगुणहानिस्थानान्तरगतस्पर्धकानामपहारकाल' पल्यो-पमा-ऽसंख्येयभागमात्रो भवन्नप्यसंख्येयगुणो भवति, तथा चासौ पल्योपमप्रथमवर्गमूलस्या-ऽसंख्येयभागप्रमाणो भवतीति कृत्वा चूर्णिकारैरपूर्वस्पर्धकैरेकप्रदेशगुणहानिस्थानान्तरस्याऽपहा-रकालतः पल्योपमप्रथमवर्गमूलमसंख्येयगुणं भवतीत्युक्तम्।

卐 इत्थमश्वकर्णकरणाद्धाप्रथमसमये उत्कर्षणापकर्षणभागहारतोऽसंख्येयगुणेन पल्योपम-प्रथमवर्गमूलस्य चासंख्येयभागप्रमितेन पल्योपमाऽसंख्येयभागलक्षणभागहारेणैकद्विगुणहानि-स्थितस्पर्धकानि विभज्यैकभागमितान्यपूर्वस्पर्धकानि करोति।

सम्प्रति रसाविभागानाश्रित्या-ऽपूर्वस्पर्धकानां प्रथमवर्गणां दर्शयति-'कमसो' इत्यादि, 'क्रमशः' क्रमेण 'अपुव्वगाण' त्ति प्राकृतत्वात् स्वार्थिकः कप्रत्ययः, 'अपूर्वेषां' संज्वलनचतुष्कस्याऽ-पूर्वस्पर्धकानां 'आदिवर्गणा' प्रथमवर्गणा विशेषाधिका 'अस्ति' भवति, चकारः पादपूर्त्यै। इदमुक्तं भवति संज्वलनलोभस्य प्रथमा-ऽपूर्वस्पर्धकप्रथमवर्गणागतसकलरसाविभागतो द्वितीयाऽपूर्व-स्पर्धकप्रथमवर्गणाप्रतिबद्धसकलरसाविभागा विशेषाधिका भवन्ति। ततस्तृतीयाऽपूर्वस्पर्धकप्रथम-वर्गणास्थितसकलरसाविभागा विशेषाधिका भवन्ति। एवं तावद्वक्तव्यम्, यावच्चरमाऽपूर्वस्पर्धक-प्रथमवर्गणा। यथा लोभस्या-ऽपूर्वस्पर्धकानां प्रथमवर्गणागतरसाविभागाः प्ररूपिताः, तथैव मायामान-क्रोधानामपि प्रथमवर्गणागतरसाविभागा वक्तव्याः।

卐 उक्तं च जयधवलाकारैरपि-"एदेण सुत्तेण ओकड्डुक्कड्डुणभागहारादो असंखेज्जगुणेण पलिदो-वमपढमवग्गमूलादो च असंखेज्जगुणहीणेण पलिदो० असंखे० भागेण एगपदेसगुणहाणिट्ठाणंतरफद्दएसु ओवट्टिदेसु जं भागलद्धं, तत्तियमेत्ताणि कोहादिसंजलणाणमपुव्वफद्दयाणि होंति त्ति एसो अत्थविसेसो जाणाविदो।" इति।

इदं तु संक्षिप्तव्याख्यानम् । अथ विस्तरव्याख्यानेन प्ररूप्यते—इह तावदश्वकर्णकरणाद्धाप्रथमसमये संज्वलनचतुष्कस्याऽपूर्वस्पर्धकानि करोति । तत्र लोभस्य प्रथमाऽपूर्वस्पर्धकप्रथमवर्गणासत्कैकपरमाणौ यावन्तो रसाविभागा भवन्ति, ततो द्वितीयापूर्वस्पर्धकप्रथमवर्गणासत्कैकपरमाणौ द्विगुणा रसाविभागा भवन्ति, प्रथमापूर्वस्पर्धकप्रथमवर्गणासत्कैकपरमाणौ स्थितेभ्यो रसाविभागेभ्यस्तृतीयापूर्वस्पर्धकप्रथमवर्गणासत्कैकपरमाणौ रसाविभागास्त्रिगुणा भवन्ति । एवं प्रथमाऽपूर्वस्पर्धकापेक्षया यतिसंख्यं यतिसंख्यमपूर्वस्पर्धकं भवेत्, तत्संख्यागुणिताः प्रथमाऽपूर्वस्पर्धकप्रथमवर्गणागतरसाविभागास्ततिसंख्यस्य ततिसंख्यस्याऽपूर्वस्पर्धकस्य प्रथमवर्गणायां भवन्ति । तेन प्रथमाऽपूर्वस्पर्धकप्रथमवर्गणातश्चरमाऽपूर्वस्पर्धकस्य प्रथमवर्गणागतरसाविभागा अनन्तगुणा भवन्ति, अपूर्वस्पर्धकानामेकद्विगुणहानिस्थितस्पर्धकसत्काऽसंख्येयभागमात्रत्वेनाऽभव्यानन्तगुण-सिद्धानन्तभागमात्रत्वात् । यदुक्तं कषायप्राभृतचूर्णौ—"जाणि पढमसमये अपुव्वफद्दयाणि णिव्वत्तिदाणि, तत्थ पढमस्स फद्दयस्स आदिवग्गणा थोवा । चरिमस्स अपुव्वफद्दयस्स आदिवग्गणा अणंतगुणा ।" इति । चरमाऽपूर्वस्पर्धकप्रथमवर्गणातः प्रथमपूर्वस्पर्धकप्रथमवर्गणागतरसाविभागा अनन्तगुणा भवन्तीत्यनुक्तसिद्धम्, प्रथमपूर्वस्पर्धकप्रथमवर्गणातोऽनन्तगुणहीनरसतामापाद्य-ऽपूर्वस्पर्धकानां निवृत्तेः । उक्तं च कषायप्राभृतचूर्णौ-"पुव्वफद्दयस्सादिवग्गणा अणंतगुणा ।" इति ।

तथा प्रथमाऽपूर्वस्पर्धकप्रथमवर्गणागतरसाविभागतो द्वितीयाऽपूर्वस्पर्धकप्रथमवर्गणायां रसाविभागा द्विगुणा भवन्ति । द्वितीयाऽपूर्वस्पर्धकप्रथमवर्गणातस्तृतीयापूर्वस्पर्धकप्रथमवर्गणायां रसाविभागा एकद्विभागेनाऽधिका भवन्ति । तृतीयाऽपूर्वस्पर्धकप्रथमवर्गणातश्चतुर्थापूर्वस्पर्धकप्रथमवर्गणायां रसाविभागास्त्रिभागेनाऽधिका भवन्ति । ततोऽपि पञ्चमाऽपूर्वस्पर्धकप्रथमवर्गणायां रसाविभागाश्चतुर्भागेनाधिका भवन्ति । एवं यतिसंख्यमपूर्वस्पर्धकं चिन्त्यते, एकोनतत्संख्याभागेनाधिका रसाविभागास्तत्पूर्ववर्त्यपूर्वस्पर्धकापेक्षया वक्तव्याः । तेन जघन्यपरित्ताऽसंख्येयतमाऽपूर्वस्पर्धकस्य प्रथमवर्गणायां रसाविभागा उत्कृष्टसंख्येयभागेनाऽधिका भवन्ति, तदुपरितनाऽपूर्वस्पर्धकानां प्रथमवर्गणायां पूर्वपूर्वतोऽसंख्येयभागेनाधिकास्तावद्वक्तव्याः, यावज्जघन्यपरित्ताऽनन्ततमस्पर्धकं प्राप्यते । तत उपरि पूर्वपूर्वत उत्तरोत्तराऽपूर्वस्पर्धकस्य प्रथमवर्गणायां रसाविभागा अनन्ततमभागेन वृद्धा भवन्ति । इदं तु प्रथमवर्गणागतैकपरमाणुमाश्रित्य प्रोक्तम् ।

अथ प्रथमवर्गणागतसकलपरमाणूनाश्रित्याऽभिधीयते—प्रथमाऽपूर्वस्पर्धकप्रथमवर्गणागतसकलपरमाणुस्थितसर्वरसाविभागतो द्वितीयाऽपूर्वस्पर्धकप्रथमवर्गणासत्कसकलपरमाणुगतसकलरसाविभागा द्विगुणा न भवन्ति, किन्तु किंचि··यूनद्विगुणा भवन्ति, प्रथमाऽपूर्वस्पर्धकप्रथमवर्गणागतसकलपरमाणुतो द्वितीयाऽपूर्वस्पर्धकप्रथमवर्गणास्थितसकलपरमाणूनामनन्तभागेन

हीनत्वात् । तेन प्रथमाऽपूर्वस्पर्धकप्रथमवर्गणागतसकलपरमाणुस्थितसर्वरसाविभागतो द्वितीयापूर्वस्पर्धकप्रथमवर्गणागतसकलपरमाणुषु सकलरसाविभागा अनन्तबहुभागैरधिका भवन्ति । द्वितीयाऽपूर्वस्पर्धकप्रथमवर्गणागतसर्वपरमाणुस्थितसकलरसाविभागतस्तृतीयाऽपूर्वस्पर्धकप्रथमवर्गणासत्कसमस्तपरमाणुषु रसाविभागा किञ्चिन्न्यूनद्विभागेनाधिका भवन्ति । ततश्चतुर्थी-ऽपूर्वस्पर्धकप्रथमवर्गणागतसकलपरमाणुषु रसाविभागाः किञ्चिन्न्यूनत्रिभागेनाऽधिका भवन्ति । एवं संख्येयभागेनाऽधिकास्तावद्वक्तव्याः, यावज्जघन्यपरित्तासंख्येयतमाऽपूर्वस्पर्धकं प्राप्यते । तदुपर्यसंख्येयभागेना-ऽधिकास्तावदनुगन्तव्याः, यावज्जघन्यपरित्तानन्ततमस्पर्धकं प्राप्यते । तत उपर्यनन्ततमभागेना-ऽधिकास्तावदवबोद्धव्याः, यावद् द्विचरमा-ऽपूर्वस्पर्धकप्रथमवर्गणागतसकलपरमाणुप्रतिबद्धरसाविभागतश्चरमाऽपूर्वस्पर्धकप्रथमवर्गणागतसमस्तपरमाणुषु सकलरसाविभागा अनन्ततमभागेन विशेषाधिकाः । उक्तं च कषायप्राभृतचूर्णौ **"एवमणंतराणंतरेण गंतूण दुचरिमस्स फद्दयस्स आदिवग्गणाए अविभागपडिच्छेदादो चरिमस्स अपुव्वफद्दयस्स आदिवग्गणा विसेसाहिया अणंतभागेण ।" इति ।**

अनुभागमाश्रित्य पूर्वापूर्वस्पर्धकानां स्थापना

अपूर्वस्पर्धकानि — पूर्वस्पर्धकानि

लोभस्य [१] ००००००००००००००००० [२] ०० [३] [४] ०० [५]
मायाया [१] ०००००००००००००००० [२] ०० [३] [४] ०० [५]
मानस्य [१] ००००००००००००० [२] ०० [३] [४] ०००००००००००००००००००००००००००००००० [५]
क्रोधस्य [१] ००००००००० [२] ०० [३] [४] ००००००००००००००००००००००००००००००००००००० [५]

सङ्केतादीनां विवरणम्

१ = लोभादीनामपूर्वस्पर्धकाना जघन्यवर्गणा । तत्र लोभाऽपूर्वस्पर्धकजघन्यवर्गणायां स्तोका रसाविभागाः ।
मायाऽ- ,, ,, ,, विशेषाधिकाः ,, ।
मानस्या-ऽ ,, ,, ,, ,, ,, ,, ।
क्रोधस्या-ऽ ,, ,, ,, ,, ,, ,, ।

२ = लोभादीनां चरमाऽपूर्वस्पर्धकगतप्रथमवर्गणाप्रतिबद्धा रसाविभागा मिथस्तुल्या. ।

३ = ,, ,, ,, चरम ,, ,, ,, ,,

४ = ,, पूर्वस्पर्धकगतप्रथमवर्गणाप्रतिबद्धा रसाविभागा मिथस्तुल्याः ।

५ = ,, चरमपूर्वस्पर्धकगतचरमवर्गणायां रसाविभागा. । तत्र मानस्य पूर्वस्पर्धकचरमवर्गणायां रसाविभागा. स्तोका भवन्ति, ततो विशेषाधिका क्रोधस्य पूर्वस्पर्धकचरमवर्गणायां भवन्ति, ततोऽपि मायाया. पूर्वस्पर्धकचरमवर्गणाया विशेषाधिका भवन्ति । ततोऽपि लोभस्य पूर्वस्पर्धकचरमवर्गणायां विशेषाधिका भवन्ति । अश्वकर्णकरणाद्धायां प्रथमेऽनुभागखण्डे घातिते तु लोभस्य पूर्वस्पर्धकचरमवर्गणायां रसाविभागा. स्तोका भवन्ति, ततो मायायाः पूर्वस्पर्धकेचरमवर्गणायामनन्तगुणा भवन्ति, ततो मानस्य पूर्वस्पर्धकचरमवर्गणायामनन्तगुणा भवन्ति । तत क्रोधस्य पूर्वस्पर्धकचरमवर्गणायामनन्तगुणा भवन्ति ॥६५॥

ननु संज्वलनचतुष्कस्या-ऽपूर्वस्पर्धकान्येकद्विगुणहानिगतस्पर्धकानामसंख्येयभागमितानि करोति, तत्र किं क्रोधादीनामपूर्वस्पर्धकानि मिथस्तुल्यानि निर्वर्तयति, उता-ऽस्ति कश्चिद् विशेषः ? इत्यत आह

कोहाईण अपुव्वाणि फड्डगाइं अणुकमेण ।
कुणए विसेसअहियाइं पढमखणे य अस्सकण्णस्स ॥६६॥ (गीतिः)

क्रोधादीनामपूर्वाणि स्पर्धकान्यनुक्रमेण ।
करोति विशेषाधिकानि प्रथमक्षणे चाश्वकर्णस्य ॥६६॥ इति पदसंस्कारः ।

'कोहाईण' इत्यादि, 'क्रोधादीनां' क्रोधमानमायालोभरूपाणां चतुर्णां संज्वलनकषायाणामपूर्वाणि स्पर्धकानि 'अनुक्रमं' यथोत्तरं विशेषाधिकानि 'अश्वकर्णस्य' पदैकदेशे पदसमुदायस्योपचाराद् अश्वकर्णकरणाद्धायाः 'प्रथमक्षणे' प्रथमसमये 'करोति' निर्वर्तयति । इदमुक्तं भवति— अश्वकर्णकरणाद्धाप्रथमसमये क्रोधस्या-ऽपूर्वस्पर्धकानि स्तोकानि निर्वर्तयति, ततो विशेषाधिकानि मानस्य, आधिक्यं चाऽनन्ततमभागेन ज्ञातव्यम् । एवमुत्तरत्राऽपि । मानस्याऽपूर्वस्पर्धकतो मायाया अपूर्वस्पर्धकानि विशेषाधिकानि निर्वर्तयति, ततोऽपि लोभस्य विशेषाधिकानि । उक्तं च कषायप्राभृतचूर्णौ "पढमसमए जाणि अपुव्वफद्दयाणि णिव्वत्तिदाणि, तत्थ कोधस्स थोवाणि, माणस्स अपुव्वफद्दयाणि विसेसाहियाणि, मायाए अपुव्वफद्दयाणि विसेसाहियाणि लोभस्स अपुव्वफद्दयाणि विसेसाहियाणि, विसेसो अणंतभागो ।" इति ॥ ६६ ॥

ननु संज्वलनक्रोधादीनां निर्वर्त्यमाना-ऽपूर्वस्पर्धकानां प्रथमवर्गणायां रसाऽविभागा मिथस्तुल्या भवन्ति, उत विषमाः ? इत्यत आह

अणुभागे चरिमअपुव्वाण हवइ पढमवग्गणा तुल्ला ।
लोहाईण अणूए अविभागा खलु विसेसअहियकमा ॥६७॥ (गीतिः)

अनुभागे चरमा-ऽपूर्वेषां भवति प्रथमवर्गणा तुल्या ।
लोभादीनामणौ अविभागाः खलु विशेषाधिकक्रमाः ॥६७॥ इति पदसंस्कारः ।

'अणुभागे' इत्यादि, तत्र 'लोहाईण' त्ति 'लोभादीनां' लोभमायामानक्रोधलक्षणानां कषायाणां 'चरमाऽपूर्वेषां' चरमाऽपूर्वस्पर्धकानाम् 'अनुभागे' अनुभागविषया प्रथमवर्गणा 'तुल्या भवति' रसाऽविभागानाश्रित्य समाना भवतीत्यर्थः । अश्वकर्णकरणाद्धाप्रथमसमये लोभस्य चरमा-ऽपूर्वस्पर्धकस्य प्रथमवर्गणायां यावन्तो रसाऽविभागा भवन्ति, तावन्त एव रसावि-

भागा मायायाश्चरमाऽपूर्वस्पर्धकस्य प्रथमवर्गणायां भवन्ति । एवं मानक्रोधयोरपि चरमा-ऽपूर्वस्पर्धकप्रथमवर्गणायां रसाविभागा मिथस्तुल्या वक्तव्याः । यदुक्तं कषायप्राभृतचूर्णौ-"**एवं चदुण्हं पि कसायाणं जाणि अपुव्वफद्दयाणि, तत्थ चरिमस्स अपुव्वफद्दयस्स आदिवग्गणाए अविभागपडिच्छेदग्गं चदुण्हं पि कसायाणं तुल्लमणंतगुणं ।**" इति ।

ननु कषायचतुष्कस्य जघन्यायां वर्गणायां केन क्रमेण रसाविभागा भवन्ति ? इत्यत आह 'लोहादीण' इत्यादि, लोभादीनाम् 'अणो' प्रथमाऽपूर्वस्पर्धकानां जघन्यवर्गणायाम् 'अविभागाः' रसा-ऽविभागाः खलु 'विशेषाधिकक्रमाः' विशेषेणा-ऽधिकः क्रमो येषां ते विशेषा-धिकक्रमाः, भवन्तीति गम्यते । इदमुक्तं भवति-अश्वकर्णकरणाद्धाप्रथमसमये लोभस्य प्रथमा-ऽपूर्वस्पर्धकजघन्यवर्गणायां रसाविभागा स्तोका भवन्ति, ततो मायायाः प्रथमाऽपूर्वस्पर्धकजघन्य-वर्गणायां रसाविभागा विशेषाधिका भवन्ति, ततो मानस्याऽपूर्वस्पर्धकजघन्यवर्गणायां रसावि-भागा विशेषाधिका भवन्ति, ततोऽपि क्रोधस्याऽपूर्वस्पर्धकजघन्यवर्गणायां रसाविभागा विशेषाधिका भवन्ति । कथमेतदवसीयते ? इति चेत्, उच्यते-संज्वलनचतुष्कस्य चरमाऽपूर्वस्पर्धकानां प्रथम-वर्गणा रसाविभागानाश्रित्य मिथः समानाः, संज्वलनक्रोधादीनामपूर्वस्पर्धकानि पुनः क्रमेण विशेषाधिकानि भवन्तीत्यनुपदमुक्तम् । तत्र चरमापूर्वस्पर्धकप्रथमवर्गणागतरसाविभागाः स्वस्वापूर्व-स्पर्धकराशिना भज्यन्ते, तदा लोभादीनां प्रथमाऽपूर्वस्पर्धकप्रथमवर्गणाप्रतिबद्धरसाविभागाः प्राप्यन्ते, प्रथमाऽपूर्वस्पर्धकप्रथमवर्गणागतरसाविभागतो द्वितीयाद्यपूर्वस्पर्धकप्रथमवर्गणागत-रसाविभागानां द्विगुणादिक्रमेणावस्थितत्वात् । अनया रीत्या लोभादीनामपूर्वस्पर्धकानामादिवर्ग-णायां लब्धाः प्रथमवर्गणागतरसाविभागाः क्रमेण विशेषाधिका भवन्ति, भाज्यराशेः समानत्वे सति भाजकस्य वैषम्यात् । उक्तं च कषायप्राभृतचूर्णौ-"**तेसिं चेव पढमसमए णिव्व-त्तिदाणमपुव्वफद्दयाणं लोभस्स आदिवग्गणाए अविभागपडिच्छेदग्गं थोवं । मायाए आदिवग्गणाए अविभागपडिच्छेदग्गं विसेसाहियं । माणस्स आदि-वग्गणाए अविभागपडिच्छेदग्गं विसेसाहियं । कोहस्स आदिवग्गणाए अविभाग-पडिच्छेदग्गं विसेसाहियं ।**" इति । इदन्त्ववधेयम्-यथा संज्वलनचतुष्कस्य चरमाऽपूर्व-स्पर्धकप्रथमवर्गणासु रसाविभागाः परस्परं तुल्या भवन्ति, तथैवाऽनन्तापूर्वस्पर्धकप्रथमवर्गणासु रसाविभागा मिथस्तुल्या भवन्ति, किन्तु क्रोधस्य यावन्त्यपूर्वस्पर्धकानि व्यतिक्रम्या-ऽपूर्वस्पर्धकस्य प्रथमवर्गणायां रसाविभागाश्चिन्त्येरन्, ततो मानस्याधिकान्यपूर्वस्पर्धकानि गत्वाऽपूर्वस्पर्धकस्य प्रथमवर्गणायां रसाविभागाश्चिन्तनीयाः । ततो मायाया अधिकान्यपूर्वस्पर्धकानि व्रजित्वाऽपूर्व-स्पर्धकस्य प्रथमवर्गणायां विमर्शनीयाः । ततो लोभस्याधिकान्यपूर्वस्पर्धकानि व्यतिक्रम्याऽ-पूर्वस्पर्धकप्रथमवर्गणायां रसाविभागाश्चिन्तनीयाः । तद्यथा-क्रोधस्य प्रथमाऽपूर्वस्पर्धकजघन्य-वर्गणाप्रतिबद्धरसाविभागतो मानस्य प्रथमापूर्वस्पर्धकप्रथमवर्गणागतरसाविभागान् विशोध्य ये

रसाविभागा शेषत्वेन प्राप्यन्ते । तैर्मानस्य प्रथमाऽपूर्वस्पर्धकप्रथमवर्गणागतरसाविभागा विभक्तव्या: । विभक्तेषु च यद् लभ्यते, तावन्मात्राणि क्रोधस्याऽपूर्वस्पर्धकानि, ततः साधिकानि मानस्य, ततः साधिकानि मायायाः, ततः साधिकानि लोभस्या-ऽपूर्वस्पर्धकानि गत्वा प्राप्यमाणाऽपूर्वस्पर्धकप्रथमवर्गणायां रसाऽविभागा मिथः समाना भवन्ति । पुनस्तावन्ति स्पर्धकानि व्यतिक्रम्य प्राप्यमाणाऽपूर्वस्पर्धकप्रथमवर्गणायां रसाविभागा मिथस्तुल्या भवन्ति । एवमनन्तान्यपूर्वस्पर्धकानि लभ्यन्ते, येषां प्रथमवर्गणायां रसाविभागा मिथः सदृशा भवन्ति ।

असत्कल्पनया कल्प्यन्तां संज्वलनचतुष्कस्य प्रत्येकं चरमाऽपूर्वस्पर्धकप्रथमवर्गणायां रसाविभागा द्वाचत्वारिंशच्छतानि (४२००) मिथस्तुल्यत्वात् । कल्प्यन्तां क्रोधस्याऽपूर्वस्पर्धकानि पञ्चविंशतिः (२५) मानस्य त्रिंशत् (३०), मायायाः पञ्चत्रिंशत् (३५), लोभस्य चत्वारिंशत् (४०), क्रोधादीनां क्रमेणाऽपूर्वस्पर्धकानां विशेषाधिकत्वात् । अथ द्वाचत्वारिंशच्छतानि स्वस्वाऽपूर्वस्पर्धकराशिना खण्ड्यन्ते, तदा क्रोधस्य प्रथमापूर्वस्पर्धकप्रथमवर्गणायां रसाविभागा अष्टापष्ट्यधिकशतं (४२०० ÷ २५ = १६८), मानस्य प्रथमा-ऽपूर्वस्पर्धप्रथमवर्गणायां रसाविभागाश्चत्वारिंशदुत्तरशतं (४२०० ÷ ३० = १४०) मायायाः प्रथमाऽपूर्वस्पर्धकप्रथमवर्गणायां रसाविभागा विंशत्यधिकं शतं (४२०० ÷ ३५ = १२०) लोभस्य प्रथमा-ऽपूर्वस्पर्धकप्रथमवर्गणायां रसाविभागाः पञ्चाधिकशतं (४२०० ÷ ४० = १०५) प्राप्यन्ते । एवं क्रोधादीनां प्रथमाऽपूर्वस्पर्धकजघन्यवर्गणासु रसाविभागास्तुल्या न भवन्ति ।

तथा क्रोधस्य प्रथमस्पर्धकप्रथमवर्गणागतेभ्योऽष्टापष्ट्यधिकशतरसाविभागेभ्यो मानस्य प्रथमाऽपूर्वस्पर्धकप्रथमवर्गणागतचत्वारिंशदधिकशतरसाविभागेषु विशोधितेष्वष्टाविंशती रसाविभागा (२८) अवशिष्यन्ते, तैर्मानप्रथमाऽपूर्वस्पर्धकप्रथमवर्गणागतचत्वारिंशदुत्तरशतरसाविभागा विभज्यन्ते, तदा पञ्च प्राप्यन्ते, तेन क्रोधस्य पञ्चा-ऽपूर्वस्पर्धकानि, मानस्य षट्, मायायाः सप्त, लोभस्य त्वष्टौ गत्वा प्रथमवर्गणायां रसाविभागाः परस्परं तुल्या भवन्ति । तद्यथा-क्रोधस्य पञ्चमाऽपूर्वस्पर्धकप्रथमवर्गणायां रसाविभागाश्चत्वारिंशदधिकाष्टशतानि (१६८ × ५ = ८४०), मानस्य षष्ठाऽपूर्वस्पर्धकप्रथमवर्गणायामपि रसाविभागाश्चत्वारिंशदधिकाष्टशतानि (१४० × ६ = ८४०), मायायाः सप्तमाऽपूर्वस्पर्धकप्रथमवर्गणायामपि रसाविभागाश्चत्वारिंशदधिकाष्टशतानि (१२० × ७ = ८४०), लोभस्याष्टमाऽपूर्वस्पर्धकप्रथमवर्गणायामपि रसाविभागाश्चत्वारिंशदधिकाष्टशतानि (१०५ × ८ = ८४०) । पुनरेतावत्स्वपूर्वस्पर्धकेषु गतेषु प्रथमवर्गणायां रसाविभागा मिथस्तुल्या भवन्ति । तद्यथा—क्रोधस्य दशमा-ऽपूर्वस्पर्धकस्य प्रथमवर्गणायां रसाविभागा अशीत्युत्तरषोडशशती (१६८ × १० = १६८०), मानस्य द्वादशा-ऽपूर्वस्पर्धकस्य प्रथमवर्गणायामपि रसाविभागा अशीत्युत्तरषोडशशती (१४० × १२ = १६८०) । मायायाः पञ्चदशा-ऽपूर्वस्पर्धकस्याद्यवर्गणायामपि रसाविभागा अशीत्युत्तरषोडशशती (१२० × १४ = १६८०) । लोभस्य विंशतितमाऽपूर्वस्पर्धकस्य प्रथमवर्गणायामपि रसाविभागा अशीत्युत्तरषोडशशती (१०५ × १६ = १६८०) । एवमग्रेऽपि ज्ञातव्यम् ॥६७॥

असत्कल्पनामाश्रित्य यन्त्रकम्

अपूर्वस्पर्धकम्	प्रथमवर्गणायां	क्रोधस्य	मानस्य	मायायाः	लोभस्य
प्रथमम्	रसाविभागाः	१६८	१४०	१२०	१०५
द्वितीयम्	”	३३६	२८०	२४०	२१०
तृतीयम्	”	५०४	४२०	३६०	३१५
चतुर्थम्	”	६७२	५६०	४८०	४२०
पञ्चमम्	”	८४०卐	७००	६००	५२५
षष्ठम्	”	१००८	८४०卐	७२०	६३०
सप्तमम्	”	११७६	९८०	८४०卐	७३५
अष्टमम्	”	१३४४	११२०	९६०	८४०卐
नवमम्	”	१५१२	१२६०	१०८०	९४५
दशमम्	”	१६८०*	१४००	१२००	१०५०
एकादशम्	”	१८४८	१५४०	१३२०	११५५
द्वादशम्	”	२०१६	१६८०*	१४४०	१२६०
त्रयोदशम्	”	२१८४	१८२०	१५६०	१३६५
चतुर्दशम्	”	२३५२	१९६०	१६८०*	१४७०
पञ्चदशम्	”	२५२०*	२१००	१८००	१५७५
षोडशम्	”	२६८८	२२४०	१९२०	१६८०*
सप्तदशम्	”	२८५६	२३८०	२०४०	१७८५
अष्टादशम्	”	३०२४	२५२०*	२१६०	१८९०
एकोनविंशतितमम्	”	३१९२	२६६०	२२८०	१९९५

अपूर्वस्पर्धकम्	प्रथमवर्गणाया	क्रोधस्य	मानस्य	मायाया	लोभस्य
विंशतितमम्	रसाविभागाः	३३६०△	२८००	२४००	२१००
एकविंशतितम्	”	३५२८	२९४०	२५२०*	२२०५
द्वा ”	”	३६९६	३०८०	२६४०	२३१०
त्रयो ”	”	३८६४	३२२०	२७६०	२४१५
चतुर्विंशतितम्	”	४०३२	३३६०△	२८८०	२५२०*
पञ्चविंशतितमम्	”	४२००+	३५००	३०००	२६२५
षड् ”	”		३६४०	३१२०	२७३०
सप्त ”	”		३७८०	३२४०	२८३५
अष्टा ”	”		३९२०	३३६०△	२९४०
नव ”	”		४०६०	३४८०	३०४५
त्रिंशत्तम	”		४२००+	३६००	३१५०
एकत्रिंशत्तमम्	”			३७२०	३२५५
द्वात्रिंशत्तमम्	”			३८४०	३३६०△
त्रयस्त्रिंशत्तमम्	”			३९६०	३४६५
चतु ”	”			४०८०	३५७०
पञ्चत्रिंशत्तम्	”			४२००+	३६७५
षट्त्रिंशम्	”				३७८०
सप्तत्रिंशम्	”				३८८५
अष्टात्रिंशम्	”				३९९०
नवत्रिंशम्	”				४०९५
चत्वारिंशत्तमम्	”				४२००+

卐 ㅈ * △ + एतैश्चिह्नैः सूचिताः प्रथमवर्गणा रसाविभागानाश्रित्य मिथस्तुल्या भवन्ति।

अश्वकर्णकरणाद्धाप्रथमसमये-ऽपूर्वस्पर्धकेष्वनुभागनिरूपणं विधाय दीयमानं प्रदेशाग्रमभिधातुमना आह

देइ अपुव्वेसु विसेसूणक्कमेणं दलं तत्रो देइ ।
पुव्वाईअ असंखगुणूणं सेसासु उण विसेसूणं ॥६८॥ (गीतिः)

ददात्यपूर्वेषु विशेषोनक्रमेण दलं ततो ददाति ।
पूर्वादौ असंख्यगुणोनं शेषासु पुनर्विशेषोनम् ॥ इति पदसंस्कारः ।

'देइ' इत्यादि, 'अपूर्वेषु' प्रक्रमाद् अश्वकर्णकरणाद्धाप्रथमसमये-ऽपूर्वस्पर्धकेषु 'दलं' प्रदेशाग्रं 'विशेषोनक्रमेण' विशेषहीनक्रमेण ददाति । इदमुक्तं भवति-अश्वकर्णकरणाद्धाप्रथमसमये सर्वपूर्वस्पर्धकेभ्य उत्कर्षणापकर्षणभागहारेण विभज्यैकभागमात्रं दलं गृहीत्वा गृहीतं भूयः पल्योपमा-ऽसंख्येयभागेन खण्डयित्वा बहुभागप्रमाणं दलं पूर्वस्पर्धकेषु निक्षेप्तुं स्थापयति । शेषमेकभागप्रमितं दलं गृहीत्वा प्रथमपूर्वस्पर्धकप्रथमवर्गणागतदलिकप्रमितं सकला-ऽपूर्वस्पर्धकवर्गणाप्रमाणैश्चयैरधिकं दलं प्रथमा-ऽपूर्वस्पर्धकप्रथमवर्गणायां ददाति, तच्च प्रभूतं भवति, तत एकचयेन हीनं दलं प्रथमा-ऽपूर्वस्पर्धकद्वितीयवर्गणायां ददाति । तत एकचयेन हीनं दलं प्रथमा-ऽपूर्वस्पर्धकतृतीयवर्गणायां ददाति । एवमुत्तरोत्तरवर्गणायामेकैकचयेन हीनं हीनतरं दलं तावत् प्रक्षिपति, यावत् चरमा-ऽपूर्वस्पर्धकस्य चरमवर्गणा । द्वाभ्यां च द्विगुणहानिभ्यां प्रथमा-ऽपूर्वस्पर्धकप्रथमवर्गणागतदले विभक्ते एकचयदलं लभ्यते, तच्चा-ऽनन्ततमभागप्रमाणं भवति । तेनोत्तरोत्तरवर्गणायां विशेषहीनं दलं दीयते इति सिध्यति । उक्तं च कषायप्राभृतचूर्णौ-"पढमसमये णिव्वत्तिज्जमाणगेसु अपुव्वफद्दएसु पुव्वफद्दएहिंतो ओकड्डियूण पदेसग्गमपुव्वफद्दयाणमादिवग्गणाए बहुअं देदि, विदियाए वग्गणाए विसेसहीणं देदि । एवमणंतराणंतरेण गंतूण चरिमाए अपुव्वफद्दयवग्गणाए विसेसहीणं देदि ।" इति । इत्थमनन्तरोपनिधयोत्तरोत्तरवर्गणायामनन्ततमभागमितेनैकैकचयेन हीनं दलं प्रक्षिपति । परम्परोपनिधया पुनः प्रथमा-ऽपूर्वस्पर्धकप्रथमवर्गणातश्चरमा-ऽपूर्वस्पर्धकचरमवर्गणायामसंख्येयभागहीनं प्रदेशाग्रं ददाति, नाधिकम्, निर्वर्त्यमाना-ऽपूर्वस्पर्धकानामेकद्विगुणहानिगतस्पर्धकसत्का-ऽसंख्येयभागकल्पत्वात् ।

अत्र केचित् जघन्यस्पर्धकतः प्रभृति जघन्या-ऽतीत्थापनामात्राणि मन्दानुभागकान्यनन्तानि स्पर्धकानि विमुच्योपरितनपूर्वस्पर्धकेभ्यो-ऽसंख्येयभागप्रमाणं प्रदेशाग्रं गृहीत्वा-ऽपूर्वस्पर्धकानि करोतीत्याहुः; तन्न घटते, तथाहि-उपरितनस्पर्धकगता-ऽसंख्येयभागमितदलादपूर्वस्पर्धकनिर्वृत्तौ स्वीक्रियमाणायामपूर्वस्पर्धकेषु सकलं दीयमानं दलं सत्तागतदलस्या-ऽनन्ततमभागमात्रं स्यात् । कथम् ? इति चेत्, उच्यते--जघन्या-ऽतीत्थापनायामनन्तद्विगुणहानिस्पर्धकानां दर्शनात्

ददातीति सम्बध्यते । तथाहि प्रथमपूर्वस्पर्धकप्रथमवर्गणायां दीयमानदलतस्तद्द्वितीयवर्गणायां विशेषहीनं दलं ददाति, विशेषश्चो-ऽनन्ततमभागो बोद्धव्यः । ततोऽपि तृतीयवर्गणायां विशेषहीनं दलं ददाति । एवंक्रमेण तावद्वक्तव्यम्, यावच्चरमनिक्षेपपूर्वस्पर्धकस्य चरमवर्गणा । उक्तं च कषायप्राभृतचूर्णौ-"तदो विदियाए पुव्वफद्दयवग्गणाए विसेसहीणं देदि, सेसासु सव्वासु पुव्वफद्दयवग्गणासु विसेसहीणं देदि ।" इति ॥६८॥

दीयमानदलमभिधाय साम्प्रतं पूर्वापूर्वस्पर्धकेषु दृश्यमानदलं प्ररूपयति

दिस्सइ दलिअं पुव्वापुव्वेसुं फड्डगेसु गोपुच्छेणं ।
पुव्वाईअ अपुव्वाइत्तो दिस्सइ असंखभागविहीणं ॥६९॥ (आर्यागीतिः)

दृश्यते दलिक पूर्वा-ऽपूर्वेपु स्पर्धकेपु गोपुच्छेन ।
पूर्वादावपूर्वादितो दृश्यते ऽसंख्यभागविहीनम् ॥ ६९ ॥ इति पदसंस्कारः ।

'दिस्सइ' इत्यादि, इह तावत् प्रथममनन्तरोपनिधया दृश्यमानदलं निरूपयति । तत्र दृश्यमानं दलं नाम तदानीं निक्षिप्यमाणदलेन सहितं पुरातनसत्तागतदलम् । अपूर्वस्पर्धकेषु यन्निक्षिप्यमाणं दलं तदेव दृश्यमानं दलं भवति, तत्र पुरातनसत्तागतदलस्याऽभावदर्शनात् । पूर्वस्पर्धकेषु त्विदानीं निक्षिप्यमाणदलेन सहितं पुरातनसत्तागतदलिकं दृश्यमानं भवति । तत्र 'पुव्वापुव्वेसु" ति 'पूर्वापूर्वेषु' पूर्वस्पर्धकेष्वपूर्वस्पर्धकेषु च 'गोपुच्छेन' गोपुच्छाकारेण 'दलिकं' प्रदेशाग्रं दृश्यते । अयं भावः-प्रथमाऽपूर्वस्पर्धकप्रथमवर्गणायां दृश्यमानं दलं प्रभूतं भवति । ततः प्रथमाऽपूर्वस्पर्धकद्वितीयवर्गणायां विशेषहीनं दृश्यमानं दलं भवति, निक्षिप्यमाणदलस्य विशेषहीनत्वात् । अयं हेतुरग्रेऽपि यथास्थानं योजनीयः । ततोऽपि तृतीयवर्गणायां दृश्यमानं दलं विशेषहीनं भवति, एवं विशेषहीनक्रमेण तावद्वक्तव्यम्, यावच्चरमा-ऽपूर्वस्पर्धकस्य चरमवर्गणा । अपूर्वस्पर्धकचरमवर्गणातः प्रथमपूर्वस्पर्धकप्रथमवर्गणायां दृश्यमानं दलं विशेषहीनं भवति, ततो-ऽपि प्रथमपूर्वस्पर्धकद्वितीयवर्गणायां विशेषहीनं दृश्यमानं दलं विद्यते । एवं विशेषहीनं विशेषहीनं तावद्वाच्यम्, यावच्चरमपूर्वस्पर्धकस्य चरमवर्गणा । विशेषश्चा-ऽनन्ततमभागो ज्ञातव्यः । अथ परम्परोपनिधया दृश्यमानं दलं प्ररूपयितुकाम आह - "पुव्वाईअ" इत्यादि, 'पूर्वादौ' पदैकदेशेन पदसमुदायस्य गम्यमानत्वात् पूर्वस्पर्धकादिवर्गणायां प्रथमपूर्वस्पर्धकप्रथमवर्गणायामित्यर्थः, 'असंख्यभागविहीनम्' असंख्येयतमभागेन न्यूनं दलं दृश्यते । उक्तं च कषायप्राभृतचूर्णौ-"तम्हि चेव पढमसमये जं दिस्सदि पदेसग्गं, तमपुव्वफद्दयाणं पढमाए वग्गणाए बहुअं। पुव्वफद्दयआदिवग्गणाए विसेसहीणं ।" इति विशेषश्चात्रा-ऽसंख्येयभागो बोद्धव्यः । कुतः ? इति चेत्, शृणुत अपूर्वस्पर्धकानामेकद्विगुणहानि-

यन्त्रकम्-१३ (चित्रम्-१३)

अश्वकर्णकरणाद्धाप्रथमसमयेऽपूर्वस्पर्धकेषु पूर्वस्पर्धकेषु च दीयमानं दृश्यमानं च दलम्

अन्तरम् । अन्तरम् । अन्तरम्

। प्रथम स्पर्धकम् । । द्वितीय स्पर्धकम् । । तृतीय स्पर्धकम् । । चतुर्थ स्पर्धकम् । । प्रथम पूर्व स्पर्धकम् ।

अ पू र्व स्प र्ध का नि पूर्वस्पर्धकानि →

सङ्केतस्पष्टीकरणम् —

सकलापूर्वस्पर्धकानि वस्तुत एकद्विगुणहानिस्पर्धकानामसंख्येयभागमात्राणि भवन्ति, असत्कल्पनयाऽत्र चत्वारि दर्शितानि ।

१=प्रथमवर्गणा । २=द्वितीयवर्गणा । ३=तृतीयवर्गणा । ४=चतुर्थवर्गणा ।

*=सकलापूर्वस्पर्धकवर्गणाराशिप्रमाणैश्चयैरधिक प्रथमपूर्वस्पर्धकप्रथमवर्गणागतदलिकं प्रथमाऽपूर्वस्पर्धकप्रथमवर्गणायां दीयते, तच्च प्रभूतम्, तत उत्तरोत्तरवर्गणायामेकैकचयेन हीन हीनतरं तावद्दीयते, यावत् चरमापूर्वस्पर्धकस्य चरमवर्गणा । एतत्सर्वम् * इत्यनेन चिह्नेन सूचितम् ।

०००=अनेन चिह्नेन चरमापूर्वस्पर्धकचरमवर्गणात प्रथमपूर्वस्पर्धकप्रथमवर्गणायामसंख्येयगुणहीनं दलं दीयत इति सूचितम् ।

⁓=अनेन चिह्नेन पूर्वस्पर्धकेषु पुरातनसत्तागतं दलं सूचितम्, ★अनेन चिह्नेन सूचितस्य पूर्वस्पर्धकेषु पुरातनसत्तागतदलस्य सत्त्वाच्चरमापूर्वस्पर्धकचरमवर्गणापेक्षया पूर्वस्पर्धकप्रथमवर्गणायामसंख्येयगुणहीन दलं दीयते, अन्यथैकगोपुच्छाकारेण पूर्वापूर्वस्पर्धकेषु दलं न दृश्येत । प्रथमपूर्वस्पर्धकप्रथमवर्गणायां दीयमानं दलं स्वपुरातनसत्तागतदलस्याऽसंख्येयभागप्रमाणं भवति ।

••••=अनेन चिह्नेन प्रथमपूर्वस्पर्धकप्रथमवर्गणात उत्तरोत्तरवर्गणायां विशेषहीनं दलं दीयत इति सूचितम् ।

जघन्यातीत्थापनाया उपरितनेषु स्पर्धकेषु सकलदलं सत्तागतसर्वदलस्या-ऽनन्ततमभागमात्रं संभवति। न च जघन्या-ऽतीत्थापनायामनन्तद्विगुणहानिस्पर्धकान्यसिद्धानीति वाच्यम्, तथाविधाल्पबहुत्व-दर्शनात्। तथाहि एकद्विगुणहानिस्पर्धकतो-ऽनन्तगुणानि स्पर्धकानि जघन्या-ऽतीत्थापनायां भवन्ति। तथा-चाऽत्र कषायप्राभृतचूर्णिः-"**सव्वत्थोवाणि पदेसगुणहाणिट्ठाणंतरफद्दयाणि, जहण्णओ णिक्खेवो अणंतगुणो, जहण्णिया अइच्छावणा अणंतगुणा।**" इति तथैव **कर्मप्रकृतिचूर्णावपि भणितम्-"सव्वत्थोवं पदेसगुणहाणिट्ठाणंतरं। जहण्णओ णिक्खेवो अणंतगुणो। जहण्णिता अतित्थावणा अणंतगुणा।**" तेन जघन्यातीत्थापना-यामेकद्विगुणहानिस्पर्धकतो-ऽनन्तगुणानि स्पर्धकानि भवन्तीतिसिद्धम्।

ननु गृह्णातु सकलसत्तागतदलस्याऽनन्तभागप्रमितं दलमपूर्वस्पर्धकनिर्वृत्तये विरोधा-भावादिति चेद्, उच्यते-अपूर्वस्पर्धकनिर्वृत्तये सकलसत्तागतदलस्या-ऽनन्ततमभागेऽभ्युपगम्यमाने सत्यपूर्वस्पर्धकचरमवर्गणातः पूर्वस्पर्धकप्रथमवर्गणायां दलमनन्तगुणं स्यात्, अपूर्वस्पर्धकार्थं गृही-तस्याऽनन्ततमभागप्रमितदलस्यैकद्विगुणहानिस्पर्धकसत्काऽसंख्येयभागमात्रा-ऽपूर्वस्पर्धकेषु प्रक्षेपात्। न चा-ऽस्त्वपूर्वस्पर्धकचरमवर्गणातः पूर्वस्पर्धकप्रथमवर्गणायामनन्तगुणं दलमिति वाच्यम्, विरोधोपलम्भात्। तथाहि-यद्यपूर्वस्पर्धकचरमवर्गणातः पूर्वस्पर्धकप्रथमवर्गणायां दलिकमनन्त-गुणं स्वीक्रियेत, तर्हि पूर्वाऽपूर्वयोः स्पर्धकयोर्दृश्यमानदलमेकगोपुच्छाकारेण न स्यात्, अपूर्व-स्पर्धकचरमवर्गणातः पूर्वस्पर्धकप्रथमवर्गणायां दृश्यमानदलस्या-ऽनन्तगुणत्वप्रसङ्गात्। प्रतिपाद-यिष्यते च एकोनसप्ततिमगाथया पूर्वापूर्वस्पर्धकयोर्दृश्यमानदलमेकगोपुच्छाकारेण, तेन सह विरोधः स्यादित्यर्थः। किञ्च कषायप्राभृतचूर्णौ अपूर्वस्पर्धकप्रथमवर्गणातो-ऽपि पूर्वस्पर्धकप्रथम-वर्गणायां दलं विशेषहीनमेवाऽभिहितम्, तथा चाऽत्र कषायप्राभृतचूर्णिः- "**तम्हि चेव पढमसमए जं दिस्सदि पदेसग्गं, तमपुव्वफद्दयाणं पढमाए वग्गणाए बहुअं, पुव्व-फद्दयआदिवग्गणाए विसेसहीणं।**" इति। तेन सहा-ऽपि विरोधः स्यात्।

केचित्तु प्रथमपूर्वस्पर्धकप्रथमवर्गणाया अधस्तादनन्तस्पर्धकान्यन्तरयित्वा-ऽपूर्वस्पर्धकानि निर्वर्तयति, अन्तरितस्पर्धकानि पुनः शून्यरूपेण परित्यज्य न निर्वर्तयति। तावन्ति स्पर्धकान्यतीत्था-पनात्वेन मन्तव्यानीत्याहुः, तदपि नातिक्षोदक्षमम्। तथा-ऽभ्युगमेऽपूर्वस्पर्धकार्थं गृह्यमाणस्या-ऽपकर्षितदलसत्का-ऽसंख्येयभागमितस्य दलस्या-ऽतीत्थापना सूपपद्येत। किन्त्वपकर्षितदलसत्का-ऽसंख्येयबहुभागप्रमितदलिकस्य पूर्वस्पर्धकेषु निक्षिप्यमाणस्याऽतीत्थापना घटां कथमृच्छेत्? तेन तथास्वाभाव्यादेवा-ऽस्मिन् प्रस्तावेऽनुभागाऽपवर्तनाऽतीत्थापनां विनाऽपि संभवति। तत्त्वं तु बहुश्रुता विदन्ति।

इत्थमविशेषेणसत्तागतसर्वपूर्वस्पर्धकेभ्यो-ऽसंख्येयभागमात्रं दलं गृहीत्वा-ऽपूर्वस्पर्धकानि निर्वर्तयति।

अथ पूर्वस्पर्धकेषु दीयमानं दलं प्ररूपयिषुराह—'तत्तो' इत्यादि, 'ततः' अपूर्वस्पर्धकतः परं चरमाऽपूर्वस्पर्धकचरमवर्गणातः परमित्यर्थः 'पूर्वादौ' पूर्वस्पर्धकादिवर्गणायां प्रथमपूर्वस्पर्धकप्रथमवर्गणायामित्यर्थः, 'असंख्यगुणोनम्' असंख्येयगुणहीनं दलं ददाति। इदमुक्तं भवति-चरमा-ऽपूर्वस्पर्धकचरमवर्गणायां यावद् दलं ददाति, ततोऽसंख्येयगुणहीनं प्रथमपूर्वस्पर्धकप्रथमवर्गणायां ददाति। किं कारणम्? इति चेद्, उच्यते—पूर्वस्पर्धकप्रथमवर्गणागतदलं सार्धद्विगुणहान्या गुण्यते, तदा सत्तागतसकलदलं प्राप्यते। सत्तागतसर्वदलमुत्कर्षणापकर्षणभागहारेण विभज्यैकभागप्रमाणदलमुत्किरति। उत्कीर्णदलं पुनः पल्योपमा-ऽसंख्येयभागेन भक्त्वैकभागप्रमाणदलमपूर्वस्पर्धकेषु विशेषहीनक्रमेण ददत् चरमा-ऽपूर्वस्पर्धकचरमवर्गणायां पूर्वस्पर्धकप्रथमवर्गणागतदलिकत एकचयेनाऽधिकं ददाति। शेषा-ऽसंख्येयबहुभागप्रमाणं दलं विशेषहीनक्रमेण सर्वपूर्वस्पर्धकवर्गणासु ददाति, तत्र प्रथमपूर्वस्पर्धकप्रथमवर्गणायां यावद्दलं ददाति, तावद्दलं यदीतरवर्गणास्वपि दद्यात्, तर्हि सार्धद्विगुणहानिप्रमाणवर्गणासु गतासूत्कीर्णदलस्याऽसंख्येयबहुभागप्रमाणं दलं परिसमाप्याद् इति कृत्वोत्कीर्णदलस्या-ऽसंख्येयबहुभागप्रमितदलं सार्धद्विगुणहान्या विभज्यते, तदा य एक भागो लभ्यते, तावन्मात्रं दीयमानं दलं प्रथमपूर्वस्पर्धकप्रथमवर्गणायां भवति। तच्च प्रथमपूर्वस्पर्धकप्रथमवर्गणाप्रतिबद्धप्राक्तनसत्तागतदलस्या-ऽसंख्येयभागमात्रं भवति। तेन प्रथमपूर्वस्पर्धकप्रथमवर्गणायां दीयमानदलमपूर्वस्पर्धकचरमवर्गणातो-ऽसंख्येयगुणहीनं भवति, चरमा-ऽपूर्वस्पर्धकचरमवर्गणायां दीयमानदलस्यैकचयेनाऽधिकपूर्वस्पर्धकप्रथमवर्गणागतदलप्रमितत्वात् प्रथमपूर्वस्पर्धकप्रथमवर्गणायां च दीयमानदलस्य स्वपुरातनसत्तागतदलसत्का-ऽसंख्येयभागप्रमाणत्वात्। अभ्यधायि च कषायप्राभृतचूर्णौ—"तदो चरिमादो अपुव्वफद्दयवग्गणादो पढमस्स पुव्वफद्दयस्स आदिवग्गणाए असंखेज्जगुणहीणं देदि।" इति।

न्यास

सत्तागतदलम् = प्रथमपूर्वस्पर्धकप्रथमवर्गणागतदलम् × सार्धद्विगुणहानि

उत्कीर्यमाणदलम = सत्तागतदलम् उत्कर्षणापकर्षणभागहार

अपूर्वस्पर्धकार्थं गृह्यमाण दलम् = उत्कीर्यमाणदलम् पल्योपमा-ऽसंख्येयभाग

पूर्वस्पर्धकेषु निक्षिप्यमाण दलम् = उत्कीर्यमाणदलम् अपूर्वस्पर्धकतया परिणमनाय गृहीतदलम्

प्रथमपूर्वस्पर्धकप्रथमवर्गणाया दीयमान दलम् = पूर्वस्पर्धकेषु निक्षिप्यमाण दलम् सार्धद्विगुणहानि

= स्वसत्तागतदलम् असंख्यातम्

चरमा-ऽपूर्वस्पर्धकचरमवर्गणाया दीयमानदलम् = आद्यपूर्वस्पर्धकप्रथमवर्गणादलम् + एकचयः।

∴ चरमा-ऽपूर्वस्पर्धकचरमवर्गणायां दीयमानदलतः प्रथमपूर्वस्पर्धकप्रथमवर्गणायामसंख्येयगुणहीन दल ददाति।

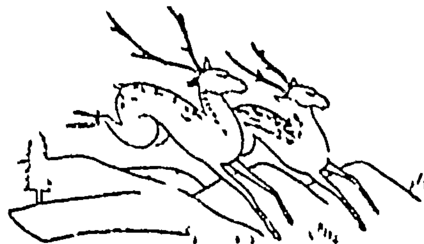
एतर्हि पूर्वस्पर्धकानां शेषवर्गणासु दलिकनिक्षेपं वक्तुकाम आह 'सेसासु' इत्यादि, 'शेषासु' प्रथमपूर्वस्पर्धकप्रथमवर्गणां वर्जयित्वा शेषासु पूर्वस्पर्धकानां सर्ववर्गणासु पुनर्विशेषोनं दलं

अनुभागापेक्षयाऽनन्तरोपनिधा-प्रथमापूर्वस्पर्धकप्रथमवर्गणायामनुभाग स्तोक, ततस्तद्द्वितीयवर्गणायामेकरसाविभागेनाऽधिक., एवमुत्तरोत्तरवर्गणायां वाच्य', नवरं यत्र द्वयो स्पर्धकयो सन्धिर्भवति, तत्राऽधस्तनस्पर्धकचरमवर्गणात उपरितनस्पर्धकप्रथमवर्गणायामनुभाग सर्वजीवानन्तगुणरसाविभागैरधिको भवति। यत्र च पूर्वापूर्वस्पर्धकयो सन्धिर्भवति, तत्राऽपूर्वस्पर्धकचरमवर्गणात पूर्वस्पर्धकप्रथमवर्गणायामनुभागोऽनन्तगुणो भवति।

अनुभागापेक्षया परम्परोपनिधा–प्रथमापूर्वस्पर्धकस्य प्रथमवर्गणातो द्वितीयापूर्वस्पर्धकस्य प्रथमवर्गणायां रसाविभागा द्विगुणा भवन्ति, तृतीयस्पर्धकप्रथमवर्गणायां त्रिगुणा., एवं यतिसख्य स्पर्धकम्, तत्सख्यगुणा रसाविभागा प्रथमस्पर्धकप्रथमवर्गणारसाऽविभागापेक्षया भवन्ति।

दृश्यमानदलापेक्षया-ऽनन्तरोपनिधा दृश्यमानदलमपूर्वस्पर्धकस्य प्रथमवर्गणायां प्रभूत दल भवति, ततो द्वितीयवर्गणायां विशेषहीनम्, एवमुत्तरोत्तरवर्गणायां तावद्वाच्यम्, यावद् चरमपूर्वस्पर्धकस्य चरमवर्गणा।

दृश्यमानदलापेक्षया परम्परोपनिधा–प्रथमापूर्वस्पर्धकत आरभ्य यावत् सकलापूर्वस्पर्धकानामसंख्येयतमभागकल्पान्यनन्तान्यपूर्वस्पर्धकानि व्यतिक्रम्यन्ते, तावदपूर्वस्पर्धकप्रथमवर्गणातो कस्याञ्चिदपि वर्गणायामनन्तभागहीन दलं दृश्यते, ततः पर सर्वापूर्वस्पर्धकप्रथमवर्गणायां प्रथमपूर्वस्पर्धकप्रथमवर्गणायां चाऽसख्येयभागहीन दल दृश्यते।



स्पर्धकानामसंख्येयभागमात्रत्वाद् अपूर्वस्पर्धकप्रथमवर्गणात एकद्विगुणहानिस्पर्धकानामसंख्येयभागं व्यतिक्रम्य पूर्वस्पर्धकप्रथमवर्गणाऽवतिष्ठते । यद्यपूर्वस्पर्धकप्रथमवर्गणात एकद्विगुणहानिगत-स्पर्धकान्यतिक्रम्येरन् , तर्ह्यपूर्वस्पर्धकप्रथमवर्गणातो द्विगुणहीनाः प्रदेशा भवेयुरर्धाः स्युरित्यर्थः । अत्र त्वेकद्विगुणहानिस्पर्धकानामसंख्येयभाग एव व्यतिक्रान्तः, तेनाऽपूर्वस्पर्धकप्रथमवर्गणातः पूर्वस्पर्धकप्रथमवर्गणायामसंख्येयभागेन हीनं दलं तिष्ठति । इदमत्रा-ऽवधेयम्-न केवलमपूर्व-स्पर्धकप्रथमवर्गणातः पूर्वस्पर्धकप्रथमवर्गणायामसंख्येयभागहीनं दलं दृश्यते, अपि तु प्रथमाऽ-पूर्वस्पर्धकतो यावद् सकलाऽपूर्वस्पर्धकानां तत्प्रायोग्याऽसंख्येयतमभागकल्पान्यपूर्वस्पर्धकानि न व्यतिक्रम्यन्ते, तावदपूर्वस्पर्धकप्रथमवर्गणातो-ऽनन्तभागहीनं दलं दृश्यते, तदुपरितनसर्वाऽपूर्वस्पर्धक-वर्गणायामप्यसंख्येयभागहीनं दलं दृश्यते । पश्यन्तु पाठका यन्त्रकम्-१२ । इति ॥ ६९ ॥

अश्वकर्णकरणाद्धाप्रथमसमये-ऽपूर्वस्पर्धकानि प्ररूप्या-ऽश्वकर्णकरणाद्धाप्रथमसमयेऽनुभाग-बन्धोदयौ प्रतिपिपादयिषुराह

पढमसमये अपुव्वाणि फड्डगाइं अणंतभागमित्ताइं ।
हेट्ठाणि पराण उदिण्णाइं वंधो तहेवऽणंतगुणूणो ॥७०॥ (आर्यागीतिः)

प्रथमसमये-ऽपूर्वाणि स्पर्धकान्यनन्तभागमितानि ।
अधस्तनानि परेषामुदीर्णानि वन्धस्तथैवाऽनन्तगुणोनः ॥ ७० ॥ इति पदसंस्कारः ।

'**पढमसमये**' इत्यादि, 'प्रथमसमये' अश्वकर्णकरणाद्धाप्रथमसमये 'अपूर्वाणि' अपूर्व-स्पर्धकानि 'परेषां' पूर्वस्पर्धकानां च 'अनन्तभागमितानि' अनन्ततमभागकल्पान्यधस्तनानि स्पर्ध-कान्युदीर्णानि भवन्ति । इदमुक्तं भवति—अश्वकर्णकरणाद्धायाः प्रथमसमयेन क्रियमाणसकला-ऽपूर्व-स्पर्धकेभ्यः कियन्तश्चित् प्रदेशास्तदानीमेवोदीरणाप्रयोगेणोदयस्थितौ निक्षिप्यन्ते, न सर्वे प्रदेशाः । एवं पूर्वस्पर्धकानामनन्ततमभागमात्राऽधस्तनाल्पानुभागकपूर्वस्पर्धकेभ्यः कियन्तश्चित् प्रदेशा उदीर-णाप्रयोगेणोदयस्थितौ प्रक्षिप्यन्ते, न तु तदुपरितनपूर्वस्पर्धकेभ्यः, नवा-ऽधस्तनपूर्वस्पर्धकेभ्यः सर्वे प्रदेशाः । इत्थं सकलाऽपूर्वस्पर्धकानि पूर्वस्पर्धकानां चाऽ-नन्ततमभागमात्राणि सर्वाण्यधस्तनपूर्वस्पर्ध-कानि स्वस्वरूपेणोदयन्ति । उक्तं च **कषायप्राभृतचूर्णौ** "**उदयपरूवणा, जहा-पढमसमये चेव अपुव्वफद्दयाणि उदिण्णाणि च अणुदिण्णाणि च, पुव्वफद्दयाणं पि आदीदो अणंतभागो उदिण्णो च अणुदिण्णो च** ।" इति । एतेषामक्षराणामयं भावः-अश्वकर्ण-करणाद्धाप्रथमसमये परिणम्यमानसर्वा-ऽपूर्वस्पर्धकेभ्यः कियन्तश्चित् प्रदेशा उदीरणाप्रयोगेणोदय-स्थितौ प्रक्षिप्यन्ते, अपूर्वस्पर्धकानां द्वितीयस्थितावस्थानात्, शेषाश्च न प्रक्षिप्यन्ते । इहोदये निक्षिप्यमाणानपूर्वस्पर्धकसत्कप्रदेशानाश्रित्य चूर्णिकारैरपूर्वस्पर्धकान्युदीर्णानीत्युच्यते, अनिक्षि-

प्यमाणानपूर्वस्पर्धकप्रदेशानवलम्ब्या-ऽपूर्वस्पर्धकान्यनुदीर्णानीति व्यवह्रियते । तथा पूर्वस्पर्धकाना-मनन्ततमभागमात्रपूर्वस्पर्धकेभ्यः कियन्तश्चित् प्रदेशा उदये निक्षिप्यन्ते, तेना-ऽनन्ततमभाग-मितानि पूर्वस्पर्धकान्युदीर्णानीति व्यपदिश्यते, तेभ्यश्च शेषाः प्रदेशा उदये न निक्षिप्ता', तेन तान्यनुदीर्णान्यपि व्यवह्रियन्ते ।

अधस्तनाऽनन्ततमभागमात्रपूर्वस्पर्धकानि वर्जयित्वा शेषाणि पूर्वस्पर्धकान्यनुदीर्णानि ज्ञातव्यानि, तेभ्य एको-ऽपि प्रदेश उदयस्थितौ स्वस्वरूपेण न प्रक्षिप्यते इत्यर्थः । उक्तं च **कपायप्राभृतचूर्णौ "उवरि अणंता भागा अणुदिण्णा ।"** इति । साम्प्रतमनुभाग-बन्धमतिदिदिक्षुराह–'**बंधो तहेव**' त्ति 'बन्धस्तथैव' यथा सर्वाण्यपूर्वस्पर्धकान्यनन्तभागप्रमा-णानि च पूर्वस्पर्धकान्युदीर्णानि भवन्ति, तथैव सर्वाण्यपूर्वस्पर्धकान्येकस्थानकपूर्वस्पर्धकानां चा-ऽनन्ततमभागप्रमाणानि पूर्वस्पर्धकानि बध्यन्ते, अनुभागमाश्रित्य सर्वाऽपूर्वस्पर्धकैरनन्ततम-भागप्रमाणपूर्वस्पर्धकैश्च सदृशानि स्पर्धकानि बध्यन्ते इत्यर्थः । उक्तं च **कपायप्राभृतचूर्णौ "बंधेण णिव्वत्तिज्जंति अपुव्वफद्दयं पढममादिं कादूण जाव लदासमाणफद्दयाण-मणंतभागो त्ति ।"** इति '**तहेव**' इत्यनेनोदयातिदेशं कृत्वा बन्धे उदयतो यो विशेषः, तं दर्शयति '**अणंतगुणूणो**' त्ति 'अनन्तगुणोनः' बन्ध उदयतो-ऽनन्तगुणहीनो भवति, उदयमान-स्पर्धकेभ्यो बध्यमानस्पर्धकान्यनन्तगुणहीनानि भवन्तीत्यर्थः ॥ ७० ॥

अश्वकर्णकरणाद्धाप्रथमसमयमधिकृत्य प्ररूपणां कृत्वा द्वितीयादिसमयेष्वपूर्वस्पर्धकानि दर्शयति

अणुसमयमसंखगुणं दलिअं घेत्तूण पकुणेइ ।
पडिसमयमपुव्वाणि खलु असंखेज्जगुणहीणाइं ॥७१॥ (उपगीतिः)

अनुसमयमसंख्यगुणं दलिकं गृहीत्वा प्रकरोति ।
प्रतिसमयमपूर्वाणि खल्वसंख्येयगुणहीनानि ॥७१॥ इति पदसंस्कारः ।

'**अणुसमयमसंखगुणं**' त्ति, अनुसमयमसंख्यगुणं 'दलिकं' प्रदेशाग्रं 'गृहीत्वा' अपकृष्य प्रतिसमयमसंख्येयगुणहीनानि 'अपूर्वाणि' अपूर्वस्पर्धकानि खलु 'प्रकरोति' निर्वर्तयति । इदमुक्तं भवति-अश्वकर्णकरणाद्धाप्रथमसमये यान्यपूर्वस्पर्धकानि कृतानि, ततो द्वितीयसमयेऽसंख्येयगुणहीनान्यन्यान्यपूर्वस्पर्धकानि निर्वर्तयति, दलिकं तु प्रथम-समयतो द्वितीयसमये-ऽसंख्येयगुणमपकर्षति ।' ततस्तृतीयसमये-ऽसंख्येयगुणहीनान्यन्यान्यपूर्व-स्पर्धकानि निर्वर्तयति, दलिकं त्वसंख्येयगुणमपकर्षति । एवमुत्तरोत्तरसमयेऽसंख्येयगुणं दलिकमप-कृष्या-ऽसंख्येयगुणहीनान्यन्यान्यपूर्वस्पर्धकानि निर्वर्तयति । न्यगादि च **कषायप्राभृतचूर्णौ**

"पढमसमए अपुव्वफद्दयाणि णिव्वत्तिदाणि बहुआणि । विदियसमए जाणि अपुव्वाणि अपुव्वफद्दयाणि कदाणि, ताणि असंखेज्जगुणहीणाणि । तदियसमए अपुव्वाणि अपुव्वफद्दयाणि कदाणि,ताणि असंखेज्जगुणहीणाणि । एवं समए समए जाणि अपुव्वाणि अपुव्वफद्दयाणि कदाणि,ताणि असंखेज्जगुणहीणाणि ।" इति ॥७१॥

अथा-ऽश्वकर्णकरणाद्धाया द्वितीयादिसमयेषु दीयमानं दृश्यमानं च दलं विवर्णयितुकामो भणति

तक्कालिएसु देइ अपुव्वेसु दलं विसेसूणं ।
तो पुव्विल्लअपुव्वादीअ असंखगुणहीणदलं ॥७२॥ (उपगीतिः)
तत्तो विसेसहीणकमेणं जा पुव्वचरिमाआ ।
दिस्सइ दलिअं पुव्वापुव्वेसु विसेसहीणकमं ॥७३॥ (उपगीतिः)

तात्कालिकेषु ददात्यपूर्वेषु दलं विशेषोनम् ।
तत प्राक्तना-ऽपूर्वादौ असंख्यगुणहीनदलम् ॥ ७२ ॥
ततो विशेषहीनक्रमेण यावत्पूर्वचरमा ।
दृश्यते दलिक पूर्वापूर्वेषु विशेषहीनक्रमम् ॥ ७३ ॥ इति पदसंस्कार ।

'तक्कालिएसु' इत्यादि, 'तात्कालिकेषु' तस्मिन् काले भवानि तात्कालिकानि "व्यादिभ्यो णिकेकणौ" (सिद्धहेम०६-३-३४) इति सूत्रेण णिकप्रत्ययो वा इकण्प्रत्ययो वा, तेषु, तत्कालभाविष्वित्यर्थः, 'अपूर्वेषु' अपूर्वस्पर्धकेषु 'दलं' प्रदेशाग्रं 'विशेषोनं' विशेषहीनं 'ददाति' निक्षिपति । 'ततः' तात्कालिका-ऽपूर्वस्पर्धकचरमवर्गणातः 'प्राक्तना-ऽपूर्वादौ' प्राक्तनसमयकृतापूर्वस्पर्धकप्रथमवर्गणायामसंख्येयगुणहीनदलं ददातीति सम्बध्यते । 'ततः' प्रथमसमयकृता-ऽपूर्वस्पर्धकप्रथमवर्गणातो विशेषहीनक्रमेण यत्तदोः मिथः सापेक्षत्वात् तावद् ददाति 'यावत्पूर्वचरमा' यावत् पूर्वस्पर्धकचरमवर्गणा । भावार्थः पुनरयम्-अश्वकर्णकरणाद्धाद्वितीयसमये प्रथमसमयतो-ऽसंख्येयगुणं दलमपकृष्या-ऽसंख्येयगुणहीनान्यन्यान्यपूर्वस्पर्धकानि निर्वर्तयति । तत्र द्वितीयसमये निर्वर्त्यमानप्रथमा-ऽपूर्वस्पर्धकप्रथमवर्गणायां प्रभूतं दलिकं ददाति, ततो द्वितीयवर्गणायां विशेषहीनं दलिकं निक्षिपति, ततोऽपि तृतीयवर्गणायां विशेषहीनं दलं ददाति । एवं क्रमेण तावद् ददाति, यावद् द्वितीयसमयनिर्वर्त्यमानचरमा-ऽपूर्वस्पर्धकस्य चरमवर्गणा । द्वितीयसमयनिर्वर्त्यमान-चरमा-ऽपूर्वस्पर्धकचरमवर्गणातः प्रथमसमयकृतप्रथमा-ऽपूर्वस्पर्धकस्य प्रथमवर्गणायामसंख्येयगुणहीनं दलिकं ददाति, ततो द्वितीयवर्गणायां विशेषहीनं ददाति, ततस्तृतीयवर्गणायां विशेषहीनं ददाति । एवं विशेषहीनक्रमेण तावद् ददाति, यावत् प्रथमसमय-

कृतचरमाऽपूर्वस्पर्धकस्य चरमवर्गणा। ततः प्रथमपूर्वस्पर्धकस्य प्रथमवर्गणायां विशेषहीनं दलिकं निक्षिपति, ततोऽपि द्वितीयवर्गणायां विशेषहीनं ददाति। एवं विशेषहीनक्रमेण तावद् निक्षिपति, यावच्चरमनिक्षेपपूर्वस्पर्धकस्य चरमवर्गणा। उक्तं च कषायप्राभृतचूर्णौ-"विदियसमये अपुव्वफद्दएसु पदेसग्गस्स दिज्जमाणयस्स सेढिपरूवणं वत्तइस्सामो, तं जहा-विदियसमए अपुव्वफद्दयाणमादिवग्गणाए पदेसग्गं बहुअं दिज्जदि, विदियाए वग्गणाए विसेसहीणं। एवमणंतरोवणिधाए विसेसहीणं दिज्जदि ताव, जाव जाणि विदियसमए अपुव्वाणि अपुव्वफद्दयाणि कदाणि, तदो चरिमादो वग्गणादो पढमसमए जाणि अपुव्वफद्दयाणि कदाणि, तेसिमादिवग्गणाए दिज्जदि पदेसग्गमसंखेज्जगुणहीणं। तदो विदियाए वग्गणाए विसेसहीणं दिज्जदि, तत्तो पाए अणंतरोवणिधाए सव्वत्थ विसेसहीणं दिज्जदि। पुव्वफद्दयाणमादिवग्गणाए विसेसहीणं दिज्जदि। सेसासु वि विसेसहीणं दिज्जदि।" इति। यथा द्वितीयसमये दीयमानदलप्ररूपणा कृता, तथा शेषसमयेष्वपि कर्तव्या, यावदश्वकर्णकरणाद्धाचरमसमयः।

अथ द्वितीयादिसमयेषु दृश्यमानदलं प्ररूपयति-'दिस्सइ' इत्यादि, तत्र 'पुव्वापुव्वेसु' 'त्ति' 'पूर्वापूर्वेषु' पूर्वस्पर्धकेष्वपूर्वस्पर्धकेषु च विशेषहीनक्रमं दलिकं दृश्यते। तथाहि-अश्वकर्णकरणाद्धाया द्वितीयसमये निर्वर्त्यमानप्रथमा-ऽपूर्वस्पर्धकस्य प्रथमवर्गणायां प्रभूतं दलिकं दृश्यते, ततो द्वितीयवर्गणायां विशेषहीनं दृश्यते। ततोऽपि तृतीयस्यां विशेषहीनम्। एवं विशेषहीनक्रमेण तावद् वाच्यम्, यावद् द्वितीयसमये निवर्त्यमानचरमस्पर्धकस्य चरमवर्गणा। ततः प्रथमसमयकृतप्रथमाऽपूर्वस्पर्धकस्य प्रथमवर्गणायां विशेषहीनं दलिकं दृश्यते। ततो द्वितीयवर्गणायां विशेषहीनं दृश्यते। एवं विशेषहीनक्रमेण तावदभिधातव्यम्, यावच्चरमपूर्वस्पर्धकस्य चरमवर्गणा। अभ्यधायि च कषायप्राभृतचूर्णौ-"विदियसमये अपुव्वफद्दएसु वा पुव्वफद्दएसु वा एक्केक्किस्से वग्गणाए जं दिस्सदि पदेसग्गं, तमपुव्वफद्दयआदिवग्गणाए बहुअं। सेसासु अणंतरोवणिधाए सव्वासु विसेसहीणं।" इति। अनेन क्रमेण दृश्यमानदलं तावन्निगदितव्यम्, यावदश्वकर्णकरणाद्धायाश्चरमसमयः।

अश्वकर्णकरणाद्धायामनेन विधिना ऽपूर्वस्पर्धकानि निर्वर्तयतो जीवस्य प्रथमेऽनुभागखण्डे विनष्टे लोभ-माया मान-क्रोधानां यथाक्रममनुभागसत्कर्माऽनन्तगुणं भवति। उक्तं च कषायप्राभृतचूर्णौ "जहा तदियसमए एस कमो ताव, जाव पढमअणुभागखंडयं चरिमसमयअणुक्किण्णं त्ति, तदो से काले अणुभागसंतकम्मे णाणत्तं। तं जहा-लोभे अणुभागसंतकम्मं थोवं, मायाए अणुभागसंतकम्ममणंतगुणं, माणस्साणुभागसंतकम्ममणंतगुणं, कोहस्साणुभागसंतकम्ममणंतगुणं।" इति। एतच्च द्वासप्ततितमगाथया प्राग् भावितम् ॥७३॥

अथा-ऽश्वकर्णकरणाद्धायां प्रथमे-ऽनुभागखण्डे विनष्टे-ऽष्टादशपदानामल्पबहुत्वमभिधित्सुराह

इगखंडे पुण्णे-ऽप्पाबहुगं अट्ठारसपयाणं ।
कोहादीण अपुव्वाइं फड्डाइं विसेसअहियाइं ॥७४॥ (उद्गीतिः)
तत्तो एगदुगुणहाणिफड्डगाइं असंखगुणिआणि ।
तत्तो अणंतगुणिआ इगफड्डगवग्गणा होन्ति ॥७५॥
तत्तो य वग्गणा कोहअपुव्वगफड्डगाणऽणंतगुणा ।
माणादीण अपुव्वगफड्डाणं वग्गणा विसेसऽहिआ ॥७६॥ (गीतिः)
लोहस्स पुव्वफड्डाणि अणंतगुणाणि वग्गणा सिं य ।
एवं जाव अणंतगुणा कोहस्स खलु वग्गणा होंति ॥७७॥ (गीतिः)

एकखण्डे पूर्णे-ऽल्पबहुत्वमष्टादशपदानाम् ।
क्रोधादीनामपूर्वाणि स्पर्धकानि विशेषाधिकानि ॥७४॥
तत एकद्विगुणहानिस्पर्धकान्यसंख्यगुणितानि ।
तेभ्यो-ऽनन्तगुणिता एकस्पर्धकवर्गणा भवन्ति ॥७५॥
ताभ्यश्च वर्गणा क्रोधा-ऽपूर्वस्पर्धकानामनन्तगुणाः ।
मानादीनामपूर्वस्पर्धकानां वर्गणा विशेषाधिकाः ॥७६॥
लोभस्य पूर्वस्पर्धकान्यनन्तगुणानि वर्गणास्तेषां च ।
एवं यावदनन्तगुणाः क्रोधस्य खलु वर्गणा भवन्ति ॥७७॥ इति पदसंस्कारः ॥

'इगखंडे' इत्यादि, 'एकखण्डे' "भामा सत्यभामा" इति न्यायेनाऽत्र खण्डशब्देना-ऽनुभागखण्डं ग्राह्यम्, ततश्चायमर्थः अश्वकर्णकरणाद्धायामेकस्मिन्ननुभागखण्डे 'पूर्णे' निष्ठां गते घातिते इत्यर्थः, 'अष्टादशपदानाम्' अष्टादशसंख्यकानां पदानां क्रोधा-ऽपूर्वस्पर्धकादिरूपाणाम् 'अल्पबहुत्वं' स्तोकबहुत्वं भणितव्यमिति शेषः । तदेव दर्शयति—'कोहादीण' इत्यादि, 'क्रोधादीनाम्' क्रोधमानमायालोभरूपाणां 'अपूर्वाणि' प्रागुक्तस्वरूपाण्यपूर्वाणि स्पर्धकानि विशेषाधिकानि भवन्ति, विशेषाधिकक्रमेण तेषां निर्वृत्तेरुक्तत्वात् । एतदुक्तं भवति (१) संज्वलनक्रोधस्या-ऽपूर्वस्पर्धकानि सर्वस्तोकानि, (२) ततः संज्वलनमानस्या-ऽपूर्वस्पर्धकानि विशेषाधिकानि, (३) ततः संज्वलनमायाया अपूर्वस्पर्धकानि विशेषाधिकानि भवन्ति (४) ततो-ऽपि संज्वलनलोभस्या-ऽपूर्वस्पर्धकानि विशेषाधिकानि । (५) 'तत्तो' इत्यादि, 'तेभ्यः' संज्वलनलोभस्या-ऽपूर्वस्पर्धकेभ्य एकद्विगुणहानिस्पर्धकानि 'असंख्यगुणितानि' असंख्येयगुणानि भवन्तीत्यर्थः, किं कारणम् ?

इति चेत्, उच्यते-एकद्विगुणहानिस्पर्धकानामसंख्येयभागमितान्येवा-ऽपूर्वस्पर्धकानि करोति । तेन पूर्वपदत इदं पदमसंख्येयगुणं सिध्यति । गुणकारश्च पल्योपमप्रथमवर्गमूलस्या-ऽसंख्येयभागकल्पो ज्ञातव्यः । (६) 'तत्तो' इत्यादि, 'तेभ्यः' एकप्रदेशद्विगुणहानिगतस्पर्धकेभ्य एकस्पर्धकवर्गणा 'अनन्तगुणिताः' अनन्तगुणा भवन्ति । अत्र स्पर्धकशब्देन पूर्वस्पर्धकमपूर्वस्पर्धकं वा ग्राह्यम्, उभयत्राऽपि वर्गणानां समानत्वात् । यथैकद्विगुणहानिस्पर्धकान्यभव्येभ्योऽनन्तगुणानि सिद्धानां चाऽनन्तभागमितानि, तथैवैकस्मिन् स्पर्धके वर्गणा अपि अभव्येभ्यो-ऽनन्तगुणाः सिद्धानां चाऽनन्तभागकल्पा भवन्ति । किन्त्वेकद्विगुणहानिगतस्पर्धकत एकस्पर्धकगतवर्गणा अनन्तगुणा भवन्तीत्येतदनेनाऽल्पबहुत्वेन ज्ञापितम् ।

(७) 'तत्तो य' इत्यादि, 'ताभ्यश्च' एकस्पर्धकगतवर्गणाभ्यः 'कोहअपुव्वगफड्डुगाणं' ति, अपूर्वशब्दात् "'कश्च"(सिद्धहेम० ८-२-१)इत्यनेन प्राकृतसूत्रेण स्वार्थे कप्रत्ययः, एवमुत्तरत्रा-ऽपि, 'क्रोधाऽपूर्वस्पर्धकानां' संज्वलनक्रोधसत्का-ऽपूर्वस्पर्धकानां वर्गणा अनन्तगुणा भवन्ति, चकारः 'तत्तो' इत्यस्योत्तरत्राऽनुवृत्त्यर्थः । पूर्वं ह्येकस्पर्धकगतवर्गणा उक्ताः, अस्मिन् पदे सकलाऽपूर्वस्पर्धकगतवर्गणा भण्यन्ते, अपूर्वस्पर्धकानि त्वेकद्विगुणहानिगतस्पर्धकानामसंख्येयभागप्रमितानि गणनातश्चा-ऽनन्तानि क्रियन्ते । तेन पूर्वपदत इदं पदमनन्तगुणं भवति । गुणकारश्चाऽभव्येभ्योऽनन्तगुणः सिद्धानां चाऽनन्तभागमात्रो वोद्धव्यः । स पुनरेकप्रदेशद्विगुणहानिगतस्पर्धकानामसंख्येयभागमात्रो भवति । ताभ्यः-क्रोधस्या-ऽपूर्वस्पर्धकगतवर्गणाभ्यः 'माणादीण' इत्यादि, 'मानादीनां' मान-माया-लोभलक्षणानां क्रमेण सकलानामपूर्वस्पर्धकानां वर्गणा विशेषाधिका भवन्ति, क्रोधतो मानादीनामपूर्वस्पर्धकानां क्रमेण विशेषाधिकत्वात्, सर्वत्रैकस्मिन् स्पर्धके वर्गणानां समानत्वाच्च ।

तथाहि-(८) संज्वलनक्रोधस्य सकला-ऽपूर्वस्पर्धकगतवर्गणातः संज्वलनमानस्य सकला-ऽपूर्वस्पर्धकगतवर्गणा विशेषाधिका भवन्ति, क्रोधतो मानस्या-ऽपूर्वस्पर्धकानां विशेषाधिकत्वात् ।

(९) मानस्य सर्वा-ऽपूर्वस्पर्धकवर्गणातो मायाया निखिला-ऽपूर्वस्पर्धकगतवर्गणा विशेषाधिकाः, मानतो मायाया अपूर्वस्पर्धकानां विशेषाधिकत्वात् ।

(१०) ततो-ऽपि लोभस्य सकलाऽपूर्वस्पर्धगतवर्गणा विशेषाधिकाः, मायातो लोभस्य निखिला-ऽपूर्वस्पर्धकानां विशेषाधिकत्वात् ।

(११) ताभ्यो 'लोभस्य' संज्वलनलोभस्य पूर्वस्पर्धकान्यनन्तगुणानि वक्तव्यानि । कथमेतदवसीयते ? इति चेत्, शृणुत-लोभस्या-ऽपूर्वस्पर्धकानामेकद्विगुणहानिगतस्पर्धकसत्का-ऽसंख्येयभागमात्रत्वात् सकला-ऽपूर्वस्पर्धकतः पूर्वस्पर्धकसत्कायामेकस्यामेव द्विगुणहानौ असंख्येयगुणानि पूर्वस्पर्धकानि तिष्ठन्ति । पूर्वस्पर्धकविषयकाणां नानाद्विगुणहानीनामनन्तत्वात् सर्वा-ऽपूर्वस्पर्धकतः-

सर्वपूर्वस्पर्धकान्यनन्तगुणानि भवन्ति, तथैकस्पर्धकगतवर्गणातो नानाद्विगुणहानीनामनन्तगुणत्वात् सर्वा-ऽपूर्वस्पर्धकगतवर्गणातो लोभस्य पूर्वस्पर्धकान्यनन्तगुणानि सिध्यन्ति ।

न्यासः

सकलपूर्वस्पर्धकानि = एकद्विगुणहानिगतस्पर्धकानि × नानाद्विगुणहानयः

नानाद्विगुणहानय = एकस्पर्धकगतवर्गणा. × अनन्तराशि

∴ सकलानि पूर्वस्पर्धकानि = एकद्विगुणहानिगतस्पर्धकानि × एकस्पर्धकगतवर्गणा × अनन्तराशिः

निखिला-ऽपूर्वस्पर्धकानि = एकद्विगुणहानिगतस्पर्धकानि ÷ असंख्यातम्

सर्वा-ऽपूर्वस्पर्धकवर्गणाः = $\frac{\text{एकद्विगुणहानिगतस्पर्धकानि}}{\text{असंख्यातम्}}$ × एकस्पर्धकगतवर्गणाः

∴ सर्वाऽपूर्वस्पर्धकगतवर्गणातो लोभस्य पूर्वस्पर्धकानि

= $\frac{\text{असंख्यातम्}}{\text{१ द्विगुणहानिस्पर्धकानि × १ स्पर्धकगतवर्गणा}}$ × १ द्विगुणहानिस्पर्धकानि × १ स्पर्धकवर्गणा. × अनंतराशिः

इत्येतावद्गुणानि

= असंख्यातम् × अनन्तराशिरित्येतावद्गुणानि भवन्ति ।

(१२) 'सिं च वग्गणा' इत्यादि 'तेषां' लोभपूर्वस्पर्धकानां च वर्गणा अनन्तगुणा भवन्ति 'अणंतगुणाणि' इत्यस्य लिङ्गविपरिणामात् 'अनन्तगुणा' इति पदं लब्धम् । लोभसकलपूर्वस्पर्धकेभ्यो लोभसर्वपूर्वस्पर्धकानां वर्गणा अनन्तगुणा भवन्तीत्यर्थः । गुणकारश्चात्रैकस्पर्धकगतवर्गणा-राशिप्रमाणो ज्ञेयः । 'एवं' यथा लोभस्य पूर्वस्पर्धकानि तद्वर्गणाश्च क्रमेणाऽनन्तगुणानि निगदितानि, तथैव मायादीनां यथाक्रमं पूर्वस्पर्धकानि तद्वर्गणाश्चाऽनन्तगुणानि तावद्वक्तव्यानि, यावत् क्रोधस्य पूर्वस्पर्धकानां वर्गणाः खलु अनन्तगुणा भवन्ति । अयं भावः—

(१३) लोभस्य सकलपूर्वस्पर्धकगतवर्गणातो मायायाः पूर्वस्पर्धकान्यनन्तगुणानि वाच्यानि । न च कथमेतदवसीयते ? इति वाच्यम्, प्रथमे-ऽनुभागखण्डे घातिते लोभादीनामनुक्रमं पूर्वस्पर्धकानामनन्तगुणत्वदर्शनात् । न च भवतु नाम संज्वलनलोभपूर्वस्पर्धकतो मायायाः पूर्वस्पर्धकान्य-नन्तगुणानि प्राक् प्रतिपादितत्वात् । संज्वलनलोभपूर्वस्पर्धकगतवर्गणातो मायायाः पूर्वस्पर्धकान्य-नन्तगुणानि कुतो भवन्ति ? इति वाच्यम्, एकस्पर्धकगतवर्गणागुणकारतो पूर्वस्पर्धकगुणकारस्या-ऽनन्तगुणेन बृहत्तरत्वात् । अयं हेतुरग्रे-ऽपि यथास्थानं योजनीयः ।

(१४) मायापूर्वस्पर्धकतो मायाया वर्गणा अनन्तगुणा निश्चेतव्याः । गुणकारश्चैकस्पर्धक-गतवर्गणाप्रमाणो बोद्धव्यः ।

(१५) ततो मानस्य पूर्वस्पर्धकान्यनन्तगुणानि बोद्धव्यानि, कारणं तु त्रयोदशपदवद्भ-णितव्यम् ।

(१६) ततो मानस्य पूर्वस्पर्धकगतवर्गणा अनन्तगुणा अभिधातव्याः । गुणकारश्चैकस्पर्धकगतवर्गणाराशिमात्रो बोध्यः ।

(१७) ततः क्रोधस्य पूर्वस्पर्धकान्यनन्तगुणानि निगदितव्यानि । हेतुस्तु त्रयोदशपदवद् बोधनीयः ।

(१८) ततः क्रोधस्य पूर्वस्पर्धकगतवर्गणा अनन्तगुणा अभिधातव्याः । गुणकारश्चैकस्पर्धकवर्गणामितो ज्ञातव्यः ।

उक्तं च कषायप्राभृतचूर्णौ "अस्सकण्णकरणस्स पढमे अणुभागखंडए हदे अणुभागस्स अप्पाबहुअं वत्तइस्सामो । तं जहा (१) सव्वत्थोवाणि कोहस्स अपुव्वफद्दयाणि, (२) माणस्स अपुव्वफद्दयाणि विसेसाहियाणि, (३) मायाए अपुव्वफद्दयाणि विसेसाहियाणि, (४) लोभस्स अपुव्वफद्दयाणि विसेसाहियाणि, (५) एयपदेसगुणहाणिट्ठाणंतरफद्दयाणि असंखेज्जगुणाणि (६) एयफद्दयवग्गणाओ अणंतगुणाओ, (७) कोधस्स अपुव्वफद्दयवग्गणाओ अणंतगुणाओ, (८) माणस्स अपुव्वफद्दयवग्गणाओ विसेसाहियाओ, (९) मायाए अपुव्वफद्दयवग्गणाओ विसेसाहियाओ,(१०) लोभस्स अपुव्वफद्दयवग्गणाओ विसेसाहियाओ । (११) लोभस्स पुव्वफद्दयाणि अणंतगुणाणि, (१२) तेसिं चेव वग्गणाओ अणंतगुणाओ, (१३) मायाए पुव्वफद्दयाणि अणंतगुणाणि, (१४) तेसिं चेव वग्गणाओ अणंतगुणाओ, (१५) माणस्स पुव्वफद्दयाणि अणंतगुणाणि, (१६) तेसिं चेव वग्गणाओ अणंतगुणाओ, (१७) कोहस्स पुव्वफद्दयाणि अणंतगुणाणि, (१८) तेसिं चेव वग्गणाओ अणंतगुणाओ ।" इति । ७४-७५-७६-७७ ॥

अश्वकर्णकरणाद्धायां प्रथमेऽनुभागखण्डे व्रजिते द्वितीयमनुभागखण्डं घातयितुमारभ्यते । एवं सहस्रैरनुभागखण्डैरश्वकर्णकरणाद्धासत्का प्रथमस्थितिघाताद्धा प्रथमस्थितिबन्धाद्धा च पूर्यते । एवं प्रतिसमयमसंख्येयगुणहीनान्यसंख्येयगुणहीनानि नवान्यपूर्वस्पर्धकानि कुर्वन् स्थितिघातसहस्रैरश्वकर्णकरणाद्धायाश्चरमसमयं प्राप्नोति, तदानीं स्थितिबन्धं व्याजिहीर्षुराह

चरिमे समये मोहस्स अट्ठवस्सपमिओ हवइ बंधो ।
इयराण संखवस्ससहस्साइं भणिमु ठिइसंतं ॥७८॥

चरमे समये मोहस्याऽष्टवर्षप्रमितो भवति बन्धः ।
इतरेषां सङ्ख्यवर्षसहस्राणि भणाम स्थितिसत्त्वम् ॥७८॥ इति पदसंस्कारः ॥

'चरिमे समये' इत्यादि, 'चरमे समये' अश्वकर्णकरणाद्धाचरमसमये 'मोहस्य' संज्वलन-

क्रोधमानमायालोभसंज्वलनस्य 'बन्धः' स्थितिबन्धोऽष्टवर्षप्रमितो भवति । उक्तं च कषायप्राभृतचूर्णौ–"अस्सकण्णकरणस्स चरिमसमये संजलणाणं ठिदिबंधो अट्ठवस्साणि ।" इति । अश्वकर्णकरणाद्धाप्रथमसमये योऽन्तर्मुहूर्तन्यूनषोडशवर्षप्रमाणः स्थितिबन्ध आसीत्, स प्रतिस्थितिबन्धाद्धमन्तर्मुहूर्तेन हीयमानो भवन्नश्वकर्णकरणाद्धाचरमसमयेऽष्टवार्षिको जायते इत्यर्थः ।

'इयराण' इत्यादि, 'इतरेषां' ज्ञानावरण-दर्शनावरण-वेदनीयाऽन्तराय-नाम-गोत्रकर्मणां संख्येयवर्षसहस्राणि स्थितिबन्धो भवति । उक्तं च कषायप्राभृतचूर्णौ–"सेसाणं कम्माणं ठिदिबंधो संखेज्जाणि वस्ससहस्साणि ।" इति । अश्वकर्णकरणाद्धाप्रथमसमये यः संख्यातसहस्रवर्षमात्रः स्थितिबन्ध आसीत्, स प्रत्यन्तर्मुहूर्तं संख्येयगुणहीनो भवन् संख्यातेषु स्थितिबन्धसहस्रेषु गतेष्वपि संख्यातवर्षसहस्रप्रमाण एव भवतीति फलितार्थः। सम्प्रति स्थितिसत्त्वं वक्तुकामः प्रतिजानीते–'भणिमु' इत्यादि, स्थितिसत्त्वं 'भणामः' प्रतिपादयिष्यामः ।

अथ प्रतिज्ञातमेवाह

घाईण संखवाससहस्साणि पराणऽसंखवासाइं ।
एवं हयकण्णकरणअद्धं खलु परिसमावेइ ॥७६॥

घातिनां संख्यवर्षसहस्राणि परेषामसंख्यवर्षाणि ।
एवं हयकर्णकरणाद्धा खलु परिसमापयति ॥७६॥ इति पदसंस्कारः ।

'घाईण' इत्यादि, अश्वकर्णकरणाद्धाचरमसमये 'घातिनां' ज्ञानावरण-दर्शनावरणाऽन्तराय-मोहनीयकर्मणां संख्यवर्षसहस्राणि स्थितिसत्त्वं भवति । उक्तं च कषायप्राभृतचूर्णौ–"चदुण्हं घादिकम्माणं ठिदिसंतकम्मं संखेज्जाणि वस्ससहस्साणि ।" इति । इदमत्र हृदयम्-अश्वकर्णकरणाद्धाप्रथमसमये घातिचतुष्टयस्य संख्येयसहस्रवर्षमात्रं स्थितिसत्त्वमासीत् ,तत् प्रतिस्थितिघातं संख्येयगुणहीनं भवत् संख्यातसहस्रेषु स्थितिघातेषु व्रजितेष्वपि चरमसमये संख्येयसहस्रवर्षप्रमाणं भवति । 'पराण' इत्यादि, 'परेषाम्' अघातिनां नामगोत्रवेदनीयरूपाणामित्यर्थः, असंख्यवर्षाणि स्थितिसत्त्वं भवति । उक्तं च कषायप्राभृतचूर्णौ–"णामागोदवेदणीयाणं ठिदिसंतकम्मम-संखेज्जाणि वस्ससहस्साणि ।" इति । एतदुक्तं भवति-अश्वकर्णकरणाद्धाप्रथमसमये यदघातिकर्मणामसंख्यातवर्षप्रमाणं स्थितिसत्त्वमासीत्, तत् प्रतिस्थितिघातेनाऽसंख्येयगुणहीनं भवत् संख्यातसहस्रस्थितिघातेषु व्यतिक्रान्तेष्वपि चरमसमयेऽसंख्येयवर्षप्रमितं तिष्ठति ।

'एवं' इत्यादि, 'एवं' प्रागुक्तविधिना 'हयकण्णकरणाद्धाम्' अश्वकर्णकरणाद्धामन्तर्मुहूर्तप्रमाणां खलु 'समापयति' निष्ठां गमयति ॥७६॥

अश्वकर्णकरणाद्धां निरूप्य "किट्टिकरण" इत्यनेनोद्दिष्टं पञ्चमाधिकारं किट्टिकरणाद्धालक्षणं व्याचिख्यासुराह

पुण्णे हयकण्णे आढवेइ किट्टिकरणं तम्मि ।
णिव्वत्तइ पुव्वापुव्वफड्डगत्तो य किट्टीओ ॥८०॥ (उपगीतिः)

पूर्णे हयकर्णे आरभते किट्टिकरणं तस्मिन् ।
निर्वर्तयते पूर्वाऽपूर्वस्पर्धकेभ्यश्च किट्टीः ॥८०॥ इति पदसंस्कारः ।

'पुण्णे' इत्यादि, तत्र 'हयकण्णे' त्ति 'हयकर्णे' 'भीमो भीमसेनः' इति न्यायेन हयकर्णकरणकाले 'पूर्णे' व्यतिक्रान्ते क्षपकश्रेणि प्रतिपन्नः किट्टिकरणम् 'आढवेइ' त्ति आरभते, किट्टिकरणकालं प्रविशतीत्यर्थः। इदमत्र हृदयम्-हास्यषट्के सर्वथा क्षीणे यः क्रोधवेदनकालः, तस्य त्रयो विभागाः कर्तव्याः । तत्राद्यो विभागो-ऽश्वकर्णकरणाद्धा, द्वितीयो विभागः किट्टिकरणाद्धा, तृतीयश्च किट्टिवेदनाद्धा । उक्तं च कषायप्राभृतचूर्णौ-"छसु कम्मेसु संछुद्धेसु जो कोधवेदगद्धा,तिस्से कोधवेदगद्धाए तिण्णि भागा । जो तत्थ पढमतिभागो (सो) अस्सकण्णकरणद्धा, विदियो तिभागो किट्टीकरणद्धा, तदियतिभागो किट्टीवेदगद्धा ।" इति । इदमवधेयम् यथाऽस्मत्कृतोपशमनाकरणटीकायां चारित्रमोहोपशमनाधिकारे-ऽश्वकर्णकरणाद्धादयो यथाक्रमं विशेषहीना उक्ताः, तथैवा-ऽत्रा-ऽप्यश्वकर्णकरणाद्धा, या हास्यषट्के क्षीणे शेषक्रोधवेदनाद्धायाः किञ्चिदधिकत्रिभागमात्रा, सा प्रभूता । ततो विशेषहीना किट्टिकरणाद्धा किञ्चिन्न्यूनत्रिभागप्रमिता, ततो-ऽपि किट्टिवेदनाद्धा किञ्चिन्न्यूनत्रिभागमिता विद्यमाना-ऽपि विशेषहीना संभवतीति वयं ब्रूमः ।

किट्टिकरणाद्धां प्रविष्टः सन् किं करोति ? इत्याह-'तम्मि' इत्यादि, 'तस्मिन्' किट्टिकरणकाले पूर्वापूर्वस्पर्धकेभ्यः किट्टीः 'निर्वर्तयते' करोति । इदमुक्तं भवति किट्टयो नाम संज्वलनानां पूर्वा-ऽपूर्वस्पर्धकेभ्यो वर्गणा गृहीत्वा तासामनन्तगुणहीनरसतामापाद्यैकोत्तररसाविभागवृद्धेः परित्यागेना-ऽनन्तगुणवृहदन्तरालतया व्यवस्थापनम् । इदमत्र हृदयम्-अपूर्वस्पर्धकानि कुर्वन् पूर्वस्पर्धकेभ्यो वर्गणा गृहीत्वाऽनन्तगुणहीनरसतामापाद्य ता एकोत्तररसाऽविभागवृद्धया स्थापयति स्म । असत्कल्पनया पूर्वस्पर्धकसत्कानां यासां वर्गणानामनुभागा-ऽविभागा अशीत्युत्तरषोडशशतानि, एकाशीत्यधिकषोडशशतानि, (१६८०, १६८१) इत्यादि, आसन्, अपूर्वस्पर्धकेषु तासामेवाऽनन्तगुणहीनरसतामापाद्यैकोत्तरवृद्धया रसाविभागा अष्टाषष्ट्युत्तरशतम्, एकोनसप्तत्यधिकशतम् (१६८, १६९) इत्यादि, स्थाप्यन्ते स्म । किट्टिकरणाद्धायां तु सर्वजघन्याऽपूर्वस्पर्धकतोऽप्यनन्तगुणहीनरसतामापाद्य पूर्वापूर्वस्पर्धकानां वर्गणा एकोत्तररसाऽविभागवृद्धिपरि-

प्रयोगेन व्यवस्थाप्य लोभजघन्यकिट्टेरारभ्य पूर्वपूर्वतो नियमेनाऽनन्तगुणवृद्धया तावद् विन्यस्यति, यावत् क्रोधस्योत्कृष्टकिट्टिः। असत्कल्पनया किट्टिषु रसाऽविभागाः पञ्च, विंशतिः (५, २०) इत्यादि। तथा-ऽपूर्वस्पर्धकप्रथमवर्गणातः क्रोधस्य सर्वोत्कृष्टा किट्टिरप्यनन्तगुणहीना वर्तते। उक्तं च कषायप्राभृतचूर्णौ-"लोभस्स जहण्णिया किट्टी अणुभागेहिं थोवा, विदियकिट्टी अणुभागेहिं अणंतगुणा, तदिया किट्टी अणुभागेहिं अणंतगुणा, एवमणंतराणंतरेण सव्वत्थ अणंतगुणा जाव कोधस्स चरिमकिट्टि त्ति। उक्कस्सिया वि किट्टी आदिफद्दयआदिवग्गणाए अणंतभागो।" इति। इह संज्वलनानामनुभागसत्कर्माऽत्यन्तं कृश्यते-अल्पीक्रियते, तस्मात् किट्टिरिति व्यपदिश्यते इति संक्षेपः। उक्तं च कषायप्राभृतचूर्णौ "किसं कम्मं कदं जम्हा, तम्हा किट्टी।" इति। किट्टिकरणाद्धाप्रथमसमये संज्वलनचतुष्कस्य पूर्वापूर्वस्पर्धकेभ्यो दलं गृहीत्वा निरुक्तस्वरूपाः किट्टीर्निर्वर्तयति।

ननु संज्वलनचतुष्कस्य पूर्वापूर्वस्पर्धकेभ्यो दलिकमादाय किट्टीर्निर्वर्तयति, तर्हि पूर्वापूर्वस्पर्धकेषु केन क्रमेण प्रदेशाग्रं विद्यते ? इति चेत्, शृणुत-संज्वलनक्रोधस्य सर्वपूर्वापूर्वस्पर्धकेषु सर्वप्रभूतं दलं तिष्ठति, ततः संख्येयगुणहीनं संज्वलनलोभस्य निखिलपूर्वापूर्वस्पर्धकेषु, ततो विशेषहीनं संज्वलनमायाया निखिलपूर्वापूर्वस्पर्धकेषु, ततोऽपि विशेषहीनं संज्वलनमानस्य सर्वपूर्वापूर्वस्पर्धकेषु तिष्ठति। कथमेतदवसीयते ? इति चेत् , उच्यते-अन्तरकरणे कृते सत्यानुपूर्वीसंक्रमदर्शनात् षण्णोकषायाणां पुरुषवेदस्य च दलं संज्वलनक्रोधे एव संक्रमयति। तेन संज्वलनक्रोधस्य पूर्वापूर्वस्पर्धकेषु सर्वप्रभूतं दलं भवति। तथाहि प्राक् चारित्रमोहनीयसत्तागतदलं विभागद्वये विभक्तमासीत्, एको भागः कषायाणामासीत्, अन्यः पुनर्नोकषायाणाम्। तत्राऽपि कषायाणां दलं चारित्रमोहसकलदलस्य किञ्चिदधिकार्धप्रमाणमासीत्। नोकषायाणां पुनश्चारित्रमोहसत्कसकलदलस्य किञ्चिन्न्यूनार्धप्रमितमासीत्। अनन्तानुबन्ध्यप्रत्यख्यानावरणप्रत्याख्यानावरणानां क्षीणत्वात् तेषां प्रभूतं दलं संक्रमेण संज्वलनक्रोधमानमायालोभैर्लब्धम्। तेन चारित्रमोहनीयसत्तागतदलमर्धा-ऽर्धदलं यत् कषायसत्कमासीत्, तद्दलं संज्वलनचतुष्टये विभक्तव्यम्। विभक्ते च सञ्ज्वलनक्रोधेन मोहनीयसत्तागतसकलदलस्या-ऽष्टभागकल्पं दलं प्राप्तम्। एवं संज्वलनमानेन संज्वलनमायायाः सर्वमोहनीयदलस्याष्टमागदेशीयं प्राप्तम्, लोभेन तु मोहनीयसर्वदलस्य किञ्चिदधिकैका-ऽष्टमागप्रमाणं दलं प्राप्तम् , सत्कर्मणि लोभदलस्येतरतः सर्वप्रभूत्वदर्शनात्। तथा चाऽत्राऽल्पबहुत्वम् संज्वलनलोभस्य प्रभूतं दलम्, ततो विशेषहीनं संज्वलनमायायाः, ततोऽपि विशेषहीनं-क्रोधस्य, ततोऽपि मानस्य विशेषहीनं भवति। एवं प्रत्येकस्मिन् क्रोधादिकषाये आसन्नाष्टमागप्रमाणं दलं विद्यते। नोकषायसत्कस्य मोहनीयसर्वदलसत्ककिञ्चिन्न्यूनार्धमात्रदलस्य संज्वलनक्रोधे संक्रमेण प्रक्षेपात् किञ्चिन्न्यूनपञ्चाष्टमागप्रमाणदलं जायते। लोभे तु किञ्चिदधिकैकाष्टमागप्रमितं तिष्ठति, मानमाययोः पुनः किञ्चिन्न्यूनाष्टमाग-

प्रमाणं विद्यते । तेन क्रोधस्य पूर्वापूर्वस्पर्धकेषु सर्वप्रभूतं दलं विद्यते, तच्च किञ्चिन्न्यूनपञ्चाष्टभाग-प्रमाणम् । ततः संख्येयगुणहीनं लोभस्य पूर्वापूर्वस्पर्धकेषु विद्यते, किञ्चिदधिकाष्टभागप्रमाणत्वात् ततो विशेषहीनं मायायाः पूर्वापूर्वस्पर्धकेषु, किञ्चिन्न्यूनाष्टभागप्रमितत्वात् । ततोऽपि मानस्य पूर्वापूर्वस्पर्धकेषु किञ्चिन्न्यूनाष्टभागप्रमितं भवदपि विशेषहीनं विद्यते ।

न्यास :

असत्कल्पनया मोहनीयसत्तागतदलम् = 'क' इति कल्प्यते । तदर्धम् $= \frac{क}{२}$

∵ नोकषायाणां दलम् $= \frac{क}{२}$ − किञ्चिद्दलम् ।

∴ कषायाणां दलम् $= \frac{क}{२} +$,, ,,

∵ कषायचतुष्कस्य दलम् = आसन्न $\frac{क}{२}$

∴ एकैककषायस्य दलम् = आसन्न $\frac{क}{२ \times ४}$

= आसन्न $\frac{क}{८}$

तत्र लोभदलस्य किञ्चिदधिकत्वात् लोभदलम् $= \frac{क}{८} +$ किञ्चिद्दलम्

∴ मायामानक्रोधानामेकैकस्य दलम् $= \frac{क}{८}$ किञ्चिद्दलम्

सञ्ज्वलनक्रोधे नोकषायदलप्रक्षेपात् क्रोधदलम् $= \left(\frac{क}{२} - \text{किञ्चिद्दलम्}\right) + \left(\frac{क}{८} - \text{किञ्चिद्दलम्}\right)$

$= \frac{क}{२} + \frac{क}{८}$ (किञ्चिद्दलम् + किञ्चिद्दलम्)

$= \frac{५ क}{८}$ किञ्चिद्दलम्

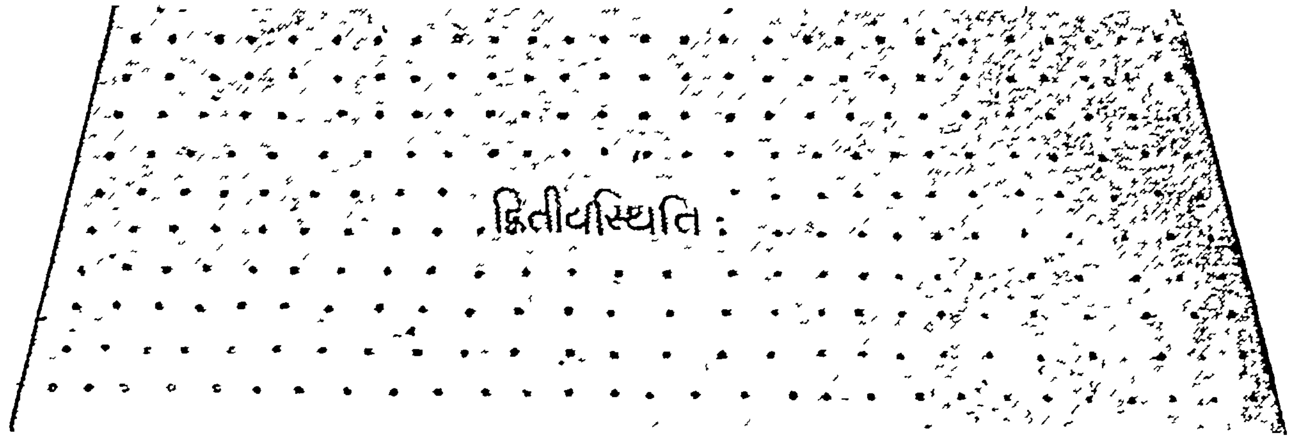
संज्वलनक्रोधे दलम् $= \frac{५ क}{८}$ किञ्चिद्दलम् । तच्च प्रभूतं भवति ।

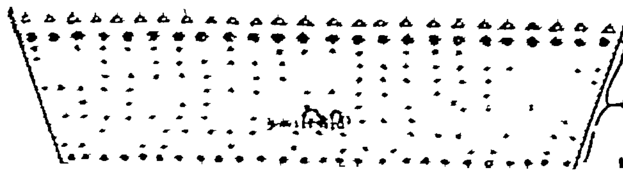
,, लोभे ,, $= \frac{क}{८} +$,, ,, । तेन पूर्वतः संख्यातगुणहीनम् ।

,, मायायां ,, $= \frac{क}{८}$,, ,, । तेन पूर्वतो विशेषहीनम् ।

,, माने ,, $= \frac{क}{८}$,, ,, । किन्तु पूर्वतो विशेषहीनम् ।

किट्टिकरणाद्धामाश्रित्य चित्रम्





किट्टिकरणाद्धाचरमसमय

किट्टिकरणाद्धा १

किट्टिकरणाद्धाप्रथमसमय

सङ्केतस्पष्टीकरणम्

००० अनेन चिह्नेन किट्टिकरणाद्धाप्रथमसमयः सूचितः। किट्टिकरणाद्धाप्रथमसमयत. प्रभृति संज्वलनचतुष्कस्य द्वितीयस्थितौ संज्वलनक्रोध-मान-माया-लोभानां पूर्वापूर्वस्पर्धकेभ्यो दलमादाय किट्टीः कर्तुमारभते ।

१–किट्टिकरणाद्धाया पूर्वापूर्वस्पर्धकानि वेदयति, न तु किट्टी, वक्ष्यते चैतद् चतुर्दशाधिकशततमगाथया (११४) ।

* अनेन चिह्नेन किट्टिकरणाद्धायाश्चरमसमय सूचितः ।

△ अनेन चिह्नेन पूर्वापूर्वस्पर्धकरूपेण विद्यमानस्य क्रोधस्य प्रथमस्थिति सूचिता ।

संज्वलनक्रोधादिचतुष्टयस्य पूर्वापूर्वस्पर्धकस्थसर्वदलमुत्कर्षणापकर्षणभागहारेण विभज्यैकभागमपकर्षति। 卐 अपकृष्टदलं पुनः पल्योपमाऽसंख्येयभागेन खण्डयित्वैकखण्डं किट्टयर्थं गृह्णाति, शेषाणि बहूनि खण्डानि पूर्वापूर्वस्पर्धकेषु प्रक्षिपति। तत्र किट्टिकरणाद्धाप्रथमसमये संज्वलनक्रोधस्य पूर्वापूर्वस्पर्धकेभ्यो दलं गृहीत्वा संज्वलनक्रोधस्य किट्टीः करोति, एवं संज्वलनमानस्य पूर्वापूर्वस्पर्धकेभ्यो दलमादाय संज्वलनमानस्य किट्टीर्निर्वर्तयति, संज्वलनमायायाः पूर्वापूर्वस्पर्धकेभ्यो दलिकं गृहीत्वा संज्वलनमायायाः किट्टीरुत्पादयति। संज्वलनलोभस्य पूर्वापूर्वस्पर्धकेभ्यः प्रदेशाग्रमादाय संज्वलनलोभस्य किट्टीर्जनयति। उक्तं च कषायप्राभृतचूर्णौ–"पढमसमयकिट्टीकारगो कोधादो पुव्वफद्दएहिंतो च अपुव्वफद्दएहिंतो च पदेसग्गमोकड्डियूण कोहकिट्टीओ करेदि। माणादो ओकड्डियूण माणकिट्टीओ करेदि। मायादो ओकड्डियूण मायाकिट्टीओ करेदि, लोभादो ओकड्डियूण लोभकिट्टीओ करेदि।" इति ॥८०॥

एवं शतकचूर्णावप्युक्तम्

> "तत्तो अपुव्वफड्डगहेट्ठा बहुगा करेइ किट्टीओ।
> पुव्वाओ य अपुव्वेहिंतो वोकड्डिय पएसे ॥१॥" इति।

पश्यन्तु पाठका यन्त्रकम्–१४ इति ॥८०॥

अथोत्कृष्टकिट्टेरनुभागं किट्टिपरिमाणं च दर्शयितुकाम आह

जेट्ठा किट्टी उ अणंतगुणूणा पढमवग्गणाहिंतो।
किट्टीओ फड्डगस्स अणंतिमभागपमिआ होंति ॥८१॥

> ज्येष्ठा किट्टिस्त्वनन्तगुणोना प्रथमवर्गणायाः।
> किट्टय स्पर्धकस्याऽनन्ततमभागप्रमिता भवन्ति ॥८१॥ इति पदसंस्कारः।

'जेट्ठा' इत्यादि, तत्र 'पढमवग्गणाहिंतो' त्ति 'प्रथमवर्गणायाः' अपूर्वस्पर्धकस्य

卐 अभ्यधायि च जयधवलाकारैरपि-"पढमसमयकिट्टीकारगो पुव्वापुव्वफद्दएहिंतो पदेसग्गस्स संखेज्जदिभागमोकड्डियूण पुण ओकड्डिदसयलदव्वस्सासंखेज्जदिभागमेत्तं दव्वं किट्टीसु णिक्खिवदि।" इति। क्षपणासारकृद्भिस्तु अपकृष्टदलस्य बहुभागमानं दलं किट्टिष्वेकभागमात्रं च पूर्वापूर्वस्पर्धकेषु ददातीति भणितम्। अक्षराणि त्वेवम्

> "कोहादीणं सगसगपुव्वापुव्वगयफड्डयेहिंतो।
> उक्कड्डिदूण दव्वं ताणं किट्टी करेदि कमे ॥ १ ॥
> उक्कट्टिददव्वस्स य पल्लासखेज्जभागबहुभागो।
> बादरकिट्टिणिबद्धो फड्डयगे सेसइगिभागो ॥२॥" इति।

प्रथमवर्गणात इत्यर्थः, 'अनन्तगुणोना' अनन्तगुणहीना 'ज्येष्ठा किट्टिस्तु' क्रोधस्य सर्वोत्कृष्टा किट्टिस्तु भवति, जघन्यवर्गणागतानुभागतोऽनन्तगुणहीनरसतामापाद्य किट्टिनिर्वर्तनस्य प्रतिपादितत्वात् ।

ननु प्रथमसमये कियत्यः किट्टयो भवन्ति ? इत्याह 'किट्टीओ' इत्यादि, 'किट्टयः' चतुर्णामपि संज्वलनानां किट्टयः स्पर्धकस्याऽनन्ततमभागप्रमिता भवन्ति । इदमुक्तं भवति-एकस्मिन् स्पर्धके वर्गणा अभव्येभ्योऽनन्तगुणाः सिद्धानां चाऽनन्ततमभागमिता भवन्ति, तासामेकाऽनन्ततमभागप्रमाणाः किट्टयो निर्वर्त्यन्ते। उक्तं च कषायप्राभृतचूर्णौ-"एदाओ सव्वाओ वि चउव्विहाओ किट्टीओ एयफद्दयवग्गणाणमणंतभागो पमाणमादो ।" इति ॥८१॥

अथ क्रोधादीनामेकैककषायस्य किट्टिपरिमाणं निर्दिदिक्षुराह

एगेगस्स कसायस्स तिण्णि तिण्णि अहवाऽणंता ।
संगहकिट्टी तिन्नि अवंतरकिट्टी अणंताओ ॥८२॥ (उपगीतिः)

एकैकस्य कषायस्य तिस्रस्तिस्रो-ऽथवा-ऽनन्ता ।
संग्रहकिट्टयस्तिस्रो-ऽवान्तरकिट्टयो-ऽनन्ता ॥८२॥ इति पदसंस्कारः ।

'एगेगस्स' इत्यादि, किट्टिकरणाद्धायाम् "एकैकस्य कषायस्य' संज्वलनक्रोधादीनामेकैकस्य कषायस्येत्यर्थः 'तिस्रस्तिस्रः' "वीप्सायाम्" (सिद्धहेम० ७-४-८०) इत्यनेन द्विर्वचनम्, किट्टयो भवन्ति, प्रथमादिसंग्रहकिट्टिभेदात् । उक्तं च सप्ततिकाचूर्णौ-"एक्केक्कस्स कसायस्स तिण्णि तिण्णि पढमकिट्टी, बितियकिट्टी, ततियकिट्टि त्ति ।" इति । 'अहवा' त्ति 'अथवा' प्रकारान्तरेण क्रोधादीनामेकैककषायस्या-ऽनन्ताः किट्टयो जायन्ते ।

ननु प्रकारद्वयेन किट्टिपरिमाणकथने कोऽभिप्रायः ? इत्यत आह-'संगह०' इत्यादि, 'संग्रहकिट्टयस्तिस्रः' एकैककषायस्य यास्तिस्रस्तिस्रः किट्टयः प्रोक्ताः, तास्तिस्रः किट्टयः संग्रहकिट्टय इति व्यपदिश्यते इत्यर्थः । उक्तं च कषायप्राभृतचूर्णौ-"एक्केक्कम्हि कसाए तिण्णि तिण्णि संगहकिट्टीयो त्ति एवं तिग तिग ।" इति । 'अवतर०' इत्यादि, 'अवान्तरकिट्टयोऽनन्ताः' एकैकस्य कषायस्य या अनन्ताः किट्टय उत्पद्यन्ते, ता अवान्तरकिट्टयो भण्यन्ते, गणनातश्च ता अनन्ता भवन्ति । कुतः ? इति चेत्, उच्यते एकस्यां संग्रहकिट्टौ अनन्तानामवान्तरकिट्टीनामुपलम्भादेकैककषायस्या-ऽनन्तकिट्टयः सूपपद्यन्ते । यदुक्तं कषायप्राभृतचूर्णौ-"एक्केक्किस्से संगहकिट्टीए अणंताओ त्ति एदेण अधवा अणंताओ जादा ।" इति । ॥८२॥

अथ क्रोधादीनामुदयेन प्रतिपन्नः कियतीः संग्रहकिट्टीः करोति ? इत्यतः प्राह

कोहादीणं उदयेणं पडिवन्नस्स कमसो हि ।
बारस णव च्छ तिण्णि य संगहकिट्टीउ जायन्ते ॥८३॥ (उपगीतिः)

क्रोधादीनामुदयेन प्रतिपन्नस्य भवन्ति क्रमशो हि ।
द्वादश नव षट् तिस्रश्च सग्रहकिट्टयो जायन्ते ॥८३॥ इति पदसंस्कार ।

'कोहादीण' इत्यादि, 'क्रोधादीनां' क्रोधमानमायालोभलक्षणानामुदयेन 'प्रतिपन्नस्य' क्षपकश्रेणिमारूढस्य क्रमशः 'हि' निश्चयेन द्वादश नव षट् तिस्रश्च संग्रहकिट्टयो 'जायन्ते' उत्पद्यन्ते। उक्तं च कषायप्राभृते–"बारस णव छ तिण्णि य किट्टीओ होंति × × ×" इति ।

भावार्थः पुनरयम् क्रोधोदयेन क्षपकश्रेणिं प्रतिपन्नश्चतुष्कषायाणां द्वादश संग्रहकिट्टीः करोति, एकैककषायस्य संग्रहकिट्टित्रयप्रतिपादनात् । उक्तं च सप्ततिकाचूर्णौ "किट्टिकरणद्धाए वट्टमाणो समए समए चउण्हं संजलणाण बारस किट्टीओ करेति, × × ×, एवं कोहेण पडिवण्णस्स ।" तथैव कषायप्राभृतचूर्णावपि "जइ कोहेण उवट्ठायदि, तदो बारस संगहकिट्टीओ होंति ।" इति ।

संज्वलनमानोदयेन क्षपकश्रेणिं समारूढः शेषसंज्वलनत्रयस्य नव संग्रहकिट्टीः करोति, मानाऽश्वकर्णकरणाद्धायाः प्राक् संज्वलनक्रोधस्य स्पर्धकस्वरूपेण क्षपितत्वेन संज्वलनक्रोधस्य किट्टयसंभवात् । उक्तं च सप्ततिकाचूर्णौ "माणेण पडिवण्णो कोहे खविए उज्वलणालक्खणेणं सेसाणं तिण्हं कसायाणं नव किट्टीओ करेति पुव्वकमेणं ।" इति । एवं कषायप्राभृतचूर्णावपि "माणेण उवट्ठिदस्स णव संगहकिट्टीओ ।" इति ।

मायोदयेन क्षपकश्रेणिं प्रतिपन्नो मायालोभयोः षट् सग्रहकिट्टीर्निर्वर्तयति, मायाश्वकर्णकरणाद्धायाः प्राक् क्रोधमानयोः किट्टिपरिणाममृतं स्पर्धकस्वरूपेण क्षपितत्वात् । उक्तं च सप्ततिकाचूर्णौ "मायाए पडिवण्णो कोहमाणेहिं खविएहिं सेसदुगस्स छ किट्टीओ करेति पुव्वकमेणं ।" इति । तथैव कषायप्राभृतचूर्णावपि "मायाए उवट्ठिदस्स छ संगहकिट्टीओ ।" इति ।

संज्वलनलोभोदयेन क्षपकश्रेणिमधिगतः संज्वलनलोभस्य तिस्रः संग्रहकिट्टीर्निर्वर्तयति, लोभा-ऽश्वकर्णकरणाद्धाया अर्वाक् संज्वलनक्रोधादित्रयस्य स्पर्धकस्वरूपेण विनाशितत्वात् । उक्तं च सप्ततिकाचूर्णौ "लोभेणं पडिवण्णो हेट्ठतिगे खविए लोभस्स तिण्णि किट्टीओ

करेति ।" इति । तथैव कषायप्राभृतचूर्णावपि–"लोभेण उवट्ठिदस्स तिण्णि किट्टीओ ।" इति । ॥ ८३ ॥

कषायचतुष्कस्य संग्रहकिट्टीरुक्त्वा सम्प्रत्येकैकस्यां संग्रहकिट्टौ कति किट्टयो भवन्ति ? तथा पूर्वपूर्वसमयत उत्तरोत्तरसमये कियत्यः किट्टयो जायन्ते ? इत्याशङ्क्य प्राह

एगेगाए संगहकिट्टीअ अवंतराअ उ अणंता ।
होंति य किट्टीओ पडिसमयमसंखगुणहीणाओ ॥८४॥

एकैकस्यां संग्रहकिट्टौ अवान्तरास्त्वनन्ता. ।
भवन्ति च किट्टयः प्रतिसमयमसंख्येयगुणहीनाः ॥८४॥ इति पदसंस्कारः ।

'एगेगाए' इत्यादि, संज्वलनचतुष्कस्यैकैकस्यां संग्रहकिट्टौ अवान्तरास्तु किट्टयोऽनन्ता भवन्ति, एकैकसंग्रहकिट्टौ अवयवकिट्टयोऽनन्ता भवन्तीत्यर्थः । 'होंति य' इत्यादि, 'भवन्ति च' जायन्ते च 'प्रतिसमयं' समये समये इति वीप्सायाम् "योग्यतावीप्सार्थानतिवृत्तिसादृश्ये" (सिद्धहेम० ३-१-४०) इति सूत्रेणा-ऽव्ययीभावसमासः, अनुसमयमित्यर्थः; 'किट्टयः' कषायचतुष्कस्याऽभिनवाऽवान्तरकिट्टयोऽसंख्येयगुणहीनाः । इदमुक्तं भवति किट्टिकरणाद्धाप्रथमसमये बह्वीरवान्तरकिट्टीः करोति, द्वितीयसमयेऽसंख्येयगुणहीना अभिनवा अवान्तरकिट्टीर्निर्वर्तयति, असंख्येयभागमात्रा निर्वर्तयतीत्यर्थः । उक्तं च कषायप्राभृतचूर्णौ–"विदियसमए अण्णाओ अपुव्वाओ किट्टीओ करेदि, पढमसमए णिव्वत्तिदकिट्टीणमसंखेज्जभागमेत्ताओ ।" इति एवं पूर्वपूर्वत उत्तरोत्तरसमये-ऽसंख्येयगुणहीना अभिनवा किट्टयस्तावद्वक्तव्याः, यावत् किट्टिकरणाद्धायाश्चरमसमयः ॥८४॥

ननु प्रतिसमयं किट्टितया परिणमनाय कियद् दलं गृह्णाति ? इति परमाशङ्क्य प्राह

दलिअं उ पडिखणं उक्किरइ असंखगुणिअं य किट्टीणं ।
अह किट्टीणं अणुभागप्पाबहुअं भणिज्जेइ ॥ ८५ ॥

दलिकं तु प्रतिक्षणमुत्किरत्यसंख्येयगुणितं च किट्टिभ्यः ।
अथ किट्टीनामनुभागाल्पबहुत्वं भण्यते ॥८५॥ इति पदसंस्कारः ।

'दलिअं' इत्यादि, तत्र 'किट्टीणं' त्ति प्राकृतत्वात् 'तादर्थ्ये' (सिद्धहेम० २-२-५४) इति सूत्रेण विहितायाश्चतुर्थ्याः स्थाने "चतुर्थ्याः षष्ठी" (सिद्धहेम० ८-१-१३१) इति सूत्रेण षष्ठी विभक्तिः, किट्टिभ्यः=किट्टितया परिणमनायेत्यर्थः 'दलिकं' प्रदेशाग्रं तु 'प्रतिक्षणम्' अनुसमयम् असंख्येयगुणितं च 'उत्किरति' अपकर्षति । चकारः पादपूर्त्यै । इदमुक्तं भवति किट्टिकरणाद्धाप्रथम-

समयतो-ऽनन्तगुणविशुद्धत्वाद् द्वितीयसमये-ऽसंख्येयगुणं दलं गृहीत्वा किट्टिषु ददाति, ततो-ऽपि तृतीयसमयेऽसंख्येयगुणं दलं गृहीत्वा किट्टिषु प्रक्षिपति । एवं प्रतिसमयं विशुद्धेरनन्तगुणक्रमेण प्रवर्धमानत्वादुत्तरोत्तरसमयेऽसंख्येयगुणमसंख्येयगुणं दलं गृहीत्वा किट्टिषु ददाति । अनेन क्रमेण तावद्वक्तव्यम्, यावत् किट्टिकरणाद्धायाश्चरमसमयः । उक्तं च कषायप्राभृतचूर्णौ **"जं पदेसग्गं सव्वसमासेण पढमसमए किट्टीसु दिज्जदि, तं थोवं, बिदियसमए असंखेज्जगुणं, तदियसमए असंखेज्जगुणं । एवं जाव चरिमादो त्ति असंखेज्जगुणं ।"** इति ।

'अह' इत्यादि, अथशब्दः प्रकरणान्तरं सूचयति । 'किट्टीणं' ति किट्टीनाम् 'अनुभागा-ऽल्पबहुत्वम्' अनुभागविषयका-ऽल्पबहुत्वं 'भण्णते' प्रतिपाद्यते ॥८५॥

अथ किट्टिकरणाद्धाप्रथमसमये किट्टिकारस्य किट्टिगतरसा-ऽविभागानाश्रित्य पूर्वगाथायां प्रतिज्ञाता-ऽल्पबहुत्वं विवर्णयति

लोहस्स पढमसंगहकिट्टीअ जहण्णगाअ खलु ।
थोवा रसाविभागा तत्तो बिइयाअऽणंतगुणिआऽत्थि ॥८६॥ (उद्गीतिः)
एवं जाव चरिमकिट्टीए बीयपढमाअऽणंतगुणा ।
पुव्वव्व जाव अंतिमकिट्टीए ताउ तइयाए ॥ ८७ ॥
पढमाअऽणंतगुणिआ जावं चरिमाअ एवं य ।
मायाए तिण्हं किट्टीसु मुणेया अणंतगुणणाए ॥८८॥ (उद्गीतिः)
तत्तो माणगकोहाणं तिण्ह रसाविभागा य ।
कमसो उ जाव कोहुक्कोसाए होज्जऽणंतगुणा ॥८९॥ (उपगीतिः)

लोभस्य प्रथमसंग्रहकिट्टया जघन्यायाः खलु ।
स्तोका रसाविभागास्तेभ्यो द्वितीयस्यामनन्तगुणिताः सन्ति ॥८६॥
एवं यावच्चरमकिट्टौ द्वितीयप्रथमायामनन्तगुणाः ।
पूर्ववद्यावदन्तिमकिट्टौ तेभ्यस्तृतीयस्याः ॥ ८७ ॥
प्रथमायामनन्तगुणिताः यावत् चरमायामेव च ।
मायायास्तिसृणां किट्टिषु ज्ञेया अनन्तगुणनया ॥८८॥
तेभ्यो मानक्रोधयोस्तिसृणां रसाऽविभागाश्च ।
क्रमशस्तु यावत् क्रोधोत्कृष्टाया भवन्त्यनन्तगुणाः ॥८९॥ इति पदसंस्कारः ।

'लोहस्स' इत्यादि, 'लोभस्य' संज्वलनलोभस्य प्रथमसंग्रहकिट्टयाः 'जघन्यायां' प्रथमा-ऽवान्तरकिट्टौ स्तोका रसाऽविभागा भवन्ति । रसाऽविभागा इति पदमग्रेऽप्यनुवर्तनीयम् । 'तेभ्यः'

संज्वलनलोभप्रथमसंग्रहकिट्टिसत्कप्रथमा-ऽवान्तरकिट्टिगतरसविभागेभ्यो 'द्वितीयस्यां' लोभस्य प्रथमसंग्रहकिट्टया द्वितीया-ऽवान्तरकिट्टौ 'अनन्तगुणिताः' अनन्तगुणा रसाविभागाः 'सन्ति' भवन्ति, किट्टिगतानुभागस्य पूर्वानुपूर्व्याऽनन्तगुणवृद्धि परित्यज्या-ऽन्यस्याऽसंभवात्। 'एवं' इत्यादि, 'एवं यावच्चरमकिट्टौ' एवंशब्दस्य साम्यार्थकत्वात् उत्तरोत्तरा-ऽवान्तरकिट्टौ अनन्तगुणक्रमेण रसाविभागास्तावदभिधातव्याः, यावद् लोभस्य प्रथमसंग्रहकिट्टेश्चरमा-ऽवान्तरकिट्टौ द्विचरमा-ऽवान्तरकिट्टितो-ऽनन्तगुणाः ।

'बीयपढमाअ' 'इत्यादि, द्वितीयप्रथमायां' अत्र द्वितीयपदेन **"भीमो भीमसेनः"** इति न्यायात् द्वितीयसंग्रहकिट्टिर्बोद्धव्या, ततश्चायमर्थः-संज्वलनलोभस्य द्वितीयसंग्रहकिट्टयाः प्रथमा-ऽवान्तरकिट्टौ प्रथमसंग्रहकिट्टिसत्कचरमा-ऽवान्तरकिट्टिगतरसाविभागतो-ऽनन्तगुणा रसाविभागा भवन्ति, गुणकारश्च द्वादशसंग्रहकिट्टीनां स्वस्थानगुणकारतो-ऽनन्तगुणो ज्ञातव्यः। इदमुक्तं भवति-विवक्षितसंग्रहकिट्टिसत्कचरमाऽवान्तरकिट्टिगतरसाऽविभागा येन गुणकारेण गुणिताः सन्तस्तदुत्तर-संग्रहकिट्टिसत्कप्रथमाऽवान्तरकिट्टिगतरसाविभागा जायन्ते, स परस्थानगुणकार उच्यते। तत्तत्संग्रह-किट्टौ विवक्षिता-ऽवान्तरकिट्टिगतरसाऽविभागा येन गुणकारेण गुणिताः सन्तस्तदुत्तराऽवान्तर-किट्टिगतरसाऽविभागा जायन्ते, स स्वस्थानगुणकार उच्यते। उपर्युक्तपरस्थानगुणकारो द्वादशा-नामपि संग्रहकिट्टीनां स्वस्थानगुणकारतोऽनन्तगुणो ज्ञातव्यः, क्रोधतृतीयसंग्रहकिट्टिगतचरमा-वान्तरकिट्टयन्तरतो लोभप्रथमसंग्रहकिट्टयन्तस्यानन्तगुणत्वदर्शनात्, आविष्करिष्यते चेदं किट्टयन्तरप्र-रूपणायाम्। 'पुव्वव्व'इत्यादि,'पूर्ववत्'प्रथमसंग्रहकिट्टिवत् यत्तदोःसापेक्षत्वेनोत्तरत्र यत्पदोपादानाद् तावद्वक्तव्याः, यावत् 'अन्तिमकिट्टौ' अन्ते भवा अन्तिमा **"पश्चादाद्यन्ताग्रादिमः"** (सिद्धहेम० ६-३-७५) इत्यनेन इमप्रत्ययः। अन्तिमा चाऽसौ किट्टिश्च, सा-ऽन्तिमकिट्टिः, तत्र, लोभद्वितीय-संग्रहकिट्टिसत्कायां चरमाऽवान्तरकिट्टौ इत्यर्थः, रसा-ऽविभागा वक्तव्याः। इदमुक्तं भवति

लोभस्य द्वितीयसंग्रहकिट्टिसत्कप्रथमा-ऽवान्तरकिट्टिगतरसाऽविभागतो द्वितीयाऽवान्तरकिट्टौ रसाऽविभागा अनन्तगुणा विद्यन्ते, ततोऽपि तृतीयाऽवान्तरकिट्टौ अनन्तगुणा रसाऽविभागा वर्तन्ते, एवंक्रमेण तावद्वक्तव्याः, यावद् द्विचरमा-ऽवान्तरकिट्टितश्चरमाऽवान्तरकिट्टौ रसाऽविभागा अनन्तगुणास्तिष्ठन्ति ।

'ताउ' इत्यादि 'तेभ्यः' लोभद्वितीयसंग्रहकिट्टिसत्कचरमा-ऽवान्तरकिट्टिगतरसाऽविभागे-भ्यः 'तृतीयस्याः लोभतृतीयसंग्रहकिट्टेः 'प्रथमायां' प्रथमाऽवान्तरकिट्टौ अनन्तगुणिता रसाऽ-विभागा भवन्ति। ततोऽपि द्वितीयाऽवान्तरकिट्टौ अनन्तगुणा रसाऽविभागा भवन्ति। ततोऽपि तृतीयस्यामवान्तरकिट्टावनन्तगुणा रसाऽविभागा भवन्ति, एवंक्रमेण तावद् वक्तव्याः, यावच्चरमा-ऽवान्तरकिट्टिः। तदेवा-ऽऽह-'जाव चरिमाअ' त्ति यावत् 'चरमायां' लोभतृतीयसंग्रहकिट्टिसत्क-

चरमावान्तरकिट्टौ रसाऽविभागा द्विचरमाऽवान्तरकिट्टितोऽनन्तगुणा भवन्तीत्यर्थः। 'एवं' इत्यादि, 'एवं' एवंशब्दः सादृश्यार्थकः, यथा लोभस्य तिसृणां संग्रहकिट्टीनामवान्तरकिट्टिषु रसाऽविभागाः प्ररूपिताः, तथैवेत्यर्थः मायायाः 'तिसृणां' प्रथम-द्वितीय-तृतीयरूपाणां संग्रहकिट्टीनां 'किट्टिषु' अवान्तरकिट्टिष्वनन्तगुणनया रसाऽविभागा वक्तव्याः। चकारः समुच्चये। एतदुक्तं भवति-संज्वलन-लोभस्य तृतीयसंग्रहकिट्टिसत्कचरमाऽवान्तरकिट्टिगतरसाऽविभागतो मायायाः प्रथमसंग्रहकिट्टिसत्क-प्रथमाऽवान्तरकिट्टौ रसाऽविभागा अनन्तगुणा भवन्ति। ततो-ऽपि मायायाः प्रथमसंग्रहकिट्टि-सत्कद्वितीया-ऽवान्तरकिट्टौ रसाऽविभागा अनन्तगुणा भवन्ति। एवं तावद्वक्तव्याः, यावन्मायायाः प्रथमसंग्रहकिट्टिसत्केचरमाऽवान्तरकिट्टौ रसाऽविभागा द्विचरमाऽवान्तरकिट्टितोऽनन्तगुणा भवन्ति। मायायाः प्रथमसंग्रहकिट्टिसत्कचरमाऽवान्तरकिट्टिगतरसाऽविभागतो मायाया द्वितीयसंग्रहकिट्टि-सत्कप्रथमाऽवान्तरकिट्टौ रसाऽविभागा अनन्तगुणा भवन्ति; ततोऽपि मायाया द्वितीयसंग्रह-किट्टिसत्कायां द्वितीयाऽवान्तरकिट्टावनन्तगुणा भवन्ति, ततो मायाया द्वितीयसंग्रहकिट्टि-सत्कायां तृतीया-ऽवान्तरकिट्टावनन्तगुणा रसाऽविभागा भवन्ति। एवंक्रमेण तावद्वक्तव्याः, यावद् मायाया द्वितीयसंग्रहकिट्टिसत्कद्विचरमा-ऽवान्तरकिट्टितश्चरमाऽवान्तरकिट्टौ रसाऽविभागा अनन्त-गुणा भवन्ति। मायाया द्वितीयसंग्रहकिट्टिसत्कचरमा-ऽवान्तरकिट्टिगतरसाऽविभागतोऽनन्तगुणा रसाऽविभागा मायायास्तृतीयसंग्रहकिट्टिसत्कायां प्रथमाऽवान्तरकिट्टौ तिष्ठन्ति, ततोऽपि द्वितीया-ऽवान्तरकिट्टावनन्तगुणा रसाविभागा वर्तन्ते, एवमनन्तगुणक्रमेण तावद्वक्तव्याः, यावत् तृतीय-संग्रहकिट्टिसत्कचरमाऽवान्तरकिट्टिः।

'तत्तो' इत्यादि, 'तेभ्यो' मायायास्तृतीयसंग्रहकिट्टिसत्कचरमाऽवान्तरकिट्टिगतरसाऽवि-भागेभ्यो 'मानक्रोधयोः' संज्वलनमानक्रोधयोः 'तिसृणां' संग्रहकिट्टित्रयस्य अवान्तरकिट्टिगता रसाऽविभागाश्च क्रमशस्त्वनन्तगुणास्तावद्भवन्ति, यावत् 'क्रोधोत्कृष्टायां' क्रोधतृतीयसंग्रहकिट्टि-सत्कचरमाऽवान्तरकिट्टौ रसाऽविभागाः। तथाहि—मायायास्तृतीयसंग्रहकिट्टिसत्कचरमाऽवान्तरकिट्टि-गतरसाऽविभागतो मानस्य प्रथमसंग्रहकिट्टिसत्कप्रथमाऽवान्तरकिट्टौ रसाऽविभागा अनन्तगुणा अवतिष्ठन्ते। ततो-ऽपि मानस्य प्रथमसंग्रहकिट्टिसत्कद्वितीया-ऽवान्तरकिट्टावनन्तगुणा रसाऽ-विभागा भवन्ति, एवंक्रमेण तावद्वक्तव्याः, यावत् प्रथमसंग्रहकिट्टिसत्कचरमाऽवान्तरकिट्टिगत-रसाविभागाः।

मानस्य प्रथमसंग्रहकिट्टिसत्कचरमा-ऽवान्तरकिट्टितो मानस्य द्वितीयसंग्रहकिट्टिसत्क-प्रथमा-ऽवान्तरकिट्टौ रसाविभागा अनन्तगुणा भवन्ति। ततो-ऽपि द्वितीयसंग्रहकिट्टिसत्कद्वितीया-ऽवान्तरकिट्टौ रसाऽविभागा अनन्तगुणा वर्तन्ते। एवमनन्तगुणक्रमेण तावद्वक्तव्याः, यावन्मा-नस्य द्वितीयसंग्रहकिट्टिसत्कचरमा-ऽवान्तरकिट्टिगतरसा-ऽविभागाः।

मानस्य द्वितीयसंग्रहकिट्टिसत्कचरमाऽवान्तरकिट्टितो मानस्य तृतीयसंग्रहकिट्टिसत्कप्रथमाऽवान्तरकिट्टिगतरसाऽविभागा अनन्तगुणा भवन्ति, ततोऽपि तृतीयसंग्रहकिट्टिसत्कद्वितीयाऽवान्तरकिट्टौ रसाविभागा अनन्तगुणा भवन्ति । एवमुत्तरोत्तराऽवान्तरकिट्टौ अनन्तगुणक्रमेण रसाऽविभागास्तावद्वक्तव्याः, यावन्मानस्य तृतीयसंग्रहकिट्टिसत्कचरमाऽवान्तरकिट्टिगतरसाविभागाः ।

मानस्य तृतीयसंग्रहकिट्टिसत्कचरमावान्तरकिट्टिगतरसाऽविभागतः क्रोधस्य प्रथमसंग्रहकिट्टिसत्कप्रथमा-ऽवान्तरकिट्टौ रसाऽविभागा अनन्तगुणा भवन्ति । ततः क्रोधप्रथमसंग्रहकिट्टिसत्कद्वितीया-ऽवान्तरकिट्टौ रसाऽविभागा अनन्तगुणा भवन्ति । एवमुत्तरोत्तरा-ऽवान्तरकिट्टावनन्तगुणक्रमेण रसाऽविभागास्तावद्वक्तव्याः, यावत् क्रोधप्रथमसंग्रहकिट्टिसत्कचरमावान्तरकिट्टिगतरसा-ऽविभागाः ।

क्रोधप्रथमसंग्रहकिट्टिसत्कचरमाऽवान्तरकिट्टिगतरसाऽविभागतः क्रोधद्वितीयसंग्रहकिट्टिसत्कप्रथमाऽवान्तरकिट्टौ रसाऽविभागा अनन्तगुणा भवन्ति, ततोऽपि क्रोधद्वितीयसंग्रहकिट्टिसत्कद्वितीया-ऽवान्तरकिट्टौ रसाऽविभागा अनन्तगुणा वर्तन्ते । एवमुत्तरोत्तराऽवान्तरकिट्टावनन्तगुणक्रमेण रसाऽविभागास्तावदभिधातव्याः, यावत् क्रोधद्वितीयसंग्रहकिट्टिसत्कचरमा-ऽवान्तरकिट्टिगतरसा-ऽविभागाः ।

क्रोधद्वितीयसंग्रहकिट्टिसत्कचरमा ऽवान्तरकिट्टिगतरसाऽविभागतः क्रोधतृतीयसंग्रहकिट्टिसत्कप्रथमाऽवान्तरकिट्टौ रसाऽविभागा अनन्तगुणा भवन्ति, ततोऽपि क्रोधतृतीयसंग्रहकिट्टिसत्कद्वितीयावान्तरकिट्टौ रसाऽविभागा अनन्तगुणा वर्तन्ते । एवमुत्तरोत्तराऽवान्तरकिट्टावनन्तगुणक्रमेण रसाऽविभागास्तावद्वक्तव्याः, यावत् क्रोधतृतीयसंग्रहकिट्टिसत्कचरमावान्तरकिट्टिगतरसाविभागाः ।

अपूर्वस्पर्धकप्रथमवर्गणायां क्रोधतृतीयसंग्रहकिट्टिसत्कचरमा-ऽवान्तरकिट्टितोऽनन्तगुणा रसाऽविभागा अनुक्तसिद्धाः, किट्टिगताऽनुभागस्य स्पर्धकाऽनुभागतोऽनन्तगुणहीनत्वदर्शनात् । उक्तं च कषायप्राभृतचूर्णौ "पढमसमए णिव्वत्तिदाणं किट्टीणं तिव्वमंददाए अप्पाबहुअं वत्तइस्सामो । तं जहा-लोभस्स जहण्णिया किट्टी थोवा, विदिया किट्टी अणंतगुणा । एवमणंतगुणाए सेढीए जाव पढमाए संगहकिट्टीए चरिमकिट्टि त्ति । तदो विदियाए संगहकिट्टीए जहण्णिया किट्टी अणंतगुणा । एस गुणगारो बारसण्हं पि संगहकिट्टीणं सत्थाणगुणगारेहिं अणंतगुणो । विदियाए संगहकिट्टीए सो चेव कमो जो पढमाए संगहकिट्टीए । तदो पुण विदियाए च तदियाए च संगहकिट्टीणमंतरं तारिसं चेव । एवमेदाओ लोभस्स तिण्णि संगहकिट्टीओ । लोभस्स तदियाए संगहकिट्टीए जा चरिमा किट्टी, तदो मायाए जहण्णकिट्टी अणंतगुणा ।

मायाए वि तेणेव कमेण तिण्णि संगहकिट्टीओ । मायाए जा तदिया संगहकिट्टी, तिस्से चरिमादो किट्टीदो माणस्स जहण्णिया किट्टी अणंतगुणा । माणस्स वि तेणेव कमेण तिण्णि संगहकिट्टीओ । माणस्स जा तदिया संगहकिट्टी, तिस्से चरिमादो किट्टीदो कोधस्स जहण्णिया किट्टी अणंतगुणा । कोहस्स वि तेणेव कमेण तिण्णि संगहकिट्टीओ । कोधस्स तदियाए संगहकिट्टीए जा चरिमकिट्टी, तदो लोभस्स अपुव्वफद्दयाणमादिवग्गणा अणंतगुणा ।" इति । ८६-८७-८८-८६ ।

लोभादीनां किट्टयो-ऽनुभागमाश्रित्य पूर्वपूर्वतो-ऽनन्तगुणा भवन्तीत्युक्तम् । तत्र गुणकारः सर्वत्र न समानः । तद्यथा-लोभस्य प्रथमसंग्रहकिट्टेर्जघन्या-ऽवान्तरकिट्टिगतरसाऽविभागतो द्वितीयाऽवान्तरकिट्टौ रसाऽविभागा अनन्तगुणा भवन्ति, तत्र यो गुणकारः, तेन गुणकारेण द्वितीयाऽवान्तरकिट्टितृतीयाऽवान्तरकिट्टयोरन्तरालगतो गुणकारो न सदृशः, अपि त्वनन्तगुणो भवति, एवमग्रेऽपीति प्रदर्शयितुं किट्टयन्तराणामल्पबहुत्वं प्रतिजानीते

अह संगहकिट्टीअंतराण तहऽवंतरंतराण खलु ।
भणिहामो अप्पाबहुअं जं अत्थि सुअअणुरूवं ॥६०॥

अथ संग्रहकिट्टयन्तराणां तथा-ऽवान्तरान्तराणां खलु ।
भणिष्यामो-ऽल्पबहुत्वं यदस्ति श्रुतानुरूपम् ॥ ६० ॥ इति पदसंस्कारः ।

'अह' इत्यादि, तत्र किट्टयन्तरं नाम द्वयोः किट्टयोरन्तरालगतो गुणकारः । किमुक्तं भवति ? विवक्षितकिट्टितस्तदनन्तरकिट्टिं लब्धुं यो गुणकारो युज्यते, स किट्टिगुणकारः किट्टयन्तरमुच्यते, किट्टिद्वया-ऽन्तरालप्रमाणसूचको गुणकारः किट्टयन्तरमिति संक्षेपः ।

ननु किट्टयन्तरशब्देनोपरितनकिट्टिगतरसाऽविभागतोऽधस्तनकिट्टिगतरसाऽविभागान् व्यवकलय्यैकोनशेषराशिः कुतो न गृह्यते ? एकोत्तर-रसाविभागवृद्धिक्रमस्यादर्शनादिति चेत्, शृणुत एतत्समीचीनम् । किन्त्वयं दोष उद्भवति लोभस्य प्रथमसंग्रहकिट्टिसत्कचरमाऽवान्तरकिट्टिगत-रसाविभागान् द्वितीयसंग्रहकिट्टिसत्कप्रथमाऽवान्तरकिट्टिगतरसाऽविभागतो विशोध्यैकोनशेषं प्रथमसंग्रहकिट्टयन्तरं मन्येत, द्वितीयसंग्रहकिट्टिसत्कप्रथमाऽवान्तरकिट्टिगतरसाऽविभागांश्च द्वितीय-संग्रहकिट्टिसत्कद्वितीया-ऽवान्तरकिट्टिगतरसा-ऽविभागतो व्यवकलय्यैकोनशेषं द्वितीयसंग्रहकिट्टि-गतप्रथमाऽवान्तरकिट्टयन्तरमभ्युपगम्येत, तर्हि प्रथमसंग्रहकिट्टयन्तरतो द्वितीयसंग्रहकिट्टिगतप्रथमा-ऽवान्तरकिट्टयन्तरमनन्तगुणं स्यात् ।

न चा-ऽस्तु प्रथमसंग्रहकिट्टयन्तरतो द्वितीयसंग्रहकिट्टिप्रथमाऽवान्तरकिट्टयन्तरमनन्त-गुणमिति वाच्यम्, विरोधोपलम्भात् । तथाहि अग्रे क्रोधस्य तृतीयसंग्रहकिट्टिगतचरमाऽवान्तर-

किट्ट्यन्तरतोऽप्यनन्तगुणं प्रथमसंग्रहकिट्ट्यन्तरं भवतीति वक्ष्यते, तेन सह विरोधः स्यात्। तस्मादत्र किट्ट्यन्तरशब्देन किट्टिगुणकारो ग्राह्यः।

तच्च किट्ट्यन्तरं द्विविधम्, स्वस्थानपरस्थानगुणकारभेदेनाऽवान्तरकिट्ट्यन्तरसंग्रहकिट्ट्यन्तरभेदात्। तत्राऽवान्तरकिट्ट्यन्तरं नाम यस्यां कस्याञ्चित् संग्रहकिट्टौ संलग्नयोर्द्वयोरवान्तरकिट्ट्योरन्तरालगतः स्वस्थानगुणकारः। एकैकस्यां च संग्रहकिट्टौ अवान्तरकिट्टीनामभव्येभ्योऽनन्तगुणत्वात् सिद्धाऽनन्तभागमात्रत्वाच्चावान्तरकिट्ट्यन्तराण्यनन्तानि भवन्ति, रूपोनाऽवान्तरकिट्टिराशेरवान्तरकिट्ट्यन्तरत्वेन दर्शनात्। कषायप्राभृतचूर्णिकारास्तु किट्ट्यन्तराणि भणन्ति, न त्ववान्तरकिट्ट्यन्तराणि। तथा चात्र कषायप्राभृतचूर्णि **"एक्किक्किस्से संगहकिट्टीए अणंताओ किट्टीओ। तासिमंतराणि वि अणंताणि। तेसिमंतराणं सण्णा किट्टीअंतराइणाम।"** इति। इह त्ववान्तरकिट्टीनामन्तराणि अवान्तरकिट्ट्यन्तराणीति व्युत्पत्तेर्बालजीवबोधाय-ऽवान्तरकिट्ट्यन्तराणीत्युक्तम्, वस्तुतस्तूभयोरभेदः।

संग्रहकिट्ट्यन्तरं नाम विवक्षितसंग्रहकिट्टिगतचरमाऽवान्तरकिट्टि-तदुत्तरसंग्रहकिट्टिगतप्रथमाऽवान्तरकिट्ट्योरन्तरालगतः परस्थानगुणकारः। संग्रहकिट्टीनां द्वादशत्वादन्तराणां च रूपोनसंग्रहकिट्टिराशित्वात् संग्रहकिट्ट्यन्तराण्येकादश भवन्ति। उक्तं च कषायप्राभृतचूर्णौ- **"संगहकिट्टीए च अंतराणि एक्कारस, तेसिं सण्णा संगहकिट्टीअंतराइणाम।"** इति।

अथ द्विविधानां किट्ट्यन्तराणामल्पबहुत्वं भणितुं प्रतिजानीते-'अह' इत्यादि, अथशब्दोऽधिकारान्तरसूचकः, संग्रहकिट्ट्यन्तराणां तथा 'अवान्तरान्तराणाम्' अवान्तरकिट्ट्यन्तराणां खलु 'अल्पबहुत्वं' स्तोकबहुत्वं 'भणिष्यामः' प्ररूपयिष्यामः। 'जं' इत्यादि, यदल्पबहुत्वं 'श्रुतानुरूपं' कषायप्राभृतचूर्ण्यादिग्रन्थानुसारमस्ति, एतेनाऽल्पबहुत्वस्य कपोलकल्पितत्वं निरस्तम् ॥९०॥

अथ प्रतिज्ञाताऽल्पबहुत्वं विभणिषुराह

तत्थ य लोहपढमऽवंतरकिट्टीअंतराउ आढविऊणं।
कोहचरिमऽवंतरकिट्टिअंतरं जावऽणंतगुणिअं णेयं ॥६१॥ (आर्यागीतिः)
तो लोहस्स पढमसंगहकिट्टीअंतरं अणंतगुणं।
तो बीयअंतरमह तइयकिट्टीअंतरं अणंतगुणं ॥६२॥ (गीतिः)
अह लोहमायाणंतरं अणंतगुणिअं तहेवियराण।
कोहचरिमाउ लोहअपुव्वाइमवग्गणान्तरं विण्णेयं ॥६३॥ (आर्यागीतिः)

तत्र च लोभप्रथमाऽवान्तरकिट्ट्यन्तरादारभ्य ।
क्रोधचरमावान्तरकिट्ट्यन्तरं यावदनन्तगुणितं ज्ञेयम् ॥६१॥
तस्माल्लोभस्य प्रथमसंग्रहकिट्ट्यन्तरमनन्तगुणम् ।
तस्माद् द्वितीयाऽन्तरमथ तृतीयकिट्ट्यन्तरमनन्तगुणम् ॥६२॥
अथ लोभमाययोरन्तरमनन्तगुणितं तथैवेतरेषाम् ।
क्रोधचरमाल्लोभा-ऽपूर्वादित्रगणा-ऽन्तरं विज्ञेयम् ॥६३॥ इति पदसंस्कार ।

'तत्थ य' इत्यादि, 'तत्र च' अल्पबहुत्वप्ररूपणायां च 'लोभप्रथमाऽवान्तरकिट्ट्यन्तराद्' -लोभप्रथमसंग्रहकिट्टिगतप्रथमाऽवान्तरकिट्ट्यन्तराद् आरभ्य 'क्रोधचरमाऽवान्तरकिट्ट्यन्तरं' क्रोधतृतीयसंग्रहकिट्टिगतचरमा-ऽवान्तरकिट्ट्यन्तरं यावत् क्रमेणाऽनन्तगुणितं ज्ञेयम् उत्तरोत्तरा-वान्तरकिट्ट्यन्तरमिति शेषः। तथाहि लोभस्य प्रथमसंग्रहकिट्टिगतप्रथमा-ऽवान्तरकिट्टिगतरसाऽ-विभागा येन गुणकारेण गुणिता लोभस्य प्रथमसंग्रहकिट्टिगतद्वितीयाऽवान्तरकिट्टिगतरसाऽविभागा भवन्ति, स गुणकारः संज्वलनलोभस्य प्रथमसंग्रहकिट्टौ प्रथममवान्तरकिट्ट्यन्तरमुच्यते, तच्च सर्वस्तोकम्, उपरि भण्यमानपदानां प्रभूतत्वात् ।

ततो लोभस्य प्रथमसंग्रहकिट्टौ द्वितीया-ऽवान्तरकिट्ट्यन्तरमनन्तगुणं भवति । संज्वलन-लोभस्य प्रथमसंग्रहकिट्टिसत्कद्वितीयाऽवान्तरकिट्टिगतरसाऽविभागा येन गुणकारेण गुणिताः सन्तः प्रथमसंग्रहकिट्टिसत्कतृतीया-ऽवान्तरकिट्टिगतरसाऽविभागा भवन्ति, स गुणकारो द्वितीयमवान्तर-किट्ट्यन्तरमुच्यते, तच्च पूर्वपदतोऽनन्तगुणं भवतीति फलितार्थः ।

ततो लोभस्य प्रथमसंग्रहकिट्टौ तृतीयमवान्तरकिट्ट्यन्तरमनन्तगुणं निश्चेतव्यम् । तत उत्तरोत्तराऽवान्तरकिट्ट्यन्तरमनन्तगुणक्रमेण तावदभिधातव्यम्, यावत् प्रथमसंग्रहकिट्टौ द्विचर-मा-ऽवान्तरकिट्ट्यन्तरतश्चरमाऽवान्तरकिट्ट्यन्तरमनन्तगुणं भवति । प्रथमसंग्रहकिट्टिसत्कद्विचरमा-वान्तरकिट्टिगतरसाऽविभागा येन गुणकारेण गुणिताः सन्तः प्रथमसंग्रहकिट्टिसत्कचरमा-ऽवान्तर-किट्टिगतरसाऽविभागा भवन्ति, स गुणकारश्चरमाऽवान्तरकिट्ट्यन्तरमुच्यते । अत्राह प्रेरकः—ननु यथा प्रथमाऽवान्तरकिट्टि-द्वितीया-ऽवान्तरकिट्ट्योरन्तरालगतगुणकारः प्रथममवान्तरकिट्ट्यन्तरमुच्यते, तथा द्विचरमाऽवान्तरकिट्टिचरमाऽवान्तरकिट्ट्योरन्तरालगतो गुणकारो द्विचरमाऽवान्तरकिट्ट्यन्तरं वक्तव्यम्, चरमाऽवान्तरकिट्ट्यन्तरं कुतो व्यपदिश्यते ? । अत्रोच्यते प्रथमद्वितीयादीनि पदानि नाऽवान्तरकिट्टीनां विशेषणानि, अपि त्ववान्तरकिट्ट्यन्तराणां विशेषणानि । तेन प्रथमा-ऽवान्तरकिट्टिद्वितीयाऽवान्तरकिट्ट्योरन्तरालगतगुणकारः प्रथममवान्तरकिट्ट्यन्तरम्, ततोऽग्रे द्वितीयमवान्तरकिट्ट्यन्तरम् । एवं क्रमेणाऽन्त्यमवान्तरकिट्ट्यन्तरं चरममवान्तरकिट्ट्यन्तरमुच्यते, कर्मधारयसमासात् पुनश्चरमाऽवान्तरकिट्ट्यन्तरमिति प्रयुज्यते ।

अथ लोभस्य प्रथमसंग्रहकिट्टिगतचरमाऽवान्तरकिट्टयन्तरतो लोभस्य द्वितीयसंग्रहकिट्टौ प्रथमाऽवान्तरकिट्टयन्तरमनन्तगुणं भवति। किमुक्तं भवति? उच्यते द्वितीयसंग्रहकिट्टिसत्कप्रथमाऽवान्तरकिट्टिगतरसाऽविभागा येन गुणकारेण गुणिताः सन्तो द्वितीयसंग्रहकिट्टिसत्कद्वितीया-ऽवान्तरकिट्टिगतरसाऽविभागा भवन्ति, स गुणकारो द्वितीयसंग्रहकिट्टौ प्रथमा-ऽवान्तरकिट्टयन्तरमुच्यते। तच्च प्रथमसंग्रहकिट्टिगतचरमाऽवान्तरकिट्टयन्तरतोऽनन्तगुणं भवति।

न च प्रथमसंग्रहकिट्टिसत्कचरमाऽवान्तरकिट्टिगतरसाऽविभागा येन गुणकारेण गुणिताः सन्तो द्वितीयसंग्रहकिट्टिसत्कप्रथमाऽवान्तरकिट्टिगतरसाऽविभागा भवन्ति, स गुणकारोऽत्र कुतो न गृह्यते? इति वाच्यम्, तस्य संग्रहकिट्टयन्तरव्यपदेशभाक्त्वेनोपरि भणिष्यमानक्रोधतृतीयसंग्रहकिट्टिसत्कचरमाऽवान्तरकिट्टयन्तरतोऽपि बृहत्तरत्वात्। एवं सर्वत्र संग्रहकिट्टयन्तरस्य बृहत्तरत्वादवान्तरकिट्टयन्तरेषु भणितेष्वेव संग्रहकिट्टयन्तराणि यथास्थानमग्रे वक्ष्यन्ते।

लोभस्य द्वितीयसंग्रहकिट्टिगतप्रथमा-ऽवान्तरकिट्टयन्तरतो द्वितीयसंग्रहकिट्टिगतद्वितीयाऽवान्तरकिट्टयन्तरमनन्तगुणं भवति। एवमनन्तरानन्तरेणाऽनन्तगुणक्रमेण तावद्वक्तव्यम्, यावद् द्वितीयसंग्रहकिट्टिगतचरमाऽवान्तरकिट्टयन्तरम्।

लोभस्य द्वितीयसंग्रहकिट्टिगतचरमाऽवान्तरकिट्टयन्तरतस्तृतीयसंग्रहकिट्टौ प्रथमाऽवान्तरकिट्टयन्तरमनन्तगुणं भवति। ततोऽनन्तरानन्तरेणाऽनन्तगुणक्रमेण तावद्वक्तव्यम्, यावद् लोभस्य तृतीयसंग्रहकिट्टौ चरमाऽवान्तरकिट्टयन्तरम्।

ततो मायायाः प्रथमसंग्रहकिट्टौ प्रथमाऽवान्तरकिट्टयन्तरमनन्तगुणम्। ततो मायायाः प्रथमसंग्रहकिट्टौ द्वितीयाऽवान्तरकिट्टयन्तरमनन्तगुणम्। एवमनन्तगुणक्रमेण तावद्वक्तव्यम्, यावत् प्रथमसंग्रहकिट्टौ चरमाऽवान्तरकिट्टयन्तरम्।

ततो मायाया द्वितीयसंग्रहकिट्टौ प्रथमाऽवान्तरकिट्टयन्तरमनन्तगुणम्। ततोऽपि मायाया द्वितीयसंग्रहकिट्टौ द्वितीयाऽवान्तरकिट्टयन्तरमनन्तगुणम्। एवमनन्तरानन्तरेणाऽनन्तगुणं तावद्वक्तव्यम्, यावद् मायाया द्वितीयसंग्रहकिट्टौ चरमाऽवान्तरकिट्टयन्तरम्।

ततो मायायास्तृतीयसंग्रहकिट्टौ प्रथमाऽवान्तरकिट्टयन्तरमनन्तगुणं भवति। ततो मायायास्तृतीयसंग्रहकिट्टौ द्वितीयाऽवान्तरकिट्टयन्तरमनन्तगुणं भवति। एवमुत्तरोत्तराऽवान्तरकिट्टयन्तरमनन्तगुणं तावद्वक्तव्यम्, यावद् मायायास्तृतीयसंग्रहकिट्टौ चरमाऽवान्तरकिट्टयन्तरम्।

ततो मानस्य प्रथमसंग्रहकिट्टौ प्रथमाऽवान्तरकिट्टयन्तरमनन्तगुणम्। ततो मानस्य प्रथमसंग्रहकिट्टौ द्वितीयाऽवान्तरकिट्टयन्तरमनन्तगुणं भवति। एवमुत्तरोत्तराऽवान्तरकिट्टयन्तरमनन्तगुणं तावद्वक्तव्यम्, यावद् मानस्य प्रथमसंग्रहकिट्टौ चरमाऽवान्तरकिट्टयन्तरम्।

ततो मानस्य द्वितीयसंग्रहकिट्टौ प्रथमा-ऽवान्तरकिट्ट्यन्तरमनन्तगुणम् । ततो मानस्य द्वितीयसंग्रहकिट्टौ द्वितीयाऽवान्तरकिट्ट्यन्तरमनन्तगुणं भवति । एवमुत्तरोत्तराऽवान्तरकिट्ट्यन्तरमनन्तगुणं तावद्वक्तव्यम्, यावन्मानस्य द्वितीयसंग्रहकिट्टौ चरमाऽवान्तरकिट्ट्यन्तरम् ।

ततो मानस्य तृतीयसंग्रहकिट्टौ प्रथमाऽवान्तरकिट्ट्यन्तरमनन्तगुणम् । ततोऽपि मानस्य तृतीयसंग्रहकिट्टौ द्वितीया-ऽवान्तरकिट्ट्यन्तरमनन्तगुणम् । एवमनन्तरानन्तरेणाऽनन्तगुणं तावद्वक्तव्यम्, यावन्मानस्य तृतीयसंग्रहकिट्टौ चरमाऽवान्तरकिट्ट्यन्तरम् ।

ततः क्रोधस्य प्रथमसंग्रहकिट्टौ प्रथमा-ऽवान्तरकिट्ट्यन्तरमनन्तगुणम् । ततः क्रोधस्य प्रथमसंग्रहकिट्टौ द्वितीयाऽवान्तरकिट्ट्यन्तरमनन्तगुणं भवति । एवमुत्तरोत्तरा-ऽवान्तरकिट्ट्यन्तरमनन्तगुणं तावदभिधातव्यम्, यावत् क्रोधप्रथमसंग्रहकिट्टौ चरमाऽवान्तरकिट्ट्यन्तरम् ।

ततः क्रोधस्य द्वितीयसंग्रहकिट्टौ प्रथमा-ऽवान्तरकिट्ट्यन्तरमनन्तगुणम् । ततः क्रोधस्य द्वितीयसंग्रहकिट्टौ द्वितीया-ऽवान्तरकिट्ट्यन्तरमनन्तगुणम् । एवमनन्तरान्तरेणाऽनन्तगुणं तावभिगदितव्यम्, यावत् क्रोधस्य द्वितीयसंग्रहकिट्टौ चरमाऽवान्तरकिट्ट्यन्तरम् ।

ततः क्रोधस्य तृतीयसंग्रहकिट्टौ प्रथमाऽवान्तरकिट्ट्यन्तरमनन्तगुणम् । ततो-ऽपि क्रोधस्य तृतीयसंग्रहकिट्टौ द्वितीया-ऽवान्तरकिट्ट्यन्तरमनन्तगुणम् । एवमुत्तरोत्तराऽवान्तरकिट्ट्यन्तरमनन्तगुणं तावद् निश्चेतव्यम्, यावत् क्रोधस्य तृतीयसंग्रहकिट्टौ चरमाऽवान्तरकिट्ट्यन्तरम् ।

न्यगादि च कषायप्राभृतचूर्णौ "एदीए परूवणाए किट्टीअंतराणं संगहकिट्टीअंतराणं च अप्पाबहुअं वत्तइस्सामो । तं जहा—लोभस्स पढमाए संगहकिट्टीए जहण्णयं किट्टीअंतरं थोवं, विदियं किट्टीअंतरमणंतगुणं । एवमणंतराणंतरेण गंतूण चरिमकिट्टीअंतरमणंतगुणं । लोभस्स चेव विदियाए संगहकिट्टीए पढमकिट्टीअंतरमणंतगुणं । एवमणंतराणंतरेण जाव चरिमादो त्ति अणंतगुणं । लोभस्स चेव तदियाए संगहकिट्टीए पढमकिट्टीअंतरमणंतगुणं । एवमणंतराणंतरेण गंतूण चरिमकिट्टीअंतरमणंतगुणं । एत्तो मायाए पढमसंगहकिट्टीए पढमकिट्टीअंतरमणंतगुणं । एवमणंतराणंतरेण मायाए वि तिण्हं संगहकिट्टीणं किट्टीअंतराणि जहाकमेण अणंतगुणाए सेढीए णेदव्वाणि । एत्तो माणस्स पढमाए संगहकिट्टीए पढमकिट्टीअंतरमणंतगुणं । माणस्स वि तिण्हं संगहकिट्टीणमंतराणि जहाकमेण अणंतगुणाए सेढीए णेदव्वाणि । एत्तो कोधस्स पढमसंगहकिट्टीए पढमकिट्टीअंतरमणंतगुणं । कोहस्स वि तिण्हं संगहकिट्टीणमंतराणि जहाकमेण जाव चरिमादो अंतरादो त्ति अणंतगुणाए सेढीए णेदव्वाणि ।" इति ।

'तो' इत्यादि, 'तस्मात्' क्रोधतृतीयसंग्रहकिट्टिगतचरमाऽवान्तरकिट्ट्यन्तरात् लोभस्य प्रथमसंग्रहकिट्ट्यन्तरमनन्तगुणं भवति। इदमुक्तं भवति लोभस्य प्रथमसंग्रहकिट्टिसत्कचरमा-ऽवान्तरकिट्टिगतरसाऽविभागा येन गुणकारेण गुणिता द्वितीयसंग्रहकिट्टिसत्कप्रथमाऽवान्तरकिट्टिगतरसाऽविभागा भवन्ति, स परस्थानगुणकारो लोभस्य प्रथमसंग्रहकिट्ट्यन्तरमुच्यते। तच्च चरमस्वस्थानगुणकारलक्षणक्रोधतृतीयसंग्रहकिट्टिसत्कचरमाऽवान्तरकिट्ट्यन्तरतो-ऽनन्तगुणं भवति। अस्मादेव परस्थानगुणकारमाहात्म्यादेकैकस्य कषायस्य तिस्रस्तिस्रः संग्रहकिट्टयः प्ररूपिताः, अन्यथैकैकस्य कषायस्य विभागत्रयं नोपपद्येत।

'तो' इत्यादि, 'तस्मात्' लोभप्रथमसंग्रहकिट्ट्यन्तरात् 'द्वितीयाऽन्तरं' लोभद्वितीयसंग्रहकिट्ट्यन्तरमनन्तगुणं भवति। लोभद्वितीयसंग्रहकिट्टिसत्कचरमाऽवान्तरकिट्टिगतरसाविभागा येन गुणकारेण गुणिता लोभतृतीयसंग्रहकिट्टिसत्कप्रथमाऽवान्तरकिट्टिगतरसाऽविभागा जायन्ते, स गुणकारो लोभस्य द्वितीयसंग्रहकिट्ट्यन्तरमुच्यते, तच्च पूर्वपदतोऽनन्तगुणं भवतीत्यर्थः।

'अह' इत्यादि, अथशब्दोऽनन्तरार्थकः। उक्तं चाऽमरकोशे "**मङ्गलानन्तरारम्भप्रश्नकार्त्स्न्येष्वथो अथ।**" इति। ततश्चायमर्थः लोभस्य द्वितीयसंग्रहकिट्ट्यन्तरतोऽनन्तरं 'तृतीयान्तरं' लोभतृतीयसंग्रहकिट्ट्यन्तरमनन्तगुणं भवति, लोभस्य द्वितीयसंग्रहकिट्ट्यन्तरतस्तृतीयसंग्रहकिट्ट्यन्तरमनन्तगुणं भवतीत्यर्थः। उक्तं च कषायप्राभृतचूर्णौ "**तदो लोभस्स पढमसंगहकिट्टिअंतरमणंतगुणं, विदियसंगहकिट्टिअंतरमणंतगुणं, तदियसंगहकिट्टीअंतरमणंतगुणं।**" इति।

ननु किं नाम लोभस्य तृतीयसंग्रहकिट्ट्यन्तरम्? किं लोभस्य तृतीयसंग्रहकिट्टिसत्कचरमाऽवान्तरकिट्टिगतरसाऽविभागा येन गुणकारेण गुणिताः सन्तो लोभस्यैवा-ऽपूर्वस्पर्धकप्रथमवर्गणागतरसाविभागा भवन्ति, स गुणकारो लोभतृतीयसंग्रहकिट्ट्यन्तरपदेन गृह्यते? आहोस्वित् लोभस्य तृतीयसंग्रहकिट्टिसत्कचरमाऽवान्तरकिट्टिगतरसाऽविभागा येन गुणकारेण गुणिता मायायाः प्रथमसंग्रहकिट्टिसत्कप्रथमा-ऽवान्तरकिट्टिगतरसाऽविभागा भवन्ति, स गुणकारो गृह्यते? न तावत् प्रथमविकल्पः, संग्रहकिट्ट्यन्तरा-ऽल्पबहुत्वप्रसङ्गे संग्रहकिट्टिस्पर्धकान्तरा-ऽल्पबहुत्वस्या-ऽसंगतत्वात्। यथाकथं संगतौ निरूपितायामप्युपरितनपदस्य मायाप्रथमसंग्रहकिट्ट्यन्तरलक्षणस्याऽस्मात् पदादनन्तगुणत्वं न सिध्येत्, किट्टिस्पर्धकाऽन्तरतः किट्ट्यन्तरस्या-ऽनन्तगुणहीनत्वसंभवेन विरोधोपलम्भात्। नाऽपि द्वितीयविकल्पः, उपरि भण्यमानेन लोभमाययोरन्तरमनन्तगुणमित्यनेन पदेन सिद्धत्वात् प्रस्तुतपदस्य पुनरुक्तदोषवत्त्वेन वैयर्थ्यात्। न च पुनरुक्तदोषमपाकर्तुं लोभमाययोरन्तरमनन्तगुणमित्येतद् लोभसत्कर्म येन गुणकारेण गुणितं मायासत्कर्म भवति, स गुणकारो लोभमाययोरन्तरमिति व्याख्येयमिति वाच्यम्, सत्कर्माऽन्तरतः किट्ट्यन्तरस्या-ऽनन्तगुणहीनत्वदर्शनेनोपरि भण्यमानस्य मायाप्रथमसंग्रहकिट्ट्यन्तरस्य लोभमायाऽन्तरतोऽनन्तगुणत्वाऽसंभवात्।

अत्रोच्यते (१) लोभस्य तृतीयसंग्रहकिट्ट्यन्तरमित्यनेन पदेन लोभस्य द्वितीयसंग्रहकिट्टिसत्कचरमाऽवान्तरकिट्टिगतरसाऽविभागा येन गुणकारेण गुणिता लोभस्य तृतीयसंग्रहकिट्टिसत्कचरमाऽवान्तरकिट्टिगतरसाऽविभागा भवन्ति, स गुणकारो ग्राह्यः। एवंविधगुणकाररूपं तृतीयसंग्रहकिट्ट्यन्तरं द्वितीयसंग्रहकिट्ट्यन्तरतोऽनन्तगुणं भवति❀। तथाहि तृतीयसंग्रहकिट्टिगतसर्वाऽवान्तरकिट्ट्यन्तराणि परस्परं गुणयितव्यानि, गुणितानि च पुनर्द्वितीयसंग्रहकिट्ट्यन्तरेण गुणयितव्यानि, ततो लब्धं गुणनफलमत्र गुणकाररूपं तृतीयसंग्रहकिट्ट्यन्तरं बोद्धव्यम्। तेन तृतीयसंग्रहकिट्ट्यन्तरं सुतरां द्वितीयसंग्रहकिट्ट्यन्तरतोऽनन्तगुणं सिध्यति, परस्परगुणित-तृतीयसंग्रहकिट्टिसत्क-सर्वाऽवान्तरकिट्ट्यन्तरैर्द्वितीयसंग्रहकिट्ट्यन्तरस्य गुणितत्वात्। गुणकारोऽत्र तृतीयसंग्रहकिट्टिसत्कपरस्परगुणितसर्वाऽवान्तरकिट्ट्यन्तरमात्रो ज्ञातव्यः। न चेदं न प्रतिपादनीयम्, अनुक्तसिद्धत्वादिति वाच्यम्, लोभमाययोरन्तरमाहात्म्यदर्शनाय प्रतिपादितत्वात्। तथाहि-द्वितीयसंग्रहकिट्ट्यन्तरगुणिततृतीयसंग्रहकिट्टिगतपरस्परगुणितसर्वाऽवान्तरकिट्ट्यन्तरलक्षणतृतीयसंग्रहकिट्ट्यन्तरतोऽपि लोभस्य तृतीयसंग्रहकिट्टिसत्कचरमाऽवान्तरकिट्टिगतरसाऽविभागा येन गुणकारेण गुणिता मायायाः प्रथमसंग्रहकिट्टिसत्कप्रथमाऽवान्तरकिट्टिगतरसाऽविभागा भवन्ति, तद्गुणकारस्वरूपं लोभमायाऽन्तरमनन्तगुणं भवति। अतः साफल्यमस्य पदस्य। 'अह तइय०' इत्यादीनां मूलगाथोक्ता-ऽक्षराणामर्थस्त्वित्थं कार्यः 'अथ' अथशब्दस्या-ऽनन्तरार्थकत्वात् द्वितीयसंग्रहकिट्ट्यन्तरतोऽनन्तरं तृतीयसंग्रहकिट्ट्यन्तरमनन्तगुणं भवति, अथ ततो-ऽनन्तरं लोभमाययोरन्तरमनन्तगुणितं भवति। द्वितीयसंग्रहकिट्ट्यन्तरतो लोभतृतीयसंग्रहकिट्ट्यन्तरगुणं भवति। ततोऽपि लोभमाययोरन्तरमनन्तगुणं भवतीत्यर्थः।

(२) अथवा लोभस्य तृतीयसंग्रहकिट्टिसत्क-चरमाऽवान्तरकिट्टिगतरसाऽविभागा येन गुणकारेण सङ्गुणिता लोभस्याऽपूर्वस्पर्धकसत्कप्रथमवर्गणागत-रसाऽविभागा भवन्ति, स गुणकारोऽत्र तृतीयसंग्रहकिट्ट्यन्तरपदेन ग्राह्यः, सङ्गतिस्तु किट्टिस्पर्धकयोस्तत्तत्कषायसम्बन्धित्वाद् बोध्या। लोभमायान्तरपदेन च लोभस्य तृतीयसंग्रहकिट्टिसत्कचरमाऽवान्तरकिट्टिगतरसाऽविभागा येन गुणकारेण गुणिता मायाप्रथमसंग्रहकिट्टिसत्कप्रथमाऽवान्तरकिट्टिगतरसाऽविभागा भवन्ति, स गुणकारो बोद्धव्यः। न चेत्थं व्याख्याते लोभस्य तृतीयसंग्रहकिट्ट्यन्तरतो लोभमाययोरन्तरमनन्तगुणं न स्यात्, संग्रहकिट्ट्यपूर्वस्पर्धकाऽन्तरतो किट्ट्यन्तरस्याऽनन्तगुणहीनत्वादिति वाच्यम्, लोभस्य द्वितीयसंग्रहकिट्ट्यन्तरतो लोभस्य तृतीयसंग्रहकिट्ट्यन्तरमनन्तगुणं प्ररूप्य ततः पुनर्लोभस्य द्वितीयसंग्रहकिट्ट्यन्तरं प्रति निवृत्य लोभस्य द्वितीयसंग्रहकिट्ट्यन्तरतो लोभमाययोरन्तरमनन्तगुणं

❀ अभ्यधायि च जयधवलाकारैरपि "लोभस्स तदियसंगहकिट्टीअंतरमिति वुत्ते लोभस्स विदियसंगहकिट्टीए चरिमकिट्टी जेण गुणकारेण गुणिदा लोभस्स चेव तदियसंगहकिट्टीए चरिमकिट्टिं पावेदि, सो गुणगारो घेत्तव्वो, पुव्वुत्तविदियसंगहकिट्टी-अंतरादो परिप्फुडमेवेदस्साणंतगुणत्तदंसणादो। को एत्थ गुणगारो? तदियसंगहकिट्टीए पविट्ठासेससत्थाणगुणगाराणमण्णोण्णसंवग्गो।" इति।

भवतीत्यभिप्रेतत्वात्卐। "अह तइय०" इत्याद्यक्षराणामर्थस्त्वेवं कार्यः 'अथ' लोभद्वितीय-संग्रहकिट्टयन्तरतोऽनन्तरं तृतीयसंग्रहकिट्टयन्तरमनन्तगुणं भवति, 'अथ' अथशब्दो विकल्पार्थकः। यदुक्तं मेदिनीकोशे

"अथाथो संशये स्यातामधिकारे च मङ्गले।
विकल्पानन्तरप्रश्नकात्स्न्यारम्भसमुच्चये ॥ १ ॥" इति ॥

ततश्चायमर्थः अथवा द्वितीयसंग्रहकिट्टयन्तरतो लोभमाययोरन्तरमनन्तगुणितं भवति।

(३) अथवा लोभस्य तृतीयसंग्रहकिट्टयन्तरमित्यनेन लोभस्य तृतीयसंग्रहकिट्टिसत्कचरमाऽवान्तरकिट्टिगतरसाऽविभागा येन गुणकारेण गुणिता मायायाः प्रथमसंग्रहकिट्टिसत्कप्रथमाऽवान्तरकिट्टिगतरसाऽविभागा भवन्ति, स गुणकारोऽत्र ग्राह्यः, लोभस्य मायायाश्चाऽन्तरमित्यनेनाऽपि स एव गुणकारो व्याख्येयः। न च तथाविधव्याख्याने पुनरुक्तदोष उद्भवतीति वाच्यम्, पूर्वं सामान्येन **अथ तृतीयसंग्रहकिट्टयन्तरमनन्तगुणमित्यभिधाय तस्यैव अथ लोभमाययोरन्तरमनन्तगुणं भवतीति** व्याख्यानरूपेणाऽभिहितत्वात्❀।

मूलगाथोक्ता-ऽक्षरार्थस्त्वेवम् अथ द्वितीयसंग्रहकिट्टयन्तरतोऽनन्तरं तृतीयसंग्रहकिट्टयन्तरमनन्तगुणम्, 'अथ' द्वितीयसंग्रहकिट्टयन्तरतो-ऽनन्तरं लोभस्य मायायाश्चाऽन्तरमनन्तगुणितमित्यर्थ इति शेषः❀। एवमग्रेऽपि यथास्थानं समाधानत्रिकं भावनीयम्, विरोधाऽनुपलम्भात्, वस्तुतः केवलज्ञानिनां केवलादर्शे एक एव विकल्पः प्रतिबिम्बितो भवति, तथा स एव साधुः, किन्तु तं ते एव जानन्ति, बहुश्रुता वा। साम्प्रतं तेषामभावात् न जानीमः, को विकल्पो तेषां ज्ञानादर्शे प्रतिबिम्बित इति कृत्वा त्रयो विकल्पाः प्रतिपादिताः।

एतानि त्रीण्यपि समाधानान्यवलम्ब्याऽग्रे स्थापना प्रदर्शयिष्यते।

'अह' इत्यादि, अथ लोभमाययोरन्तरमनन्तगुणितम्। उक्तं च **कषायप्राभृतचूर्णौ**—**"लोभस्स मायाए च अंतरमणंतगुणं।"** इति सुगममेतत्, प्राग् विस्तरतो भावितत्वात्।

अथ शेषकषायेष्वतिदिदिक्षुराह 'तहेव' इत्यादि, 'तथैव' यथा लोभस्य संग्रहकिट्टयन्तराणि व्याख्यातानि, तथैव 'इतरेषां' माया-मान-क्रोधलक्षणानां कषायाणां संग्रहकिट्टयन्तराणि

卐तथा चोक्तं जयधवलायामपि "अथवा तदियसंगहकिट्टीए अपुव्वफद्दयादिवग्गणाए च अंतरं तदियसंगहकिट्टीअंतरमिदि घेत्तव्वं। संगहकिट्टीफद्दयंतरस्स वि कथंचि संगहकिट्टीअंतरत्तेण णिद्देसे विरोहाभावादो। ण तहाब्भुवगमे एत्तो उवरि मायालोभाणमंतरस्स अणंतगुणत्तविरोहो चोइज्जसकणिज्जो, लोभस्स सत्थाणप्पाबहुए भण्णमाणे एवं होदि त्ति अप्पणो अपुव्वफद्दएहिं संधाणं कादूण पुणो तत्तो णियत्तिदूण इट्ठिमपदं चेव घेत्तूण तत्तो लोभमायाणमंतरस्साणंतगुणत्तेण णिद्देसावलंबणे तद्दोसाणुवलंभादो।" इति।

❀यद्वादि च जयधवलाकारैरपि "अथवा लोभस्स तदियसंगहकिट्टीअंतरमणंतगुणं इदि वुत्ते लोभमायाणमेव तदियपढमसंगहकिट्टीणं सण्णिगुणगारो गहेयव्वो। ण च तहावलंबिज्जमाणे उवरिमसुत्तेण पुणरुत्तभावो वि, तदियसंगहकिट्टीअंतरमणंतगुणमिदि सामण्णणिद्देसेण त कदममिदि संदेहे समुप्पण्णे तण्णिरायरणमुहेण लोभमायाणमंतरमेव तदियसंगहकिट्टीअंतरमिह विवक्खियं, ण तत्तो अण्णमिदि पदुप्पायणट्ठमुवरिमसुत्तारंभे पुणरुत्तदोसासंभवादो।" इति।

व्याख्येयानि । लोभं प्ररूपयता लोभस्य मायायाश्चाऽन्तरमुक्तम्, तत्र क्रोधे यो विशेषस्तं दर्शयति 'कोहचरिमाउ' इत्यादि, क्रोधचरमकिट्टे: क्रोधतृतीयसंग्रहकिट्टिचरमावान्तरकिट्टित आरभ्य 'लोभाऽपूर्वादिवर्गणान्तरं' लोभप्रथमापूर्वस्पर्धकप्रथमवर्गणां लब्धुं यो गुणकारो योज्यते, स इत्यर्थः, अनन्तगुणं 'विज्ञेयम्' विशेषतोऽवयेयम् ।

भावार्थः पुनरयम् लोभमाययोरन्तरतो मायायाः प्रथमसंग्रहकिट्टयन्तरमनन्तगुणं भवति, मायायाः प्रथमसंग्रहकिट्टिसत्कचरमाऽवान्तरकिट्टिगतरसाऽविभागा येन गुणकारेण गुणिता मायाया द्वितीयसंग्रहकिट्टिसत्कप्रथमा-ऽवान्तरकिट्टिगतरसा-ऽविभागा भवन्ति, स गुणकारो मायायाः प्रथमसंग्रहकिट्टयन्तरमुच्यते । तच्च पूर्वपदतोऽनन्तगुणं भवतीत्यर्थः ।

ततोऽपि मायाया द्वितीयसंग्रहकिट्टयन्तरमनन्तगुणम्, मायाया द्वितीयसंग्रहकिट्टिसत्कचरमा-ऽवान्तरकिट्टिगतरसाऽविभागा येन गुणकारेण गुणिता मायायास्तृतीयसंग्रहकिट्टिसत्कप्रथमाऽवान्तर-किट्टिगतरसाऽविभागा भवन्ति, स गुणकारो द्वितीयसंग्रहकिट्टयन्तरमुच्यते; तच्च पूर्वपदतोऽनन्तगुणं भवति । उक्तं च कषायप्राभृतचूर्णौ **"मायाए पढमसंगहकिट्टिअंतरमणंतगुणं, विदि-यसंगहकिट्टीअंतरमणंतगुणं ।"** इति ।

ततो मायायास्तृतीयसंग्रहकिट्टयन्तरमनन्तगुणम्, अथ मायाया मानस्य चाऽन्तरमनन्तगुणम् । उक्तं च कषायप्राभृतचूर्णौ **"तदियसंगहकिट्टीअंतरमणंतगुणं, मायाए माण-स्स च अंतरमणंतगुणं ।"** इति । लोभवद् व्याख्येयम्, नवरं लोभस्थाने माया वक्तव्या, मायास्थाने च मानो भणनीयः ।

ततोऽपि मानस्य प्रथमसंग्रहकिट्टयन्तरमनन्तगुणम्, संज्वलनमानस्य प्रथमसंग्रहकिट्टि-सत्कचरमाऽवान्तरकिट्टिगतरसाविभागा येन गुणकारेण गुणिता मानस्य द्वितीयसंग्रहकिट्टिसत्क-प्रथमाऽवान्तरकिट्टिगतरसाविभागा भवन्ति, स गुणकारो मानस्य प्रथमसंग्रहकिट्टयन्तरं भण्यते, तच्च पूर्वपदतोऽनन्तगुणं भवतीति भावः ।

ततोऽपि मानस्य द्वितीयसंग्रहकिट्टयन्तरमनन्तगुणं भवति, मानस्य द्वितीयसंग्रहकिट्टिसत्क-चरमाऽवान्तरकिट्टिगतरसाविभागा येन गुणकारेण गुणिता मानस्य तृतीयसंग्रहकिट्टिसत्कप्रथमा-ऽवान्तरकिट्टिगतरसाऽविभागा भवन्ति, स गुणकारो मानस्य द्वितीयसंग्रहकिट्टयन्तरमुच्यते, तच्च पूर्वतोऽनन्तगुणं भवतीत्यर्थः । न्यगादि च कषायप्राभृतचूर्णौ **"माणस्स पढमसंग-हकिट्टीअंतरमणंतगुणं । विदियसंगहकिट्टीअंतरमणंतगुणं ।"** इति ।

ततोऽपि मानस्य तृतीयसंग्रहकिट्टयन्तरमनन्तगुणम्, अथ मानस्य क्रोधस्य चाऽन्तरमनन्तगुणं भवति । उक्तं च कषायप्राभृतचूर्णौ **"तदियसंगहकिट्टीअंतरमणंतगुणं । माणस्स कोहस्स च अंतरमणंतगुणं ।"** इति व्याख्यानं तु लोभवत् कर्तव्यम्, नवरं लोभस्थाने मानः, मायास्थाने च क्रोधो वक्तव्यः ।

ततोऽपि क्रोधस्य प्रथमसंग्रहकिट्ट्यन्तरमनन्तगुणं भवति, क्रोधस्य प्रथमसंग्रहकिट्टिसत्कचरमाऽवान्तरकिट्टिगतरसाऽविभागा येन गुणकारेण गुणिताः क्रोधस्य द्वितीयसंग्रहकिट्टिसत्कप्रथमाऽवान्तरकिट्टिगतरसाऽविभागा भवन्ति, स गुणकारः क्रोधप्रथमसंग्रहकिट्ट्यन्तरं निगद्यते, तच्च पूर्वतोऽनन्तगुणमित्यर्थः। ततोऽपि क्रोधस्य द्वितीयसंग्रहकिट्ट्यन्तरमनन्तगुणं भवति क्रोधस्य द्वितीयसंग्रहकिट्टिसत्कचरमाऽवान्तरकिट्टिगतरसाऽविभागा येन गुणकारेण गुणिताः क्रोधस्य तृतीयसंग्रहकिट्टिसत्कप्रथमाऽवान्तरकिट्टिगतरसाऽविभागा भवन्ति, स गुणकारः क्रोधस्य द्वितीयसंग्रहकिट्ट्यन्तरमभिधीयते, तच्च पूर्वपदतोऽनन्तगुणं भवतीत्यर्थः। उक्तं च कषायप्राभृतचूर्णौ **"कोहस्स पढमसंगहकिट्टी-अंतरमणंतगुणं, विदियसंगहकिट्टीअंतरमणंतगुणं।"** इति।

ततः क्रोधस्य तृतीयसंग्रहकिट्ट्यन्तरमनन्तगुणम्, अथ क्रोधचरमावान्तरकिट्टि-लोभप्रथमाऽपूर्वस्पर्धकप्रथमवर्गणाऽन्तरमनन्तगुणम्। उक्तं च कषायप्राभृतचूर्णौ **"तदियसंगहकिट्टी-अंतरमणंतगुणं, कोधस्स चरिमादो किट्टीदो लोभस्स अपुव्वफद्दयाणमादिवग्गणाए अंतरमणंतगुणं।"** इति। व्याख्यानं तु लोभतृतीयसंग्रहकिट्टिवत् समाधानत्रिकमाश्रित्य कर्तव्यम्, नवरं लोभस्थाने क्रोधो वक्तव्यः, मायायाश्च स्थाने लोभाऽपूर्वस्पर्धकप्रथमवर्गणा कथनीया। तथाहि—क्रोधस्य तृतीयसंग्रहकिट्ट्यन्तरमित्यनेन क्रोधस्य द्वितीयसंग्रहकिट्टिसत्कचरमा-ऽवान्तरकिट्टिगतरसाऽविभागा येन गुणकारेण गुणिताः क्रोधस्य तृतीयसंग्रहकिट्टिसत्कचरमाऽवान्तरकिट्टिगतरसाऽविभागा भवन्ति, स गुणकारो ग्राह्यः। स च क्रोधस्य द्वितीयसंग्रहकिट्ट्यन्तरतो-ऽनन्तगुणो भवति, ततोऽपि क्रोधस्य तृतीयसंग्रहकिट्टिसत्कचरमावान्तरकिट्टिगतरसाऽविभागा येन गुणकारेण गुणिता लोभस्याऽपूर्वस्पर्धकप्रथमवर्गणागतरसाऽविभागा भवन्ति, तद्गुणकाररूपं क्रोधतृतीयसंग्रह-किट्टिसत्कचरमा-ऽवान्तरकिट्टि-लोभा-ऽपूर्वस्पर्धकप्रथमवर्गणा-ऽन्तरमनन्तगुणं भवतीति प्रथमविकल्पः।

प्रथमसमाधानमाश्रित्या-ऽसत्कल्पनया स्थापना

		किट्ट्यन्तराल्पबहुत्व-क्रमाङ्क	किट्ट्यनुभागाल्पबहुत्व-क्रमाङ्क.
लोभप्रथमसंग्रहकिट्टिप्रथमावान्तरकिट्टि	तस्या रसाविभागा 'स'		१
,, ,, ,, ,, प्रथमावान्तरकिट्ट्यन्तरम्	卐 २	१	
,, ,, ,, ,, द्वितीयावान्तरकिट्टि	तस्यां रसाविभागा २ स		२
,, , ,, ,, द्वितीयावान्तरकिट्ट्यन्तरम्	▣ ४	२	

卐 लोभप्रथमसंग्रहकिट्टिसत्कप्रथमा-ऽवान्तरकिट्टिगतरसाविभागा येन गुणकारेण गुणिता लोभ-प्रथमसंग्रहकिट्टिसत्कद्वितीया-ऽवान्तरकिट्टिगतरसाविभागा भवन्ति, स गुणकारो लोभप्रथमसंग्रहकिट्टि-सत्कप्रथमा-ऽवान्तरकिट्ट्यन्तरमुच्यते। प्रकृते लोभप्रथमसंग्रहकिट्टेः प्रथमा-ऽवान्तरकिट्टौ रसाविभागाः 'स' इति कल्प्यन्ते, द्वितीयाऽवान्तरकिट्टौ तु '२ स' इति। अथ द्विकेन गुणिता 'स' रसाविभागा '२ स' भवन्ति, तेन प्रथमा-ऽवान्तरकिट्ट्यन्तरं द्विकं भवति। एवं द्वितीयाद्यवान्तरकिट्ट्यन्तराणि दर्शयितव्यानि।

▣ द्विकं चा-ऽत्रा-ऽनन्तत्वेन कल्पितम्। तेन प्रथमा-ऽवान्तरकिट्ट्यन्तरतो द्वितीया-ऽवान्तरकिट्ट्य-न्तरस्य द्विगुणत्वाद् द्वितीया-ऽवान्तरकिट्ट्यन्तरमनन्तगुणं भवति।

पूर्वतोऽनुवर्तमाना प्रथमसमाधानमाश्रित्य स्थापना		किट्ट्यन्तराल्पबहुत्वक्रमाङ्क	किट्ट्यनुभागाल्पबहुत्वक्रमाङ्कः
लोभप्रथमसंग्रहकिट्टितृतीयावान्तरकिट्टि	तस्यां रसाविभागा. ८ स		३
„ „ „ „ तृतीयावान्तरकिट्ट्यन्तरम्	★ ८	३	
„ „ „ „ चतुर्थावान्तरकिट्टि	× तस्यां रसाविभागा. ६४ स		४
लोभप्रथमसंग्रहकिट्ट्यन्तरम्	३२ अ²	३७	
लोभद्वितीयसंग्रहकिट्टिप्रथमावान्तरकिट्टि	तस्यां रसाविभागा. २०४८ अ² स		५
„ „ „ „ प्रथमावान्तरकिट्ट्यन्तरम्	१६	४	
„ „ „ „ द्वितीयावान्तरकिट्टि	तस्यां रसाविभागा ३२७६८अ² स		६
„ „ „ „ द्वितीयावान्तरकिट्ट्यन्तरम्	३२	५	
„ „ „ „ तृतीयावान्तरकिट्टि	तस्यां रसाविभागा १६अ³स		७
„ „ „ „ तृतीयावान्तरकिट्ट्यन्तरम्	६४	६	
„ „ „ „ चतुर्थावान्तरकिट्टि	तस्यां रसाविभागाः १०२४ अ³स		८
लोभद्वितीयसंग्रहकिट्ट्यन्तरम्	६४ अ²	३८	
लोभतृतीयसंग्रहकिट्टिप्रथमावान्तरकिट्टि	तस्यां रसाविभागाः अ⁶ स		९
„ „ „ „ प्रथमावान्तरकिट्ट्यन्तरम्	१२८	७	
„ „ „ „ द्वितीयावान्तरकिट्टि	तस्यां रसाविभागा.१२८अ⁶स		१०
„ „ „ „ द्वितीयावान्तरकिट्ट्यन्तरम्	२५६	८	
„ „ „ „ तृतीयावान्तरकिट्टि	तस्यांरसाविभागा ३२७६८अ⁶स		११
„ „ „ „ तृतीयावान्तरकिट्ट्यन्तरम्	५१२	९	
„ „ „ „ चतुर्थावान्तरकिट्टि	तस्यां रसाविभागा २५६अ⁹स		१२
लोभतृतीयसंग्रहकिट्ट्यन्तरम्	△ १६३८४ अ³	३९	

★ एकैकस्यां संग्रहकिट्टौ त्रीण्यवान्तरकिट्ट्यन्तराणि भवन्ति, चतसृणामवान्तरकिट्टीनां परिकल्पनात्।

× एकैकस्यां संग्रहकिट्टौ चतस्रोऽवान्तरकिट्टयः कल्पिताः। इह सर्वसंग्रहकिट्टिगतावान्तरकिट्टयो मिथस्तुल्या न भवन्ति, किन्तु ग्रन्थगौरवभयाद् असत्कल्पनया तुल्याः परिकल्पिताः, अन्यथा लोभप्रथमसंग्रहकिट्टिसत्कसकला-ऽवान्तरकिट्टितः क्रोधतृतीयसंग्रहकिट्टिसत्कसर्वा-ऽवान्तरकिट्टयः संख्येयगुणाः कल्पयितव्याः, लोभप्रथमसंग्रहकिट्टिसत्कसर्वा-ऽवान्तरकिट्टितः क्रोधतृतीयसंग्रहकिट्टिसत्कसकलावान्तरकिट्टीनां संख्येयगुणत्वस्य वक्ष्यमाणत्वात्।

△ लोभद्वितीयसंग्रहकिट्टिसत्कचरमाऽवान्तरकिट्टौ रसाविभागा '१०२४ अ³ स' इति भवन्ति, ते च '१६३८४ अ³' इत्यनेन गुणिता लोभतृतीयसंग्रहकिट्टिसत्कचरमाऽवान्तरकिट्टिगता रसाविभागाः '२५६ अ⁹स' इति जाताः। तेन '१६३८४ अ³' इत्येतद् लोभतृतीयसंग्रहकिट्ट्यन्तरं भवति।

न्यासः लोभतृतीयसंग्रहकिट्टिचरमावान्तरकिट्टिरसाविभागा = १०२४ अ³ स (= द्वितीयसंग्रहकिट्टिचरमावान्तरकिट्टिरसाविभागा.) × १६३८४ अ³

= १०२४ × १६३८४ अ⁶स

= १६७७७२१६ अ⁹स

= २५६ अ⁹स

तथा लोभतृतीयसंग्रहकिट्ट्यन्तरम् = १६३८४ अ³ = ६४ अ² (= द्वितीयसंग्रहकिट्ट्यन्तरम्) × १२८ × २५६ × ५१२ (= परस्परगुणिततृतीयसंग्रहकिट्टयवान्तरकिट्ट्यन्तराणि)

पूर्वतोऽनुवर्तमाना प्रथमसमाधानमाश्रित्य स्थापना		किट्ट्यन्तराल्पबहुत्वक्रमाङ्कः	किट्ट्यनुभागाल्पबहुत्वक्रमाङ्कः
मायालोभयोरन्तरम्	※३२७६८ अ^{3}	४०	
मायाप्रथमसंग्रहकिट्टिप्रथमावान्तरकिट्टिः	१२८ अ^{११} स		१३
” ” ” ” प्रथमावान्तरकिट्ट्यन्तरम्	१०२४	१०	
” ” ” ” द्वितीयावान्तरकिट्टि.	तस्यां रसाविभागाः २अ^{१२}स		१४
” ” ” ” द्वितीयावान्तरकिट्ट्यन्तरम्	२०४८	११	
” ” ” ” तृतीयावान्तरकिट्टि.	तद्रसाविभागाः ४०९६ अ^{१२}स		१५
” ” ” ” तृतीयावान्तरकिट्ट्यन्तरम्	४०९६	१२	
” ” ” ” चतुर्थावान्तरकिट्टि.	तस्यां रसाविभागाः २५६अ^{१३}स		१६
मायाप्रथमसंग्रहकिट्ट्यन्तरम्	अ^{४}	४१	
मायाद्वितीयसंग्रहकिट्टिप्रथमावान्तरकिट्टि	तस्यां रसाविभागाः२५६ अ^{१७}स		१७
” ” ” ” प्रथमावान्तरकिट्ट्यन्तरम्	८१९२	१३	
” ” ” ” द्वितीयावान्तरकिट्टि	तस्यां रसाविभागाः ३२अ^{१८}स		१८
” ” ” ” द्वितीयावान्तरकिट्ट्यन्तरम्	१६३८४	१४	
” ” ” ” तृतीयावान्तरकिट्टिः	तस्यां रसाविभागाः ८अ^{१९}स		१९
” ” ” ” तृतीयावान्तरकिट्ट्यन्तरम्	३२७६८	१५	
” ” ” ” चतुर्थावान्तरकिट्टिः	तस्यां रसाविभागाः ४ अ^{२०}स		२०
मायाद्वितीयसंग्रहकिट्ट्यन्तरम्	२ अ^{४}	४२	
मायातृतीयसंग्रहकिट्टिप्रथमावान्तरकिट्टि	तस्यां रसाविभागाः ८ अ^{२४}स		२१
” ” ” ” प्रथमावान्तरकिट्ट्यन्तरम्	६५५३६ = अ ❀	१६	
” ” ” ” द्वितीयावान्तरकिट्टि.	तस्यां रसाविभागा ८ अ^{२५}स		२२
” ” ” ” द्वितीयावान्तरकिट्ट्यन्तरम्	२ अ	१७	
” ” ” ” तृतीयावान्तरकिट्टि.	तस्यां रसाविभागा १६अ^{२६}स		२३
” ” ” ” तृतीयावान्तरकिट्ट्यन्तरम्	४ अ	१८	
” ” ” ” चतुर्थावान्तरकिट्टि	तस्यां रसाविभागा ६४ अ^{२७}स		२४
मायातृतीयसंग्रहकिट्ट्यन्तरम्	१६ अ^{७}	४३	
मायामानयोरन्तरम्	३२ अ^{७}	४४	
मानप्रथमसंग्रहकिट्टिप्रथमावान्तरकिट्टि.	तद्रसाविभागा. २०४८ अ^{३४}स		२५
” ” ” ” प्रथमावान्तरकिट्ट्यन्तरम्	८ अ	१९	
” ” ” ” द्वितीयावान्तरकिट्टि	तद्रसाविभागा.१६३८४अ^{३५}स		२६

※ लोभतृतीयसंग्रहकिट्टिसत्कचरमाऽवान्तरकिट्टिगता रसाविभागा '२५६ अ^{७}स' इति भवन्ति। ते च '३२७६८ अ^{3}' इत्यनेन गुणकारेण गुणिता मायाप्रथमसंग्रहकिट्टिसत्कप्रथमाऽवान्तरकिट्टिगतरसाविभागा. '१२८ अ^{११}स' इति जाता.। तेन '३२७६८ अ^{3}' इत्येतद् मायालोभयोरन्तरम्। तच्च प्राग्दर्शितलोभतृतीयसंग्रहकिट्ट्यन्तरतोऽनन्तगुणं भवति, द्विकस्याऽनन्तत्वेन परिकल्पनात्।

❀ षट्त्रिंशदधिकपञ्चशतोत्तरपञ्चषष्टिसहस्राणां स्थाने 'अ' इति कल्प्यते।

पूर्वतोऽनुवर्तमाना प्रथमसमाधानमाश्रित्य स्थापना		किट्ट्यन्तराल्पबहुत्वक्रमाङ्कः	किट्ट्यनुभागाल्पबहुत्वक्रमाङ्कः
मानप्रथमसंग्रहकिट्टिद्वितीयावान्तरकिट्ट्यन्तरम्	१६ अ	२०	
,, ,, ,, ,, तृतीयावान्तरकिट्टि	तस्यां रसाविभागा ४अ^{३७}स		२७
,, ,, ,, ,, तृतीयावान्तरकिट्ट्यन्तरम्	३२ अ	२१	
,, ,, ,, ,, चतुर्थावान्तरकिट्टि.	तस्या रसाविभागा १२८अ^{३८}स		२८
मानप्रथमसंग्रहकिट्ट्यन्तरम्	६४ अ^{७}	४५	
मानद्वितीयसंग्रहकिट्टिप्रथमावान्तरकिट्टि	तस्यां रसाविभागा ८१९२अ^{४५}स		२९
,, ,, ,, ,, प्रथमावान्तरकिट्ट्यन्तरम्	६४ अ	२२	
,, ,, ,, ,, द्वितीयावान्तरकिट्टि	तस्या रसाविभागा ८अ^{४७}स		३०
,, ,, ,, ,, द्वितीयावान्तरकिट्ट्यन्तरम्	१२८ अ	२३	
,, ,, ,, ,, तृतीयावान्तरकिट्टि.	तस्यां रसाविभागा १०२४अ^{४८}स		३१
,, ,, ,, ,, तृतीयावान्तरकिट्ट्यन्तरम्	२५६ अ	२४	
,, ,, ,, ,, चतुर्थावान्तरकिट्टि.	तस्या रसाविभागा. ४ अ^{५०}स		३२
मानद्वितीयसंग्रहकिट्ट्यन्तरम्	१२८ अ^{७}	४६	
मानतृतीयसंग्रहकिट्टिप्रथमावान्तरकिट्टि	तस्या रसाविभागा ५१२अ^{५७}स		३३
,, ,, ,, ,, प्रथमावान्तरकिट्ट्यन्तरम्	५१२ अ	२५	
,, ,, ,, ,, द्वितीयावान्तरकिट्टि	तस्या रसाविभागा ४अ^{५९}स		३४
,, ,, ,, ,, द्वितीयावान्तरकिट्ट्यन्तरम्	१०२४ अ	२६	
,, ,, ,, ,, तृतीयावान्तरकिट्टि	तस्या रसाविभागा ४०९६अ^{६०}स		३५
,, ,, ,, ,, तृतीयावान्तरकिट्ट्यन्तरम्	२०४८ अ	२७	
,, ,, ,, ,, चतुर्थावान्तरकिट्टि	तस्या रसाविभागा १२८अ^{६२}स		३६
मानतृतीयसंग्रहकिट्ट्यन्तरम्	३२ अ^{१२}❀	४७	
मानक्रोधयोरन्तरम्	६४ अ^{१२}	४८	
क्रोधप्रथमसंग्रहकिट्टिप्रथमावान्तरकिट्टि.	तद्रसाविभागा.८१९२अ^{७४}स		३७
,, ,, ,, ,, प्रथमावान्तरकिट्ट्यन्तरम्	४०९६ अ	२८	
,, ,, ,, ,, द्वितीयावान्तरकिट्टि	तस्या रसाविभागा ५१२अ^{७६}स		३८
,, ,, ,, ,, द्वितीयावान्तरकिट्ट्यन्तरम्	८१९२ अ	२९	
,, ,, ,, ,, तृतीयावान्तरकिट्टि	तस्यां रसाविभागा' ६४अ^{७८}स		३९
,, ,, ,, ,, तृतीयावान्तरकिट्ट्यन्तरम्	१६३८४ अ	३०	
,, ,, ,, ,, चतुर्थावान्तरकिट्टि	तस्यां रसाविभागा १६अ^{८०}स		४०

❀ ननु '३२अ^{१२}' इत्यस्य कोऽर्थः ? उच्यते–द्वादश अकारा पृथक् पृथक् स्थाप्याः, ततः परस्परं गुणयितव्या । गुणनफलं च पुनर्द्वात्रिंशता गुणनीयम् । गुणाकारेण प्राप्तम् ३२ अ^{१२} इति भवति । एवं यत्र यत्र 'अ' इत्यस्योपरि योऽङ्कः स्थापितो भवेत्, तत्संख्यका अकाराः स्थापयितव्याः, ततः परस्परं गुणयितव्याः । षट्त्रिंशदधिकपञ्चशतोत्तरपञ्चषष्टिसहस्राणां च स्थाने 'अ' इति कल्प्यते इति तु प्राग् दर्शितमेव ।

पूर्वतोऽनुवर्तमाना प्रथमसमाधानमाश्रित्य स्थापना		किट्ट्यन्तराल्पबहुत्व-क्रमाङ्क	किट्ट्यनुभागाल्पबहुत्व-क्रमाङ्क
क्रोधप्रथमसंग्रहकिट्ट्यन्तरम्	१२८ अ^{१२}	४९	
क्रोधद्वितीयसंग्रहकिट्टिप्रथमावान्तरकिट्टि	तस्यां रसाविभागा २०४८अ^{६२}स		४१
,, ,, ,, ,, प्रथमावान्तरकिट्ट्यन्तरम्	३२७६८ अ	३१	
,, ,, ,, ,, द्वितीयावान्तरकिट्टि	तस्यां रसाविभागाः१०२४अ^{६४}स		४२
,, ,, ,, ,, द्वितीयावान्तरकिट्ट्यन्तरम्	अ^{२}	३२	
,, ,, ,, ,, तृतीयावान्तरकिट्टि	तस्यां रसाविभागा १०२४अ^{६६}स		४३
,, ,, ,, ,, तृतीयावान्तरकिट्ट्यन्तरम्	२ अ^{२}	३३	
,, ,, ,, ,, चतुर्थावान्तरकिट्टि	तद्रसाविभागा २०४८अ^{६८}स		४४
क्रोधद्वितीयसंग्रहकिट्ट्यन्तरम्	२५६ अ^{१२}	५०	
क्रोधतृतीयसंग्रहकिट्टिप्रथमावान्तरकिट्टि	तस्यां रसाविभागा ८अ^{१११}स		४५
,, ,, ,, ,, प्रथमावान्तरकिट्ट्यन्तरम्	४ अ^{२}	३४	
,, ,, ,, ,, द्वितीयावान्तरकिट्टिः	तस्यां रसाविभागा ३२अ^{११३}स		४६
,, ,, ,, ,, द्वितीयावान्तरकिट्ट्यन्तरम्	८ अ^{२}	३५	
,, ,, ,, ,, तृतीयावान्तरकिट्टि	तस्या रसाविभागा २५६अ^{११५}स		४७
,, ,, ,, ,, तृतीयावान्तरकिट्ट्यन्तरम्	१६ अ^{२}	३६	
,, ,, ,, ,, चतुर्थावान्तरकिट्टि	तद्रसाविभागा ४०९६अ^{११७}स		४८
क्रोधतृतीयसंग्रहकिट्ट्यन्तरम्	२ अ^{११}	५१	
क्रोधचरमावान्तरकिट्टि-लोभापूर्वस्पर्धकादिवर्गणान्तरम्	अ^{११८}	५२	
लोभापूर्वस्पर्धकादिवर्गणा	तद्रसाविभागा ४०९६अ^{२३५}स		४९

(२) अथवा क्रोधस्य तृतीयसंग्रहकिट्टिचरमाऽवान्तरकिट्टिगतरसाऽविभागा येन गुणकारेण गुणिताः क्रोधस्यैवाऽपूर्वस्पर्धकप्रथमवर्गणागतरसाऽविभागा भवन्ति, स गुणाकारः क्रोधस्य तृतीयसंग्रहकिट्ट्यन्तरं निगद्यते, तच्च क्रोधस्य द्वितीयसंग्रहकिट्ट्यन्तरतोऽनन्तगुणं भवति, तथा द्वितीयसंग्रहकिट्ट्यन्तरत एव प्रागुक्तस्वरूपं क्रोधचरमाऽवान्तरकिट्टिलोभा-ऽपूर्वस्पर्धकप्रथमवर्गणयोरन्तरमप्यनन्तगुणं भवतीति द्वितीयो विकल्पः ।

द्वितीयसमाधानमाश्रित्यासत्कल्पनया स्थापना		किट्ट्यन्तराल्पबहुत्व-क्रमाङ्क.	किट्ट्यनुभागाल्पबहुत्व-क्रमाङ्क.
लोभप्रथमसंग्रहकिट्टिप्रथमावान्तरकिट्टि	तस्या रसाविभागा 'स'		१
,, ,, ,, ,, प्रथमावान्तरकिट्ट्यन्तरम्	२	१	
,, ,, ,, ,, द्वितीयावान्तरकिट्टिः	तस्यां रसाविभागाः २ स		२
,, ,, ,, ,, द्वितीयावान्तरकिट्ट्यन्तरम्	४	२	
,, ,, ,, ,, तृतीयावान्तरकिट्टि	तस्यां रसाविभागा. ८ स		३
,, ,, ,, ,, तृतीयावान्तरकिट्ट्यन्तरम्	८	३	
,, ,, ,, ,, चतुर्थावान्तरकिट्टि	तस्या रसाविभागाः ६४ स		४
लोभप्रथमसंग्रहकिट्ट्यन्तरम्	३२ अ^{२}	३७	
लोभद्वितीयसंग्रहकिट्टिप्रथमावान्तरकिट्टि.	तस्यां रसाविभागा. २०४८अ^{२}स		५
,, ,, ,, ,, प्रथमावान्तरकिट्ट्यन्तरम्	१६	४	
,, ,, ,, ,, द्वितीयावान्तरकिट्टि	तस्या रसाविभागा.३२७६८अ^{२}स		६
,, ,, ,, ,, द्वितीयावान्तरकिट्ट्यन्तरम्	३२	५	
,, ,, ,, ,, तृतीयावान्तरकिट्टि.	तस्या रसाविभागा १६अ^{३}स		७
,, ,, ,, ,, तृतीयावान्तरकिट्ट्यन्तरम्	६४	६	
,, ,, ,, ,, चतुर्थावान्तरकिट्टिः	तस्या रसाविभागाः १०२४अ^{३}स		८
लोभद्वितीयसंग्रहकिट्ट्यन्तरम्	६४ अ^{२}	३८,क★	
लोभतृतीयसंग्रहकिट्टिप्रथमावान्तरकिट्टि	तस्यां रसाविभागा. अ^{६}स		९
,, ,, ,, ,, प्रथमावान्तरकिट्ट्यन्तरम्	१२८	७	
,, ,, ,, ,, द्वितीयावान्तरकिट्टिः	तस्या रसाविभागाः १२८अ^{६}स		१०
,, ,, ,, ,, द्वितीयावान्तरकिट्ट्यन्तरम्	२५६	८	
,, ,, ,, ,, तृतीयावान्तरकिट्टि.	तस्यां रसाविभागा ३२७६८अ^{६}स		११
,, ,, ,, ,, तृतीयावान्तरकिट्ट्यन्तरम्	५१२	९	
,, ,, ,, ,, चतुर्थावान्तरकिट्टि	तस्यां रसाविभागा २५६ अ^{७}स		१२
लोभतृतीयसंग्रहकिट्ट्यन्तरम्	१६ अ^{२२८}	卐, ख	
लोभाऽपूर्वस्पर्धकप्रथमवर्गणा	तद्रसाविभा० ४०९६अ^{२३५}स❀		४९
लोभमाययोरन्तरम्	△ १२८ अ^{२}	३९	

★ 'क' इत्यस्मात् 'ख' इत्येतदनन्तगुणम् ।

卐, ननु किं नाम 'ख'? इति चेत्, उच्यते लोभतृतीयसंग्रहकिट्टिसत्कचरमावान्तरकिट्टिगतरसाविभागाः '२५६अ^{७}स' इत्येतावन्त '१६अ^{२२८}' इत्यनेन गुणाकारेण गुणिता लोभप्रथमापूर्वस्पर्धकप्रथमवर्गणागता रसाविभागा '४०९६ अ^{२३५}स' इत्येतावन्तो भवन्ति । तेन '१६ अ^{२२८}' इत्येतद् लोभतृतीयसंग्रहकिट्ट्यन्तरं भवति, तच्च खसंज्ञकम् । तत्पुनः कसंज्ञकतो (लोभद्वितीयसंग्रहकिट्ट्यन्तरतो) अनन्तगुणं भवति ।

△ लोभतृतीयसंग्रहकिट्टिसत्कचरमावान्तरकिट्टिप्रतिबद्धरसाविभागाः '२५६ अ^{७}स' इत्येतावन्तः '१२८ अ^{२}' इत्यनेन गुणिता मायाप्रथमसंग्रहकिट्टिसत्कप्रथमावान्तरकिट्टिगतरसाविभागा '३२७६८ अ^{६}स' इत्येतावन्तो भवन्ति, तेन '१२८ अ^{२}' इत्येतद् लोभमाययोरन्तरम्, तच्च लोभद्वितीयसंग्रहकिट्ट्यन्तरतोऽनन्तगुणं भवति । एवं मायादीनामपि प्ररूपणाऽवसेया ।

पूर्वतोऽनुवर्तमाना द्वितीयसमाधानमाश्रित्य स्थापना		किट्ट्यन्तराल्पबहुत्वक्रमाङ्क	किट्ट्यनुभागाल्पबहुत्वक्रमाङ्क
मायाप्रथमसंग्रहकिट्टिप्रथमावान्तरकिट्टि	३२७६८ अ^{६}स		१३
,, ,, ,, ,, प्रथमावान्तरकिट्ट्यन्तरम्	१०२४	१०	
,, ,, ,, ,, द्वितीयावान्तरकिट्टि	तस्यां रसाविभागाः५१२अ^{१०}स		१४
,, ,, ,, , द्वितीयावान्तरकिट्ट्यन्तरम्	२०४८	११	
,, ,, ,, ,, तृतीयावान्तरकिट्टि	तस्यां रसाविभागा १६अ^{११}स		१५
,, ,, ,, ,, तृतीयावान्तरकिट्ट्यन्तरम्	४०९६	१२	
,, ,, ,, ,, चतुर्थावान्तरकिट्टिः	तस्या रसाविभागा अ^{१२}स		१६
मायाप्रथमसंग्रहकिट्ट्यन्तरम्	२५६ अ^{२}	४०	
मायाद्वितीयसंग्रहकिट्टिप्रथमावान्तरकिट्टि	तस्यां रसाविभागा २५६अ^{१४}स		१७
,, ,, ,, ,, प्रथमावान्तरकिट्ट्यन्तरम्	८१९२	१३	
,, ,, ,, ,, द्वितीयावान्तरकिट्टि.	तस्यां रसाविभागा ३२अ^{१५}स		१८
,, ,, ,, ,, द्वितीयावान्तरकिट्ट्यन्तरम्	१६३८४	१४	
,, ,, ,, ,, तृतीयावान्तरकिट्टि	तस्यां रसाविभागा ८ अ^{१६}स		१९
,, ,, ,, ,, तृतीयावान्तरकिट्ट्यन्तरम्	३२७६८	१५	
,, ,, ,, ,, चतुर्थावान्तरकिट्टि	तस्यां रसाविभागाः ४अ^{१७}स		२०
मायाद्वितीयसंग्रहकिट्ट्यन्तरम्	५१२ अ^{२}	४१,च★	
मायातृतीयसंग्रहकिट्टिप्रथमावान्तरकिट्टि	तद्रसाविभागा.२०४८अ^{१९}स		२१
,, ,, ,, ,, प्रथमावान्तरकिट्ट्यन्तरम्	६५५३६ = अ	१६	
,, ,, ,, ,, द्वितीयावान्तरकिट्टि	तद्रसाविभागा.२०४८अ^{२०}स		२२
,, ,, ,, ,, द्वितीयावान्तरकिट्ट्यन्तरम्	२ अ	१७	
,, ,, ,, ,, तृतीयावान्तरकिट्टि	तद्रसाविभागा ४०९६अ^{२१}स		२३
,, ,, ,, ,, तृतीयावान्तरकिट्ट्यन्तरम्	४ अ	१८	
,, ,, ,, ,, चतुर्थावान्तरकिट्टि	तद्रसाविभागा १६३८४अ^{२२}स		२४
मायातृतीयसंग्रहकिट्ट्यन्तरम्	१६३८४अ^{२१२}	छ	
मायाऽपूर्वस्पर्धकप्रथमवर्गणा	तद्रसावि० ४०९६अ^{२३५}स❀		५०वि
मायामानयोरन्तरम्	१०२४ अ^{२}	४२	
मानप्रथमसंग्रहकिट्टिप्रथमावान्तरकिट्टि	तस्या रसाविभागा २५६अ^{२५}स		२५
,, ,, ,, ,, प्रथमावान्तरकिट्ट्यन्तरम्	८ अ	१९	
,, ,, ,, द्वितीयावान्तरकिट्टिः	तद्रसाविभागा २०४८अ^{२६}स		२६

★ 'च' इत्यस्मात् 'छ' इत्येतदनन्तगुणम्।

❀ परमार्थतो लोभादीना क्रमेण प्रथमाऽपूर्वस्पर्धकप्रथमवर्गणाप्रतिबद्धरसाविभागा विशेषाधिका भवन्ति। इह तु स्थूलदृष्ट्या-ऽधिकत्वस्याऽविवक्षणात् चतुर्णामपि कषायाणा प्रथमापूर्वस्पर्धकप्रथमवर्गणागतरसाविभागा-स्तुल्या दर्शिता।

[redacted] एवमग्रेऽप्यनेनचिह्नेनाऽयमेवार्थो बोध्य। विशब्दविशिष्टोऽङ्क पूर्वपदतः स्वस्य विशेषाधिकत्व बोधयति, [redacted] शेषास्त्वनन्तगुणता सूचयन्ति।

पूर्वतोऽनुवर्तमाना द्वितीयसमाधानमाश्रित्य स्थापना		किट्ट्यन्तराल्पबहुत्वक्रमाङ्कः	किट्ट्यनुभागाल्पबहुत्वक्रमाङ्कः
मानप्रथमसंग्रहकिट्टिद्वितीयावान्तरकिट्ट्यन्तरम्	१६ अ	२०	
" " " " तृतीयावान्तरकिट्टि	तद्रसाविभागा ३२७६८अ^{२७}स		२७
" " " " तृतीयावान्तरकिट्ट्यन्तरम्	३२ अ	२१	
" " " " चतुर्थावान्तरकिट्टि	तस्यां रसाविभागाः १६अ^{२९}स		२८
मानप्रथमसंग्रहकिट्ट्यन्तरम्	२०४८ अ^{२}	४३	
मानद्वितीयसंग्रहकिट्टिप्रथमावान्तरकिट्टिः	तद्रसाविभागा. ३२७६८अ^{३१}स		२९
" " " " प्रथमावान्तरकिट्ट्यन्तरम्	६४ अ	२२	
" " " " द्वितीयावान्तरकिट्टि·	तद्रसाविभागा २अ^{३३}स		३०
" " " " द्वितीयावान्तरकिट्ट्यन्तरम्	१२८ अ	२३	
" " " " तृतीयावान्तरकिट्टि	तद्रसाविभागा ४०९६अ^{३४}स		३१
" " " " तृतीयावान्तरकिट्ट्यन्तरम्	२५६ अ	२४	
" " " " चतुर्थावान्तरकिट्टि	तद्रसाविभागा १६ अ^{३६}स		३२
मानद्वितीयसंग्रहकिट्ट्यन्तरम्	४०९६ अ^{२}	४४द, ★	
मानतृतीयसंग्रहकिट्टिप्रथमावान्तरकिट्टि	तस्यां रसाविभागा अ^{३९}स		३३
" " " " प्रथमावान्तरकिट्ट्यन्तरम्	५१२ अ	२५	
" " " " द्वितीयावान्तरकिट्टि	तस्यां रसाविभागा ५१२अ^{४०}स		३४
" " " " द्वितीयावान्तरकिट्ट्यन्तरम्	१०२४ अ	२६	
" " " " तृतीयावान्तरकिट्टि	तस्यां रसाविभागा ८अ^{४२}स		३५
" " " " तृतीयावान्तरकिट्ट्यन्तरम्	२०४८ अ	२७	
" " " " चतुर्थावान्तरकिट्टि.	तद्रसाविभागा १६३८४अ^{४३}स		३६
मानतृतीयसंग्रहकिट्ट्यन्तरम्	१६३८४ अ^{१९५}	ठ,	
मानापूर्वस्पर्धकप्रथमवर्गणा	तद्रसाविभागा ४०९६अ^{२३५}स❀		५१ वि
मानक्रोधयोरन्तरम्	८१९२ अ^{२}	४५	
क्रोधप्रथमसंग्रहकिट्टिप्रथमावान्तरकिट्टि	तद्रसाविभागा २०४८अ^{४६}स		३७
" " " " प्रथमावान्तरकिट्ट्यन्तरम्	४०९६ अ	२८	
" " " " द्वितीयावान्तरकिट्टि	तस्यां रसाविभागा १२८अ^{४८}स		३८
" " " " द्वितीयावान्तरकिट्ट्यन्तरम्	८१९२ अ	२९	
" " " " तृतीयावान्तरकिट्टि·	तस्या रसाविभागा १६अ^{५०}स		३९
" " " " तृतीयावान्तरकिट्ट्यन्तरम्	१६३८४ अ	३०	
" " " " चतुर्थावान्तरकिट्टि	तस्या रसाविभागा ४अ^{५२}स		४०
क्रोधप्रथमसंग्रहकिट्ट्यन्तरम्	१६३८४ अ^{२}	४६	

★ 'ट' इत्यस्मात् 'ठ' इत्येतदनन्तगुणम् ।

पूर्वतोऽनुवर्तमाना द्वितीयसमाधानमाश्रित्य स्थापना

		किट्टयन्तराल्पबहुत्वक्रमाङ्कः	किट्टयनुभागाल्पबहुत्वक्रमाङ्कः
क्रोधद्वितीयसंग्रहकिट्टिप्रथमावान्तरकिट्टिः	तस्यां रसाविभागाः अ^{५५}स		४१
,, ,, ,, ,, प्रथमावान्तरकिट्टयन्तरम्	३२७६८ अ	३१	
,, ,, ,, ,, द्वितीयावान्तरकिट्टिः	तद्रसाविभागाः ३२७६८अ^{५६}स		४२
,, ,, ,, ,, द्वितीयावान्तरकिट्टयन्तरम्	६५५३६अ=अ^{२}	३२	
,, ,, ,, ,, तृतीयावान्तरकिट्टिः	तद्रसाविभागा ३२७६८अ^{५८}स		४३
,, ,, ,, ,, तृतीयावान्तरकिट्टयन्तरम्	२ अ^{२}	३३	
,, ,, ,, ,, चतुर्थावान्तरकिट्टिः	तस्या रसाविभागा अ^{६१}स		४४
क्रोधद्वितीयसंग्रहकिट्टयन्तरम्	३२७६८ अ^{२}	४७ त★	
क्रोधतृतीयसंग्रहकिट्टिप्रथमावान्तरकिट्टिः	तद्रसाविभागाः ३२७६८अ^{६३}स		४५
,, ,, ,, ,, प्रथमावान्तरकिट्टयन्तरम्	४ अ^{२}	३४	
,, ,, ,, ,, द्वितीयावान्तरकिट्टिः	तस्या रसाविभागा २अ^{६६}स		४६
,, ,, ,, ,, द्वितीयावान्तरकिट्टयन्तरम्	८ अ^{२}	३५	
,, ,, ,, ,, तृतीयावान्तरकिट्टिः	तस्यां रसाविभागा १६अ^{६८}स		४७
,, ,, ,, ,, तृतीयावान्तरकिट्टयन्तरम्	१६ ^{२}	३६	
,, ,, ,, ,, चतुर्थावान्तरकिट्टिः	तस्यां रसाविभागा २५६अ^{७०}स		४८
क्रोधतृतीयसंग्रहकिट्टयन्तरम्	१६ अ^{१६५} △	थ	
क्रोधापूर्वस्पर्धकप्रथमवर्गणा	तद्रसावि० ५०९६अ^{२३०}स★		५२ वि
क्रोधचरमावान्तरकिट्टिलोभापूर्वस्पर्धकप्रथमवर्गणयोरन्तरम्	१६ अ^{१६५} △	४८ स★	
लोभाऽपूर्वस्पर्धकप्रथमवर्गणा	तद्रसावि० ५०९६अ^{२३५}स		

(३) अथवा क्रोधस्य तृतीयसंग्रहकिट्टयन्तरमित्यनेन क्रोधस्य तृतीयसंग्रहकिट्टिसत्कचरमाऽवान्तरकिट्टिगतरसाऽविभागा येन गुणकारेण सङ्गुणिता लोभस्याऽपूर्वस्पर्धकप्रथमवर्गणागतरसाऽविभागा भवन्ति, स गुणकारो ग्राह्यः, स एव च क्रोधचरमाऽवान्तरकिट्टिलोभाऽपूर्वस्पर्धकप्रथमवर्गणयोरन्तरं निगद्यते, नाऽन्यः । सामान्यविशेषभावश्चलोभवत्प्रतिपादनीय इति तृतीयो विकल्पः ।

तृतीयसमाधानमाश्रित्याऽसत्कल्पनया स्थापना

		किट्टयन्तराल्पबहुत्वक्रमाङ्क	किट्टयनुभागाल्पबहुत्वक्रमाङ्क
लोभप्रथमसंग्रहकिट्टिप्रथमाऽवान्तरकिट्टिः	तस्या रसाविभागाः स		१
,, ,, ,, ,, प्रथमाऽवान्तरकिट्टयन्तरम्	२	१	
,, ,, ,, ,, द्वितीयाऽवान्तरकिट्टिः	तस्या रसाविभागा २ स		२
,, ,, ,, ,, द्वितीयावान्तरकिट्टयन्तरम्	४	२	

★ 'त' इत्यस्मात् 'थ' इत्येतदनन्तगुणम् ।

△ यद्यपि क्रोधतृतीयसंग्रहकिट्टयन्तरत क्रोधचरमावान्तरकिट्टिलोभापूर्वस्पर्धकप्रथमवर्गणयोरन्तरमनन्ततमभागेन हीनं भवति । तथापि स्थूलदृष्टया तस्याऽविवक्षणादुभयोरपि तुल्यता दर्शिता ।
शेषं तु प्रथमसमाधानवद् बोध्यम् ।

पूर्वतोऽनुवर्तमाना तृतीयसमाधानमाश्रित्य स्थापना		किट्टयन्तराल्पबहुत्व-क्रमाङ्क	किट्टयनुभागाल्पबहुत्व-क्रमाङ्कः
लोभप्रथमसंग्रहकिट्टितृतीयावान्तरकिट्टि	तस्यां रसाविभागा. ८ स		३
,, ,, ,, ,, तृतीयाऽवान्तरकिट्टयन्तरम्	८	३	
,, ,, ,, ,, चतुर्थाऽवान्तरकिट्टि	तस्यां रसाविभागा ६३ स		४
लोभप्रथमसंग्रहकिट्टयन्तरम्	३२ अ^{२}	३७	
लोभद्वितीयसंग्रहकिट्टिप्रथमाऽवान्तरकिट्टि	तस्यां रसाविभागाः२०४८अ^{२}स		५
,, ,, ,, ,, प्रथमाऽवान्तरकिट्टयन्तरम्	१६	४	
,, ,, ,, ,, द्वितीयाऽवान्तरकिट्टि	तद्रसाविभागा ३०७६८अ^{२}स		६
,, ,, ,, ,, द्वितीयाऽवान्तरकिट्टयन्तरम्	३२	५	
,, ,, ,, ,, तृतीयाऽवान्तरकिट्टि	तस्या रसाविभागाः १६अ^{३}स		७
,, ,, ,, ,, तृतीयाऽवान्तरकिट्टयन्तरम्	६४	६	
,, ,, ,, ,, चतुर्थाऽवान्तरकिट्टि	तस्यां रसाविभागा १०२४अ^{३}स		८
लोभद्वितीयसंग्रहकिट्टयन्तरम्	६४ अ^{२}	३८	
लोभतृतीयसंग्रहकिट्टिप्रथमाऽवान्तरकिट्टि	तस्या रसाविभागाः अ^{६}स		९
,, ,, ,, ,, प्रथमाऽवान्तरकिट्टयन्तरम्	१२८	७	
,, ,, ,, ,, द्वितीयाऽवान्तरकिट्टि	तस्यां रसाविभागा. १२८अ^{६}स		१०
,, ,, ,, ,, द्वितीयाऽवान्तरकिट्टयन्तरम्	२५६	८	
,, ,, ,, ,, तृतीयाऽवान्तरकिट्टि	तस्या रसाविभागा ३२७६८अ^{६}स		११
,, ,, ,, ,, तृतीयाऽवान्तरकिट्टयन्तरम्	५१२	९	
,, ,, ,, ,, चतुर्थाऽवान्तरकिट्टि	तस्या रसाविभागा. २५६अ^{७}स		१२
लोभतृतीयसंग्रहकिट्टयन्तरम् = लोभमाययोरन्तरम्	卐 १२८ अ^{२}	३९	
मायाप्रथमसंग्रहकिट्टिप्रथमाऽवान्तरकिट्टि	तद्रसाविभागा ३२७६८अ^{९}स		१३
,, ,, ,, ,, प्रथमाऽवान्तरकिट्टयन्तरम्	१०२४	१०	
,, ,, ,, ,, द्वितीयाऽवान्तरकिट्टि	तस्या रसाविभागाः५१२अ^{१०}स		१४
,, ,, ,, ,, द्वितीयावान्तरकिट्टयन्तरम्	२०४८	११	
,, ,, ,, ,, तृतीयाऽवान्तरकिट्टि	तस्यां रसाविभागा. १६अ^{११}स		१५
,, ,, ,, ,, तृतीयावान्तरकिट्टयन्तरम्	४०९६	१२	
,, ,, ,, ,, चतुर्थाऽवान्तरकिट्टि	तस्या रसाविभागा अ^{१२}स		१६
मायाप्रथमसंग्रहकिट्टयन्तरम्	२५६ अ^{२}	४०	

卐 लोभतृतीयसंग्रहकिट्टिचरमाऽवान्तरकिट्टिगतरसाविभागा '२५६अ^{७}स' इत्येतावन्त १२८ अ^{२} इत्यनेन गुणकारेण गुणिता मायाप्रथमसंग्रहकिट्टिप्रथमाऽवान्तरकिट्टिगत-रसाविभागा '३२७६८ अ^{९}म' इत्येतावन्तो भवन्ति, तेन '१२८ अ^{२}' इत्येतद् लोभतृतीयसंग्रहकिट्टयन्तर भवति। तदेव च लोभमाययोरन्तरं भवति, तच्च लोभद्वितीयसंग्रहकिट्टयन्तरतोऽनन्तगुण भवति । एवं मायादीनामपि प्ररूपणा कर्तव्या।

शेषं प्रथमसमाधानस्थापनावद् बोध्यम्।

पूर्वतोऽनुवर्तमाना तृतीयसमाधानमाश्रित्य स्थापना		किट्ट्यन्तराल्पबहुत्व-क्रमाङ्क	किट्ट्यनुभागाल्पबहुत्व-क्रमाङ्क.
मायाद्वितीयसंग्रहकिट्टिप्रथमाऽवान्तरकिट्टि	तस्या रसाविभागा २५६अ^{१४}स		१७
,, ,, ,, ,, प्रथमाऽवान्तरकिट्ट्यन्तरम्	८१९२	१३	
,, ,, ,, ,, द्वितीयाऽवान्तरकिट्टि	तस्या रसाविभागा ३२अ^{१५}स		१८
,, ,, ,, ,, द्वितीयाऽवान्तरकिट्ट्यन्तरम्	१६३८४	१४	
,, ,, ,, ,, तृतीयाऽवान्तरकिट्टि	तस्यां रसाविभागा. ८अ^{१६}स		१९
,, ,, ,, ,, तृतीयाऽवान्तरकिट्ट्यन्तरम्	३२७६८	१५	
,, ,, ,, ,, चतुर्थाऽवान्तरकिट्टि	तस्या रसाविभागा [illegible]अ^{१७}स		२०
मायाद्वितीयसंग्रहकिट्ट्यन्तरम्	५१२ अ^{२}	४१	
मायातृतीयसंग्रहकिट्टिप्रथमाऽवान्तरकिट्टि	तद्रसाविभागा २०४८अ^{१९}स		२१
,, ,, ,, ,, प्रथमाऽवान्तरकिट्ट्यन्तरम्	६५५३६ = अ	१६	
,, ,, ,, ,, द्वितीयाऽवान्तरकिट्टि	तद्रसाविभागा २०४८अ^{२०}स		२२
,, ,, ,, ,, द्वितीयाऽवान्तरकिट्ट्यन्तरम्	२ अ	१७	
,, ,, ,, ,, तृतीयाऽवान्तरकिट्टि	तद्रसाविभागा ४०९६अ^{२१}स		२३
,, ,, ,, ,, तृतीयाऽवान्तरकिट्ट्यन्तरम्	४ अ	१८	
,, ,, ,, ,, चतुर्थाऽवान्तरकिट्टि	तद्रसाविभागा १६३८४अ^{२२}स		२४
मायातृतीयसंग्रहकिट्ट्यन्तरम् = मानमाययोरन्तरम्	१०२४ अ^{२}	४२	
मानप्रथमसंग्रहकिट्टिप्रथमाऽवान्तरकिट्टि.	तस्या रसाविभागा २५६अ^{२५}स		२५
,, ,, ,, ,, प्रथमाऽवान्तरकिट्ट्यन्तरम्	८ अ	१९	
,, ,, ,, ,, द्वितीयाऽवान्तरकिट्टि.	तद्रसाविभागा २०४८अ^{२६}स		२६
,, ,, ,, ,, द्वितीयाऽवान्तरकिट्ट्यन्तरम्	१६ अ	२०	
,, ,, ,, ,, तृतीयाऽवान्तरकिट्टि	तद्रसाविभागा ३२७६८अ^{२७}स		२७
,, ,, ,, ,, तृतीयाऽवान्तरकिट्ट्यन्तरम्	३२ अ	२१	
,, ,, ,, , चतुर्थाऽवान्तरकिट्टि	तस्या रसाविभागा १६अ^{२८}स		२८
मानप्रथमसंग्रहकिट्ट्यन्तरम्	२०४८ अ^{२}	४३	
मानद्वितीयसंग्रहकिट्टिप्रथमाऽवान्तरकिट्टि.	तद्रसाविभागा ३२७६८अ^{३१}स		२९
,, ,, ,, ,, प्रथमाऽवान्तरकिट्ट्यन्तरम्	६४ अ	२२	
,, ,, ,, ,, द्वितीयाऽवान्तरकिट्टि	तस्या रसाविभागा ३२अ^{३३}स		३०
,, ,, ,, ,, द्वितीयाऽवान्तरकिट्ट्यन्तरम्	१२८ अ	२३	
,, ,, ,, ,, तृतीयाऽवान्तरकिट्टि.	तस्या रसाविभागा ४०९६अ^{३४}स		३१
,, ,, ,, ,, तृतीयाऽवान्तरकिट्ट्यन्तरम्	२५६ अ	२४	
,, ,, ,, ,, चतुर्थाऽवान्तरकिट्टि .	तस्यां रसाविभागा १६अ^{३६}स		३२
मानद्वितीयसंग्रहकिट्ट्यन्तरम्	४०९६अ^{२}	४४	
मानतृतीयसंग्रहकिट्टिप्रथमाऽवान्तरकिट्टि	तस्या रसाविभागा अ^{३०}स		३३
,, ,, ,, ,, प्रथमाऽवान्तरकिट्ट्यन्तरम्	५१२ अ	२५	
,, ,, ,, ,, द्वितीयाऽवान्तरकिट्टिः	तस्यां रसाविभागा ५१२अ^{४०}स		३४

पूर्वतोऽनुवर्तमाना तृतीयसमाधानमाश्रित्य स्थापना		किट्ट्यन्तराल्पवहुत्वक्रमाङ्कः	किट्ट्यनुभागाल्पवहुत्वक्रमाङ्क
मानतृतीयसंग्रहकिट्टिद्वितीयाऽवान्तरकिट्ट्यन्तरम्	१०२४ अ	२६	
,, ,, ,, ,, तृतीयाऽवान्तरकिट्टि	तस्यां रसाविभागा. ८ अ^{४२} स		३५
,, ,, ,, ,, तृतीयाऽवान्तरकिट्ट्यन्तरम्	२०४८ अ	२७	
,, ,, ,, ,, चतुर्थीऽवान्तरकिट्टिः	तद्रसाविभागा.१६३८४अ^{४३}स		३६
मानतृतीयसंग्रहकिट्ट्यन्तरम्=क्रोधमानयोरन्तरम्	८१९२ अ^{२}	४५	
क्रोधप्रथमसंग्रहकिट्टिप्रथमाऽवान्तरकिट्टि	तद्रसाविभागा २०४८अ^{४६}स		३७
,, ,, ,, ,, प्रथमाऽवान्तरकिट्ट्यन्तरम्	४०९६ अ	२८	
,, ,, ,, ,, द्वितीयाऽवान्तरकिट्टि	तस्यां रसाविभागाः १२८अ^{४८}स		३८
,, ,, ,, ,, द्वितीयाऽवान्तरकिट्ट्यन्तरम्	८१९२ अ	२९	
,, ,, ,, ,, तृतीयाऽवान्तरकिट्टि	तस्यां रसाविभागा १६अ^{५०}स		३९
,, ,, ,, ,, तृतीयाऽवान्तरकिट्ट्यन्तरम्	१६३८४ अ	३०	
,, ,, ,, ,, चतुर्थावान्तरकिट्टि	तस्यां रसाविभागा.४ अ^{५२}स		४०
क्रोधप्रथमसंग्रहकिट्ट्यन्तरम्	१६३८४ अ^{२}	४६	
क्रोधद्वितीयसंग्रहकिट्टिप्रथमाऽवान्तरकिट्टि	तस्यां रसाविभागा अ^{५५}स		४१
,, ,, ,, ,, प्रथमाऽवान्तरकिट्ट्यन्तरम्	३२७६८ अ	३१	
,, ,, ,, ,, द्वितीयाऽवान्तरकिट्टि	तद्रसाविभागा ३२७६८ अ^{५६}स		४२
,, ,, ,, ,, द्वितीयाऽवान्तरकिट्ट्यन्तरम्	अ^{२}	३२	
,, ,, ,, ,, तृतीयाऽवान्तरकिट्टि	तद्रसाविभागा ३२७६८अ^{५८} स		४३
,, ,, ,, ,, तृतीयाऽवान्तरकिट्ट्यन्तरम्	२अ^{२}	३३	
,, ,, ,, ,, चतुर्थाऽवान्तरकिट्टि	तस्यां रसाविभागा अ^{६१}स		४४
क्रोधद्वितीयसंग्रहकिट्ट्यन्तरम्	३२७६८ अ^{२}	४७	
क्रोधतृतीयसंग्रहकिट्टिप्रथमाऽवान्तरकिट्टि	तद्रसाविभागा ३२७६८अ^{६३}स		४५
,, ,, ,, ,, प्रथमाऽवान्तरकिट्ट्यन्तरम्	४ अ^{२}	३४	
,, ,, ,, ,, द्वितीयाऽवान्तरकिट्टि	तस्यां रसाविभागा. २अ^{६६}स		४६
,, ,, ,, ,, द्वितीयाऽवान्तरकिट्ट्यन्तरम्	८ अ^{२}	३५	
,, ,, ,, ,, तृतीयावान्तकिट्टि	तस्यां रसाविभागा १६अ^{६८}स		४७
,, ,, ,, ,, तृतीयाऽवान्तरकिट्ट्यन्तरम्	१६ अ^{२}	३६	
,, ,, ,, ,, चतुर्थाऽवान्तरकिट्टिः	तस्यांरसाविभागा २५६अ^{७०}स		४८
क्रोधतृतीयसंग्रहकिट्ट्यन्तरम्=क्रोधचरमाऽवान्तर-किट्टिलोभापूर्वस्पर्धकप्रथमवर्गणान्तरम्	१६अ^{१६५}	४८	-
लोभापूर्वस्पर्धकप्रथमवर्गणा	तस्यां रसावि० ४०९६अ^{२३५}स		४९

तत्त्वं तु केवलिनो बहुश्रुता वा जानन्ति ॥ ९१।९२।९३ ॥

अथ द्वादशसंग्रहकिट्टीनां प्रदेशाऽल्पबहुत्वमवान्तरकिट्ट्यल्पबहुत्वं च निरूपयन्नाह

अह संगहकिट्टीणं पएसअप्पाबहुत्तं उ ।
माणस्स पढमसंगहकिट्टीअ पएसगा थोवा ॥९४॥ (उपगीतिः)
तत्तो बीयाए उ विसेसऽहिआ होन्ति माणस्स ।
तो तइआए अहिआ तो कोहस्स बिइयाअ अब्महिआ ॥९५॥ (उद्गीतिः)
तो तइआए अहिआ तो मायाएऽहिआ कमा तीसु ।
तो लोहस्स कमेणं तीसु विसेसाहिआ तत्तो ॥९६॥
कोहस्स पढमसंगहकिट्टीए होंति संखगुणा ।
एवमवंतरकिट्टीणऽप्पाबहुअं मुणेयव्वं ॥९७॥ (उपगीतिः)

अथ संग्रहकिट्टीनां प्रदेशाल्पबहुत्वं तु ।
मानस्य प्रथमसंग्रहकिट्टौ प्रदेशा स्तोका ॥९४॥
तेभ्यो द्वितीयस्यां तु विशेषाधिका भवन्ति मानस्य ।
ततस्तृतीयायामधिकास्तत क्रोधस्य द्वितीयस्यामभ्यधिका ॥९५॥
ततस्तृतीयस्यामधिकास्ततो मायाया अधिका क्रमात् तिसृषु ।
ततो लोभस्य क्रमेण तिसृषु विशेषाधिकास्तेभ्य ॥९६॥
क्रोधस्य प्रथमसंग्रहकिट्टौ भवन्ति संख्यगुणा ।
एवमवान्तरकिट्टीनामल्पबहुत्वं ज्ञातव्यम् ॥९७॥ इति पदसंस्कार ।

'अह' इत्यादि, अथशब्दः प्रकरणान्तरसूचकः, किट्ट्यन्तराणि भणितानि, सम्प्रति प्रदेशाल्पबहुत्वं भणना-ऽवसर इति प्रकरणान्तरं सूचयति । 'संग्रहकिट्टीनां' द्वादशसंग्रहकिट्टीनां 'प्रदेशाल्पबहुत्वं, प्रदेशविषयकाऽल्पबहुत्वं तु भण्यत इति शेषः ।

अथ प्रतिज्ञाताऽल्पबहुत्वं भणति-'माणस्स' इत्यादि, 'मानस्य, संज्वलनमानस्य प्रथमसंग्रहकिट्टौ 'पएसगा' त्ति "स्वार्थे कश्च वा" (सिद्धहेम० ८-२-१६४) इति प्राकृतलक्षणेन स्वार्थे कप्रत्ययः, प्रदेशाः स्तोका भवन्ति । अत्र प्रभूताऽनुभागका संग्रहकिट्टिः प्रथमा, ततो मन्दानुभागका द्वितीया, ततोऽपि मन्दतराऽनुभागका संग्रहकिट्टिस्तृतीयाऽस्ति । तेनाऽत्र प्रथमसंग्रहकिट्टिरित्युक्ते वक्ष्यमाणस्य *किट्टिवेदकस्य प्रथमसंग्रहकिट्टिर्ज्ञातव्या, वेदकस्य प्रथमं तीव्रानुभाग-

* यद्यपि "कर्मजा तृचा च" (सिद्धहेम० ३-१-८३) इति सूत्रेण कर्मषष्ठीसमासो निषिध्यते, तथापि वेद्यवेदकभावाख्यसम्बन्धविवक्षायां किट्टिवेदक, निर्वर्त्यनिर्वर्तकभावाख्यसम्बन्धविवक्षायां च किट्टिकारक इति "षष्ठ्ययत्नाच्छेषे" (सिद्धहेम० ३-१-७६) इति सूत्रेण षष्ठीसमासो न विरुध्यते । अथवा याजकादेराकृतिगणत्वात् कर्मषष्ठीसमासेऽपि न काचित् क्षतिः ।

वेदनात् । किट्टिकारकस्य त्वनुभागमाश्रित्य तृतीया ज्ञातव्या, तत्र प्रभूततमाऽनुभागस्य सत्त्वात् । एवं तृतीयसंग्रहकिट्टिरित्युक्ते किट्टिवेदकस्यैव तृतीयसंग्रहकिट्टिर्ज्ञातव्या, मन्दतमाऽनुभागस्य पश्चाद् वेदनात्, किट्टिकारकस्य तु सैवाऽनुभागमाश्रित्य प्रथमा बोद्धव्या, मन्दतमनुभागसद्भावात् ।

(२) 'तत्तो' इत्यादि, 'तेभ्यः' मानप्रथमसंग्रहकिट्टिगतप्रदेशेभ्यो मानस्य द्वितीयस्यां संग्रहकिट्टौ तु विशेषाधिका विद्यन्ते, तीव्राऽनुभागविशिष्टप्रदेशाग्रतो मन्दानुभागविशिष्टप्रदेशाग्रस्य विशेषाधिकत्वे विरोधाभावात् । आधिक्यं च पल्योपमाऽसंख्येयभागभाजितप्रथमसंग्रहकिट्टिप्रदेशराशिना ज्ञातव्यम्, मानस्य प्रथमसंग्रहकिट्टिगतप्रदेशराशिं पल्योपमाऽसंख्येयभागेन विभज्य लब्धैकभागेनाऽधिकाः प्रदेशा मानस्य द्वितीयसंग्रहकिट्टौ भवन्तीत्यर्थः ।

(३) 'तो' इत्यादि, 'ततः' मानस्य द्वितीयसंग्रहकिट्टिगतप्रदेशेभ्यः 'तृतीयायां' संज्वलनमानस्य तृतीयसंग्रहकिट्टौ 'अधिकाः' विशेषाधिकाः प्रदेशा भवन्ति । अधिकत्वं च पल्योपमाऽसंख्येभागभाजितमानद्वितीयसंग्रहकिट्टिप्रदेशराशिना बोद्धव्यम् ।

(४) 'तो' इत्यादि, ततः 'क्रोधस्य' संज्वलनक्रोधस्य 'द्वितीयस्यां' द्वितीयसंग्रहकिट्टौ 'अभ्यधिकाः' विशेषाधिकाः प्रदेशा भवन्ति ।

(५) 'तो' इत्यादि, 'ततः' क्रोधस्य द्वितीयसंग्रहकिट्टिगतसकलप्रदेशतः 'तृतीयस्यां' तृतीयसंग्रहकिट्टौ प्रदेशाः 'अधिका' विशेषाधिका भवन्ति ।

'तो' इत्यादि, ततो मायायास्तिसृषु प्रथमद्वितीयतृतीयलक्षणासु संग्रहकिट्टिषु 'क्रमात्' क्रमेण 'अधिका' विशेषाधिकाः प्रदेशा भवन्ति ।

अयं भावः—(६) संज्वलनक्रोधस्य तृतीयसंग्रहकिट्टिगतसकलप्रदेशतः संज्वलनमायायाः प्रथमसंग्रहकिट्टौ प्रदेशा विशेषाधिका भवन्ति ।

(७) ततः संज्वलनमायाया द्वितीयसंग्रहकिट्टौ विशेषाधिकाः प्रदेशास्तिष्ठन्ति ।

(८) ततोऽपि संज्वलनमायायास्तृतीयसंग्रहकिट्टौ विशेषाधिकाः प्रदेशा वर्तन्ते ।

'तो इत्यादि, 'ततः' मायायास्तृतीयसंग्रहकिट्टिगतसर्वप्रदेशतः 'लोभस्य' 'तिसृषु' प्रथमद्वितीयतृतीयरूपासु संग्रहकिट्टिषु क्रमेण विशेषाधिकाः प्रदेशा भवन्ति ।

एतदुक्तं भवति (९) मायायास्तृतीयसंग्रहकिट्टिगतप्रदेशाग्रतो लोभस्य प्रथमसंग्रहकिट्टिगतसमस्तप्रदेशा विशेषाधिका भवन्ति ।

(१०) ततोऽपि लोभस्य द्वितीयसंग्रहकिट्टौ प्रदेशा विशेषाधिकास्तिष्ठन्ति ।

(११) ततोऽपि लोभस्य तृतीयसंग्रहकिट्टौ प्रदेशा विशेषाधिका भवन्ति ।

(१२) 'तत्तो' त्ति 'तेभ्यः' लोभतृतीयसंग्रहकिट्टिगतसकलप्रदेशतः 'कोहस्स' इत्यादि, क्रोधस्य प्रथमसंग्रहकिट्टौ प्रदेशाः संख्यगुणा भवन्ति ।

अन्यथापि च कषायप्राभृतचूर्णौ "(१) माणस्स पढमाए संगहकिट्टीए पदेसग्गं थोवं । (२) विदियाए संगहकिट्टीए पदेसग्गं विसेसाहियं । (३) तदियाए संगहकिट्टीए पदेसग्गं विसेसाहियं । विसेसो पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागपडिभागो । (४) कोहस्स विदियाए संगहकिट्टीए पदेसग्गं विसेसाहियं । (५) तदियाए संगहकिट्टीए पदेसग्गं विसेसाहियं । (६) मायाए पढमसंगहकिट्टीए पदेसग्गं विसेसाहियं । (७) विदियाए संगहकिट्टीए पदेसग्गं विसेसाहियं । (८) तदियाए संगहकिट्टीए पदेसग्गं विसेसाहियं । (९) लोभस्स पढमाए संगहकिट्टीए पदेसग्गं विसेसाहियं । (१०) विदियाए संगहकिट्टीए पदेसग्गं विसेसाहियं । (११) तदियाए संगहकिट्टीए पदेसग्गं विसेसाहियं । (१२) कोहस्स पढमाए संगहकिट्टीए पदेसग्गं संखेज्जगुणं ।" इति ।

अनन्तरोक्ताऽल्पबहुत्वं किट्टिकारकापेक्षया तु प्रथमसंग्रहकिट्टिस्थाने तृतीयसंग्रहकिट्टिं तृतीयसंग्रहकिट्टिस्थाने च प्रथमसंग्रहकिट्टिमुक्त्वा प्रतिपादनीयम् । तथाहि

(१) मानस्य तृतीयसंग्रहकिट्टौ प्रदेशाः स्तोकाः ।
(२) ततो मानस्य द्वितीयसंग्रहकिट्टौ प्रदेशा विशेषाधिकाः ।
(३) ततो मानस्य प्रथमसंग्रहकिट्टौ प्रदेशा विशेषाधिकाः ।
(४) ततः क्रोधस्य द्वितीयसंग्रहकिट्टौ प्रदेशा विशेषाधिकाः ।
(५) ततः क्रोधस्य प्रथमसंग्रहकिट्टौ प्रदेशा विशेषाधिकाः ।
(६) ततो मायायास्तृतीयसंग्रहकिट्टौ प्रदेशा विशेषाधिकाः ।
(७) ततो मायाया द्वितीयसंग्रहकिट्टौ प्रदेशा विशेषाधिकाः ।
(८) ततो मायायाः प्रथमसंग्रहकिट्टौ प्रदेशा विशेषाधिकाः ।
(९) ततो लोभस्य तृतीयसंग्रहकिट्टौ प्रदेशा विशेषाधिकाः ।
(१०) ततो लोभस्य द्वितीयसंग्रहकिट्टौ प्रदेशा विशेषाधिकाः ।
(११) ततो लोभस्य प्रथमसंग्रहकिट्टौ प्रदेशा विशेषाधिकाः ।
(१२) ततः क्रोधस्य तृतीयसंग्रहकिट्टौ प्रदेशाः संख्येयगुणाः ।

नन्वक्ताऽल्पबहुत्वं कथमवसीयते ? इति चेत्, उच्यते मोहनीयकर्मणः सकलप्रदेशाग्रं सत्कर्मणि सार्धद्विगुणहानिगुणितप्रथमवर्गणाप्रदेशप्रमाणं विद्यते । तत्र लोभस्य प्रदेशाग्रं किञ्चिद्‌विकाष्टभागप्रमाणं भवति, संज्वलनमायायाः किञ्चिन्न्यूनाष्टभागमात्रं तिष्ठति, मानस्याऽपि किञ्चिन्न्यूनाष्टभागप्रमाणं वर्तते, संज्वलनक्रोधस्य तु किञ्चिन्न्यूनपञ्चाष्टभागप्रमाणमस्ति, नो-

कषायदलस्य तत्र प्रक्षिप्तत्वात् । प्रदेशाऽल्पबहुत्वं चेत्थम् (१) मानस्य स्तोकं प्रदेशाग्रम् (२) ततो विशेषाधिकं मायायाः, आधिक्यं चाऽऽवलिकाऽसंख्येयभागभाजितमानप्रदेशमात्रेण राशिना बोद्धव्यम् । (२) ततोऽपि लोभस्य विशेषाधिकम्, आधिक्यं चाऽऽवलिकाऽसंख्येयभागभाजितमायाप्रदेशमात्रेण राशिना निश्चेतव्यम्, प्रकृतिविशेषस्य तथात्वात् । (३) ततः किञ्चिन्न्यूनपञ्चगुणं क्रोधस्य, तस्य मोहनीयसकलदलपञ्चाष्टभागप्रमाणत्वात् पूर्वपदस्य त्वेकाष्टभागप्रमाणत्वात् ।

किट्टिकरणाद्धाप्रथमसमये प्रदेशसत्कर्मानुरूपं प्रदेशाग्रमुत्किरति । (१) तेन मानस्योत्कीर्णप्रदेशाग्रं स्तोकं भवति । तच्च कषायचतुष्कसत्कोत्कीर्णदलस्य किञ्चिन्न्यूनाष्टभागप्रमाणं भवति । (२) ततो विशेषाधिकं मायायाः, प्रदेशसत्कर्मणो विशेषाधिकत्वात् । तदपि किञ्चिन्न्यूनाऽष्टभागप्रमाणं भवति । (३) ततोऽपि लोभस्य विशेषाधिकमुत्कीर्णं प्रदेशाग्रं भवति, मायातो लोभप्रदेशसत्कर्मणो विशेषाऽधिकत्वात् । तच्च साधिकाष्टभागमात्रं भवति (४) ततः क्रोधस्योत्कीर्णप्रदेशाग्रं किञ्चिन्न्यूनपञ्चगुणं भवति, लोभसत्कर्मतः क्रोधप्रदेशसत्कर्मणस्तावद्गुणत्वात् । एतानुत्कीर्णप्रदेशान् पल्योपमाऽसंख्येयभागेन विभज्य बहुभागप्रमाणदलं पूर्वापूर्वस्पर्धकेषु निक्षिप्यैकभागप्रमितदलं संज्वलनचतुष्ककिट्टितया परिणमयति । तत्र संज्वलनचतुष्ककिट्टितया परिणमनाय गृहीतसकलदलस्य किञ्चिन्न्यूनाऽष्टभागप्रमाणं दलं मानकिट्टितया परिणमनाय गृह्णाति, तच्च स्तोकम् । ततो विशेषाधिकं दलं मायाकिट्टितया परिणमनाय गृह्णाति, ततोऽपि संज्वलनचतुष्ककिट्टितया परिणमनाय गृहीतसकलदलस्य किञ्चिन्न्यूनाष्टभागप्रमाणं भवति । ततो विशेषाधिकं लोभकिट्टितया परिणमनाय गृह्णाति । तच्च संज्वलनचतुष्ककिट्टितया परिणमनाय गृहीतसकलदलस्य साधिकाष्टभागप्रमितं भवति । ततः क्रोधकिट्टितया परिणमनाय संख्येयगुणं दलं गृह्णाति । तच्च संज्वलनचतुष्ककिट्टितया परिणमनाय गृहीतसकलदलस्य किञ्चिन्न्यूनपञ्चाष्टभागमात्रं भवति ।

अथ मानकिट्टितया परिणमनाय गृहीतदलस्य प्रथमादिभेदेन तिस्रः संग्रहकिट्टीर्निर्वर्तयते । तत्र मानस्य तृतीयसंग्रहकिट्टौ स्तोकं दलं ददाति, तस्यास्तीव्राऽनुभागकत्वात् । ततो विशेषाधिकं द्वितीयसंग्रहकिट्टौ ददाति, मन्दानुभावकत्वात् । ततो विशेषाधिकं प्रथमसंग्रहकिट्टौ ददाति, मन्दतराऽनुभागकत्वात् । एवं मानकिट्टितया परिणमनाय गृहीतदलस्य विभागत्रये विभजनाद् मानकिट्टितया परिणमनाय गृहीतदलस्याऽऽसन्नत्रिभागप्रमाणं दलं प्रत्येकं मानसंग्रहकिट्टौ ददाति । इत्थं कषायचतुष्ककिट्टितया परिणमनाय गृहीतसकलदलस्याऽऽसन्नचतुर्विंशतिभागप्रमाणं दलं मानस्यैकैकसंग्रहकिट्टौ दीयते ।

सम्प्रतीदमेव त्रैराशिकेन साध्यते । तथाहि यदि संज्वलनचतुष्ककिट्टितया परिणमनाय गृहीतसकलदलस्य किञ्चिन्न्यूनाष्टभागप्रमाणं दलं मानकिट्टितया परिणमनाय गृहीत्वा संग्रहकिट्टित्रये ददाति, तर्ह्येकस्यां संग्रहकिट्टौ संज्वलनचतुष्ककिट्टितया परिणमनाय गृहीत-

दलस्य कियद्भागमात्रं दलं ददाति ? इति "प्रमाणमिच्छा च समानजाती, आद्यन्तयो-स्तत्फलमन्यजातिः । मध्ये तदिच्छाहतमाद्यहृत् स्यादिच्छाफलं ।" इति भास्कर-त्रैराशिककरणसूत्रेण मानस्य प्रत्येकं संग्रहकिट्टौ संज्वलनचतुष्ककिट्टितया परिणमनाय गृहीतसकल-दलस्यासन्नचतुर्विंशतिभागप्रमाणं दीयमानं दलिकं प्राप्यते ।

न्यास –प्रमाणम् ३ । प्रमाणफलम् आसन्न $\frac{१}{८}$ । इच्छा १ । इच्छाफलम् आसन्न $\frac{१}{२४}$ लब्धं मानैकसंग्रहकिट्टिदलम् ।

एवं मायालोभयोरप्येकैकसंग्रहकिट्टौ संज्वलनचतुष्ककिट्टितया परिणमनाय गृहीतसकल-दलस्यासन्नचतुर्विंशतिभागप्रमाणं दलं प्रक्षिप्यते ।

अथ संज्वलनचतुष्ककिट्टितया परिणमनाय गृहीतसकलदलस्य किञ्चिन्न्यूनपञ्चाष्टभाग-प्रमाणं दलं संज्वलनक्रोधकिट्टितया परिणमनाय गृह्णाति । तत्र यत् किंचिन्न्यूनचतुरष्टभाग-प्रमाणं ($\frac{४}{८}$) दलं नोकषायतः क्रोधतया परिणतम्, तत् क्रोधस्य तृतीयसंग्रहकिट्टौ दीयते । शेषं किंचिन्न्यूनाष्टभागप्रमाणं दलं क्रोधस्य प्रथमद्वितीयतृतीयलक्षणासु तिसृषु संग्रहकिट्टिषु दीयते । तेन मानवत् क्रोधस्य द्वितीयसंग्रहकिट्टौ प्रथमसंग्रहकिट्टौ च संज्वलनचतुष्ककिट्टितया परिणमनाय गृहीतसकलदलस्याऽऽसन्नचतुर्विंशतिभागप्रमाणं दलं प्रक्षिप्यते । एवं संज्वलनक्रोधस्य तृतीयसंग्रह-किट्टयामप्यासन्नचतुर्विंशतिभागप्रमाणं दलं प्रक्षिप्यते । ततः क्रोधतृतीयसंग्रहकिट्टयामासन्नचतु-र्विंशतिभागप्रमाणं तथा प्राग् विहितं नोकषायतः परिणतं किंचिन्न्यूनचतुरष्टभागप्रमाणं दलं प्रक्षि-प्यते । इत्थं क्रोधतृतीयसंग्रहकिट्टौ प्रक्षिप्यमाणदलं संज्वलनचतुष्ककिट्टितया परिणमनाय गृहीत-सकलदलस्य त्रयोदशचतुर्विंशतिभागप्रमाणं ($\frac{१}{२}+\frac{१}{२४}=\frac{१३}{२४}$) भवति ।

अथोपसंह्रियते संज्वलनमान-क्रोध-माया-लोभानां किट्टितया परिणमनाय दलिकं यथोत्तरं विशेषाधिकक्रमेण गृह्णाति । गृहीत्वा च तृतीयसंग्रहकिट्टितो द्वितीयसंग्रहकिट्टौ विशेषाधिकं ददाति, ततोऽपि विशेषाधिकं प्रथमसंग्रहकिट्टौ ददाति, नोकषायतश्च पूर्वापूर्वस्पर्धकरूपक्रोधतया परिणतं दलं क्रोधतृतीयसंग्रहकिट्टौ ददाति । इत्थं मानतृतीयसंग्रहकिट्टि–द्वितीयसंग्रहकिट्टि-प्रथमसंग्रहकिट्टि–क्रोधद्वितीयसंग्रहकिट्टिप्रथमसंग्रहकिट्टि मायातृतीयसंग्रहकिट्टि–द्वितीयसंग्रहकिट्टि–प्रथमसंग्रहकिट्टि–लोभतृतीयसंग्रहकिट्टि-द्वितीयसंग्रहकिट्टि-प्रथमसंग्रहकिट्टिषु यथाक्रमं निक्षिप्यमाणं विशेषाधिकं दलं भवदपि संज्वलनचतुष्ककिट्टितया परिणमनाय गृहीतसकलदलस्याऽऽसन्नचतुर्विंशतिभागप्रमाणं भवति । क्रोधतृतीयसंग्रहकिट्टौ तु संज्वलनचतुष्ककिट्टितया परिणमनाय गृहीतसकलदलस्यासन्न–त्रयोदशचतुर्विंशतिभागप्रमाणं दलं निक्षिप्यते । अतो लोभप्रथमसंग्रहकिट्टौ संज्वलनचतुष्ककिट्टि-तया परिणमनाय गृहीतसकलदलस्य निक्षिप्यमाणमासन्नैकचतुर्विंशतिभागप्रमाणदलतः क्रोधस्य तृती-यसंग्रहकिट्टौ प्रक्षिप्यमाणमासन्नत्रयोदशचतुर्विंशतिभागप्रमाणदलमासन्नत्रयोदशगुणलक्षणं संख्येय-गुणं भवति । इत्थं लोभस्य प्रथमसंग्रहकिट्टितः क्रोधस्य तृतीयसंग्रहकिट्टौ दलं संख्येयगुणं भवति ।

इदन्त्ववधेयम्—यद्यपि मानस्य प्रथमसंग्रहकिट्टिगतैकैकाऽवान्तरकिट्टिगतप्रदेशतः क्रोधद्वितीयसंग्रहकिट्टिगतैकैकाऽवान्तरकिट्टौ दलं विशेपहीनं शततमगाथया वक्ष्यते, तथापि मानप्रथमसंग्रहकिट्टिसकलाऽवान्तरकिट्टितः क्रोधद्वितीयसंग्रहकिट्टिनिखिलाऽवान्तरकिट्टीनां विशेषाधिकत्वस्य वक्ष्यमाणत्वाद् मानप्रथमसंग्रहकिट्टिसकलाऽवान्तरकिट्टिगतसर्वप्रदेशतः क्रोधद्वितीयसंग्रहकिट्टिसमस्ताऽवान्तरकिट्टिगतसकलप्रदेशा विशेषाधिका भवन्ति ।

सम्प्रत्यवान्तरकिट्टयल्पबहुत्वमतिदिदिक्षुराह—'एव०' इत्यादि, 'एवम्' यथैकैकसंग्रहकिट्टिगतप्रदेशानामल्पबहुत्वं सार्धगाथात्रयेण प्रतिपादितम्, तथैव 'अवान्तरकिट्टीनाम्' एकैकसंग्रहकिट्टिगताऽवान्तरकिट्टीनामल्पबहुत्वं ज्ञातव्यम्, विशेषाभावात् । उक्तं च कषायप्राभृतचूर्णौ—"जहा पदेसग्गेण विहासिदं, तहा *वग्गणग्गेण विहासिदव्वं ।" इति । तथाहि—(१) मानस्य प्रथमसंग्रहकिट्टयामवान्तरकिट्टयः स्तोकाः, ताश्चा-ऽनन्ताः, एकैकस्यां संग्रहकिट्टावनन्तानामवान्तरकिट्टीनां प्राक् प्रतिपादितत्वात् । (२) ततो मानस्य द्वितीयसंग्रहकिट्टयामवान्तरकिट्टयो विशेषाधिका भवन्ति । आधिक्यं च पल्योपमाऽसंख्येयभागभाजितप्रथमसंग्रहकिट्टिगताऽवान्तरकिट्टिमात्रेण राशिना ज्ञातव्यम् । (३) ततो मानस्य तृतीयसंग्रहकिट्टयामवान्तरकिट्टयो विशेषाधिका बोद्धव्याः । (४) ततः क्रोधस्य द्वितीयसंग्रहकिट्टयामवान्तरकिट्टयो विशेषाधिका बोद्धव्याः । (५) ततः क्रोधस्य तृतीयसंग्रहकिट्टयामवान्तरकिट्टयो विशेषाधिका वक्तव्याः । (६) ततो मायायाः प्रथमसंग्रहकिट्टयामवान्तरकिट्टयो विशेषाधिका अभिधातव्याः । (७) ततो मायाया द्वितीयसंग्रहकिट्टयामवान्तरकिट्टयो विशेषाधिका अधिगन्तव्याः । (८) ततो मायायास्तृतीयसंग्रहकिट्टयामवान्तरकिट्टयो विशेषाधिका वाच्याः । (९) ततो लोभस्य प्रथमसंग्रहकिट्टयामवान्तरकिट्टयो विशेषाधिका ज्ञातव्याः । (१०) ततो लोभस्य द्वितीयसंग्रहकिट्टयामवान्तरकिट्टयो विशेषाधिका अवसेयाः । (११) ततो लोभस्य तृतीयसंग्रहकिट्टयामवान्तरकिट्टयो विशेषाधिका अभिधेयाः । (१२) ततोऽपि क्रोधस्य प्रथमसंग्रहकिट्टयामवान्तरकिट्टयः संख्येयगुणा निगदितव्याः ।

अत्राऽपि पूर्ववत् प्रथमसंग्रहकिट्टिरित्युक्ते किट्टिवेदकस्य प्रथमसंग्रहकिट्टिर्ज्ञातव्या । किट्टिकारकस्य तु तृतीयसंग्रहकिट्टिर्बोद्धव्या । एवं तृतीयसंग्रहकिट्टिरित्युक्ते किट्टिवेदकस्य तृतीयसंग्रहकिट्टिर्ज्ञातव्या, किट्टिकारकस्य तु प्रथमसंग्रहकिट्टिर्बोद्धव्या । तेन किट्टिकारकापेक्षयाल्पबहुत्वमित्थं भणनीयम्

(१) मानस्य तृतीयसंग्रहकिट्टाववान्तरकिट्टयः स्तोकाः ।

(२) ततो मानस्य द्वितीयसंग्रहकिट्टाववान्तरकिट्टयो विशेषाधिका वर्तन्ते ।

(३) ततो मानस्य प्रथमसंग्रहकिट्टाववान्तरकिट्टयो विशेषाधिका भवन्ति ।

* अत्र वर्गणाशब्देनाऽवान्तरकिट्टयो ग्राह्या, तासाम् अग्रं समुदाय इति वर्गणाग्रम्, तेन ।

(४) ततोऽपि क्रोधस्य द्वितीयसंग्रहकिट्टयामवान्तरकिट्टयो विशेषाधिका भवन्ति ।

(५) ततोऽपि क्रोधस्य प्रथमसंग्रहकिट्टाववान्तरकिट्टयो विशेषाधिका विद्यन्ते ।

(६) ततो मायायास्तृतीयसंग्रहकिट्टावान्तरकिट्टयो विशेषाधिका बोद्धव्याः ।

(७) ततो मायाया द्वितीयसंग्रहकिट्टाववान्तरकिट्टयो विशेषाधिका भणनीयाः ।

(८) ततो मायायाः प्रथमसंग्रहकिट्टाववान्तरकिट्टयो विशेषाधिका अभिधातव्याः ।

(९) ततो लोभस्य तृतीयसंग्रहकिट्टयामवान्तरकिट्टयो विशेषाधिका ज्ञेयाः ।

(१०) ततो लोभस्य द्वितीयसंग्रहकिट्टाववान्तरकिट्टयो विशेषाधिका वाच्याः ।

(११) ततो लोभस्य प्रथमसंग्रहकिट्टाववान्तरकिट्टयो विशेषाधिका वक्तव्याः ।

(१२) ततोऽपि क्रोधस्य तृतीयसंग्रहकिट्टाववान्तरकिट्टयः संख्येयगुणा निगदितव्या इति । कथमेतदवसीयते ? इति चेत्, शृणुत वक्ष्यमाणपरम्परोपनिधयाऽपि किट्टिषु दृश्यमानप्रदेशाग्रस्य केवलं विशेषहीनत्वस्य अनन्तरगाथया वक्ष्यमाणत्वात् प्राक्प्रतिपादितं लोभस्य प्रथमसंग्रहकिट्टिगतप्रदेशात आसन्नत्रयोदशगुणं दलं गृह्णन् लोभतृतीयसंग्रहकिट्टिगतकिट्टित आसन्नत्रयोदशगुणलक्षणाः संख्यातगुणा अवान्तरकिट्टीर्निर्वर्तयति, अन्यथा परम्परोपनिधया विशेषहीनं दलं नोपपद्येत ॥९४-९५-९६-९७॥

संग्रहकिट्टिषु दीयमानं दलं प्ररूप्य सम्प्रत्यवान्तरकिट्टिषु दीयमानं दलं निरूपयिषुराह

लोहजहण्णगकिट्टिपहुडिकोहुक्कोसकिट्टिअंतासु ।
सव्वासुं देइ दलं विसेसहीणक्कमेण खलु ॥ ९८ ॥

लोभजघन्यकिट्टिप्रभृतिक्रोधोत्कृष्टकिट्टयन्तासु ।
सर्वासु ददाति दलं विशेषाधिकक्रमेण खलु ॥९८॥ इति पदसंस्कारः ।

'लोह०' इत्यादि, 'लोभजघन्यकिट्टिप्रभृतिक्रोधोत्कृष्टकिट्टयन्तासु' लोभप्रथमसंग्रहकिट्टिप्रथमा-ऽवान्तरकिट्टिप्रभृतिक्रोधतृतीयसंग्रहकिट्टिचरमावान्तरकिट्टिपर्यवसानासु 'सर्वासु' सर्वाऽवान्तरकिट्टिषु 'दलं' प्रदेशाग्रं 'खलु' खलुशब्दो वाक्या-ऽलङ्कारे "निषेधवाक्यालङ्कारे जिज्ञासानुनये खलु" इत्यमरकोशवचनात्, विशेषहीनक्रमेण ददाति । इदमुक्तं भवति—लोभप्रथमसंग्रहकिट्टेः प्रथमा-ऽवान्तरकिट्टौ प्रभूतं दलं ददाति, ततो-ऽनन्तभागेन हीनं द्वितीयावान्तरकिट्टौ ददाति, ततो-ऽप्यनन्तभागेन हीनं तृतीया-ऽवान्तरकिट्टौ ददाति । एवमनन्तभागहीनक्रमेण तावद् ददाति, यावत् क्रोधतृतीयसंग्रहकिट्टिचरमा-ऽवान्तरकिट्टिः । उक्तं च कषायप्राभृतचूर्णौ—

"पढमसमए किट्टीसु पदेसग्गस्स सेढिपरूवणं वत्तइस्सामो । तं जहा-लोभस्स जहण्णियाए किट्टीए पदेसग्गं बहुअं, बिदियाए किट्टीए विसेसहीणं। एवमणंतरोवणिधाए विसेसहीणमणंतभागेण जाव कोहस्स चरिमकिट्टि त्ति ।" इति ।

अथ गणितविभागः ।

सम्प्रति गणितरीत्या दीयमानदलं दर्श्यते-किट्टिकरणाद्धाप्रथमसमये पूर्व्वापूर्व्वस्पर्धकेभ्यो-ऽसंख्येयभागमात्रदलमुत्कीर्योत्कीर्णदलस्याऽसंख्येयभागप्रमाणं दलं किट्टितया परिणमयति । शेषाऽसंख्येयबहुभागमात्रदलं पूर्वापूर्वस्पर्धकेषु ददाति। किट्टितया परिणमनाय गृहीतसकलदलिकतः प्रभूतं दलिकं लोभप्रथमसंग्रहकिट्टिप्रथमाऽवान्तरकिट्टौ ददाति । तद्यथा-किट्टितया परिणमनाय गृहीतसकलदलं पदेन विभक्तव्यम् । लब्धं च मध्यमदलमिति व्यवह्रियते । किट्टिराशिश्च पदं वक्तव्यः । मध्यमदलं पुनरर्धीकृतैकोनपदन्यूनाभ्यां द्वाभ्यां द्विगुणहानिभ्यां विभज्यते, तदैकचयदलं प्राप्यते । एकचयदलं तु द्वाभ्यां द्विगुणहानिभ्यां ताड्यते, तदा ताडितं दलं लोभप्रथमसंग्रहकिट्टिप्रथमावान्तरकिट्टौ दीयमानदलं भवति । ततो द्वितीया-ऽवान्तरकिट्टावेकचयेन हीनं ददाति । ततो द्वितीयावान्तरकिट्टितस्तृतीयावान्तरकिट्टयामेकचयेन हीनं ददाति । एवमेकचयहीनक्रमेण तावद् ददाति, यावत् क्रोधतृतीयसंग्रहकिट्टिचरमावान्तरकिट्टिः ।

असत्कल्पनया किट्टिकरणाद्धाप्रथमसमये चतुर्नवत्यधिकपञ्चविंशतिशतानि (२५९४) किट्टीर्निर्वर्तयति, किट्टितया च परिणमनाय द्वे-ऽब्जे सप्ताशीतिकोटयस्त्रयोनवतिलक्षाणि पञ्चाशीतिसहस्राणि पञ्चनवत्यधिकत्रिशतानि (२८७९३८५३९५) दलिकानि गृह्णाति, द्विगुणहानिश्च सप्तपञ्चाशदधिकषट्शताधिकपञ्चपञ्चाशत्सहस्रोत्तरपञ्चलक्षमात्रेति कल्प्यते ।

अथ किट्टितया परिणमनाय गृहीतानि पञ्चनवत्यधिकत्रिशतोत्तरपञ्चाशीतिसहस्राधिकत्रयोनवतिलक्षोत्तरसप्ताशीतिकोट्यधिकद्व्यब्जसंख्यकानि (२८७९३८५३९५) दलिकानि चतुर्नवत्यधिकपञ्चविंशतिशतलक्षणेन किट्टिराशिना विभज्यन्ते, तदा मध्यमदलं लभ्यते, तत्पुनरर्धीकृतैकोनकिट्टिराशिन्यूनाभ्यां द्वाभ्यां द्विगुणहानिभ्यां द्विकविभाजितपञ्चत्रिंशदधिकविंशतिसहस्रोत्तरद्वाविंशतिलक्षराशिनेत्यर्थः, विभज्यते, तदैकचयदलमेकं लभ्यते । तद् पुनर्द्वाभ्यां द्विगुणहानिभ्यां चतुर्दशाधिकत्रिशतोत्तरैकादशसहस्रयुक्तैकलक्षरूपाभ्यां (१११३१४) गुण्यते, गुणने च कृते लोभप्रथमसंग्रहकिट्टिप्रथमा-ऽवान्तरकिट्टौ दीयमानं दलं चतुर्दशाधिकत्रिशतोत्तरैकादशसहस्राधिकैकलक्षमात्रं प्राप्यते ।

न्यास

पदम् = निर्वर्त्यमानकिट्टिराशि = २५९४
किट्टितया परिणमनाय गृहीतदलम् = २८७९३८५३९५
द्विगुणहानि = ५५५६५७

$$\text{मध्यमदलम्} = \frac{\text{किट्ट्यर्थं गृहीतदलम्}}{\text{पदम्}}$$

$$\text{अङ्कतो} \quad " \quad \frac{२८७१३८५३१५}{२५१४}$$

$$\text{एकचयदलम्} = \text{मध्यमदलम्} - \left(\text{द्वे द्विगुणहानी}^{\frac{\text{पदम्} \; १}{२}} \right)$$

$$\text{अङ्कत} \quad " \quad = \frac{२८७१३८५३१५}{२५१४} - \left(२\times५५५६५७^{\frac{२५१४ \; १}{२}} \right)$$

$$\therefore \quad " \quad " \quad = \frac{२८७१३८५३१५}{२५१४} \div \left(११११३१४^{\frac{२५१४ \; १}{२}} \right)$$

$$\therefore \quad " \quad " \quad = \frac{२८७१३८५३१५}{२५१४} - \left(\frac{२२२२६२८}{२}^{२५१३} \right)$$

$$\therefore \quad " \quad " \quad = \frac{२८७१३८५३१५}{२५१४} \div \frac{२२२००३५}{२}$$

$$\therefore \quad " \quad " \quad = \frac{२८७१३८५३१५}{२५१४} \times \frac{२२२००३५}{२}$$

$$\therefore \quad " \quad " \quad = \frac{५७५८७७०७१०}{५७५८७७०७१०}$$

$$\therefore \quad " \quad " \quad = १$$

तदेवमेकचयदलमेकं प्राप्तम् ।

$$\therefore \quad \text{लोभप्रथमसंग्रहकिट्टिप्रथमाऽवान्तरकिट्टौ दीयमानं दलम् ।} = \text{एकचयदलम्} \times \text{द्वे द्विगुणहानी}$$

$$\therefore \quad \text{अङ्कतो} \quad " \quad = १ \times (२\times५५५६५७)$$
$$= १ \times ११११३१४$$
$$= ११११३१४$$

इत्थं लोभप्रथमसंग्रहकिट्टिप्रथमाऽवान्तरकिट्टौ चतुर्दशाधिकशतत्रयोत्तरैकादशसहस्राधिकैका-दशलक्षप्रमितानि (११,११,३१४) दलिकानि ददाति । तत एकचयेन हीनानि त्रयोदशाधिक-त्रिशतोत्तरैकादशसहस्राधिकैकादशलक्षमितानि (११,११,३१३) ददाति । एवमुत्तरोत्तरकिट्टावे-कैकचयेन हीनानि दलिकानि तावद् ददाति, यावत् क्रोधतृतीयसंग्रहकिट्टिचरमाऽवान्तरकिट्टिः ।

अथवा भणितप्रकारेणैकचयदलं ज्ञात्वा चयाः परिगणनीयाः । तद्यथा क्रोधतृतीयसंग्रह-किट्टेर्या द्विचरमाऽवान्तरकिट्टयामेकश्चयः प्रक्षिप्यते, त्रिचरमाऽवान्तरकिट्टौ द्वौ चयौ, एवं पश्चानु-पूर्व्यैकोत्तरवृद्धया चयप्रक्षेपस्तावद् वाच्यः, यावद् लोभप्रथमसंग्रहकिट्टिप्रथमाऽवान्तरकिट्टिरिति कल्पयित्वा "सैकपदघ्नपदार्धमथैकाद्यङ्कयुतिः किल सङ्कलिताख्या" इत्यनेन करणसूत्रेण सर्वे चयाः प्राप्तव्याः । तत एकचयदलं सर्वचयैस्ताडयितव्यम् । गुणनफलं च सर्वचयदलं भवति । तच्च किट्टितया परिणमनाय गृहीतदलस्याऽनन्ततमभागमात्रं भवति । अथ

किट्टितया परिणमनाय गृहीतदलतः सर्वचयदलं विशोध्य शेषं दलं किट्टिराशिना विभज्यैकैकखण्डं सर्वकिट्टिषु ददाति । तथा चयदलिकत एकोनकिट्टिराशिप्रमाणांश्चयान् लोभप्रथमसंग्रहकिट्टिप्रथमाऽवान्तरकिट्टौ ददाति, द्वितीयावान्तरकिट्टौ द्व्यूनकिट्टिराशिप्रमाणांश्चयान् ददाति, तत एकैकचयेन हीनं तावद् ददाति, यावत् क्रोधतृतीयसंग्रहकिट्टिद्विचरमावान्तरकिट्टिः, तेन तस्यामेकचयदलं ददाति । ततः क्रोधतृतीयसंग्रहकिट्टिचरमावान्तरकिट्टौ चयदलतो दलिकं न प्रक्षिपति, पूर्वोक्तमेकखण्डदलं तु प्रक्षिपत्येव । एवंक्रमेण दलिकप्रक्षेपे सति लोभप्रथमसंग्रहकिट्टिप्रथमावान्तरकिट्टौ दलं प्रभूतं निक्षिप्यते, एकोनकिट्टिराशिप्रमाणचययुतैकखण्डमात्रत्वात्, ततो द्वितीयावान्तरकिट्टावेकचयेन हीनं निक्षिप्यते, द्व्यूनकिट्टिराशिप्रमाणचयसमन्वितैकखण्डप्रमितत्वात् । एवं तावद् वक्तव्यम्, यावत् क्रोधतृतीयसंग्रहकिट्टिचरमाऽवान्तरकिट्टिः ।

एतदेवा-ऽसत्कल्पनया दर्श्यते किट्टिकरणाद्धाप्रथमसमये किट्टिराशिः किट्टितया च परिणमनाय गृहीतं दलमित्येतत् सर्वं पूर्ववत् कल्पनीयम् । एकचयदलं पूर्वोक्तरीत्यैकदलिकमात्रं साधनीयम् । सर्वचयराशिस्तु "सैकपदघ्नपदार्धमथैकाद्यङ्कयुतिः किल सङ्कलिताख्या ।" इत्यनेन श्रीभास्करकरणसूत्रेणैकविंशत्यधिकैकशतोत्तरत्रयःषष्टिसहस्राधिकत्रयस्त्रिंशल्लक्षसंख्यको(३३,६३,१२१) लभ्यते । तथाहि एकोनकिट्टिषु चयप्रक्षेपात् पदमत्रैकोनकिट्टिराशिस्त्रयोनवत्यधिकपञ्चविंशतिशतमात्रमित्यर्थः, तदेकेन सहितं जातं चतुर्नवत्यधिकपञ्चविंशतिशतप्रमाणम् (२५९३+१= २५९४) । अथ चतुर्नवत्यधिकपञ्चविंशतिशतानि द्विकविभक्तत्रयोनवत्युत्तरपञ्चविंशतिशतलक्षणेन पदार्धेन विभज्यन्ते, तदा सर्वचयराशिरेकविंशत्यधिकैकशतत्रयःषष्टिसहस्रोत्तरत्रयस्त्रिंशल्लक्षमात्रः (३३,६३,१२१) उपलभ्यते । स चैकचयदलेनैकसंख्यकेन गुण्यते, तदा सर्वचयदलमेकविंशत्यधिकैकशतोत्तरत्रयःषष्टिसहस्राधिकत्रयस्त्रिंशल्लक्षप्रमितं (३३,६३,१२१) भवति ।

अथोक्तसर्वचयदलं किट्टितया परिणमनाय गृहीतदलिकेभ्यः पञ्चनवत्यधिकत्रिशतोत्तरपञ्चाशीतिसहस्राधिकात्रिनवतिलक्षोत्तरसप्ताशीतिकोटीसंयुक्तद्वयब्जसंख्यकेभ्यो (२८७९३८५३९५) विशोध्यते, तदा चतुःसप्तत्यधिकद्विशतोत्तरद्वाविंशतिसहस्राधिकषष्टिलक्षसंयुक्तसप्ताशीतिकोटयधिकद्वयब्जप्रमाणानि (२८७९३८५३९५ ३३६३१२१=२८७६०२२२७४) दलिकान्यवशिष्यन्ते, तानि किट्टिराशिना चतुर्नवत्युत्तरपञ्चविंशतिशतमानेन (२५९४) विभज्यते, तदेकखण्डमेकविंशत्यधिकसप्तशतोत्तराष्टसहस्राधिकैकादशलक्षदलिकप्रमाणं (११०८७२१) प्राप्यते ।

न्यास :

कल्प्यते किट्टितया परिणनाय गृहीत दलम् = २८७९३८५३९५
किट्टिराशि = २५९४
द्विगुणहानि· = ५५५६५७
सर्वचया = $(\text{पदम्} + १) \times \frac{\text{पदम्}}{२}$

अङ्कत' सर्वचया. = (२५९३+१) × २५९३/२

" = २५९४ × २५९३/२

= ३३६३१२१

एकचयदलम् = १ पूर्वोक्तकरणेना-ऽत्रा-ऽपि साधनीयम्

∴ सर्वचयदलम् = १ × ३३६३१२१

= ३३६३१२१

सर्वचयदलरहितं किट्टितया परिणमनाय गृहीतं दलम् = २८७९३८५३९५ ३३६३१२१

= २८७६०२२२७४

एकखण्डदलम् = सर्वचयदलरहितं किट्टयर्थं गृहीतं दलम् / किट्टिराशि

प्रकृते-ऽङ्कत " = २८७६०२२२७४ / २५९४

= ११०८७२१

अथ लोभप्रथमसंग्रहकिट्ट्याः प्रथमा-ऽवान्तरकिट्टावेकखण्डमेकविंशत्यधिकसप्ताशीतिशतोत्तरैकादशलक्षदलमितम् (११०८७२१) एकोनकिट्टिराशिप्रमाणांश्च त्रयोनवत्यधिकपञ्चविंशतिशतसंख्याकांश्चयान् (२५९३) प्रक्षिपति, तेन तत्र दीयमानानि दलिकानि चतुर्दशाधिकशतत्रयोत्तरैकादशसहस्राधिकैकादशलक्षप्रमितानि [११०८७२१ + (१ × २५९३) = ११११३१४] भवन्ति । ततो द्वितीया-ऽवान्तरकिट्ट्यामेकखण्डमेकविंशत्यधिकसप्ताशीतिशतोत्तरैकादशलक्षप्रदेशमात्रं (११०८७२१) प्रथमा-ऽवान्तरकिट्ट्यपेक्षया चैकोनचयान् द्विनवत्यधिकपञ्चविंशतिसंख्यकान् (२५९२) प्रक्षिपति, तेन तत्र दीयमानदलिकानि त्रयोदशा-ऽधिकत्रिशतोत्तरैकादशसहस्राधिकैकादशलक्षाणि [११०८७२१ + (१ × २५९२) = ११११३१३] भवन्ति । ततः परमेकैका-ऽवान्तरकिट्ट्यामेकखण्डदलं पूर्वपूर्वतश्चोत्तरोत्तरा-ऽवान्तरकिट्टावेकैकचयहान्या चयदलं तावद् ददाति, यावत् क्रोधतृतीयसंग्रहकिट्टिचरमा-ऽवान्तरकिट्टिः । अनेन क्रमेण दलिकप्रक्षेपे सति पूर्वपूर्वा-ऽवान्तरकिट्टित उत्तरोत्तरा-ऽवान्तरकिट्टौ दीयमानदलान्येकचयेन हीनानि भवन्ति, तत्त्वतश्चैकचयदलस्यैकखण्डदला-ऽनन्ततमभागमात्रत्वात् सर्वा-ऽवान्तरकिट्टिषु दीयमानदलमनन्तभागहीनक्रमेण भवति । गणितविभागः समाप्तः ॥९८॥

अनन्तरोपनिधया किट्टिषु दलं प्ररूप्य सम्प्रति परम्परोपनिधया दलं निरूपयिषुराह

लोहस्स जहण्णगकिट्टित्तो कोहस्स जेट्ठकिट्टीए ।
दलिअं परंपराअ वि दिज्जेइ विसेसहीणं हि ॥९९॥

लोभस्य जघन्यकिट्टितः क्रोधस्य ज्येष्ठकिट्टौ ।
दलिकं परम्परयाऽपि दीयते विशेषहीनं हि ॥९९॥ इति पदसंस्कार ।

'लोहस्स' इत्यादि, 'लोभस्य जघन्यकिट्टितः' संज्वलनलोभस्य प्रथमसंग्रहकिट्टिप्रथमाऽवान्तरकिट्टिगतदलतः 'क्रोधस्य' संज्वलनक्रोधस्य 'ज्येष्ठकिट्टौ' तृतीयसंग्रहकिट्टिचरमाऽवान्तरकिट्टौ परम्परयाऽपि 'दलिकं' प्रदेशाग्रं विशेषहीनमेव हिशब्दस्य "हि हेतावधारणे" इत्यमरकोशवचनेना-ऽवधारणार्थकत्वात् 'दीयते' प्रक्षिप्यते । हीनत्वं चा-ऽनन्ततमभागेन बोध्यम्, किट्टिराशेरेकस्पर्धकवर्गणाऽनन्ततमभागमात्रत्वेनैकद्विगुणहानिगतस्थाना-ऽनन्ततमभागप्रमाणत्वात् । न्यगादि च कषायप्राभृतचूर्णौ "परंपरोवणिधाए जहण्णियादो लोभकिट्टीदो उक्कस्सियाए कोधकिट्टीए पदेसग्गं विसेसहीणमणंतभागेण ।" इति ।

विवक्षितसमये यद् दलं दीयते, तद् दीयमानं दलं निगद्यते । विवक्षितसमये दीयमानदलेन सहितं प्राक्तनसत्तागतदलं दृश्यमानं दलमुच्यते । किट्टिषु दीयमानं प्राग् दलं दर्शितम् । सम्प्रति किट्टिषु दृश्यमानदलं निजिगदिषुराह

दलिअं तु दिस्समाणं लोहजहण्णाउ पहुडि कोहस्स ।
उक्कोसं किट्टिं जाव विसेसूणक्कमेणऽत्थि ॥१००॥

दलिकं तु दृश्यमानं लोभजघन्यायाः प्रभृति क्रोधस्य ।
उत्कृष्टां किट्टिं यावद् विशेषोनक्रमेणाऽस्ति ॥१००॥ इति पदसंस्कारः ।

'दलिअं' इत्यादि, तत्र दृश्यमानं दलिकं तु 'लोभजघन्यायाः' लोभप्रथमसंग्रहकिट्टिप्रथमावान्तरकिट्टितः प्रभृति 'क्रोधस्य' संज्वलनक्रोधस्य 'उत्कृष्टां किट्टिं' तृतीयसंग्रहकिट्टिचरमाऽवान्तरकिट्टिं यावद् विशेषहीनक्रमेण 'अस्ति' विद्यते, किट्टिषु विशेषहीनक्रमेण दलिकस्य निक्षिप्तत्वात् पुरातनदलिकाभावाच्च ।

अथ किट्टिकरणाद्धाप्रथमसमये पूर्वापूर्वस्पर्धकेषु दलनिक्षेपविधिर्भण्यते—उत्कीर्णदलस्याऽसंख्येयभागप्रमाणं दलं किट्टिषु निक्षिपति, शेषबहुसंख्येयभागप्रमाणं दलं पूर्वा—ऽपूर्वस्पर्धकेषु निक्षिपतीति प्रागुक्तम् । तत्र प्रथमाऽपूर्वस्पर्धकस्य प्रथमवर्गणायां क्रोधतृतीयसंग्रहकिट्टिचरमाऽवान्तरकिट्टौ निक्षिप्तदलतो-ऽनन्तगुणहीनं दलं निक्षिपति, तत उत्तरोत्तरवर्गणायां विशेषहीनक्रमेण निक्षिपति ।

ननु क्रोधतृतीयसंग्रहकिट्टिचरमाऽवान्तरकिट्टौ निक्षिप्तदलतोऽपूर्वस्पर्धकप्रथमवर्गणायामनन्तगुणहीनं दलं निक्षिपतीत्येतत् कथमवसीयते ? इति चेत्, उच्यते-क्रोधस्य तृतीयसंग्रहकिट्टिचरमाऽवान्तरकिट्टावनन्ता-ऽपूर्वस्पर्धकप्रथमवर्गणाप्रदेशप्रमाणं दलं निक्षिप्या-ऽपूर्वस्पर्धकप्रथमवर्गणायां पुरातनसत्तागतदलस्याऽसंख्येयभागं प्रक्षिपति । तेन क्रोधस्य तृतीयसंग्रहकिट्टिचरमाऽवान्तरकिट्टिगतप्रदेशतोऽपूर्वस्पर्धकप्रथमवर्गणायामनन्तगुणहीनं प्रक्षिप्यत इति लभ्यम् । तथाहि अपूर्वस्पर्धक-

प्रथमवर्गणागतदले सार्धद्विगुणहान्या गुणिते सत्तागतसकलदलं प्राप्यते, तत् सत्तागतदलमुत्कर्षणापकर्षणभागहारेण विभज्यैकभागमुत्किरति, तस्या-ऽसंख्येयभागप्रमाणं दलं किट्टिषु निक्षिपति । तेन बहुभागान् पृथक् स्थापयित्वैकभागं पूर्वोक्तविधिना विभज्यैकैकावान्तरकिट्टौ दलं निक्षिपति, तच्चाऽनन्तापूर्वस्पर्धकप्रथमवर्गणाप्रदेशप्रमाणं भवति । पृथक्स्थापितमुत्कीर्णदलबहुभागप्रमाणं दलं सार्धद्विगुणहान्या विभज्यैकभागमपूर्वस्पर्द्धकप्रथमवर्गणायां निक्षिपति । तच्च निक्षिप्यमाणं दलमपूर्वस्पर्द्धकपुरातनदलस्याऽसंख्येयभागप्रमाणं दलं भवति । तेन क्रोधतृतीयसंग्रहकिट्टिचरमाऽवान्तरकिट्टौ निक्षिप्तदलतोऽनन्तगुणहीनं दीयमानं दलं प्रथमापूर्वस्पर्धकप्रथमवर्गणायां भवति । तथा च दृश्यमानमपि दलं क्रोधतृतीयसंग्रहकिट्टिचरमावान्तरकिट्टिगतदलतोऽनन्तगुणहीनमपूर्वस्पर्द्धकप्रथमवर्गणायां भवति, क्रोधतृतीयसंग्रहकिट्टिचरमाऽवान्तरकिट्टावनन्ताऽपूर्वस्पर्द्धकप्रथमवर्गणाप्रदेशप्रमाणस्य दलस्य निक्षिप्तत्वात् । इत्थं सत्कर्मणि दृश्यमानं दलं गोपुच्छाकारद्वयेन तिष्ठति, किट्टिविषयकगोपुच्छाकारदलं स्पर्धकविषयकगोपुच्छाकारदलं चेति *।

अन्ये तु किट्टिषु स्पर्धकेषु चैकगोपुच्छाकारेण दलं तिष्ठतीत्येवं मन्यमानाः क्रोधतृतीयसंग्रहकिट्टिचरमाऽवान्तरकिट्टौ निक्षिप्यमाणप्रदेशतोऽपूर्वस्पर्धकप्रथमवर्गणायामसंख्येयगुणहीनं दलं प्रक्षिप्यते, अन्यथा किट्टिस्पर्धकयोरेकगोपुच्छाकारदलभङ्गः प्रसज्येतेति वदन्ति । एतेषां मतेन किट्टिकरणाद्धायाश्चरमसमयं परित्यज्य किट्टिकरणाद्धायाः शेषसमयेष्वेकसमयप्रबद्धदलसम्बन्ध्यनन्ततमभागप्रमाणमेव दलं किट्टितया परिणतं स्यात् । कथम् ? इति चेत् , शृणुत—यद्युत्कीर्णदलस्या-ऽसंख्येयभागप्रमाणं दलं गृहीत्वा साधिकाऽपूर्वस्पर्धकप्रथमवर्गणागतदलप्रमाणामेकैकामवान्तरकिट्टिं कुर्यात् , तर्ह्यवान्तरकिट्टय एकप्रदेशद्विगुणहानिस्थानानामसंख्येयभागमात्रा भवेयुः, उत्कीर्णदला-ऽसंख्येयभागस्यैकद्विगुणहानिगतप्रदेशाऽसंख्येयभागमात्रत्वात् । तच्च नेष्यते, सूत्र एकस्पर्धकगतवर्गणाऽनन्तभागमात्राणामवान्तरकिट्टीनां प्ररूपितत्वात् । तेनैकस्पर्धकगतवर्गणाऽनन्ततमभागप्रमाणानामवान्तरकिट्टीनां निर्वृत्तय उत्कीर्णदलाऽनन्ततमभागप्रमाणं दलं ग्रहीतव्यम् । गृहीत्वा च साधिकाऽपूर्वस्पर्धकप्रथमवर्गणागतदलप्रमाणामेकैकां किट्टिं कुर्यात् । अनया रीत्या किट्टिनिर्वृत्तये गृहीतं दलमेकसमयप्रबद्धस्या-ऽनन्ततमभागमात्रं संभवति, असंख्येयसमयप्रबद्धप्रमाणोत्कीर्णदलाऽनन्ततमभागप्रमाणत्वात् । तेन चरमसमयं परित्यज्य शेषसमयेष्वनन्ततम-

*तथा चोक्तं जयधवलाकारैरपि—"कोहचरमकिट्टीए णिसित्तपदेसग्गादो अपुव्वफद्दयादिवग्गणाए णिवदमाणपदेसग्गमणंतगुणहीणं होदि । किं कारणं ? कोधचरिमकिट्टीए अणंताओ अपुव्वफद्दयादिवग्गणाओ णिक्खिविय पुणो अपुव्वफद्दयवग्गणाए तत्थ पुव्वावट्ठिददव्वस्सासंखेज्जदिभागमेत्तं चेव णिक्खिवमाणस्स तदुवलद्धीए बाहाणुवलंभादो । एत्थ दोण्हं पि दव्वाणमोवट्टणं ठविय पयदत्थ विसये सिस्साणं पडिबोहो कायव्वो । दिस्समाणदव्वं पि कोधचरमकिट्टीए बहुअं, अपुव्वफद्दयादिवग्गणाए अणंतगुणहीणमिदि दट्ठव्वं । तदो एत्थ दो गोपुच्छाओ जादाओ, किट्टीसु एया गोपुच्छा, पुव्वापुव्वफद्दएसु अण्णा गोपुच्छा त्ति ।" इति ।

प्रथम-मान्त्यकिट्टि	द्वितीय मान्तर्किट्टि	तृतीय मान्तर्किट्टि	प्रथम मान्तर किट्टि	द्वितीय मान्तरकिट्टि	तृतीय मान्तरकिट्टि	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]
११	१०	९	८	७	६	३	२	१	५	४	१२

सं अ ल न लो भः सं अ ल न मा या म अ ल न मा नः म अ ल न क्रो धः

सकेतविवरणम्—

१ कि=प्रथमावान्तरकिट्टि ।

२ कि=द्वितीयावान्तरकिट्टि ।

३ कि=तृतीयावान्तरकिट्टि ।

४ कि=चतुर्थावान्तरकिट्टि ।

यद्यपि परमार्थतो ऽवान्तरकिट्टयो-ऽनन्ता भवन्ति, किन्त्वसत्कल्पनया चतस्र एव दर्शिताः ।

१ अ=प्रथमावान्तरकिट्ट्यन्तरम् ।

२ अ=द्वितीयावान्तरकिट्ट्यन्तरम् ।

३ अ=तृतीयावान्तरकिट्ट्यन्तरम् ।

अवान्तरकिट्टीनामनन्तत्वादवान्तरकिट्ट्यन्तराण्यप्यनन्तानि भवन्ति, एकोना ऽवान्तरकिट्टिराशेरवान्तरकिट्ट्यन्तरराशिर्भवन् । तेन प्रकृते त्रीण्यवान्तरकिट्ट्यन्तराणि भवन्ति ।

० (i) उत्तरोत्तरावान्तरकिट्टी दलिकैकचयेन हीनं हीनतरं दीयते ।

(ii) उत्तरोत्तरावान्तरकिट्टीनामनुभागो-ऽनन्तगुणक्रमेण भवति ।

⊗ यद्यपि लोभप्रथमसंग्रहकिट्टेः प्रथमावान्तरकिट्ट्यन्तरतो द्वितीयावान्तरकिट्ट्यन्तरमनन्तगुणमस्ति, तथापि चित्रे तुल्यं दर्शितम्, तादृगवकाशस्याऽसम्भवात् । एवमुत्तरो ऽनन्तगुणमेव । एवमग्रे ऽपि ।

● अतः परं पूर्वस्पर्धकानि ।

ख·कि·ट्टिरेदकाऽपेक्षया तृतीयसंग्रहकिट्टिः ।

क·किट्टिरेदकाऽपेक्षया प्रथमसंग्रहकिट्टिः ।

१·२ ३·५ .....यथाक्रमम् रेखाविशेषाधिकक्रमेण ग्रन्थेषु अवान्तरकिट्ट्यन्तरसूचिता, न परं द्वादशाङ्केन संख्येयगुणा ज्ञापिताः । इह चित्रे तु प्रभूतावकाशाभावात् तुल्या दर्शिताः ।

भागमात्रं दलं किट्टितया परिणतं स्यात्, असंख्येयसमयैरप्यनन्ततमभागस्यैव किट्टितया परिणति-संभवात्। चरमसमये तु पूर्वापूर्वस्पर्धकेभ्यः सर्वदलं गृहीत्वा किट्टीर्निर्वर्तयति, तेन चरमसमयेऽनन्तबहुभागमात्रदलं किट्टितया परिणतं भवेत्।

न चाऽस्तु शेषसमयेषु किट्टितया परिणतं दलमनन्ततमभागमात्रमिति वाच्यम्, विरोधोपलम्भात्। तथाहि किट्टिकरणाद्धाचरमसमये सर्वदलं किट्टितया परिणमयति। यद्यत्र द्विचरमसमयं यावत् किट्टितया परिणतं दलं सत्तागतदलाऽनन्ततममात्रं भवेत्, तर्हि द्विचरमसमयतश्चरमसमये किट्टितया परिणम्यमानं दलमनन्तगुणं भवेत्, सत्तागतसर्वदलस्य किट्टितया परिणम्यमानत्वात्। कषायप्राभृतचूर्णिकारादिभिस्त्वसंख्येयगुणक्रमणैव दलं प्रतिसमयं किट्टितया परिणमयतीत्युक्तम्, तथा च तद्ग्रन्थः-"जं पदेसग्गं सव्वसमासेण पढमसमए किट्टीसु दिज्जदि, तं थोवं, विदियसमए असंखेज्जगुणं, तदियसमए असंखेज्जगुणं, एवं जाव चरिमादो त्ति असंखेज्जगुणं।" इति। तेन सह विरोधः स्यात्। तस्मात् प्रथमविकल्प एव सङ्गतिं प्राञ्चति। पश्यन्तु पाठका यन्त्रकम्-१५।

अथ गणितविभागः

अथ निरूपितपदार्थोऽसत्कल्पनयाऽङ्कतः प्रदर्श्यते संज्वलनचतुष्ककिट्टितया परिणमनायदलिकानि द्वेऽब्जे सप्ताशीतिकोटयस्त्रिनवतिलक्षाणि पञ्चाशीतिसहस्राणि त्रिशतानि पञ्चनवतिश्च (२८७९३८५३९५) गृह्णाति। तस्य किञ्चिन्न्यूनाष्टभागप्रमाणानि दलिकानि चतुस्त्रिंशत्कोटयोऽष्टानवतिलक्षाण्यष्टादशशतानि त्रिंशच्च (३४,९८,०१,८३०) मानकिट्टितया परिणमयति, तानि स्तोकानि भवन्ति।

अथ संज्वलनचतुष्ककिट्टितया परिणमनाय गृहीतसकलदलानां किञ्चिन्न्यूनाष्टभागप्रमाणानि दलिकानि षट्त्रिंशत्कोटयोऽष्टानवतिलक्षाण्यष्टानवतिसहस्राण्यष्टनवत्यधिकत्रिशतानि च (३६,९८,९८,३९८) मायाकिट्टितया परिणनाय गृह्णाति। तानि पूर्वतो विशेषाधिकानि भवन्ति। ततो विशेषाधिकानि सप्तसप्तत्यधिकैकादशसहस्रोत्तराऽष्टात्रिंशत्कोटयो (३८,००,११,०७७) दलिकानि लोभकिट्टितया परिणमनाय गृह्णाति। तानि च संज्वलनचतुष्ककिट्टितया परिणमनाय गृहीतसकलदलस्य साधिकाष्टमागप्रमाणानि भवन्ति। ततः क्रोधकिट्टितया परिणमनाय संख्येयगुणान्येकाञ्जं सप्तसप्ततिकोटयः पण्णवतिलक्षाणि चतुस्सप्ततिसहस्राणि नवतिश्च(१,७७,९६,७४,०९०) दलिकानि गृह्णाति। तानि च संज्वलनचतुष्ककिट्टितया परिणमनाय गृहीतसकलदलस्य किञ्चिन्न्यूनपञ्चाष्टभागप्रमाणानि विद्यन्ते।

तत्र मानकिट्टितया परिणमनाय गृहीतदलस्य तिस्रः संग्रहकिट्टीर्निर्वर्तयति। मानस्य तृतीय-

संग्रहकिट्टौ तु स्तोकानि दलिकानि ददाति। तानि च संज्वलनचतुष्ककिट्टितया परिणमनाय गृहीतसकलदलानामासन्नचतुर्विंशतिभागप्रमाणान्येकादशकोटयश्चतुष्पञ्चाशल्लक्षाणि नवसप्ततिसहस्राणि षट्पञ्चाशदधिकशतं च (११,५४,७९,१५६) दलिकानि भवन्ति। ततो विशेषाधिकान्येकादशकोटयः षट्षष्टिलक्षाणि पञ्चोत्तरपञ्चशतानि च (११,६६,००,५०५) दलिकानि मानस्य द्वितीयसंग्रहकिट्टौ ददाति, ततोऽपि विशेषाधिकान्येकादशकोटयः सप्तसप्ततिलक्षाणि द्वाविंशतिसहस्राण्येकोनसप्तत्यधिकशतं च(११,७७,२२,१६९)दलानि प्रथमसंग्रहकिट्टौ ददाति। तथैव मायाकिट्टितया परिणमनाय गृहीतदलिकेभ्यो द्वादशकोटय एकविंशतिलक्षाणि षट्सप्ततिसहस्राणि पञ्चनवत्यधिकत्रिशतानि च (१२,२१,७६,३९५) दलानि मायातृतीयसंग्रहकिट्टौ ददाति। तानि च संज्वलनचतुष्ककिट्टितया परिणमनाय गृहीतसकलदलानामासन्नचतुर्विंशतिभागप्रमाणानि भवन्ति। ततो विशेषाधिकानि द्वादशकोटयो द्वात्रिंशल्लक्षाणि नवनवतिसहस्राणि पञ्चपञ्चाशदधिकत्रिशतानि च (१२,३२,९९,३५५) दलिकानि मायाद्वितीयसंग्रहकिट्टौ ददाति। ततोऽपि विशेषाधिकानि द्वादशकोटयश्चतुश्चत्वारिंशल्लक्षाणि द्वाविंशतिसहस्राण्यष्टचत्वारिंशदधिकषट्शतानि च (१२,४४,२२,६४८) दलानि मायाप्रथमसंग्रहकिट्टौ प्रक्षिपति।

लोभकिट्टितया परिणमनाय गृहीतसकलदलेभ्यः सप्तसप्तत्यधिकद्विशतोत्तरषट्चत्वारिंशत्सहस्राधिकपञ्चपञ्चाशल्लक्षोत्तरद्वादशकोटयः (१२,५५,४६,२७७) दलानि लोभतृतीयसंग्रहकिट्टौ ददाति। तानि च संज्वलनचतुष्ककिट्टितया परिणमनाय गृहीतसकलदलानामासन्नचतुर्विंशतिभागप्रमाणानि भवन्ति। ततो विशेषाधिकानि लोभद्वितीयसंग्रहकिट्टौ पञ्चचत्वारिंशदधिकद्विशतोत्तरसप्ततिसहस्राधिकषट्षष्टिलक्षोत्तरद्वादशकोटयः (१२६६७०२४५) दलानि ददाति। ततोऽपि विशेषाधिकानि प्रथमसंग्रहकिट्टौ द्वादशकोटयः सप्तसप्ततिलक्षाणि चतुर्नवतिसहस्राणि पञ्चपञ्चाशदुत्तरपञ्चशतानि च (१२७७९४५५५) दलानि ददाति।

संज्वलनक्रोधकिट्टितया परिणमनाय गृहीतदलेभ्यो नवत्यधिकचतुस्सप्ततिसहस्रोत्तरषण्णवतिलक्षाधिकसप्तसप्ततिकोट्युत्तरैकाब्जसंख्यकेभ्यः (१,७७,९६,७४,०९०) संज्वलनचतुष्ककिट्टितया परिणमनाय गृहीतसकलदलिकानां किञ्चिन्न्यूनचतुरष्टभागप्रमाणान्येकाब्जमेकचत्वारिंशत्कोटयो नवनवतिलक्षाण्येकाशीतिसहस्राणि चत्वारिंशदधिकचतुश्शतानि च (१,४१,९९,८१,४४०) नोकषायतः परिणतक्रोधदलिकानि तृतीयसंग्रहकिट्टौ ददाति। शेषाणि किञ्चि‥यूनाष्टभागप्रमाणानि पञ्चत्रिंशत्कोटयः षण्णवतिलक्षाणि द्विनवतिसहस्राणि पञ्चाशदधिकषट्शतानि च (३५,९६,९२,६५०)दलानि क्रोधस्य प्रथमसंग्रहकिट्टि-द्वितीयसंग्रहकिट्टि-तृतीयसंग्रहकिट्टिषु ददाति। तत्र क्रोधस्य द्वितीयसंग्रहकिट्टयामेकादशकोटयोऽष्टनवतिलक्षाणि सप्तनवतिसहस्राणि द्विचत्वारिंशदुत्तरचतुश्शतानि च (११,९८,९७,४४२) दलानि ददाति, ततो विशेषाधिकानि प्रथमसंग्रहकिट्टौ द्वादशकोटयो दशलक्षाण्येकोनविंशतिसहस्राणि त्रिंशदधिकचतुश्शतानि च (१२,१०,१९,४३०) दलानि ददाति।

तृतीयसंग्रहकिट्टौ त्वेकादशकोटयः सप्ताशीतिलक्षाणि पञ्चसप्ततिसहस्राण्यष्टासप्तत्युत्तरसप्तशतानि च (११,८७,७५,७७८) दलानि ददाति, तथा प्रागुक्तानि नोकषायपरिणतक्रोधदलिकान्येकाऽब्जमेकचत्वारिंशत्कोटयो नवनवतिलक्षाण्येकाशीतिसहस्राणि चत्वारिंशदुत्तरचतुश्शतानि च (१,४१,-९९,८१,४४०) प्रक्षिपति । तेन तृतीयसंग्रहकिट्टयामष्टादशाधिकद्विशतोत्तरसप्तपञ्चाशत्सहस्राधिकसप्ताशीतिलक्षाधिकत्रिपञ्चाशत्कोट्यधिकमेकाब्जं (१,५३,८७,५७,२१८) दीयमानानि दलानि जायन्ते ।

मानतृतीयसंग्रहकिट्टितया परिणमनाय गृहीतदलस्य चतुरधिकशतम् (१०४) अवान्तरकिट्टीर्निर्वर्तयति, मानद्वितीयसंग्रहकिट्टितया परिणमनाय गृहीतदलस्य पञ्चोत्तरशतम् (१०५) अवान्तरकिट्टीर्निर्वर्तयति, मानप्रथमसंग्रहकिट्टितया च परिणमनाय गृहीतदलस्य षडधिकशतम् (१०६) अवान्तरकिट्टीः करोति ।

एवं मायातृतीयसंग्रहकिट्टितया परिणमनाय गृहीतदलस्य दशाधिकशतम् (११०) अवान्तरकिट्टीर्निर्वर्तयति, मायाद्वितीयसंग्रहकिट्टितया परिणमनाय गृहीतदलस्यैकादशोत्तरशतम् (१११) अवान्तरकिट्टीर्निर्वर्तयति । मायाप्रथमसंग्रहकिट्टितया च परिणमनाय गृहीतदलस्य द्वादशाधिकं शतम् (११२) अवान्तरकिट्टीर्निर्वर्तयति ।

लोभतृतीयसंग्रहकिट्टितया परिणमनाय गृहीतदलस्य त्रयोदशाधिकशतम् (११३) अवान्तरकिट्टीर्निर्वर्तयति । लोभद्वितीयसंग्रहकिट्टितया परिणमनाय गृहीतदलस्य चतुर्दशोत्तरशतम् (११४) अवान्तरकिट्टीर्निर्वर्तयति । लोभप्रथमसंग्रहकिट्टितया च परिणमनाय गृहीतदलस्य पञ्चदशाधिकशतम् (११५) अवान्तरकिट्टीर्निर्वर्तयति ।

क्रोधद्वितीयसंग्रहकिट्टितया परिणमनाय गृहीतदलस्याऽष्टाधिकशतम् (१०८) अवान्तरकिट्टीर्निर्वर्तयति, क्रोधप्रथमसंग्रहकिट्टितया परिणमनाय गृहीतदलस्य नवोत्तरशतम् (१०९) अवान्तरकिट्टीर्निर्वर्तयति । क्रोधतृतीयसंग्रहकिट्टितया च परिणमनाय गृहीतदलस्य सप्ताशीत्युत्तराणि त्रयोदशशतान्यवान्तरकिट्टीर्निर्वर्तयति (१३८७), किट्टितया परिणमनाय गृहीतदलस्य प्रभूतत्वात् । इत्थं किट्टितया परिणमनाय गृहीतसर्वदलिकानां पञ्चनवत्यधिकत्रिशताधिकपञ्चाशीतिसहस्रोत्तरत्रिनवतिलक्षाधिकसप्ताशीतिकोट्यधिकद्वयब्जमात्राणां (२,८७,९३,८५,३९५) चतुर्नवत्यधिकपञ्चविंशतिशतानि (२५९४) अवान्तरकिट्टीर्निर्वर्तयति ।

चतुर्नवतितमादिगाथानां वृत्तिमाश्रित्य द्वादशसंग्रहकिट्टीनां प्रदेशाग्रस्याऽवान्तरकिट्टीनां च यन्त्रकम्

	अवान्तरकिट्टयः	तदल्पबहुत्वम	सकलदलानि	तदल्पबहुत्वम्
(१) मानस्य तृतीयसंग्रहकिट्टी	१०४	स्तोकाः	११५४७९१५६	स्तोकानि
(२) मानस्य द्वितीयसंग्रहकिट्टी	१०५	विशेषाधिका	११६६००५०५	विशेषाधिकानि
(३) मानस्य प्रथमसंग्रहकिट्टी	१०६	,,	११७७२२१६९	,,
(४) क्रोधस्य द्वितीयसंग्रहकिट्टी	१०८	,,	११९८९७४४२	,,
(५) क्रोधस्य प्रथमसंग्रहकिट्टी	१०९	,,	१२१०१९४३०	,,
(६) मायायास्तृतीयसंग्रहकिट्टी	११०	,,	१२२१७६३९५	,,
(७) मायाया द्वितीयसंग्रहकिट्टी	१११	,,	१२३२९१३५५	,,
(८) मायाया प्रथमसंग्रहकिट्टी	११२	,,	१२४४२२६४८	,,
(९) लोभस्य तृतीयसंग्रहकिट्टी	११३	,,	१२५५४६२७७	,,
(१०) लोभस्य द्वितीयसंग्रहकिट्टी	११४	,,	१२६६७०२४५	,,
(११) लोभस्य प्रथमसंग्रहकिट्टी	११५	,,	१२७७९४५५५	,,
(१२) क्रोधस्य तृतीयसंग्रहकिट्टी	१३८७	सङ्ख्यगुणा (किञ्चिन्न्यून-त्रयोदशगुणा)	१५३८७५७२१८ (१४१९९८१४००+ ११८७७५७७८)	सङ्ख्यातगुणानि (ईषदूनत्रयो-दशगुणानि।)

अथाऽवान्तरकिट्टिषु दीयमानदलं भण्यते

लोभप्रथमसंग्रहकिट्टितया परिणमनाय गृहीतदलिकेभ्यो लोभप्रथमसंग्रहकिट्टिप्रथमाऽवान्तरकिट्टावेकादशलक्षाण्येकादशसहस्राणि त्रिशतानि चतुर्दश च (११,११,३१४) दलिकानि ददाति। तदानयनप्रकारस्तु प्राग्दर्शितः। तत एकचयेन हीनानि दलानि लोभप्रथमसंग्रहकिट्टिद्वितीयाऽवान्तरकिट्टयामेकादशलक्षाण्येकादशसहस्राणि त्रयोदशाधिकानि त्रिशतानि च (११,११,३१३) प्रक्षिपति, प्रागेकचयस्यैकपरमाणुत्वेन संस्तवात्, तत एकैकचयेन हीनं दलं तावद् ददाति, यावद् लोभप्रथमसंग्रहकिट्टिचरमाऽवान्तरकिट्टिः। तेन लोभप्रथमसंग्रहकिट्टिचरमाऽवान्तरकिट्टौ द्विशताधिकैकादशसहस्रोत्तरैकादशलक्षाणि (११,११,२००) दलानि ददाति। कथम् ? इति चेत्, उच्यते- यतिसंख्याकायामवान्तरकिट्टयां दलं प्राप्तुमिष्यते, एकोनतत्संख्यागुणितैकचयदलं प्रथमाऽवान्तरकिट्टिगतदलतो विशोध्याऽवशिष्यमाणदलं तस्यामवान्तरकिट्टौ दीयत इत्यनेन करणेन लोभप्रथमसंग्रहकिट्टिचरमाऽवान्तरकिट्टेः पञ्चदशाधिकशततमत्वेनैकोनतत्संख्यालक्षणचतुर्दशाधिकशतगुणितैकचयगतदललक्षणचतुर्दशाधिकशतदलैर्न्यूनानि प्रथमाऽवान्तरकिट्टिगतदलानि द्विशताधिकैकादशसहस्रोत्तरैकादशलक्षाणि (११,११,२००) दलानि प्रक्षिपति। एवमग्रेऽप्यनेन करणेन दलिकनिक्षेपो बोद्धव्यः।

अथ लोभद्वितीयसंग्रहकिट्टितया परिणमनाय गृहीतदलिकेभ्यो दलान्यादाय लोभप्रथमसंग्रहकिट्टि-

चरमाऽवान्तरकिट्टित एकचयेन न्यूनानि दलानि नवनवत्यधिकशताधिकैकादशसहस्रोत्तरैकादशल-क्षमितानि (११,११,१९९) ददाति । ततो लोभद्वितीयसंग्रहकिट्टिद्वितीयावान्तरकिट्टावष्टानवत्य-धिकशतोत्तरैकादशसहस्रोत्तरैकादशलक्षाणि (११,११,१९८) दलिकानि ददाति । एवमनन्तरा-नन्तरेणैकैकचयेन हीनानि दलानि तावत् प्रक्षिपति, यावद् लोभद्वितीयसंग्रहकिट्टिचरमाऽवान्तर-किट्टिः । तेन लोभद्वितीयसंग्रहकिट्टिचरमाऽवान्तरकिट्टौ षडशीत्युत्तरैकादशसहस्राधिकैकादशलक्षाणि (११,११,०८६) दलिकानि ददाति ।

ततो लोभतृतीयसंग्रहकिट्टिप्रथमाऽवान्तरकिट्टावेकचयेन न्यूनानि दलानि ददाति । तानि च पञ्चाशीत्यधिकैकादशसहस्रोत्तरैकादशलक्षमात्राणि (११,११,०८५) भवन्ति । ततो लोभतृतीय-संग्रहकिट्टिद्वितीयाऽवान्तरकिट्टौ चतुरशीत्यधिकैकादशसहस्रोत्तरैकादशलक्षाणि (११,११,०८४) दलानि ददाति । एवमनन्तरानन्तरेणैकैकचयेन हीनानि दलिकानि तावद् ददाति, यावद् लोभतृतीय-संग्रहकिट्टिचरमाऽवान्तरकिट्टिः । तेन लोभतृतीयसंग्रहकिट्टिचरमाऽवान्तरकिट्टौ त्रयःसप्तत्युत्तरनव-शताधिकदशसहस्राधिकान्येकादशलक्षाणि (१११०९७३) दलिकानि ददाति ।

तत एकचयेन हीनानि मायायाः प्रथमसंग्रहकिट्टिप्रथमाऽवान्तरकिट्टौ द्वासप्तत्यधिकनवश-ताधिकदशसहस्रोत्तरैकादशलक्षाणि (११,१०,९७२) दलिकानि ददाति । ततो मायाप्रथमसंग्रहकिट्टि-द्वितीयाऽवान्तरकिट्टावेकचयेन हीनानि दलानि प्रक्षिपति । एवमनन्तरानन्तरेणैकैकचयेन हीनानि तावद् ददाति, यावद् मायाप्रथमसंग्रहकिट्टिचरमाऽवान्तरकिट्टिः । तेन मायाप्रथमसंग्रहकिट्टिचरमाऽवान्तर-किट्टावेकषष्ट्यधिकाष्टशतोत्तरदशसहस्राधिकान्येकादशलक्षाणि (११,१०,८६१) दलिकानि प्रक्षिपति ।

तत एकचयेन हीनानि मायाया द्वितीयसंग्रहकिट्टिप्रथमाऽवान्तरकिट्टौ षष्ट्यधिकाष्टशतो-त्तरदशसहस्राधिकैकादशलक्षाणि (११,१०,८६०) दलिकानि प्रक्षिपति, ततो मायाद्वितीयसंग्रहकिट्टि-द्वितीयाऽवान्तरकिट्टावेकोनषष्ट्युत्तराष्टशताधिकदशसहस्राधिकैकादशलक्षाणि (११,१०,८५९) दलिकानि ददाति । एवमनन्तरानन्तरेणैकैकचयेन हीनानि दलानि तावद् ददाति, यावन्मा-याया द्वितीयसंग्रहकिट्टिचरमाऽवान्तरकिट्टिः । तेन मायाद्वितीयसंग्रहकिट्टिचरमावान्तरकिट्टौ पञ्चा-शदधिकसप्तशतोत्तरदशसहस्राधिकैकादशलक्षाणि (११,१०,७५०) दलिकानि ददाति ।

तत एकचयेन हीनानि मायातृतीयसंग्रहकिट्टिप्रथमाऽवान्तरकिट्टावेकोनपञ्चाशदुत्तरसप्तशतोत्त-रदशसहस्राधिकैकादशलक्षाणि (११,१०,७४९) दलिकानि ददाति । ततो मायातृतीयसंग्रहकिट्टि-द्वितीयाऽवान्तरकिट्टावष्टाचत्वारिंशदुत्तरसप्तशताधिकदशसहस्रोत्तरैकादशलक्षाणि (११,१०७४८) दलिकानि निक्षिपति । एवमनन्तरानन्तरेणैकैकचयेन हीनानि दलिकानि तावत् प्रक्षिपति, यावन्मा-यातृतीयसंग्रहकिट्टिचरमाऽवान्तरकिट्टिः । तेन मायातृतीयसंग्रहकिट्टिचरमाऽवान्तरकिट्टौ चत्वारिंश-दधिकषट्शतोत्तरदशसहस्राधिकैकादशलक्षाणि (११,१०,६४०) दलिकानि प्रक्षिपति ।

तत ऊर्ध्वं मानप्रथमसंग्रहकिट्टिप्रथमाऽवान्तरकिट्टौ नवत्रिंशदधिकाट्शताधिकदशसहस्रोत्तरै-

कादशलक्षाणि (११,१०,६३९) दलिकानि प्रक्षिपति । ततः परं मानप्रथमसंग्रहकिट्टिद्वितीयाऽवान्तरकिट्टयामष्टात्रिंशदधिकषट्शतोत्तरदशसहस्राधिकैकादशलक्षाणि (११,१०,६३८) दलिकानि प्रक्षिपति, एवमनन्तरानन्तरेणैकैकचयेन हीनानि दलिकानि तावद् ददाति, यावन्मानप्रथमसंग्रहकिट्टिचरमाऽवान्तरकिट्टिः । तेन मानप्रथमसंग्रहकिट्टिचरमाऽवान्तरकिट्टौ चतुस्त्रिंशदधिकपञ्चशतोत्तरदशसहस्राधिकैकादशलक्षाणि (११,१०,५३४) दलिकानि प्रक्षिपति ।

तत ऊर्ध्वं मानद्वितीयसंग्रहकिट्टिप्रथमाऽवान्तरकिट्टौ त्रयस्त्रिंशदधिकपञ्चशतोत्तरदशसहस्रोत्तरैकादशलक्षाणि (११,१०,५३३) दलिकानि ददाति । एवमनन्तरानन्तरेणैकैकचयेन हीनानि तावद् निक्षिपति, यावन्मानद्वितीयसंग्रहकिट्टिचरमाऽवान्तरकिट्टिः । तेन मानद्वितीयसंग्रहकिट्टिचरमाऽवान्तरकिट्टावेकोनत्रिंशदधिकचतुःशताधिकदशसहस्रोत्तराण्येकादशलक्षाणि (१११०४२९) दलिकानि ददाति ।

तत ऊर्ध्वं मानतृतीयसंग्रहकिट्टिप्रथमाऽवान्तरकिट्टावष्टाविंशत्यधिकचतुःशतोत्तरदशसहस्राधिकैकादशलक्षाणि (११,१०,४२८) दलिकानि ददाति । ततः परं मानतृतीयसंग्रहकिट्टिद्वितीयाऽवान्तरकिट्टौ सप्तविंशत्यधिकचतुःशताधिकदशसहस्रोत्तरैकादशलक्षाणि (१११०४२७) दलिकानि ददाति । एवमनन्तरानन्तरेणैकैकचयेन हीनानि दलिकानि तावद् ददाति, यावन्मानतृतीयसंग्रहकिट्टिचरमाऽवान्तरकिट्टिः । तेन मानतृतीयसंग्रहकिट्टिचरमाऽवान्तरकिट्टौ पञ्चविंशत्यधिकत्रिशताधिकदशसहस्रोत्तरैकादशलक्षाणि (११,१०,३२५) दलिकानि प्रक्षिपति ।

तत ऊर्ध्वं क्रोधप्रथमसंग्रहकिट्टिप्रथमाऽवान्तरकिट्टौ चतुर्विंशत्यधिकत्रिशतोत्तरदशसहस्रोत्तरैकादशलक्षाणि (११,१०,३२४) दलिकानि ददाति । ततः परं क्रोधप्रथमसंग्रहकिट्टिद्वितीयाऽवान्तरकिट्टौ त्रयोविंशत्यधिकत्रिशतोत्तरदशसहस्राधिकैकादशलक्षाणि (११,१०,३२३) दलिकानि ददाति । एवमनन्तरानन्तरेणैकैकचयेन हीनानि दलानि तावत् प्रक्षिपति, यावत् क्रोधप्रथमसंग्रहकिट्टिचरमाऽवान्तरकिट्टिः । तेन क्रोधप्रथमसंग्रहकिट्टिचरमाऽवान्तरकिट्टौ षोडशोत्तरद्विशताधिकदशसहस्रोत्तरैकादशलक्षाणि (११,१०,२१६) दलिकानि प्रक्षिपति ।

ततः परं क्रोधद्वितीयसंग्रहकिट्टिप्रथमाऽवान्तरकिट्टौ पञ्चदशाधिकशतद्वयोत्तरदशसहस्राधिकैकादशलक्षाणि (११,१०,२१५) दलिकानि प्रक्षिपति । तत ऊर्ध्वं क्रोधद्वितीयसंग्रहकिट्टिद्वितीयाऽवान्तरकिट्टौ चतुर्दशाधिकशतद्वयोत्तरदशसहस्राधिकैकादशलक्षाणि (११,१०,२१४) दलिकानि प्रक्षिपति । एवमनन्तरानन्तरेणैकैकचयेन हीनानि दलानि तावद् ददाति, यावत् क्रोधद्वितीयसंग्रहकिट्टिचरमाऽवान्तरकिट्टिः । तेन क्रोधद्वितीयसंग्रहकिट्टिचरमाऽवान्तरकिट्टयामष्टोत्तरशताधिकदशसहस्राधिकैकादशलक्षाणि (११,१०,१०८) दलिकानि प्रक्षिपति । अत्र क्रोधद्वितीयसंग्रहकिट्टिप्रथमाऽवान्तरकिट्टौ पञ्चदशाधिकद्विशतोत्तरदशसहस्राधिकैकादशलक्षाणि (११,१०,२१५) दलिकानि प्रक्षिप्यन्ते । मानस्य तु प्रथमसंग्रहकिट्टिचरमाऽवान्तरकिट्टौ चतुस्त्रिंशदधिकपञ्चशतोत्तरदश-

सहस्राधिकैकादशलक्षाणि (११,१०,५३४) दलिकानि प्रक्षिप्तानि। किन्तु मानप्रथमसंग्रहकिट्टिसकलाऽवान्तरकिट्टयः षडुत्तरशतं (१०६) भवन्ति, क्रोधद्वितीयसंग्रहकिट्टिसकलाऽवान्तरकिट्टयस्तु विशेषाधिका अष्टोत्तरशतं (१०८) भवन्ति। तेन मानप्रथमसंग्रहकिट्टिसकलाऽवान्तरकिट्टिगतसर्वदलिकेभ्यो नवषष्टियुक्तैकशताधिकद्वाविंशतिसहस्रोत्तरसप्तसप्ततिलक्षाधिकैकादशकोटिभ्यः (११,७७,२२,१६९) क्रोधद्वितीयसंग्रहकिट्टिसकलाऽवान्तरकिट्टिगतानि दलानि द्वाचत्वारिंशदधिकचतुःशतोत्तरसप्तनवतिसहस्राधिकाष्टनवतिलक्षाधिकैकादशकोटयो (११,९८,९७,४४२) विशेषाधिकानि भवन्ति।

तत ऊर्ध्वं क्रोधतृतीयसंग्रहकिट्टिप्रथमाऽवान्तरकिट्टौ सप्ताधिकशतोत्तरदशसहस्राधिकैकादशलक्षाणि (११,१०,१०७) प्रक्षिपति। ततः परं क्रोधतृतीयसंग्रहकिट्टिद्वितीयाऽवान्तरकिट्टौ षडधिकशतोत्तरदशसहस्राधिकान्येकादशलक्षाणि (११,१०,१०६) दलिकानि प्रक्षिपति। एवमनन्तरानन्तरेणैकैकचयेन हीनानि दलिकानि तावत् प्रक्षिपति, यावत् क्रोधतृतीयसंग्रहकिट्टिचरमाऽवान्तरकिट्टिः। तेन क्रोधतृतीयसंग्रहकिट्टिचरमाऽवान्तरकिट्टयामेकविंशत्यधिकसप्तशतोत्तराष्टसहस्राधिकैकादशलक्षाणि (११,०८,७२१) दलिकानि प्रक्षिपति।

इत्थं लोभप्रथमसंग्रहकिट्टिप्रथमाऽवान्तरकिट्टितः प्रभृत्यनन्तरानन्तरेणाऽनन्ततमभागेन हीनं दीयमानं दलं तावद् भवति, यावत् क्रोधतृतीयसंग्रहकिट्टिचरमाऽवान्तरकिट्टिः।

प्रथमसमये किट्टिषु दृश्यमानदलस्य दीयमानदलतोऽनतिरेकादनन्तरोपनिधया दृश्यमानदलमप्यनन्तरानन्तरेण विशेषहीनं भवति।

परम्परोपनिधया-ऽपि दीयमानं दलमनन्ततमभागेनैव हीनं भवति। तथाहि-लोभप्रथमसंग्रहकिट्टिप्रथमाऽवान्तरकिट्टौ चतुर्दशाधिकत्रिशतोत्तरैकादशसहस्राधिकान्येकादशलक्षाणि (११,११,३१४) दलानि दीयन्ते, क्रोधतृतीयसंग्रहकिट्टिचरमाऽवान्तरकिट्टौ त्वेकविंशत्यधिकसप्तशतोत्तराष्टसहस्राधिकान्येकादशलक्षाणि (११,०८,७२१) दलानि दीयन्ते। इह च किञ्चिदधिकचतुश्शतानामनन्तत्वेन परिकल्पनाद् लोभप्रथमसंग्रहकिट्टिप्रथमाऽवान्तरकिट्टितः क्रोधतृतीयसंग्रहकिट्टिचरमाऽवान्तरकिट्टावनन्ततमभागेन हीनं दीयते। एवं दृश्यमानमपि दलं परम्परोपनिधयाऽनन्ततमभागेन हीनं भवति, दीयमानतो दृश्यमानदलस्या-ऽनतिरेकात् ॥१००॥

एतत्सर्वं यन्त्रे सुबोधार्थं प्रदर्श्यते। इदन्त्ववसेयम्- समानाऽन्तराणां राशीनां योग इष्यमाण आदिधनेन सहितमन्त्यधनं गच्छार्धेन गुण्यते, गुणने च कृते सर्वधनं लभ्यते। यदुक्तं **श्रीनिशीथभाष्ये-"अंतिमधणमादिजुयं गच्छद्धगुणं तु सव्वधनं।"** इति। इह प्रथमावान्तरकिट्टौ दीयमानदलान्यन्त्यधनम्, चरमावान्तरकिट्टौ दीयमानदलान्यादिधनम्, अवान्तरकिट्टिराशिश्च गच्छ इति। यथाऽसत्कल्पनया मानतृतीयसंग्रहकिट्टिप्रथमावान्तरकिट्टौ दीयमानदलान्यष्टाविंशत्यधिकचतुश्शतोत्तरदशसहस्राधिकैकादशलक्षाणि (१११०४२८) अन्त्य-

धनम्, मानतृतीयसंग्रहकिट्टिचरमावान्तरकिट्टौ दीयमानदलानि पञ्चविंशत्यधिकत्रिशतोत्तरदशसहस्राधिकैकादशलक्षाणि (१११०३२५) आदिधनम्, गच्छश्च चतुरधिकं शतम् (१०४)। अनन्तरोक्तकरणमाश्रित्याष्टाविंशत्यधिकचतुश्शतोत्तरदशसहस्राधिकैकादशलक्षयुतानि पञ्चविंशत्यधिकत्रिशतोत्तरदशसहस्रसंयुक्तैकादशलक्षाणि त्रिपञ्चाशदधिकसप्तशतयुक्तविंशतिसहस्रोत्तरद्वाविंशतिलक्षाणि (१११०४२८+१११०३२५=२२२०७५३) भवन्ति। तानि च गच्छार्धेन द्वापञ्चाशल्लक्षणेन गुण्यते, तदा मानतृतीयसंग्रहकिट्टौ दीयमानसर्वदलानि षट्पञ्चाशदधिकैकशतोत्तरैकोनाशीतिसहस्राधिकचतुष्पञ्चाशल्लक्षयुक्तैकादशकोट्यः (११५४७९१५६) प्राप्यन्ते। एवमुक्तकरणेन शेषसंग्रहकिट्टीनामपि प्रदेशा यन्त्रे प्रदर्शिताः।

किट्टिकरणाद्धाप्रथमसमयेऽसत्कल्पनया दीयमानदलयन्त्रकम्

मानः

तृतीयसंग्रहकिट्टावयान्तरकिट्टय	१०४
द्वितीय ,, ,, ,, ,	१०५
प्रथम ,, ,, ,, ,,	१०६
मानस्य सकलाऽवान्तरकिट्टय	३१५
तृतीयसंग्रहकिट्टिचरमावान्तरकिट्टौ दलानि	१११०३२५
,, ,, ,, द्वितीया ,, ,, ,,	१११०४२७
,, ,, ,, प्रथमा ,, ,, ,,	१११०४२८

∴ तृतीयसंग्रहकिट्टिसकलावान्तरकिट्टिगतसकलदलानि

=(१११०३२५+१११०४२८)× १०४/२

=२२२०७५३×५२=११५४७९१५६

द्वितीयसंग्रहकिट्टिचरमावान्तरकिट्टौ दलानि	१११०४२९
,, ,, ,, द्वितीया ,, ,, ,,	१११०५३२
,, ,, ,, प्रथमा ,, ,, ,,	१११०५३३

∴ द्वितीयसंग्रहकिट्टिसकलावान्तरकिट्टिगतसकलदलानि

=(१११०४२९+१११०५३३)× १०५/२ –११६६००५०५

प्रथमसंग्रहकिट्टिचरमावान्तरकिट्टौ दलानि	१११०५३४
,, ,, ,, द्वितीया ,, ,, ,,	१११०६३८
,, ,, ,, प्रथमा ,, ,, ,,	१११०६३९

∴ प्रथमसंग्रहकिट्टिसकलाऽवान्तरकिट्टिगतसकलदलानि

=(१११०५३४+१११०६३९)× १०६/२ –११७७२२१६९

मानकिट्टितया परिणतानि सर्वदलानि

=(१११०३२५+१११०६३९)× ३१५/२ –३४९८०१८३०

क्रोधः

तृतीयसंग्रहकिट्टावयान्तरकिट्टय	१३८७ (१२८०+१०७)
द्वितीय ,, ,, ,, ,,	१०८
प्रथम ,, ,, ,, ,,	१०९
क्रोधस्य सकलावान्तरकिट्टय	१६०४
तृतीयसंग्रहकिट्टिचरमावान्तरकिट्टौ दलानि	११०८७२१
,, ,, ,, द्वितीया ,, ,, ,,	१११०१०६
,, ,, ,, प्रथमा ,, ,, ,,	१११०१०७

∴ तृतीयसंग्रहकिट्टिसकलावान्तरकिट्टिगतदलानि

=(११०८७२१+१११०१०७)× १३८७/२ =१५३८७५७२१८

द्वितीयसंग्रहकिट्टिचरमावान्तरकिट्टौ दलानि	१११०१०८
,, ,, ,, द्वितीया ,, ,, ,,	१११०२१४
,, ,, ,, प्रथमा ,, ,, ,,	१११०२१५

∴ द्वितीयसंग्रहकिट्टिसकलाऽवान्तरकिट्टिगतसमस्तदलानि

=(१११०१०८+१११०२१५)× १०८/२ –११९८९७४४२

प्रथमसंग्रहकिट्टिचरमाऽवान्तरकिट्टौ दलानि	१११०२१६
,, ,, ,, द्वितीया ,, ,, ,,	१११०३२३
,, ,, ,, प्रथमा ,, ,, ,,	१११०३२४

∴ प्रथमसंग्रहकिट्टिसकलावान्तरकिट्टिगतसर्वदलानि

=(१११०२१६+१११०३२४)× १०९/२ –१२१०१९४३०

क्रोधकिट्टितया परिणतानि सर्वदलानि

=(११०८७२१+१११०३२४)× १६०४/२ –१७७९६७४०९०

किट्टिकरणाद्धाप्रथमसमये दीयमानदलयन्त्रकम्

माया

तृतीयसंग्रहकिट्टावान्तरकिट्टय	११०
द्वितीय ,, ,, ,, ,,	१११
प्रथम ,, ,, ,, ,,	११२
मायाया सकलाऽवान्तरकिट्टय	३३३

तृतीयसंग्रहकिट्टिचरमाऽवान्तरकिट्टौ दलानि	१११०६४०
,, ,, ,, द्वितीया ,, ,, ,,	१११०७४८
,, ,, ,, प्रथमा ,, ,, ,,	१११०७४९

∴ तृतीयसग्रहकिट्टिसकलाऽवान्तरकिट्टिगतसकलदलानि

$=(१११०६४०+१११०७४९)\times\frac{११०}{२}=१२२१७६३९५$

द्वितीयसंग्रहकिट्टिचरमाऽवान्तरकिट्टौ दलानि	१११०७५०
,, ,, ,, द्वितीया ,, ,, ,,	१११०८५९
,, ,, ,, प्रथमा ,, ,, ,,	१११०८६०

∴ द्वितीयसग्रहकिट्टिसकलावान्तरकिट्टिगतसर्वदलानि

$=(१११०७५०+१११०८६०)\times\frac{१११}{२}=१२३२९९३५५$

प्रथमसंग्रहकिट्टिचरमाऽवान्तरकिट्टौ दलानि	१११०८६१
,, ,, ,, द्वितीया ,, ,, ,,	१११०९७१
,, ,, ,, प्रथमा ,, ,, ,,	१११०९७२

∴ प्रथमसग्रहकिट्टिसकलाऽवान्तरकिट्टिगतसर्वदलानि

$=(१११०८६१+१११०९७२)\times\frac{११२}{२}=१२४४२२६४८$

मायाकिट्टितया परिणतानि सर्वदलानि

$=(१११०६४०+१११०९७२)\times\frac{३३३}{२}-३६९८९८३९८$

लोभः

तृतीयसंग्रहकिट्टावान्तरकिट्टय	११३
द्वितीय ,, ,, ,, ,,	११४
प्रथम ,, ,, ,, ,,	११५
लोभसकलाऽवान्तरकिट्टयः	३४२

तृतीयसंग्रहकिट्टिचरमाऽवान्तरकिट्टौ दलानि	१११०९७३
,, ,, ,, द्वितीयाऽ ,, ,, ,,	११११०८४
,, ,, ,, प्रथमाऽ ,, ,, ,,	११११०८५

∴ तृतीयसग्रहकिट्टिसकलाऽवान्तरकिट्टिगतसकलदलानि

$=(१११०९७३+११११०८५)\times\frac{११३}{२}-१२५५४६२७७$

द्वितीयसंग्रहकिट्टिचरमाऽवान्तरकिट्टौ दलानि	११११०८६
,, , ,, द्वितीया ,, ,, ,,	११११९९८
,, ,, ,, प्रथमाऽ ,, ,, ,,	११११९९९

∴ तृतीयसंग्रहकिट्टिसकलाऽवान्तरकिट्टिगतसर्वदलानि

$=(११११०८६+११११९९९)\times\frac{११४}{२}-१२६६७०२४५$

प्रथमसंग्रहकिट्टिचरमाऽवान्तरकिट्टौ दलानि	११११२००
,, ,, ,, द्वितीया ,, ,, ,,	११११३१३
,, ,, ,, प्रथमा ,, ,, ,,	११११३१४

∴ प्रथमसंग्रहकिट्टिसकलाऽवान्तरकिट्टिगतसकलदलानि

$=(११११२००+११११३१४)\times\frac{११५}{२}-१२७७९४५५५$

लोभकिट्टितया परिणतानि सर्वदलानि

$=(१११०९७३+११११३१४)\times\frac{३४२}{२}-३८००११०७७$

सञ्ज्वलनचतुष्ककिट्टितया परिणमनाय गृहीतसकलदलानि-

(१) मानकिट्टितया परिणमनाय गृहीतसकलदलानि= ३४९८०१८३०

(२) मायाकिट्टितया परिणमनाय गृहीतसकलदलानि= ३६९८९८३९८

(३) लोभकिट्टितया परिणमनाय गृहीतसकलदलानि= ३८००११०७७

(४) क्रोधकिट्टितया परिणमनाय गृहीतसकलदलानि=१७७९६७४०९०

∴ सञ्ज्वलचतुष्ककिट्टितया परिणमनाय गृहीतसर्वदलानि=२८७९३८५३९५

॥ गणितविभागः समाप्तः ॥

किट्टिकरणाद्धाप्रथमसमये किट्टिनिर्वृत्तिमभिधाय सम्प्रति किट्टिकरणाद्धाप्रथमसमयात् प्रभृति क्षपकस्य मोहनीयस्थितिरसयोरपवर्तनैव भवति, ततोऽन्यस्य तूद्वर्तनाऽपवर्तना चोभेऽपि भवत इति विख्यापयिषुराह

किट्टी कुणमाणो ओवट्टइ मोहस्स ठिइरसा णियमा ।
सो य न उव्वट्टइ ओवट्टइ उव्वट्टइ परो उ ॥१०१॥ (उपगीतिः)

किट्टी कुर्वाणोऽपवर्तयति मोहस्य स्थितिरसौ नियमाद् ।
स च नोद्वर्तयत्यपवर्तयत्युद्वर्तयति परस्तु ॥१०१॥ इति पदसंस्कार ।

'किट्टी' इत्यादि, किट्टीः 'कुर्वाणः' निर्वर्तयन् प्रस्तुतत्वात् क्षपकः 'मोहस्य' मोहनीयस्य स्थितिरसौ नियमाद् अपवर्तयति, मोहनीयस्य सत्तागतस्थितिरसौ नियमतो ह्रासयतीत्यर्थः । 'स' किट्टिकरणाद्धावर्ती च क्षपको नोद्वर्तयति, मोहनीयस्य सत्तागतस्थितिरसौ न वर्धयतीत्यर्थः । किट्टिकारेतरस्य को विशेषः ? इत्यत आह-'ओवट्टइ' इत्यादि, तत्र 'परस्तु' किट्टिकरणाद्धाया अधस्ताद् वर्तमानो जीवस्तु तुर्वाक्यभेदे, मोहनीयस्य स्थितिरसावपवर्तयत्युद्वर्तयति च । उक्तं च कषायप्राभृते-

"ओवट्टणमुव्वट्टण किट्टीवज्जेसु होदि कम्मेसु ।
ओव्वट्टणा च णियमा किट्टीकरणम्हि बोद्धव्वा ॥१॥" इति

तथैव कर्मप्रकृतावपि

"आबंधा उक्कड्डइ सव्वहिमोकड्डणा ठिइरसाणं ।
किट्टीवज्जे उभयं, किट्टीसु ओव्वट्टणा एका ॥१॥" इति ।

एवं कषायप्राभृतचूर्णावप्युक्तम्-"खवगो किट्टीकरणप्पहुडि जाव संकमो, ताव ओकड्डगो पदेसग्गस्स ण उक्कड्डगो ।" इति ।

अथ किट्टिकरणाद्धाया द्वितीयादिसमयेषु यद्भवति, तदभिधातुकाम आह

वीयाइखणेसु असंखगुणकमेणं दलं तु घेत्तूणं ।
कुणइ अहो संगहकिट्टीण अपुव्वा असंखगुणहीणा ॥१०२॥ (गीतिः)

द्वितीयादिसमयेष्वसंख्यगुणक्रमेण दलं तु गृहीत्वा ।
करोत्यध संग्रहकिट्टीनामपूर्वा असंख्यगुणहीना ॥१०२॥ इति पदसंस्कार ।

'वीयाइखणेसु' इत्यादि, 'द्वितीयादिक्षणेषु' किट्टिकरणाद्धाया द्वितीयादिसमयेषु असंख्यगुणक्रमेण 'दलं' प्रदेशाग्रं तु 'गृहीत्वा' आदाय 'संग्रहकिट्टीनां' द्वादशानां संग्रहकिट्टीनामधः 'अपूर्वाः' अभिनवा अवान्तरकिट्टीः 'असंख्यगुणहीनाः' पूर्वसमयतोऽसंख्येयगुणहीनाः 'करोति'

निर्वर्तयति। अपूर्वत्वं च प्राक्तनसमये तादृशाऽनुभागकानामवान्तरकिट्टीनामदर्शनादवसेयम्, उत्तरोत्तरसमये-ऽनन्तगुणहीनरसत्वसंपादनात्। इदमुक्तं भवति-प्रतिसमयमनन्तगुणवृद्धया प्रवर्धमानायां विशुद्धौ प्रवर्तमानत्वात् किट्टिकरणाद्धायाः प्रथमसमयतो द्वितीयसमयेऽसंख्येयगुणं दलं गृहीत्वा प्रथमसमयतोऽसंख्येयगुणहीना अभिनवा अवान्तरकिट्टीर्निर्वर्तयति। उक्तं च कषायप्राभृतचूर्णौ-"**जं पदेसग्गं सव्वसमासेण पढमसमए किट्टीसु दिज्जदि, तं थोवं। विदियसमए असंखेज्जगुणं। XXX विदियसमए अण्णाओ किट्टीओ करेदि। पढमसमये णिव्वत्तिदकिट्टीणमसंखेज्जदिभागमेत्ताओ।**" इति। ताश्च अभिनवा अवान्तरकिट्टयो द्वादशसंग्रहकिट्टीनामधस्तात् क्रियन्ते। उक्तं च कषायप्राभृतचूर्णौ-"**एक्केक्किस्से संगहकिट्टीए हेट्ठा अपुव्वाओ किट्टीओ करेदि।**" इति। तद्यथा-संज्वलनक्रोधस्य तृतीयसंग्रहकिट्टिप्रथमाऽवान्तरकिट्टया अधस्ताद् द्वितीयसमयेऽनन्तगुणहीनानुभागकाः प्रथमसमयकृतावान्तरकिट्टीनामसंख्येयभागमिता अपूर्वा अवान्तरकिट्टीः करोति, तथा द्वितीयसंग्रहकिट्टिप्रथमावान्तरकिट्टया अधस्तात् प्रथमसमयकृतावान्तरकिट्टीनामसंख्येयभागप्रमाणा अपूर्वा अवान्तरकिट्टीर्निर्वर्तयति। एवं क्रोधद्वितीयसंग्रहकिट्टिप्रथमसंग्रहकिट्टिसत्कप्रथमाऽवान्तरकिट्टया अप्यधस्तादनन्तगुणहीनानुभागकाः प्रथमसमयकृतावान्तरकिट्टीनामसंख्येयभागप्रमाणा अभिनवा अवान्तरकिट्टीर्निर्वर्तयति। एवमेव मानमायालोभानां स्वस्वप्रथमादिसंग्रहकिट्टीनामधस्तादनन्तगुणहीनाऽनुभागका अपूर्वा अवान्तरकिट्टीः करोति। यस्याः संग्रहकिट्टया अधस्ताद् या अपूर्वाऽवान्तरकिट्टयः क्रियन्ते, ता अपूर्वाऽवान्तरकिट्टयस्तत्संग्रहकिट्टिसम्बन्धिन्यो व्यपदिश्यन्ते। इत्थं प्रथमसमयतो द्वितीयसमयेऽसंख्येयभागप्रमाणा मन्दतराऽनुभागका अवान्तरकिट्टय एकैकस्यां संग्रहकिट्टौ वर्धन्ते।

संज्वलनक्रोधस्य किट्टीनां विन्यास

द्वितीयसमयकृता अपूर्वावान्तरकिट्टयः	प्रथमसमयकृताऽवान्तरकिट्टय	
******	★ΛΛΛΛΛΛΛΛΛΛΛ	प्रथमसंग्रहकिट्टि।
********	★ΛΛ★ΛΛ★★ΛΛΛΛ★★★	द्वितीयसंग्रहकिट्टि.
**********	ΛΛ★ΛΛΛΛΛΛΛ★ΛΛΛΛΛΛ★★Λ	तृतीयसंग्रहकिट्टि.

परमार्थत प्रथमसमयकृतावान्तरकिट्टितो द्वितीयसमयकृतावान्तरकिट्टयो-ऽसंख्येयगुणहीना भवन्ति। इह तु द्विगुणहीना दर्शिता, द्विकस्याऽसंख्येयत्वेन परिकल्पनात्।

एवं मानमायालोभानामपि न्यासो द्रष्टव्यः।

ततस्तृतीयसमये द्वितीयसमयतोऽसंख्येयगुणं दलं गृहीत्वा द्वितीयसमयतोऽसंख्येयगुणहीना अपूर्वा अवान्तरकिट्टीर्द्वादशसंग्रहकिट्टिसत्कस्वस्वप्रथमाऽवान्तरकिट्टया अधस्ताद् निर्वर्तयति। एवं प्रतिसमयमसंख्येयगुणक्रमेण दलं गृहीत्वाऽसंख्येयगुणहीना अपूर्वावान्तरकिट्टीस्तावन्निर्वर्तयति, यावत् किट्टिकरणाद्धायाश्चरमसमयः ॥१०२॥

अथ किट्टिकरणाद्धाया द्वितीयादिसमयेष्ववान्तरकिट्टिषु दीयमानप्रदेशाग्रं दृश्यमानप्रदेशाग्रं च विभणिषुराह

देइ अपुव्वंतत्तो पुव्वादीए असंखभागूणं ।
पुव्वंताउ अपुव्वादीअ असंखंसउत्तरं दलिअं ॥१०३॥ (गीतिः)
सेसासु विसेसूणं तेणं तेवीसउट्टकूडाणि ।
होन्ते दीसइ दलिअं सव्वत्थ अणंतभागूणं ॥१०४॥

ददात्यपूर्वान्तात् पूर्वादावसंख्यभागोनम् ।
पूर्वान्ताया अपूर्वादौ असंख्यांशोत्तरं दलिकम् ॥१०३॥
शेषासु विशेषोनं तेन त्रयोविंशत्युष्ट्रकूटानि ।
भवन्ति दृश्यते दलिकं सर्वत्र अनन्तभागोनम् ॥१०४॥इति पदसंस्कारः ।

'देइ' इत्यादि, 'बीयाइखणेसु' इति पूर्वतोऽनुवर्तते, किट्टिकरणाद्धाया द्वितीयादिसमयेषु 'अपूर्वान्तात्' अपूर्वास्ववान्तरकिट्टिषु या अन्ता-चरमाऽवान्तरकिट्टिः, ततः, चरमाऽपूर्वाऽवान्तरकिट्टित इत्यर्थः, 'पूर्वादौ' पूर्वास्ववान्तरकिट्टिषु या आदिः-प्रथमाऽवान्तरकिट्टिः, तस्याम्, प्रथमपूर्वाऽवान्तरकिट्टयामित्यर्थः, 'असंख्यभागोनम्' असंख्येयभागहीनं दलिकं 'ददाति' निक्षिपति ।

'पुव्वंताउ' इत्यादि, 'पूर्वान्तायाः' पूर्वास्ववान्तरकिट्टिषु या अन्ता-चरमाऽवान्तरकिट्टिः, ततः, चरमपूर्वाऽवान्तरकिट्टित इत्यर्थः, 'अपूर्वादौ' पूर्वाऽवान्तरकिट्टिसमनन्तरं या अपूर्वाऽवान्तरकिट्टयोऽवतिष्ठन्ते, तासु या आदिः-प्रथमा-ऽवान्तरकिट्टिः, तस्याम्, प्रथमाऽपूर्वावान्तरकिट्टयामित्यर्थः, 'असंख्यांशोत्तरम्' असंख्येयभागाधिकं दलिकं ददाति ।

'सेसासु' इत्यादि, 'शेषासु' उक्तेतरासु पूर्वापूर्वावान्तरकिट्टिषु 'विशेषोनं' विशेषहीनं दलिकं निक्षिपति । 'तेणं' इत्यादि, 'तेन' उक्तदलनिक्षेपक्रमेण द्वितीयादिसमयेषु दीयमानदलस्य त्रयोविंशत्युष्ट्रकूटानि भवन्ति, न न्यूनाधिकाः ।

तथाहि-किट्टिकरणाद्धाया द्वितीयसमये संज्वलनलोभस्य प्रथमसंग्रहकिट्टिप्रथमाऽपूर्वावान्तर-किट्टौ सर्वप्रभूतं दलं ददाति । प्रथमसंग्रहकिट्टिप्रथमाऽपूर्वावान्तरकिट्टिश्च प्रथमसंग्रहकिट्टया अधस्तादनन्तगुणहीनाऽनुभागकासु तदानींतनास्वनन्तास्वपूर्वावान्तरकिट्टिषु सर्वमन्दानुभागका बोद्धव्या । एवमग्रेऽपि यथास्थानं भावनीयम् । ततः प्रथमसंग्रहकिट्टिद्वितीयापूर्वाऽवान्तरकिट्टौ विशेषहीनं दलं ददाति, हीनत्वं चाऽनन्ततमभागेन ज्ञातव्यम् । एवमनन्तरानन्तरेण तावद् वक्तव्यम्, यावद् लोभस्य प्रथमसंग्रहकिट्टिचरमाऽपूर्वावान्तरकिट्टिः । उक्तं च कषायप्राभृतचूर्णौ- "लोभस्स जहण्णियाए किट्टीए पदेसग्गं बहुअं दिज्जदि, बिदियाए किट्टीए विसेस-हीणमणंतभागेण, ताव अणंतभागहीणं, जाव अपुव्वाणं चरिमादो त्ति ।" इति

द्वितीयसमयेन निर्वर्त्यमानलोभप्रथमसंग्रहकिट्टिचरमाऽपूर्वावान्तरकिट्टौ दीयमानप्रदेशतः प्रथमसमयकृतलोभप्रथमसंग्रहकिट्टिप्रथमाऽवान्तरकिट्टावसंख्येयभागहीनं दलं ददाति । न्यगादि च कषायप्राभृतचूर्णौ "तदो पढमसमए णिव्वत्तिदाणं जहण्णियाए किट्टीए विसेसहीणमसंखेज्जदिभागेण ।" इति । कथमेतदवसीयते ? इति चेद्, उच्यते प्रतिसमयमनन्तगुणवृद्ध्या विशुद्धेः प्रवर्धमानत्वात् किट्टिकरणाद्धायाः प्रथमसमयतो द्वितीयसमयेऽसंख्येयगुणं दलमवान्तरकिट्टितया परिणमनाय गृह्णाति । अपूर्वाऽवान्तरकिट्टयस्त्वसंख्येयगुणहीना निर्वर्त्यन्ते । अथ प्रथमसमयकृतप्रथमावान्तरकिट्टौ यावद् दलं प्रथमसमयेऽदात्, यदि तावदेव दलं द्वितीयसमये चरमपूर्वान्तरकिट्टौ दद्यात्, तर्ह्यपूर्वावान्तरकिट्टिषु दीयमानं सकलं दलं द्वितीयसमये किट्टितया परिणमनाय गृहीतदलस्याऽसंख्येयभागप्रमाणं स्यात्, प्रथमसमयतो द्वितीयसमये निर्वर्त्यमानकिट्टीनामसंख्येयगुणहीनत्वात् किट्टितया च परिणमनाय गृहीतदलस्या-ऽसंख्येयगुणत्वात् । बहुसंख्येयभागप्रमाणदलस्य तु निक्षेपो न स्यात् । न चैतामापत्तिमपाकर्तुं बहुसंख्येयभागमात्रदलं यथाविभागं पूर्वावान्तरकिट्टिषु प्रक्षेप्तव्यमिति वाच्यम्, यतस्तथाऽभ्युपगमे पूर्वसमयापेक्षया दलिकस्या-ऽसंख्येयगुणत्वेना-ऽपूर्वाऽवान्तरकिट्टौ दृश्यमानदलतः पूर्वावान्तरकिट्टौ दृश्यमानमपि दलमसंख्येयगुणं स्यात् । तच्च नेष्टम्, पूर्वापूर्वाऽवान्तरकिट्टिषु दृश्यमानदलिकस्यैकगोपुच्छाकारेण वक्ष्यमाणत्वात् । तेनैकैकपूर्वावान्तरकिट्टौ प्रथमसमये यावद् दलिकं प्रदत्तम्, ततोऽसंख्येयगुणं दलमेकैकपूर्वावान्तरकिट्ट्यामेकैकापूर्वावान्तरकिट्टौ च ददाति, किन्तु यावद् दलमेकैकापूर्वावान्तरकिट्टौ प्रक्षिप्यते, ततोऽसंख्येयभागेन हीनं दलमेकैकपूर्वावान्तरकिट्टौ दीयते । कुतः ? इति चेत्, उच्यते—पूर्वाऽवान्तरकिट्ट्यां पुरातनसत्तागतदलमसंख्येयभागप्रमाणं विद्यते, तथा द्वितीयसमये केवलमपूर्वावान्तरकिट्टितः पूर्वाऽवान्तरकिट्टौ दलमनन्ततमभागेन हीनं तिष्ठति, दृश्यमानदलस्य विशेषहीनक्रमेण वक्ष्यमाणत्वात् । यद्येकैकापूर्वावान्तरकिट्टौ यावद् दलं ददाति, तावदेव दलमेकैकपूर्वावान्तरकिट्ट्यामपि दद्यात्, तर्ह्यपूर्वावान्तरकिट्टितः पूर्वावान्तरकिट्टौ दृश्यमानदलमसंख्येयभागाधिकं स्यात्, पूर्वाऽवान्तरकिट्टावसंख्येयभागप्रमाणस्य पुरातनदलस्य सद्भावात् । तच्च नाऽभिप्रेतम्, विशेषहीनदलस्य वक्ष्यमाणत्वात् । तेन लोभप्रथमसंग्रहकिट्टिचरमापूर्वावान्तरकिट्टितः प्रथमसमयकृतलोभप्रथमसंग्रहकिट्टिप्रथमाऽवान्तरकिट्ट्यामसंख्येयभागहीनं दलं ददाति । एवमग्रेऽप्यपूर्वाऽवान्तरकिट्टीनां चरमापूर्वाऽवान्तरकिट्टितः पूर्वाऽवान्तरकिट्टीनां प्रथमपूर्वाऽवान्तरकिट्टौ दीयमानदलमसंख्येयभागेन हीनं वक्तव्यम् ।

लोभप्रथमसंग्रहकिट्ट्याः प्रथमसमयकृतप्रथमाऽवान्तरकिट्टितो विशेषहीनं दलं प्रथमसमयकृतद्वितीयाऽवान्तरकिट्टौ ददाति । हीनत्वं चाऽनन्ततमभागेन ज्ञातव्यम् । ततोऽपि प्रथमसमयकृततृतीयाऽवान्तरकिट्टौ विशेषहीनं ददाति । एवं विशेषहीनक्रमेण तावद् ददाति, यावद् लोभप्रथमसंग्रहकिट्ट्याः प्रथमसमयकृतचरमाऽवान्तरकिट्टिः । उक्तञ्च कषायप्राभृतचूर्णौ—"तदो विदि-

याए अणंतभागहीणं। तेण परं पढमसमए णिव्वत्तिदासु लोभस्स पढमसंगहकिट्टीए किट्टीसु अणंतराणंतरेण अणंतभागहीणं दिज्जमाणगं जाव पढमसंगहकिट्टीए चरिमकिट्टि त्ति।" इति।

लोभप्रथमसंग्रहकिट्टिसत्कप्रथमसमयकृतचरमाऽवान्तरकिट्टितो लोभद्वितीयसंग्रहकिट्टया द्वितीयसमयनिर्वर्त्यमानप्रथमापूर्वाऽवान्तरकिट्टौ दलमसंख्येयभागेनाधिकं ददाति। उक्तञ्च कषायप्राभृतचूर्णौ–"लोभस्स चेव विदियसमए विदियसंगहकिट्टीए तिस्से जहण्णियाए किट्टीए दिज्जमाणगं विसेसाहियमसंखेज्जदिभागेण।" इति। कुतः? इति चेद्, उच्यते-यदि लोभप्रथमसंग्रहकिट्टयाः प्रथमसमयकृतचरमाऽवान्तरकिट्टौ यावद्दलं ददाति, तावदेव लोभद्वितीयसंग्रहकिट्टया द्वितीयसमयनिर्वर्त्यमानप्रथमाऽपूर्वाऽवान्तरकिट्टौ प्रक्षिपेद्, तर्हि दृश्यमानदलमेकगोपुच्छाकारेण न तिष्ठेत्, अपि त्वसंख्येयभागेन हीनं तिष्ठेत्। तथाहि-लोभप्रथमसंग्रहकिट्टयाः प्रथमसमयकृतचरमाऽवान्तरकिट्टौ निक्षिप्यमाणदलिकापेक्षयाऽसंख्येयभागमात्रं दलं पुरातनसत्तागतं विद्यते। अथ प्रथमसमयकृतप्रथमसंग्रहकिट्टिसत्कचरमाऽवान्तरकिट्टौ यावद्दलं दीयते, यदि तावन्मात्रमेव दलं लोभद्वितीयसंग्रहकिट्टया द्वितीयसमयनिर्वर्त्यमानप्रथमाऽपूर्वाऽवान्तरकिट्टौ प्रक्षिपेद्, तर्हि तत्र पुरातनसत्तागतदलस्याऽभावेन केवलं दीयमानदलसद्भावाल्लोभप्रथमसंग्रहकिट्टयाः प्रथमसमयकृतचरमाऽवान्तरकिट्टितो लोभद्वितीयसंग्रहकिट्टया द्वितीयसमयनिर्वर्त्यमानप्रथमाऽपूर्वाऽवान्तरकिट्टौ दृश्यमानं दलमसंख्येयभागेन हीनं स्यात्। न च तदिष्यते, पूर्वाऽपूर्वाऽवान्तरकिट्टीनां दृश्यमानं दलं यथोत्तरमनन्तभागेन हीनं भवदेकगोपुच्छाकारेण तिष्ठतीति स्वीकारात्। तेन लोभप्रथमसंग्रहकिट्टयाः प्रथमसमयकृतचरमाऽवान्तरकिट्टितो लोभद्वितीयसंग्रहकिट्टया द्वितीयसमयनिर्वर्त्यमानप्रथमाऽपूर्वाऽवान्तरकिट्टावसंख्येयभागेनाधिकं दलं ददाति, । एवमसंख्येयभागाधिके दलिके प्रक्षिप्ते दृश्यमानं दलं गोपुच्छाकारेण तिष्ठति। एवमन्यत्राऽपि यत्राऽसंख्येयभागेनाधिकं दलं प्रक्षिपति, तत्रेदं कारणं प्ररूपयितव्यम्। लोभद्वितीयसंग्रहकिट्टया द्वितीयसमयनिर्वर्त्यमानप्रथमाऽपूर्वान्तरकिट्टितो द्वितीयसमयनिर्वर्त्यमानद्वितीयाऽपूर्वाऽवान्तरकिट्टौ विशेषहीनं दलं ददाति, हीनत्वं चाऽनन्ततमभागेन ज्ञातव्यम्। एवमनन्तरानन्तरेण विशेषहीनं विशेषहीनं तावद् वक्तव्यम्, यावद् लोभद्वितीयसंग्रहकिट्टया द्वितीयसमयनिर्वर्त्यमानचरमाऽपूर्वाऽवान्तरकिट्टिः। उक्तं च कषायप्राभृतचूर्णौ "तेण परमणंतभागहीणं जाव अपुव्वाणं चरिमादो त्ति।" इति।

लोभद्वितीयसंग्रहकिट्टया द्वितीयसमयनिर्वर्त्यमानचरमाऽपूर्वाऽवान्तरकिट्टितो लोभद्वितीयसंग्रहकिट्टिप्रथमसमयकृतप्रथमापूर्वाऽवान्तरकिट्टावसंख्येयभागेन हीनं ददाति। ततः परमनन्तरानन्तरेणाऽनन्तभागेन हीनं दलं तावद् ददाति, यावद् लोभद्वितीयसंग्रहकिट्टिप्रथमसमयकृतचरमाऽवान्तरकिट्टिः।

लोभद्वितीयसंग्रहकिट्टिप्रथमसमयकृतचरमपूर्वाऽवान्तरकिट्टितो लोभतृतीयसंग्रहकिट्टिद्वितीय-

समयनिर्वर्त्यमानप्रथमाऽपूर्वाऽवान्तरकिट्टौ दलमसंख्येयभागेनाऽधिकं दलं ददाति । ततः परमनन्तरानन्तरेणाऽनन्तभागेन हीनं तावद् ददाति, यावद् लोभतृतीयसंग्रहकिट्टिद्वितीयसमयनिर्वर्त्यमानचरमाऽपूर्वावान्तरकिट्टिः ।

लोभतृतीयसंग्रहकिट्टिद्वितीयसमयनिर्वर्त्यमानचरमाऽपूर्वाऽवान्तरकिट्टितः प्रथमसमयनिर्वर्त्तितलोभतृतीयसंग्रहकिट्टिप्रथमपूर्वाऽवान्तरकिट्टावसंख्येयभागेन हीनं दलं ददाति, ततः परमनन्तरानन्तरेणाऽनन्तभागेन हीनं तावद् ददाति, यावत् प्रथमसमयकृतलोभतृतीयसंग्रहकिट्टिचरमाऽपूर्वाऽवान्तरकिट्टिः ।

प्रथमसमयकृतलोभतृतीयसंग्रहकिट्टिचरमपूर्वाऽवान्तरकिट्टितो द्वितीयसमयनिर्वर्त्यमानमायाप्रथमसंग्रहकिट्टिप्रथमाऽपूर्वाऽवान्तरकिट्टौ दलमसंख्येयभागेनाऽधिकं ददाति । ततः परमनन्तरानन्तरेणाऽनन्तभागेन हीनं तावद् ददाति, यावद् द्वितीयसमयनिर्वर्त्यमान-मायाप्रथमसंग्रहकिट्टिचरमाऽपूर्वाऽवान्तरकिट्टिः । उक्तं च कषायप्राभृतचूर्णौ **"तदो लोभस्स चरिमादो किट्टीदो मायाए जा विदियसमए जहण्णिया किट्टी, तिस्से दिज्जदि पदेसग्गं विसेसाहियमसंखेज्जदिभागेण, तदो पुणमणंतभागहीणं जाव अपुव्वाणं चरिमादो त्ति।"**

मायाप्रथमसंग्रहकिट्टिद्वितीयसमयनिर्वर्त्यमानचरमाऽपूर्वाऽवान्तरकिट्टितः प्रथमसमयकृतमायाप्रथमसंग्रहकिट्टिप्रथमपूर्वाऽवान्तरकिट्टावसंख्येयभागेन हीनं दलं ददाति, ततः परमनन्तभागेन हीनं दलं तावद् ददाति, यावत् प्रथमसमयकृत-मायाप्रथमसंग्रहकिट्टिचरमपूर्वावान्तरकिट्टिः ।

एवं मायामानक्रोधानां यथाक्रमं यत्र यत्र पूर्वाऽवान्तरकिट्टिसमनन्तरमपूर्वाऽवान्तरकिट्टिः प्राप्यते, तत्र तत्र पूर्वाऽवान्तरकिट्टौ दत्तदलतोऽसंख्येयभागेनाधिकं दलं ददाति । यत्र यत्र पुनरपूर्वाऽवान्तरकिट्टिसमनन्तरं पूर्वाऽवान्तरकिट्टिः प्राप्यते, तत्र तत्राऽपूर्वाऽवान्तरकिट्टौ दत्तदलतोऽसंख्येयभागेन हीनं दलं ददाति । अन्यत्र सर्वपूर्वापूर्वाऽवान्तरकिट्टिषु क्रमेणाऽनन्तभागहीनं दलं ददाति । उक्तं च कषायप्राभृतचूर्णौ—**"एवं जम्हि जम्हि अपुव्वाणं जहण्णिया किट्टी, तम्हि तम्हि विसेसाहियमसंखेज्जदिभागेण, अपुव्वाणं चरिमादो असंखेज्जदिभागहीणं । ××× सेसेसु किट्टिट्ठाणेसु अणंतभागहीणं दिज्जमाणगस्स पदेसग्गस्स ।"** इति ।

एवंक्रमेण दलिकं निक्षिपन् द्वादशसु पूर्वाऽवान्तरकिट्टिस्थानेष्वसंख्येयभागेन हीनं दलं ददाति, अपूर्वावान्तरकिट्टयाः पूर्वाऽवान्तरकिट्टयाश्च द्वादशसन्धिदर्शनात् । एकादशसु चाऽपूर्वाऽवान्तरकिट्टिस्थानेष्वसंख्येयभागेनाधिकं दलं ददाति, पूर्वा-ऽवान्तरकिट्टयपूर्वा-ऽवान्तरकिट्टयोरेकादशसन्धिदर्शनात् । उक्तं च कषायप्राभृतचूर्णौ—**"एदेण कमेण विदियसमए णिक्खिवमाणगस्स पदेसग्गस्स बारससु किट्टिट्ठाणेसु असंखेज्जदिभागहीणं, एक्कारससु किट्टिट्ठाणेसु असंखेज्जदिभागुत्तरं दिज्जमाणगस्स पदेसग्गस्स"** । इति ।

इत्थं द्वितीयसमये दीयमानदलस्य द्वादशस्थानेष्वसंख्येयभागहीनत्वाद् एकादशस्थानेषु चाऽसंख्येयभागाधिकत्वात् तथा शेषेष्वनन्तस्थानेष्वनन्ततमभागेन न्यूनत्वाद् दीयमानदलस्यैष क्रम उष्ट्रकूटतुल्यो जातः। यथा उष्ट्रस्य पृष्ठं पश्चिमभाग उन्नतं भवति, ततः क्रमेण ईषन्निम्नतया तिष्ठद् स्थानविशेषे प्रभूतनिम्नं भवति, ततः क्रमेणेषन्निम्नतया तिष्ठद् पुनरुन्नतं भवति। ततः क्रमेणेषन्निम्नतया तिष्ठति। तथैवाऽत्रापि लोभप्रथमसंग्रहकिट्टयाः प्रथमापूर्वावान्तरकिट्टौ दीयमानं दलं प्रभूतं भवति, ततोऽनन्तरानन्तरेणाऽनन्ततमभागेन हीनं भवद् अपूर्वावान्तरकिट्टयाः पूर्वाऽवान्तरकिट्टयाश्च सन्धौ सति लोभप्रथमसंग्रहकिट्टयाः प्रथमपूर्वाऽवान्तरकिट्टावसंख्येयभागेन हीनं भूत्वाऽधो गच्छति। ततः क्रमेणाऽनन्ततमभागेन हीनं भवत् पूर्वाऽवान्तरकिट्टया अपूर्वावान्तरकिट्टयाश्च सन्धौ सति लोभद्वितीयसंग्रहकिट्टिप्रथमापूर्वावान्तरकिट्टयामसंख्येयभागाधिकं भूत्वोन्नतं भवति। ततः क्रमेणाऽनन्तभागेन हीनं भवति। तेन दीयमानदलमुष्ट्रकूटतुल्यं जातम्। उक्तं च कषायप्राभृतचूर्णौ–**विदियसमये दिज्जमाणयस्स पदेसग्गस्स एसा उट्टकूडसेढी।**" इति। इहोष्ट्रकूटशब्देन सादृश्याद् निम्नोन्नतस्थानानि वोच्यानि, तानि च सर्वसंख्यया त्रयोविंशतिर्भवन्ति। तेन दीयमानदलस्य त्रयोविंशतिरुष्ट्रकूटान्युपपद्यन्ते। न च कूटशब्दस्य शिखरवाचकत्वेनोष्ट्रकूटशब्देन सादृश्यात् केवलान्युन्नतस्थानानि कुतो न गृह्यन्ते? इति वाच्यम्, यत उष्ट्रकूटशब्देन सादृश्यात् केवलेषून्नतस्थानेषु गृहीतेषूष्ट्रकूटान्येकादश स्युः, एकादशस्थानेष्वेवाऽसंख्येयभागाधिकदलिकप्रक्षेपात्। न च तदिष्टम्, कषायप्राभृतचूर्ण्यादौ त्रयोविंशत्युष्ट्रकूटानां प्रतिपादनात्। ननूष्ट्रकूटशब्देन निम्नोन्नतस्थानेषु गृहीतेषूष्ट्रकूटान्यनन्तानि स्युः, अनन्तावान्तरकिट्टिषु दीयमानदलस्यानन्तभागहीनत्वेन निम्नस्थानानामनन्तत्वादिति चेत्, न, यत इह यस्मिन् किट्टिस्थानेऽसंख्येयभागहीनं दलं दीयते, तन्निम्नतया विवक्षितम्। यत्र त्वनन्तभागहीनं दीयते, तत् सदपि निम्नं निम्नतया न विवक्ष्यते, यथाऽनुदरा कन्या। यथा द्वितीयसमये दीयमानदलस्य क्रमो दर्शितः, तथैव किट्टिकरणाद्धायाः शेषसमयेष्वपि बोद्धव्यः, विशेषाभावात्। यदुक्तं कषायप्राभृतचूर्णौ–"**जहा विदियसमए किट्टीसु पदेसग्गं, तहा सव्विस्से किट्टीकरणद्धाए दिज्जमाणगस्स पदेसग्गस्स तेवीसमुट्टकूडाणि।**" इति। इत्थं किट्टिकरणाद्धायां द्वितीयादिसमयेष्वपि दीयमानदलस्य त्रयोविंशतिरुष्ट्रकूटानि भवन्ति।

अथ किट्टिकरणाद्धाया द्वितीयादिसमयेषु दृश्यमानं दलं प्ररूपयति-'**दीसइ**' इत्यादि, तत्र '**सव्वत्थ**' त्ति 'सर्वत्र' सर्वपूर्वापूर्वाऽवान्तरकिट्टिषु 'अनन्तभागोनम्' अनन्ततमभागेन ऊनं-हीनं 'दलिकं' प्रदेशाग्रं दृश्यते, किट्टिकरणाद्धाया द्वितीयादिसमयेषु पूर्वापूर्वसर्वाऽवान्तरकिट्टिषु यथोत्तरं दृश्यमानं दलमनन्ततमभागेन हीयमानं भवदेकगोपुच्छाकारेण तिष्ठतीत्यर्थः। उक्तं च कषायप्राभृतचूर्णौ "**दिस्समाणयं सव्वम्हि अणंतभागहीणं**"। इति। अयं भावः किट्टिकरणाद्धाया द्वितीयादिसमयेष्वपि संज्वलनलोभप्रथमसंग्रहकिट्टिप्रथमा-

यन्त्रकम्-१६ (चित्रम्-१६)

किट्टिकरणाद्धाया द्वितीयसमये दीयमानदलस्योष्ट्रकूटप्ररूपणा

सङ्केतस्पष्टीकरणम्—

(क=लोभप्रथमसंग्रहकिट्टिप्रथमापूर्वावान्तरकिट्टौ प्रभूतं दलं दीयते ।

ख=लोभप्रथमसंग्रहकिट्टिद्वितीयाद्यपूर्वावान्तरकिट्टिषु विशेषहीनक्रमेण दलं दीयते ।

ग=लोभप्रथमसंग्रहकिट्टिप्रथमपूर्वावान्तरकिट्टौ लोभप्रथमसंग्रहकिट्टिचरमापूर्वावान्तरकिट्टितोऽसंख्येयभागहीनं दलं दीयते । तेनाऽत्र प्रथम उष्ट्रकूटो भवति । स च १ इत्यनेन सूचितः ।

घ=ततः परं लोभप्रथमसंग्रहकिट्टिद्वितीयादिपूर्वावान्तरकिट्टिषु विशेषहीनक्रमेण दलं दीयते ।

ङ=लोभद्वितीयसंग्रहकिट्टिप्रथमापूर्वावान्तरकिट्टौ लोभप्रथमसंग्रहकिट्टिचरमपूर्वावान्तरकिट्टितोऽसंख्येयभागाधिकं दलं दीयते । तेनाऽत्र द्वितीय उष्ट्रकूटो भवते । स च २ इत्यनेनाङ्केन सूचितः । ईदृशाकार उष्ट्रो 'गोबी' (Gobi) इत्याख्ये वने दृश्यते ।



१ किट्टि	२ किट्टि	३ किट्टि	१ किट्टिः	२ किट्टिः	३ किट्टि	१ किट्टि	२ किट्टि	३ किट्टिः	१ किट्टि	२ किट्टि	३ किट्टिः
स ज्व ल न लो भः			स ज्व ल न मा या			स ज्व ल न मा नः			स ज्व ल न क्रो धः		

सङ्केतस्पष्टीकरणम्—अ=द्वितीयसमये निर्वर्त्यमाना अपूर्वावान्तरकिट्टयः । पू=पूर्वावान्तरकिट्टयः ।

✲ अनेन चिह्नेन अपूर्वावान्तरकिट्टिषु दीयमानं दलं सूचितम्, तच्च लोभप्रथमसंग्रहकिट्टया प्रथमापूर्वावान्तरकिट्टौ प्रभूतं भवति, द्वितीयापूर्वावान्तरकिट्टौ विशेषहीनम्, एवमुत्तरोत्तरापूर्वावान्तरकिट्टौ विशेषहीनं विशेषहीनं भवति ।

• • •=अनेन चिह्नेन पूर्वावान्तरकिट्टिषु पुरातनदलं सूचितम् ।

० ० ० अनेन चिह्नेन पूर्वावान्तरकिट्टिषु दीयमानं दलं सूचितम्, तत्र लोभप्रथमसंग्रहकिट्टयाश्चरमापूर्वावान्तरकिट्टौ यद् दलं दीयते, ततोऽसंख्येयभागेन हीनं लोभप्रथमसंग्रहकिट्टया प्रथमपूर्वावान्तरकिट्टौ दीयते, तत्र (• • •) अनेन चिह्नेन सूचितस्य पुरातनदलस्य सत्त्वात् । इह दीयमानदलस्य प्रथम उष्ट्रकूटः (१), तत उत्तरोत्तरपूर्वावान्तरकिट्टौ विशेषहीनक्रमेण दलं तावद् दीयते, यावल्लोभप्रथमसंग्रहकिट्टिचरमपूर्वावान्तरकिट्टि । ततो लोभद्वितीयसंग्रहकिट्टयाः प्रथमापूर्वावान्तरकिट्टावसंख्येयभागाधिकं दीयते, अत्र दीयमानदलस्य द्वितीय उष्ट्रकूटः, (२) ततो विशेषहीनक्रमेण दीयते । एवंक्रमेण द्वादशसंग्रहकिट्टयवान्तरकिट्टिषु दलिके प्रक्षिप्ते एकादशस्थानेष्वसंख्येयभागाधिकं दीयमानं दलं भवति, एकादशस्थानानि च २, ४, ६, इत्यादियुग्माङ्कैर्दर्शितानि, द्वादशस्थानेषु चाऽसंख्येयभागहीनं दीयमानं दलं भवति । द्वादशस्थानानि च १, ३, ५, इत्याद्योजोऽङ्कैः सूचितानि । अनया रीत्या दीयमानदलस्य त्रयोविंशतिरुष्ट्रकूटा भवन्ति । शेषस्थानेषु विशेषहीनक्रमेण दलं दीयते । चित्रेऽनेकान् उष्ट्रान् परिकल्प्य २३ उष्ट्रकूटा दर्शिता., विशेषहानिश्च • • • अनेन चिह्नेन सूचिता ।



ऽवान्तरकिट्टौ दृश्यमानं दलं प्रभूतं भवति, ततोऽनन्तभागेन हीनं संज्वलनलोभप्रथमसंग्रहकिट्टि-द्वितीयाऽवान्तरकिट्टौ दृश्यमानं दलं विद्यते। एवमनन्तरानन्तरेण तावद् वक्तव्यम्, यावत् संज्वलनक्रोधतृतीयसंग्रहकिट्टिचरमाऽवान्तरकिट्टिः। न चा-ऽपूर्वाऽवान्तरकिट्टिषु यावद् दलं दीयते, तावदेव दृश्यमानं भवति। पूर्वाऽवान्तरकिट्टिषु पुनर्दीयमानदल-पुरातनसत्तागतदलयोः समुदायो दृश्यमानं दलं भवति। तेन चरमाऽपूर्वाऽवान्तरकिट्टितः प्रथमपूर्वाऽवान्तरकिट्टौ दृश्यमानं दलमधिकं कुतो न भवति? इति-चेत्, उच्यते-एतत् समीचीनम्। किन्तु प्रथमपूर्वावान्तरकिट्टौ दीयमानदलस्याऽसंख्येयभागप्रमाणं पुरातनसत्तागतं दलं तथा चरमाऽपूर्वाऽवान्तरकिट्टौ दीयमानदलतोऽसंख्येयभागेन हीनं तस्यां दीयमानं दलमित्येतयोः समुदायस्य चरमाऽपूर्वाऽवान्तरकिट्टौ दीयमानदलतोऽनन्तभागहीनत्वाच्चरमाऽपूर्वावान्तरकिट्टितः प्रथमपूर्वा-ऽवान्तरकिट्टावनन्तभागेन हीनं दलं दृश्यते। पश्यन्तु पाठका यन्त्रकम्–१६।

: अथ गणितविभागः :

अथोपर्युक्तार्थौ गणितानुसारेण स्फुटीक्रियते प्रथमसमये यावतो दलिकस्याऽवान्तरकिट्टीः करोति, द्वितीयसमये ततोऽसंख्येयगुणं दलं गृहीत्वाऽभिनवा अवान्तरकिट्टीः कुर्वन् पूर्वाऽवान्तरकिट्टीरपि पुष्णाति, पूर्वाऽवान्तरकिट्टिष्वपि दलिकं ददातीत्यर्थः।

तत्र द्वितीयसमये किट्टितया परिणमनाय गृहीतसर्वदलं विभागचतुष्टये विभक्तव्यम्। तद्यथा–(१) अधस्तनशीर्षचयदलम्, (२) अधस्तनाऽवान्तरकिट्टिदलम्, (३) उभयचयदलम्, (४) मध्यमखण्डदलं चेति।

(१) **अधस्तनशीर्षचयदलम्**–किट्टिकरणाद्धाप्रथमसमयकृतायां सर्वजघन्याऽनुभागकाऽवान्तरकिट्टौ दलं प्रभूतं विद्यते, ततो द्वितीयाऽवान्तरकिट्टौ विशेषहीनं विद्यते, ततोऽपि तृतीयाऽवान्तरकिट्टौ विशेषहीनम्, एवंक्रमेण तावद् विद्यते, यावच्चरमाऽवान्तरकिट्टिः।

अथ द्वितीयसमये किट्टितया परिणमनाय गृहीतदलिकतो दलमादाय तेन क्रमेण प्रथमसमयकृतद्वितीयाद्यवान्तरकिट्टयः पूरयितव्याः, येन सर्वा अप्यवान्तरकिट्टयः प्रदेशाग्रमाश्रित्य प्रथमसमयकृतप्रथमाऽवान्तरकिट्टिसदृशा भवेयुः। प्रथमसमयकृतद्वितीयाद्यवान्तरकिट्टीनां समीकरणार्थं यावद् दलमपेक्ष्यते, तावद् दलमधस्तनशीर्षचयदलमुच्यते। नन्वधस्तनशीर्षचयदलं कुतः कल्प्यते? इति चेत्, उच्यते-द्वितीयसमय एकैकस्यामवान्तरकिट्टावभिनवश्चय इष्यते, एकैकाऽवान्तरकिट्टौ प्रथमसमयतो द्वितीयसमयेऽसंख्येयगुणदलिकस्य प्रक्षेपात्। स च प्रथमसमयकृतद्वितीयाद्यवान्तरकिट्टिषु प्रथमसमयकृतप्रथमाऽवान्तरकिट्टिसदृशासु कृतास्वेव सुज्ञो भवतीति हेतोः प्रदेशानाश्रित्य प्रथमसमयकृतद्वितीयाद्यवान्तरकिट्टयः प्रथमसमयकृतप्रथमाऽवान्तरकिट्टितुल्याः क्रियन्ते। तदेवमधस्तनशीर्षचयदलस्य कल्पना सार्थका।

(२) अधस्तनाऽवान्तरकिट्टिदलम्—प्रथमसमयकृतद्वितीयाद्यवान्तरकिट्टिष्वधस्तनशीर्षचयदले प्रक्षिप्ते प्रथमसमयकृताः सर्वा अवान्तरकिट्टयस्तुल्यप्रदेशका भवन्ति । प्रदेशापेक्षया तत्सदृशाः प्रथमसमयकृतेऽवान्तरकिट्टीनामसंख्येयभागप्रमिता अपूर्वाऽवान्तरकिट्टयः प्रथमसमयकृततत्तत्संग्रहकिट्टिप्रथमाऽवान्तरकिट्टया अधस्तात् स्थापयितव्याः । स्थापितायामेकैकस्यामवान्तरकिट्टौ यद्दलं भवति, तदधस्तनाऽवान्तरकिट्टिदलमुच्यते । तच्च सकलमपूर्वाऽवान्तरकिट्टिराशिगुणितप्रथमसमयकृतप्रथमाऽवान्तरकिट्टिगतदलप्रमाणं भवति ।

(३) उभयचयदलम्—अधस्तनशीर्षचयदलिकेऽधस्तनाऽवान्तरकिट्टिदलिके च प्रक्षिप्ते सर्वाः पूर्वाऽपूर्वा अवान्तरकिट्टयः समानदलिका जायन्ते । तासां दलिकं गोपुच्छाकारं कर्तुं चरमाऽवान्तरकिट्टयामेकचयमात्रं दलं प्रक्षिपति, द्विचरमाऽवान्तरकिट्टौ द्वौ चयौ, त्रिचरमाऽवान्तरकिट्टौ त्रींश्चयान् प्रक्षिपति, एवंक्रमेण द्वितीयसमयनिर्वर्त्यमानप्रथमापूर्वाऽवान्तरकिट्टौ पूर्वापूर्वाऽवान्तरकिट्टिराशिप्रमाणांश्चयान् प्रक्षिपति । एकचयमितं दलमुभयचयदलमुच्यते, पूर्वापूर्वोभयास्ववान्तरकिट्टिषु प्रक्षिप्यमाणत्वात् । सर्वाऽवान्तरकिट्टिषु निक्षिप्तानां सर्वचयानां दलं सर्वोभयचयदलं भवति । न चोभयचयः कुतः कल्प्यते ? इति वाच्यम्, यतः सर्वाः पूर्वाऽपूर्वाऽवान्तरकिट्टयः प्रदेशापेक्षया सत्कर्मणि समाना न विद्यन्ते, किन्तु गोपुच्छाकारेण, पूर्वापूर्वाऽवान्तरकिट्टिषु दृश्यमानदलस्य गोपुच्छाकारेण प्रतिपादितत्वात् । किञ्च किट्टिकरणाद्धायाः प्रथमसमयेऽवान्तरकिट्टिषु यश्चय आसीत्, द्वितीयसमये स एव न भवति, किन्त्वसंख्येयगुणो भवति । कथमेतदवसीयते ? इति चेत्, उच्यते-प्रथमसमयकृताऽवान्तरकिट्टिषु यद् दलमासीत्, तत् तथा रचितमासीत् यथाऽवान्तरकिट्टय एकद्विगुणहानिस्थानमात्रा अभविष्यंश्चेत्, प्रथमाऽवान्तरकिट्टित एकद्विगुणहानिस्थानेषु गतेषु दलिकमर्धमभविष्यत् । अत्र च द्वितीयसमये प्रथमसमयकृतसर्वोत्कृष्टप्रदेशकाऽवान्तरकिट्टितोऽसंख्येयगुणं दलमपूर्वाऽवान्तरकिट्टौ ददाति, वक्ष्यमाणैकमध्यमखण्डस्यैकाऽधस्तनाऽवान्तरकिट्टिदलतोऽसंख्येयगुणत्वात् । अभिनवावान्तरकिट्टयस्तु पूर्वसमयतोऽसंख्येयभागमात्रा एव निर्वर्त्यन्ते, तासु च दलिकनिक्षेपं तथा करोति, यथैकद्विगुणहानिस्थानमात्राः किट्टयोऽभविष्यंश्चेत्, द्वितीयसमयनिर्वर्त्यमानप्रथमावान्तरकिट्टित एकद्विगुणहानिस्थानेषु गतेषु दलमर्धमभविष्यत् । एवं प्रथमसमयतो द्वितीयसमयेऽकैकापूर्वावान्तरकिट्टौ निक्षिप्यमाणदलस्याऽसंख्येयगुणत्वाद् द्वितीयसमये चयोऽसंख्येयगुणो भवेत्, अन्यथा प्रथमसमये यावांश्चय आसीत्, तावानेव चयो द्वितीयसमयेऽपि भवेत्, तर्ह्येकद्विगुणहानिस्थानानि पूर्वसमयापेक्षयाऽसंख्येयगुणानि कल्पयितव्यानि । तच्च नेष्टम्, एकद्विगुणहानिस्थानानां नैयत्यात् । एवं प्रथमसमयतो द्वितीयसमये चयस्याऽसंख्येयगुणत्वादुभयचयः कल्प्यते । तत्र क्रोधतृतीयसंग्रहकिट्टिचरमाऽवान्तरकिट्टावेकमुभयचयम्, द्विचरमाऽवान्तरकिट्टौ द्वा उभयचयौ, त्रिचरमाऽवान्तरकिट्टौ त्रीनुभयचयान् प्रक्षिपति, एवमेकोत्तर-

वृद्धया तावत् प्रक्षिपति, यावद् लोभप्रथमसंग्रहकिट्टिप्रथमाऽपूर्वावान्तरकिट्टिः । तेन लोभप्रथमसंग्रहकिट्टिप्रथमाऽपूर्वान्तरकिट्टौ सर्वपूर्वापूर्वाऽवान्तरकिट्टिराशिप्रमाणानुभयचयान् प्रक्षिपति ।

मध्यमखण्डदलम्–द्वितीयसमये किट्टितया परिणमनाय गृहीतदलत उपर्युक्तदलत्रयं विशोध्याऽवशिष्टदले पूर्वापूर्वाऽवान्तरकिट्टिराशिना विभक्ते लब्ध एकभागो मध्यमखण्डमुच्यते । तच्चैकैकस्यां पूर्वावान्तरकिट्टयामपूर्वावान्तरकिट्टौ च दीयते । सर्वासामवान्तरकिट्टीनां मध्यमखण्डदलं सर्वमध्यमखण्डदलमुच्यते । ननूपर्युक्तदलत्रयस्य प्रक्षेपादेव सर्वावान्तरकिट्टिषु दलिकं गोपुच्छाकारेण जातम्, तर्हि मध्यमखण्डं कुतः परिकल्प्यते ? इति चेत्, शृणुत-प्रथमसमयकृताऽवान्तरकिट्टीनामसंख्येयभागमिता एव द्वितीयसमयेऽपूर्वा अवान्तरकिट्टयो निर्वर्त्यन्ते, दलिकं च किट्टितया परिणमनाय प्रथमसमयतोऽसंख्येयगुणं गृह्यते । उपर्युक्तविभागत्रये च यद् दलं दत्तम्, तत् किट्टितया परिणमनाय गृहीतदलिकस्याऽसंख्येयभागकल्पं भवति, अधस्तनाऽवान्तरकिट्टिदलवर्जशेषदलिकस्याऽनन्ततमभागमात्रत्वे सत्यधस्तनाऽवान्तरकिट्टिदलिकस्याऽसंख्येयभागप्रमाणत्वात् । किट्टितया परिणमनाय गृहीतसकलदलत उपर्युक्तदलत्रयं विशोध्य शेषं दलं तथा दातव्यम्, यथा गोपुच्छाकारेण रचितदलं न व्याहन्येत । अतः शेषदलं पूर्वापूर्वाऽवान्तराकिट्टिराशिना खण्डयते, खण्डने च कृते प्राप्यमाणमेकखण्डं मध्यमखण्डमुच्यते । तच्चैकैकावान्तरकिट्टौ दीयते ।

अथोपर्युक्तदलिकचतुष्टयस्याऽल्पबहुत्वमभिधीयते–(१) सर्वाधस्तनशीर्षचयदलं सर्वस्तोकम्, उपरितनपदानां प्रभूतत्वात् । (२) ततोऽसंख्येयगुणं सर्वोभयचयदलम् । कथमेतदवसीयते ? इति चेत्, उच्यते–प्रथमसमयेऽवान्तरकिट्टिषु यावद् दलिकमासीत्, ततोऽसंख्येयगुणं दलिकमवान्तरकिट्टिषु द्वितीयसमये भवति । चयस्य च सत्तागतदलिकानुसारित्वात् प्रदेशापेक्षया पौर्वसमयिकचयत इदानीन्तनचयोऽसंख्येयगुणो जायते । तेन सर्वाधस्तनशीर्षचयदलतः सर्वोभयचयदलमसंख्येयगुणं भवति । (३) ततः सर्वाऽधस्तनावान्तरकिट्टिदलिकमनन्तगुणं भवति । कथम्? इति चेत्, उच्यते–एकस्यामेव प्रथमसमयकृताऽवान्तरकिट्टौ दलं सर्वाऽधस्तनशीर्षचयदलतोऽनन्तगुणं भवति, प्रथमसमयकृतप्रथमावान्तिरकिट्टावेकद्विगुणहानिमात्रचयानां सद्भावात् सर्वाधस्तनशीर्षचयानां चैकद्विगुणहान्यनन्ततमभागप्रमाणत्वात् । तथा सर्वाऽधस्तनशीर्षचयदलतः सर्वोभयचयदलं केवलमसंख्येयगुणं भवति । तेन सर्वोभयचयदलतोऽपि प्रथमसमयकृतैकावान्तरकिट्टिदलमनन्तगुणं भवति । एकाऽधस्तनावान्तरकिट्टिदलं च प्रथमसमयकृतप्रथमावान्तरकिट्टिप्रदेशमात्रं भवति । तेनैकाधस्तनावान्तरकिट्टिदलमपि सर्वोभयचयदलतोऽनन्तगुणं भवति । तथैकाधस्तनावान्तरकिट्टिदलिकस्य सर्वोभयचयदलतो-ऽनन्तगुणत्वात् सर्वाऽधस्तनावान्तरकिट्टिदलिकं सर्वोभयचयदलतोऽनन्तगुणं सुतरां सिध्यति । (४) ततोऽपि सर्वमध्यमखण्डदलमसंख्येयगुणं भवति । कथमेतदवगुम्यते ? इति चेत्, शृणुत–पूर्वोक्तदलिकत्रिके प्रदत्ते सत्यवशिष्यमाणं दलं किट्टितया परिण-

मनाय गृहीतदलस्य बहुसंख्येयभागकल्पं भवति, विभागत्रयेऽसंख्येयभागमात्रस्यैव दलिकस्य प्रक्षिप्तत्वात् । अतः सर्वाऽधस्तनाऽवान्तरकिट्टिदलतोऽसंख्येयगुणं सर्वमध्यमखण्डदलं भवति ।

(१) अधस्तनशीर्षचयदलस्य गणनविधिः प्रथमसमयकृतप्रथमाऽवान्तरकिट्टावधस्तनशीर्षचयदलं न ददाति । प्रथमसमयकृतद्वितीयावान्तरकिट्टयामेकमधस्तनशीर्षचयं प्रक्षिपति । प्रथमसमयकृततृतीयाऽवान्तरकिट्टौ द्वावधस्तनशीर्षचयौ प्रक्षिपति, चतुर्थ्याऽवान्तरकिट्टौ त्रीनधस्तनशीर्षचयान् प्रक्षिपति, एवंक्रमेण प्रथमसमयकृतचरमाऽवान्तरकिट्टावेकोनावान्तरकिट्टिराशिप्रमाणांश्चयान् प्रक्षिपति । अथ प्रक्षिप्यमाणाः सर्वाधस्तनशीर्षचयाः "सैकपदघ्नपदार्धमथैकाद्यङ्कयुतिः किल संकलिताख्या ।" इति श्रीभास्कराचार्योक्तकरणसूत्रेण सङ्कलयितव्याः । पदं चात्रैकोनप्रथमसमयकृतावान्तरकिट्टिराशिर्बोध्यम् । ततः प्रथमसमयकृतावान्तरकिट्टिसत्कैकचयगतदले सर्वाधस्तनशीर्षचयैर्गुणिते सर्वाधस्तनशीर्षचयदलं प्राप्यते ।

न्यासः सर्वाधस्तनशीर्षचयदलम् = सर्वाधस्तनशीर्षचया. × प्रथमसमयकृतकिट्टिसत्कैकचयदलम्

(२) अधस्तनाऽवान्तरकिट्टिदलगणनविधिः—अपूर्वाऽवान्तरकिट्टिराशिना प्रथमसमयकृतप्रथमाऽवान्तरकिट्टिगतदले गुणिते सर्वाऽधस्तनाऽवान्तरकिट्टिदलं प्राप्यते ।

न्यासः—अधस्तनाऽवान्तरकिट्टिदलम्=अपूर्वाऽवान्तरकिट्टिराशि × प्रथमसमयकृतप्रथमाऽवान्तरकिट्टिदलम्

(३) उभयचयदलगणनविधिः—समयद्विकेन किट्टितया परिणमनाय गृहीतदलं पदेन विभज्यते, तदा लब्धिर्मध्यमदलं भवति । मध्यमदलं चार्धीकृतैकोनपदन्यूनाभ्यां द्वाभ्यां द्विगुणहानिभ्यां भज्यते, तदेकोभयचयदलं प्राप्यते । पदं चात्र प्रथमसमय-द्वितीयसमयकृताऽवान्तरकिट्टिराशिर्वक्तव्यम् ।

न्यासः $\text{मध्यमदलम्} = \dfrac{\text{समयद्विकेन किट्टितया परिणमनाय गृहीतदलम्}}{\text{पदम्}}$

$\text{एकोभयचयदलम्} = \dfrac{\text{मध्यमदलम्}}{\text{द्वे द्विगुणहानी} - \dfrac{\text{पदम्}-1}{2}}$

अथ चरमपूर्वाऽवान्तरकिट्टावेक उभयचयो दीयते, द्विचरमपूर्वाऽवान्तरकिट्टौ द्वा उभयचयौ दीयेते, त्रिचरमपूर्वाऽवान्तरकिट्टौ त्रय उभयचया दीयन्ते, एवंक्रमेण द्वितीयसमयनिर्वर्त्यमानप्रथमावान्तरकिट्टौ सर्वपूर्वापूर्वाऽवान्तरकिट्टिराशिप्रमाणा उभयचयाः प्रक्षिप्यन्ते । ते च सर्वे "सैकपदघ्नपदार्धमथैकाद्यङ्कयुतिः किल सङ्कलिताख्या ।" इत्यनेन करणेन सङ्कलयितव्याः । पदं चाऽत्र सर्वपूर्वापूर्वाऽवान्तरकिट्टिराशिर्ज्ञातव्यम् ।

न्यासः $\text{सर्वोभयचया} = (\text{पदम्}+1) \times \dfrac{\text{पदम्}}{2}$

एकोमयचयदलं सर्वोमयचयैर्गुण्यते, तदा सर्वोमयचयदलं प्राप्यते

न्यासः सर्वोमयचयदलम्=(पदम्+१) × $\frac{\text{पदम्}}{२}$ × एकोमयचयदलम्

(४) **अथ मध्यमखण्डदलगणनविधिः** द्वितीयसमये किट्टितया परिणमनाय गृहीतदलतोऽधस्तनशीर्षचयादिदलत्रयं विशोध्य शेषं दलं सर्वमध्यमखण्डदलं भवति । तच्च सर्वपूर्वापूर्वाऽवान्तरकिट्टिराशिना विभज्यते, तदैकमध्यमखण्डं प्राप्यते ।

अपूर्वाऽवान्तरकिट्टिषु दीयमानं दलम् सर्वाऽपूर्वाऽवान्तरकिट्टिष्वेकैकं मध्यमखण्डमेकैकं चाऽधस्तनाऽवान्तरकिट्टिदलं च दीयते । उभयचयास्तु विषमा दीयन्ते । तथाहि–लोभप्रथमाऽपूर्वाऽवान्तरकिट्टौ सर्वपूर्वापूर्वावान्तरकिट्टिराशिप्रमाणा उभयचया दीयन्ते । द्वितीयाऽपूर्वावान्तरकिट्टावेकोनसर्वपूर्वापूर्वाऽवान्तरकिट्टिराशिप्रमाणा उभयचया दीयन्ते । एवं लोभप्रथमसंग्रहकिट्टिप्रथमापूर्वावान्तरकिट्टयपेक्षया विवक्षिताऽपूर्वाऽवान्तरकिट्टिर्यतिसंख्याका किट्टिर्भवति, एकोनतत्संख्यान्यूनसर्वपूर्वापूर्वाऽवान्तरकिट्टिराशिप्रमाणा उभयदलचयास्तस्यामपूर्वाऽवान्तरकिट्टौ दीयन्ते, अधस्तनशीर्षचयदलं त्वपूर्वावान्तरकिट्टौ न दीयते ।

पूर्वावान्तरकिट्टिषु दीयमानं दलम् सर्वपूर्वाऽवान्तरकिट्टिष्वेकैकं मध्यमखण्डं दीयते । तथा लोभप्रथमसंग्रहकिट्टिप्रथमापूर्वावान्तरकिट्टयपेक्षया यतिसंख्याका विवक्षितपूर्वाऽवान्तरकिट्टिर्भवति, एकोनतत्संख्यान्यूनसर्वपूर्वापूर्वाऽवान्तरकिट्टिराशिप्रमाणा उभयचयाः, तथा प्रथमपूर्वावान्तरकिट्टयपेक्षया यतिसंख्याका विवक्षितपूर्वाऽवान्तरकिट्टिर्भवति, एकोनतत्संख्यामिता अधस्तनशीर्षचयास्तस्यां पूर्वाऽवान्तरकिट्टौ दीयन्ते । एवं प्रथमापूर्वाऽवान्तरकिट्टावधस्तनशीर्षचयदलं न ददाति, तथा सर्वासु पूर्वाऽवान्तरकिट्टिष्वधस्तनाऽवान्तरकिट्टिदलं न ददाति ।

दृश्यमानदलम्–अपूर्वाऽवान्तरकिट्टौ यावद्दीयमानं दलं भवति, तावदेव दृश्यमानं भवति, पुरातनदलसत्कर्माभावात् । पूर्वाऽवान्तरकिट्टौ पुनर्दीयमानं दलं पुरातनसत्तागतदलं चेत्येतयोः समुदायो दृश्यमानं दलं भवति ।

अथाधस्तनशीर्षचयदलादीनवलम्ब्य दीयमानं दलं विमृश्यते लोभस्य प्रथमसंग्रहकिट्टिप्रथमाऽपूर्वाऽवान्तरकिट्टावेकमध्यमखण्डमेकाधस्तनाऽवान्तरकिट्टिदलं सर्वपूर्वापूर्वाऽवान्तरकिट्टिराशिप्रमाणाश्चोभयचयाः प्रक्षिप्यन्ते ।

लोभप्रथमसंग्रहकिट्टिद्वितीयाऽपूर्वाऽवान्तरकिट्टौ पुनरेकमध्यमखण्डमेकाऽधस्तनावान्तरकिट्टिदलम्, एकोनसर्वपूर्वापूर्वाऽवान्तरकिट्टिराशिप्रमाणाश्चोभयचया निक्षिप्यन्ते । ततस्तृतीयाऽपूर्वाऽवान्तरकिट्टौ द्व्यूनसर्वपूर्वापूर्वाऽवान्तरकिट्टिराशिप्रमाणा उभयचया एकमध्यमखण्डमेकाधस्तनाऽवान्तरकिट्टिदलं च निक्षिप्यन्ते, एवमनन्तरानन्तरेण लोभप्रथमसंग्रहकिट्टितृतीयाद्यपूर्वाऽवान्तर-

किट्टिष्वेकैकेन न्यूना उभयचयाः प्रक्षिप्यन्ते । एकोभयचयदलस्यैकाऽवान्तरकिट्टिगतदलानन्तभागमात्रत्वाल्लोभप्रथमसंग्रहकिट्टिप्रथमाऽपूर्वाऽवान्तरकिट्टिप्रभृतिचरमाऽपूर्वाऽवान्तरकिट्टिपर्यवसानास्वपूर्वाऽवान्तरकिट्टिषु दीयमानं दलं पूर्वपूर्वतोऽनन्ततमभागेन हीनं भवति ।

ततः परं लोभप्रथमसंग्रहकिट्टिप्रथमपूर्वाऽवान्तरकिट्टावेकमध्यमखण्डं लोभप्रथमसंग्रहकिट्टिसर्वाऽपूर्वाऽवान्तरकिट्टिराशिन्यूनसर्वपूर्वापूर्वाऽवान्तरकिट्टिराशिमिताश्चोभयचया दीयन्ते, अधस्तनाऽवान्तरकिट्टिदलमधस्तनशीर्षचयदलं च तस्यां न दीयते । इत्थं लोभप्रथमसंग्रहकिट्टिचरमाऽपूर्वाऽवान्तरकिट्टितो लोभप्रथमसंग्रहकिट्टिप्रथमपूर्वाऽवान्तरकिट्टौ दीयमानं दलमेकाधस्तनाऽवान्तरकिट्टिदलेनैकेन चोभयचयेन हीनं भवति । तत्रैकाधस्तनाऽवान्तरकिट्टिदलमसंख्येयभागप्रमितं भवति, एकमध्यमखण्डदलस्यैकाधस्तनावान्तरकिट्टिदलतोऽसंख्येयगुणत्वात् । एकोभयचयगतदलं च लोभप्रथमसंग्रहकिट्टिचरमाऽपूर्वावान्तरकिट्टौ दीयमानसकलदलस्याऽनन्ततमभागप्रमाणं भवति । तेन लोभप्रथमसंग्रहकिट्टिचरमाऽपूर्वाऽवान्तरकिट्टौ दत्तदलतोऽसंख्येयभागेनाऽनन्ततमभागेन च हीनं दलं लोभप्रथमसंग्रहकिट्टिप्रथमपूर्वाऽवान्तरकिट्टौ दीयते, अनन्ततमभागस्य चाऽसंख्येयभागेऽन्तर्गतत्वाद् लोभप्रथमसंग्रहकिट्टिचरमाऽपूर्वाऽवान्तरकिट्टितो लोभप्रथमसंग्रहकिट्टिप्रथमपूर्वाऽवान्तरकिट्टावसंख्येयभागेन हीनं दलं दीयते ।

ततः परं लोभप्रथमसंग्रहकिट्टिद्वितीयपूर्वाऽवान्तरकिट्टावेकमध्यमखण्डमेकाधिकलोभप्रथमसंग्रहकिट्टयपूर्वाऽवान्तरकिट्टिराशिन्यून-सर्वपूर्वापूर्वाऽवान्तरकिट्टिराशिप्रमाणा उभयचया एकाधस्तनशीर्षचयदलं च दीयन्ते । अत्र लोभप्रथमसंग्रहकिट्टिप्रथमपूर्वाऽवान्तरकिट्टित एकोभयचयेन हीनमेकाधस्तनशीर्षचयेन चाऽधिकं दीयमानं दलं जातम् । तेन लोभप्रथमसंग्रहकिट्टिप्रथमपूर्वाऽवान्तरकिट्टितो लोभप्रथमसंग्रहकिट्टिद्वितीयपूर्वाऽवान्तरकिट्टावेकाधस्तनशीर्षचयगतदलन्यूनोभयचयेन हीनं दलं दीयते । उभयचयगतदलस्य लोभप्रथमसंग्रहकिट्टिप्रथमाऽपूर्ववान्तरकिट्टौ दत्तदलानन्ततमभागमात्रत्वादेकाधस्तनशीर्षचयन्यूनोभयदलचयगतदलमप्यनन्ततमभागमात्रं भवति । इत्थं लोभप्रथमसंग्रहकिट्टिप्रथमपूर्वाऽवान्तरकिट्टितो लोभप्रथमसंग्रहकिट्टिद्वितीयपूर्वाऽवान्तरकिट्टावनन्तभागेन हीनं दीयमानं दलं भवति । एवमनन्तरानन्तरेण तावद् वक्तव्यम्, यावद् लोभप्रथमसंग्रहकिट्टिचरमपूर्वाऽवान्तरकिट्टिः । तेन लोभप्रथमसंग्रहकिट्टिचरमपूर्वाऽवान्तरकिट्टाविकमध्यमखण्डमेकोनलोभप्रथमसंग्रहकिट्टिपूर्वाऽपूर्वाऽवान्तरकिट्टिराशिन्यूनसर्वपूर्वापूर्वाऽवान्तरकिट्टिराशिप्रमाणा उभयचया एकोनलोभप्रथमसंग्रहकिट्टिपूर्वाऽवान्तरकिट्टिराशिप्रमाणाश्चाऽधस्तनशीर्षचयाः प्रक्षिप्यन्ते ।

इदमत्रावधेयम्-यद्यप्युत्तरोत्तराऽपूर्वावान्तरकिट्टावुत्तरोत्तरपूर्वाऽवान्तरकिट्टौ चाऽनन्ततमभागेन हीनं दलं दीयते, तथाप्यपूर्वाऽवान्तरकिट्टिषु हीयमानोऽनन्ततमभाग उभयचयप्रमाणो भवति, पूर्वाऽवान्तरकिट्टिषु तु हीयमानोऽनन्ततमभाग एकाऽधस्तनशीर्षचयन्यूनोभयचयमात्रो भवति ।

लोभस्य प्रथमसंग्रहकिट्टौ दीयमानदलं विमृश्य लोभद्वितीयसंग्रहकिट्टौ दीयमानं दलं चिन्त्यते लोभद्वितीयसंग्रहकिट्टिप्रथमापूर्वावान्तरकिट्टयामेकमध्यमखण्डमेकाधस्तनावान्तरकिट्टिदलं लोभप्रथमसंग्रहकिट्टिपूर्वापूर्वावान्तरकिट्टिराशिन्यूनसर्वावान्तरकिट्टिराशिप्रमाणाश्चोभयचयाः प्रक्षिप्यन्ते । इत्थं लोभप्रथमसंग्रहकिट्टिचरमपूर्वाऽवान्तरकिट्टितो द्वितीयसंग्रहकिट्टिप्रथमाऽपूर्वाऽवान्तरकिट्टावेकोभयचयेनैकोनलोभप्रथमसंग्रहकिट्टिसर्वपूर्वाऽवान्तरकिट्टिराशिप्रमिताऽधस्तनशीर्षचयैश्च हीनमेकाधस्तनाऽवान्तरकिट्टिदलेन पुनरधिकं दलं दीयते । अत्रोभयचयगतदलं लोभप्रथमसंग्रहकिट्टिचरमपूर्वावान्तरकिट्टौ दत्तदलस्याऽनन्ततमभागमात्रं भवति । तथैव चरमपूर्वावान्तरकिट्टौ दत्ताऽधस्तनशीर्षचयगतदलमप्यनन्ततमभागमात्रं भवति । तयोभयोः कलापोऽप्यनन्ततमभागमात्रमेव भवति । अधस्तनावान्तरकिट्टिदलं त्वसंख्येयभागमात्रं भवति, अधस्तनावान्तरकिट्टिदलतो दीयमानमध्यमखण्डदलस्याऽसंख्येयगुणत्वात् । तेन लोभप्रथमसंग्रहकिट्टिचरमपूर्वाऽवान्तरकिट्टौ दत्तदलतो लोभद्वितीयसंग्रहकिट्टिप्रथमाऽपूर्वाऽवान्तरकिट्टावसंख्येयभागेनाधिकमनन्ततमभागेन च हीनं दलं दीयते, अनन्ततमभागस्य स्वल्पत्वेन तस्मिन् व्यवकलितेऽपि लोभप्रथमसंग्रहकिट्टिचरमपूर्वावान्तरकिट्टितो लोभद्वितीयसंग्रहकिट्टिप्रथमाऽपूर्वाऽवान्तरकिट्टावसंख्येयभागेनाधिकं दलं दीयते ।

लोभद्वितीयसंग्रहकिट्टिद्वितीयापूर्वावान्तरकिट्टावेकमध्यमखण्डमेकाधस्तनावान्तरकिट्टिदलमेकाधिकलोभप्रथमसंग्रहकिट्टिपूर्वापूर्वकिट्टिराशिन्यूनसर्वावान्तरकिट्टिराशिप्रमाणाश्चोभयचयाः प्रक्षिप्यन्ते । तेन लोभद्वितीयसंग्रहकिट्टिप्रथमाऽपूर्वाऽवान्तरकिट्टितो लोभद्वितीयसंग्रहकिट्टिद्वितीयाऽपूर्वाऽवान्तरकिट्टावेकोभयचयेन हीनं दलं दीयते । एकोभयचयदलस्य चाऽनन्तरपूर्ववर्त्यवान्तरकिट्टौ दत्तदलाऽनन्ततमभागमात्रत्वादनन्तरपूर्ववर्त्यवान्तरकिट्टौ दत्तदलतोऽनन्ततमभागेन हीनं दलं दीयते । एवमनन्तरानन्तरेण तावद् वक्तव्यम्, यावद् लोभद्वितीयसंग्रहकिट्टिचरमाऽपूर्वाऽवान्तरकिट्टिः ।

ततः परं लोभद्वितीयसंग्रहकिट्टिचरमापूर्वावान्तरकिट्टितो लोभद्वितीयसंग्रहकिट्टिप्रथमपूर्वावान्तरकिट्टयां लोभप्रथमसंग्रहकिट्टिपूर्वावान्तरकिट्टिराशिप्रमाणाधस्तनशीर्षचयन्यूनैकोभयचयाऽधिकैकाधस्तनावान्तरकिट्टिदलमात्रेणाऽसंख्येयभागेन हीनं दीयते, यतो लोभद्वितीयसंग्रहकिट्टिचरमापूर्वावान्तरकिट्टयामेकमध्यमखण्डमेकोनलोभप्रथमसंग्रहकिट्टिपूर्वापूर्वावान्तरकिट्टिद्वितीयसंग्रहकिट्टयपूर्वावान्तरकिट्टिराशिविरहितसर्वावान्तरकिट्टिराशिप्रमाणानुभयचयांश्च प्रक्षिपति ११, लोभद्वितीयसंग्रहकिट्टिप्रथमपूर्वाऽवान्तरकिट्टयां त्वेकं मध्यमखण्डं लोभप्रथमसंग्रहकिट्टिपूर्वापूर्वाऽवान्तरकिट्टिद्वितीयसंग्रहकिट्टयपूर्वावान्तरकिट्टिराशिन्यूनसर्वावान्तरकिट्टिराशिप्रमाणानुभयचयान् लोभप्रथमसंग्रहकिट्टिपूर्वावान्तरकिट्टिराशिप्रमाणावस्तनशीर्षचयांश्च निक्षिपति ।

ततः परं लोभप्रथमसंग्रहकिट्टिपूर्वावान्तरकिट्टिवदनन्तरानन्तरेणैका-ऽधस्तनशीर्षचयन्यूनैको-

मयचयमात्रेणाऽनन्ततमभागेन हीनं दलं तावद् दीयते, यावद् लोभद्वितीयसंग्रहकिट्टिचरमपूर्वाऽवान्तरकिट्टिः ।

ततः परं लोभतृतीयसंग्रहकिट्टिप्रथमापूर्वावान्तरकिट्ट्यां लोभद्वितीयसंग्रहकिट्टिचरमपूर्वावान्तरकिट्टित एकोनलोभप्रथमसंग्रहकिट्टिद्वितीयसंग्रहकिट्टिपूर्वावान्तरकिट्टिराशिप्रमाणाधस्तनशीर्षचयुक्तैकोभयचयदलन्यूनैकाधस्तनाऽवान्तरकिट्टिदलमात्रेणाऽसंख्येयभागेनाधिकं दलं दीयते । यतो लोभद्वितीयसंग्रहकिट्टिचरमपूर्वावान्तरकिट्ट्यामेकं मध्यमखण्डमेकोनलोभप्रथमसंग्रहकिट्टिद्वितीयसंग्रहकिट्टिपूर्वापूर्वावान्तरकिट्टिन्यूनसर्वावान्तरकिट्टिराशिप्रमाणानुभयचयान् एकन्यूनलोभप्रथमसंग्रहकिट्टिद्वितीयसंग्रहकिट्टिपूर्वावान्तरकिट्टिराशिप्रमाणानधस्तनशीर्षचयांश्च प्रक्षिपति स्म, तृतीयसंग्रहकिट्टिप्रथमापूर्वावान्तरकिट्टौ त्वेकं मध्यमखण्डं लोभप्रथमसंग्रहकिट्टिद्वितीयसंग्रहकिट्टिपूर्वापूर्वावान्तरकिट्टिराशिन्यूनसर्वावान्तरकिट्टिराशिप्रमाणानुभयचयांस्तथैकाधस्तनावान्तरकिट्टिदलं प्रक्षिपति ।

ततः परं लोभप्रथमसंग्रहकिट्ट्यपूर्वावान्तरकिट्टिवदुत्तरोत्तरावान्तरकिट्ट्यामेकोभयचयप्रमाणेनाऽनन्ततमभागेन हीनं प्रदेशाग्रं तावद् दीयते, यावद् लोभतृतीयसंग्रहकिट्टिचरमापूर्वावान्तरकिट्टिः ।

ततः परं लोभतृतीयसंग्रहकिट्टिप्रथमपूर्वावान्तरकिट्ट्यां लोभतृतीयसंग्रहकिट्टिचरमापूर्वावान्तरकिट्टितो लोभप्रथमसंग्रहकिट्टिद्वितीयसंग्रहकिट्टिपूर्वावान्तरकिट्टिराशिप्रमाणाऽधस्तनशीर्षचयन्यूनैकोभयचयाधिकैकाधस्तनावान्तरकिट्टिदलप्रमाणेनाऽसंख्येयभागेन हीनं दलिकं प्रक्षिप्यते, यतो लोभतृतीयसंग्रहकिट्टिचरमापूर्वावान्तरकिट्ट्यामेकं मध्यमखण्डं लोभप्रथमसंग्रहकिट्टिद्वितीयसंग्रहकिट्टिपूर्वापूर्वावान्तरकिट्टिराश्येकोनलोभतृतीयसंग्रहकिट्ट्यपूर्वावान्तरकिट्टिराशिन्यूनसर्वावान्तरकिट्टिराशिप्रमाणानुभयचयानेकाधस्तनावान्तरकिट्टिदलं चादात् , लोभतृतीयसंग्रहकिट्टिप्रथमपूर्वावान्तरकिट्टौ त्वेकं मध्यमखण्डं लोभप्रथमसंग्रहकिट्टिद्वितीयसंग्रहकिट्टिपूर्वापूर्वावान्तरकिट्टिलोभतृतीयसंग्रहकिट्ट्यपूर्वावान्तरकिट्टिराशिन्यूनसर्वावान्तरकिट्टिराशिप्रमाणानुभयचयान् लोभप्रथमसंग्रहकिट्टिद्वितीयसंग्रहकिट्टिपूर्वावान्तरकिट्टिराशिमात्राधस्तनशीर्षचयांश्च प्रक्षिपति ।

ततः परं लोभप्रथमसंग्रहकिट्टिपूर्वावान्तरकिट्टिवदुत्तरोत्तरावान्तरकिट्ट्यामधस्तनशीर्षचयन्यूनोभयचयप्रमाणेना-ऽनन्ततमभागेन हीनं दलिकं तावद् ददाति, यावद् लोभतृतीयसंग्रहकिट्टिचरमपूर्वावान्तरकिट्टिः । अनयैव रीत्या माया-मान-क्रोधानां संग्रहकिट्ट्यवान्तरकिट्टिषु दीयमानदलस्य क्रमो वाच्यः । इदमत्रावधेयम् यथा लोभप्रथमसंग्रहकिट्ट्यामपूर्वावान्तरकिट्ट्याः पूर्वावान्तरकिट्ट्याश्च सन्धौ सति चरमाऽपूर्वावान्तरकिट्टितः प्रथमपूर्वावान्तरकिट्ट्यां दलिकमुभयचयाधिकाधस्तनावान्तरकिट्टिदलप्रमाणेनाऽसंख्येयभागेन हीनं दीयते, न तथा शेषास्वेकादशसंग्रहकिट्टिषु, किन्तु किञ्चि··यूनैकाधस्तनावान्तरकिट्टिदलप्रमाणेना-ऽसंख्येयभागेन हीनं दीयते, तत्र प्रथमपूर्वावान्तरकिट्ट्यामधस्तनशीर्षचयानामपि प्रक्षेपात् । तथा सर्वत्र पूर्वावान्तरकिट्ट्या अपूर्वावान्तरकिट्ट्याश्च सन्धौ सति पूर्ववर्तिसंग्रहकिट्टिचरमपूर्वावान्तरकिट्टित उत्तरवर्तिसंग्रहकिट्टिप्रथमापूर्वावान्तरकिट्ट्यां दलं

किञ्चिन्न्यूनैकावस्तनावान्तरकिट्टिदलप्रमाणेनाऽसंख्येयभागेनाधिकं दीयते। शेषास्वनन्तासु पूर्वावान्तरकिट्टिषु यथोत्तरमेकाधस्तनशीर्षचयन्यूनोभयचयमात्रेणाऽनन्तभागेनाऽपूर्वावान्तरकिट्टिषु च यथोत्तरमुभयचयप्रमाणेनाऽनन्ततमभागेन न्यूनं दलिकं दीयते। तथाऽपूर्वावान्तरकिट्टयाः पूर्वावान्तरकिट्टयाश्च सन्धिस्थानानि द्वादश, पूर्वावान्तरकिट्टयपूर्वावान्तरकिट्टयोश्च सन्धिस्थानान्येकादश भवन्ति। तेन दीयमानदलिकमाश्रित्यासंख्येयभागहानिस्थानानि द्वादश, असंख्येयभागवृद्धिस्थानानि चैकादश भवन्ति। तथा दीयमानदलिकापेक्षयाऽनन्तभागहानिस्थानान्यनन्तानि भवन्ति, पूर्वापूर्वावान्तरकिट्टीनामनन्तत्वात्।

अथाऽधस्तनशीर्षचयादिदलिकमाश्रित्य पूर्वापूर्वावान्तरकिट्टिषु दृश्यमानं दलं दर्श्यते अपूर्वाऽवान्तरकिट्टिषु दृश्यमानं दलं दीयमानदलतो नाऽतिरिणक्ति। तेन दीयमानदलवल्लोभप्रथमसंग्रहकिट्टिप्रथमाऽपूर्वाऽवान्तरकिट्टिप्रभृतिलोभप्रथमसंग्रहकिट्टिचरमाऽपूर्वाऽवान्तरकिट्टिपर्यवसानास्वपूर्वाऽवान्तरकिट्टिष्वनन्तरानन्तरेणाऽनन्तभागेन हीनं दृश्यमानं दलं भवति।

लोभप्रथमसंग्रहकिट्टिचरमाऽपूर्वाऽवान्तरकिट्टितो लोभप्रथमसंग्रहकिट्टिप्रथमपूर्वाऽवान्तरकिट्टावपि दृश्यमानं दलमनन्ततमभागेन हीनं भवति। कथमेतदवसीयते? इति चेत्, शृणुत-लोभप्रथमसंग्रहकिट्टिचरमापूर्वावान्तरकिट्टावेकमध्यमखण्डमेकोनलोभप्रथमसंग्रहकिट्टयपूर्वावान्तरकिट्टिराशिन्यूनसर्वावान्तरकिट्टिराशिप्रमाणा उभयचया एकाधस्तनावान्तरकिट्टिदलं चेत्येतेषां व्रातं दीयमानं दलं भवति, तदेव च दृश्यमानं दलं भवति। लोभप्रथमसंग्रहकिट्टिप्रथमपूर्वाऽवान्तरकिट्टौ त्वेकमध्यमखण्डं लोभप्रथमसंग्रहकिट्टयपूर्वाऽवान्तरकिट्टिराशिन्यूनसर्वाऽवान्तरकिट्टिराशिमात्राश्च उभयचया दीयन्ते, पुरातनसत्तागतं पुनर्दलमेकाऽधस्तनाऽवान्तरकिट्टिदलप्रमाणं विद्यते। तेन दृश्यमानं दलं लोभप्रथमसंग्रहकिट्टिचरमाऽपूर्वाऽवान्तरकिट्टितो लोभप्रथमसंग्रहकिट्टिप्रथमपूर्वाऽवान्तरकिट्टावेकोभयचयेन हीनं भवति, अधस्तनावान्तरकिट्टिदलस्थाने पुरातनसत्तागतदलस्य भावात्। एकोभयचयस्य चाऽनन्ततमभागप्रमाणत्वादनन्ततमभागेन हीनं दृश्यमानं दलं जायते।

लोभप्रथमसंग्रहकिट्टिद्वितीयपूर्वावान्तरकिट्टावेकमध्यमखण्डमेकाधिकलोभप्रथमसंग्रहकिट्टयपूर्वावान्तरकिट्टिराशिन्यूनसर्वावान्तरकिट्टिराशिप्रमाणा उभयचया एकाधस्तनशीर्षचयदलं चेत्येतद् दीयमानदलं भवति। अथ निरुक्तावान्तरकिट्टौ पुरातनसत्तागतदलस्यैकाऽधस्तनशीर्षचयदलन्यूनाऽधस्तनावान्तरकिट्टिदलमात्रत्वात् पुरातनसत्तागतदलं दीयमानदलं चेत्येतयोः समुदायो दृश्यमानदलमेकमध्यमखण्डमेकाधिकलोभप्रथमसंग्रहकिट्टयपूर्वाऽवान्तरकिट्टिराशिन्यूनसर्वावान्तरकिट्टिराशिमात्रा उभयचया एकाधस्तनशीर्षचयदल-पुरातनसत्तागतदलयोः कलापोऽधस्तनावान्तरकिट्टिदलप्रमाणश्चेत्येतेषां समुदायो भवति। तेन लोभप्रथमसंग्रहकिट्टिप्रथमपूर्वाऽवान्तरकिट्टितो लोभप्रथमसंग्रहकिट्टिद्वितीयपूर्वाऽवान्तरकिट्टौ दृश्यमानं दलमेकोभयचयेन हीनं तिष्ठति।

न्यासः

सङ्केतसूचिः

(१) एकमध्यमखण्डम्	=म	(५) लोभप्रथमसंग्रहकिट्टिपूर्वान्तरकिट्टिराशि	=पू
(२) एकावस्तनान्तरकिट्टिदलम्	=अ	(६) उभयचया	=उ
(३) सर्वान्तरकिट्टिराशि	=स	(७) अवस्तनशीर्षचया	=अव
(४) लोभप्रथमसंग्रहकिट्टयपूर्वान्तरकिट्टिराशि	=अपू	(८) पुरातनसत्तागतदलम्	=पु

लोभप्रथमसंग्रहकिट्टिचरमापूर्वान्तरकिट्टौ दृश्यमानं दलम्

= म + {स (अपू 1)} उ + अ

= म + {स अपू + १} उ + अ

लोभप्रथमसंग्रहकिट्टिप्रथमपूर्वान्तरकिट्ट्यां दृश्यमानं दलम्

= म + (स अपू) उ + पु

= म + (स अपू) उ + अ ∵ प्रथमपूर्वान्तरकिट्टिगतपुरातनदलमवस्तनान्तरकिट्टिदलतुल्यम्

∴ लोभप्रथमसंग्रहकिट्टिचरमापूर्वान्तरकिट्टितो लोभप्रथमसंग्रहकिट्टिप्रथमपूर्वाऽवान्तरकिट्टौ दृश्यमानं दलमेकोभयचयेन हीनं तिष्ठति ।

तथा लोभप्रथमसंग्रहकिट्टिद्वितीयपूर्वान्तरकिट्टौ दृश्यमानं दलम्

=म+{स (अपू+१)} उ+१अव+पु

=म+{स अपू १} उ+अ ∵ पुरातनसत्तागतदलमेकावस्तनशीर्षचयेन न्यूनमवस्तनान्तरकिट्टिदलप्रमाणम्

∴ लोभप्रथमसंग्रहकिट्टिप्रथमपूर्वान्तरकिट्टितो लोभप्रथमसंग्रहकिट्टिद्वितीयपूर्वान्तरकिट्ट्यां दृश्यमानं दलमुभयचयेन हीनं भवति

ततः परमुत्तरोत्तरावान्तरकिट्टौ दृश्यमानं दलमेकोभयचयेन हीनं तावद् वक्तव्यम्, यावद् लोभप्रथमसंग्रहकिट्टिचरमपूर्वान्तरकिट्टिः । इह यद्यपि पूर्वपूर्वत उत्तरोत्तरावान्तरकिट्टौ दीयमानदलमेकावस्तनशीर्षचयन्यूनैकोभयचयेन हीनं भवति, तथाप्युत्तरोत्तरावान्तरकिट्ट्यामेकोभयचयेन हीनं दलं दृश्यमानं भवति, पूर्वसमयकृतास्ववान्तरकिट्टिषु यथोत्तरं पुरातनसत्तागतदलस्यैकैकावस्तनशीर्षचयेन हीनत्वात् ।

न्यास सङ्केतसूचि पूर्ववद् बोध्या ।

प्राक्तनपूर्वान्तरकिट्टितो निक्षेपमाश्रित्योत्तरपूर्वान्तरकिट्टौ दीयमानं दलम्	= १उ १अव
,, ,, किट्टित पुरातनसत्तामाश्रित्योत्तरपूर्वान्तरकिट्टौ ,, ,,	= १अव
∴ ,, ,, किट्टित उत्तरोत्तरपूर्वान्तरकिट्टौ हीयमानं दलम्	= १अव+१उ−१अव
∴ ,, ,, ,, ,, ,, ,, ,, ,,	= १उ

अथ लोभप्रथमसंग्रहकिट्टिचरमपूर्वान्तरकिट्टितो लोभद्वितीयसंग्रहकिट्टिप्रथमापूर्वान्तरकिट्ट्यां दृश्यमानं दलमेकोभयचयेन हीनं भवति । कथम् ? इति चेत्, उच्यते लोभप्रथमसंग्रहकिट्टिचरमपूर्वान्तरकिट्ट्यामेकमध्यमखण्डमेकोनलोभप्रथमसंग्रहकिट्टिपूर्वापूर्वान्तरकिट्टिराशिन्यूनसर्वान्तरकिट्टिराशिमात्रा उभयचया एकोनलोभप्रथमसंग्रहकिट्टिपूर्वान्तरकिट्टिराशिमात्राश्चाऽव-

किट्टिकरणाद्धाद्वितीयसमये दीयमानदलप्ररूपणा

१ संग्रह किट्टि	२ संग्रह-किट्टि	३ संग्रह-किट्टि	१ संग्रह-किट्टि	२ संग्रह-किट्टि	३ संग्रह-किट्टि	१ संग्रह-किट्टि	२ संग्रह-किट्टि	३ संग्रह-किट्टि	१ संग्रह-किट्टिः	२ संग्रह-किट्टिः	३ संग्रह-किट्टिः
लो		भः	मा		या	मा		न	क्रो		धः

सङ्केतस्पष्टीकरणम्—

अपू=अपूर्वान्तरकिट्टय, ताश्च तत्तत्संग्रहकिट्टया अधस्तात् निर्वर्त्यन्ते, परमार्थतोऽनन्ताः पूर्वान्तरकिट्टीनाञ्चासंख्येयभागप्रमाणा भवन्ति, इह द्वे एव दर्शिते, प्रभूतावकाशाभावात्।

पू=पूर्वान्तरकिट्टयः, ताश्च किट्टिकरणप्रथमसमये निर्वर्त्यन्ते। परमार्थतोऽनन्ता अपूर्वान्तरकिट्टितश्चाऽसंख्येयगुणा भवन्ति, इहाऽसत्कल्पनयाऽपूर्वान्तरकिट्टिभ्यां तुल्ये द्वे एव दर्शिते, प्रभूतावकाशाभावात्।

०=अनेन चिह्नेन अधस्तनान्तरकिट्टिदलं सूचितम्, तच्च लोभप्रथमसंग्रहकिट्टिप्रथमपूर्वान्तरकिट्टिदलप्रमाणं भवति। अधस्तनान्तरकिट्टिदलमेकैकस्यामपूर्वान्तरकिट्टौ ददाति।

---अनेन चिह्नेन मध्यमखण्डदलं सूचितम्, तच्च सर्वासु पूर्वापूर्वान्तरकिट्टिषु ददाति, परमार्थत एकमध्यमखण्डदलं लोभप्रथमसंग्रहकिट्टिप्रथमपूर्वान्तरकिट्टिदलतोऽसंख्येयगुणं भवति।

खवग सेढो

△ अनेन चिह्नेनोभयचयदलं सूचितम्, लोभप्रथमसंग्रहकिट्टया प्रथमापूर्वावान्तरकिट्टौ पूर्वापूर्वावान्तरकिट्टिराशिप्रमाणान् अनन्तान् असत्कल्पनया अष्टचत्वारिंशद् (४८) उभयचयान् प्रक्षिपति। ततो यथोत्तरमेकैकेन हीनानुभयचयान् प्रक्षिपति। तेषु प्रक्षिप्तेषु सर्वा अवान्तरकिट्टयः प्रदेशापेक्षया गोपुच्छाकारेण संस्थिता भवन्ति।

अनेन चिह्नेन पूर्वावान्तरकिट्टिषु पुरातनसत्तागतदलं सूचितम्, तत्रोत्तरोत्तरपूर्वावान्तरकिट्टौ विशेषहीनक्रमेण भवति।

× अनेन चिह्नेन अधस्तनशीर्षचयदलं सूचितम्, लोभप्रथमसंग्रहकिट्टिद्वितीयपूर्वावान्तरकिट्टयामेकाधस्तनशीर्षचयं प्रक्षिपति, तत एकोत्तरवृद्धयाऽधस्तनशीर्षचयान् पूर्वावान्तरकिट्टिषु तावत् प्रक्षिपति, यावत् क्रोधतृतीयसंग्रहकिट्टिचरमपूर्वावान्तरकिट्टि, तेनाऽसत्कल्पनया क्रोधतृतीयसंग्रहकिट्टिचरमपूर्वावान्तरकिट्टौ त्रयोविंशतिमधस्तनशीर्षचयान् प्रक्षिपति। अधस्तनशीर्षचयदले प्रक्षिप्ते सर्वा पूर्वावान्तरकिट्टयो लोभप्रथमसंग्रहकिट्टिप्रथमपूर्वावान्तरकिट्टिप्रदेशतुल्यप्रदेशका भवन्ति।

दीयमानदलनिरूपणम्—

लोभप्रथमसंग्रहकिट्टिप्रथमापूर्वावान्तरकिट्टौ दीयमानम् ०। △ इत्यनेन सूचितं दलं प्रभूतं भवति। ततो विशेषहीनक्रमेण दीयमानमनन्तास्वपूर्वावान्तरकिट्टिषु भवति, इह द्वे एवाऽपूर्वावान्तरकिट्टौ परिकल्पिते, तेनैकस्यामपूर्वावान्तरकिट्टौ विशेषहीनं दीयमानं ०३ भवति। ततोऽसंख्येयभागहीनम् ×। △ इत्यनेन सूचितं दीयमानं दलं लोभप्रथमसंग्रहकिट्टिप्रथमपूर्वावान्तरकिट्टौ भवति, ततो विशेषहीनम् ×। △ इत्यनेन सूचितं दीयमानं दलं लोभप्रथमसंग्रहकिट्टिद्वितीयपूर्वावान्तरकिट्टौ भवति। एवं क्रमेणाऽग्रेऽपि दलिकनिक्षेपो वक्तव्यः।

दृश्यमानं दलं तूत्तरोत्तरावान्तरकिट्टौ विशेषहीनक्रमेण भवति।



स्तनशीर्षचया इत्येतावन्ति दीयमानदलिकानि तथैकोनलोभप्रथमसंग्रहकिट्टिपूर्वावान्तरकिट्टिराशिप्रमाणाधस्तनशीर्षचयदलन्यूनाऽधस्तनावान्तरकिट्टिदलमात्राणि पुरातनसत्तागतदलानीत्येतेषां समुदायो दृश्यमानं दलं भवति । लोभद्वितीयसंग्रहकिट्टिप्रथमापूर्वावान्तरकिट्टयां त्वेकं मध्यमखण्डमेकाधस्तनावान्तरकिट्टिदलं लोभप्रथमसंग्रहकिट्टिपूर्वापूर्वावान्तरकिट्टिराशिन्यूनसर्वावान्तरकिट्टिराशिप्रमाणाश्चोभयचया इत्येतेषां व्रातो दृश्यमानं दलं भवति । तेन लोभप्रथमसंग्रहकिट्टिचरमपूर्वावान्तरकिट्टितो लोभद्वितीयसंग्रहकिट्टिप्रथमापूर्वावान्तरकिट्टयां दृश्यमानं दलमेकेनोभयचयेन हीनं सम्पद्यते ।

न्यासः सङ्केतसूचि पूर्ववद् बोद्धव्या ।

लोभप्रथमसंग्रहकिट्टिचरमपूर्वावान्तरकिट्टौ दृश्यमानं दलम्

=म+{ स (अपू+पू १) }उ+(पू–१) अध+पु

–ग+{ स (अपू+पू–१) }उ+(पू–१) अध+अ–(पू–१) अध ∵ पु=अ–(पू–१) अध

–ग+{ स (अपू+पू १) }उ+अ

–ग+{ स अपू पू+१ }उ+अ

लोभद्वितीयसंग्रहप्रथमापूर्वावान्तरकिट्टौ तु दृश्यमानं दलम्

–ग+{ स (अपू+पू) }उ+अ

म+{ स अपू–पू) }उ+अ

∴ लोभप्रथमसंग्रहकिट्टिचरमपूर्वावान्तरकिट्टितो लोभद्वितीयसंग्रहकिट्टिप्रथमापूर्वावान्तरकिट्टयामुभयचयेन हीनं दृश्यमानं दलं भवति ।

ततः परं लोभप्रथमसंग्रहकिट्टिवल्लोभद्वितीयसंग्रहकिट्टावप्युत्तरोत्तराऽवान्तरकिट्टावेकैकोभयचयेन न्यूनं न्यूनतरं दलं तावद् दृश्यते, यावल्लोभद्वितीयसंग्रहकिट्टिचरमपूर्वाऽवान्तरकिट्टिः ।

ततो लोभद्वितीयसंग्रहकिट्टिचरमपूर्वाऽवान्तरकिट्टितो लोभतृतीयसंग्रहकिट्टिप्रथमाऽपूर्वाऽवान्तरकिट्टावेकोभयचयेन न्यूनं दृश्यमानं दलं भवति । तच्च पूर्ववद् भावनीयम् ।

ततः परं पूर्ववत् सर्वाऽवान्तरकिट्टिषु यथोत्तरमेकैकोभयचयेन हीनं हीनतरं दृश्यमानं दलं तावद् वक्तव्यम्, यावत् क्रोधतृतीयसंग्रहकिट्टिचरमपूर्वाऽवान्तरकिट्टिः ।

इत्थं द्वादशसंग्रहकिट्टिसर्वाऽवान्तरकिट्टयः प्रदेशाग्रमाश्रित्य पूर्वपूर्वतोऽनन्ततमभागेन न्यूना न्यूनतरास्तिष्ठन्ति, गोपुच्छाकारेण विद्यन्त इत्यर्थः । पश्यन्तु पाठका यन्त्रकम्–१७॥ इति ॥१०४॥

किट्टिषु दीयमानं दृश्यमानं च दलं निरूप्य सम्प्रति नरकगत्यादिमध्यात् कतिषु मार्गणासु बद्धप्रदेशाग्रं किट्टिकारकाणां किट्टिवेदकानां च किट्टिषु नियमतो वा भजनया वा विद्यते ? इति परप्रश्नं समाधातुकाम आदौ यासु मार्गणासु बद्धकर्मदलं नियमतः सत्तायां विद्यते, ताः संगृह्य प्राह–

नरतिरियइगपणिंदितसदुओरालियसरीरजोगेसु ।
मणवयजोगचउक्के नपुंचउकसायमग्गणासुं य ॥१०५॥ (गीतिः)

णाणाणाणदुगाविरइसामइअचक्खुदुगछलेसासु ।
भवमिच्छुवसमवेयगखाइअसम्मेसु सण्णिइयरासु ॥१०६॥ (गीतिः)
आहारम्मि य बद्धपएसा होअन्ति णियमत्तो ।
किट्टीकाराणं किट्टिवेअगाणं य संतम्मि ॥१०७॥ (उपगीतिः)

नरतिर्यगेकेन्द्रियपञ्चेन्द्रियत्रसद्वयौदारिकशरीरयोगेषु ।
मनोवचोयोगचतुष्के नपु चतुष्कपायमार्गणासु च ॥१०५॥
ज्ञानाऽज्ञानद्विकाऽविरतिसामायिकचक्षुर्द्विकषट्लेश्यासु ।
भव्यमिथ्यात्वोपशमवेदकक्षायिकसम्यक्त्वेषु संज्ञीतरयो ॥१०६॥
आहारे च बद्धप्रदेशा भवन्ति नियमत ।
किट्टिकाराणां किट्टिवेदकानां च सत्तायाम् ॥१०७॥ इति पदसंस्कारः ।

'नर०' इत्यादिना नरप्रभृतिमार्गणास्थानेषु बद्धकर्मप्रदेशाः किट्टिकाराणां किट्टिवेदकानां च सत्तायां नियमतो वर्तन्त इति सूचितम् । इह विशेषनिर्देशाभावेऽपि मनुष्यादिमार्गणासु बद्धमोहनीयदलस्यैव प्ररूपणाऽवसेया, किट्टिप्ररूपणायाः प्रस्तुतत्वात् किट्टिषु च मोहनीयप्रदेशाग्रस्यैव भावात् । अत्र चेयं मार्गणास्थानप्रतिपादिका गाथा

"गइइंदिए य काए जोए वेए कसायनाणे य ।
संजमदंसणलेसा भवसम्मे सन्निआहारे । ॥१॥"

तत्र गतिश्चतुर्धा, नरक-तिर्यग्-नर-देवगतिभेदात् । इन्द्रियं पञ्चधा, स्पर्शन-रसन-घ्राण-चक्षुः-श्रोत्रभेदात् । इन्द्रियग्रहणेन च तदुपलक्षिता एकेन्द्रिय-द्वीन्द्रिय-त्रीन्द्रिय-चतुरिन्द्रिय-पञ्चेन्द्रिया ग्राह्याः । कायः षोढा, पृथिव्यप्तेजोवायुवनस्पतित्रसकायभेदात् । योगः पञ्चदशविधः, सत्यमनोयोगोऽसत्यमनोयोगः सत्यासत्यमनोयोगोऽसत्यामृषमनोयोगः सत्यवाग्योगोऽसत्यवाग्योगः सत्यासत्यवाग्योगोऽसत्यामृषवाग्योगो वैक्रियकाययोगो वैक्रियमिश्रकाययोग आहारककाययोग आहारकमिश्रकाययोग औदारिककाययोग औदारिकमिश्रकाययोगः कार्मणकाययोगश्चेति । वेदस्त्रिविधः, स्त्रीपुरुषनपुंसकवेदभेदात् । कषायश्चतुर्धा, क्रोध-मान-माया-लोभभेदात् । ज्ञानं पञ्चधा, मतिज्ञान-श्रुतज्ञाना-ऽवधिज्ञान-मनःपर्यायज्ञान-केवलज्ञानभेदात् । ज्ञानग्रहणेन चाज्ञानमपि तत्प्रतिपक्षभूतमुपलक्ष्यते । तच्च त्रिविधम्, मत्यज्ञानश्रुताज्ञानविभङ्गज्ञानभेदात् । इत्थं ज्ञानमार्गणास्थानमष्टधा । संयमः=चारित्रम्, स च पञ्चधा, सामायिकसंयमः छेदोपस्थापनसंयमः परिहारविशुद्धिकसंयमः सूक्ष्मसम्परायसंयमो यथाख्यातसंयमश्चेति, संयमग्रहणेन तद्देशभूतस्तत्प्रतिपक्षभूतश्च यथाक्रमं देशसंयमोऽसंयमश्चोपलक्ष्यत इति संयममार्गणास्थानं सप्तधा । दर्शनं चतुर्विधम्, चक्षुरचक्षुरवधिकेवलदर्शनभेदात् । लेश्या षड्विधा, कृष्ण-नील-कापोत-तेजः-पद्म-शुक्ललेश्याभेदात् ।

भव्यः=सिद्धिगमनयोग्यः, भव्यग्रहणेन तत्प्रतिपक्षभूतोऽभव्योऽपि ग्राह्यः । तेन भव्यमार्गणास्थानं द्विविधं बोद्धव्यम् । सम्यक्त्वं त्रिविधम् , क्षायिकौपशमिकक्षायोपशमिकभेदात् । सम्यक्त्वग्रहणेन तत्प्रतिपक्षभूतं मिश्रं सास्वादनं मिथ्यात्वं च गृह्यते । इत्थं सम्यक्त्वमार्गणास्थानं षोढा । संज्ञी विशिष्टस्मरणादिरूपमनोविज्ञानसहितेन्द्रियपञ्चकसमन्वितः, तत्प्रतिपक्षभूत एकेन्द्रियादि-रूपोऽसंज्ञी । सोऽपि संज्ञिग्रहणेन सूचितः । इत्थं संज्ञिमार्गणास्थानं द्विविधम् । आहारयति=गृह्णात्योजआहार-लोमाहार-कवलाहाराणामन्यतममित्याहारः, आहारक इत्यर्थः, आहारकग्रहणेन तत्प्रति-पक्षभूतमनाहारकमार्गणास्थानमपि ग्राह्यम् । तेनाऽऽहारकमार्गणास्थानं द्विविधम् ।

इत्थं चतुर्दशमूलमार्गणास्थानानामेतान्युत्तरमार्गणास्थानानि चतुःसप्ततिर्भवन्ति । ग्रन्थान्तरे तानि द्वाषष्टिरुक्तानि, अत्र तु योगमार्गणाया उत्तरमार्गणास्थानानां पञ्चदशानां भावितत्वाद् द्वादश-भिरधिकान्यभिहितानि । मार्गणानां विशेषप्रतिपत्तये त्वस्मद्गुरुचरणकृत-मार्गणाद्वारविवरणा-ख्यग्रन्थोऽवलोकनीयः, तत्र विस्तरेण मार्गणानां व्याख्यातत्वात् ।

अथ प्रकृतमनुसरामः नरादयः कृतद्वन्द्वाः सप्तम्या निर्दिष्टाः । नरः=मनुष्यगतिः, तिर्यग्=तिर्यग्गतिः, इन्द्रियशब्दः प्रत्येकं सम्बध्यते, "द्वन्द्वान्ते श्रूयमाणं पदं प्रत्येकमभिसम्बध्यते ।" इति न्यायात् । ततश्चायमर्थः—एकेन्द्रियः, पञ्चेन्द्रियः, त्रसः=त्रसकायः, द्व्यौदारिकशरीरयोगौ=औदारिककाययोगौदारिकमिश्रकाययोगलक्षणौ च, तत इतरेतरद्वन्द्वसमासः, तेषु, 'मणवयजोगचउक्के' त्ति चतुष्कपदं प्रत्येकं सम्बध्यते, मनोयोगचतुष्के=सत्या-ऽसत्यसत्यासत्याऽसत्यामृषलक्षणे, वचोयोग-चतुष्के=सत्याऽसत्यसत्यासत्याऽसत्यामृषलक्षणे च 'नपुंचउकसायमग्गणासुं य' त्ति 'नपुं-चतुष्कषायमार्गणासु च' नपुंसकवेदमार्गणायां क्रोध-मान-माया-लोभलक्षणचतुष्कषायमार्गणासु, चकारः समुच्चयार्थः, 'णाणा०' इत्यादि, द्विकशब्दः प्रत्येकं सम्बध्यते । ततश्चायमर्थः—ज्ञानद्विकं= मतिज्ञानश्रुतज्ञानलक्षणम्, अज्ञानद्विकं मत्यज्ञान-श्रुताज्ञानलक्षणम् , अविरतिः, सामायिकः, चक्षुर्द्विकं=चक्षुर्दर्शनाऽचक्षुर्दर्शनलक्षणम्, षड्लेश्याः कृष्णनीलकापोततेजःपद्मशुक्ललेश्यारूपाः, तत इतरेतरद्वन्द्वसमासः, तासु, 'भव०' इत्यादि, भव्यो=भव्यमार्गणास्थानम् , मिथ्यात्वं=मिथ्यात्वमा-र्गणास्थानम् , अतः परं सम्यक्त्वपदं प्रत्येकं योज्यम् , उपशमसम्यक्त्वम्=औपशमिकसम्यक्त्वम्, वेदकसम्यक्त्वं=क्षायोपशमिकसम्यक्त्वापरपर्यायम् , क्षायिकसम्यक्त्वम् , तत इतरेतरद्वन्द्वसमासः, तेषु, 'सण्णिइयरासु' त्ति 'संज्ञीतरयोः' संज्ञ्यसंज्ञिनोः 'आहारे' आहारकमार्गणास्थान इत्यर्थः, चकारः समुच्चयार्थः, सर्वसंख्यया द्वाचत्वारिंशन्मार्गणास्थानेषु (४२) 'बद्धपएसा' इत्यादि, 'बद्धप्रदेशाः' बद्धमोहनीयकर्मप्रदेशाः, 'किट्टिकाराणां' किट्टीः कुर्वते-निर्वर्तयन्त इति किट्टिकाराः "कर्मणोऽण्" (सिद्धहेम० ५-१-७२) इति सूत्रेण कर्तरि अण्प्रत्ययः, तेषाम्, 'किट्टिवेयगाणं' त्ति, वेदयन्ति-अनुभवन्तीति वेदकाः, "णकतृचौ" (सिद्धहेम० ५-१-४८) इति सूत्रेण कर्तरि

णकप्रत्ययः, किट्टीनां वेदकाः=किट्टिवेदकाः, अत्र "कर्मजा तृचा च" (सिद्धहेम०-३-१-८३) इति सूत्रेण षष्ठीसमासे प्रतिषिद्धेऽपि याजकादेराकृतिगणत्वात् "याजकादिभिः" (सिद्धहेम०३-१-७८) इत्यनेन षष्ठीसमासः । यद्वा कर्मणोऽविवक्षायां वेद्यवेदकभावलक्षणसम्बन्धमात्रे किट्टिशब्दात् "शेषे" (सिद्धहेम० २-२-८१) इत्यनेन षष्ठी विभक्तिः । ततः सम्बन्धषष्ठ्याः "षष्ठ्ययत्नाच्छेषे" (सिद्धहेम० ३-१-७६) इत्यनेन सूत्रेण समासः, तेषाम्, चकारः समुच्चयार्थः, 'संतम्मि' त्ति गाथायां निर्देशो भावप्रधानः, तस्मात् 'संतम्मि' इत्यनेन सत्ता व्याख्येया, सत्तायां भवन्ति ।

भावार्थः पुनरयम्—विवक्षितकाले बद्धकर्मदलिकमुद्वर्तनाकरणेनोपर्युपरि गत्वोत्कृष्टतः कर्माऽवस्थानकालं यावत् सत्तायां विद्यते । ततः परमवश्यमेव निर्जीर्णं भवति, तथा विवक्षितकाले बद्धकर्मदलिकमुद्वर्तनाकरणेनोपर्युपरि गत्वा जघन्यतोऽपि पल्योपमाऽसंख्येयभागोनकर्माऽवस्थानकालं यावद् नियमतः सत्कर्मणि तिष्ठति, वक्ष्यमाणनिर्लेपनस्थानानां केवलं पल्योपमाऽसंख्येयभागमात्रत्वात् । अयं नियमो-ऽश्रेण्यपेक्षया द्रष्टव्यः, क्षपकश्रेणौ बद्धकर्मप्रदेशाग्रस्याऽन्तर्मुहूर्तकालेनाऽपि निर्जरणात्, उपशान्तमोहादिभिश्च बद्धकर्मणः समयमात्रेण निर्जरणात् ।

नन्वन्तःकोटिकोटिसागरोपमाद्यल्पस्थितिकं बद्धकर्मदलिकं जघन्यतोऽपि यावत् पल्योपमाऽसंख्येयभागोनकर्मावस्थानकालं कथं तिष्ठेत् ? इति चेत्, उच्यते-बन्धकालेऽल्पस्थितिकं यत् कर्म बद्धम्, तस्य बन्धावलिकायां व्यतिक्रान्तायामुद्वर्तनाकरणेन कतिपयानि दलिकानि यथासम्भवमुपरितनस्थितिषूद्वर्तयति जीवः । उद्वर्तितदलिकेषूदयावलिकयाऽप्राप्तेषु पुनः कतिपयानि दलिकान्युपरितनासु स्थितिषूद्वर्तयति । एवंविधया पुनः पुनरुद्वर्तितानि दलिकानि पल्योपमाऽसंख्येयभागोनकर्माऽवस्थानकालमवश्यमेव सत्तायां विद्यन्ते । यद्यपि कर्मावस्थानकालेऽपवर्तनासंक्रमादीन्यपि भवन्ति, तथापि विवक्षितसमये बद्धदलिकमुद्वर्तनाकरणमाहात्म्यात् पल्योपमाऽसंख्येयभागन्यूनकर्मावस्थानकालमवश्यं तिष्ठति । ततः परं सर्वात्मना निर्जरितुमर्हति ।

अथ मनुष्यगतौ बद्धमोहनीयदलं क्षपकस्य सत्तायां नियमतोऽवतिष्ठते । कथमेतदवसेयम् ? इति चेत्, उच्यते-मनुष्यगतावेव क्षपकश्रेणेः संभवात् तद्भवे च बद्धकर्मदलस्य कर्माऽवस्थानकालस्याऽनतिक्रान्तत्वात् सर्वेषां क्षपकाणां सत्कर्मणि मनुष्यगतौ बद्धदलं नियमतो विद्यते ।

इदमत्राऽवधेयम्—मनुष्यगतौ बद्धमोहनीयदलं सत्तायां जघन्यतोऽनन्तस्कन्धमात्रं भवति । तच्च स्तोकम् । ततोऽसंख्येयगुणं मनुष्यगतौ बद्धमोहनीयदलमुत्कृष्टतो विद्यते । तत्र पूर्वं कर्मावस्थानकाले मनुष्यत्वेनाऽपरिणम्य गत्यन्तरत आगतस्याऽथवा सकृन्मनुष्यत्वेनोत्पद्य क्रमेण कालं कृत्वा गत्यन्तरे कर्माऽवस्थानकालं ततोऽपि वाऽधिकं कालं व्यतिक्रम्य तत आगतस्य यथासंभवं क्षपितकर्मांशलक्षणयुक्तस्य शीघ्रं क्षपणोद्यतस्य सत्कर्मणि मनुष्यगतौ बद्धकर्मदलं जघन्यं संभवति । तथा कर्मावस्थानकाले गुणितकर्मांशविधिना यथासंभवमनेकवारं मनुष्यत्वेनोत्पद्य चिरेण क्षपकश्रेणिमारोहतो जीवस्य सत्तायां मनुष्यगतौ बद्धकर्मण उत्कृष्टप्रदेशाग्रं विद्यते ।

तथा तिर्यग्गतौ बद्धमोहनीयदलं क्षपकाणां सत्कर्मणि नियमतो वर्तते, तिर्यग्गतौ मोहनीयं बद्ध्वा ततो निर्गत्य शेषगतित्रये कर्माऽवस्थानकालस्याऽनतिक्रान्तत्वेन सर्वथा तस्य विनाशाऽदर्शनात् । तथाहि–तिर्यग्गतौ कर्मदलं बद्ध्वा ततो निर्गत्य शेषगतित्रय उत्कृष्टतः सागरोपमशतपृथक्त्वकालं भ्राम्यति । ततः परं क्षपकश्रेणिमप्राप्तो जन्तुरवश्यमेव तिर्यग्गत्यामुत्पद्यते, यतस्तिर्यग्गतेरुत्कृष्टतोऽप्यन्तरं साधिकसागरोपमशतपृथक्त्वमस्ति। तथा चोक्तं जीवसमासवृत्तावन्तरद्वारे श्रीमन्मलधारगच्छीयहेमचन्द्रपादैः–"**तावत्तिर्यग्गतेर्निर्गत्य शेषगतित्रये पर्यटतां पुनरपि तिर्यक्त्वप्राप्तौ जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्तमुत्कृष्टतस्तु सातिरेकसागरोपमशतपृथक्त्वमन्तरं भवति, सातिरेकत्वं चाल्पत्वेनेहानुक्तमपि स्वयमेव द्रष्टव्यम् ।**" इति। इत्थं क्षपकश्रेणौ वर्तमानो जन्तुः सागरोपमशतपृथक्त्वतः प्राक् तिर्यग्गतावश्यमेवाऽऽसीत् । तेन तिर्यग्गतौ बद्धदलमिदानीं तस्य जन्तोः सत्कर्मणि विद्यत एव, तत्र बद्धकर्मणः कर्माऽवस्थानकालस्य व्यतिक्रान्ताभावात् । उक्तं च कषायप्राभृतचूर्णौ "**एदस्स खवगस्स दुगदिसमज्जिदं कम्मं णियमा अत्थि । तं जहा-तिरिक्खगदिसमज्जिदं च मणुसगदिसमज्जिदं च ।**"इति।

इदमत्रावसेयम्–तिर्यग्गतौ बद्धदलं सत्कर्मणि जघन्यतोऽनन्तस्कन्धमात्रं भवति। तच्च स्तोकम् । ततस्तिर्यग्गतौ बद्धदलं सत्कर्मण्युत्कृष्टतोऽसंख्येयगुणं विद्यते । तत्रैकेन्द्रियभवे क्षपितकर्मांशलक्षणेन कर्माऽवस्थानकालं परिपाल्य ततो निर्गत्य शेषगतिषु साधिकसागरोपमशतपृथक्त्वकालं परिभ्रम्य क्षपकश्रेणिं प्रतिपद्यमानस्य जन्तोः सत्तायां तिर्यग्गतौ बद्धकर्मदलं जघन्यतो विद्यते । तथा तिर्यग्गतावेव गुणितकर्मांशलक्षणयुक्तो यः कर्माऽवस्थानकालं व्यतिक्रमयन् प्रभूतं कर्मदलिकमुपचिनोति। स तिर्यग्गतितो निर्गत्य मनुष्यगतौ यदि शीघ्रं क्षपकश्रेणिमारभते, तर्हि तस्य जीवस्य सत्तायां तिर्यग्गतौ बद्धकर्मदलिकमुत्कृष्टं तिष्ठति । एवमग्रेऽपि यथासंभवं वक्तव्यम् ।

एकेन्द्रियमार्गणायां बद्धदलं क्षपकस्य सत्कर्मणि नियमतो विद्यते, यत एकेन्द्रियस्योत्कृष्टमप्यन्तरं सातिरेकसागरोपमसहस्रद्वयप्रमाणं समस्ति । उक्तं च जीवसमासेऽन्तरद्वारे "**एगिंदियाण तसकालो ।**" इति । तथैव तट्टीकायामपि–"**पृथिव्याद्येकेन्द्रियाणां जीवानां तद्भावं परिहृत्याऽन्यत्रोत्पन्नानां पुनरप्येकेन्द्रियत्वप्राप्तौ जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्तमुत्कृष्टतस्तु त्रसकालोऽन्तरं भवति । स चेहैव ग्रन्थे पूर्वं कालद्वारे त्रसजीवकालाभिधानप्रक्रमे निर्दिष्टः सातिरेकसागरोपमसहस्रद्वयलक्षणोऽवगन्तव्यः ।**" इति । एतेन क्षपक उत्कृष्टतः सातिरेकसागरोपमसहस्रद्वयात् पूर्वमवश्यमेवैकेन्द्रियत्वेनासीत् । अतस्तत्र बद्धकर्मदलस्य कर्मावस्थानकालो नाऽतिक्रान्तः । तेन क्षपकस्यैकेन्द्रियभवे बद्धदलं सत्कर्मणि नियमतो विद्यते ।

अथ पञ्चेन्द्रियमार्गणास्थाने बद्धदलं क्षपकस्य सत्कर्मणि विद्यते, क्षपकश्रेणेः पञ्चेन्द्रियत्वाऽविनाभावित्वात् ।

एवं त्रसकाये बद्धकर्मदलं क्षपकस्य सत्कर्मणि नियमतो विद्यते, क्षपकश्रेणेस्त्रसत्वाऽविनाभावित्वात् । उक्तं च कषायप्राभृतचूर्णौ–"तसकाइयं समज्जिदं णियमा अत्थि ।" इति ।

औदारिककाययोगमार्गणायामौदारिकमिश्रकाययोगमार्गणायां चतसृषु मनोयोगमार्गणासु चतसृषु च वचनयोगमार्गणासु बद्धदलं क्षपकस्य सत्कर्मणि नियमेन विद्यते, चरमभवेऽपि निरुक्तदशयोगानां दर्शनात् । उक्तं च कषायप्राभृते

"ओरालिए सरीरे ओरालियमिस्सए च जोगे दु ।
चदुविधमणवचिजोगे च अभज्जाXXXXX॥१॥" इति ।

तथैव तच्चूर्णावपि–"ओरालियेण ओरालियमिस्सयेण चउव्विहेण मणजोगेण चउव्विहेण वचिजोगेण बद्धाणि अभज्जाणि ।" इति ।

तथा नपुंसकवेदमार्गणायां बद्धदलं किट्टिकाराणां किट्टिवेदकानां च सत्कर्मणि नियमतो विद्यते, उत्कृष्टतोऽपि नपुंसकवेदाऽन्तरस्य साधिकसागरोपमशतपृथक्त्वमात्रत्वात् । उक्तं च कषायप्राभृते "XXXणवुंसयए समासे । कम्माणि अभज्जाणिXX।" इति । तथैव तच्चूर्णावपि–"XXXणवुंसयवेदेण च एवं भावभूदेण बद्धाणि णियमा अत्थि ।" इति ।

क्रोध-मान-माया-लोभरूपचतुष्कषायमार्गणासु बद्धप्रदेशाग्रं किट्टिकाराणां किट्टिवेदकानां च सत्कर्मणि नियमतो वर्तते, मनुष्यभवेऽप्यन्तर्मुहूर्ततः परं कषायोदयपरावृत्तिदर्शनात् । उक्तं च कषायप्राभृतचूर्णौ कोहमाणमायालोभोवजुत्तेहिं बद्धाणि अभजियव्वाणि ।" इति ।

मतिज्ञानमार्गणायां श्रुतज्ञानमार्गणायां च बद्धदलं नियमतो विद्यते, चरमभवेऽपि मतिज्ञानश्रुतज्ञानयोर्दर्शनात् । तथा मत्यज्ञानमार्गणायां श्रुताज्ञानमार्गणायां च बद्धदलं किट्टिकाराणां किट्टिवेदकानां च सत्कर्मणि नियमतो वर्तते, मिथ्यात्वसहचरितत्वात् । उक्तं च कषायप्राभृतचूर्णौ "सुदणाणे अण्णाणे, मदिणाणे अण्णाणे, एदेसु उवजोगेसु पुव्वबद्धाणि णियमा अत्थि ।" इति । अत्र मत्यज्ञानश्रुताज्ञानयोर्हेतुभावना तु तयोर्मिथ्यात्वसहचरितत्वाद् वक्ष्यमाणमिथ्यात्ववत् कार्या ।

अविरतिमार्गणायां बद्धदलं किट्टिकाराणां किट्टिवेदकानां च सत्कर्मणि नियमतो विद्यते, वर्तमानभवेऽपि जघन्यतः साधिकवर्षाष्टकं यावदविरतिमार्गणायाः प्रवृत्तत्वात् ।

सामायिकसंयममार्गणायां बद्धदलं किट्टिकाराणां किट्टिवेदकानां च सत्कर्मणि नियमेन वर्त्तते, संयमभूते क्षपकश्रेणेरसंभवात् शेषसंयमानामपि सामायिकसंयमपूर्वकत्वात् ।

चक्षुर्दर्शनमार्गणायामचक्षुर्दर्शनमार्गणायां च बद्धदलं किट्टिकाराणां किट्टिवेदकानां च सत्कर्मणि नियमतो भवति, वर्तमानभवेऽप्यनयोर्मार्गणयोः क्षपकस्य नियमतो दर्शनात् । न्यगादि च कषायप्राभृते-"कम्माणि अभज्जाणि दु अणागारअचक्खुदंसणुवजोगे ।" इति ।

कृष्णादिषट्लेश्यामार्गणासु बद्धप्रदेशाग्रं किट्टिकाराणां किट्टिवेदकानां च सत्कर्मणि नियमतो विद्यते, वर्तमानमनुष्यभवेऽपि लेश्याया अन्तर्मुहूर्तकालेन परावृत्तेः । उक्तं च कषायप्राभृतचूर्णौ "छसु लेसासु सादेण असादेण च बद्धाणि अभज्जाणि ।" इति ।

भव्यमार्गणायां बद्धदलं किट्टिकाराणां किट्टिवेदकानां च सत्कर्मणि नियमतो वर्तते, भव्यस्यैव क्षपकश्रेण्यारोहणात् ।

मिथ्यात्वमार्गणायां बद्धदलं नियमेन किट्टिकाराणां किट्टिवेदकानां च सत्कर्मणि विद्यते । कथमेतदवसीयते, ? इति चेत्, उच्यते-संसारस्थो जन्तुर्मिथ्यात्वरहितदशायामुत्कृष्टतः साधिके द्वे षट्षष्टी सागरोपमाणां स्थातुमर्हति, यतो मिथ्यात्वोत्कृष्टान्तरं तावन्मात्रम् । उक्तं च पञ्चसंग्रहाऽन्तरद्वारे श्रीमन्मलयगिरिसूरिपादैः-"मिथ्यादृष्टेः परित्यक्तमिथ्यात्वस्य भूयस्तद्भावप्रतिपत्तावुत्कृष्टमन्तरं द्वे षट्षष्टी अतराणां-सागरोपमाणाम् । कथं द्वे षट्षष्टी सागरोपमाणाम् ? इति चेत्, उच्यते-कश्चिन्मिथ्यादृष्टिः सम्यक्त्वमासाद्य षट्षष्टिसागरोपमाणि यावत् सम्यक्त्ववानवतिष्ठते, ततस्तदनन्तरमन्तरालेऽन्तर्मुहूर्तकालं सम्यङ्मिथ्यात्वमनुभूय भूयोऽपि षट्षष्टिसागरोपमाणि यावत् सम्यक्त्वमनुभवति । तत एतदनन्तरं कोऽपि महात्मा मुक्तिपदवीमासादयति, कोऽपि पुनरधन्यो मिथ्यात्वं प्रतिपद्यते, तत्र यो मिथ्यात्वं प्रतिपद्यते, तस्य मिथ्यात्वपरिभ्रंशकालादारभ्य भूयो मिथ्यात्वं प्रतिपद्यमानस्याऽन्तरं द्वे षट्षष्टी सागरोपमाणां भवतः । नन्वेवं सम्यङ्मिथ्यात्वसम्बन्धिनाऽन्तर्मुहूर्तेनाधिके द्वे षट्षष्टी सागरोपमाणां प्राप्येते, तत्कथमधिकृतसूत्रे ते परिपूर्णे उक्ते ? उच्यते, स्तोकत्वात्तदन्तर्मुहूर्तं न विवक्षितमित्यदोषः ।"इति । इत्थं मिथ्यात्वोत्कृष्टाऽन्तरस्य कर्माऽवस्थानकालतो न्यूनत्वाद् मिथ्यात्वमार्गणायां बद्धदलं किट्टिकाराणां किट्टिवेदकानां च सत्कर्मणि नियमेन वर्तते । उक्तं च कषायप्राभृते-"××मिच्छत्तणवुंसए च सम्मते, कम्माणि अभज्जाणि×××।" इति ।

औपशमिकसम्यक्त्वमार्गणायां बद्धदलं क्षपकस्य सत्कर्मणि नियमेन विद्यते । कथमेतदवसीयते ? इति चेत्, उच्यते कार्मग्रन्थिकाऽभिप्रायेण षड्विंशतिसत्कर्मा जीव औपशमिकसम्यक्त्वं लब्ध्वैव यथाक्रमं क्षायोपशमिकसम्यक्त्व-क्षायिकसम्यक्त्वेऽश्नुते । तथोत्कृष्टतो मोहनीयस्य षड्विंशतिप्रकृतिस्थानस्याऽन्तरं साधिके सागरोपमाणां द्वे षट्षष्टी प्रोक्तम् । तथा चात्र

कषायप्राभृतचूर्णिः "छव्वीसविहत्तीए केवडीयमंतरं ? जहण्णेणं पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो । उक्कस्सेण बे छावट्ठिसागरोवमाणि सादिरेयाणि ।" इति । तदेवं षड्विंशतिप्रकृतिस्थानविरहस्य सागरोपमसातिरेकषट्षष्टिद्वयप्रमाणत्वात् षड्विंशतिसत्ताकस्य च जीवस्यौपशमिकसम्यक्त्वेन विना क्षायोपशमिकसम्यक्त्व-क्षायिकसम्यक्त्वयोरलाभात् क्षपकश्रेणिमारूढेन जीवेन सागरोपमसातिरेकषट्षष्टिद्वयकालाभ्यन्तरयौपशमिकसम्यक्त्वमवश्यमेव लब्धम् । सातिरेकयोश्च द्वयोः षट्षष्ट्योः सागरोपमाणां कर्मावस्थानकालतो न्यूनत्वादौपशमिकसम्यक्त्वमार्गणायां बद्धप्रदेशाः क्षपकस्य सत्कर्मणि नियमतो भवन्ति ।

क्षायोपशमिकसम्यक्त्वमार्गणायां बद्धदलं किट्टिकाराणां किट्टिवेदकानां च सत्कर्मणि नियमेन विद्यते । कथमेतदवसीयते? इति चेत् , उच्यते—क्षायिकसम्यक्त्वस्योत्कृष्टतोऽपि कालः सातिरेकत्रयस्त्रिंशत्सागरोपमप्रमाणो भवति, यत एकविंशतिप्रकृत्यात्मकसत्तास्थानकोत्कृष्टकालः सातिरेकत्रयस्त्रिंशत्सागरोपममात्रः । अभ्यधायि च कषायप्राभृतचूर्णौ—"एक्कावीसाए विहत्ती केवचिरं कालादो ? जहण्णेण अंतोमुहुत्तं, उक्कस्सेण तेत्तीसं सागरोवमाणि सादिरेयाणि ।" इति । क्षायिकसम्यक्त्वस्य च क्षपकश्रेणावश्यंभावित्वात् क्षायिकसम्यक्त्वतश्च प्राक् क्षायोपशमिकसम्यक्त्वस्य नियमेन दर्शनात् तथा कर्माऽवस्थानकालस्य साधिकत्रयस्त्रिंशत्सागरोपमतोऽधिकत्वात् क्षायोपशमिकसम्यक्त्वमार्गणायां बद्धदलं किट्टिकाराणां किट्टिवेदकानां च सत्कर्मणि नियमतो विद्यते ।

क्षायिकसम्यक्त्वमार्गणायां बद्धदलं नियमेन क्षपकस्य सत्कर्मणि विद्यते, क्षायिकसम्यक्त्वमृते क्षपकश्रेणेरसंभवात् ।

संज्ञिमार्गणायां बद्धदलं नियमेन किट्टिकाराणां किट्टिवेदकानां च सत्कर्मणि विद्यते, संज्ञिन एव क्षपकश्रेणिप्रतिपत्तेः ।

असंज्ञिमार्गणायामपि बद्धदलं नियमेन किट्टिकाराणां किट्टिवेदकानां च सत्कर्मणि विद्यते । कथमेतदवसीयते? इति चेत् , उच्यते संज्ञिन उत्कृष्टतः कायस्थितिः सातिरेकसागरोपमशतपृथक्त्वप्रमाणा लभ्यते । न्यगादि च श्रीप्रज्ञापनासूत्रे कायस्थितिद्वारे—"सण्णीणं भंते ! पुच्छा, गो० ! ज० अंतो० उ० सागरोवमसतपुहुत्तं सातिरेगं, ।" इति । अयं भावः-कश्चित् जन्तुर्भूयो भूयः संज्ञिषूत्पद्यते, तदा सातिरेकसागरोपमशतपृथक्त्वकालं यावत् । ततः परमवश्यमेवाऽसंज्ञिषूत्पद्यते । तेनोत्कृष्टसंज्ञिकायस्थितेरर्वाग् नियमतोऽयं क्षपकोऽसंज्ञित्वेनासीत् । इत्थं संज्ञिसत्कायाः कायस्थितेः कर्माऽवस्थानकालतो न्यूनत्वादसंज्ञिमार्गणायां बद्धदलं किट्टिकाराणां किट्टिवेदकानां च सत्कर्मणि नियमेन विद्यते ।

आहारकमार्गणायां बद्धदलं नियमेन किट्टिकाराणां किट्टिवेदकानां च सत्कर्मणि विद्यते । सुगममेतत् , आहारकाणामेव क्षपकश्रेण्यारम्भात् ।

न च किट्टिकरणाद्धायां किट्टिवेदकमाश्रित्य प्ररूपणाऽसंगतेति वाच्यम्, प्रकृतप्ररूपणामाश्रित्य किट्टिकारतः किट्टिवेदकं प्रति विशेषाभावेन तस्या अदुष्टत्वात् ॥ १०५–१०६–१०७ ॥

अथ यासु मार्गणासु बद्धकर्मदलं किट्टिकाराणां किट्टिवेदकानां च सत्कर्मणि विकल्पेन विद्यते, ताः संगृह्य प्राह–

निरयसुरविगलपुढवीजलानलपवणवणतसईसु तह ।
वेउव्वाहारगदुगकम्मणजोगित्थिपुरिसवेएसुं ॥१०८॥(गीतिः)
ओहिविहंगमणेसु तह देसविरइपरिहारछेएसुं ।
ओहिगदंसणमिस्सासायणणाहारगेसु भयणाए ॥१०९॥ (गीतिः)

निरयसुरविकलपृथिवीजलाऽनलपवनवनस्पतिषु तथा ।
वैक्रियाहारकद्विककार्मणयोगस्त्रीपुरुषवेदेषु ॥१०८॥
अवधिविभङ्गमनस्सु तथा देशविरतिपरिहारच्छेदेषु ।
अवधिदर्शनमिश्रास्वादनानाहारकेषु भजनया ॥१०९॥इति पदसंस्कारः ।

'**निरय०**'इत्यादि, बद्धप्रदेशाः किट्टिकाराणां किट्टिवेदकानां च सत्कर्मणीति पूर्वतोऽनुवर्तते, तच्च यथास्थानं योजनीयम् । निरयादयः कृतद्वन्द्वा निर्दिष्टाः । भजनयेति सर्वत्र सम्बध्यते । तथाहि-निरये-नरकगतौ सुरे-देवगतौ च बद्धप्रदेशाः किट्टिकाराणां किट्टिवेदकानां च सत्कर्मणि 'भजनया' विभाषया विद्यन्ते, कस्यचित् क्षपकस्य सत्कर्मणि विद्यन्ते, कस्यचित् पुनर्न विद्यन्त इत्यर्थः । उक्तं च कषायप्राभृतचूर्णौ- "**देवगदिसमज्जिदं च णिरयगदिसमज्जिदं च भजियव्वं ।**" इति । भावार्थः पुनरयम्–देवगतौ नरकगतौ वाऽगत्वा मरुदेव्यादिवत् तिर्यग्गतित आगत्य मनुष्यगतौ क्षपकश्रेणिं प्रतिपन्नस्य सत्कर्मणि देवगतौ नरकगतौ वा बद्धकर्मदलं न विद्यत एव । यद्वा देवगतिं नरकगतिं वा गत्वाऽपि तत्र च कर्मदलं बद्ध्वा ततो निर्गत्य शेषगतित्रये वा तिर्यग्गतौ वा कर्माऽवस्थानकालं ततोऽपि वाऽधिकं कालं व्यतिक्रम्य मनुष्यगता आगतस्य क्षपकस्य सत्कर्मण्येकमपि दलं देवगतौ नरकगतौ वा बद्धं न विद्यते, कर्माऽवस्थानकालतः परं बद्धकर्मदलस्य सत्कर्मण्यदर्शनात् ।

यः कश्चिज्जन्तुर्देवगतौ नरकगतौ वा समुत्पद्य कर्माऽवस्थानकालाभ्यन्तरे मनुष्यो भूत्वा क्षपकश्रेणिमारोहति । तस्य निरुक्तगतिबद्धदलं सत्कर्मणि विद्यते, यतो निरुक्तगतिबद्धदलस्य कर्माऽवस्थानकालो नातिक्रान्तः ।

इदमत्रावधेयम् देवगतौ वा नरकगतौ वा बद्धकर्मदलं जघन्येनैककर्मपरमाणुः सत्कर्मणि वर्तते, उत्कृष्टतस्त्वनन्तार्कर्मदलिकानि । इदमत्राऽल्पबहुत्वम्–(१) देवगतौ वा नरकगतौ वा बद्धकर्मदलं सत्कर्मणि जघन्यतः स्तोकम्, उत्कृष्टतस्त्वनन्तगुणम् ।

'विगले' त्ति विकलेषु-द्वीन्द्रियत्रीन्द्रियचतुरिन्द्रियलक्षणमार्गणास्थानेषु बद्धदलं किट्टिकारकाणां किट्टिवेदकानां च सत्कर्मणि विभाषया तिष्ठति । कथमेतदवगन्तव्यम् ? इति चेत्, उच्यते द्वीन्द्रियादितयाऽनुत्पद्यैकेन्द्रियत आगतस्य क्षपकश्रेणिं प्रतिपन्नस्य जन्तोः सत्कर्मणि द्वीन्द्रियादिमार्गणासु बद्धकर्मदलं न विद्यते, अथवा विकलेन्द्रियतयोत्पद्यैकेन्द्रियभवेषु कर्माऽवस्थानकालं ततोऽपि वाऽधिककालं व्यतिक्रम्य क्षपकश्रेणिमारूढस्य सत्कर्मणि द्वीन्द्रियादिमार्गणासु बद्धदलं न विद्यते । यः पुनर्द्वीन्द्रियादितया समुत्पद्य कर्माऽवस्थानकालाभ्यन्तरे मनुष्यगतौ क्षपकश्रेणिं प्रतिपद्यते, तस्य सत्कर्मणि द्वीन्द्रियादिमार्गणासु बद्धकर्मदलमुपलभ्यते, कर्माऽवस्थानकालस्याऽनतिक्रान्तत्वात् ।

'पुढवी' त्ति पृथिवीकाये बद्धदलं किट्टिकारकाणां किट्टिवेदकानां च सत्कर्मणि भजनया विद्यते । तद्यथा यः कश्चिज्जन्तुः पृथिवीकायमगत्वाऽथवा गत्वाऽप्यन्यत्राऽप्कायादिषु कर्माऽवस्थानकालं परिपाल्य मनुष्यगतौ क्षपकश्रेणिं समारोहति, तस्य सत्कर्मणि पृथिवीकायमार्गणायां बद्धदलं न विद्यते, यः पुनः पृथिवीकायं गत्वा कर्माऽवस्थानकालाभ्यन्तरे मनुष्यगतौ क्षपकश्रेणिमारोहति, तस्य सत्कर्मणि पृथिवीकायमार्गणायां बद्धदलं नियमेन विद्यते । 'जलानलपवण' त्ति 'जले' अप्कायमार्गणायाम् 'अनले' तेजःकायमार्गणायां 'पवने' वायुकायमार्गणायां च बद्धदलं क्षपकस्य सत्कर्मणि विभाषया वर्तते । भावना तु पृथिवीकायवत् कार्या । 'वनस्पतौ' वनस्पतिकायमार्गणायां च बद्धकर्मदलं क्षपकस्य सत्कर्मणि भजनया भवति । कथमेतदवगम्यते ? इति चेत्, शृणुत–वनस्पतिकायतो निर्गतस्याऽन्यत्र पृथिवीकायादौ कर्माऽवस्थानकालं यावत् प्रोष्य मनुष्यगतौ क्षपकश्रेणिं प्रतिपन्नस्य सत्कर्मणि वनस्पतिकाये बद्धदलं न विद्यते, यतो वनस्पतिकाये बद्धकर्मदलस्य कर्माऽवस्थानकालोऽतिक्रान्तः । यः पुनर्वनस्पतिकायतो निर्गत्य कर्माऽवस्थानकालाभ्यन्तरे क्षपकश्रेणिं समारोहति, तस्य सत्कर्मणि वनस्पतिकाये बद्धदलं नियमेन विद्यते, बद्धकर्मदलसम्बन्धिकर्माऽवस्थानकालस्याऽनतिक्रान्तत्वात् । अभिहितं च कषायप्राभृतचूर्णौ–"पुढविकाइय-आउकाइय-तेउकाइय-वाउकाइय-वणप्फदिकाइएसु एत्तो एक्केक्केण काएण समज्जिदं भजियव्वं ।" इति । 'तथा' तथाशब्दः समुच्चये, 'वेउव्वाहारगदुगकम्माण०' इत्यादि, द्विकशब्दः प्रत्येकं सम्बध्यते, वैक्रियद्विकं=वैक्रियकाययोगतन्मिश्रकाययोगलक्षणम् आहारकद्विकम्=आहारककाययोगाऽऽहारकमिश्रयोगलक्षणं कार्मणकाययोगः पुरुषवेदः स्त्रीवेदश्च, तेषु, बद्धदलं क्षपकसत्कर्मणि भजनया विद्यते, निरुक्तमार्गणास्थानेष्वगत्वाऽथवा गत्वाऽपि कर्माऽवस्थानकालं ततोऽधिकं कालं वा प्रतिपक्षमार्गणास्थानेषूषित्वा क्षपकश्रेणिं समारूढस्य सत्कर्मणि निरुक्तमार्गणासु बद्धकर्मदलं न विद्यते । तत्र गत्वा कर्माऽवस्थानकालाभ्यन्तरे क्षपकश्रेणिमारूढस्य तु तत्र बद्धदलं सत्कर्मणि नियमतो विद्यते । व्याहारि च कषायप्राभृतचूर्णौ–"सेसजोगेसु बद्धाणि भज्जाणि।×××इत्थीए पुरिसेण सम्मामिच्छाइट्ठिणा च एवं भावभूदेण बद्धाणि भज्जाणि ।" इति ।

'ओहिविहंगमणएसु'त्ति, तत्र 'ओहि' त्ति अवधिज्ञाने, न तु त्ववधिदर्शनमार्गणायाम्, विभङ्गसाहचर्यात्, विभङ्गज्ञाने, 'भीमो भीमसेनः' इति न्यायेन मनःशब्दाद् मनःपर्यायज्ञाने च, न तु मनोयोगे, तत्राऽभजनयोक्तत्वात्, बद्धदलं विभाषया क्षपकस्य सत्कर्मणि विद्यते। निरुक्तमार्गणास्थानत्रये कर्माऽवस्थानकालाभ्यन्तरेऽवश्यंभाविगमनविरहात्। उक्तं च कषायप्राभृतचूर्णौ "ओहिणाणे अण्णाणे मणपज्जवणाणे एदेसु तिसु उवजोगेसु पुव्वबद्धाणि भजियव्वाणि।" इति।

'तह देस' त्ति तथा देशविरतिमार्गणायाम् 'परिहार' त्ति पदैकदेशेन पदसमुदायस्य गम्यत्वात् परिहारविशुद्धिकसंयममार्गणायां छेदे-छेदोपस्थापनसंयममार्गणायां च बद्धदलं क्षपकस्य सत्कर्मणि विभाषया विद्यते। कथमेतदवबुध्यते? इति चेत्, उच्यते-निरुक्तमार्गणास्थानान्यप्राप्याऽथवा प्राप्याऽपि कर्माऽवस्थानकालमविरत्यादिमार्गणासु व्यतिक्रम्य क्षपकश्रेणिमधिगतस्य जन्तोः सत्कर्मणि निरुक्तमार्गणासु बद्धदलं न विद्यते, यस्तु निरुक्तमार्गणास्थानानि समधिगत्य कर्माऽवस्थानकालाभ्यन्तरे क्षपकश्रेणिमारोहति, तस्य सत्कर्मणि देशविरत्यादिमार्गणासु बद्धदलं नियमेन विद्यते।

'ओहिग०' इत्यादि, तत्र 'ओहिग' त्ति अवधिदर्शनमार्गणायाम्, 'मिस्स' त्ति मिश्रमार्गणायां च बद्धदलं क्षपकस्य सत्कर्मणि भजनया विद्यते, कर्माऽवस्थानकालाभ्यन्तर एतयोर्मार्गणास्थानयोः प्राप्तौ नियमाभावात्। उक्तं च कषायप्राभृते "अह ओहिदंसणे पुण उवजोगे होंति भज्जाणि। XXX मिस्सगे भज्जा।" इति।

'आसायण' त्ति आस्वादनसम्यक्त्वमार्गणायां बद्धदलं विभाषया सत्कर्मणि विद्यते, कर्माऽवस्थानकालाभ्यन्तरे निरुक्तमार्गणाया लाभे नियमानुपलम्भात्।卐

अनाहारगे अनाहारकमार्गणायां बद्धदलं सत्कर्मणि भजनया विद्यते, संसारावस्थायामनाहारकमार्गणाया विग्रहगतावेव लाभाद् विग्रहगतेश्चोत्कृष्टान्तरस्याऽसंख्येयोत्सर्पिण्यवसर्पिणीकालमात्रत्वेन कर्मावस्थानकालाभ्यन्तरे प्रकृतमार्गणाया अवश्यंभावविरहात्।

इत्थं सप्तविंशतिमार्गणास्थानेषु बद्धदलं प्रस्तुतक्षपकसत्कर्मणि विभाषया वर्तते, कर्मावस्थानकाले निरुक्तमार्गणागमननियमाभावात् ॥१०८-१०९॥

अथ येषु पञ्चमार्गणास्थानेषु बद्धदलं नियमतः सत्कर्मणि न विद्यते, तान्यभिधित्सुराह

卐 तथा चोक्तं जयधवलाकारैरपि—"सासणसम्माइट्ठिणा च बद्धाणि भयणिज्जाणि त्ति एसो वि अत्थो एत्थ वक्खाणेयव्वो, मिस्सणिद्देसस्सेदस्स देसामासयभावेण पवुत्तिअब्भुवगमादो।" इति।

केवलदुगअभवियसुहुमअहक्खायेसु णियमत्तो ।
बद्धपएसा णत्थि य संते संभवअभावत्तो ॥११०॥ (उपगीतिः)

केवलद्विकाऽभव्यसूक्ष्मयथाख्यातेषु नियमत. ।
बद्धप्रदेशा न सन्ति च सत्तायां संभवा-ऽभावात् ॥११०॥ इति पदसंस्कार ।

'**केवलदुग०**' इत्यादि, कृतद्वन्द्वाः सप्तम्या निर्दिष्टाः केवलद्विकादयः । तत्र 'केवलद्विके' केवलज्ञानकेवलदर्शनलक्षणे बद्धप्रदेशाः किट्टिकारणां किट्टिवेदकानां च सत्तायां नियमतो 'न सन्ति' न भवन्ति । अयम्भावः-जीवः सयोगिगुणस्थानकं लब्ध्वैव केवलज्ञानं केवलदर्शनं च प्राप्नोति, अनेन क्षपकेण तु न कदापि सयोगिगुणस्थानकमासादितम् । किञ्च सयोगिगुणस्थानके मोहनीयबन्धसंभवोऽपि नास्ति, अनिवृत्तिबादरसम्परायचरमसमये तद्विच्छेदात् । अतोऽनयोर्द्वयोर्मार्गणयोर्बद्धदलं सत्कर्मणि नियमतो न विद्यते ।

'**अभविय**' त्ति अभव्यमार्गणायां बद्धप्रदेशाः क्षपकस्य सत्कर्मणि नियमतो न विद्यन्ते, अभव्यस्य सिद्धिगमनाऽयोग्यत्वेन क्षपकश्रेणिप्रतिपत्त्यसंभवात् ।

'**सुहुम**' त्ति "**भीमो भीमसेनः**" इति न्यायात् सूक्ष्मसम्परायसंयममार्गणायां बद्धदलं क्षपकस्य सत्कर्मणि नियमेन न विद्यते, संभवाभावात् । न च कर्माऽवस्थानकालाभ्यन्तरमुपशमश्रेणिमारुह्य सूक्ष्मसम्परायगुणस्थानकमासादितवतो जीवस्य निरुक्तमार्गणायां बद्धदलं सत्कर्मणि कुतो न संभवति ? इति वाच्यम्, मोहनीयदलस्येष्टत्वेन सूक्ष्मसम्परायमार्गणायां मोहनीयस्य बन्धाभावात् । एवमग्रेऽपि ।

यथाख्याते-यथाख्यातसंयममार्गणायां बद्धदलं सत्कर्मणि नियमेन न विद्यते । कुतः ? इति चेत्, उच्यते-यथाख्यातसंयम उपशान्तमोहादिगुणस्थानकेषु प्राप्यते । न च तत्र मोहनीयबन्धोऽस्ति, तेन तत्र बद्धदलं क्षपकस्य सत्कर्मणि न भवति ।

ननु निरुक्तपञ्चमार्गणासु बद्धप्रदेशाः सत्कर्मणि कुतो न विद्यन्ते ? इत्यत आह-'**संभवअभावत्तो**' त्ति सम्भवाभावात् । सुगममेतद् व्याख्यातत्वात् ॥११०॥

चतुर्दशमार्गणानामुत्तरमार्गणास्थानेषु बद्धदलं सत्कर्मणि चिन्तयित्वा सम्प्रति येषु सातोदयादिस्थानेषु बद्धमोहनीयदलं नियमतः क्षपकस्य सत्तायां विद्यते, तानि सङ्गृह्य प्राह

सायासायेसुं पज्जत्तापज्जत्तगेसुं च ।
एगिंदियाण च असंखिज्जेसु भवेसु णियमत्तो ॥१११॥(उपगीतिः)

सातासातयोः पर्याप्तापर्याप्तकयोश्च ।
एकेन्द्रियाणाञ्चाऽसंख्येयेषु भवेषु नियमत. ॥१११॥ इति पदसंस्कार ।

'सायासायेसु' इत्यादि, 'बद्धपएसा संतम्मि' इति पदद्वयं पूर्वतोऽनुवर्तते । 'सातासातयोः' सातोदयस्थानेऽसातोदयस्थाने च 'पर्याप्ताऽपर्याप्तिकयोश्च पर्याप्तजीवभेदे-ऽपर्याप्तजीवभेदे चैकेन्द्रियाणामसंख्येयेषु भवेषु च बद्धप्रदेशाः क्षपकस्य सत्तायां नियमतो विद्यन्ते । कथमेतदवसीयते ? इति चेत्, उच्यते-मनुष्यतिर्यक्ष्वन्तर्मुहूर्तकालेन सातासातोदययोः परावृत्तेः क्षपकश्रेणिप्रतिपत्तेश्च मनुष्यगतावेवोपलम्भात् साताऽसातयोर्बद्धदलिकं किट्टिकारस्य किट्टिवेदकस्य च क्षपकस्य सत्कर्मणि नियमेन विद्यते । तद्भवेऽपि पर्याप्तत्वात् पर्याप्तजीवभेदे बद्धदलं क्षपकस्य सत्कर्मणि नियमेन विद्यते । अपर्याप्तसम्बन्ध्युत्कृष्टविरहस्य कर्मावस्थानकालतः संख्येयगुणहीनत्वादपर्याप्तजीवभेदे बद्धदलं क्षपकस्य सत्कर्मणि नियमेन विद्यते । उक्तं च कषायप्राभृतचूर्णौ **पज्जत्तेण अपज्जत्तेण मिच्छाइट्ठिणा सम्माइट्ठिणा णवुंसयवेदेण च एवंभावभूदेण बद्धाणि णियमा अत्थि ।"×××सादेण असादेण च बद्धाणि अभज्जाणि ।"** इति ।

नन्वेकेन्द्रियाणामसंख्येयेषु भवेषु बद्धदलं नियमतः क्षपकस्य सत्कर्मणि विद्यतइत्येतत् कथमवसीयते ? इति चेत्, उच्यते-त्रसकायस्य कायस्थितिरुत्कृष्टतोऽपि संख्यातवर्षाधिकसागरोपमद्विसहस्रप्रमाणाऽभिहिता । यदुक्तं श्रीप्रज्ञापनासूत्रे कायस्थितिपदे-"**तसकाइए णं भंते ! तसकाइए कालओ केवचिरं होइ ? गोयमा ! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं दो सागरोवमसहस्साइं संखेज्जवासब्भहियाइं ।"** इति । तथैव जीवसमासवृत्तावपि-"**द्विगुणं च सातिरेकसागरोपमसहस्रं त्रसानां कायस्थितिः, द्विगुणेन च संख्येयवर्षाधिकसागरोपमसहस्रद्वयमवगन्तव्यम् ।"** इति । एकेन्द्रियस्य तूत्कृष्टतो भवस्थितिः संख्येयाऽऽवलिकाप्रमाणा भवति । अथ जघन्यतो भवानां लाभाय संख्येयवर्षाधिकसागरोपमसहस्रद्वयलक्षणत्रसकायकायस्थितिन्यूनजघन्यकर्माऽवस्थानकाल एकेन्द्रियभवप्रमाणाभिः संख्येयावलिकाभिर्विभक्तव्यः, विभक्ते च पल्योपमा-ऽसंख्येयभागप्रमाणा एकेन्द्रियभवाः प्राप्यन्ते । इत्थं जघन्यतोऽपि पल्योपमा-ऽसंख्येयभागप्रमाणेष्वेकेन्द्रियभवेषु बद्धदलं क्षपकस्य सत्कर्मणि नियमतो विद्यते, निरुक्तभवेषु बद्धदलिकसम्बन्धिकर्माऽवस्थानकालस्याऽनतिक्रान्तत्वात् । उत्कृष्टतः पुनः साधिकवर्षाष्टकन्यूनकर्माऽवस्थानकालेऽन्तर्मुहूर्तकालेन विभक्ते यल्लभ्यते, तन्मात्रेष्वेकेन्द्रियभवेषु बद्धदलं क्षपकस्य सत्कर्मणि वर्तते ॥१११॥

सम्प्रति यावत्सु त्रसभवेषु बद्धदलं सत्कर्मणि विद्यते, तावतस्त्रसभवान् व्याहरन् लिङ्गकर्मशिल्पादिषु बद्धदलं भजनया सत्तायां आह

एगुत्तरवुड्ढीए संखतसमवेसु बद्धदलमत्थि ।
संतम्मि सव्वलिंगेसु कम्मसिप्पगुरुठिइरसेसुं वा ॥११२॥ (गीतिः)

एकोत्तरवृद्धया सङ्ख्यत्रसभवेषु बद्धदलमस्ति ।
सत्तायां सर्वलिङ्गेषु कर्मशिल्पगुरुस्थितिरसेषु वा ॥११२॥ इति पदसंस्कारः ।

'एगुत्तरवुड्ढीए' इत्यादि, एकोत्तरवृद्धया 'सङ्ख्यत्रसभवेषु' सङ्ख्यामर्हन्तीति संख्याः, 'दण्डादेर्यः' (सिद्धहेम० ६-४-१६८) इति सूत्रेण यप्रत्ययः, संख्येया इत्यर्थः, तेषु त्रसभवेषु बद्धदलं क्षपकस्य सत्तायाम् 'अस्ति' भवति । तद्यथा—यः कश्चिज्जीव एकेन्द्रियतो निर्गत्य मनुष्यत्वेन समुत्पन्नो मरुदेव्यादिवत् क्षपकश्रेणिमारोहति, तस्य जीवस्य सत्तायामेकस्मिंस्त्रसभवे बद्धदलं विद्यते । यः कश्चिज्जीव एकेन्द्रियतो निर्गत्य त्रसत्वेनोत्पद्यते, ततो मृत्वा मनुष्यत्वेनोत्पन्नः क्षपकश्रेणिं प्रतिपद्यते । तस्य जीवस्य सत्कर्मणि त्रसभवद्वये बद्धदलं वर्तते । एवं त्रिषु चतुर्षु यावत् तत्प्रायोग्यसंख्यातेषु निरन्तरत्रसभवेषु बद्धदलं सत्कर्मणि विद्यते, संख्येयवर्षाधिकसागरोपमसहस्रद्वयलक्षणकायस्थितौ निरन्तरं संख्येयत्रसभवेभ्योऽधिकानामसंभवात् । उक्तं च कषायप्राभृते—

"एइंदियभवग्गहणेहिं असंखेज्जेहिं णियमसा बद्धं ।
एगादेगुत्तरियं संखेज्जेहि य तसभवेहिं ॥१॥" इति ।

न च कर्माऽवस्थानकालाभ्यन्तरेऽसंख्येया अपि त्रसभवा संभवन्ति, कर्माऽवस्थानकालेऽसंख्येयवारान् यावद् देशविरतिप्राप्तेः, देशविरतेश्च त्रसभव एव लाभादिति वाच्यम्, अत्र नैरन्तर्येणैकाधिकक्रमेण त्रसभवानां व्याख्यानात्, असंख्येयवारान् यावद् देशविरतिप्राप्तेस्तु स्थावरभवैरन्तरयित्वा निर्दिष्टत्वात् ।

अथ लिङ्गादिषु बद्धदलं सत्कर्मणि भजनया दर्शयति—'सव्वलिंगेसु' इत्यादि, सर्वलिङ्गेषु बद्धदलं क्षपकस्य सत्कर्मणि 'वा' विभाषया विद्यते, लिङ्गशब्देनाऽत्र तापस-परिव्राजकयत्यादिद्रव्यलिङ्गानां ग्रहणं कर्तव्यम् । तत्र यो जन्तुः कर्माऽवस्थानकालाभ्यन्तरे तापसलिङ्गमप्रतिपद्य क्षपकश्रेणिमारोहति, तस्य सत्कर्मणि तल्लिङ्गे बद्धदलं न विद्यते, येन कर्माऽवस्थानकालाभ्यन्तरे तापसलिङ्गं प्रतिपद्य क्षपकश्रेणिः प्रतिपन्ना, तस्य सत्कर्मणि तल्लिङ्गे बद्धं दलं नियमतो विद्यते । एवं मरुदेव्यादिवद् भवचक्रे कर्माऽवस्थानकालाभ्यन्तरे यतिलिङ्गमप्रतिपद्य यः क्षपकश्रेणिं प्रतिपद्यते, तस्य सत्कर्मणि यतिलिङ्गे बद्धदलं न विद्यते, यः पुनर्यतिलिङ्गं कर्माऽवस्थानकालाभ्यन्तरे प्रतिपद्य क्षपकश्रेणिमारोहति, तस्य सत्कर्मणि निरुक्तलिङ्गे बद्धदलं नियमतो विद्यते । एवं शेषलिङ्गेषु भजना भावनीया । यदभ्यधायि कषायप्राभृतचूर्णौ—"सव्वलिंगेसु भज्जाणि ।" इति ।

'क०...०' इत्यादि, कर्मादयः कृतद्वन्द्वाः सप्तम्या निर्दिष्टाः, तत्र कर्मसु–अङ्गारप्रभृतिलक्षणेषु बद्धदलं क्षपकस्य सत्कर्मणि विभाषया विद्यते। अयं भावः ये य आरम्भा अग्निविराधनारूपाः, ते तेऽङ्गारकर्मोच्यन्ते। तद्यथा काष्ठदाहेनाङ्गारनिष्पादनं भ्राष्ट्रकरणाद्यनेकविधमङ्गारकर्म। उक्तं च योगशास्त्रे–"अङ्गारभ्राष्ट्रकरणं कुम्भायःस्वर्णकारिता। ठठारत्वेष्टकापाविति ह्यङ्गारजीविका।" इति। एवं शेषाणां कर्मणां व्याख्यानं ग्रन्थान्तरादवसेयम्। एवंप्रकारेष्वङ्गारादिषु कर्मसु बद्धदलं क्षपकस्य सत्कर्मणि विभाषया विद्यते, कर्माऽवस्थानकालाभ्यन्तर एतेषामवश्यंभावनियमानुपलम्भात्। शिल्पेषु बद्धदलं क्षपकस्य सत्कर्मणि विभाषया विद्यते। तत्र शील्यत इति शिल्पम्, पम्पाशिल्पादयः (उणादि० ३००) इति साधुः, नृत्यादिकलेति यावत्। उक्तं चाऽभिधानचिन्तामणौ–"शिल्पं कला विज्ञानं च।" इति। कर्माऽवस्थानकालाभ्यन्तरे शिल्पानि शिक्षितवतः क्षपकस्य सत्कर्मणि शिल्पेषु बद्धदलं विद्यते, कर्माऽवस्थानकालाभ्यन्तरेऽशिक्षितवतस्तु न विद्यते। उक्तं च कषायप्राभृतचूर्णौ–"कम्म-सिप्पेसु भज्जाणि।" इति।

गुणस्थितिरसयोः– उत्कृष्टस्थित्यामुत्कृष्टरसे च बद्धदलं क्षपकस्य सत्कर्मणि विभाषया विद्यते। अत्र मुग्धश्चोदक आह ननूत्कृष्टस्थितिमुत्कृष्टानुभागं च क्षपको न बध्नाति, तर्हि विभाषयाऽपि सत्कर्मण्युत्कृष्टस्थित्यामुत्कृष्टाऽनुभागे च बद्धदलं कथं संभवति ? इति, अत्रोच्यते–उत्कृष्टस्थितिबन्धकाले बद्धं कर्मदलमुत्कृष्टस्थितौ बद्धदलमुच्यते, एवमुत्कृष्टाऽनुभागबन्धकाले बद्धं कर्मदलमुत्कृष्टानुभागे बद्धदलमभिधीयते, तच्च क्षपकस्य सत्कर्मणि भजनया विद्यते, येन क्षपकेण कर्माऽवस्थानकालाभ्यन्तर उत्कृष्टस्थितिबन्धकाल उत्कृष्टाऽनुभागबन्धकाले च कर्मदलं बद्धम्, तस्य सत्कर्मण्युत्कृष्टस्थित्यामुत्कृष्टाऽनुभागे च बद्धदलं विद्यते, येन क्षपकेण कर्माऽवस्थानकालाभ्यन्तरे सर्वत्रैवाऽनुत्कृष्टस्थितिरनुत्कृष्टाऽनुभागश्चाऽबध्यत। तस्य सत्कर्मण्युत्कृष्टस्थित्यामुत्कृष्टानुभागे च बद्धदलं न विद्यते, संभवविरहात्। यदुक्तं कषायप्राभृतचूर्णौ–"उक्कस्सट्ठिदिबद्धाणि उक्कस्सअणुभागबद्धाणि च भजिदव्वाणि।" इति। इहोत्कृष्टस्थित्यनुभागौ मोहनीयस्यैव गृह्येते, तस्यैव प्रस्तुतत्वात्। यद्यपि सप्तानामपि कर्मणामुत्कृष्टस्थितिग्रहणे न कश्चिद् दोषः, तथाप्युत्कृष्टानुभागः शुभानां ग्रहीतुं न शक्यते, शुभानां गोत्र-वेदनीय-नामरूपाणां कर्मणामुत्कृष्टानुभागस्य क्षपकसूक्ष्मसम्परायचरमसमये बन्धसद्भावेन किट्टिकरणाद्धायां तदसम्भवात् ॥११२॥

सम्प्रति किट्टिकरणाद्धायाः समाप्तिमभिधत्ते-'पढमट्ठिईअ' इत्यादि, 'प्रथमस्थितौ' पूर्वापूर्वस्पर्धकतया विद्यमानस्य संज्वलनक्रोधस्य प्रथमस्थित्यामावलिकाशेषायां 'समत्तद्धा' त्ति अद्धा=प्रस्तुतत्वात् किट्टिकरणाद्धा समाप्ता भवति । निगदितं च **कषायप्राभृतचूर्णौ-"किट्टीकरणद्धा णिट्ठायदि पढमट्ठिदीए आवलियाए सेसाए ।"** इति॥११४॥

अथ किट्टिकरणाद्धाचरमसमये स्थितिबन्धं व्याजिहीर्षुराह

किट्टिकरणस्स चरिमे बंधो मोहस्स चउमासा ।
अंतोमुहुत्तअहिया पराण संखियसहस्सवासाइं ॥११५॥(उद्गीतिः)

किट्टिकरणस्य चरमे बन्धो मोहस्य चतुर्मासा ।
अन्तर्मुहूर्ताधिका परेषां सङ्ख्यसहस्रवर्षाणि॥११५॥ इति पदसंस्कारः ।

'किट्टि०' इत्यादि, 'किट्टिकरणस्य' किट्टिकरणाद्धायाः 'चरमे' चरमसमये 'मोहस्य' संज्वलनचतुष्कस्य प्रत्येकं 'बन्धः' स्थितिबन्धोऽन्तर्मुहूर्ताधिकाश्चतुर्मासा भवति । व्याहारि च **कषायप्राभृतचूर्णौ-"किट्टीकरणद्धाए चरिमसमए संजलणाणं ठिदिबंधो चत्तारि मासा अंतोमुहुत्तब्भहिया ।"** इति।

ननु गाथायां चतुर्मासा इति समस्तनिर्देशोऽसाधुः, यतो **"विशेषणं विशेष्येणैकार्थं कर्मधारयश्च"** (सिद्धहेम०३-१-९६) इति सूत्रेण कर्मधारयसमाससिद्धौ **'संख्या समाहारे च द्विगुश्चानाम्न्ययम्"** (सिद्धहेम०३-१-९९) इत्येतत्सूत्रारम्भो नियमार्थः । नियमाकारश्चायम् संख्यावाचि परेण नाम्ना समाहारसंज्ञातद्धितोत्तरपद एव समस्यते, नाऽन्यथा । तेन चत्वारो मासा इति चतुर्मासा इति समासो **'विशेषणं विशेष्येणैकार्थं कर्मधारयश्च"** (सिद्धहेम०३-१-९६) इत्यनेन सूत्रेणाऽपि न भवेत्, यथाऽष्टौ प्रवचनमातर इति चेत्, नैवम् , चतुःसंख्यका मासा इति मध्यमपदलोपाच्चतुर्मासाः । अयं भावः आदौ चतुश्शब्दस्य संख्याशब्देन सह बहुव्रीहिसमासः, ततश्चतुःसंख्यकशब्दस्य मासशब्देन कर्मधारयसमासो मध्यमपदलोपश्चेति न कश्चिद् दोषः । अश्वकर्णकरणाद्धायाश्चरमसमये योऽष्टवर्षप्रमाणः स्थितिबन्ध आसीत् ,स प्रतिस्थितिबन्धाद्धं हीनो हीनतरो भवन् किट्टिकरणाद्धाचरमसमयेऽन्तर्मुहूर्ताधिकचतुर्मासप्रमाणो भवतीत्यर्थः ।

'पराण' इत्यादि, 'परेषां' मोहनीयवर्जानां ज्ञानावरणादीनां षण्णां स्थितिबन्धः संख्यसहस्रवर्षाणि भवति । उक्तं च **कषायप्राभृतचूर्णौ "सेसाणं कम्माणं ठिदिबंधो संखेज्जाणि वस्ससहस्साणि ।"** इति । अश्वकर्णकरणाद्धाचरमसमये यः संख्येयवर्षसहस्रप्रमाणः स्थितिबन्धः शेषकर्मणामासीत्, स संख्येयगुणेन हीनो हीनतरो भवन्निदानीमपि संख्येयवर्षसहस्रमात्रो भवति, संख्येयसहस्राणां संख्येयभेदत्वादित्यर्थः ॥११५॥

अथ किट्टिकरणाद्धाचरमसमये स्थितिसत्त्वं निगदितुकाम आह

ठिइसंतं मोहस्सऽडवासा अंतोमुहुत्तअब्भहिआ ।
घाईण संखवरिससहस्साणि असंखवच्छराऽन्नाणं ॥११६॥(गीतिः)

स्थितिसत्त्वं मोहस्याष्टवर्षा अन्तर्मुहूर्ताभ्यधिका ।
घातिनां संख्यवर्षसहस्राण्यसंख्यवत्सरा अन्येषाम् ॥११६॥ इति पदसंस्कारः ।

'ठिइसंतं' इत्यादि, तत्र 'मोहस्य' संज्वलनचतुष्कस्य स्थितिसत्त्वम् 'अन्तर्मुहूर्ताऽभ्यधिकाः' अन्तर्मुहूर्तकालेनाऽतिरिक्ता अष्टवर्षा भवति, अश्वकर्णकरणाद्धाचरमसमये मोहनीयकर्मणो यत् स्थितिसत्त्वं संख्यातवार्षिकं भवति स्म, तत् संख्येयसहस्रस्थितिघातैर्घातितं सदिदानीमन्तर्मुहूर्ताधिकाष्टवर्षप्रमाणं जायत इत्यर्थः । उक्तं च कषायप्राभृतचूर्णौ–' चेव किट्टीकरणद्धाए चरिमसमये मोहणीयस्स ठिदिसंतकम्मं संखेज्जाणि वस्ससहस्साणि हाइदूण अट्ठवस्सिगमंतोमुहुत्तब्भहियं जादं ।" इति ।

'घाईण' इत्यादि, 'घातिनां' मोहनीयस्योक्तत्वाद् मोहनीयवर्जशेषघातिकर्मणां ज्ञानावरणदर्शनावरणाऽन्तरायलक्षणानां त्रयाणां कर्मणां स्थितिसत्त्वं किट्टिकरणाद्धाचरमसमये संख्यवर्षसहस्राणि भवति । उक्तं च कषायप्राभृतचूर्णौ "तिण्हं घादिकम्माणं ठिदिसंतकम्मं संखेज्जाणि वस्ससहस्साणि ।" इति ।

'असंख०' इत्यादि, तत्र 'अन्येषाम्' अघातिकर्मणां=नाम-गोत्र-वेदनीयानां स्थितिसत्त्वम् 'असंख्यवत्सराः' असंख्येयानि वर्षसहस्राणि भवतीत्यर्थः । उक्तं च कषायप्राभृतचूर्णौ "णामागोदवेदणीयाणं ठिदिसंतकम्ममसंखेज्जाणि वस्ससहस्साणि ।" इति । घातित्रयस्याऽघातित्रयस्य चाऽश्वकर्णकरणाद्धाचरमसमयेऽनुक्रमं संख्येयवर्षसहस्रप्रमितमसंख्येयवर्षप्रमाणं च यत् स्थितिसत्त्वमासीत्, तत् प्रतिस्थितिघातकालेन हीनं भवत् संख्यातेषु स्थितिघातेषु गतेष्वपि यथाक्रमं संख्येयसहस्रवर्षमात्रमसंख्येयवर्षसहस्रप्रमितं चैव विद्यत इत्यर्थः ॥११६॥

समाप्तः किट्टिकरणाद्धाख्यः पञ्चमोऽधिकारः ।

चतुर्दशमार्गणानामुत्तरमार्गणासु बद्धदलस्य भजनीयाऽभजनीया च सत्ता (गाथाः–१०५–१०६–१०७–१०८–१०९–११०)

	१ गति	२ इन्द्रियम्	३ काय	४ योग	५ वेदः	६ कषायः	७ ज्ञानम्	८ सयम	९ दर्शनम्	१० लेश्या	११ भव्य	१२ सम्यक्त्वम्	१३ सज्ञी	१४ आहारकः	
यासु बद्धदल सत्ताया नियमतो विद्यते, ता —	मनुष्य तिर्यग्	एकेन्द्रिय पञ्चेन्द्रिय.	त्रसकायः	४मनोयो० ४वचो ,, १औदारिकः १तन्मिश्रः	नपुसकः	४ कषाया	मतिज्ञानम् श्रुत ,, मत्य ,, श्रुता ,,	अविरति सामायिक.	चक्षुदर्शनम् अचक्षुर्दनम्	६ लेश्या	भव्य.	मिथ्यात्वम् औपशमि० क्षायोपशमिकम् क्षायिकम्	सज्ञी असज्ञी	आहारक	
सर्वसख्यया	२	२	१	१०	१	४	४	२	२	६	१	४	२	१	४२
यासु बद्धदल सत्ताया विभाषया वर्तते, ताः—	नरक. सुरः	द्वीन्द्रियः त्रीन्द्रियः चतुरिन्द्रिय	पृथिवीकाय अप्कायः तेज.काय. वायुकाय. वनस्पति०	वैक्रियः तन्मिश्र आहारकः तन्मिश्र कार्मण.	स्त्रीवेदः पुरुषवेदः		अवधि० मन पर्या० विभङ्गज्ञानम्	देशविरतिः परिहार० छेदोप०	अवधिदर्शनम् १			मिश्रमार्गणा सास्वादनम्		अनाहारक.	
	२	३	५	५	२		३	३	१			२		१	२७
यासु बद्धदल सत्ताया नियमतो न विद्यते, ताः—							केवलज्ञानम्	सूक्ष्मस० यथाख्या०	केवलदर्शनम्		अभव्यः				
							१	२	१		१				५

सातसातादिपु बद्धदलिकस्य भजनीयाऽभजनीया च सत्ता (गाथा-१११-११२)

यत्र बद्धदलिकस्य सत्ता नियमात् भवति—

(१) सातवेदनीयोदय.
(२) असातवेदनीयोदयः
(३) पर्याप्तजीवभेद
(४) अपर्याप्तजीवभेद
(५) असंख्येया एकेन्द्रियभवाः

यत्र बद्धदलिकस्य सत्ता विकल्पेन भवति—

(१) सर्वलिङ्गानि
(२) अङ्गारादिकर्माणि
(३) शिल्पम्
(४) उत्कृष्टस्थिति
(५) उत्कृष्टानुभाग

एकत प्रभृति सख्येयेपु त्रसभवेपु बद्धदलिकस्य सत्ता भवति (गाथा—११२)

साम्प्रतं मनुष्यगत्यादिमार्गणासु सातोदयादिस्थानेषु च बद्धदलं सत्कर्मणि नियमतो यद् विद्यते, तद् सर्वकिट्टिषु प्रक्षिप्तं भवतीत्येतदभिधातुकाम आह

खवगाणं संते णियमत्तो कहियदलिअं तु वट्टेइ ।
सव्वट्ठिईसु तह सव्वासुं किट्टीसु णियमेणं ॥११३॥

क्षपकाणां सत्तायां नियमत कथितदलिकं तु वर्तते ।
सर्वस्थितिषु तथा सर्वासु किट्टिषु नियमेन ॥११३॥ इति पदसंस्कार. ।

'खवगाणं' इत्यादि, 'क्षपकाणां' किट्टिकाराणां किट्टिवेदकानां चेत्यर्थः, सत्तायां नियमतः 'कथितदलिकं' मनुष्यगत्यादिमार्गणासु सातोदयादिस्थानेषु च बद्धत्वेन कथितं प्रदेशाग्रं तु 'सर्वस्थितिषु' मोहनीयस्य जघन्यस्थितितः प्रभृत्युत्कृष्टस्थितिं यावत् सर्वस्थितिस्थानेषु तथा सर्वासु किट्टिषु लोभप्रथमाऽवान्तरकिट्टित आरभ्य क्रोधचरमाऽवान्तरकिट्टिं यावत् सर्वावान्तरकिट्टिषु 'नियमेन' अभजनया वर्तते । उक्तं च कषायप्राभृते

"एदाणि पुव्वबद्धाणि होंति सव्वेसु ट्ठिदिविसेसेसु ।
सव्वेसु चाणुभागेसु णियमसा सव्वकिट्टीसु ॥१॥इति ।

यासु मार्गणासु बद्धकर्मदलिकं भजनया भवति, तासु बद्धदलं जघन्यत एकस्थित्यामेकावान्तरकिट्टौ च विद्यते, तत एकोत्तरवृद्धिक्रमेणोत्कृष्टतः सर्वस्थितिषु सर्वावान्तरकिट्टिषु च विद्यत इत्यपि ज्ञातव्यम् ॥११३॥

किट्टिकरणाद्धायां वर्तमानो जीवः किं स्पर्धकानि वेदयते? उत किट्टीरप्यनुभवति? इत्याशङ्काव्युदासाय प्राह—

किट्टीकरणे पुव्वापुव्वाइं फड्डगाणि अणुहवइ ॥
पढमट्ठिईअ आवलिगासेसाए समत्ताद्धा ॥११४॥

किट्टिकरणे पूर्वापूर्वाणि स्पर्धकान्यनुभवति ।
प्रथमस्थित्यामावलिकाशेषायां समाप्ताद्धा ॥११४॥ इति पदसंस्कारः ।

'किट्टी०' इत्यादि, 'किट्टिकरणे' किट्टिकरणाद्धायां वर्तमानः क्षपकः 'पूर्वापूर्वाणि स्पर्धकानि' पूर्वस्पर्धकान्यपूर्वस्पर्धकानि च 'अनुभवति' वेदयते, किट्टीस्तु न वेदयते । यदभिहितं कषायप्राभृतचूर्णौ—"किट्टीओ करेंतो पुव्वफद्दयाणि अपुव्वफद्दयाणि च वेदेदि, किट्टीओ ण वेदयदि ।" इति । यथाऽश्वकर्णकरणाद्धायामपूर्वस्पर्धकानि कुर्वाणः क्षपकः पूर्वस्पर्धकैः सहाऽपूर्वस्पर्धकान्यपि वेदयति स्म, तथा किट्टिकरणाद्धायां किट्टीर्निर्वर्तयन् किट्टीर्न वेदयति, किन्तु किट्टिकरणाद्धायामपि पूर्ववत् पूर्वापूर्वस्पर्धकानि वेदयतीति फलितार्थः ।

सम्प्रति किट्टिकरणाद्धायाः समाप्तिमभिधत्ते-'पढमठिईअ' इत्यादि, 'प्रथमस्थितौ' पूर्वापूर्वस्पर्धकतया विद्यमानस्य संज्वलनक्रोधस्य प्रथमस्थित्यामावलिकाशेषायां 'समत्तद्धा' त्ति अद्धा=प्रस्तुतत्वात् किट्टिकरणाद्धा समाप्ता भवति। निगदितं च कषायप्राभृतचूर्णौ-"**किट्टीकरणद्धा णिट्ठायदि पढमट्ठिदीए आवलियाए सेसाए।**" इति॥११४॥

अथ किट्टिकरणाद्धाचरमसमये स्थितिबन्धं व्याजिहीर्षुराह

किट्टिकरणस्स चरिमे बंधो मोहस्स चउमासा।
अंतोमुहुत्तअहिया पराण संखियसहस्सवासाइं ॥११५॥(उद्गीतिः)

किट्टिकरणस्य चरमे बन्धो मोहस्य चतुर्मासा।
अन्तर्मुहूर्ताधिका परेषां सङ्ख्यसहस्रवर्षाणि॥११५॥ इति पदसंस्कारः।

'किट्टि०' इत्यादि, 'किट्टिकरणस्य' किट्टिकरणाद्धायाः 'चरमे' चरमसमये 'मोहस्य' संज्वलनचतुष्कस्य प्रत्येकं 'बन्धः' स्थितिबन्धोऽन्तर्मुहूर्ताधिकाश्चतुर्मासा भवति। व्याहारि च कषायप्राभृतचूर्णौ-"**किट्टीकरणद्धाए चरिमसमए संजलणाणं ठिदिबंधो चत्तारि मासा अंतोमुहुत्तब्भहिया।**" इति।

ननु गाथायां चतुर्मासा इति समस्तनिर्देशोऽसाधुः, यतो "**विशेषणं विशेष्येणैकार्थं कर्मधारयश्च**" (सिद्धहेम०३-१-९६) इति सूत्रेण कर्मधारयसमाससिद्धौ '**सङ्ख्या समाहारे च द्विगुश्चानाम्न्ययम्**" (सिद्धहेम०३-१-९९) इत्येतत्सूत्रारम्भो नियमार्थः। नियमाकारश्चायम् सङ्ख्यावाचि परेण नाम्ना समाहारसंज्ञातद्धितोत्तरपद एव समस्यते, नाऽन्यथा। तेन चत्वारो मासा इति चतुर्मासा इति समासो '**विशेषणं विशेष्येणैकार्थं कर्मधारयश्च**" (सिद्धहेम०३-१-९९) इत्यनेन सूत्रेणाऽपि न भवेत्, यथाऽष्टौ प्रवचनमातर इति चेत्, मैवम्, चतुःसङ्ख्यका मासा इति मध्यमपदलोपाच्चतुर्मासाः। अयं भावः आदौ चतुश्शब्दस्य सङ्ख्याशब्देन सह बहुव्रीहिसमासः, ततश्चतुःसङ्ख्यकशब्दस्य मासशब्देन कर्मधारयसमासो मध्यमपदलोपश्चेति न कश्चिद् दोषः। अश्वकर्णकरणाद्धायाश्चरमसमये योऽष्टवर्षप्रमाणः स्थितिबन्ध आसीत्, स प्रतिस्थितिबन्धाद्धं हीनो हीनतरो भवन् किट्टिकरणाद्धाचरमसमयेऽन्तर्मुहूर्ताधिकचतुर्मासप्रमाणो भवतीत्यर्थः।

'पराण' इत्यादि, 'परेषां' मोहनीयवर्जानां ज्ञानावरणादीनां षण्णां स्थितिबन्धः सङ्ख्यसहस्रवर्षाणि भवति। उक्तं च कषायप्राभृतचूर्णौ "**सेसाणं कम्माणं ठिदिबंधो संखेज्जाणि वस्ससहस्साणि।**" इति। अश्वकर्णकरणाद्धाचरमसमये यः सङ्ख्येयवर्षसहस्रप्रमाणः स्थितिबन्धः शेषकर्मणामासीत्, स सङ्ख्येयगुणेन हीनो हीनतरो भवन्निदानीमपि सङ्ख्येयवर्षसहस्रमात्रो भवति, सङ्ख्येयसहस्राणां सङ्ख्येयभेदत्वादित्यर्थः ॥११५॥

अथ किट्टिकरणाद्धाचरमसमये स्थितिसत्त्वं निगदितुकाम आह

ठिइसंतं मोहस्सऽडवासा अंतोमुहुत्तअब्भहिआ ।
घाईण संखवरिससहस्साणि असंखवच्छराऽन्नाणं ॥११६॥(गीतिः)

स्थितिसत्त्वं मोहस्याष्टवर्षा अन्तर्मुहूर्ताभ्यधिका ।
घातिनां संख्यवर्षसहस्राण्यसंख्यवत्सरा अन्येषाम् ॥११६॥ इति पदसंस्कारः ।

'ठिइसंतं' इत्यादि, तत्र 'मोहस्य' संज्वलनचतुष्कस्य स्थितिसत्त्वम् 'अन्तर्मुहूर्ताऽभ्यधिकाः' अन्तर्मुहूर्तकालेनाऽऽधिका अष्टवर्षा भवति, अश्वकर्णकरणाद्धाचरमसमये मोहनीयकर्मणो यत् स्थितिसत्त्वं संख्यातवार्षिकं भवति स्म, तत् संख्येयसहस्रस्थितिघातैर्घातितं सदिदानीमन्तर्मुहूर्ताधिकाष्टवर्षप्रमाणं जायत इत्यर्थः । उक्तं च कषायप्राभृतचूर्णौ–' चेव किट्टीकरणद्धाए चरिमसमये मोहणीयस्स ठिदिसंतकम्मं संखेज्जाणि वस्ससहस्साणि हाइदूण अट्ठवस्सिगमंतोमुहुत्तब्भहियं जादं ।" इति ।

'घाईण' इत्यादि, 'घातिनां' मोहनीयस्योक्तत्वाद् मोहनीयवर्जशेषघातिकर्मणां ज्ञानावरणदर्शनावरणाऽन्तरायलक्षणानां त्रयाणां कर्मणां स्थितिसत्त्वं किट्टिकरणाद्धाचरमसमये संख्यवर्षसहस्राणि भवति । उक्तं च कषायप्राभृतचूर्णौ "तिण्हं घादिकम्माणं ठिदिसंतकम्मं संखेज्जाणि वस्ससहस्साणि ।" इति ।

'असंख०' इत्यादि, तत्र 'अन्येषाम्' अघातिकर्मणां=नाम-गोत्र-वेदनीयानां स्थितिसत्त्वम् 'असंख्यवत्सराः' असंख्येयानि वर्षसहस्राणि भवतीत्यर्थः । उक्तं च कषायप्राभृतचूर्णौ "णामागोदवेदणीयाणं ठिदिसंतकम्ममसंखेज्जाणि वस्ससहस्साणि ।" इति । घातित्रयस्याऽघातित्रयस्य चाऽश्वकर्णकरणाद्धाचरमसमयेऽनुक्रमं संख्येयवर्षसहस्रप्रमितमसंख्येयवर्षप्रमाणं च यत् स्थितिसत्त्वमासीत्, तत् प्रतिस्थितिघातकालेन हीनं भवत् संख्यातेषु स्थितिघातेषु गतेष्वपि यथाक्रमं संख्येयसहस्रवर्षमात्रमसंख्येयवर्षसहस्रप्रमितं चैव विद्यत इत्यर्थः ॥११६॥

समाप्तः किट्टिकरणाख्यः पञ्चमोऽधिकारः ।

किट्टिकरणाद्धाचरमसमयमाश्रित्य चित्रम्

↑								↑								↑	
०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	* *
०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	
०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	*
०	०	०	०	०	०	०	०	द्वितीयस्थिति.	०	०	०	०	०	०	०		
०	सर्वं दलं किट्टितया	०	०	०	परिणतम्	०	०	०	०	०	०	३					**

*=समयोनद्व्यावलिकाबद्धनूतन-दलं किट्टितया न परिणतम्।

अन्तरकरणम्

/ ० ० ० ० ० ० ० ० /१
↓
२

↑ एतच्चिह्नमुपरितनीं स्थितिं सूचयति।

० ० ० एतानि शून्यानि कर्मदलिकानि सूचयन्ति।

१= आवलिकाप्रमाणा प्रथमस्थिति, तस्यां च पूर्वपूर्वस्पर्धकानि।

२= किट्टिकरणाद्धायाश्चरमसमयः।

(अ) तदानीं मोहनीयस्य स्थितिबन्धोऽन्तर्मुहूर्ताधिकाश्चत्वारो मासा (गाथा-११५)

(ब) तदानीं शेषकर्मणां स्थितिबन्ध संख्येयानि वर्षसहस्राणि। (गाथा-११५)

(स) तदानीं मोहनीयस्य स्थितिसत्त्वमन्तर्मुहूर्ताधिकाष्टवर्षप्रमितम्। (गाथा-११६)

(द) तदानीं घातिकर्मणां स्थितिसत्त्वं संख्यातवार्षिकम् (गाथा-११६)

(न) तदानीमघातिकर्मणां स्थितिसत्त्वमसंख्येयवर्षप्रमितं भवति। (गाथा-११६)

३= तदानीं समयोनद्व्यावलिकाबद्धनूतनदलमावलिकामात्रप्रथमस्थितिगतं च दलं वर्जयित्वा शेषं सर्वं मोहनीयदलं किट्टितया परिणमयति।

अथ "यथोद्देशं निर्देशः" इति न्यायेन क्रमप्राप्तं षष्ठमधिकारं किट्टिवेदनाद्धाख्यं विवर्णयिषुराह

तत्तो य कोहपढमं ओकड्ढित्तु करेइ पढमठिइं।
वेयइ बंधो मोहस्स उ चउमासा पराण पुव्वुत्तो ॥११७॥(गीतिः)

ततश्च क्रोधप्रथमामपकृष्य करोति प्रथमस्थितिम्।
वेदयति बन्धो मोहस्य तु चतुर्मासा परेषां पूर्वोक्त ॥११७॥इति पदसंस्कारः।

'तत्तो' इत्यादि, 'ततश्च' किट्टिकरणाद्धाचरमसमयाच्चाऽनन्तरं क्षपकः' क्रोधप्रथमां' क्रोधप्रथमसंग्रहकिट्टिमपकृष्य प्रथमास्थितिं 'करोति' निर्वर्तयति 'वेदयति' अनुभवति च। अत्र चशब्दाभावेऽपि चशब्दार्थः समुच्चयः प्रतीयते। यथा

अहरहर्नयमानो गामश्वं पुरुषं पशुम्।
वैवस्वतो न तृप्यति सुराया इव दुर्मदो ॥१॥

इत्यत्र चशब्दमन्तरेणाप्येकस्यां नयनक्रियायां गवादीनां समुच्चीयमानतया समुच्चयप्रतीतिरस्त्येव, तथा प्रस्तुतेऽपि क्षपकलक्षण एकस्मिन् कर्तरि करणवेदनक्रिययोः समुच्चयश्चशब्दं विनाऽपि प्रतीयत इति भावः। उक्तं च सप्ततिकाचूर्णौ—"**किट्टीकरणद्धाए निट्ठिदाए कोहेण पडिवण्णो सेकाले पढमकिट्टीदलियं बिदियठिदिगयं ओकड्ढेत्तु पढमठितियं करेइ वेदेइ य।**" इति।

इदमत्रहृदयम्—किट्टिकरणाद्धायां क्रोधादीनां या प्रभूताऽनुभागका तृतीया संग्रहकिट्टिरासीत्, सा किट्टिवेदकस्य प्रथमा संग्रहकिट्टिर्ज्ञातव्या, एवं किट्टिकारस्य या प्रथमा संग्रहकिट्टिरासीत्, सा किट्टिवेदकस्य तृतीया संग्रहकिट्टिर्बोद्धव्या, पश्चानुपूर्व्या संग्रहकिट्टीनां वेदनात्। न च किट्टिकरणाद्धायां या प्रथमसंग्रहकिट्टिरासीत्, सैवाऽत्र ग्रहीतव्या, विपर्यासस्य गौरवादिति वाच्यम्, विरोधोपलम्भात्। तथाहि—वक्ष्यत एकविंशत्यधिकशततमया (१२१) गाथया क्रोधादीनां वेद्यमानायाः संग्रहकिट्ट्या असंख्येयबहुभागा बध्यन्ते वेद्यन्ते चेति। तत्र बन्ध उदयश्चाऽनुभागमाश्रित्य प्रतिसमयमनन्तगुणहीनक्रमेण प्रवर्तेते। तेन किट्टिकारस्य या प्रभूतानुभागका तृतीया संग्रहकिट्टिः, सैवादौ वेदयितव्या, अन्यथा प्रथमसंग्रहकिट्टिवेदनाद्धायां पूर्णायामनन्तरसमये द्वितीयसंग्रहकिट्टिं वेदयंस्तस्या बहुसंख्येयभागान् बध्नीत वेदयेच्च। तथा च सति तात्कालिकौ बन्धोदयावनुभागमाश्रित्य पूर्वसमयतोऽनन्तगुणौ प्रसज्येताम्, किट्टिकारस्य प्रथमसंग्रहकिट्टितो द्वितीयसंग्रहकिट्ट्या अनन्तगुणत्वात्। न च तदिष्यते, प्रतिसमयमनन्तगुणविशुद्ध्या प्रवर्धमानस्य किट्टिवेदकस्य बन्धोदययोरनुभागमाश्रित्याऽनन्तगुणहीनत्वात्। न चाऽत्रादौ तृतीयसंग्रहकिट्टिं वेदयतीत्युच्यतामिति वाच्यम्, पूर्वमहर्षिभिः कषायप्राभृतचूर्णिकारसप्ततिकाचूर्णिकारादिभिः प्रथमं प्रथमसंग्रहकिट्टिं वेदयति, ततो द्वितीयां ततस्तृतीयामित्युक्तत्वाद् इति दिग्।

अथ किट्टिवेदनाद्धायाः प्रथमसमये द्वितीयस्थितिगतक्रोधप्रथमसंग्रहकिट्टितः प्रदेशाग्रं समाकृष्य प्रथमस्थितिं करोति। वेदनकालस्य पश्चानुपूर्व्या विशेषाधिकत्वेन वक्ष्यमाणत्वात् क्रोधवेदनकालस्य साधिकत्रिभागे क्रोधप्रथमसंग्रहकिट्टिवेदनकालतश्चाऽऽवलिकयाऽधिककाले क्रोधप्रथमसंग्रहकिट्ट्याः प्रथमस्थितिं करोति। तत्र दलनिक्षेपविधिश्चाऽयम्—उदयनिषेके स्तोकं दलं प्रक्षिपति, ततोऽनन्तरनिषेकेऽसंख्येयगुणं प्रक्षिपति। ततोऽप्यसंख्येयगुणं तृतीयनिषेके प्रक्षिपति। एवमसंख्येयगुणक्रमेण तावत् प्रक्षिपति, यावत् क्रोधप्रथमसंग्रहकिट्टिवेदनकालत आवलिकयाऽधिकां स्थितिं प्राप्नोति। ततो द्वितीयस्थितिगतप्रथमनिषेकेऽसंख्येयगुणं दलिकं प्रक्षिपति। तत ऊर्ध्वं विशेषहीनक्रमेण प्रक्षिपति। यस्मिन् समये क्रोधप्रथमसंग्रहकिट्टिप्रथमस्थितिं करोति, तस्मिन्नेव समये क्रोधप्रथमसंग्रहकिट्टिं वेदयत्यपि।

अथ किट्टिवेदनाद्धाप्रथमसमये स्थितिबन्धं भणति-'बंधो' इत्यादि, 'बन्धः' स्थितिबन्धः 'मोहस्य' मोहनीयकर्मणस्तु 'चतुर्मासाः' चातुर्मासिको भवति, प्राक्तनसमये योऽन्तर्मुहूर्ताऽधिकचातुर्मासिको जायते स्म, स इदानीमन्तर्मुहूर्तेन हीनो भूत्वा चातुर्मासिको जायत इत्यर्थः। 'परेषां' ज्ञानावरण-दर्शनावरणा-ऽन्तराय-नाम-गोत्र-वेदनीयरूपाणां कर्मणां बन्धः पूर्वोक्तो भवति, पञ्चदशाधिकशततमगाथया शेषकर्मणां संख्येयवर्षसहस्राणि यः स्थितिबन्धः प्रोक्तः, स किट्टिवेदनप्रथमसमयेऽपि संख्येयसहस्रवर्षाणि भवति, किन्तु पूर्वतः संख्येयगुणहीनो भवतीत्यर्थः। उक्तं च कषायप्राभृतचूर्णौ-"**किट्टीणं पढमसमयवेदगस्स संजलणाणं ठिदिबंधो चत्तारि मासा, णामगोदवेदणीयाणं चेव घादिकम्माणं ठिदिबंधो संखेज्जाणि वस्ससहस्साणि।**" इति-॥११७॥

किट्टिवेदनाद्धाप्रथमसमये प्रथमस्थितिमुक्त्वा सम्प्रति प्रथमस्थितौ द्वितीयस्थितौ च दलिकावस्थानं प्ररूपयिषुः संग्रहगाथां भणति

वेइज्जमाणकिट्टीअ दलमसंखगुणणाअ पढमठिईए।
चरिमणिसेगा बीयपढमे असंखगुणमुवरि तु विसेसूणं ॥११८॥ (गीतिः)

वेद्यमानकिट्ट्या दलमसंख्यगुणनया प्रथमस्थितौ।
चरमनिषेकाद् द्वितीयप्रथमेऽसंख्यगुणमुपरि तु विशेषोनम् ॥११८॥ इति पदसंस्कारः

'वेइज्ज०' इत्यादि, 'वेद्यमानकिट्ट्याः' या संग्रहकिट्टिर्वेद्यते, तस्याः 'प्रथमस्थितौ' आदिमस्थितौ 'दलं' प्रदेशाग्रम् 'असंख्यगुणनया' असंख्येयगुणकारेण भवतीति शेषः, असंख्येयगुणक्रमेण प्रथमस्थितौ दलिकस्य प्रक्षिप्तत्वात्, वेद्यमानसंग्रहकिट्ट्या उदयनिषेके स्तोकं दलं भवति, ततो द्वितीयनिषेकेऽसंख्येयगुणं भवति, ततोऽपि तृतीयनिषेकेऽसंख्येयगुणं भवति, एवमसंख्येयगुणक्रमेण तावद् वक्तव्यम्, यावद् वेद्यमानसंग्रहकिट्टिप्रथमस्थितेश्चरमनिषेक इत्यर्थः।

'चरिमणिसेगा' इत्यादि, 'चरमनिषेकात्' वेद्यमानसंग्रहकिट्टिप्रथमस्थितेश्चरमनिषेकतो 'द्वितीयप्रथमे' वेद्यमानसंग्रहकिट्टिद्वितीयस्थितिप्रथमनिषेके दलिकमसंख्येयगुणं भवति, प्रथमस्थितेर्यश्चरमनिषेकः, तस्योपर्यन्तरकरणं परित्यज्य द्वितीयस्थितेर्यः प्रथमनिषेकः, तस्मिन् प्रथमस्थितिचरमनिषेकतोऽसंख्येयगुणं दलं भवतीत्यर्थः। कथमेतदवसीयते? इति चेत्, उच्यते—वेद्यमानसंग्रहकिट्टिप्रदेशसत्कर्मणोऽसंख्येयभागमात्रं दलं द्वितीयस्थितितः संख्यातगुणहीनायां प्रथमस्थितौ यथाविभागं प्रक्षिप्तम्, सत्तागतदलाऽसंख्येयभागस्योत्कीर्णत्वात्। द्वितीयस्थितौ तु बह्वसंख्येयभागमात्रदलं द्वितीयस्थितेः संख्येयावलिकामात्रत्वेन प्रथमस्थितितः संख्यातगुणायां विशेषहीनक्रमेण तिष्ठति। तेन प्रथमस्थितिचरमनिषेकतो द्वितीयस्थितिप्रथमनिषेकेऽसंख्येयगुणं दलं भवति। किञ्च प्रथमस्थितिं कुर्वता प्रथमस्थितिचरमनिषेकतो द्वितीयस्थितिप्रथमनिषेकेऽसंख्येयगुणं दलिकं प्रक्षिप्तम्, तेनाऽपि सिध्यति—प्रथमस्थितिचरमनिषेकतो द्वितीयस्थितिप्रथमनिषेकेऽसंख्येयगुणं दलं भवतीति।

अथ द्वितीयस्थितेर्द्वितीयादिनिषेकेषु दलिकावस्थानं दर्शयति—'उवरिं' इत्यादि' 'उपरितु' वेद्यमानसंग्रहकिट्टिद्वितीयस्थितिप्रथमनिषेकस्योपरि तु 'विशेषोनं' विशेषहीनक्रमेण दलिकं भवति। इदमुक्तं भवति—वेद्यमानसंग्रहकिट्टिद्वितीयस्थितेः प्रथमनिषेकतो द्वितीयस्थितिद्वितीयनिषेके विशेषहीनं दलिकं भवति, ततोऽपि तृतीयनिषेके विशेषहीनं दलमवतिष्ठते, एवं विशेषहीनक्रमेण तावद्वक्तव्यम्, यावद् वेद्यमानसंग्रहकिट्टिद्वितीयस्थितेश्चरमनिषेकः। यदुक्तं कषायप्राभृतचूर्णौ **"जं किट्टिं वेदयदे, तिस्से उदयट्ठिदीए पदेसग्गं थोवं, विदियाए ट्ठिदीए पदेसग्गमसंखेज्जगुणं। एवमसंखेज्जगुणं जाव पढमट्ठिदीए चरिमट्ठिदि त्ति। तदो विदियट्ठिदीए जा आदिट्ठिदी, तीसे असंखेज्जगुणं, तदो सव्वत्थ विसेसहीणं।"** इति।

इयं तु संग्रहगाथा। संग्रहगाथा नाम संक्षेपगाथा, सर्वासां वेद्यमानकिट्टीनां दलिकावस्थानस्यैकयैव गाथया कथनात्। प्रकृते तु क्रोधप्रथमसंग्रहकिट्ट्या वेद्यमानत्वात् क्रोधप्रथमसंग्रहकिट्ट्याः प्रथमस्थितौ दलिकमसंख्येयगुणक्रमेण तिष्ठति, ततः प्रथमस्थितेश्चरमनिषेकतो द्वितीयस्थितेः प्रथमनिषेके-ऽसंख्येयगुणं तिष्ठति, ततो विशेषहीनक्रमेण तावद्वक्तव्यम्, यावत् क्रोधप्रथमसंग्रहकिट्टिद्वितीयस्थितेश्चरमनिषेकः। अयमर्थो यथास्थानं क्रोधद्वितीयादिवेद्यसंग्रहकिट्टिप्ररूपणावसरे भावनीयः।

अवेद्यमानसंग्रहकिट्ट्यास्तु प्रथमस्थित्यभावाद् द्वितीयस्थितिप्रथमनिषेकतः प्रभृति चरमनिषेकं यावत् प्रदेशाग्रं विशेषहीनक्रमेण तिष्ठति। तदेवं दर्शितं संग्रहकिट्टिष्वनन्तरोपनिधया दलिकावस्थानम्। सम्प्रति परम्परोपनिधया तत् प्रतिपाद्यते, सर्वासां वेद्यमानाऽवेद्यमानसंग्रहकिट्टीनां द्वितीयस्थितेश्चरमनिषेकतः प्रथमनिषेकेऽसंख्येयभागाधिकं दलं भवति, स्थितिसत्कर्मणो

वर्षपृथक्त्वमात्रत्वात् । इदमुक्तं भवति—द्वितीयस्थितिनिषेकेषु प्रदेशाग्रं विशेषहीनं तेन क्रमेण तिष्ठति, येन प्रथमनिषेकतः पल्योपमाऽसंख्येयभागे गते प्रदेशाग्रं द्विगुणहीनं भवेत् । अत्र तु स्थितिसत्कर्मणो वर्षपृथक्त्वमात्रत्वाच्चरमनिषेकः पल्योपमाऽसंख्येयभागस्याऽसंख्येयभाग एव गते प्राप्यते, तेन द्वितीयस्थितिप्रथमनिषेकगतप्रदेशाग्रतो द्वितीयस्थितिचरमनिषेकगतप्रदेशाग्रे विशोधिते शेषोऽसंख्येयभागः प्राप्यते, स च वर्षपृथक्त्वसमयभाजितपल्योपमाऽसंख्येयभागप्रमाणनिषेकभागहारेण द्वितीयस्थितिप्रथमनिषेकं विभज्य यल्लभ्यते, तन्मात्रो भवति । यदुक्तं कषायप्राभृते

"विदियट्ठिदिआदिपदा सुद्धं पुण होदि उत्तरपदं तु ।
सेसो असंखेज्जदिमो भागो तिस्से पदेसग्गे ॥१॥" इति ।

तथैव तच्चूर्णावपि—"विदियाए ट्ठिदीए उक्करिसगाए पदेसग्गं तिस्से चेव जहण्णिगादो ट्ठिदोदो सुद्धं सुद्धसेसं पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागपडिभागियं ।" इति ॥११८॥

किट्टिवेदनाद्धायाः प्रथमसमये स्थितिषु दलिकावस्थानं प्ररूप्य सम्प्रति वेद्यमानसंग्रहकिट्ट्यास्तदितरासां च प्रथमस्थितौ द्वितीयस्थितौ चाऽनुभागावस्थानं प्रतिपिपादयिपुराह

वेइज्जमाणकिट्टीए सव्वठिईसु होन्ति सव्वा किट्टी ।
नवरं उदये खलु मज्झिमाऽत्थि सव्वा पराण बिइयठिईए ॥११९॥
(आर्यागीतिः)

वेद्यमानकिट्ट्याः सर्वस्थितिषु भवन्ति सर्वाः किट्टयः ।
नवरमुदये खलु मध्यमाः सन्ति सर्वाः परासां द्वितीयस्थितौ ॥११९॥ इति पदसंस्कारः ।

'वेइज्ज०' इत्यादि, 'वेद्यमानकिट्ट्याः' वेद्यमानसंग्रहकिट्ट्याः 'सर्वस्थितिषु' सर्वेषु प्रथमस्थितिनिषेकेषु द्वितीयस्थितिनिषेकेषु च सर्वाः 'किट्टयो' अवान्तरकिट्टयो भवन्ति । सामान्येनाऽभिधायाऽपवादं दर्शयति—'नवरं' इत्यादि, नवरम् 'उदये' उदयनिषेके खलु 'मध्यमाः' असंख्येयभागप्रमाणास्तीव्रानुभागका मन्दानुभागकाश्च वर्जयित्वा शेषा अवान्तरकिट्टयः 'सन्ति' विद्यन्ते, असंख्येयभागप्रमाणाऽवान्तरकिट्टीनां मध्यमावान्तरकिट्टिरूपेण परिणतत्वात् । इदमुक्तं भवति-वेद्यमानसंग्रहकिट्ट्याः सर्वा अवान्तरकिट्टयो द्वितीयस्थितेरेकैकनिषेके भवन्ति, एकैकस्या अवान्तरकिट्ट्याः प्रदेशास्तस्मिंस्तिष्ठन्तीत्यर्थः । न च कश्चिद् द्वितीयस्थितिनिषेकस्तादृशोऽस्ति, यस्मिन् कस्याश्चिदवान्तरकिट्ट्याः प्रदेशा न भवेयुः । प्रथमस्थितौ त्वयं विशेषः—द्वितीयस्थितिगतसर्वाऽवान्तरकिट्टिभ्यः प्रदेशाग्रमुत्कीर्योदयसमयादारभ्य प्रथमस्थितिचरमनिषेकं यावदेकैकाऽवान्तर-

किट्टिप्रदेशान् प्रक्षिपति, किन्तूदयसमयेऽसंख्येयभागप्रमाणानां तीव्रानुभागकानां मन्दानुभागकानां चाऽवान्तरकिट्टीनां प्रदेशान् मध्यमावान्तरकिट्टिस्वरूपेण परिणमयति । एवं किट्टिवेदनाद्धाद्वितीयादिसमयेष्वप्युदये प्रविष्टानामसंख्येयभागप्रमाणानामवान्तरकिट्टीनां प्रदेशान् मध्यमावान्तरकिट्टिस्वरूपेण परिणमयति, तेनोदयनिषेके सर्वा अवान्तरकिट्टयो न भवन्ति; किन्तु बहुसंख्येयभागप्रमाणा मध्यमा भवन्ति, शेषप्रथमस्थितिनिषेकेषु तु वेद्यमानसंग्रहकिट्टिसर्वावान्तरकिट्टयो भवन्ति ।

न चोदयसमयेऽनुभागह्रासोऽसिद्ध इति वाच्यम्, कषायप्राभृतचूर्णिकारादीनां वचनप्रामाण्येन तस्य सिद्धत्वात् । उक्तं च कषायप्राभृतचूर्णिकारैः—"तदो तिस्से उदयावलियाए उदयसमयं मोत्तूण सेसेसु समएसु जा संगहकिट्टी वेदिज्जमाणिगा, तिस्से अंतरकिट्टीओ सव्वाओ ताव धरिज्जंति, जाव ण उदयं पविट्ठाओ त्ति । उदयं जाधे पविट्ठाओ; ताधे चेव तिस्से संगहकिट्टीए अग्गकिट्टिमादिं कादूण उवरिं असंखेज्जदिभागो जहण्णियं किट्टिमादिं कादूण हेट्ठा असंखेज्जदिभागो च मज्झिमकिट्टीसु परिणमदि ।" इति ।

अथाऽवेद्यमानसंग्रहकिट्टीनामनुभागावस्थानं प्ररूपयिषुराह—'सव्वा' इत्यादि, तत्र 'परासां' वेद्यमानसंग्रहकिट्टितोऽन्यासामवेद्यमानसंग्रहकिट्टीनामित्यर्थः, 'द्वितीयस्थितौ' द्वितीयस्थितिगतसर्वनिषेकेषु 'सर्वाः' अवेद्यमानसंग्रहकिट्टिसर्वावान्तरकिट्टयो भवन्ति, एकैकावान्तरकिट्टयाः प्रदेशा द्वितीयस्थितिगतैकैकनिषेके तिष्ठन्तीत्यर्थः । प्रथमस्थितेरभावात् प्रथमस्थितावयेद्यमानसंग्रहकिट्टयवान्तरकिट्टयो न भवन्ति ।

इयं तु संग्रहगाथा । तेन प्रकृते क्रोधप्रथमसंग्रहकिट्टया वेद्यमानत्वात् क्रोधप्रथमसंग्रहकिट्टयाः सर्वाऽवान्तरकिट्टयः सर्वेषु द्वितीयस्थितिनिषेकेषूदयनिषेकं च वर्जयित्वा सर्वेषु प्रथमस्थितिनिषेकेषु भवन्ति, उदयनिषेके पुनर्बहुसंख्येयभागप्रमाणा मध्यमा अवान्तरकिट्टयो भवन्ति । अवेद्यमानानां क्रोधद्वितीयादिसंग्रहकिट्टीनां द्वितीयस्थितिसर्वनिषेकेषु सर्वा अवान्तरकिट्टयो भवन्ति । एवं शेषसंग्रहकिट्टिवेदनप्ररूपणावसरेऽप्ययमर्थो भावनीयः । यदुक्तं कषायप्राभृतचूर्णौ—"कोधस्स पढमसंगहकिट्टिं वेदेंतस्स तिस्से संगहकिट्टीए एक्केक्का किट्टी विदियट्ठिदीसु सव्वासु पढमट्ठिदीसु च उदयवज्जासु एक्केक्का किट्टी सव्वासु ट्ठिदीसु । उदयट्ठिदीए पुण वेदिज्जमाणियाए संगहकिट्टीए जाओ किट्टीओ, तासिमसंखेज्जा भागा । सेसाणमवेदिज्जमाणिगाणं संगहकिट्टीणमेक्केक्का किट्टी सव्वासु विदियट्ठिदीसु, पढमट्ठिदीसु णत्थि ।" इति ॥११९॥

अथ किट्टिवेदनाद्धाप्रथमसमये मोहनीयस्य स्थितिसत्त्वमनुभागसत्त्वं चाभिधातुकामः प्राह—

ठिइसंतं मोहस्स वरिसट्ठगं देसघाइ रससंतं ।
णवरं समयूणावलियाए कोहस्स सव्वघाइ भवे ॥१२०॥ (गीतिः)

स्थितिसत्त्वं मोहस्य वर्षाष्टकं देशघाति रससत्त्वम् ।
नवरं समयोनावलिकायां क्रोधस्य सर्वघाति भवेत् ॥१२०॥इति पदसंस्कार ।

'ठिइसंतं' इत्यादि, तत्र 'मोहस्य' किट्टिवेदनाद्धाप्रथमसमये संज्वलनक्रोध-मान-माया-लोभात्मकमोहनीयस्य स्थितिसत्त्वं वर्षाष्टकं भवति, प्राक्तनसमयेऽन्तर्मुहूर्त्ताधिकान्यष्टौ वर्षाणि यत् स्थितिसत्त्वमासीत्, तत् किट्टिवेदनकालप्रथमसमयेऽष्टवार्षिकं जायत इत्यर्थः । शेषकर्मणां तु स्थितिसत्त्वं पूर्ववदवसेयम् । तथाहि-मोहनीयवर्जघातित्रयस्य स्थितिसत्त्वं संख्येयसहस्रवर्षप्रमाणमघातित्रयस्य चाऽसंख्येयानि वर्षाणि भवति । किन्तु पूर्वत एकस्थितिखण्डेन हीनं भवति । उक्तं च कषायप्राभृतचूर्णौ-"**किट्टीकरणे णिट्ठिदे किट्टीणं पढमसमयवेदगस्स णामागोदवेदणीयाणं ट्ठिदिसंतकम्ममसंखेज्जाणि वस्साणि, मोहणीयस्स ठिदिसंतकम्ममट्ठ वस्साणि । तिण्हं घादिकम्माणं ठिदिसंतकम्मं संखेज्जाणि वस्ससहस्साणि ।**"इति।

अथ मोहनीयस्याऽनुभागसत्त्वं भणति-'देसघाइ' इत्यादि, तत्र संज्वलनक्रोध-मान-माया-लोभात्मकमोहस्य 'रससत्त्वम्' अनुभागसत्त्वं देशघाति भवति । तत्राऽपि द्विसमयोनद्वयावलिकाबद्धनूतनाऽनुभागः सत्कर्मणि स्पर्धकरूपेण विद्यते, किट्टिकरणकाले किट्टिरूपेण बन्धाभावात् शेषः सर्वोऽनुभागः किट्टिस्वरूपो वर्तते । यदप्यधायि कषायप्राभृतचूर्णौ-"**संजलणाणं जे दो आवलियबंधा दुसमयूणा, ते देसघादी, तं पुण फद्दयगदं । सेसं किट्टिगदं ।**" इति । क्रोधस्यानुभागसत्तायामपवादं दर्शयति-'णवरं' इत्यादि, नवरं 'समयोनावलिकायां' एकसमयन्यूनोदयावलिकायां 'क्रोधस्य' संज्वलनक्रोधस्य रससत्त्वं सर्वघाति भवति, तत्र पुरातनाऽनुभागसत्कर्मणो विद्यमानत्वेन सर्वघातित्वे विरोधाभावात् । यत् प्रत्यपादि कषायप्राभृतचूर्णौ-"**अणुभागसंतकम्मं कोहसंजलणस्स जं संतकम्मं समयूणाए उदयावलियाए छिद्दिल्लिगाए तं सव्वघादि ।**" इति । भावार्थः पुनरयम्-किट्टिकरणाद्धाया द्विचरमसमयं यावत् किट्टितया परिणतसकलप्रदेशाग्रतः स्पर्धकगतसकलप्रदेशाग्रमसंख्येयगुणं भवति, स्पर्धकगतगतसकलप्रदेशसत्कर्मणोऽसंख्येयभागमात्रस्य दलस्य किट्टितया परिणतत्वात् । किट्टिकरणाद्धाचरमसमये तु स्पर्धकगतं सर्वं दलं किट्टितया परिणमयति, नवरं क्रोधस्य विमुच्यमानप्रथमस्थितिचरमाऽऽवलिकामात्रस्थितिगतं संज्वलनचतुष्कस्य च समयोनाऽऽवलिकाद्वयेन बद्धनूतनदलगतमनुभागसत्कर्म किट्टितया न परिणमयति, उदयावलिकागतत्वाद् नूतनबद्धत्वाच्च ।

किट्टिवेदनाद्धायाः प्रथमसमये क्रोधस्य प्राङ्मुक्ताऽऽवलिकायाः प्रथमनिषेकगतं दलं संक्रमेण किट्टितया परिणंस्यते । तेन किट्टिवेदनाद्धायाः प्रथमसमये क्रोधस्य समयोन-

विमुच्यमानावलिकागतमनुभागसत्कर्म स्पर्धकस्वरूपेण सर्वघाति विद्यते, उदयावलिकायां प्राक्तनाऽनुभागस्य सद्भावेन सर्वघातित्वसंभवात् । तथा संज्वलनचतुष्कस्य द्विसमयोनाऽऽवलिकाद्वयबद्धनूतनदलगताऽनुभागसत्कर्म स्पर्धकरूपेण देशघाति विद्यते, किट्टिकरणाद्धायां देशघातिस्पर्धकानां वन्धात् । शेषं सर्वमनुभागसत्कर्म किट्टिगतं भवति ॥१२०॥

एतर्हि किट्टिवेदनाद्धाप्रथमसमये किट्टीनां वन्धं वेदनं चाऽभिधित्सुराह

कोहाइपढमसंगहकिट्टीए बहुअसंखभागमिआ ।
मज्झिमकिट्टी बज्झंते वेइज्जंति कोहपढमाए ॥१२१॥(गीतिः)

क्रोधादिप्रथमसंग्रहकिट्टया बह्वसङ्ख्यभागमिता ।
मध्यमकिट्टयो बध्यन्ते वेद्यन्ते क्रोधप्रथमाया ॥१२१॥ इति पदसंस्कारः ।

'कोहाइ०' इत्यादि, किट्टिवेदनाद्धाप्रथमसमये 'क्रोधादिप्रथमसंग्रहकिट्टयाः' क्रोध-मान-माया-लोभ-लक्षणानां संज्वलनकषायाणां प्रथमसंग्रहकिट्टयाः 'बह्वसङ्ख्यभागमिताः' बहुसंख्येयभागप्रमाणाः 'मध्यमकिट्टयो' मध्यमावान्तरकिट्टयो बध्यन्ते, क्रोधादीनां शेषसंग्रहकिट्टीनामवान्तरकिट्टयो न बध्यन्ते । क्रोधप्रथमायाः'संज्वलनक्रोधप्रथमसंग्रहकिट्टया बहुसंख्येयभागप्रमाणा मध्यमकिट्टयो 'वेद्यन्ते' अनुभूयन्ते, शेषाः संग्रहकिट्टयो न वेद्यन्ते । प्रतिपादितं च श्रीकषायप्राभृतचूर्णौ—"ताहे **कोहस्स पढमाए संगहकिट्टीए असंखेज्जा भागा उदिण्णा, एदिस्से चेव कोहस्स पढमाए संगहकिट्टीए असंखेज्जा भागा बज्झंति, सेसाओ दो संगहकिट्टीओ ण बज्झंति, ण वेदिज्जंति । ×××किट्टीणं पढमसमयवेदगस्स माणस्स पढमाए संगहकिट्टीए किट्टीणमसंखेज्जा भागा बज्झंति, सेसाओ संगहकिट्टीओ ण बज्झंति, एवं मायाए, एवं लोभस्स वि ।**" इति ।

भावार्थः पुनरयम्—किट्टिवेदनाद्धायाः प्रथमसमयेऽपूर्वस्पर्धकानि न बध्नाति, किन्तु सर्वजघन्याऽवान्तरकिट्टिपर्यवसानास्तत्तत्कषायप्रथमसंग्रहकिट्टयवान्तरकिट्टीनामेकासंख्येयभागप्रमाणा अधस्तनीर्मन्दानुभागका अवान्तरकिट्टीस्तथा सर्वोत्कृष्टावान्तरकिट्टिपर्यवसाना असंख्येयभागप्रमाणा उपरितनीः प्रभूतानुभागका अवान्तरकिट्टीर्वर्जयित्वा शेषा मध्यमाः संज्वलनचतुष्टयस्य प्रथमसंग्रहकिट्टयवान्तरकिट्टीर्बध्नाति, तत्तदवान्तरकिट्टिगतानुभागतो हीनानुभागका अधिकानुभागकाश्चावान्तरकिट्टीर्न बध्नातीत्यर्थः । एवं क्रोधस्य प्रथमसंग्रहकिट्टिसत्त्वावान्तरकिट्टीनामसंख्येयभागप्रमाणा अधस्तनीर्मन्दानुभागका असंख्येयभागमात्रीश्चोपरितनीः प्रभूतानुभागका अवान्तरकिट्टीर्मुक्त्वा शेषा मध्यमाऽवान्तरकिट्टीर्वेदयति । इदन्त्ववधेयम्—क्रोधप्रथमसंग्रहकिट्टया बध्यमानाऽवान्तरकिट्टयो वेद्यमानाऽवान्तरकिट्टितो विशेषहीना भवन्ति, बन्धत उदयस्याऽनन्तगुणत्वेन बध्यमानाऽवान्तरकिट्टितो वेद्यमानाऽवान्तरकिट्टीनां विशेषाधिकत्वस्य वक्ष्यमाणत्वात् ॥१२१॥

मत्र्रे किट्टिगतं दलम्

क्रोधप्रथमसग्रहकिट्टेर्द्वितीयस्थिति

अन्तरकरणम्

क्रोधप्रथमसग्रहकिट्टिवेदनाद्धाचरमसमयः

३

१क्रोधप्रथमसग्रहकिट्टिवेदनाद्धाप्रथमसमय

सङ्केतस्पष्टीकरणम्

१=क्रोधप्रथमसग्रहकिट्टिवेदनाद्धाप्रथमसमय उदयसमयादारभ्याऽसख्येयगुणक्रमेण स्ववेदनकालत आवलिकाधिकायां स्थितौ दल प्रक्षिप्य प्रथमस्थितिं करोति। (गाथा–११७)

२=क्रोधप्रथमसग्रहकिट्टिप्रथमस्थिति, सा च क्रोधकिट्टिवेदनकालस्य साधिकत्रिभागमाना प्रथमसग्रहकिट्टिवेदनकालतश्चाऽऽवलिकयाऽधिका। (गाथा–११७)

३=क्रोधप्रथमसग्रहकिट्टिवेदनाद्धा

(अ) क्रोधप्रथमसग्रहकिट्टिवेदनप्रथमसमये सञ्ज्वलनचतुष्कस्य स्थितिबन्धश्चत्वारो मासा। (गा०-११७)

(ब) तदानीं शेषकर्मणा स्थितिबन्ध. सख्येयवर्षसहस्राणि भवति (गाथा ११७)

४=क्रोधप्रथमसंग्रहकिट्टिदलमुदयसमयादारभ्य प्रथमस्थितिचरमसमयं यावदसंख्येयगुणक्रमेणाऽवतिष्ठते। (गाथा ११८)

५=द्वितीयस्थितिप्रथमनिषेकः, तस्मिश्च प्रथमस्थितिचरमनिषेकतोऽसख्येयगुणं दलमवतिष्ठते (गाथा ११८), तत परं विशेषहीनक्रमेण भवति।

६=द्वितीयस्थितिगतक्रोधप्रथमसग्रहकिट्टिसर्वावान्तरकिट्टिभ्य प्रदेशा आकृष्य प्रथमस्थितौ प्रक्षिप्यन्ते। (गाथा ११९)

७=असंख्येयभागप्रमाणास्तीव्रानुभागका अवान्तरकिट्टयस्तथा

८–असख्येयभागप्रमाणा मन्दानुभागका अवान्तरकिट्टयो मध्यमावान्तरकिट्टिस्वरूपेण परिणता.। एवं प्रतिसमयमुदयसमये मध्यमावान्तरकिट्टिस्वरूपेण परिणमन्ति। (गाथा ११९)

क्रोधप्रथमसग्रहकिट्टिवेदनाद्धाप्रथमसमये मोहनीयस्य स्थितिसत्त्वमष्टवर्षप्रमितं भवति। (गाथा १२०)

९=क्रोधप्रथमसग्रहकिट्टिवेदनाद्धाप्रथमसमये समयोनावलिकागतमनुभागसत्त्व सर्वघाति भवति। (गा०-१२०)

१०=उदयसमये स्पर्धकगतानुभाग सक्रमेण किट्टितया परिणत। (गाथा १२०)

११=क्रोधप्रथमसग्रहकिट्टिवेदनाद्धाप्रथमसमये द्विसमयोनावलिकाद्वयबद्धनूतनदल देशघातिस्पर्धकगत तिष्ठति। क्रोधप्रथमसग्रहकिट्टिवेदनाद्धाप्रथमसमयत प्रभृति क्रोध-मान-माया-लोभानां प्रथमसग्रहकिट्टेर्बहुसख्येयभागप्रमाणा अवान्तरकिट्टयो बध्यन्ते। (गाथा १२१)

साम्प्रतमध उपरि च विमुच्यमानाऽवान्तरकिट्टीनां मध्यमाऽवान्तरकिट्टीनां चाऽल्पबहुत्वं वक्तुकाम आह—

कोहपढमाअ हेट्ठिमणुभया थोवा तओ हविज्जन्ति
अहिआ हेट्ठिमुदिण्णा तत्तो उवरिल्लअणुभया अहिआ ॥१२२॥(गीतिः)
तत्तो उवरिमुदिण्णा विसेसअहिया हवन्ति तत्तो वि ।
होन्ति असंखेज्जगुणा उभयाउ अवन्तरा किट्टी ॥१२३॥

क्रोधप्रथमाया अधस्तनानुभय्य * स्तोकास्ततो भवन्ति ।
अधिका अधस्तनोदीर्णास्तत उपरितनानुभय्योऽधिकाः ॥१२२॥
तत उपरितनोदीर्णा विशेषाधिका भवन्ति ततोऽपि ।
भवन्त्यसंख्येयगुणा उभय्यो-ऽवान्तराः किट्टयः ॥१२३॥ इति पदसंस्कारः ।

'कोह०' इत्यादि, इह खल्वधस्तनीरसंख्येयभागप्रमाणा अवान्तरकिट्टीरुपरितनीश्चाऽसंख्येयभागप्रमाणा अवान्तरकिट्टीर्विमुच्य शेषा अवान्तरकिट्टयो बध्यन्ते, तथैवाऽधस्तनीरसंख्येयभागप्रमिता उपरितनीश्चा-ऽसंख्येयभागप्रमाणा अवान्तरकिट्टीः परित्यज्य शेषा अवान्तरकिट्टयो वेद्यन्ते । किन्तु बध्यमानावान्तरकिट्टितो वेद्यमानावान्तरकिट्टयो विशेषाधिका भवन्ति । तत्र या अवान्तरकिट्टयो न बध्यन्ते, नापि स्वरूपतो वेद्यन्ते, ता अनुभय्य उच्यन्ते । यद्यपि सर्वकिट्टिगतदलमाकृष्य प्रथमस्थितिं करोति, तथापि कियतीश्चिदुपरितन्योऽधस्तन्यश्चावान्तरकिट्टय उदयनिषेके मध्यमावान्तरकिट्टिस्वरूपेण परिणमन्ति । तत्र मध्यमावान्तरकिट्टिरूपेण परिणता मन्दानुभागका अधस्तनाऽनुभय्यो-ऽवान्तरकिट्टय उच्यन्ते, तीव्राऽनुभागकास्तूपरितनाऽनुभय्योऽवान्तरकिट्टयो निगद्यन्ते । अधस्तन्यो मन्दानुभागका या अवान्तरकिट्टयः केवलं वेद्यन्ते, न बध्यन्ते, ता अधस्तनोदीर्णा अवान्तरकिट्टयो व्यवह्रियन्ते । उपरितन्यस्तीव्रानुभागका या अवान्तरकिट्टयः केवलं वेद्यन्ते, न बध्यन्ते, ता उपरितनोदीर्णा अवान्तरकिट्टयो व्यपदिश्यन्ते । या मध्यमा अवान्तरकिट्टयो बध्यन्ते वेद्यन्ते च, ता उभय्योऽवान्तरकिट्टय उच्यन्ते । अथ गाथोक्ताऽल्पबहुत्वं व्याख्यायते—'क्रोधप्रथमायाः' क्रोधप्रथमसंग्रहकिट्टया अधस्तनाऽनुभय्योऽवान्तराः किट्टयः 'स्तोकाः' अल्पा भवन्ति, ताश्च क्रोधप्रथमसंग्रहकिट्टिसर्वावान्तरकिट्टीनामसंख्येयभागप्रमाणा मन्दानुभागका न बध्यन्ते, नापि स्वस्वरूपेण वेद्यन्ते । 'ततः' अधस्तनानुभयावान्तरकिट्टितो 'अधिकाः' विशेषाधिका अधस्तनोदीर्णा अवान्तरकिट्टयो भवन्ति, ताश्चावान्तरकिट्टयः केवलमनुभूयन्ते, न बध्यन्ते । 'ततः' अधस्तनोदीर्णावान्तरकिट्टित उपरितनानुभय्योवान्तरकिट्टयो 'अधिकाः' विशेषाधिका भवन्ति, ताश्च तीव्रानुभागका अवान्तरकिट्टयो न बध्यन्ते, नापि स्वस्वरूपेण वेद्यन्ते । 'ततः' उपरितनानुभयावान्तरकिट्टित उपरितनोदीर्णा अवान्तरकिट्टयो

★ अयं प्रयोग सिद्धहेमव्याकरणाद्यनुसारेण बोध्यः । पाणिनीया हि उभयशब्दाद् ङीप्रत्ययं नेच्छन्ति, ततस्तन्मतानुसारेणाऽधस्तनानुभया इति प्रयोगो भवेत् ।

विशेषाधिका भवन्ति, ताश्चावान्तरकिट्टयः केवलं वेद्यन्ते, न बध्यन्ते । 'ततोऽपि' उपरितनोदीर्णावान्तरकिट्टितोऽपि, उभयः=या अवान्तरकिट्टयो बध्यन्ते वेद्यन्ते च, ताः, असंख्येयगुणा भवन्ति, उपरितनोदीर्णाऽवान्तरकिट्टीनां क्रोधप्रथमसंग्रहकिट्टिगतसकलाऽवान्तरकिट्टयसंख्येयभागप्रमाणत्वात्, एतासां च क्रोधप्रथमसंग्रहकिट्टिगतसकलाऽवान्तरकिट्टिबहुसंख्येयभागप्रमाणत्वात् । गुणकारश्चात्र पल्योपमाऽसंख्येयभागमात्रः । उक्तं च कषायप्राभृतचूर्णौ–"पढमाए संगहकिट्टीए हेट्ठदो जाओ किट्टीओ ण वज्झंति, ण वेदिज्जंति, ताओ थोवाओ । जाओ किट्टीओ वेदिज्जंति, ण वज्झंति, ताओ विसेसाहियाओ । तिस्से चेव पढमाए संगहकिट्टीए उवरि जाओ किट्टीओ ण वज्झंति, ण वेदिज्जंति, ताओ विसेसाहियाओ । उवरि जाओ वेदिज्जंति, ण वज्झंति, ताओ विसेसाहियाओ । मज्झे जाओ किट्टीओ वज्झंति च वेदिज्जंति च, ताओ असंखेज्जगुणाओ ।" इति ॥१२२-१२३॥

अथ किट्टिवेदनाद्धाप्रथमसमयात्प्रभृति मोहनीयस्याऽनुभागाऽपवर्तनामुत्कृष्टानुभागबन्धोदयाल्पबहुत्वं च व्याजिहीर्षुराह

मोहस्सऽणुभागाण अणुसमयोवट्टणा गुरू किट्टी ।
गोमुत्तियाअ उदये बंधेऽणुखणं अणंतगुणहीणा ॥१२४॥ (गीतिः)

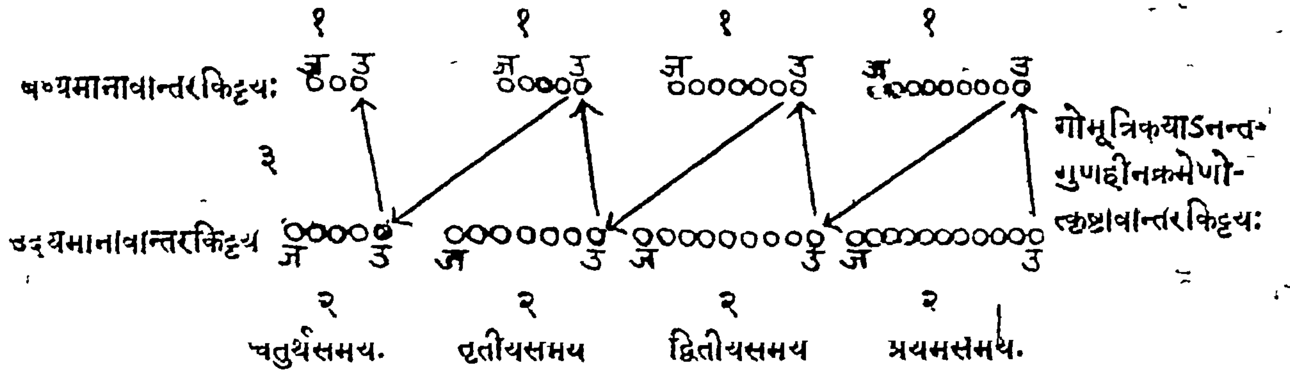
मोहस्याऽनुभागानामनुसमयाऽपवर्तना गुरू किट्टिः ।
गोमूत्रिकयोदये बन्धेऽनुक्षणमनन्तगुणहीना ॥१२४॥ इति पदसंस्कारः ।

'मोहस्स०' इत्यादि, 'मोहस्य' किट्टिवेदनाद्धाप्रथमसमयतः प्रभृति मोहनीयकर्मणोऽनुभागानामनुसमयापवर्तना भवतीत्युपस्कारः । निरूपितं च कषायप्राभृतचूर्णौ–"किट्टीणं पढमसमयवेदगप्पहुडि मोहणीयस्स अणुभागाणमणुसमयोवट्टणा ।" इति । अयम्भावः–पूर्वं किट्टिकरणाद्धायां किट्टीः कुर्वतः क्षपकस्य रसघातोऽन्तर्मुहूर्तकालेन भवति स्म, इतः प्रभृति संग्रहकिट्टिभेदेन यो द्वादशविधः किट्टिस्वरूपोऽनुभागोऽस्ति, तस्य समये समयेऽनन्तगुणहान्या घातो भवति, स घातोऽनुसमयापवर्तना व्यपदिश्यते । ज्ञानावरणादिकर्मणां तु पूर्ववदन्तर्मुहूर्तकालेनाऽनुभागघातो जायते । तथा सप्तानामपि स्थितिघातः पूर्ववत् प्रवर्तते ।

'गुरू' इत्यादि, 'गुरुः किट्टिः' किट्टिवेदनाद्धायाः प्रथमसमयतः प्रभृत्युत्कृष्टावान्तरकिट्टिर्गोमूत्रिकयोदये बन्धे च 'अनुक्षणं' प्रतिसमयमनन्तगुणहीना भवति । इदमुक्तं भवति-किट्टिवेदनाद्धायाः प्रथमसमये क्रोधप्रथमसंग्रहकिट्टया या अनन्ता मध्यमा अवान्तरकिट्टय उदयन्ति, तासु या सर्वोत्कृष्टाऽवान्तरकिट्टिः, सा प्रभूताऽनुभागका भवति । ततः किट्टिवेदनाद्धायाः प्रथम एव समये क्रोधप्रथमसंग्रहकिट्टया या अनन्ता मध्यमा अवान्तरकिट्टयो बध्यन्ते, तासु या सर्वोत्कृष्टाऽवान्तरकिट्टिः, साऽनन्तगुणहीना भवति । ततो द्वितीयसमय उदययुत्कृष्टाऽवान्तरकिट्टिरनन्तगुणहीना भवति । ततो-

ऽपि द्वितीय एव समये बन्धयुत्कृष्टाऽवान्तरकिट्टिरनन्तगुणहीना भवति। ततोऽपि तृतीयसमय उदय उत्कृष्टाऽवान्तरकिट्टिरनन्तगुणहीना भवति। ततस्तृतीयस्मिन्नेव समये बन्ध उत्कृष्टाऽवान्तरकिट्टिरनन्तगुहीना भवति। एवं गोमूत्रिकया तावद्वक्तव्यम्, यावत् किट्टिवेदनाद्धायाश्चरमसमयः। तत्र गोः—बलिवर्दः, तस्या-ऽध्वनि गच्छतो वक्रतयेतस्ततः पतिता गोमूत्रधारा गोमूत्रिका निगद्यते, यथा गोमूत्रिका वक्राकारेण वामभागतो दक्षिणभागे दक्षिणभागतश्च वामभागे पतति, तथोत्कृष्टावान्तरकिट्टिरप्यनन्तगुणहीनत्वेनोदयतो बन्धे बन्धतश्चोदये तिष्ठति। तेनाऽनन्तगुणहीन-क्रमो गोमूत्रिकोपमया दर्शितः। प्रत्यपादि च कषायप्राभृतचूर्णौ— "पढमसमयकिट्टीवेदगस्स कोहकिट्टी उदये उक्कस्सिया बहुगी, बंधे उक्कस्सिया अणंतगुणहीणा। विदियसमये उदये उक्कस्सिया अणंतगुणहीणा, बंधे उक्कस्सिया अणंतगुणहीणा। एवं सव्विस्से किट्टीवेदगद्धाए।" इति ॥१२४॥

कथा बन्धोदयावान्तरकिट्टीनामुत्कृष्टरसमाश्रित्य चित्रम्



सङ्केतस्पष्टीकरणम्

ज=जघन्यावान्तरकिट्टि.।

उ=उत्कृष्टावान्तरकिट्टि।

←=एतच्चिह्नमनन्तगुणहीनतामावेदयति।

१—बध्यमानावान्तरकिट्टयः स्तोका.।

२—बध्यमानावान्तरकिट्टित उदयमानावान्तरकिट्टयो विशेषाधिका।

३=एवमग्रेऽपि बन्धोदययोर्गोमूत्रिकयाऽनन्तगुणहीनक्रमेण तत्तत्समयोत्कृष्टावान्तरकिट्टिर्वाच्या।

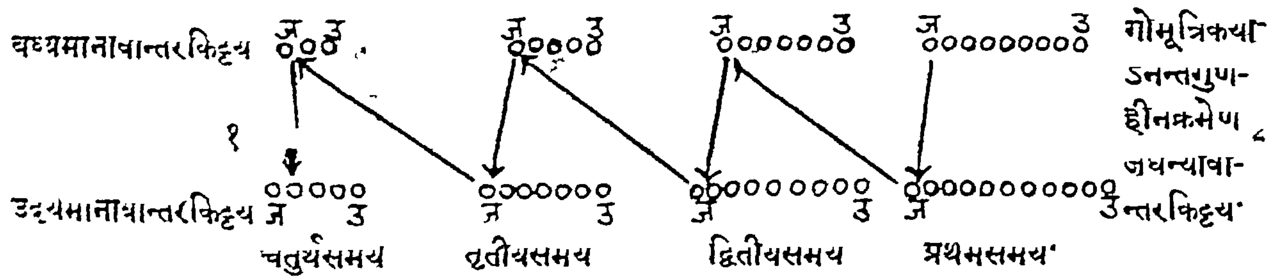
अथ किट्टिवेदनाद्धायां बन्धोदयजघन्यावान्तरकिट्ट्यल्पबहुत्वमवान्तरकिट्टिघातं च वक्तुकामः प्राह

गोमुत्तीअ पडिक्खणं बंधे उदये अणंतगुणहीणा।
हरसा णासइ संगहकिट्टीणुवरिमअसंखंसं ॥१२५॥

गोमूत्रिकया प्रतिक्षणं बन्धयुदयेऽनन्तगुणहीना।
हरसा नाशयति संग्रहकिट्टीनामुपरितनाऽसंख्यांशम् ॥१२५॥इति पदसंस्कारः।

'गोमुत्तीअ' इत्यादि, गोमूत्रिकया 'प्रतिक्षणं' प्रतिसमयं बन्धे उदये च अनन्तगुणहीना 'ह्रस्वा' जघन्याऽवान्तरकिट्टिर्भवति । इदमुक्तं भवति-किट्टिवेदनाद्धायाः प्रथमसमये क्रोधस्य या मध्यमा अवान्तरकिट्टयो बध्यन्ते, तासु या सर्वजघन्याऽनुभागकाऽवान्तरकिट्टिर्भवति, सा प्रभूताऽनुभागका भवति, ततः किट्टिवेदनाद्धायाः प्रथम एव समये क्रोधस्य या मध्यमा अवान्तरकिट्टय उदयन्ति, तासु या सर्वजघन्यानुभागकावान्तरकिट्टिः साऽनन्तगुणहीना भवति । ततः किट्टिवेदनाद्धाया द्वितीयसमये बन्धे सर्वजघन्याऽवान्तरकिट्टिरनन्तगुणहीना भवति, ततोऽपि द्वितीय एव समय उदये सर्वजघन्याऽवान्तरकिट्टिरनन्तगुणहीना भवति, एवं गोमूत्रिकया तावद्वक्तव्यम्, यावत् किट्टिवेदनाद्धायाश्चरमसमयः । यथा गोमूत्रिका वक्राकारेण वामभागतो दक्षिणभागे पतति, दक्षिणभागतश्च वामभागे प्रपतति, तथा जघन्याऽवान्तरकिट्टिरप्यनन्तगुणहीनत्वेन बन्धत उदयमुदयतश्च बन्धेऽवतिष्ठते । तेना-ऽनन्तगुणहीनक्रमो गोमूत्रिकोपमया दर्शितः । यगादि च कषायप्राभृतचूर्णौ- "पढमसमए बंधे जहण्णिया किट्टी तिव्वाणुभागा, उदये जहण्णिया किट्टी अणंतगुणहीणा । विदियसमये बंधे जहण्णिया किट्टी अणंतगुणहीणा, उदये जहण्णिया अणंतगुणहीणा । एवं सव्विस्से किट्टीवेदगद्धाए समये समये णिव्वग्गणाओ जहण्णियाओ वि य ।" इति ।

गोमूत्रिकया बन्धोदयावान्तरकिट्टीनां जघन्यरसमाश्रित्य चित्रम्



संकेतस्पष्टीकरणम्
ज=जघन्यावान्तरकिट्टि ।
उ=उत्कृष्टावान्तरकिट्टि ।
←=एतच्चिह्नमनन्तगुणहीनतामावेदयति ।
१=एवमग्रेऽपि बन्धोदयोर्गोमूत्रिकयाऽनन्तगुणहीनक्रमेण तत्तत्समयजघन्यावान्तरकिट्टिर्वक्तव्या ।

अथाऽनन्तरोक्तगाथया प्रतिपादिताया मोहनीयाऽनुभागानामनुसमयापवर्तनायाः फलं दर्शयति-'णासइ' इत्यादि, तत्र 'संग्रहकिट्टीनां' द्वादशानां संग्रहकिट्टीनामुपरितनाऽसङ्ख्यांशं 'नाशयति' विघातयति, किट्टिवेदनाद्धाप्रथमसमये द्वादशसंग्रहकिट्टीनां तीव्रानुभागका असंख्येयभागप्रमाणा अनन्ता अवान्तरकिट्टीरपवर्त्य मन्दानुभागकाऽवान्तरकिट्टिस्वरूपेण स्थापयतीति तात्पर्यम् । अत्रापि च कषायप्राभृतचूर्णौ "किट्टीणं पढमसमयवेदगो बारसण्हं पि संगह-

किट्टीणमग्गमादिं कादूण एक्केक्किस्से संगहकिट्टीए असंखेज्जदिभागं विणासेइ।" इति।

एवं द्वितीयादिसमयेष्वप्यसंख्येयभागप्रमाणास्तीव्रानुभागका अवान्तरकिट्टीर्घातयति ॥१२५॥

ननु कस्याः संग्रहकिट्टया दलं कुत्र संक्रमयति, ? किं सर्वत्र, उताऽस्ति तत्र कश्चिद् विशेषः ? इति पृष्ट उत्तरयति

संगहकिट्टीण दलं हेट्ठे संकामए ण उण उप्पिं।
संकामइ तास दलं तावं जाव सगहेट्ठिमा पढमा ॥१२६॥ (गीतिः)

संग्रहकिट्टीनां दलमधस्तात् संक्रमयति न पुनरुपरि।
संक्रमयति तासां दलिकं तावद् यावत् स्वाधस्तना प्रथमा ॥१२६॥ इति पदसंस्कारः।

'संगह०' इत्यादि, किट्टिवेदकः 'संग्रहकिट्टीनां' द्वादशानां संग्रहकिट्टीनां 'दलं' प्रदेशाग्रमधस्तात् संक्रमयति, न पुनरुपरि। नन्वधस्तात् किं सर्वत्र संक्रमयति ? उताऽस्ति कश्चित् विशेषः ? इत्यत आह-'संकामइ' इत्यादि, तत्र 'तासां' द्वादशसंग्रहकिट्टीनां दलं तावत् संक्रमयति, यावत् स्वाधस्तना 'प्रथमा' प्रथमसंग्रहकिट्टिः, न ततोऽप्यधस्तात्। अत्र तत्तत्कषायस्य द्वितीयस्यां तृतीयस्यां च संग्रहकिट्टावपवर्तनासंक्रमेण दलं सङ्क्रमयति, परप्रथमसंग्रहकिट्टौ तु यथाप्रवृत्तसंक्रमेण, बध्यमानप्रकृतीनां परप्रकृतौ यथाप्रवृत्तसंक्रमसद्भावात्। तद्यथा-क्रोधप्रथमसंग्रहकिट्टयाः प्रदेशाग्रं क्रोधस्य द्वितीयसंग्रहकिट्टौ तथा तृतीयसंग्रहकिट्टयामपवर्तनासंक्रमेण मानस्य च प्रथमसंग्रहकिट्टौ यथाप्रवृत्तसंक्रमेण संक्रमयति, न ततोऽप्यधस्तान्मानद्वितीयादिसंग्रहकिट्टिषु। क्रोधस्य द्वितीयसंग्रहकिट्टिप्रदेशाग्रमपवर्तनासंक्रमेण क्रोधस्य तृतीयसंग्रहकिट्टौ मानस्य च प्रथमसंग्रहकिट्टौ यथाप्रवृत्तसंक्रमेण संक्रमयति, न ततोऽधस्तात्। क्रोधस्य तृतीयसंग्रहकिट्टया दलं यथाप्रवृत्तसंक्रमेण मानस्य प्रथमसंग्रहकिट्टावेव संक्रमयति, नान्यत्र। एवं मानस्य प्रथमसंग्रहकिट्टयाः प्रदेशाग्रमपवर्तनासंक्रमेण मानस्य द्वितीयसंग्रहकिट्टौ तथा तृतीयसंग्रहकिट्टौ मायायाश्च प्रथमसंग्रहकिट्टौ यथाप्रवृत्तसंक्रमेण संक्रमयति, नान्यत्र। मानस्य द्वितीयसंग्रहकिट्टया दलमपवर्तनासंक्रमेण मानस्य तृतीयसंग्रहकिट्टौ मायायाश्च प्रथमसंग्रहकिट्टौ यथाप्रवृत्तसंक्रमेण संक्रमयति। मानस्य तृतीयसंग्रहकिट्टिदलं यथाप्रवृत्तसंक्रमेण मायायाः प्रथमसंग्रहकिट्टयामेव संक्रमयति।

मायायाः प्रथमसंग्रहकिट्टया दलमपवर्तनासंक्रमेण मायाया द्वितीयसंग्रहकिट्टौ तथा तृतीयसंग्रहकिट्टौ लोभस्य च प्रथमसंग्रहकिट्टौ यथाप्रवृत्तसंक्रमेण संक्रमयति, न ततोऽधस्तात्। मायाया द्वितीयसंग्रहकिट्टयाः प्रदेशाग्रमपवर्तनासंक्रमेण मायायास्तृतीयसंग्रहकिट्टौ लोभस्य च प्रथमसंग्रहकिट्टयां यथाप्रवृत्तसंक्रमेण संक्रमयति। मायातृतीयसंग्रहकिट्टयाः प्रदेशाग्रं यथाप्रवृत्तसंक्रमेण लोभप्रथमसंग्रहकिट्टावेव संक्रमयति।

लोभस्य प्रथमसंग्रहकिट्टयाः प्रदेशाग्रमपवर्तनासंक्रमेण लोभस्य द्वितीयसंग्रहकिट्टौ तृतीयसंग्रहकिट्टौ च संक्रमयति । लोभस्य द्वितीयसंग्रहकिट्टया दलमपवर्तनासंक्रमेण लोभस्य तृतीयसंग्रहकिट्टावेव संक्रमयति । लोभतृतीयसंग्रहकिट्टयाः प्रदेशाग्रमन्यत्र कुत्रचिदपि न संक्रमयति, आनुपूर्वीसंक्रमसद्भावात् किट्टि वेदकानां च मोहनीयस्योद्वर्तनाभावात् ॥१२६॥

अथ संक्रम्यमाणप्रदेशनियमं दर्शयति

जं संगहकिट्टिं अणुहवए तयणंतराअ इयरत्तो ।
संकामइ दलिअं संखगुणं अप्पबहुअं भणिमो ॥१२७॥

यां संग्रहकिट्टिमनुभवति तदनन्तरायामितरत ।
संक्रमयति दलिक संख्यगुणमल्पबहुत्व भणाम ॥१२७॥इति पदसंस्कारः ।

'जं' इत्यादि, यां संग्रहकिट्टिमनुभवति, तदनन्तरायां संग्रहकिट्टौ 'इतरतः' इतरसंग्रहकिट्टौ संक्रम्यमाणप्रदेशाग्रतः संख्यगुणं 'दलिकं' प्रदेशाग्रं संक्रमयति । शेषासु संग्रहकिट्टिषु संक्रम्यमाणदलस्य प्रमाणं वक्ष्यमाणाऽल्पबहुत्वेन व्यक्तीभविष्यति । अथाऽल्पबहुत्वं प्रतिजानीते—'अप्प०' इत्यादि, 'अल्पबहुत्वं' संक्रम्यमाणप्रदेशानां स्तोकबहुत्वं 'भणामः' निरूपयामः । क्रोधद्वितीयादिसंग्रहकिट्टीनां कति प्रदेशान् मानप्रथमादिसंग्रहकिट्टिषु संक्रमयतीति शङ्कासम्बन्धिनिर्णयप्रतिपादनपरमल्पबहुत्वं प्ररूपयाम इत्यर्थः ॥१२७॥

साम्प्रतं प्रतिज्ञातमेव प्राह

कोहविइयतइयत्तो माणगपढमाअ माणगतिगत्तो ।
मायापढमाए मायाअ तिगत्तो य लोहपढमाए ॥१२८॥ (गीतिः)
लोहपढमाउ तव्विइयाए ताउ चिअ तइयाए ।
संकामेइ पएसा विसेसअहिअक्कमेण तत्तो वि ॥१२९॥ (उद्गीतिः)
कोहपढमाउ माणपढमाअ संखेज्जगुणिआ तो ।
तइयाअ विसेसहिआ तो संखगुणा च कोहविइयाए ॥१३०॥(उद्गीतिः)

क्रोधद्वितीयतृतीयाभ्या मानप्रथमायां मानत्रिकात् ।
मायाप्रथमाया मायायास्त्रिकाच्च लोभप्रथमायाम् ॥१२८॥
लोभप्रथमायास्तद्द्वितीयस्यां तस्या एव तृतीयस्याम्
संक्रमयति प्रदेशान् विशेषाधिकक्रमेण ततोऽपि ॥१२९॥
क्रोधप्रथमाया मानप्रथमायां सख्येयगुणितांस्तत ।
तृतीयस्यां विशेषाधिकास्तत सख्यगुणाश्च क्रोधद्वितीयस्याम् ॥१३०॥इति पदसंस्कारः ।

'कोहविइयतइयत्तो' इत्यादि, 'क्रोधद्वितीयतृतीयाभ्यां' क्रोधस्य द्वितीयसंग्रहकिट्टितः तृतीयसंग्रहकिट्टितश्च 'मानप्रथमायां' मानस्य प्रथमसंग्रहकिट्टौ, ततोऽपि 'मानत्रिकात्' मानस्य प्रथमसंग्रहकिट्टितो द्वितीयसंग्रहकिट्टितस्तृतीयसंग्रहकिट्टितश्च 'मायाप्रथमायां' मायाप्रथमसंग्रहकिट्टौ, ततोऽपि 'मायायास्त्रिकाच्च' मायायाः प्रथमसंग्रहकिट्टितो द्वितीयसंग्रहकिट्टितस्तृतीयसंग्रहकिट्टितश्च 'लोभप्रथमायां' लोभस्य प्रथमसंग्रहकिट्टौ, ततोऽपि 'लोभप्रथमायाः' लोभस्य प्रथमसंग्रहकिट्टितः 'तद्द्वितीयस्यां' लोभद्वितीयसंग्रहकिट्टौ 'तस्या एव' लोभप्रथमसंग्रहकिट्टित एव पञ्चम्यन्ततत्पदेन लोभप्रथमसंग्रहकिट्ट्याः परामर्शात्, 'तृतीयस्यां' लोभस्य तृतीयसंग्रहकिट्टौ विशेषाधिकक्रमेण प्रदेशान् संक्रमयति। 'तत्तो वि' इत्यादि, 'ततोऽपि' लोभप्रथमसंग्रहकिट्टौ संक्रम्यमाणेभ्यः प्रदेशेभ्योऽपि 'क्रोधप्रथमायाः' क्रोधस्य प्रथमसंग्रहकिट्टितः 'मानप्रथमायां' मानस्य प्रथमसंग्रहकिट्टौ 'संख्येयगुणितान्' संख्येयगुणान् प्रदेशान् संक्रमयति। 'ततः' क्रोधप्रथमसंग्रहकिट्टित एव 'तृतीयस्यां' क्रोधतृतीयसंग्रहकिट्टौ विशेषाधिकान् प्रदेशान् संक्रमयति। 'ततः' क्रोधप्रथमसंग्रहकिट्टित एव 'क्रोधद्वितीयस्यां' क्रोधस्य द्वितीयसंग्रहकिट्टौ संख्यगुणांश्च प्रदेशान् संक्रमयति।

इदमुक्तं भवति—किट्टिवेदकाद्धायाः प्रथमसमये क्रोधस्य द्वितीयसंग्रहकिट्ट्याः प्रदेशाग्रं यथाप्रवृत्तसंक्रमेण मानस्य प्रथमसंग्रहकिट्टौ सर्वस्तोकं संक्रमयति। ततो विशेषाधिकं क्रोधस्य तृतीयसंग्रहकिट्ट्या दलं यथाप्रवृत्तसंक्रमेण मानस्य प्रथमसंग्रहकिट्टौ संक्रमयति, मन्दानुभागकायां संग्रहकिट्टौ प्रदेशाग्रस्याधिकत्वेन पूर्वपदापेक्षया संक्रम्यमाणदलस्याधिक्यस्य न्याय्यत्वात्। ततोऽपि विशेषाधिकं मानस्य प्रथमसंग्रहकिट्ट्याः प्रदेशाग्रं यथाप्रवृत्तसंक्रमेण मायायाः प्रथमसंग्रहकिट्टौ संक्रमयति। ननु चतुर्नवतितमप्रभृतिगाथासु मानस्य प्रथमसंग्रहकिट्टौ प्रदेशाग्रं स्तोकं भवति, ततो विशेषाधिकं मानस्य द्वितीयसंग्रहकिट्टौ भवति। ततो विशेषाधिकं मानस्य तृतीयसंग्रहकिट्टौ प्रदेशाग्रं भवति। ततो विशेषाधिकं क्रोधस्य द्वितीयसंग्रहकिट्टौ दलं भवति; ततोऽपि विशेषाधिकं दलं क्रोधस्य तृतीयसंग्रहकिट्टौ भवतीति स्तोकबहुत्वमुक्तम्। अत्र पुनः प्रदेशसंक्रमप्ररूपणाऽवसरे मानतृतीयसंग्रहकिट्टितोऽपि विशेषाधिकप्रदेशकायाः क्रोधद्वितीयसंग्रहकिट्ट्याः प्रदेशाग्रं यथाप्रवृत्तसंक्रमेण मानप्रथमसंग्रहकिट्टौ स्तोकं संक्रमयति। ततस्तत्रैव क्रोधतृतीयसंग्रहकिट्ट्या दलं विशेषाधिकं यथाप्रवृत्तसंक्रमेण संक्रम्य ततो विशेषाधिकं मानस्य प्रथमसंग्रहकिट्ट्या दलं यथाप्रवृत्तसंक्रमेण मायायाः प्रथमसंग्रहकिट्टौ संक्रमयति। इदं च नोपपद्यते, अल्पतरप्रदेशसत्ताकमानप्रथमसंग्रहकिट्ट्या अधिकं दलं मायाप्रथमसंग्रहकिट्टौ संक्रमयति बहुप्रदेशसत्ताकक्रोधतृतीयसंग्रहकिट्ट्याश्च दलं स्तोकं मानप्रथमसंग्रहकिट्टौ संक्रमयतीति युक्तिविरोधाद्, इति चेत्, मैवम्, तथास्वाभाव्यात् कुत्रचित् प्रदेशसंक्रम आधारानुरूपो भवति, कुत्रचिदाधेयाऽनुरूपो भवति, क्वचित् पुनरुभयानुरूपो भवति। अत्राऽऽधारानुरूपः प्रदेशसंक्रमः प्रवर्तते। तेन क्रोधतृतीयसंग्रहकिट्टिसंक्रम्यमाणदलपतद्ग्रहरूपाऽऽधारमानप्रथमसंग्रहकिट्टिप्रदेशसत्कर्मापेक्षया मानप्रथमसंग्रहकिट्टिसंक्र-

म्यमाणदलपतद्ग्रहलक्षणायामायाप्रथमसंग्रहकिट्टिप्रदेशसत्कर्मणो विशेषाधिकत्वात् प्रदेशसंक्रमो विशेषाधिकः सिध्यति । किञ्च पूर्वमहर्षिवचनप्रामाण्यादप्यस्योपपद्यते, आगमोपपत्तिगम्यत्वात् तत्त्वस्य । यदुक्तमध्यात्मोपनिषदि

"अनर्थायैव नार्थाय जातिमायाश्च युक्तयः ।
हन्तो हन्तीति वचने प्राप्ताप्राप्तविकल्पवत् ॥१॥
ज्ञायेरन् हेतुवादेन पदार्था यद्यतीन्द्रियाः ।
कालेनैतावता प्राज्ञैः कृतः स्यात् तेषु निश्चयः ॥२॥
आगमोपपत्तिश्च सम्पूर्णं दृष्टिलक्षणम् ।
अतीन्द्रियाणामर्थानां सद्भावप्रतिपत्तये ॥३॥" इति ।

एवमग्रेऽपि लोभप्रथमसंग्रहकिट्टिदलं लोभद्वितीयसंग्रहकिट्टौ संक्रम्यमाणदलतो लोभतृतीयसंग्रहकिट्टौ विशेषाधिकं संक्रम्यते तथा क्रोधप्रथमसंग्रहकिट्टिप्रदेशाग्रं मानप्रथमसंग्रहकिट्ट्यां संक्रम्यमाणदलतः क्रोधतृतीयसंग्रहकिट्टौ विशेषाधिकं संक्रम्यत इति वक्ष्यते, तत्राऽपीत्थमेव भावनीयम् ।

अथ मायायाः प्रथमसंग्रहकिट्टौ मानस्य प्रथमसंग्रहकिट्ट्याः संक्रम्यमाणप्रदेशतो मानस्य द्वितीयसंग्रहकिट्ट्या दलं यथाप्रवृत्तसंक्रमेण मायायाः प्रथमसंग्रहकिट्टौ विशेषाधिकं संक्रमयति, ततो मायाप्रथमसंग्रहकिट्टौ संक्रम्यमाणमानद्वितीयसंग्रहकिट्टिप्रदेशाग्रतो मानस्य तृतीयसंग्रहकिट्ट्या दलं यथाप्रवृत्तसंक्रमेण मायायाः प्रथमसंग्रहकिट्टौ विशेषाधिकं संक्रमयति । ततो मायायाः प्रथमसंग्रहकिट्टिदलं यथाप्रवृत्तसंक्रमेण लोभस्य प्रथमसंग्रहकिट्टौ विशेषाधिकं संक्रमयति । ततो मायाया द्वितीयसंग्रहकिट्टिप्रदेशाग्रं यथाप्रवृत्तसंक्रमेण लोभस्य प्रथमसंग्रहकिट्टौ विशेषाधिकं संक्रमयति । ततो विशेषाधिकं मायायास्तृतीयसंग्रहकिट्ट्या दलिकं यथाप्रवृत्तसंक्रमेण लोभस्य प्रथमसंग्रहकिट्टौ संक्रमयति । ततो लोभस्य प्रथमसंग्रहकिट्ट्याः प्रदेशाग्रमपवर्तनासंक्रमेण लोभस्य द्वितीयसंग्रहकिट्टौ विशेषाधिकं संक्रमयति, सर्वत्र प्रदेशसत्कर्मणो विशेषाधिकत्वात् ।

ननु क्रोधद्वितीयादिसंग्रहकिट्टीनां दलं मानादीनां प्रथमसंग्रहकिट्टौ यथाप्रवृत्तसंक्रमेण संक्रमयति, अत्र पुनर्लोभप्रथमसंग्रहकिट्ट्या दलं लोभद्वितीयसंग्रहकिट्टौ पतद्ग्रहत्वाभावादपवर्तनासंक्रमेण संक्रमयति, तर्हि यथाप्रवृत्तसंक्रमभागहारत उत्कर्षणापकर्षणभागहारस्याऽसंख्येयगुणहीनत्वाद् यथाप्रवृत्तसंक्रमेण संक्रम्यमाणदलतोऽपवर्तनासंक्रमेण संक्रम्यमाणदलमसंख्येयगुणं स्यात्, विशेषाधिकं कुत उच्यते ? इति चेत्, भण्यते-एतत्समीचीनं भागहारविवक्षया, किन्तु नाऽत्र भागहारो विवक्षितः, अपि तु विशोधिमाहात्म्याद् यथाप्रवृत्तसंक्रमभागहार उत्कर्षणापकर्षणभागहारानुसारेण प्रवर्तते । कथमेतदवसीयते ? इति चेत्, उच्यते अनेनाऽल्पबहुत्वेनास्मिन्

प्रकारेण उत्कर्षणापकर्षणभागहारानुसारेण यथाप्रवृत्तसंक्रमभागहारः प्रवर्तत इति सिध्यति । यतोऽत्र मायातृतीयसंग्रहकिट्टितो लोभप्रथमसंग्रहकिट्टिप्रदेशसत्कर्मणो विशेषाधिकत्वेन पूर्वपदतो लोभप्रथम-संग्रहकिट्ट्याः प्रदेशाग्रं लोभस्य द्वितीयसंग्रहकिट्टौ विशेषाधिकं संक्रमयति, अन्यथाऽसंख्येयगुणं स्यात् ।

लोभद्वितीयसंग्रहकिट्टौ संक्रम्यमाणलोभप्रथमसंग्रहकिट्टिदलतोऽपि लोभस्य प्रथमसंग्रहकिट्ट्या एव दलं लोभस्य तृतीयसंग्रहकिट्टौ विशेषाधिकं संक्रमयति, ततः क्रोधप्रथमसंग्रहकिट्ट्याः प्रदेशाग्रं मानस्य प्रथमसंग्रहकिट्टौ संख्येयगुणं संक्रमयति, लोभप्रथमसंग्रहकिट्टिप्रदेशसत्कर्मतः क्रोधप्रथम-संग्रहकिट्टिप्रदेशसत्कर्मणस्त्रयोदशगुणत्वेन क्रोधप्रथमसंग्रहकिट्टिसंक्रम्यमाणप्रदेशाग्रस्य संख्यात-गुणत्वोपलम्भात् ।

ततः क्रोधप्रथमसंग्रहकिट्टेः प्रदेशाग्रं क्रोधस्यैव तृतीयसंग्रहकिट्टौ विशेषाधिकं संक्रमयति ।

ततोऽपि क्रोधस्य प्रथमसंग्रहकिट्ट्या दलं क्रोधस्य द्वितीयसंग्रहकिट्टौ संख्येयगुणं संक्रमयति । कथमेतदवसीयते ? इति चेत्, उच्यते—आकर्षणपतद्ग्रहतोऽस्य पतद्ग्रहस्य विशेषहीनत्वेऽपि वेद्यमानसंग्रहकिट्टिसमनन्तरसंग्रहकिट्टौ संक्रम्यमाणदलस्य संख्येयगुणतायाः सप्तविंशत्य-धिकशततमगाथयोक्तत्वात् पूर्वपदतः संख्येयगुणं क्रोधप्रथमसंग्रहकिट्टिदलं क्रोधद्वितीय-संग्रहकिट्टौ संक्रमयति । प्रत्यपादि च कषायप्राभृतचूर्णौ—"पढमसमयकिट्टीवेदगस्स कोहस्स विदियकिट्टीदो माणस्स पढमसंगहकिट्टीए संकमदि पदेसग्गं थोवं । कोहस्स तदियकिट्टीदो माणस्स पढमाए संगहकिट्टीए संकमदि पदेसग्गं विसेसा-हियं । माणस्स पढमादो संगहकिट्टीदो मायाए पढमकिट्टीए संकमदि पदेसग्गं विसेसाहियं । माणस्स विदियादो संगहकिट्टीदो मायाए पढमसंगहकिट्टीए संकमदि पदेसग्गं विसेसाहियं । माणस्स तदियादो संगहकिट्टीदो मायाए पढमसंगहकिट्टीए संकमदि पदेसग्गं विसेसाहियं । मायाए पढमसंगहकिट्टीदो लोभस्स पढमसंगहकिट्टीए संकमदि पदेसग्गं विसेसाहियं । मायाए विदिया-दो संगहकिट्टीदो लोभस्स पढमाए संगहकिट्टीए संकमदि पदेसग्गं विसेसा-हियं । मायाए तदियादो संगहकिट्टीदो लोभस्स पढमाए संगहकिट्टीए संकमदि पदेसग्गं विसेसाहियं । लोभस्स पढमकिट्टीदो लोभस्स चेव विदियसंगहकिट्टीए संकमदि पदेसग्गं विसेसाहियं । लोभस्स चेव पढमसंगहकिट्टीदो तस्स चेव तदियसंगहकिट्टीए संकमदि पदेसग्गं विसेसाहियं । कोहस्स पढमसंगहकिट्टीदो माणस्स पढमसंगहकिट्टीए संकमदि पदेसग्गं संखेज्जगुणं । कोहस्स चेव पढम-संगहकिट्टीदो कोहस्स चेव तदियसंगहकिट्टीए संकमदि पदेसग्गं विसेसाहियं ।

कोहस्स पढम(संगह)किट्टीदो कोहस्स चेव विदियसंगहकिट्टीए संकमदि पदेसग्गं संखेज्जगुणं।" इति। पश्यन्तु पाठका यन्त्रकम्-१८।

अथ गणितविभागः।

विवक्षितसंग्रहकिट्टितो यद्दलं संक्रमेणाऽन्यसंग्रहकिट्टिं गच्छति, तद् व्ययदलं व्यपदिश्यते। अन्यसंग्रहकिट्टितः संक्रमेण विवक्षितसंग्रहकिट्टौ यद्दलमागच्छति, तद् आयदलमुच्यते। तत्र क्रोधप्रथमसंग्रहकिट्टावन्यसंग्रहकिट्टितो दलं नागच्छति, तेन तस्यामायदलं न भवति, लोभतृतीयसंग्रहकिट्टितश्चाऽन्यां संग्रहकिट्टिं दलं न गच्छति, तेन तस्यां व्ययदलं न भवति।

किट्टिकरणाद्धायां द्वादशसंग्रहकिट्टीनां सर्वाऽवान्तरकिट्टयः प्रदेशाग्रमाश्रित्य गोपुच्छाकारेण तिष्ठन्ति रेग, सर्वमन्दानुभागकलोभतृतीयसंग्रहकिट्टिप्रथमाऽवान्तरकिट्टित आरभ्य सर्वतीव्राऽनुभागकां क्रोधप्रथमसंग्रहकिट्टिचरमावान्तरकिट्टिं यावत् सर्वाऽवान्तरकिट्टयोऽनन्ततमभागहीनक्रमेण तिष्ठन्ति रोत्यर्थः। अथ किट्टिवेदनाद्धाप्रथमसमयतः प्रभृति द्वादशसंग्रहकिट्टिदलस्य गमनागमनदर्शनात् पौर्वसमयिकः स्वस्थानगोपुच्छाकारो विनश्यति। तत्र स्वस्थानगोपुच्छाकारो नाम प्रदेशापेक्षयैकचयहान्या विवक्षितसंग्रहकिट्टिसम्बन्ध्युत्तरोत्तराऽवान्तरकिट्टया अवस्थानम्। तथा पञ्चविंशत्युत्तरशततमगाथया द्वादशसंग्रहकिट्टयुपरितनाऽसंख्येयभागमात्रावान्तरकिट्टिनाशस्याभिहितत्वात् परस्थानगोपुच्छाकारो विनश्यति। परस्थानगोपुच्छाकारो नाम विवक्षितसंग्रहकिट्टिचरमाऽवान्तरकिट्टितस्तदनन्तरोपरितनसंग्रहकिट्टिप्रथमाऽवान्तरकिट्टौ दलस्यैकचयेन हीनतयाऽवस्थानम्। किट्टिवेदनाद्धायाः प्रथमसमय उभयोः स्वस्थानपरस्थानगोपुच्छाकारयोर्नाशो जायते। तदेवं स्वस्थानगोपुच्छाकारः संक्रमतो व्ययदलेन विनश्यति, परस्थानगोपुच्छाकारश्चैकैकसंग्रहकिट्टयुपरितनाऽसंख्येयभागमात्रीणामवान्तरकिट्टीनां घाततो प्रणश्यति। न च स्वस्थानगोपुच्छाकारः संक्रमतो व्ययदलेन नष्ट आयदलेन पुनः कुतो न विरच्यते? इति वाच्यम्, आयव्ययदलयोः समानत्वाभावात्। तथाहि कस्याश्चिद् संग्रहकिट्टयामायदलतो व्ययदलमधिकं भवति, कस्यांचिद्धीनं भवति, परस्यां पुनरायदलमेव न भवति, तेनाऽऽयदलेन स्वस्थानगोपुच्छाकारः पुनर्न विरच्यते।

अथ स्वस्थानगोपुच्छाकाररचना भण्यते

एकैकसंग्रहकिट्टेरुपरितना असंख्येयभागप्रमाणा या अवान्तरकिट्टयोऽनुसमयाऽपवर्तनया घात्यन्ते, तासां दलं घातदलमुच्यते। घात्यमानाश्चाऽवान्तरकिट्टयो घाताऽवान्तरकिट्टयो व्यवह्रियन्ते। अथ घातदलतो व्ययदलप्रमाणं दलं गृहीत्वा तत्तत्संग्रहकिट्टीनां घाताऽवान्तरकिट्टिरहितासु सर्वास्ववान्तरकिट्टिषु व्ययदले दत्ते तत्तत्संग्रहकिट्टिसर्वावान्तरकिट्टिष्वेकगोपुच्छाकारेण दलं दृश्यते।

यन्त्रकम्-१८ (चित्रम्-१८)

द्वादशसंग्रहकिट्टीनां संक्रम्यमाणप्रदेशानाश्रित्य चित्रम्

३ सं. किट्टिः | २ संकिट्टिः | १सं. किट्टिः | ३सं. किट्टिः | २स किट्टि | १सं. किट्टिः | ३स किट्टिः | २संकिट्टिः | १सं किट्टिः | ३स किट्टिः | २सं किट्टि | १संग्र - किट्टि

स ज्व ल न लो भ | स ज्व ल न मा या | स ज्व ल न मा न. | स ज्व ल न क्रो ध.

सकेतस्पष्टीकरणम्—

······ अनेन चिह्नेन विवक्षितसंग्रहकिट्टितो ऽनन्तरसग्रहकिट्टौ दलं संक्रामतीति सूचितम् (गाथा १२६)

०००० अनेन चिह्नेन प्रथमसग्रहकिट्टितो तृतीयसंग्रहकिट्टौ दल सक्रामतीति सूचितम्, तथा मायाद्वितीयसंग्रहकिट्टितो लोभप्रथमसंग्रहकिट्टयामपि संक्रम्यमाणदलमनेनैव चिह्नेन सूचितम्। (गाथा १२६) 卐

★ अनेन चिह्नेन प्रथमसग्रहकिट्टितो-ऽनन्तरकषायप्रथमसंग्रहकिट्टौ दलं संक्रामतीति सूचितम। (गाथा—१२६)

– – – अनेन चिह्नेन द्वितीयसंग्रहकिट्टितो-ऽनन्तरकषायप्रथमसंग्रहकिट्टौ दलं संक्रामतीति सूचितम्, तथा मायाप्रथमसंग्रहकिट्टितो मायातृतीयसंग्रहकिट्टावपि संक्रम्यमाणदलमनेनैव चिह्नेन सूचितम्।

१,२,३ एतैरङ्कैर्यथाक्रम सङ्क्रम्यमाणदल विशेषाधिक सूचितम । नवर दशमाङ्कत एकादशाङ्क सख्येयगुण सूचयति, तथैव द्वादशाङ्कतस्त्रयोदशाङ्कोऽपि सख्येयगुण सूचयति (गाथा–१२८, १२९ १३०)।

क=असख्येयभागप्रमाणास्तीव्रानुभागका अवान्तरकिट्टयो ऽनुसमयापवर्तनया नाश्यन्ते। (गाथा–१२५) ताश्च △ इत्यनेन चिह्नेन दर्शिताश्चित्रे।

ख=असख्येयभागप्रमाणमन्दानुभागका अवान्तरकिट्टयो नोदयन्ति

ग=असख्येयभागप्रमिताश्च तीव्रानुभागका अवान्तरकिट्टयो नोदयन्ति, ताश्च ००० इत्यनेन चिह्नेन सूचिताः (गाथा-१२१)।

घ=बहुसख्येयभागप्रमाणमध्यमावान्तरकिट्टय उदयन्ति (गाथा–१२१)।

卐 इह चित्रकारस्य स्खलना जाता, अन्यथा मायाद्वितीयसंग्रहकिट्टितो लोभप्रथमसंग्रहकिट्टौ संक्रम्यमाण दलम् – – – इत्यनेन चिह्नेन दर्शयितव्यम् ।

❀ इहाऽपि चित्रकारस्य स्खलना जाता, अन्यथा मायाप्रथमसंग्रहकिट्टितो मायातृतीयसंग्रहकिट्टौ संक्रम्यमाण दलम् ००० इत्यनेन चिह्नेन दर्शयितव्यम् '



अथ परस्थानगोपुच्छाकाररचना निगद्यते

लोमस्य तृतीयसंग्रहकिट्टया उपरितनास्वसंख्येयभागमात्रीष्ववान्तरकिट्टिषु घातितासु तत्संग्रहकिट्टिचरमाऽवान्तरकिट्टिगतदलतस्तदनन्तरसंग्रहकिट्टिप्रथमाऽवान्तरकिट्टयामेकाधिकघाताऽवान्तरकिट्टिराशिप्रमाणचयैर्हीनं दलं जायते । कथमेतदवसीयते ? इति चेत्, उच्यते– लोभतृतीयसंग्रहकिट्टेरुपरितनानामसंख्येयभागप्रमितानामवान्तरकिट्टीनां घातात् प्राग् लोभतृतीयसंग्रहकिट्टिचरमाऽवान्तरकिट्टितो द्वितीयसंग्रहकिट्टिप्रथमाऽवान्तरकिट्टौ दलमेकचयेन हीनं विद्यते स्म । अथोपरितनास्ववान्तरकिट्टिषु घातितास्विदानीं या लोभतृतीयसंग्रहकिट्टिचरमाऽवान्तरकिट्टिः, ततो द्वितीयसंग्रहकिट्टिप्रथमाऽवान्तरकिट्टौ दलमेकाधिकघाताऽवान्तरकिट्टिराशिप्रमाणचयैर्हीनं विद्यते, असंख्येयभागप्रमाणाऽवान्तरकिट्टीनां घातितत्वात् । तेन लोभद्वितीयसंग्रहकिट्टया घातदलतो घाताऽवान्तरकिट्टिराशिप्रमाणचयान् लोभद्वितीयसंग्रहकिट्टिप्रथमाऽवान्तरकिट्टौ प्रक्षिपति । प्रक्षिप्तेषु च घाताऽवान्तरकिट्टिराशिप्रमाणचयेषु लोभतृतीयसंग्रहकिट्टिचरमाऽवान्तरकिट्टितो लोभद्वितीयसंग्रहकिट्टिप्रथमाऽवान्तरकिट्टयामेकचयेन हीनं दलं दृश्यते । ततो लोभद्वितीयसंग्रहकिट्टिद्वितीयाद्यवान्तरकिट्टिषु तृतीयसंग्रहकिट्टिघाताऽवान्तरकिट्टिराशिप्रमाणांश्चयांस्तावत् प्रक्षिपति, यावल्लोभद्वितीयसंग्रहकिट्टिघातिताऽवशेषाऽवान्तरकिट्टिषु चरमाऽवान्तरकिट्टिः । इत्थं लोभतृतीयसंग्रहकिट्टिप्रथमाऽवान्तरकिट्टित आरभ्य लोभद्वितीयसंग्रहकिट्टिचरमाऽवान्तरकिट्टिं यावद् दलं गोपुच्छाकारेण सम्पद्यते ।

अथ लोभद्वितीयसंग्रहकिट्टया घातिताऽवशेषासु या चरमाऽवान्तरकिट्टिः, ततो लोभप्रथमसंग्रहकिट्टिप्रथमावान्तरकिट्टावेकाधिकलोभतृतीयसंग्रहकिट्टिद्वितीयसंग्रहकिट्टिघाताऽवान्तरकिट्टिराशिप्रमाणचयैर्हीनं दलं विद्यते । किं कारणम् ? इति चेत् ? उच्यते–द्वितीयसंग्रहकिट्टेरुपरितनानामवान्तरकिट्टीनां घातात् प्राग् लोभद्वितीयसंग्रहकिट्टिचरमाऽवान्तरकिट्टितो लोभप्रथमसंग्रहकिट्टिसत्कप्रथमाऽवान्तरकिट्टयामेकचयेन हीनं दलं विद्यते स्म । सम्प्रति लोभद्वितीयसंग्रहकिट्टेरुपरितना असंख्येयभागप्रमिता अवान्तरकिट्टयो घात्यन्ते, तेन लोभद्वितीयसंग्रहकिट्टेर्घातितावशेषावान्तरकिट्टिषु या चरमाऽवान्तरकिट्टिः, तदपेक्षयैकाधिकलोभद्वितीयसंग्रहकिट्टिघाताऽवान्तरकिट्टिराशिप्रमाणचयैर्हीनं दलं लोभप्रथमसंग्रहकिट्टिप्रथमावान्तरकिट्टौ जायते । तथा लोभद्वितीयसंग्रहकिट्टेर्लोभतृतीयसंग्रहकिट्टयाश्च परस्थानगोपुच्छाकाररचनायै तृतीयसंग्रहकिट्टिघातावान्तरकिट्टिराशिप्रमाणचयानां द्वितीयसंग्रहकिट्टयवान्तरकिट्टिषु प्रक्षिप्तत्वात् तावद्भिरपि चयैर्हीनं दलं लोभप्रथमसंग्रहकिट्टिप्रथमाऽवान्तरकिट्टौ सम्पद्यते । इत्थं लोभद्वितीयसंग्रहकिट्टेर्घातितावशेषाऽवान्तरकिट्टिषु या चरमाऽवान्तरकिट्टिः, ततो लोभप्रथमसंग्रहकिट्टिप्रथमाऽवान्तरकिट्टौ दलमेकाधिकद्वितीयसंग्रहकिट्टितृतीयसंग्रहकिट्टिघाताऽवान्तरकिट्टिराशिप्रमाणाचयैर्हीनं जायते । तेन लोभप्रथमसंग्रहकिट्टिघातदलतो दलं गृहीत्वा लोभप्रथमसंग्रहकिट्टिप्रथमाऽवान्तरकिट्टौ लोभद्वितीयसंग्रहकिट्टितृतीयसंग्रह-

किट्टिघाताऽवान्तरकिट्टिराशिप्रमाणांश्चयान् प्रक्षिपति। चयेषु च प्रक्षिप्तेषु लोभद्वितीयसंग्रहकिट्टि-चरमाऽवान्तरकिट्टितो लोभप्रथमसंग्रहकिट्टिप्रथमाऽवान्तरकिट्टयामेकचयेन न्यूनं दलं जायते। ततः परं लोभप्रथमसंग्रहकिट्टिद्वितीयाद्यवान्तरकिट्टिषु लोभद्वितीयसंग्रहकिट्टि तृतीयसंग्रहकिट्टि-घाताऽवान्तरकिट्टिप्रमाणांश्चयांस्तावत् प्रक्षिपति, यावल्लोभप्रथमसंग्रहकिट्टया घातिताऽवशेषावान्त-किट्टिषु चरमाऽवान्तरकिट्टिः।

एवमग्रेऽपि विवक्षितसंग्रहकिट्टया अधस्ताद् यावत्यः संग्रहकिट्टयो व्यतिक्रामन्ति, तावत्संग्रह-किट्टीनां घाताऽवान्तरकिट्टिराशिप्रमाणांश्चयान् विवक्षितसंग्रहकिट्टिघातदलतो विवक्षितसंग्रह-किट्टिप्रथमावान्तरकिट्टिप्रभृतिचरमाऽवान्तरकिट्टिपर्यवसानास्ववान्तरकिट्टिषु प्रक्षिपति। तथाहि—मायातृतीयसंग्रहकिट्टया अवान्तरकिट्टिषु स्वघातदलतो लोभसंग्रहकिट्टित्रयघाताऽवान्तरकिट्टिराशि-प्रमाणांश्चयान् प्रक्षिपति। मायाया द्वितीयसंग्रहकिट्टयवान्तरकिट्टिषु स्वघातदलतो लोभसंग्रहकिट्टित्र-यस्य मायातृतीयसंग्रहकिट्टयाश्च घाताऽवान्तरकिट्टिराशिप्रमाणांश्चयान् प्रक्षिपति। मायाप्रथमसंग्रह-किट्टयवान्तरकिट्टिषु स्वघातदलतो लोभसंग्रहकिट्टित्रयस्य मायासंग्रहकिट्टिद्वयस्य च घाताऽवान्तर-किट्टिराशिप्रमाणांश्चयान् प्रक्षिपति।

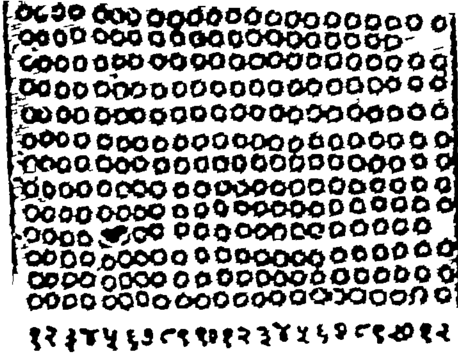
मानतृतीयसंग्रहकिट्टयवान्तरकिट्टिषु स्वघातदलतो लोभसंग्रहकिट्टित्रयस्य मायासंग्रह-किट्टित्रयस्य च घाताऽवान्तरकिट्टिराशिप्रमाणांश्चयान् प्रक्षिपति। मानद्वितीयसंग्रहकिट्टयवान्तर-किट्टिषु घातदलतो लोभसंग्रहकिट्टित्रयस्य मायासंग्रहकिट्टित्रयस्य मानतृतीयसंग्रहकिट्टयाश्च घाताऽवान्तरकिट्टिराशिप्रमाणांश्चयान् प्रक्षिपति। एवंक्रमेण घातदलतो मानप्रथमसंग्रहकिट्टयवा-न्तरकिट्टिषु संग्रहकिट्टयष्टकस्य, क्रोधतृतीयसंग्रहकिट्टयवान्तरकिट्टिषु संग्रहकिट्टिनवकस्य, क्रोध-द्वितीयसंग्रहकिट्टयवान्तरकिट्टिषु संग्रहकिट्टिदशकस्य, क्रोधप्रथमसंग्रहकिट्टयवान्तरकिट्टिषु संग्रह-किट्टयेकादशकस्य घाताऽवान्तरकिट्टिराशिप्रमितांश्चयान् प्रक्षिपति।

अनेन क्रमेण घातदले प्रक्षिप्ते लोभतृतीयसंग्रहकिट्टिप्रथमाऽवान्तरकिट्टितः प्रभृति क्रोध-प्रथमसंग्रहकिट्टिचरमाऽवान्तरकिट्टिं यावत् सर्वा अवान्तरकिट्टयः प्रदेशाग्रमाश्रित्यैकगोपुच्छाकारेण तिष्ठन्ति। (पश्यन्तु पाठका यन्त्रकम्—१९)

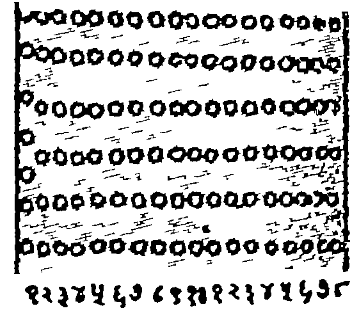
आयदलस्य निक्षेपविधिरग्रे संक्रमतो निर्वर्त्यमानावान्तरकिट्टीनां प्ररूपणाऽवसरे वक्ष्यते, आयदलस्य संक्रमदलतोऽनतिरेकेण संक्रमदलतोऽवान्तरकिट्टीनां निर्वृत्तेः।

स्वस्थानगोपुच्छाकारचनायै परस्थानगोपुच्छाकाररचनायै च यद् दलं प्रक्षिप्तम्, तत् सर्वं सर्वघातदला-ऽसंख्येयभागमात्रं भवति। तथा-ऽवेद्यमानसंग्रहकिट्टिषु संक्रमदलतोऽपूर्वा-ऽवान्तरकिट्टीर्निर्वर्तयन् संक्रमदलतः पूर्वापूर्वावान्तरकिट्टिष्वधस्तनशीर्षचयादिभेदेन दलं प्रक्षेप्स्यति। वेद्यमानसंग्रहकिट्टौ त्वायदलाभावेन संक्रमाऽपूर्वावान्तरकिट्टीरनिर्वर्तयन् तत्पूर्वावान्तरकिट्टिषु वक्ष्यमा-

लोभसंग्रहकिट्टित्रयपरस्थानगोपुच्छाकाररचनाप्रदर्शनार्थं चित्रम्

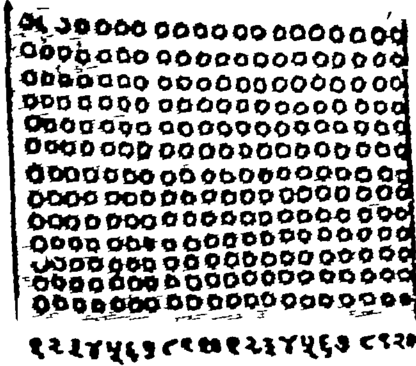


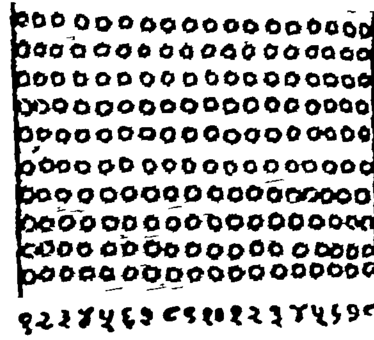


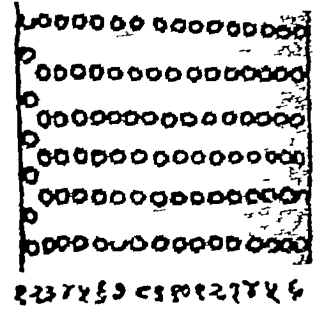


लोभतृतीयसंग्रहकिट्टि　　लोभद्वितीयसंग्रहकिट्टि　　लोभप्रथमसंग्रहकिट्टि

अनुसमयापवर्तनया घाते जाते-ऽवान्तरकिट्टीनां स्थापना

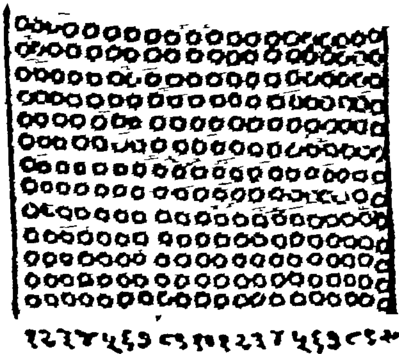


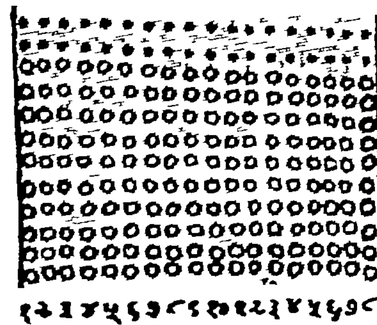


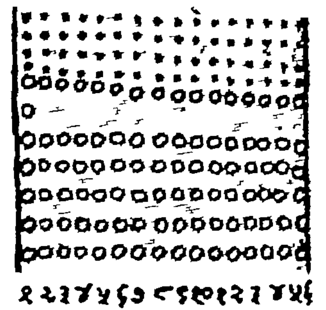


लोभतृतीयसंग्रहकिट्टि　　लोभद्वितीयसंग्रहकिट्टिः　　लोभप्रथमसंग्रहकिट्टि.

परस्थानगोपुच्छाकाररचना







लोभतृतीयसंग्रहकिट्टि.　　लोभद्वितीयसंग्रहकिट्टिः　　लोभप्रथमसंग्रहकिट्टि

संक्षेपतो विवेचनम्

(१) (अ) इह परमार्थत एकैकसंग्रहकिट्टयामवान्तरकिट्टयो-ऽनन्ता भवन्ति, किन्त्वसत्कल्पनया लोभतृतीय-

सग्रहकिट्टौ द्वाविंशति (२२) अवान्तरकिट्टय. परिकल्पिता, लोभद्वितीयसग्रहकिट्टौ विंशति (२०), लोभप्रथमसग्रहकिट्टौ चाष्टादश (१८) ।

(ब) किट्टिवेदनाद्धाप्रथमसमयेऽनुभागापवर्तनयैकैकसग्रहकिट्ट्या द्वेऽवान्तरकिट्टी घात्येते,परमार्थतस्तु सर्वावान्तरकिट्टीनामसख्येयभागप्रमाणा अवान्तरकिट्टयो घात्यन्ते ।

(२) अवान्तरकिट्टीना घाते जाते लोभतृतीयसग्रहकिट्टिचरमावान्तरकिट्टितो लोभद्वितीयसग्रहकिट्टिप्रथमावान्तरकिट्टि एकाधिकलोभतृतीयसग्रहकिट्टिघातावान्तरकिट्टिराशिप्रमाणैश्चयैर्हीन दल जायते, इह त्वसत्कल्पनया द्वेऽवान्तरकिट्टी घातिते, तेन त्रिभिश्चयैर्हीन दल लोभद्वितीयसग्रहकिट्टिप्रथमावान्तरकिट्टौ भवति,यतो या विंशतितमावान्तरकिट्टिरासीत ,सैवाऽधुना चरमावान्तरकिट्टिर्भवति। तद्द्योतनाय चित्रे लोभतृतीयसग्रहकिट्टिचरमावान्तरकिट्टौ त्रयोदश (१३) शून्यानि दर्शितानि, लोभद्वितीयसग्रहप्रथमावान्तरकिट्टौ च दश (१०) । एव लोभप्रथमसग्रहकिट्टिप्रथमावान्तरकिट्टावपि बोध्यम् ।

(३) (अ) लोभद्वितीयसग्रहकिट्टिघातदलतो दलमादाय लोभद्वितीयसग्रहकिट्टिप्रथमावान्तरकिट्टौ लोभतृतीयसग्रहकिट्टिघातावान्तरकिट्टिराशिप्रमाणाश्चयान् असत्कल्पनया तु द्वौ चयौ प्रक्षिपति, तत. पर सर्वासु लोभद्वितीयसग्रहकिट्टिद्वितीयाद्यवान्तरकिट्टिषु प्रक्षिपति, तद्द्योतनाय चित्रस्योपरितने भागे °° बिन्दुद्वयं दर्शितम् । दलप्रक्षेपे जाते लोभतृतीयसग्रहकिट्टितः प्रभृति लोभद्वितीयसग्रहकिट्टिचरमावान्तरकिट्टिं यावत् सर्वा अवान्तरकिट्टय एकगोपुच्छाकारेण भवन्ति ।

(ब) लोभद्वितीयसग्रहकिट्ट्यवान्तरकिट्टिषु दलिकप्रक्षेपे जाते लोभद्वितीयसग्रहकिट्टिचरमावान्तरकिट्टितो लोभप्रथमसग्रहकिट्टिप्रथमावान्तरकिट्टौ परमार्थत एकाधिकलोभतृतीयसंग्रहकिट्टि-द्वितीयसंग्रहकिट्टिघातावान्तरकिट्टिराशिप्रमाणचयैरसत्कल्पनया तु पञ्चभिश्चयैर्हीन दलं भवति, तद्द्योतनाय चित्रे लोभद्वितीयसग्रहकिट्टिचरमावान्तरकिट्टौ बिन्दुद्वयसहितशून्यानि द्वादश (१२), लोभप्रथमसग्रहकिट्टिप्रथमावान्तरकिट्टौ तु सप्त (७) । अथ लोभप्रथमसग्रहकिट्टिप्रथमावान्तरकिट्टौ लोभतृतीयसग्रहकिट्टि-द्वितीयसग्रहकिट्टिघातावान्तरकिट्टिराशिप्रमाणाश्चयान् असत्कल्पनया तु चतुश्चयान् प्रक्षिपति । तत पर सर्वासु लोभप्रथमसग्रहकिट्ट्यवान्तरकिट्टिषु तावतश्चयान् प्रक्षिपति । प्रक्षिप्तेषु च तेषु लोभतृतीयसंग्रहकिट्टिप्रथमावान्तरकिट्टिप्रभृतिलोभप्रथमसग्रहकिट्टिचरमावान्तरकिट्टिपर्यवसाना सर्वावान्तरकिट्टय एकगोपुच्छाकारेण भवन्ति ।

गोपुच्छाकाररचनायां सम्पन्नाया शेषघातदल विशेषहीनक्रमेण दीयते । यथा लोभस्य तिस्र संग्रहकिट्टी स्थापयित्वा प्ररूपणा दर्शिता, तथैव शेषकषायाणामपि सग्रहकिट्टीरुपर्युपरि स्थापयित्वा दर्शयितव्या ।



...ऽधस्तनशीर्षचयादिरूपं यद् दलं दास्यति, तत् सर्वं सर्वघातदलाऽसंख्येयभागमात्रमेव भविष्यति, तच घातदला एव दास्यति । तेन तद् दलं पृथक् स्थापयितव्यम् । तन्निक्षेपविधिरग्रे सप्त...-...गाथापाटीकायां वक्ष्यते ।

अनन्तरोक्तदलत्रयमपि सर्वघातदला-ऽसंख्येयभागमात्रं भवति । सर्वघातदलतश्चोपर्युक्तदल-त्रयं विशोध्य शेषसर्वघातदलं लोभतृतीयसंग्रहकिट्टिप्रथमाऽवान्तरकिट्टितः प्रभृति क्रोधप्रथमसंग्रह-किट्टिचरमाऽवान्तरकिट्टिं यावद् घाताऽवान्तरकिट्टिरहितासु सर्वास्ववान्तरकिट्टिषु विशेषहीन-क्रमेण निक्षेपणीयम् । निक्षेपविधिश्चेत्थं द्रष्टव्यः—शेषघातदलं विभागद्वये विभजनीयम् । तत्राऽऽद्यो विभाग उत्तरदलम्, द्वितीयस्त्वादिदलम् ।

अथोत्तरदलं प्रदर्श्यते—शेषघातदले पदेन विभक्ते मध्यमदलं प्राप्यते । ततो मध्यमदल-मर्धीकृतैकोनपदन्यूनाभ्यां द्वाभ्यां द्विगुणहानिभ्यां भज्यते, तदैकचयदलं प्राप्यते । पदं चात्र घातर-हितानां सर्वाऽवान्तरकिट्टीनां राशिर्वक्तव्यम् । ततः क्रोधस्य प्रथमसंग्रहकिट्टिचरमाऽवान्तरकिट्टावेकं चयं प्रक्षिपति । क्रोधप्रथमसंग्रहकिट्टिद्विचरमाऽवान्तरकिट्टौ द्वौ चयौ प्रक्षिपति, एवं पश्चानुपूर्व्यैको-त्तरवृद्धया चयान् ददल्लोभतृतीयसंग्रहकिट्टिप्रथमाऽवान्तरकिट्टौ पदप्रमाणांश्चयान् प्रक्षिपति । "सैकपदघ्नपदार्धमथैकाद्यङ्कयुतिः किल संकलिताख्या ।" इत्यनेन करणेन चयान् सङ्कलय्य घातरहितानां सर्वाऽवान्तरकिट्टिषु प्रक्षिपति । सङ्कलितचयैश्च गुणितमेकचयगतदलं सर्वोत्तरदलं सम्पद्यते ।

न्यासः -

$$\text{मध्यमदलम्} = \frac{\text{शेषघातदलम्}}{\text{पदम्}}$$

$$\therefore \text{एकचयगतदलम्} = \frac{\text{मध्यमदलम्}}{२ \text{ द्विगुण हानी} - \frac{(\text{पद}-१)}{२}}$$

$$\text{सर्वचया} = \frac{(\text{पद}+१)\times\text{पदम्}}{२}$$

$$\text{सर्वोत्तरदलम्} = \text{सर्वचया}\times\text{एकचयगतदलम्}$$

अथाऽऽदिदलं प्रदर्श्यते शेषघातदलत उत्तरदलं विशोध्याऽवशिष्टदलमादिदलमुच्यते, आदिदलं च पदेन भज्यते, तदैकमादिदलखण्डं प्राप्यते । आदिदलखण्डं घातरहितासु सर्वाऽ-वान्तरकिट्टिषु ददाति ।

न्यासः -

$$\text{आदिदलम्} = \text{शेषघातदलम्} - \text{उत्तरदलम्}$$

$$\text{एकमादिदलखण्डम्} = \frac{\text{आदिदलम्}}{\text{पदम्}}$$

अथ निक्षेपक्रमो भण्यते क्रोधस्य प्रथमसंग्रहकिट्टिचरमा-ऽवान्तरकिट्ट्यामादिदलतं एकमादिदलखण्डमुत्तरदलतश्चैकचयं ददाति । क्रोधप्रथमसंग्रहकिट्टिद्विचरमाऽवान्तरकिट्ट्यामादिदलत एकमादिदलखण्डमुत्तरदलतश्च द्वौ चयौ प्रक्षिपति । एवं पश्चानुपूर्व्या घातरहितसर्वाऽवान्तरकिट्टिष्वेकोत्तरवृद्ध्या चयानेकैकं चादिदलखण्डं तावद् ददाति, यावल्लोभतृतीयसंग्रहकिट्टिप्रथमाऽवान्तरकिट्टिः । एवंक्रमेण दले प्रक्षिप्ते शेषसर्वघातदलं परिसमाप्तं भवति, सर्वाऽवान्तरकिट्टयश्चैकगोपुच्छाकारेण सम्पद्यन्ते । **समासो गणितविभागः ॥१२८-१२९-१३०॥**

संक्रमदलाऽल्पबहुत्वं गाथात्रयेणोक्तम् । सम्प्रति संक्रमदलतोऽवान्तरकिट्टीः केन विधिना निर्वर्तयतीति वक्तव्यम् । तत्राऽपि संक्रमदलतोऽवान्तरकिट्टिनिवृत्तेरर्वाग् बन्धप्रदेशतो-ऽवान्तरकिट्टिनिर्वृत्तिः प्रतिपादनीया, संक्रमावान्तरकिट्टिनिर्वृत्तिप्ररूपणायामुपयोगित्वात् तस्याः । तेन बन्धप्रदेशादपूर्वाऽवान्तरकिट्टीनां निर्वृत्तिं प्रतिपिपादयिषुराह

बंधपएसा णिव्वत्तए अपुव्वा अवन्तरा किट्टी ।
पढमाण चउण्ह अवंतरकिट्टीअंतरेसुं तु ॥१३१॥

बन्धप्रदेशाद् निर्वर्तयत्यपूर्वा अवान्तरा किट्टी ।
प्रथमानां चतसृणामवान्तरकिट्ट्यन्तरेषु तु ॥१३१॥ इति पदसंस्कारः ।

'बंधपएसा' इत्यादि, 'बन्धप्रदेशाद्' जात्यामेकवचनम्, बन्धप्रदेशेभ्यः 'चतसृणां' क्रोधमानमायालोभसम्बन्धिनीनां चतुःसंख्याकानां 'प्रथमानाम्' आद्यसंग्रहकिट्टीनामवान्तरकिट्ट्यन्तरेषु तु 'अपूर्वा' अभिनवा अवान्तराः किट्टीर्निर्वर्तयति, न तु वक्ष्यमाणसंक्रमदलवत् संग्रहकिट्टीनामधस्तादपि । कथमेतदवसीयते ? इति चेत्, उच्यते-चतसृणां प्रथमसंग्रहकिट्टीनां मध्यमा एवाऽवान्तरकिट्टयो बध्यन्ते, न तु संग्रहकिट्टिसर्वजघन्यावान्तरकिट्टिर्नापि ततो हीना । तेन संग्रहकिट्ट्या अधस्ताद् बन्धदलादपूर्वाऽवान्तरकिट्टयो न निर्वर्त्यन्ते ॥१३०॥

ननु बन्धप्रदेशतोऽपूर्वाऽवान्तरकिट्टीः किं सर्वाऽवान्तरकिट्ट्यन्तरेषु निर्वर्तयति ? उतास्ति कश्चिद् विशेषः ? इति, उच्यते न तावत् सर्वेष्ववान्तरकिट्ट्यन्तरेषु । अथ यतिष्ववान्तरकिट्ट्यन्तरेषु गतेष्वपूर्वा अवान्तरकिट्टीर्निर्वर्तयति, तदभिधित्सुराह

गंतूण असंखगुणिअपल्लपढमवग्गमूलठाणाणि ।
एगिगबंधअपुव्वं किट्टिं खलु किट्टिअंतरे कुणइ ॥१३२॥ (गीतिः)

गत्वाऽसंख्यगुणितपल्यप्रथमवर्गमूलस्थानानि ।
एकैकबन्धाऽपूर्वां किट्टिं खलु किट्ट्यन्तरे करोति ॥१३२॥ इति पदसंस्कारः ।

'गंतूण' इत्यादि, तत्र 'असंख्यगुणितपल्यप्रथमवर्गमूलस्थानानि' असंख्येयपल्योपमप्रथमवर्गमूलमात्राण्यवान्तरकिट्ट्यन्तराणि 'गत्वा' उल्लङ्घ्य 'किट्ट्यन्तरे' अवान्तरकिट्ट्यन्तरे एकैकबन्धाऽपूर्वाऽ-

वान्तरकिट्टिं खलु 'करोति' निर्वर्तयति। भावार्थः पुनरयम्—उपरितनमधस्तनं चाऽसंख्येयभागं मुक्त्वा शेषा अवान्तरकिट्टयो बध्यन्ते। तत्र जघन्यावान्तरकिट्टया द्वितीयावान्तरकिट्टयाश्च यदन्तरं भवति, तद् प्रथममवान्तरकिट्टयन्तरमुच्यते। द्वितीयावान्तरकिट्टयास्तृतीयावान्तरकिट्टयाश्चान्तरं द्वितीयमवान्तर-किट्टयन्तरमभिधीयते, एवमग्रेऽपि वक्तव्यम्। तत्र प्रथमावान्तरकिट्टयन्तरे बन्धदलतोऽपूर्वावान्तरकिट्टिं न निर्वर्तयति। द्वितीयेऽप्यवान्तरकिट्टयन्तरे बन्धदलतोऽपूर्वाऽवान्तरकिट्टिं न निर्वर्तयति। एवं प्रथमा-दवान्तरकिट्टयन्तरादसंख्येयपल्योपमप्रथमवर्गमूलप्रमाणान्यवान्तरकिट्टयन्तराणि गत्वा बन्धदलत एका-मपूर्वाऽवान्तरकिट्टिं निर्वर्तयति, ततः पुनरसंख्येयपल्योपमप्रथमवर्गमूलप्रमाणान्यवान्तरकिट्टयन्तराणि व्यतिक्रम्य द्वितीयामपूर्वाऽवान्तरकिट्टिं निर्वर्तयति। ततोऽप्यसंख्येयपल्योपमप्रथमवर्गमूलमात्रा-वान्तरकिट्टयन्तराण्युल्लङ्घ्य तृतीयामपूर्वाऽवान्तरकिट्टिं निर्वर्तयति। एवंक्रमेण तावद्वक्तव्यम्, यावद् बन्धप्रदेशतो निर्वर्त्यमानचरमाऽपूर्वाऽवान्तरकिट्टिः, सा चोपरितनानामसंख्यातपल्योपम-प्रथमवर्गमूलप्रमाणानां बन्धे वर्तमानानामवान्तरकिट्टीनामधस्तान्निर्वर्त्यते। उक्तं च कषायप्राभृत-चूर्णौ "किट्टीअंतराणि अंतरट्ठदाए असंखेज्जाणि पलिदोवमपढमवग्गमूलाणि, ए-त्तियाणि किट्टीअंतराणि गंतूण अपुव्वा किट्टी णिव्वत्तिज्जदि। पुणो वि एत्ति-याणि किट्टीअंतराणि गंतूण अपुव्वा किट्टी णिव्वत्तिज्जदि।" इति। अनया रीत्या बन्धपूर्वाऽवान्तरकिट्टयसंख्येयभागमात्र्यो बन्धापूर्वावान्तरकिट्टयो निर्वर्त्यन्ते।

न्यासः $\text{निर्वर्त्यमानबन्धापूर्वावान्तरकिट्टय} = \dfrac{\text{बन्धपूर्वावान्तरकिट्टिराशि}}{\text{असंख्यातपल्योपमप्रथमवर्गमूलानि}}$

अथ गणितविभागः।

लोभस्य किट्टितया परिणतं दलं सार्धद्विगुणहानिगुणितैकसमयप्रबद्धप्रमाणं भवति। एकद्विगुणहानिश्चाऽसंख्यातपल्योपमप्रथमवर्गमूलप्रमाणाऽस्ति। निरुक्तदलस्य च तिस्रः संग्रह-किट्टयो निर्वर्तिताः। तत एकैकसंग्रहकिट्टौ सार्धद्विगुणहानित्रिभागगुणितैकसमयप्रबद्धप्रमाणं सकलाऽवान्तरकिट्टितया दलं परिणतं भवति। यदि सार्धद्विगुणहानित्रिभागगुणितैकसमयप्रबद्धप्रमाणेन दलेनैकैकसंग्रहकिट्टौ सकलाऽवान्तरकिट्टयो निर्वर्तिताः, तर्ह्येकसमयप्रबद्धप्रमाणेन दलेन कति बन्धा-ऽपूर्वाऽवान्तरकिट्टयो निर्वर्त्येरन्? इति त्रैराशिकेन साधनीया बन्धाऽपूर्वावान्तरकिट्टयः।

असत्कल्पनया (१) द्विगुणहानिः=षोडश (१६) कल्प्यताम्।

∴सार्धद्विगुणहानिः—चतुर्विंशतिः (२४)।

(२) एकसमयप्रबद्धदलम्='अ' कल्प्यताम्

∵लोभसंग्रहकिट्टितया परिणतं दलम्=एकसमयप्रबद्धम्×सार्धद्विगुणहानिः

∴प्रकृते लोभसंग्रहकिट्टितया परिणतं दलम्=२४×अ=२४ अ

अतो लोभस्यैकसंग्रहकिट्टितया परिणतं दलम्=२४ अ÷३=८ अ

लोभस्यैकसंग्रहकिट्टितया परिणतदलस्य '८ अ' इत्यस्य द्वासप्ततिरवान्तरकिट्टयो निर्वर्तिता इति कल्प्यताम् ।

'८ अ' इत्यनेन द्वासप्ततिः (७२) अवान्तरकिट्टयो निर्वर्त्यन्ते, तर्हि 'अ' इत्यनेन कत्यवान्तरकिट्टयो निर्वर्त्येरन् ? **"प्रमाणमिच्छा च समानजातौ, आद्यन्तयोस्तत्फलमन्यजातिः । मध्ये तदिच्छाहतमाद्यहृत् स्यादिच्छाफलम् ।"** इति श्रीभास्करकरणसूत्रेण प्राप्तव्यो बन्धापूर्वावान्तरकिट्टिराशिः । तद्यथा—अत्र प्रमाणम्='८ अ', इच्छा='अ', प्रमाणफलम्=७२ । तत इच्छाहतं फलमिदम्—७२×अ=७२ अ, तच्च '८ अ' इति आद्येन—प्रमाणेन हृत् इच्छाफलम्= ७२ अ—८ अ=९ । अत एकसमयप्रबद्धेन नव (९) बन्धाऽपूर्वावान्तरकिट्टयो निर्वर्त्यन्ते । ताश्च परमार्थतः सार्धप्रदेशद्विगुणहानित्रिभागभाजितैकसंग्रहकिट्ट्यवान्तरकिट्टिप्रमिताः सत्यः पूर्वाऽवान्तरकिट्ट्यसंख्येयभागप्रमाणा भवन्ति ।

अथ नव (९) बन्धाऽपूर्वाऽवान्तरकिट्टिभिरेकसंग्रहकिट्टिसकलपूर्वाऽवान्तरकिट्टयोऽन्तर्यन्ते, तर्ह्येकबन्धाऽपूर्वाऽवान्तरकिट्ट्याः कति पूर्वाऽवान्तरकिट्टयोऽन्तर्येरन् ? इति त्रैराशिकेनाऽन्तरं साधनीयम् । प्रमाणमत्र ९, प्रमाणफलम् ७२, इच्छा १ । '**प्रमाणमिच्छा०**' इत्यनन्तरोक्त**भास्कर**वचनेन इच्छागुणितं प्रमाणफलमिदम्—७२×१=७२, तच्च ९ इति प्रमाणेन भक्तव्यम्, तदा इच्छाफलमिदम्—$\frac{७२}{९}$=८ । तच्च सार्धद्विगुणहानित्रिभागमात्रम्, चतुर्विंशतेः सार्धद्विगुणहानित्वेन परिकल्पनात् । अष्टाविति च राशिरसंख्येयपल्योपमप्रथमवर्गमूलकल्पो भवति, सार्धद्विगुणहान्या त्रिभागमात्रत्वात् । तेनैकैकाऽपूर्वावान्तरकिट्टिरसंख्येयपल्योपमप्रथमवर्गमूलप्रमाणावान्तरकिट्ट्यन्तराणि गत्वा गत्वा निर्वर्त्यते । एवं मायामानक्रोधानां प्रथमसंग्रहकिट्टावपि प्ररूपयितव्यम्, नवरं लोभप्रथमसंग्रहकिट्टितः क्रोधप्रथमसंग्रहकिट्टौ त्रयोदशगुणं दलं स्थापयित्वा प्ररूपणा विधेया ॥१३२॥

॥ **समाप्तो गणितविभागः** ॥

अथ बन्धदलतः पूर्वाऽपूर्वावान्तरकिट्टिषु दलनिक्षेपविधिं विभणिषुराह

वंधादिपुव्वकिट्टीअ पएसग्गं वहुं देई ।
तत्तो विसेसहीणक्कमेण जा हेट्ठिमा अपुव्वाए ॥१३३॥ (उद्गीतिः)
तत्तो अपुव्वकिट्टीअ अणंतगुणं तओ देई ।
पुव्वाअ अणंतगुणूणं एवं जाव वंधचरिमकिट्टी ॥१३४॥ (उद्गीतिः)

बन्धादिपूर्वकिट्टौ प्रदेशाग्रं बहु ददाति ।
ततो विशेषहीनक्रमेण यावदधस्तनाऽपूर्वस्या ॥ १३३ ॥
ततोऽपूर्वकिट्टा अनन्तगुणं ततो ददाति ।
पूर्वस्यामनन्तगुणोनमेव यावद् बन्धचरमकिट्टिः ॥ १३४ ॥ इति पदसंस्कारः ।

'बंधादि०' इत्यादि. 'बन्धादिपूर्वकिट्टौ' बन्धप्रथमपूर्वाऽवान्तरकिट्टौ प्रदेशाग्रं 'बहु' प्रभूतं ददाति । इदमुक्तं भवति–चतसृणां प्रथमसंग्रहकिट्टीनामधस्तनमुपरितनं चाऽसंख्येयभागं परित्यज्य शेषा मध्यमा अवान्तरकिट्टीर्बध्नाति । अथ मध्यमाऽवान्तरकिट्टिस्वरूपेण यमनुभागं बध्नाति, स पूर्वाऽवान्तरकिट्टिस्वरूपोऽपूर्वान्तरकिट्टिस्वरूपश्च भवति । तत्र बन्धे या सर्वजघन्याऽनुभागकाऽवान्तरकिट्टिः, तस्यां प्रभूतं प्रदेशाग्रं बन्धदलतो ददाति । 'तत्तो' इत्यादि, ततः परं बन्धद्वितीयादिपूर्वाऽवान्तरकिट्टिषु विशेषहीनक्रमेण तावद् ददाति, यावद् 'अपूर्वस्याः' बन्धापूर्वाऽवान्तरकिट्टया 'अधस्तना' अधस्तनबन्धपूर्वावान्तरकिट्टिः, अन्यथैकगोपुच्छाकारभङ्गः प्रसज्येत । जघन्यबन्धपूर्वाऽवान्तरकिट्टित आरभ्याऽसंख्यातपल्योपमप्रथमवर्गमूलप्रमाणासु बन्धपूर्वाऽवान्तरकिट्टिष्वनन्ततमभागहीनक्रमेण प्रदेशाग्रं ददाति, प्रथमादवान्तरकिट्टयन्तरादसंख्यातपल्योपमप्रथमवर्गमूलप्रमाणेष्ववान्तरकिट्टयन्तरेषु गतेषु सत्सु बन्धाऽवान्तरकिट्टिनिर्वृत्तिदर्शनादिति भावः । 'तत्तो' इत्यादि, 'ततः' बन्धप्रथमाऽपूर्वान्तरकिट्टितः प्राग् या बन्धपूर्वाऽवान्तरकिट्टिस्तत इत्यर्थः, 'अपूर्वकिट्टौ' बन्धप्रथमापूर्वावान्तरकिट्टयामनन्तगुणं प्रदेशाग्रं ददाति । 'ततः' बन्धप्रथमापूर्वाऽवान्तरकिट्टितः पूर्वस्यां बन्धावान्तरकिट्टौ 'अनन्तगुणोनम्' अनन्तगुणहीनं प्रदेशाग्रं ददाति ।

सम्प्रत्यतिदिदिक्षुराह-'एवं' इत्यादि,'एवं' यथा बन्धपूर्वावान्तरकिट्टिषु विशेषहीनक्रमेण दलिकं ददाति, यावदपूर्वकिट्टिरप्राप्ता भवति । ततोऽपूर्वावान्तरकिट्टयामनन्तगुणं दलिकं ददाति, ततः पूर्वावान्तरकिट्टावनन्तगुणहीनं ददाति, तथैव तावदभिधातव्यम्, यावद् 'बन्धचरमकिट्टिः' बन्धचरमपूर्वावान्तरकिट्टिः । भावार्थः पुनरयम् बन्धपूर्वावान्तरकिट्टिषु यथोत्तरमनन्तभागेन हीनं ददाति । बन्धपूर्वावान्तरकिट्टितोऽनन्तरायां बन्धाऽपूर्वावान्तरकिट्टयामनन्तगुणं दलं प्रक्षिपति, ततोऽनन्तरायां बन्धपूर्वावान्तरकिट्टावनन्तगुणहीनं दलं ददाति, ततो बन्धपूर्वाऽवान्तरकिट्टिषु यथोत्तरमनन्तभागेन हीनं दलिकं ददाति । एवंक्रमेण तावद्वक्तव्यम्, यावद् बन्धचरमपूर्वावान्तरकिट्टिः । उक्तञ्च कषायप्राभृतचूर्णौ–"**बज्झमाणयस्स पदेसग्गस्स णिसेगसेढिपरूवणं वत्तइस्सामो तत्थ जहण्णियाए किट्टीए बज्झमाणियाए बहुअं । विदियाए किट्टीए विसेसहीणमणंतभागेण, तदियाए विसेसहीणमणंतभागेण । चउत्थीए विसेसहीणं । एवमणंतरोवणिधाए ताव विसेसहीणं जाव अपुव्वकिट्टिमपत्तो त्ति । अपुव्वाए किट्टीए अणंतगुणं । अपुव्वादो किट्टीदो जा अणंतरकिट्टी, तत्थ अणंतगुणहीणं, तदो पुणो अणंतभागहीणं । एवं सेसासु सव्वासु ।**" इति॥१३४॥

बन्धप्रदेशतोऽवान्तरकिट्टिनिर्वृत्तिं विस्तरतो-ऽभिधाय संक्रमदलतोऽवान्तरकिट्टिनिर्वृत्तिं व्याचिख्यासुराह

कुणए वज्जिय कोहपढमं तु एगारसाण हेट्ठम्मि ।
तहऽवंतरकिट्टीअंतरेसु संकमदला अपुव्वाओ ॥१३५॥ [गीतिः]

करोति वर्जयित्वा क्रोधप्रथमां त्वेकादशानामधस्तात्
तथाऽवान्तरकिट्टयन्तरेषु संक्रमदलादपूर्वाः ॥१३५॥ इति पदसंस्कारः ।

'कुणए' इत्यादि, तत्र 'क्रोधप्रथमां' क्रोधप्रथमसंग्रहकिट्टिं तु वर्जयित्वा शेषाणामेकादशानां संग्रहकिट्टीनामधस्तात् तथैकादशानां संग्रहकिट्टीनामवान्तरकिट्टयन्तरेषु 'संक्रमदलात्' संक्रमप्रदेशाग्राद् 'अपूर्वाः' अपूर्वाऽवान्तरकिट्टीः करोति । उक्तं च कषायप्राभृतचूर्णौ—"**जाओ संकामिज्जमाणियादो पदेसग्गादो अपुव्वाओ किट्टीओ णिव्वत्तिज्जंति, ताओ दुसु ओगासेसु । तं जहा—किट्टीअंतरेसु च संगहकिट्टीअंतरेसु च ।**" इति । अत्र क्रोधस्य प्रथमसंग्रहकिट्टिं वर्जयित्वा शेषाणामेकादशानां संग्रहकिट्टीनामधस्ताद् योऽवकाशः, स संग्रहकिट्टयन्तरं ज्ञातव्यः । तथा क्रोधप्रथमसंग्रहकिट्टिं वर्जयित्वा शेषैकादशसंग्रहकिट्टीनां संलग्नयोर्द्वयोः स्वस्वावान्तरकिट्टयोर्मध्ये योऽवकाशः, सोऽवान्तरकिट्टयन्तरं वाच्यः । न च संक्रमदलतः क्रोधप्रथमसंग्रहकिट्टया अधस्तात् तथा क्रोधप्रथमसंग्रहकिट्टेरवान्तरकिट्टयन्तरेष्वपूर्वा अवान्तरकिट्टयः कुतो न निर्वर्त्यन्त इति वक्तव्यम्, तस्या विनाश्यमानत्वेन तत्र संक्रमाऽपूर्वावान्तरकिट्टिनिर्वर्तनाऽभावात् । तदेवं क्रोधप्रथमसंग्रहकिट्टौ बन्धप्रदेशत एवाऽपूर्वा अवान्तरकिट्टयो निर्वर्त्यन्ते । मान-माया-लोभानां च प्रथमसंग्रहकिट्टौ बन्धप्रदेशतः संक्रमप्रदेशतश्चाऽपूर्वावान्तरकिट्टयो निर्वर्त्यन्ते । क्रोधादीनां शेषास्वष्टासु संग्रहकिट्टिषु केवलं संक्रमप्रदेशत एवाऽपूर्वावान्तरकिट्टयो निर्वर्त्यन्त इति फलितार्थः । इदन्त्वत्रधेयमुन्बन्धप्रदेशतः क्रोधादिप्रथमसंग्रहकिट्टीनामवान्तरकिट्टयन्तरेषु निर्वर्त्यमाना अपूर्वावान्तरकिट्टयः स्तोका भवन्ति, एकसमयप्रबद्धप्रदेशाग्रेण तासां निर्वृत्तेः । ततोऽसंख्येयगुणाः संक्रमप्रदेशतः क्रोधादीनां द्वितीयाद्येकादशसंग्रहकिट्टीनामधस्तात् क्रोधादीनां चैकादशसंग्रहकिट्टयवान्तरकिट्टयन्तरेषु निर्वर्त्यमाना अपूर्वा अवान्तरकिट्टयो भवन्ति, संक्रमप्रदेशाग्रस्याऽसंख्येयसमयप्रबद्धमात्रत्वात् । अभ्यधायि च कषायप्राभृतचूर्णौ—"**बज्झमाणियादो थोवाओ णिव्वत्तेदि । संकामिज्जमाणयादो असंखेज्जगुणाओ ।**" इति ॥१३५॥

साम्प्रतं संक्रमदलतो निर्वर्त्यमानाऽपूर्वावान्तरकिट्टीनामल्पबहुत्वमभिधत्ते

संकमओ णिव्वत्तिज्जमाणकिट्टीसु संगहंतरजत्तो ।
होंति अवंतरकिट्टीअंतरजाओ असंखगुणिआऽपुव्वा ॥१३६॥ (आर्यगीतिः)

संक्रमतो निर्वर्त्यमानकिट्टिषु संग्रहान्तरजाभ्यः ।
भवन्त्यवान्तरकिट्टयन्तरजा असंख्यगुणिता अपूर्वाः ॥१३६॥

'**संकमओ**' इत्यादि, 'संक्रमतः' संक्रमदलतो निर्वर्त्यमानकिट्टिषु 'संग्रहान्तरजाभ्यः'

संग्रहकिट्ट्यन्तरजाभ्योऽपूर्वावान्तरकिट्टिभ्योऽवान्तरकिट्ट्यन्तरजाः 'असंखगुणिताऽपुव्वा' त्ति "शेषं संस्कृतवत् सिद्धम्" (सिद्धहेम० ८-४-४४८) इति प्राकृतलक्षणदर्शनाद् आकारोऽकारेण सह दीर्घो जातः, विश्लेषे चाऽकारः प्राप्तः, तेन 'असंखगुणिआ अपुव्वा' त्ति 'असंख्यगुणिताः' असंख्येयगुणा अपूर्वाः– अपूर्वावान्तरकिट्टयो 'भवन्ति' जायन्ते। उक्तं च कषायप्राभृतचूर्णौ "जाओ संगहकिट्टीअंतरेसु, ताओ थोवाओ। जाओ किट्टीअंतरेसु, ताओ असंखेज्जगुणाओ।" इति। अयं भावः किट्टिवेदनाद्धायाः प्रथमसमये संक्रमदलतः क्रोधप्रथमसंग्रहकिट्टिं वर्जयित्वैकादशसंग्रहकिट्टीनामधस्तात् तथा तासामेवैकादशसंग्रहकिट्टीनामवान्तरकिट्ट्यन्तरेष्वपूर्वा अवान्तरकिट्टयो निर्वर्त्यन्त इति प्रागुक्तम्। तत्र क्रोधप्रथमसंग्रहकिट्टिं परित्यज्यैकादशसंग्रहकिट्टीनामधस्ताद् योऽवकाशः, स संग्रहकिट्ट्यन्तरम्। तत्र या अपूर्वा अवान्तरकिट्टयो जायन्ते, ताः संग्रहकिट्ट्यन्तरजा उच्यन्ते। तथा क्रोधप्रथमसंग्रहकिट्टिं विहायैकादशसंग्रहकिट्टीनामवान्तरकिट्ट्यन्तरेषु या अपूर्वा अवान्तरकिट्टयो जायन्ते, ता अवान्तरकिट्ट्यन्तरजा व्यपदिश्यन्ते। तत्रैकादशसंग्रहकिट्ट्यन्तरेषु यावत्संक्रमदलिकतोऽपूर्वावान्तरकिट्टीर्निर्वर्तयति, ततोऽसंख्येयगुणं संक्रमदलिकमादायैकादशसंग्रहकिट्टीनामवान्तरकिट्ट्यन्तरेष्वपूर्वावान्तरकिट्टीर्निष्पादयति। तेन संग्रहकिट्ट्यन्तरोत्पन्नापूर्वावान्तरकिट्टितोऽवान्तरकिट्ट्यन्तरोत्पन्नाऽपूर्वावान्तरकिट्टयोऽसंख्येयगुणा भवन्ति।

संग्रहकिट्ट्यन्तरजा अपूर्वावान्तरकिट्टयो निरन्तरं तिष्ठन्ति, न तु पूर्वावान्तरकिट्टिभिर्व्यवहिताः, तत्र पूर्वावान्तरकिट्टीनामभावात्।

अवान्तरकिट्ट्यन्तरोत्पन्नास्त्वपूर्वावान्तरकिट्टयो न निरन्तरमवतिष्ठन्ते, अपि तु विवक्षितसंग्रहकिट्ट्याः सर्वजघन्यपूर्वावान्तरकिट्टितः पल्योपमप्रथमवर्गमूलाऽसंख्येयभागे गते सति। तथाहि विवक्षितसंग्रहकिट्ट्याः प्रथमपूर्वावान्तरकिट्टि-द्वितीयपूर्वान्तरकिट्ट्योर्यदन्तरं भवति, तत् प्रथममवान्तरकिट्ट्यन्तरम्। तत्र संक्रमदलतोऽपूर्वावान्तरकिट्टिं न निर्वर्तयति, एवं द्वितीयेऽवान्तरकिट्ट्यन्तरेऽप्यपूर्वावान्तरकिट्टिं न निर्वर्तयति। एवंक्रमेण पल्योपमप्रथमवर्गमूलाऽसंख्येयभागमात्राण्यवान्तरकिट्ट्यन्तराणि व्यतिक्रम्याऽवान्तरकिट्ट्यन्तरयेकामपूर्वाऽवान्तरकिट्टिं निर्वर्तयति। ततः पुनः पल्योपमप्रथमवर्गमूलाऽसंख्येयभागमितान्यवान्तरकिट्ट्यन्तराणि गत्वैकामपूर्वाऽवान्तरकिट्टिं निर्वर्तयति, ततः पुनः पल्योपमप्रथमवर्गमूलाऽसंख्येयभागप्रमाणान्यवान्तरकिट्ट्यन्तराण्युल्लङ्घ्यैकामपूर्वाऽवान्तरकिट्टिं निर्वर्तयति। एवं तावद्वक्तव्यम्, यावत् संक्रमप्रदेशाग्रतो निर्वर्त्यमानो चरमाऽपूर्वावान्तरकिट्टिः। न चाऽवान्तरकिट्ट्यन्तरेषु पल्योपमवर्गमूलाऽसंख्येयभागमात्राणि स्थानानि गत्वैकैकाऽपूर्वाऽवान्तरकिट्टिर्निर्वर्त्यत इत्येतत्कथमवसीयते ? इति वाच्यम्, अग्रिमगाथया दलनिक्षेपविधानावसरे पल्योपमप्रथमवर्गमूलाऽसंख्येयभागमात्रस्याऽन्तरस्य प्रतिपादयिष्यमाणत्वात्।

अथ गणितविभागः ।

सम्प्रति द्वात्रिंशदधिकशततमगाथोक्तबन्धापूर्वावान्तरकिट्टीनामेतद्गाथोक्तसंक्रमापूर्वावान्तरकिट्टीनां चान्तरादिकं गणितरीत्या प्रदर्श्यते एकसमयप्रबद्धदलमसंख्येयपल्योपमप्रथमवर्गमूलप्रमाणसार्धद्विगुणहान्या गुणयितव्यम्, गुणने च कृते लोभस्य किट्टितया परिणतं दलं लभ्यते, तद्गुणनेस्त्रिकेण भाजिते सदेकसंग्रहकिट्टिसकलाऽवान्तरकिट्टितया परिणतं दलं भवति । ततः सार्धद्विगुणहानित्रिभागगुणितैकसमयप्रबद्धदलमुत्कर्षणापकर्षणभागहारेण भज्यते, तदेकैकसंग्रहकिट्टेरुत्कीर्णदलं प्राप्यते । सम्प्रति तूत्कीर्णदलेन निर्वर्त्यमानाऽपूर्वावान्तरकिट्टीनां प्रमाणमिष्यत इतिकृत्वा सार्धद्विगुणहानित्रिभागगुणितैकसमयप्रबद्धदलेनैकैकसंग्रहकिट्टौ यदि सकलाऽवान्तरकिट्टयो निर्वर्तिताः, तदुत्कीर्णदलेन कियत्योऽपूर्वाऽवान्तरकिट्टयो निर्वर्त्येरन् ? इति त्रैराशिकेन साधनीयाः संक्रमदलतो निर्वर्त्यमाना अपूर्वावान्तरकिट्टयो लोभप्रथमसंग्रहकिट्टौ । असत्कल्पनया

(१) एकद्विगुणहानिः=१६ ∴ सार्धद्विगुणहानिः =२४ ।

(२) एकसमयप्रबद्धदलम्='अ'

(३) लोभप्रथमसंग्रहकिट्टौ निर्वर्तिता अवान्तरकिट्टयः=७२ ।

(४) उत्कर्षणापकर्षणभागहारः=४ ।

(५) असंख्येयपल्योपमप्रथमवर्गमूलानि च=८ इति कल्प्यताम् ।

∴ लोभत्रिसंग्रहकिट्टितया परिणतं दलम्=२४×अ=२४ अ

∴ लोभप्रथमसंग्रहकिट्टितया ,, ,, =२४ अ÷३=८ अ, तस्य च ७२ अवान्तरकिट्टयो निर्वर्तिताः ।

∵ उत्कर्षणापकर्षणभागहारः=४

∴ लोभप्रथमसंग्रहकिट्टित उत्कीर्णदलम्=८ अ÷४=२

'८अ' इत्यनेन द्वासप्ततिः (७२) अवान्तरकिट्टयो निर्वर्तिताः, तर्हि '२ अ' इत्यनेन कियत्योऽपूर्वाऽवान्तरकिट्टयो निर्वर्त्येरन् ? प्रमाणमिच्छा च समानजातौ, आद्यन्तयोस्तत्फलमन्यजातिः । मध्ये तदिच्छाहतमाद्यहृत् स्यादिच्छाफलं ।" इति श्रीभास्करवचनेन साध्याः । तथाहि—प्रमाणम्=८अ, प्रमाणफलम्=७२, इच्छा=२ अ, इच्छाहतमिदम्—७२×२अ=१४४अ, आद्येन—प्रमाणेन हृतं इच्छाफलम्=१४४ अ÷८ अ=१८ । एवमष्टादश (१८) अपूर्वाऽवान्तरकिट्टय उत्कीर्णदलतो निर्वर्त्यन्ते, ताश्च परमार्थत उत्कर्षणापकर्षणभागहारभाजितैकसंग्रहकिट्टिगताऽवान्तरकिट्टिप्रमाणा भवन्ति । उत्कर्षणापकर्षणभागहारस्य पल्योपमप्रथमवर्गमूलाऽसंख्येयभागप्रमाणत्वात् संक्रमदलतो निर्वर्त्यमाना अपूर्वावान्तरकिट्टयो लोभस्यैकसंग्रहकिट्टौ पल्योपमप्रथमवर्गमूलाऽसंख्येयभागभाजितैकसंग्रहकिट्टिगतावान्तरकिट्टिप्रमाणा भवन्ति ।

न्यासः

लोभप्रथमसंग्रहकिट्टौ सर्वा. संक्रमापूर्वावान्तरकिट्टयः $=\frac{\text{तत्संग्रहकिट्टिगता-ऽवान्तरकिट्टयः}}{\text{पल्योपमप्रथमवर्गमूलासंख्यभागः}}$

यद्यपि द्वात्रिंशदधिकशततमगाथायाष्टीकायां बन्धापूर्वावान्तरकिट्टिराशिर्गणितरीत्या दर्शितः, तथापीह संक्रमापूर्वान्तरकिट्टिराशिना सह तुलनां कर्तुं पुनः प्रदर्श्यते । एवमन्तरमपि ।

लोभस्य बन्धदलम् 'अ', एकसमयप्रबद्धत्वात् । बन्धदलतो-ऽनन्ततमभागमात्रं दलं पृथक् स्थापयित्वा शेषं बन्धापूर्वावान्तरकिट्टित्वेन परिणमयति । स्थूलदृष्ट्या 'अ' इति दलं बन्धाऽपूर्वावान्तरकिट्टितया परिणमयति, अनन्ततमभागस्याविवक्षणात् । यदि '८अ' इत्यनेन दलेन द्वासप्ततिः(७२) अवान्तरकिट्टयो निर्वर्तिताः, तर्हि 'अ' इत्यनेन कत्यवान्तरकिट्टयो निर्वर्त्येरन् ? इति त्रैराशिकेन नव (९) अवान्तरकिट्टयः साध्यन्ते । ताश्च परमार्थतोऽसंख्येयपल्योपमप्रथमवर्गमूल-भाजितलोभप्रथमसंग्रहकिट्टिगतावान्तरकिट्टिप्रमाणा भवन्ति । तेन बन्धाऽपूर्वावान्तरकिट्टितो-ऽसंख्येयगुणाः संक्रमाऽपूर्वावान्तरकिट्टयो निर्वर्त्यन्त इति सिध्यति, उत्कर्षणापकर्षणभागहारतो-ऽसंख्येयपल्योपमप्रथमवर्गमूलानामसंख्येयगुणत्वात् ।

अथा-ऽन्तरं साध्यते—अष्टादशसंक्रमाऽपूर्वावान्तरकिट्टिभिरेकसंग्रहकिट्टिसर्वपूर्वावान्तरकिट्टयो द्वासप्ततिसंख्याका अ.तर्यन्ते, तर्ह्येकसंक्रमाऽपूर्वावान्तरकिट्टयाः कति पूर्वावान्तरकिट्टयोऽन्तरयितव्याः ? इति त्रैराशिकेन साधनीयमन्तरम् । तद्यथा प्रमाणमत्र १८, प्रमाणफलम् ७२, इच्छा १ । "प्रमाणमि च्छा०" इति श्रीभास्करवचनेनेच्छागुणितं प्रमाणफलमिदम्—$७२\times१=७२$, तच्च १८इति प्रमाणेन भक्तव्यम्, तदा इच्छाफलम् $\frac{७२}{१८}=४$, तच्च परमार्थत उत्कर्षणापकर्षणभागप्रमाणं भवद् पल्योपमप्रथमवर्गमूलाऽसंख्येयभागप्रमितं भवति ।

यद्यपि प्रथमतोऽन्ततश्चाऽसंख्येयभागं विहाय पूर्वावान्तरकिट्टय एकैकबन्धापूर्वावान्तरकिट्टया व्यवधीयन्ते, तथापि स्थूलदृष्ट्या सर्वपूर्वावान्तरकिट्टयो व्यवधीयन्त इति कल्प्यते, असंख्येयभागस्या-विवक्षणात् । यदि नवभिर्बन्धापूर्वावान्तरकिट्टिभिरेकसंग्रहकिट्टिसर्वपूर्वावान्तरकिट्टयो द्वासप्ततिसं-ख्याका अन्तर्यन्ते, तर्ह्येकया बन्धापूर्वावान्तरकिट्टया कियत्यः पूर्वावान्तरकिट्टयो व्यवधातव्याः ? इति त्रैराशिकेन व्यवधीयमानाः पूर्वावान्तरकिट्टयः साध्याः ।

न्यास. प्रमाणम्=९, प्रमाणफलम्=७२, इच्छा=१, इच्छाफलम्= $\frac{७२}{९}=८$

असत्कल्पनया-ऽष्टौ (८) परमार्थतस्त्वसंख्येयपल्योपमप्रथमवर्गमूलप्रमाणाः पूर्वावान्तरकिट्टीरति-क्रम्यैकां बन्धाऽपूर्वावान्तरकिट्टिं निर्वर्तयति, संक्रमाऽपूर्वावान्तरकिट्टिस्त्वसत्कल्पनया चतस्रः (४) परमार्थतः पुनः पल्योपमप्रथमवर्गमूला-ऽसंख्येयभागप्रमाणाः पूर्वाऽवान्तरकिट्टीरुल्लङ्घ्य निर्वर्त्यन्ते ।

तेन संक्रमापूर्वावान्तरकिट्टीनामन्तरं स्तोकतरं भवति, बन्धापूर्वावान्तरकिट्टयन्तरितोऽसंख्येयगुणहीनं भवतीत्यर्थः ॥१३६॥

॥ गणितविभागः समाप्तः ॥

अथ संक्रमप्रदेशाग्रतो निर्वर्त्यमानापूर्वावान्तरकिट्टिषु दलनिक्षेपमतिदेशेन भणति

संगहअंतरजासु णिखेवो किट्टिकरणव्व बंधव्व ।
परजासु पल्लमूलासंखंसो अंतरं णवरं ॥१३७॥

संग्रहान्तरजासु निक्षेपः किट्टिकरणवद् बन्धवद् ।
परजासु पल्यमूलासंख्यांशोऽन्तरं नवरम् ॥१३७॥इति पदसंस्कारः ।

'संगह०' इत्यादि, 'संग्रहान्तरजासु' संग्रहकिट्टयन्तरजास्वपूर्वाऽवान्तरकिट्टिषु 'निक्षेपः' दलनिक्षेपः किट्टिकरणवद् बोद्धव्य इति शेषः । 'परजासु' अवान्तरकिट्टयन्तरजास्वपूर्वावान्तरकिट्टिषु 'बन्धवद्' बन्धाऽपूर्वाऽवान्तरकिट्टिवद् दलनिक्षेपो बोद्धव्य । सामान्येनाऽतिदिश्याऽन्तरविषयकमपवादमाह 'पल्ल' इत्यादि, तत्र नवरं 'पल्यमूलासंख्यांशः' पल्योपमप्रथमवर्गमूलाऽसंख्येयभागमात्रमन्तरं ज्ञेयम् । बन्धापूर्वावान्तरकिट्टिदलनिक्षेपेऽन्तरमसंख्येयपल्योपमप्रथमवर्गमूलप्रमाणमासीत् । इह तु पल्योपमप्रथमवर्गमूलाऽसंख्येयभागप्रमाणं ज्ञातव्यमिति भावः । यदभ्यधायि कषायप्राभृतचूर्णौ—"**जाओ संगहकिट्टीअंतरेसु, तासिं जहा किट्टीकरणे अपुव्वाणं णिव्वत्तिज्जमाणियाणं किट्टीणं विधी, तहा कायव्वो । जाओ किट्टीअंतरेसु, तासिं जहा बज्झमाणएण पदेसग्गेण अपुव्वाणं णिव्वत्तिज्जमाणियाणं किट्टीणं विधी, तहा कायव्वो । णवरि थोवदरगाणि किट्टीअंतराणि गंतूण संछुब्भमाणपदेसग्गेण अपुव्वा किट्टी णिव्वत्तिज्जमाणिआ दिस्सदि । ताणि किट्टीअंतराणि पगणणादो पलिदोवमवग्गमूलस्स असंखेज्जदिभागो ।**" इति ।

भावार्थः पुनरयम् संग्रहकिट्टयन्तरजास्वपूर्वावान्तरकिट्टिषु किट्टिकरणसदृशो यो दलनिक्षेप उक्तः । तत्र सादृश्यार्थ उष्ट्रकूटाकारापेक्षया बोध्यः, अन्यथा सादृश्यं न संभवति, । तथाहि—किट्टिकरणाद्धायां प्रतिसमयमवान्तरकिट्टितयाऽसंख्येयगुणक्रमेण दलं परिणम्यते स्म; तेन पूर्वावान्तरकिट्टिगतदलत उत्तरोत्तरसमयेऽसंख्येयगुणं दलं किट्टितया परिणम्यते स्म । तथाऽपूर्वावान्तरकिट्टिषु यथोत्तरमनन्ततमभागेन हीनं दलिकं ददच्चरमाऽपूर्वावान्तरकिट्टितः प्रथमपूर्वावान्तरकिट्टावसंख्येयभागेन हीनं दलं ददाति स्म, ततोऽनन्तभागेन हीनं हीनतरं ददच्चरमपूर्वाऽवान्तरकिट्टितः प्रथमाऽपूर्वावान्तरकिट्टावसंख्येयभागेनाऽधिकं दलं ददाति स्म । किट्टिवेदनाद्धायां पुनस्तादृशो दलनिक्षेपो न संभवति । कुतः ? इति चेत्, उच्यते-

किट्टिकरणाद्धायाश्चरमसमये मोहनीयसर्वदलस्य किट्टितया परिणतत्वात् किट्टिवेदनाद्धायाश्च प्रथमसमये पूर्वसत्तागतदलाऽसंख्येयभागमात्रदलस्योत्करणात् पूर्वाऽवान्तरकिट्टिगतदलिकापेक्षयाऽसंख्येयभागप्रमणं दलमपूर्वाऽवान्तरकिट्टितया परिणमनायोत्किरति, एवं द्वितीयादिसमयेष्वपि। यद्यपि प्रतिसमयं किट्टिवेदनाद्धायामप्यसंख्येयगुणं दलमुत्किरति, तथाप्युत्कीर्यमाणं सर्वं दलं पूर्वसत्तागतसर्वदलासंख्येयभागप्रमाणं भवति। तेन किट्टिवेदनाद्धायाः प्रथमसमये संग्रहकिट्ट्यन्तरोत्पन्नास्ववान्तरकिट्टिषु या चरमापूर्वावान्तरकिट्टिः,तस्यां निक्षिप्यमाणदलतोऽसंख्येयगुणहीनं प्रथमपूर्वावान्तरकिट्टौ दलं निक्षिपति,अन्यथा पूर्वापूर्वाऽवान्तरकिट्टीनां दृश्यमानं दलमेकगोपुच्छाकारेण न स्यात्। एवं चरमपूर्वावान्तरकिट्टितोऽसंख्येयगुणं प्रथमायां संग्रहकिट्ट्यन्तरोत्पन्नायामवान्तरकिट्टौ निक्षिपति, अन्यथा दृश्यमानदलस्य गोपुच्छाकारभङ्गः प्रसज्येत। इहोष्ट्रकूटापेक्षया तु सादृश्यार्थः सूपपद्यते, असंख्येयगुणहानेरसंख्येयगुणवृद्धेश्चोपलम्भेन नि••ोन्नतत्वोपल••ात्। तथाऽवान्तरकिट्ट्यन्तरजास्वपूर्वाऽवान्तरकिट्टिषु बन्धाऽपूर्वावान्तरकिट्टिसदृशो यो दलिकनिक्षेपः प्रतिपादितः। तत्र सादृश्यार्थोऽन्तरापेक्षया ज्ञातव्यः। यथा बन्धाऽपूर्वावान्तरकिट्टिषु पूर्वाऽवान्तरकिट्टीरन्तरयित्वाऽन्तरयित्वा दलं प्रक्षिपति, तथाऽवान्तरकिट्ट्यन्तरजासु संक्रमापूर्वऽवान्तरकिट्टिष्वपि पूर्वाऽवान्तरकिट्टीरन्तरयित्वाऽन्तरयित्वा दलं प्रक्षिपति, न तु नैरन्तर्येण, अन्यथा सादृश्यं न संभवति। तद्यथा यथा बन्धजघन्यपूर्वावान्तरकिट्टितो यथोत्तरमनन्तभागेन हीनं हीनतरं दलिकं देददसंख्येयपल्योपमप्रथमवर्गमूलप्रमाणबन्धपूर्वाऽवान्तरकिट्टिषु गतासु बन्धपूर्वावान्तरकिट्टितो बन्धाऽपूर्वावान्तरकिट्टावनन्तगुणं दत्त्वा तदनन्तरबन्धपूर्वाऽवान्तरकिट्टावनन्तगुणहीनं दलं ददाति ११, तथा संग्रहकिट्ट्यन्तरोत्पन्नचरमाऽपूर्वावान्तरकिट्टितः संक्रमजघन्यपूर्वाऽवान्तरकिट्टावसंख्येयगुणहीनं दलं दत्त्वा संक्रमद्वितीयादिपूर्वाऽवान्तरकिट्टिष्वनन्तभागेन हीनं हीनतरं दलिकं ददत् पल्योपमप्रथमवर्गमूलाऽसंख्येयभागप्रमाणासु पूर्वाऽवान्तरकिट्टिषु गतासु न संक्रमाऽपूर्वाऽवान्तरकिट्टावनन्तगुणं दलं दत्त्वाऽनन्तरसंक्रमपूर्वावान्तरकिट्टावनन्तगुणहीनं ददाति, अपि तु संक्रमाऽपूर्वावान्तरकिट्टावसंख्यातगुणं दलं दत्त्वाऽनन्तरसंक्रमपूर्वावान्तरकिट्ट्यामसंख्यातगुणहीनं ददाति, अन्यथा संक्रमपूर्वावान्तरकिट्टितोऽवान्तरकिट्ट्यन्तरजायां संक्रमाऽपूर्वावान्तरकिट्टौ दृश्यमानदलस्याऽनन्तगुणत्वप्रसङ्गेन गोपुच्छाकारभङ्गः प्रसज्येत। अतो बन्धवदित्यत्र सादृश्यार्थोऽन्तरापेक्षया बोध्यः। तेन किट्टिवेदनाद्धाप्रथमसमये दलिकनिक्षेप इत्थं प्ररूपयितव्यः सर्वमन्दाऽनुभागका या लोभतृतीयसंग्रहकिट्टिप्रथमपूर्वाऽवान्तरकिट्टिः, तस्या अधस्तात् किट्टिवेदको लोभतृतीयसंग्रहकिट्ट्यन्तरे या अपूर्वावान्तरकिट्टीर्निर्वर्तयति, तासु या सर्वजघन्याऽनुभागकावान्तरकिट्टिः, तस्यां प्रभूतं दलिकं ददाति। ततो द्वितीयस्यां लोभतृतीयसंग्रहकिट्ट्यन्तरजायामपूर्वावान्तरकिट्टावनन्तभागेन हीनं दलं ददाति, ततोऽनन्तरानन्तरेण विशेषहीनक्रमेण दलं तावद् ददाति, यावल्लोभतृतीयसंग्रहकिट्ट्यन्तरजचरमाऽपूर्वावान्तरकिट्टिः। लोभतृतीयसंग्रहकिट्ट्यन्तरोत्पन्नचरमाऽपूर्वावान्तरकि-

ट्टितो लोभतृतीयसंग्रहकिट्टिप्रथमपूर्वावान्तरकिट्टावसंख्यातगुणहीनं दलं ददाति, ततो लोभतृतीयसंग्रहकिट्टिद्वितीयपूर्वावान्तरकिट्टयामनन्ततमभागेन हीनं दलं ददाति । एवंक्रमेण तावद् ददाति, यावत् पल्योपमप्रथमवर्गमूलाऽसंख्येयभागप्रमाणा लोभतृतीयसंग्रहकिट्टिपूर्वावान्तरकिट्टयो व्यतिक्रामन्ति, ततोऽनन्तरायां संक्रमतो निर्वर्त्यमानायां लोभतृतीयसंग्रहकिट्टयाः प्रथमायामवान्तरकिट्टयन्तरजायां संक्रमाऽपूर्वावान्तरकिट्टावसंख्यातगुणं दलं निक्षिपति । ततोऽनन्तरायां लोभतृतीयसंग्रहकिट्टिपूर्वावान्तरकिट्टावसंख्येयगुणहीनं दलं ददाति । तत उत्तरोत्तरस्यां लोभतृतीयसंग्रहकिट्टिपूर्वाऽवान्तरकिट्टयामनन्तभागेन हीनं दलं ददाति । यत्र च पूर्वावान्तरकिट्टया अपूर्वावान्तरकिट्टयाश्च सन्धिर्भवति, तत्र पूर्वाऽवान्तरकिट्टितोऽपूर्वावान्तरकिट्टावसंख्येयगुणं दत्त्वाऽपूर्वाऽवान्तरकिट्टितोऽनन्तरपूर्वावान्तरकिट्टावसंख्येयगुणहीनं दलं ददाति । शेषाऽवान्तरकिट्टिष्वनन्ततमभागेन हीनं दलं ददाति । एवंक्रमेण ददल्लोभतृतीयसंग्रहकिट्टिचरमपूर्वाऽवान्तरकिट्टितो लोभद्वितीयसंग्रहकिट्टयन्तरजायां प्रथमायामपूर्वावान्तरकिट्टावसंख्येयगुणं दलं ददाति । ततो विशेषहीनक्रमेण तावद् ददाति, यावल्लोभद्वितीयसंग्रहकिट्टयन्तरजा चरमाऽपूर्वावान्तरकिट्टिः । ततो लोभद्वितीयसंग्रहकिट्टयन्तरजचरमाऽपूर्वावान्तरकिट्टितो लोभद्वितीयसंग्रहकिट्टिप्रथमपूर्वावान्तरकिट्टयामसंख्यातगुणहीनं दलं ददाति । ततः परं यथोत्तरमनन्तभागेन हीनं हीनतरं ददाति । नवरं पल्योपमप्रथमवर्गमूलाऽसंख्येयभागप्रमाणासु पूर्वाऽवान्तरकिट्टिषु गतासु यत्र यत्र पूर्वाऽवान्तरकिट्टेरवान्तरकिट्टयन्तरजायाश्चाऽपूर्वाऽवान्तरकिट्टेः सन्धिर्जायते, तत्र तत्र पूर्वाऽवान्तरकिट्टितोऽपूर्वावान्तरकिट्टावसंख्येयगुणं दलं दत्त्वाऽपूर्वावान्तरकिट्टितोऽनन्तरपूर्वावान्तरकिट्टावसंख्यातगुणहीनं ददाति ।

ततो लोभद्वितीयसंग्रहकिट्टिचरमपूर्वावान्तरकिट्टितो लोभप्रथमसंग्रहकिट्टयन्तरजायां प्रथमायामपूर्वावान्तरकिट्टयामसंख्यातगुणं दलं ददाति । तत उत्तरोत्तराऽपूर्वावान्तरकिट्टौ विशेषहीनं दलं तावद् ददाति, यावल्लोभप्रथमसंग्रहकिट्टयन्तरजा चरमाऽपूर्वावान्तरकिट्टिः । ततो लोभप्रथमसंग्रहकिट्टिप्रथमपूर्वावान्तरकिट्टावसंख्यातगुणहीनं दलं निक्षिपति । ततः परमनन्तरानन्तरेण सर्वत्र विशेषहीनक्रमेण दलं तावद् ददाति, यावल्लोभप्रथमसंग्रहकिट्टिचरमपूर्वावान्तरकिट्टिः । नवरं पल्योपमप्रथमवर्गमूलाऽसंख्येयभागप्रमाणासु पूर्वाऽवान्तरकिट्टिषु गतासु यत्र यत्र पूर्वावान्तरकिट्टेरपूर्वाऽवान्तरकिट्टेश्च सन्धिर्भवति, तत्र तत्र पूर्वावान्तरकिट्टितोऽपूर्वावान्तरकिट्टावसंख्येयगुणं दलं दत्त्वाऽपूर्वावान्तरकिट्टितोऽनन्तरपूर्वाऽवान्तरकिट्टावसंख्येयगुणहीनं दलं प्रक्षिपति ।

ततो लोभप्रथमसंग्रहकिट्टिचरमपूर्वावान्तरकिट्टितो मायातृतीयसंग्रहकिट्टयन्तरजायां मायाप्रथमाऽपूर्वावान्तरकिट्टयामसंख्यातगुणं दलं ददाति । ततः सर्वत्र लोभवद् वक्तव्यम् ।

अयंभावः यथा लोभसंग्रहकिट्टित्रये दलनिक्षेप उक्तः, तथैव मायामानयोः संग्रहकिट्टित्रये

निर्वर्त्यमाना अपूर्वान्तरकिट्टयोऽपि बन्धपूर्वावान्तरकिट्टित्वेन गृह्यन्त इति ।

△ अनेन चिह्नेन बन्धापूर्वावान्तरकिट्टौ दीयमानं दल सूचितम् , असत्कल्पनया द्वे बन्धाऽपूर्वावान्तरकिट्टी, वस्तुतोऽनन्ता बन्धापूर्वावान्तरकिट्टयः, असख्येयपल्योपमप्रथमवर्गमूलप्रमाणासु च बन्धपूर्वावान्तरकिट्टिषु गतास्वेकैका बन्धापूर्वावान्तरकिट्टिर्निर्वर्त्यते, इह त्वसत्कल्पनया पञ्चसु बन्धपूर्वावान्तरकिट्टिषु गतासु निर्वर्त्यते ।

बन्धदलिकनिक्षेपः—

चित्रे लोभप्रथमसग्रहकिट्टौ या पष्ठावान्तरकिट्टि, सा लोभप्रथमसग्रहकिट्टया बन्धप्रथमपूर्वावान्तरकिट्टि, तस्यां प्रभूतं दलिकं ददाति, तच्च ● इत्यनेन चिह्नेन सूचितम् , ततो विशेषहीनक्रमेणाऽसख्येयपल्योपमप्रथमवर्गमूलप्रमाणास्वसत्कल्पनया पञ्चसु बन्धपूर्वावान्तरकिट्टिषु तावद् ददाति, यावद् बन्धापूर्वावान्तरकिट्टया अधस्तनी बन्धपूर्वावान्तरकिट्टि, असत्कल्पनया तु दशमी । ततोऽनन्तगुण दलिक बन्धप्रथमापूर्वावान्तरकिट्टौ ददाति, तच्च △ इत्यनेन चिह्नेन सूचितम् । तदनन्तर बन्धपूर्वावान्तरकिट्टयामसत्कल्पनया लोभप्रथमसंग्रहकिट्टया द्वादश्यामवान्तरकिट्टयामनन्तगुणहीनं दलं ददाति, तच्च ● इत्यनेन चिह्नेन सूचितम्, ततो विशेषहीन ददाति । एवंक्रमेणाग्रेऽपि बन्धदलिकनिक्षेपो वक्तव्यः (गाथा १३३-१३४)

'किट्टिकरणव्व' इत्यस्योष्ट्रकूटाकारापेक्षया संक्रमदलिकप्रक्षेपः—

लोभतृतीयसग्रहकिट्टयन्तरोत्पन्नायां प्रथमापूर्वावान्तरकिट्टौ प्रभूत दलिक ददाति, तच्च * इत्यनेन चिह्नेन सूचितम्, ततो विशेषहीनक्रमेण तावद् ददाति, यावल्लोभतृतीयसंग्रहकिट्टयन्तरोत्पन्नचरमापूर्वावान्तरकिट्टि, असत्कल्पनया लोभतृतीयसग्रहकिट्टयाश्चतुर्थावान्तरकिट्टि । ततोऽसंख्येयगुणहीन दलिकं लोभतृतीयसग्रहकिट्टिप्रथमपूर्वावान्तरकिट्टौ चित्रे तु पञ्चमावान्तरकिट्टौ ददाति, तच्च - - - इत्यनेन चिह्नेन सूचितम् , तदेवमत्र दलनिक्षेपस्योष्ट्रकूटाकारः । ततो विशेषहीनक्रमेण तावद् ददाति, यावत् पल्योपमप्रथमवर्गमूलाऽसख्येयभागप्रमाणा लोभतृतीयसग्रहकिट्टिपूर्वावान्तरकिट्टयो व्यतिक्रामन्ति । इह तु चित्रे प्रभूतावकाशाभावात् तावत्योऽवान्तरकिट्टयो न दर्शिता, किन्तु द्वे एव पूर्वावान्तरकिट्टी दर्शिते ।

तत सङ्क्रमदलतो निर्वर्त्यमानायां लोभतृतीयसंग्रहकिट्टया प्रथमायामवान्तरकिट्टयन्तरोत्पन्नापूर्वावान्तरकिट्टयामसंख्येयगुणं दलिक प्रक्षिपति, तच्च ० ० ० इत्यनेन चिह्नेन दर्शितम् । ततोऽनन्तराया पूर्वावान्तरकिट्टयां चित्रे त्वष्टमावान्तरकिट्टावसङ्ख्येयगुणहीन दलिक ददाति, तच्च- - - इत्यनेन चिह्नेन सूचितम् । ततो विशेषहीनक्रमेण पल्योपमप्रथमवर्गमूलासख्येयभागप्रमाणासु पूर्वावान्तरकिट्टिषु दलिक प्रक्षिपति. तत. पुनर्लोभतृतीयसंग्रहकिट्टेर्द्वितीयस्यामवान्तरकिट्टयन्तरोत्पन्नायामपूर्वावान्तरकिट्टावसख्येयगुण दलिक प्रक्षिपति, ततस्तदनन्तरायां पूर्वावान्तरकिट्टावसख्येयगुणहीनं दल प्रक्षिपति । ततो विशेषहीनक्रमेण पल्योपमप्रथमवर्गमूलासख्येयभागप्रमाणासु पूर्वावान्तरकिट्टिषु प्रक्षिपति । तदेवं 'बन्धव्व' इत्यस्य सादृश्यार्थेऽन्तरापेक्षया बोध्य । एवमग्रेऽपि दलिकप्रक्षेपो वाच्यः ।

'किट्टिकरणव्व' इत्यस्य नैरन्तर्यापेक्षया सङ्क्रमदलिकप्रक्षेपः—

लोभतृतीयसग्रहकिट्टयन्तरोत्पन्नायां प्रथमायामपूर्वावान्तरकिट्टौ प्रभूत दलिक ददाति, ततो द्वितीयस्यां विशेषहीनम्, ततोऽपि तृतीयस्यां विशेषहीनम्, 'किट्टिकरणव्व' इत्यस्य सादृश्यार्थे नैरन्तर्यापेक्षया ज्ञेयः । लोभतृतीयसग्रहकिट्टिचरमापूर्वावान्तरकिट्टितो लोभतृतीयसंग्रहकिट्टया प्रथमपूर्वावान्तरकिट्टावनन्तगुणहीन दल ददाति, ततो विशेषहीनक्रमेण पल्योपमप्रथमवर्गमूलाऽसख्येयभागप्रमाणासु पूर्वावान्तरकिट्टिषु ददाति, ततोऽनन्तगुण दलं लोभतृतीयसग्रहकिट्टया प्रथमायामवान्तरकिट्टयन्तरोत्पन्नायामपूर्वावान्तरकिट्टौ ददाति । ततस्तदनन्तरपूर्वावान्तरकिट्टयामनन्तगुणहीनं दलं प्रक्षिपति, ततो विशेषहीनक्रमेण प्रक्षिपति । एवमग्रेऽपि दलिकप्रक्षेपो वाच्य ।

एव शेषकपायाणामपि सग्रहकिट्टीनां चित्रं दर्शयितव्यम् ।

किट्टिवेदनाद्धायां सङ्क्रमदलतो बन्धदलतश्च पूर्वापूर्वान्तरकिट्टिषु दलिकप्रक्षेपः

१२३४५६७८९०१२३४५६७८९०१२३४५६७८९०१२३ लोभतृतीयसङ्ग्रहकिट्टिः । १२३४५६७८९०१२३४५६७८९०१२३४५६७८ लोभद्वितीयसङ्ग्रहकिट्टिः । १२३४५६७८९०१२३४५६७८९०१२३४५ लोभप्रथमसङ्ग्रहकिट्टिः ।

सङ्केतस्पष्टीकरणम्—

*=अनेन चिह्नेन तत्तत्सङ्ग्रहकिट्टया अध सङ्क्रमदलतो निर्वर्त्यमानास्वपूर्वावान्तरकिट्टिषु दीयमान दल दर्शितम् । असत्कल्पनया लोभस्य तृतीय सङ्ग्रहकिट्टया अधस्तात् पूर्वावान्तरकिट्टयश्चतस्रो निर्वर्त्यन्ते, द्वितीयसंग्रहकिट्टया अधस्तात् तिस्र (३), प्रथमसङ्ग्रहकिट्टयाश्चाऽधस्ताद् द्वे (२) । परमार्थतस्त्वनन्ता अधस्तन्योऽपूर्वावान्तरकिट्टयो निर्वर्त्यन्ते, अवान्तरकिट्टयन्तरेषु च निर्वर्त्यमानापूर्वावान्तरकिट्टितोऽसङ्ख्येयगुणहीना निर्वर्त्यन्ते ।

=अनेन चिह्नेन पूर्वावान्तरकिट्टिषु पुरातनसत्तागतदल सूच्यते । परमार्थतः पूर्वावान्तरकिट्टयो-ऽप्यनन्ताः, असत्कल्पनया तृतीयसङ्ग्रहकिट्टौ २०, द्वितीयसङ्ग्रहकिट्टौ १८, प्रथमसङ्ग्रहकिट्टौ १६ ।

– – – =अनेन चिह्नेन पूर्वावान्तरकिट्टिषु सङ्क्रमदलतो दीयमान दलं सूचितम् ।

००००=अनेन चिह्नेनाऽवान्तरकिट्टयन्तरेषु निर्वर्त्यमानास्वपूर्वावान्तरकिट्टिषु दीयमानं दलं सूचितम्, ताश्चाऽपूर्वावान्तरकिट्टयोऽसत्कल्पनया लोभस्य तृतीयसङ्ग्रहकिट्टौ ९, द्वितीयसङ्ग्रहकिट्टौ ८, प्रथमसङ्ग्रहकिट्टौ च ५, परमार्थतस्त्वनन्ताः, पूर्वावान्तरकिट्टीनां चाऽसंख्येयभागप्रमाणा. । एका चाऽपूर्वावान्तरकिट्टिर्द्वयो. पूर्वावान्तरकिट्टयोरन्तरे निर्वर्त्यते, तथा पल्योपमप्रथमवर्गमूलाऽसङ्ख्येयभागमात्रेष्ववान्तरकिट्टयन्तरेषु गतेषु निर्वर्त्यते, असत्कल्पनया तु द्वयोरवान्तरकिट्टयन्तरयोर्वर्जितयोर्निर्वर्त्यते ।

••••= अनेन चिह्नेन बन्धपूर्वावान्तरकिट्टिषु दीयमान दल सूचितम्, असत्कल्पनया बन्धपूर्वावान्तरकिट्टयः १५ कल्पिता, वस्तुतो ऽनन्ताः । अनेऽभव-धेयम्–लोभप्रथमसङ्ग्रहकिट्टौ बन्धजघन्यपूर्वावान्तरकिट्टया उपरि बन्धोत्कृष्टपूर्वावान्तरकिट्टयाश्चाऽधस्ताद् सङ्क्रमदलतोऽवान्तरकिट्टयन्तरेषु

क्रोधस्य च तृतीयसंग्रहकिट्टि-द्वितीयसंग्रहकिट्ट्योर्दलनिक्षेपो वक्तव्यः। क्रोधप्रथमसंग्रहकिट्टौ तु संक्रमदलतोऽपूर्वावान्तरकिट्टयो न निर्वर्त्यन्ते।

अथ प्रकारान्तरेण दलिकनिक्षेपविधिर्व्याख्यायते संग्रहकिट्ट्यन्तरजायाश्चरमाऽपूर्वावान्तरकिट्टेः प्रथमपूर्वाऽवान्तरकिट्टेश्च सन्धौ सति संग्रहकिट्ट्यन्तरजचरमाऽपूर्वाऽवान्तरकिट्टितः प्रथमपूर्वावान्तरकिट्ट्यामनन्तगुणहीनं दलं ददाति। 'किट्टिकरणवद्' इत्यत्र सादृश्यार्थश्च नैरन्तर्यापेक्षया बोध्यः, यथा किट्टिकरणाद्धायामेकैकसंग्रहकिट्ट्यपूर्वावान्तरकिट्टिषु निरन्तरं दलमनन्तभागेन हीनं ददाति, तथैव किट्टिवेदनाद्धायां संग्रहकिट्टेरधस्तात् निर्वर्त्यमानासु संग्रहकिट्ट्यन्तरजास्वपूर्वावान्तरकिट्टिषु यथोत्तरं निरन्तरमनन्ततमभागेन हीनं हीनतरं दलं ददाति।

पूर्वाऽवान्तरकिट्टेरवान्तरकिट्ट्यन्तरजायाश्चाऽपूर्वावान्तरकिट्टेः सन्धौ सति पूर्वावान्तरकिट्टितोऽवान्तरकिट्ट्यन्तरजायामपूर्वावान्तरकिट्ट्यामनन्तगुणं दलं ददाति, अपूर्वावान्तरकिट्टितोऽनन्तरपूर्वाऽवान्तरकिट्ट्यामनन्तगुणहीनं दलं ददाति। 'बन्धवद्' इत्यत्र सादृश्यार्थश्च प्राग्वदन्तरापेक्षया बोद्धव्यः।

अनेन विकल्पेन दलनिक्षेपविधिरित्थं प्ररूपयितव्यः लोभतृतीयसंग्रहकिट्टिप्रथमाऽपूर्वावान्तरकिट्टेरधस्ताद् या अपूर्वाऽवान्तरकिट्टय उत्पद्यन्ते, तासु या सर्वजघन्याऽनुभागका भवति, तस्यां प्रभूतं दलिकं ददाति। ततो द्वितीयस्यां लोभतृतीयसंग्रहकिट्ट्यन्तरोत्पन्नायामपूर्वावान्तरकिट्टौ विशेषहीनं दलं प्रक्षिपति। ततोऽनन्तरानन्तरेण विशेषहीनं दलं तावद् ददाति, यावल्लोभतृतीयसंग्रहकिट्ट्यन्तरोत्पन्नचरमाऽपूर्वावान्तरकिट्टिः।

लोभतृतीयसंग्रहकिट्ट्यन्तरोत्पन्नचरमाऽपूर्वावान्तरकिट्टितो लोभतृतीयसंग्रहकिट्टिप्रथमपूर्वावान्तरकिट्टावनन्तगुणहीनं दलं ददाति। ततः परमनन्तरानन्तरेणाऽनन्तभागेन हीनं तावद् ददाति, यावत् संक्रमाऽपूर्वावान्तरकिट्टिरप्राप्ता भवति।

ततः पूर्वावान्तरकिट्टितः संक्रमाऽपूर्वावान्तरकिट्टावनन्तगुणं दलं ददाति। ततोऽनन्तगुणहीनं दलं पूर्वावान्तरकिट्टौ ददाति। ततः परं सर्वत्र यथोत्तरमनन्तभागेन हीनं दलं ददाति। नवरं यत्र यत्र पूर्वावान्तरकिट्टेरपूर्वावान्तरकिट्टेश्च सन्धिर्जायते, तत्र तत्र पूर्वावान्तरकिट्टितोऽपूर्वावान्तरकिट्टावनन्तगुणं दलं ददाति, अपूर्वावान्तरकिट्टितश्चानन्तरपूर्वावान्तरकिट्ट्यामनन्तगुणहीनं दलं ददाति। एवं लोभस्य द्वितीयसंग्रहकिट्टिप्रथमसंग्रहकिट्ट्योर्मायामानयोः संग्रहकिट्टित्रये क्रोधस्य च तृतीयसंग्रहकिट्टिद्वितीयसंग्रहकिट्ट्योर्दलनिक्षेपो वक्तव्यः, विशेषाभावात्। इत्थं यथागमं व्याख्यानद्वयं दर्शितम्, तत्त्वं तु केवलिनो विदन्ति। पश्यन्तु पाठका यन्त्रकम्–२०।

❀ अथ गणितविभागः ❀

अथ संक्रमदलस्य बन्धदलस्य चाऽधस्तनशीर्षचयदलादिभिः प्ररूपणा क्रियते अन्यसंग्रहकिट्टितो विवक्षितसंग्रहकिट्टिं संक्रमतो यद् दलं गच्छति, तद् आयदलमिति प्राक् परिभाषितम्,

तेन संक्रमदलमेवाऽऽयदलं भवति, न तद्व्यतिरिक्तम् । क्रोधप्रथमसंग्रहकिट्टिं च परित्यज्यैकादश-संग्रहकिट्टिष्वायदलतोऽधस्तनशीर्षचयादिदलं ददाति, क्रोधप्रथमसंग्रहकिट्टौ तु क्रोधप्रथमसंग्रह-किट्टिघातदलतो ददाति । एवमग्रेऽपि वेद्यमानसंग्रहकिट्ट्यामायदलाभावेन घातदलतोऽधस्तनशीर्षच-यादिदलं ददाति ।

(१) अधस्तनशीर्षचयदलम् लोभस्य तृतीयसंग्रहकिट्टिप्रथमपूर्वावान्तरकिट्टौ प्रभूतं दलं विद्यते ।।, ततो लोभतृतीयसंग्रहकिट्टिद्वितीयपूर्वावान्तरकिट्ट्यामेकचयेन हीनं दलम्, ततोऽप्येकचयेन हीनं लोभतृतीयसंग्रहकिट्टितृतीयपूर्वावान्तरकिट्टौ विद्यते ।। । एवंक्रमेण तावद् विद्यते ।।, यावत् क्रोधप्रथमसंग्रहकिट्टिचरमाऽवान्तरकिट्टिः ।

अथ किट्टिवेदनाद्धायाः प्रथमसमये सर्वपूर्वावान्तरकिट्टयस्तेन क्रमेण पूरयितव्याः, येन सर्व-पूर्वावान्तरकिट्टयः प्रदेशानाश्रित्य लोभतृतीयसंग्रहकिट्टिप्रथमपूर्वावान्तरकिट्टितुल्या भवेयुः । ततो लोभप्रथमसंग्रहकिट्टिद्वितीयपूर्वावान्तरकिट्ट्यामेकचयं ददाति, लोभतृतीयसंग्रहकिट्टितृतीयपूर्वावान्तर-किट्टौ द्वौ चयौ प्रक्षिपति । एवमेकोत्तरवृद्ध्या चयांस्तावत् प्रक्षिपति, यावत् क्रोधद्वितीयसंग्रहकिट्टि-चरमपूर्वावान्तरकिट्टिः । एते च दीयमानचया अधस्तनशीर्षचया उच्यन्ते ।

अनेन क्रमेणैकादशसंग्रहकिट्टीनां पूर्वावान्तरकिट्टिषु दीयमाना अधस्तनशीर्षचयाः "**सैक-पदघ्नपदार्धमथैकाद्यङ्कयुतिः किल सङ्कलिताख्या**" इति करणसूत्रेण सङ्कलयितव्याः । पदं चात्र रूपोनैकादशसंग्रहकिट्टिसर्वपूर्वाऽवान्तरकिट्टिराशिर्ज्ञातव्यम् ।

एकचयगतदलमेकादशानां संग्रहकिट्टीनामधस्तनशीर्षचयैर्गुण्यते, तदैकादशसंग्रहकिट्टीनां सर्वाऽधस्तनशीर्षचयदलं प्राप्यते ।

न्यास एकादशसंग्रहकिट्टीनामधस्तनशीर्षचयाः $= (\text{पदम्} + १) \times \frac{\text{पदम्}}{२}$

एकादशसंग्रहकिट्टीनां सर्वाधस्तनशीर्षचयदलम् $= (\text{पदम्} + १) \times \frac{\text{पदम्}}{२} \times$ एकचयगतदलम्

एकादशसंग्रहकिट्टिपूर्वाऽवान्तरकिट्टिषु देयं सर्वाऽधस्तनशीर्षचयदलमायदलतो दातुं पृथक् स्थापयितव्यम् ।

अथ क्रोधप्रथमसंग्रहकिट्टिप्रथमपूर्वावान्तरकिट्ट्यामेकादशसंग्रहकिट्टिपूर्वावान्तरकिट्टिराशिप्रमाणां-श्चयान् प्रक्षिपति । तत एकोत्तरवृद्ध्या चयाँस्तावत् प्रक्षिपति, यावत् क्रोधप्रथमसंग्रहकिट्टिचरम-पूर्वावान्तरकिट्टिः । अनेन क्रमेण क्रोधप्रथमसंग्रहकिट्टिपूर्वावान्तरकिट्टिषु दीयमानाश्चयाः "**व्येकपदघ्नचयो मुखयुक् स्यादन्त्यधनं मुखयुग्दलितं तत् । मध्यधनं पदसं-गुणितं तत् सर्वधनं गणितं च तदुक्तम् ॥१॥**" इत्यनेन करणसूत्रेण संकलयितव्याः ।

अत्र मुखम्=आदिधनम्, तच्चैकादशसंग्रहकिट्टिपूर्वान्तरकिट्टिराशिप्रमाणचयाः, अन्त्यधनं द्वादशसंग्रहकिट्टिपूर्वावान्तरकिट्टिराशिप्रमाणचयाः, चयश्चैको ज्ञातव्यः, एकोत्तरवृद्ध्या चयानां दर्शनात्। पदं च क्रोधप्रथमसंग्रहकिट्टिपूर्वाऽवान्तरकिट्टिराशिर्बोद्धव्यम्।

न्यासः अन्त्यधनम्=(पदम्−१)×चयः+आदिधनम्

$$\text{मध्यमधनम्}=\frac{\text{अन्त्यधनम्}+\text{आदिधनम्}}{२}$$

सर्वधनम्=मध्यमधनम्×पदम्

∴ वेद्यमानक्रोधप्रथमसंग्रहकिट्टेः सर्वाधस्तनशीर्षचया =मध्यमधनम्×पदम्

सर्वाऽधस्तनशीर्षचयैर्गुणितमेकचयगतदलं क्रोधप्रथमसंग्रहकिट्टेः सर्वाऽधस्तनशीर्षचयदलं जायते। तच्च घातदलतो दातुं पृथक् स्थापयितव्यम्।

न्यासः क्रोधप्रथमसंग्रहकिट्ट्या सर्वाधस्तनशीर्षचयदलम्=तत्सर्वाधस्तनशीर्षचया ×एकचयदलम्

(२) अधस्तनाऽपूर्वावान्तरकिट्टिदलम्—पूर्वावान्तरकिट्टिष्वधस्तनशीर्षचयदले यथायोग्यं प्रक्षिप्ते सर्वाः पूर्वावान्तरकिट्टयः प्रदेशापेक्षया सदृशा जायन्ते। एकादशसंग्रहकिट्टीनामधस्ताद् या अपूर्वावान्तरकिट्टयो निर्वर्त्यन्ते, ताः प्रदेशाग्रमाश्रित्य लोभतृतीयसंग्रहकिट्टिप्रथमपूर्वावान्तरकिट्टितुल्याः स्थापयितव्याः। स्थापितायामेकैकस्यामवान्तरकिट्टौ यद् दलं भवति, तदधस्तनाऽपूर्वावान्तरकिट्टिदलमुच्यते, एकाधस्तनाऽपूर्वावान्तरकिट्टिदलमेकादशसंग्रहकिट्ट्यन्तरजाऽपूर्वावान्तरकिट्टिराशिना गुण्यते, तदा सर्वाऽधस्तनाऽपूर्वावान्तरकिट्टिदलं लभ्यते। तच्चाऽऽयदलतो दातुं पृथक् स्थापयितव्यम्। वेद्यमानक्रोधप्रथमसंग्रहकिट्ट्या अधस्तादपूर्वाऽवान्तरकिट्टयो न निर्वर्त्यन्ते संक्रमदलाभावात्। उक्तकिट्टिराशिस्त्ववान्तरकिट्ट्यन्तरोत्पन्नापूर्वावान्तरकिट्टिराशितोऽसंख्येयगुणहीनः।

(३) अवान्तरकिट्ट्यन्तरोत्पन्नाऽपूर्वावान्तरकिट्टिदलम् अवान्तरकिट्ट्यन्तरेषु या अपूर्वाऽवान्तरकिट्टयो निर्वर्त्यन्ते, तासामेकैकाऽपूर्वावान्तरकिट्टौ लोभतृतीयसंग्रहकिट्टिप्रथमपूर्वावान्तरकिट्टिगतप्रदेशतुल्यं प्रदेशाग्रं प्रक्षेप्तव्यम्। एकस्यामपूर्वावान्तरकिट्टौ यद् दलं प्रक्षिप्यते, तदेकाऽवान्तरकिट्ट्यन्तरोत्पन्नाऽपूर्वावान्तरकिट्टिदलमुच्यते। तच्चैकादशसंग्रहकिट्टीनां सर्वाऽवान्तरकिट्ट्यन्तरोत्पन्नाऽपूर्वावान्तरकिट्टिराशिना गुण्यते, तदा सर्वाऽवान्तरकिट्ट्यन्तरोत्पन्नाऽपूर्वावान्तरकिट्टिदलं लभ्यते। एतत्सर्वमायदलतो दातुं पृथक् स्थापयितव्यम्। अवान्तरकिट्ट्यन्तरोत्पन्नाऽपूर्वावान्तरकिट्टीनां राशिरेकादशसंग्रहकिट्टिपूर्वावान्तरकिट्टीनामसंख्येयभागप्रमितो ज्ञातव्यः, यतः पल्योपमप्रथमवर्गमूलाऽसंख्येयभागप्रमाणासु पूर्वावान्तरकिट्टिषु गतास्वेकैकाऽपूर्वाऽवान्तरकिट्टिर्निर्वर्त्यते। क्रोधप्रथमसंग्रहकिट्टौ त्ववान्तरकिट्ट्यन्तरेष्वपूर्वाऽवान्तरकिट्टयः संक्रमदलतो न निर्वर्त्यन्ते, तत्र संक्रमदलाभावात्।

(४) उभयचयदलम् पूर्वोक्तदलत्रये यथायोग्यं प्रक्षिप्ते संक्रमपूर्वाऽपूर्वावान्तरकिट्टयो

वन्धपूर्वावान्तरकिट्टयश्च समानदलिका जायन्ते, तासां दलिकं गोपुच्छाकारं कर्तुं क्रोधप्रथमसंग्रहकिट्टेश्चरमपूर्वावान्तरकिट्टयामेकं चयं प्रक्षिपति। असौ च प्रक्षिप्यमाणश्चय उभयचय उच्यते, द्विचरमपूर्वावान्तरकिट्टौ द्वा उभयचयौ प्रक्षिपति। एवंक्रमेण पश्चानुपूर्व्या लोभतृतीयसंग्रहकिट्टिप्रथमाऽपूर्वावान्तरकिट्टौ वन्धसंक्रमसर्वपूर्वाऽपूर्वावान्तरकिट्टिराशिप्रमाणानुभयचयान् प्रक्षिपति। नवरं वन्धपूर्वावान्तरकिट्टिष्वनन्तभागदलन्यूनानुभयचयान् प्रक्षिपति, वन्धमध्यमखण्डवन्धचयरूपेण तावद्दलस्य प्रक्षेप्स्यमानत्वात् तथा वन्धाऽपूर्वावान्तरकिट्टिषूभयचयस्थाने वक्ष्यमाणवन्धापूर्वान्तरकिट्टिचयान् वन्धदलतो दास्यति। नन्वेकोभयचयः कियद्दलप्रमाणो भवति ? इति चेद्, उच्यते– मोहनीयसत्तागतसर्वदलं पदेन विभज्यते, तदा मध्यमदलं प्राप्यते। तत्पुनरर्धीकृतैकोनपदन्यूनाभ्यां द्वाभ्यां द्विगुणहानिभ्यां विभज्यते, तदैक उभयचयः प्राप्यते। पदं चात्र वन्धसंक्रमसर्वपूर्वपूर्वावान्तरकिट्टिराशिर्ज्ञातव्यम्।

न्यासः मध्यमदलम् = $\dfrac{\text{मोहनीयसर्वदलम्}}{\text{पदम्}}$

एक उभयचय = $\dfrac{\text{मध्यमदलम्}}{\text{द्विगुणहानिद्वयम्} \left(\dfrac{\text{पदम्}}{२} - १\right)}$

सम्प्रति क्रोधप्रथमसंग्रहकिट्टौ प्रक्षिप्यमाणमुभयचयदलं प्रदर्श्यते क्रोधप्रथमसंग्रहकिट्टिचरमपूर्वावान्तरकिट्टयामेकमुभयचयं प्रक्षिपति, क्रोधप्रथमसंग्रहकिट्टिद्विचरमपूर्वावान्तरकिट्टौ द्वा उभयचयौ प्रक्षिपति। एवंक्रमेण क्रोधप्रथमसंग्रहकिट्टिप्रथमपूर्वावान्तरकिट्टौ क्रोधप्रथमसंग्रहकिट्टेसर्वपूर्वपूर्वावान्तरकिट्टिराशिप्रमाणानुभयचयान् प्रक्षिपति। अनेन क्रमेण क्रोधप्रथमसंग्रहकिट्टौ प्रक्षिप्यमाणा उभयचयाः **"सैकपदघ्नपदार्धमथैकाद्यङ्कयुतिः- किल सङ्कलिताख्या।"** इति **श्रीभास्करकरणसूत्रेण** सङ्कलयितव्याः। पदं चाऽत्र क्रोधप्रथमसंग्रहकिट्टिपूर्वापूर्वावान्तरकिट्टिराशिर्ज्ञातव्यम्।

क्रोधप्रथमसंग्रहकिट्टिसर्वोभयचयैरेकोभयचयदलं गुण्यते, तदा क्रोधप्रथमसंग्रहकिट्टिसर्वोभयदलं प्राप्यते। उभयचयदलं च पूर्वावान्तरकिट्टिषु घातदलतो दीयते, वन्धाऽपूर्वावान्तरकिट्टिषु तु वन्धदलतो दीयते। वन्धदलतश्च वन्धापूर्वावान्तरकिट्टिषु किञ्चि··न्यूनोभयचयदलं यद् दीयते, तद् वन्धपूर्वावान्तरकिट्टिचयदलमिति परिभाषिष्यामहे। तच्च वक्ष्यमाणप्रकारेण संकलय्य सर्वोभयचयदलतो विशोधयितव्यम्। विशोधिते च तस्मिन् शेषतः पुनरनन्तभागप्रमाणदलं विशोधयितव्यम्, पूर्वापूर्ववन्धावान्तरकिट्टिषु वन्धमध्यमखण्डवन्धचयदलस्वरूपेणाऽनन्तभागप्रमाणदलस्य दायिष्यमाणत्वात्। शुद्धशेषमुभयचयदलं घातदलतो दातव्यम्।

न्यास

क्रोधप्रथमसंग्रहकिट्टौ निक्षिप्यमाणा सर्वोभयचया $= (पदम्+१) \times \frac{पदम्}{२}$

" " " सर्वोभयचयदलम् = सर्वोभयचया × एकोभयचयदलम्

" " " घातदलतो दातव्यमुभयचयदलम्

=सर्वोभयचयदलम्—बन्धापूर्वावान्तरकिट्टिचयदलम्—(बन्धमध्यमखण्डम् । बन्धचयदलम्)

अथैकादशसंग्रहकिट्टीनामुभयचयदलमुच्यते—क्रोधद्वितीयसंग्रहकिट्टिचरमपूर्वावान्तरकिट्टयामेकाधिकक्रोधप्रथमसंग्रहकिट्टिसर्वपूर्वापूर्वावान्तरकिट्टिराशिप्रमाणानुभयचयान् प्रक्षिपति। क्रोधद्वितीयसंग्रहकिट्टिद्विचरमपूर्वाऽवान्तरकिट्टौ द्वयधिकक्रोधप्रथमसंग्रहकिट्टिसर्वपूर्वापूर्वावान्तरकिट्टिराशिप्रमाणानुभयचयान् निक्षिपति। एवं पश्चानुपूर्व्यैकोत्तरवृद्धया चयान् पूर्वाऽपूर्वावान्तरकिट्टिषु तावद् ददाति, यावल्लोभतृतीयसंग्रहकिट्टिप्रथमाऽपूर्वावान्तरकिट्टिः। एकादशसंग्रहकिट्टिषु **"व्येकपदघ्नचयो मुखयुक् स्यादन्त्यधनं मुखयुग् दलितं तत्। मध्यधनं पदसङ्गुणितं तत् सर्वधनं गणितं तदुक्तम्॥१॥"** इति गणितकरणसूत्रेण सङ्कलयितव्याः प्रक्षिप्यमाणोभयचयाः। मुखम्=आदिधनम्, तच्चात्रैकाधिकक्रोधप्रथमसंग्रहकिट्टिसर्वपूर्वाऽपूर्वावान्तरकिट्टिराशिप्रमाणा उभयचयाः। अन्त्यधनं द्वादशसंग्रहकिट्टिपूर्वापूर्वावान्तरकिट्टिराशिप्रमाणा उभयचयाः, लोभतृतीयसंग्रहकिट्टिप्रथमाऽवान्तरकिट्टौ तावतां चयानां प्रक्षेपात्। पदमेकादशसंग्रहकिट्टिपूर्वापूर्वाऽवान्तरकिट्टिराशिर्ज्ञातव्यम्। चयश्चैको बोद्धव्यः, एकोत्तरवृद्धेः।

एकादशसंग्रहकिट्टीनामुभयचयैरेकोभयचयदलं गुण्यते, तदैकादशसंग्रहकिट्टिसर्वोभयचयदलं प्राप्यते, तच्च वक्ष्यमाणेन मानमायालोभप्रथमसंग्रहकिट्टिबन्धापूर्वावान्तरकिट्टिचयदलेन क्रोधवर्जकषायत्रयबन्धपूर्वाऽपूर्वावान्तरकिट्टिषु च निक्षेप्स्यमानबन्धमध्यमखण्डबन्धचयदलेन न्यूनं वक्तव्यम्, तावद्दलस्य बन्धदलतो दास्यमानत्वात्।

न्यास

अन्त्यधनम् = (पदम्—१) × चय + आदिधनम्

मध्यमधनम्= $\frac{अन्त्यधनम् + आदिधनम्}{२}$

∴ एकादशकिट्टीनां सर्वोभयचया =मध्यमधनम् × पदम्

∴ एकादशसंग्रहकिट्टिषु प्रक्षिप्यमाण सर्वोभयचयदलम्

= एकादशसंग्रहकिट्टीनां सर्वोभयचया ×एकोभयचयदलम्

आयदलतो निक्षिप्यमाणं सर्वोभयचयदलम्

= सर्वोभयचयदलम् क्रोधवर्जकषायत्रयप्रथमसंग्रहकिट्टिबन्धापूर्वावान्तरकिट्टिचयदलम्

(क्रोधवर्जकषायत्रयबन्धमध्यमखण्डम् + क्रोधवर्जकषायत्रयबन्धचयदलम्)

(४) **मध्यमखण्डदलम्**—एकादशसंग्रहकिट्टीनामवस्तनशीर्षचयदलमधस्तनाऽपूर्वाऽवान्तरकिट्टिदलमवान्तरकिट्टयन्तरोत्पन्नापूर्वावान्तरकिट्टिदलमुभयचयदलञ्चेति चतुर्विधं दलमायदलतो विशोध्य शेषमायदलं मध्यमखण्डदलमुच्यते, तच्चैकादशसंग्रहकिट्टिबन्धापूर्वावान्तरकिट्टिराशिरहितपूर्वाऽपूर्वाकिट्टिराशिना विभज्यते, तदैकमध्यमखण्डदलं प्राप्यते। तच्च य आचार्या अपूर्वावान्तरकिट्टितस्तदनन्तरपूर्वाऽवान्तरकिट्टौ निक्षिप्यमाणं दलमसंख्यातगुणहीनं मन्यन्ते, तेषां मतेन लोभतृतीयसंग्रहकिट्टिप्रथमपूर्वावान्तरकिट्टिगतदलाऽसंख्येयभागप्रमाणं भवति । ये पुनरपूर्वावान्तरकिट्टितस्तदनन्तरपूर्वावान्तरकिट्टौ निक्षिप्यमाणं दलमनन्तगुणहीनं स्वीकुर्वन्ति, तेषामभिप्रायेण लोभतृतीयसंग्रहकिट्टिप्रथमपूर्वावान्तरकिट्टिगतदलाऽनन्ततमभागमात्रं भवति । इदं च मध्यमखण्डमेकैकमेकादशसंग्रहकिट्टीनां बन्धापूर्वावान्तरकिट्टिरहितासु सर्वपूर्वापूर्वाऽवान्तरकिट्टिष्वविशेषेण दातव्यम् । निरुक्तैकमध्यमखण्डदलं क्रोधप्रथमसंग्रहकिट्टिपूर्वावान्तरकिट्टिराशिना गुण्यते, तदा क्रोधप्रथमसंग्रहकिट्टिसर्वमध्यमखण्डदलं प्राप्यते । तच्च घातदलतो दातव्यम् । एकैकमध्यमखण्डदलं च क्रोधप्रथमसंग्रहकिट्टिसर्वपूर्वावान्तरकिट्टिष्वविशेषेण दातव्यम् । **त्रिंशदधिकशततमगाथायाटीकायां** पृथक्स्थापितघातदलात् क्रोधप्रथमसंग्रहकिट्टौ यथायोग्यमधस्तनशीर्षचयदलमुभयचयदलं मध्यमखण्डदलं चेति दलत्रये प्रक्षिप्ते पृथक्स्थापितं घातदलं परिसमाप्तं भवति । शेषासु संग्रहकिट्टिषु यथायोग्यं पञ्चविधे दलिके प्रक्षिप्ते सर्वमायदलं परिसमाप्तं भवति ।

अथ बन्धदलं **बन्धाऽपूर्वावान्तरकिट्टिसमानखण्डदलादिभिर्विविच्यते** किट्टिवेदनाद्धायाः प्रथमसमये मोहनीयस्य बन्धत आगतं दलं बन्धदलमुच्यते । मोहनीयैकसमयप्रबद्धदलं मानादिषु विभजति । तत्र माने स्तोकं दलं ददाति । ततो विशेषाधिकं क्रोधे ददाति, ततो मायायां विशेषाधिकं ददाति, ततोऽपि विशेषाधिकं लोभे ददाति । इदं च बन्धदलं प्रथमसंग्रहकिट्टावेव दीयते, तस्या एव बध्यमानत्वात् । सम्प्रति बन्धदलं विभागचतुष्टये स्थापयितव्यम्—(१) बन्धाऽपूर्वावान्तरकिट्टिसमानखण्डम् (२) बन्धाऽपूर्वावान्तरकिट्टिचयदलम्, (३) बन्धचयदलम् (४) बन्धमध्यमखण्डदलं चेति । तत्र सर्वबन्धदलतोऽनन्ततमभागमात्रं दलं बन्धमध्यमखण्डार्थं बन्धचयदलार्थं च पृथक्स्थापयितव्यम्, शेषबह्वनन्तभागप्रमाणदलं बन्धाऽपूर्वावान्तरसमानखण्डदले बन्धाऽपूर्वावान्तरकिट्टिचयदले च विभजति ।

(१) **बन्धाऽपूर्वावान्तरकिट्टिसमानखण्डदलम्**—बन्धदलतश्चतुरसंग्रहकिट्टीनामवान्तरकिट्टयन्तरेषु या अपूर्वाऽवान्तरकिट्टय उत्पद्यन्ते, तासु बन्धदलतः प्रागुक्तैकसंक्रममध्यमखण्डाधिकं लोभतृतीयसंग्रहकिट्टिप्रथमपूर्वावान्तरकिट्टिगतदलं दातव्यम्, तच्चैकं बन्धापूर्वावान्तरकिट्टिसमानखण्डमुच्यते । सर्वबन्धाऽपूर्वावान्तरकिट्टिराशिना च संक्रममध्यमखण्डाधिकलोभतृतीयसंग्रहकिट्टिप्रथमपूर्वावान्तरकिट्टिगतदलं गुण्यते, तदा सर्वबन्धाऽपूर्वावान्तरकिट्टिसमानखण्डदलं प्राप्यते ।

(२) बन्धापूर्वावान्तरकिट्टिचयदलम्-क्रोधादीनां प्रथमसंग्रहकिट्टेरसंख्येयभागप्रमाणा अधस्तनीरुपरितनीश्चाऽवान्तरकिट्टीर्विमुच्य शेषाः प्रथमसंग्रहकिट्टयवान्तरकिट्टयो बध्यन्ते, तत्राऽपि तत्तत्कषायबन्धचरमपूर्वान्तरकिट्टेरवस्तादसंख्यातपल्योपमप्रथमवर्गमूलप्रमाणा बन्धपूर्वावान्तरकिट्टीरुल्लङ्घ्य बन्धचरमाऽपूर्वावान्तरकिट्टिर्निर्वर्त्यते। ततः परं पुनरसंख्येयपल्योपमप्रथमवर्गमूलप्रमाणा बन्धपूर्वावान्तरकिट्टीर्व्यतिक्रम्य बन्धद्विचरमापूर्वावान्तरकिट्टिर्निर्वर्त्यते। ततः पुनरसंख्येयपल्योपमप्रथमवर्गमूलप्रमाणा बन्धपूर्वावान्तरकिट्टीरुल्लङ्घ्य बन्धत्रिचरमापूर्वावान्तरकिट्टिर्निर्वर्त्यते। एवं पश्चानुपूर्व्या तावद् निर्वर्त्यते, यावत् तत्तत्कषायबन्धप्रथमापूर्वावान्तरकिट्टिः। तेन क्रोधप्रथमसंग्रहकिट्टिचरमपूर्वावान्तरकिट्टित आरभ्य पश्चानुपूर्व्या यतिसंख्याका क्रोधप्रथमसंग्रहकिट्टिबन्धचरमाऽपूर्वावान्तरकिट्टिर्भवति, तत्संख्याका बन्धापूर्वाऽवान्तरकिट्टिचयाः क्रोधप्रथमसंग्रहकिट्टिबन्धचरमाऽपूर्वावान्तरकिट्टौ प्रक्षेप्तव्याः। ततोऽसंख्येयपल्योपमप्रथमवर्गमूलप्रमाणैर्बन्धापूर्वावान्तरकिट्टिचयैरधिका बन्धापूर्वावान्तरकिट्टिचया बन्धद्विचरमापूर्वावान्तरकिट्टौ प्रक्षेपणीयाः। ततोऽप्यसंख्येयपल्योपमप्रथमवर्गमूलप्रमाणैरधिका बन्धत्रिचरमापूर्वावान्तरकिट्टौ प्रक्षेप्तव्याः। एवंक्रमेण तावत् प्रक्षेप्तव्याः, यावत् क्रोधप्रथमसंग्रहकिट्टिबन्धप्रथमापूर्वावान्तरकिट्टिः, अन्यथा दृश्यमानं दलं बन्धपूर्वापूर्वावान्तरकिट्टिष्वेकगोपुच्छाकारेण न स्यात्। तथाहि-बन्धपूर्वावान्तरकिट्टिषु संक्रमदलतोऽधस्तनशीर्षचयदले प्रक्षिप्ते बन्धपूर्वाऽवान्तरकिट्टयः प्रदेशानाश्रित्य लोभतृतीयसंग्रहकिट्टिप्रथमपूर्वावान्तरकिट्टिप्रदेशतुल्या जायन्ते स्म। ततः पुनस्तास्वेकं संक्रममध्यमखण्डं यथायोग्यं चोभयचयाः प्रक्षिप्यन्ते। एकैकस्यां बन्धाऽपूर्वावान्तरकिट्टौ तु संक्रममध्यमखण्डाधिकलोभतृतीयसंग्रहकिट्टिप्रथमाऽपूर्वावान्तरकिट्टिगतप्रदेशप्रमाणमेव दलमेकबन्धापूर्वाऽवान्तरकिट्टिसमानखण्डदलं प्रक्षिप्तम्। यदि बन्धाऽपूर्वावान्तरकिट्टिचया न प्रक्षिप्येरन्, तर्हि बन्धपूर्वावान्तरकिट्टितो बन्धाऽपूर्वावान्तरकिट्टौ दृश्यमानं दलं बन्धपूर्वाऽवान्तरकिट्टौ प्रक्षिप्तैरुभयचयैर्न्यूनं स्यात्। न च तदिष्यते, दृश्यमानदलस्य गोपुच्छाकारेण निरूपयिष्यमाणत्वात्। तेन पूर्वाऽपूर्वावान्तरकिट्टिषु दलिकं गोपुच्छाकारं कर्तुं क्रोधप्रथमसंग्रहकिट्टिचरमपूर्वावान्तरकिट्टित आरभ्य पश्चानुपूर्व्या यतिसंख्याका क्रोधप्रथमसंग्रहकिट्टिबन्धचरमाऽपूर्वावान्तरकिट्टिर्भवति, तत्संख्यका बन्धापूर्वावान्तरकिट्टिचयास्तत्र निक्षिप्यन्ते। ततः परमसंख्येयपल्योपमप्रथमवर्गमूलप्रमाणा बन्धपूर्वाऽवान्तरकिट्टीर्व्यतिक्रम्य बन्धद्विचरमाऽपूर्वावान्तरकिट्टिः प्राप्यते, तेन बन्धचरमाऽपूर्वावान्तरकिट्टयपेक्षयाऽसंख्येयपल्योपमप्रथमवर्गमूलप्रमाणैरधिका बन्धाऽपूर्वावान्तरकिट्टिचया बन्धद्विचरमाऽपूर्वावान्तरकिट्टौ प्रक्षिप्यन्ते। एवं पश्चानुपूर्व्यैकैकस्यां बन्धाऽपूर्वावान्तरकिट्टावसंख्येयपल्योपमप्रथमवर्गमूलप्रमाणैरधिका अधिकतरा बन्धाऽपूर्वावान्तरकिट्टिचयास्तावत् प्रक्षिप्यन्ते, यावत् क्रोधस्य बन्धप्रथमाऽपूर्वावान्तरकिट्टिः। "व्येकपदघ्नचयो मुखयुक् स्यादन्त्यधनं मुखयुग्दलितं तत्। मध्यधनं पदसंगुणितं तत् सर्वधनं गणितं च तदुक्तम् ॥१॥" इति गणितकरण-

सूत्रेण क्रोधप्रथमसंग्रहकिट्टिबन्धाऽपूर्वावान्तरकिट्टिचयाः सङ्कलयितव्याः । मुखं चात्र क्रोधप्रथमसंग्रहकिट्टिचरमपूर्वावान्तरकिट्टिप्रभृतिक्रोधबन्धचरमाऽपूर्वावान्तरकिट्टिपर्यवसानाऽवान्तरकिट्टिराशिप्रमाणा बन्धाऽपूर्वावान्तरकिट्टिचयाः, अन्त्यधनं क्रोधप्रथमसंग्रहकिट्टिचरमपूर्वावान्तरकिट्टिप्रभृतितद्बन्धप्रथमापूर्वावान्तरकिट्टिपर्यवसानावान्तरकिट्टिराशिमात्रबन्धापूर्वावान्तरकिट्टिचयाः, चयश्चाऽसंख्येयपल्योपमप्रथमवर्गमूलप्रमाणबन्धाऽपूर्वावान्तरकिट्टिचयाः, पदं तु क्रोधप्रथमसंग्रहकिट्टेरवान्तरकिट्टयन्तरेषु जायमानानामपूर्वावान्तरकिट्टीनां राशिर्ज्ञेयम् ।

एकबन्धाऽपूर्वाऽवान्तरकिट्टिचयगतदलं क्रोधप्रथमसंग्रहकिट्टेः सर्वैर्बन्धाऽपूर्वावान्तरकिट्टिचयैर्गुण्यते, तदा क्रोधप्रथमसंग्रहकिट्टिसर्वबन्धाऽपूर्वावान्तरकिट्टिचयदलं प्राप्यते ।

न्यासः अन्त्यधनम्=(पदम्-१)×चय. ❀ । मुखम्

मध्यमधनम्= $\frac{\text{अन्त्यधनम् । मुखम्}}{२}$

क्रोधप्रथमसंग्रहकिट्टे. सर्वे बन्धापूर्वावान्तरकिट्टिचया =मध्यमधनम् × पदम्

क्रोधप्रथमसंग्रहकिट्टे सर्वेषां बन्धापूर्वावान्तरकिट्टिचयानां दलम्

= एकबन्धापूर्वावान्तरकिट्टिचयदलम् × सर्वे बन्धापूर्वावान्तरकिट्टिचया

एवं मानस्य प्रथमसंग्रहकिट्टिबन्धचरमाऽपूर्वावान्तरकिट्टौ क्रोधचरमपूर्वावान्तरकिट्टित आरभ्य मानप्रथमसंग्रहकिट्टिबन्धचरमाऽपूर्वावान्तरकिट्टिं यावत् यावत्योऽवान्तरकिट्टयो व्यतिक्रामन्ति, तावन्तो बन्धापूर्वाऽवान्तरकिट्टिचयाः प्रक्षेप्तव्याः । ततः क्रोधवदसंख्येयपल्योपमप्रथमवर्गमूलप्रमाणैरधिका अधिकतराः पश्चानुपूर्व्योत्तरोत्तरबन्धाऽपूर्वावान्तरकिट्टौ प्रक्षेप्तव्याः । ते च "व्येकपदघ्न०" इत्यादि करणसूत्रेण सङ्कलयितव्याः । मुखं चाऽत्र क्रोधचरमपूर्वावान्तरकिट्टिप्रभृतिमानप्रथमसंग्रहकिट्टिबन्धचरमाऽपूर्वावान्तरकिट्टिपर्यवसानावान्तरकिट्टिराशिप्रमाणा बन्धाऽपूर्वावान्तरकिट्टिचयाः, अन्त्यधनं क्रोधप्रथमसंग्रहकिट्टिचरमपूर्वावान्तरकिट्टिप्रभृतिमानप्रथमसंग्रहकिट्टिबन्धप्रथमापूर्वावान्तरकिट्टिपर्यवसानावान्तरकिट्टिराशिप्रमाणा बन्धापूर्वावान्तरकिट्टिचयाश्चयश्चासंख्येयपल्योपमप्रथमवर्गमूलप्रमाणबन्धापूर्वावान्तरकिट्टिचयाः, पदन्तु मानप्रथमसंग्रहकिट्टिबन्धाऽपूर्वावान्तरकिट्टीनां राशिर्ज्ञातव्यम् । एकबन्धाऽपूर्वाऽवान्तरकिट्टिचयगतदलं मानप्रथमकिट्टेः सर्वैर्बन्धापूर्वावान्तरकिट्टिचयैर्गुण्यते, तदा मानप्रथमसंग्रहकिट्टिसर्वबन्धाऽपूर्वावान्तरकिट्टिचयदलं प्राप्यते ।

न्यास: अन्त्यधनम्=(पदम्-१) × चय ★ + मुखम्

मध्यमधनम्= $\frac{\text{अन्त्यधनम् । मुखम्}}{२}$

❀ अत्र चय =असंख्येयपल्योपमप्रथमवर्गमूलप्रमाणबन्धाऽपूर्वावान्तरकिट्टिचया. ।

★ अत्राऽपि चय=असंख्यातपल्योपमप्रथमवर्गमूलप्रमाणबन्धापूर्वावान्तरकिट्टिचया. ।

मानप्रथमसंग्रहकिट्टेः सर्वे बन्धापूर्वावान्तरकिट्टिचया = मध्यमधनम्×पदम्
मानप्रथमसंग्रहकिट्टिसर्वबन्धापूर्वाऽवान्तरकिट्टिचयदलम्
=एकबन्धापूर्वावान्तरकिट्टिचयगतदलम्×सर्वे मानप्रथमसंग्रहकिट्टिबन्धापूर्वावान्तरकिट्टिचयाः ।

एवं मायालोभयोरपि प्रथमसंग्रहकिट्टेः सर्वबन्धापूर्वावान्तरकिट्टिचयदलं प्रापणीयम् । नवरं मायायाः प्रथमसंग्रहकिट्टेः सर्वबन्धापूर्वावान्तरकिट्टिचयानां प्राप्तये मुखं क्रोधप्रथमसंग्रहकिट्टिचरमपूर्वावान्तरकिट्टिप्रभृतिमायाप्रथमसंग्रहकिट्टिबन्धचरमापूर्वावान्तरकिट्टिपर्यवसानावान्तरकिट्टिराशिप्रमाणा बन्धाऽपूर्वावान्तरकिट्टिचयाः, अन्त्यधनं क्रोधप्रथमसंग्रहकिट्टिचरमपूर्वावान्तरकिट्टिप्रभृतिमायाप्रथमसंग्रहकिट्टिबन्धप्रथमापूर्वावान्तरकिट्टिपर्यवसानावान्तरकिट्टिराशिमात्रा बन्धापूर्वावान्तरकिट्टिचयाः, पदं तु मायाप्रथमसंग्रहकिट्टिबन्धापूर्वावान्तरकिट्टिराशिर्ज्ञातव्यम् ।

लोभस्य प्रथमसंग्रहकिट्टौ सर्वबन्धाऽपूर्वाऽवान्तरकिट्टिचयानामवाप्तये तु मुखं क्रोधप्रथमसंग्रहकिट्टिचरमपूर्वावान्तरकिट्टिप्रभृतिलोभप्रथमसंग्रहकिट्टिबन्धचरमाऽपूर्वावान्तरकिट्टिपर्यवसानावान्तरकिट्टिराशिप्रमाणा बन्धा-ऽपूर्वाऽवान्तरकिट्टिचयाः, अन्त्यधनं क्रोधप्रथमसंग्रहकिट्टिचरमपूर्वावान्तरकिट्टिप्रभृतिलोभप्रथमसंग्रहकिट्टिबन्धप्रथमापूर्वावान्तरकिट्टिपर्यवसानावान्तरकिट्टिराशिप्रमाणा बन्धाऽपूर्वावान्तरकिट्टिचयाः, पदन्तु लोभस्य प्रथमसंग्रहकिट्टिबन्धाऽपूर्वावान्तरकिट्टिराशिर्ज्ञातव्यम् ।

ततश्चतुर्णामपि क्रोधादीनां प्रथमसंग्रहकिट्टेर्बन्धाऽपूर्वावान्तरकिट्टिचयदलं सङ्कलयितव्यम् । सङ्कलितश्च सर्वबन्धाऽपूर्वावान्तरकिट्टिचयदलं भवति। नन्वेकबन्धापूर्वावान्तरकिट्टिचयदलं कियद्भवति ? इति चेद्, उच्यते संक्रमदलप्ररूपणाप्रस्तावे यदेकोभयचयदलं प्राक् साधितम्, तदनन्तभागेन न्यूनमेकबन्धाऽपूर्वावान्तरकिट्टिचयदलं भवति, तावद्दलस्य बन्धचयसहितबन्धमध्यमखण्डस्वरूपेण दायिष्यमाणत्वात् । बन्धाऽवान्तरकिट्टिष्वेव तस्य [redacted] निक्षेपादपूर्वपदापादानम् ।

(३) बन्धचयदलम् बन्धदलस्य योऽनन्ततमभागो बन्धमध्यमखण्डार्थं बन्धचयदलार्थं च पृथक्स्थापित आसीत्, स पदेन विभक्तव्यः । विभक्ते च मध्यमदलं लभ्यते, तच्चैकोनपदार्धन्यूनद्विगुणहानिद्वयेन विभज्यते, तदेकबन्धचयगतदलं प्राप्यते । पदं त्वत्र संज्वलनचतुष्कस्य बन्धपूर्वापूर्वावान्तरकिट्टिराशिर्ज्ञातव्यम् ।

न्यासः—

$$\text{मध्यमदलम्} = \frac{\text{अनन्ततमभागमात्र बन्धदलम्}}{\text{पदम्}}$$

$$\text{एकबन्धचयगतदलम्} = \frac{\text{मध्यमदलम्}}{\text{द्विगुणहानिद्वयम्} \quad \left(\frac{\text{पदम्}\ \ १}{२}\right)}$$

क्रोधप्रथमसंग्रहकिट्टेर्बन्धचरमपूर्वावान्तरकिट्टावेकबन्धचयं ददाति,क्रोधप्रथमसंग्रहकिट्टेर्बन्धद्विचर-

मपूर्वावान्तरकिट्टौ द्वौ बन्धचयौ ददाति । एवमेकोत्तरवृद्धिक्रमेण बन्धचयान् बन्धपूर्वावान्तरकिट्टिषु तावद् ददाति, यावल्लोभप्रथमसंग्रहकिट्टिबन्धजचन्यपूर्वावान्तरकिट्टिः । ते च बन्धचयाः "सैकपदघ्नपदार्धमथैकाद्यङ्कयुतिः किल सङ्कलिताख्या ।" इति गणितकरणसूत्रेण सङ्कलयितव्याः । पदं त्वत्र क्रोधमानमायालोभानां बध्यमानपूर्वापूर्वाऽवान्तरकिट्टिराशिर्बोद्धव्यम् ।

एकबन्धचयगतदलं सर्वबन्धचयैर्गुण्यते, तदा सर्वबन्धचयदलं प्राप्यते ।

न्यासः—

$$\text{सर्वबन्धचया} = (\text{पदम्} + १) \times \frac{\text{पदम्}}{२}$$

सर्वबन्धचयदलम्=एकबन्धचयगतदलम्×सर्वबन्धचया ।

(४) **बन्धमध्यमखण्डदलम्** प्रागुक्ताद् बन्धदलाऽनन्ततमभागप्रमाणदलात् सर्वबन्धचयदलं विशोध्य शेषबन्धदलं बन्धमध्यमखण्डदलं भवति, तच्च बध्यमानपूर्वापूर्वावान्तरकिट्टिराशिना विभज्यते, तदेकं बन्धमध्यमखण्डं प्राप्यते । तच्चैककं बन्धमध्यमखण्डं सर्वासु बन्धपूर्वापूर्वावान्तरकिट्टिष्वविशेषेण दातव्यम् । एकबन्धमध्यमखण्डदलं चैकबन्धापूर्वावान्तरकिट्टिमध्यमखण्डदलस्यानन्ततमभागकल्पं भवति ।

बध्यमानपूर्वावान्तरकिट्टिषु संक्रमोभयचयदलं बध्यमानाऽपूर्वावान्तरकिट्टिषु च बन्धाऽपूर्वावान्तरकिट्टिचयदलं येना-ऽनन्ततमभागेन हीनं प्राक्षिप्यत, सोऽनन्ततमभागो बन्धमध्यमखण्डे यथायोग्यं च बन्धचयदले प्रक्षिप्ते परिपूर्यते ।

अथ बन्धदलस्य संक्रमदलस्य घातदलस्य च निक्षेपविधिर्भण्यते—तृतीयसंग्रहकिट्टिर्द्वितीयसंग्रहकिट्टिश्च न बध्येते, तेन तत्र पञ्चविधसंक्रमदलत एव दलिकं यथासंभवं दीयते । प्रथमसंग्रहकिट्टौ तु बन्धदलतः संक्रमदलतश्च दलिकं यथायोग्यं दीयते, वेद्यमानसंग्रहकिट्टौ च बन्धदलतो घातदलतश्च यथायोग्यं दलं प्रक्षिप्यते ।

तथाहि—लोभतृतीयसंग्रहकिट्ट्यन्तर्गेत्पन्ना या सर्वप्रथमाऽपूर्वावान्तरकिट्टिः, तस्यां संक्रमदलत एकाऽधस्तनाऽपूर्वावान्तरकिट्टिदलमेकमध्यमखण्डं सर्वपूर्वाऽपूर्वावान्तरकिट्टिराशिप्रमाणांश्चोभयचयान् ददाति । ततो लोभतृतीयसंग्रहकिट्ट्यन्तरोत्पन्नद्वितीयाऽपूर्वावान्तरकिट्टौ संक्रमदलत एकाधस्तनाऽपूर्वावान्तरकिट्टिदलमेकमध्यमखण्डमेकोनसर्वपूर्वापूर्वावान्तरकिट्टिराशिप्रमाणांश्चोभयचयान् ददाति । इत्थं लोभतृतीयसंग्रहकिट्ट्यन्तरोत्पन्नप्रथमाऽपूर्वावान्तरकिट्टितो लोभतृतीयसंग्रहकिट्ट्यन्तरोत्पन्नद्वितीयाऽपूर्वावान्तरकिट्ट्यामनन्ततमभागरूपेणैकोभयचयेन हीनं ददाति । ततः परं लोभतृतीयसंग्रहकिट्ट्यन्तरोत्पन्नतृतीयाद्यपूर्वाऽवान्तरकिट्टिषु संक्रमदलत एकैकाधस्तनाऽपूर्वावान्तरकिट्टिदलमेकैकमध्यमखण्डमेकोत्तरहान्या चोभयचयांस्तावत् प्रक्षिपति, यावत् तृतीयसंग्रहकिट्ट्यन्तरोत्पन्नचरमाऽपूर्वावान्तरकिट्टिः । इत्थं लोभतृतीयसंग्रहकिट्ट्यन्तरोत्पन्नचरमाऽपूर्वावान्तरकिट्टि

यावत् पूर्वपूर्वत उत्तरोत्तरावान्तरकिट्टौ दीयमानं दलमनन्तभागस्वरूपेणैकैकोभयचयेन हीनं भवति।

ततो लोभतृतीयसंग्रहकिट्टिप्रथमपूर्वावान्तरकिट्टौ संक्रमदलत एकमध्यमखण्डं लोभतृतीयसंग्रहकिट्ट्यन्तरोत्पन्नाऽपूर्वावान्तरकिट्टिराशिन्यूनसर्वपूर्वापूर्वावान्तरकिट्टिराशिप्रमाणांश्चोभयचयान् प्रक्षिपति। तदेवं लोभतृतीयसंग्रहकिट्ट्यन्तरोत्पन्नचरमाऽपूर्वावान्तरकिट्टितो लोभतृतीयसंग्रहकिट्टिप्रथमपूर्वावान्तरकिट्टावेकाऽधस्तनाऽपूर्वावान्तरकिट्टिदलेनैकोभयचयेन च हीनं दलं ददाति। इत्थञ्च लोभतृतीयसंग्रहकिट्ट्यन्तरोत्पन्नचरमाऽपूर्वावान्तरकिट्टितो लोभतृतीयसंग्रहकिट्टिप्रथमपूर्वावान्तरकिट्टौ दीयमानदलमसंख्येयगुणहीनं भवति, मध्यमखण्डतोऽधस्तनाऽपूर्वावान्तरकिट्टिदलस्याऽसंख्येयगुणत्वात्, येषां मतेन पुनर्लोभतृतीयसंग्रहकिट्टिप्रथमपूर्वावान्तरकिट्टिदलाऽनन्ततमभागप्रमाणं मध्यमखण्डं भवति, तेषां मतेन दीयमानदलमनन्तगुणहीनं वक्तव्यम्। एवमग्रेऽपि। ततः परं लोभतृतीयसंग्रहकिट्टिद्वितीयपूर्वाऽवान्तरकिट्टौ संक्रमदलादेकमध्यमखण्डमेकाधस्तनशीर्षचयमेकाधिकलोभतृतीयसंग्रहकिट्ट्यन्तरोत्पन्नाऽपूर्वावान्तरकिट्टिराशिन्यूनसर्वपूर्वापूर्वावान्तरकिट्टिराशिप्रमाणांश्चोभयचयान् प्रक्षिपति। तेन लोभतृतीयसंग्रहकिट्टिप्रथमपूर्वावान्तरकिट्टितो लोभतृतीयसंग्रहकिट्टिद्वितीयपूर्वावान्तरकिट्टौ दीयमानं दलमेकाधस्तनशीर्षचयेनाऽधिकमेकोभयचयेन च हीनं भवति। इत्थं लोभतृतीयसंग्रहकिट्टिप्रथमपूर्वावान्तरकिट्टितो लोभतृतीयसंग्रहकिट्टिद्वितीयपूर्वावान्तरकिट्टयामेकाधस्तनशीर्षचयदलन्यूनोभयचयदलेन हीनं ददाति। एकोभयचयदलस्य प्राक्तनपूर्वावान्तरकिट्टिपतितदलिकाऽनन्ततमभागमात्रत्वे सत्यधस्तनशीर्षचयस्योभयचयदलतोऽपि हीनत्वाल्लोभतृतीयसंग्रहकिट्टिप्रथमपूर्वावान्तरकिट्टितो लोभतृतीयसंग्रहकिट्टिद्वितीयपूर्वावान्तरकिट्टौ दीयमानं दलमनन्तभागेन हीनं भवति। एवमग्रेऽपि यथासंभवं भावनीयम्।

तत ऊर्ध्वं लोभतृतीयसंग्रहकिट्टितृतीयादिपूर्वावान्तरकिट्टिषु पल्योपमप्रथमवर्गमूलाऽसंख्येयभागप्रमाणासु संक्रमदलत एकोत्तरवृद्ध्याऽधस्तनशीर्षचयानेकोत्तरहान्योभयचयानेकैकमध्यमखण्डं च तावत् प्रक्षिपति, यावल्लोभतृतीयसंग्रहकिट्टौ संक्रमदलतो निर्वर्त्यमानाऽवान्तरकिट्ट्यन्तरोत्पन्नाऽपूर्वावान्तरकिट्टिप्राप्ता भवति। ततो लोभतृतीयसंग्रहकिट्ट्यवान्तरकिट्ट्यन्तरोत्पन्नाऽपूर्वावान्तरकिट्टौ संक्रमदलत एकावान्तरकिट्ट्यन्तरोत्पन्नाऽपूर्वावान्तरकिट्टिदलमेकं मध्यमखण्डं लोभतृतीयसंग्रहकिट्ट्यन्तरोत्पन्नप्रथमाऽपूर्वावान्तरकिट्टिप्रभृतिव्यतिक्रान्ताऽवान्तरकिट्टिराशिन्यूनसर्वपूर्वापूर्वावान्तरकिट्टिराशिप्रमाणांश्चोभयचयान् प्रक्षिपति। इत्थं प्राक्तनपूर्वावान्तरकिट्टितोऽस्यामवान्तरकिट्ट्यन्तरोत्पन्नाऽपूर्वावान्तरकिट्टौ दीयमानदलमसंख्येयगुणं भवति, लोभतृतीयसंग्रहकिट्टिद्वितीयाऽवान्तरकिट्टिप्रभृतिव्यतिक्रान्तपूर्वावान्तरकिट्टिराशिप्रमाणाऽधस्तनशीर्षचयगतदलयुक्तैकमध्यमखण्डगतदलत एकाऽवान्तरकिट्ट्यन्तरोत्पन्नाऽपूर्वावान्तरकिट्टिदलस्याऽसंख्येयगुणत्वात्, येषां मतेन पुनर्लोभतृतीयसंग्रहकिट्टिप्रथमपूर्वावान्तरकिट्टिदलाऽनन्तभागप्रमाणं मध्यमखण्डं भवति, तेषां मतेन दीयमानदलमनन्तगुणं जायते। ततोऽनन्तरायामुपरितन्यां लोभतृतीयसंग्रहकिट्टिपूर्वाऽवान्तर-

किट्टयामेकं मध्यमखण्डं लोभतृतीयसंग्रहकिट्टयन्तरोत्पन्नप्रथमाऽपूर्वाऽवान्तरकिट्टिप्रभृतिव्यतिक्रान्तपूर्वापूर्वावान्तरकिट्टिराशिन्यूनसर्वपूर्वापूर्वावान्तरकिट्टिराशिप्रमाणानुभयचयान् लोभतृतीयसंग्रहकिट्टिप्रथमपूर्वावान्तरकिट्टिप्रभृतिव्यतिक्रान्तपूर्वावान्तरकिट्टिराशिप्रमाणांश्चाऽधस्तनशीर्षचयान् प्रक्षिपति । इत्थं प्राक्तनाऽवान्तरकिट्टयन्तरोत्पन्नाऽपूर्वावान्तरकिट्टितोऽस्यां लोभतृतीयसंग्रहकिट्टिपूर्वाऽवान्तरकिट्टौ दीयमानदलमसंख्येयगुणहीनं जायते, अस्यां पूर्वावान्तरकिट्टौ निक्षिप्यमाणदलादधस्तनशीर्षचयसहितमध्यमखण्डलक्षणादवान्तरकिट्टयन्तरोत्पन्नाऽपूर्वावान्तरकिट्टिदलस्याऽसंख्येयगुणत्वात् । येषां मतेन पुनरवान्तरकिट्टयन्तरोत्पन्नापूर्वावान्तरकिट्टिदलं निक्षिप्यमाणाधस्तनशीर्षचयमध्यमखण्डदलतोऽनन्तगुणं भवति, तेषां मतेनाऽनन्तगुणहीनं जायते । तत उत्तरोत्तरावान्तरकिट्टयामेकोत्तरवृद्धयाऽधस्तनशीर्षचयानेकोत्तरहान्योभयचयानेकैकं च मध्यमखण्डं तावत् प्रक्षिपति, यावल्लोभतृतीयसंग्रहकिट्टिचरमपूर्वावान्तरकिट्टिः, नवरं पल्योपमप्रथमवर्गमूलाऽसंख्येयभागे गते यत्र यत्राऽवान्तरकिट्टयन्तरेऽपूर्वावान्तरकिट्टिं निर्वर्तयति, तत्र तत्राऽधस्तनशीर्षचयान् न प्रक्षिपति, किन्तु तत्स्थानेऽवान्तरकिट्टयन्तरोत्पन्नाऽपूर्वावान्तरकिट्टिदलं ददाति । इत्थं पूर्वावान्तरकिट्टितोऽवान्तरकिट्टयन्तरोत्पन्नाऽपूर्वावान्तरकिट्टावसंख्येयगुणं दीयमानं दलं भवति, हेतुस्तु प्राग्वद् भावनीयः । मतान्तरेण त्वऽनन्तगुणं भवति । तथाऽवान्तरकिट्टयन्तरोत्पन्नाऽपूर्वावान्तरकिट्टितः पूर्वाऽवान्तरकिट्टावसंख्येयगुणहीनं दीयमानं दलं भवति, मतान्तरेण त्वनन्तगुणहीनं भवति ।

ततो लोभद्वितीयसंग्रहकिट्टयन्तरोत्पन्नप्रथमाऽपूर्वावान्तरकिट्टौ संक्रमदलादेकाऽधस्तनाऽपूर्वावान्तरकिट्टिदलमेकं मध्यमखण्डं लोभतृतीयसंग्रहकिट्टिपूर्वापूर्वावान्तरकिट्टिराशिन्यूनसर्वपूर्वापूर्वावान्तरकिट्टिराशिप्रमाणांश्चोभयचयान् प्रक्षिपति । इदं च दीयमानं दलं लोभतृतीयसंग्रहकिट्टिचरमपूर्वावान्तरकिट्टितोऽसंख्येयगुणं भवति, मतान्तरेण त्वनन्तगुणं भवति । ततो लोभद्वितीयसंग्रहकिट्टयन्तरोत्पन्नद्वितीयाद्यपूर्वावान्तरकिट्टिष्वेकैकमध्यमखण्डमेकैकाधस्तनाऽपूर्वावान्तरकिट्टिदलमेकोत्तरहान्या चोभयचयांस्तावत् प्रक्षिपति, यावल्लोभद्वितीयसंग्रहकिट्टयन्तरोत्पन्नचरमाऽपूर्वावान्तरकिट्टिः । तेन लोभद्वितीयसंग्रहकिट्टयन्तरोत्पन्नप्रथमाऽपूर्वावान्तरकिट्टितः प्रभृति लोभद्वितीयसंग्रहकिट्टयन्तरोत्पन्नचरमाऽपूर्वावान्तरकिट्टिं यावत् सर्वास्वपूर्वाऽवान्तरकिट्टिष्वेकैकोभयचयेन हीनं प्रक्षिप्यमाणं दलं भवति, उभयचयस्य चाऽनन्ततमभागमात्रत्वेनाऽनन्ततमभागेन हीनं दीयमानं दलं भवति ।

ततः परं लोभद्वितीयसंग्रहकिट्टिप्रथमपूर्वावान्तरकिट्टौ संक्रमदलत एकं मध्यमखण्डं लोभतृतीयसंग्रहकिट्टिपूर्वावान्तरकिट्टिराशिप्रमाणानधस्तनशीर्षचयान् लोभतृतीयसंग्रहकिट्टिपूर्वापूर्वावान्तरकिट्टिलोभद्वितीयसंग्रहकिट्टयन्तरजाऽपूर्वावान्तरकिट्टिराशिन्यूनसर्वपूर्वापूर्वावान्तरकिट्टिराशिप्रमाणांश्चोभयचयान् प्रक्षिपति । इत्थं लोभद्वितीयसंग्रहकिट्टयन्तरोत्पन्नचरमाऽपूर्वावान्तरकिट्टितो लोभद्वितीयसंग्रहकिट्टिप्रथमपूर्वावान्तरकिट्टौ दीयमानं दलमसंख्यातगुणहीनं भवति, हेतुस्तु प्राग्वद् भावनीयः, मतान्तरेण त्वनन्तगुणहीनम् । ततः परं लोभद्वितीयसंग्रहकिट्टेः पूर्वावान्तरकिट्टिष्ववान्तरकिट्टय-

न्तरोत्पन्नाऽपूर्वावान्तरकिट्टिषु च दीयमानं दलं लोभतृतीयसंग्रहकिट्टिवत् तावद् वक्तव्यम्, यावल्लोभद्वितीयसंग्रहकिट्टिचरमपूर्वावान्तरकिट्टिः ।

तत ऊर्ध्वं लोभप्रथमसंग्रहकिट्टयन्तरोत्पन्नप्रथमाऽपूर्वावान्तरकिट्टौ संक्रमदलत एकाधस्तनाऽपूर्वावान्तरकिट्टिदलमेकं मध्यमखण्डं लोभतृतीयसंग्रहकिट्टिद्वितीयसंग्रहकिट्टिपूर्वाऽपूर्वावान्तरकिट्टिराशिन्यूनसर्वपूर्वाऽपूर्वावान्तरकिट्टिराशिप्रमाणांश्चोभयचयान् प्रक्षिपति । इदं च लोभप्रथमसंग्रहकिट्टयन्तरोत्पन्नप्रथमाऽपूर्वावान्तरकिट्टौ दीयमानं दलं लोभद्वितीयसंग्रहकिट्टिचरमपूर्वावान्तरकिट्टितोऽसंख्येयगुणं भवति, मतान्तरेण त्वनन्तगुणम् । हेतुस्तु प्राग्वत् प्रपञ्चनीयः । ततः परमेकोत्तरहान्योभयचयानेकैकाधस्तनाऽपूर्वावान्तरकिट्टिदलमेकैकं च मध्यमखण्डं तावद् ददाति, यावल्लोभप्रथमसंग्रहकिट्टयन्तरोत्पन्नचरमाऽपूर्वावान्तरकिट्टिः ।

ततः परं लोभप्रथमसंग्रहकिट्टिप्रथमपूर्वाऽवान्तरकिट्टितः प्रभृति दलं दातुमुपक्रमते । तत्र लोभप्रथमसंग्रहकिट्टेर्वेद्यमानत्वेन चतुर्विधबन्धदलात् पञ्चविधसंक्रमदलाच्च पूर्वापूर्वावान्तरकिट्टिषु दलं यथायोग्यं ददाति । किन्त्वसंख्येयभागप्रमाणा मन्दानुभागका असंख्येयभागमिताश्च तीव्रानुभागका या अवान्तरकिट्टयो न बध्यन्ते, तासु केवलं संक्रमदलत एव दलं ददाति । तथा बन्धाऽपूर्वावान्तरकिट्टिषु केवलं बन्धदलत एव दलं ददाति, । तद्यथा—लोभप्रथमसंग्रहकिट्टिप्रथमपूर्वावान्तरकिट्टौ संक्रमदलत एकं मध्यमखण्डं लोभतृतीयसंग्रहकिट्टिद्वितीयसंग्रहकिट्टिपूर्वावान्तरकिट्टिराशिप्रमाणानधस्तनशीर्षचयान् लोभतृतीयसंग्रहकिट्टयन्तरोत्पन्नप्रथमाऽपूर्वावान्तरकिट्टिप्रभृतिव्यतिक्रान्तपूर्वापूर्वावान्तरकिट्टिराशिन्यूनसर्वपूर्वापूर्वावान्तरकिट्टिराशिप्रमाणांश्चोभयचयान् प्रक्षिपति । इत्थं लोभप्रथमसंग्रहकिट्टयन्तरोत्पन्नचरमाऽपूर्वावान्तरकिट्टितो लोभप्रथमसंग्रहकिट्टिप्रथमपूर्वावान्तरकिट्टौ दीयमानं दलमसंख्येयगुणहीनं भवति, मतान्तरेण त्वनन्तगुणहीनम् । हेतुस्तु प्राग्वत् प्ररूपयितव्यः । ततः परं लोभप्रथमसंग्रहकिट्टयाः पूर्वावान्तरकिट्टिषु संक्रमतश्च निर्वर्त्यमानाऽपूर्वावान्तरकिट्टिषु लोभतृतीयसंग्रहकिट्टिवद् दलं तावत् प्रक्षिपति, यावल्लोभप्रथमसंग्रहकिट्टेर्जघन्या बन्धपूर्वावान्तरकिट्टिरप्राप्ता भवति । ततो लोभप्रथमसंग्रहकिट्टिसत्कायां जघन्यायां बन्धपूर्वावान्तरकिट्टौ संक्रमदलत एकंमध्यमखण्डं लोभतृतीयसंग्रहकिट्टिप्रथमपूर्वावान्तरकिट्टिप्रभृतिव्यतिक्रान्तपूर्वावान्तरकिट्टिराशिप्रमाणानधस्तनशीर्षचयान् लोभतृतीयसंग्रहकिट्टयन्तरोत्पन्नप्रथमापूर्वावान्तरकिट्टिप्रभृतिव्यतिक्रान्तपूर्वाऽपूर्वावान्तरकिट्टिराशिन्यूनसर्वपूर्वापूर्वावान्तरकिट्टिराशिप्रमाणोभयचयदलं चैकोभयचयदलाऽनन्ततमभागेन हीनं प्रक्षिपति, बन्धमध्यमखण्डबन्धचयदलरूपेणैकोभयचयदला-ऽनन्ततमभागमात्रस्य दलस्य बन्धदलतः प्रक्षिप्यमाणत्वात् । बन्धदलतः पुनरेकं बन्धमध्यमखण्डं सर्वबन्धपूर्वापूर्वावान्तरकिट्टिराशिप्रमाणांश्च बन्धचयान् ददाति ।

ततः परं बन्धदलत एकैकं बन्धमध्यमखण्डमेकोत्तरहान्या च बन्धचयान् प्रक्षिपन् संक्रमद-

ततो लोभतृतीयसंग्रहकिट्टिवत् तावत् प्रक्षिपति, यावदसंख्यातपल्योपमप्रथमवर्गमूलमात्रबन्धपूर्वाऽवान्तरकिट्टिषु गतासु लोभप्रथमसंग्रहकिट्टिबन्धप्रथमाऽपूर्वावान्तरकिट्टितः प्राक्तनी लोभप्रथमसंग्रहकिट्टिबन्धपूर्वावान्तरकिट्टिः, नवरमुभयचयदलमनन्ततमभागेन हीनं ददाति, तावद्दलस्य बन्धचयबन्धमध्यमखण्डरूपेण प्रक्षेपात् । ततो लोभप्रथमसंग्रहकिट्टयवान्तरकिट्टयन्तरोत्पन्नबन्धप्रथमाऽपूर्वावान्तरकिट्टौ बन्धदलत एकं बन्धापूर्वावान्तरकिट्टिसमानखण्डं लोभतृतीयसंग्रहकिट्टयन्तरोत्पन्नप्रथमाऽपूर्वावान्तरकिट्टिप्रभृतिव्यतिक्रान्तपूर्वाऽपूर्वावान्तरकिट्टिराशिन्यूनसर्वपूर्वापूर्वावान्तरकिट्टिराशिप्रमाणान् बन्धाऽपूर्वावान्तरकिट्टिचयान् लोभप्रथमसंग्रहकिट्टिबन्धप्रथमपूर्वावान्तरकिट्टिप्रभृतिव्यतिक्रान्तबन्धपूर्वावान्तरकिट्टिराशिन्यूनसर्वबन्धपूर्वापूर्वावान्तरकिट्टिराशिप्रमाणान् बन्धचयानेकं च बन्धमध्यमखण्डं ददाति । तस्यां संक्रमदलतो दलिकं न ददाति । इत्थं प्राक्तनपूर्वाऽवान्तरकिट्टौ दीयमानबन्धदलतोऽस्यामपूर्वाऽवान्तरकिट्टौ दीयमानं बन्धदलमनन्तगुणं भवति, बन्धमध्यमखण्डबन्धचयदलत एकबन्धाऽपूर्वावान्तरकिट्टिसमानखण्डदलस्याऽनन्तगुणत्वात् ।

ततः परमनन्तरायां लोभप्रथमसंग्रहकिट्टि[illegible]पूर्वावान्तरकिट्टौ संक्रमदलतो लोभतृतीयसंग्रहकिट्टिप्रथमपूर्वावान्तरकिट्टिप्रभृतिव्यतिक्रान्तपूर्वाऽवान्तरकिट्टिराशिप्रमाणानधस्तनशीर्षचयाननन्ततमभागेन हीनं लोभतृतीयसंग्रहकिट्टयन्तरोत्पन्नप्रथमापूर्वाऽवान्तरकिट्टिप्रभृतिव्यतिक्रान्तपूर्वाऽपूर्वावान्तरकिट्टिराशिन्यूनसर्वपूर्वाऽपूर्वावान्तरकिट्टिराशिप्रमाणोभयचयगतदलमेकं च मध्यमखण्डं बन्धदलतः पुनरेकं बन्धमध्यमखण्डं लोभप्रथमसंग्रहकिट्टिबन्धप्रथमपूर्वावान्तरकिट्टिप्रभृतिव्यतिक्रान्तबन्धपूर्वापूर्वावान्तरकिट्टिराशिन्यूनसर्वबन्धपूर्वापूर्वावान्तरकिट्टिराशिप्रमाणांश्च बन्धचयान् प्रक्षिपति । इत्थं प्राक्तनबन्धाऽपूर्वावान्तरकिट्टौ निक्षिप्तदलतोऽस्यां पूर्वावान्तरकिट्टौ निक्षिप्यमाणबन्धदलमनन्तगुणहीनं जायते, बन्धमध्यमखण्डबन्धचयदलस्य बन्धाऽपूर्वावान्तरकिट्टिसमानखण्डदलतोऽनन्तगुणहीनत्वात् ।

ततः परं संक्रमदलत एकोत्तरहान्योभयचयानेकोत्तरवृद्धया चाऽधस्तनशीर्षचयानेकैकं च मध्यमखण्डं बन्धदलतः पुनरेकोत्तरहान्या बन्धचयानेकैकं च बन्धमध्यमखण्डं तावद् ददाति, यावल्लोभप्रथमसंग्रहकिट्टिबन्धचरमपूर्वावान्तरकिट्टिः, नवरं यत्र यत्र संक्रमदलतोऽपूर्वाऽवान्तरकिट्टिं निर्वर्तयति, तत्र तत्र संक्रमदलतोऽधस्तनशीर्षचयदलस्थानेऽवान्तरकिट्टयन्तरोत्पन्नाऽपूर्वावान्तरकिट्टिदलं ददाति, तथाऽसंख्यातपल्योपमप्रथमवर्गमूलप्रमाणासु बन्धपूर्वाऽवान्तरकिट्टिषु गतासु यत्र यत्र बन्धदलतोऽपूर्वावान्तरकिट्टिं निर्वर्तयति, तत्र तत्रोभयचयस्थाने बन्धदलतो बन्धाऽपूर्वावान्तरकिट्टिचयानधस्तनशीर्षचयस्थाने च बन्धदलतो बन्धाऽपूर्वावान्तरकिट्टिसमानखण्डदलं ददाति, संक्रममध्यमखण्डं तु तत्र न प्रक्षिपति ।

ततो लोभप्रथमसंग्रहकिट्टिबन्धचरमपूर्वावान्तरकिट्टया उपरितनपूर्वावान्तरकिट्टेरारभ्य लोभप्रथमसंग्रहकिट्टिचरमपूर्वावान्तरकिट्टिं यावत् पूर्वापूर्वावान्तरकिट्टिष्वधस्तनाऽपूर्वावान्तरकिट्टि-

दलं वर्जयित्वा शेषसंक्रमदलचतुष्टयं लोभतृतीयसंग्रहकिट्टिवद् यथायोग्यं प्रक्षिपति।

यथा लोभस्य संग्रहकिट्टित्रये प्रक्षिप्यमाणदलस्य विधिरभिहितः, तथैव मायामानयोः संग्रहकिट्टित्रये क्रोधस्य तृतीयसंग्रहकिट्टौ द्वितीयसंग्रहकिट्टौ च दलनिक्षेपविधिर्भणितव्यः, विशेषाभावात्। अनेन विधिना क्रोधद्वितीयसंग्रहकिट्टिचरमपूर्वावान्तरकिट्टिं यावद् दले प्रक्षिप्ते सर्वं संक्रमदलं परिसमाप्तं भवति।

अथ क्रोधप्रथमसंग्रहकिट्टौ दलनिक्षेपविधिरभिधीयते क्रोधप्रथमसंग्रहकिट्टौ संक्रमदलं न भवति, तेन तस्यां संक्रमदलतः संग्रहकिट्टयन्तरेऽवान्तरकिट्टयन्तरे चा-ऽपूर्वावान्तरकिट्टीर्न निर्वर्तयति। किन्तु पृथक्स्थापितघातदलतो यथायोग्यमधस्तनशीर्षचयान् मध्यमखण्डमुभयचयांश्च ददाति। चतुर्विधबन्धदलाच्च यथायोग्यं बन्धदलं ददाति। तथाहि क्रोधप्रथमसंग्रहकिट्टिप्रथमपूर्वावान्तरकिट्टौ घातदलत एकं मध्यमखण्डं लोभतृतीयसंग्रहकिट्टिप्रथमपूर्वावान्तरकिट्टिप्रभृतिव्यतिक्रान्तपूर्वावान्तरकिट्टिराशिप्रमाणानधस्तनशीर्षचयान् लोभतृतीयसंग्रहकिट्टयन्तरोत्पन्नप्रथमाऽपूर्वावान्तरकिट्टिप्रभृतिव्यतिक्रान्तपूर्वापूर्वावान्तरकिट्टिराशिन्यूनसर्वपूर्वाऽपूर्वावान्तरकिट्टिराशिप्रमाणांश्चोभयचयान् प्रक्षिपति। ततः परं घातदलत एकैकमध्यमखण्डमेकोत्तरहान्योभयचयानेकोत्तरवृद्ध्या चाऽधस्तनशीर्षचयान् पूर्वावान्तरकिट्टिषु तावत् प्रक्षिपति, यावत् क्रोधप्रथमसंग्रहकिट्टिबन्धप्रथमपूर्वावान्तरकिट्टिरप्राप्ता भवति।

ततः क्रोधप्रथमसंग्रहकिट्टिबन्धप्रथमपूर्वावान्तरकिट्टौ घातदलत एकोभयचयस्याऽनन्तभागेन हीनं लोभतृतीयसंग्रहकिट्टयन्तरोत्पन्नप्रथमाऽपूर्वावान्तरकिट्टिप्रभृतिव्यतिक्रान्तपूर्वापूर्वाऽवान्तरकिट्टिराशिन्यूनसर्वपूर्वापूर्वावान्तरकिट्टिराशिप्रमाणोभयचयदलं लोभतृतीयसंग्रहकिट्टिप्रथमपूर्वावान्तरकिट्टिप्रभृतिव्यतिक्रान्तपूर्वावान्तरकिट्टिप्रमाणानधस्तनशीर्षचयानेकं च मध्यमखण्डं प्रक्षिपति, बन्धदलतश्चैकं बन्धमध्यमखण्डं लोभप्रथमसंग्रहकिट्टिबन्धप्रथमपूर्वावान्तरकिट्टिप्रभृतिव्यतिक्रान्तबन्धपूर्वापूर्वावान्तरकिट्टिराशिन्यूनसर्वबन्धपूर्वापूर्वावान्तरकिट्टिराशिप्रमाणांश्च बन्धचयान् प्रक्षिपति।

ततः परं घातदलत एकोत्तरवृद्ध्याऽधस्तनशीर्षचयानेकोत्तरहान्योभयचयानेकैकं च मध्यमखण्डं बन्धदलत पुनरेकैकं बन्धमध्यमखण्डमेकोत्तरहान्या च बन्धचयांस्तावत् प्रक्षिपति, यावत् क्रोधप्रथमसंग्रहकिट्टिबन्धचरमपूर्वाऽवान्तरकिट्टिः, नवरमसंख्यातपल्योपमप्रथमवर्गमूलप्रमाणासु बन्धपूर्वावान्तरकिट्टिषु गतासु यत्र यत्र बन्धदलतोऽपूर्वावान्तरकिट्टिं निर्वर्तयति, तत्र तत्रोभयचयस्थाने बन्धदलतो बन्धाऽपूर्वावान्तरकिट्टिचयानधस्तनशीर्षचयस्थाने च बन्धदलतो बन्धाऽपूर्वावान्तरकिट्टिसमानखण्डदलं ददाति, घातदलतश्च मध्यमखण्डं न प्रक्षिपति। अनेन क्रमेण क्रोधप्रथमसंग्रहकिट्टिबन्धचरमपूर्वावान्तरकिट्टिं यावद् बन्धदले प्रक्षिप्ते सर्वं बन्धदलं परिसमाप्तं भवति।

ततः क्रोधप्रथमसंग्रहकिट्टिचरमबन्धपूर्वावान्तरकिट्टेरनन्तरायामुपरितन्यां क्रोधप्रथमसंग्रह-

किट्टिपूर्वान्तरकिट्टौ घातदलत एकं मध्यमखण्डं लोभतृतीयसंग्रहकिट्टिप्रथमपूर्वान्तरकिट्टिप्रभृतिव्यतिक्रान्तपूर्वान्तरकिट्टिराशिप्रमाणानधस्तनशीर्षचयान् लोभतृतीयसंग्रहकिट्टयन्तरोत्पन्नप्रथमाऽपूर्वान्तरकिट्टिप्रभृतिव्यतिक्रान्तपूर्वापूर्वान्तरकिट्टिराशिन्यूनसर्वपूर्वाऽपूर्वान्तरकिट्टिराशिप्रमाणांश्चोभयचयान् प्रक्षिपति । ततः परं घातदलत एकोत्तरवृद्धयाऽधस्तनशीर्षचयानेकोत्तरहान्योभयचयानेकैकं च मध्यमखण्डं तावत् प्रक्षिपति, यावत् क्रोधप्रथमसंग्रहकिट्टिचरमपूर्वान्तरकिट्टिः । अनेन विधिना क्रोधप्रथमसंग्रहकिट्टिचरमपूर्वाऽन्तरकिट्टिं यावद् घातदले प्रक्षिप्ते सर्वघातदलं परिसमाप्तं भवति ।

इह दीयमानदलस्याऽनन्तान्युष्ट्रकूटानि भवन्ति । तथाहि—यथोष्ट्रकूटं निम्नमुन्नतं च भवति, तथैवेह दीयमानं दलमपि कुत्रचित् प्रभूतं भवति, क्वचित् स्तोकं भवति, कुत्रचित्पुनरधिकं भवति, पुनः क्वचिद्धीनं भवति, अन्तरकिट्टयन्तरोत्पन्नाऽपूर्वान्तरकिट्टीनाञ्चाऽनन्तत्वाद् दीयमानदलस्याऽनन्तान्युष्ट्रकूटानि किट्टिवेदनाद्धाप्रथमसमये भवन्ति । यथा किट्टिवेदनाद्धायाः प्रथमसमये दलनिक्षेपविधिरभिहितः, तथैव किट्टिवेदनाद्धाद्वितीयादिसमयेष्वप्यभिधातव्यः । पश्यन्तु पाठका यन्त्रकम्–२१ ।

॥ गणितविभागः समाप्तः ॥

दृश्यमानदलं तु सर्वपूर्वापूर्वान्तरकिट्टिष्वनन्ततमभागेन हीनं भवति ॥१३७॥

तदेवं प्रतिपादितो दलिकनिक्षेपविधिः । साम्प्रतं संक्रमवशात् क्रोधादिप्रथमसंग्रहकिट्टेर्बद्धदलं कदा द्वादशसंग्रहकिट्टिषु भवति ? इति परशङ्काऽपुदासाय प्राह-

पंचमआलीए कोहवद्धदलिअं तु सव्वकिट्टीसुं ।
माणादीण वि वद्धदलिअं जहासंभवं णेयं ॥१३८॥

पञ्चमाऽऽवलिकाया क्रोधवद्धदलिक तु सर्वकिट्टिपु ।
मानादीनामपि वद्धदलिक यथासंभवं ज्ञेयम ॥१३८॥ इति पदसंस्कार ।

'पंचम०' इत्यादि, तत्र 'क्रोधवद्धदलिकं' क्रोधप्रथमसंग्रहकिट्टिवद्धदलं तु बन्धसमयात् परं पञ्चमाऽऽवलिकायां 'सर्वकिट्टिपु' संक्रमेण द्वादशसंग्रहकिट्टिषु भवतीति शेषः । इदमत्र हृदयम्—क्रोधप्रथमसंग्रहकिट्टिवेदनाद्धाप्रथमसमये यत् क्रोधप्रथमसंग्रहकिट्टिदलं वध्नाति, तदावलिकां यावत् तदवस्थं तिष्ठति, बन्धावलिकागतकर्मणः सकलकरणाऽयोग्यत्वेनाऽपवर्तनासंक्रमपरप्रकृतिसंक्रमयोरभावात् । ततो द्वितीयाऽऽवलिकाप्रथमसमये क्रोधस्य संग्रहकिट्टित्रये मानस्य च प्रथमसंग्रहकिट्टौ संक्रमयति, न ततोऽधस्तनीषु, कस्याश्चित् संग्रहकिट्टेर्दलं स्वाधस्तनप्रथमसंग्रहकिट्टिं यावत् संक्रमयति, न ततोऽधस्तादित्युक्तत्वात् । इत्थं किट्टिवेदनाद्धाप्रथमसमयबद्धक्रोधप्रथमसंग्रहकिट्टिदलं द्वितीयाऽऽवलिकायां क्रोधसंग्रहकिट्टित्रये मानस्य च प्रथमसंग्रहकिट्टौ भवति । आव-

किट्टिवेदनाद्वप्रथमसमये गणितरीत्या पूर्वापूर्वान्तरकिट्टिषु दलिकप्रक्षेपः

चौ सङ्केतम्:- — = १ ✱ = २

लोभस्य तृतीयसंग्रहकिट्टि । द्वितीयसंग्रहकिट्टि । प्रथमसंग्रहकिट्टि

सङ्केतस्पष्टीकरणम्—

ध=संग्रहकिट्टीनामधस्ताद् निर्वर्त्यमाना अपूर्वावान्तरकिट्टयः, ताश्च लोभस्य तृतीयसंग्रहकिट्टौ चतस्रः (४), द्वितीयसंग्रहकिट्टौ तिस्रः (३), प्रथमसंग्रहकिट्टयाश्च द्वे (२), वस्तुतोऽनन्ता, अवान्तरकिट्टयन्तरोत्पन्नापूर्वावान्तरकिट्टितश्चाऽसङ्ख्येयगुणहीनाः ।

पू=पूर्वावान्तरकिट्टय, ताश्चाऽसत्कल्पनया लोभस्य तृतीयसंग्रहकिट्टौ २०, द्वितीयसंग्रहकिट्टौ १८, प्रथमसंग्रहकिट्टौ १६ ।

नू=अवान्तरकिट्टयन्तरेषु सङ्क्रमदलतो निर्वर्त्यमाना अपूर्वावान्तरकिट्टयः, ताश्च तृतीयसंग्रहकिट्टौ नव(९), द्वितीयसंग्रहकिट्टयामष्टौ (८), प्रथमसंग्रहकिट्टौ च पञ्च (५) । वस्तुतोऽनन्ता पूर्वावान्तरकिट्टीनां चाऽसंख्येयभागप्रमाणा । एकैका चापूर्वावान्तरकिट्टि पल्योपमप्रथमवर्गमूलासङ्ख्येयभागप्रमाणस्ववान्तरकिट्टयन्तरेषु गतेषु निर्वर्त्यते, असत्कल्पनया तु द्वयोरवान्तरकिट्टयन्तरयोर्व्र्जितयोर्निर्वर्त्यते ।

ब=बन्धपूर्वावान्तरकिट्टय, ताश्चाऽसत्कल्पनया पञ्चदश (१५) वस्तुतो-ऽनन्ताः । इह प्रथमसंग्रहकिट्टौ बन्धप्रथमपूर्वावान्तरकिट्टया उपरि निर्वर्त्यमानसङ्क्रमापूर्वावान्तरकिट्टयोऽपि बन्धपूर्वावान्तरकिट्टित्वेन बोध्याः ।

ब अ=बन्धापूर्वावान्तरकिट्टयः, वस्तुतोऽनन्ता, इह त्वसत्कल्पनया द्वे बन्धापूर्वावान्तरकिट्टी कल्पिते, एकैका च बन्धापूर्वावान्तरकिट्टि पञ्चसु बन्धपूर्वावान्तरकिट्टिषु गतासु निर्वर्त्यते । वस्तुतस्त्वसङ्ख्येयपल्योपमप्रथमवर्गमूलप्रमाणासु गतासु निर्वर्त्यते ।

✱=अनेन चिह्नेन अधस्तनापूर्वावान्तरकिट्टिदलं सूचितम्, तच्च लोभतृतीयसंग्रहकिट्टिप्रथमपूर्वावान्तरकिट्टिदलप्रमाण भवते, अधस्तनापूर्वावान्तरकिट्टिदलं च संग्रहकिट्टीनामधस्ताद् निर्वर्त्यमानास्वपूर्वावान्तरकिट्टिषु प्रक्षिपति ।

---=अनेन चिह्नेन मध्यमखण्डदलं सूचितम्, एकमध्यमखण्डदलं च लोभतृतीयसंग्रहकिट्टिप्रथमपूर्वावान्तरकिट्टिदलस्याऽसङ्ख्येयभागप्रमाण मतान्तरेण [illegible] भवति । एकैकं मध्यमखण्डं पूर्वावान्तरकिट्टिषु दीयते ।

△= अनेन चिह्नेन उभयचयदलं सूचितम्, लोभतृतीयसंग्रहकिट्टिप्रथमावान्तरकिट्टौ कषायचतुष्कपूर्वापूर्वावान्तरकिट्टिराशिप्रमाणानुभयचयान् प्रक्षिपति, तत एकैकेन हीनान् प्रक्षिपति ।

×=अनेन चिह्नेन अधस्तनशीर्षचयदलं सूचितम्, लोभतृतीयसंग्रहकिट्ट्या द्वितीयपूर्वावान्तरकिट्ट्यामेकमधस्तनशीर्षचयं प्रक्षिपति, तृतीयस्यां द्वौ, चतुर्थ्यां त्रीन्, एवमेकोत्तरवृद्ध्याऽधस्तनशीर्षचयान् प्रक्षिपति, तेन लोभप्रथमसंग्रहकिट्टिचरमपूर्वावान्तरकिट्टावेकोनलोभसंग्रहकिट्टिगपूर्वावान्तरकिट्टिराशिप्रमाणाननन्तानधस्तनशीर्षचयान्, असत्कल्पनया तु चतुष्पञ्चाशत्तमपूर्वावान्तरकिट्टौ त्रिपञ्चाशदधस्तनशीर्षचयान् निक्षिपति ।

• • •=अनेन चिह्नेन पूर्वावान्तरकिट्टिषु पुरातनदलं सूचितम्, तच्चोत्तरोत्तरपूर्वावान्तरकिट्टौ विशेषहीनक्रमेण भवति ।

० ० ०=अनेन चिह्नेन अवान्तरकिट्ट्यन्तरोत्पन्नापूर्वावान्तरकिट्टिदलं सूचितम्, तच्च लोभतृतीयसंग्रहकिट्टिप्रथमपूर्वावान्तरकिट्टिदलप्रमाणं भवति । अवान्तरकिट्ट्यन्तरोत्पन्नापूर्वावान्तरकिट्टिदलं चावान्तरकिट्ट्यन्तरेषु निर्वर्त्यमानास्वपूर्वावान्तरकिट्टिषु प्रक्षिपति ।

१=बन्धचययुक्तबन्धमध्यमखण्डम्, लोभप्रथमसंग्रहकिट्टिबन्धप्रथमपूर्वावान्तरकिट्टौ कषायचतुष्कबन्धपूर्वापूर्वावान्तरकिट्टिराशिप्रमाणान् बन्धचयान् प्रक्षिपति, तत एकैकेन हीनान् हीनतरान् बन्धचयान् प्रक्षिपति, तथा बन्धमध्यमखण्डं सर्वासु बन्धपूर्वापूर्वावान्तरकिट्टिष्वविशेषेण निक्षिपति । एतत्सर्वमनेन चिह्नेन सूचितम् ।

२=बन्धापूर्वावान्तरकिट्टिचयदलम्, लोभप्रथमसंग्रहकिट्टिबन्धप्रथमापूर्वावान्तरकिट्टौ लोभतृतीयसंग्रहकिट्टिप्रथमावान्तरकिट्टिप्रभृतिव्यतिक्रान्तावान्तरकिट्टिराशिन्यूनसर्वपूर्वापूर्वावान्तरकिट्टिराशिप्रमाणान् बन्धापूर्वावान्तरकिट्टिचयान् प्रक्षिपति । ततोऽसंख्येयपल्योपमप्रथमवर्गमूलराशिप्रमाणैर्हीनान्, असत्कल्पनया तु षड्भिर्हीनान् बन्धाऽपूर्वावान्तरकिट्टिचयान् प्रक्षिपति । अनेन क्रमेणाऽनन्तासु बन्धापूर्वावान्तरकिट्टिषु बन्धापूर्वावान्तरकिट्टिचयदलप्रक्षेपो वक्तव्य । इह तु द्वे एव बन्धापूर्वावान्तरकिट्टी कल्पिते, तेन द्वयोरेव दर्शित ।

+अनेन चिह्नेन बन्धापूर्वावान्तरकिट्टिसमानखण्डदलं सूचितम्, तच्च सक्रममध्यमखण्डाधिकलोभतृतीयसंग्रहकिट्टिप्रथमपूर्वावान्तरकिट्टिदलप्रमाणं भवति । बन्धापूर्वावान्तरकिट्टिसमानखण्डदलं चैकैकबन्धापूर्वावान्तरकिट्टौ दीयते । सक्रमदलतो दीयमानदलम्—

लोभतृतीयसंग्रहकिट्ट्या अधस्तात् निर्वर्त्यमानायां प्रथमापूर्वावान्तरकिट्टौ दीयमानदलम् (*।△) इत्येतैश्चिह्नैः सूचितं प्रभूतं भवति । द्वितीयापूर्वावान्तरकिट्टावेकचयेन हीनं भवति, ततो विशेषहीनक्रमेण तावद् वक्तव्यम्, यावल्लोभतृतीयसंग्रहकिट्ट्या अधस्ताद् निर्वर्त्यमाना चरमापूर्वावान्तरकिट्टि । लोभतृतीयसंग्रहकिट्ट्या अधस्ताद् निर्वर्त्यमानचरमापूर्वावान्तरकिट्टितो लोभतृतीयसंग्रहकिट्टिप्रथमपूर्वावान्तरकिट्टौ दीयमानम् (। △) इत्याभ्यां सूचितं दलमसङ्ख्येयगुणहीनं भवति, मतान्तरेण त्वनन्तगुणहीनं भवति, तत्र (• • •) इत्यनेन चिह्नेन सूचितस्य पुरातनदलस्य सत्त्वात् । ततो विशेषहीनं विशेषहीनं दलम् (×।△) इत्येतैः सूचितं पल्योपमप्रथमवर्गमूलासंख्येयभागप्रमाणासु लोभतृतीयसंग्रहकिट्टिपूर्वावान्तरकिट्टिषु दीयते, असत्कल्पनया त्वेकस्यामवान्तरकिट्टौ दीयते, ततो लोभतृतीयसंग्रहकिट्ट्या अवान्तरकिट्ट्यन्तरोत्पन्नप्रथमापूर्वावान्तरकिट्टौ दीयमानम् (०।△) इत्येतैः सूचितं दलमसंख्येयगुणं मतान्तरेण त्वनन्तगुणं भवति, तत्र (० ० ०) इत्यनेन सूचितदलस्याऽपि प्रक्षेपात् । ततोऽनन्तर-पूर्वावान्तरकिट्टौ दीयमानम् (× । △) इत्येतैः सूचितदलमसंख्येयगुणहीनं मतान्तरेण त्वनन्तगुणहीनं भवति, तत्र (••••) इत्यनेन सूचितस्य पुरातनदलस्य सत्त्वात् । एवमग्रेऽपि ।

बन्धदलतो दीयमानदलम्—लोभप्रथमसंग्रहकिट्टिबन्धप्रथमपूर्वावान्तरकिट्टौ दीयमानम् १ इत्यनेन सूचितं दलं प्रभूतं भवति, ततो विशेषहीनक्रमेणाऽसंख्येयपल्योपमप्रथमवर्गमूलप्रमाणासु असत्कल्पनया तु पञ्चसु बन्धपूर्वावान्तरकिट्टिषु दीयमानं दलं भवति । ततोऽनन्तरायां बन्धप्रथमापूर्वावान्तरकिट्टौ दीयमानम् + १ २ इत्येतैः सूचितं दलमनन्तगुणं भवति, तदनन्तरबन्धपूर्वावान्तरकिट्टौ दीयमानम् १ इत्यनेन सूचितमनन्तगुणहीनं भवति । एवमग्रेऽपि वक्तव्यम् ।

-लिकां यावत् संग्रहकिट्टिचतुष्टयेव तिष्ठति, संक्रमावलिकागतकर्मणः सकलकरणायोग्यत्वात् । ततः परं क्रोधप्रथमसंग्रहकिट्टितो मानप्रथमसंग्रहकिट्ट्यामागतं दलं तत्संक्रमाऽऽवलिकायां पूर्णायां तृतीयाऽऽवलिकायाः प्रथमसमये मानस्य शेषसंग्रहकिट्टिद्वये मायायाश्च प्रथमसंग्रहकिट्टौ संक्रमयति, न ततोऽधस्तात्, हेतुस्तुपूर्ववद् भावनीयः । तेन तृतीयाऽऽवलिकायां किट्टिवेदनाद्धाप्रथमसमयवद्धक्रोधप्रथमसंग्रहकिट्टिदलं संग्रहकिट्टिसप्तके भवति । ततः परं यद् किट्टिवेदनाद्धाप्रथमसमयवद्धक्रोधप्रथमसंग्रहकिट्टिदलं मायायाः प्रथमसंग्रहकिट्टिं संप्राप्तम्, तद् संक्रमाऽऽवलिकायां व्यतिक्रान्तायां चतुर्थाऽऽवलिकाप्रथमसमये मायायाः शेषसंग्रहकिट्टिद्वये लोभस्य च प्रथमसंग्रहकिट्टौ संक्रमयति, न ततोऽधस्तात्, हेतुस्तु पूर्ववद् बोद्धव्यः । इत्थं किट्टिवेदनाद्धाप्रथमसमयवद्धक्रोधप्रथमसंग्रहकिट्टिदलं चतुर्थावलिकायां दशसु संग्रहकिट्टिषु भवति । ततः परं यद् किट्टिवेदनाद्धाप्रथमसमयवद्धक्रोधप्रथमसंग्रहकिट्टिदलं लोभप्रथमसंग्रहकिट्टिं संप्राप्तम्, तद् संक्रमाऽऽवलिकायामतिक्रान्तायां पञ्चमाऽऽवलिकाप्रथमसमये लोभस्य द्वितीयसंग्रहकिट्टौ तृतीयसंग्रहकिट्टौ चापवर्तनासंक्रमेण संक्रमयति, आनुपूर्वीसंक्रमदर्शनात् । एवं किट्टिवेदनाद्धाप्रथमसमयवद्धक्रोधप्रथमसंग्रहकिट्टिदलं पञ्चमाऽऽवलिकायां द्वादशसु संग्रहकिट्टिषु भवति । उक्तश्च कषायप्राभृते

"जा चावि बज्झमाणी आवलिया होदि पढमकिट्टीए ।
पुव्वावलिया णियमा अणंतरा चदुसु किट्टीसु ॥१॥
तदिया सत्तसु किट्टीसु चउत्थी दससु होइ किट्टीसु ।
तेण परं सेसाओ भवंति सव्वासु किट्टीसु ॥२॥" इति ।

तथैव तच्चूर्णावपि–"जं पदेसग्गं बज्झमाणयं कोधस्स, तं पदेसग्गं सव्वं बंधावलियं कोहस्स पढमसंगहकिट्टीए दीसइ । तदो आवलियादिक्कंतं तिसु वि कोहकिट्टीसु दीसइ, माणस्स च पढमकिट्टीए । एवं विदियावलिया चदुसु किट्टीसु दीसइ । तदो जं पदेसग्गं कोहादो माणस्स पढमकिट्टीए गदं, तं पदेसग्गं तदो आवलियाए पुण्णाए माणस्स विदियतदियासु मायाए च पढमसंगहकिट्टीए संकमदि । एवं तदिया आवलिया सत्तसु किट्टीसु त्ति भण्णइ । जं कोहपदेसग्गं संछुब्भमाणयं मायाए पढमकिट्टीए संपत्तं, तं पदेसग्गं तत्तो आवलियादिक्कंतं मायाए विदियतदियासु च किट्टीसु लोभस्स च पढमकिट्टीए संकमदि । एवं चउत्थी आवलिया दससु किट्टीसु त्ति भण्णइ । जं कोहपदेसग्गं संछुब्भमाणं लोभस्स पढमकिट्टीए संपत्तं, तदो आवलियादिक्कंतं लोभस्स विदियतदियासु किट्टीसु दीसइ । एवं पंचमो आवलिया सव्वासु किट्टीसु त्ति भण्णइ ।" इति ।

अथाऽतिदिदिक्षुराह 'माणादीणि' इत्यादि, 'मानादीनामपि' मान मायालोभानामपि 'बद्धदलिकं' प्रथमसंग्रहकिट्टिबद्धप्रदेशाग्रं सर्वसंग्रहकिट्टिषु यथासंभवं 'ज्ञेयं' ज्ञातव्यम्। तद्यथा मानप्रथमसंग्रहकिट्टिबद्धप्रदेशाग्रं चतुर्थावलिकायां नवस्वपि संग्रहकिट्टिषु भवति, मायायाः प्रथमसंग्रहकिट्टिबद्धप्रदेशाग्रं तृतीयावलिकायां षट्स्वपि संग्रहकिट्टिषु भवति, लोभप्रथमसंग्रहकिट्टिबद्धदलिकं द्वितीयावलिकायां तिसृषु संग्रहकिट्टिषु भवति। भावना तु सुगमा ॥१३८॥

प्राग् एकविंशत्यधिकशततमगाथायां मध्यमाऽवान्तरकिट्टयो वेद्यन्त इत्युक्तम्। तत्रोदयस्थितौ कति समयप्रबद्धाः प्रक्षिप्ता भवन्ति? कति चाक्षिप्ता भवन्ति? एवं कति भवबद्धा उदयस्थितौ निक्षिप्ता भवन्ति? इति परशङ्कां व्यपनुनुदिषुराह

उदयठिईए छण्हं आवलियाणं हवन्ति अच्छूढा।
समयपबद्धा छूढा सेसा तह सव्वभवबद्धा ॥१३९॥

उदयस्थितौ षण्णामावलिकानां भवन्त्यक्षिप्ता।
समयप्रबद्धा क्षिप्ता शेषास्तथा सर्वभवबद्धा ॥१३९॥ इति पदसंस्कारः।

'उदयठिईए' इत्यादि, 'उदयस्थितौ' किट्टिवेदकैः स्वोदयनिषेके षण्णामावलिकानां समयप्रबद्धा 'अक्षिप्ता' उदीरणाकरणेनाऽनिक्षिप्ता भवन्ति। कथमेतदवसीयते? इति चेद्, भण्यते अन्तरकरणे निष्पादिते ये कर्मप्रदेशा बध्यन्ते, ते नियमत आवलिकाषट्काऽभ्यन्तरे नोदयन्ति, किन्तु षट्स्वावलिकासु व्यतिक्रान्तास्वेव, तेन षडावलिकासमयप्रबद्धा उदयस्थित्यामुदीरणाकरणेन न प्रक्षिप्यन्ते। न केवलं किट्टिवेदकैः स्वोदयस्थितौ षडावलिकासमयप्रबद्धा अक्षिप्ता भवन्ति, किन्त्वन्तरकरणनिष्पादनतः षट्स्वावलिकासु गतासु सर्वैः क्षपकैः स्वोदयस्थितौ षडावलिकासमयप्रबद्धा न क्षिप्यन्ते। यदभ्यधायि कषायप्राभृतचूर्णौ **"जत्तो पाए अंतरं कदं, तत्तो पाए समयपबद्धो छसु आवलियासु गदासु उदीरिज्जदि। अंतरादो कदादो तत्तो छसु आवलियासु गदासु तेण परं छण्हमावलियाणं समयपबद्धा उदये अछुद्धा भवंति।"** इति। इदमुक्तं भवति—अन्तरकरणसमाप्तिप्रथमसमय एकावलिकासमयप्रबद्धा उदयस्थित्यामक्षिप्ता भवन्ति, बन्धावलिकागतकर्मणः सकलकरणाऽयोग्यत्वेनाऽऽवलिकाबद्धकर्मण उदयाभावात्। अन्तरकरणसमाप्तिद्वितीयसमयेऽप्येकावलिकासमयप्रबद्धा उदयस्थितावक्षिप्ता भवन्ति, अन्तरकरणसमाप्तेरधस्ताद् बद्धकर्मण आवलिकां यावत्सकलकरणाऽयोग्यत्वेनावलिकायां व्यतिक्रान्तायां क्रमेणोदीरणाप्रयोगेणोदयात्। एवंक्रमेणाऽन्तरकरणसमाप्तिप्रथमसमयतः प्रभृत्यावलिकाचरमसमयं यावदावलिकासमयप्रबद्धा उदयेऽक्षिप्ता भवन्ति। ततः परं समयाधिकावलिकासमयप्रबद्धा उदयेऽक्षिप्ता भवन्ति, अन्तरकरणसमाप्तिप्रथमसमयबद्धप्रदेशाग्रस्यावलिकाषट्के गत उदीरणा-

भवनात् । तदुपरितनसमये द्विसमयाधिकावलिकासमयप्रबद्धा उदयेऽक्षिप्ता भवन्ति, तदुपरितनसमये त्रिसमयाधिकावलिकासमयप्रबद्धा उदयेऽक्षिप्ता भवन्ति, एवमेकैकसमयवृद्धया तावद्वक्तव्यम्, यावदन्तरकरणसमाप्तितः समयोनावलिकाषट्कस्य चरमसमयः । तदानीं हि समयोनषडावलिकासमयप्रबद्धा उदयेऽक्षिप्ता भवन्ति । तदनन्तरसमये षण्णामावलिकानां समयप्रबद्धा उदयनिषेकेऽक्षिप्ता भवन्ति, तत ऊर्ध्वं सर्वत्र षण्णामावलिकानां समयप्रबद्धा उदयस्थितौ अक्षिप्ता भवन्ति ।

'छूढा' इत्यादि, तत्र 'शेषाः' षडावलिकानां समयप्रबद्धान् वर्जयित्वा शेषाः सर्वे समयप्रबद्धास्तथा सर्वभवबद्धा उदयस्थितौ 'क्षिप्ता' उदीरणाकरणेन प्रक्षिप्ता भवन्ति । अयम्भावः यदि कर्मावस्थानकालाभ्यन्तरे संचितयत्समयप्रबद्धस्यैकोऽपि कर्मपरमाणुरुदये प्रक्षिप्यते,तर्हि स समयप्रबद्ध उदये क्षिप्त इति व्याख्यानात् षडावलिकानां समयप्रबद्धान् परित्यज्य शेषाः सर्वे समयप्रबद्धा उदये वर्तन्ते । एवं यदि कर्माऽवस्थानकालाभ्यन्तर विवक्षित एकस्मिन् भवे बद्धानां समयप्रबद्धानामेकसमयप्रबद्धस्यैकोऽपि कर्मपरमाणुरुदये प्रक्षिप्यते, तर्हि विवक्षितभवबद्ध उदये निक्षिप्त इति व्याख्यानात् सर्वे भवबद्धा उदये प्रक्षिप्ता भवन्ति । उक्तं च **कषायप्राभृतचूर्णौ "भवबद्धा पुण णियमा सव्वे उदये संछुद्धा भवंति ।"** इति । इत्थं समयप्रबद्धा उदयस्थितौ प्रक्षिप्ता अप्रक्षिप्ताश्च भवन्ति, भवप्रबद्धाः पुनः सर्व उदयस्थितौ प्रक्षिप्ता भवन्ति ॥१३९॥

उदयस्थितौ समयप्रबद्धा भवबद्धाश्च प्ररूपिताः, सम्प्रति क्षपकस्यैकस्यां स्थितौ समयप्रबद्धशेषकाणि भवबद्धशेषकाणि च प्रतिपादनीयानि । इह तावदेकस्मिन् समये बद्धः प्रदेशपिण्डः समयप्रबद्ध उच्यते, तत्र कर्माऽवस्थानकालाभ्यन्तरे यथासंभवं वेदितस्य यस्य समयप्रबद्धस्य वेदितशेषं यत्प्रदेशाग्रं सत्कर्मणि भवति, अनन्तरसमये चोदयस्थितिं वर्जयित्वा शेषासु स्थितिषु तस्य समयबद्धस्यैकोऽपि प्रदेशो न वर्तिष्यति, उदयस्थितिं त्वपकर्षेण प्राप्स्यति, तत्प्रदेशाग्रं समयप्रबद्धस्य शेषकं व्यपदिश्यते । उक्तं च **कषायप्राभृतचूर्णौ "जं समयपबद्धस्स वेदिदसेसग्गं पदेसग्गं दिस्सइ, तम्मि अपरिसेसिदम्मि एगसमएण उदयमागदम्मि तस्स समयपबद्धस्स अण्णो कम्मपदेसो वा णत्थि, तं समयपबद्धसेसगं णाम ।"** इति । न च कर्माऽवस्थानकालाभ्यन्तरे समयप्रबद्धस्य वेदितशेषमुदये वर्तमानं प्रदेशाग्रं समयप्रबद्धशेषकं कुतो नोच्यते ? इति वाच्यम्, यतस्तथाविधे व्याख्यान एकस्यामेवोदयस्थितौ शेषकस्याऽवस्थानस्वीकारप्रसङ्गः स्यात् । न चेदमिष्यते, अनेकासु स्थितिषु समयप्रबद्धशेषकस्य वक्ष्यमाणत्वात् । समयप्रबद्धस्य जघन्यतः शेषकमेकं दलं भवति, द्वे वा दले शेषके भवतः, त्रीणि वा दलानि शेषकाणि भवन्ति । एवंक्रमेणोत्कृष्टतोऽनन्तकर्मदलिकानि शेषकाणि भवन्ति । एवं भवबद्धशेषकाण्यपि व्याख्येयानि । न्यगादि च

कषायप्राभृतचूर्णौ–"एवं चेव भवबद्धसेसयं ।" इति । तथाहि-एकस्मिन् भवे बद्धः प्रदेशसमूहो भवबद्ध उच्यते । तत्र कर्माऽवस्थानकालाभ्यन्तरे यथासंभवं वेदितस्य यस्य भवबद्धस्य वेदितशेषं यत्प्रदेशाग्रं सत्कर्मणि विद्यते, अनन्तरसमये चोदयस्थितिं मुक्त्वा शेषासु स्थितिषु तस्य भवबद्धस्यैकमपि दलं न वर्त्स्यते, उदयस्थितिं त्वपकर्षेण प्राप्स्यति, तत्प्रदेशाग्रं भवबद्ध-शेषकमुच्यते ।जघन्यतो भवबद्धशेषकमेकं भवति, उत्कृष्टतस्त्वनन्तानि भवबद्धशेषकाणि भवन्ति । नन्वेकस्थितौ कतीनां समयप्रबद्धानां भवबद्धानां च शेषकाणि विद्यन्ते ? इति परप्रश्नं समाधातु-कामः प्राह

एगठिईअ इगाहियकमेण खलु समयभवपबद्धाणं
होज्जन्ति सेसगाइं जेट्ठाउ पलियअसंखभागस्स ॥१४०॥ (गीतिः)

एकस्थितावेकाधिकक्रमेण खलु समयभवप्रबद्धानाम् ।
भवन्ति शेषकाणि ज्येष्ठात् पल्यासंख्यभागस्य ॥१४०॥ इति पदसंस्कारः ।

"एगठिईअ" इत्यादि, 'एकस्थितौ' क्षपकस्यैकस्यां स्थितौ एकाधिकक्रमेण 'ज्येष्ठात्' उत्कृष्टतः पल्याऽसंख्यभागस्य' पल्योपमाऽसंख्यातभागमात्राणां 'समयभवपबद्धाणं' ति "द्वन्द्वान्ते श्रूयमाणं पदं प्रत्येकमभिसम्बध्यते ।" इति न्यायात् समयप्रबद्धानां भवप्रबद्धानां च शेषकाणि भवन्ति । खलुर्वाक्यालङ्कारे । अयं भावः-क्षपकस्यैकस्यां स्थितौ जघन्यत एकसमयप्रबद्धस्यैकस्मात् प्रभृत्यनन्तानि कर्मपरमाणुरूपाणि शेषकाणि विद्यन्ते । एवमेकस्यां स्थितौ द्वयोर्वा समयप्रबद्धयोः शेषकाणि भवन्ति, त्रयाणां वा समयप्रबद्धानां शेषकाणि वर्तन्ते । एवमेवैकोत्तरवृद्धया समयप्रबद्धानां शेषकाणि तावद् वाच्यानि, यावदेकस्थित्यामुत्कृष्टतः पल्योपमाऽसंख्येयभागप्रमितानां समयप्रबद्धानां शेषकाणि । उक्तं च कषायप्राभृतचूर्णौ क्षपकप्ररूपणाऽवसरे–"एक्कम्हि ठ्ठिदिविसेसे कदिण्हं समयपबद्धाणं सेसाणि होज्जासु ? एक्कस्स वा समयपबद्धस्स, दोण्हं वा, तिण्हं वा, एवं गंतूण उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागमेत्ताणं समयपबद्धाणं ।" इति ।

तथा क्षपकस्यैकस्थितौ जघन्यत एकस्य भवप्रबद्धस्य शेषकाणि भवन्ति, द्वयोर्वा भवप्रबद्धयोः शेषकाणि विद्यन्ते, एवमेकोत्तरवृद्धयोत्कृष्टतः पल्योपमाऽसंख्यातभागप्रमाणानां भवप्रबद्धानां शेषकाण्येकस्यां स्थितौ विद्यन्ते । उक्तं च कषायप्राभृतचूर्णौ क्षपकप्रस्तावे–"भवबद्धसेसयाणि वि एक्कम्हि ठिदिविसेसे एक्कस्स वा भवबद्धस्स, दोण्हं वा, तिण्हं वा, एवं गंतूण उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागमेत्ताणं भवबद्धाणं ।" इति । एवमक्षपकस्याऽप्येकस्यां स्थितौ समयप्रबद्धशेषकाणि भवप्रबद्धशेषकाणि च प्ररूपयितव्यानि, विशेषाभावात् । न्यगादि च कषायप्राभृतचूर्णावक्षपकप्ररूपणाऽवसरे "एक्कम्हि ठिदिविसेसे एक्कस्स वा

समयपबद्धस्स सेसयं दोण्हं वा तिण्हं वा उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदि-भागमेत्ताणं समयपबद्धाणं। एवं चेव भवबद्धसेसाणि।" इति। इदमत्राऽवधेयम्-क्षपकस्याऽक्षपकस्य चैकस्थितावुत्कर्षेण भवप्रबद्धतोऽसंख्येयगुणानां समयप्रबद्धानां शेषकाणि भवन्ति ॥१४०॥

तदेवं दर्शितमेकस्यां स्थित्यामेकसमयप्रबद्धतः प्रभृत्युत्कृष्टतः पल्योपमाऽसंख्येयभागमात्राणां समयप्रबद्धानां शेषकाणामवस्थानम्। तत्र किमेकसमयप्रबद्धशेषकविशिष्टाः स्थितयः स्तोका भवन्ति? आहोस्वित् पल्योपमाऽसंख्येयभागमात्राणां समयप्रबद्धानां शेषकैर्विशिष्टा स्थितयः? इत्यादिके पृष्टेऽल्पबहुत्वं प्राह

इगसमयपबद्धस्स तु सेसेण ठिई जुआऽप्पगाऽणेगाणं।
होन्ति असंखगुणा पल्लअसंखंसपमिआण च असंखंसा ॥१४१॥

(आर्यागीतिः)

एकसमयप्रबद्धस्य तु शेषेण स्थितयो युता अल्पका अनेकेषाम्।
भवन्त्यसंख्यगुणा पल्या-ऽसंख्यांशप्रमितानां चाऽसंख्यांशा ॥ १४१ ॥ इति पदसंस्कारः।

'इग०' इत्यादि, एकसमयप्रबद्धस्य तु 'शेषेण' शेषकेण 'युताः' मिश्रिता अविरहिता इत्यर्थः, स्थितयः 'अल्पकाः' स्तोका भवन्ति। क्षपकस्य वर्षपृथक्त्वमात्रस्थितिष्वेकसमयप्रबद्धशेषकेणाऽविरहिताः स्थितय आवलिकाऽसंख्येयभागप्रमिता भवन्त्योऽपि सर्वस्तोका भवन्तीत्यर्थः। 'णेगाणं' इत्यादि, ततो 'अनेकेषां' द्विप्रभृतितत्प्रायोग्याऽसंख्यातपर्यवसानानां समयप्रबद्धानां शेषकेणाऽविरहिताः स्थितयोऽसंख्यगुणा भवन्ति, एकसमयप्रबद्धशेषकयुक्तस्थितितोऽनेकसमयप्रबद्धशेषकाऽविरहितस्थितीनामसंख्यातगुणत्वस्य न्याय्यत्वात्। नन्तूत्कृष्टतोऽनेकसमयप्रबद्धशेषकेणाविरहिताः कति स्थितयो भवन्ति? इत्यत आह—'पल्ल०' इत्यादि, 'पल्योपमाऽसंख्यांशप्रमितानां' पल्योपमाऽसंख्येयभागप्रमितानां समयप्रबद्धानां शेषकेणाऽविरहिताः स्थितयो 'असंख्यांशाः' क्षपकस्य वर्षपृथक्त्वमात्रस्थितेर्बहुसंख्येयभागमात्र्यो भवन्ति, तेन शेषाणां तत्प्रायोग्याऽनेकसमयप्रबद्धानां शेषकेणाऽविरहिताः स्थितय आवलिकाऽसंख्येयभागप्रमाणा भवन्त्यः सकलस्थितीनामसंख्येयभागमात्र्यो भवन्ति। उक्तं च कषायप्राभृतचूर्णौ **"जाओ ताओ अविरहिदट्ठिदीओ, ताओ एगसमयपबद्धसेसएण अविरहिदाओ थोवाओ। अणेगाणं समयपबद्धाणं सेसएण अविरहिदाओ असंखेज्जगुणाओ। पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागमेत्ताणं समयपबद्धाणं सेसएण अविरहिदाओ असंखेज्जा भागा।"** इति। अत्र मुग्धचोदको भणति-नन्वेकसमयप्रबद्धस्य शेषकेणा-ऽविरहिताः स्थितयः स्तोकाः, ततो द्वयोः समयप्रबद्धयोः शेषकेणा-ऽविरहिता विशेषाधिकाः, ततोऽपि त्रयाणां समयप्रबद्धानां शेषकेणाऽविरहिता विशेषाधिकाः। एवंक्रमेणाऽऽवलिकाऽसंख्येयभागे च गते द्विगुणा इत्यादिक्रमेण पल्यो-

पमाऽसंख्येयभागप्रमाणानां समयप्रबद्धानामल्पबहुत्वं कुतो न भण्यते ? इति, अत्रोच्यते क्षपकस्य वर्षपृथक्त्वतोऽधिकाः स्थितयो न संभवन्ति । यद्येकसमयप्रबद्धतः प्रभृत्येकोत्तरवृद्ध्या पल्योपमाऽसंख्येयभागप्रमाणानां समयप्रबद्धानां शेषकमाश्रित्य स्थानानि प्ररूपयिष्यन्त, तर्हि तानि वर्षपृथक्त्वप्रमाणस्थितितोऽसंख्यातगुणान्यभविष्यन् । न चाऽस्तु वर्षपृथक्त्वतोऽसंख्येयगुणानि स्थानानीति वाच्यम्, वर्षपृथक्त्वतोऽधिकस्थितेरसंभवेन ततोऽधिकतराणां स्थानानामभावात् । इत्थमेकोत्तरवृद्ध्या समयप्रबद्धानां शेषकेणाऽविरहितानां स्थितीनां प्ररूपणा न संभवति, अतो यथासंभवमनेकसमयप्रबद्धशेषकेणाऽविरहिताः स्थितय एकसमयप्रबद्धशेषकेणाऽविरहितस्थितितोऽसंख्यातगुणा वाच्याः, ततोऽसंख्येयगुणाः पल्योपमाऽसंख्येयभागमात्रसमयप्रबद्धशेषकेणाऽविरहिताः स्थितयः ॥ १४१ ॥

अथैकसमयप्रबद्धस्यैकभवप्रबद्धस्य च शेषकाणि जघन्यत उत्कृष्टतश्च कतिषु स्थितिषु तिष्ठन्ति ? इति पृष्टे प्राह

खणभवपबद्धसेसाणि इगठिईए इगाहिअकमेणं ।
समयाहिअउदयावलियं वज्जिय सव्वगठिईसुं ॥१४२॥

क्षणभवप्रबद्धशेषाण्येकस्थितावेकाधिकक्रमेण ।
समयाधिकोदयावलिकां वर्जयित्वा सर्वस्थितिषु ॥१४२॥ इतिपदसंस्कारः ।

'खण०' इत्यादि, 'क्षणभवप्रबद्धशेषाणि' इत्युक्त एकसमयप्रबद्धस्यैकभवप्रबद्धस्य च शेषकाणीत्यर्थो ग्राह्यः । न चैकशब्दोऽनुक्तोऽपि कुतो गृह्यते ? इति वाच्यम्, "व्याख्यानतो विशेषप्रतिपत्तिः ।" इति न्यायाश्रयणात् । तत्रैकसमयप्रबद्धस्यैकभवप्रबद्धस्य च शेषकाण्येकस्थितौ वर्तन्त इति शेषः, एकाधिकक्रमेण समयाधिकोदयावलिकां वर्जयित्वा 'सर्वस्थितिषु' अन्तरकरणे दलिकाभावात् क्षपकस्य सर्वेषु प्रथमस्थितिनिषेकेषु द्वितीयस्थितिनिषेकेषु च वर्तन्ते । इदमुक्तं भवति-एकसमयप्रबद्धस्यैकभवप्रबद्धस्य च शेषकाणि जघन्यत एकस्यां स्थितौ वर्तन्ते, द्वयोर्वा स्थित्योर्वर्तन्ते, तिसृषु वा स्थितिषु वर्तन्ते, एवमेकोत्तरवृद्ध्योत्कृष्टतः समयाधिकोदयावलिकां परित्यज्य शेषासु क्षपकस्य वर्षपृथक्त्वमात्रप्रथमस्थितियुक्तद्वितीयस्थितिष्वेकसमयप्रबद्धशेषकाण्यवतिष्ठन्ते । न च समयाधिकावलिकायामेकसमयप्रबद्धस्य शेषकाणि कुतो न वर्तन्ते ? इति वाच्यम्, तेषां लक्षणभङ्गप्रसङ्गात् । तथाहि—उदयस्थितौ समयप्रबद्धस्य शेषकाणि न संभवन्ति, अनन्तरसमये निर्लेपयिष्यमाणानां कर्मप्रदेशानां शेषकत्वेन व्युत्पादनात्, उदयस्थितौ च तात्कालिकनिर्लेपनदर्शनेन शेषकत्वव्युत्पत्तौ विरोधस्योद्भवनात् । न च तथाप्युदयावलिकाया उपरितनप्रथमस्थितौ समयप्रबद्धशेषकाणि संभवन्तीति वाच्यम्, अनन्तरसमये तस्याः स्थितेरुदयावलिकायां प्रविश्यमाणत्वादुदयावलिकागतकर्मणश्च सकलकरणाऽयोग्यत्वेनाऽनन्तरसमययुदयावलिकागतकर्मदलानामपवर्णेनोदयस्थितौ

प्रक्षेपाऽयोगात् । एवमुदयावलिकागततृतीयादिस्थितिष्वपि न संभवति । ननूदयस्थितेरुपरितना याऽनन्तरा द्वितीयस्थितिः, तस्यां कुतो न संभवन्ति ? इति चेत्, उच्यते अपकर्षणेनाऽनन्तर-समययुदयस्थितौ निश्शेषतो निर्लेपयिष्यमाणाः कर्मप्रदेशाश्शेषकत्वेन व्युत्पादिताः, अनन्तरद्वितीय-स्थितिगतप्रदेशास्तूदयस्थितावपकर्षणेन न प्रक्षिप्यन्ते, किन्तु स्वभावतोऽधस्तनस्थितिक्षयेनोदय-स्थितौ प्रविशन्ति । यद्वा व्याख्यानतो विशेषप्रतिपत्तिरिति न्यायेनोदयस्थितेरनन्तरोपरित-नस्थितावप्येकसमयप्रबद्धस्य शेषकाणि तिष्ठन्तीत्यभ्युपगन्तव्यम् । एवमेकभवप्रबद्धशेषकाण्यपि निरूपणीयानि । उक्तञ्च कषायप्राभृतचूर्णौ **"समयपबद्धसेसयमेक्किस्से ठिदिविसेसे, दोसु वा, तीसु वा, एगादिएगुत्तरमुक्कस्सेण विदियट्ठिदीए सव्वासु ठिदीसु पढम-ट्ठिदीए च समयाहियउदयावलियं मोत्तूण सेसासु सव्वासु ठिदीसुXXXXXX।"** इति । एवमेकभवप्रबद्धशेषकेषु ग्रन्थान्तरसंवादो द्रष्टव्यः ।

क्षपकस्यैकसमयप्रबद्धस्य शेषकाण्युत्कर्षतो वर्षपृथक्त्वस्थितिषु दृश्यन्ते, अधिकस्थितेरभावात् । अक्षपकस्य त्वधिकास्वपि स्थितिषु दृश्यन्ते । तथाहि—एकसमयप्रबद्धशेषकाणि जघन्यत एकस्यां स्थितौ तिष्ठन्ति, यद्वा द्वयोः स्थित्योस्तिष्ठन्ति, यद्वा तिसृषु स्थितिष्ववतिष्ठन्ते । एवमेकोत्त-रवृद्ध्योत्कृष्टतोऽक्षपकस्य पल्योपमाऽसंख्येयभागप्रमाणासु स्थितिष्वेकसमयप्रबद्धशेषकाणि वर्तन्ते । उक्तञ्च कषायप्राभृतचूर्ण्यामक्षपकप्रस्तावे—**"समयपबद्धसेसयमेक्किस्से ठिदीए होज्ज, दोसु तीसु वा, उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागेसु।"** इति ॥१४२॥

तदेवमभिहितम्—विवक्षितैकसमयभवप्रबद्धशेषकाणि जघन्यत एकस्यां स्थितौ वर्तन्ते, उत्कृष्टतश्च समयाधिकोदयावलिकावर्जसर्वस्थितिष्विति । तत्र किमेकस्यां स्थित्यां येषां समयप्र-बद्धानां शेषकाणि विद्यन्ते, ते प्रभूता भवन्ति ? उत द्व्यादिस्थितिषु येषां समयप्रबद्धानां शेषका-ण्यवतिष्ठन्ते, ते प्रभूताः ? इति परशङ्काव्यपनोदाय आह

जाणं समयपबद्धाणं सेसाणि ठिईअ ते थोवा ।
दोसुं अहिआ आवलिअसंखंसे उ दुगुणा य जवमज्झं ॥१४३॥ (गीतिः)

येषां समयप्रबद्धानां शेषाण्येकस्थितौ ते स्तोका ।
द्वयोरधिका आवलिकाऽसंख्यांशे तु द्विगुणाश्च यवमध्यम् ॥१४३॥ इति पदसंस्कार ।

'जाणं' इत्यादि, येषां समयप्रबद्धानां 'शेषाणि' शेषकाण्येकस्थितावृवतिष्ठन्ते, ते समय-प्रबद्धाः स्तोका भवन्ति । तद्यथा—यस्य समयप्रबद्धस्य शेषकाण्येकस्यामेव स्थितावतिष्ठन्ते, तस्यैका शलाका ग्रहीतव्या । ततः पुनरप्यन्यस्यैकस्य समयप्रबद्धस्य शेषकाण्यन्यस्यामेकस्यां स्थितौ विद्य-

न्ते, तस्य द्वितीयैका शलाका ग्रहीतव्या । एवं यस्य समयप्रबद्धस्य शेषकाण्येकैकस्यां स्थितावतिष्ठन्ते, तस्य तस्यैकैका शलाका ग्रहीतव्या, गृहीताश्च सर्वाः शलाकाः स्तोका भवन्ति । 'दोसु' इत्यादि, 'द्वयोः' ततो येषां समयप्रबद्धानां शेषकाणि द्वयोः स्थित्योरवतिष्ठन्ते, ते 'अधिकाः' विशेषाधिकाः, यस्य यस्य समयप्रबद्धस्य शेषकाणि स्थितिद्वये विद्यन्ते, तस्य तस्यैकैका शलाका ग्रहीतव्या, गृहीताश्च सर्वाः शलाकाः पूर्वपदतो विशेषाधिका भवन्तीत्यर्थः । ततो येषां समयप्रबद्धानां शेषकाणि तिसृषु स्थितिष्ववतिष्ठन्ते, ते समयप्रबद्धा विशेषाधिका भवन्ति । एवमेकोत्तरवृद्धयापन्नस्थितिषु समयप्रबद्धा विशेषाधिकक्रमेण गच्छन्ति । 'आवलिकाऽसंख्यांशे तु' आवलिकाऽसंख्येयभागे गते तु द्विगुणाः समयप्रबद्धा भवन्ति । चकारः समुच्चयार्थको भिन्नक्रमश्च, ततश्चायमर्थः यवमध्यं चाऽऽवलिकाऽसंख्यांशे=प्रथमस्थानतः प्रभृत्यावलिकाऽसंख्यातभागप्रमाणद्विगुणवृद्धिस्थानाऽतिक्रमे यवमध्यं प्राप्यत इति भावः ।

इदमत्र तात्पर्यम् येषां समयप्रबद्धानां शेषकाण्येकस्यां स्थितौ वर्तन्ते, ते समयप्रबद्धाः स्तोकाः, ततो येषां समयप्रबद्धानां द्वयोः स्थित्योर्वर्तन्ते, ते विशेषाधिकाः, ततो येषां समयप्रबद्धानां शेषकाणि तिसृषु स्थितिषु वर्तन्ते, ते विशेषाधिका भवन्ति । एवं विशेषाधिकक्रमेणाऽऽवलिकाऽसंख्येयभागमात्रेषु स्थानेषु गतेषु प्रथमस्थानतः समयप्रबद्धा द्विगुणा भवन्ति, इदञ्च प्रथमं द्विगुणवृद्धिस्थानम् । ततः पुनरेतावत्सु स्थानेषु गतेषु समयप्रबद्धा द्विगुणा भवन्ति, इदञ्च द्वितीयं द्विगुणवृद्धिस्थानम् , ततः पुनरेतावत्सु स्थानेषु गतेषु समयप्रबद्धा द्विगुणा भवन्ति । इदञ्च तृतीयं द्विगुणवृद्धिस्थानम् । अनेन क्रमेणाऽऽवलिकाऽसंख्येयभागमात्रेषु द्विगुणवृद्धिस्थानेषु गतेषु यवमध्यं प्राप्यते । अथ किं नाम यवमध्यम् ? इति चेत् , उच्यते—यथा यवाख्यधान्यविशेषः प्रारम्भभागतो विशेषाधिकक्रमेण तावद्वर्धते, यावत् तस्य मध्यस्थानम् । ततो विशेषहीनक्रमेण तावद्धीयते, यावत् तस्य पर्यन्तभागः, तथैवैकोत्तरवृद्धयापन्नस्थितिषु समयप्रबद्धा विशेषाधिकक्रमेण तावद् वर्धन्ते, यावदावलिकाऽसंख्येयभागमात्राणि स्थानानि । तत एकोत्तरवृद्धयापन्नस्थितिषु समयप्रबद्धा गच्छन्ति, यावच्चरमस्थानम् । तत उपमयेह यवमध्यमुच्यते ।

ततो यवमध्यस्यावलिकाऽसंख्येयभागप्रमाणस्थितिलक्षणस्योपर्येकोत्तरवृद्धयापन्नस्थितिषु समयप्रबद्धा विशेषहीनक्रमेण गच्छन्ति । यवमध्यत आवलिकाऽसंख्येयभागप्रमाणस्थानेषु गतेषु द्विगुणहीनाः समयप्रबद्धा भवन्ति, ततः पुनरेतावत्सु स्थानेष्वतीतेषु समयप्रबद्धा द्विगुणहीनाः सम्पद्यन्ते । एवंक्रमेण यवमध्यस्योपरि तावद् गच्छन्ति, यावद् वर्षपृथक्त्वमात्रस्थानेषु गतेषु चरमस्थानं प्राप्यते, मध्ये चाऽसंख्येयद्विगुणहानिस्थानानि व्यतिक्रामन्ति । उक्तं च कषायप्राभृतचूर्णौ—

"समयपबद्धस्स एक्किस्से सेसगमेक्किस्से ठिदीए, ते समयपबद्धा थोवा । जे दोसु ठिदीसु, ते समयपबद्धा विसेसाहिया । आवलियाए असंखेज्जदिभागे

दुगुणा। आवलियाए असंखेज्जदिभागे जवमज्झं। तदो हायमाणट्ठाणाणि वासपुधत्तं।" इति। एवं भवप्रबद्धानामपि यवमध्यादिप्ररूपणा कर्तव्या, विशेषाभावात्।

अक्षपकस्याऽप्येकादिस्थितिषु समयप्रबद्धानामवस्थानक्रमः क्षपकवज्ज्ञातव्यः, नवरं पल्योपमाऽसंख्येयभागे गते द्विगुणवृद्धिस्थानं द्विगुणहानिस्थानं वा भवति, एवं पल्योपमाऽसंख्येयभागमात्रेषु द्विगुणवृद्धिस्थानेषु गतेऽक्षपकस्य यवमध्यं जायते, क्षपकस्य त्वावलिकाऽसंख्येयभागे संजातम्। तथाहि येषां समयप्रबद्धानां शेषकाण्यक्षपकस्यैकस्यामेव स्थितौ भवन्ति, ते समयप्रबद्धाः स्तोकाः। ततो येषां समयप्रबद्धानां शेषकाण्यक्षपकस्य द्वयोः स्थित्योरवतिष्ठन्ते, ते समयप्रबद्धा विशेषाधिका भवन्ति। एवमेकोत्तरवृद्ध्यापन्नस्थितिषु समयप्रबद्धा विशेषाधिकक्रमेण गच्छन्ति। पल्योपमाऽसंख्येयभागमात्रस्थानेषु गतेषु समयप्रबद्धा द्विगुणवृद्धा भवन्ति। इदं चाद्यं द्विगुणवृद्धिस्थानम्। ततः पुनरेतावत्सु स्थानेषु गतेषु समयप्रबद्धा द्विगुणा भवन्ति। इदं द्वितीयं द्विगुणवृद्धिस्थानम्। एवंक्रमेण पल्योपमाऽसंख्येयभागप्रमाणेषु द्विगुणवृद्धिस्थानेषु गतेषु सत्सु यवमध्यं प्राप्यते। यवमध्यस्थाने पल्योपमाऽसंख्येयभागप्रमाणस्थितिलक्षणे सर्वप्रभूताः समयप्रबद्धा भवन्ति। ततो यवमध्यस्योपर्येकोत्तरवृद्ध्यापन्नस्थितिषु समयप्रबद्धा विशेषहीनक्रमेण गच्छन्ति। पल्योपमाऽसंख्येयभागे च गते द्विगुणहीनाः समयप्रबद्धा भवन्ति। ततः पुनः पल्योपमाऽसंख्यातभागेऽतीते समयप्रबद्धा द्विगुणहीना भवन्ति। एवंक्रमेण यवमध्यस्याधस्तनस्थानतोऽसंख्यातगुणेषु स्थानेषु गतेषु चरमस्थानं प्राप्यते। तत्र नानाद्विगुणवृद्धिहानिस्थानानि स्तोकानि भवन्ति। ततो द्विगुणहान्योरन्तरालवर्तीनि स्थानान्यसंख्येयगुणानि। एवं भवबद्धा अपि प्ररूपयितव्याः, विशेषाभावात्। उक्तञ्चेदमेव भङ्ग्यन्तरेण कषायप्राभृतचूर्णौ। तथा च तद्ग्रन्थः—"**समयपबद्धसेसयाणि एक्कम्हि ठिदिविसेसे जाणि, ताणि थोवाणि। दोसु ठिदिविसेसेसु विसेसाहियाणि। तिसु ठिदिविसेसेसु विसेसाहियाणि। पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागे जवमज्झं। णाणंतराणि थोवाणि, एगंतरमसंखेज्जगुणं। एवं भवबद्धसेसयाणि।**" इति। चूर्णिसूत्राणामयं भावः—एकस्य समयप्रबद्धस्य भवबद्धस्य च वेदितशेषः कर्मप्रदेशोऽनन्तरसमयपुदयस्थितिं प्राप्तो निश्शेषं निर्लेपयिष्यमाणो यथासंख्यं समयप्रबद्धशेषकं भवबद्धशेषकं चोच्यते। तत्राऽक्षपकस्यैकस्यां स्थितौ वर्तमानस्य समयप्रबद्धशेषकस्यैका शलाका ग्रहीतव्या। पुनरन्यसमयप्रबद्धशेषकस्यैकस्यां स्थिताववतिष्ठमानस्य द्वितीया शलाका ग्रहीतव्या। एवमेकस्थित्यामवतिष्ठमानानां समयप्रबद्धशेषकाणामेकैका शलाका ग्रहीतव्या। तथा द्वयोः स्थित्योर्यत्समयप्रबद्धशेषकं विद्यते, तस्यैका शलाका ग्रहीतव्या। पुनरन्यसमयप्रबद्धशेषकं यद् द्वयोः स्थित्योर्विद्यते, तस्य द्वितीया शलाका ग्रहीतव्या। एवं द्वयोः स्थित्योरवतिष्ठमानानां समयप्रबद्धशेषकाणामेकैका शलाका ग्रहीतव्या। एवंक्रमेणैकोत्तरवृद्ध्यापन्नस्थितिष्ववतिष्ठमानानां समयप्रबद्धशेषकाणामेकैका

शलाका ग्रहीतव्या । तत्रैकस्थित्यामवतिष्ठमानानां समयप्रबद्धशेषकाणां गृहीताः सर्वाः शलाकाः स्तोका भवन्ति । ततो द्वयोः स्थित्योरवतिष्ठमानानां समयप्रबद्धशेषकाणां गृहीताः सर्वाः शलाका विशेषाधिका भवन्ति । एवं विशेषाधिकक्रमेण पल्योपमाऽसंख्येयभागप्रमाणस्थानेषु गतेषु शलाका प्रथमस्थानापेक्षया द्विगुणा भवन्ति, इदश्च प्रथमं द्विगुणवृद्धिस्थानम् । ततः पुनरेतावत्सु स्थानेषु व्रजितेषु शलाका द्विगुणा भवन्ति, इदश्च द्वितीयं द्विगुणवृद्धिस्थानम् । एवंक्रमेण पल्योपमाऽसंख्येयभागप्रमाणेषु द्विगुणवृद्धिस्थानेषु व्रजितेषु यवमध्यं लभ्यते । तस्योपरि शलाका हीयमाना गच्छन्ति । पल्योपमाऽसंख्येयभागप्रमाणेषु च स्थानेषु गतेषु द्विगुणहीनाः शलाका भवन्ति । ततः पुनः पल्योपमाऽसंख्येयभागमात्रेषु स्थानेषु गतेषु शलाका द्विगुणहीना भवन्ति । एवंक्रमेण द्विगुणवृद्धिस्थानतोऽसंख्यगुणेषु द्विगुणहानिस्थानेषु गतेषु सत्सु चरमस्थानं प्राप्यते । तत्र नानाद्विगुणवृद्धिहानिस्थानानि स्तोकानि, द्विगुणवृद्धिहानिस्थानानां सर्वाः सम्पिण्डिताः शलाकाः स्तोका भवन्तीत्यर्थः, ततो विवक्षितस्थानतो यावत्सु स्थानेषु गतेषु द्विगुणवृद्धिस्थानं प्राप्यते, तान्येकान्तरसंज्ञेकान्यसंख्येयगुणानि भवन्ति । एवमेव भवबद्धशेषकाणि निरवशेषं प्ररूपयितव्यानि, विशेषाभावात् । पश्यन्तु पाठका यन्त्रकम्-२२ ॥१४३॥

सम्प्रति समयप्रबद्धशेषकाणां भवबद्धशेषकाणां चाधारभूता अनाधारभूताश्च सामान्यस्थितीरसामान्यस्थितीश्च प्ररूपयिषुराह

सेसाणि जट्ठिईए सा सामण्णा परा असामण्णा ।
एगा इगाहिअकमा निरंतराऽऽवलिअसंखभागमिआ ॥१४४॥ (गीतिः)

शेषाणि यत्स्थितौ सा सामान्या पराऽसामान्या ।
एकैकाधिकक्रमाद् निरन्तरा आवलिकाऽसंख्यभागमिता ॥१४४॥इति पदसंस्कारः ।

'**सेसाणि**' इत्यादि 'शेषाणि' समयप्रबद्धशेषकाणि भवबद्धशेषकाणि च 'यत्स्थितौ' यस्यां स्थितौ विद्यन्ते "**यत्राऽन्यत् क्रियापदं न श्रूयते तत्राऽस्तिर्भवन्तीपरः प्रयुज्यते**" इति न्यायदर्शनेन अस्तिना च भवतिर्विद्यतिरित्यादीनां ग्रहणाद् विद्यन्त इति क्रियापदाभिधानम्, सा शेषकाणामाधारभूता सामान्या स्थितिरुच्यते, तत्र समयभवप्रबद्धशेषकाख्यकर्मप्रदेशानामितरेषां च कर्मप्रदेशानां साधारणत्वेनावस्थानात् । 'परा' सामान्यतोऽन्या, यस्यां स्थितौ समयप्रबद्धशेषकाणि भवबद्धशेषकाणि च न विद्यन्ते, सा असामान्या स्थितिरुच्यत इत्यर्थः । समयप्रबद्धशेषकाणां भवबद्धशेषकाणां चाऽऽधारभूताः स्थितयः सामान्याः, तेषामनाधारभूताः स्थितयोऽसामान्या व्यपदेष्टव्या इति संक्षेपार्थः । उक्तञ्च कषायप्राभृतचूर्णौ "**एक्कम्हि ठिदिविसेसे जम्हि**

यन्त्रकम् २२ (चित्रम् २२)

[चिह्न] एतच्चिह्नसूचितानि विवक्षितसमयप्रबद्धस्य शेपकाण्येकस्यां स्थितौ वर्तन्ते (गाथा १४२) ।

[चिह्न] अनेन चिह्नेन सूचितानि विवक्षितसमयप्रबद्धस्य शेपकाणि द्वयो स्थित्योरवतिष्ठन्ते ।

[चिह्न] एतच्चिह्नसूचितानि विवक्षितसमयप्रबद्धस्य शेपकाणि तिसृपु स्थितिष्ववतिष्ठन्ते । यद्यपि विवक्षितसमयप्रबद्धशेपकाण्यधिकाधिकतराधिकतमासु स्थितिपु चिह्नान्तरैर्दर्शयितव्यानि, तथापीहाऽवकाशाभावाद् न दर्शितानि ।

[चिह्न] एतच्चिह्नसूचितानि विवक्षितसमयप्रबद्धशेपकाणि समयाधिकोदयावलिकावर्जसर्वस्थितिपु वर्तन्ते ।

[चिह्न] एतच्चिह्नसूचितस्थित्या पल्योपमा-ऽसख्येयभागप्रमाणसमयप्रबद्धाना शेपकाणि विद्यन्ते (गाथा १४०) । असत्कल्पनया इदृशा स्थितय ७२ ।

. . . =बिन्दव शेपकतो भिन्नानि कर्मदलिकानि सूचयन्ति ।

ए=एकसमयप्रबद्धशेपकयुक्ता स्थितय ।

अने=अनेकसमयप्रबद्धशेपकयुक्ता स्थितय ।

अल्पबहुत्वम्–एकसमयप्रबद्धशेपकयुक्ता स्थितय स्तोका (गाथा १४१), असत्कल्पनया चित्रे (२) स्थिती दर्शिते । ततोऽनेकसमयप्रबद्धशेपकयुक्ता स्थितयो-ऽसंख्यगुणा (गाथा १४१), असत्कल्पनया चित्रे १२ स्थितयो दर्शिता । ततश्चित्रे कृष्णसमचतुरस्रप्रतरात्मकचिह्नेन सूचिता पल्योपमाऽसख्येयभागमात्रसमयप्रबद्धशेपकयुक्ता स्थितयोऽसख्यगुणा , असत्कल्पनया चित्रे ७२ स्थितयो दर्शिता ।

उ=समयाधिकोदयावलिका, यस्या समयप्रबद्धशेपकाणि न विद्यन्ते । (गाथा-१४२) ।

अ=एतदक्षरसूचितस्थित्या विवक्षितैकसमयप्रबद्धस्य शेपकाणि विद्यन्ते (गाथा १४०) ।

व= ,, ,, ,, विवक्षितद्विसमयप्रबद्धशेपकाणि वर्तन्ते ।

स= ,, ,, ,, ,, त्रि ,, ,, ,, ,, ।

द= ,, ,, ,, ,, चतु ,, ,, ,, ,, ।

क=प्रस्तुतचित्र त क्षपकमाश्रित्य दर्शितम् , यस्य क्षपकस्योत्कृष्टत एकसमयप्रबद्धशेपकाणि समयाधिकोदयावलिकावर्जासु सर्वासु स्थितिष्ववतिष्ठन्ते । तेन प्रस्तुतचित्रे वक्ष्यमाणस्वरूपा सामान्यस्थितय एव दर्शिता । नानाजीवेपु पुन केपाञ्चित् क्षपकाणां सामान्यस्थितयो निरन्तरा न भवन्ति, किन्तु समयप्रबद्धशेपकविरहिताभिरसामान्यस्थितिभिरन्तरिता भवन्ति । ताश्च वक्ष्यन्ते गाथाद्वयेन (१४४-१४५) ।

△ एतच्चिह्नेन सूचितशेपकाण्येकस्या स्थितौ येपा समयप्रबद्धानाम्, ते स्तोका, (गाथा १४३) असत्कल्पनया चित्रे ८ ।

★=एतच्चिह्नेन सूचितशेषकाणि द्वयोः स्थित्योर्येषां समयप्रबद्धानाम्, ते विशेषाधिकाः, असत्कल्पनया १२ ।

꙳=एतच्चिह्नसूचितशेषकाणि तिसृषु स्थितिषु येषां समयप्रबद्धानाम्, ते विशेषाधिका , असत्कल्पनया १६ ।

येषां समयप्रबद्धानां शेषकाणि चतसृषु स्थितिषु वर्तन्ते, ते विशेषाधिका , असत्कल्पनया २४ , चित्रे स्वल्पावकाशाभावाद् न दर्शिता , एवमग्रेऽपि ।

येषां समयप्रबद्धानां शेषकाणि पञ्चसु स्थितिषु वर्तन्ते, ते विशेषाधिका , असत्कल्पनया ३२ ।

येषां समयप्रबद्धानां शेषकाणि षट्सु स्थितिषु वर्तन्ते, ते विशेषहीना , असत्कल्पनया २४ ।

येषां समयप्रबद्धानां शेषकाणि सप्तसु स्थितिषु वर्तन्ते, ते विशेषहीना असत्कल्पनया १६ ।

येषां समयप्रबद्धानां शेषकाण्यष्टसु स्थितिषु वर्तन्ते, ते विशेषहीना , असत्कल्पनया १२ ।

येषां समयप्रबद्धानां शेषकाणि नवसु स्थितिषु वर्तन्ते, ते विशेषहीना , असत्कल्पनया ८ ।

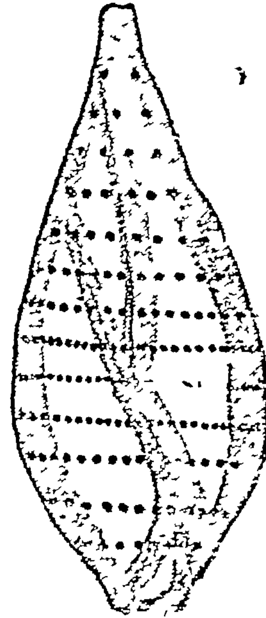
येषां समयप्रबद्धानां शेषकाणि दशसु स्थितिषु वर्तन्ते, ते विशेषहीना , असत्कल्पनया ६ ।

येषां समयप्रबद्धानां शेषकाण्येकादशसु स्थितिषु वर्तन्ते, ते विशेषहीना , असत्कल्पनया ४ ।

येषां समयप्रबद्धानां शेषकाणि द्वादशसु स्थितिषु वर्तन्ते, ते विशेषहीनाः, असत्कल्पनया ३ ।

येषां समयप्रबद्धानां शेषकाणि त्रयोदशसु स्थितिषु वर्तन्ते, ते विशेषहीना , असत्कल्पनया २ ।

ययोः	समयप्रबद्धयोः	शेषकाणि	त्रयोदशस्थितिषु,	तौ	२
येषां	समयप्रबद्धानां	,,	द्वादश ,,	ते	३
,,	,,	,,	एकादश ,,	,,	४
,,	,,	,,	दश ,,	,,	६
,,	,,	,,	नव ,,	,,	८
,,	,,	,,	अष्ट ,,	,,	१२
,,	,,	,,	सप्त ,,	,,	१६
,,	,,	,,	षट् ,,	,,	२४
,,	,,	,	पञ्च ,,	,,	३२
,,	,,	,,	चतु ,,	,,	२४
,	,,	,,	त्रि ,,	,,	१६
,,	,,	,,	द्वयोः स्थित्योः,	ते	१२
,,	,,	,,	एकस्थितौ,	ते	८



चरमस्थानम्
द्विगुणहीनाः
द्विगुणहीनाः
द्विगुणहीनाः
यवमध्यम्
द्विगुण०
प्रथमस्थानम्

इहाऽऽवलिकाऽसंख्येयभागः समयद्वयप्रमाणः कल्पितः, तेन प्रथमस्थानतः स्थानद्वये गते द्विगुणाः समयप्रबद्धाः षोडश (१६) भवन्ति । पुनः स्थानद्वये गते समयप्रबद्धा द्वात्रिंशत् (३२) भवन्ति । आवलिकाऽसंख्येयभागमात्रेषु द्विगुणवृद्धिस्थानेषु गतेष्वसत्कल्पनया द्वितीयद्विगुणवृद्धिस्थाने यवमध्यं लभ्यते । यवमध्यस्योपर्येकोत्तरवृद्धयाऽन्यस्थितिषु समयप्रबद्धा विशेषहीनक्रमेण तावद् गच्छन्ति, यावद् वर्षपृथक्त्वस्थानेऽसत्कल्पनयाऽष्टमस्थाने चरमस्थानं प्राप्यते । यवमध्यत उपर्यावलिकाऽसंख्येयभागप्रमाणस्थानेषु गतेष्वसत्कल्पनया स्थानद्वये गते द्विगुणहीनाः समयप्रबद्धाः षोडश (१६) भवन्ति, पुनरेतावत्सु स्थानेषु गतेषु समयप्रबद्धा द्विगुणहीना भवन्ति । एवं क्रमेण तावद्वाच्याः, यावच्चरमस्थानम् ।

⁂

समयपबद्धसेसयमत्थि, सा ट्ठिदी सामण्णा त्ति णादव्वा। जम्मि णत्थि, सा ट्ठिदी असामण्णा त्ति णादव्वा।" इति।

अथ जघन्यत उत्कृष्टतश्च निरन्तरं कियत्योऽसामान्यस्थितयो भवन्ति ? इति परप्रश्नमुत्तरयितुं भणति–'एगा' त्ति 'एका' जघन्यत एकाऽसामान्या स्थितिर्भवति; न च जघन्यतः सामान्या स्थितिरेका भवतीत्यर्थोऽत्र कुतो न गृह्यते ? इति वाच्यम्, प्रत्यासत्त्याऽसामान्यस्थितेरेव ग्रहणसंभवात्। 'दुगादिउत्तरा' इत्यादि, तत एकाधिकक्रमाद् 'निरन्तराः' सामान्यस्थितिभिरनन्तरिता उत्कृष्टतः क्षपकस्याऽऽवलिकाऽसंख्येयभागमिता असामान्यस्थितयो भवन्ति, न ततोऽधिकाः। अयम्भावः–द्वयोः पार्श्वयोरेकस्यामनेकासु वा सामान्यस्थितिषु सतीषु मध्ये जघन्यत एकाऽसामान्यस्थितिर्भवति, पुनर्द्वयोः पार्श्वयोरेकस्यामनेकासु वा सामान्यस्थितिषु सतीषु मध्ये द्वेऽसामान्यस्थिती निरन्तरं भवतः। पुनर्द्वयोः पार्श्वयोरेकस्यामनेकासु वा सामान्यस्थितिषु सतीषु मध्ये तिस्रोऽसामान्यस्थितयो निरन्तरं भवन्ति, एवमेकोत्तरवृद्ध्योत्कृष्टतो निरन्तरं क्षपकस्याऽऽवलिकाऽसंख्येयभागप्रमिता असामान्याः स्थितयो भवन्ति, न ततोऽधिकाः, आवलिकाऽसंख्येयभागे च गते नियमतः सामान्यस्थितीनां सद्भावात्। उक्तञ्च कषायप्राभृतचूर्णौ **"एवमसामण्णाओ ट्ठिदीओ एक्का वा दो वा उक्कस्सेण अणुबद्धाओ आवलियाए असंखेज्जदिभागमेत्तीओ।"** इति।

अत्र चोदक आह ननु **द्वाचत्वारिंशदुत्तरशततम**गाथायां जघन्यत एकस्थितौ समयप्रबद्धशेषकाणि भवप्रबद्धशेषकाणि च विद्यन्त इत्युक्तम्। ततः पारिशेष्यात् क्षपकस्य भवसमयप्रबद्धशेषकै रहिता भवसमयप्रबद्धानामनाधारभूता असामान्याः स्थितयो निरन्तरमुत्कृष्टतो वर्षपृथक्त्वमात्र्यः संभवन्ति, क्षपकस्य वर्षपृथक्त्वमात्रस्थितिकत्वात्, आवलिकाऽसंख्येयभागप्रमाणा एव उत्कृष्टतः कुतो निरूप्यते ? इति, अत्रोच्यते–नैष दोषः, **द्वाचत्वारिंशदधिकशततमगाथायां** ह्येकसमयप्रबद्धस्यैकभवप्रबद्धस्य च शेषकमाश्रित्य तथा प्ररूपितम्, अत्र तु नानासमयप्रबद्धानां नानाभवबद्धानां चापि शेषकाण्याश्रित्य निरन्तरमावलिकाऽसंख्येयभागमिता एव उत्कृष्टतोऽसामान्यस्थितयो भवन्तीति प्ररूप्यते। अयं भावः–जघन्यत एकसमयप्रबद्धस्यैकभवप्रबद्धस्य च शेषकाण्येकस्यां स्थितौ वर्तन्ते, शेषासु स्थितिषु निरुक्तसमयप्रबद्धस्य निरुक्तभवप्रबद्धस्य च शेषकाणि न विद्यन्त इत्युक्तं **द्वाचत्वारिंशदधिकशततमगाथायाम्**, न तत्र यथासंभवं नानाभवसमयप्रबद्धशेषकाणामनेकस्थितिष्ववस्थानस्य निषेधः प्रतिपादितः। असामान्यस्थितयस्त्वेकभवसमयप्रबद्धनानाभवसमयप्रबद्धानां शेषकाणामभाव एव व्यपदिश्यन्ते। इत्थं विवक्षितैकसमयप्रबद्धस्य शेषकाणां जघन्यत एकस्थितौ सद्भावेन शेषासु स्थितिषु तदभावेऽपि यथासंभवं विवक्षितभवसमयप्रबद्धतो भिन्नैकभवसमयप्रबद्धनानाभवसमयप्रबद्धानां शेषकाणामप्रतिषेधादुत्कृष्टतो वर्षपृथक्त्वमात्र्योऽसामान्यस्थितयो न लभ्यन्ते, किन्तूत्कृष्टतो निरन्तरमावलिकाऽसंख्येयभागप्रमाणा एव प्राप्यन्ते।

अक्षपकस्य तूत्कृष्टतो निरन्तरं पल्योपमाऽसंख्येयभागमिता असामान्याः स्थितयो वर्तन्ते, न त्वावलिकाऽसंख्येयभागप्रमाणाः । उक्तञ्च कषायप्राभृतचूर्णावक्षपकप्ररूपणाऽवसरे असामण्णाओ ट्ठिदीओ एक्का वा दो वा तिण्णि वा, एवमणुबद्धाओ उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो ।" इति । इदमुक्तं भवति–उभयोः पार्श्वयोरेकस्यामनेकासु वा सामान्यस्थितिषु सतीषु मध्ये जघन्यत एकाऽसामान्यस्थितिर्भवति, पुनर्द्वयोः पार्श्वयोरेकस्यामनेकासु वा सामान्यस्थितिषु सतीषु मध्ये द्वेऽसामान्यस्थिती भवतः । एवंक्रमेण द्वयोः पार्श्वयोरेकस्यामनेकासु वा सामान्यस्थितिषु सतीषु मध्यमुत्कृष्टतः पल्योपमाऽसंख्येयभागमिता असामान्यस्थितयो भवन्ति ॥१४४॥

अथ निरन्तराऽसामान्यस्थितीनामल्पबहुत्वं व्याजिहीर्षुराह

एक्केक्केणं थोवा ताओ कमेणं विसेसअहिआओ ।
आवलिअसंखभागे दुगुणा तह होइ जवमज्झं ॥१४५॥

एकैकेन स्तोकास्ताः क्रमेण विशेषाधिकाः ।
आवलिकाऽसङ्ख्यभागे द्विगुणास्तथा भवति यवमध्यम् ॥१४५॥ इति पदसंस्कारः ।

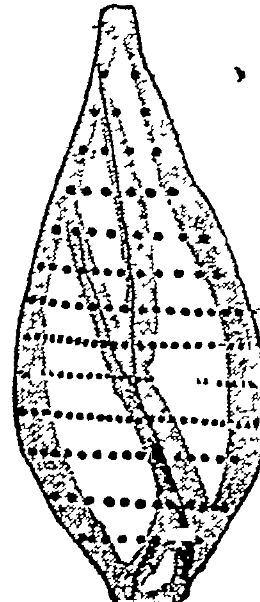
'एक्केक्केण' इत्यादि (१) 'एकैकेन' एकैकरूपेण स्तोकाः, काः ? इत्याह–'ताओ' त्ति ताः–असामान्यस्थितयः, तच्छब्देन प्रत्यासत्त्याऽसामान्यस्थितेः परामर्शात् 'कमेणं' इत्यादि, क्रमेण विशेषाधिका असामान्यस्थितयो भवन्ति, द्विकेन विशेषाधिका भवन्ति, त्रिकेण विशेषाधिका भवन्ति, एवमेकोत्तरवृद्ध्यापन्नाऽसामान्यस्थितयो विशेषाधिका विशेषाधिका भवन्तीत्यर्थः ।

'आवलि०'इत्यादि, 'आवलिका-ऽसंख्यभागे' आवलिकाऽसंख्येयभागे गतेऽसामान्यस्थितयो द्विगुणा भवन्ति । आवलिकाऽसंख्येयभागप्रमाणेषु च द्विगुणवृद्धिस्थानेषु गतेषु यवमध्यं प्राप्यते । तदेव प्राह–'तह' इत्यादि, तथा यवमध्यं भवति, आवलिकाऽसंख्येयभागमात्रेषु द्विगुणवृद्धिस्थानेषु गतेषु यवमध्यं प्राप्यत इत्यर्थः । उक्तञ्च कषायप्राभृतचूर्णौ "एक्केक्केण असामण्णाओ थोवाओ, दुगेण विसेसाहियाओ, तिगेण विसेसाहियाओ । आवलियाए असंखेज्जदिभागे दुगुणाओ । आवलियाए असंखेज्जदिभागे जवमज्झं ।" इति । भावार्थः पुनरयम्–क्षपकस्य स्थितिसत्कर्म वर्षपृथक्त्वप्रमितं भवति । तत्र द्वयोः पार्श्वयोरेका वाऽनेका वा सामान्यस्थितयो भवन्ति, मध्ये चैकाऽसामान्यस्थितिर्विद्यते, तस्या एका शलाका ग्रहीतव्या । पुनर्द्वयोः पार्श्वयोरेकस्यामनेकासु वा सामान्यस्थितिषु सतीषु मध्येऽन्यैकाऽसामान्यस्थितिर्वर्तते, तस्या द्वितीयैका शलाकाऽऽदातव्या । एवंक्रमेणैकैकाऽसामान्यस्थितेरेकैका शलाका ग्रहीतव्या । एवमुभयोः पार्श्वयोरेकाऽनेका वा सामान्यस्थितयो भवन्ति, मध्ये च निरन्तरं द्वेऽसामान्यस्थिती

भवतः, तयोरेका शलाका ग्रहीतव्या। ततः पुनर्द्वयोः पार्श्वयोरेकाऽनेका वा सामान्यस्थितयो भवन्ति, मध्ये च निरन्तरमन्ये द्वे-ऽसामान्यस्थिती भवतः, तयोर्द्वितीयैका शलाका ग्रहीतव्या। उक्तरीत्याऽसामान्यस्थितिद्विकानामेकैका शलाका ग्रहीतव्या । एवमेकोत्तरवृद्ध्याऽऽवलिकाऽसंख्येयभागमात्रीणामसामान्यस्थितीनामेकैका शलाका ग्रहीतव्या। तत्रैकैकरूपेण या असामान्यस्थितयो भवन्ति, तासां गृहीताः सर्वाः शलाकाः स्तोका भवन्ति, ताश्च शलाका आवलिकाऽसंख्येयभागप्रमाणा भवन्ति। ततो द्विकरूपेण या असामान्यस्थितयः, तासां गृहीताः सर्वाः शलाका विशेषाधिका भवन्ति, आधिक्यं चावलिकाऽसंख्येयभागेन प्रथमपदगतशलाकाः खण्डयित्वैकखण्डेन बोध्यम्, आवलिकाऽसंख्येयभागे गते द्विगुणवृद्धिकथनात्। ततस्त्रिकस्वरूपेण विद्यमानानामसामान्यस्थितीनां सर्वाः शलाका विशेषाधिका भवन्ति। ततश्चतुष्करूपेण विद्यमानानामसामान्यस्थितीनां सर्वाः शलाकाः विशेषाधिका भवन्ति। एवमेकोत्तरवृद्ध्यापन्ननिरन्तराऽसामान्यस्थितीनां शलाका विशेषाधिकक्रमेण तावद् गच्छन्ति, यावद् यवमध्यम्। प्रथमस्थानत आवलिकाऽसंख्येयभागमात्रेषु विशेषाधिकस्थानेषु गतेषु निरन्तरा-ऽसामान्यस्थितीनां गृहीताः सर्वाः शलाकाः प्रथमस्थानापेक्षया द्विगुणा भवन्ति, इदं चाऽऽद्यं द्विगुणवृद्धिस्थानम्। ततः पुनरावलिकाऽसंख्येयभागमात्रेषु स्थानेषु व्रजितेषु प्रथमद्विगुणवृद्धिस्थानतोऽसामान्यस्थितीनां शलाका द्विगुणा भवन्ति, प्रथमस्थानतश्च चतुर्गुणाः, इदं च द्वैतीयीकं द्विगुणवृद्धिस्थानम्। ततः पुनरावलिकाऽसंख्येयभागप्रमाणेषु स्थानेषु गतेषु द्वितीयद्विगुणवृद्धिस्थानतो निरन्तराऽसामान्यस्थितीनां शलाका द्विगुणा भवन्ति, इदं च तृतीयं द्विगुणवृद्धिस्थानम्। एवंक्रमेणाऽऽवलिकाऽसंख्येयभागमात्रेषु द्विगुणवृद्धिस्थानेषु गतेषु यवमध्यं प्राप्यते। यवमध्येऽपि निरन्तरावलिकाऽसंख्येयभागप्रमाणाऽसामान्यस्थितीनां सर्वाः शलाका आवलिकाऽसंख्येयभागप्रमाणा एव भवन्ति। ततो यवमध्यस्योपर्येकोत्तरक्रमेण वृद्धानां निरन्तरा-ऽसामान्यस्थितीनां शलाका विशेषहीनक्रमेण गच्छन्ति, आवलिकाऽसंख्येयभागमात्रेषु च स्थानेषु गतेषु शलाका द्विगुणहीना भवन्ति, इदं च प्रथमं द्विगुणहानिस्थानम्। ततः पुनरेतावत्सु स्थानेषु गतेषु निरन्तराऽसामान्यस्थितीनां शलाका द्विगुणहीना भवन्ति, इदं च द्वितीयं द्विगुणहानिस्थानम्। एवंक्रमेणाऽसंख्यातेषु द्विगुणहानिस्थानेषु गतेषु प्रथमस्थानगतनिरन्तराऽसामान्यस्थितीनां शलाकाभिः समानाः शलाकाः प्राप्यन्ते, ततोऽप्युपर्येकोत्तरक्रमेण वृद्धानां निरन्तराऽसामान्यस्थितीनां शलाका हीयमाना गच्छन्ति, यावच्चरमस्थानस्य शलाकाः प्राप्यन्ते। ताश्चाऽऽवलिकाऽसंख्येयभागप्रमाणा भवन्त्यः सर्वस्तोका भवन्ति। तथा सर्वाण्यपि स्थानान्यावलिकाऽसंख्येयभागमात्राणि भवन्ति। असत्कल्पनया निरन्तरैकैकाऽसामान्यस्थितीनां शलाकाः सर्वसंख्ययाऽष्टौ, ततो विशेषाधिका निरन्तराऽसामान्यस्थितिद्विकानां शलाका द्वादश, ततो विशेषाधिका निरन्तराऽसामान्यस्थितित्रिकाणां शलाकाः षोडश, ततो विशेषाधिका निरन्तराऽसामान्यस्थितिचतुष्काणां शलाका चतुर्विंशतिः, ततो विशेषाधिका

निरन्तराऽसामान्यस्थितिपञ्चकानां शलाका द्वात्रिंशत् । अत्र चाऽसत्कल्पनया यवमध्यम् । ततो विशेषहीना निरन्तराऽसामान्यस्थितिषट्कानां शलाकाश्चतुर्विंशतिः, ततो विशेषहीना निरन्तराऽसामान्यस्थितिसप्तकानां शलाकाः षोडश, ततो विशेषहीना निरन्तराऽसामान्यस्थित्यष्टकानां शलाका द्वादश, ततो विशेषहीना निरन्तराऽसामान्यस्थितिनवकानां शलाका अष्टौ, ततो विशेषहीना निरन्तराऽसामान्यस्थितिदशकानां शलाकाः षट् । ततो विशेषहीना निरन्तराऽसामान्यस्थित्येकादशकानां शलाकाश्चतस्रः । ततो विशेषहीना निरन्तरा-ऽसामान्यस्थितिद्वादशकानां शलाकास्तिस्रः, ततो विशेषहीना निरन्तराऽसामान्यस्थितित्रयोदशकानां शलाके द्वे । परमार्थतो द्विगुणवृद्धिस्थानान्तरमावलिकाऽसंख्येयभागमात्रम्, असत्कल्पनया पुनः स्थानद्वयमात्रं परिकल्पितम् । तेन प्रथमस्थानतः स्थानद्वये गते शलाका द्विगुणा षोडश भवन्ति, ततः पुनः स्थानद्वये गते द्विगुणा द्वात्रिंशद् । अत्र चाऽसत्कल्पनया यवमध्यम्, यतः परमार्थत आवलिकाऽसंख्येयभागमात्रेषु द्विगुण-वृद्धिस्थानेषु गतेषु सत्सु यवमध्यं प्राप्यते, असत्कल्पनया पुनर्द्विगुणवृद्धिस्थानद्वये गते यवमध्यं लभ्यते । यवमध्यस्योपरि स्थानद्वये गते शलाका द्विगुणहीनाः षोडश भवन्ति, ततः पुनः स्थानद्वये गते शलाका द्विगुणहीना अष्टौ भवन्ति, ततः पुनः स्थानद्वये गते शलाका द्विगुणहीनाश्चतस्रो भवन्ति । एवमग्रेऽपि । निरन्तरा-ऽसामान्यस्थितित्रयोदशकानां परमार्थतस्त्वावलिकाऽसंख्येयभाग-प्रमाणानामसामान्यस्थितीनां शलाकाश्चरमस्थानम् ।

यवमध्यस्य चित्रम्



अक्षपकस्याऽप्यसामान्यस्थितीनां प्ररूपणैवमेव कर्तव्या, नवरं पल्योपमाऽसंख्येयभागमात्रेषु स्थानेषु द्विगुणवृद्धिर्द्विगुणहानिर्वा भवति, न त्वावलिकाऽसंख्येयभागप्रमितेषु स्थानेषु गतेषु। एवं पल्योपमाऽसंख्येयभागमात्रेषु द्विगुणवृद्धिस्थानेषु गतेषु यवमध्यं प्राप्यते, तथा सर्वाणि स्थानानि पल्योपमाऽसंख्येयभागमितानि भवन्ति ।

(२) अथवा 'एक्केक्केण थोवा' इत्यादीनामक्षरैरेकैकेन सामान्यस्थितिस्थानकेनाऽन्तरितानामसामान्यस्थितीनां शलाकाः स्तोका भवन्तीत्याद्यर्थो व्याख्येयः । तथाहि—द्वयोः पार्श्वयोरेकैका सामान्यस्थितिर्विद्यते, मध्ये चैकाऽसामान्यस्थितितः प्रभृति यावत्योऽसामान्यस्थितयो भवन्ति, तासां सर्वासामेका शलाका ग्रहीतव्या। पुनरन्यत्र द्वयोः पार्श्वयोरेकैका सामान्यस्थितिर्भवति, मध्ये चैका वाऽनेका वा यावत्योऽसामान्यस्थितयो भवन्ति, तासां द्वितीयैका शलाका ग्रहीतव्या । एवमेकैकया सामान्यस्थित्याऽन्तरितानामसामान्यस्थितीनामेकैका शलाका ग्रहीतव्या। तत उभयोः पार्श्वयोर्द्वे द्वे सामान्यस्थिती भवतः, मध्ये च यावत्योऽसामान्यस्थितयो भवन्ति, तासामेका शलाका ग्राह्या। पुनरन्यत्रोभयतोऽन्ये द्वे द्वे सामान्यस्थिती भवतः, मध्ये च यावत्योऽसामान्यस्थितयो विद्यन्ते, तासां द्वितीयैका शलाका ग्रहीतव्या । एवं द्वाभ्यां द्वाभ्यां सामान्यस्थितिभ्यामन्तरितानामसामान्यस्थितीनामेकैका शलाका ग्रहीतव्या । इत्थमेकोत्तरक्रमेण वृद्धाभिः सामान्यस्थितिभिरन्तरितानामसामान्यस्थितीनामेकैका शलाका ग्रहीतव्या।

तत्रैकैकया सामान्यस्थित्याऽन्तरितानामसामान्यस्थितीनां संपिण्डिताःसर्वाः शलाकाः स्तोका भवन्ति, द्वाभ्यां द्वाभ्यां सामान्यस्थितिभ्यामन्तरितानामसामान्यस्थितीनां गृहीताः सर्वाः शलाका विशेषाधिका भवन्ति। आधिक्यं चाऽधस्तनशलाका आवलिकाऽसंख्येयभागेन खण्डयित्वैकखण्डेन ज्ञातव्यम्, आवलिकाऽसंख्येयभागे गते द्विगुणवृद्धेः। ततोऽपि तिसृभिस्तिसृभिः सामान्यस्थितिभिरन्तरितानामसामान्यस्थितीनां गृहीताः सर्वाः शलाका विशेषाऽधिका भवन्ति। एवमावलिकाऽसंख्येयभागप्रमाणेषु स्थानेषु गतेषु तत्रत्यस्थानेऽसामान्यस्थितीनां गृहीताः सर्वाः शलाकाः प्रथमस्थानतो द्विगुणा भवन्ति, इदं च प्रथमं द्विगुणवृद्धिस्थानम्। ततः पुनरावलिकाऽसंख्येयभागप्रमाणेषु स्थानेषु गतेषु तत्रत्यस्थानेऽसामान्यस्थितीनां शलाका द्विगुणा भवन्ति, इदं च द्वितीयं द्विगुणवृद्धिस्थानम्। एवंक्रमेणाऽऽवलिकाऽसंख्येयभागप्रमाणेषु द्विगुणवृद्धिस्थानेषु गतेषु यवमध्यं प्राप्यते। ततो यवमध्यस्योपरि विशेषहीनक्रमेण शलाका गच्छन्ति। यवमध्यतश्चावलिकाऽसंख्येयभागमात्रेषु स्थानेषु गतेषु शलाका द्विगुणहीना भवन्ति। इदं चाद्यं द्विगुणहानिस्थानम्। ततः पुनरावलिकाऽसंख्येयभागप्रमाणेषु स्थानेषु गतेषु तत्रत्यस्थानेऽसामान्यस्थितीनां शलाका द्विगुणहीना भवन्ति, इदं च द्वितीयं द्विगुणहानिस्थानम्। एवंक्रमेण यवमध्यस्याधस्तनद्विगुणवृद्धिस्थानतोऽसंख्येयगुणेषु द्विगुणहानिस्थानेषु गतेषु चरमस्थानं प्राप्यते।

अक्षपकस्याऽप्येकसामान्यस्थितितः प्रभृत्येकोत्तरक्रमेण वृद्धाभिः सामान्यस्थितिभिरन्तरितानामसामान्यस्थितीनां निरूपणं क्षपकवत् कर्तव्यम् , नवरं पल्योपमाऽसंख्येयभागे गतेऽसामान्यस्थितीनां शलाका द्विगुणवृद्धा द्विगुणहीना वा भवन्ति, पल्योपमाऽसंख्येयभागे च गते यवमध्यं प्राप्यत इति वक्तव्यम् ।

(२) यद्विदं व्याख्यानान्तरं कर्तव्यम् 'एक्केक्केण' इत्यादि, एकैकेन स्तोकाः । काः ? ताः= सामान्यस्थितयः, "विचित्रा सूत्राणां शैली" इति न्यायेन व्यवहितस्याऽपि चतुश्चत्वारिंशदधिकशततमगाथोक्तसामान्यस्थितिपदस्य तच्छब्देन परामर्शात् । इदमत्र हृदयम्—उभयोः पार्श्वयोरेका वाऽनेका वा—ऽसामान्यस्थितयो भवन्ति, मध्ये चैकसामान्यस्थितिर्विद्यते, तस्या एका शलाका ग्रहीतव्या । ततः पुनरुभयोः पार्श्वयोरेका वाऽनेका वा ऽसामान्यस्थितयो भवन्ति, मध्ये चाऽन्यैका सामान्यस्थितिर्भवति, तस्या द्वितीयैका शलाका ग्रहीतव्या । एवमसामान्यस्थितीनां मध्ये स्थिताया एकैकस्याः सामान्यस्थितेरेकैका शलाका ग्रहीतव्या । एवमेव द्वयोः पार्श्वयोरेका वाऽनेका वाऽसामान्यस्थितयो भवन्ति, मध्ये च निरन्तरे द्वे सामान्यस्थिती भवतः, तयोरेका शलाका ग्रहीतव्या । पुनरन्यत्र द्वयोः पार्श्वयोरेका वाऽनेका वाऽसामान्यस्थितयो भवन्ति, मध्ये च निरन्तरेऽन्ये द्वे सामान्यस्थिती भवतः, तयोरेका द्वितीया शलाका ग्रहीतव्या । एवं निरन्तरसामान्यस्थितिद्विकानामेकैका शलाका ग्राह्या । ततो निरन्तरसामान्यस्थितित्रिकाणामेकैका शलाका ग्राह्या । ततो निरन्तरसामान्यस्थितिचतुष्काणामेकैका शलाका ग्रहीतव्या । एवमेकोत्तरक्रमेण वृद्धानां निरन्तरसामान्यस्थितीनामेकैका शलाका ग्रहीतव्या ।

तत्रैकैकरूपेण विद्यमानानां सामान्यस्थितीनां गृहीताः सर्वाः शलाकाः स्तोकाः । 'कमेण' इत्यादि, द्विकरूपेण विद्यमानानां सामान्यस्थितीनां शलाका विशेषाधिका भवन्ति । आधिक्यं चाऽवभ्तनशलाका आवलिकाऽसंख्येयभागेन विभज्यैकखण्डेन ज्ञातव्यम् , आवलिकाऽसंख्येयभागे गते द्विगुणवृद्धेः । ततोऽपि त्रिकरूपेण स्थितानां सामान्यस्थितीनां गृहीताः सर्वाः शलाका विशेषाधिका भवन्ति । एवमेकोत्तरवृद्धिक्रमेण निरन्तरं स्थितानां सामान्यस्थितीनां शलाका विशेषाधिकक्रमेण गच्छन्ति । आवलिकाऽसंख्येयभागमात्रेषु च स्थानेषु गतेषु तत्रत्यस्थानस्य शलाकाः प्रथमस्थानतो द्विगुणवृद्धा भवन्ति, इदं चाद्यं द्विगुणवृद्धिस्थानम् । ततः पुनरेतावत्सु स्थानेषु गतेषु तत्रन्यस्थाने निरन्तरसामान्यस्थितीनां शलाका द्विगुणा भवति, इदं च द्वितीयं द्विगुणवृद्धिस्थानम् । एवंक्रमेणाऽऽवलिकाऽसंख्येयभागप्रमितेषु द्विगुणवृद्धिस्थानेषु गतेषु यवमध्यं प्राप्यते । अथ यवमध्यस्योपर्येकोत्तरक्रमेण वृद्धानां निरन्तरसामान्यस्थितीनां शलाका विशेषहीनक्रमेण गच्छन्ति । यवमध्यस्य चोपर्यावलिकाऽसंख्येयभागप्रमाणेषु स्थानेषु गतेषु तत्रत्यस्थाने निरन्तरसामान्यस्थितीनां शलाका द्विगुणहीनाः, अर्धा भवन्तीत्यर्थः । इदं च प्रथमं द्विगुणहानिस्था-

नम् । ततः पुनरेतावत्सु स्थानेषु गतेषु निरन्तरसामान्यस्थितीनां शलाका द्विगुणहीनाः, इदं च द्वितीयं द्विगुणहानिस्थानम् । एवंक्रमेणाऽसंख्यातेषु द्विगुणहानिस्थानेषु गतेषु चरमस्थानं प्राप्यते ।

अक्षपकस्याऽप्यसामान्यस्थितिभिरन्तरितानामेकादिनिरन्तरसामान्यस्थितीनां शलाकाः क्षपकवत् प्ररूपयितव्याः, नवरं पल्योपमाऽसंख्येयभागे गते शलाकानां द्विगुणवृद्धत्वं द्विगुणहीनत्वं च वाच्यम्, पल्योपमाऽसंख्येयभागे च व्रजिते यवमध्यं वक्तव्यम्, न त्वावलिकाऽसंख्येयभागे ।

(४) अथवा 'एक्केक्केणं थोवा' इत्याद्यक्षरैरेकैकेनाऽसामान्यस्थितिस्थानेनाऽन्तरितानां क्षपकस्य सामान्यस्थितीनां शलाकाः स्तोका भवन्तीत्याद्यर्थो व्याख्येयः । तथाहि–द्वयोः पार्श्वयोरेकैकाऽसामान्यस्थितिर्विद्यते, मध्ये चैकसामान्यस्थितितः प्रभृति यावत्यः सामान्यस्थितयो विद्यन्ते,तासामेका शलाका ग्रहीतव्या । ततः पुनर्द्वयोः पार्श्वयोरन्यैकैकाऽसामान्यस्थितिर्विद्यते, मध्ये च यावत्यः सामान्यस्थितयो वर्तन्ते, तासां द्वितीयैका शलाका ग्राह्या । एवमेकैकयाऽसामान्यस्थित्याऽन्तरितानां सामान्यस्थितीनामेकैका शलाका ग्राह्या । ततः पुनर्द्वयोः पार्श्वयोर्द्वे द्वेऽसामान्यस्थिती भवतः, मध्ये च यावत्यः सामान्यस्थितयस्तिष्ठन्ति, तासामेका शलाका ग्रहीतव्या । पुनर्द्वयोः पार्श्वयोरन्ये द्वेऽसामान्यस्थिती भवतः, मध्ये च यावत्यः सामान्यस्थितयो वर्तन्ते, तासां द्वितीयैका शलाका ग्रहीतव्या । एवं द्वाभ्यां द्वाभ्यामसामान्यस्थितिभ्यामन्तरितानां सामान्यस्थितीनामेकैका शलाका ग्रहीतव्या । एवमेकोत्तरक्रमेण वृद्धाभिरसामान्यस्थितिभिरन्तरितानां सामान्यस्थितीनामेकैका शलाका ग्रहीतव्या ।

तत्रैकैकयाऽसामान्यस्थित्याऽन्तरितानां सामान्यस्थितीनां गृहीताः सर्वाः शलाकाः स्तोका भवन्ति । ततो द्वाभ्यां द्वाभ्यामसामान्यस्थितिभ्यामन्तरितानां सामान्यस्थितीनां संगृहीताः सर्वाः शलाका विशेषाधिका भवन्ति । आधिक्यं चाधस्तनशलाका आवलिकाऽसंख्येयभागेन खण्डयित्वैकखण्डेन बोद्धव्यम् । ततस्तिसृभिस्तिसृभिः सामान्यस्थितिभिरन्तरितानां सामान्यस्थितीनां संगृहीताः सर्वाः शलाका विशेषाधिका भवन्ति । एवमावलिकाऽसंख्येयभागप्रमाणेषु स्थानेषु गतेषु तत्रत्यस्थानस्य गृहीताः सर्वाः शलाकाः प्रथमस्थानतो द्विगुणा भवन्ति,इदं चाद्यं द्विगुणवृद्धिस्थानम् । ततः पुनरावलिकाऽसंख्येयभागप्रमाणेषु स्थानेषु व्रजितेषु तत्रत्यस्थानस्य गृहीताः सर्वाः शलाका द्विगुणा भवन्ति, इदं च द्वितीयं द्विगुणवृद्धिस्थानम् । एवंक्रमेणा-ऽऽवलिकाऽसंख्येयभागप्रमाणेषु द्विगुणवृद्धिस्थानेषु गतेषु यवमध्यं प्राप्यते । ततो यवमध्यस्योपरि विशेषहीनक्रमेण शलाका गच्छन्ति । यवमध्यतश्चावलिकाऽसंख्येयभागे गते शलाका द्विगुणहीना भवन्ति । ततः पुनरावलिकाऽसंख्येयभागे गते शलाका द्विगुणहीना भवन्ति । एवंक्रमेण यवमध्यस्याऽधस्तनद्विगुणवृद्धिस्थानतोऽसंख्येयगुणेषु द्विगुणहानिस्थानेषु गतेषु चरमस्थानं प्राप्यते ।

अक्षपकस्याप्यसामान्यस्थितिभिरन्तरितानां सामान्यस्थितीनां प्ररूपणा क्षपकवद्विधेया, नवरं पल्योपमाऽसंख्येयभागे द्विगुणावृद्धा द्विगुणहीना वा सामान्यस्थितीनां शलाका भवन्ति। पल्योपमाऽसंख्येयभागे च गते यवमध्यं प्राप्यते, न त्वावलिकाऽसंख्येयभाग इति वक्तव्यम्। तथाहि—एकैकयाऽसामान्यस्थित्याऽन्तरितानां सामान्यस्थितीनां शलाकाः स्तोकाः, ततो द्वाभ्यां द्वाभ्यामसामान्यस्थितिभ्यामन्तरितानां सामान्यस्थितीनां शलाका विशेषाधिका भवन्ति। एवं पल्योपमाऽसंख्येयभागमात्रेषु स्थानेषु गतेषु प्रथमस्थानतः शलाका द्विगुणवृद्धा भवन्ति, एवंक्रमेण पल्योपमासंख्येयभागमात्रेषु द्विगुणवृद्धिस्थानेषु गतेषु द्वयोः पार्श्वयोः पल्योपमाऽसंख्येयभागप्रमिताभिरसामान्यस्थितिभिरन्तरितानां सामान्यस्थितीनां शलाका यवमध्यमुत्पादयति। ततो यवमध्यस्योपर्येकोत्तरवृद्ध्यापन्नाऽसामान्यस्थितिभिरन्तरितानां सामान्यस्थितीनां शलाका विशेषहीनक्रमेण गच्छन्ति। यवमध्यतश्च पल्योपमाऽसंख्येयभागे गते शलाका द्विगुणहीना भवन्ति। ततः पुनः पल्योपमाऽसंख्येयभागे गते शलाका द्विगुणहीना भवन्ति। एवंक्रमेण तावद्वक्तव्यम्, यावद्यवमध्यस्याऽधस्तनस्थानतोऽसंख्यातगुणेषु स्थानेषु गतेषु चरमस्थानं प्राप्यते। चरमस्थाने च पल्योपमाऽसंख्येयभागप्रमाणाऽसामान्यस्थितिभिरन्तरितानां सामान्यस्थितीनां शलाकाः सर्वस्तोका भवन्ति।

अत्राऽक्षपकस्य नानाद्विगुणवृद्धिहानिस्थानानि स्तोकानि भवन्ति। ततो द्वयोर्द्विगुणवृद्ध्योर्द्विगुणहान्योर्वाऽन्तरे यानि स्थानानि, तान्यसंख्येयगुणानि ज्ञातव्यानि। उक्तञ्च कषायप्राभृतचूर्णावक्षपकप्रस्तावे—"**सामण्णट्ठिदीओ एक्कंतरिदाओ थोवाओ, दुअंतरिदा विसेसाहिया। एवं गंतूण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागे [जवमज्झं]। णाणागुणहाणिसलागाणि थोवाणि, एक्कंतरमसंखेज्जगुणं।**" इति। इदमुक्तं भवति—प्रथमस्थानतः पल्योपमाऽसंख्येयभागमात्रेषु स्थानेषु गतेषु प्रथमं द्विगुणवृद्धिस्थानं प्राप्यते, तस्यैका शलाका ग्रहीतव्या, ततः पुनस्तावन्मात्रेषु स्थानेषु गतेषु द्वितीयं द्विगुणवृद्धिस्थानं लभ्यते। तस्यैका द्वितीया शलाका ग्रहीतव्या, एवमेकैकस्य द्विगुणवृद्धिस्थानस्यैकैका शलाका ग्राह्या। तथा यवमध्यस्योपरि पल्योपमाऽसंख्येयभागे गत एकैकं द्विगुणहानिस्थानं प्राप्यते। तस्यैकैका शलाका ग्रहीतव्या। तत्र द्विगुणवृद्धिहानिस्थानानां सम्पिण्डिताः सर्वाः शलाकाः स्तोका भवन्ति। ततो द्वयोर्द्विगुणवृद्ध्योर्द्विगुणहान्योर्वाऽन्तरे यानि स्थानानि, तान्यसंख्येयगुणानि भवन्ति, विवक्षितस्थानतो यावत्सु स्थानेषु गतेष्वेकं द्विगुणवृद्धिस्थानं द्विगुणहानिस्थानं वा प्राप्यते, तावन्ति द्वयोर्द्विगुणहान्योर्द्विगुणवृद्ध्योर्वाऽपान्तरालवर्तीन्येकान्तरसंज्ञकानि स्थानानि भवन्ति, तानि च पूर्वतोऽसंख्येयगुणानि भवन्तीत्यर्थः ॥१४५॥

अथ क्षपकतोऽक्षपकस्य योऽविशेषः, तं निर्मणिषुरन्यच्च प्रतिजिज्ञासुराह—

संपइ अभव्वपाउग्गे आवलियाअसंखभागट्ठाणे ।
पल्लासंखंसो त्ति विसेसो णेयो इआणि भणिमो अण्णं ॥१४६॥
(आर्यागीतिः)

सम्प्रत्यभव्यप्रायोग्य आवलिकाऽसंख्यभागस्थाने ।
पल्याऽसंख्यांश इति विशेषो ज्ञेय इदानीं भणामोऽन्यत् ॥१४६॥ इति पदसंस्कार ।

'संपइ' इत्यादि, सम्प्रति 'अभव्यप्रायोग्ये' अभव्यप्रायोग्यविषये, यत्र भव्यसिद्धिकानामभव्यसिद्धिकानां च स्थितिबन्धानुभागबन्धादिपरिणामाः सदृशा भवन्ति, सोऽभव्यप्रायोग्यविषयः, तत्र, आवलिकाऽसंख्यभागस्थाने 'पल्याऽसंख्यांशः' पल्योपमाऽसंख्येयतमभाग इति 'विशेषः' अनन्तरोक्तगाथाषट्के यथासम्भवं विशेषो 'ज्ञेयो' बोध्यः, शेषं तु क्षपकवदभव्यप्रायोग्येऽपि बोध्यम् । एतत्सर्वं यथास्थानं तत्रैवाऽऽभिमिर्भावितम्, अतो नेह पुनः प्रपञ्च्यते ।

न च क्षपकाधिकारेऽक्षपकाणां प्ररूपणाऽसङ्गतेति वाच्यम्, यतो भव्यजनानां शङ्काव्युदासाय ग्रन्थकृदन्यानपि पदार्थान् अधिकारान्तरेऽपि प्ररूपयति, अन्यथा लक्षणैकचक्षुषो विद्वज्जना अपि संशय्याना भवेयुः—क्षपकस्य समयप्रबद्धादिक्रमवलम्ब्य यावती प्ररूपणा कृता, अक्षपकस्य किं तावत्येव सम्भवति ? उताऽस्ति कश्चित् तत्र विशेषः ? इति ।

सम्प्रत्यभव्यप्रायोग्येऽन्यत् प्रतिपिपादयिषुः प्रतिजानीते 'इआणि' इत्यादि, इदानीम् 'अन्यत्' समयप्रबद्धादीनां सम्बन्ध्यन्यद् निर्लेपनस्थानादिकं 'भणाम' : प्रतिपादयिष्यामः ॥१४६॥

सम्प्रति प्रतिज्ञातं निर्वाहयन्नादौ तावत् समयप्रबद्धानां निर्लेपनस्थानान्यभिधित्सुराह

णिल्लेवणठाणाइं पल्लस्स असंखभागमेत्ताणि ।
अण्णे भणंति कम्मअवट्ठाणस्स उ असंखंसा ॥१४७॥

निर्लेपनस्थानानि पल्यस्याऽसंख्यभागमात्राणि ।
अन्ये भणन्ति कर्माऽवस्थानस्य त्वसंख्यांशान् ॥१४७॥ इति पदसंस्कार ।

'णिल्लेवणठाणाइं' इत्यादि, निर्लेपनस्थानानि 'पल्यस्य' पल्योपमस्याऽसंख्यभागमात्राणि । इदमुक्तं भवति—तत्र विवक्षितैकसमयेन विवक्षितैकभवेन च बद्धकर्मप्रदेशा बन्धाऽऽवलिकायां व्यतिक्रान्तायां सान्तरं निरन्तरं चाऽनुभूयमाना यस्मिन् समये सर्वे निःशेषतोऽनुभूयन्ते, स यथाक्रमं निरुक्तसमयप्रबद्धस्य निरुक्तभवप्रबद्धस्य च निर्लेपनस्थानमुच्यते, तदानीमेव निःशेषतो निर्लेपनात् । तत्राऽपि विवक्षितकर्माऽवस्थानकालस्य प्रथमसमये यो बद्धः कर्मप्रदेशसमूहः, स बन्धावलिकायां व्यतिक्रान्तायां सान्तरं निरन्तरं चोदयेनाऽनुभूयमानोऽपि बन्धसमयतः प्रभृति कर्माऽवस्थानकालस्य बहूनसंख्येयभागान् यावद् न निश्शेषत उदयेनाऽनुभूयते । कर्माऽवस्थानकालस्य तु पल्योपमाऽसंख्येयभागमात्रे काले शेषे सति यस्मिन् समय उदयेन सर्वथा निर्लेप्यते, स समयः प्रथमं

निर्लेपनस्थानम् । अथवा तस्मिन्ननिर्लेप्य तदुपरितनसमये निःशेषत उदयेन निर्लेप्यते, स द्वितीयं निर्लेपनस्थानम् । यद्वा तस्मिन्ननिर्लेप्य तदुपरितनसमये निःशेषत उदयेन निर्लेप्यते, स तृतीयं निर्लेपनस्थानम् । एवंक्रमेणैकोत्तरवृद्ध्या तावद्वक्तव्यम्, यावत् कर्माऽवस्थानकालस्य चरमसमयः । एवंक्रमेण सर्वसंख्यया निर्लेपनस्थानानि पल्योपमाऽसंख्येयभागप्रमाणानि भवन्त्य-प्यसंख्येयपल्योपमप्रथमवर्गमूलप्रमाणानि भवन्ति ।

यद्वा विवक्षितकर्माऽवस्थानकालस्य प्रथमसमयेऽनेकैर्जीवैर्यो बद्धः कर्मप्रदेशसमूहः, स बन्धा-वलिकाऽतिक्रमे सान्तरं निरन्तरं चोदयेनाऽनुभूयमानोऽपि बन्धसमयतः प्रभृति कर्मावस्थानकालस्य बहूनसंख्येयभागान् यावन्न निःशेषत उदयेनाऽनुभूयते, कर्माऽवस्थानकालस्य तु जघन्यतः पल्यो-पमाऽसंख्येयभागमात्रे काले शेषे सति यस्मिन् समये केनचिज्जीवेन निरुक्तसमयप्रबद्ध उदयेन निःशेषं निर्लेप्यते, स समयः प्रथमं निर्लेपनस्थानम् । द्वितीयस्मिन् समय इतरेण जीवेन निरुक्त-समयप्रबद्धो निर्लेप्यते, स द्वितीयं निर्लेपनस्थानम् , तृतीयसमयेऽपरेण जीवेन निरुक्तसमय-प्रबद्धो निर्लेप्यते, स तृतीयं निर्लेपनस्थानम् । एवंक्रमेण तावद् वाच्यम् , यावत् कर्माऽवस्था-नकालस्य चरमसमयः । इत्थमपि निर्लेपनस्थानानि पल्योपमाऽसंख्येयभागप्रमितानि भवन्ति, विशेषपरिमाणतः पुनरसंख्येयपल्योपमप्रथमवर्गमूलप्रमाणानि भवन्ति ।

'अण्णे' त्ति 'अन्ये' अपर आचार्यपादाः 'भणन्ति' प्रतिपादयन्ति । किम् ? इत्यत आह–'का॰॰०' इत्यादि, कर्माऽवस्थानकालस्य तु 'असंख्यांशान्' बहुसंख्यभागमात्राणि निर्लेपनस्थानानि । इदमुक्तं भवति–विवक्षितकर्माऽवस्थानकालस्य प्रथमसमये यो बद्धः कर्मप्रदेशसमुदायः, स बन्धावलिकायां व्यतिक्रान्तायां यथासंभवमनुभूयमानोऽपि बन्धसमयतः प्रभृति पल्योपमाऽसंख्येयभागं यावद् न निःशेषतो निर्लेप्यते, बन्धसमयतस्तु पल्योपमा-ऽ-संख्येयभागे गते यस्मिन् समये निःशेषत उदयेन निर्लेप्यते, स समयः प्रथमं निर्लेप-नस्थानम् । अथवा तदुपरितनसमययुदयेन सर्वथा निर्लेप्यते, स द्वितीयं निर्लेपनस्थानम् , यद्वा तदुपरितनसमय उदयेन सर्वथा निर्लेप्यते, स तृतीयं निर्लेपनस्थानम् । एवमेकसमयोत्तरवृद्धया तावद् वक्तव्यम् , यावत् कर्माऽवस्थानकालस्य चरमसमयः ।

यद्वा कर्माऽवस्थानकालस्य प्रथमसमयेऽनेकैर्जीवैर्यो बद्धः कर्मप्रदेशसमूहः, स बन्धाव-लिकायामपगतायां यथासंभवमनुभूयमानोऽपि बन्धसमयात् प्रभृति पल्योपमाऽसंख्येयभागं यावद् न निश्शेषतो निर्लेप्यते, तत एकेन जीवेन बन्धसमयतः पल्योपमाऽसंख्येयभागे व्यतीते यस्मिन् समये निरुक्तसमयप्रबद्धो निर्लेप्यते, स समयः प्रथमं निर्लेपनस्थानम् । द्वितीयसमयेऽन्येन जीवेन निरुक्तसमयप्रबद्धो निर्लेप्यते, स द्वितीयं निर्लेपनस्थानम् । तृतीयसमयेऽपरेण निर्लेप्यते, स तृतीयं निर्लेपनस्थानम् । एवमेकसमयोत्तरवृद्धया तावद् वाच्यम् ,

यावत् कर्माऽवस्थानकालचरमसमयः । तेन कर्माऽवस्थानकालस्य बहुसंख्येयभागप्रमाणानि समयप्रबद्धस्य निर्लेपनस्थानानि । उक्तं च कषायप्राभृतचूर्णौ "तत्थ पुव्वं गमणिज्जा णिल्लेवणट्ठाणाणमुवदेसपरूवणा । एत्थ दुविहो उवदेसो । एक्केण उवदेसेण कम्मट्ठिदीए असंखेज्जा भागा णिल्लेवणट्ठाणाणि । एक्केण उवएसेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो । जो पवाइज्जइ उवएसो, तेण उवदेसेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो, असंखेज्जाणि वग्गमूलाणि णिल्लेवणट्ठाणाणि ।" इति ।

असत्कल्पनया कर्मावस्थानकालः सहस्रसमयमात्रः (१०००) कल्प्यते । पल्योपमाऽसंख्येयभागश्च पञ्चाशत्समयप्रमाणः (५०) परिकल्प्यते ।

प्रथममतेन कश्चिज्जीवः कर्मावस्थानकालप्रथमसमये प्रदेशाग्रं बद्ध्वैकपञ्चाशदधिकनवशततमसमये (९५१) सर्वथा निर्लेपयति, तेन स समयो जघन्यनिर्लेपनस्थानम् । यद्वा द्विपञ्चाशदधिकनवशततमसमये (९५२) सर्वात्मना निर्लेपयति, तेन स द्वितीयनिर्लेपनस्थानम् । यद्वा त्रिपञ्चाशदधिकनवशततमसमये (९५३) सर्वथा निर्लेपयति, तेन स तृतीयनिर्लेपनस्थानम् । एवंक्रमेण पञ्चाशद् (५०) निर्लेपनस्थानानि लभ्यन्ते । परमार्थतस्तु तानि पल्योपमाऽसंख्येयभागमात्राणि भवन्त्यप्यसंख्येयपल्योपमप्रथमवर्गमूलप्रमाणानि भवन्ति ।

वक्ष्यमाणमबद्धस्य जघन्यनिर्लेपनस्थानं तु पञ्चपञ्चाशदधिकनवशततमे (९५५) समये प्राप्यते, समयप्रबद्धस्य जघन्यनिर्लेपनस्थानादूर्ध्वमन्तर्मुहूर्तप्रमाणस्थानेषु गतेषु तस्य लभ्यमानत्वादन्तर्मुहूर्तकालस्य च चतुस्समयप्रमाणत्वकल्पनात् ।

द्वितीयमतेन तु कर्मावस्थानकालप्रथमसमयबद्धप्रदेशाग्रमेकपञ्चाशत्तमे (५१) समये सर्वथा निर्लेप्यते, तेन स समयो जघन्यनिर्लेपनस्थानम्, यद्वा द्विपञ्चाशे (५२) समये सर्वात्मना निर्लेप्यते, तेन स द्वितीयं निर्लेपनस्थानम् । एवंक्रमेण पञ्चाशदुत्तरनवशतानि (९५०) निर्लेपनस्थानानि लभ्यन्ते, परमार्थतस्तानि कर्मावस्थानकालबहुसंख्येयभागप्रमाणानि भवन्ति ॥१४७॥

तदेवं भणितानि निर्लेपनस्थानानि, अथैकजीवमाश्रित्याऽतीतकाले जघन्यनिर्लेपनस्थानप्रभृत्युत्कृष्टनिर्लेपनस्थानपर्यवसानेषु निर्लेपनस्थानेषु निर्लेपितानां समयप्रबद्धानां निर्लेपनकालमनन्तरोपनिधया परम्परोपनिधया चाऽभिधातुकाम आह

जीवस्स जहण्णगणिल्लेवणठाणे अईअकालम्मि ।
णिल्लेवियाण समयपबद्धाणाऽप्पो गओ कालो ॥१४८॥
तत्तो वीये अहिओ तत्तो तइये विसेसऽहिओ ।
पलिओवमस्स य असंखेज्जंसे होअए दुगुणो ॥१४९॥ (उपगीतिः)

ठाणअसंखंसे जवमज्झं पल्लस्स छेदणअसंखंसो ।
णाणागुणहाणी तो असंखगुणमंतरं दुगुणहाणीणं ॥१५०॥(आर्यागीतिः)

जीवस्य जघन्यनिर्लेपनस्थानेऽतीतकाले ।
निर्लेपितानां समयप्रबद्धानामल्पो गत काल ॥१४८॥
ततो द्वितीयेऽधिकस्ततस्तृतीये विशेषाधिक ।
पल्योपमस्य चाऽसख्येयांशे भवति द्विगुण ॥१४९॥
स्थानाऽसख्यांशे यवमध्यं पल्यस्य च्छेदनाऽसख्यांश ।
नानागुणहानयस्ततोऽसंख्यगुणमन्तरं द्विगुणहान्यो ॥१५१॥ इति पदसंस्कार ।

'जीवस्स' इत्यादि, तत्र 'अईअकालम्मि' त्ति अतीतकाले 'जीवस्य' एकवचननिर्देशाद् एकजीवस्य जघन्यनिर्लेपनस्थाने निर्लेपितानां समयप्रबद्धानां 'अल्पः' स्तोकः कालो 'गतो' व्यतिक्रान्तः । भावार्थः पुनरयम् असंख्येयपल्योपमप्रथमवर्गमूलप्रमाणानि निर्लेपनस्थानानि पूर्वमुक्तानि । तत्र यत् प्रथमं निर्लेपनस्थानम्, तत्र पुनः पुनः स्थित्वा समयप्रबद्धान् निर्लेपयत एकजन्तोरतीतकालाभ्यन्तरे योऽनन्तसमयप्रमाणः कालो व्यतिक्रान्तः, स सम्पिण्डितः स्तोको भवति ।

'तत्तो' इत्यादि, ततो द्वितीये निर्लेपनस्थाने 'अधिको' विशेषाधिकः कालो व्यतिक्रान्तः, जघन्यनिर्लेपनस्थानतो द्वितीयस्मिन् निर्लेपनस्थाने पुनः पुनः स्थित्वा समयप्रबद्धान् निर्लेपयत एकजन्तोरतीतकालाभ्यन्तरे व्यतिक्रान्तः कालो विशेषाधिको भवतीत्यर्थः । आधिक्यं च पूर्वोक्तनिर्लेपनकालं पल्योपमाऽसंख्येयभागेन भक्त्वैकभागेन ज्ञातव्यम्, पल्योपमाऽसंख्येयभागे गते द्विगुणवृद्धिस्थानस्य वक्ष्यमाणत्वात् । 'ततः' अतीतकालयेकजीवस्य द्वितीयनिर्लेपनस्थाने निर्लेपितसमयप्रबद्धानां व्यतिक्रान्तकालतस्तृतीयस्मिन् निर्लेपनस्थाने निर्लेपितसमयप्रबद्धानां व्यतिक्रान्तकालो विशेषाधिको भवति । उक्तं च कषायप्राभृतचूर्णौ–"अदीदे काले एगजीवस्स जहण्णए णिल्लेवणट्ठाणे णिल्लेविदपुव्वाणं समयपबद्धाणमेसो कालो थोवो, समयुत्तरे विसेसाहिओ ।" इति ।

एवमनन्तरोपनिधया विशेषाधिकक्रमेण तावद् वक्तव्यम्, यावद् यवमध्यमप्राप्तं भवति, यवमध्यस्योपरि विशेषहीनक्रमेण तावद् वक्तव्यम्, यावदुत्कृष्टनिर्लेपनस्थानम् ।

अथ परम्परोपनिधया भणति–'पलिओव०' इत्यादि, 'पल्योपमस्य चाऽसंख्यांशे' असंख्येयपल्योपमप्रथमवर्गमूलमात्रेषु च स्थानेषु गतेषु प्रस्तुतकालो द्विगुणो भवति, । उक्तं च कषायप्राभृतचूर्णौ–"पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागमेत्ते दुगुणो ।" इति । इदमत्र हृदयम्–जघन्यनिर्लेपनस्थानात् पल्योपमासंख्येयभागमात्रेषु निर्लेपनस्थानेषु गतेषु तत्रत्यनिर्लेपनस्थानेऽतीतकालयेकजीवस्य निर्लेपितसमयप्रबद्धानां व्यतिक्रान्तकालो जघन्यनिर्लेपनस्थानव्यतिक्रान्त

कालतो द्विगुणो भवति । ततः पुनः पल्योपमाऽसंख्येयभागमात्रनिर्लेपनस्थानेषु गतेषु तत्रत्य-निर्लेपनस्थाने व्यतिक्रान्तः कालो द्विगुणो भवति । एवंक्रमेण द्विगुणवृद्धिस्थानानि तावद्वक्तव्यानि, यावद् यवमध्यम् । ततः पल्योपमाऽसंख्येयभागप्रमाणनिर्लेपनस्थानातिक्रमे प्राप्यमाणनिर्लेपन-स्थाने व्यतिक्रान्तिकालो द्विगुणहीनो भवति । ततः पुनरेतावत्स्थानातिक्रमे निर्लेपनस्थाने व्यति-क्रान्तकालो द्विगुणहीनो भवति । एवं द्विगुणहानिस्थानानि तावद् वाच्यानि, यावत् सर्वोत्कृष्टं निर्लेपनस्थानम् ।

'ठाणअसंखंसे' इत्यादि, 'स्थानाऽसंख्यांशे' निर्लेपनस्थानानामसंख्येयतमे भागे यव-मध्यं भवति । यदस्यथापि कषायप्राभृतचूर्णौ–"ठाणाणमसंखेज्जदिभागे जवमज्झं ।" इति । इदमुक्तं भवति–निर्लेपनस्थानानामेकसंख्येयतमभागेऽसंख्यातद्विगुणवृद्धिस्थानेषु व्रजितेषु सत्सु यवमध्यं प्राप्यते, तस्योपर्यसंख्येयतमेषु बहुषु भागेषु निर्लेपनकालो हीयमानो गच्छति । तेन वृद्धिस्थानतो हानिस्थानान्यसंख्येयगुणानि भवन्ति ।

अथ नानाद्विगुणहानिस्थानानि कियन्ति भवन्ति? इत्यत आह–'पल्लस्स' इत्यादि, 'पल्यस्य' पल्योपमस्य 'छेदनाऽसंख्यांशः' अर्धच्छेदनकानामसंख्येयभागमात्राणि 'नानागुणहानयो' नानाद्विगुणहानिस्थानानि भवन्ति । भावार्थः पुनरयम् पल्योपमगतसमया द्विकेन पुनः पुनस्तावच्छिद्यन्ते, यावदेकसमयः, तत्र यतिकृत्वो विभज्यन्ते, तत्संख्याप्रमाणानि पल्योपमस्या-र्धच्छेदनकानि भवन्ति, यथा षट्पञ्चाशदुत्तरद्विशतयोरर्धच्छेदनकान्यष्टौ । पल्योपमस्यार्धच्छेदन-कानां चाऽसंख्येयभागे यावन्त्यर्धच्छेदनकानि प्राप्यन्ते, तावन्ति नानाद्विगुणहानिस्थानानि भवन्ति । तथाहि यवमध्यस्योपरि पल्योपमाऽसंख्येयभागे गत एकं द्विगुणहानिस्थानं प्राप्यते, पुनस्तावत्सु स्थानेषु गतेष्वन्यदेकं द्विगुणहानिस्थानं प्राप्यते, एवंक्रमेण यवमध्य-स्योपरितनानि द्विगुणहानिस्थानानि तावद् वक्तव्यानि, यावच्चरमस्थानम् । तथा यवमध्यस्याऽधः पल्योपमाऽसंख्येयभागे गत एकं द्विगुणहानिस्थानं प्राप्यते, पुनः पल्योपमाऽसंख्येयभागे गतेऽन्य-देकं द्विगुणहानिस्थानं लभ्यते, एवंक्रमेण तावद्वक्तव्यम्, यावत् प्रथमस्थानम् । पूर्वं तूर्ध्वारोहणेन प्रतिपादितम्, तेन यवमध्यस्याऽधस्तनानि स्थानानि द्विगुणवृद्धिस्थानानि प्रोक्तानि, सम्प्रति त्ववस्तनस्थानान्यधोऽवतरणेन प्रतिपाद्यन्ते, तेन द्विगुणहानिस्थानान्यभिधीयन्ते । एतानि सर्वाणि यवमध्यस्योपरितनान्यधस्तनानि च द्विगुणहानिस्थानानि नानाद्विगुणहानिस्थानानि व्यप-दिश्यन्ते । तानि पुनः सर्वेषु निर्लेपनस्थानेषु द्विगुणहान्येकाऽन्तरस्थानैर्विभक्तेष्वेकखण्डप्रमाणानि भवन्ति, परिमाणतः पुनः पल्योपमार्धच्छेदनकाऽसंख्येयभागमात्राणि । विवक्षितस्थानतो यावत्सु स्थानेषु गतेषु निर्लेपितसमयप्रबद्धानां कालोऽर्धो भवति, तावन्ति स्थानानि द्विगुणहान्यन्तरमुच्यन्ते । अथाऽल्पबहुत्वमभिधत्ते–'तो' इत्यादि, 'ततः' नानाद्विगुणहानिस्थानेभ्यो 'असंख्यगुणम्' असंख्येय-गुणं द्विगुणहान्योरन्तरम्, द्वयोर्द्विगुणहान्योरेकाऽपान्तराले यानि स्थानानि, तानि नानाद्विगुणहानि-

स्थानतोऽसंख्येयगुणानि भवन्तीत्यर्थः । न्यगादि च कषायप्राभृतचूर्णौ—"णाणागुणहाणि-ट्ठाणंतराणि थोवाणि, एयगुणहाणिट्ठाणंतरमसंखेज्जगुणं ।" इति ॥१४८-१४९-१५०॥

तदेवं निरूपित एकजीवमाश्रित्याऽतीतकाले जघन्यादिनिर्लेपनस्थानेषु निर्लेपितसमयप्रबद्धानां निर्लेपनकालः, सम्प्रति तमतिदिदिक्षुराह

एवं भववद्धाण परं लहु णिल्लेवणट्ठाणं ।
गंतु असंखठाणाणुप्पिं एगत्थ दोण्ह जवमज्झं ॥१५१॥

एवं भवबद्धानां परं लघु निर्लेपनस्थानम् ।
गत्वाऽसंख्यस्थानानामुपर्येकत्र द्वयोर्यवमध्यम् ॥१५१॥ इति पदसंस्कारः ।

'एवं' इत्यादि, 'एवम्' एवंशब्दः सादृश्यार्थकः, यथाऽतीतकालेऽयेकजीवस्य जघन्यादिनिर्लेपनस्थानेषु निर्लेपितानां समयप्रबद्धानां व्यतिक्रान्तः कालो निरूपितः, तथैव भवबद्धानां निरूपणीय इति गम्यते । सामान्येनातिदिश्य विशेषं दर्शयति—'परं' इत्यादि, 'परं' नवरं 'लघु' प्रस्तुतत्वाद् भवबद्धानां जघन्यं निर्लेपनस्थानम् 'असंख्यस्थानानामुपरि गत्वा' समयप्रबद्धानां जघन्यनिर्लेपनस्थानतः परमसंख्येयस्थानानि गत्वा लभ्यत इति शेषः । उक्तं च कषायप्राभृतचूर्णौ "भवबद्धाणं णिल्लेवणट्ठाणं जहण्णगं समयपबद्धस्स णिल्लेवणट्ठाणाणं जहण्णादो असंखेज्जाओ ट्ठिदीओ अब्भुस्सरियूण ।" इति ।

तथाहि—एकस्मिन् भवे सञ्चितानां समयप्रबद्धानां समूहो भवबद्ध उच्यते । स च बन्धावलिकायां व्यतिक्रान्तायां सान्तरं निरन्तरं चानुभूयमानः कर्माऽवस्थानकालस्य बहुष्वसंख्येयतमभागेषु गतेषु यस्मिन् समये सर्वथा निर्लेप्यते, स समयो भवबद्धस्य जघन्यं निर्लेपनस्थानम्, अन्येन जीवेन तदुपरितनसमये निःशेषतोऽनुभूयते, स द्वितीयं निर्लेपनस्थानम् । एवंक्रमेण तावद्वक्तव्यम्, यावत्कर्माऽवस्थानकालस्य चरमसमयः । एतानि सर्वाणि निर्लेपनस्थानान्यसंख्येयपल्योपमप्रथमवर्गमूलमात्राणि भवन्ति । तत्र भवबद्धानां जघन्यनिर्लेपनस्थानं समयप्रबद्धानां जघन्यनिर्लेपनस्थानतोऽसंख्येयानां निर्लेपनस्थानानामुपरि प्राप्यते । कथमेतदवसीयते ? इति चेत्, शृणुत—तिरश्चि मनुष्ये वोत्पद्य जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्तप्रमाण आयुषि कर्मप्रदेशांस्तावत् बध्नाति, यावद् आयुर्न समाप्तिमेति । तस्मिन्नन्तर्मुहूर्तप्रमाणे मनुष्यस्य तिरश्चो वा भवे सञ्चिताः समयप्रबद्धा अन्तर्मुहूर्तसमयमात्रा भवन्ति । एतावत्समयप्रबद्धानां समूह एकभवबद्ध उच्यते । तस्य भवस्य प्रथमसमयेन बद्धकर्मप्रदेशा बन्धावलिकायां व्यतिक्रान्तायां सान्तरं निरन्तरं चाऽनुभूयमानाः कर्माऽवस्थानकालस्याऽसंख्येयतमेषु बहुषु भागेषु गतेषु यस्मिन् समये निःशेषतो निर्लेप्यन्ते, स समयः समयप्रबद्धस्य जघन्यं निर्लेपनस्थानं भवति । तदानीं च प्रथमसमयोननिरुक्तभवबद्धान निःशेषतो निर्लेपिताः । ततः क्रमेण समयोनाऽन्तर्मुहूर्तप्रमाणाः समयप्रबद्धा यस्मिन् समये निःशेषतो

निर्जरिष्यन्ति, स समयो निरुक्तभवबद्धस्य जघन्यं निर्लेपनस्थानमिति कृत्वोभयो-र्जघन्यं निर्लेपनस्थानमेकत्र न प्राप्यते, किन्तु समयप्रबद्धजघन्यनिर्लेपनस्थानस्योपर्यन्तर्मुहूर्त-समयप्रमाणेषु निर्लेपनस्थानेषु गतेषु भवबद्धस्य जघन्यं निर्लेपनस्थानं प्राप्यते। न च यस्मिन् समये भवप्रथमसमयप्रबद्धो निर्लेप्यते, तस्मिन्नेव समये शेषाः समयप्रबद्धाः कुतो युगपन्न निर्लेप्यन्ते, भवबद्धसमयप्रबद्धयोरेकत्र जघन्यनिर्लेपनस्थानलाभसंभवात् ? इति वाच्यम्, प्रथम-समयप्रबद्धस्य जघन्यनिर्लेपनस्थानतः प्रभृति समयोत्तरक्रमेण निर्लेप्यमानानां समयप्रबद्धानां स्वस्वजघन्यनिर्लेपनस्थानतोऽर्वाग् निर्लेपनप्रसङ्गादन्तर्मुहूर्तप्रमाणभवद्वितीयादिसमयसंगृहीतसमयप्रब-द्धानां च जघन्यकर्माऽवस्थानकालतः कर्माऽवस्थानकालस्य न्यूनत्वप्रसङ्गात् ।

इह समयप्रबद्धवदतीतकाल एकजीवस्य जघन्यनिर्लेपनस्थानादिषु निर्लेपितभवबद्धानां निर्लेपनकालोऽनन्तरोपनिधया परम्परोपनिधया च भावनीयः, तत्रोभयोर्भवबद्धसमयप्रबद्धयोर्य-वमध्यमेकत्र भवति, न तु जघन्यनिर्लेपनस्थानस्य भेदाद् यवमध्यमन्यत्र भवतीत्यर्थः। उक्तं च कषायप्राभृतचूर्णौ "जम्हि चेव समयपबद्धणिल्लेवणट्ठाणाणं जवमज्झं, तम्हि चेव भवबद्धणिल्लेवणट्ठाणाणं जवमज्झं।" इति। तदेव प्राह 'एगत्थ' इत्यादि, तत्र 'द्वयोः' भवबद्ध-समयप्रबद्धयोरेकत्र यवमध्यं भवति।

भावार्थः पुनरयम् भवबद्धानां यज्जघन्यं निर्लेपनस्थानं भवति, तत्र पुनः पुनः स्थित्वा भवबद्धान् निर्लेपयत एकजन्तोरतीतकालाभ्यन्तरे योऽनन्तसमयप्रमाणः कालो व्यतिक्रान्तः, स समुदितः स्तोकः, ततो भवबद्धस्य द्वितीये निर्लेपनस्थाने भवबद्धान् निर्लेपयतो जन्तोरतीतकाले व्यतिक्रान्तः कालो विशेषाधिकः। एवमनन्तरानन्तरेण विशेषाधिकस्तावद् वक्तव्यः, यावद् यव-मध्यम्। यवमध्यस्योपरि विशेषहीनक्रमेण तावद् वक्तव्यम्, यावच्चरमनिर्लेपनस्थानम्। जघन्य-निर्लेपनस्थानतः पल्योपमाऽसंख्येयभागे गते व्यतिक्रान्तः कालो द्विगुणो भवति, ततः पुनः पल्योपमासंख्येयभागे गते व्यतिक्रान्तः कालो द्विगुणो भवति। एवंक्रमेण द्विगुणवृद्धिस्थानानि तावद्वक्तव्यानि, यावद् यवमध्यम्। यवमध्यस्योपरि निरुक्तक्रमेण द्विगुणहानिस्थानानि तावद्वक्त-व्यानि, यावच्चरमनिर्लेपनस्थानम्। यत्र च समयप्रबद्धानां यवमध्यं प्राप्यते १५, तत्रैव भवबद्धानां यवमध्यं प्राप्यते। न च समयप्रबद्धानां जघन्यनिर्लेपनस्थानतोऽन्तर्मुहूर्तप्रमाणानि निर्लेपनस्था-नान्युल्लङ्घ्य भवबद्धानां जघन्यनिर्लेपनस्थानस्य लाभादुभयोर्यवमध्यमेकत्र कथं प्राप्यते, युक्ति-विरोधाद् ? इति वाच्यम्, पूर्वमहर्षिभिस्तथैवोक्तत्वादतीन्द्रियपदार्थेषु च केवलयुक्तेरप्राधान्यात्।

तदेवं समयप्रबद्धानां जघन्यनिर्लेपनस्थानं पूर्वं प्राप्यते, ततोऽन्तर्मुहूर्तप्रमितानि निर्लेपनस्थानानि गत्वा भवबद्धस्य जघन्यनिर्लेपनस्थानं प्राप्यते, समयप्रबद्धप्ररूपणाऽव-सरे प्रोक्तयवमध्यं त्वेकत्र प्राप्यते। तेन भवबद्धयवमध्यस्याधस्तननिर्लेपनस्थानतः समयप्रबद्ध-

यवमध्यस्याऽधस्तननिर्लेपनस्थानान्यन्तर्मुहूर्तप्रमाणैर्निर्लेपनस्थानैरधिकानि भवन्ति । यवमध्यस्याधस्तननिर्लेपनस्थानतोऽसंख्येयगुणानि यवमध्यस्योपरि निर्लेपनस्थानानि गत्वा समयप्रबद्धानां भवबद्धानां चैकत्र चरमनिर्लेपनस्थानं प्राप्यत इति फलितार्थः ॥१५१॥

अथाऽतीतकालाभ्यन्तरयेकादिप्रदेशाग्रेण ये समयप्रबद्धा निर्लेपिताः, तान् विस्तरत आविश्चिकीर्षुराह

एगपएसेण अईएऽप्पा णिल्लेविया तु समयपबद्धा ।
कमसो अहिया ठाणअसंखंसे च दुगुणा तहा जवमज्झं १५२(आर्यागीतिः)
णाणंतराणि पल्लस्स छेदणअसंखभागमेत्ताणि ।
तो एगअंतरमणंतगुणं भणियं सुअम्मि खलु ॥१५३॥

एकप्रदेशेनाऽतीतेऽल्पा निर्लेपितास्तु समयप्रबद्धा ।
क्रमशोऽधिका स्थानाऽसंख्यांशे च द्विगुणास्तथा यवमध्यम् ॥ १५२ ॥
नानान्तराणि पल्यस्यच्छेदनाऽसंख्यभागमात्राणि ।
तत एकान्तरमनन्तगुणं भणितं श्रुते खलु ॥ १५३ ॥ इति पदसंस्कारः ।

'एग०' इत्यादि, अतीतकाले पूर्वोक्ताऽसंख्यातपल्योपमप्रथमवर्गमूलमात्रनिर्लेपनस्थानेषु यत्र वा तत्र वा कदाचिदेकैकेन प्रदेशेन शेषीभूतेन समयप्रबद्धा निर्लेपिताः, कदाचित् द्वाभ्यां द्वाभ्यां प्रदेशाभ्यां निर्लेपिताः, कदाचित्पुनस्त्रिभिस्त्रिभिः प्रदेशैर्निर्लेपिताः, एवं क्रमेणोत्कृष्टतोऽनन्तप्रदेशैः शेषीभूतैः समयप्रबद्धा निर्लेपिताः । तत्र 'अतीते' अतीतकाले पूर्वोक्तनिर्लेपनस्थानेषु यत्र वा तत्र वा 'एकप्रदेशेन' एकैकेन कर्मप्रदेशेन शेषीभूतेन निर्लेपितास्तु समयप्रबद्धाः सर्वे मिलित्वाऽनन्तराशिका भवन्तोऽपि 'अल्पाः' स्तोकाः, उपरितनानामधिकत्वप्रतिपादनात् । 'कमसो अहिया' त्ति क्रमशो 'अधिका' विशेषाधिकाः । अयं भावः ततो द्वाभ्यां द्वाभ्यां कर्मप्रदेशाभ्यां शेषीभूताभ्यां निर्लेपिताः समयप्रबद्धा विशेषाधिका वाच्याः । ततस्त्रिभिस्त्रिभिः कर्मप्रदेशैः शेषीभूतैर्निर्लेपिताः समयप्रबद्धा विशेषाधिका अभिधातव्याः । एवं विशेषाधिकक्रमेणाऽनन्तानि स्थानानि वक्तव्यानि । यदुक्तं कषायप्राभृतचूर्णौ "**अदीदे काले जे समयपबद्धा एक्केण पदेसग्गेण णिल्लेविदा, ते थोवा । वेहिं पदेसेहिं विसेसाहिया, एवमणंतरोवणिधाए अणंताणि ट्ठाणाणि विसेसाहियाणि ।**" इति । एवमनन्तरान्तरेण विशेषाधिकक्रमेण 'स्थानाऽसंख्यांशे' स्थानानाम्=अनन्तराशिकानां सर्वेषां स्थानानामसंख्येयतमे भागे च गते निर्लेपिताः समयप्रबद्धा 'द्विगुणा' द्विगुणवृद्धा भवन्ति । इदमुक्तं भवति जघन्यस्थानतः सकलस्थानानामसंख्येयतमे भागे गते समयप्रबद्धा द्विगुणवृद्धा भवन्ति । ततः पुनस्तावन्मात्रेषु स्थानेषु गतेषु निर्लेपिताः समयप्रबद्धा द्विगुणवृद्धा भवन्ति । ततः पुनस्तावन्मात्रेषु स्थानेषु व्रजितेषु समयप्रबद्धा

द्विगुणवृद्धा भवन्ति । एवं सर्वस्थानानामसंख्येयभागे गते यवमध्यमपि प्राप्यते, तद्व्याजिहीर्षुराह–'तह। जवमज्झं' ति 'तथा' एवं यवमध्यम्, यथा स्थानानामसंख्येयभागे समयप्रबद्धा द्विगुणा भवन्ति, तथैव यवमध्यमपि स्थानानामसंख्येयतमे भागे प्राप्यत इत्यर्थः । इदमत्र हृदयम्–एकपरमाणुत आरभ्य एकसमयेनोत्कृष्टतो निर्लेप्यमानानेकसमयप्रबद्धाऽसंख्येयभागप्रमाणानन्तपरमाणून् यावदेकोत्तरक्रमेण यावन्ति स्थानानि लभ्यन्ते, तावतामभव्येभ्योऽनन्तगुणानां सिद्धानां चाऽनन्तभागमात्राणां स्थानानासंख्येयतमभागे यवमध्यं भवति । यद्यपि द्विगुणवृद्धिस्थानमपि स्थानानामसंख्येयतमभागे प्राप्यते, एवं यवमध्यमपि, तथाप्यसंख्यातेषु द्विगुणवृद्धिस्थानेषु गतेषु यवमध्यं लभ्यते, भाजकस्याऽसंख्येयत्वेनासंख्येयभेदत्वात् । यवमध्यस्योपरि द्विगुणवृद्धिस्थानतोऽसंख्यगुणानि द्विगुणहानिस्थानानि भवन्ति । ननु स्थानानामसंख्येयभागे यवमध्यमुक्तम्, तदत्र कः प्रतिभागः ? इति चेत्, उच्यते–पल्योपमासंख्येयभागमात्रः । उक्तं च कषायप्राभृतचूर्णौ–"ठाणाणं पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागपडिभागे जवमज्झं ।"इति । भावार्थः पुनरयम्–सकलानि स्थानानि पल्योपमाऽसंख्येयभागेन विभक्तव्यानि । ततो लब्धैकभागप्रमाणानि स्थानान्युल्लङ्घ्य यवमध्यं प्राप्यते, तस्योपरि विशेषहीनक्रमेण निर्लेपिताः समयप्रबद्धा भवन्ति, यवमध्यतश्च स्थानानामसंख्येयतमभागे गते द्विगुणहीना भवन्ति, पुनस्तावत्प्रमाणेषु स्थानेषु व्रजितेषु द्विगुणहीना भवन्ति, एवं द्विगुणहीना द्विगुणहीनास्तावदभिधातव्याः, यावच्चरमस्थानम् ।

अथ नानाद्विगुणहानिस्थानानि वक्तुकामोऽभिधत्ते-'णाणंतराणि' इत्यादि, 'नानान्तराणि' नानाप्रकाराणि अन्तराणि-द्विगुणवृद्धिद्विगुणहानिरूपाणि मध्यगतानि स्थानानि, अयं भावः-एकैकेन प्रदेशेन शेषीभूतेन निर्लेपिताः समयप्रबद्धाः स्तोका भवन्ति,ततो द्वाभ्यां द्वाभ्यां प्रदेशाभ्यां शेषीभूताभ्यां निर्लेपिता विशेषाधिका भवन्ति, एवं विशेषाधिकक्रमेणाऽनन्तेषु स्थानेषु गतेषु द्विगुणवृद्धा भवन्ति, इदं चाद्यं द्विगुणवृद्धिस्थानम्, तस्यैका शलाका स्थाप्या, ततः पुनस्तावत्सु स्थानेषु व्यतिक्रान्तेषु पुनर्द्विगुणवृद्धा भवन्ति, इदं च द्वितीयं द्विगुणवृद्धिस्थानम्, तस्यैका शलाका स्थाप्या । एवंक्रमेण यावन्ति द्विगुणवृद्धिस्थानानि लभ्यन्ते, तावत्यः शलाकाः स्थाप्याः, ततो यवमध्यस्योपरि विशेषहीनक्रमेणाऽनन्तेषु स्थानेषु गतेषु समयप्रबद्धा द्विगुणहीना भवन्ति, इदं च प्रथमं द्विगुणहानिस्थानम्, तस्यैका शलाका स्थापयितव्या । ततः पुनस्तावन्मात्रेषु स्थानेषु गतेषु द्वितीयं द्विगुणहानिस्थानम्,तस्य द्वितीयैका शलाका स्थाप्या । एवंक्रमेण यावन्ति द्विगुणहानिस्थानानि भवन्ति,तावत्यश्शलाकाः स्थाप्याः । द्विगुणवृद्धिस्थानानां स्थापितसर्वशलाका द्विगुणहानिस्थानानां च स्थापितसर्वशलाका मिलित्वा यावत्यः शलाका भवन्ति, तावन्ति नानान्तराणि भवन्ति । तानि प्रमाणतः कति भवन्ति ? इत्यत आह–'पल्लस्स' इत्यादि, 'पल्यस्य' पल्योपमस्य 'छेदनकाऽसंख्यभागमात्राणि' अर्धच्छेदनकानामसंख्येयभागप्रमाणानि भवन्ति । उक्तं च कषायप्राभृतचूर्णौ–"अंतराणि अंतरछिदाए पलिदोवमच्छेदणाणं पि असंखेज्जदिभागो ।" इति । 'तो'

इत्यादि, 'ततो' नानाद्विगुणहानिस्थानेभ्य 'एकान्तरमनन्तगुणं' द्वयोर्द्विगुणवृद्धयोर्द्विगुणहान्यो-र्वैकस्मिन्नन्तराले यानि स्थानानि, तान्यनन्तगुणानि 'श्रुते' कषायप्राभृतचूर्ण्यादिलक्षणे 'खलु' निश्चयेन 'भणितं' प्ररूपितानि । तथाहि नानागुणहानिस्थानानि पल्योपमाऽर्धच्छेदनकानामप्य-संख्येयभागप्रमाणानि भवन्ति । तानि स्तोकानि, ततो द्वयोर्द्विगुणवृद्धयोर्द्विगुणहान्योर्वैकाऽपान्तरा-लवर्तीनि स्थानान्यनन्तगुणानि भवन्ति । यदभिहितं कषायप्राभृतचूर्णौ णाणंतराणि थोवाणि । एक्कंतरमणंतगुणं ।" इति । ननु तेषामनन्तगुणत्वं कुतः सिध्यति ? इति चेद्, शृणुत सकलानि स्थानान्यनन्तानि भवन्ति, तानि च नानाद्विगुणहानिस्थानलक्षणपल्योपमार्ध-च्छेदनकाऽसंख्येयभागेन विभज्यन्ते, तदेकभागमात्राणि द्वयोर्द्विगुणवृद्धयोर्द्विगुणहान्योर्वैकाऽन्तराल-वर्तीनि स्थानानि प्राप्यन्ते, तानि चाऽनन्तानि, अनन्तराशेः पल्योपमार्धच्छेदनकाऽसंख्येयभागेन विभाजितत्वात् । इह नानागुणहानिस्थानानि स्तोकानि, असंख्येयत्वात् । तेभ्यो द्वयोर्द्विगुण-वृद्धयोर्द्विगुणहान्योर्वैकाऽपान्तरालवर्तीनि स्थानान्यनन्तगुणानि, प्रमाणतोऽनन्तत्वात् । एवं भवबद्धा-नामपि यवमध्यादिप्ररूपणा कर्तव्या, विशेषाभावात् ॥ १५३ ॥

अथ समयप्रबद्धानां भवबद्धानां च निरन्तरनिर्लेपनकालं प्ररूपयति

एगसमइयोऽणुसमयणिल्लेवणकालगो पहूओऽईओ ।
आलिअसंखंसे दुगुणूणे आवलिअसंखभागो जेट्ठो ॥१५४॥ (आर्यागीतिः)

एकसामयिकोऽनुसमयनिर्लेपनकाल प्रभूतोऽतीत ।
आवलिकाऽसंख्यांशे द्विगुणोन आवलिकाऽसंख्यभागो ज्येष्ठ ॥१५४॥ इति पदसंस्कार ।

'एग०' इत्यादि, एकसामयिकोऽनुसमयनिर्लेपनकालः प्रभूतो 'अतीतो' व्यतिक्रान्तः । एतदुक्तं भवति—अनुसमयनिर्लेपनकालो नाम समयप्रबद्धानां भवबद्धानां वा निरन्तरनिर्लेपन-कालः । स च जघन्यत एकसमयप्रमाणो भवति । उभयोः पार्श्वयोस्ते स्थिती उदितः, ययोः समयप्रबद्धा वा भवबद्धा वा न निर्लेप्यन्ते, मध्ये चैकस्यामुदयमानस्थित्यामेकसमयमात्र्यां निर्लेप्यन्ते, स एकसामयिकोऽनुसमयनिर्लेपनकाल उच्यते, एवमुभयोः पार्श्वयोस्ते स्थिती अनुभूयेते, ययोः समयप्रबद्धा भवबद्धा वा न निर्लेप्यन्ते, मध्ये च द्वयोर्निरन्तरस्थित्योर्निर्लेप्यन्ते, स द्विसामयिकोऽनुसमयनिर्लेपनकाल उच्यते, एवमेकोत्तरवृद्ध्या निरन्तरमनुसमयनिर्लेपनकाल उत्कृष्टत आवलिकाऽसंख्येयभागप्रमाणो लभ्यते ।

तत्रैकस्याऽक्षपकस्याऽतीतकाल एकसामयिकः समयप्रबद्धानां भवबद्धानां वाऽनुसमय-निर्लेपनकालः प्रभूतो 'अतीतो' व्यतिक्रान्तः, अक्षपकस्याऽतीतकाले द्वयोः पार्श्वयोरनिर्लेपन-स्थित्योरुदयो जातः, मध्ये चैका निर्लेपनस्थितिरुदेति स्म, पुनः कदाचिद् द्वयोः पार्श्वयोरनिर्लेपन-स्थित्योरुदयो जातः, मध्ये चैका निर्लेपनस्थितिरुदेति स्म । एवं पुनः पुनर्लब्धः समुदितोऽ-

ऽनन्तसमयप्रमाण एकसामयिकोऽनुसमयनिर्लेपनकालः प्रभूतः । ततो द्विसामयिकोऽनुसमयनिर्लेपनकालो विशेषहीनः, ततस्त्रिसामयिकोऽनुसमयनिर्लेपनकालो विशेषहीनः । एवंक्रमेण'आलिअसंखंसे' त्ति'आवलिकाऽसंख्यांशे' आवलिकाऽसंख्येयभागे 'द्विगुणोनो' द्विगुणहीनः । इदमुक्तं भवति—प्रथमस्थानत आवलिकाऽसंख्येयभागमात्रेषु स्थानेषु गतेष्वेकसामयिकनिर्लेपनकालतो द्विगुणहीनो ज्ञेयः, ततः पुनरावलिकाऽसंख्येयभागमात्रेषु स्थानेषु गतेषु द्विगुणहीनो बोध्यः । ततः पुनरेतावत्सु स्थानेषु गतेषु द्विगुणहीनो ज्ञेयः । एवंक्रमेण तावद्वाच्यम्, यावच्चरमस्थानम् । नानाद्विगुणहानिस्थानान्यावलिकाऽसंख्येयभागमात्राणि भवन्ति, सकलस्थानानामप्यावलिकाऽसंख्येयभागमात्रत्वात् ।

क्षपकस्याऽपीत्थमेवाऽनुसमयनिर्लेपनकालः प्ररूपयितव्यः । तथाहि—एकसामयिकः समयप्रबद्धानां भवबद्धानां वाऽनुसमयनिर्लेपनकालः प्रभूतः, स चाऽतीतकाले नानाक्षपकापेक्षयाऽनन्तसमयप्रमाणः, एकक्षपकं त्वाश्रित्याऽऽवलिकाऽसंख्येयभागप्रमाणो ज्ञातव्यः, ततो विशेषहीनो द्विसामयिकः समयप्रबद्धानां भवबद्धानां वाऽनुसमयनिर्लेपनकालः, सोऽपि नानाक्षपकापेक्षयाऽनन्तसमयप्रमाणः, एकक्षपकं तु प्रतीत्याऽऽवलिकाऽसंख्येयभागप्रमाणः । एवं विशेषहीनक्रमेण गच्छन्नावलिकाऽसंख्येयभागिकोऽनुसमयनिर्लेपनकालो द्विगुणहीनो भवति । स च नानाक्षपकापेक्षयाऽनन्तसमयप्रमाणः, एकक्षपकाऽपेक्षया त्वावलिकाऽसंख्येयभागप्रमाणः । प्रत्यपादि च कषायप्राभृतचूर्णौ—"**खवगस्स वा अक्खवगस्स वा समयपबद्धाण भवबद्धाणं अणुसमयणिल्लेवणकालो एगसमइओ बहुगो । दुसमइओ विसेसहीणो । एवं गंतूण आवलियाए असंखेज्जदिभागे दुगुणहीणो ।**" इति । ततः पुनरावलिकाऽसंख्येयभागे गते द्विगुणहीनो भवति । नानाद्विगुणहानिस्थानान्यावलिकाऽसंख्येयभागमात्राण्यवसेयानि, सर्वेषां स्थानानामावलिकाऽसंख्येयभागमात्रत्वात् ।

अथोत्कृष्टोऽनुसमयनिर्लेपनकालं भणति—'आव०' इत्यादि, तत्र 'ज्येष्ठः' उत्कृष्टः क्षपकस्याक्षपकस्य वाऽनुसमयनिर्लेपनकाल आवलिकाऽसंख्येयभागो ज्ञातव्यः, नाधिकः । उक्तं च कषायप्राभृतचूर्णौ—"**उक्कस्सओ वि अणुसमयणिल्लेवणकालो आवलियाए असंखेज्जदिभागो ।**" इति ॥१५४॥

अथाऽनिर्लेपनस्थितिभिरन्तरितनिर्लेपनस्थितीनामुदयेन निर्लेपितानां समयप्रबद्धानां भवबद्धानां चाऽल्पबहुत्वमक्षपकस्याऽतीतकालमाश्रित्याऽभिधित्सुराह

एगसमयंतरेणं अप्पा णिल्लेवियक्खणपबद्धा ।
कमसो अहिआ दुगुणा पल्लासंखेज्जभागम्मि ॥१५५॥

जवमज्झं ठाणअसंखेज्जइभागे तहेव भवबद्धा ।
गुरु णिल्लेवणअंतरमसंखभागो उ पल्लस्स ॥१५६॥

एकसमयान्तरेणाऽल्पा निर्लेपितक्षणप्रबद्धाः ।
क्रमशोऽधिका द्विगुणा पल्याऽसंख्येयभागे ॥१५५॥
यवमध्यं स्थानाऽसंख्येयतमभागे तथैव भवबद्धा खलु ।
गुरु निर्लेपनान्तरमसंख्यभागस्तु पल्यस्य ॥१५६॥ इति पदसंस्कारः ।

'एग०' इत्यादि, एकसमयान्तरेण 'निर्लेपितक्षणप्रबद्धाः' निर्लेपितसमयप्रबद्धाः 'अल्पाः' स्तोकाः । इदमुक्तं भवति—अक्षपकस्याऽतीतकाले द्वयोः पार्श्वयोरेकैकाऽनिर्लेपनस्थितिरुदेति, मध्ये चैकस्यां वाऽनेकासु वोदयमानासु निर्लेपनस्थितिषु यावन्तः समयप्रबद्धा निर्लेपिताः, ते गणयितव्याः, ततः पुनर्द्वयोः पार्श्वयोरेकैकाऽनिर्लेपनस्थितिरुदेति, मध्ये चोदयमानासु निर्लेपनस्थितिषु यावन्तः समयप्रबद्धा निर्लेपिताः, ते गणयितव्याः । एवं पुनः पुनरेकैकाऽनिर्लेपनस्थित्यन्तरेण निर्लेपिताः सर्वे समुदिताः समयप्रबद्धाः स्तोका भवन्ति, ते च नानाकर्माऽवस्थानकालाऽपेक्षयाऽनन्ताः, एककर्माऽवस्थानकालं त्वाश्रित्याऽसंख्येया भवन्ति ।

'कमसो' इत्यादि, क्रमशो 'अधिकाः' विशेषाधिका भवन्ति । इदमुक्तं भवति-एकसमयान्तरेण निर्लेपितसमयप्रबद्धतोऽतीतकाले द्विसमयान्तरेण निर्लेपिताः समयप्रबद्धा विशेषाधिका भवन्ति । तथाहि—अतीतकाले द्वयोः पार्श्वयोर्द्वे द्वेऽनिर्लेपनस्थिती उदितः, मध्ये चैकस्यामनेकासु वोदयमानासु निर्लेपनस्थितिषु निर्लेपिताः समयप्रबद्धा विशेषाधिका भवन्ति, ते च नानाकर्माऽवस्थानकालापेक्षयाऽनन्ताः, एककर्माऽवस्थानकालं त्वाश्रित्याऽसंख्येयाः । एवमग्रेऽपि वक्तव्यम् । आधिक्यं चैकसमयान्तरेण निर्लेपितसमयप्रबद्धान् पल्योपमाऽसंख्येयभागेन भक्त्वैकखण्डेन ज्ञातव्यम्, पल्योपमाऽसंख्येयभागे गते द्विगुणत्वात् । ततो द्विसमयान्तरेण निर्लेपितसमयप्रबद्धतस्त्रिसमयान्तरेण निर्लेपिताः समयप्रबद्धा विशेषाधिकाः, ततश्चतुस्समयान्तरेण निर्लेपितसमयप्रबद्धा विशेषाधिकाः । एवंक्रमेण पल्योपमाऽसंख्येयभागे गते द्विगुणा भवन्ति । तदेवाह 'दुगुणो' इत्यादि, तत्र 'पल्यासंख्येयभागे' पल्योपमस्याऽसंख्येयभागे गते 'द्विगुणाः' द्विगुणवृद्धा भवन्ति । अयम्भावः- अतीतकाले द्वयोः पार्श्वयोः पल्योपमाऽसंख्येयभागमात्र्योऽनिर्लेपनस्थितय उदयन्ति, मध्ये चोदयमानासु निर्लेपनस्थितिषु निर्लेपिताः समयप्रबद्धा एकसमयान्तरेण निर्लेपितसमयप्रबद्धतो द्विगुणा भवन्ति । ते च नानाकर्माऽवस्थानकालापेक्षयाऽनन्ताः, एककर्माऽवस्थानकालं त्वाश्रित्याऽसंख्येया भवन्ति । ततः पुनः पल्योपमाऽसंख्येयभागे गते निर्लेपिताः समयप्रबद्धा द्विगुणा भवन्ति । एवमसंख्यातेषु द्विगुणवृद्धिस्थानेषु गतेषु यवमध्यं प्राप्यते, तदभिधित्सुराह—'जवमज्झं' इत्यादि, यवमध्यं 'स्थानाऽसंख्येयतमभागे' सर्वस्थानानामसंख्येयतमे भागे गते भवतीति शेषः । भावार्थः पुनरयम् सकलानि स्थानानि

पल्योपमाऽसंख्येयभागप्रमाणानि भवन्ति, उत्कृष्टतो निर्लेपनान्तरस्य पल्योपमाऽसंख्येयभाग-प्रमाणत्वस्य वक्ष्यमाणत्वात् । तत्र सकलस्थानानामसंख्येयतमभागमात्रेषु स्थानेषु गतेषु यवमध्यं प्राप्यते । ततो यवमध्यस्योपरि समयोत्तरक्रमेण वृद्धसमयान्तरेण निर्लेपितसमयप्रबद्धा विशेष-हीना विशेषहीना भवन्ति, पल्योपमाऽसंख्येयभागे च गते द्विगुणहीना भवन्ति । ततः पुनः पल्योपमासंख्येयभागे व्रजिते - द्विगुणहीना भवन्ति । एवंक्रमेणाऽसंख्येयद्विगुणहानिस्थानेषु गतेषु चरमस्थानं प्राप्यते ।

'तहेव' इत्यादि, 'तथैव' यथैकसमयाद्यन्तरेण निर्लेपितसमयप्रबद्धा विशेषाधिकक्रमेण निरूपिताः,पल्योपमाऽसंख्येयभागे च गते द्विगुणा दर्शिताः, तथैव भवबद्धा अपि बोध्याः, स्थानानां चाऽसंख्येयतमभागे यवमध्यं ज्ञातव्यम् । यदप्यधायि कषायप्राभृतचूर्णौ–"**अवगरस्स एगसमएण अंतरेण णिल्लेविदा समयपबद्धा वा भवबद्धा वा थोवा, दुसमएण अंतरेण णिल्लेविदा विसेसाहिया, एवं गंतूण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागे दुगुणा । ठाणाणमसंखेज्जदिभागे जवमज्झं ।**" इति ।

अथ चरमस्थानस्य स्पष्टप्रतिपत्तये भणति–'गुरु' इत्यादि, 'गुरु' उत्कृष्टं निर्लेपनाऽन्तर-मसंख्यभागस्तु पल्यस्य भवति, उत्कृष्टतोऽप्यक्षपकस्याऽनिर्लेपनस्थितयः पल्योपमाऽसंख्येय-भागप्रमाणा एव निरन्तरमुदयन्ति, एताभ्योऽधिका अनिर्लेपनस्थितयो न संभवन्तीत्यर्थः । तथा चोक्तं कषायप्राभृतचूर्णौ–"**उक्कस्सं पि णिल्लेवणंतरं पलिदोवमस्स असंखेज्जदि-भागो ।**" इति ।

क्षपकस्य तूत्कृष्टतोऽप्यनिर्लेपनस्थितय आवलिकाऽसंख्येयभागमिता निरन्तरमुदयन्ति, ताभ्योऽधिकाः, तेन क्षपकस्योत्कृष्टं निर्लेपनाऽन्तरमावलिकाऽसंख्येयभागप्रमितं भवति ॥१५५-१५६॥

अथैकसमयेन निर्लेप्यमानभवसमयप्रबद्धान् निर्लेपितभवसमयप्रबद्धानां चाल्पबहुत्वं व्याजि-हीर्षुराह–

समयम्मि पहुडि इगओ पल्लासंखंसखणभवपबद्धा ।
णिल्लेविज्जन्ति इगेगेणं णिल्लेविया थोवा ॥१५७॥
कमसो अहिआ पल्लअसंखंसम्मि दुगुणा तहा जवमज्झं ।
णाणंतरेहि एगंतरछेयणयाइ खलु असंखगुणाइं ॥१५८॥ (आर्यागीतिः)

समये प्रभृत्येकतः पल्यासंख्यांशक्षणभवप्रबद्धाः ।
निर्लेप्यन्त एकैकेन निर्लेपिता स्तोका ॥ १५७ ॥
क्रमशोऽधिकाः पल्याऽसंख्यांशे द्विगुणास्तथा यवमध्यम् ।
नानान्तरेभ्य एकान्तरच्छेदनकानि खल्वसंख्यगुणानि ॥ १५८ ॥ इति पदसंस्कारः ।

'समये' इत्यादि, 'समये' एकवचननिर्देशाद् एकस्मिन् समये 'एकतः' प्रत्यासत्त्या एक-समयबद्धादेकभवबद्धाच्च प्रभृति पल्यासंख्यांशक्षणभवप्रबद्धाः' पल्योपमाऽसंख्येयभागप्रमाणाः समयप्रबद्धा भवप्रबद्धाश्च निर्लेप्यन्ते। इदमुक्तं भवति-एकस्मिन् समय एकः समयप्रबद्धो भवबद्धो वा निर्लेप्यते, एवमेकस्मिन् समये द्वौ समयप्रबद्धौ भवबद्धौ वा निर्लेप्यतः, एवमेकोत्तरवृद्ध्या तावद् वक्तव्यम् , यावदेकस्मिन् समये पल्योपमाऽसंख्याततमभागप्रमिताः समयप्रबद्धा भवबद्धा वा निर्लेप्यन्ते। उक्तं च कषायप्राभृतचूर्णौ **"एक्केण समएण णिल्लेविज्जंति समय-पबद्धा वा भवबद्धा वा एक्को वा, दो वा तिण्णि वा उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो।"** इति।

'इगेगेणं' इत्यादि, अतीतकालवेकरिणान् समययेकैकेन निर्लेपिताः 'स्तोकाः' अल्पाः समयप्रबद्धा भवप्रबद्धा वा भवन्ति। क्रमशो 'अधिकाः' विशेषाधिका भवन्ति। इदमत्र हृदयम्—एक-समये एकसमयप्रबद्ध एकभवप्रबद्धो वा निर्लेपितः, अन्यस्मिन्नेकसमये पुनरेकसमयप्रबद्ध एक-भवप्रबद्धो वा निर्लेपितः। अनेन क्रमेणाऽतीतकाल एकैकसमयप्रबद्धा एकैकभवप्रबद्धा वा यावन्तो निर्लेपिताः, ते सर्वेऽनन्तराशिप्रमाणा भवन्तोऽपि स्तोका भवन्ति। तत एकसमये द्विद्विसमयप्रबद्धा द्विद्विभवप्रबद्धा वाऽतीतकाले निर्लेपिता विशेषाधिका भवन्ति, आधिक्यं च प्रागुक्तपदं पल्योपमाऽ-संख्येयभागेन खण्डयित्वैकखण्डप्रमाणेन ज्ञातव्यम्। ततोऽप्येकसमये निर्लेपिता स्त्रित्रिसमयप्रबद्धा-स्त्रित्रिभवप्रबद्धा वा विशेषाधिका भवन्ति। यदवादि कषायप्राभृतचूर्णौ **"एक्केक्केण णिल्ले-विज्जंति, ते थोवा, दोण्णि णिल्लेविज्जंति विसेसाहिया। तिण्णि णिल्लेविज्जंति विसेसाहिया।"** इति। एवं विशेषाधिकक्रमेण गच्छन्तः पल्योपमाऽसंख्येयतमभागे गते द्विगुणा भवन्ति, इदञ्च प्रथमं द्विगुणवृद्धिस्थानम्। ततः पुनः पल्योपमा-ऽसंख्येयभागे गते द्वितीयं द्विगुणवृद्धिस्थानं लभ्यते। ततः पुनः पल्योपमा-ऽ-संख्येयभागे गते तृतीयं द्विगुणवृद्धिस्थानं प्राप्यते। एवंक्रमेण पल्योपमा-ऽसंख्येयभागप्रमाणेषु द्विगुणवृद्धिस्थानेषु व्रजितेषु यवमध्यं प्राप्यते। तदेव दर्शयति 'पल्ल०' इत्यादि, 'पल्यासंख्यांशे' पल्योपमाऽसंख्येयभागे गते 'द्विगुणाः' एकस्मिन् समये निर्लेपिता समयप्रबद्धा भवप्रबद्धा वा द्विगुणा भवन्ति, 'तथा यवमध्यं' पल्योपमाऽ-संख्येयभागे च गते यवमध्यं भवतीति शेषः। अयम्भावः—प्रथमस्थानतः पल्योपमाऽसं-ख्येयभागे गत एकसमये निर्लेपितेभ्य एकैकसमयप्रबद्धेभ्य एकैकभवप्रबद्धेभ्यश्च यथाक्रमं तत्प्रायोग्य-पल्योपमाऽसंख्येयभागमिता एकसमये निर्लेपिताः समयप्रबद्धा भवप्रबद्धाश्च द्विगुणा भवन्ति। उक्तं च कषायप्राभृतचूर्णौ—**"एवं गंतूण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागे दुगुणा।"** इति। ततः पुनः पल्योपमाऽसंख्येयभागे गते द्वितीयं द्विगुणवृद्धिस्थानं लभ्यते। ततः पुनः पल्योपमाऽसंख्येयभागे व्यतिक्रान्ते तृतीयं द्विगुणवृद्धिस्थानं प्राप्यते। एवमसंख्या-तेषु द्विगुणवृद्धिस्थानेषु गतेषु यवमध्यं जायते। यवमध्यस्योपरि विशेषहीनक्रमेण वक्तव्याः, पल्यो-

पमाऽसंख्येयभागे च गते द्विगुणहीना निगदितव्याः । एवं द्विगुणहीना द्विगुणहीनास्तावदभिधातव्याः, यावद् यवमध्यस्याऽवस्तनस्थानेभ्यो-ऽसंख्यातगुणेषु स्थानेषु गतेषु चरमस्थानं प्राप्यते ।

अथाऽल्पबहुत्वमभिधत्ते–'णाणंतरेहिं' इत्यादि, 'नानान्तरेभ्यो' नानाप्रकारेभ्योऽन्तरेभ्यो द्विगुणवृद्धिहानिरूपेभ्यो मध्यगतेभ्यः स्थानेभ्यो नानाद्विगुणवृद्धिहानिस्थानेभ्य इत्यर्थः, 'एकान्तरच्छेदनकानि' द्वयोर्द्विगुणहान्योर्द्विगुणवृद्धयोर्वैकाऽन्तरे स्थितानां स्थानानामर्धच्छेदनकान्यसंख्यगुणानि भवन्ति । न्यगादि च कषायप्राभृतचूर्णौ–"णाणंतराणि थोवाणि, एक्कंतरच्छेदणाणि वि असंखेज्जगुणाणि ।" इति । इदन्त्ववधेयम् नानाद्विगुणवृद्धिहानिस्थानेभ्यो द्विगुणहानिस्थानाऽन्तरार्धच्छेदनकानामप्यसंख्येयगुणत्वाद् द्वयोर्द्विगुणहान्योर्द्विगुणवृद्धयोर्वैकाऽपान्तरालवर्तीनि स्थानानि सुतरामसंख्यातगुणानि सिध्यन्ति । तानि च पल्योपमप्रथमवर्गमूला-ऽसंख्येयभागमितानि, अनन्तरवक्ष्यमाणगाथाद्वय एकसमयेन निर्लेपितसमयप्रबद्धतः पल्योपमप्रथमवर्गमूलस्या-ऽसंख्येयगुणत्वेन वक्ष्यमाणत्वात् ॥१५७–१५८॥

अथाऽक्षपकस्य त्रयोदशपदानामल्पबहुत्वमभिधातुकाम आह

जेट्ठोऽणुसमयणिल्लेवणकालोऽप्पो तओ इगे समये ।
णिल्लेविया उ भवबद्धा तत्तो य समयपबद्धा ॥१५९॥
तो खणपबद्धसेसयरहियठिई ताउ वग्गमूलं य ।
पल्लस्स तो पएसगुणहाणिठाणंतरं तत्तो ॥१६०॥
भवबद्धाणं णिल्लेवणठाणाइं कमा असंखगुणाइं ।
समयपबद्धाणं णिल्लेवणठाणाणि उण विसेसऽहिआइं ॥१६१॥
(आर्यागीतिः)

अणुसमयअवेयणकालोऽसंखगुणो उ खणपबद्धस्स ।
अंतो कम्माठिईए तोऽणुसमयवेयणअणेहो ॥१६२॥
ताउ अवेयणकालो सव्वो तो सव्वगो उ वेयणकालो ।
कमसो य असंखगुणो तो कम्माठिई विसेसअहिआ होज्जा ॥१६३॥
(आर्यागीतिः)

ज्येष्ठोऽनुसमयनिर्लेपनकालोऽल्पस्तत एकस्मिन् समये ।
निर्लेपितास्तु भवबद्धास्तेभ्यश्च समयप्रबद्धाः ॥१५९॥
तेभ्य क्षणप्रबद्धशेषक-रहितस्थितयस्ताभ्यो वर्गमूलञ्च ।
पल्यस्य तत प्रदेशगुणहानिस्थानान्तरं तत ॥१६०॥

भवबद्धानां निर्लेपनस्थानानि क्रमादसंख्यगुणानि ।
समयप्रबद्धानां निर्लेपनस्थानानि पुनर्विशेषाधिकानि ॥१६१॥
अनुसमयाऽवेदनकालोऽसंख्यगुणस्तु क्षणप्रबद्धस्य ।
अन्त कर्मस्थित्यास्ततोऽनुसमयवेदनाऽनेहा ॥१६२॥
तस्मादवेदनकाल सर्वस्तत सर्वस्तु वेदनकाल ।
क्रमशश्चाऽसंख्यगुणस्तत कर्मस्थितिर्विशेषाधिका भवति ॥१६३॥ इति पदसंस्कार ।

'जेट्ठो' इत्यादि, 'ज्येष्ठः' उत्कृष्टोऽनुसमयनिर्लेपनकालो 'अल्पः' स्तोकः, स च समयप्रबद्धानां भवप्रबद्धानां वा ग्राह्यः, स पुनः प्रमाणत आवलिकाऽसंख्येयभागमात्रो भवति । 'कमा असंखगुणाइं' ति 'क्रमादसंख्यगुणानि' वक्ष्यमाणानि पट्पदानि क्रमादसंख्येयगुणानि वक्तव्यानि । तद्यथा 'तओ' इत्यादि, 'ततः' उत्कृष्टाऽनुसमयनिर्लेपनकालत एकस्मिन् समये निर्लेपितास्तु भवबद्धा असंख्येयगुणा भवन्ति, पल्योपमाऽसंख्येयभागप्रमाणत्वात् । न चाऽयं हेतुरसिद्ध इति वाच्यम्, एकस्मिन् समय उत्कृष्टतः पल्योपमाऽसंख्येयभागमात्राणां भवबद्धानां निर्लेपनस्य प्राक्प्ररूपितत्वात् ।

'तत्तो य' इत्यादि, तेभ्यश्चैकसमये निर्लेपितभवबद्धेभ्य एकस्मिन् समये निर्लेपिताः समयप्रबद्धा असंख्येयगुणा भवन्ति । एतेऽपि पल्योपमाऽसंख्येयभागप्रमाणा भवन्ति, किन्त्वेकस्मिन् भवबद्धे निर्लेप्यमानेऽसंख्येयसमयप्रबद्धा निर्लेप्यन्ते, जघन्यतोऽप्येकभवबद्धेऽन्तर्मुहूर्तमात्राणां समयप्रबद्धानां संभवात् । तेन पूर्वपदतोऽसंख्यातगुणमिदं पदं सिध्यति । 'तो' इत्यादि, 'तेभ्यः' एकस्मिन् समये निर्लेपितसमयप्रबद्धतः 'क्षणप्रबद्धशेषकरहितस्थितयः' समयप्रबद्धशेषकैर्विरहिता असामान्यलक्षणा निरन्तराः स्थितयोऽसंख्यातगुणा भवन्ति, एता अपि पल्योपमाऽसंख्येयभागप्रमाणाः, किन्त्वेकसमये निर्लेपितसमयप्रबद्धतोऽसंख्येयगुणाः पल्योपमप्रथमवर्गमूलस्य चाऽसंख्येयभागमात्र्यो भवन्ति, एताभ्यो वर्गमूलस्याऽसंख्येयगुणत्वात् । एतासां पल्योपमाऽसंख्येयभागमात्रत्वं च चतुश्चत्वारिंशदधिकशततमगाथायाष्टीकायामसामान्यस्थितिप्ररूपणावसरे प्राक्प्रतिपादितम् ।

'ताउ' इत्यादि, 'ताभ्यः' समयप्रबद्धशेषकविरहिताभ्यः स्थितिभ्यः 'पल्यस्य' पल्योपमस्य 'वर्गमूलं' प्रथमवर्गमूलमसंख्यातगुणं भवति, सुगममेतद् । ततः प्रदेशगुणहानिस्थानान्तरमसंख्येयगुणम्, असंख्यातपल्योपमप्रथमवर्गमूलप्रमाणत्वात् । तथाहि बन्धसमयेऽबाधाकालादूर्ध्वं प्रथमस्थितिस्थाने यद् दलं निषिञ्चति, ततो विशेषहीनं दलं द्वितीयस्थितिस्थाने निषिञ्चति । ततोऽपि विशेषहीनं तृतीयस्थितिस्थाने निषिञ्चति । एवं विशेषहीनक्रमेण तावद् निषिञ्चति, यावच्चरमस्थितिस्थानम् । तत्र प्रथमस्थानतः पल्योपमाऽसंख्येयभागमात्रेषु स्थानेषु गतेषु प्रथमस्थानापेक्षया दलं द्विगुणहीनं भवति । ततः पुनरेतावत्सु स्थानेषु गतेषु दलं द्विगुणहीनं भवति । एवं तावद्

वाच्यम्, यावच्चरमस्थानम्। इह विवक्षितस्थानतो यावत्सु स्थानेषु गतेषु दलं द्विगुणहीनं भवति, तावन्ति स्थानानि प्रदेशद्विगुणहानिस्थानान्तरमुच्यन्ते, तच्चाऽसंख्येयपल्योपमप्रथमवर्गमूलप्रमाणम्। यदुक्तं पञ्चसंग्रहटीकायाम् "एकस्मिन् द्विगुणहान्योरन्तरे यानि निषेकस्थानानि, तानि असंख्येयगुणानि, तेषामसंख्येयानि पल्योपमवर्गमूलानि परिमाणं इति कृत्वा।" इति। ततो भवबद्धानां निर्लेपनस्थानान्यसंख्येयगुणानि भवन्ति। एतान्यप्यसंख्यातपल्योपमप्रथमवर्गमूलप्रमितानि प्राक्प्ररूपितानि, किन्तु पूर्वतोऽसंख्येयगुणानि बोद्धव्यानि। ततः पुनः समयप्रबद्धानां निर्लेपनस्थानानि विशेषाधिकानि भवन्ति, आधिक्यं चाऽन्तर्मुहूर्तसमयराशिमात्रेण ज्ञातव्यम्। कथमेतदवगन्तव्यम्? इति चेत्, उच्यते-समयप्रबद्धानां जघन्यनिर्लेपनस्थानतोऽन्तर्मुहूर्तप्रमाणानि निर्लेपनस्थानान्युल्लङ्घ्य भवबद्धानां जघन्यं निर्लेपनस्थानं प्राप्यते, चरमनिर्लेपनस्थानं त्वेकत्र। तेन भवबद्धनिर्लेपनस्थानतः समयप्रबद्धनिर्लेपनस्थानान्यन्तर्मुहूर्तप्रमाणनिर्लेपनस्थानैरधिकानि भवन्ति। ततः कर्मस्थित्या अन्तर्-मध्ये कर्मावस्थानकालाभ्यन्तर इत्यर्थः, 'क्षणप्रबद्धस्य' एकवचननिर्देशाद् एकसमयप्रबद्धस्याऽनुसमयाऽवेदनकालस्तु तुशब्दस्य भिन्नक्रमत्वेनाऽत्र योजनाद्, 'असंख्यगुणः' असंख्येयगुणो भवति। कर्माऽवस्थानकालस्य प्रथमसमये सञ्चितसमयप्रबद्धस्य बन्धावलिकायां व्यतिक्रान्तायां पल्योपमाऽसंख्येयभागप्रमाणं निरन्तरवेदनकालं व्यतिक्रम्य यत्र वा तत्र वा कर्माऽवस्थानकालाभ्यन्तरे निरन्तरमवेदनकाल उत्कृष्टतोऽसंख्यातपल्योपमप्रथमवर्गमूलप्रमाणो लभ्यते, उद्वर्तनाऽपवर्तनावलेनोत्कृष्टतो निरन्तरमेतावतां निरुक्तसमयप्रबद्धविशिष्टनिषेकाणां शून्यत्वसम्पादनात्। स च निरुक्तसमयप्रबद्धस्याऽनुसमयावेदनकाल उच्यते, परिमाणतश्चाऽसंख्येयपल्योपमप्रथमवर्गमूलप्रमाणो भवति, किन्तु पूर्वपदतोऽसंख्येयगुणो भवतीति ज्ञाप्यतेऽनेनाल्पबहुत्वेन।

अथ वक्ष्यमाणानां त्रयाणां पदानामसंख्येयगुणत्वं भवतीति प्रकटयितुकामः प्राह 'तो' इत्यादि, 'खणपबद्धस्स' इत्यनुवर्तते, 'ततः' कर्मावस्थानकालाभ्यन्तरे निरन्तरावेदनकालतः 'अनुसमयवेदनानेहा' अनेहःशब्दः कालवाचकः, यदुक्तमभिधानचिन्तामणौ "स्यात् कालः समयो दिष्टानेहसौ सर्वमूषकः।" इति। कर्माऽवस्थानकालाभ्यन्तरयेकसमयप्रबद्धस्य निरन्तरवेदनकालोऽसंख्यगुणो भवतीत्यर्थः। एकस्मिन् समये बद्धप्रदेशसमूहो बन्धावलिकायां व्यतिक्रान्तायामसंख्यातपल्योपमप्रथमवर्गमूलप्रमाणं कालं निरन्तरं वेद्यते, तावान् कालः समयप्रबद्धस्याऽनुसमयवेदनकाल उच्यते, स चाऽसंख्यातपल्योपमप्रथमवर्गमूलमात्रो भवन् पूर्वतोऽसंख्यातगुणो भवति।

'ताउ' इत्यादि, 'तस्मात्' कर्माऽवस्थानकालाभ्यन्तर एकसमयप्रबद्धस्य निरन्तरवेदनकालात् सर्वोऽवेदनकालोऽसंख्यगुणो भवति। अयं भावः—एकसमयप्रबद्धो बन्धावलिकाऽतिक्रमेऽसंख्यातपल्योपमप्रथमवर्गमूलमात्रं कालं यावन्निरन्तरं वेद्यते, ततः कदाचिद् वेद्यते, कदाचिन्न वेद्यते।

तत्र कर्माऽवस्थानकालाभ्यन्तरे सान्तरनिरन्तरस्वरूपेण यावन्तं कालं न वेद्यते, समुदितस्तावान् कालः सर्वाऽवेदनकालो भण्यते, पूर्वपदतश्चाऽसंख्यातगुणो भवति । सोऽप्यसंख्यातपल्योपमप्रथमवर्गमूलमात्रो भवति ।

'तो' इत्यादि, 'ततः' कर्माऽवस्थानकालाभ्यन्तरैकसमयप्रबद्धस्य सर्वाऽवेदनकालतः 'सर्वस्तु वेदनकालः' कर्माऽवस्थानकालाभ्यन्तर एकसमयप्रबद्धस्य सर्वो वेदनकालोऽसंख्यगुणो भवति । इदमुक्तं भवति–एकसमयप्रबद्धो बन्धावलिकायां व्यतिक्रान्तायां निरन्तरं पल्योपमाऽसंख्येयभागं यावद् वेद्यते, तत एकसमयतः प्रभृति समयोत्तरवृद्धिक्रमेणोत्कर्षतः पल्योपमाऽसंख्येयभागं यावन्न वेद्यते । ततः पुनर्निरुक्तसमयप्रबद्धः समयोत्तरवृद्धिक्रमेणोत्कृष्टतो निरन्तरं पल्योपमाऽसंख्येयभागं यावद् वेद्यते । ततः पुनरेकादिसमयैरन्तरयित्वा वेद्यते, एवं कर्माऽवस्थानकालाभ्यन्तरे यावन्तं कालं निरुक्तसमयप्रबद्धो वेद्यते, समुदितस्तावान् कालः सर्ववेदनकाल उच्यते, पूर्वपदतश्चाऽसंख्यातगुणो भवति, स च कर्माऽवस्थानकालस्य बहुसंख्येयभागप्रमाणो बोद्धव्यः, पूर्वपदस्य पल्योपमाऽसंख्येयभागमात्रत्वेन कर्माऽवस्थानकालाऽसंख्येयभागमात्रत्वात् , अस्माच्च पदात् कर्मावस्थानकालस्य विशेषाधिकत्वात् ।

'तो' इत्यादि, 'ततः' कर्माऽवस्थानकालाभ्यन्तरे समयप्रबद्धस्य सर्ववेदनकालात् 'कर्मस्थितिः' कर्माऽवस्थानकाललक्षणा स्थितिर्विशेषाधिका भवति । निरुक्तसमयप्रबद्धस्य सर्ववेदनकालः सर्वाऽवेदनकालश्चेमौ मिलित्वा कर्माऽवस्थानकालो भवतः । अथ निरुक्तसमयप्रबद्धसर्वावेदनकालस्य सर्ववेदनकालाऽसंख्येयभागप्रमाणत्वात् कर्माऽवस्थानकालः सर्ववेदनकालतः सर्वाऽवेदककालेन विशेषाधिको भवति । प्रत्यपादि च कषायप्राभृतचूर्णौ–"अप्पाबहुअं–(१) सव्वत्थोवमणुसमयणिल्लेवणकंडयमुक्कस्सयं । (२) जे एगसमएण णिल्लेविज्जंति भवबद्धा, ते असंखेज्जगुणा । (३) समयपबद्धा एगसमएण णिल्लेविज्जंति असंखेज्जगुणा । (४) समयपबद्धसेसएण विरहिदाओ णिरंतराओ ट्ठिदीओ असंखेज्जगुणाओ । (५) पलिदोवमवग्गमूलमसंखेज्जगुणं । (६) णिसेगगुणहाणिट्ठाणंतरमसंखेज्जगुणं । (७) भवबद्धाणं णिल्लेवणट्ठाणाणि असंखेज्जगुणाणि । (८) समयपबद्धाणं णिल्लेवणट्ठाणाणि विसेसाहियाणि । (९) समयपबद्धस्स कम्मट्ठिदीए अंतो अणुसमयअवेदगकालो असंखेज्जगुणो । (१०) समयपबद्धस्स कम्मट्ठिदीए अंतो अणुसमयवेदगकालो असंखेज्जगुणो । (११) सव्वो अवेदगकालो असंखेज्जगुणो । (१२) सव्वो वेदगकालो असंखेज्जगुणो । (१३) कम्मट्ठिदी विसेसाहिया ।" इति ॥ १५९–१६०–१६१–१६२–१६३ ॥

अभव्यप्रायोग्यप्ररूपणामाश्रित्य यन्त्रकम्

(१) निर्लेपनस्थानानि

(अ) निर्लेपनस्थानानि पल्योपमाऽसंख्येयभागप्रमितानि भवन्ति। (गाथा-१४७)

(ब) मतान्तरेण तु कर्माऽवस्थानकालबहुसंख्येयभागमात्राणि भवन्ति। (गाथा-१४७)

(२) एकजीवमाश्रित्य निर्लेपनस्थानेषु निर्लेपितसमयप्रबद्धानां व्यतिक्रान्तकालाल्पबहुत्वम्

(१) अतीतकाले जघन्यनिर्लेपनस्थाने निर्लेपितसमयप्रबद्धानां व्यतिक्रान्त. कालोऽल्प । (गाथा-१४८-१४९)

(२) ततोऽतीतकाले द्वितीयनिर्लेपनस्थाने निर्लेपितसमयप्रबद्धानां व्यतिक्रान्त. कालो विशेषाधिक ।

(३) ततोऽतीतकाले तृतीयनिर्लेपनस्थाने निर्लेपितसमयप्रबद्धानां व्यतिक्रान्तकालो विशेषाधिक. ।

एवं विशेषाधिकक्रमेण तावद्वक्तव्यम्, यावद् यवमध्यम् ।

यवमध्यस्योपरितन उत्तरोत्तरनिर्लेपनस्थाने व्यतिक्रान्त कालो विशेषहीनक्रमेण तावद्गच्छति, यावदुत्कृष्टनिर्लेपनस्थानम् ।

परम्परोपनिधया तु जघन्यनिर्लेपनस्थानत पल्योपमाऽसंख्येयभागे गते व्यतिक्रान्तकालो द्विगुणो भवति। तत पुन पल्योपमाऽसंख्येयभागे गते व्यतीत कालो द्विगुणो भवति। एवं तावद्वाच्यम्, यावद् यवमध्यम्। तस्योपरि पल्योपमाऽसंख्येयभागे गते द्विगुणहीनो भवति, तत पुन पल्योपमाऽसंख्येयभागे गते द्विगुणहीनो भवति। एवं तावद्वक्तव्यम्, यावदुत्कृष्टनिर्लेपनस्थानम् ।

(३) अल्पबहुत्वम्

(१) नानाद्विगुणहानय स्तोका, ताश्च पल्योपमाऽर्धच्छेदनकाऽसंख्येयभागप्रमाणा । (गाथा-१५०)

(२) ताभ्यो द्विगुणहान्यन्तरमसंख्येयगुणम् ।

(४) एकजीवमाश्रित्य भवबद्धाऽपेक्षया प्ररूपणम्

समयप्रबद्धवद् भवबद्धानप्याश्रित्य वक्तव्यम्, नवरं समयप्रबद्धस्य जघन्यनिर्लेपनस्थानतोऽन्तर्मुहूर्तप्रमाणेषु स्थानेषु गतेषु भवबद्धस्य जघन्यनिर्लेपनस्थानं प्राप्यते। (गाथा-१५१)

(५) एकादिप्रदेशैर्निर्लेपितभवसमयप्रबद्धानामल्पबहुत्वम्

(१) एकप्रदेशेन निर्लेपिता. समयप्रबद्धा स्तोका भवन्ति। (गाथा-१५२)

(२) द्वाभ्यां प्रदेशाभ्यां निर्लेपिता समयप्रबद्धा विशेषाधिका भवन्ति ।

(३) त्रिभि. प्रदेशैर्निर्लेपिता. समयप्रबद्धा विशेषाधिका भवन्ति ।

एवं विशेषाऽधिकक्रमेण तावद्वक्तव्यम्, यावद् यवमध्यम्। यवमध्यस्योपर्येकोत्तरवृद्धयापन्नप्रदेशैर्निर्लेपितसमयप्रबद्धा विशेषहीनक्रमेण तावद् गच्छन्ति, यावच्चरमस्थानम् ।

-अथ परम्परोपनिधयाऽल्पबहुत्वम्

एकप्रदेशेन निर्लेपितसमयप्रबद्धत सकलस्थानासंख्येयभागे गते निर्लेपितसमयप्रबद्धा द्विगुणा भवन्ति, तत पुनस्तावत्स्थानेषु गतेषु निर्लेपितसमयप्रबद्धा द्विगुणा भवन्ति। एव तावद्वक्तव्यम्, यावद् यवमध्यम्।

यवमध्यस्योपरि सकलस्थानाऽसंख्येयभागे गते द्विगुणहीना भवन्ति, पुनस्तावन्मात्रेषु स्थानेषु गतेषु द्विगुणहीना भवन्ति । एवं तावद्वक्तव्यम्, यावच्चरमस्थानम् ।

एवं भववद्धा अपि बोध्या ।

(६) अल्पबहुत्वम्

(१) तत्र नानाऽन्तराणि स्तोकानि । (गाथा–१५३)

(२) तत एकान्तरमनन्तगुणम् ।

(७) अतीतकालमेकजीवमाश्रित्याऽनुसमयनिर्लेपनकालाल्पबहुत्वम्

(१) एकसामयिकोऽनुसमयनिर्लेपनकाल सर्वप्रभूत । (गाथा–१५४)

(२) ततो द्विसामयिकोऽनुसमयनिर्लेपनकालो विशेषहीन. ।

(३) ततस्त्रिसामयिकोऽनुसमयनिर्लेपनकालो विशेषहीन ।

(४) ततश्चतु सामयिकोऽनुसमयनिर्लेपनकालो विशेषहीन ।
एवं तावद्वक्तव्यम्, यावदावलिकाऽसंख्येयभाग. ।

परम्परोपनिधयाऽल्पबहुत्वम् एकसामयिकाऽनुसमयनिर्लेपनकालत आवलिकाऽसंख्येयभागे गतेऽनुसमयनिर्लेपनकालो द्विगुणहीनो भवति । ततः पुनरावलिकाऽसंख्येयभागे गते द्विगुणहीनो भवति । एवं तावद्वक्तव्यम्, यावच्चरमस्थानम् ।

(८) एकादिसमयान्तरेण निर्लेपितभवसमयप्रबद्धानामल्पबहुत्वम्

(१) एकसमयान्तरेण निर्लेपितसमयप्रबद्धाः स्तोका (गाथा–१५५–१५६)

(२) ततो द्विसमयान्तरेण निर्लेपितसमयप्रबद्धा विशेषाऽधिका ।

(३) ततस्त्रिसमयान्तरेण निर्लेपितसमयप्रबद्धा विशेषाऽधिका ।

एवमेकोत्तरवृद्ध्यापन्नसमयान्तरेण निर्लेपिता समयप्रबद्धा विशेषाधिकक्रमेण तावद्वक्तव्या, यावद् यवमध्यम् ।

ततो यवमध्यस्योपर्येकोत्तरवृद्ध्यापन्नसमयान्तरेण निर्लेपितसमयप्रबद्धा विशेषहीनक्रमेण गच्छन्ति, यावच्चरमस्थानम् ।

तत्र प्रथमस्थानत पल्योपमा-ऽसंख्येयभागमात्रस्थानेषु गतेष्वेकं द्विगुणवृद्धिस्थान प्राप्यते । पुनस्तावन्मात्रेषु स्थानेषु गतेषु द्विगुणवृद्धिस्थानं लभ्यते । एवमग्रेऽपि । सर्वस्थानानाञ्चाऽसंख्येयभागे यवमध्य प्राप्यते । तत एकोत्तरवृद्ध्यापन्नसमयान्तरेण निर्लेपिता समयप्रबद्धा विशेषहीनक्रमेण गच्छन्ति, पल्योपमासंख्येयभागमात्रस्थानेषु च गतेषु द्विगुणहीना भवन्ति, पुनस्तावन्मात्रेषु स्थानेषु गतेषु द्विगुणहीना. । एवं तावद् वाच्यम्, यावच्चरमस्थानम् ।

एवं भववद्धा अपि बोध्या. ।

(९) एकसमये निर्लेपितभवसमयप्रबद्धा –

एकसमये जघन्यत एकसमयप्रबद्धो एकभवबद्धो वा निर्लेप्यते । उत्कृष्टत पुनरेकसमये पल्यो-

पमाऽसंख्येयभागमिताः समयप्रबद्धा भवप्रबद्धा वा निर्लेप्यन्ते । (गाथा—१५७)

अनन्तरोपनिधयाऽल्पबहुत्वम्

(१) एकसमय एकैकेन निर्लेपिताः समयप्रबद्धा' स्तोकाः ।

(२) तत एकसमये द्वाभ्यां द्वाभ्यां निर्लेपिता समयप्रबद्धा विशेषाधिका. ।

(३) तत एकसमये त्रिभिस्त्रिभिर्निर्लेपिता समयप्रबद्धा विशेषाधिका. ।

एवमेकोत्तरवृद्धया निर्लेपिताः समयप्रबद्धा विशेषाधिकक्रमेण तावद् वाच्या., यावद् यवमध्यम् । यवमध्यस्योपरि विशेषहीनक्रमेण तावद्वाच्यम् , यावच्चरमस्थानम् ।

परम्परोपनिधयाऽल्पबहुत्वम् एकसमयेकैकेन निर्लेपितेभ्य समयप्रबद्धेभ्यो भवबद्धेभ्यो वैकसमये निर्लेपिता पल्योपमाऽसंख्येयभागमात्राः समयप्रबद्धा भवबद्धा वा द्विगुणा भवन्ति । तत पुन पल्योपमाऽसंख्येयभागे गते द्विगुणा भवन्ति। तत. पुन. पल्योपमाऽसंख्येयभागे गते द्विगुणा भवन्ति । एवं क्रमेणाऽसंख्येयेषु द्विगुणवृद्धिस्थानेषु गतेषु यवमध्यं अाप्यते । यवमध्यस्योपरि पल्योमाऽसंख्येयभागे गते द्विगुणहीना भवन्ति, तत. पुन. पल्योपमाऽसंख्येयभागे गते द्विगुणहीना भवन्ति, एवं तावद्वाच्यम् , यावच्चरमस्थानम् ।

(१०) अल्पबहुत्वम् (गाथा—१५९-१६३)

(१) अनुसमयनिर्लेपनकाल' स्तोक. ।

(२) तत एकसमयेन निर्लेप्यमाना भवबद्धा असंख्यगुणा ।

(३) तत एकसमयेन निर्लेप्यमानाः समयप्रबद्धा असंख्यगुणा' ।

(४) तत. समयप्रबद्धशेषकविरहिता निरन्तरस्थितयोऽसंख्येयगुणा ।

(५) तत. पल्योपमस्य वर्गमूलमसंख्येयगुणम् ।

(६) ततः प्रदेशगुणहानिस्थानान्तरमसंख्येयगुणम्

(७) ततो भवबद्धानां निर्लेपनस्थानान्यसंख्येयगुणानि ।

(८) तत समयप्रबद्धानां निर्लेपनस्थानानि विशेषाधिकानि ।

(९) तत. कर्माऽवस्थानकालाभ्यन्तरे समयप्रबद्धस्याऽनुसमयाऽवेदनकालोऽसंख्यगुणः ।

(१०) तत. कर्माऽवस्थानकालाभ्यन्तरे समयप्रबद्धस्याऽनुसमयवेदनकालोऽसंख्यगुणः ।

(११) तत. कर्माऽवस्थानकालाभ्यन्तरे समयप्रबद्धस्य सर्वोऽवेदनकालोऽसंख्येयगुण ।

(१२) तत. कर्माऽवस्थानकालाभ्यन्तरे समयप्रबद्धस्य सर्ववेदनकालोऽसंख्येयगुण. ।

(१३) तत कर्माऽवस्थानकालो विशेषाधिक ।

पञ्चविंशत्यधिकशततमगाथायां द्वादशसंग्रहकिट्टीनामुपरितनीरसंख्येयभागप्रमाणा अवान्तरकिट्टीर्घातयतीत्युक्तम् । अथ क्रोधप्रथमसंग्रहकिट्टेरवान्तरकिट्टयः केन क्रमेण कति च द्विचरमसमयं यावद् घातिता भवन्ति ? इति शङ्कामपनेतुमाह

जा दुचरिमसमयमसंखगुणूणकमेण कोहपढमाए ।
नट्ठा किट्टी पढमखणाबंधअसंखभागपमिया ता ॥१६४॥ (गीतिः)

यावद् द्विचरमसमयमसंख्यगुणोनक्रमेण क्रोधप्रथमाया ।
नष्टा किट्टय प्रथमक्षणाऽबन्धाऽसंख्यभागप्रमितास्ता ॥१६४॥ इति पदसंस्कार ।

'जा'इत्यादि, यावद् 'द्विचरमसमयं' क्रोधप्रथमसंग्रहकिट्टिवेदनाद्धाया उपान्त्यसमयम् 'असंख्यगुणोनक्रमेण' असंख्येयगुणहीनक्रमेण 'क्रोधप्रथमायाः' क्रोधप्रथमसंग्रहकिट्टयाः 'किट्टयः' अवान्तरकिट्टयो 'नष्टाः' नाशं प्राप्ताः । परिमाणतः सर्वविनष्टावान्तरकिट्टयः कति भवन्ति ? इत्यत आह 'पढम०' इत्यादि, 'प्रथमक्षणाबन्धाऽसंख्यभागप्रमिताः'क्रोधप्रथमसंग्रहकिट्टिवेदनाद्धाप्रथमसमयवर्तिबन्धविरहिताऽवान्तरकिट्टयसंख्येयभागप्रमाणाः 'ताः' क्रोधप्रथमसंग्रहकिट्टिवेदनाद्धाप्रथमसमयप्रभृतिद्विचरमसमयपर्यवसानेषु समयेषु विनष्टाः समुदिताः सर्वा अवान्तरकिट्टयो भवन्ति । इदमुक्तं भवति–किट्टिवेदनाद्धाप्रथमसमये क्रोधप्रथमसंग्रहकिट्टया उपरितन्योऽसंख्येयभागमिता अवान्तरकिट्टयोऽनुसमयाऽपवर्तनावलेन विनाशयति, ताश्च प्रभूता भवन्ति । प्रथमसमयतो द्वितीये समयेऽसंख्येयगुणहीना विनाशयति, ततोऽपि तृतीयसमयेऽसंख्येयगुणहीना विनाशयति । न चोत्तरोत्तरसमये विशुद्धेरनन्तगुणत्वादवान्तरकिट्टीनां नाशोऽसंख्येयगुणहीनाक्रमेण कुतो जायते ? इति वाच्यम्, तथास्वाभाव्यात् । ततोऽपि चतुर्थसमयेऽसंख्येयगुणहीना अवान्तरकिट्टीर्नाशयति । एवमसंख्येयगुणहीनक्रमेण तावदुक्तव्यम्, यावत्क्रोधप्रथमसंग्रहकिट्टिवेदनाद्धाया द्विचरमसमयः । चरमसमये तु समयोनावलिकाद्वयवद्धनूतनावान्तरकिट्टीरावलिकामात्रप्रथमस्थितिगताऽवान्तरकिट्टीश्च वर्जयित्वा निखिलाः क्रोधप्रथमसंग्रहकिट्टयवान्तरकिट्टयो नाश्यन्ते, तेन यावद् द्विचरमसमय इत्युक्तम् । यदवादि कषायप्राभृतचूर्णौ–"**किट्टीओ जाओ पढमसमये विणासिज्जंति, ताओ बहुगीओ । जाओ विदियसमये विणासिज्जंति, ताओ असंखेज्जगुणहीणाओ । एवं ताव दुचरिमसमयअविणट्ठकोहपढमसंगहकिट्टी त्ति ।**" इति ।

क्रोधप्रथमसंग्रहकिट्टिवेदनाद्धाप्रथमसमये यावत्यः क्रोधप्रथमसंग्रहकिट्टेरवान्तरकिट्टयो न बध्यन्ते, तासामसंख्येयभागप्रमिता एवाऽवान्तरकिट्टयः क्रोधप्रथमसंग्रहकिट्टिवेदनाद्धाद्विचरमसमयं यावद् विनाशिताः । उक्तं च कषायप्राभृतचूर्णौ–"**एदेण सव्वेण तिचरिमसमयमेत्तीओ सव्वकिट्टीसु पढम(विदिय)समयवेदगस्स कोधस्स पढमकिट्टीए अवज्झमाणियाणं किट्टीणमसंखेज्जदिभागो ।**" इति ।

यथा क्रोधप्रथमसंग्रहकिट्ट्या अवान्तरकिट्टीनां विनाशक्रमो दर्शितः, तथैव शेषाणामप्येकादशसंग्रहकिट्टयवान्तरकिट्टीनां प्रतिसमयं विनाशक्रमस्तावदवगन्तव्यः, यावत्स्वस्ववेदनकालस्य द्विचरमसमयः ॥ १६४ ॥

पूर्वोक्तविधानेन क्रोधप्रथमसंग्रहकिट्टिं वेदयन् क्रोधप्रथमसंग्रहकिट्टिप्रथमस्थितौ द्व्यावलिकाशेषायां समयाऽधिकाऽऽवलिकाशेषायां च प्रवर्तमानपदार्थान् निरूपयिषुः संग्रहगाथया सर्वासां संग्रहकिट्टीनां स्वस्वप्रथमस्थितौ द्व्यावलिकाशेषायां समयाधिकावलिकाशेषायां च प्रवर्तमानपदार्थान् दर्शयति——

वेइज्जंताइठिईअ दुआवलिसेसयाअ आगालो ।
छिण्णो खणुत्तरावलिसेसाअ जहण्णुदीरणाऽन्तुदओ ॥१६५॥ (गीतिः)

वेद्यमानादिस्थितौ द्व्यावलिकाशेषायामागाल ।
छिन्नः क्षणोत्तराऽऽवलिकाशेषायां जघन्योदीरणाऽन्तोदय ॥१६५॥ इति पदसंस्कारः ।

'वेइज्ज०' इत्यादि, 'वेद्यमानादिस्थितौ' या संग्रहकिट्टिर्वेद्यते, तस्याः प्रथमस्थितौ द्व्यावलिकाशेषायामागालः 'छिन्नो' व्यवच्छिन्नो भवति, तथा 'क्षणोत्तरावलिकाशेषायां' वेद्यमानसंग्रहकिट्टिप्रथमस्थितौ समयाधिकाऽऽवलिकाशेषायां 'जघन्योदीरणा' जघन्यस्थित्युदीरणा 'अन्तोदयः' चरमोदयश्च जायते । अथाऽस्याः संग्रहगाथाया अर्थः प्रस्तुतमनुसृत्य परिभाव्यते क्रोधप्रथमसंग्रहकिट्टिप्रथमस्थितौ द्व्यावलिकाशेषायां प्रागुक्तस्वरूप आगालो व्यवच्छिद्यते । समयाधिकावलिकाशेषायां च क्रोधस्य जघन्यस्थित्युदीरणा भवति । तथाहि क्रोधप्रथमसंग्रहकिट्टिप्रथमस्थितौ समयाधिकाऽऽवलिकाशेषायां प्रथमस्थितिचरमनिषेकत उदये दलं प्रक्षिपतः क्षपकस्य क्रोधस्य जघन्या स्थित्युदीरणा जायते । न च द्वितीयस्थितित उदीरणा कुतो न जायते ? इति वाच्यम्, प्रथमस्थितेरावलिकाद्वये शेष आगालस्य व्यवच्छिन्नत्वात् । तथा क्रोधप्रथमसंग्रहकिट्टिप्रथमस्थितौ समयाधिकावलिकाशेषायां क्रोधप्रथमसंग्रहकिट्ट्याश्चरमोदयो भवति । ततः परं तस्या उदयो न प्रवर्तते, क्रोधद्वितीयसंग्रहकिट्ट्या उदयात् । उक्तं च कषायप्राभृतचूर्णौ "**कोहस्स पढमकिट्टिं वेदयमाणस्स जा पढमट्ठिदी, तिस्से पढमट्ठिदीए समयाहियाए आवलियाए सेसाए एदम्हि समये जो विही, तं विहिं वत्तइस्सामो । तं जहा ताधे चेव कोहस्स जहण्णगो ठिदिउदीरगो । कोहपढमकिट्टीए चरिमसमयवेदगो जादो ।**" इति । एवमग्रेऽपि वेद्यमानक्रोधद्वितीयादिसंग्रहकिट्टीनां प्ररूपणा यथावसरं कर्तव्या ॥ १६५ ॥

अथ क्रोधप्रथमसंग्रहकिट्टिवेदनचरमसमये सतानां कर्मणां स्थितिबन्धं व्याजिहीर्षुराह

अंतोमुहुत्तहीणा बंधो मोहस्स सयदिणा घाईणं ।
अंतोमुहुत्तहीणा दसवासा संखवासपमिओऽन्नाणं ॥१६६॥ (आर्यागीतिः)

अन्तर्मुहूर्तहीना बन्धो मोहस्य शतदिना घातिनाम् ।
अन्तर्मुहूर्तहीना दशवर्षाः सङ्ख्यवर्षप्रमितोऽन्येषाम् ॥ १६६ ॥ इति पदसंस्कारः ।

'अंतो०' इत्यादि, तत्र क्रोधप्रथमसंग्रहकिट्टिप्रथमस्थितौ समयाधिकाऽऽवलिकाशेषायां 'मोहस्य' संज्वलनचतुष्कस्य 'बन्धः' स्थितिबन्धः अन्तर्मुहूर्तहीनाः शतदिना भवति । उक्तं च कषायप्राभृतचूर्णौ **"चदुसंजलणाणं ठिदिबंधो वे मासा चत्तालीसं च दिवसा अंतोमुहुत्तूणा ।"** इति । भावार्थः पुनरयम् किट्टिवेदनाद्धाप्रथमसमये संज्वलनचतुष्कस्य स्थितिबन्धो यश्चातुर्मासिक आसीत्, स क्रोधप्रथमसंग्रहकिट्टिवेदनाद्धाचरमसमयेऽन्तर्मुहूर्तन्यून-शतदिवसमात्रो जायते । इत्थं क्रोधप्रथमसंग्रहकिट्टिवेदनकाले स्थितिबन्धस्याऽन्तर्मुहूर्ताधिक-विंशतिदिनैर्हानिर्जाता । युक्तियुक्तैषा, त्रैराशिकेन साधितत्वात् । तथाहि क्रोधवेदनाद्धायाश्चरम-समये स्थितिबन्धो द्वैमासिको भविष्यति, यः क्रोधप्रथमसंग्रहकिट्टिवेदनप्रथमसमये चातुर्मासिक आसीत् । तेन क्रोधसंग्रहकिट्टित्रयवेदनकाले द्विमासप्रमितो मोहस्य स्थितिबन्धो हीयते ।

यदि क्रोधसंग्रहकिट्टित्रयवेदनकाले स्थितिबन्धो द्विमासप्रमाणो हीयते, तर्ह्येकस्याः क्रोधसंग्र-हकिट्टया वेदनकाले कियान् स्थितिबन्धो हीयेत ? इति त्रैराशिकमवलम्ब्य प्रमाणफलमिच्छया गुणयित्वा प्रमाणेन विभज्यते, तदा स्थितिबन्धस्य हानिर्लभ्यते । प्रमाणमत्रसंग्रहकिट्टित्रिकवेदन-कालः, प्रमाणफलं मासद्विकमिच्छा चैकसंग्रहकिट्टिवेदनकालः । तेन प्रमाणफलं षष्टिदिवसलक्षण-मिच्छयैकलक्षणया गुण्यते, तदा षष्टिर्लभ्यते, सा पुनस्त्रिकरूपेण प्रमाणेन विभज्यते, तदा लब्धा विंशतिर्दिवसाः ।

न्यास	प्रमाणम्	प्रमाणफलम्	इच्छा	इच्छाफलम्
	३ ।	२ मासौ ।	१ ।	२० दिवसा

इत्थं त्रैराशिकेन विंशतिदिनमितः स्थितिबन्धः क्रोधस्यैकैकसंग्रहकिट्टिवेदनकाले परिहा-तव्यः, किन्तु क्रोधद्वितीयसंग्रहकिट्टिकालतस्तृतीयसंग्रहकिट्टिवेदनकालतश्च क्रोधप्रथमसंग्रहकिट्टि-वेदनकालस्य विशेषाधिकत्वस्य वक्ष्यमाणत्वादन्तर्मुहूर्ताधिकविंशतिदिनप्रमाणो हीयते क्रोधप्रथम-संग्रहकिट्टिवेदनकाले । क्रोधस्य द्वितीयसंग्रहकिट्टिवेदनकाले तृतीयसंग्रहकिट्टिवेदनकाले च यथा-संभवमन्तर्मुहूर्तन्यूनविंशतिदिनैः स्थितिबन्धो हीयते ।

'घाईणं' इत्यादि, 'घातिकर्मणां' मोहनीयस्योक्तत्वाज्ज्ञानावरण-दर्शनावरणा-ऽन्तरायाणा-मित्यर्थः, स्थितिबन्धोऽन्तर्मुहूर्तहीना दशवर्षा भवति । किट्टिवेदनाद्धाप्रथमसमये यः स्थिति-बन्धः संख्यातवार्षिक आसीत्, स इदानीमन्तर्मुहूर्तन्यूनदशवर्षप्रमाणो जायत इत्यर्थः । प्रति-पादितं च कषायप्राभृतचूर्णौ–**"तिण्हं घादिकम्माणं ठिदिबंधो दसवस्साणि अंतो-मुहुत्तूणाणि ।"** इति ।

'संख०' इत्यादि, तत्र 'अन्येषां' नाम-गोत्र-वेदनीयलक्षणानामघातिकर्मणां स्थितिबन्धः 'संख्यवर्षप्रमितः' संख्यातसहस्रवर्षमात्रो भवति । किट्टिवेदनाद्धाप्रथमसमये-ऽघातिकर्मणां स्थितिबन्धः संख्यातवार्षिकोऽभवत्, ततः संख्यातेषु स्थितिबन्धेषु गतेषु क्रोधप्रथमसंग्रहकिट्टिवेदनाद्धाचरमसमयेऽपि संख्यातसहस्रवर्षप्रमाण एव भवति, नवरमसौ किट्टिवेदनाद्धाप्रथमसमयबन्धतः संख्येयगुणहीनो भवति । ॥१६६॥

अथ क्रोधप्रथमसंग्रहकिट्टिवेदनाद्धाचरमसमये सप्तानामपि कर्मणां स्थितिसत्त्वमभिधत्ते

संतं मोहस्संतोमुहुत्तहीणअडमासहिअछद्दा ।
घाइअघाईण कमा संखासंखवरिसा णेयं ॥१६७॥

सत्त्वे मोहस्याऽन्तर्मुहूर्तहीनाऽष्टमासाधिकषडब्दाः ।
घात्यघातिनां क्रमात् सङ्ख्याऽसङ्ख्यवर्षा ज्ञेयम् ॥१६७॥

'संतं' इत्यादि, तत्र क्रोधप्रथमसंग्रहकिट्टिवेदनाद्धाचरमसमये 'मोहस्य' संज्वलनचतुष्कस्य 'सत्त्वं' स्थितिसत्त्वम् 'अन्तर्मुहूर्तहीनाष्टमासाधिकषडब्दाः' अन्तर्मुहूर्तन्यूनाष्टमासाधिकषड्वर्षा भवति । अत्राऽब्दशब्दो हि वर्षवाचकः, "स संपर्यनूद्भ्यो वर्षं हायनोऽब्दं समा शरत्" इति हेमीयवचनात् । "अब्दो वर्षे दरस्त्रासे" इति लिङ्गानुशासनवचनाच्च पुंस्त्वम् । भावार्थः पुनरयम्-किट्टिवेदनाद्धाप्रथमसमये संज्वलनचतुष्कस्य यत् स्थितिसत्त्वमष्टवार्षिकमासीत्, तत् क्रोधप्रथमसंग्रहकिट्टिवेदनचरमसमयेऽन्तर्मुहूर्तन्यूनाऽष्टमासाऽधिकषड्वर्षप्रमितं भवति । इत्थमन्तर्मुहूर्ताधिकषोडशमासैः क्रोधप्रथमसंग्रहकिट्टिवेदनकाले मोहनीयस्थितिसत्त्वस्य हानिर्जाता । सा च युक्तियुक्ता, त्रैराशिकेन साधितत्वात् । तथाहि—क्रोधवेदनाद्धायाश्चरमसमये स्थितिसत्त्वं चतुर्वर्षप्रमितं भविष्यति, यत् क्रोधप्रथमसंग्रहकिट्टिवेदनाद्धाप्रथमसमयेऽष्टवार्षिकमासीत् । तदेवं क्रोधसंग्रहकिट्टित्रयवेदनकाले स्थितिघातैश्चतुर्वर्षमात्रं स्थितिसत्त्वं घात्यते । यदि क्रोधसंग्रहकिट्टित्रयवेदनकाले चतुर्वर्षप्रमितं स्थितिसत्त्वं घात्यते, तह्येकस्याः क्रोधप्रथमसंग्रहकिट्टेर्वेदनकाले कियत् स्थितिसत्त्वं घात्येत ? इति प्रमाणफलमिच्छया गुणयित्वा प्रमाणेन विभज्यते, तदेच्छाफलं चतुर्मासाधिकवर्षप्रमाणं प्राप्यते ।

न्यास	प्रमाणम्	प्रमाणफलम्	इच्छा	इच्छाफलम्
	३ ।	४ वर्षाणि ।	१ ।	चतुर्मासाधिकवर्ष ।

इत्थं त्रैराशिकेन चतुर्मासाधिकवर्षप्रमाणं स्थितिसत्त्वं क्रोधप्रथमसंग्रहकिट्टिवेदनकाले घातयितव्यम्, परं क्रोधद्वितीयसंग्रहकिट्टिवेदनकालतस्तृतीयसंग्रहकिट्टिवेदनकालतश्च क्रोधप्रथमसंग्रहकिट्टिवेदनकालस्य विशेषाधिकत्वस्य वक्ष्यमाणत्वात् तत्रा-ऽन्तर्मुहूर्ताधिकषोडशमासप्रमाणं स्थितिसत्त्वं घात्यते । शेषयोस्तु द्वयोः संग्रहकिट्ट्योर्वेदनकाले यथायोग्यमन्तर्मुहूर्तन्यूनषोडशमासप्रमितं स्थितिसत्त्वं घातयिष्यते ।

'घाइअघाईण' इत्यादि, 'घात्यघातिनां' ज्ञानावरणदर्शनावरणाऽन्तरायणां नाम-गोत्र-वेदनीयानां च कर्मणां स्थितिसत्त्वं क्रमेण सङ्ख्याऽसङ्ख्यवर्षा भवति । किट्टिवेदनाद्धाप्रथमसमये घातिकर्मणां सङ्ख्यातवर्षमितमघातिकर्मणां चाऽसङ्ख्यातवर्षमितं स्थितिसत्त्वमासीद्, ततः क्रोधप्रथमसंग्रहकिट्टिवेदनकाले संख्यातेषु स्थितिघातेष्वतिक्रान्तेष्वपि घातित्रयस्य स्थितिसत्त्वं संख्यातवर्षाण्यघातित्रयस्य चा-ऽसंख्यातवर्षाणि विद्यते, किन्तु यथाक्रमं संख्येयगुणहीनमसंख्येयगुणहीनं च भवतीत्यर्थः। उक्तञ्च कषायप्राभृतचूर्णौ–"**घादिकम्माणं ठिदिसंतकम्मं संखेज्जाणि वरसाणि, सेसाणं कम्माणं ठिदिसंतकम्ममसंखेज्जाणि वरसाणि।**" इति ।

क्रोधप्रथमसंग्रहकिट्टिवेदनाद्धाचरमसमये क्रोधप्रथमसंग्रहकिट्टेरुदयसमयाधिकावलिकागतं समयोनद्व्यावलिकाबद्धं च नूतनं दलं वर्जयित्वा शेषं क्रोधप्रथमसंग्रहकिट्टिसर्वदलं गृहीत्वाऽसंख्येयभागप्रमाणदलं क्रोधद्वितीयसंग्रहकिट्टितृतीयसंग्रहकिट्टिपूर्वापूर्वावान्तरकिट्टिषु मानप्रथमसंग्रहकिट्टिपूर्वापूर्वाऽवान्तरकिट्टिषु च यथासंभवं संक्रमयति। शेषबहुसंख्येयभागप्रमाणदलतः क्रोधद्वितीयसंग्रहकिट्टेरधस्तादपूर्वाऽवान्तरकिट्टीर्निर्वर्तयति । इत्थं क्रोधप्रथमसंग्रहकिट्टेर्बहुसंख्येयभागकल्पं दलं संज्वलनक्रोधद्वितीयसंग्रहकिट्टौ संक्रमयति । क्रोधप्रथमसंग्रहकिट्टिसकलदलस्य च त्रयोदशचतुर्विंशतिभागप्रमाणत्वात् क्रोधद्वितीयसंग्रहकिट्टौ दलं मोहनीयसकलदलस्य चतुर्दशचतुर्विंशतिभागमात्रं ($\frac{14}{24}$) जायते । इत्थं क्रोधद्वितीयसंग्रहकिट्टौ दलमितरसंग्रहकिट्ट्यपेक्षया चतुर्दशगुणं भवति । इतरसंग्रहकिट्टीनां प्रत्येकं दलस्यैकचतुर्विंशतिभागप्रमाणत्वात् । एवमवान्तरकिट्टयोऽपि वक्तव्याः ।

ननु यद्यत्र बहुसंख्येयभागप्रमितदलमधस्तना-ऽपूर्वाऽवान्तरकिट्टितया परिणम्येत, तर्हि क्रोधद्वितीयसंग्रहकिट्टेरवान्तरकिट्ट्यन्तरोत्पन्ना-ऽपूर्वावान्तरकिट्टिषु दीयमानसर्वदलतो-ऽसंख्येयगुणं क्रोधद्वितीयसंग्रहकिट्ट्यन्तरोत्पन्नाऽपूर्वावान्तरकिट्टिषु दीयमानसर्वदलं स्यात् । तथाऽभ्युपगमे च प्रागुक्तं यत् **षट्त्रिंशदुत्तरशततमगाथा**याष्टीकायां संग्रहकिट्ट्यन्तरोत्पन्ना-ऽपूर्वावान्तरकिट्टिषु निक्षिप्तसर्वदलतो-ऽवान्तरकिट्ट्यन्तरोत्पन्नापूर्वावान्तरकिट्टिष्वसंख्येयगुणं दलं दीयत इति, तेन सह विरोधः स्यादिति, मैवम्, प्राक् सर्वदलस्याऽसंख्येयभागमात्रं दलमपूर्वावान्तरकिट्टितया परिणमयति स्म । इदानीं तु क्रोधप्रथमसंग्रहकिट्टिप्रतिबद्धदलं द्वितीयसंग्रहकिट्टितया परिणमयति। तेनाऽवान्तरकिट्ट्यन्तरेषु निर्वर्त्यमानास्वपूर्वावान्तरकिट्टिषु दीयमानदलतोऽसंख्येयगुणं दलं क्रोधद्वितीयसंग्रहकिट्ट्यन्तरे निर्वर्त्यमानास्वपूर्वावान्तरकिट्टिषु दीयमानं भवति। पूर्ववत् क्रोधद्वितीयसंग्रहकिट्ट्यन्तरोत्पन्नाऽपूर्वावान्तरकिट्टिषु दीयमानदलतोऽवान्तरकिट्ट्यन्तरोत्पन्नाऽपूर्वावान्तरकिट्टिष्वसंख्येयगुणदलनिक्षेपाभ्युपगमे त्वेकैकस्मिन्नवान्तरकिट्ट्यन्तरे त्रयोदशाऽपूर्वाऽवान्तरकिट्टयो निष्पादयितव्याः, द्वितीयसंग्रहकिट्टिपुरातनसत्तागतदलतस्त्रयोदशगुणत्वात्क्रोधप्रथमसंग्रहकिट्टिदलस्य । एकैकस्मिन्नन्तरे त्रयोदशाऽपूर्वावान्तरकिट्टिनिर्वृत्त्यभ्युपगमे तु पूर्वापूर्वावान्तरकिट्टिषु दलनिक्षेप इत्थं प्रसज्येत–

'सेकाले' इत्यादि, 'अनन्तरकाले' क्रोधप्रथमसंग्रहकिट्टिवेदनाद्धासमाप्तेरनन्तरसमय इत्यर्थः, 'द्वितीयकिट्टिं' क्रमप्राप्तत्वात् क्रोधद्वितीयसंग्रहकिट्टिमपकृष्य द्वितीयस्थितिस्थितक्रोध-द्वितीयसंग्रहकिट्टिगतप्रदेशाग्रमुत्कीर्येत्यर्थः, उदयसमयादारभ्य द्वितीयसंग्रहकिट्टिवेदनकालतः आवलिकयाऽधिकासु स्थितिष्वसंख्येयगुणक्रमेण निक्षिपन् 'प्रथमस्थितिं' प्रत्यासत्त्या क्रोध-द्वितीयसंग्रहकिट्ट्याः प्रथमस्थितिं करोति । उक्तञ्च कषायप्राभृतचूर्णौ "से काले कोहस्स विदियकिट्टीए पदेसग्गमोकड्डियूण कोहस्स पढमट्ठिदिं करेदि" । इति । अष्टादशा-ऽधिकशततमैकोनविंशत्युत्तरशततमगाथोक्तं स्थितिषु वेद्यमाना-ऽवेद्यमानसंग्रहकिट्टीनां प्रदेशावस्थानमनुभागऽ-वस्थानं चाऽत्रापि भावनीयम् ।

'ताहे' इत्यादि, तदानीं चैव क्रोधद्वितीयसंग्रहकिट्टिप्रथमस्थितिकरणसमयएव 'द्वितीयां किट्टिं' क्रोधस्य द्वितीयां संग्रहकिट्टिं तु 'वेदयति' अनुभवति । उक्तं च कषायप्राभृतचूर्णौ— "ताधे कोहस्स विदियकिट्टीवेयगो ।" तथैव सप्ततिकाचूर्णावपि—"तम्मि समए वितियकिट्टीओ दलियं उक्कड्डिहेत्तु पढमठितिं करेइ वेदेइ य ।" इति ॥ १६८ ॥

अथ क्रोधद्वितीयसंग्रहकिट्टिवेदनप्रथमसमये क्रोधप्रथमसंग्रहकिट्टेः कियद् दलं सत्कर्मणि विद्यते ? इति जिज्ञासायां संग्रहगाथया कथयति

वेइज्जमाणकिट्टीअ पढमसमयम्मि पुव्वकिट्टीए ।
सेसं दुखणूणदुआवलिवद्धं उदयआवलिगयं य ॥१६९॥ (गीतिः)

वेद्यमानकिट्ट्याः प्रथमसमये पूर्वकिट्ट्याः ।
शेषं द्विक्षणोनद्व्यावलिकाबद्धमुदयावलिकागतं च ॥ १६९ ॥ इति पदसंस्कारः ।

'वेइज्ज०' इत्यादि, 'वेद्यमानकिट्ट्याः प्रथमसमये' वेद्यमानसंग्रहकिट्टिवेदनकालप्रथमसमये 'पूर्व-किट्ट्याः' वेद्यमानसंग्रहकिट्ट्यपेक्षया प्राक्तनसंग्रहकिट्ट्याः 'शेषं' अवशिष्यमाणप्रदेशाग्रं तु द्विक्षणो-नद्व्यावलिकाबद्धं नूतनमुदयावलिकागतं च भवति, ततोऽन्यद्दलस्यान्यकिट्टितया परिणतत्वात् । इह प्रथमस्थितेरुदयावलिकागतं क्रोधप्रथमसंग्रहकिट्टिदलं यथाक्रमं स्तिबुकसङ्क्रमेण वेद्यमानसंग्रहकिट्टौ संक्रम्य विनाशयति, द्विसमयोनद्व्यावलिकाबद्धनूतनदलमपि यथागमं वेद्यमानसंग्रहकिट्टौ संक्रम्य विनाशयति । यदुक्तं कषायप्राभृतचूर्णौ "जं संगहकिट्टिं वेदेदूण तदो से काले अण्णं संगहकिट्टिं पवेदयदि, तदो तिस्से पुव्वसमयवेदिदाए संगहकिट्टीए जे दो आवलियबंधा दुसमयूणा आवलियपविट्ठा च अस्सिं समए वेदिज्जमा-णिगाए संगहकिट्टीए पयोगसा संकमंति ।" इति । अथोपर्युक्तसंग्रह

गाथा प्रस्तुतमाश्रित्य व्याख्यायते—क्रोधप्रथमसंग्रहकिट्टिवेदनाद्धाचरमसमये समयोनद्व्यावलिकाबद्धनूतनदलं समयाधिकाऽऽवलिकागतं च प्रदेशाग्रं मुक्त्वा क्रोधप्रथमसंग्रहकिट्ट्याः सर्वदलं सङ्क्रान्तम्। अथ क्रोधद्वितीयसंग्रहकिट्टिवेदनाद्धाप्रथमसमये नूतनबद्धदलमपि यथायोग्यं संक्रमयति, तेन द्विसमयोनद्व्यावलिकाबद्धनूतनदलं क्रोधप्रथमसंग्रहकिट्टेर्द्वितीयस्थितौ विद्यते। तथा क्रोधप्रथमसंग्रहकिट्टिप्रथमस्थितिरुदयावलिकाप्रमाणाऽवशिष्यते, प्रागुक्तसमयाधिकावलिकात उदयेनैकस्य निषेकस्य क्षीणत्वात्। इत्थं क्रोधप्रथमसंग्रहकिट्ट्या द्विसमयोनद्व्यावलिकाबद्धनूतनदलमुदयावलिकागतं च दलं क्रोधद्वितीयसंग्रहकिट्टिवेदनाद्धाप्रथमसमये विद्यते। उक्तं च कषायप्राभृतचूर्णौ—"ताधे कोहस्स पढमकिट्टीए संतकम्मं दो आवलियबंधा दुसमयूणा सेसा, जं च उदयावलियं पविट्ठं, तं च सेसं पढमकिट्टीए।" इति। प्रथमस्थितेरुदयाऽऽवलिकागतं च दलं क्रमशः स्तिबुकसंक्रमेण वेद्यमानसंग्रहकिट्टौ संक्रम्य नाशयति। एवमग्रेऽपि शेषाणां क्रोधद्वितीयसंग्रहकिट्टिप्रभृतिलोभद्वितीयसंग्रहकिट्टिपर्यवसानानामुदयावलिकागतं दलिकं वेद्यमानसंग्रहकिट्टौ स्तिबुकसंक्रमेण संक्रम्य विनाशयति। यदुक्तं सप्ततिकाचूर्णौ सूक्ष्मसम्परायप्ररूपणावसरे—अतीयासु आवलिया छड्डियाओ, ताओ सव्वत्थ वेतिज्जमाणीसु थिवुगसंकमेणं विपच्चंति। एसो पुव्वमवक्खाणिओ अत्थो, अओ इयाणि भणितो।" इति। श्रीमन्मलयगिरिपादादयस्तु तृतीयसंग्रहकिट्टेरेवावलिकागतं दलं स्तिबुकसङ्क्रमेण संक्रमयति, प्रथमसंग्रहकिट्टिद्वितीयसंग्रहकिट्ट्योस्तु यथास्वं द्वितीयसंग्रहकिट्टितृतीयसंग्रहकिट्ट्यन्तर्गतं वेद्यत इत्याहुः। तथा च तद्ग्रन्थः पूर्वोक्ताश्चावलिकास्तृतीयकिट्टिगताः शेषीभूता अपि वेद्यमानासु परप्रकृतिषु स्तिबुकसङ्क्रमेण सङ्क्रमयति, प्रथमद्वितीयकिट्टिगताश्च यथास्वं द्वितीयतृतीयकिट्ट्यन्तर्गता वेद्यन्ते।" इति। इदन्तु बोध्यम्-इह निषेकविवक्षया क्रोधप्रथमसंग्रहकिट्टेः समयोनावलिकामात्री प्रथमस्थितिः क्रोधद्वितीयसंग्रहकिट्टिवेदनप्रथमसमये बोध्या, उदयावलिकागतप्रथमनिषेकदलस्य क्रोधद्वितीयसंग्रहकिट्टितया परिणतत्वात्। कालविवक्षया पुनः क्रोधप्रथमसंग्रहकिट्टिप्रथमस्थितिरावलिकामात्री, यत उदयनिषेकस्य संक्रान्तत्वेऽपि प्रथमस्थितिचरमनिषेक आवलिकाया अन्ते प्राप्यते, तं निषेकमाश्रित्य कालविवक्षया क्रोधप्रथमसंग्रहकिट्टिप्रथमस्थितिरावलिकाप्रमाणा भवति, यथाऽबाधायां दलनिक्षेपाभावेऽपि स्थितिश्चरमनिषेकमाश्रित्य भण्यते। एवं क्रोधतृतीयादिसंग्रहकिट्टिवेदनाद्धाप्रथमसमयेऽयमर्थो भावनीयः। ॥१६९॥

क्रोधप्रथमसंग्रहकिट्टिवेदनाद्धाद्विचरमसमयं यावत् क्रोधसंग्रहकिट्टीनां दलिकापेक्षया-ऽवस्थानम्

अपान्तर-किट्टयः $\frac{१}{२४}$ | अवान्तर-किट्टयः $\frac{१}{२४}$ | अवान्तरकिट्टयः $\frac{१३}{२४}$

क्रोधतृतीयसंग्रहकिट्टि क्रोधद्वितीयसंग्रहकिट्टि क्रो ध प्र थ म स ग्र ह कि ट्टि

क्रोधप्रथमसंग्रहकिट्टिवेदनाद्धाचरमसमये समयोनद्वयावलिकाबद्धनूतनदलमुदयावलिकागतं च दलं वर्जयित्वा सर्वदलस्य बहुसंख्येयभागमात्रदलं क्रोधद्वितीयसंग्रहकिट्टितया परिणमयति । तेन क्रोधद्वितीयसंग्रहकिट्टिसकलदलं चतुर्दशचतुर्विंशतिभागप्रमाणं ($\frac{१४}{२४}$) जायते । एवं क्रोधद्वितीयसंग्रहकिट्टया अवान्तरकिट्टयो-ऽपि चतुर्दशचतुर्विंशतिभागप्रमाणाः सम्पद्यन्ते । तेनोपरि दर्शितचित्रतो-ऽस्मिंश्चित्रे क्रोधद्वितीयकिट्टयायाम एकचतुर्विंशति-भागेनाऽधिको दर्शितः ।

अवान्तर-किट्टयः $\frac{१}{२४}$ | अवान्तरकिट्टयः $\frac{१४}{२४}$

क्रोधतृतीयसंग्रहकिट्टि क्रो ध द्वि ती य सं ग्र ह कि ट्टिः

क्रोधद्वितीयसंग्रहकिट्टिपूर्वाऽवान्तरकिट्टितोऽपूर्वाऽवान्तरकिट्टावसंख्येयगुणं दलं दत्त्वा यथोत्तरं द्वादशस्ववान्तरकिट्टयन्तरोत्पन्ना-ऽपूर्वावान्तरकिट्टिषु विशेषहीनं दद्यात् । ततः पुनः पूर्वाऽवान्तरकिट्टयामसंख्येयगुणहीनं प्रक्षिपेत् । ततो-ऽपूर्वा-ऽवान्तरकिट्टावसंख्येयगुणं प्रक्षिपेत् । ततः परं यथोत्तरं द्वादशस्ववान्तरकिट्टयन्तरोत्पन्नापूर्वावान्तरकिट्टिषु विशेषहीनं दलं दद्यादिति स्वीकर्तव्यम्, अन्यथैकगोपुच्छाकारभङ्गः प्रसज्येत । न च कुत्रचिदपि ग्रन्थेऽनेन प्रकारेण दलनिक्षेपविधिर्भणितः, तेन क्रोधद्वितीयसंग्रहकिट्टेरवान्तरकिट्टयन्तरोत्पन्ना-ऽपूर्वाऽवान्तरकिट्टिषु दीयमानदलतः क्रोधद्वितीयसंग्रहकिट्टयन्तरोत्पन्नाऽपूर्वावान्तरकिट्टिष्वसंख्येयगुणं दलं दीयमानं भवति । दीयमानदलस्य चा-ऽसंख्येयगुणत्वात् क्रोधद्वितीयसंग्रहकिट्टेरवान्तरकिट्टयन्तरोत्पन्नाऽपूर्वाऽवान्तरकिट्टितः क्रोधद्वितीयसंग्रहकिट्टयन्तरेऽसंख्येयगुणा अपूर्वाऽवान्तरकिट्टयो निर्वर्त्यन्ते । एवमग्रेऽपि तत्तत्संग्रहकिट्टिवेदनकालचरमसमये यथायोग्यं भावनीयम् । पश्यन्तु पाठका यन्त्रकम्–२३ ।

शेषसंग्रहकिट्टिप्रदेशसंक्रमस्तु पूर्ववद् भणितव्यः, विशेषाभावात् ॥१६७॥

पञ्चषष्ट्यधिकशततमषट्षष्ट्यधिकशततमरूपगाथाद्वयं समाश्रित्य यन्त्रकम्

(१) क्रोधप्रथमसंग्रहकिट्टिप्रथमस्थितेरावलिकाद्वये शेष आगालो व्यवच्छिद्यते । (गाथा-१६५)
(२) यदा क्रोधप्रथमसंग्रहकिट्टिप्रथमस्थिते समयाधिकावलिका शेषा भवति, तदा
 (क) क्रोधस्य जघन्यस्थित्युदीरणा । (गाथा-१६५)
 (ख) क्रोधप्रथमसंग्रहकिट्टेश्चरमोदय. । (गाथा-१६६)
 (ग) संज्वलनचतुष्कस्य बन्धोऽन्तर्मुहूर्तन्यूनशतदिवसा ।
 (घ) शेषघातित्रयस्य स्थितिबन्धोऽन्तर्मुहूर्तन्यूनदशवर्षा ।
 (ङ) अघातिकर्मणां स्थितिबन्ध सख्यातवार्षिक ।
 (च) संज्वलनचतुष्कस्य स्थितिसत्त्वमन्तर्मुहूर्तन्यूनाष्टमासाधिकषड्वर्षा । (गाथा-१६७)
 (छ) शेषघातिकर्मणा स्थितिसत्त्व सख्यातवार्षिकम् ।
 (ज) नामगोत्रवेदनीयानां स्थितिसत्त्वमसख्येयवर्षप्रमितम् ।
 (झ) क्रोधप्रथमसंग्रहकिट्टिवेदनाद्धाद्विचरमसमयं यावत् क्रोधप्रथमसंग्रहकिट्टिवेदनाद्धाप्रथमसमयबन्धविरहिताऽवान्तरकिट्टीनामसंख्येयभागमात्र्योऽवान्तरकिट्टयो नाश्यन्ते, चरमसमये तूदयसमयाधिकावलिकागतं समयोनद्व्यावलिकाबद्धनूतनं च दल वर्जयित्वा शेषं सर्वं क्रोधप्रथमसंग्रहकिट्टिप्रतिबद्धदलं यथासंभव क्रोधद्वितीयसंग्रहकिट्टितृतीयसंग्रहकिट्टिमानप्रथमसंग्रहकिट्टितया परिणमयति ।

क्रोधप्रथमसंग्रहकिट्टिचरमोदयं परिपाल्य क्षपको यत्करोति, तदाह

सेकाले ओकड्ढित्तु विइयकिट्टिं कुणेइ पढमठिइं ।
ताहे च एव वेयइ बीयं कोहस्स किट्टिं तु ॥१६८॥

अनन्तरकालेऽपकृष्य द्वितीयकिट्टिं करोति प्रथमस्थितिम् ।
तदानीं चैव वेदयति द्वितीयां क्रोधस्य किट्टिं तु ॥१६८॥ इति पदसंस्कार ।

क्रोधद्वितीयसंग्रहकिट्टिवेदनप्रथमसमयमाश्रित्य यन्त्रकम्

(१) क्रोधद्वितीयसंग्रहकिट्टिवेदनाद्धाया प्रथमसमये उदयसमयादारभ्य स्ववेदनकालत आवलिकयाऽधिकायां स्थितौ दलमसंख्येयगुणक्रमेण प्रक्षिप्य क्रोधद्वितीयसंग्रहकिट्टया प्रथमस्थितिं करोति ।
(२) कालविवक्षयाऽऽवलिकाप्रमाणा निषेकविवक्षया तु समयोनाऽऽवलिकाप्रमाणा क्रोधप्रथमसंग्रहकिट्टिप्रथमस्थितिरवशिष्यते ।
(३) उदयनिषेकगतं क्रोधप्रथमसंग्रहकिट्टिदलं द्वितीयसंग्रहकिट्टितया परिणतम् ।
(४) प्रथमस्थित्यामुदयावलिकागतं द्वितीयस्थितौ च द्विसमयोनद्वयावलिकाबद्धं क्रोधप्रथमसंग्रहकिट्टिदलमवशिष्यते ।
(५) स्थितिषु वेद्यमानाऽवेद्यमानसंग्रहकिट्टीनां प्रदेशावस्थानमनुभागावस्थानं चाऽष्टाधिकशततमैकोनविंशत्युत्तरशततमगाथोक्तमत्राऽपि बोध्यम् ।

क्रोधद्वितीयसंग्रहकिट्टिप्रथमसमयतः प्रभृति स्ववेदनकालचरमसमयं यावत् क्रोधप्रथमसंग्रहकिट्टिवेदकविधिमतिदिदिक्षुराह—

वंधो उदओ णासो संकमणमपुव्वकिट्टिणिव्वत्ती ।
किट्टीअप्पावहुअं पएसथोववहुअं य पढमव्व ॥ १७० ॥ (गीतिः)

वन्ध उदयो नाशः संक्रमणमपूर्वकिट्टिनिर्वृत्ति ।
किट्टयल्पबहुत्वं प्रदेशस्तोकबहुत्वं च प्रथमावत् ॥ १७० ॥ इति पदसंस्कारः ।

'वंधो' इत्यादि, वन्ध उदयो नाशः संक्रमणमपूर्वकिट्टिनिर्वृत्तिः किट्टयल्पबहुत्वं प्रदेशाल्पबहुत्वं च 'प्रथमावत्' क्रोधद्वितीयसंग्रहकिट्टिवेदनकाले क्रोधप्रथमसंग्रहकिट्टिवेदनकालवज्ज्ञातव्यम् । तथाहि क्रोधद्वितीयसंग्रहकिट्टेरुपरितनीरधस्तनीश्चाऽसंख्येयभागप्रमाणा अवान्तरकिट्टीर्वर्जयित्वा शेषा मध्यमाः स्वस्वरूपेणाऽवान्तरकिट्टय उदयन्ति, बध्यन्ते च । तत्राऽपि बन्धत उदये विशेषाधिका अवान्तरकिट्टयो भवन्ति, तथा बन्धोदययोर्जघन्योत्कृष्टतोऽल्पबहुत्वं गोमूत्रिकया वक्तव्यम् ।

अवान्तरकिट्टिनाशोऽपि प्रथमसंग्रहकिट्टिवद् बोध्यः । इदमुक्तं भवति—यथा क्रोधप्रथमसंग्रहकिट्टिवेदकः सर्वसंग्रहकिट्टीनामुपरितनीरसंख्येयभागमिता अवान्तरकिट्टीर्नाशयति त्था, तथा क्रोधद्वितीयसंग्रहकिट्टिवेदकोऽपि संग्रहकिट्टीनामुपरितनीरसंख्येयभागप्रमाणा अवान्तरकिट्टीर्विनाशयति ।

क्रोधद्वितीयसंग्रहकिट्टिवेदकस्य संक्रमोऽपि क्रोधप्रथमसंग्रहकिट्टिवेदकवज्ज्ञातव्यः । तथाहि—क्रोधद्वितीयसंग्रहकिट्टिदलं क्रोधतृतीयसंग्रहकिट्टौ मानप्रथमसंग्रहकिट्टौ च संक्रमयति । क्रोधतृतीयसंग्रहकिट्टिदलं मानप्रथमसंग्रहकिट्टावेव संक्रमयति । मानप्रथमसंग्रहकिट्टिदलं मानस्य द्वितीयसंग्रहकिट्टौ तृतीयसंग्रहकिट्टौ मायायाश्च प्रथमसंग्रहकिट्टौ संक्रमयति । मानद्वितीयसंग्रहकिट्टिदलं मानतृतीय-

संग्रहकिट्टौ मायाप्रथमसंग्रहकिट्टौ च संक्रमयति । मानतृतीयसंग्रहकिट्टिदलं मायाप्रथमसंग्रहकिट्टावेव संक्रमयति । मायाप्रथमसंग्रहकिट्टिदलं मायाया द्वितीयसंग्रहकिट्टौ तृतीयसंग्रहकिट्टौ लोभप्रथमसंग्रहकिट्टौ च सङ्क्रमयति, मायाया द्वितीयसंग्रहकिट्टिदलं तृतीयसंग्रहकिट्टौ लोभप्रथमसंग्रहकिट्टौ च संक्रमयति । मायायास्तृतीयसंग्रहकिट्टिदलं लोभस्य प्रथमसंग्रहकिट्टयामेव संक्रमयति, लोभस्य प्रथमसंग्रहकिट्टिदलं लोभस्य द्वितीयसंग्रहकिट्टौ तृतीयसंग्रहकिट्टौ च संक्रमयति । लोभद्वितीयसंग्रहकिट्टिदलं लोभतृतीयसंग्रहकिट्टौ संक्रमयति । लोभतृतीयसंग्रहकिट्टिदलं त्वन्यत्र न संक्रमयति, अनानुपूर्वीसंक्रमाऽभावात् । न्यगादि च कषायप्राभृतचूर्णौ–"**एत्थ संकममाणयस्स पदेसग्गस्स विधिं वत्तइस्सामो । तं जहा कोहविदियकिट्टीदो पदेसग्गं कोहतदियं च माणपढमं च गच्छदि । कोहस्स तदियादो किट्टीदो माणस्स पढमं चेव गच्छदि । माणस्स पढमादो किट्टीदो माणस्स विदियं तदियं मायाए पढमं च गच्छदि । माणस्स विदियकिट्टीदो माणस्स तदियं च मायाए पढमं च गच्छदि । माणस्स तदियकिट्टीदो मायाए पढमं गच्छदि । मायाए पढमादो पदेसग्गं मायाए विदियं तदियं च लोभस्स पढमकिट्टिं च गच्छदि । मायाए विदियादो किट्टीदो पदेसग्गं मायाए तदियं लोभस्स पढमं च गच्छदि । मायाए तदियादो किट्टीदो पदेसग्गं लोभस्स पढमं गच्छदि । लोभस्स पढमादो किट्टीदो पदेसग्गं लोभस्स विदियं तदियं च गच्छदि । लोभस्स विदियादो पदेसग्गं लोभस्स तदियं गच्छदि ।**" इति ।

इदमत्राऽवधेयम्–"**जं संगहकिट्टिं**" इत्यादि सप्तविंशत्यधिकशततमगाथाया व्याख्यानात् क्रोधद्वितीयसंग्रहकिट्टितः क्रोधतृतीयसंग्रहकिट्टावितरसंग्रहकिट्टयपेक्षया संख्यातगुणं दलं संक्रमयति, शेषाऽल्पबहुत्वं च पूर्ववत् स्वयमेवोहनीयम्, सुगमत्वान्नाभिधीयते ।

यथा क्रोधप्रथमसंग्रहकिट्टिं वेदयन् संग्रहकिट्टयन्तरेषु निष्पाद्यमानाऽपूर्वाऽवान्तरकिट्टितोऽवान्तरकिट्टयन्तरेषु निष्पाद्यमानाऽपूर्वावान्तरकिट्टीरसंख्येयगुणा निर्वर्तयति स्म, तासु च दलनिक्षेपं करोति स्म, तथैव क्रोधद्वितीयसंग्रहकिट्टिवेदकोऽपि करोति ।

संग्रहकिट्टीनां प्रदेशानामवान्तरकिट्टीनां चाऽल्पबहुत्वं प्रथमसंग्रहकिट्टिवेदकवज्ज्ञातव्यम्, नवरमत्रैकादशसंग्रहकिट्टीराश्रित्य प्रदेशानामवान्तरकिट्टीनां चाऽल्पबहुत्वमभिधातव्यम्, तत्राऽपि क्रोधद्वितीयसंग्रहकिट्टेर्दलमितरसंग्रहकिट्टितः संख्यातगुणं वक्तव्यम्, क्रोधप्रथमसंग्रहकिट्टिनष्टसंख्येयभागमात्रदलस्य तत्र प्रक्षिप्तत्वात् । एवमवान्तरकिट्टयोऽपि वाच्याः । तथाहि–मानस्य प्रथमसंग्रहकिट्टौ प्रदेशाः स्तोका भवन्ति । ततो विशेषाधिका मानस्य द्वितीयसंग्रहकिट्टौ भवन्ति, आधिक्यं

च पूर्वपदगतप्रदेशान् पल्योपमाऽसंख्येयभागेन खण्डयित्वैकखण्डेन बोध्यम् । एवमग्रेऽपि स्वस्थाने वक्तव्यम् । ततो विशेषाधिकाः प्रदेशा मानस्य तृतीयसंग्रहकिट्टावभिधातव्याः । ततो विशेषाधिकाः प्रदेशाः क्रोधस्य तृतीयसंग्रहकिट्टौ निश्चेतव्याः । आधिक्यं च पूर्वपदगतप्रदेशानावलिकाऽसंख्येयभागेन भक्त्वैकखण्डेन ज्ञातव्यम् । एवमग्रेऽपि परस्थाने वक्तव्यम् । ततो विशेषाधिकाः प्रदेशा मायायाः प्रथमसंग्रहकिट्टौ वक्तव्याः । ततो विशेषाधिकाः प्रदेशा मायाया द्वितीयसंग्रहकिट्टौ निश्चेतव्याः । ततो विशेषाधिकाः प्रदेशा मायायास्तृतीयसंग्रहकिट्टौ भणितव्याः । ततो विशेषाधिका लोभस्य प्रथमसंग्रहकिट्टौ मन्तव्याः । ततोऽपि विशेषाधिका लोभस्य द्वितीयसंग्रहकिट्टौ वाच्याः । ततोऽपि लोभतृतीयसंग्रहकिट्टौ प्रदेशा विशेषाधिका अवगन्तव्याः । ततः सङ्ख्यातगुणाः प्रदेशाः क्रोधस्य द्वितीयसंग्रहकिट्टौ निगदितव्याः, गुणकारश्चात्र चतुर्दशराशिः । तथाहि लोभतृतीयसंग्रहकिट्टौ मोहनीयदलस्य चतुर्विंशतिभागप्रमाणं दलं विद्यते । क्रोधद्वितीयसंग्रहकिट्टावपि स्वदलं मोहनीयसकलदलस्य चतुर्विंशतिभागप्रमाणं विद्यते स्म, त्रयोदशचतुर्विंशतिभागप्रमाणं च क्रोधप्रथमसंग्रहकिट्टिदलं क्रोधद्वितीयसंग्रहकिट्ट्यां संक्रमेण प्रक्षिप्तम् , तेन तस्यां चतुर्दशचतुर्विंशतिभागप्रमितं दलं जायते । तच्चाऽवस्तनराशिनैकचतुर्विंशतिभागलक्षणेन विभज्यते, तदा गुणकसंख्या चतुर्दश प्राप्यते ।

संग्रहकिट्टीनामवान्तरकिट्टयोऽप्यनेनाऽल्पबहुत्वक्रमेण वक्तव्याः, दलिकानुसारेणैवाऽवान्तरकिट्टिराशिदर्शनात् । यदवादि कषायप्राभृतचूर्णौ—"**कोधविदियकिट्टीए पढमसमयवेदगस्स एक्कारससु संगहकिट्टीसु अंतरकिट्टीणमप्पाबहुअं वत्तइस्सामो । तं जहा—सव्वत्थोवाओ माणस्स पढमाए संगहकिट्टीए अंतरकिट्टीओ, विदियाए संगहकिट्टीए अंतरकिट्टीओ विसेसाहियाओ, तदियाए संगहकिट्टीए अंतरकिट्टीओ विसेसाहियाओ कोहस्स तदियाए संगहकिट्टीए अंतरकिट्टीओ विसेसाहियाओ । मायाए पढमाए संगहकिट्टीए अंतरकिट्टीओ विसेसाहियाओ, विदियाए संगहकिट्टीए अंतरकिट्टीओ विसेसाहियाओ, तदियाए संगहकिट्टीए अंतरकिट्टीओ विसेसाहियाओ । लोभस्स पढमाए संगहकिट्टीए अंतरकिट्टीओ विसेसाहियाओ, विदियाए संगहकिट्टीए अंतरकिट्टीओ विसेसाहियाओ, तदियाए संगहकिट्टीए अंतरकिट्टीओ विसेसाहियाओ, कोहस्स विदियाए संगहकिट्टीए अंतरकिट्टीओ संखेज्जगुणाओ । पदेसग्गस्स वि एवं चेव अप्पाबहुअं ।**" इति ॥१७०॥

ननु क्रोधद्वितीयसंग्रहकिट्टेर्वेदकस्य बन्धः "पढमव्व" इत्यनेनातिदिष्टः, तत्र क्रोधप्रथमसंग्रहकिट्टिं वेदयन् सर्वेषां कषायाणां प्रथमसंग्रहकिट्टिं बध्नाति स्म । अत्र किं द्वितीयसंग्रहकिट्टिं वेदयन् सर्वेषां द्वितीयसंग्रहकिट्टिं बध्नाति ? उताऽस्ति कश्चिद् विशेषः ? इति जिज्ञासायां संग्रहगाथया भणति—

वेइज्जमाणगस्स कसायस्स अणुहवए तु जं किट्टिं ।
तं चेव बंधइ पराणं पढमं बंधए न परं ॥१७१॥

वेद्यमानस्य कषायस्यानुभवति तु यां किट्टिम् ।
तां चैव बध्नाति परेषां प्रथमां बध्नाति न पराम् ॥१७१॥ इति पदसंस्कारः ।

'वेइज्ज०' इत्यादि, 'वेद्यमानस्य' अनुभूयमानस्य तु 'कषायस्य' क्रोध-मान-माया-लोभानामन्यतमकषायस्य 'यां किट्टिं' प्रथमसंग्रहकिट्टिद्वितीयसंग्रहकिट्टितृतीयसंग्रहकिट्टीनामन्यतमां यां संग्रहकिट्टिमनुभवति, तां चैव संग्रहकिट्टिं बध्नाति । 'पराणं' इत्यादि, 'परेषाम्' अवेद्यमानकषायाणां प्रथमां संग्रहकिट्टिं बध्नाति, न 'परां' द्वितीयसंग्रहकिट्टितृतीयसंग्रहकिट्टिलक्षणामन्याम् । उक्तञ्च कषायप्राभृतचूर्णौ–"जस्स जं किट्टिं वेदयदि, तस्स कसायस्स तं किट्टिं बंधदि, सेसाणं कसायाणं पढमकिट्टीओ बंधदि ।" इति । इयं च संग्रहगाथा । तेन प्रकृतेऽस्याः संग्रहगाथाया व्याख्यानं दर्श्यते–क्रोधद्वितीयसंग्रहकिट्टिं वेदयन् क्षपकः क्रोधस्य द्वितीयसंग्रहकिट्टिं बध्नाति, मानादीनां तु प्रथमसंग्रहकिट्टिं बध्नाति । एवमग्रेऽपि यथास्थानं भावनीयम् ।

अनेन विधिना क्रोधद्वितीयसंग्रहकिट्टिं वेदयतो जीवस्य क्रोधद्वितीयसंग्रहकिट्टिप्रथमस्थितौ द्व्यावलिकाशेषायां 'वेइज्जं०' इत्यादि पञ्चषष्ट्यधिकशततमगाथा प्रस्तुतमाश्रित्य व्याख्यायेत । तथाहि–क्रोधद्वितीयसंग्रहकिट्टिप्रथमस्थितौ द्व्यावलिकाशेषायामागालो व्यवच्छिद्यते । अभाणि च कषायप्राभृतचूर्णौ–"कोहस्स विदियकिट्टिं वेदयमाणस्स जा पढमट्ठिदी, तिस्से पढमट्ठिदीए आवलिय-पडिआवलियाए सेसाए आगाल-पडिआगालो वोच्छिण्णो ।" इति । न च किट्टिकरणात्प्रभृति मोहनीयकर्मण उद्वर्तना न भवतीत्युक्तमेकोत्तरशततमगाथायाम् । तेन प्रस्तुतचूर्णौ प्रथमस्थितितो द्वितीयस्थितौ प्रदेशगमनलक्षणस्य प्रत्यागालस्य व्यवच्छेदो व्यर्थः, प्रवृत्तस्यैव विच्छेदस्य न्याय्यत्वादिति वाच्यम्, द्वितीयस्थितितः प्रथमस्थितावपवर्तनया दलिकाऽऽगमनस्य संभवेन तन्निषेधस्याऽऽवश्यकत्वेनाऽऽगालव्यवच्छेदस्य न्याय्यत्वेन तत्साहचर्यात् पाठभङ्गभयाद्वा चूर्णिकाराणां प्रत्यागालोक्तिसंभवात् 卐 । ततः समयोनाऽऽवलिकायां गतायां क्रोधप्रथमसंग्रहकिट्टिप्रथमस्थितौ समयाऽधिकाऽऽवलिकाशेषायां प्रथमस्थितिचरमनिषेकतः क्रोधदलमुदये प्रक्षिपतः क्षपकस्यैकस्थितिप्रमाणा क्रोधस्य जघन्यस्थित्युदीरणा भवति ।

तदानीं चैव क्रोधद्वितीयसंग्रहकिट्टिचरमोदयः प्रवर्तते, ततः परं क्रोधतृतीयसंग्रहकिट्टिवेदनात् । उक्तं च कषायप्राभृतचूर्णौ–"तिस्से चेव पढमट्ठिदीए समयाहियाए आवलियाए सेसाए ताहे कोहस्स विदियकिट्टीए चरिमसमयवेदगो ।" इति ॥१७१॥

卐समाहितं च जयधवलाकारैरपि"जइ वि एत्थ किट्टीकरणद्धापारंभप्पहुडि मोहणीयस्स उक्कड्डणाभावेण पढमट्ठिदीदो विदियट्ठिदिम्मि पदेससंचारो णत्थि, तो वि विदियट्ठिदीदो पढमट्ठिदीए ओकड्डिज्जमाणपदेसग्गस्स एण्हिमणागमणं पेक्खियूणागालपडिआगालवोच्छेदो णिद्दिट्ठो ।" इति ।

यन्त्रकम् (गाथा-१७०)

(१) क्रोधद्वितीयसंग्रहकिट्टिवेदनाद्धाप्रथमसमयत: प्रभृति क्रोधद्वितीयसंग्रहकिट्टया अधस्तनीरुपरितनीश्चाऽसंख्येयभागप्रमाणा अवान्तरकिट्टीर्वर्जयित्वा शेषा अवान्तरकिट्टीर्बध्नाति वेदयति च।
(२) बध्यमानावान्तरकिट्टित उदयमाना अवान्तरकिट्टयो विशेषाधिका भवन्ति।
(३) प्रतिसमयमनुसमयापवर्तनाघातेनोपरितनाऽसंख्येयभागप्रमाणा अवान्तरकिट्टीर्घातयति।
(४) क्रोधप्रथमकिट्टिवेदकवत् संग्रहकिट्टयन्तरेष्ववान्तरकिट्टयन्तरेषु चाऽपूर्वावान्तरकिट्टीर्निर्वर्तयति।
(५) एकादशानां संग्रहकिट्टीनां प्रदेशाल्पबहुत्वमवान्तरकिट्टयल्पबहुत्वञ्च चतुर्नवतितमादिगाथाभिर्यथाऽभिहितम्, तथैवा-ऽत्र बोध्यम्, नवरं लोभतृतीयसंग्रहकिट्टित: क्रोधद्वितीयसंग्रहकिट्टया प्रदेशा अवान्तरकिट्टयश्च संख्येयगुणा वाच्या।
(६) क्रोधद्वितीयसंग्रहकिट्टया: प्रथमस्थित्यां द्व्यावलिकाशेषायामागालो व्यवच्छिद्यते।
(७) क्रोधद्वितीयसंग्रहकिट्टया प्रथमस्थितौ समयाधिकावलिकाशेषायां क्रोधस्य जघन्यस्थित्युदीरणा भवति।
(८) क्रोधद्वितीयसंग्रहकिट्टया प्रथमस्थित्यां समयाधिकावलिकाशेषायां क्रोधद्वितीयसंग्रहकिट्टयाश्चरमोदय।

अथ चरमोदये समानामपि कर्मणां स्थितिबन्धमभिधित्सुराह

चरिमे बंधो मोहस्स देसऊणा दिणा असीई उ।
घाईणदपुहुत्तं पराण संखियसहस्सवरिसाइं ॥१७२॥ (गीतिः)

चरिमे बन्धो मोहस्य देशोना दिना अशीतिस्तु।
घातिनामब्दपृथक्त्वं परेषां संख्यसहस्रवर्षाणि ॥१७२॥ इति पदसंस्कारः।

'चरिमे' इत्यादि, 'चरमे' क्रोधद्वितीयसंग्रहकिट्टयुदयचरमसमये क्रोधद्वितीयसंग्रहकिट्टिप्रथमस्थितौ समयाऽधिकाऽऽवलिकाशेषायामित्यर्थः, 'मोहस्य' संज्वलनचतुष्कस्य 'बन्धः' 'स्थितिबन्धो' 'देशोनाः' अन्तर्मुहूर्तन्यूना 'अशीतिस्तु' अशीतिसंख्याकास्तु 'दिनाः' दिवसा भवति, क्रोधप्रथमसंग्रहकिट्टिवेदनचरमसमयप्ररूपणाऽवसरे द्वितीयसंग्रहकिट्टिवेदनकाले स्थितिबन्धस्याऽन्तर्मुहूर्तन्यूनविंशतिदिनप्रमाणहानेस्त्रैराशिकेन साधितत्वात्।

'घाईण०' इत्यादि, घातिनां कर्मणां स्थितिबन्धो 'अब्दपृथक्त्वं' वर्षपृथक्त्वं भवति। अत्र घातिशब्देन ज्ञानावरणदर्शनावरणाऽन्तराया ग्राह्याः, मोहनीयबन्धस्य पृथगभिहितत्वात्। अयं भावः मोहनीयस्य स्थितिबन्धो विशेषतो देशोनाऽशीतिदिवसाः प्रोक्तः। इह तु सामान्येन घातिकर्मणां स्थितिबन्ध उच्यते, तेन मोहनीयस्य स्थितिबन्धो देशोनाऽशीतिदिवसा भवति, वर्षपृथक्त्वं तु घातिवचनेन ज्ञानावरणदर्शनावरणाऽन्तरायाणां जायते, अन्यथा पृथग् मोहनीयस्थितिबन्धविधानस्य वैयर्थ्यं प्रसज्येत। क्रोधप्रथमसंग्रहकिट्टिवेदनचरमसमये घातित्रयस्य

स्थितिबन्धोऽन्तर्मुहूर्तन्यूनदशवर्षप्रमाण आसीत् , स क्रोधद्वितीयसंग्रहकिट्टिवेदनकाले संख्यातेषु स्थितिबन्धेषु गतेषु क्रोधद्वितीयसंग्रहकिट्टिवेदनचरमसमये वर्षपृथक्त्वमात्रो जायते ।

'परागं' इत्यादि, 'परेषां' त्रयाणामघातिकर्मणां नाम-गोत्र-वेदनीयलक्षणानां स्थितिबन्धः 'संख्यसहस्रवर्षाणि भवति, क्रोधप्रथमसंग्रहकिट्टिवेदनचरमसमयतः प्रतिस्थितिबन्धमघातिकर्मणां स्थितिबन्धो हीयमानः सन्निदानीमपि संख्यातसहस्रवर्षप्रमाणो भवति । उक्तं च कषायप्राभृतचूर्णौ—"ताधे संजलणाणं ठिदिबंधो बे मासा वीसं च दिवसा देसूणा । तिण्हं घादिकम्माणं ठिदिबंधो वासपुधत्तं । सेसाणं कम्माणं ठिदिबंधो संखेज्जाणि वस्ससहस्साणि ।" इति ॥१७२॥

अथ क्रोधद्वितीयसंग्रहकिट्टिवेदनाद्धाचरमसमये सप्तानामपि कर्मणां स्थितिसत्त्वमभिधित्सुराह—

मोहस्स देसऊणा चउमासऽहिअपणहायणा घाईणं ।
संखसहस्सवरिसगाइं इयराणं असंखवरिसा संतं ॥१७३॥ (आर्यागीतिः)

मोहस्य देशोनाश्चतुर्मासाधिकपञ्चहायना घातिनाम् ।
सङ्ख्यसहस्रवर्षाणीतरेषामसङ्ख्यवर्षा सत्त्वम् ॥१७३॥ इति पदसंस्कारः ।

'मोहस्स' इत्यादि, क्रोधद्वितीयसंग्रहकिट्टिवेदनाद्धायाश्चरमसमये 'मोहस्य' संज्वलनचतुष्कस्य 'सत्त्वं' स्थितिसत्त्वं 'चतुर्मासाधिकपञ्चहायनाः' चतुर्भिर्मासैरधिकानि पञ्चवर्षाणि जायते, क्रोधप्रथमसंग्रहकिट्टिवेदनाद्धाचरमसमयप्ररूपणाऽवसरे क्रोधद्वितीयसंग्रहकिट्टिवेदनकालेऽन्तर्मुहूर्तन्यूनषोडशमासैः स्थितिसत्त्वस्य हानेस्त्रैराशिकेन साधितत्वात् । अयं भावः—क्रोधप्रथमसंग्रहकिट्टिवेदनचरमसमये मोहनीयस्य यत्स्थितिसत्त्वमन्तर्मुहूर्तन्यूनाऽष्टमासाधिकषड्वर्षप्रमाणमासीत् , तत् क्रोधद्वितीयसंग्रहकिट्टिवेदनकालेऽन्तर्मुहूर्तोनषोडशमासैर्हीनं सदन्तर्मुहूर्तन्यूनचतुर्मासाऽधिकपञ्चवर्षप्रमाणमिदानीं जायते ।

'घाईणं' इत्यादि, तथा 'घातिनां' ज्ञानावरण-दर्शनावरणा-ऽन्तरायाणां स्थितिसत्त्वं 'सङ्ख्यसहस्रवर्षाणि' संख्यातसहस्रवर्षप्रमितं विद्यत इति शेषः, 'परेषाम्' अघातिकर्मणां-नामगोत्र-वेदनीयानां स्थितिसत्त्वम् 'असंख्यवर्षाः' असंख्यातवार्षिकं विद्यते । क्रोधप्रथमसंग्रहकिट्टिवेदनाद्धाचरमसमये घात्यघातिकर्मणां यत्स्थितिसत्त्वं क्रमेण संख्येयासंख्येयवर्षाण्यासीत् , तत् संख्यातस्थितिघातसहस्रैर्घातितं सत् क्रोधप्रथमसंग्रहकिट्टिवेदनचरमसमयाऽपेक्षया घात्यघातिनां क्रमेण संख्येयाऽसंख्येयगुणहीनं भवदपि संख्येयाऽसंख्येयवर्षेभ्यो न्यूनं न भवतीत्यर्थः । उक्तं च कषायप्राभृतचूर्णौ—"संजलणाणं ठिदिसंतकम्मं पंच वस्साणि चत्तारि मासा अंतोमुहुत्तूणा । तिण्हं घादिकम्माणं ठिदिसंतकम्मं संखेज्जाणि वस्ससहस्साणि । णामागोदवेदणीयाणं ठिदिसंतकम्ममसंखेज्जाणि वस्साणि ।" इति ।

तथा क्रोधद्वितीयसंग्रहकिट्टिवेदनाद्धाचरमसमये क्रोधद्वितीयसंग्रहकिट्टेरुदयसमयाधिकावलिकागतं समयोनद्व्यावलिकाबद्धं च नवीनं दलं परित्यज्य शेषं क्रोधद्वितीयसंग्रहकिट्टेः सर्वं दलं गृहीत्वाऽसंख्येयभागप्रमाणदलं क्रोधतृतीयसंग्रहकिट्टेर्मानप्रथमसंग्रहकिट्टेश्च पूर्वाऽपूर्वावान्तरकिट्टिषु यथायोग्यं संक्रमयति। शेषबहुसंख्येयभागमात्रदलतः क्रोधतृतीयसंग्रहकिट्टेरधस्तादपूर्वाऽवान्तरकिट्टीर्निर्वर्तयति। तेन क्रोधद्वितीयसंग्रहकिट्टिबहुसंख्येयभागप्रमाणं दलं क्रोधतृतीयसंग्रहकिट्टौ संक्रम्यते। इत्थं तस्यां दलं मोहनीयसकलदलस्य पञ्चदशचतुर्विंशतिभागकल्पं ($\frac{15}{24}$) जायते, क्रोधद्वितीयसंग्रहकिट्टिसत्कस्य चतुर्दशचतुर्विंशतिभागप्रमाणस्य दलस्य तदानीं तत्तया (=क्रोधतृतीयसंग्रहकिट्टितया) परिणतत्वात्। तथा क्रोधतृतीयसंग्रहकिट्टौ दलमितरसंग्रहकिट्ट्यपेक्षया पञ्चदशगुणं जायते, इतरसंग्रहकिट्टीनां दलस्यैकचतुर्विंशतिभागप्रमाणत्वात्। एवं क्रोधतृतीयसंग्रहकिट्टेरवान्तरकिट्टयोऽपि बोध्याः ॥१७३॥

यन्त्रकम्

(१) मोहनीयस्य स्थितिबन्धोऽन्तर्मुहूर्तन्यूनाशीतिदिवसाः।

(२) शेषघातित्रयस्य स्थितिबन्धो वर्षपृथक्त्वम्।

(३) अघातित्रयस्य स्थितिबन्धः संख्येयवर्षसहस्राणि।

(४) मोहनीयस्य स्थितिसत्त्वमन्तर्मुहूर्तन्यूनचतुर्मासाधिका पञ्च वर्षाः।

(५) घातित्रयस्य स्थितिसत्त्वं संख्यातसहस्रवर्षाणि।

(६) अघातित्रयस्य स्थितिसत्त्वमसंख्येयवर्षाणि।

(७) समयाधिकोदयावलिकागतदलं समयोनद्व्यावलिकाबद्धनूतनदलं च वर्जयित्वाऽसंख्येयभागमात्रं च दलं मानप्रथमसंग्रहकिट्टौ प्रक्षिप्य शेषं क्रोधद्वितीयसंग्रहकिट्टिबहुसंख्येयभागप्रमाणं दलं क्रोधतृतीयसंग्रहकिट्टित्वेन परिणमयति। तेन क्रोधतृतीयसंग्रहकिट्टिदलं मोहनीयसकलदलस्य पञ्चदशचतुर्विंशतिभागकल्पं ($\frac{15}{24}$) जायते। एवं क्रोधतृतीयसंग्रहकिट्टेरवान्तरकिट्टयोऽपि वाच्याः।

क्रोधद्वितीयसंग्रहकिट्टिवेदनविधिं परिपाल्य तदनन्तरसमये यत्करोति, तद् व्याजिहीर्षुराह—

सेकाले तइयं किट्टिं ओकड्ढित्तु आइमठिइं उ।
कुणए वेयइ बीयव्व य सेसपरूवणा णेया ॥१७४॥

अनन्तरकाले तृतीयां किट्टिमपकृष्याऽऽदिमस्थितिं तु।
करोति वेदयति द्वितीयावच्च शेषप्ररूपणा ज्ञेया ॥१७४॥ इति पदसंस्कारः।

'सेकाले' इत्यादि, 'अनन्तरकाले' क्रोधद्वितीयसंग्रहकिट्टिवेदनाद्धासमाप्तेरनन्तरसमय इत्यर्थः, 'तृतीयां किट्टिं' द्वितीयस्थितिस्थक्रोधतृतीयसंग्रहकिट्टिगतप्रदेशाग्रमपकृष्योदयसमयादारभ्य शेषक्रोधवेदनकालत आवलिकयाऽधिकासु स्थितिष्वसंख्येयगुणक्रमेण निक्षिपन् 'आदिमस्थितिं'

क्रोधतृतीयसंग्रहकिट्टेः प्रथमस्थितिं तु करोति । उक्तं च कषायप्राभृतचूर्णौ–"तदो से काले कोहस्स तदियकिट्टीदो पदेसग्गमोकड्डियूण पढमट्ठिदिं करेदि ।" इति ।

'वेयइ' त्ति तदानीमेव 'वेदयति' क्रोधतृतीयसंग्रहकिट्टिमनुभवति च, उक्तं च सप्ततिकाचूर्णौ–"तओ से काले कोहस्स ततियकिट्टीओ दलियं कड्ढित्तु ततियकिट्टीए पढमठितिं करेति वेदेति य ।" इति । अत्र नवषष्ट्यधिकशततमसंग्रहगाथा प्रकृतमनुलक्ष्य व्याख्येया । तद्यथा–क्रोधतृतीयसंग्रहकिट्टिवेदनाद्धायाः प्रथमसमये क्रोधद्वितीयसंग्रहकिट्टेर्द्विसमयोनद्व्यावलिकाबद्धनूतनदलं द्वितीयस्थितौ प्रथमस्थितौ चोदयाऽऽवलिकागतं च दलं सत्कर्मणि विद्यते, ततोऽधिकं न विद्यते, शेषसर्वदलस्य क्रोधतृतीयसंग्रहकिट्टिमानप्रथमसंग्रहकिट्टितया परिणतत्वात् ।

अथ क्रोधतृतीयसंग्रहकिट्टिवेदनविधौ क्रोधद्वितीयसंग्रहकिट्टिवेदनविधिमतिदिदिक्षुराह–'बोधव्व' इत्यादि, 'द्वितीयावच्च' क्रोधद्वितीयसंग्रहकिट्टिवच्च 'शेषप्ररूपणा' बन्धोदयनाशसंक्रमाऽपूर्वावान्तरकिट्टिनिर्वृत्त्यवान्तरकिट्ट्यल्पबहुत्वादिप्ररूपणा 'ज्ञेया' ज्ञातव्या, विशेषाभावात् । यद्भाणि कषायप्राभृतचूर्णौ–"जो विदियकिट्टिं वेदयमाणस्स विधी, सो चेव विधी तदियकिट्टिं वेदयमाणस्स वि कायव्वो ।" इति । नवरं संग्रहकिट्टीनां प्रदेशाग्रमवान्तरकिट्टीश्चाश्रित्य दशपदक्रमल्पबहुत्वं ज्ञेयम् । तत्राऽपि लोभतृतीयसंग्रहकिट्टेः प्रदेशेभ्यः क्रोधतृतीयसंग्रहकिट्टेः प्रदेशाः संख्यातगुणा भवन्ति । एवमवान्तरकिट्टयोऽपि ।

एकसप्तत्यधिकशततमसंग्रहगाथा प्रस्तुतमनुलक्ष्य भावनीया । तथाहि–क्रोधतृतीयसंग्रहकिट्टिमनुभवन् क्षपकः क्रोधस्य तृतीयसंग्रहकिट्टिं बध्नाति, मानादीनां तु प्रथमसंग्रहकिट्टिं बध्नाति ।

एवंविधानेन क्रोधतृतीयसंग्रहकिट्टिं वेदयतो जीवस्य क्रोधतृतीयसंग्रहकिट्टिप्रथमस्थितौ द्व्यावलिकाशेषायां 'वेइज्ज०' इत्यादि पञ्चषष्ट्यधिकशततमसंग्रहगाथा प्रकृतमाश्रित्य व्याख्येया । तथाहि क्रोधतृतीयसंग्रहकिट्टिप्रथमस्थितेरावलिकाद्वये शेषयागालो व्यवच्छिद्यते । ततः समयोनाऽऽवलिकाप्रमाणां प्रथमस्थितिमनुभूय क्रोधतृतीयसंग्रहकिट्टिप्रथमस्थितेः समयाधिकायामावलिकायां शेषायां क्रोधस्य जघन्यस्थित्युदीरणा क्रोधतृतीयसंग्रहकिट्टेश्च चरमोदयो जायते । इत्थं त्रिः क्रोधस्य जघन्यस्थित्युदीरणा क्रोधकिट्टिवेदनाद्धायां जाता ।

क्रोधतृतीयसंग्रहकिट्टिवेदनचरमसमय एव संज्वलनक्रोधस्य जघन्यानुभागोदीरणा गुणितकर्मांशस्य च क्षपकस्य संज्वलनक्रोधस्योत्कृष्टप्रदेशोदीरणा च भवति । प्रत्यपादि च कर्मप्रकृतिचूर्णौ "पंचविहअंतराइयकेवलणाणकेवलदंसणावरणचउण्हं संजलणाणं णवण्हं णोकसायाणं एवतेसिं वीसाए पगईणं अप्पप्पणो उदीरणंते जहण्णिया अणुभागउदीरणा होति । ××× घातिकम्माणं सव्वेसिं अणुभागउदीरणाणि।

जस्स जो जो जहण्णसामी भणितो, सो चेव उक्कोसपदेसउदीरणाए उक्कोसामी गुणियकम्मंसिगो य जाणियव्वो ।" इति । तथैव कषायप्राभृतचूर्णावपि-"कोहसंजलणस्स जहण्णाणुभागउदीरणा कस्स ? खवगस्स चरिमसमयकोहवेदगस्स । ××× कोहसंजलणस्स उक्कस्सिया पदेसुदीरणा कस्स ? खवगस्स चरिमसमयकोधवेदगस्स ।" इति । एवं जघन्याऽनुभागोदयो गुणितकर्मांशस्य चोत्कृष्टप्रदेशोदयो वाच्यः, संज्वलनत्रिकस्य जघन्याऽनुभागोदीरणोत्कृष्टप्रदेशोदीरणयोः स्वामिना तुल्यत्वाद् यथाक्रमं जघन्यानुभागोदयोत्कृष्टप्रदेशोदययोः स्वामिनाम् । एवमग्रेऽपि मानमाययोर्भाव्यम् । क्रोधतृतीयसंग्रहकिट्टिप्रथमस्थितौ समयाधिकावलिकाशेषायां क्रोधस्य चरमोदयः,ततः परं तस्य क्षपकस्य क्रोधोदयाऽभावात् । उक्तं च कषायप्राभृतचूर्णौ-"तदियकिट्टिं वेदेमाणस्स जा पढमट्ठिदी, तिस्से पढमट्ठिदीए आवलियाए समयाहियाए सेसाए चरिमसमयकोधवेदगो जहण्णगो ठिदिउदीरगो ।" इति ॥१७४॥

अथ क्रोधतृतीयसंग्रहकिट्ट्या उदयचरमसमये मोहनीयस्य स्थितिबन्धं स्थितिसत्त्वं च निरूरूपयिषुराह

चरिमुदये संजलणाणं ठिइबंधो दुमासिओ होइ ।
ठिइसंतं उण चत्तारि होइ वरिसाणि मोहस्स ॥१७५॥

चरमोदये संज्वलनानां स्थितिबन्धो द्वैमासिको भवति ।
स्थितिसत्त्वं पुनश्चत्वारि भवति वर्षाणि मोहस्य ॥१७५॥ इति पदसंस्कारः ।

'चरिमुदये' इत्यादि, 'चरमोदये' क्रोधतृतीयसंग्रहकिट्टिचरमोदये=क्रोधतृतीयसंग्रहकिट्टिप्रथमस्थितौ समयाधिकावलिकाशेषायामित्यर्थः, 'संज्वलनानां' संज्वलनक्रोध-मान-माया-लोभानां स्थितिबन्धो द्वैमासिको भवति, क्रोधद्वितीयसंग्रहकिट्टिवेदनाद्धाचरमसमये यः स्थितिबन्धोऽन्तर्मुहूर्तन्यूनाऽशीतिदिवसा भवति स्म, स क्रोधतृतीयसंग्रहकिट्टिवेदनकाले त्रैराशिकसाधितैरन्तर्मुहूर्तन्यूनविंशतिदिवसैर्हीनो भवन् सम्प्रति द्विमासप्रमाणो जायत इत्यर्थः । न्यगादि च कषायप्राभृतचूर्णौ-"ताधे ठिदिबंधो संजलणाणं दो मासा पडिपुण्णा ।" इति । संज्वलनक्रोधस्यैष जघन्यस्थितिबन्धः । यदभ्यधायि श्रीमन्मलयगिरिपादैः स्थितिबन्धप्ररूपणावसरे-"संज्वलनचतुष्टयपुरुषवेदानामनिवृत्तिबादरक्षपकः तद्बन्धस्य यथास्वं चरमस्थितिबन्धे वर्तमानो जघन्यस्थितिबन्धकः तद्बन्धकेष्वस्यैवातिविशुद्धत्वात् ।" इति । तथा तदानीमेव संज्वलनक्रोधस्य सर्वजघन्याऽनुभागबन्धो जायते । यदुक्तं श्रीमन्मलयगिरिपादैरनुभागबन्धस्वामित्वप्रस्तावे-"पुरुषवेदसंज्वलनचतुष्कयोरनिवृत्तिबादरः क्षपकः स्वबन्धव्यवच्छेदसमये समयमेकं तथा, तस्यापि तद्बन्धकेष्वतिविशुद्धत्वात् ।" इति ।

अथ स्थितिसत्त्वं दर्शयति 'ठिइसंत' इत्यादि, क्रोधतृतीयसंग्रहकिट्टिप्रथमस्थितेः समयाधिकाऽऽवलिकायां शेषायां 'मोहस्य' संज्वलनचतुष्कस्य स्थितिसत्त्वं पुनश्चत्वारि वर्षाणि भवति । इदमुक्तं भवति—क्रोधद्वितीयसंग्रहकिट्टिवेदनाद्धाचरमसमये संज्वलनचतुष्कस्य यत् स्थितिसत्त्वमन्तर्मुहूर्तन्यून चतुर्मासाधिकपञ्चवर्षाण्यासीत् , तत् त्रैराशिकेन साधितैरन्तर्मुहूर्तन्यूनषोडशमासैर्हीनं सत् चतुर्वार्षिकं जायते । यदुक्तं कषायप्राभृतचूर्णौ "संतकम्मं चत्तारि वस्साणि पुण्णाणि ।" इति । शेषाणां त्रयाणां घातिकर्मणां स्थितिसत्त्वं संख्येयानि वर्षसहस्राण्यघातित्रयस्य चाऽसंख्येयवर्षसहस्राणि बोध्यम् , पूर्वमुक्तत्वाद् इह नाऽभिहितम् ।

"व्यवहारनयश्चलितमेव चलितमिति मन्यते, निश्चयस्तु चलदपि चलितमिति" श्रीव्याख्याप्रज्ञप्तिवृत्तिकारवचनात् निश्चयनयेन व्यवच्छिद्यमानाः संज्वलनक्रोधस्य बन्धोदयोदीरणा युगपद् व्यवच्छिन्नाः । उक्तं च सप्ततिकाचूर्णौ—**" XXX खिवंतो खिवंतो जाव ततियकिट्टिवेदगद्धाए चरिमसमओ, ताव आगओ । तम्मि समए कोहसंजलणाए बंधोदओदीरणा य जुगवं फिट्टंति ।"** इति ।

क्रोधस्य तृतीयसंग्रहकिट्टिवेदनचरमसमये समयाधिकावलिकागतं दलं समयोनाऽऽवलिकाद्वयबद्धनूतनदलं च विहाय शेषक्रोधदलतो मानप्रथमसंग्रहकिट्टेः पूर्वावान्तरकिट्टिष्ववान्तरकिट्ट्यन्तरोत्पन्नाऽपूर्वावान्तरकिट्टिषु चाऽसंख्येयभागप्रमाणदलं दत्त्वा शेषबहुसंख्येयभागमितं दलं मानप्रथमसंग्रहकिट्टेरधस्तादपूर्वावान्तरकिट्टिषु संक्रमयति । यदुक्तं सप्ततिकाचूर्णौ—**"संतकम्मं पि समयूणदुआवलियबद्धं मोत्तूणं सव्वं माणम्मि पक्खित्तं ।"** इति । तेन मानप्रथमसंग्रहकिट्टौ दलं षोडशचतुर्विंशतिभागप्रमाणं ($\frac{16}{24}$) जायते, संज्वलनक्रोधतृतीयसंग्रहकिट्टिसम्बद्धपञ्चदशचतुर्विंशतिभागप्रमाणदलस्य ($\frac{15}{24}$) तदानीं मानप्रथमसंग्रहकिट्टितया परिणतत्वात् , तथा मानप्रथमसंग्रहकिट्टिदलमितरसंग्रहकिट्ट्यपेक्षया षोडशगुणं जायते, इतरसंग्रहकिट्टीनां प्रत्येकं दलस्यैकचतुर्विंशतिभागप्रमाणत्वात् । एवं मानप्रथमसंग्रहकिट्टेरवान्तरकिट्ट्योऽपि ज्ञातव्याः ॥१७५॥

क्रोधतृतीयसंग्रहकिट्टिवेदनाद्धाप्ररूपणायन्त्रकम्

(१) द्वितीयस्थितिस्थक्रोधतृतीयसंग्रहकिट्टिप्रदेशाग्रमपकृष्य क्रोधतृतीयसंग्रहकिट्ट्या प्रथमस्थितिं करोति वेदयति च ।
(२) क्रोधद्वितीयसंग्रहकिट्ट्या द्विसमयोनद्व्यावलिकाबद्धनूतनदलं द्वितीयस्थित्यामुदयावलिकागतं च दलं प्रथमस्थितौ विद्यते ।
(३) शेषं क्रोधद्वितीयसंग्रहकिट्टिवेदनवद् बोध्यम् , नवरं संग्रहकिट्टीनां प्रदेशाग्रमवान्तरकिट्टीश्चाश्रित्य दशपदकमल्पबहुत्वं वाच्यम् । तत्राऽपि लोभतृतीयसंग्रहकिट्टिप्रदेशेभ्यः क्रोधतृतीयसंग्रहकिट्टिप्रदेशाः संख्येयगुणा वक्तव्याः । एवमवान्तरकिट्ट्योऽपि ।
(४) क्रोधस्य तृतीयसंग्रहकिट्टिं बध्नाति, मानादीनां तु पूर्ववत् प्रथमाम् ।
(५) क्रोधतृतीयसंग्रहकिट्ट्याः प्रथमस्थितेरावलिकाद्वये शेषे आगालो व्यवच्छिद्यते ।

पूर्वतोऽनुवर्तमानं क्रोधतृतीयसंग्रहकिट्टिवेदनाद्धाप्ररूपणायन्त्रकम्

(द) क्रोधतृतीयसंग्रहकिट्टया प्रथमस्थितौ समयाधिकावलिकाशेषायाम् ।
(क) क्रोधतृतीयसंग्रहकिट्टयाश्चरमोदय ।
(ख) क्रोधस्य जघन्यस्थित्युदीरणा जघन्यस्थित्युदयश्च ।
(ग) क्रोधस्य जघन्यानुभागोदीरणा जघन्यानुभागोदयश्च ।
(घ) गुणितकर्मांशस्य जीवस्य क्रोधस्योत्कृष्टप्रदेशोदीरणोत्कृष्टप्रदेशोदयश्च ।
(ङ) सञ्ज्वलनानां स्थितिबन्धो द्वैमासिक ।
(च) संज्वलनक्रोधस्य जघन्यस्थितिबन्ध ।
(छ) संज्वलनक्रोधस्य जघन्याऽनुभागबन्ध ।
(ज) संज्वलनानां स्थितिसत्त्वं चत्वारि वर्षाणि ।
(झ) निश्चयनयमतेन सञ्ज्वलनक्रोधस्य बन्धोदयोदीरणा व्यवच्छिद्यमाना युगपद् व्यवच्छिन्ना ।
(ञ) समयाधिकोदयावलिकागतदलं समयोनद्व्यावलिकाबद्धनूतनदल च वर्जयित्वा शेषक्रोधदलस्य मानप्रथमसंग्रहकिट्टित्वेन परिणाम । तेन मानप्रथमसंग्रहकिट्टिदल मोहनीयसकलदलस्य षोड-शचतुर्विंशतिभागकल्प ($\frac{16}{24}$) जायते । एव मानप्रथमसंग्रहकिट्टेरवान्तरकिट्टयोऽपि बोध्या ।

अथ क्रोधतृतीयसंग्रहकिट्टिवेदनविधिं परिपाल्याऽनन्तरसमये यत्करोति, तदभिधित्सुराह

सेकाले माणपढमकिट्टिं ओकड्ढिऊण पढमठिइं ।
कुणए वेयइ सव्वो य विही कोहपढमव्व णायव्वो ॥१७६॥ (गीतिः)

अनन्तरकाले मानप्रथमकिट्टिमपकृष्य प्रथमस्थितिम् ।
करोति वेदयति सर्वश्च विधि क्रोधप्रथमावज्ज्ञातव्य ॥१७६॥ इति पदसंस्कार ।

'सेकाले' इत्यादि, 'अनन्तरकाले' क्रोधतृतीयसंग्रहकिट्टिवेदनाद्धासमाप्तेरनन्तरसमये 'मानप्रथमकिट्टिं' द्वितीयस्थितिस्थमानप्रथमसंग्रहकिट्टिप्रदेशाग्रमपकृष्योदयसमयादारभ्याऽसंख्येय-गुणक्रमेण मानवेदनाद्धायाः साधिकत्रिभागे मानप्रथमसंग्रहकिट्टिवेदनकालतस्त्वावलिकयाऽधिकासु स्थितिषु निक्षिपन् 'प्रथमस्थितिं' मानप्रथमसंग्रहकिट्टिप्रथमस्थितिं 'करोति' निर्वर्तयति । यदवादि कषायप्राभृतचूर्णौ—**"से काले माणस्स पढमकिट्टिमोकड्डियूण पढमट्ठिदिं करेदि ।"** इति । 'वेयइ' त्ति तदानीमेव मानप्रथमसंग्रहकिट्टिं च 'वेदयति' अनुभवति । उक्तं च सप्ततिका-चूर्णौ—**"तओ से काले माणस्स पढमकिट्टीओ दलिअं ओकड्ढित्तु पढमठितिं करेति वेदेइ ताव, जाव अंतोमुहुत्तं ।"** इति ।

तदानीं प्रथमस्थितौ यत् क्रोधदलमुदयावलिकायां विद्यते, तत् प्रतिसमयं वेद्यमानमानप्रथम-संग्रहकिट्टौ स्तिवुकसंक्रमेण संक्रम्य विनाशयति । यत्पुनर्द्वितीयस्थितौ द्विसमयोनावलिकाद्वयेन बद्धदलं विद्यते, मानप्रथमसंग्रहकिट्टिं वेदयमानेन तावता कालेन पुरुषवेदवत् संक्रमेण तत् संक्र-मयता जीवेन चरमप्रक्षेपेऽसंक्रम्यमाणे संज्वलनक्रोधस्य जघन्यस्थितिसत्त्वं जघन्याऽनुभागसत्त्वं च प्राप्यते । उक्तं च कषायप्राभृतचूर्णौ—**"कोहसंजलणस्स जहण्णट्ठिदिविहत्ती कस्स ?**

खवगस्स चरिमसमयअणिल्लेविदे कोहसंजलणे। ×××कोहसंजलणस्स जहण्णय-मणुभागसंतकम्मं कस्स ? खवगस्स चरिमसमयअसंकामयस्स।" इति।

तथा क्रोधोदयचरमसमये जघन्ययोगिना बद्धक्रोधस्य तदानीं जघन्यं प्रदेशसत्कर्म भवति। उक्तं च कषायप्राभृतचूर्णौ—"कोहसंजलणस्स जहण्णयं पदेससंतकम्मं कस्स ? चरिमसमयकोधवेदगेण खवगेण जहण्णजोगट्ठाणे जं बद्धं, तं जं वेलं चरिमसमय-अणिल्लेविदं, तस्स जहण्णयं संतकम्मं।" इति। तथैव कर्मप्रकृतिचूर्णावपि "जहन्नगं संतकम्मं 'णियगसंतकम्मंते' त्ति अप्पप्पणो संतकम्मस्स अंते भवति।" इति।

तदानीं चरमप्रक्षेपे संक्रम्यमाणे संज्वलनक्रोधस्य जघन्यस्थितिसंक्रमो जघन्याऽनु-भागसंक्रमश्च जायते। उक्तं च कषायप्राभृतचूर्णौ—"कोहसंजलणस्स जहण्णट्ठिदिसं-कमो कस्स ? खवगस्स कोहसंजलणस्स अपच्छिमट्ठिदिबंधचरमसमयसंछुहमाण-यस्स तस्स जहण्णयं। ××× कोहसंजलणस्स जहण्णाणुभागसंकामओ को होइ ? चरिमाणुभागबंधस्स चरिमसमयअणिल्लेवगो।" इति।

तथा कर्मप्रकृतिचूर्णिकारादीनामभिप्रायेण क्रोधोदयचरमसमये जघन्ययोगेन बद्ध-नूतनक्रोधदलिको जीव इदानीं क्रोधस्य जघन्यप्रदेशसंक्रमं करोति। तथा चात्र कर्मप्रकृ-तिचूर्णिः—"पुरिसकोहमाणमायासंजलणाणं' 'घोलमाणेण' त्ति जहण्णगजोगिणा 'चरिमबद्धस्स' खवणाए अब्भुट्ठियस्स अप्पप्पणो चरिमसमयबद्धस्स 'सग-अंतिमे' त्ति अप्पप्पणो चरिमसमयछोभे सव्वसंकमेणं जहण्णतो पदेससंकमो होति त्ति।" तथैव पञ्चसंग्रहेऽपि

"पुंसंजलणतिगाणं जहण्णजोगिस्स खवगसेढीए।
सगचरिमसमयबद्धं जं छुभइ सगंतिमे समए॥१॥" इति।

कषायप्राभृतचूर्णिकाराणामभिप्रायेण तदानीं जघन्यप्रदेशसंक्रमं न करोति, तैरुपशमकस्यैव जघन्यप्रदेशसंक्रमस्य प्रतिपादितत्वात्। तथा च तद्ग्रन्थः—"कोहसंजलणस्स जहण्णओ पदेससंकमो कस्स ? उवसामयस्स चरिमसमयपबद्धो जाधे उवसामि-ज्जमाणो उवसंतो, ताधे तस्स कोहसंजलणस्स जहण्णओ पदेससंकमो, एवं माणमायासंजलणपुरिसवेदाणं।" इति।

'सव्वो' इत्यादि, सर्वश्च 'विधिः' वेदनादिविधिः 'क्रोधप्रथमावत्' क्रोधप्रथमसंग्रहकिट्टिवेद-नवज्ज्ञातव्यः, विशेषाभावात्। उक्तं च कषायप्राभृतचूर्णौ—"जेणेव विहिणा कोधस्स पढमकिट्टी वेदिदा, तेणेव विधिणा माणस्स पढमकिट्टिं वेदयदि।" इति। इदमुक्तं भवति-यथा क्रोधप्रथमसंग्रहकिट्टिवेदनाद्धायामधस्तनीरुपरितनीश्चाऽसंख्येयभागप्रमाणा अवान्तर-

किट्टीर्वर्जयित्वा शेषा अबध्यन्ताऽवेद्यन्त च । तत्राऽपि बन्धत उदयेऽवान्तरकिट्टयो विशेषाधिका भवन्ति २॥ । संज्वलनानां प्रथमसंग्रहकिट्टिरेव बध्यते ३॥, प्रतिसमयमनुसमयाऽपवर्तनाघातेन उपरितन्योऽवान्तरकिट्टयो घात्यन्ते ४॥, यथायोग्यं संग्रहकिट्टयन्तरेष्ववान्तरकिट्टयन्तरेषु चाऽपूर्वावान्तरकिट्टयो निर्वर्त्यन्ते ५म, पूर्वापूर्वाऽवान्तरकिट्टिषु दलनिक्षेपः, संग्रहकिट्टिगतानामवान्तरकिट्टीनामल्पबहुत्वं संग्रहकिट्टिप्रदेशाग्राऽल्पबहुत्वञ्चेत्यादिविधिः प्ररूपितः, तथैव मानप्रथमसंग्रहकिट्टिवेदनाद्धायां प्ररूपयितव्यः । नवरं बन्धः संज्वलनत्रिकप्रथमसंग्रहकिट्टेर्वक्तव्यः, तथा नवसंग्रहकिट्टिगतानामवान्तरकिट्टीनामल्पबहुत्वं वक्तव्यम् , तत्राऽपि लोभतृतीयसंग्रहकिट्टितो मानप्रथमसंग्रहकिट्टेरवान्तरकिट्टयः संख्यातगुणा भणितव्याः । एवं नवसंग्रहकिट्टीनां प्रदेशाग्रस्याऽप्यल्पबहुत्वं वक्तव्यम्, प्रदेशसंक्रमाऽल्पबहुत्वे संक्रमावलिकाया विशेषस्तु स्वयमेव भावनीयः ।

एवंविधानेन मानप्रथमसंग्रहकिट्टिप्रथमस्थितेरावलिकाद्वये शेषे **पञ्चषष्ट्यधिकशततमसंग्रहगाथा** प्रस्तुतापेक्षया व्याख्येया । तथाहि मानप्रथमसंग्रहकिट्टिप्रथमस्थितौ द्व्यावलिकाशेषायामागालो व्यवच्छिद्यते । ततः समयोनाऽऽवलिकायां गतायां मानप्रथमसंग्रहकिट्टिप्रथमस्थितेः समयाधिकाऽऽवलिकायां शेषायां मानस्य जघन्यस्थित्युदीरणा जायते । तदानीं चैव मानप्रथमसंग्रहकिट्टेश्चरमोदयः प्रवर्तते । ॥१७६॥

साम्प्रतं मानप्रथमसंग्रहकिट्टिसत्कोदयचरमसमये मोहनीयकर्मणः स्थितिबन्धं स्थितिसत्त्वं चाऽऽविश्चिकीर्षुराह

चरिमुदये संजलणतिगस्स उ पण्णासवासरा बंधो ।
अंतोमुहुत्तऊणा चत्ता मासा हवइ संतं ॥१७७॥

चरमोदये संज्वलनत्रिकस्य तु पञ्चाशद्वासरा बन्धः ।
अन्तर्मुहूर्तोनाश्चत्वारिंशन्मासा भवति सत्त्वम् ॥१७७॥ इति पदसंस्कारः ।

'चरिमुदये' इत्यादि, 'चरमोदये' संज्वलनमानप्रथमसंग्रहकिट्टेरुदयचरमसमये मानप्रथमसंग्रहकिट्टिप्रथमस्थितौ समयाधिकाऽऽवलिकाशेषायामित्यर्थः, 'संज्वलनत्रिकस्य' संज्वलनमान-माया-लोभरूपस्य तु 'बन्धः' स्थितिबन्धः 'पञ्चाशद्वासरा' पञ्चाशद्दिवसाः (५०) अन्तर्मुहूर्तोना भवति । सम्प्रति मोहनीयस्य स्थितिसत्त्वमभिधित्सुराह—'चत्ता' इत्यादि, चत्वारिंशन्मासाः, घण्टालालान्यायेन 'अंतोमुहुत्तऊणा' इति पदमत्राऽपि योज्यम् । ततश्चाऽयमर्थः—अन्तर्मुहूर्तोनाश्चत्वारिंशन्मासाः (४०) 'सत्त्वं' संज्वलनत्रिकस्य स्थितिसत्त्वं 'भवति' जायते । व्याहारि च कषायप्राभृतचूर्णौ—"**एदेण कमेण माणपढमकिट्टिं वेदयमाणस्स जा पढमट्ठिदी, तिस्से पढमट्ठिदीए जावे समयाहियावलियसेसा, ताधे तिण्हं संजलणाण ठिदिबंधो मासो वीसं च दिवसा अंतोमुहुत्तूणा । संतकम्मं तिण्णि वस्साणि चत्तारि**

मासा च अंतोमुहुत्तूणा ।" इति । इदमुक्तं भवति—क्रोधवेदनाद्धाचरमसमये संज्वलनानां स्थितिबन्धो यो द्वैमासिक आसीत्, स मानवेदनाद्धायाश्चरमसमय एकमासप्रमाणो भविष्यति । तेन मानसंग्रहकिट्टित्रयवेदनकाले त्रिंशद्दिवसप्रमाणः स्थितिबन्धो हीयते । यदि मानसंग्रहकिट्टित्रयवेदनकाले स्थितिबन्धस्त्रिंशद्दिवसप्रमाणो हीयते, तर्ह्येकस्याः संग्रहकिट्टेर्वेदनकाले कियान् स्थितिबन्धो हीयेत ? इति त्रैराशिकेन दशदिवसा लभ्यन्ते ।

न्यास	प्रमाणम्	प्रमाणफलम्	इच्छा	इच्छाफलम्
	३	३० दिवसा	१	१० दिवसा

एवमेकस्या मानसंग्रहकिट्टेर्वेदनकाले स्थितिबन्धो दिवसदशकमात्रः परिहातव्यः, किन्तु मानद्वितीयसंग्रहकिट्टिवेदनकालतस्तृतीयसंग्रहकिट्टिवेदनकालतश्च मानप्रथमसंग्रहकिट्टेर्वेदनकालस्य विशेषाधिकत्वादन्तर्मुहूर्ताधिकदशदिवसप्रमितः स्थितिबन्धो हीयते, मानस्य द्वितीयसंग्रहकिट्टिवेदनकाले तृतीयसंग्रहकिट्टिवेदनकाले च प्रत्येकं यथासंभवमन्तर्मुहूर्तन्यूनदशदिवसप्रमाणो हीयते । इत्थं मानप्रथमसंग्रहकिट्टिवेदनकाले स्थितिबन्धस्याऽन्तर्मुहूर्ताधिकदशदिवसैर्हानिभवनाद् मानप्रथमसंग्रहकिट्टिवेदनाद्धाचरमसमये स्थितिबन्धोऽन्तर्मुहूर्तन्यूनविंशतिदिवसाधिकैकमासप्रमितो भवति ।

एवं संज्वलनत्रिकस्य स्थितिसत्त्वहानिरप्यन्तर्मुहूर्ताधिकाष्टमासप्रमाणा त्रैराशिकेन साधयितव्या । तथाहि—क्रोधवेदनाद्धाचरमसमये संज्वलनानां स्थितिसत्त्वं चत्वारि वर्षाण्यासीत्, मानवेदनाद्धाचरमसमये तु द्विवार्षिकं भविष्यति । इत्थं मानसंग्रहकिट्टित्रयवेदनकाले स्थितिघातैर्वर्षद्वयमात्रं स्थितिसत्त्वं घात्यते । यदि मानसंग्रहकिट्टित्रयवेदनकाले चतुर्विंशतिमासप्रमाणं स्थितिसत्त्वं घात्यते, तर्ह्येकस्या मानसंग्रहकिट्टेर्वेदनकाले कियत्स्थितिसत्त्वं घात्येत ? इति । त्रैराशिकेनाऽष्टमासाः प्राप्यन्ते ।

न्यास	प्रमाणम्	प्रमाणफलम्	इच्छा	इच्छाफलम्
	३	२४ मासा	१	८ मासा ।

किन्तु मानप्रथमसंग्रहकिट्टेर्वेदनकालः प्रभूतो भवति, द्वयोस्तु स्तोक इति मानस्य प्रथमसंग्रहकिट्टेर्वेदनकालेऽन्तर्मुहूर्ताधिकाष्टमासप्रमितं सत्त्वं घात्यते, शेषयोस्तु द्वयोः संग्रहकिट्ट्योः प्रत्येकं वेदनकालेऽन्तर्मुहूर्तन्यूनाऽष्टमासप्रमाणं घात्यते । अथ चतुर्वर्षेभ्योऽन्तर्मुहूर्ताधिकाष्टमासेषु विशोधितेष्वन्तर्मुहूर्तन्यूनचतुर्मासाधिकत्रिवर्षप्रमाणं स्थितिसत्त्वं मानप्रथमसंग्रहकिट्टिवेदनाद्धाचरमसमये जायते । त्रयाणां घातिकर्मणां स्थितिसत्कर्म संख्येयवर्षसहस्राण्यघातिकर्मणां चाऽसंख्येयवर्षसहस्राणि बोध्यम्, पूर्वं निगदितत्वाद् इह नोक्तम् ।

तदानीं च मानप्रथमसंग्रहकिट्टेरुदयसमयाधिकावलिकाप्रमाणप्रथमस्थितिगतं द्वितीयस्थितिगतं च समयोनाऽऽवलिकाद्वयबद्धं नूतनं दलं विहाय शेषं मानप्रथमसंग्रहकिट्टेर्दलमादाय ततश्चाऽसंख्येयभागमात्रं दलं यथायोग्यमन्यत्र संक्रम्याऽवशिष्टं सर्वदलं मानद्वितीयसंग्रहकिट्टेरधस्तात् संक्रमयति । इत्थं मानद्वितीयसंग्रहकिट्टौ दलं मोहनीयसकलदलस्य सप्तदशचतुर्विंशतिभागप्रमाणं ($\frac{१७}{२४}$) जायते, मानप्रथमसंग्रहकिट्टिप्रतिबद्धस्य षोडशचतुर्विंशतिभागप्रमाणस्य दलस्य

वदानीं मानद्वितीयसंग्रहकिट्टितया परिणतत्वात् । तथा मानद्वितीयसंग्रहकिट्टौ दलमितरसंग्रहकिट्ट्यपेक्षया सप्तदशगुणं जायते, इतरसंग्रहकिट्टीनां प्रत्येकं दलस्यैकचतुर्विंशतिभागप्रमाणत्वात् । एवं मानद्वितीयसंग्रहकिट्टेरवान्तरकिट्टयोऽपि ज्ञातव्याः ॥१७७॥

मानप्रथमसंग्रहकिट्टिवेदनविधियन्त्रकम्

(१) द्वितीयस्थितिस्थमानप्रथमसंग्रहकिट्टिप्रदेशाग्रमपकृष्य मानप्रथमसंग्रहकिट्ट्या प्रथमस्थितिं करोति वेदयति च ।

(२) मानवेदनाद्धाप्रथमसमयात्प्रभृति मानप्रथमसंग्रहकिट्टेरधस्तनीरुपरितनीश्चाऽसंख्येयभागमिता अवान्तरकिट्टीर्वर्जयित्वा शेषा अवान्तरकिट्टीर्बध्नाति वेदयति च ।

(३) बध्यमानाऽवान्तरकिट्टित उदयमानाऽवान्तरकिट्टयो विशेषाधिका भवन्ति ।

(४) संज्वलनत्रिकस्य प्रथमसंग्रहकिट्टिं बध्नाति ।

(५) प्रतिसमयमनुसमयाऽपवर्तनाघातेनोपरितनाऽसंख्येयभागप्रमाणावान्तरकिट्टीर्घातयति ।

(६) यथायोग्यं संग्रहकिट्ट्यन्तरेष्ववान्तरकिट्ट्यन्तरेषु चाऽ-पूर्वावान्तरकिट्टीर्निर्वर्तयति ।

(७) नवसंग्रहकिट्टीनामवान्तरकिट्ट्यल्पबहुत्वं पूर्ववद् वक्तव्यम्, नवरं लोभतृतीसंग्रहकिट्टितो मानप्रथमसंग्रहकिट्टेरवान्तरकिट्टय संख्येयगुणा निगदितव्या ।

(८) एवं नवसंग्रहकिट्टीनां प्रदेशाल्पबहुत्वमपि भणितव्यम् ।

मानप्रथमसंग्रहकिट्टिवेदनाद्धायां क्रोधस्य चरमप्रक्षेपेऽसंक्रम्यमाणे

(९) संज्वलनक्रोधस्य जघन्यस्थितिसत्त्वम् ।

(१०) संज्वलनक्रोधस्य जघन्याऽनुभागसत्कर्म ।

(११) क्रोधोदयचरमसमये जघन्ययोगिना बद्धक्रोधस्य जघन्यप्रदेशसत्कर्म भवति ।

चरमप्रक्षेपं संक्रमयतो जीवस्य तु

(१२) संज्वलनक्रोधस्य जघन्यस्थितिसंक्रम ।

(१३) संज्वलनक्रोधस्य जघन्यानुभागसंक्रमः ।

(१४) कर्मप्रकृतिचूर्णिकृदभिप्रायेण क्रोधोदयचरमसमये जघन्ययोगेन बद्धस्य नूतनक्रोधदलिकस्य जघन्यप्रदेशसंक्रमो भवति ।

(१५) मानप्रथमसंग्रहकिट्टेः प्रथमस्थितौ द्व्यावलिकाशेषायामागालो व्यवच्छिद्यते ।

(१६) मानप्रथमसंग्रहकिट्टे प्रथमस्थितौ समयाधिकावलिकाशेषायां मानस्य जघन्यस्थित्युदीरणा भवति ।

(१७) मानप्रथमसंग्रहकिट्टे प्रथमस्थितौ समयाधिकावलिकाशेषायां मानप्रथमसंग्रहकिट्टेश्चरमोदय ।

मानप्रथमसंग्रहकिट्टेरुदयचरमसमये

(१८) संज्वलनत्रिकस्य स्थितिबन्धोऽन्तर्मुहूर्तन्यूनपञ्चाशद्दिवसप्रमाण ।

(१९) संज्वलनत्रिकस्य स्थितिसत्त्वमन्तर्मुहूर्तन्यूनचतुर्मासाधिकत्रिवर्षमात्रम् ।

(२०) ज्ञानावरणदर्शनावरणाऽन्तरायाणां संख्यातवर्षसहस्राणि स्थितिसत्कर्म ।

(२१) नामगोत्रवेदनीयानामसंख्येयवर्षसहस्राणि स्थितिसत्कर्म ।

(२२) समयाधिकोदयावलिकागत समयोनावलिकाद्वयबद्धं च दलं मुक्त्वा शेषं प्रभूतं मानप्रथमसंग्रहकिट्टिदलं यथासंभवं मानद्वितीयसंग्रहकिट्टित्वेन परिणतम् । तेन मानद्वितीयसंग्रहकिट्टिदलं मोहनीयसकलदलस्य सप्तदशचतुर्विंशतिभागकल्पं (१७/२४) जायते ।

(२३) इतरसंग्रहकिट्ट्यपेक्षया मानद्वितीयसंग्रहकिट्टे: प्रदेशा अवान्तरकिट्टयश्च सप्तदशगुणा जायन्ते ।

एतर्हि मानप्रथमसंग्रहकिट्टेश्चरमोदयसमनन्तरं यत्करोति, तदभिधातुकाम आह

सेकाले माणविइयकिट्टिं ओकड्ढिऊण पढमठिइं ।
करए वेयइ अण्णो सव्वो विही य पुव्वव्व ॥१७८॥

अनन्तरकाले मानद्वितीयकिट्टिमपकृष्य प्रथमस्थितिम् ।
कुरुते वेदयत्यन्य सर्वो विधिश्च पूर्ववद् ॥१७८॥ इति पदसंस्कारः ।

'सेकाले' इत्यादि, 'अनन्तरकाले' मानप्रथमसंग्रहकिट्टिवेदनकालसमाप्तितोऽनन्तरसमय इत्यर्थः, 'मानद्वितीयकिट्टिं' संज्वलनमानस्य द्वितीयसंग्रहकिट्टिप्रदेशानपकृष्योदयसमयादारभ्य किञ्चिन्न्यूने मानवेदनाद्धायास्त्रिभागे स्ववेदनकालतस्त्वावलिकयाऽधिकासु स्थितिष्वसंख्येयगुणक्रमेण निक्षिपन् 'प्रथमस्थितिं' मानद्वितीयसंग्रहकिट्टिप्रथमस्थितिं 'करोति' निर्वर्तयति । अभ्यधायि च कषायप्राभृतचूर्णौ **"से काले माणस्स विदियकिट्टीदो पदेसग्गमोकड्डियूण पढमट्ठिदिं करेदि ।"** इति

'वेयइ' त्ति 'वेदयति' तदानीमेव मानद्वितीयसंग्रहकिट्टेः प्रथमस्थितिमुदयेनाऽनुभवति । अभाणि च सप्ततिकाचूर्णौ—**"तओ से काले माणस्स बितियकिट्टीओ दलं उक्कड्ढित्तु पढमट्ठितिं करेइ वेदेइ य ×××।"** इति ।

'अण्णो' इत्यादि, अन्यः सर्वो विधिः पूर्ववज्ज्ञातव्यः । इदन्त्ववधेयम्—अत्र मानस्य द्वितीयसंग्रहकिट्टिर्वेद्यते, शेषयोस्तु प्रथमा । तथा मानद्वितीयसंग्रहकिट्टेरवान्तरकिट्टयः प्रदेशाश्च लोभतृतीयसंग्रहकिट्टितः संख्येयगुणा भवन्ति ।

पञ्चषष्ट्यधिकशततमगाथा प्रस्तुतमाश्रित्य भावनीया । तथाहि—मानद्वितीयसंग्रहकिट्टिप्रथमस्थितेरावलिकाद्वये शेषयागालो व्यवच्छिद्यते । ततः समयोनाऽऽवलिकायां व्यतिक्रान्तायां मानद्वितीयसंग्रहकिट्टिप्रथमस्थितौ समयाधिकाऽऽवलिकाशेषायां मानस्य जघन्यस्थित्युदीरणा जायते, तदानीं च मानद्वितीयसंग्रहकिट्टेश्चरमोदयो भवति, तदनन्तरं मानतृतीयसंग्रहकिट्टेरुदयात् ॥१७८॥

मानद्वितीयसंग्रहकिट्टिवेदनाद्धाचरमसमये संज्वलनत्रिकस्य बन्धं सत्त्वं च व्याजिहीर्षुराह

अंतम्मि मोहबंधो चत्तालीसा दिणा उ देसूणा ।
संतं देसूणा बत्तीसा मासा कसायाणं ॥ १७९ ॥

अन्ते मोहबन्धश्चत्वारिंशद् दिनास्तु देशोना ।
सत्त्वं देशोना द्वात्रिंशद्मासा कषायाणाम् ॥ १७९ ॥ इति पदसंस्कारः ।

'अंतम्मि' इत्यादि, 'अन्ते' मानद्वितीयसंग्रहकिट्ट्याश्चरमोदये मानद्वितीयसंग्रहकिट्टिप्रथमस्थितौ समयाधिकावलिकाशेषायामित्यर्थः, 'मोहबन्धो' मानमायालोभरूपाणां कषायाणाम्, क्रोधस्य क्षीणत्वात्, स्थितिबन्धो 'देशोनाः' अन्तर्मुहूर्तन्यूनाश्चत्वारिंशद् (४०) दिनास्तु भवति, त्रैराशिकसाधितैरन्तर्मुहूर्तन्यूनदशदिनैर्मानद्वितीयसंग्रहकिट्टिवेदनाद्धायां हीनो जात इत्यर्थः ।

'संतं' इत्यादि, तत्र 'कषायाणां' त्रयाणां संज्वलनानां 'सत्त्वं' स्थितिसत्त्वं 'देशोना' अन्तर्मुहूर्तपरिहीना द्वात्रिंशन्मासा भवति, त्रैराशिकसाधितैरन्तर्मुहूर्तन्यूनाष्टमासैर्मानद्वितीयसंग्रहकिट्टिवेदनाद्धायां घातितं सदिदानीमेतावज्जायत इत्यर्थः। उक्तं च कषायप्राभृतचूर्णौ–"तेणेव विहिणा संपत्तो माणस्स विदियकिट्टिं वेदयमाणस्स जा पढमट्ठिदी, तिस्से समयाहियावलियसेसा त्ति, ताधे संजलणाणं ठिदिबंधो मासो दस च दिवसा देसूणा। संतकम्मं दो वस्साणि अट्ठ च मासा देसूणा।" इति।

त्रयाणां घातिकर्मणां स्थितिसत्त्वं पूर्ववत् संख्येयानि वर्षसहस्राण्यघातित्रयस्य चाऽसंख्येयानि वर्षसहस्राणि निश्चेतव्यम्, पूर्वमभिहितत्वाद् इह न गदितम्।

तथा मानद्वितीयसंग्रहकिट्टिवेदनाद्धाचरमसमये मानद्वितीयसंग्रहकिट्ट्या उदयसमयाधिकावलिकागतं समयोनद्व्यावलिकाबद्धं च नूतनं दलं विमुच्य शेषं मानद्वितीयसंग्रहकिट्टेर्दलं गृहीत्वा ततश्चाऽसंख्येयभागप्रमाणं दलं यथायोग्यमन्यत्र संक्रम्य शेषसर्वदलं मानतृतीयसंग्रहकिट्टेरवस्तात् संक्रमयति, इत्थं मानतृतीयसंग्रहकिट्टौ दलं मोहनीयसकलदलस्याऽष्टादशचतुर्विंशतिभागकल्पं($\frac{18}{24}$)जायते, मानद्वितीयसंग्रहकिट्ट्याः सप्तदशचतुर्विंशतिभागप्रमाणदलस्य तदानीं मानतृतीयसंग्रहकिट्टितया परिणतत्वात्। तथा मानतृतीयसंग्रहकिट्टिदलमितरसंग्रहकिट्ट्यपेक्षयाऽष्टादशगुणं जायते, इतरसंग्रहकिट्टीनां प्रत्येकं दलस्यैकचतुर्विंशतिभागप्रमितत्वात्। एवं मानतृतीयसंग्रहकिट्ट्या अवान्तरकिट्टयोऽपि निश्चेतव्याः ॥१७९॥

मानद्वितीयसंग्रहकिट्टिवेदनप्ररूपणायन्त्रकम्

(१) द्वितीयस्थितिस्थमानद्वितीयसंग्रहकिट्टिगतप्रदेशाग्रमपकृष्य मानद्वितीयसंग्रहकिट्टिप्रथमस्थितिं करोति वेदयति च। शेषविधिस्तु पूर्ववद् बोध्य।

(२) मानद्वितीयसंग्रहकिट्टेः प्रथमस्थितौ द्व्यावलिकाशेषायां मानद्वितीयसंग्रहकिट्टेरागालो व्यवच्छिद्यते।

मानद्वितीयसंग्रहकिट्टिप्रथमस्थितौ समयाधिकावलिकाशेषायाम्

(३) मानद्वितीयसंग्रहकिट्टेरुदयचरमसमय।

(४) संज्वलनमानस्य जघन्यस्थित्युदीरणा।

(५) संज्वलनत्रिकस्य स्थितिबन्धोऽन्तर्मुहूर्तन्यूनचत्वारिंशद्दिवसा।

(६) संज्वलनत्रिकस्य स्थितिसत्त्वमन्तर्मुहूर्तन्यूनाष्टमासाधिकद्विवर्षप्रमितम्।

(७) ज्ञानावरणदर्शनावरणाऽन्तरायाणां स्थितिसत्त्वं संख्येयानि वर्षसहस्राणि।

(८) नामगोत्रवेदनीयानां स्थितिसत्त्वमसंख्येयवर्षसहस्राणि।

(९) समयाधिकोदयावलिकागत समयोनावलिकाद्वयबद्ध च नूतनं दलिक वर्जयित्वा शेष प्रभूत मानद्वितीयसंग्रहकिट्टिदल यथागम मानतृतीयसंग्रहकिट्टितया परिणम्यते। तेन मानतृतीयसंग्रहकिट्टिदल मोहनीयसर्वदलस्याऽष्टादशचतुर्विंशतिभागकल्पं ($\frac{18}{24}$) जायते।

(१०) मानतृतीयसंग्रहकिट्टिदलमितरसंग्रहकिट्ट्यपेक्षयाऽष्टादशगुणं भवति।

(११) एवं मानतृतीयसंग्रहकिट्टेरवान्तरकिट्टयोऽपीतरसंग्रहकिट्टीनामवान्तरकिट्टिभ्योऽष्टादशगुणा भवन्ति।

मानद्वितीयसंग्रहकिट्टिवेदनविधिं परिपाल्य यत्करोति, तद् विभणिषुराह

सेकाले माणतइयकिट्टिं उक्किरिय करइ पढमठिइं।
वेयइ मोहस्स तु बंधो मासोऽन्ते दुवरिसा संतं ॥१८०॥

अनन्तरकाले मानतृतीयकिट्टिमुत्कीर्य करोति प्रथमस्थितिम्।
वेदयति मोहस्य तु बन्धो मासोऽन्ते द्विवर्षौ सत्त्वम् ॥१८०॥ इति पदसंस्कारः।

'सेकाले' इत्यादि, 'अनन्तरकाले' मानद्वितीयसंग्रहकिट्टिवेदनाद्धासमाप्तितोऽनन्तरसमये 'मानतृतीयकिट्टिं' मानतृतीयसंग्रहकिट्टिप्रदेशाग्रमुत्कीर्योदयसमयादारभ्याऽसंख्येयगुणक्रमेण स्ववेदनकालत आवलिकयाऽधिकासु स्थितिषु निक्षिपन् 'प्रथमस्थितिं' मानतृतीयसंग्रहकिट्टेरादिमस्थितिं 'करोति' निर्वर्तयति। अभ्यधायि च कषायप्राभृतचूर्णौ **"से काले माणतदियकिट्टीदो पदेसग्गमोकड्डियूण पढमट्ठिदिं करेदि।"** इति।

'वेयइ' त्ति तथा तदानीमेव 'वेदयति' मानतृतीयसंग्रहकिट्टिप्रथमस्थितिं चानुभवति। अवादि च **सप्ततिकाचूर्णौ "ततो से काले माणस्स ततियकिट्टीओ दलिअं उक्कड्ढित्तु पढमट्ठितिं करेति वेदेइ य।"** इति। तदानीं प्रथमस्थित्यामुदयावलिगतं द्वितीयस्थितौ च द्विसमयोनद्व्यावलिकाबद्धं नूतनं दलं मानद्वितीयसंग्रहकिट्टिसम्बन्धि विद्यते। शेषा सर्वा प्ररूपणा पूर्ववत्कर्तव्या, विशेषाऽभावात्। नवरं मानस्य तृतीयसंग्रहकिट्टिमेव बध्नाति, शेषयोस्तु प्रथमाम्, मानतृतीयसंग्रहकिट्टेरवान्तरकिट्टयः प्रदेशाश्च यथासंख्यं लोभतृतीयसंग्रहकिट्टेरवान्तरकिट्टितः प्रदेशेभ्यश्च संख्येयगुणा भवन्ति। एवंक्रमेण मानतृतीयसंग्रहकिट्टिं वेदयतः क्षपकस्य मानतृतीयसंग्रहकिट्टिप्रथमस्थितौ द्व्यावलिकाशेषायामागालो व्यवच्छिद्यते। ततः समयोनाऽऽवलिकायामतिक्रान्तायां मानतृतीयसंग्रहकिट्टिप्रथमस्थितेः समयाधिकावलिकायां शेषायां मानस्य जघन्यस्थित्युदीरणा मानतृतीयसंग्रहकिट्ट्याश्च वेदनचरमसमयो भवति। इत्थं मानकिट्टिवेदनाद्धायां मानस्य त्रिर्जघन्यस्थित्युदीरणा जाता। तथा तदानीमेव संज्वलनमानस्य जघन्याऽनुभागोदीरणा गुणितकर्मांशस्य च जन्तोः संज्वलनमानस्योत्कृष्टप्रदेशोदीरणा जायते। एवं संज्वलनमानस्य जघन्याऽनुभागोदयो गुणितकर्मांशस्य च मानस्योत्कृष्टप्रदेशोदयो जायते।

'मोहस्स' इत्यादि, तत्र 'अन्ते' मानतृतीयसंग्रहकिट्टिवेदनाद्धाचरमसमये 'मोहस्य' संज्वलनमानमायालोभरूपमोहनीयकर्मणस्तु बन्धो मासो भवति, मानद्वितीयसंग्रहकिट्टिवेदनचरमसमयतस्त्रैराशिकसाधितैरन्तर्मुहूर्तन्यूनदशदिवसैर्हीनो भवन्नैकमासिकः स्थितिबन्धो जायत इत्यर्थः। स च मानस्य स्थितिबन्धः सर्वजघन्यो ज्ञातव्यः। एवमनुभागबन्धोऽपि मानस्य जघन्यो जायते। 'संतं' इत्यादि, संज्वलनत्रिकस्य स्थितिसत्त्वं 'द्विवर्षौ' वर्षद्वयं जायते, मानद्वितीयसंग्रहकिट्टिवेदनचरमसमयाऽपेक्षया त्रैराशिकसाधिताऽन्तर्मुहूर्तन्यूनाष्टमासैर्हीनं सद् द्विवार्षिकं जायत इत्यर्थः। उक्तं

च कषायप्राभृतचूर्णौ–"ताधे चरिमसमयवेदगो । ताधे तिण्हं संजलणाणं ट्ठिदिबंधो मासो पडिवुण्णो । संतकम्मं वे वरसाणि पडिवुण्णाणि ।" इति ।

निश्चयनयापेक्षया तदानीं मानस्य बन्धोदयोदीरणा व्यवच्छिद्यमाना व्यवच्छिन्नाः, तथा समयाधिकोदयावलिकागतं दलं समयोनद्व्यावलिकाबद्धं च नूतनदलं विमुच्य शेषं मानदलमादाय ततश्चाऽसंख्येयभागप्रमाणं यथायोग्यमन्यत्र संक्रम्याऽवशिष्टं सर्वदलं मायाप्रथमसंग्रहकिट्टेरधस्तात् संक्रमयति । उक्तञ्च सप्ततिकाचूर्णौ–"××वेदेइ य कमेण ताव, जाव समयाहियावलिया सेसे त्ति । तम्मि समए माणस्स बंधोदयोदीरणा य जुगवं फिट्टंति । संतकम्मं पि समयूणदुआवलियबद्धं मोत्तूण सव्वं मायाए संछुद्धं ।" इति । इत्थं तदानीं मायाप्रथमसंग्रहकिट्टिदलं मोहनीयसकलदलस्यैकोनविंशतिचतुर्विंशतिभागप्रमाणं (१९/२४) जायते, मानतृतीयसंग्रहकिट्टिसम्बन्धस्याऽष्टादशचतुर्विंशतिभागप्रमाणदलस्य तदानीं मायाप्रथमसंग्रहकिट्टित्वेन परिणतत्वात् । तथा मायाप्रथमसंग्रहकिट्टिदलमितरसंग्रहकिट्ट्यपेक्षयैकोनविंशतिगुणं भवति, इतरसंग्रहकिट्टीनां प्रत्येकं दलस्यैकचतुर्विंशतिभागप्रमाणत्वात् । एवं मायाप्रथमसंग्रहकिट्टेरवान्तरकिट्टयोऽपि वक्तव्याः ॥१८०॥

मानतृतीयसंग्रहकिट्टिवेदनप्ररूपणायन्त्रकम्

(१) द्वितीयस्थितिस्थमानतृतीयसंग्रहकिट्टिप्रदेशाग्रमपकृष्य मानतृतीयसंग्रहकिट्टिप्रथमस्थितिं करोति वेदयति च । शेषविधिः पूर्ववद् बोध्यः ।

(२) मानतृतीयसंग्रहकिट्टिवेदनाद्धाप्रथमसमये उदयावलिकागतं द्वितीयस्थितौ च द्विसमयोनद्व्यावलिकाबद्धं नूतनं दलं मानद्वितीयसंग्रहकिट्टिसत्कं सत्कर्मणि विद्यते ।

(३) मानस्य तृतीयसंग्रहकिट्टिं बध्नाति, शेषयोस्तु प्रथमाम् ।

(४) मानतृतीयसंग्रहकिट्टेरवान्तरकिट्टयः प्रदेशाग्रञ्च लोभतृतीयसंग्रहकिट्टितः संख्येयगुणाः ।

(५) मानतृतीयसंग्रहकिट्टिप्रथमस्थितौ द्व्यावलिकाशेषायां मानस्यागालो व्यवच्छिद्यते ।

(६) मानतृतीयसंग्रहकिट्टिप्रथमस्थितौ समयाधिकावलिकाशेषायाम् ।

(क) मानस्य जघन्यस्थित्युदीरणा जघन्यस्थित्युदयश्च ।

(ख) गुणितकर्मांशस्य जन्तोरुत्कृष्टप्रदेशोदीरणोत्कृष्टप्रदेशोदयश्च ।

(ग) सञ्ज्वलनत्रिकस्य स्थितिबन्धः एकमासप्रमाणः ।

(घ) मानस्य सर्वजघन्यस्थितिबन्धः ।

(ङ) मानस्य सर्वजघन्याऽनुभागबन्धः ।

(च) संज्वलनत्रिकस्य स्थितिसत्त्वं द्विवार्षिकम् ।

(छ) समयाधिकोदयावलिकागतं समयोनद्व्यावलिकाबद्धं च नूतनं दलं विहाय शेषं सर्वं मानतृतीयसंग्रहकिट्टिदलं यथागमं मायाप्रथमसंग्रहकिट्टित्वेनपरिणमयति । तेनमायाप्रथमसंग्रहकिट्टिदलं मोहनीयसर्वदलस्यैकोनविंशतिचतुर्विंशतिभागकल्पं (१९/२४) भवति ।

(ज) मायाप्रथमसंग्रहकिट्टेरवान्तरकिट्टयः प्रदेशाग्रञ्च इतरसंग्रहकिट्टितः एकोनविंशतिगुणाः ।

(झ) निश्चयनयापेक्षया मानस्य बन्धोदयोदीरणा व्यवच्छिद्यमाना व्यवच्छिन्नाः ।

मानतृतीयसंग्रहकिट्टिवेदनविधिमनुपाल्याऽनन्तरसमये यत्करोति, तदाविश्चिकीर्षुराह

सेकाले मायाऽऽइमकिट्टिं उक्किरिय करइ पढमठिइं ।
वेयइ अण्णो सव्वो य विही पुव्वव्व णायव्वो ॥१८१॥

अनन्तरकाले मायाऽऽदिमकिट्टिमुत्कीर्य करोति प्रथमस्थितिम् ।
वेदयत्यन्यः सर्वश्च विधि पूर्ववज्ज्ञातव्य ॥१८१॥ इति पदसंस्कार ।

'सेकाले' इत्यादि, 'अनन्तरकाले' मानवेदनचरमसमयसमनन्तरसमये 'मायाऽऽदिमकिट्टि' द्वितीयस्थितिस्थमायाप्रथमसंग्रहकिट्टिप्रदेशाग्रमुत्कीर्योदयसमयाद् मायावेदनकालस्य साधिकत्रिभागे मायाप्रथमसंग्रहकिट्टेर्वेदनकालतः पुनरावलिकयाऽधिकासु स्थितिष्वसंख्येयगुणक्रमेण निक्षिपन् 'प्रथमस्थितिं' मायाप्रथमसंग्रहकिट्टेरादिमस्थितिं 'करोति' निर्वर्तयति । उक्तं च कषायप्राभृतचूर्णौ–**"तदो से काले मायाए पढमकिट्टीए पदेसग्गमोकड्डियूण पढमट्ठिदिं करेदि ।"** इति ।

'वेयइ' त्ति तदानीमेव मायाप्रथमसंग्रहकिट्टेः प्रथमस्थितिं 'वेदयति' अनुभवति च । उक्तं च सप्ततिकाचूर्णौ–**"तओ से काले मायाए पढमकिट्टीओ दलियं ओकड्ढेत्तु पढमठिर्ति करेइ वेदेइ य कमेण ताव, जाव अंतोमुहुत्तकालं ।"** इति । तदानीं यद् मानतृतीयसंग्रहकिट्टिदलं प्रथमस्थित्यामुदयावलिकागतं विद्यते, तद् वेद्यमानमायाप्रथमसंग्रहकिट्टौ प्रतिसमयं स्तिबुकसंक्रमेण संक्रम्य विनाशयति, द्वितीयस्थितौ च यद् द्विसमयोनाऽऽवलिकाद्वयेन बद्धनूतनदलं विद्यते, तत् पुरुषवेदवत् तावता कालेन संक्रमयता जन्तुना चरमप्रक्षेपेऽसंक्रम्यमाणे संज्वलनमानस्य जघन्यस्थितिसत्त्वं जघन्यानुभागसत्त्वं च, तथा जघन्ययोगेन मानचरमसमये· प्रदेशाग्रं बद्धवता जन्तुना मानस्य जघन्यप्रदेशसत्कर्म प्राप्यते । चरमप्रक्षेपे च संक्रम्यमाणे मानस्य जघन्यस्थितिसंक्रमो जघन्याऽनुभागसंक्रमश्च भवति । **कर्मप्रकृतिचूर्णिकारादीनाम**भिप्रायेण पुनर्मानजघन्यप्रदेशसंक्रमोऽपि भवति ।

'अण्णो' इत्यादि, अन्यः सर्वश्च विधिः पूर्ववज्ज्ञातव्यः, विशेषाभावात् । नवरमत्र माया-लोभयोरुभयोः प्रथमसंग्रहकिट्टिर्वेध्यते । लोभतृतीयसंग्रहकिट्टितो मायाप्रथमसंग्रहकिट्टेरवान्तरकिट्टयः प्रदेशाश्च संख्येयगुणा वक्तव्याः ।

एवंविधानेन मायाप्रथमसंग्रहकिट्टिप्रथमस्थितौ द्व्यावलिकाशेषायामागालो व्यवच्छिद्यते । ततः समयोनाऽऽवलिकाव्यतिक्रमे मायाया जघन्यस्थित्युदीरणा जायते, मायाप्रथमसंग्रहकिट्टेश्च चरमोदयः ॥१८१॥

अथ मायाप्रथमसंग्रहकिट्टेरुदयचरमसमये मोहनीयस्य स्थितिबन्धं स्थितिसत्त्वं च प्रकाशयितुकामः प्राह

संजलणदुगस्स तु बंधो देसूणपणवीसदिवसाइं ।
चरिमे संतं देसूणवीसमासा मुणेयव्वं ॥१८२॥

संज्वलनद्विकस्य तु बन्धो देशोनपञ्चविंशतिदिवसानि ।
चरमे सत्त्वं देशोनविंशतिमासा ज्ञातव्यम् ॥१८२॥ इति पदसंस्कार ।

'संजल०' इत्यादि, तत्र 'चरमे' मायाप्रथमसंग्रहकिट्टिवेदनचरमसमये 'संज्वलनद्विकस्य' माया-लोभलक्षणस्य कषायद्वयस्य 'बन्धः' स्थितिबन्धो 'देशोनपञ्चविंशतिदिवसानि' अन्तर्मुहूर्तन्यूनपञ्चविंशतिदिनानि भवति। तथाहि—मानवेदनचरमसमये संज्वलनानां यः स्थितिबन्ध एकमासप्रमाण आसीत् , मायावेदनाद्धाचरमसमये स पञ्चदशदिवसप्रमाणो भविष्यति । इत्थं मायासंग्रहकिट्टित्रयवेदनकाले पञ्चदशदिवसप्रमाणः स्थितिबन्धो हीयते ।

यदि मायासंग्रहकिट्टित्रयवेदनकाले पञ्चदशदिवसमात्रः स्थितिबन्धो हीयते, तर्ह्येकस्या मायासंग्रहकिट्टेर्वेदनकाले कियान् स्थितिबन्धो हीयेत ? इति त्रैराशिकेन पञ्चदिवसा लभ्यन्ते ।

न्यास	प्रमाणम्	प्रमाणफलम्	इच्छा	इच्छाफलम्
	३ ।	१५ दिवसा ।	१ ।	५ दिवसा ।

तत्राऽपि पश्चानुपूर्व्या संग्रहकिट्टीनां वेदनकालस्य विशेषाधिकत्वान्मायाप्रथमसंग्रहकिट्टिवेदनकालेऽधिकः स्थितिबन्धो हीयते, ततो हीनो मायाद्वितीयसंग्रहकिट्टिवेदनकाले, ततोऽपि हीनतरो मायातृतीयसंग्रहकिट्टिवेदनकाले । तेनाऽन्तर्मुहूर्ताधिकपञ्चदिवसप्रमाणः स्थितिबन्धो मायाप्रथमसंग्रहकिट्टिवेदनकाले हीयते । ततश्चाऽन्तर्मुहूर्तन्यूनपञ्चविंशतिदिवसप्रमाणः स्थितिबन्धो मायाप्रथमसंग्रहकिट्टिवेदनाद्धाचरमसमये जायते ।

'संतं' इत्यादि, 'सत्त्वं' मायाप्रथमसंग्रहकिट्टिवेदनचरमसमये संज्वलनद्विकस्य स्थितिसत्त्वं 'देशोनविंशतिमासाः' अन्तर्मुहूर्तन्यूनविंशतिमासप्रमाणं ज्ञातव्यम् । तथाहि मानवेदनाद्धाचरमसमये मोहस्य स्थितिसत्त्वं द्विवार्षिकमासीत् , तद् मायावेदनाद्धाचरमसमयेऽकवर्षप्रमितं भविष्यति । इत्थं मायासंग्रहकिट्टित्रयवेदनकाले द्वादशमासप्रमाणं स्थितिसत्त्वं घात्यते । यदि मायासंग्रहकिट्टित्रयवेदनकाले द्वादशमासप्रमाणं स्थितिसत्त्वं घात्यते, तर्ह्येकस्या मायासंग्रहकिट्ट्या वेदनकाले कियत्स्थितिसत्त्वं घात्येत ? इति त्रैराशिकेन चत्वारो मासा लभ्यन्ते ।

न्यास	प्रमाणम्	प्रमाणफलम्	इच्छा	इच्छाफलम्
	३ ।	१२ मासा ।	१ ।	४ मासा ।

पश्चानुपूर्व्या संग्रहकिट्टीनां वेदनकालस्य विशेषाधिकत्वाद् मायाप्रथमसंग्रहकिट्टिवेदनकालेऽधिकं स्थितिसत्त्वं घात्यते । ततो हीनं मायाद्वितीयसंग्रहकिट्टिवेदनकाले घात्यते । ततो हीनतरं मायातृतीयसंग्रहकिट्टिवेदनकाले घात्यते, तेनाऽन्तर्मुहूर्ताधिकचतुर्मासप्रमाणं स्थितिसत्त्वं मायाप्रथमसंग्रहकिट्टिवेदनकाले घात्यते । ततश्च मायाप्रथमसंग्रहकिट्टिवेदनचरमसमये स्थितिसत्त्वमन्तर्मुहूर्तन्यू-

नाष्टमासाधिकवर्षमात्रं भवति । व्याहृतं च कषायप्राभृतचूर्णौ–"एदेणेव विहिणा संपत्तो मायापढमकिट्टिं वेदयमाणस्स जा पढमट्ठिदी, तिस्से समयाहियावलिया सेसा त्ति, ताधे ठिदिबंधो दोण्हं संजलणाणं पणुवोसं दिवसा देसूणा । ठिदिसंतकम्मं वरसमट्ठ च मासा देसूणा ।" इति ।

ज्ञानावरण-दर्शनावरणा-ऽन्तरायाणां स्थितिसत्त्वं तु संख्येयानि वर्षसहस्राणि, नामगोत्र-वेदनीयानां चाऽसंख्येयानि वर्षसहस्राणि बोध्यम्, पूर्वमभिहितत्वाद् इह नोक्तम् । तदानीं चोदयसमयाधिकावलिकागतं समयोना-ऽऽवलिकाद्वयबद्धं च नूतनं दलं विहाय शेषं मायाप्रथमसंग्रहकिट्टिदलं गृहीत्वा ततश्चाऽसंख्येयभागमात्रं यथायोग्यमन्यत्र संक्रम्य शेषसर्वदलं मायाद्वितीयसंग्रहकिट्टेरधस्तादपूर्वावान्तरकिट्टितया परिणमयति, इत्थं मायाद्वितीयसंग्रहकिट्टौ दलं मोहनीयसकलदलस्य विंशतिचतुर्विंशतिभागप्रमाणं ($\frac{२०}{२४}$) जायते, मायाप्रथमसंग्रहकिट्टिदलस्यैकोनविंशतिचतुर्विंशतिभागप्रमितस्य तदानीं मायाद्वितीयसंग्रहकिट्टितया परिणतत्वात् । तथा मायाद्वितीयसंग्रहकिट्टिदलमितरसंग्रहकिट्टयपेक्षया विंशतिगुणं जायते, इतरसंग्रहकिट्टीनां प्रत्येकं दलस्यैकचतुर्विंशतिभागप्रमाणत्वात् । एवं मायाद्वितीयसंग्रहकिट्टेरवान्तरकिट्टयो-ऽपि वाच्याः ॥ १८२ ॥

मायाप्रथमसंग्रहकिट्टिवेदनप्ररूपणायन्त्रकम्

(१) द्वितीयस्थितिस्थमायाप्रथमसंग्रहकिट्टिप्रदेशाग्रमपकृष्य मायाप्रथमसंग्रहकिट्टया प्रथमस्थितिं करोति वेदयति च। शेषविधिस्तु पूर्ववद् बोध्य, नवरं सञ्ज्वलनद्विकस्य प्रथमसंग्रहकिट्टिं बध्नाति। तथाऽवान्तरकिट्टयल्पबहुत्व प्रदेशाल्पबहुत्वञ्च षट्पदकं वाच्यम्, तत्राऽपि लोभतृतीसंग्रहकिट्टितो मायाप्रथमसंग्रहकिट्टेरवान्तरकिट्टय प्रदेशाश्च संख्येयगुणा वाच्या ।

मायाप्रथमसंग्रहकिट्टिवेदनाद्धायां मानस्य चरमप्रक्षेपेऽसंक्रमयमाणे

(२) सञ्ज्वलनमानस्य जघन्यस्थितिसत्त्वं जघन्याऽनुभागसत्कर्म च।

(३) मानोदयचरमसमये जघन्ययोगिना बद्धसञ्ज्वलनमानस्य जघन्यप्रदेशसत्कर्म भवति।

(४) चरमप्रक्षेप संक्रमयतो जीवस्य तु संज्वलनमानस्य जघन्यस्थितिसंक्रमो जघन्यानुभागसंक्रमश्च।

(५) तथा कर्मप्रकृतिचूर्णिकृदभिप्रायेण मानोदयचरमसमये जघन्ययोगेन बद्धस्य नूतनमानदलिकस्य जघन्यप्रदेशसंक्रमो भवति ।

(६) मायाप्रथमसंग्रहकिट्टे. प्रथमस्थितौ द्व्यावलिकाशेषायामागालो व्यवच्छिद्यते ।

(७) मायाप्रथमसंग्रहकिट्टे प्रथमस्थितौ समयाधिकावलिकाशेषायां मायाया जघन्यस्थित्युदीरणा

(८) मायाप्रथमसंग्रहकिट्टे प्रथमस्थितौ समयाधिकावलिकाशेषायां मायाप्रथमसंग्रहकिट्टेश्चरमोदय ।

मायाप्रथमसंग्रहकिट्टेरुदयचरमसमये

(९) संज्वलनद्विकस्य स्थितिबन्धोऽन्तर्मुहूर्तन्यूनपञ्चविंशतिदिवसप्रमाण ।

(१०) संज्वलनद्विकस्य स्थितिसत्त्वमन्तर्मुहूर्तन्यूनाष्टमासाधिकैकवर्षमात्रम् ।

(११) घातित्रयस्य संख्यातवर्षसहस्राण्यघातित्रयस्य चासंख्येयवर्षसहस्राणि स्थितिसत्कर्म ।

(१२) समयाधिकोदयावलिकागत समयोनावलिकाद्वयबद्ध च दलं मुक्त्वा शेष प्रभूतं मायाप्रथमसंग्रहकिट्टिदल यथासंभवं मायाद्वितीयसंग्रहकिट्टित्वेन परिणतम् । तेन मायाद्वितीयसंग्रहकिट्टिदल मोहनीयसकलदलस्य विंशतिचतुर्विंशतिभागकल्प ($\frac{२०}{२४}$) जायते ।

(१३) इतरसंग्रहकिट्टयपेक्षया मायाद्वितीयसंग्रहकिट्टे प्रदेशा अवान्तरकिट्टयश्च विंशतिगुणा जायन्ते ।

मायाप्रथमसंग्रहकिट्टिवेदनाद्धायाः समाप्तेरनन्तरं यत्करोति, तद् निजिगदिषुराह

सेकाले पढमठिइं मायाबीयाउ करइ अणुहवए ऽन्ते ।
देसूणा वीसदिणा बंधो मोहस्स सोलमासा संतं ॥१८३॥ (आर्यागीतिः)

अनन्तरकाले प्रथमस्थितिं मायाद्वितीयस्या करोत्यनुभवत्यन्ते ।
देशोना विंशतिदिना बन्धो मोहस्य षोडशमासा सत्त्वम् ॥१८३॥ इति पदसंस्कारः ।

'सेकाले' इत्यादि, 'अनन्तरकाले' मायाप्रथमसंग्रहकिट्टिवेदनकालसमाप्तितोऽनन्तरसमय इत्यर्थः, 'मायाद्वितीयस्याः' गम्यस्य यवन्तस्योत्पूर्वककृधातोः कर्मणि पञ्चमी विभक्तिः, ततश्चायमर्थः मायाद्वितीयामुत्कीर्य=मायाद्वितीयसंग्रहकिट्टिप्रदेशाग्रमुत्कीर्योदयसमयादारभ्य स्ववेदनकालत आवलिकयाऽधिकासु स्थितिष्वसंख्येयगुणक्रमेण निक्षिपन् 'प्रथमस्थितिं' मायाद्वितीयसंग्रहकिट्टेः प्रथमस्थितिं करोति । न्यगादि च कषायप्राभृतचूर्णौ **"से काले मायाए विदियकिट्टीदो पदेसग्गमोकड्डियूण पढमट्ठिदिं करेदि ।"** इति । 'अणुहवए' त्ति 'अनुभवति' तथा तदानीमेव मायाद्वितीयसंग्रहकिट्टिप्रथमस्थितिं वेदयति । अभिहितं च सप्ततिकाचूर्णौ **"तओ से काले मायाए बितियकिट्टीओ दलिअं ओकड्ढित्तु पढमठिर्ति करेइ वेदेइ य ।"** इति ।

तदानीमुदयावलिकागतं प्रथमस्थितौ द्वितीयस्थितौ च द्विसमयोनद्व्यावलिकाबद्धमभिनवं मायाप्रथमसंग्रहकिट्टिदलं सत्कर्मणि विद्यते । अन्यः सर्वविधिः पूर्ववज्ज्ञातव्यः, नवरं मायाया द्वितीयसंग्रहकिट्टिर्बध्यते, लोभस्य तु पूर्ववत् प्रथमा । लोभतृतीयसंग्रहकिट्टितो मायाद्वितीयसंग्रहकिट्टेरवान्तरकिट्टयः प्रदेशाश्च संख्येयगुणा बोद्धव्याः, तथा मायाद्वितीयसंग्रहकिट्टिप्रथमस्थितौ द्व्यावलिकाशेषायामागालो व्यवच्छिद्यते । ततः समयोनाऽऽवलिकायां गतायां मायाया जघन्यस्थित्युदीरणा जायते, मायाद्वितीयसंग्रहकिट्टेश्च चरमोदयः प्रवर्तते ।

'अन्ते' चरमे=मायाद्वितीयसंग्रहकिट्टेरुदयचरमसमय इत्यर्थः, मोहस्य मायालोभात्मकस्य मोहनीयकर्मणो बन्धो 'देशोना' अन्तर्मुहूर्तन्यूना विंशतिदिना जायते । अथ मायाद्वितीयसंग्रहकिट्टिवेदनचरमसमये स्थितिसत्त्वं भणति 'सोलमासा' इत्यादि, 'देसूणा' त्तिपदमत्राऽपि योज्यम् , देशोना-अन्तर्मुहूर्तन्यूनाः षोडशमासाः 'सत्त्वं' स्थितिसत्त्वं जायते, बन्धस्य सत्त्वस्य च त्रैराशिकसाधितप्रमाणेन हानिदर्शनात् । उक्तं च कषायप्राभृतचूर्णौ **"ताधे ठिदिबंधो वीसं दिवसा देसूणा, ठिदिसंतकम्मं सोलस मासा देसूणा ।"** इति ।

घातित्रयस्य स्थितिसत्त्वं संख्येयानि वर्षसहस्राण्यघातित्रयस्याऽसंख्येयानि वर्षसहस्राणि ज्ञेयम्, पूर्वं प्रतिपादितत्वाद् नेह निगदितम् । तदानीमुदयसमयाधिकावलिकागतं समयोनाद्व्यावलिकाबद्धं च नूतनं दलं परित्यज्य शेषं सर्वं मायाद्वितीयसंग्रहकिट्टिदलं गृहीत्वा

ततश्चाऽसंख्येयभागमात्रं यथायोग्यमन्यत्र संक्रम्य शेषसर्वदलं मायातृतीयसंग्रहकिट्टेरधस्तादपूर्वावा-न्तरकिट्टितया संक्रमयति । इत्थं मायातृतीयसंग्रहकिट्टिदलं मोहनीयसकलदलस्यैकविंशतिचतुर्विंशतिभागप्रमाणं ($\frac{21}{24}$) जायते, मायाद्वितीयसंग्रहकिट्टिदलस्य विंशतिचतुर्विंशतिभागप्रमितस्य तदानीं मायातृतीयसंग्रहकिट्टितया परिणतत्वात् । तथा मायातृतीयसंग्रहकिट्टिदलमितरसंग्रहकिट्टय-पेक्षयैकविंशतिगुणं जायते, इतरसंग्रहकिट्टीनां प्रत्येकं दलस्यैकचतुर्विंशतिभागप्रमाणत्वात् । एवं मायातृतीयसंग्रहकिट्टेरवान्तरकिट्टयोऽपि वक्तव्याः ॥१८३॥

मायाद्वितीयसंग्रहकिट्टिवेदनप्ररूपणायन्त्रकम्

(१) द्वितीयस्थितिस्थमायाद्वितीयसंग्रहकिट्टिगतप्रदेशाग्रमपकृष्य मायाद्वितीयसंग्रहकिट्टिप्रथमस्थितिं करोति वेदयति च । शेषविधिस्तु पूर्ववद् बोध्य । नवरं मायाया द्वितीयसंग्रहकिट्टिं बध्नाति, लोभस्य तु पूर्ववत् प्रथमाम्, तथाऽवान्तरकिट्टयल्पबहुत्वं प्रदेशाल्पबहुत्वञ्च पञ्चपदकं वक्तव्यम्, तत्राऽपि लोभतृतीयसंग्रहकिट्टितो मायाद्वितीयसंग्रहकिट्टेरवान्तरकिट्टय प्रदेशाश्च संख्येयगुणा वाच्या. ।

(२) मायाद्वितीयसंग्रहकिट्टे प्रथमस्थितौ द्व्यावलिकाशेषायां मायाद्वितीयसंग्रहकिट्टेरागालो व्यव-च्छिद्यते ।

मायाद्वितीयसंग्रहकिट्टिप्रथमस्थितौ समयाधिकावलिकाशेषायाम्

(३) मायाद्वितीयसंग्रहकिट्टेरुदयचरमसमय ।

(४) संज्वलनमायाया जघन्यस्थित्युदीरणा ।

(५) संज्वलनद्विकस्य स्थितिबन्धोऽन्तर्मुहूर्तन्यूनविंशतिदिवसा ।

(६) सज्वलनद्विकस्य स्थितिसत्त्वमन्तर्मुहूर्तन्यूनचतुर्मासाधिकैकवर्षप्रमितम् ।

(७) ज्ञानावरणदर्शनावरणाऽन्तरायाणां स्थितिसत्त्वं सख्येयानि वर्षसहस्राणि ।

(८) नामगोत्रवेदनीयानां स्थितिसत्त्वमसंख्येयवर्षसहस्राणि ।

(९) समयाधिकोदयावलिकागतं समयोनावलिकाद्वयबद्धं च नूतनं दलिकं वर्जयित्वा शेषं प्रभूतं माया-द्वितीयसंग्रहकिट्टिदलं यथाक्रमं मायातृतीयसंग्रहकिट्टितया परिणम्यते । तेन मायातृतीयसंग्रहकिट्टि-दलं मोहनीयसर्वदलस्यैकविंशतिचतुर्विंशतिभागकल्पं ($\frac{21}{24}$) जायते ।

(१०) मायातृतीयसंग्रहकिट्टिदलमितरसंग्रहकिट्टयपेक्षयैकविंशतिगुणं भवति ।

(११) एव मायातृतीयसंग्रहकिट्टेरवान्तरकिट्टयोऽपीतरसंग्रहकिट्टीनामवान्तरकिट्टिभ्य एकविंशतिगुणा ।

मायाद्वितीयसंग्रहकिट्टिवेदनाद्धासमाप्तितः परं यत्करोति, तदभिधातुकाम आह

सेकाले पढमठिइं मायातइयाउ कुणइ अणुहवए ।
पण्णरसदिणा बंधो संजलणदुगस्स चरिमुदये ॥१८४॥

अनन्तरकाले प्रथमस्थितिं मायातृतीयाया. करोत्यनुभवति ।
पञ्चदशदिना बन्ध संज्वलनद्विकस्य चरमोदये ॥१८४॥ इति पदसंस्कार. ।

'सेकाले' इत्यादि, 'अनन्तरकाले' मायाद्वितीयसंग्रहकिट्टिवेदनाद्धासमाप्तितोऽनन्तरसमये 'मायातृतीयायाः' मायातृतीयामुत्कीर्य=मायातृतीयसंग्रहकिट्टिप्रदेशाग्रमुत्कीर्योदयसमयादारभ्य माया-

वेदनकालत आवलिकयाऽधिकासु स्थितिष्वसंख्येयगुणक्रमेण दलं प्रक्षिपन् 'प्रथमस्थितिं' मायातृतीयसंग्रहकिट्टेः प्रथमस्थितिं 'करोति' निर्वर्तयति । अभ्यधायि च कषायप्राभृतचूर्णौ–"**से काले मायाए तदियकिट्टीदो पदेसग्गमोकड्डियूण पढमठिदिं करेदि** ।" इति । 'अणुहवइ' त्ति'अनुभवति' तदानीमेव च मायातृतीयसंग्रहकिट्टिप्रथमस्थितिं वेदयते । प्रत्यपादि च सप्ततिकाचूर्णौ–"**तओ से काले मायाए ततियकिट्टीओ दलियं ओकड्डि त्तु पढमठिर्ति करेइ अंतोमुहुत्तपमाणं वेदेइ य** ।" इति ।

तदानीमुदयावलिकागतं प्रथमस्थितौ द्वितीयस्थितौ च द्विसमयोनद्व्यावलिकाबद्धं मायाद्वितीयसंग्रहकिट्टिदलं सत्कर्मणि भवति । अन्यः सर्वविधिः पूर्ववज्ज्ञातव्यः । नवरं मायायास्तृतीयसंग्रहकिट्टिर्वेद्यते, लोभस्य तु पूर्ववत् प्रथमा । लोभतृतीयसंग्रहकिट्टितो मायातृतीयसंग्रहकिट्टेरवान्तरकिट्टयः प्रदेशाश्च संख्यातगुणा भवन्ति । एवंविधानेन मायातृतीयसंग्रहकिट्टिप्रथमस्थितौ द्व्यावलिकाशेषायामागालो व्यवच्छिद्यते । ततः समयोनावलिकाऽतिक्रमे मायाया जघन्यस्थित्युदीरणा जायते, मायातृतीयसंग्रहकिट्ट्याश्चोदयचरमसमयः । तदानीं संज्वलनमायाया जघन्यानुभागोदीरणा गुणितकर्मांशस्य च जन्तोर्मायाया उत्कृष्टप्रदेशोदीरणा जायते । तदानीमेव मायायाश्चरमोदयो भवति, अनन्तरसमये लोभस्योदयात् । उदीरणावत् संज्वलनमायाया जघन्यानुभागोदयो गुणितकर्मांशस्य च क्षपकस्य मायाया उत्कृष्टप्रदेशोदयो भवति ।

'**पण्ण०**' इत्यादि, तत्र '**चरिमुदये**' त्ति'चरमोदये' संज्वलनमायाया उदयचरमसमये मायातृतीयसंग्रहकिट्टिप्रथमस्थितौ समयाधिकावलिकाशेषायामित्यर्थः, 'सज्वलनद्विकस्य' मायालोभरूपस्य कषायद्वयस्य 'बन्धः' स्थितिबन्धः पञ्चदशदिना भवति । मायाद्वितीयसंग्रहकिट्टिवेदनाद्धाचरमसमये विहितस्थितिबन्धः क्रमेण हीनः सन् मायातृतीयसंग्रहकिट्टिवेदनाद्धायां त्रैराशिकसाधितप्रमाणेन हीनो भूत्वेदानीं पञ्चदशदिवसमात्रो जायत इत्यर्थः । निरदेशि च कषायप्राभृतचूर्णौ–"**ताधे मायाए चरिमसमयवेदगो । ताधे दोण्हं संजलणाणं ट्ठिदिबंधो अद्धमासो पडिवुण्णो** ।" इति । अयं च स्थितिबन्धो मायायाः सर्वजघन्यस्थितिबन्धः । मायाया अनुभागबन्धोऽपि तदानीं सर्वजघन्यो भवति ॥ १८४ ॥

अथ मायावेदनचरमसमये मोहनीयवर्जानां षण्णां कर्मणां स्थितिबन्धं मोहनीयस्य च स्थितिसत्त्वमभिधित्सुराह

घाईणं मासपुहुत्तं इयराणं य संखवरिसाणि ।
ठिइसंतं दुण्हं संजलणाणं होइ इगवासो ॥१८५॥

घातिनां मासपृथक्त्वमितरेषां च सङ्ख्यवर्षाणि ।
स्थितिसत्त्वं द्वयोः सञ्ज्वलनयोर्भवत्येकवर्षं ॥१८५॥ इति पदसंस्कारः ।

'घाईणं' इत्यादि, मायातृतीयसंग्रहकिट्टिवेदनचरमसमये 'घातिनां' ज्ञानावरण-दर्शनावरणा-ऽन्तरायाणां कर्मणां स्थितिबन्धो मासपृथक्त्वं भवति । क्रोधद्वितीयसंग्रहकिट्टिवेदनचरमसमये यस्त्रयाणां घातिकर्मणां स्थितिबन्धो वर्षपृथक्त्वमात्र आसीत्, स क्रमेण हीयमानः सन् मायावेदनाद्धाचरमसमये मासपृथक्त्वप्रमितो जायते । उक्तं च कषायप्राभृतचूर्णौ—"**तिण्हं घादिकम्माणं ठिदिबंधो मासपुधत्तं ।**" इति ।

'इयराणं इत्यादि, 'इतरेषाम्' अघातिकर्मणां नामगोत्रवेदनीयरूपाणां च स्थितिबन्धः सङ्ख्यवर्षाणि भवति, पूर्वमपि संख्यातवार्षिक आसीत्, संख्यातस्थितिबन्धेषु गतेष्वपीदानीं सङ्ख्यातवार्षिको भवति, नवरं पूर्वतः संख्येयगुणहीनो भवति ।

निश्चयनयमतमाश्रित्य तदानीमेव व्यवच्छिद्यमाना मायाया बन्धोदयोदीरणा युगपद् व्यवच्छिन्नाः । न्यगादि च सप्ततिकाचूर्णौ—"**तम्मि समए मायाए बंधोदओदीरणा य जुगवं फिट्टंति ।**" इति ।

अथ स्थितिसत्त्वमभिधत्ते 'दुण्हं' इत्यादि, 'द्वयोः संज्वलनयोः' मायालोभरूपयोः कषाययोः स्थितिसत्त्वमेकवर्षो 'भवति' जायते । मायाद्वितीयसंग्रहकिट्टिवेदनाद्धाचरमसमयोक्तस्थितिसत्त्वतः क्रमशो हीनो भवद् मायातृतीयसंग्रहकिट्टिवेदनकाले त्रैराशिकसाधितप्रमाणेन हीनं भूत्वेदानीमेकवर्षप्रमितं जायत इत्यर्थः । उक्तं च कषायप्राभृतचूर्णौ—"**ठिदिसंतकम्ममेक्कं वस्सं पडिवुण्णं ।**" इति ॥ १८५ ॥

अथ षट्कर्मणां स्थितिसत्त्वं लोभप्रथमसंग्रहकिट्टिवेदनं चाऽभिधातुकाम आह

घाइअघाईण कमा संखासंखियसमासहस्साइं ।
सेकाले पढमठिइं कुणेइ लोहपढमाउ वेयइ य ॥१८६॥ (गीतिः)

घात्यघातिनां क्रमात् संख्यासंख्यसमासहस्राणि ।
अनन्तरकाले प्रथमस्थितिं करोति लोभप्रथमाया वेदयति च ॥१८६॥ इति पदसंस्कारः ।

'घाइ०' इत्यादि, मायातृतीयसंग्रहकिट्टिवेदनाद्धाचरमसमये घात्यघातिनां कर्मणां क्रमात् स्थितिसत्त्वं संख्यासंख्यसमासहस्राणि जायते, मोहनीयस्योक्तत्वाच्छेषघातित्रयस्य स्थितिसत्त्वं संख्यातानि वर्षसहस्राण्यघातित्रयस्य चाऽसंख्येयानि वर्षसहस्राणि भवतीत्यर्थः । प्रत्यपादि च कषायप्राभृतचूर्णौ "**तिण्हं घादिकम्माणं ठिदिसंतकम्मं संखेज्जाणि वस्ससहस्साणि । इदरेसिं कम्माणं ठिदिसंतकम्ममसंखेज्जाणि वस्ससहस्साणि ।**" इति ।

तदानीमेवोदयसमयाधिकाऽऽवलिकागतं समयोनद्व्यावलिकाबद्धं च नूतनं दलं वर्जयित्वा शेषं मायातृतीयसंग्रहकिट्टिदलं गृहीत्वा ततश्चासंख्येयभागमात्रं दलं लोभप्रथमसंग्रहकिट्टिपूर्वापूर्वान्तर-

किट्टित्वेन परिणम्य शेषं सर्वदलं लोभप्रथमसंग्रहकिट्टेरधस्तादपूर्वावान्तरकिट्टितया संक्रमयति । तथा चोक्तं सप्ततिकाचूर्णौ-"xxxवेदेइ य ताव, जाव समयाहियावलिया सेस त्ति । तम्मि समये xxxxxxxx संतकम्मं पि समऊणदुयावलियावद्धं मोत्तूण सेसं सव्वं लोभसंजलणम्मि पक्खित्तं ।" इति । इत्थं लोभप्रथमसंग्रहकिट्टिदलं मोहनीयसकलदलस्य द्वाविंशतिचतुर्विंशतिभागप्रमाणं ($\frac{22}{24}$) जायते, मायातृतीयसंग्रहकिट्टिदलस्यैकविंशतिचतुर्विंशतिभागप्रमितस्य तदानीं लोभप्रथमसंग्रहकिट्टितया परिणतत्वात् । तथा लोभप्रथमसंग्रहकिट्टिदलमितरसंग्रहकिट्टयपेक्षया द्वाविंशतिगुणं जायते, इतरसंग्रहकिट्टयोः प्रत्येकं दलस्यैकचतुर्विंशतिभागप्रमितत्वात् । एवं लोभप्रथमसंग्रहकिट्टेरवान्तरकिट्टयोऽपि वक्तव्याः ।

मायातृतीयसंग्रहकिट्टिवेदनप्ररूपणायन्त्रकम्

(१) द्वितीयस्थितिस्थमायातृतीयसंग्रहकिट्टिप्रदेशाग्रमपकृष्य मायातृतीयसंग्रहकिट्टिप्रथमस्थितिं करोति वेदयति च । शेषविधिस्तु पूर्ववद् बोध्य. । यो विशेष , स दर्श्यते
  (अ) मायातृतीयसंग्रहकिट्टिवेदनाद्धाप्रथमसमय उदयावलिकागत द्वितीयस्थितौ च द्विसमयोनद्वयावलिकाबद्धं नूतनं दलं मायाद्वितीयसंग्रहकिट्टिसत्कं सत्कर्मणि विद्यते ।
  (ब) मायाया तृतीयसंग्रहकिट्टिं बध्नाति, लोभस्य तु पूर्ववत् प्रथमाम् ।
  (स) अवान्तरकिट्टयल्पबहुत्व प्रदेशाल्पबहुत्वञ्च चतुष्पदकं वक्तव्यम् । तत्राऽपि मायातृतीयसंग्रहकिट्टेरवान्तरकिट्टय प्रदेशाग्र लोभतृतीयसंग्रहकिट्टित संख्येयगुणा वाच्या ।
(२) मायातृतीयसंग्रहकिट्टिप्रथमस्थितौ द्वयावलिकाशेषायां मायाया आगालो व्यवच्छिद्यते ।
(३) मायातृतीयसंग्रहकिट्टिप्रथमस्थितौ समयाधिकावलिकाशेषायाम् ।
  (क) मायाया जघन्यस्थित्युदीरणा जघन्यस्थित्युदयो जघन्यानुभागोदीरणा जघन्यानुभागदयश्च ।
  (ख) गुणितकर्मांशस्य जन्तोरुत्कृष्टप्रदेशोदीरणोत्कृष्टप्रदेशोदयश्च ।
  (ग) संज्वलनद्विकस्य स्थितिबन्ध पञ्चदशदिवसप्रमाण ।
  (घ) मायाया सर्वजघन्यस्थितिबन्ध ।
  (ङ) मायाया सर्वजघन्याऽनुभागबन्ध ।
  (च) सञ्ज्वलनद्विकस्य स्थितिसत्त्वमेकवर्षप्रमाणम् ।
  (छ) समयाधिकोदयावलिकागत समयोनद्वयावलिकाबद्ध च नूतनं दलं विहाय शेष सर्वं मायातृतीयसंग्रहकिट्टिदलं यथागम लोभप्रथमसंग्रहकिट्टित्वेन परिणमयति । तेन लोभप्रथमसंग्रहकिट्टिदल मोहनीयसर्वदलस्य द्वाविंशतिचतुर्विंशतिभागकल्पं ($\frac{22}{24}$) भवति ।
  (ज) लोभप्रथमसंग्रहकिट्टेरवान्तरकिट्टय प्रदेशाश्चेतरसंग्रहकिट्टितो द्वाविंशतिगुणा ।
  (झ) निश्चयनयापेक्षयो मायाया बन्धोदयोदीरणा व्यवच्छिद्यमाना व्यवच्छिन्ना ।

अथ लोभवेदनकालं विवर्णयिषुराह- 'सेकाले' इत्यादि, 'अनन्तरकाले' मायातृतीयसंग्रहकिट्टिवेदनकालसमाप्तितोऽनन्तरसमये 'लोभप्रथमायाः' लोभप्रथमसंग्रहकिट्टिप्रदेशाग्रमुत्कीर्योदयसमयादारभ्याऽसंख्येयगुणक्रमेण बादरलोभवेदनकालस्य साधिकद्विभागप्रमाणासु लोभवेदनकालस्य च साधिकत्रिभागमितासु लोभप्रथमसंग्रहकिट्टिवेदनकालतरत्वावलिकयाऽधिकासु स्थितिषु

निक्षिपन्'प्रथमस्थितिं' संज्वलनलोभप्रथमसंग्रहकिट्टेरादिमस्थितिं करोति। अवादि च कषायप्राभृतचूर्णौ-"तदो से काले लोभस्स पढमकिट्टीदो पदेसग्गमोकड्डियूण पढमट्ठिदिं करेदि।" इति

'वेयइ य' त्ति 'वेदयति च' तदानीमेव लोभप्रथमसंग्रहकिट्टिमनुभवति च। यदुक्तं सप्ततिकाचूर्णौ-"तओ से काले लोभस्स पढमकिट्टीओ दलियं ओकड्डित्तु पढमठितिं करेइ अंतोमुहुत्तप्पमाणमेत्तं, तं च लोभवेयगद्धाए तिभागो वेदेइ य।" इति। तदानीं प्रथमस्थितावुदयावलिगतं यद् मायातृतीयसंग्रहकिट्टिदलं विद्यते, तत् प्रतिसमयं संज्वलनलोभे स्तिबुकसंक्रमेण संक्रम्य विनाशयति। द्वितीयस्थितौ च द्विसमयोनाऽऽवलिकाद्वयेन बद्धं यद् मायातृतीयसंग्रहकिट्टिदलं विद्यते, तत् तावता कालेन पुरुषवेदवत् संक्रमयता जन्तुना चरमप्रक्षेपेऽसंक्रम्यमाणे संज्वलनमायाया जघन्यस्थितिसत्त्वं जघन्याऽनुभागसत्त्वं च, तथा जघन्ययोगिना बद्धनूतनदलिकस्य जघन्यप्रदेशसत्कर्म प्राप्यते। तदानीं च चरमप्रक्षेपे संक्रम्यमाणे संज्वलनमायाया जघन्यस्थितिसंक्रमो जघन्यश्चानुभागसंक्रमो भवति। कर्मप्रकृतिचूर्णिकारादीनामभिप्रायेण मायोदयचरमसमये जघन्ययोगिना जन्तुना बद्धनूतनमायादलिकस्य तदानीं जघन्यप्रदेशसंक्रमोऽपि जायते।

शेषसर्वविधिः पूर्ववद् वेदितव्यः, नवरं लोभस्यैव प्रथमसंग्रहकिट्टिर्वेद्यते, अवान्तरकिट्ट्यल्पबहुत्वं प्रदेशाऽल्पबहुत्वञ्च त्रिपदकं वक्तव्यम्, तत्राऽपि लोभतृतीयसंग्रहकिट्टितो लोभप्रथमसंग्रहकिट्टीनामवान्तरकिट्टयः प्रदेशाश्च संख्यातगुणा भवन्ति।

एवंविधानेन लोभप्रथमसंग्रहकिट्टेः प्रथमस्थितौ द्व्यावलिकाशेषायामागालो व्यवच्छिद्यते। ततः समयोनावलिकायां गतायां प्रथमस्थितेः समयाधिकावलिकायां शेषायां संज्वलनलोभस्य जघन्यस्थित्युदीरणा भवति, तदानीं च लोभप्रथमसंग्रहकिट्टेश्चरमोदयः॥१८६॥

अथ लोभप्रथमसंग्रहकिट्टिवेदनाद्धाचरमसमये सप्तानामपि कर्मणां स्थितिबन्धं मोहस्य च स्थितिसत्त्वं निजिगदिषुराह

चरिमे बंधो लोहस्स मुहुत्तंतो तहेव संतं वि।
बंधो घाईण दिणपुहुत्तमघाईण वच्छरपुहुत्तं॥१८७॥ (गीतिः)

चरमे बन्धो लोभस्य मुहूर्तान्तस्तथैव सत्त्वमपि।
बन्धो घातिनां दिनपृथक्त्वमघातिनां वत्सरपृथक्त्वम्॥१८७॥ इति पदसंस्कारः।

'चरिमे' इत्यादि, 'चरमे' लोभप्रथमसंग्रहकिट्टिवेदनाद्धायाश्चरमसमये 'लोभस्य' संज्वलनलोभस्य 'बन्धः' स्थितिबन्धो 'मुहूर्तान्तः' अन्तर्मुहूर्तं भवति। मायातृतीयसंग्रहकिट्टिवेदनाद्धाचरमसमये यः स्थितिबन्धः-पञ्चदशदिवसप्रमाण आसीत्, स क्रमेण हीनो भवन् सम्प्रत्यन्त-

मुहूर्तप्रमितो जायत इत्यर्थः । 'तहेव' इत्यादि, 'तथैव सत्त्वमपि' लोभस्य स्थितिसत्त्वमपि स्थितिबन्धवदन्तमुहूर्तप्रमाणं भवति । अभिहितं च कषायप्राभृतचूर्णौ–"ताधे लोभसंजलणस्स ठिदिबंधो अंतोमुहुत्तं । ठिदिसंतकम्मं पि अंतोमुहुत्तं ।" इति । इदमत्राऽवधेयम्–उभयोरन्तमुहूर्तमात्रत्वेऽपि स्थितिबन्धतः स्थितिसत्त्वं संख्येयगुणं भवति ।

'बंधो' इत्यादि, तत्र 'घातिनां' मोहनीयस्योक्तत्वाज्ज्ञानावरणदर्शनावरणाऽन्तरायाणां 'बन्धः' स्थितिबन्धो दिनपृथक्त्वं लोभप्रथमसंग्रहकिट्टिवेदनचरमसमये भवति, यो मायातृतीयसंग्रहकिट्टिवेदनाद्धाचरमसमये मासपृथक्त्वप्रमित आसीत् । 'अघातिनां' नामगोत्रवेदनीयानां स्थितिबन्धो 'वत्सरपृथक्त्वं' वर्षपृथक्त्वं भवति, यो मायातृतीयसंग्रहकिट्टिवेदनाद्धाचरमसमये तत्प्रायोग्यसंख्येयवर्षप्रमाण आसीत् । उक्तं च कषायप्राभृतचूर्णौ–"ताधे लोभसंजलणस्स ठिदिबंधो अंतोमुहुत्तं । तिण्हं घादिकम्माणं ठिदिबंधो दिवसपुधत्तं । सेसाणं कम्माणं वासपुधत्तं ।" इति ॥१८७॥

मोहनीयस्य स्थितिसत्त्वमुक्तम् । अथ षण्णां कर्मणां स्थितिसत्त्वं प्रदर्शयितुकाम आह

घाईणं संतं संखसहस्साणि वरिसाण होज्जेइ ।
तिण्ह अघाईण असंखेज्जाइं वच्छराणि खलु ॥१८८॥

घातिनां सत्त्वं संख्यसहस्राणि वर्षाणां भवति ।
त्रयाणामघातिनामसंख्येयानि वत्सराणि खलु ॥१८८॥ इति पदसंस्कारः ।

'घाईणं' इत्यादि, लोभप्रथमसंग्रहकिट्टिवेदनाद्धाचरमसमये 'घातिनां' ज्ञानावरणदर्शनावरणाऽन्तरायाणां कर्मणां 'सत्त्वं' स्थितिसत्त्वं वर्षाणां संख्यसहस्राणि भवति, पूर्वमपि मायावेदनाद्धाचरमसमये ज्ञानावरणादीनां स्थितिसत्त्वं संख्येयवर्षसहस्रमात्रमासीत्, ततोऽन्तमुहूर्तप्रमाणायां लोभप्रथमसंग्रहकिट्टिवेदनाद्धायां गतायां संख्येयगुणहीनं भवदपि संख्येयवर्षसहस्रप्रमाणं विद्यत इत्यर्थः । 'तिण्ह' इत्यादि, लोभप्रथमसंग्रहकिट्टिवेदनाद्धाचरमसमये त्रयाणामघातिनां कर्मणां नामगोत्रवेदनीयलक्षणानां स्थितिसत्त्वं खल्वसंख्येयानि 'वत्सराणि' वर्षाणि भवति, सुगममिदम् । यत् प्रतिपादितं कषायप्राभृतचूर्णौ–"घादिकम्माणं ठिदिसंतकम्मं संखेज्जाणि वस्ससहस्साणि, सेसाणं कम्माणमसंखेज्जाणि वस्साणि ।" इति ।

तदानीमेवोदयसमयावलिकावलिकागतं समयोनद्व्यावलिकाबद्धं च नूतनं दलं विहाय शेषं लोभप्रथमसंग्रहकिट्टिदलं गृहीत्वा ततश्च यथायोग्यमन्यत्र किञ्चिद्दलं संक्रम्य शेषसर्वदलं लोभद्वितीयसंग्रहकिट्टेरधस्तादपूर्वावान्तरकिट्टितया संक्रमयति । इत्थं लोभद्वितीयसंग्रहकिट्टिदलं मोहनीयनकलदलस्य त्रयोविंशतिचतुर्विंशतिभागप्रमाणं (२३/२४) जायते, लोभप्रथमसंग्रहकिट्टिगतस्य द्वाविंशतिचतुर्विंशतिभागप्रमाणस्य दलस्य तदानीं लोभद्वितीयसंग्रहकिट्टितया परिणतत्वात् । तथा लोभ-

द्वितीयसंग्रहकिट्टिदलं लोभतृतीयसंग्रहकिट्टिदलतस्त्रयोविंशतिगुणं जायते, लोभतृतीयसंग्रहकिट्टिदलस्यैकचतुर्विंशतिभागप्रमाणत्वात् । एवं लोभद्वितीयसंग्रहकिट्टेरवान्तरकिट्टयोऽपि ज्ञातव्याः ॥१८८॥

लोभप्रथमसंग्रहकिट्टिवेदनप्ररूपणायन्त्रकम्

(१) द्वितीयस्थितिस्थलोभप्रथमसंग्रहकिट्टिप्रदेशाग्रमपकृष्य लोभप्रथमसंग्रहकिट्ट्या प्रथमस्थितिं करोति वेदयति च । शेषविधिस्तु पूर्ववद् बोध्य, नवरं संज्वलनलोभस्य प्रथमसंग्रहकिट्टिं बध्नाति । तयाऽवान्तरकिट्टयल्पबहुत्वं प्रदेशाल्पबहुत्वञ्च त्रिपदक वाच्यम्, तत्राऽपि लोभतृतीयसंग्रहकिट्टितो लोभप्रथमसंग्रहकिट्टेरवान्तरकिट्टय प्रदेशाश्च सङ्ख्येयगुणा वाच्या ।

लोभप्रथमसंग्रहकिट्टिवेदनाद्धायां मायायाश्चरमप्रक्षेपेऽसंक्रम्यमाणे

(२) संज्वलनमायाया जघन्यस्थितिसत्त्वम् ।

(३) संज्वलनमायाया जघन्याऽनुभागसत्कर्म ।

(४) मायोदयचरमसमये जघन्ययोगिना बद्धमायाया जघन्यप्रदेशसत्कर्म भवति

चरमप्रक्षेपं संक्रमयतो जीवस्य तु

(५) संज्वलनमायाया जघन्यस्थितिसंक्रम ।

(६) संज्वलनमायाया जघन्यानुभागसंक्रम ।

(७) कर्मप्रकृतिचूर्णिकृदभिप्रायेण मायोदयचरमसमये जघन्ययोगेन बद्धस्य नूतनमायादलिकस्य जघन्यप्रदेशसंक्रमो भवति ।

(८) लोभप्रथमसंग्रहकिट्टेः प्रथमस्थितौ द्व्यावलिकाशेषायामागालो व्यवच्छिद्यते ।

(९) लोभप्रथमसंग्रहकिट्टे प्रथमस्थितौ समयाधिकावलिकाशेषायां लोभस्य जघन्यस्थित्युदीरणा ।

(१०) लोभप्रथमसंग्रहकिट्टे प्रथमस्थितौ समयाधिकावलिकाशेषायां लोभप्रथमसंग्रहकिट्टेश्चरमोदय ।

लोभप्रथमसंग्रहकिट्टेरुदयचरमसमये

(११) संज्वलनलोभस्य स्थितिबन्धोऽन्तर्मुहूर्तप्रमाण ।

(१२) संज्वलनलोभस्य स्थितिसत्त्वमप्यन्तर्मुहूर्तमात्रम् ।

(१३) ज्ञानावरण-दर्शनावरणा-ऽन्तरायाणां स्थितिबन्धो दिवसपृथक्त्वं भवति ।

(१४) वेदनीय-नाम-गोत्राणा स्थितिबन्धो वर्षपृथक्त्वं भवति ।

(१५) घातित्रयस्य संख्यातवर्षसहस्राण्यघातित्रयस्य चाऽसङ्ख्येयवर्षाणि स्थितिसत्कर्म ।

(१६) समयाधिकोदयावलिकागतं समयोनावलिकाद्वयबद्धं च दलं मुक्त्वा शेष प्रभूतं लोभप्रथमसंग्रहकिट्टिदल यथागमं लोभद्वितीयसंग्रहकिट्टित्वेन परिणतम् । तेन मायाद्वितीयसंग्रहकिट्टिदलं मोहनीयसकलदलस्य त्रयोविंशतिचतुर्विंशतिभागकल्प ($\frac{२३}{२४}$) जायते ।

(१७) इतरसंग्रहकिट्टयपेक्षया लोभद्वितीयसंग्रहकिट्टे प्रदेशा अवान्तरकिट्टयश्च त्रयोविंशतिगुणा ।

लोभप्रथमसंग्रहकिट्टिवेदनाद्धासमाप्तितोऽनन्तरसमये यत्करोति, तद् व्याजिहीर्षुराह

सेकाले लोहबिइयमोक्कड्ढित्तु पढमट्ठिइं तु करिज्जा ।
वेयइ ताहे लोहगबिइयातइयाउ कुणइ य सुहुमकिट्टी ॥१८९॥(आर्यागीतिः)

अनन्तरकाले लोभद्वितीयामपकृष्य प्रथमस्थितिं तु करोति ।
वेदयति तस्मिन् काले लोभद्वितीयातृतीयाभ्यां करोति च सूक्ष्मकिट्टी ॥१८९॥ इति पदसंस्कार ।

'सेकाले' इत्यादि, 'अनन्तरकाले' लोभप्रथमसंग्रहकिट्टिवेदनाद्धासमाप्तितोऽनन्तरसमय इत्यर्थः, 'लोभद्वितीयां' लोभद्वितीयसंग्रहकिट्टिप्रदेशाग्रमपकृष्य लोभवेदनाद्धाया द्वितीये त्रिभागयुदय-

समयादारभ्य स्ववेदनकालत आवलिकयाऽधिकासु स्थितिष्वसंख्येयगुणक्रमेण निक्षिपन् 'प्रथमस्थितिं' लोभद्वितीयसंग्रहकिट्टेः प्रथमस्थितिं तु 'करोति' निर्वर्तयति । उक्तं च कषायप्राभृतचूर्णौ–"तत्तो से काले लोभस्स विदियकिट्टीदो पदेसग्गमोकड्डियूण पढमट्ठिदिं करेदि ।" इति । तथैव सप्ततिकाचूर्णावपि–"तओ से काले लोभस्स बितियकिट्टीओ दलिअं ओकड्ढित्तु पढमट्ठितिं करेइ बीयतिभागमेत्तं ।" इति ।

'वेयइ' त्ति वेदयति, तदानीमेव च लोभद्वितीयसंग्रहकिट्टेः प्रथमस्थितिमनुभवति । इयं च द्वितीयसंग्रहकिट्टिवेदनाद्धा सूक्ष्मकिट्टिकरणाद्धाऽप्युच्यते, अस्यां सूक्ष्मकिट्टीनां निर्वृत्तेः ।

अथ सूक्ष्मकिट्टिनिर्वृत्तिं दर्शयति–'ताहे' इत्यादि, 'तस्मिन् काले' लोभद्वितीयसंग्रहकिट्टिवेदनप्रथमसमय एव 'लोभद्वितीयातृतीयाभ्यां' लोभद्वितीयसंग्रहकिट्टितो लोभतृतीयसंग्रहकिट्टितश्चाऽसंख्येयभागप्रमितं दलिकं गृहीत्वा सूक्ष्मकिट्टीः 'करोति' निर्वर्तयति, अन्यथा तृतीये त्रिभागे सूक्ष्मकिट्टिवेदनं नोपपद्येत । न च लोभतृतीयसंग्रहकिट्टिवेदनाद्धायां सूक्ष्मकिट्टिकरणं प्रतिपाद्यतामिति वाच्यम् , लोभतृतीयसंग्रहकिट्टेः स्वस्वरूपेणाऽनुदयात् । उक्तं च कषायप्राभृतचूर्णौ–"ताधे चेव लोभस्स विदियकिट्टीदो च तदियकिट्टीदो च पदेसग्गमोकड्डियूण सुहुमसांपराइयकिट्टीओ णाम करेदि ।" इति । तथैव सप्ततिकाचूर्णावपि–"तं वेयंतो बितियकिट्टीओ तइअकिट्टीओ य दलियं घेत्तूणं सुहुमसंपराइयकिट्टीओ करेइ ।" इति ॥ १८९ ॥

ननु ताः सूक्ष्मकिट्टीः कुत्र कथं च करोति ? इति पृष्ट आह

सुहुमा किट्टीओ तइयाए हेट्ठिग्गि कुणइ खलु खवगो ।
ता सुहुमा कोहपढमसंगहकिट्टिव्व पण्णत्ता ॥१९०॥

सूक्ष्मा किट्टीस्तृतीयस्या अधस्तात्करोति खलु क्षपक ।
ता सूक्ष्मा क्रोधप्रथमसंग्रहकिट्टिवत् प्रज्ञप्ता ॥१९०॥ इति पदसंस्कार ।

'सुहुमा' इत्यादि, तत्र 'खवगो' त्ति 'क्षपकः' क्षपकश्रेणिमारूढो जीवो लोभद्वितीयसंग्रहकिट्टिं वेदयमानः खलु सूक्ष्माः किट्टीः 'तृतीयस्याः' लोभतृतीयसंग्रहकिट्टेरधस्तात् करोति, लोभतृतीयसंग्रहकिट्टेः सर्वजघन्यावान्तरकिट्टेरधस्तादनन्तगुणहीनरसतामापाद्य सूक्ष्मकिट्टीनां सर्वोत्कृष्टां सूक्ष्मकिट्टिं निर्वर्तयति, ततोऽधस्ताद् द्विचरमसूक्ष्मकिट्टिम् , ततोऽप्यधस्तात् त्रिचरमसूक्ष्मकिट्टिम्, एवं तावद् निर्वर्तयति, यावत् प्रथमसूक्ष्मकिट्टिरिति तात्पर्यम् । उक्तं च कषायप्राभृतचूर्णौ–"तासिं सुहुमसांपराइयकिट्टीणं कम्हि ट्ठाणं ? तासिं ट्ठाणं लोभस्स तदियाए संगहकिट्टीए हेट्ठदो ।" इति ।

'ता' इत्यादि, 'ताः' लोभतृतीयसंग्रहकिट्टेरधस्ताद् निर्वर्त्यमानाः 'सूक्ष्माः' सूक्ष्मकिट्टयः

क्रोधप्रथमसंग्रहकिट्टिवत् 'प्रज्ञप्ताः' निरूपिताः पूर्वमहर्षिभिरिति शेषः । प्रतिपादितं च कषायप्राभृतचूर्णौ–"**जारिसो कोहस्स पढमसंगहकिट्टी, तारिसो एसा सुहुमसांपराइयकिट्टी ।**" इति ।

भावार्थः पुनरयम्–(१) यथा क्रोधप्रथमसंग्रहकिट्टेरवान्तरकिट्टय इतरसंग्रहकिट्टीनां प्रत्येकमवान्तरकिट्टिभ्यः संख्यातगुणा आसन्, तथैव क्रोधकिट्टिवेदनाद्धाप्रथमसमयवर्तिनीभ्यः क्रोधप्रथमसंग्रहकिट्टिवर्जशेषसंग्रहकिट्टीनां प्रत्येकमवान्तरकिट्टिभ्यः संख्यातगुणाः सूक्ष्मकिट्टयो भवन्ति । इत्थं सूक्ष्मकिट्टीनां प्रमाणं "कोहपढमसंगहकिट्टिव्व" इत्यनेन सूचितमिति प्रथमो विकल्पः ।

(२) अथवा यथा क्रोधप्रथमसंग्रहकिट्टिरपूर्वस्पर्धकानामधस्तादनुभागापेक्षयाऽनन्तगुणहीना क्रियते स्म, तथैव लोभतृतीयसंग्रहकिट्टेरधस्तादनुभागापेक्षयाऽनन्तगुणहीनाः सूक्ष्मकिट्टयः क्रियन्त इति द्वितीयो विकल्पः ।

(३) यद्वा यथा क्रोधप्रथमसंग्रहकिट्टयवान्तरकिट्टयो जघन्यावान्तरकिट्टितः प्रभृत्युत्कृष्टावान्तरकिट्टिं यावदनुभागापेक्षयाऽनन्तगुणक्रमेण तिष्ठन्ति स्म, तथैव सूक्ष्मकिट्टयोऽपि जघन्यसूक्ष्मकिट्टितः प्रभृत्युत्कृष्टसूक्ष्मकिट्टिं यावदनुभागाऽपेक्षयाऽनन्तगुणक्रमेण विद्यन्त इति तृतीयो विकल्पः ॥१९०॥

अथ सूक्ष्मकिट्टिकरणाद्धायां संक्रमपरिपाटिं दर्शयितुकाम आह

लोहस्स बिइयकिट्टित्तो तइयाअ तह सुहुमकिट्टीसुं ।
तइयत्तो सुहुमासुं संकमइ दलं न अण्णत्थ ॥१९१॥

लोभस्य द्वितीयकिट्टितस्तृतीयस्यां तथा सूक्ष्मकिट्टिषु ।
तृतीयात सूक्ष्मासु सक्रामति दलं नाऽन्यत्र ॥१९१॥ इति पदसंस्कारः ।

'लोहस्स' इत्यादि, 'लोभस्य' संज्वलनलोभस्य 'द्वितीयकिट्टितो' द्वितीयसंग्रहकिट्टितो 'दलं' प्रदेशाग्रं संज्वलनलोभस्य 'तृतीयस्यां' तृतीयसंग्रहकिट्टौ तथा सूक्ष्मकिट्टिषु संक्रामति । 'तइयत्तो' इत्यादि, 'तृतीयातो' लोभतृतीयसंग्रहकिट्टितो सूक्ष्मासु किट्टिषु दलं संक्रामति, नाऽन्यत्र, आनुपूर्व्या संक्रमस्य प्रवर्तमानत्वात् किट्टिवेदनाद्धायां चोद्वर्तनाऽभावात् ॥१९१॥

अथ संक्रम्यमाणप्रदेशाग्रस्याऽल्पबहुत्वं व्याजिहीर्षुराह

सुहुमासुं तइयत्तोऽप्पं बीयाउ तइयाअ संखगुणं ।
तो बीयत्तो सुहुमासु दलं संकमइ संखगुणं ॥ १९२ ॥

सूक्ष्मासु तृतीयातोऽल्पं द्वितीयस्यास्तृतीयस्यां संख्यगुणम् ।
ततो द्वितीयात सूक्ष्मासु दलं संक्रामति सङ्ख्येयगुणम् ॥१९२॥ इति पदसंस्कारः ।

'सुहुमासु' इत्यादि, 'सूक्ष्मासु' सूक्ष्मकिट्टिषु 'तृतीयातः' लोभतृतीयसंग्रहकिट्टितो 'अल्पं' स्तोकं 'दलं' प्रदेशाग्रमपवर्तनासंक्रमेण संक्रामति । ततः 'बीयाउ' इत्यादि, 'द्वितीयातः' लोभद्वितीयसंग्रहकिट्टितः 'तृतीयस्यां' लोभतृतीयसंग्रहकिट्टौ संख्येयगुणं दलं संक्रामति, लोभतृतीयसंग्रहकिट्टिदलतो द्वितीयसंग्रहकिट्टिदलस्य त्रयोविंशतिगुणत्वेन संख्येयगुणत्वात् । 'तो' इत्यादि, ततो 'द्वितीयातो' लोभद्वितीयसंग्रहकिट्टितः 'सूक्ष्मासु' सूक्ष्मकिट्टिषु संख्येयगुणं दलं संक्रामति, लोभद्वितीयसंग्रहकिट्टितोऽनन्तरवेद्यमानत्वेन तत्र संख्येयगुणदलसंक्रमस्य न्याय्यत्वात् । न्यगादि च कषायप्राभृतचूर्णौ—"सुहुमसांपराइकिट्टीसु कीरमाणीसु लोभस्स चरिमादो बादरसांपराइयकिट्टीदो सुहुमसांपराइयकिट्टीए संकमदि पदेसग्गं थोवं । लोभस्स विदियकिट्टीदो चरिमबादरसांपराइयकिट्टीए संकमदि पदेसग्गं संखेज्जगुणं । लोभस्स विदियकिट्टीदो सुहुमसांपराइयकिट्टीए संकमदि पदेसग्गं संखेज्जगुणं ।" इति । पश्यन्तु पाठका यन्त्रकम्–२४ ॥१९२॥

अथ सूक्ष्मकिट्टीनां प्रमाणं निज्ञापयिषुरल्पबहुत्वं भणति

थोवा आसि अवन्तरकिट्टी कोहपढमाअ कोहखये ।
माणपढमाअ माणे खीणे मायापढमगाए ॥१९३॥
मायाणासे लोहपढमाअ पढमखणकयसुहुमकिट्टी ।
कमसो अब्भहिआओ सगासंखेज्जइमभागेणं ॥१९४॥

स्तोका आसन्नवान्तरकिट्टयः क्रोधप्रथमायाः क्रोधक्षये ।
मानप्रथमाया माने क्षीणे मायाप्रथमायाः ॥१९३॥
मायानाशे लोभप्रथमायाः प्रथमक्षणकृतसूक्ष्मकिट्टयः ।
क्रमशोऽभ्यधिकाः स्वसंख्येयतमभागेन ॥१९४॥ इति पदसंस्कारः ।

'थोवा' इत्यादि, तत्र 'क्रोधप्रथमायाः' क्रोधप्रथमसंग्रहकिट्टेरवान्तरकिट्टयः स्तोका आसन् । 'अवन्तरकिट्टी'त्ति पदमग्रेऽपि स्थानत्रयेऽनुवर्तते । 'क्रोधक्षये' संज्वलनक्रोधतृतीयसंग्रहकिट्टेर्मानप्रथमसंग्रहकिट्टितया परिणामे सति 'मानप्रथमायाः' मानप्रथमसंग्रहकिट्टेरवान्तरकिट्टयः, 'माणे' इत्यादि, 'माने' मानतृतीयसंग्रहकिट्टौ 'क्षीणे' मायाप्रथमसंग्रहकिट्टितया परिणतायां 'मायाप्रथमायाः' मायाप्रथमसंग्रहकिट्टेरवान्तरकिट्टयः, 'मायानाशे' मायातृतीयसंग्रहकिट्टेर्लोभप्रथमसंग्रहकिट्टितया परिणमने सति 'लोभप्रथमायाः' लोभप्रथमसंग्रहकिट्टेरवान्तरकिट्टयः, 'प्रथमक्षणकृतसूक्ष्मकिट्टयः' सूक्ष्मकिट्टिकरणाद्धाप्रथमसमयनिर्वर्तितसूक्ष्मकिट्टयश्च 'क्रमशः' यथाक्रमं स्वसंख्येयतमभागेनाऽभ्यधिकाः । यदवादि कषायप्राभृतचूर्णौ "कोहस्स पढमसंगहकिट्टीए अंतरकिट्टीओ थोवाओ, कोहे संछुद्धे माणस्स पढम-

सूक्ष्मकेट्टेषु संक्रम्यमाणदलस्य निरूपणम्

सङ्केतस्पष्टीकरणम्—

★=तृतीयसंग्रहकिट्टया अवान्तरकिट्टयः।

#=लोभतृतीयसंग्रहकिट्टेः सर्वजघन्यावान्तरकिट्टिः, तस्या अधस्तात् अनन्तगुणहीनरसतामापाद्य चरमसूक्ष्मकिट्टिर्निर्वर्त्यते, सा च △ इत्यनेन चिह्नेन सूचिता। तस्या अधस्तात् द्विचरमसूक्ष्मकिट्टिः, एवं पश्चानुपूर्व्या तावद् वक्तव्या, यावत् प्रथमसूक्ष्मकिट्टिः (गाथा-१९०)

(१) 0000 अनेन चिह्नेन लोभतृतीयसंग्रहकिट्टितः सूक्ष्मकिट्टिषु प्रदेशाग्रं सङ्क्रामतीति सूचितम्, (गाथा-१९१), तच्च स्तोकम्, उपरि भण्यमाणस्य प्रभूतत्वात् (गाथा-१९२)

(२) ••• अनेन चिह्नेन लोभद्वितीयसंग्रहकिट्टितो लोभतृतीयसंग्रहकिट्टयां दलिकं सङ्क्रामतीति सूचितम् (गाथा-१९०), तच्च पूर्वपदतः सङ्ख्येयगुणं भवति, (गाथा-१९२)।

(३) - - - अनेन चिह्नेन लोभद्वितीयसंग्रहकिट्टितः सूक्ष्मकिट्टिषु सङ्क्रम्यमाणदलं सूचितम् (गाथा-१९१), तच्च पूर्वपदतः सङ्ख्येयगुणं भवति (गाथा-१९२)।

संगहकिट्टीए अंतरकिट्टीओ विसेसाहियाओ। माणे संछुद्धे मायाए पढमसंगहकिट्टीए अंतरकिट्टीओ विसेसाहियाओ। मायाए संछुद्धाए लोभस्स पढमसंगहकिट्टीए अंतरकिट्टीओ विसेसाहियाओ। सुहुमसांपराइयकिट्टीओ जाओ पढमसमये कदाओ, ताओ विसेसाहियाओ। एसो विसेसो अणंतराणंतरेण संखेज्जदिभागो।" इति।

भावार्थः पुनरयम्

(१) क्रोधप्रथमसंग्रहकिट्टिदलं मोहनीयसकलदलस्य त्रयोदशचतुर्विंशतिभागप्रमाणमासीत्। तच्च प्राग् दर्शितम्। अवान्तरकिट्टयश्च दलिकानुसारेण भवन्ति ११, तेन क्रोधप्रथमसंग्रहकिट्टेरवान्तरकिट्टयोऽपि मोहनीयसकलावान्तरकिट्टीनां त्रयोदशचतुर्विंशतिभागप्रमाणा ($\frac{13}{24}$) भवन्ति ११, ताश्च स्तोकाः, उपरितनानां पदानां विशेषाधिकत्वात्।

(२) ततः संज्वलनक्रोधतृतीयसंग्रहकिट्टौ मानप्रथमसंग्रहकिट्टितया परिणतायां मानप्रथमसंग्रहकिट्टेरवान्तरकिट्टयः संख्येयभागेनाऽधिका भवन्ति ११। कथमेतदवगन्तव्यम्? इति चेद्, उच्यते—क्रोधतृतीयसंग्रहकिट्टिदले मानप्रथमसंग्रहकिट्टितया परिणते मानप्रथमसंग्रहकिट्टिदलस्य षोडशचतुर्विंशतिभागमात्रत्वाद् ($\frac{16}{24}$) मानप्रथमसंग्रहकिट्टेरवान्तरकिट्टयोऽपि मोहनीयसकलावान्तरकिट्टीनां षोडशचतुर्विंशतिभागप्रमिता ($\frac{16}{24}$) जायन्ते ११। तेन क्रोधप्रथमसंग्रहकिट्टिगताभ्यस्त्रयोदशचतुर्विंशतिभागप्रमिताभ्यः ($\frac{13}{24}$) अवान्तरकिट्टिभ्यः स्वसंख्येयभागेनाऽधिकाः क्रोधे मानतया सर्वथा परिणते मानप्रथमसंग्रहकिट्टेरवान्तरकिट्टयो भवन्ति ११।

(३) ततो मानतृतीयसंग्रहकिट्टौ मायाप्रथमसंग्रहकिट्टितया परिणतायां संख्येयभागेनाऽधिका मायाप्रथमसंग्रहकिट्टेरवान्तरकिट्टयो जायन्ते ११। कथमेतदवसीयते? इति चेद्, उच्यते मानतृतीयसंग्रहकिट्टिदले मायाप्रथमसंग्रहकिट्टितया परिणते मायाप्रथमसंग्रहकिट्टिदलस्यैकोनविंशतिचतुर्विंशतिभागप्रमाणत्वाद् ($\frac{19}{24}$) मायाप्रथमसंग्रहकिट्टयवान्तरकिट्टयोऽप्येकोनविंशतिचतुर्विंशतिभागप्रमाणा जायन्ते ११। तेन मानप्रथमसंग्रहकिट्टिगताभ्यः षोडशचतुर्विंशतिभागप्रमिताभ्यो ($\frac{16}{24}$) अवान्तरकिट्टिभ्यः स्वसंख्येयभागेनाऽधिका माने मायातया सर्वथा परिणते मायाप्रथमसंग्रहकिट्टेरवान्तरकिट्टयो भवन्ति ११।

(४) ततो मायातृतीयसंग्रहकिट्टौ लोभप्रथमसंग्रहकिट्टितया परिणतायां लोभप्रथमसंग्रहकिट्टेरवान्तरकिट्टयः संख्येयभागेनाऽधिका भवन्ति ११। कथमेतद् निश्चीयते? इति चेद्, उच्यते मायातृतीयसंग्रहकिट्टिदले लोभप्रथमसंग्रहकिट्टितया परिणते लोभप्रथमसंग्रहकिट्टिदलस्य द्वाविंशतिचतुर्विंशतिभागप्रमाणत्वाद् ($\frac{22}{24}$) लोभप्रथमसंग्रहकिट्टिप्रतिबद्धाऽवान्तरकिट्टयोऽपि द्वाविंशतिचतुर्विंशतिभागप्रमाणा ($\frac{22}{24}$) जायन्ते ११। तेन मायाप्रथमसंग्रहकिट्टिप्रतिबद्धाभ्य

एकोनविंशतिचतुर्विंशतिभागप्रमाणाभ्यो (१९/२४) अवान्तरकिट्टिभ्यः स्वसंख्येयभागेनाऽधिका मायायां लोभतया सर्वथा परिणतायां लोभप्रथमसंग्रहकिट्टयवान्तरकिट्टयो जायन्ते स्म ।

ततोऽपि लोभद्वितीयसंग्रहकिट्टिं वेदयतः प्रथमसमयकृतसूक्ष्मकिट्टयो विशेषाधिका भवन्ति ।

ननु लोभद्वितीयसंग्रहकिट्टिवेदनाद्धाप्रथमसमये सत्तागतदलस्याऽसंख्येयभागमात्रं दलिकं गृहीत्वा सूक्ष्माः किट्टीः करोतीति प्रागुक्तम् । अथ मायातृतीयसंग्रहकिट्टौ लोभप्रथमसंग्रहकिट्टितया परिणतायां मोहनीयसकलदलस्य द्वाविंशतिचतुर्विंशतिभागकल्पेन दलेन निर्वर्तिताभ्यो लोभप्रथमसंग्रहकिट्टयवान्तरकिट्टिभ्यश्चतुर्विंशतिचतुर्विंशतिभागप्रमाणमोहनीयसकलदलस्याऽसंख्येयभागकल्पेन दलेन विशेषाधिकाः सूक्ष्मकिट्टीः कथं निर्वर्तयेत् ? यतोऽसंख्येयभागप्रमाणदलेन लोभप्रथमसंग्रहकिट्टयवान्तरकिट्टीनामसंख्येयभागप्रमिता एव सूक्ष्मकिट्टिकरणप्रथमसमये सूक्ष्मकिट्टयो निर्वर्तयितव्या इति चेत्, उच्यते—सत्यम्, यदि प्रथमसमयेकैकसूक्ष्मकिट्टयां बादरसंग्रहकिट्टिगतैकैकावान्तरकिट्टिदृश्यमानदलतुल्यं दलं प्रक्षिपेत्, तर्ह्यसंख्येयभागप्रमाणाः सूक्ष्मकिट्टीर्निर्वर्तयेत् । किन्तु सूक्ष्मकिट्टिकरणाद्धाप्रथमसमये बादरसंग्रहकिट्टिप्रतिबद्धैकैकावान्तरकिट्टौ यावद् दलं दृश्यमानं भवति, ततोऽसंख्येयगुणहीनं दलमेकैकस्यां सूक्ष्मकिट्टौ प्रक्षिपति । कथमेतदवसीयते ? इति चेत्, उच्यते—द्विशततमगाथया सूक्ष्मकिट्टितो बादरप्रथमावान्तरकिट्टयामसंख्येयगुणं दलं दृश्यमानं वक्ष्यति । सूक्ष्मकिट्टौ च दृश्यमानस्य दलस्य दीयमानदलतोऽनतिरिक्तत्वाद् बादरावान्तरकिट्टिदृश्यमानदलतः सूक्ष्मकिट्टौ दीयमानं दलमसंख्येयगुणहीनं सिध्यति । तेन सत्तागतदलस्याऽसंख्येयभागकल्पं दलं गृहीत्वैकैकबादरावान्तरकिट्टिदृश्यमानदलतोऽसंख्येयगुणहीनं दलमेकैकसूक्ष्मकिट्टयां तथा प्रक्षिपति, यथा मायायां लोभकिट्टितया परिणतायां लोभप्रथमसंग्रहकिट्टिसकलावान्तरकिट्टितः सूक्ष्मकिट्टयो विशेषाधिकाः समुत्पद्यन्ते । अत एव मायायाः सर्वथा लोभतया परिणतौ सत्यां लोभप्रथमसंग्रहकिट्टयवान्तरकिट्टितः प्रथमसमयकृतसूक्ष्मकिट्टीनां विशेषाधिकत्वं न विरुध्यते । पश्यन्तु पाठकाः यन्त्रकम्—२५ ॥१९३-१९४॥

किट्टिकरणाद्धायां येन विधिना किट्टीर्निर्वर्तयति, तेनैव विधिना सूक्ष्मकिट्टिकरणाद्धायां सूक्ष्मकिट्टीर्निर्वर्तयति । एतदेव विस्तरतो विभणिषुराह

करइ सुहुमकिट्टीउ असंखगुणूणकमेण अणुसमयं ।
पडिसमयमसंखगुणकमेण दलं देइ सुहुमासु ॥ १९५ ॥

करोति सूक्ष्मकिट्टीरसंख्यगुणोनक्रमेणाऽनुसमयम् ।
प्रतिसमयमसंख्यगुणक्रमेण दलं ददाति सूक्ष्मासु ॥ १९५ ॥ इति पदसंस्कारः ।

'करइ' इत्यादि, तत्र 'अनुसमयं' समये समये 'असंख्यगुणोनक्रमेण' असंख्येयगुणहीनक्रमेण सूक्ष्मकिट्टीः 'करोति' निर्वर्तयति । अयं भावः लोभद्वितीयसंग्रहकिट्टिं वेदयन् सूक्ष्मकिट्टि-

यन्त्रकम् २५ (चित्रम्–२५)

क्रोधप्रथमसंग्रहकिट्टिवेदनप्रथमसमयत संग्रहकिट्टयवान्तरकिट्टीनां चित्रम्

अवान्तरकिट्टयः स्तोकाः ($\frac{१३}{२४}$)

३ लो २ भ १ ३ मा २ या १ ३ मा २ न १ ३ क्रो २ ध

संज्वलनक्रोधस्य नाशे सति चित्रम्

अवान्तरकिट्टयो विशेषाधिकाः ($\frac{१६}{२४}$)

३ लो २ भः १ ३ मा २ या १ ३ मा २ १ नः

संज्वलनमाने क्षीणे चित्रम्

अवान्तरकिट्टयो विशेषाधिकाः ($\frac{१९}{२४}$)

३ लो २ भः १ ३ मा २ १ या

मायायां क्षयं गतायां चित्रम्

अवान्तरकिट्टयो विशेषाधिकाः ($\frac{२२}{२४}$)

३ लो २ १ भ.

लोभद्वितीयसंग्रहकिट्टि प्रथमसमये सूक्ष्मकिट्टीनां चित्रम्

सूक्ष्मकिट्टयो विशेषाधिकाः

सङ्केतस्पष्टीकरणम् १–प्रथमसंग्रहकिट्टिः। २– द्वितीयसंग्रहकिट्टि। ३– तृतीयसंग्रहकिट्टि

(पृष्ठ परावर्तयन्तु पाठकाः)

संक्षेपतश्चित्रविवरणम्

(१) क्रोधप्रथमसंग्रहकिट्टेरवान्तरकिट्टय १३/९७ प्रथमचित्रे दर्शिता । तेन ता स्तोका ।

(२) क्रोधे क्षीणे मानप्रथमसंग्रहकिट्टया अवान्तरकिट्टय ५६/५८ द्वितीयचित्रे दर्शिता । तेन ता क्रोध-प्रथमसंग्रहकिट्टयवान्तरकिट्टित संख्येयभागेना-ऽधिका । आधिक्यं च चित्रे स्पष्टतया दर्शितम् ।

(३) माने क्षीणे मायाप्रथमसंग्रहकिट्टेरवान्तरकिट्टय ५६/३८ तृतीयचित्रे प्रदर्शिता , तेन ता मानप्रथमसंग्रहकिट्टयवान्तरकिट्टित संख्येयभागेना-ऽधिका । आधिक्यञ्च चित्रे सुस्पष्टम् ।

(४) मायाया क्षीणाया लोभप्रथमसंग्रहकिट्टया अवान्तरकिट्टय ३२/८ चतुर्थचित्रे दर्शिता तेन ता मायाप्रथमसंग्रहकिट्टयवान्तरकिट्टित संख्येयभागेना-ऽधिका , आधिक्यं च चित्रे स्पष्टम् ।

(५) लोभद्वितीयसंग्रहकिट्टिवेदनप्रथमसमये कृता सूक्ष्मकिट्टयो लोभप्रथमसंग्रहकिट्टयवान्तरकिट्टितो संख्येयभागेना-ऽधिका । आधिक्यं च चित्रे सुस्पष्टम् ।



करणाद्धाप्रथमसमये सूक्ष्मकिट्टीः प्रभूता निर्वर्तयति, ततो द्वितीयसमये-ऽसंख्येयगुणहीना अपूर्वाः सूक्ष्मकिट्टीर्निर्वर्तयति, ततोऽपि तृतीयसमयेऽसंख्येयगुणहीना अपूर्वाः सूक्ष्मकिट्टीर्निर्वर्तयति । एवं प्रतिसमयमसंख्येयगुणहीनक्रमेणाऽपूर्वाः सूक्ष्मकिट्टीस्तावद् निर्वर्तयति, यावत् सूक्ष्मकिट्टिकरणाद्धा-चरमसमयः । अन्यथापि च कषायप्राभृतचूर्णौ **"सुहुमसांपराइयकिट्टीओ जाओ पढमसमए कदाओ, ताओ बहुगाओ । विदियसमये अपुव्वाओ कोरंति असंखेज्ज-गुणहीणाओ । अणंतरोवणिधाए सव्विस्से सुहुमसांपराइयकिट्टीकरणद्धाए अपु-व्वाओ सुहुमसांपराइयकिट्टीओ असंखेज्जगुणहीणाए सेढीए कोरंति ।"** इति ।

अथ सूक्ष्मकिट्टिकरणाद्धायां वर्तमानोऽनन्तगुणवृद्धायां विशुद्धयां प्रवर्धमानः सूक्ष्मकिट्टिषु प्रतिसमयमसंख्यातगुणक्रमेण दलं प्रक्षिपतीति ज्ञापनार्थमाह—'**पडिसमय०**' इत्यादि, प्रतिसमयम-संख्यगुणक्रमेण दलं सूक्ष्मासु किट्टिषु 'ददाति' निक्षिपति । तथाहि सूक्ष्मकिट्टिकरणाद्धाप्रथम-समये सूक्ष्मकिट्टिषु स्तोकं दलं ददाति । ततो द्वितीयसमयेऽसंख्येयगुणं दलं सूक्ष्मकिट्टिषु ददाति ततोऽपि तृतीयसमयेऽसंख्येयगुणं दलं सूक्ष्मकिट्टिषु ददाति । एवं प्रतिसमयमसंख्यगुणक्रमेण सूक्ष्मकिट्टिषु दलं तावद् ददाति, यावत् सूक्ष्मकिट्टिकरणाद्धायाश्चरमसमयः । भणितं च कषाय-प्राभृतचूर्णौ **"सुहुमसांपराइयकिट्टीसु पढमसमये पदेसग्गं दिज्जदि, तं थोवं, विदियसमयेअसंखेज्जगुणं । एवं जाव चरिमादो त्ति असंखेज्जगुणं ।"** इति ॥१९५॥

सूक्ष्मकिट्टिषु सामान्यतो दलनिक्षेपं विधाय सामान्यज्ञानस्य विशेषजिज्ञासायां हेतुत्वात् प्रथमसमये क्रियमाणासु सूक्ष्मकिट्टिषु विशेषतो दलनिक्षेपविधिं प्रसङ्गतश्च बादरकिट्टिषु दलनिक्षेप-विधिं विभणिषुराह

पढमसुहुमाअ देइ दलं बहु उप्पिं विसेसहीणकमेणं
बादरपढमाअ असंखगुणूणं उवरिमासु य विसेसूणं ॥१९६॥

(आर्यागीतिः)

प्रथमसूक्ष्मायां ददाति दलं बहूपरि विशेषहीनक्रमेण ।
बादरप्रथमायामसंख्यगुणोनमुपरितनीषु च विशेषोनम् ॥१९६॥ इति पदसंस्कारः ।

'**पढम०**' इत्यादि, सर्वागतदलस्याऽसंख्येयभागप्रमितं दलिकं गृहीत्वा सूक्ष्मकिट्टिकरणा-द्धाप्रथमसमये 'प्रथमसूक्ष्मायां' प्रथमसमयेन याः सूक्ष्मकिट्टयो क्रियन्ते, तासां या सर्वजघन्या किट्टिः, सा प्रथमसूक्ष्मकिट्टिरुच्यते, तस्याम्, 'दलं' प्रदेशाग्रं 'बहु' प्रभूतं ददाति । 'उप्पिं' इत्यादि, 'उपरि' प्रथमसूक्ष्मकिट्टया उपरि विशेषहीनक्रमेण दलं ददाति । भावार्थः पुनर-यम्—सूक्ष्मकिट्टिकरणाद्धाप्रथमसमये जघन्यायां सूक्ष्मकिट्टौ प्रभूतं प्रदेशाग्रं ददाति । ततोऽनन्तभागेन हीनं द्वितीयस्यां सूक्ष्मकिट्टौ ददाति । ततोऽप्यनन्तभागेन हीनं तृतीयस्यां सूक्ष्मकिट्टौ ददाति ।

एवं विशेषहीनक्रमेण तावद् ददाति, यावच्चरमसूक्ष्मकिट्टिः । यद्वादि **कषायप्राभृत-चूर्णौ–"सुहुमसांपराइयकिट्टीसु पढमसमये दिज्जमाणगस्स पदेसग्गस्स सेढि-परूवणं वत्तइस्सामो । तं जहा–जहण्णियाए किट्टीए पदेसग्गं बहुअं । विदियाए विसेसहीणमणंतभागेण । तदियाए विसेसहीणं । एवमणंतरोवणिधाए गंतूण चरिमाए सुहुमसांपराइयकिट्टीए पदेसग्गं विसेसहीणं ।"** इति ।

पूर्वार्धस्थं 'देइ दलं' ति पदद्वयमुत्तरार्धेऽप्यनुवर्तते । लोभद्वितीयसंग्रहकिट्टेर्लोभतृतीयसंग्रह-किट्टेश्चावान्तरकिट्टयो बादरकिट्टय उच्यन्ते । तत्र **'बादरपढमाअ'** त्ति 'बादरप्रथमायां' चरम-सूक्ष्मकिट्टितो लोभतृतीयसंग्रहकिट्टिप्रथमाऽवान्तरकिट्टयामित्यर्थः, 'असंख्यगुणोनम्' असंख्ये-यगुणहीनं दलं ददाति । तत उपरितनीषु च बादरकिट्टिषु 'विशेषोनं' विशेषहीनं यथाक्रमं निक्षि-पति । यद्वाचि कषायप्राभृतचूर्णौ **"चरिमादो सुहुमसांपराइयकिट्टीदो जहण्णि-याए बादरसांपराइयकिट्टीए दिज्जमाणगं पदेसग्गमसंखेज्जगुणहीणं । तदो विसे-सहीणं ।"** इति । इदमत्र हृदयम् सूक्ष्मकिट्टिकरणाद्धाप्रथमसमये चरमसूक्ष्मकिट्टितोऽसंख्ये-यगुणहीनं दलं लोभतृतीयसंग्रहकिट्टेः प्रथमपूर्वावान्तरकिट्टौ प्रक्षिपति, ततोऽनन्तभागेन हीनं द्वितीयपूर्वावान्तरकिट्टौ प्रक्षिपति । ततोऽपि विशेषहीनं तृतीयपूर्वावान्तरकिट्टौ प्रक्षिपति, एवं विशेषहीनक्रमेण तावत् प्रक्षिपति, यावल्लोभतृतीयसंग्रहकिट्टयपूर्वावान्तरकिट्टिरप्राप्ता भवति, ततोऽपूर्वावान्तरकिट्टावसंख्येयगुणं दलं प्रक्षिपति । ननु प्रस्तुतग्रन्थे कषायप्राभृतचूर्णौ च बादराऽपूर्वावान्तरकिट्टीनां निर्वृत्तिस्तासु च दलनिक्षेपो नोक्तः, तत्र तु बादरकिट्टिषु विशे-षहीनक्रमेण दलनिक्षेपः प्रतिपादितः, न त्वन्तरे निर्वर्त्यमानायामपूर्वाऽवान्तरकिट्टयामसंख्येयगुणः, अतोऽनुक्तो दलनिक्षेपः प्रामाणिको भवितुं नार्हति ? इति चेत्, मैवम्, यतः किट्टिवेदनाद्धा-प्रथमसमये प्रकृतग्रन्थे कषायप्राभृतचूर्णौ च वेद्यमानसंग्रहकिट्टित इतरसंग्रहकिट्टावप-पूर्वावान्तरकिट्टीनां निर्वृत्तिस्तासु च दलनिक्षेपोऽभिहितः । ततः किट्टिवेदनाद्धाशेषसम-येष्वनुक्तोऽप्युक्तो ज्ञातव्यः, अप्रतिषेधात् । उक्तार्थस्य च पुनः कथने ग्रन्थगौरवं परित्यज्य फलविशे-षान्तराऽसंभवः । न च किट्टिवेदनाद्धाप्रथमसमयप्रवर्तमानप्ररूपणायाः शेषसमयेष्वप्रतिषेधेऽपि किट्टि-वेदनाद्धायां सूक्ष्मकिट्टिकरणाद्धाप्रथमसमयतः प्रभृत्यपूर्वावान्तरकिट्टयो न निर्वर्त्यन्ते, दलनिक्षेपस्य बादरकिट्टिषु विशेषहीनक्रमेण विहितत्वादिति वाच्यम्, दलनिक्षेपस्य सामान्यतो विशेषहीनक्रमेण-विहितत्वेन तथाऽनिष्टत्वात् । कथमेतदवसीयते ? इति चेत्, उच्यते–तृतीयसंग्रहकिट्टौ संक्रम्यमा-णदलतः सूक्ष्मकिट्टिषु संख्यातगुणं दलं संक्रम्यते, तच्च दर्शितं द्विनवत्यधिकशततमगाथया । तेन सूक्ष्मकिट्टयां संक्रम्यमाणदलतस्तृतीयसंग्रहकिट्टौ संक्रम्यमाणदलं संख्यातगुणहीनं जायते, तथा लोभ-तृतीयसंग्रहकिट्टयवान्तरकिट्टयोऽपि सूक्ष्मकिट्टितः संख्यातगुणहीना भवन्ति, लोभतृतीयसंग्रह-

किट्टयवान्तरकिट्टीनां मोहनीयसकलावान्तरकिट्टयेकचतुर्विंशतिभागप्रमाणत्वात् सूक्ष्मकिट्टीनां पुनर्मोहनीयसकलावान्तरकिट्टिद्वाविंशतिचतुर्विंशतिभागकल्पाभ्यो लोभप्रथमसंग्रहकिट्टयवान्तरकिट्टिभ्योऽपि विशेषाधिकत्वात्। तेन यदि चरमसूक्ष्मकिट्टितोऽसंख्येयगुणहीनं दलं लोभतृतीयसंग्रहकिट्टिप्रथमाऽवान्तरकिट्टौ प्रक्षिप्य विशेषहीनक्रमेण सूक्ष्मकिट्टीनां संख्येयभागप्रमाणासु लोभतृतीयसंग्रहकिट्टिगताऽवान्तरकिट्टिषु दलं प्रक्षिपेत्, तर्हि तृतीयसंग्रहकिट्टौ निक्षिप्यमाणं दलं सूक्ष्मकिट्टिषु निक्षिप्यमाणदलतोऽसंख्यातगुणहीनं स्यात्। ततश्च द्विनवत्यधिकशततमगाथया सूक्ष्मकिट्टिषु संक्रम्यमाणदलतः संख्यातगुणहीनं दलं तृतीयसंग्रहकिट्टौ संक्रमयतीति यदुक्तम्, तद् न सङ्गच्छेत। संक्रम्यमाणदलस्याऽल्पबहुत्वं तु संगमयितुमपूर्वाऽवान्तरकिट्टयो निर्वर्तयितव्याः, तासां निर्वृत्तिस्त्ववान्तरकिट्टयन्तरेषु संभवति। कुतः ? इति चेत्, उच्यते-चरमसूक्ष्मकिट्टितः प्रथमबादरकिट्टावसंख्येयगुणहीनं दलं ददातीति विहितम्, यदि लोभतृतीयसंग्रहकिट्टयन्तरे लोभतृतीयसंग्रहकिट्टयपूर्वावान्तरकिट्टीः कुर्यात्, तर्हि लोभतृतीयसंग्रहकिट्टिपूर्वावान्तरकिट्टिभिः सहाऽभिनवानां क्रियमाणानां लोभतृतीयसंग्रहकिट्टयवान्तरकिट्टीनां दलमेकगोपुच्छाकारेण कर्तुं चरमसूक्ष्मकिट्टितोऽसंख्येयगुणं दलं निक्षिपेत्। न चाऽनेन विधानेन दलनिक्षेपोऽभिहितः। तेनेदानीं लोभतृतीयसंग्रहकिट्टयन्तरे लोभतृतीयसंग्रहकिट्टयपूर्वावान्तरकिट्टयो न निर्वर्त्यन्ते। किन्तु लोभतृतीयसंग्रहकिट्टेरवान्तरकिट्टयन्तरेषु निर्वर्त्यन्ते, ताश्च न निरन्तराः, किन्तु पूर्ववत् पल्योपमप्रथमवर्गमूलाऽसंख्येयभागप्रमाणासु पूर्वावान्तरकिट्टिषु व्रजितास्वेकैकाऽपूर्वावान्तरकिट्टिर्निर्वर्त्यते।

अथ प्रस्तुतमनुसरामः—ततोऽपूर्वाऽवान्तरकिट्टितः पूर्वाऽवान्तरकिट्टावसंख्यातगुणहीनं दलं ददाति। ततः परं विशेषहीनक्रमेण तावद् ददाति, यावदपूर्वाऽवान्तरकिट्टिरप्राप्ता भवति। ततोऽपूर्वावान्तरकिट्टावसंख्येयगुणं दलं ददाति। ततः पूर्वाऽवान्तरकिट्टावसंख्येयगुणहीनं दलं ददाति। तत ऊर्ध्वं विशेषहीनक्रमेण ददाति। एवंक्रमेण पूर्वाऽवान्तरकिट्टिषु तावद् ददाति, यावल्लोभतृतीयसंग्रहकिट्टिचरमपूर्वावान्तरकिट्टिः।

ततो लोभतृतीयसंग्रहकिट्टिचरमपूर्वावान्तरकिट्टौ दीयमानदलतो विशेषहीनं दलं लोभद्वितीयसंग्रहकिट्टेः प्रथमावान्तरकिट्टौ ददाति, ततोऽपि विशेषहीनं द्वितीयस्यामवान्तरकिट्टौ ददाति, ततोऽपि विशेषहीनं तृतीयस्याम्। एवंक्रमेण तावद् ददाति, यावल्लोभद्वितीयसंग्रहकिट्टिचरमावान्तरकिट्टिः। नवरं यत्र यत्र बन्धापूर्वावान्तरकिट्टिर्निर्वर्त्यते, तत्र तत्र प्राक्तनावान्तरकिट्टौ दत्तबन्धदलतोऽनन्तगुणं बन्धदलं ददाति बन्धापूर्वावान्तरकिट्टयां च दत्तबन्धदलतो बन्धपूर्वावान्तरकिट्टौ बन्धदलमनन्तगुणहीनं ददाति।

अथ गणितविभागः ।

लोभप्रथमसंग्रहकिट्टिवेदनाद्धाचरमसमये लोभद्वितीयसंग्रहकिट्ट्यवान्तरकिट्टयो लोभतृतीयसंग्रहकिट्ट्यवान्तरकिट्टयश्चैकगोपुच्छाकारेण तिष्ठन्ति स्म । लोभद्वितीयसंग्रहकिट्टिवेदनाद्धाप्रथमसमये लोभस्य तृतीयसंग्रहकिट्टितः सूक्ष्मकिट्टिषु, द्वितीयसंग्रहकिट्टितस्तु तृतीयसंग्रहकिट्टौ सूक्ष्मकिट्टिषु च प्रदेशाग्रं संक्रमयति । तेन स्वस्थानगोपुच्छाकारो विनश्यति । तथाऽनुसमया-ऽपवर्तनाघातेन लोभद्वितीयसंग्रहकिट्टेस्तृतीयसंग्रहकिट्टेश्चोपरितनीरसंख्येयभागमात्रीरवान्तरकिट्टीर्विनाशयति । तेन परस्थानगोपुच्छाकारो विनश्यति । इदमुक्तं भवति–लोभतृतीयसंग्रहकिट्टिचरमावान्तरकिट्टितो लोभद्वितीयसंग्रहकिट्टिप्रथमावान्तरकिट्टौ दलमेकचयेन हीनमासीत् । साम्प्रतं लोभतृतीयसंग्रहकिट्टेरुपरितनीरसंख्येयभागप्रमाणा अवान्तरकिट्टीर्विनाशयति । तेनाऽसंख्येयभागमात्रीष्ववान्तरकिट्टिषु घातितासु लोभतृतीयसंग्रहकिट्टिचरमावान्तरकिट्टितो लोभद्वितीयसंग्रहकिट्टिप्रथमा-ऽवान्तरकिट्टावेकाधिक-घाताऽवान्तरकिट्टिराशिप्रमाणचयैर्हीनं दलं जायते ।

अथ घातदलतो लोभतृतीयसंग्रहकिट्ट्यवान्तरकिट्टिषु लोभद्वितीयसंग्रहकिट्ट्यवान्तरकिट्टिषु च यथायोग्यं दलं दत्त्वा स्वस्थानगोपुच्छाकारो रचयितव्यः ।

परस्थानगोपुच्छाकाररचनम्

लोभद्वितीयसंग्रहकिट्टेर्घाताऽवान्तरकिट्टीनां घातदलं गृहीत्वा लोभद्वितीयसंग्रहकिट्टिप्रथमाऽवान्तरकिट्टौ तृतीयसंग्रहकिट्टिघाताऽवान्तरकिट्टिराशिप्रमाणांश्चयान् प्रक्षिपति, ततः परं लोभद्वितीयसंग्रहकिट्टिद्वितीया-ऽऽद्यवान्तरकिट्टिषु तावतश्चयांस्तावत् प्रक्षिपति, यावल्लोभद्वितीयसंग्रहकिट्टिघातिताऽवशेषचरमाऽवान्तरकिट्टिः । इत्थं घातदलतो दलिके प्रक्षिप्ते लोभतृतीयसंग्रहकिट्टिप्रथमाऽवान्तरकिट्टितः प्रभृति लोभद्वितीयसंग्रहकिट्टेर्घातितावशेषचरमाऽवान्तरकिट्टिं यावत् प्रदेशाग्रं गोपुच्छाकारेण दृश्यते । इदं च सुखावबोधार्थमसत्कल्पनया दर्श्यते । कल्प्यन्तां लोभस्य द्वितीयसंग्रहकिट्टौ विंशतिरवान्तरकिट्टयस्तृतीयसंग्रहकिट्टौ च दशाऽवान्तरकिट्टयस्तथा लोभतृतीयसंग्रहकिट्टिप्रथमाऽवान्तरकिट्ट्यामेकक्रोटी (१,००,००,०००) प्रदेशाः, चयस्त्वेकलक्षप्रदेशमात्रः ।

स्थापना

लोभतृतीयसंग्रहकिट्ट्यवान्तरकिट्टि	प्रथमा	द्वितीया	तृतीया	चरमा (दशमी)
प्रदेशा	१०००००००	९९००००००	९८००००००	९१००००० ।
लोभद्वितीयसंग्रहकिट्ट्यवान्तरकिट्टि	प्रथमा	द्वितीया	तृतीया	चरमा (२० तमी)
प्रदेशा	९००००००	८९००००००	८८००००००	७१००००० ।

अथ लोभतृतीयसंग्रहकिट्टेश्चतस्रो (४) लोभद्वितीयसंग्रहकिट्टेश्चाऽष्टावन्तरकिट्टयो घात्यन्त इति कल्प्यताम् । तदश्चतसृष्ववान्तरकिट्टिषु घातितासु लोभतृतीयसंग्रहकिट्टिचरमावान्तरकिट्टौ पञ्च-

यन्त्रकम्–२६ (चित्रम्–२६)

सूक्ष्मकिट्टिकरणाद्धाप्रथमसमये बादरकिट्टीनां परस्थानगोपुच्छाकाररचना

बादर किट्टीनां स्थापना

१ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ १०

लोभतृतीयसंग्रहकिट्टि

१ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ १० ११ १२ १३ १४ १५ १६ १७ १८ १९ २०

लोभद्वितीयसंग्रहकिट्टि.

संक्षेपतो विवेचनम्—

इह परमार्थतो लोभतृतीयसंग्रहकिट्टौ लोभद्वितीयसग्रहकिट्टौ चा-ऽनन्ता अवान्तरकिट्टयो भवन्ति, किन्त्वसत्कल्पनया तृतीयसग्रहकिट्टौ दश (१०),द्वितीयसंग्रहकिट्टौ च विंशति (२०) दर्शिताः। अथ तृतीयसंग्रहकिट्टयाश्चतस्र (४) द्वितीयसग्रहकिट्टयाश्चाष्टाऽवान्तरकिट्टयोऽनुसमया–ऽपवर्तनया घात्यन्ते । ताश्च परमार्थतस्तत्तत्सग्रहकिट्टया असंख्येयभागप्रमाणा । लोभतृतीयसंग्रहकिट्टिप्रथमावान्तरकिट्टौ १,००,००,००० प्रदेशा । ततो यथोत्तरं १,००,००० प्रदेशात्मकचयेन हीना हीनतरा । तेन तृतीयसग्रहकिट्टिचरमावान्तरकिट्टौ ९१,००,०००, द्वितीयसग्रहकिट्टिप्रथमावान्तरकिट्टौ च ९०,००,००० प्रदेशा , एकचयेन हीना इत्यर्थ, चित्रे हानिदर्शनार्थं लोभतृतीयसंग्रहकिट्टौ द्वादश (१२) बिन्दवो लोभद्वितीयसंग्रहकिट्टिप्रथमावान्तरकिट्टयाञ्चैकादश (११) बिन्दवो दर्शिताः ।

असंख्येयभागप्रमाणानां बादरकिट्टीनां घाते जाते बादरकिट्टीनां स्थापना

१ २ ३ ४ ५ ६

लोभतृतीयसंग्रहकिट्टि

१ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ १० ११ १२

लोभ-द्वितीय-सग्रह-किट्टि.

असंख्येयभागप्रमाणानां बादरकिट्टीनां घाते जाते-ऽसत्कल्पनया लोभतृतीयसंग्रहकिट्टयाश्चतसृणामवान्तरकिट्टीनां घाते जाते तृतीयसंग्रहकिट्टिचरमावान्तरकिट्टित एकाधिकलोभतृतीयसग्रहकिट्टिघातावान्तरकिट्टिराशिप्रमाणैः पञ्चभिश्चयैर्हीना. प्रदेशा द्वितीयसंग्रहकिट्टिप्रथमावान्तरकिट्टौ, यतो या षष्ठी अवान्तरकिट्टिरासीन् ,सैवा ऽधुना लोभतृतीयसंग्रहकिट्टयाश्चरमावान्तरकिट्टि, तस्यां च ९५००००० प्रदेशा ,तेन ५००००० प्रदेशैर्हीना द्वितीयसंग्रहकिट्टिप्रथमावान्तरकिट्टौ ९०००००० प्रदेशा भवन्ति। तद्द्योतनाय चित्रे लोभतृतीयसंग्रहकिट्टेचरमावान्तरकिट्टौ १३ बिन्दवः, लोभद्वितीयसंग्रहकिट्टिप्रथमावान्तरकिट्टयाञ्च ११ बिन्दवो दर्शिता, एव च बिन्दुद्वयहानिर्दर्शिता, उपरितने चित्रे त्वेकबिन्दुहानिर्दर्शिता ।

परस्थानगोपुच्छाकाररचना।

१ २ ३ ४ ५ ६

लोभतृतीयसंग्रहकिट्टि

१ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ १० ११ १२

लोभद्वितीयसंग्रहकिट्टि

च=लोभतृतीयसंग्रहकिट्टिघातावान्तरकिट्टिराशिप्रमाणाश्चयान् लोभद्वितीयसंग्रहकिट्टिप्रथमावान्तरकिट्टौ प्रक्षिपति । एकैकचयस्य च १०००००प्रदेशात्मकत्वकल्पनात् ४००००० प्रदेशान् प्रक्षिपति । तेन लोभद्वितीयसंग्रहकिट्टिप्रथमावान्तरकिट्ट्यां १४००००० प्रदेशा भवन्ति । तदेव लोभतृतीयसंग्रहकिट्टिचरमावान्तरकिट्टिप्रदेशत. (१५०००००) लोभद्वितीयसंग्रहकिट्टिप्रथमावान्तरकिट्ट्यामेकचयेन (१०००००) हीना प्रदेशा भवन्ति । तद्द्योतनाय प्रस्तुतचित्रे लोभतृतीयसंग्रहकिट्टिचरमावान्तरकिट्टौ १३ बिन्दव, लोभद्वितीयसंग्रहकिट्टिप्रथमावान्तरकिट्टौ च १२ बिन्दवो दर्शिता । तत पर सर्वत्र तावत (४०००००) प्रदेशान् निक्षिपति। प्रक्षिप्तेषु च तेषु प्रदेशेषु सर्वाऽवान्तरकिट्टय एकगोपुच्छाकारेण प्रदेशापेक्षया भवन्ति ।

नवतिलक्षाणि (९५०००००) प्रदेशा भवन्ति, षष्ठाऽवान्तरकिट्टित्वात् तस्याः । लोभद्वितीयसंग्रहकिट्टिप्रथमावान्तरकिट्टौ तु प्रदेशाः पूर्ववद् नवतिलक्षाणि (९००००००) विद्यन्ते । तदेवं लोभतृतीयसंग्रहकिट्टिचरमावान्तरकिट्टितो लोभद्वितीयसंग्रहकिट्टिप्रथमावान्तरकिट्टौ पञ्चलक्षैर्हीनाः प्रदेशा भवन्ति, एकचयस्य चैकलक्षप्रदेशमात्रत्वात् पञ्चभिश्चयैर्हीना भवन्ति । लोभद्वितीयसंग्रहकिट्टेश्चाऽष्टास्ववान्तरकिट्टिषु घातितासु चरमाऽवान्तरकिट्टौ प्रदेशा नवसप्ततिलक्षाणि (७९०००००)भवन्ति ।

अवान्तरकिट्टीनां घाते जाते स्थापना

लोभतृतीयसंग्रहकिट्ट्यवान्तरकिट्टिः	प्रथमा	द्वितीया	तृतीया	चरमा (षष्ठी)
प्रदेशा	१००००००	९९०००००	९८०००००	९५०००००
लोभद्वितीयसंग्रहकिट्ट्यवान्तरकिट्टि-	प्रथमा	द्वितीया	तृतीया	चरमा (द्वादशी)
प्रदेशा .	९००००००	८९०००००	८८०००००	७९०००००

तेन द्वितीयसंग्रहकिट्टिघातदलतो दलमादाय लोभद्वितीयसंग्रहकिट्टिप्रथमावान्तरकिट्टितः प्रभृति घातितावशेषचरमावान्तरकिट्टिं यावत् सर्वास्ववान्तरकिट्टिषु लोभतृतीयसंग्रहकिट्टिघातावान्तरकिट्टिराशिप्रमाणाश्चत्वारश्चयाः प्रक्षेप्तव्याः,एकचयस्य चैकलक्षप्रदेशप्रमितत्वाच्चतुर्लक्षाणि प्रदेशाः प्रक्षेप्तव्याः । एवं प्रक्षिप्तेषु प्रदेशेषु परस्थानगोपुच्छरचना जायते । पश्यन्तु पाठका यन्त्रकम्-२६ ।

स्थापना

लोभतृतीयसंग्रहकिट्ट्यवान्तरकिट्टिः	प्रथमा	द्वितीया	तृतीया	चरमा (षष्ठी)
प्रदेशा	१००००००	९९०००००	९८०००००	९५०००००
लोभद्वितीयसंग्रहकिट्ट्यवान्तरकिट्टि·	प्रथमा	द्वितीया	तृतीया	चरमा (द्वादशी)
प्रदेशा :	९४०००००	९३०००००	९२०००००	८३०००००

इह लोभतृतीयसंग्रहकिट्टौ संक्रमतोऽपूर्वावान्तरकिट्टीर्निर्वर्तयन् संक्रमदलतः पूर्वावान्तरकिट्टिष्वपि मध्यमखण्डादिरूपेण दलं प्रक्षिपति । वेद्यमानसंग्रहकिट्टौ तु स्वपूर्वावान्तरकिट्टिषु वक्ष्यमाणाऽधस्तनशीर्षचयमध्यमखण्डोभयचयदलं यद् दास्यति, तद्घातदलत एव दास्यति । तच्च पृथक्स्थापयितव्यम् । अथ स्वस्थानगोपुच्छरचनाय प्रक्षिप्तदलं तथा परस्थानगोपुच्छरचनाय दत्तदलं पृथक्स्थापितं च लोभद्वितीयसंग्रहकिट्टिवक्ष्यमाणाऽधस्तनशीर्षचयमध्यमखण्डोभयचयदलमित्येतद्दलसमूहः सर्वघातदलतो विशोध्य शेषसर्वघातदलं लोभतृतीयसंग्रहकिट्टिप्रथमावान्तरकिट्टितः प्रभृति लोभद्वितीयसंग्रहकिट्टिचरमावान्तरकिट्टिं यावत् सर्वासु घातरहितास्ववान्तरकिट्टिषु विशेषहीनक्रमेण प्रक्षिपति । गणितरीत्या च निक्षेपः किट्टिवेदनाद्धाप्रथमसमयवद् दर्शयितव्यः ।

अथ तृतीयसंग्रहकिट्टौ सूक्ष्मकिट्टिषु च संक्रमेणाऽऽगतदलस्य लोभद्वितीयसंग्रहकिट्टेश्च बध्यमानत्वेन तत्र बन्धत आगतस्य दलस्य तथा पृथक्स्थापितघातदलस्याऽधस्तनशीर्षचयदलादिभिः प्ररूपणा क्रियते

तत्रादौ तावत् सूक्ष्मकिट्टिकरणाद्धाप्रथमसमये बादरकिट्टितः सूक्ष्मकिट्टितया परिणमनाय गृहीतदलं विभागद्वये विभजनीयम्—(१) सूक्ष्मकिट्टिचयदलं (२) सूक्ष्मकिट्टिसमानखण्डदलं चेति।

अथ सूक्ष्मकिट्टिचयदलम् सूक्ष्मकिट्टिकरणाद्धाप्रथमसमये सूक्ष्मकिट्टितया परिणमनाय गृहीतसकलदलं पदेन विभक्तव्यम्। विभक्ते च मध्यमदलं प्राप्यते। तदप्यर्धीकृतैकोनपदावन्यूनाभ्यां द्वाभ्यां द्विगुणहानिभ्यां विभज्यते, तदैकसूक्ष्मकिट्टिचयदलं प्राप्यते। तच्च वक्ष्यमाणसूक्ष्मकिट्टिसमानखण्डस्याऽनन्ततमभागमात्रं भवति। पदं त्वत्र सूक्ष्मकिट्टिराशिर्बोध्यम्।

चरमसूक्ष्मकिट्टयामेकं सूक्ष्मकिट्टिचयं ददाति, द्विचरमसूक्ष्मकिट्टौ द्वौ सूक्ष्मकिट्टिचयौ ददाति। एवं पश्चानुपूर्व्यैकोत्तरवृद्ध्या तावद् ददाति, यावत् प्रथमसूक्ष्मकिट्टिः। ते च सूक्ष्मकिट्टिचयाः "**सैकपदघ्नपदार्धमथैकाद्यङ्कयुतिः किल संकलिताख्या**" इति करणसूत्रेण सङ्कलयितव्याः। सङ्कलितैः सर्वैः सूक्ष्मकिट्टिचयैरेकसूक्ष्मकिट्टिचयगतदलं गुण्यते, तदा सर्वसूक्ष्मकिट्टिचयदलं प्राप्यते।

सूक्ष्मकिट्टिसमानखण्डदलम्—सूक्ष्मकिट्टितया परिणमनाय गृहीतसकलदलतः सूक्ष्मकिट्टिचयदलं विशोध्य शेषदलं सूक्ष्मकिट्टिसमानखण्डदलमुच्यते। तच्च सूक्ष्मकिट्टिराशिना विभज्यते, तदैकं सूक्ष्मकिट्टिसमानखण्डं प्राप्यते। तच्च वक्ष्यमाणबादरकिट्टिसंक्रममध्यमखण्डतोऽसंख्येयगुणं भवति। एकैकस्यां च सूक्ष्मकिट्टावविशेषेणैकैकं सूक्ष्मकिट्टिसमानखण्डं दातव्यम्।

अथ बादराबादरकिट्टीनामधस्तनशीर्षचयादिदलं निरूप्यते

(१) अधस्तनशीर्षचयदलम् लोभस्य तृतीयसंग्रहकिट्टेः प्रथमपूर्वान्तरकिट्टौ प्रभूतं दलं विद्यते, तत एकचयेन हीनं द्वितीयपूर्वान्तरकिट्टौ विद्यते। एवंक्रमेण तावद् विद्यते, यावल्लोभद्वितीयसंग्रहकिट्टिचरमपूर्वान्तरकिट्टिः।

सूक्ष्मकिट्टिकरणाद्धाप्रथमसमये सर्वपूर्वान्तरकिट्टयस्तेन क्रमेण पूरयितव्याः, येन सर्वपूर्वान्तरकिट्टयः प्रदेशानाश्रित्य लोभतृतीयसंग्रहकिट्टिप्रथमपूर्वान्तरकिट्टितुल्या भवेयुः। अतो लोभतृतीयसंग्रहकिट्टेर्द्वितीयपूर्वान्तरकिट्टावेकचयं ददाति। तृतीयपूर्वान्तरकिट्टौ द्वौ चयौ ददाति। एवमेकोत्तरवृद्ध्या तावद् ददाति, यावल्लोभतृतीयसंग्रहकिट्टिचरमपूर्वाऽन्तरकिट्टिः। निक्षिप्यमाणाश्चैते चया अधस्तनशीर्षचया उच्यन्ते। ते च "**सैकपदघ्नपदार्धमथैकाद्यङ्कयुतिः किल सङ्कलिताख्या।**" इति गणितकरणसूत्रेण सङ्कलयितव्याः। पदं त्वत्रैकोनलोभतृतीयसंग्रहकिट्टिपूर्वान्तरकिट्टिराशिर्बोध्यम्। सङ्कलिताऽधस्तनशीर्षचयैरेकाधस्तनशीर्षचयदलं गुण्यते, तदा तृतीयसंग्रहकिट्टिसर्वाऽधस्तनशीर्षचयदलं प्राप्यते। तच्च लोभतृतीयसंग्रहकिट्टौ संक्रम्यमाणदलतो दातुं पृथक्स्थापयितव्यम्।

न्यास.

तृतीयसंग्रहकिट्टे. सर्वेऽधस्तनशीर्षचया $= (\text{पदम्} + १) \times \frac{\text{पदम्}}{२}$

तृतीयसंग्रहकिट्टिसर्वाधस्तनशीर्षचयदलम् = सर्वाधस्तनशीर्षचया × एकाधस्तनशीर्षचयदलम्

ततो लोभद्वितीयसंग्रहकिट्टिप्रथमावान्तरकिट्टौ लोभतृतीयसंग्रहकिट्टिपूर्वाऽवान्तरकिट्टिराशिप्रमाणांश्चयान् प्रक्षिपति । ततो लोभद्वितीयसंग्रहकिट्टिद्वितीयावान्तरकिट्टयामेकाधिकान् लोभतृतीयसंग्रहकिट्टिपूर्वावान्तरकिट्टिराशिप्रमाणांश्चयान् प्रक्षिपति, एवमेकोत्तरवृद्धया तावत्प्रक्षिपति, यावल्लोभद्वितीयसंग्रहकिट्टिचरमावान्तरकिट्टिः । अनेन क्रमेण लोभद्वितीयसंग्रहकिट्टौ दीयमानाश्चयाः **"व्येकपदघ्नचयो मुखयुक् स्यादन्त्यधनं मुखयुग्दलितं तत् । मध्यधनं पदसंगुणितं तत् सर्वधनं गणितं च तदुक्तम् ।"** इति गणितकरणसूत्रेण सङ्कलयितव्याः । अत्र मुखम्= आदिधनम् , तच्च लोभतृतीयसंग्रहकिट्टिपूर्वावान्तरकिट्टिराशिप्रमाणाश्चयाः । चयश्चैको ज्ञातव्यः, एकोत्तरवृद्धिदर्शनात् । पदं तु लोभद्वितीयसंग्रहकिट्टिपूर्वावान्तरकिट्टिराशिर्बोध्यम् ।

न्यास.

अन्त्यधनम् = (पदम् − १) × चय + आदिधनम्

मध्यधनम् $= \frac{\text{अन्त्यधनम्} + \text{आदिधनम्}}{२}$

∴ लोभद्वितीयसंग्रहकिट्टे. सर्वेऽधस्तनशीर्षचया = मध्यधनम् × पदम्

द्वितीयसंग्रहकिट्टिसर्वाऽधस्तनशीर्षचयैरेकाऽधस्तनशीर्षचयदलं गुण्यते, तदा लोभद्वितीयसंग्रहकिट्टिसकलाऽधस्तनशीर्षचयदलं प्राप्यते । तच्च घातदलतो दातुं पृथक्स्थापयितव्यम् ।

(२) अपूर्वावान्तरकिट्टिदलम्—लोभतृतीयसंग्रहकिट्टेरवान्तरकिट्टयन्तरेषु या अपूर्वावान्तरकिट्टयो निर्वर्त्यन्ते, तासामेकैकस्यामपूर्वावान्तरकिट्टौ लोभतृतीयसंग्रहकिट्टिप्रथमपूर्वावान्तरकिट्टिगतप्रदेशतुल्यं दलिकं प्रक्षेप्तव्यम् , तच्चैकाऽपूर्वावान्तरकिट्टिदलमुच्यते । तत्पुनर्लोभतृतीयसंग्रहकिट्टेरपूर्वावान्तरकिट्टिराशिना गुण्यते, तदा लोभतृतीयसंग्रहकिट्टिसर्वाऽपूर्वावान्तरकिट्टिदलं प्राप्यते । तच्च तृतीयसंग्रहकिट्टौ संक्रमेण प्राप्यमाणदलतो दातुं पृथक्स्थापयितव्यम् । अपूर्वाऽवान्तरकिट्टीनाञ्च राशिर्लोभतृतीयसंग्रहकिट्टिपूर्वाऽवान्तरकिट्टीनामसंख्येयभागप्रमाणो ज्ञातव्यः, पल्योपमप्रथमवर्गमूलासंख्येयभागमात्रीषु पूर्वावान्तरकिट्टिषु व्रजितास्वेकैकस्या अपूर्वावान्तरकिट्टेर्निर्वृत्तेः ।

(३) उभयचयदलम्—पूर्वोक्तदलद्वये यथायोग्यं प्रक्षिप्ते सर्वपूर्वाऽपूर्वावान्तरकिट्टयः समानदलिका जायन्ते । तासां दलिकं गोपुच्छाकारं कर्तुं लोभद्वितीयसंग्रहकिट्टेश्चरमावान्तरकिट्टावेकं चयं प्रक्षिपति । द्विचरमावान्तरकिट्टौ द्वौ चयौ प्रक्षिपति । एवंक्रमेण पश्चानुपूर्व्या लोभतृतीयसंग्रहकिट्टिप्रथमपूर्वावान्तरकिट्टौ पूर्वापूर्वावान्तरकिट्टिराशिप्रमाणांश्चयान् प्रक्षिपति । प्रक्षिप्यमाणचयाश्चोभयचया उच्यन्ते । सूक्ष्मकिट्टितया परिणम्यमानं मोहनीयदलिकं वर्जयित्वा शेषं मोहनीयसत्तागत-

दलं पदेन विभज्यते, तदा मध्यमदलं प्राप्यते । तत्पुनरर्धीकृतैकोनपदन्यूनाभ्यां द्वाभ्यां द्विगुणहानिभ्यां विभज्यते, तदैकखण्डं यल्लभ्यते, तदेकोभयचयदलं भण्यते । पदं त्वत्र बादरपूर्वाऽपूर्वावान्तरकिट्टिराशिर्ज्ञातव्यम् ।

इह लोभद्वितीयसंग्रहकिट्टिसर्वावान्तरकिट्टिषु निक्षिप्यमाणा उभयचयाः **"सैकपदघ्नपदार्धमथैकाद्यङ्कयुतिः किल सङ्कलिताख्या"** इति करणसूत्रेण संकलयितव्याः । पदं त्वत्र लोभद्वितीयसंग्रहकिट्ट्यवान्तरकिट्टिराशिर्बोध्यम् ।

संकलितैरुभयचयैरेकोभयचयदलं गुण्यते, तदा लोभद्वितीयसंग्रहकिट्टिसर्वोभयचयदलं प्राप्यते । उभयचयदलं च लोभद्वितीयसंग्रहकिट्टेः पूर्वावान्तरकिट्टिषु घातदलतो बन्धापूर्वावान्तरकिट्टिषु तु बन्धदलतो दीयते । तत्र बन्धदलतो बन्धापूर्वावान्तरकिट्टिषु किञ्चिन्न्यूनोभयचयदलं यद् दीयते, तद् बन्धापूर्वावान्तरकिट्टिचयदलमिति परिभाषिष्यते । तच्च वक्ष्यमाणप्रकारेण सङ्कलय्य सर्वोभयचयदलतो विशोधयितव्यम् । विशोधिते च तस्मिन् शेषतः पुनरनन्ततमभागमात्रं दलं विशोधनीयम्, तावद्दलस्य बन्धपूर्वापूर्वावान्तरकिट्टिषु बन्धचयबन्धमध्यमखण्डस्वरूपेण बन्धदलतो दास्यमानत्वात् । शुद्धशेषमुभयचयदलं घातदलतो दातव्यम् ।

ततो लोभतृतीयसंग्रहकिट्टिचरमाऽवान्तरकिट्टावेकाधिकलोभद्वितीयसंग्रहकिट्टिसकलावान्तरकिट्टिराशिप्रमाणानुभयचयान् प्रक्षिपति । ततः पश्चानुपूर्व्यैकोत्तरवृद्धयोभयचयान् प्रक्षिपति । ते च **"व्येकपदघ्नचयो मुखयुक् स्यादन्त्यधनं मुखयुग् दलितं तत् । मध्यधनं पदसंगुणितं तत् सर्वधनं गणितं च तदुक्तम् ।"** इति करणसूत्रेण सङ्कलयितव्याः । मुखमादिधनम्, तच्चात्रैकाधिकलोभद्वितीयसंग्रहकिट्टिसकलाऽवान्तरकिट्टिराशिप्रमाणाश्चयाः । चयस्त्वेकः, एकोत्तरवृद्धेः । पदं तु लोभतृतीयसंग्रहकिट्टिपूर्वापूर्वावान्तरकिट्टिराशिर्बोध्यम् ।

न्यास　लोभतृतीयसंग्रहकिट्टौ निक्षिप्यमाणा सर्व उभयचया

$$\text{अन्त्यधनम्} = (\text{पदम्} - 1) + \text{चय} + \text{मुखम्}$$

$$\text{मध्यधनम्} = \frac{\text{अन्त्यधनम्} + \text{आदिधनम्}}{2}$$

· लोभतृतीयसंग्रहकिट्टौ निक्षिप्यमाणाः सर्व उभयचया = मध्यधनम् × पदम् ।

तृतीयसंग्रहकिट्टिसर्वोभयचयैरेकोभयचयदलं गुण्यते, तदा लोभतृतीयसंग्रहकिट्टिसर्वोभयचयदलं प्राप्यते । तच्च संक्रमदलतः पृथक्स्थापयितव्यम् ।

(४) **मध्यमखण्डम्** लोभतृतीयसंग्रहकिट्टौ निक्षिप्यमाणमधस्तनशीर्षचयदलमपूर्वाऽवान्तरकिट्टिचयदलमुभयचयदलञ्चेति दलत्रयं लोभतृतीयसंग्रहकिट्टौ प्राप्यमाणसंक्रमदलतो विशोध्य तृतीयसंग्रहकिट्टेः शेषसंक्रमदलं लोभतृतीयसंग्रहकिट्टिपूर्वापूर्वावान्तरकिट्टिराशिना विभज्यते, तदैकमध्य-

मखण्डं प्राप्यते। तच्च लोभतृतीयसंग्रहकिट्टिप्रथमपूर्वावान्तरकिट्टिगतदलस्यासंख्येयभागमात्रं भवति। मतान्तरेण त्वनन्तभागमात्रं संभवति। इह प्रकरणे प्रथममतमाश्रित्य सर्वं प्ररूपयिष्यते द्वितीयमतं तु प्रतीत्य स्वयमेव भावनीयम्, किट्टिवेदनाद्धाप्रथमसमय उभयमतेन दर्शितत्वात्।

निरुक्तैकमध्यमखण्डदलं लोभद्वितीयसंग्रहकिट्टिपूर्वावान्तरकिट्टिराशिना गुण्यते, तदा लोभद्वितीयसंग्रहकिट्टेः सर्वमध्यमखण्डदलं प्राप्यते। तच्च घातदलतो दातव्यम्। एकैकमध्यमखण्डं लोभद्वितीयसंग्रहकिट्टिसर्वपूर्वाऽवान्तरकिट्टिष्वविशेषेण दातव्यम्।

लोभद्वितीयसंग्रहकिट्टावधस्तनशीर्षचयदलमुभयचयदलं मध्यखण्डदलं चेति दलत्रिके यथायोग्यं प्रक्षिप्ते स्वस्थानपरस्थानगोपुच्छरचनाऽवसरे पृथक्स्थापितं घातदलं परिसमाप्तं भवति। लोभतृतीयसंग्रहकिट्टौ च यथायोग्यमधस्तनशीर्षचयादिदलचतुष्टये दत्ते तृतीयसंग्रहकिट्ट्यामागतं संक्रमदलं परिसमाप्तं भवति।

अथ बन्धदलं बन्धाऽपूर्वावान्तरकिट्टिसमानखण्डदलादिभिर्विवर्ण्यते

लोभद्वितीयसंग्रहकिट्टिर्बध्यते। तेन तद्बन्धत आगतं दलमपि यथायोग्यं विभजनीयम्। तत्र बन्धदलं विभागचतुष्टये स्थापयितव्यम्। (१) बन्धाऽपूर्वावान्तरकिट्टिसमानखण्डदलं (२) बन्धाऽपूर्वावान्तरकिट्टिचयदलं (३) बन्धचयदलं (४) बन्धमध्यमखण्डदलं चेति।

(१) **बन्धाऽपूर्वावान्तरकिट्टिसमानखण्डदलम्**—बन्धदलतो लोभद्वितीयसंग्रहकिट्ट्यामवान्तरकिट्ट्यन्तरेषु या अपूर्वाऽवान्तरकिट्टयो निर्वर्त्यन्ते, तासामेकैकस्यामवान्तरकिट्टौ बन्धदलत एकसंक्रममध्यमखण्डाधिकलोभतृतीयसंग्रहकिट्टिप्रथमपूर्वावान्तरकिट्टिदलं दातव्यम्। तच्चैकं बन्धाऽपूर्वावान्तरकिट्टिसमानखण्डमुच्यते। बन्धाऽपूर्वावान्तरकिट्टिराशिनैकबन्धाऽपूर्वावान्तरकिट्टिसमानखण्डं गुण्यते, तदा सर्वबन्धापूर्वाऽवान्तरकिट्टिसमानखण्डदलं प्राप्यते।

न्यास　एकबन्धापूर्वावान्तरकिट्टिसमानखण्डदलम्
　　= १ सक्रममध्यमखण्डम् + लोभतृतीयसंग्रहकिट्टिप्रथमपूर्वावान्तरकिट्टिदलम्।
　　सर्वबन्धापूर्वावान्तरकिट्टिसमानखण्डदलम्
　　= १ बन्धापूर्वावान्तरकिट्टिसमानखण्डदलम् × बन्धापूर्वावान्तरकिट्टिराशिः।

(२) **बन्धाऽपूर्वावा..रकिट्टिचयदलम्**—यदेकोभयचयदलं प्राक् साधितम्, तदनन्ततमभागेन न्यूनमेकबन्धापूर्वावान्तरकिट्टिचयदलं भण्यते, [redacted]।

अथ लोभद्वितीयसंग्रहकिट्टेरधस्तनीरुपरितनीश्चाऽसंख्येयभागप्रमाणा अवान्तरकिट्टीर्विमुच्य शेषा लोभद्वितीयसंग्रहकिट्टेरवान्तरकिट्टयो बध्यन्ते। तत्राऽपि बन्धचरमपूर्वावान्तरकिट्टेरधस्तादसंख्यातपल्योपमप्रथमवर्गमूलप्रमाणा बन्धपूर्वाऽवान्तरकिट्टीर्व्यतिक्रम्य बन्धचरमापूर्वावान्तरकिट्टिर्निर्व-

र्त्यते । तस्यां च लोभद्वितीयसंग्रहकिट्टिचरमाऽवान्तरकिट्टित आरभ्य पश्चानुपूर्व्या यतिसंख्याका लोभद्वितीयसंग्रहकिट्टिबन्धचरमाऽपूर्वाऽवान्तरकिट्टिर्भवति, तत्संख्याका बन्धाऽपूर्वाऽवान्तरकिट्टिचयाः प्रक्षेपणीयाः । ततः पुनरसंख्यातपल्योपमप्रथमवर्गमूलप्रमाणासु पूर्वावान्तरकिट्टिषु गतासु द्विचरमबन्धापूर्वावान्तरकिट्टिर्निर्वर्त्यते, तत्र बन्धचरमाऽपूर्वावान्तरकिट्टितोऽसंख्यातपल्योपमप्रथमवर्गमूलराशिप्रमाणैर्बन्धापूर्वावान्तरकिट्टिचयैरधिका बन्धाऽपूर्वावान्तरकिट्टिचयाः प्रक्षेप्तव्याः । एवं पश्चानुपूर्व्या बन्धाऽपूर्वावान्तरकिट्ट्यामसंख्यातपल्योपमप्रथमवर्गमूलप्रमाणैरधिका अधिकतरा बन्धाऽपूर्वावान्तरकिट्टिचयास्तावद् दातव्याः, यावद् बन्धप्रथमाऽपूर्वावान्तरकिट्टिः । एते च निक्षिप्यमाणाः सर्वे बन्धापूर्वाऽवान्तरकिट्टिचयाः "व्येकपदघ्नचयो मुखयुक् स्यादन्त्यधनं मुखयुक् दलितं तत् । मध्यधनं पदसंगुणितं तत्सर्वधनं गणितं च तदुक्तम् ।" इति करणसूत्रेण सङ्कलयितव्याः । मुखमादिधनम्, तच्चात्र लोभद्वितीयसंग्रहकिट्टिचरमाऽवान्तरकिट्टिप्रभृतिबन्धप्रथमाऽपूर्वावान्तरकिट्टिपर्यवसानाऽवान्तरकिट्टिराशिप्रमाणा बन्धापूर्वाऽवान्तरकिट्टिचयाः, चयश्चाऽसंख्येयपल्योपमप्रथमवर्गमूलप्रमाणबन्धापूर्वाऽवान्तरकिट्टिचयाः । पदं पुनर्लोभद्वितीयसंग्रहकिट्टिबन्धाऽपूर्वाऽवान्तरकिट्टिराशिर्ज्ञातव्यम् ।

न्यास

$$\text{अन्त्यधनम्} = (\text{पदम्} - १) \times \text{चयः} + \text{आदिधनम्} ।$$

$$\text{मध्यधनम्} = \frac{\text{अन्त्यधनम्} + \text{आदिधनम्}}{२} ।$$

∴ लोभद्वितीयसंग्रहकिट्टिसर्वबन्धापूर्वावान्तरकिट्टिचया = मध्यधनम् × पदम् ।

लोभद्वितीयसंग्रहकिट्ट्याः सर्वैर्बन्धापूर्वाऽवान्तरकिट्टिचयैरेकबन्धापूर्वाऽवान्तरकिट्टिचयदलं गुण्यते, तदा लोभद्वितीयसंग्रहकिट्टेः सर्वबन्धाऽपूर्वाऽवान्तरकिट्टिचयदलं प्राप्यते ।

(३) बन्धचयदलम्—बन्धाऽपूर्वावान्तरकिट्टिसमानखण्डदलं बन्धापूर्वाऽवान्तरकिट्टिचयदलं च बन्धदलतो विशोध्य शेषं बन्धदलं पदेन विभजनीयम् । विभक्ते च मध्यमदलं प्राप्यते । तदप्यर्धीकृतकैनपदन्यूनाभ्यां द्वाभ्यां द्विगुणहानिभ्यां विभज्यते, तदैकबन्धचयगतदलं प्राप्यते । पदं त्वत्र लोभद्वितीयसंग्रहकिट्टिबन्धपूर्वापूर्वाऽवान्तरकिट्टिराशिर्ज्ञातव्यम् । इह लोभद्वितीयसंग्रहकिट्टेर्बन्धचरमावान्तरकिट्टावेकं बन्धचयं ददाति, बन्धद्विचरमावान्तरकिट्टौ द्वौ बन्धचयौ ददाति, एवं पश्चानुपूर्व्यैकोत्तरवृद्ध्या बन्धपूर्वापूर्वावान्तरकिट्टिषु तावद् ददाति, यावल्लोभद्वितीयसंग्रहकिट्टिबन्धजघन्यपूर्वावान्तरकिट्टिः । ते च बन्धचयाः "सैकपदघ्नपदार्धमथैकाद्यङ्कयुतिः किल सङ्कलिताख्या" इति गणितसूत्रेण संकलयितव्याः । पदं त्वत्र लोभद्वितीयसंग्रहकिट्टिबन्धपूर्वापूर्वावान्तरकिट्टिराशिर्बोध्यम् । एकबन्धचयदलं सर्वबन्धचयैर्गुण्यते, तदा सर्वबन्धचयदलं प्राप्यते ।

(४) बन्धमध्यमखण्डम्—बन्धदलतः पूर्वोक्तबन्धदलत्रयं विशोध्य शेषबन्धदलं बन्धपूर्वाऽपूर्वान्तरकिट्टिराशिना विभज्यते, तदेकं बन्धमध्यमखण्डं लभ्यते । तच्चैकैकं बन्धमध्यमखण्डं बन्धपूर्वापूर्वपूर्वान्तरकिट्टिष्वविशेषेण दातव्यम् ।

बध्यमानपूर्वान्तरकिट्टिषु येनाऽनन्ततमभागेन हीनं संक्रमोभयचयदलं बध्यमानाऽपूर्वान्तरकिट्टिषु चोभयचयापेक्षया येनानन्ततमभागेन हीनं बन्धाऽपूर्वान्तरकिट्टिचयदलं प्रक्षिप्यत, सोऽनन्ततमभागो बन्धमध्यमखण्डे यथायोग्यं च बन्धचयदले प्रक्षिप्ते परिपूर्यते ।

अथ सूक्ष्मकिट्टिषु लोभसंग्रहकिट्टिद्वये च दीयमानदलविधिर्भण्यते

सूक्ष्मकिट्टिकरणाद्धाप्रथमसमये प्रथमसूक्ष्मकिट्ट्यामेकं सूक्ष्मकिट्टिसमानखण्डं सूक्ष्मकिट्टिराशिप्रमाणांश्च सूक्ष्मकिट्टिचयान् ददाति । इदं च दीयमानं दलं सर्वप्रभूतं भवति । ततः परं द्वितीयसूक्ष्मकिट्ट्यामेकं सूक्ष्मकिट्टिसमानखण्डमेकोनसूक्ष्मकिट्टिराशिप्रमाणांश्च सूक्ष्मकिट्टिचयान् ददाति । इत्थं प्रथमसूक्ष्मकिट्टितोऽस्यां दीयमानं दलमेकसूक्ष्मकिट्टिचयेन हीनं भवति, सूक्ष्मकिट्टिचयस्याऽनन्ततमभागमात्रत्वादनन्ततमभागेन हीनं दीयमानदलं भवति । ततः परमुत्तरोत्तरसूक्ष्मकिट्टावेकैकं सूक्ष्मकिट्टिसमानखण्डमेकोत्तरहान्या च सूक्ष्मकिट्टिचयाँस्तावद् ददाति, यावच्चरमसूक्ष्मकिट्टिः । एकसूक्ष्मकिट्टिचयस्याऽनन्ततमभागमात्रत्वादुत्तरोत्तरसूक्ष्मकिट्टौ दीयमानं दलमनन्तभागेन हीनं भवति । इत्थं सूक्ष्मकिट्टितया परिणमनाय गृहीतदलं परिसमाप्तं भवति ।

अथ लोभतृतीयसंग्रहकिट्टिः—चरमसूक्ष्मकिट्टित ऊर्ध्वं बादरजघन्यकिट्टिस्वरूपायां लोभतृतीयसंग्रहकिट्टिप्रथमपूर्वान्तरकिट्टौ संक्रमदलत एकं मध्यमखण्डं बादरपूर्वाऽपूर्वाऽन्तरकिट्टिराशिप्रमाणांश्चोभयचयान् ददाति । इदं च दीयमानं दलं चरमसूक्ष्मकिट्टौ दीयमानदलतोऽसंख्यातगुणहीनं भवति, सूक्ष्मकिट्टिसमानखण्डतो मध्यमखण्डस्याऽसंख्येयगुणहीनत्वादुभयचयदलस्य चाऽनन्ततमभागमात्रत्वेनाऽकिञ्चित्करत्वात् ।

ततो लोभतृतीयसंग्रहकिट्टिद्वितीयपूर्वान्तरकिट्टावेकाऽधस्तनशीर्षचयदलमेकोनबादरपूर्वापूर्वान्तरकिट्टिप्रमाणानुभयचयानेकं च मध्यमखण्डं ददाति । इत्थं लोभतृतीयसंग्रहकिट्टिप्रथमपूर्वाऽन्तरकिट्टितो लोभतृतीयसंग्रहकिट्टिद्वितीयपूर्वान्तरकिट्टौ दीयमानदलमेकाऽधस्तनशीर्षचयेनाधिकमेकोभयचयदलेन च हीनं भवति । तेन लोभतृतीयसंग्रहकिट्टिप्रथमपूर्वाऽन्तरकिट्टितो लोभतृतीयसंग्रहकिट्टिद्वितीयपूर्वान्तरकिट्टौ दीयमानदलमेकाऽधस्तनशीर्षचयदलन्यूनैकोभयचयदलेन हीनं भवति । अधस्तनशीर्षचयदलस्योभयचयदलतो हीनत्वाल्लोभतृतीयसंग्रहकिट्टिप्रथमपूर्वान्तरकिट्टितो लोभतृतीयसंग्रहकिट्टिद्वितीयपूर्वान्तरकिट्टौ दलमनन्ततमभागेन हीनं ददातीति सिध्यति । एवमग्रेऽपि भावनीयम् । लोभतृतीयसंग्रहकिट्टिद्वितीयपूर्वान्तरकिट्टितः परमेकोत्तरवृद्ध्याऽधस्तनशीर्षचयानेकोत्तरहान्योभयचयानेकैकं च मध्यमखण्डं तावत्

प्रक्षिपति, यावदपूर्वावान्तरकिट्टिरप्राप्ता भवति । अपूर्वावान्तरकिट्टौ चैकाऽपूर्वावान्तरकिट्टिदलं लोभतृतीयसंग्रहकिट्टिप्रथमपूर्वावान्तरकिट्टिप्रभृतिव्यतिक्रान्तबादरपूर्वावान्तरकिट्टिराशिन्यूनबादरसर्वपूर्वाऽपूर्वावान्तरकिट्टिराशिप्रमाणोभयचयानेकं च मध्यमखण्डं ददाति । तेन प्राक्तनपूर्वावान्तरकिट्टौ दीयमानदलतोऽस्यां दीयमानदलमसंख्यातगुणं भवति, प्राक्तनपूर्वावान्तरकिट्टौ प्रक्षिप्तमधस्तनशीर्षचयदलं मध्यमखण्डदलं चेत्येतद्दलद्वयतोऽपूर्वावान्तरकिट्टिदलस्यासंख्येयगुणत्वात् ।

ततोऽनन्तरायामुपरितन्यां लोभतृतीयसंग्रहकिट्टिपूर्वावान्तरकिट्टावेकं मध्यमखण्डं बादरप्रथमपूर्वावान्तरकिट्टिप्रभृतिव्यतिक्रान्तबादरपूर्वापूर्वावान्तरकिट्टिराशिन्यूनबादरसर्वपूर्वापूर्वावान्तरकिट्टिराशिप्रमाणानुभयचयान् बादरप्रथमपूर्वावान्तरकिट्टिप्रभृतिव्यतिक्रान्तबादरपूर्वावान्तरकिट्टिराशिप्रमाणाऽधस्तनशीर्षचयांश्च प्रक्षिपति । तेन प्राक्तना-ऽपूर्वावान्तरकिट्टितोऽस्यां पूर्वावान्तरकिट्टौ दीयमानदलमसंख्येयगुणहीनं जायते, अस्यां निक्षिप्यमाणाऽधस्तनशीर्षचयमध्यमखण्डदलस्याऽपूर्वावान्तरकिट्टिदलतोऽसंख्येयगुणहीनत्वात् ।

तत उत्तरोत्तराऽवान्तरकिट्टयामेकोत्तरवृद्धयाऽधस्तनशीर्षचयानेकोत्तरहान्योभयचयानेकैकं च मध्यमखण्डं तावत्प्रक्षिपति, यावल्लोभतृतीयसंग्रहकिट्टिचरमपूर्वावान्तरकिट्टिः, नवरं पल्योपमप्रथमवर्गमूलाऽसंख्येयभागे गते यत्र यत्रा-ऽपूर्वावान्तरकिट्टिं निर्वर्तयति, तत्र तत्राऽधस्तनशीर्षचयान्न प्रक्षिपति, किन्तु तत्स्थानेऽपूर्वावान्तरकिट्टिदलं ददाति । तेन पूर्वाऽवान्तरकिट्टितोऽपूर्वावान्तरकिट्टौ दीयमानं दलमसंख्येयगुणं तथाऽपूर्वावान्तरकिट्टितः पूर्वाऽवान्तरकिट्टौ दीयमानं दलमसंख्यातगुणहीनं भवति ।

अथ लोभद्वितीयसंग्रहकिट्टिः—अतः परं लोभद्वितीयसंग्रहकिट्टौ दलं दातुमुपक्रमते । अस्या बध्यमानत्वेन चतुर्विधबन्धदलाद् वेद्यमानत्वेन च त्रिविधघातदलाद् यथायोग्यं दलं ददाति । तत्राऽसंख्येयभागमिता मन्दानुभागकास्तीव्रानुभागकाश्च या अवान्तरकिट्टयो न बध्यन्ते, तासु घातदलमेव ददाति । बन्धा-ऽपूर्वावान्तरकिट्टिषु केवलं बन्धदलं ददाति, न घातदलम् । तथाहि—लोभद्वितीयसंग्रहकिट्टिप्रथमपूर्वावान्तरकिट्टौ घातदलादेकं मध्यमखण्डं बादरप्रथमपूर्वावान्तरकिट्टिप्रभृतिव्यतिक्रान्तपूर्वावान्तरकिट्टिराशिप्रमाणाऽधस्तनशीर्षचयान् बादरप्रथमपूर्वावान्तरकिट्टिप्रभृतिव्यतिक्रान्तबादरपूर्वाऽपूर्वावान्तरकिट्टिराशिन्यूनबादरसर्वपूर्वापूर्वावान्तरकिट्टिराशिप्रमाणोभयचयांश्च ददाति । तेन लोभतृतीयसंग्रहकिट्टिचरमपूर्वावान्तरकिट्टितो लोभद्वितीयसंग्रहकिट्टिप्रथमपूर्वावान्तरकिट्टौ दीयमानं दलिकमनन्ततमभागेन हीनं जायते, लोभतृतीयसंग्रहकिट्टिचरमाऽवान्तरकिट्टयपेक्षयाऽधस्तनशीर्षचयदलन्यूनैकोभयचयदलेन हीनदलस्य प्रक्षेपात् । ततो लोभद्वितीयसंग्रहकिट्टिद्वितीयादिपूर्वावान्तरकिट्टिषु घातदलादेकोत्तरवृद्धयाऽधस्तनशीर्षचयानेकोत्तरहान्योभयचयानेकैकं च मध्यमखण्डं तावद् ददाति, यावल्लोभद्वितीयसंग्रहकिट्टिबन्धप्रथमपूर्वावान्तरकिट्टिरप्राप्ता भवति ।

ततो लोभद्वितीयसंग्रहकिट्टेर्जघन्यायां बन्धपूर्वाऽपूर्वान्तरकिट्टौ घातदलत एकं मध्यमखण्डं बादरप्रथमपूर्वाऽपूर्वान्तरकिट्टिप्रभृतिव्यतिक्रान्तबादरपूर्वापूर्वान्तरकिट्टिराशिप्रमाणाऽधस्तनशीर्षचयान् बादरप्रथमपूर्वापूर्वान्तरकिट्टिप्रभृतिव्यतिक्रान्तबादरपूर्वापूर्वान्तरकिट्टिराशिन्यूनबादरसर्वपूर्वापूर्वान्तरकिट्टिराशिप्रमाणोभयचयदलं चैकोभयचयदलाऽनन्ततमभागेन हीनं ददाति, एकोभयचयदलाऽनन्ततमभागप्रमाणदलस्य बन्धचयबन्धमध्यमखण्डरूपेण प्रक्षिप्यमाणत्वात् । बन्धदलतः पुनरेकं बन्धमध्यमखण्डं बन्धसर्वपूर्वापूर्वान्तरकिट्टिराशिप्रमाणांश्च बन्धचयान् प्रक्षिपति ।

ततः परमसंख्यातपल्योपमप्रथमवर्गमूलप्रमाणासु पूर्वापूर्वान्तरकिट्टिषु बन्धदलादेकोत्तरहान्या बन्धचयानेकैकं च बन्धमध्यमखण्डं घातदलतः पुनरेकोत्तरवृद्ध्याऽधस्तनशीर्षचयानेकोत्तरहान्योभयचयानेकैकं च मध्यमखण्डं तावद् ददाति, यावल्लोभद्वितीयसंग्रहकिट्टिप्रथमबन्धाऽपूर्वान्तरकिट्टिरप्राप्ता भवति । नवरमुभयचयदलमनन्ततमभागेन हीनं प्रक्षिपति, बन्धचयबन्धमध्यमखण्डरूपेण तावद्दलस्य प्रक्षेपात् ।

ततो लोभद्वितीयसंग्रहकिट्टिप्रथमबन्धाऽपूर्वान्तरकिट्टौ बन्धदलत एकं बन्धाऽपूर्वान्तरकिट्टिसमानखण्डं लोभतृतीयसंग्रहकिट्टिप्रथमपूर्वापूर्वान्तरकिट्टिप्रभृतिव्यतिक्रान्तपूर्वापूर्वान्तरकिट्टिराशिन्यूनबादरसर्वपूर्वापूर्वाऽपूर्वान्तरकिट्टिराशिप्रमाणान् बन्धाऽपूर्वान्तरकिट्टिचयान् लोभद्वितीयसंग्रहकिट्टिबन्धप्रथमपूर्वाऽपूर्वान्तरकिट्टिप्रभृतिव्यतिक्रान्तबन्धपूर्वाऽपूर्वान्तरकिट्टिराशिन्यूनबन्धसर्वपूर्वापूर्वान्तरकिट्टिराशिप्रमाणान् बन्धचयानेकं च बन्धमध्यमखण्डं ददाति । घातदलतस्तु तस्यां दलं न प्रक्षिपति । इत्थं प्राक्तनपूर्वापूर्वान्तरकिट्टौ दीयमानबन्धदलतोऽस्यामपूर्वान्तरकिट्टौ दीयमानबन्धदलमनन्तगुणं भवति, बन्धचय-बन्धमध्यमखण्डदलतो बन्धाऽपूर्वान्तरकिट्टिचयबन्धाऽपूर्वान्तरकिट्टिसमानखण्डदलस्याऽनन्तगुणत्वात् ।

ततः परमनन्तरायां पूर्वापूर्वान्तरकिट्टौ घातदलतो बादरप्रथमपूर्वाऽपूर्वान्तरकिट्टिप्रभृतिव्यतिक्रान्तपूर्वाऽपूर्वान्तरकिट्टिराशिप्रमाणाऽधस्तनशीर्षचयांस्तथाऽनन्ततमभागेन हीनं बादरप्रथमपूर्वापूर्वान्तरकिट्टिप्रभृतिव्यतिक्रान्तबादरपूर्वापूर्वान्तरकिट्टिराशिन्यूनबादरसर्वपूर्वापूर्वान्तरकिट्टिराशिप्रमाणोभयचयदलमेकं च मध्यमखण्डं प्रक्षिपति । बन्धदलतः पुनरेकं बन्धमध्यमखण्डं बन्धप्रथमपूर्वापूर्वान्तरकिट्टिप्रभृतिव्यतिक्रान्तबन्धपूर्वापूर्वान्तरकिट्टिराशिन्यूनबन्धसर्वपूर्वापूर्वान्तरकिट्टिराशिप्रमाणान् बन्धचयान् प्रक्षिपति । इत्थं प्राक्तनबन्धापूर्वान्तरकिट्टौ निक्षिप्तदलतोऽस्यां पूर्वापूर्वान्तरकिट्टौ निक्षिप्यमाणबन्धदलमनन्तगुणहीनं भवति, बन्धचय-बन्धमध्यमखण्डदलस्य बन्धापूर्वान्तरकिट्टिचय-बन्धापूर्वान्तरकिट्टिसमानदलतोऽनन्तगुणहीनत्वात् ।

ततः परं घातदलत एकोत्तरहान्योभयचयानेकोत्तरवृद्ध्याऽधस्तनशीर्षचयानेकैकं च मध्यमखण्डं बन्धदलतः पुनरेकोत्तरहान्या बन्धचयानेकैकं च बन्धमध्यमखण्डं तावद् ददाति,

यावल्लोभद्वितीयसंग्रहकिट्टिबन्धचरमपूर्वावान्तरकिट्टिः, नवरमसंख्यातपल्योपमप्रथमवर्गमूलप्रमाणासु पूर्वावान्तरकिट्टिषु गतासु यत्र यत्र बन्धाऽपूर्वावान्तरकिट्टिर्निर्वर्त्यते, तत्र तत्रोभयचयस्थाने बन्धदलतो बन्धाऽपूर्वावान्तरकिट्टिचयानधस्तनशीर्षचयस्थाने च बन्धाऽपूर्वाऽवान्तरकिट्टिसमानखण्डं ददाति, घातदलतश्च मध्यमखण्डं न ददाति ।

लोभद्वितीयसंग्रहकिट्टिचरमबन्धपूर्वाऽवान्तरकिट्टेरुपरितनपूर्वाऽवान्तरकिट्टौ घातदलत एकं मध्यमखण्डं बादरप्रथमपूर्वावान्तरकिट्टिप्रभृतिव्यतिक्रान्तबादरपूर्वावान्तरकिट्टिराशिप्रमाणाऽधस्तनशीर्षचयान् बादरप्रथमपूर्वावान्तरकिट्टिप्रभृतिव्यतिक्रान्तबादरपूर्वापूर्वाऽवान्तरकिट्टिराशिन्यूनबादरसर्वपूर्वापूर्वाऽवान्तरकिट्टिराशिप्रमाणांश्चोभयचयान् प्रक्षिपति । ततः परं घातदलत एकोत्तरवृद्धया-ऽधस्तनशीर्षचयानेकोत्तरहान्योभयचयानेकैकं च मध्यमखण्डं तावद् ददाति, यावल्लोभद्वितीयसंग्रहकिट्टिचरमपूर्वावान्तरकिट्टिः । पश्यन्तु पाठका यन्त्रकम्-२७ ।

समाप्तो गणितविभागः ।

इत्थं भणितः सूक्ष्मकिट्टिकरणाद्धाप्रथमसमये दलनिक्षेपविधिः ॥१९६॥

उत्तरोत्तरसमयेऽसंख्येयगुणहीना अपूर्वसूक्ष्मकिट्टीर्निर्वर्तयतीति प्रतिपादितं पञ्चनवत्यधिकशततमगाथया । अथ ताः कुत्र निर्वर्तयति ? किं किट्टिकरणाद्धावत् पूर्वासामेवाधस्ताद् निर्वर्तयति, उत क्रोधादिकिट्टिवेदनाद्धावदुभयत्र ? काश्च स्तोका निर्वर्तयति, काश्च प्रभूताः ? इति पृष्ट आह

वीयाइखणेसु अपुव्वा पुव्वाणन्तरेसु हेट्ठे य ।
कुणए हेट्ठेऽप्पा ताउ अंतरेसुं असंखगुणा ॥१९७॥

द्वितीयादिक्षणेष्वपूर्वा पूर्वासामन्तरेष्वधस्ताच्च ।
करोत्यधस्तादल्पास्ताभ्योऽन्तरेष्वसंख्यगुणा ॥ १९७ ॥ इति पदसंस्कारः ।

'वोयाइखणेसु' इत्यादि, 'द्वितीयादिक्षणेषु' सूक्ष्मकिट्टिकरणाद्धाया द्वितीयादिसमयेषु 'पूर्वासां' पूर्वसूक्ष्मकिट्टीनाम् 'अन्तरेषु' द्वयोर्द्वयोः पूर्वसूक्ष्मकिट्टयोर्मध्ये यान्यन्तराणि, तेषु, 'अधस्ताच्च' पूर्वसूक्ष्मकिट्टीनाञ्चाऽधस्ताज्जघन्यपूर्वसूक्ष्मकिट्टेरप्यधस्तादित्यर्थः, 'अपूर्वाः' अपूर्वसूक्ष्मकिट्टीः 'करोति' निर्वर्तयति । उक्तं च कषायप्राभृतचूर्णौ "सुहुमसांपराइयकिट्टीकारगो विदियसमये अपुव्वाओ सुहुमसांपराइयकिट्टीओ करेदि, असंखेज्जगुणहीणाओ । ताओ दोसु ठाणेसु करेदि । तं जहा-पढमसमए कदाणं हेट्ठा च अंतरे च ।" इति । कषायप्राभृतचूर्णिकृद्भिस्तृतीयादिसमयेषु द्वितीयसमयभाव्यपूर्वसूक्ष्मकिट्टिनिर्वृत्तिर्नातिदिष्टा । तेन तृतीयादिसमयेष्वपि क्षपकः पूर्वसूक्ष्मकिट्टेरधस्तात् सूक्ष्मकिट्टयन्तरेषु चाऽपूर्वसूक्ष्मकिट्टीर्निर्वर्तयतीति सिध्यति । अधस्तात् 'स्तोकाः' अल्पा अपूर्वसूक्ष्मकिट्टीः करोति,

यन्त्रकम्-२७ (चित्रम्-२७)

सूक्ष्मकिट्टिकरणाद्धाप्रथमसमये सूक्ष्मकिट्टिषु बादरकिट्टिषु च दलिकनिक्षेपः

	पश्यन्तु		पश्यन्तु
सूक्ष्मकिट्टिसमानखण्डम्	१ अ	अधस्तनशीर्षचयदलम्	६ अ
सूक्ष्मकिट्टिचयदलम्	२ अ	अपूर्वान्तरकिट्टिदलम्	७ अ
पुरातन दलम्	३ अ	बन्धचयपृथक्बन्धमध्यमखण्डम्	८ अ
मध्यमखण्डदलम्	४ अ	बन्धापूर्वान्तरकिट्टिसमानखण्डदलम्	९ अ
उभयचयदलम्	५ अ	बन्धापूर्वान्तरकिट्टिचयदलम्	१० अ

१ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ १० ११ १२ १३ १४ १५ १६ १७ १८ १९ २० २१ २२ २३ २४ २५ २६ २७ २८ २९ ३० ३१ ३२ — सूक्ष्मकिट्टयः

१ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ — लोभतृतीयसंग्रहकिट्टिः

१ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ १० ११ १२ १३ १४ — लोभ – द्वितीय – संग्रह – किट्टिः

संकेतस्पष्टीकरणम्—

१ ''' ३२,–यद्यपि परमार्थतः सूक्ष्मकिट्टयोऽनन्ता निर्वर्त्यन्ते, किन्त्वसत्कल्पनया द्वात्रिंशत् (३२) परिकल्पिताः।

१ अ—तत्र सूक्ष्मकिट्टिसमानखण्डं प्रत्येकं सूक्ष्मकिट्टौ दीयते।

२ अ—असत्कल्पनया प्रथमायां सूक्ष्मकिट्टौ द्वात्रिंशत् सूक्ष्मकिट्टिचयान् प्रक्षिपति, वस्तुतस्त्वनन्तान् सूक्ष्मकिट्टिचयान् प्रक्षिपति, ततोऽसत्कल्पनया द्वितीयस्यामेकत्रिंशत्। एवमेकोत्तरहान्या तावत् प्रक्षिपति, यावच्चरमसूक्ष्मकिट्टिः।

पू—पूर्वान्तरकिट्टयः। ताश्चाष्टादश (१८) अत्र परिकल्पिताः, वस्तुतोऽनन्ताः।

३ अ—पूर्वान्तरकिट्टिषु पुरातनं दलम्, तच्चोत्तरोत्तरपूर्वान्तरकिट्टौ विशेषहीनम्।

४ अ—सर्वपूर्वापूर्वान्तरकिट्टिष्वेकैकं मध्यमखण्ड ददाति, नवरं बन्धाऽपूर्वान्तरकिट्टौ न ददाति ।

५ अ—लोभतृतीयसंग्रहकिट्टिप्रथमान्तरकिट्टौ सर्वपूर्वापूर्वान्तरकिट्टिराशिप्रमाणान् असत्कल्पनया द्वाविंशतिमुभयचयान् प्रक्षिपति । ततः परं यथाक्रममेकोत्तरहान्या प्रक्षिपति ।

६ अ—लोभतृतीयसंग्रहकिट्टिद्वितीयपूर्वान्तरकिट्टयामेकामधस्तनशीर्षचयं प्रक्षिपति, ततः परं यथाक्रममेकोत्तरवृद्ध्या पूर्वान्तरकिट्टिषु तावत् प्रक्षिपति, यावल्लोभद्वितीयसंग्रहकिट्टिचरमपूर्वावान्तरकिट्टिः । तेन लोभद्वितीयसंग्रहकिट्टिचरमपूर्वावान्तरकिट्टयामसत्कल्पनया सप्तदश (१७) अधस्तनशीर्षचयान् प्रक्षिपति, असत्कल्पनया पूर्वान्तरकिट्टीनामष्टादशत्वात् । वस्तुतस्त्वनन्तानधस्तनशीर्षचयान् प्रक्षिपति, परमार्थतः पूर्वावान्तरकिट्टीनामनन्तत्वात् । अधस्तनशीर्षचयेषु प्रक्षिप्तेषु सर्वपूर्वान्तरकिट्टयस्तुल्यप्रदेशका भवन्ति ।

अ पू—सक्रमदलतो निर्वर्त्यमाना ऽपूर्वावान्तरकिट्टिः । असत्कल्पनया द्वे-ऽपूर्वावान्तरकिट्टी कल्पिते, तृतीया षष्ठी चेति, वस्तुतो-ऽनन्ता अपूर्वावान्तरकिट्टयो निर्वर्त्यन्ते ।

७ अ—तच्च लोभतृतीयसंग्रहकिट्टिप्रथमपूर्वावान्तरकिट्टिदलप्रमाणं भवति । अपूर्वावान्तरकिट्टौ चाऽपूर्वान्तरकिट्टिदलं ददाति ।

ब पू—बन्धपूर्वावान्तरकिट्टिः, ताश्चात्र षट् कल्पिता, वस्तुतो-ऽनन्ता भवन्ति ।

८ अ—एकादशावान्तरकिट्टौ=बन्धचरमपूर्वावान्तरकिट्टौ एकं बन्धचयं प्रक्षिपति । ततः परमेकोत्तरवृद्ध्या तावत् प्रक्षिपति, यावद् बन्धप्रथमपूर्वावान्तरकिट्टिः । इत्थं बन्धप्रथमपूर्वावान्तरकिट्टयामसत्कल्पनया-ऽष्टौ बन्धचयान् प्रक्षिपति, असत्कल्पनया बन्धपूर्वापूर्वावान्तरकिट्टीनामष्टत्वात्, परमार्थतस्त्वनन्तबन्धचयान् प्रक्षिपति, परमार्थतो बन्धपूर्वापूर्वावान्तरकिट्टीनामनन्तत्वात् । बन्धमध्यमखण्डं च सर्वासु बन्धपूर्वापूर्वाऽवान्तरकिट्टिष्वविशेषेण प्रक्षिपति । एतत्सर्वम् – अनेन चिह्नेन सूचितम् ।

ब अ पू—बन्धा-ऽपूर्वावान्तरकिट्टिः । असत्कल्पनया द्वे बन्धापूर्वावान्तरकिट्टी कल्पिते, वस्तुतस्तु ता अनन्ताः ।

९ अ—तच्च सक्रममध्यमखण्डाधिकं लोभतृतीयसंग्रहकिट्टिप्रथमपूर्वावान्तरकिट्टिदलप्रमाणम् । बन्धापूर्वावान्तरकिट्टौ तद् ददाति ।

१० अ—नवम्यामवान्तरकिट्टौ=बन्धचरमा-ऽपूर्वावान्तरकिट्टयां षड् (६) बन्धापूर्वावान्तरकिट्टिचयान् प्रक्षिपति, तस्या लोभद्वितीयसंग्रहकिट्टिचरमावान्तरकिट्टयपेक्षया षष्ठकिट्टित्वात् । वस्तुतस्त्वनन्तान् बन्धापूर्वावान्तरकिट्टिचयान् प्रक्षिपति, वस्तुतो लोभद्वितीयसंग्रहकिट्टिचरमावान्तर किट्टयपेक्षया बन्धचरमापूर्वावान्तरकिट्टया अनन्ततमकिट्टित्वात् । बन्धद्विचरमापूर्वावान्तरकिट्टौ च बन्धचरमापूर्वावान्तरकिट्टयपेक्षयाऽसत्कल्पनया त्रिभिरधिकान् बन्धापूर्वावान्तरकिट्टिचयान् (=९) प्रक्षिपति, वस्तुतोऽसंख्येयपल्योपमप्रथमवर्गमूलैरधिकान् प्रक्षिपति । इह च साऽसत्कल्पनया षष्ठी किट्टिः, बन्धापूर्वावान्तरकिट्टिद्वयकल्पनाच्च सैव बन्धप्रथमापूर्वावान्तरकिट्टिः ।

सर्वसूक्ष्मकिट्टिषु दृश्यमानं दलं विशेषहीनक्रमेण विद्यते, एवं बादरावान्तरकिट्टिष्वपि, नवरं सूक्ष्मचरमकिट्टितो बादरप्रथमावान्तरकिट्टौ विशेषहीनं दलं न भवति, किन्त्वसंख्येयगुणं भवति ।



ताभ्यः 'अन्तरेपु' पूर्वसूक्ष्मकिट्टयन्तरेष्वसंख्यगुणा अपूर्वसूक्ष्मकिट्टीः करोति । यदुक्तं कषायप्राभृत-चूर्णौ–हेट्ठा थोवाओ, अंतरेसु असंखेज्जगुणाओ ।" इति ॥१९७॥

अथ पूर्वापूर्वसूक्ष्मकिट्टिषु दलनिक्षेपं विमणिपुराह

देइ दलिअं अपुव्वसुहुमकिट्टित्तो अणंतराए तु ।
पुव्वसुहुमकिट्टीए हीणमसंखेज्जभागेणं ॥१९८॥
पुव्वाउ असंखंसाहियं अणंतरअपुव्वकिट्टीए ।
सेसासु पुव्वापुव्वासु कमेणं विसेसूणं ॥१९९॥

ददाति दलिकमपूर्वसूक्ष्मकिट्टितोऽनन्तरायां तु
पूर्वसूक्ष्मकिट्टया हीनमसख्येयभागेन ॥१९८॥
पूर्वस्या असंख्यांशाधिकमनन्तरापूर्वकिट्टौ ।
शेपासु पूर्वापूर्वासु क्रमेण विशेषोनम ॥१९९॥ इति पदसंस्कार ।

'देइ' इत्यादि, तत्राऽपूर्वसूक्ष्मकिट्टितोऽनन्तरायां तु पूर्वसूक्ष्मकिट्टयामसंख्येयभागेन हीनं दलिकं ददाति । 'पुव्वाउ' इत्यादि, 'पूर्वस्याः' पूर्वसूक्ष्मकिट्टितो 'अनन्तराऽपूर्वकिट्टौ' अनन्तरा-पूर्वसूक्ष्मकिट्टौ 'असंख्यांशाधिकम्' असंख्येयभागाधिकं दलं ददाति । 'सेसासु' इत्यादि, 'शेपासु' उक्तोद्धरितासु 'पूर्वापूर्वासु' पूर्वसूक्ष्मकिट्टिष्वपूर्वसूक्ष्मकिट्टिषु च क्रमेण 'विशेषोनम्' अनन्ततमभागेन हीनं दलं ददाति । इदमुक्तं भवति सूक्ष्मकिट्टिकरणाद्धाया द्वितीयसमये प्रथमसमयकृतजघन्य-किट्टेरधस्ताद् याः सूक्ष्मकिट्टीः करोति, तासां सर्वजघन्याऽधस्तना-ऽपूर्वसूक्ष्मकिट्टौ दलिकं प्रभूतं ददाति । ततो द्वितीयस्यामधस्तना-ऽपूर्वसूक्ष्मकिट्टावनन्तभागेन हीनं दलं ददाति, ततोऽनन्तरान्त-रेणाऽनन्तभागेन हीनं तावद्ददाति, यावच्चरमाऽधस्तनाऽपूर्वसूक्ष्मकिट्टिः ।

ततः परं चरमाऽधस्तनाऽपूर्वसूक्ष्मकिट्टितोऽसंख्यातभागेन हीनं दलं प्रथमसमयकृतप्रथमसूक्ष्म-किट्टिलक्षणायां प्रथमपूर्वसूक्ष्मकिट्टौ ददाति । अत्र कारणं तु किट्टिकरणाद्धायां पूर्वावान्तरकिट्टय-पूर्वावान्तरकिट्टयोः सन्धौ यथा प्ररूपितम् , तथैवा-ऽनुगन्तव्यम् , विशेषाभावात् । ततो द्वितीया-दिषु पूर्वसूक्ष्मकिट्टिषु विशेषहीनक्रमेण तावद् ददाति, यावदन्तरजाऽपूर्वसूक्ष्मकिट्टिरप्राप्ता भवति । ततोऽन्तरजा-ऽपूर्वसूक्ष्मकिट्टयामसंख्येयभागाधिकं दलं ददाति, ततोऽसंख्येयभागेन हीनं दलं तदनन्तरपूर्वसूक्ष्मकिट्टौ ददाति, ततः परं विशेषहीनक्रमेण तावद् ददाति, यावच्चरमपूर्वसूक्ष्म-किट्टिः, नवरं यत्र यत्राऽपूर्वसूक्ष्मकिट्टिर्निर्वर्त्यते, तत्र तत्र प्राक्तनपूर्वसूक्ष्मकिट्टितोऽसंख्येय-भागाधिकं दलिकं ददाति, तदनन्तरपूर्वसूक्ष्मकिट्टौ चाऽसंख्येयभागेन हीनं दलं ददाति । उक्तं च कषायप्राभृतचूर्णौ–"विदियसमये दिज्जमाणगस्स पदेसग्गस्स सेढिपरूवणा–जा विदियसमए जहण्णिया सुहुमसांपराइयकिट्टी, तिस्से पदेसग्गं दिज्जदि बहुअं ।

विदियाए किट्टीए अणंतभागहीणं । एवं गंतूण पढमसमए जा जहण्णिया सुहुमसांपराइयकिट्टी, तत्थ असंखेज्जदिभागहीणं । तत्तो अणंतभागहीणं जाव अपुव्वं णिव्वत्तिज्जमाणिगं ण पावदि, अपुव्वाए णिव्वत्तिज्जमाणिगाए किट्टीए असंखेज्जदिभागुत्तरं पुव्वणिव्वत्तिदं पडिवज्जमाणगस्स पदेसग्गस्स असंखेज्जदिभागहीणं । परं परं पडिवज्जमाणस्स अणंतभागहीणं ।" इति । यथा द्वितीयसमये सूक्ष्मकिट्टिषु दलनिक्षेपविधिः प्ररूपितः, तथैव तृतीयादिसमयेष्वपि तावत् प्ररूपयितव्यः, यावत्सूक्ष्मकिट्टिकरणाद्धाचरमसमयः । अभाणि च कषायप्राभृतचूर्णौ—"जो विदियसमए दिज्जमाणगस्स पदेसग्गस्स विधी, सो चेव विधी सेसेसु वि समएसु जाव चरिमसमयबादरसंपराइयो त्ति ।" इति ।

बादरकिट्टिषु दलनिक्षेपस्तु प्रथमसमयवज्ज्ञातव्यः ।

अथ गणितविभागः ।

साम्प्रतं सूक्ष्मकिट्टिकरणाद्धाया द्वितीयसमये दलिकनिक्षेपोऽधस्तनशीर्षचयादिप्ररूपणया स्पष्टीक्रियते ।

सूक्ष्मकिट्टिकरणाद्धाद्वितीयसमये प्रथमसमयतोऽसंख्यातगुणं दलं सूक्ष्मकिट्टितया परिणमनाय गृह्णाति । अथ द्वितीयसमये सूक्ष्मकिट्टितया परिणमनाय गृहीतसकलदलं विभागपञ्चके विभजनीयम्–(१) अधस्तनशीर्षचयदलम् (२) अधस्तनाऽपूर्वसूक्ष्मकिट्टिसमानखण्डदलम् (३) अन्तरजाऽपूर्वसूक्ष्मकिट्टिसमानखण्डदलम् (४) उभयचयदलं (५) मध्यमखण्डदलं चेति ।

(१) **अथाऽधस्तनशीर्षचयदलम्** सर्वाः पूर्वसूक्ष्मकिट्टीः प्रथमसमयकृतजघन्यसूक्ष्मकिट्टिगतप्रदेशतुल्याः कर्तुं द्वितीयपूर्वसूक्ष्मकिट्टावेकैचयं ददाति, तृतीयपूर्वसूक्ष्मकिट्टौ द्वौ चयौ ददाति । एवमेकोत्तरवृद्ध्या तावद् ददाति, यावच्चरमपूर्वसूक्ष्मकिट्टिः । एते च चया अधस्तनशीर्षचया उच्यन्ते । सर्वाधस्तनशीर्षचयाश्च "सैकपदघ्नपदार्धमथैकाद्यङ्कयुतिः किल संकलिताख्या ।" इति करणसूत्रेण सङ्कलयितव्याः । पदं त्वत्रैकोनपूर्वसूक्ष्मकिट्टिराशिर्बोध्यम् ।

एकाऽधस्तनशीर्षचयदलं सर्वाऽधस्तनशीर्षचयैर्गुण्यते, तदा सर्वाऽधस्तनशीर्षचयदलं प्राप्यते ।

(२) **अधस्तनाऽपूर्वसूक्ष्मकिट्टिसमानखण्डदलम्**–पूर्वसमयकृतप्रथमसूक्ष्मकिट्टिगतप्रदेशतुल्या अधस्तनाऽपूर्वसूक्ष्मकिट्टयः स्थापयितव्याः । स्थापितायाञ्चैकैकस्यां किट्टौ यद् दलं भवति, तदेकाऽधस्तनाऽपूर्वसूक्ष्मकिट्टिसमानखण्डदलमुच्यते । एकाऽधस्तनाऽपूर्वसूक्ष्मकिट्टिसमानखण्डदलमधस्तनाऽपूर्वसूक्ष्मकिट्टिराशिना गुण्यते, तदा सर्वाऽधस्तनाऽपूर्वसूक्ष्मकिट्टिदलं प्राप्यते ।

(३) **अन्तरजाऽपूर्वसूक्ष्मकिट्टिसमानखण्डदलम्** पूर्वसमयकृतप्रथमसूक्ष्मकिट्टिगतप्रदेशतुल्या अन्तरजाऽपूर्वसूक्ष्मकिट्टयः स्थापयितव्याः । स्थापितायाञ्चैकैकस्यां सूक्ष्मकिट्टौ यद् दलं भवति, तदेकान्तरजा-ऽपूर्वसूक्ष्मकिट्टिसमानखण्डदलमुच्यते । एकाऽन्तरजाऽपूर्वसूक्ष्मकिट्टिसमानखण्डदलमन्तरजाऽपूर्वसूक्ष्मकिट्टिराशिना गुण्यते, तदा सर्वा-ऽन्तरजाऽपूर्वसूक्ष्मकिट्टिसमानखण्डदलं प्राप्यते ।

(४) **उभयचयदलम्** पूर्वोक्तदलत्रये यथायोग्यं प्रक्षिप्ते सर्वपूर्वाऽपूर्वसूक्ष्मकिट्टयः समानदलिका जायन्ते । तासां दलिकं गोपुच्छाकारं कर्तुं चरमपूर्वसूक्ष्मकिट्टयामेकश्चयः प्रक्षेपणीयः, द्विचरमपूर्वसूक्ष्मकिट्टौ द्वौ चयौ प्रक्षेपणीयौ । एवंक्रमेण पश्चानुपूर्व्या चयास्तावत् प्रक्षेप्तव्याः, यावद् द्वितीयसमये क्रियमाणप्रथमाऽधस्तना-ऽपूर्वसूक्ष्मकिट्टिः । ते च "**सैकपदघ्नपदार्धमथैकाद्यङ्कयुतिः किल संकलिताख्या ।**" इति करणसूत्रेण संकलयितव्याः । पदं त्वत्र पूर्वापूर्वसूक्ष्मकिट्टिराशिर्ज्ञातव्यम् । एते च चया उभयचया उच्यन्ते । सर्वोभयचयैरेकोभयचयगतदलं गुण्यते, तदा सर्वोभयचयदलं प्राप्यते ।

नन्वेकोभयचयगतदलं कियद् भवति ? इति चेत्, उच्यते प्रथमसमये सूक्ष्मकिट्टितया परिणमनाय गृहीतदलं द्वितीयसमये च सूक्ष्मकिट्टितया परिणमनाय गृह्यमाणदलमिति दलद्वयं पदेन विभज्यते, तदा मध्यमदलं प्राप्यते । तत्पुनरर्धीकृतैकोनपदन्यूनाभ्यां द्वाभ्यां द्विगुणहानिभ्यां विभज्यते, तदैकोभयचयदलं प्राप्यते । पदन्त्वत्र समयद्वयकृतसूक्ष्मकिट्टिराशिरवगन्तव्यम् ।

न्यासः

$$\text{मध्यमदलम्} = \frac{\text{समयद्वये सूक्ष्मकिट्टितया परिणमनाय गृहीतदलम्।}}{\text{पदम्}}$$

$$\text{एकोभयचयदलम्} = \frac{\text{मध्यमदलम्}}{\text{द्वे द्विगुणहानी}-\frac{(\text{पदम्}-१)}{२}}$$

(५) **मध्यमखण्डदलम्** द्वितीयसमये सूक्ष्मकिट्टितया परिणमनाय गृहीतसकलदलतः पूर्वोक्ताधस्तनशीर्षचयादिदलचतुष्टयं विशोध्य शेषदलं मध्यमखण्डदलमुच्यते । तच्च पूर्वापूर्वसूक्ष्मकिट्टिराशिना विभज्यते, तदैकं मध्यमखण्डं प्राप्यते । एकमध्यमखण्डदलं चाऽधस्तनापूर्वसूक्ष्मकिट्टिसमानखण्डदलतोऽसंख्येयगुणं भवति । एकैकं मध्यमखण्डं सर्वपूर्वापूर्वसूक्ष्मकिट्टिष्वविशेषेण दातव्यम् ।

लोभतृतीयसंग्रहकिट्टिसंक्रमदलस्याऽधस्तनशीर्षचयादिविभागचतुष्टयं लोभद्वितीयसंग्रहकिट्टयाश्च घातदलस्या-ऽधस्तनशीर्षचयादिविभागत्रयं बन्धदलस्य च बन्धापूर्वान्तरकिट्टिसमानखण्डादिविभागचतुष्टयं पूर्ववदवसेयम् ।

अथ पूर्वापूर्वसूक्ष्मकिट्टिषु दलनिक्षेपो भण्यते द्वितीयसमये सूक्ष्मकिट्टितया परिणमनाय गृहीतदलात् प्रथमा-ऽधस्तनापूर्वसूक्ष्मकिट्टावेकमधस्तना-ऽपूर्वसूक्ष्मकिट्टिसमानखण्डं पूर्वा-पूर्वसूक्ष्मकिट्टिराशिप्रमाणानुभयचयानेकं च मध्यमखण्डं ददाति । तच्च दीयमानं दलं प्रभूतं भवति, उपरि दीयमानदलस्य हीनत्वात् । ततो द्वितीया-ऽधस्तना-ऽपूर्वसूक्ष्मकिट्टयामेकमधस्तना-ऽपूर्व-किट्टिसमानखण्डमेकोनपूर्वापूर्वसूक्ष्मकिट्टिराशिप्रमाणानुभयचयानेकं च मध्यमखण्डं ददाति । इत्थं प्रथमा-ऽधस्तना-ऽपूर्वसूक्ष्मकिट्टितो द्वितीया-ऽधस्तना-ऽपूर्वसूक्ष्मकिट्टयामेकोभयचयेन हीनं दलं ददाति । उभयचयदलस्याऽनन्ततमभागमात्रत्वात् प्रथमा-ऽधस्तना-ऽपूर्वसूक्ष्मकिट्टितो द्वितीयाऽध-स्तना-ऽपूर्वसूक्ष्मकिट्टावनन्ततमभागेन हीनं दलं ददातीति सिध्यति । ततः परं तृतीयाद्यधस्तना-ऽपूर्वसूक्ष्मकिट्टिष्वेकैकमधस्तना-ऽपूर्वसूक्ष्मकिट्टिसमानखण्डमेकैकं मध्यमखण्डमेकोत्तरहान्या चो-भयचयांस्तावत् प्रक्षिपति, यावच्चरमाऽधस्तना-ऽपूर्वसूक्ष्मकिट्टिः ।

ततः परं प्रथमपूर्वसूक्ष्मकिट्टावेकं मध्यमखण्डं सर्वाऽधस्तना-ऽपूर्वसूक्ष्मकिट्टिराशिन्यून-पूर्वापूर्व-सूक्ष्मकिट्टिराशिप्रमाणांश्चोभयचयान् ददाति । तदेव चरमा-ऽधस्तना-ऽपूर्वसूक्ष्मकिट्टितः प्रथमपूर्व-सूक्ष्मकिट्टयामेकोभयचयेनैकेन चाऽधस्तना-ऽपूर्वसूक्ष्मकिट्टिसमानखण्डेन हीनं दलं ददाति । इत्यत्र चरमा-ऽधस्तना-ऽपूर्वसूक्ष्मकिट्टितः प्रथमपूर्वसूक्ष्मकिट्टौ दीयमानदलमसंख्येयभागेन हीनं जायते, एकमध्यमखण्डदलत एका-ऽधस्तना-ऽपूर्वसूक्ष्मकिट्टिसमानखण्डदलस्याऽसंख्येयगुणहीनत्वादुभयचय-दलस्य चाऽधस्तना-ऽपूर्वसूक्ष्मकिट्टिसमानखण्डदलाऽनन्ततमभागमात्रत्वात् ।

ततो द्वितीयपूर्वसूक्ष्मकिट्टावेकमधस्तनशीर्षचयमेकं मध्यमखण्डमेकाधिका-ऽधस्तना-ऽपूर्व-सूक्ष्मकिट्टिराशिन्यूनपूर्वापूर्वसूक्ष्मकिट्टिराशिप्रमाणांश्चोभयचयान् ददाति । तेन प्रथमपूर्वसूक्ष्मकिट्टि-तोऽस्यां दीयमानदलमनन्तभागेन हीनं जायते । कथमेतदवसीयते ? इति चेत् उच्यते—प्रथमपूर्व-सूक्ष्मकिट्टितोऽस्यां दीयमानदलमेकाऽधस्तनशीर्षचयेनाऽधिकं जायते, एकोभयचयेन च हीनम् । तेनैकाऽधस्तनशीर्षचयदलन्यूनैकोभयचयदलेन हीनं दीयमानदलं प्रथमपूर्वसूक्ष्मकिट्टितो द्विती-यपूर्वसूक्ष्मकिट्टौ जायते । अधस्तनशीर्षचयदलस्य केवलमुभयचयदला-ऽसंख्येयभागमात्रत्वादुभय-चयदलस्य चाऽधस्तना-ऽपूर्वसूक्ष्मकिट्टिसमानखण्डदलानन्ततमभागमात्रत्वात् प्रथमपूर्वसूक्ष्मकिट्टितो द्वितीयपूर्वसूक्ष्मकिट्टावनन्तभागेन हीनं दीयमानं दलं भवति । एवमग्रेऽपि भावनीयम् ।

ततः परं तृतीयादिपूर्वसूक्ष्मकिट्टिष्वेकैकं मध्यमखण्डमेकोत्तरवृद्धया-ऽधस्तनशीर्षचयानेको-त्तरहान्या चोभयचयान् यथाक्रमं पल्योपमाऽसंख्यभागमात्रास्वसंख्यातासु सूक्ष्मकिट्टिषु तावत्प्रक्षि-पति, यावदन्तरजाऽपूर्वसूक्ष्मकिट्टिरप्राप्ता भवति ।

अन्तरजापूर्वसूक्ष्मकिट्टावेकं मध्यमखण्डं प्रथमाऽधस्तनाऽपूर्वसूक्ष्मकिट्टिप्रभृतिव्यति-क्रान्तपूर्वापूर्वसूक्ष्मकिट्टिराशिन्यूनसर्वपूर्वापूर्वसूक्ष्मकिट्टिराशिप्रमाणानुभयचयानेकं चाऽन्तरजाऽपूर्व-

सूक्ष्मकिट्टिकरणाद्धाद्वितीयसमये [redacted]दलनिक्षेपविधिः

उ
प्र
ध्य
म
म
ख
द
ल
म
अ

१ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ १० ११ १२ १३ १४ १५ १६ १७ १८ १९ २० २१ २२ २३ २४ २५ २६ २७ २८ २९ ३० ३१ ३२ ३३ ३४ ३५ ३६ ३७ ३८ ३९ ४० ४१ ४२

सङ्केतस्पष्टीकरणम्—

अपू=द्वितीयसमये निर्वर्त्यमाना-ऽधस्तनापूर्वसूक्ष्मकिट्टिः, असत्कल्पनया सर्वाधस्तनापूर्वसूक्ष्मकिट्टयस्तिस्रः (३), वस्तुतो-ऽनन्ताः ।

पू=पूर्वसूक्ष्मकिट्टि, असत्कल्पनया पूर्वसूक्ष्मकिट्टयो द्वात्रिंशत्, (४, ५, ६, ७, ९, १०, ११, १२, १४, १५, १६, १७, १९, २० २१, २२, २४, २५, २६, २७, २९, ३०, ३१, ३२, ३४, ३५, ३६, ३७, ३९, ४०, ४१, ४२) ।

अ=सूक्ष्मकिट्टयन्तरे निर्वर्त्यमाना अपूर्वसूक्ष्मकिट्टिः, असत्कल्पनयाऽन्तरजाऽपूर्वसूक्ष्मकिट्टयः सप्त (८, १३, १८, २३, २८, ३३, ३८) ।

०००अनेन चिह्नेना-ऽधस्तनापूर्वसूक्ष्मकिट्टिसमानखण्ड सूचितम, तच्चैकैकाधनस्तनापूर्वसूक्ष्मकिट्टौ दीयते। एकाधस्तनापूर्वसूक्ष्मकिट्टिसमानखण्डदल तु प्रथमसमयकृतजघन्यपूर्वसूक्ष्मकिट्टिप्रदेशतुल्यम्।

•••अनेन चिह्नेन पूर्वसूक्ष्मकिट्टिषु पुरातनदल सूचितम, तच्चोत्तरोत्तरपूर्वसूक्ष्मकिट्टौ विशेषहीनक्रमेण भवति।

अ=अधस्तनशीर्षचयदलम्

× प्रदेशापेक्षया सर्वपूर्वसूक्ष्मकिट्टी प्रथमसमयकृतजघन्यपूर्वसूक्ष्मकिट्टिप्रदेशतुल्या कर्तुं द्वितीयपूर्वसूक्ष्मकिट्टयामेकाधस्तनशीर्षचय प्रक्षिप्यते, तृतीयपूर्वसूक्ष्मकिट्टौ द्वा अधस्तनशीर्षचयौ, चतुर्थपूर्वसूक्ष्मकिट्टौ त्रयो-ऽधस्तनशीर्षचया, एवमेकोत्तरवृद्धया पूर्वसूक्ष्मकिट्टिषु तावत् प्रक्षिप्यन्ते यावच्चरमपूर्वसूक्ष्मकिट्टि, तस्यामसकल्पनयैकत्रिंशद् (३१) अधस्तनशीर्षचया प्रक्षिप्यन्ते, पूर्वसूक्ष्मकिट्टीना द्वात्रिंशत्त्वात्, वस्तुतस्त्वनन्ता अधस्तनशीर्षचया निक्षिप्यन्ते, पूर्वसूक्ष्मकिट्टीना परमार्थतोऽनन्तत्वात्।

※ अन्तरजापूर्वसूक्ष्मकिट्टिसमानखण्डदलम, तच्च सूक्ष्मकिट्टयन्तरे निर्वर्त्यमानायामेकैकस्यामपूर्वसूक्ष्मकिट्टौ दीयते। एकान्तरजापूर्वसूक्ष्मकिट्टिसमानखण्डदल तु प्रथमसमयकृतजघन्यपूर्वसूक्ष्मकिट्टिप्रदेशतुल्यम्।

। अनेन चिह्नेन मध्यमखण्ड सूचितम्, तच्चैकैक पूर्वापूर्वसूक्ष्मकिट्टिषु दीयते, एकमध्यमखण्डदल चैकाधस्तनापूर्वसूक्ष्मकिट्टिसमानखण्डदलतो वैकान्तरजापूर्वसूक्ष्मकिट्टिसमानखण्डदलतो वाऽसंख्येयगुणं भवति।

उ=उभयचयदलम्

△ चरमसूक्ष्मकिट्टयामेक उभयचय प्रक्षिप्यते, द्विचरमसूक्ष्मकिट्टौ द्वा उभयौ प्रक्षिप्येते. त्रिचरमसूक्ष्मकिट्टौ त्रय उभयचया प्रक्षिप्यन्ते, एवमेकोत्तरवृद्धयोभयचयाः पूर्वापूर्वसूक्ष्मकिट्टिषु तावत् प्रक्षिप्यन्ते, यावत् प्रथमाधस्तनापूर्वसूक्ष्मकिट्टि, तस्या च पूर्वापूर्वसूक्ष्मकिट्टिराशिप्रमाणा उभयचयाः पक्षिप्यन्ते, असत्कल्पनया तु द्वाचत्वारिंशत् (४२), वस्तुतोऽनन्ता., परमार्थतः पूर्वापूर्वसूक्ष्मकिट्टीनामनन्तत्वात्। अनेन क्रमेण दलिके प्रक्षिप्ते प्रथमाधस्तनापूर्वसूक्ष्मकिट्टौ प्रक्षिप्यमाण सर्वदलम् ०। △ इत्यनेन सूचित प्रभूत भवति, ततो विशेषहीनक्रमेण तावत्, यावच्चरमाधस्तनापूर्वसूक्ष्मकिट्टि, असत्कल्पनया तु तृतीया सूक्ष्मकिट्टि.। ततोऽसख्येयभागेन हीनम्। △ इत्यनेन सूचितं दीयमान सर्वदल प्रथमपूर्वसूक्ष्मकिट्टौ, असत्कल्पनया तु चतुर्थसूक्ष्मकिट्टौ। ततो द्वितीयादिपूर्वसूक्ष्मकिट्टिषु पल्योपमाऽसंख्येयभागप्रमाणास्वसंख्याता-स्वसत्कल्पनया तु तिसृषु सूक्ष्मकिट्टिषु विशेषहीनक्रमेण तावद् भवति, यावदन्तरजापूर्वसूक्ष्मकिट्टिरप्राप्ता। ततस्तदनन्तरान्तरजाऽपूर्वसूक्ष्मकिट्टा असत्कल्पनयाऽष्टमसूक्ष्मकिट्टयामसख्येयभागेनाधिकम् ※। △ इत्यनेन सूचित दीयमानं दल भवति, तदनन्तरपूर्वसूक्ष्मकिट्टावसख्येयभागहीनम् ×। △ इत्यनेन सूचित दीयमान दील भवति, ततः पर विशेषहीनक्रमेण तावद् भवति, यावच्चरमपूर्वसूक्ष्मकिट्टि., नवरं यत्र यत्राऽपूर्वसूक्ष्मकिट्टिर्निर्वर्त्यते, तत्र तत्र प्राक्तनपूर्वसूक्ष्मकिट्टितोऽसंख्येयभागाधिकम्, तदनन्तरपूर्वसूक्ष्मकिट्टौ चासख्येयभागेन हीनं दल दीयते।

एवं सूक्ष्मकिट्टिकरणाद्धायाः शेषसमयेष्वपि वक्तव्यम्।

दृश्यमानदल सूक्ष्मकिट्टिकरणाद्धाया. सर्वसमयेषु सर्वपूर्वापूर्वसूक्ष्मकिट्टिषु विशेषहीनक्रमेण भवति।

———

सूक्ष्मकिट्टिसमानखण्डं ददाति । इत्थं प्राक्तनपूर्वसूक्ष्मकिट्टितोऽस्यामपूर्वसूक्ष्मकिट्टौ दीयमानदलमसंख्येयभागाधिकं जायते । कथमेतदवसीयते ? इति चेत् , उच्यते-पूर्वसूक्ष्मकिट्टितोऽस्यामन्तरजा-ऽपूर्वसूक्ष्मकिट्टिसमानखण्डमधिकं ददाति, तच्च मध्यमखण्डस्या-ऽसंख्येयभागमात्रं भवति, तेन पूर्वसूक्ष्मकिट्टितो-ऽसंख्येयभागाधिकं दलिकमस्यां सूक्ष्मकिट्टौ दीयमानं दलं भवति । अत्र यद्यपि पूर्वसूक्ष्मकिट्टित एकोभयचयेन निरुक्ताऽधस्तनशीर्षचयैश्च हीनं दलं ददाति, तथापि तेषामन्तरजा-ऽपूर्वसूक्ष्मकिट्टिसमानखण्डदला-ऽनन्तभागमात्रत्वेना-ऽकिञ्चित्करत्वम् ।

ततोऽनन्तरायां पूर्वसूक्ष्मकिट्टावेकं मध्यमखण्डं प्रथमा-ऽधस्तना-ऽपूर्वसूक्ष्मकिट्टिप्रभृतिव्यतिक्रान्तपूर्वापूर्वसूक्ष्मकिट्टिराशिन्यूनसर्वपूर्वापूर्वसूक्ष्मकिट्टिराशिप्रमाणानुभयचयान् प्रथमपूर्वसूक्ष्मकिट्टिप्रभृतिव्यतिक्रान्तपूर्वसूक्ष्मकिट्टिप्रमाणाऽधस्तनशीर्षचयान् प्रक्षिपति । तेन पूर्ववत्यन्तरजा-ऽपूर्वसूक्ष्मकिट्टितोऽनन्तरपूर्वसूक्ष्मकिट्टौ दीयमानं दलमसंख्येयभागहीनं जायते, मध्यमखण्डदलतो-ऽन्तरजा-ऽपूर्वसूक्ष्मकिट्टिसमानखण्डदलस्या-ऽसंख्येयगुणहीनत्वात् । तत ऊर्ध्वमेकोत्तरहान्योभयचयानेकोत्तरवृद्ध्या-ऽधस्तनशीर्षचयानेकैकं च मध्यमखण्डं तावद् ददाति, यावच्चरमपूर्वसूक्ष्मकिट्टिः, नवरं पल्योपमा-ऽसंख्येयभागप्रमितास्वसंख्यातासु पूर्वसूक्ष्मकिट्टिषु व्रजितासु यत्र यत्रा-ऽपूर्वसूक्ष्मकिट्टि निर्वर्तयति, तत्र तत्रा-ऽधस्तनशीर्षचयस्थानेऽन्तरजा-ऽपूर्वसूक्ष्मकिट्टिसमानखण्डं ददाति । तेन पूर्वापूर्वसूक्ष्मकिट्टिसन्धौ सति पूर्वसूक्ष्मकिट्टितो-ऽपूर्वसूक्ष्मकिट्ट्यामसंख्यातभागेनाधिकं तथाऽपूर्वसूक्ष्मकिट्टेः पूर्वसूक्ष्मकिट्टेश्च सन्धौ सत्यपूर्वसूक्ष्मकिट्टितः पूर्वसूक्ष्मकिट्ट्यामसंख्येयभागेन हीनं दीयमानदलं जायते, शेषासु पूर्वसूक्ष्मकिट्टिषु विशेषहीनक्रमेणैव दीयमानदलं भवति । इत्थं द्वितीयसमये सूक्ष्मकिट्टितया परिणमनाय यद्दलं गृहीतम्, तत्सर्वं प्रक्षिप्तं भवति ।(पश्यन्तु यन्त्रकम्-२७ अ)

ततः परं बादरपूर्वापूर्वान्तरकिट्टिषु दलं निक्षिपति । तत्र लोभतृतीयसंग्रहकिट्टौ चतुर्विधसंक्रमदलाल्लोभद्वितीयसंग्रहकिट्टौ च त्रिविधघातदलाच्चतुर्विधबन्धदलाद् यथायोग्यं दलं निक्षिपति ।

तत्र चरमसूक्ष्मकिट्टितो लोभतृतीयसंग्रहकिट्टिप्रथमपूर्वान्तरकिट्टौ दलमसंख्यातगुणहीनं ददाति, ततः शेषास्वपि सूक्ष्मकिट्टिकरणाद्धाप्रथमसमयवद् भावनीयम् , विशेषाभावात् ।

इति गणितविभागः ।

यथा सूक्ष्मकिट्टिकरणाद्धाया द्वितीयसमये गणितरीत्या दलिकनिक्षेपो भणितः, तथैव तृतीयादिसमयेषु भणितव्यः । ॥१९८-१९९॥

अथ सूक्ष्मकिट्टिकरणाद्धायां दृश्यमानदलं विवर्णयिषुराह

पढमसुहुमाउ चरिमं जावं दीसइ दलं विसेसूणं ।
तो य असंखगुणं बायरपढमाअ उवरिं विसेसूणं ॥२००॥ (गीतिः)

प्रथमसूक्ष्मायाश्चरमां यावद् दृश्यते दलं विशेषोनम् ।
ततश्चाऽसंख्यगुणं बादरप्रथमायामुपरि विशेषोनम् ॥२००॥ इति पदसंस्कारः ।

'पढम०' इत्यादि, 'प्रथमसूक्ष्मायाः' प्रथमसूक्ष्मकिट्टितः प्रभृति 'चरमां' चरमसूक्ष्मकिट्टिं यावद् 'दलं' प्रदेशाग्रं 'विशेषोनं' विशेषहीनं दृश्यते । 'तो' इत्यादि, 'ततः' चरमसूक्ष्मकिट्टितश्चाऽसंख्यगुणं दलं 'बादरप्रथमायां' लोभतृतीयसंग्रहकिट्टिप्रथमाऽवान्तरकिट्टौ दृश्यते । 'उवरिं' इत्यादि, उपरि विशेषोनं दृश्यते ।

इदमुक्तं भवति सूक्ष्मकिट्टिकरणाद्धायाः प्रथमसमयात् प्रभृति चरमसमयं यावत् प्रथमसूक्ष्मकिट्टौ प्रभूतं दलं दृश्यते । ततो विशेषहीनं दलं द्वितीयस्यां सूक्ष्मकिट्टौ दृश्यते । एवं विशेषहीनक्रमेण तावद् दृश्यते, यावच्चरमसूक्ष्मकिट्टिः । चरमसूक्ष्मकिट्टितश्च लोभतृतीयसंग्रहकिट्टिप्रथमाऽवान्तरकिट्टावसंख्यातगुणं दलं दृश्यते । किं कारणम् ? इति चेद्, उच्यते–बादरकिट्टिगतदलस्याऽसंख्येयभागप्रमितमेव दलं गृहीत्वा बादरकिट्टितो विशेषाधिकाः सूक्ष्मकिट्टीः करोति । तेन चरमसूक्ष्मकिट्टितो लोभतृतीयसंग्रहकिट्टिप्रथमाऽवान्तरकिट्टावसंख्यातगुणं दलं दृश्यते । उक्तं च कषायप्राभृतचूर्णौ–"**सुहुमसांपराइयकिट्टीकारगस्स किट्टीसु दिस्समाणपदेसग्गस्स सेढिपरूवणं । तं जहा–जहण्णियाए सुहुमसांपराइयकिट्टीए पदेसग्गं बहुगं, तत्तो अणंतभागहीणं जाव चरिमसुहुमसांपराइयकिट्टि त्ति । तदो जहण्णियाए बादरसांपराइयकिट्टीए पदेसग्गमसंखेज्जगुणं । एसा सेढिपरूवणा जाव चरिमसमयबादरसांपराइओ त्ति ।**"

ततो लोभतृतीयसंग्रहकिट्टिप्रथमाऽवान्तरकिट्टितो विशेषहीनं दलं लोभतृतीयसंग्रहकिट्टिद्वितीयाऽवान्तरकिट्टौ दृश्यते । ततः परमनन्तरानन्तरेण विशेषहीनक्रमेण तावद् दृश्यते, यावल्लोभद्वितीयसंग्रहकिट्टिचरमाऽवान्तरकिट्टिः ॥ २०० ॥

लोभद्वितीयसंग्रहकिट्टिं वेदयतो जीवस्यावलिकात्रिकमात्रप्रथमस्थितिभवनानन्तरं यो विशेषः प्रवर्तते, तं विभणिषुराह

जा आवलितिगसेसा पढमठिई ताव संकमेइ दलं ।
बीयत्तो तइयाए तओ परं संकमेइ सुहुमासु ॥२०१॥ (गीतिः)

यावदावलिकात्रिकशेषा प्रथमस्थितिस्तावत् संक्रामति दलम् ।
द्वितीयातस्तृतीयस्यां ततः परं संक्रामति सूक्ष्मासु ॥२०१॥ इति पदसंस्कारः ।

'जा' इत्यादि, लोभद्वितीयसंग्रहकिट्टिं वेदयतः क्षपकस्य यावद् आवलिकात्रिकशेषा 'प्रथमस्थितिः' लोभद्वितीयसंग्रहकिट्टिप्रथमस्थितिर्भवति, तावद् 'द्वितीयातो' लोभद्वितीयसंग्रहकिट्टितः 'तृतीयस्यां' लोभतृतीयसंग्रहकिट्टौ दलं संक्रामति । 'ततो' लोभद्वितीयसंग्रहकिट्टि-

प्रथमस्थितेरावलिकात्रिकात्परं लोभद्वितीयसंग्रहकिट्टितो दलं 'सूक्ष्मासु' सूक्ष्मकिट्टिष्वेव संक्रामति, प्राक्तूभयत्राऽपि संक्रामति रीत्यर्थः । प्रत्यपादि च कषायप्राभृतचूर्णौ-"**लोभस्स विदियकिट्टिं वेदयमाणस्स जा पढमट्ठिदी, तिस्से पढमट्ठिदीए जाव तिण्णि आवलियाओ सेसाओ, ताव लोभस्स विदियकिट्टीदो लोभस्स तदियकिट्टीए संछुब्भदि पदेसग्गं। तेण परं ण संछुब्भदि, सव्वं सुहुमसांपराइयकिट्टीसु संछुब्भदि ।**" इति ।

प्रथमस्थितौ द्व्यावलिकाशेषायामागालो व्यवच्छिद्यते । ततः समयोनाऽऽवलिकायां गतायां लोभस्य जघन्यस्थित्युदीरणा जायते । तदानीमेव बादरलोभस्य चरमोदयः ॥ २०१ ॥

अथ लोभद्वितीयसंग्रहकिट्टिप्रथमस्थितौ समयाधिकावलिकाशेषायां बादरकिट्टीनां सर्वथा सूक्ष्मकिट्टितया परिणतिं प्रतिपिपादयिषुराह

खणअहिआवलिसेसाए बिइयातइयगाण सव्वदलं ।
संकामइ सुहुमासुं वज्जिय णवबद्धमावलिगयं य ॥२०२॥ (गीतिः)

क्षणाधिकावलिकाशेषायां तु द्वितीयातृतीययोः सर्वदलम् ।
संक्रमयति सूक्ष्मासु वर्जयित्वा नवबद्धमावलिकागतं च ॥२०२॥ इति पदसंस्कारः ।

'खण०' इत्यादि, लोभद्वितीयसंग्रहकिट्टिप्रथमस्थितौ 'क्षणाधिकाऽऽवलिकाशेषायां' समयाधिकावलिकाशेषायां 'नवबद्धं' द्वितीयसंग्रहकिट्टेः समयोनद्व्यावलिकाबद्धं द्वितीयस्थितिस्थम् 'आवलिकागतं' तस्या एवोदयावलिकायां प्रविष्टं च प्रथमस्थितिगतं दलिकं वर्जयित्वा 'द्वितीया-तृतीययोः' लोभद्वितीयसंग्रहकिट्टितृतीयसंग्रहकिट्टयोः सर्वदलं 'सूक्ष्मासु' सूक्ष्मकिट्टिषु संक्रमयति, सूक्ष्मकिट्टितया परिणमयतीत्यर्थः । न्यगादि च कषायप्राभृतचूर्णौ "**लोभस्स विदियकिट्टिं वेदयमाणस्स जा पढमट्ठिदी, तिस्से पढमट्ठिदीए आवलियाए समयाहियाए सेसाए ताधे जा लोभस्स तदियकिट्टी, सा सव्वा णिरवयवा सुहुमसंपराइयकिट्टीसु संकंता । जा विदियकिट्टी, तिस्से दो आवलिया मोत्तूण समयूणे उदयावलियपविट्ठं च सेसं सव्वं सुहुमसंपराइयकिट्टीसु संकंतं ।**" इति ॥२०२ ॥

लोभद्वितीयसंग्रहकिट्टिप्रथमस्थितौ समयाधिकावलिकाशेषायां मोहनीयस्य यश्चरमस्थितिबन्धो जायते, तमभिदधच्छेषकर्मणामपि स्थितिबन्धं भणति

लोहस्स मुहुत्तंतो बंधो घाईण दिवसंतो ।
हवइ अघाईणं वासंतो अह भणिमु ठिइसंतं ॥२०३॥ (उपगीतिः)

लोभस्य मुहूर्तान्तर्बन्धो घातिनां दिवसान्तः ।
भवत्यघातिनां वर्षान्तरथ भणाम स्थितिसत्त्वम् ॥२०३॥ इति पदसंस्कारः ।

'लोहस्स' इत्यादि, लोभद्वितीयसंग्रहकिट्टिवेदनाद्धाचरमसमये 'लोभस्य' संज्वलनलोभस्य 'मुहूर्तान्तः' मुहूर्तस्य अन्तर्=मध्ये, अन्तमुहूर्तमात्र इत्यर्थः, 'बन्धः' स्थितिबन्धो 'भवति' जायते, मोहनीयस्याऽन्तमुहूर्तमात्रः स्थितिबन्धो भवतीत्यर्थः । अयं च मोहनीयस्य सर्वजघन्यस्थितिबन्धः । एवं मोहनीयस्यानुभागबन्धोऽपि सर्वजघन्यो भवति ।

'घाईण' इत्यादि, 'घातिनां' मोहनीयस्योक्तत्वाज्ज्ञानावरण-दर्शनावरणा-ऽन्तरायरूपाणां कर्मणां स्थितिबन्धो 'दिवसान्तः' दिवसस्य-अहोरात्रस्य अन्तर्=मध्ये भवति, लोभप्रथमसंग्रहकिट्टिवेदनाद्धाचरमसमये यो घातित्रयस्य स्थितिबन्धो दिवसपृथक्त्वमात्र आसीत्, स क्रमेण हीयमानः सन् सम्प्रत्यन्तरहोरात्रप्रमाणो जायत इत्यर्थः । 'अघाईणं' इत्यादि, तदानीं चाऽघातिनां कर्मणां नामगोत्रवेदनीयलक्षणानां स्थितिबन्धो 'वर्षान्तः' वर्षस्याऽन्तर्जायते । प्रतिपादितं च कषायप्राभृतचूर्णौ **"तम्हि चेव लोभसंजलणस्स ठिदिबंधो अंतोमुहुत्तं तिण्हं घादिकम्माणं ठिदिबंधो अहोरत्तस्स अंतो । णामागोदवेदणीयाणं बादरसांपराइयस्स जो चरिमो ठिदिबंधो, सो संखेज्जेहिं वस्ससहस्सेहिं हाइदूण वस्सस्स अंतो जादो ।"** इति ।

अथ प्रतिजिज्ञासुराह–'अह' इत्यादि, 'अथ' स्थितिबन्धप्ररूपणानन्तरम्, आनन्तर्यार्थकत्वाद् अथशब्दस्य, 'भणामः' प्रतिपादयामः, किम् ? इत्याह–'ठिइसंतं' ति 'स्थितिसत्त्वं' सप्तानामपि कर्मणां स्थितिसत्कर्म ॥२०३॥

अथ प्रतिज्ञां निर्वोढुकामः सप्तानामपि स्थितिसत्त्वं व्याहरति-

लोहस्स मुहुत्तंतो संखसहस्सवरिसा य घाईणं ।
होज्जेइ अघाईण उण असंखेज्जवरिसा चरिमे ॥२०४॥

लोभस्य मुहूर्तान्त संख्यसहस्रवर्षाश्च घातिनाम् ।
भवत्यघातिनां पुनरसंख्येयवर्षाश्चरमे ॥२०४॥ इति पदसंस्कार ।

'लोहस्स' इत्यादि, तत्र 'चरिमे' त्ति 'चरमे' लोभद्वितीयसंग्रहकिट्टिवेदनाद्धाचरमसमये 'लोभस्य' संज्वलनलोभस्य स्थितिसत्त्वं 'मुहुर्तान्तः' अन्तमुहूर्तं भवति । 'संख०' इत्यादि, तत्र 'घातिनां' ज्ञानावरण-दर्शनावरणा-ऽन्तरायरूपाणां च कर्मणां स्थितिसत्त्वं संख्यसहस्रवर्षा भवति । 'अघाईण' इत्यादि, 'अघातिनां' नाम-गोत्र-वेदनीयलक्षणानां कर्मणां पुनः स्थितिसत्त्वमसंख्येयवर्षा भवति, लोभप्रथमसंग्रहकिट्टिवेदनाद्धाचरमसमयतः परं संख्यातेषु स्थितिघातेषु गतेषु स्थितिसत्त्वं हीनं सदिदानीमप्येतावद् भवति । उक्तं च कषायप्राभृतचूर्णौ **"चरिमसमयबादरसांपराइयस्स मोहणीयस्स ट्ठिदिसंतकम्ममंतोमुहुत्तं । ×××**

तिण्हं घादिकम्माणं ठिदिसंतकम्मं संखेज्जाणि वस्ससहस्साणि×××× णामागोद-वेदणीयाणं ठिदिसंतकम्ममसंखेज्जाणि वस्साणि।" इति।

निश्चयनयमाश्रित्य तदानीमेव व्यवच्छिद्यमानः संज्वलनलोभस्य बन्धो व्यवच्छिन्नः। एवं बादरकषायस्योदयोदीरणे व्यवच्छिन्ने तथाऽनिवृत्तिबादरसम्परायगुणस्थानकाद्धाऽपि व्यवच्छिन्ना। यदुक्तं सप्ततिकाचूर्णौ–**"एवं अंतोमुहुत्तं किट्टीओ करेति ताव, जाव लोभस्स बितियकिट्टीए पढमट्ठितो समयाहियावलियसेस त्ति। तम्मि समए लोभसंजलणाए बंधवोच्छेओ, बायरकसायाणं उदओदीरणावोच्छेओ य अनियट्टिकालवोच्छेओ य जुगवं भवंति।"** इति।

तदेवं समर्थिता बादरकिट्टिवेदनाद्धा। तस्यां च समर्थितायां समाप्तमनिवृत्तिकरण-निरूपणम् ॥२०४॥

एकाधिकद्विशततमप्रभृतिगाथाः समाश्रित्य यन्त्रकम्

(१) यावल्लोभद्वितीयसंग्रहकिट्टया आवलिकात्रिकप्रमाणा प्रथमस्थिति शेषा भवति, तावद् द्वितीयसंग्रहकिट्टितस्तृतीयसंग्रहकिट्टयामपि दल सक्रामति। तत पर द्वितीयसंग्रहकिट्टिदलं तृतीयसंग्रहकिट्टौ न सक्रामति, किन्तु सूक्ष्मकिट्टिष्वेव।
(२) लोभद्वितीयसंग्रहकिट्टिप्रथमस्थितेर्द्वयावलिकयो शेपयोरागालो व्यवच्छिद्यते।
(३) लोभद्वितीयसंग्रहकिट्टिप्रथमस्थिते समयाधिकावलिकायां शेषायाम्
 (क) लोभस्य जघन्यस्थित्युदीरणा भवति।
 (ख) समयोनद्वयावलिकाबद्धनूतनदलमुदयावलिकाप्रविष्टदलं च वर्जयित्वा शेषं सर्वं बादरकिट्टिदलं सूक्ष्मकिट्टितया परिणमयति।
 (ग) मोहनीयस्य स्थितिबन्धोऽन्तर्मुहूर्तमात्र।
 (घ) घातित्रयस्य स्थितिबन्धोऽन्तरहोरात्रम्।
 (ङ) अघातित्रयस्य स्थितिबन्धोऽन्तवर्षम्।
 (च) लोभस्य स्थितिसत्त्वमन्तर्मुहूर्तम्।
 (छ) घातित्रयस्य स्थितिसत्त्वं सख्येयसहस्रवर्षाणि।
 (ज) अघातित्रयस्याऽसंख्येयवर्षा स्थितिसत्त्व भवति।
 (झ) मोहनीयस्य सर्वजघन्यस्थितिबन्ध।
 (ञ) मोहनीयस्य सर्वजघन्यानुभागबन्ध।
 (ट) निश्चयनयमाश्रित्य
  (अ) तदानीं व्यवच्छिद्यमान संज्वलनकषायस्य बन्धो व्यवच्छिन्न।
  (ब) तदानीं व्यवच्छिद्यमाने बादरकषायस्योदयोदीरणे व्यवच्छिन्ने।
  (स) एवमेवाऽनिवृत्तिकरणगुणस्थानकाद्धाऽपि व्यवच्छिन्ना।

अनिवृत्तिबादरसम्परायगुणस्थानकसमाप्तिसमनन्तरं सूक्ष्मसम्परायगुणस्थानकं प्रतिपद्यते। तेन सूक्ष्मसम्परायगुणस्थानके प्रक्रियाविशेषं प्रदर्शयितुकामः आह

सेकाले सुहुमगुणट्ठाणं पडिवज्जए तयाणिं य ।
गुणसेढिं करइ सुहुमकिट्टी उक्किरिय वेयइ य ॥२०५॥

अनन्तरकाले सूक्ष्मगुणस्थानं प्रतिपद्यते तदानीञ्च ।
गुणश्रेणिं करोति सूक्ष्मकिट्टीरुत्कीर्य वेदयति च ॥२०५॥ इति पदसंस्कार ।

'सेकाले' इत्यादि, 'अनन्तरकाले' बादरकिट्टिवेदनाद्धासमाप्तितोऽनन्तरसमये 'सूक्ष्मगुणस्थानं' सूक्ष्मसम्परायगुणस्थानकं प्रतिपद्यते, परिणाममाहात्म्यात् । तदानीं किं करोति ? इत्यत आह– 'तयाणिं य' इत्यादि, तदानीञ्च 'सूक्ष्मकिट्टीः' सूक्ष्मकिट्टिगतप्रदेशानुत्कीर्य 'गुणश्रेणिं' गुणेन-उदयसमयादारभ्याऽसंख्येयगुणकारेण श्रेणि-प्रदेशरचनां 'करोति' निर्वर्तयति । उदयसमयतः प्रभृत्यसंख्येयगुणक्रमेण दलिकं निक्षिप्य प्रथमस्थितिं विदधातीत्यर्थः । 'वेदयति च' तदानीञ्चैव सूक्ष्मकिट्टीरनुभवति । यदुक्तं सप्ततिकाचूर्णौ– "ओ सेकाले सुहुमसंपराइगकिट्टीओ दलिअं ओकड्ढित्तु पढमट्ठितिं करेइ । ततियतिभागमेत्तं वेदेइ य, तओ सुहुमसंपराइओ वुच्चइ ।" इति ।

एवं शतकचूर्णावपि:

"बायररागेण कया सुहुमो वेएइ सुहुमकिट्टीओ ।
तम्हा सुहुमकसाओ सुहुमो सुद्धप्प योगप्प ॥१॥" इति ॥२०५॥

ननु गुणश्रेणिनिक्षेपः सूक्ष्मकिट्टिवेदनाद्धाप्रथमसमये कियान् भवति ? तथा गुणश्रेण्यां तदुपरितनस्थितिषु च दलिकनिक्षेपः कथं भवति ? इत्याशङ्काऽभ्युदासाय आह

सुहुमगुणत्तो गुणसेढीणिक्खेवो विसेसअब्भहिओ ।
तत्थ असंखगुणकमेणं णिखिविज्जा पएसग्गं ॥२०६॥
चरिमाउ असंखगुणं अंतरआइम्मि ताउ य विसेसूणं ।
उवरि तओ बीयाइम्मि ताउ संखगुणहीणयं तो हीणं ॥२०७॥

(आर्यागीतिः)

सूक्ष्मगुणतो गुणश्रेणिनिक्षेपो विशेषाभ्यधिक ।
तत्राऽसंख्यगुणक्रमेण निक्षिपति प्रदेशाग्रम् ॥२०६॥
चरमादसंख्यगुणमन्तरादौ तस्माच्च विशेषोनम् ।
उपरि ततो द्वितीयादौ तस्मात् संख्यगुणहीनं ततो हीनम् ॥॥२०६॥ इति पदसंस्कार ।

'**सुहुमगुणत्तो**' इत्यादि, 'सूक्ष्मगुणतः' पदैकदेशे पदसमुदायस्योपचारात् सूक्ष्मसम्परायगुणस्थानकाद्धातो 'गुणश्रेणिनिक्षेपो' मोहनीयस्य गुणश्रेण्यायामोऽन्तरस्थितीनां संख्येयभागकल्पो भवन् विशेषाधिको भवति। भणितं च कषायप्राभृतचूर्णौ—"**गुणसेढिणिक्खेवो सुहुमसांपराइयध्दादो विसेसुत्तरो।**" इति। एवं ज्ञानावरणादीनामपि गलितावशेषगुणश्रेणिनिक्षेपः सूक्ष्मसम्परायाद्धातो विशेषाधिको भवति, नवरं मोहनीयगुणश्रेणिनिक्षेपतः शेषकर्मणां तात्कालिकगलितविशेष-गुणश्रेणिनिक्षेपोऽन्तर्मुहूर्तकालेनाऽधिको भवति, क्षीणकषायगुणस्थानकालस्योऽपरि शेषकर्मगुणश्रेणिशिरोदर्शनात्। अथ मोहनीयगुणश्रेणौ तदुपरि च दलनिक्षेपं भणति—'**तत्थ**' इत्यादि, 'तत्र' सूक्ष्मसम्परायाद्धातो विशेषाधिकाऽऽयामलक्षणे गुणश्रेणिनिक्षेपेऽसंख्यगुणक्रमेण प्रदेशाग्रं 'निक्षिपति' प्रक्षिपति। अयम्भावः-सूक्ष्मकिट्टिगतस्य दलस्याऽसंख्येयभागप्रमाणं दलमुत्कीर्योत्कीर्णस्य च दलस्याऽसंख्येयभागप्रमितं दलं गृहीत्वोदयनिषेके स्तोकं दलं ददाति। तदनन्तरोपरितनद्वितीयनिषेकेऽसंख्येयगुणं दलं ददाति। ततोऽपि तृतीयनिषेकेऽसंख्येयगुणं दलं ददाति। एवमसंख्यातगुणक्रमेण तावद् ददाति, यावदन्तर्मुहूर्तप्रमाणगुणश्रेणिनिक्षेपस्य चरमनिषेकः। अवाचि च कषायप्राभृतचूर्णौ—"**तदो पदेसग्गमोकड्डियूण उदये थोवं दिण्णं। अंतोमुहुत्तध्दमेत्तमसंखेज्जगुणाए सेढीए देदि।**" इति। ततो बह्वसंख्येयभागप्रमितं दलं गृहीत्वा 'चरमात्' प्रत्यासत्त्या गुणश्रेणिनिक्षेपचरमनिषेकतोऽसंख्यगुणं प्रदेशाग्रम् 'अन्तरादौ' अन्तरकरणप्रथमनिषेके निक्षिपति। इदमुक्तं भवति—इदानीमतीत्थापनां वर्जयित्वा सर्वत्र दलनिक्षेपं करोति, तेनाऽन्तरकरणं न संभवति, तथाप्यनिवृत्तिकरणे निष्पादितस्याऽन्तरकरणस्य गुणश्रेणिं वर्जयित्वा येषु निषेकेषु दलनिक्षेपं करोति, ते "भूतपूर्वकनयादुपचारः" इति न्यायेनाऽन्तरकरणनिषेका भण्यन्ते, तेषां च प्रथमनिषेके गुणश्रेणिशिरस उपरितने प्रथमनिषेक इति यावत्, गुणश्रेणिचरमनिषेकतोऽसंख्येयगुणं दलिकं निक्षिपति। '**ताउ**' इत्यादि, 'तस्मात्' अन्तरप्रथमनिषेकतश्च विशेषोनं दलमुपरि यथाक्रमं निक्षिपति, यावदन्तरचरमनिषेकः, तस्योपरि भिन्नक्रमेण दलिकनिक्षेपप्रतिपादनात्। अथ द्वितीयस्थितिप्रथमनिषेके दलनिक्षेपं व्याहर्तुकामः आह—'**तओ**' इत्यादि, 'ततः' अन्तकरणचरमनिषेकतो 'द्वितीयादौ' द्वितीयायाः द्वितीयस्थित्या आदौ—प्रथमनिषेके 'संखगुणहीणयं'ति कप्रत्ययस्य स्वार्थिकत्वात् संख्यगुणहीनं दलं प्रक्षिपति। समवादि च कषायप्राभृतचूर्णौ—"**गुणसेढिसीसगादो जा अणंतरट्ठिदी, तत्थ असंखेज्जगुणं। ततो विसेसहीणं ताव, जाव पुव्वसमये अंतरमासी तस्स अंतरस्स चरिमादो अंतरट्ठिदीदो त्ति पुव्वसमये जा विदियट्ठिदी, तिस्से आदिट्ठिदीए दिज्जमाणगं पदेसग्गं संखेज्जगुणहीणं तत्तो विसेसहीणं।**" इति। इहापि द्वितीयस्थितिव्यपदेशस्तु "भूतपूर्वकनयादुपचारः" इति न्यायाद् बोध्यः। अयं भावः सूक्ष्मसम्परायगुणस्थानकप्रथमसमये सत्तागतदलस्याऽसंख्येयभागप्रमितं दलमुत्कीर्य

तस्यैकाऽसंख्येयभागप्रमितं दलं गृहीत्वा गुणश्रेणौ निक्षिप्य शेषान् बहूनसंख्येयभागान् गुणश्रेणेरुपरि निक्षिपति । तत्राऽपि बहुसंख्येयभागमात्रदलस्य बहून् संख्येयभागानेकं वा संख्येयभागमन्तरस्थितिषु विशेषहीनक्रमेण निक्षिप्य शेषदलं द्वितीयस्थितौ समयाऽधिकाऽऽवलिकाप्रमाणातीत्थापनान्यूनायां विशेषहीनक्रमेण प्रक्षिपति । इह यथा प्रथमपक्षे दोषाभावः, तथा द्वितीयेऽपि । तथाहि—अपकृष्टसर्वदलस्या-ऽसंख्येयभागप्रमाणं दलमन्तरस्थितिनिषेकतः संख्यातगुणहीनेषु गुणश्रेणिनिषेकेषु यथाविभागं ददाति, बहुसंख्यातभागप्रमितदलस्य च संख्येयतमभागं पृथक्स्थाप्य बहून् संख्येयभागान् यथाविभागं गुणश्रेणिनिषेकेतः संख्यातगुणेष्वन्तरस्थितिनिषेकेषु ददाति । इत्थं गुणश्रेणिचरमनिषेकतोऽन्तरस्थितिप्रथमनिषेके दीयमानदलमसंख्येयगुणं जायते, संख्यातगुणनिषेकेष्वसंख्यातगुणदलिकस्य प्रक्षेपात् । ततः परं विशेषहीनक्रमेण तावद्ददाति, यावदन्तरस्थितिचरमनिषेकः । पृथक्स्थापितैकसंख्येयभागन्त्वन्तरस्थितितः संख्यातगुणेषु द्वितीयस्थितिनिषेकेषु यथाविभागं निक्षिपति । इत्थमन्तरस्थितिचरमनिषेकतो द्वितीयस्थितिप्रथमनिषेके दीयमानं दलं संख्यातगुणहीनं जायते, संख्यातगुणनिषेकेषु संख्येयभागमात्रदलिकस्य प्रक्षिप्यमाणत्वादिति प्रथमपक्षः ।

अथ द्वितीयपक्षो व्युत्पाद्यते अपकृष्टसकलदलस्याऽसंख्येयभागः पूर्ववद् गुणश्रेणिनिषेकेषु दातव्यः । शेषाणां बहुसंख्येयभागानां संख्येयतमभागमन्तरस्थितिनिषेकेषु यथाविभागं निक्षिपति । इत्थमपि गुणश्रेणिचरमनिषेकतोऽन्तरस्थितिप्रथमनिषेके दीयमानं दलमसंख्येयगुणं जायते, संख्यातगुणनिषेकेष्वसंख्यातगुणदलिकस्य निक्षिप्यमाणत्वात् । ततः शेषान् बहुसंख्येयभागान् समयाधिकाऽऽवलिकारूपामतीत्थापनां वर्जयित्वा द्वितीयस्थितिसर्वनिषेकेषु विशेषहीनक्रमेण ददाति । इत्थमप्यन्तरस्थितिचरमनिषेकतो द्वितीयस्थितिप्रथमनिषेके दीयमानं दलं संख्येयगुणहीनं भवति, अन्तरस्थितौ दीयमानदलतो द्वितीयस्थितौ दीयमानदलस्य संख्येयगुणत्वेऽप्यन्तरस्थितिनिषेकतो द्वितीयस्थितिनिषेकाणां संख्येयगुणत्वात् * ।

एवंक्रमेण दलिकप्रक्षेपस्तावद्वाच्यः, यावत् सूक्ष्मसम्परायगुणस्थानके प्रथमस्थितिघातः पूर्णो भवति, नवरं प्रथमस्थितिघाताद्धाचरमसमयोत्कीर्णस्य दलस्य बहुसंख्येयभागमात्रदलस्य

*जयधवलाकारा अपि प्रथमपक्षं प्रदर्श्य द्वितीयपक्षेऽपि दोषाभावं स्वीकुर्वन्ति । तथा च तद्ग्रन्थः- "कुदो ? अंतरट्ठिदीसु पुव्वुत्तदव्वस्स संखेज्जे भागे णिसिंचियूण पुणो सेससंखेज्जदिभागमेत्तदव्वमंतरायामादो संखेज्जगुणविदियट्ठिदीए जहापविभागं णिसिंचमाणस्स परिप्फुडमेवेदम्मि संधिविसये दिज्जमाणपदेसग्गस्स संखेज्जगुणहीणत्तदंसणादो । × × × × जइवि एत्थ अंतरट्ठिदीसु ओकड्डिदसयलदव्वस्स संखेज्जदिभागमेत्तमेव दव्वं णिसिंचदि, विदियट्ठिदीए च संखेज्जे भागे णिसिंचदि त्ति घेप्पइ । तो वि पयदत्थसिद्धीए णत्थि पडिबंधो, अंतरायामादो विदियट्ठिदीआयामस्स(स्सा)संखेज्जगुणत्तमस्सियूण तस्स सिद्धीए बाहाणुवलंभादो ।" इति ।

संख्येयतमभागमेवा-ऽन्तरस्थितिषु निक्षिपति, न तु-प्रथमविकल्पेन बहुसंख्येयभागान् । कथमेतदवसीयते ? इति चेत्, उच्यते सूक्ष्मकिट्टिवेदनाद्धायां प्रथमस्थितिघाताद्धाया द्विचरमसमयं यावत् स्थितिखण्डगतदलस्याऽसंख्येयभागमात्रमेव दलमुत्कीर्णं भवति, अपकर्षणभागहारेण मोहनीयदलं भक्त्वैकभागस्योत्करणात् । तेन स्थितिखण्डगतदलबहुसंख्येयभागमात्रदलं प्रथमस्थितिघाताद्धाचरमसमये गृह्यते, तच्च मोहनीयसर्वदलस्य संख्येयभागमात्रं भवति, स्थितिघातेन मोहनीयस्य घात्यमानस्थितीनां तत्स्थितिसत्कर्मसंख्येयभागप्रमाणत्वस्य वक्ष्यमाणत्वात् । तथा स्थितिघातेन घात्यमानस्थितितः संख्यातगुणहीना अन्तरस्थितयो भवन्ति, अल्पबहुत्वस्य वक्ष्यमाणत्वात् । अत्र यद्युत्कीर्णदलस्य बहुसंख्येयभागमात्रं दलमन्तरस्थितौ प्रक्षिप्यैकसंख्येयतमभागप्रमाणं दलं द्वितीयस्थितौ प्रक्षिपेत्, तर्ह्यन्तरस्थितिचरमनिषेकतो द्वितीयस्थितिप्रथमनिषेके दृश्यमानं दलमेकगोपुच्छाकारेण न स्यात्, घात्यमानस्थितिनिषेकतः संख्यातगुणहीनेष्वन्तरस्थितिनिषेकेषु घात्यमानस्थितिगतबहुसंख्येयभागप्रमितदलप्रक्षेपस्वीकारात् । किन्त्वन्तरस्थितिचरमनिषेकतो द्वितीयस्थितिप्रथमनिषेके दृश्यमानं दलं संख्यातगुणहीनं प्रसज्येत । वक्ष्यति च प्रथमस्थितिघाते पूर्णे नवोत्तरद्विशततमगाथायां गुणश्रेणिं मुक्त्वोपरितननिषेकेषु दृश्यमानं दलिकं गोपुच्छाकारेण तिष्ठतीति । तेन सह विरोधः स्यात् । तस्मात् प्रथमस्थितिघाताद्धाचरमसमयघुत्कीर्णदलस्याऽसंख्येयभागप्रमितं दलं गुणश्रेणिनिषेकेषु प्रक्षिप्य शेषबहुसंख्येयभागमात्रदलस्य संख्येयभागप्रमाणं दलमन्तरस्थितिनिषेकेषु निक्षिप्य बहुसंख्येयभागप्रमाणं दलं स्थितिखण्डरहितद्वितीयस्थितिनिषेकेषु निक्षिपति । तथाहि सूक्ष्मसम्परायकाले प्रथमस्थितिघाताद्धायाश्चरमसमये मोहनीयदलस्य संख्येयभागमात्रं दलमुत्किरति, घात्यमानस्थितिखण्डस्य स्थितिसत्कर्मसंख्येयभागप्रमाणत्वात्, उत्कीर्य चोत्कीर्णदलस्याऽसंख्येयभागमात्रं दलं गृहीत्वोदयसमयतः प्रभृत्यसंख्येयगुणक्रमेण तावत् प्रक्षिपति, यावद् गुणश्रेणिशिरः । बहुसंख्येयभागप्रमाणदलतस्तु दलमादाय गुणश्रेणिशिरस उपरितनेऽन्तरस्थितिप्रथमनिषेके गुणश्रेणिचरमनिषेकतोऽसंख्येयगुणं दलं प्रक्षिपति । ततः परं विशेषहीनक्रमेण तावत् प्रक्षिपति, यावदन्तरस्थितिचरमनिषेकः । ततः परं द्वितीयस्थितिप्रथमनिषेके संख्यातगुणहीनं दलं प्रक्षिपति । ततः परं विशेषहीनक्रमेण तावत् प्रक्षिपति, यावद् घात्यमानरहितद्वितीयस्थितिचरमनिषेकः ।

नन्वन्तरस्थितिचरमनिषेकतो द्वितीयस्थितिप्रथमनिषेके संख्यातगुणहीनं दलं प्रक्षिपतीत्येतत् कथमवसीयते ? इति चेत्, उच्यते-प्रथमस्थितिघाताद्धाद्विचरमसमयं यावद् द्वितीयस्थितिगतसर्वदलस्याऽसंख्येयभागकल्पं दलमन्तरस्थितौ निक्षिप्तम् । प्रथमस्थितिघाताद्धाचरमसमये तु स्थितिखण्डतः सर्वं दलमुत्कीर्योत्कीर्णदलस्य संख्येयभागमात्रं दलमन्तरस्थितिनिषेकेषु निक्षिपति, बहुसंख्येयभागप्रमाणं च संख्यातगुणेषु द्वितीयस्थितिनिषेकेषु निक्षिपति । तत्र द्वितीयस्थितेरेकैकनिषेके पुरातनसत्तागतदलस्य संख्येयभागमात्रं दलं निक्षिप्यमाणं भवति, ततश्च संख्यातगुणं दलमन्तरस्थितेरेकै-

कनिषेके निक्षिपति, अन्यथा स्थितिघाते पूर्णे दृश्यमानदलमेकगोपुच्छाकारेण नवाधिकद्विशततम-गाथायां यद्वक्ष्यति, तन्नोपपद्येत । इत्थमन्तरस्थितिचरमनिषेकतो द्वितीयस्थितेः प्रथमनिषेके संख्यातगुणहीनं दलं प्रक्षिपति । पश्यन्तु पाठका यन्त्रकम्–२८ ।

अथ गणितविभागः ।

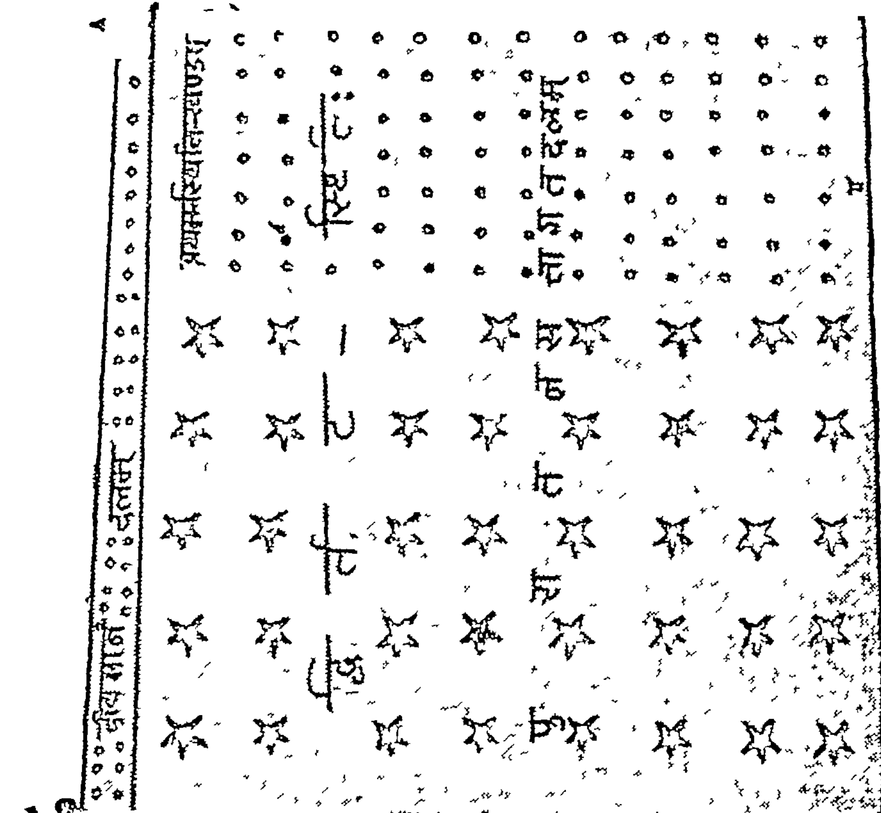
गणितरीत्येत्थं दर्शयितव्यम् अन्तरस्थितिनिषेकैः स्थितिखण्डनिषेकराशिर्विभज्यते, तदा संख्यातरूपाणि लभ्यन्ते, अन्तरस्थितिनिषेकतः स्थितिखण्डस्य संख्येयगुणेन बृहत्तरत्वात् । तानि संख्यातरूपाणि पृथक्पृथक् स्थापयितव्यानि । अथ संख्यातरूपैः स्थितिखण्डसर्वनिषेकान् खण्डयित्वा पृथक्पृथक्स्थापितेषु संख्यातरूपेष्वेकैकं खण्डं दातव्यम् । तत्रैकरूपे लब्धनिषेकाः सर्वान्तरस्थितिनिषेकप्रमाणा भवन्ति । अथैकरूपे प्राप्तनिषेकान् गृहीत्वाऽन्तरस्थितिनिषेकराशिना विभज्यैकैकनिषेकमन्तरस्थितेरेकैकनिषेके प्रक्षिपेत् । इत्थञ्च जाते प्रक्षेपेऽन्तरस्थितिचरमनिषेके द्वितीयस्थितिप्रथमनिषेकतो दृश्यमानदलं किञ्चिदधिकं जायते, पुरातनदलस्य तत्र सत्त्वात् । ततो द्वितीयरूपे प्राप्तनिषेकान् संख्यातराशिना विभज्यैकखण्डमन्तरस्थितिनिषेकेषु यथाविभागं पुनर्निक्षिपति, शेषाणि बहूनि खण्डानि गृहीत्वा यथाविभागं द्वितीयस्थितिनिषेकेषु निक्षिपति, संख्यातराशिश्चाऽत्रान्तरस्थितिनिषेकराशिभाजितगुणश्रेणिवर्जशेषाऽघात्यमानस्थितिसत्कर्मनिषेकप्रमाणो बोद्धव्यः । एवं तृतीयादिरूपेषु स्थापितनिषेकगतदलमन्तरस्थितिनिषेकेषु द्वितीयस्थितिनिषेकेषु च यथागमं निक्षिपति । एवंक्रमेण निक्षिपतो जीवस्याऽन्तरस्थितिचरमनिषेके निक्षिप्तसकलदलतो द्वितीयस्थितिप्रथमनिषेके निक्षिप्तसकलदलं संख्यातगुणहीनं भवति ।

अथासत्कल्पनया दर्श्यते कल्प्यन्तां गुणश्रेणिनिक्षेपनिषेकाश्चत्वारः (४), अन्तरस्थितिनिषेका अष्टौ (८), प्रथमस्थितिखण्डं पुनर्द्वात्रिंशन्निषेकमात्रम् (३२), शेषद्वितीयस्थितिस्त्वष्टचत्वारिंशदधिकद्विशतनिषेकप्रमाणा (२४८),प्रथमस्थितिघाताद्धायाश्च द्विचरमसमयं यावदन्तरस्थितिप्रथमनिषेके निक्षिप्तदलानि षट् सहस्राणि (६०००) । तत उत्तरोत्तरनिषेके दलिकदशकरूपेण (१०) चयेन हीनानि हीनतराणि तावन्निक्षिप्तानि, यावदन्तरस्थितिचरमनिषेकः । तेनाऽन्तरस्थितिचरमनिषेके त्रिंशदधिकनवपञ्चाशच्छतमात्रं (५९३०) दलं प्रक्षिप्तम् । अथ द्वितीयस्थितिप्रथमनिषेकयेकलक्षमात्रं (१०००००) दलं कल्प्यम् । तत उत्तरोत्तरनिषेके विंशतिदलिकात्मकचयेन हीनं हीनतरं दलं तावत् कल्प्यम्, यावत् प्रथमस्थितिखण्डचरमनिषेकः । तेन प्रथमस्थितिखण्डचरमनिषेके दलमशीत्यधिकपञ्चपञ्चाशच्छतन्यूनलक्षमात्रम् । इह यद्यपि द्वितीयस्थितिप्रथमनिषेकतः प्रभृति प्रथमस्थितिखण्डचरमनिषेकं यावद् दलिकं विशेषहीनं भवति, तथापि विशेषहीनत्वं न विवक्षणीयम्, गणितप्रक्रियासौकर्यलाभाद् अकिञ्चित्करत्वाच्च । अतो द्वितीयस्थितिप्रथमनिषेकतः प्रथमस्थितिखण्डचरमनिषेकं यावदेकैकस्मिन् निषेकयेकलक्षमात्रं दलं बोद्धव्यम् ।

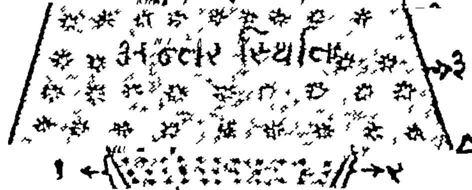
यन्त्रकम्–२८ (चित्रम्–२८)

२०६-२०७ गाथाद्वयमाश्रित्य सूक्ष्मसम्परायाद्धाप्रथमसमये दीयमानदलप्ररूपणा
२०८ गाथामाश्रित्य सूक्ष्मसम्परायाद्धाप्रथमसमये दृश्यमानदलप्ररूपणा
२१० गाथाश्चाश्रित्य सूक्ष्मसम्परायाद्धादीनामल्पबहुत्वम् ।

अतीत्थापना



द्वितीयस्थिति-
प्रथमनिषेक



अन्तरचरम-
निषेक

अन्तरकरणप्रथमनिषेक

गुणश्रेणि-
चरमनिषेक

सङ्केतविवरणम्

१– सूक्ष्मसम्परायाद्धा, सा च स्तोका (गाथा–२०६, २१०) ।

२– गुणश्रेणिनिक्षेपः, स च सूक्ष्मसम्परायाद्धातो विशेषाधिक (गाथा-२०६, २१०) तस्मिंश्च दीयमानं दलं यथोत्तरमसंख्येयगुणक्रमेण भवति (गाथा–२०६)। एवं दृश्यमानमपि (गाथा–२०८)

३– अन्तरस्थितिनिषेकाः, ते च गुणश्रेणिनिक्षेपतः संख्येयगुणा (गाथा-२१०) ।

△ अन्तरकरणप्रथमनिषेके गुणश्रेणिचरमनिषेकतो-ऽसंख्येयगुण दीयमानं दलम् । ततो यथोत्तरं विशेषहीनं विशेषहीनम् (गाथा–२०७) । एवं दृश्यमानमपि (गाथा–२०८) ।

(पृष्ठ परावर्तयन्तु)

(चित्रम्–२८)

○ (i) अन्तरस्थितिचरमनिषेकतो द्वितीयस्थितिप्रथमनिषेके सङ्ख्येयगुणहीनं दीयमानं दलम् । ततः परमतीत्थापनां वर्जयित्वा यथोत्तरं सर्वत्र विशेषहीनक्रमेण दीयमानदलम् (गाथा २०७) ।

(ii) दृश्यमानं त्वन्तरस्थितिचरमनिषेकतो द्वितीयस्थितिप्रथमनिषेकेऽसङ्ख्येयगुणं दलम् । ततः परं यथोत्तरं सर्वत्र विशेषहीनं विशेषहीनम् (गाथा-२०८) ।

४– प्रथमस्थितिखण्डम्, तच्चाऽन्तरस्थितिनिषेकेभ्यः सङ्ख्येयगुणम् । (गाथा-२१०) सूक्ष्मसम्परायाद्धाप्रथमसमये मोहनीयस्थितिसत्ता प्रथमस्थितिखण्डतः संख्येयगुणा(गाथा-२१०) लघुभिर्बिन्दुभिर्गुणश्रेण्या दलं दर्शितम् ।

॰ अनेन चिह्नेनाऽन्तरस्थितौ दलं सूचितम् ।

☆ अनेन चिह्नेन प्रथमस्थितिखण्डरहितद्वितीयस्थितौ पुरातनदलं सूचितम् ।

००० एतैः शून्यैर्द्वितीयस्थितौ दीयमानं दलं दर्शितम् ।

●●●●● एतैर्गुरुभिर्बिन्दुभिः प्रथमस्थितिखण्डे दलं दर्शितम् ।



अथाऽन्तरस्थितिनिषेकैरष्टभिः (८) स्थितिखण्डराशिर्द्वात्रिंशद् विभज्यते, तदा संख्यातरूपाणि चत्वारि (३२/८=४) लभ्यन्ते । तानि च पृथक्पृथक्स्थापयितव्यानि १-१-१-१ । अथ संख्यातरूपैश्चतुर्भिः (४) स्थितिखण्डगतनिषेका द्वात्रिंशद् (३२) भज्यन्ते, तदैकखण्डमष्टनिषेकप्रमाणं प्राप्यते (३२/४=८) । तच्चैकैकं खण्डं पृथक्स्थापितसंख्यातरूपेषु दातव्यम् । १/८ १ १/८ १/८ । इत्थमेकरूपेऽष्टौ निषेकाः प्राप्यन्ते, ते चाऽन्तरस्थितिप्रमाणा भवन्ति । एकरूपे च प्राप्तनिषेका अष्टौ (८) अन्तरस्थितिराशिनाऽष्टरूपेण भज्यन्ते, तदैकनिषेको लभ्यते । स चाऽन्तरस्थितेरेकैकनिषेके प्रक्षेप्तव्यः । दीयमानयैकैकनिषेकयैकलक्षमात्रदलस्य कल्पितत्वादन्तरस्थितेरेकैकस्मिन् निषेके लक्षसङ्ख्यं दलिकं प्रक्षिपति । तेनाऽन्तरस्थितिचरमनिषेके द्वितीयस्थितिप्रथमनिषेकतः किञ्चिदधिकं दलं जायते, तत्र पुरातनदलस्य त्रिंशदधिकनवपञ्चाशच्छतमात्रस्य सत्त्वात् । द्वितीयरूपे प्राप्ताऽष्टनिषेकगतदलमष्टलक्षमात्रं संख्यातराशिना विभक्तव्यम् । संख्यातराशिश्चात्राऽन्तरस्थितिराशिनाऽष्टाख्येन गुणश्रेणिवर्जसर्वाऽधात्यमानस्थितिनिषेकेषु षट्पञ्चाशदधिकद्विशतमात्रेषु विभक्तेषु द्वात्रिंशल्लभ्यते । (२५६/८=३२) । तेनैकखण्डं पञ्चविंशतिसहस्रदलप्रमाणं (८०००००/३२=२५०००) भवति । ततस्तदेकं खण्डं गृहीत्वाऽष्टनिषेकमात्रेष्वन्तरस्थितिषु यथाविभागं प्रक्षिपति । तेनाऽन्तरस्थितेरेकैकस्मिन् निषेके साधिकत्रिसहस्रमात्रं दलं प्रक्षिपति । द्वितीयस्थितौ तु बहूनि खण्डानि पादोनाष्टलक्षदलनिष्पन्नानि यथाविभागं (७७५०००) प्रक्षिपति, तेन द्वितीयस्थितिप्रथमनिषेकेऽपि साधिकत्रिसहस्रमात्रं दलं प्रक्षिप्तं भवति ।

एवंक्रमेण तृतीयादिरूपेषु प्राप्तनिषेकान् गृहीत्वा यथाविभागमन्तरस्थितिनिषेकेषु द्वितीयस्थितिनिषेकेषु च तथा प्रक्षिपति, यथाऽन्तरस्थितिनिषेकेषु द्वितीयस्थितिनिषेकेषु च दृश्यमानं दलं गोपुच्छाकारेण भवतीति । अनेन क्रमेण दलिके प्रक्षिप्ते द्वितीयस्थितिप्रथमनिषेके प्रक्षिप्यमाणानि दलिकानि सर्वसंख्यया साधिकैकविंशतिसहस्रमात्राणि जायन्ते (साधिकानि २१०००), अन्तरस्थितिचरमनिषेके तु साधिकैकविंशतिसहस्रोत्तरलक्षमात्राणि (साधिकानि १२१०००) भवन्ति । इत्थमन्तरस्थितिचरमनिषेके दत्तदलिकतो द्वितीयस्थितिप्रथमनिषेके दीयमानदलं संख्येयगुणहीनं जायते ॥२०६–२०७॥

दीयमानदलं प्ररूप्य सूक्ष्मसम्परायाद्धाप्रथमसमयतः प्रभृति दृश्यमानदलं निरूपयिषुराह–

दीसइ अंतरपढमं जाव दलमसंखगुणकमेणं तत्तो ।
हीणकमेणं बीयाइगि असंखगुणमुवरि तु विसेसूणं ॥२०८॥

(आर्यागीतिः)

दृश्यतेऽन्तरप्रथमं यावद् दलमसङ्ख्येयगुणक्रमेण ततः ।
हीनक्रमेण द्वितीयादावसङ्ख्येयगुणमुपरि तु विशेषोनम् ॥२०८॥ इति पदसंस्कारः ।

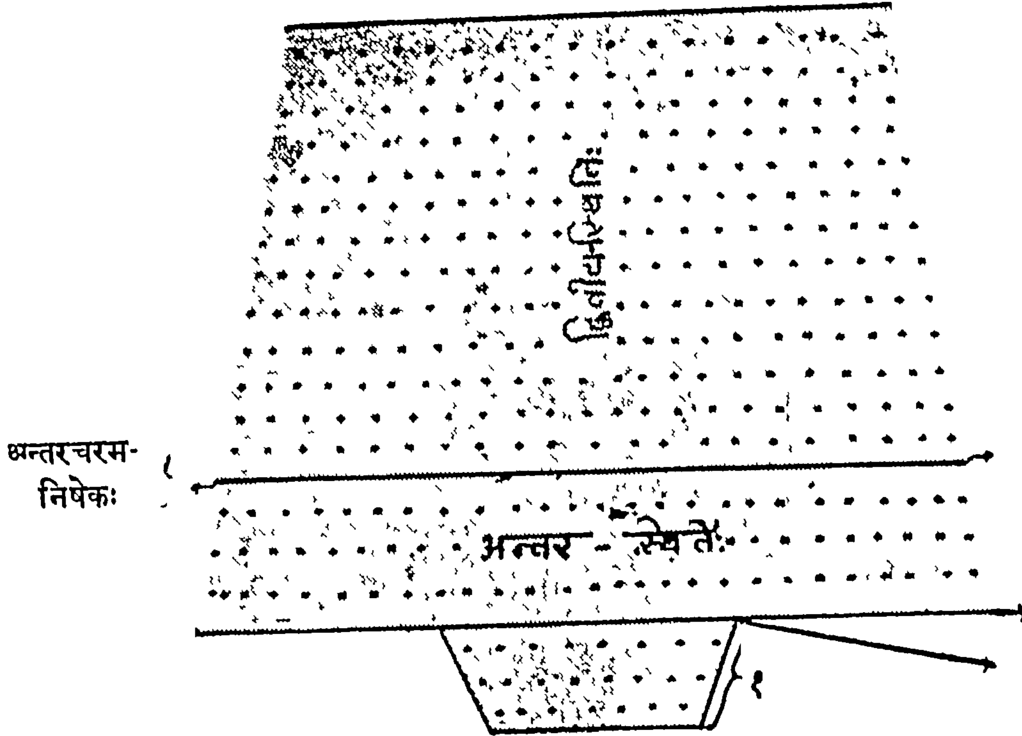
'दीसइ' इत्यादि, तत्र 'अन्तरप्रथमम्' अन्तरकरणप्रथमनिषेकं यावद् 'दलं' प्रदेशाग्रम् 'असंखगुणक्रमेण' असंख्यातगुणक्रमेण दृश्यते। इदमुक्तं भवति सूक्ष्मसम्परायाद्धाप्रथमसमयमुदयस्थितौ स्तोकं दलं दृश्यते। ततो द्वितीयनिषेकेऽसंख्यातगुणम्, ततोऽपि तृतीयनिषेकेऽसंख्यातगुणम्, एवंक्रमेण तावद् दृश्यते, यावद् गुणश्रेणिशिरः। ततोऽपि गुणश्रेणिशिरसोऽनन्तरोपरितननिषेकेऽन्तरकरणप्रथमनिषेक इत्यर्थः, असंख्येयगुणं दलं दृश्यते, दीयमानदलतो दृश्यमानदलस्याऽनतिरिक्तत्वेन दीयमानदलवद् दृश्यमानदलस्याऽपि तथाविधक्रमोपपत्तेः।

'तत्तो' इत्यादि, 'ततः' अन्तरस्थितिप्रथमनिषेकतः परं 'हीनक्रमेण' विशेषहीनक्रमेण दलं दृश्यते, यावदन्तरस्थितिचरमनिषेकः, द्वितीयस्थितिप्रथमनिषेकेऽसंख्येयगुणदृश्यमानदलस्य प्रतिपादनात्। अयं भावः—अन्तरस्थितिप्रथमनिषेकतोऽन्तरस्थितेर्द्वितीयनिषेके विशेषहीनं दलं दृश्यते, ततोऽपि तृतीयनिषेके विशेषहीनं दृश्यते, एवंक्रमेण तावद् दृश्यते, यावदन्तरस्थितेश्चरमनिषेकः, अन्तरस्थितौ दृश्यमानदलस्य दीयमानदलतोऽनतिरेकेण तथाविधक्रमोपपत्तेः।

'बीयाइगि' 'द्वितीयादौ' द्वितीयस्थितिप्रथमनिषेकेऽन्तरस्थितिचरमनिषेकतोऽसंख्यगुणं दलं दृश्यते। कथमेतदवसीयते? इति चेत्, उच्यते अन्तरस्थितौ सत्तागतसकलदलस्याऽसंख्येयभागमात्रं दलं प्रक्षिप्तम्, उत्कीर्णस्य सकलस्याऽपि दलस्य मोहनीयसकलदलाऽसंख्येयभागमात्रत्वात्। बह्वसंख्यातभागप्रमाणदलं चाऽन्तरस्थितितः संख्यातगुणेषु द्वितीयस्थितिनिषेकेषु यथाविभागं तिष्ठति। तेनाऽन्तरस्थितितो द्वितीयस्थितिप्रथमनिषेके दृश्यमानं दलमसंख्येयगुणं भवति। 'उवरि' इत्यादि, 'उपरि' द्वितीयस्थितिप्रथमनिषेकस्योपरि तु 'विशेषोनं' विशेषहीनं दलं यथोत्तरं दृश्यते। इदमुक्तं भवति—द्वितीयस्थितिप्रथमनिषेके दृश्यमानदलतो द्वितीयस्थितिद्वितीयनिषेके दलं विशेषहीनं दृश्यते, ततोऽपि तृतीयनिषेके विशेषहीनम्। एवं विशेषहीनक्रमेण तावद् दृश्यते, यावद् द्वितीयस्थितिचरमनिषेकः। अनेन क्रमेण दृश्यमानं दलं तावद्वक्तव्यम्, यावत्सूक्ष्मसम्परायाद्धायां प्रथमस्थितिखण्डं निःशेषतो नोत्कीर्यते, प्रथमस्थितिखण्डे तूत्कीर्णे उत्तरगाथया द्वितीयादिस्थितिघातेषु दृश्यमानदलस्य भिन्नक्रमेण प्रतिपादनात्। उक्तं च कषायप्राभृतचूर्णौ—"**पढमसमयसुहुमसांपराइयस्स उदये दिस्सदि पदेसग्गं थोवं। विदियाए ट्ठिदीए असंखेज्जगुणं दीसदि। (एवं) ताव जाव (गुणसेढिसीसयं ति) गुणसेढिसीसयादो अण्णा च एक्का ठिदि त्ति। तत्तो विसेसहीणं ताव, जाव चरिमअंतरट्ठिदि त्ति। तत्तो असंखेज्जगुणं। तत्तो विसेसहीणं। एस कमो ताव, जाव सुहुमसांपराइयस्स पढमट्ठिदिखंडयं चरिमसमयअणिल्लेविदं ति।**" ॥२०८॥

प्रथमस्थितिघाते पूर्णे द्वितीयादिस्थितिघातकाले दीयमानं दृश्यमानं च दलं विभणिषुराह

सूक्ष्मसम्परायाद्धायां द्वितीयादिस्थितिघातावसरे दृश्यमानदलप्ररूपणा



सङ्केतविवरणम् —

१–गुणश्रेणिनिक्षेपः, तस्मिँश्चोत्तरोत्तरनिषेकेऽसंख्येयगुणक्रमेण दलिकं दृश्यते।

२–स च गुणश्रेणेरुपरितन प्रथमनिषेक, तस्मिँश्च गुणश्रेणिचरमनिषेकतोऽसंख्येयगुणं दलं दृश्यते। तत पर सर्वत्र विशेषहीनक्रमेण दलं दृश्यते। तेना–ऽन्तरचरमनिषेकतो द्वितीयस्थितिप्रथमनिषेके विशेषहीनं दल दृश्यते। एवमन्यत्रा–ऽपि।

यथा दृश्मान दल चित्रे दर्शितम्, तथैव दीयमानमपि दल बोध्यम्।

वीयाइट्ठिइघायेसुं गुणसेढिउवरिल्लपढमणिसेगं ।
जावं दिज्जंतं दीसंतं य असंखगुणकमा तो हीणं ।२०९। (आर्यागीतिः)

द्वितीयादिस्थितिघातेषु गुणश्रेण्युपरितनप्रथमनिषेकम् ।
यावद् दीयमानं दृश्यमानञ्चाऽसंख्यगुणक्रमात् ततो हीनम् ॥२०९॥ इति पदसंस्कारः ।

'वीयाइ०' इत्यादि, दलमिति पदं पूर्वतोऽनुवर्तते । 'द्वितीयादिस्थितिघातेषु' सूक्ष्मसम्परायाद्धायां प्रथमस्थितिघाते पूर्णे द्वितीयादिस्थितिघातेषु 'गुणश्रेण्युपरितनप्रथमनिषेकं यावद्' गुणश्रेणेरुपरितनं प्रथमनिषेकं यावदसंख्यगुणक्रमाद् दीयमानं दृश्यमानञ्च दलं भवति । 'तो' इत्यादि, 'ततो' गुणश्रेणेरुपरितनप्रथमनिषेकतः परं 'हीनं' विशेषहीनं विशेषहीनं दीयमानं दृश्यमानञ्च दलिकं भवति । इदमुक्तं भवति—सूक्ष्मसम्परायाद्धायां प्रथमस्थितिघाते पूर्णे द्वितीयस्थितिघातप्रथमसमयतः प्रभृति सत्तागतसकलदलाऽसंख्येयभागमात्रं दलमुत्कीर्योत्कीर्णदलाऽसंख्येयभागप्रमितं च दलं गृहीत्वोदयनिषेके स्तोकं दलं ददाति । ततोऽनन्तरद्वितीयनिषेकेऽसंख्येयगुणं दलं ददाति । ततोऽप्यसंख्येयगुणं तृतीयनिषेके । एवमसंख्येयगुणक्रमेण तावत्प्रक्षिपति, यावद्गुणश्रेणिशिरः । तत उत्कीर्णदलस्य बह्वसंख्येयभागप्रमाणाद् दलाद् दलमादाय गुणश्रेणिशीर्षस्योपरितने प्रथमनिषेकेऽसंख्येयगुणं दलं ददाति । ततो विशेषहीनक्रमेण तावद् ददाति, यावदतीत्थापनाऽप्राप्ता भवति, नवरं स्थितिघाताद्धायाश्चरमसमये सत्तागतदलस्य संख्येयभागमात्रदलमुत्कीर्य स्थितिखण्डप्रमाणामतीत्थापनां वर्जयित्वा शेषस्थितिषु पूर्वोक्तक्रमेण दलं ददाति । एवंक्रमेण तावद्वक्तव्यम्, यावत्सूक्ष्मसम्परायगुणस्थानके मोहनीयस्य चरमस्थितिघातः । यदवादि कषायप्राभृतचूर्णौ—"**विदियादो ठिदिखंडयादो ओकड्डियूण (जं) पदेसग्गमुदये दिज्जदि, तं थोवं । तदो दिज्जदि असंखेज्जगुणाए सेढीए ताव, जाव गुणसेढीसोसयादो उवरिमाणंतरा एक्का ट्ठिदि त्ति, तदो विसेसहीणं । एत्तो पाए सुहुमसांपराइयस्स जाव मोहणीयस्स ठिदिघादो ताव एसो कमो ।**" इति । एवं दृश्यमानमपि दलं गुणश्रेणेरुपरितनं प्रथमनिषेकं यावदसंख्येयगुणकारेण भवदुपरि मोहनीयचरमनिषेकं यावद् विशेषहीनक्रमेण तिष्ठति । प्रत्यपादि च कषायप्राभृतचूर्णौ—"**पढमे ठिदीखंडए णिल्लेविदे (जं) उदये पदेसग्गं दिस्सदि, तं थोवं । विदियाए ठिदीए असंखेज्जगुणं । एवं ताव, जाव गुणसेढिसीसयं । गुणसेढिसीसयादो अण्णा च एक्का ठिदि त्ति असंखेज्जगुणं दिस्सदि । तत्तो विसेसहीणं जाव उक्कस्सिया मोहणीयस्स ठिदि त्ति ।**" पश्यन्तु पाठका यन्त्रकम्—२९ ॥२०९॥

ननु प्रथमस्थितिखण्डे घातिते गुणश्रेणिं मुक्त्वा शेषस्थितिषु दलमेकगोपुच्छाकारेण कुतो भवति ? इति शङ्कां समाधातुकामोऽल्पबहुत्वं भणति

सुहुमद्धा थोवा तत्तो गुणसेढी विसेसअब्भहिआ ।
तत्तोऽन्तरं पढमखंडं तह संतं कमेण संखगुणं ॥२१०॥ (गीतिः)

सूक्ष्माद्धा स्तोका ततो गुणश्रेणिर्विशेषाभ्यधिका ।
ततोऽन्तरं प्रथमखण्डं तथा सत्त्वं क्रमेण सङ्ख्यगुणम् ॥२१०॥ इति पदसंस्कारः ।

'**सुहुमद्धा**' इत्यादि, 'सूक्ष्माद्धा' सूक्ष्मसम्परायगुणस्थानकाद्धा 'स्तोका' अल्पा, उपरितनपदानां प्रभूतत्वदर्शनात् । 'तत्तो' इत्यादि, 'ततः' सूक्ष्मसम्परायाद्धातः 'गुणश्रेणिः' सूक्ष्मसम्परायप्रथमसमये सूक्ष्मकिट्टिदलमुत्कीर्य या गुणश्रेणिः क्रियते, सा विशेषाभ्यधिका भवति, गुणश्रेणिनिषेका विशेषाधिका भवन्तीत्यर्थः ।

'तत्तो' इत्यादि, 'ततो' मोहनीयगुणश्रेणिनिषेकतोऽन्तरं प्रथमखण्डं तथा 'सत्त्वं' स्थितिसत्त्वं क्रमेण प्रत्येकं संख्यगुणं भवति । अन्तरसाहचर्यात् प्रथमस्थितिखण्डं स्थितिसत्त्वं च मोहनीयस्य ग्रहीतव्ये । इदमुक्तं भवति मोहनीयगुणश्रेणिनिषेकतोऽन्तरस्थितिनिषेकाः संख्यातगुणा भवन्ति । ततोऽपि सूक्ष्मसम्परायाद्धायां घात्यमानं मोहनीयप्रथमस्थितिखण्डं संख्यातगुणं भवति, ततोऽपि मोहनीयस्य स्थितिसत्त्वं संख्यातगुणं तिष्ठति । अभ्यधायि च कषायप्राभृतचूर्णौ— "**सव्वत्थोवा सुहुमसांपराइयद्धा, पढमसमयसुहुमसांपराइयस्स मोहणीयस्स गुणसेढिणिक्खेवो विसेसाहिओ । अंतरट्ठिदीओ संखेज्जगुणाओ, सुहुमसांपराइयस्स पढमट्ठिदिखंडयं मोहणीये संखेज्जगुणं पढमसमयसुहुमसांपराइयस्स मोहणीयस्स ठिदिसंतकम्मं संखेज्जगुणं ।**" इति । नन्ववतरणे यदभिहितम्, प्रथमस्थितिखण्डे घातिते गुणश्रेणिं मुक्त्वा शेषस्थितिषु दलमेकगोपुच्छाकारेण कुतो भवतीति शङ्काव्युदासायेदमल्पबहुत्वमवतीर्णमिति, तत्कथं सङ्गच्छते ? इति चेत्, उच्यते-अन्तरस्थितिनिषेकतः संख्यातगुणाः प्रथमस्थितिखण्डगतनिषेका भवन्ति, तेन प्रथमस्थितिघाताद्धाचरमसमय उत्कीर्णदलतोऽन्तरस्थितिनिषेकेषु द्वितीयस्थितिनिषेकेषु च दलिकं तेन क्रमेण प्रक्षिपति, येन दृश्यमानदलमेकगोपुच्छाकारेण जायते । प्रथमस्थितिखण्डगतनिषेकतोऽन्तरस्थितिनिषेकाणां बहुत्वे तु दृश्यमानं दलमन्तरस्थितिचरमनिषेकतो द्वितीयस्थितिप्रथमनिषेक एकचयेन हीनं न स्यात् । ततश्चाऽन्तरस्थितिनिषेकेषु द्वितीयस्थितिनिषेकेषु चैकगोपुच्छाकारेण दलं न स्यात् । तेनेदमल्पबहुत्वमेकगोपुच्छाकारदलसाधनायाऽलं भवति ॥२१०॥

सूक्ष्मसम्परायाद्धाप्रथमसमये सूक्ष्मकिट्टीनां प्रथमस्थितिं कृत्वा वेदयतीति प्राक् सामान्यत उक्तम् । सामान्यज्ञानस्य च विशेषजिज्ञासाहेतुत्वात् सम्प्रति विशेषतः सूक्ष्मकिट्टीनामुदयं विवर्णयिषुराह

सुहुमाण हेट्ठिमा उवरिल्लाअ असंखभागमेत्तीओ ।
न अणुहवेज्जन्ते सेसा वेइज्जन्ति किट्टीओ ॥२११॥

सूक्ष्माणामधस्तन्य उपरितन्यश्चाऽसंख्यभागमात्र्य ।
ना-ऽनुभूयन्ते शेषा वेद्यन्ते किट्टय ॥ २११ ॥ इति पदसंस्कार ।

'**सुहुमाण**' इत्यादि, सूक्ष्मसम्परायगुणस्थानकाद्धाप्रथमसमये 'सूक्ष्माणां' सूक्ष्मकिट्टीनाम् 'अधस्तन्यः' मन्दानुभागकाः 'उपरितन्यश्च' तीव्रानुभागकाश्चाऽसंख्येयभागमात्र्यः सूक्ष्मकिट्टयो 'ना-ऽनुभूयन्ते' उदयेन न वेद्यन्ते । ननु काः सूक्ष्मकिट्टयो वेद्यन्ते ? इत्याह–'**सेसा**'इत्यादि, 'शेषाः' उपर्युक्ताभ्योऽन्याः, उपरितन्योऽधस्तन्यश्चासंख्येयभागमात्र्यो याः सूक्ष्मकिट्टयोऽवेद्यमानाः, ताभ्योऽन्या बहुसंख्येयभागमात्र्यो मध्यमाऽनुभागका इत्यर्थः, 'किट्टयः' सूक्ष्मकिट्टयो 'वेद्यन्ते' उदयेना-ऽनुभूयन्ते । यदुक्तं कषायप्राभृतचूर्णौ "**से काले पढमसमयसुहुमसांपराइओ । ताधे सुहुमसांपराइयकिट्टीणमसंखेज्जा भागा उदिण्णा ।**" इति । इदमुक्तं भवति-प्रथमसमये द्वितीयस्थितितः सर्वसूक्ष्मकिट्टिभ्यो दलिकमपकृष्य प्रथमस्थितिं करोति । तत्राऽसंख्येयभागप्रमाणास्तीव्रानुभागका मन्दानुभागकाश्चोदयनिषेके मध्यमकिट्टिस्वरूपेण परिणम्य वेदयति, इत्थमसंख्येयभागप्रमाणानां स्वरूपेण वेदनाभावाच्छेषा बहुसंख्येयभागप्रमाणा मध्यमसूक्ष्मकिट्टीर्वेदयति । एवं द्वितीयादिसमयेष्वपि सूक्ष्मकिट्टिवेदनविधिर्वक्तव्यः, नवरं पूर्वपूर्वसमयत उत्तरोत्तरसमये-ऽसंख्येयभागेनाऽधिका अधिकतरा उपरितन्यः सूक्ष्मकिट्टयः स्वरूपेण न वेद्यन्ते, तथा–ऽपूर्वेणाऽसंख्येयभागेनाऽधिका अधिकतरा अधस्तन्यः सूक्ष्मकिट्टयो वेद्यन्ते । एवं तावद्वक्तव्यम् , यावत्सूक्ष्मसम्परायगुणस्थानकाद्धाचरमसमयः ॥ २११ ॥

उदीर्णा-ऽनुदीर्णसूक्ष्मकिट्टीरभिधाय सम्प्रति तासामल्पबहुत्वं बिभणिषुराह

हेट्ठिल्ला अणुदिण्णा थोवा तत्तो विसेसअहिआओ ।
उवरिल्ला तत्तो य असंखेज्जगुणा उदिण्णाओ ॥२१२॥

अधस्तन्योऽनुदीर्णा स्तोकास्ततो विशेषाधिका ।
उपरितन्यस्ततश्चाऽसंख्येयगुणा उदीर्णाः ॥ २१२ ॥ इति पदसंस्कार ।

'**हेट्ठिल्ला**' इत्यादि, सूक्ष्मसम्परायाद्धाप्रथमसमये 'अधस्तन्यो' मन्दानुभागका अनुदीर्णाः सूक्ष्मकिट्टयः स्तोका भवन्ति, या मन्दानुभागकाः सर्वसूक्ष्मकिट्टयसंख्येयभागप्रमाणाः सूक्ष्मकिट्टयो न वेद्यन्ते, ताः स्तोका भवन्तीत्यर्थः । 'तत्तो' इत्यादि, 'ततः' अनुदीर्णा-ऽधस्तनसूक्ष्मकिट्टितः 'उपरितन्यः' तीव्रानुभागका अनुदीर्णाः सर्वसूक्ष्मकिट्टयसंख्येयभागप्रमाणा भवन्त्योऽपि विशेषाधिकाः । 'तत्तो' इत्यादि, 'ततः' अनुदीर्णोपरितनसूक्ष्मकिट्टित उदीर्णा मध्यमाऽनुभागकाः सूक्ष्मकिट्टयोऽसंख्येयगुणा भवन्ति, पूर्वोक्तानामनुदीर्णोपरितनसूक्ष्मकिट्टीनामसंख्येयभाग-

प्रमाणत्वाद् , आसां च बहुसंख्येयभागप्रमाणत्वात् । उक्तं च कषायप्राभृतचूर्णौ "हेट्ठा अणुदिण्णाओ थोवाओ, उवरिं अणुदिण्णाओ विसेसाहियाओ । मज्झे उदिण्णाओ सुहुमसांपराइयकिट्टीओ असंखेज्जगुणाओ ।" इति । एवं सूक्ष्मसम्परायगुणस्थानाद्धायाः शेषसमयेष्वपि भावनीयम् , विशेषाभावात् ॥२१२॥

एवंविधिना संख्यातेषु स्थितिघातसहस्रेषु गतेषु मोहनीयस्य चरमस्थितिघातकाले यद्भवति, तद्वक्तुकाम आह

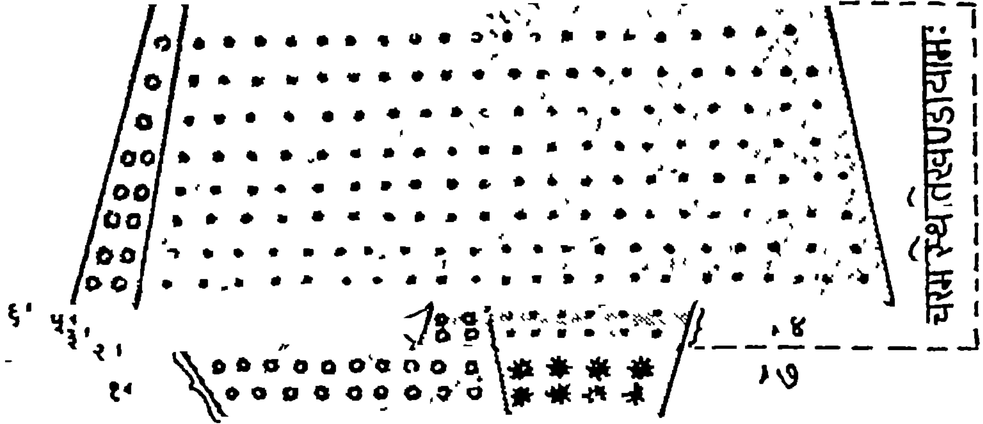
सुहुमद्धाए संखेज्जइभागे सेसगे विणासेइ ।
गुणसेढिसंखभागं अन्तिमखण्डं विघातंतो ॥२१३॥

सूक्ष्माद्धायाः संख्येयतमभागे शेषके विनाशयति ।
गुणश्रेणिसंख्यभागमन्तिमखण्डं विघातयन् ॥ २१३ ॥ इति पदसंस्कारः ।

'सुहुमद्धाए' इत्यादि, संख्यातैः स्थितिघातसहस्रैः 'सूक्ष्माद्धायाः' सूक्ष्मसम्परायगुणस्थानकाद्धायाः 'संख्येयतमभागे शेषके' बहुषु संख्यातभागेषु गतेष्वेकस्मिन् संख्येयतमभागे शेषे 'अन्तिमखण्डं' मोहनीयस्य चरमस्थितिखण्डं 'विघातयन्' विनाशयन् 'गुणश्रेणिसंख्यभागम्' अग्रतो गुणश्रेणिनिक्षेपस्य संख्येयतमभागं 'विनाशयति' घातयति । अभाणि च कषायप्राभृतचूर्णौ–"सुहुमसांपराइयस्स संखेज्जेसु ठिदिखंडयसहस्सेसु गदेसु जमपच्छिमं ठिदिखंडयं मोहणीयस्स, तम्हि ट्ठिदिखंडये उक्कीरमाणे जो मोहणीयस्स गुणसेढिणिक्खेवो, तस्स गुणसेढिणिक्खेवस्स अग्गग्गादो संखेज्जदिभागो आगाइदो ।" इति । भावार्थः पुनरयम् सूक्ष्मसम्परायाद्धायाः संख्येयतमे भागे शेषे मोहनीयस्थितिखण्डमन्तर्मुहूर्तमात्रं घातयति, तथा यः सूक्ष्मसम्परायाद्धातो विशेषाधिको गुणश्रेणिनिक्षेपः प्रागुक्तः, तस्याऽग्रतः संख्येयतमभागमपि घातयति । घातयश्च सूक्ष्मसम्परायाद्धाचरमसमयेऽभिनवगुणश्रेणिशिरो निर्वर्तयति । एवं सूक्ष्मसम्परायजीवश्चरमस्थितिखण्डेन गुणश्रेणिसंख्येयभागप्रमाणनिषेकांस्ततश्च संख्यातगुणानन्यानुपरितननिषेकान् घातयति । तदानीं दलनिक्षेपस्त्वनन्तरवक्ष्यमाणप्रकारेण संभाव्यते, दर्शनमोहक्षपणाधिकारे सम्यक्त्वमोहनीयदलनिक्षेपस्य कषायप्राभृतचूर्णिकारादिभिस्तथाप्रतिपादितत्वात् । अथ दलप्रक्षेपक्रमः मोहनीयचरमस्थितिघाताद्धाप्रथमसमये दलिकमुत्कीर्योदयनिषेके स्तोकं दलं प्रक्षिपति । ततो द्वितीयनिषेकेऽसंख्येयगुणं दलं निक्षिपति, ततोऽपि तृतीयनिषेकेऽसंख्येयगुणम् । एवमसंख्येयगुणक्रमेण तावत्प्रक्षिपति, यावत् सूक्ष्मसम्परायाद्धाचरमनिषेकलक्षणमभिनवश्रेणिशिरः । ततोऽनन्तरनिषेकेऽसंख्येयगुणहीनं दलं ददाति । ततः परं विशेषहीनक्रमेण तावद्ददाति, यावत्पुरातनगुणश्रेणिशिरः । ततः परमनन्तरनिषेकेऽसंख्येयगुणहीनं ददाति । तत ऊर्ध्वं विशेषहीनक्रमेण तावद् ददाति, यावदतीत्यापनाऽप्राप्ता भवति । अयं दलनिक्षेपक्रमस्ता-

वक्तव्यः, यावद् मोहनीयचरमस्थितिघाताद्धाद्विचरमसमयः। चरमसमये तु दलमुत्कीर्योदयनिषेके स्तोकं दलं ददाति, ततोऽसंख्येयगुणं द्वितीयनिषेके ददाति, ततोऽपि तृतीयनिषेकेऽसंख्येयगुणं ददाति, एवमसंख्येयगुणक्रमेण तावद्ददाति, यावत्सूक्ष्मसम्परायाद्धाचरमनिषेकः 卐 ॥२१३॥

सूक्ष्मसम्परायाद्धायाः संख्येयतमभागे शेषे मोहनीयस्थितिघाताद्धाया द्विचरमसमयं यावद् दीयमानदलिकप्ररूपणा



१=सूक्ष्मसम्परायाद्धा, तस्यां चाऽसंख्येयगुणक्रमेण दलं प्रक्षिप्यते। २=गुणश्रेणेरभिनवशिरः।

३=गुणश्रेणिनूतनशिरस उपरितनाऽनन्तरनिषेकः, तस्मिंश्च गुणश्रेणिनूतनशिरसि प्रक्षिप्ताद् दलादसंख्येयगुणहीनं दलं प्रक्षिप्यते। ततः परं विशेषहीनक्रमेण निक्षिप्यते।

४=गुणश्रेणिनिक्षेपस्याऽग्रतः संख्येयतमभागः, स च चरमस्थितिखण्डे घात्यते।

५=गुणश्रेणेः पुरातनशिरः।

६=गुणश्रेणिपुरातनशिरस उपरितनोऽनन्तरनिषेकः,तस्मिंश्च गुणश्रेणिपुरातनशीर्षप्रक्षिप्तदलतोऽसंख्येयगुणहीनं दलं प्रक्षिप्यते। ततः परं विशेषहीनक्रमेण।

• ० ०=अनेन चिह्नेन दीयमान दलं सूचितम्। अनेन चिह्नेन घात्यमानस्थितौ पुरातनसत्तागतं दलं सूचितम्।

*अनेन चिह्नेनाऽघात्यमानस्थितौ पुरातनसत्तागत दलं सूचितम्।

७=मोहनीयचरमस्थितिघाताद्धायाश्चरमसमयः। तदानीं मोहनीयसर्वदलमुत्कीर्य गुणश्रेणिनूतनशीर्षे यावदसंख्येयगुणक्रमेण दलं दीयते, न ततः परम्।

卐 जयधवलाकारैरप्यनेनैव क्रमेण दलिकनिक्षेपो दर्शितः। अक्षराणि त्वेवम्—"संपहि चरिमट्ठिदिखंडयस्स पढमसमये उक्कीरिज्जमाणपदेसग्गस्स सेढिपरूवणं सुत्तसूचिदं वत्तइस्सामो। तं कधं? ताधे चेव पढमफालीदव्वमोकड्डियूण उदये पदेसग्गं थोवं देदि। से काले असंखेज्जगुणं देदि। एवमसंखेज्जगुणाए सेढीए णिक्खिवमाणो गच्छदि, जाव सुहुमसांपराइयचरमसमयो त्ति। एवं च एण्हि मोहणीयस्स गुणसेढिसीसयमिदि घेत्तव्वं। तत्तो उवरिमाणंतरट्ठिदीए असंखेज्जगुणहीणं देदि। तत्तो विसेसहीणं णिक्खिवमाणो गच्छदि जाव चिराणगुणसेढिसीसयं पत्तो त्ति। तदो उवरिमाणंतराए एक्किस्से ट्ठिदीए असंखेज्जगुणहीणं णिक्खिवदि। तत्तो परं सव्वत्थ विसेसहीणं चेव णिक्खिवदि, जाव अप्पणो चरिमट्ठिदिमइच्छावणावलियमेत्तेण अपत्तो त्ति। एवं विदियादिफालीसु वि णिवदमाणियासु एरिसी चेव दिज्जमाणगस्स सेढिपरूवणा णिव्वामोहमणुगंतव्वा, जाव चरिमट्ठिदिखंडयस्स दुचरिमफालि त्ति। पुणो चरिमफालिदव्वं घेत्तूण उदये पदेसग्गं थोवं देदि। से काले असंखेज्जगुणं। एवमसंखेज्जगुणाए सेढीए णिक्खिवमाणो गच्छदि, जाव सुहुमसांपराइयचरिमट्ठिदि त्ति।" इति।

मोहनीयचरमस्थितिखण्डे घातिते यद्भवति, तद्वक्तुकाम आह

चरिमे खंडे णट्ठे तु णत्थि मोहस्स ठिइघाओ ।
ठिइसंतं उण सुहुमद्धापमिअं होइ मोहस्स ॥२१४॥ (उपगीतिः)

चरमे खण्डे नष्टे तु नास्ति मोहस्य स्थितिघातः ।
स्थितिसत्त्वं पुनः सूक्ष्माद्धाप्रमितं भवति मोहस्य ॥२१४॥ इति पदसंस्कारः ।

'चरिमे' इत्यादि, 'चरमे खण्डे' मोहनीयकर्मणश्चरमस्थितिखण्डे नष्टे तु 'मोहस्य' मोहनीयकर्मणः स्थितिघातो 'नास्ति' न भवति, शेषाणां ज्ञानावरणादीनां कर्मणां स्थितिघातादयः पूर्ववत् प्रवर्तन्ते । उक्तं च सप्ततिकाचूर्णौ–"**तओ पभिति मोहस्स ठितिघाओ णत्थि, सेसाणं कम्माणं ठिदिघातादओ पवत्तंति चेव ।**" इति । तथैव कषायप्राभृतचूर्णावपि, नवरं कषायप्राभृतचूर्णिकारैर्ज्ञानावरणादिकर्मणां स्थितिघातादीनां प्रवृत्तिर्न दर्शिता, पूर्वतः प्रवृत्तानां प्रतिषेधाभावेनाऽनुक्तसिद्धत्वात् । अक्षराणि त्वेवम् "**तम्हि ठिदिखंडये उक्किण्णे तदोप्पहुडि मोहणीयस्स णत्थि ठिदिघादो ।**" इति ।

अथ तदानीं स्थितिसत्त्वं प्ररूपयति–'**ठिइसंतं**' इत्यादि, मोहनीयचरमस्थितिखण्डे विनष्टे 'मोहस्य' मोहनीयकर्मणः स्थितिसत्त्वं पुनः 'सूक्ष्माद्धाप्रमितं' शेषसूक्ष्मसम्परायगुणस्थानकाद्धाप्रमाणं 'भवति' जायते, नाधिकम् । न्यगादि च कषायप्राभृतचूर्णौ–"**जत्तियं सुहुमसांपराइयद्धाए सेसं, तत्तियं मोहणीयस्स ठिदिसंतकम्मं सेसं ।**" इति । तदपि पूर्वपूर्वसमयत उत्तरोत्तरसमये एकैकसमयेन हीनं हीनतरं भवति, उदयेनैकैकनिषेकस्याऽनुभवनात् ॥२१४॥

मोहनीयचरमस्थितिखण्डं घातयित्वा सूक्ष्मकिट्टीरुदयेनाऽनुभवतो जीवस्य सूक्ष्मसम्परायगुणस्थानककाले समयाधिकावलिकाशेषे लोभजघन्यस्थित्युदीरणादयः पदार्थाः प्रवर्तन्ते, तान् व्याजिहीर्षुराह

समयाहियआवलिसेसम्मि ठिइउदीरणा जहण्णंते ।
तिण्हं घाईणं बंधो तह संतं मुहुत्तंतो ॥२१५॥
णामदुगस्स अडमुहुत्ता तह तइयस्स बारस मुहुत्ता ।
बंधो संतं तु अघाईण असंखेज्जवासाणि ॥२१६॥

समयाधिकावलिकाशेषे स्थित्युदीरणा जघन्याऽन्ते ।
त्रयाणां घातिनां बन्धस्तथा सत्त्वं मुहूर्तान्तः ॥२१५॥
नामद्विकस्याऽष्टमुहूर्तास्तथा तृतीयस्य द्वादश मुहूर्ताः ।
बन्धः सत्त्वं त्वघातिनामसंख्येयवर्षाणि ॥२१६॥ इति पदसंस्कारः ।

'समया०' इत्यादि, समयाधिकावलिकाशेषे सूक्ष्मसम्परायगुणस्थानकाले "लुक्" (सिद्धहेम० ८-१-११) इति प्राकृतसन्धिलक्षणेन लुप्ताऽऽकारस्य दर्शनात् 'जहण्णा' त्ति' जघन्या स्थित्युदीरणा प्रस्तुतत्वाल्लोभस्य, तदानीमेकनिषेकत उदीरयतः क्षपकस्य संज्वलनलोभस्य जघन्यस्थित्युदीरणा जायत इत्यर्थः । उक्तं च कर्मप्रकृतिचूर्णौ–"समएण अहिगा आवलियो समयाहिआवलिया, ताए समएण अहिगाए आवलियाए 'पढमठितीए उ सेसवेलाए' त्ति अंतरकरणे कए मूलिल्लठी ठितो पढमठितो, उवरिल्ला ठितो वितीयठितो। ताए पढमठितीए समयाहियावलियसेसाए मिच्छत्तस्स तिण्हं वेयाणं चउण्हं संजलणाणं सम्मत्तस्स य जहण्णिया ठितिउदीरणा भवति ।" इति । लोभस्य जघन्यस्थित्युदीरणा भवत्येतदुपलक्षणम् , तेन संज्वलनलोभस्य जघन्यानुभागोदीरणा गुणितकर्मांशस्य च जीवस्य लोभस्योत्कृष्टप्रदेशोदीरणोपलक्ष्येते । अवादि च कषायप्राभृतचूर्ण्यामनुभागोदीरणाऽधिकारे प्रदेशोदीरणाऽधिकारे च–"लोहसंजलणस्स जहण्णाणुभागउदीरणा कस्स ? खवयस्स समयाहियावलियचरिमसमयसकसायस्स । ××××× लोहसंजलणस्स उक्कस्सिया पदेसुदीरणा कस्स ? खवगस्स समयाहियावलियचरिमसमयसकसायस्स।" इति । तथैव कर्मप्रकृतिचूर्णावप्यनुभागोदीरणाऽधिकारे प्रदेशोदीरणाधिकारे च–"खवणाए' त्ति खवणाए अब्भुट्ठियस्स 'विग्घकेवलसंजलणाण य सनोकसायाणं सयसयउदीरणंते' त्ति पंचविहअंतराइय-केवलणाण-केवलदंसणावरणचउण्हं संजलणाणं णवण्हं णोकसायाणं एयासिं वीसाए पगईणं अप्पप्पणो उदीरणते जहण्णिया अणुभागउदीरणा होति ।××××× घादिकम्माणं सव्वेसिं अणुभागउदीरणम्मि जस्स जस्स जो जो जहण्णसामी भणितो, सो चेव उक्कोसपदेसउदीरणाए उक्कोससामी गुणियकम्मंसिगो य जाणियव्वो ।" इति ।

तदानीमेव लोभस्यैकसमयप्रमाणो जघन्यस्थितिसंक्रमो जघन्याऽनुभागसंक्रमश्च जायते । उक्तं च कषायप्राभृतचूर्णौ स्थितिसंक्रमाधिकारेऽनुभागसंक्रमाधिकारे च–"लोभसंजलणस्स जहण्णट्ठिदिसंकमो कस्स ? आवलियसमयाहियसकसायस्स खवयस्स । ××× लोहसंजलणस्स जहण्णाणुभागसंकामओ को होइ ? समयाहियावलियचरिमसमयसकसायो खवगो ।" इति ।

निश्चयनयमाश्रित्य सूक्ष्मसम्परायगुणस्थानककाले समयाधिकाऽऽवलिकाशेषे व्यवच्छिद्यमाना संज्वलनलोभस्योदीरणा व्यवच्छिन्ना । ततः परं केवलेन शुद्धोदयेन लोभसूक्ष्मकिट्टीरनुभवन् क्रमेण सूक्ष्मसम्परायगुणस्थानचरमसमयं प्राप्नोति । अभ्यधायि च सप्ततिकाचूर्णौ–"तं ओव-

ट्ठियठिर्ति उदओदीरणाहिं वेदेंतो गओ ताव, जाव समयाहियावलियसेस त्ति । तम्मि समए उदीरणा पुव्वुत्ता फिट्टा । उदएण चेव वेदेति ताव, जाव चरिमसमओ त्ति ।"

तदानीं च लोभस्य जघन्याऽनुभागोदयो गुणितकर्मांशस्य च संज्वलनलोभस्योत्कृष्टप्रदेशोदयो भवति । न्यगादि च कर्मप्रकृतिटीकायां श्रीमन्मलयगिरिपादैरनुभागोदयाधिकारे प्रदेशोदयाधिकारे च-"नवरं ज्ञानावरणपञ्चकाऽन्तरायपञ्चकदर्शनावरणचतुष्टयवेदत्रयसंज्वलनलोभसम्यक्त्वानामुदीरणाऽव्यवच्छेदे सति परत आवलिकां गत्वा = अतिक्रम्य तस्या आवलिकायाश्चरमसमये जघन्याऽनुभागोदयो वाच्यः । ××× तथा मोहानां = मोहनीयप्रकृतीनां सम्यक्त्वसंज्वलनचतुष्कवेदत्रयाख्यानामष्टानां गुणितकर्मांशस्य क्षपकस्य स्वस्वोदयचरमसमये उत्कृष्टप्रदेशोदयः ।" इति ।

अथ सूक्ष्मसम्परायगुणस्थानकचरमसमये स्थितिबन्धं स्थितिसत्त्वं चाभिधातुकाम आह-'अंते' इत्यादि, 'अन्ते' सूक्ष्मसम्परायगुणस्थानकाद्धाचरमसमये 'त्रयाणां घातिनां' मोहनीयबन्धस्य व्यवच्छिन्नत्वाज्ज्ञानावरणदर्शनावरणाऽन्तरायाणां 'बन्धः' स्थितिबन्धः 'तथा' तथाशब्दः समुच्चयार्थकः 'सत्त्वं' स्थितिसत्त्वं 'मुहूर्तान्तः' अन्तर्मुहूर्तमात्रं भवति । भावार्थः पुनरयम्-अनिवृत्तिबादरसम्परायगुणस्थानकाद्धायाश्चरमसमये घातित्रयस्य यः स्थितिबन्धोऽन्तरहोरात्रप्रमाण आसीत्, स क्रमेण हीयमानः सम्प्रत्यन्तर्मुहूर्तं जायते । स्थितिसत्त्वं पुनरनिवृत्तिकरणबादरसम्परायचरमसमये संख्येयवर्षाण्यासीत्, तत्क्रमेण संख्यातसहस्रैः स्थितिघातैर्हीयमानमिदानीमन्तर्मुहूर्तप्रमाणं जायते । प्रत्यपादि च कषायप्राभृतचूर्णौ-"जाधे चरिमसमयसुहुमसांपराइयो जादो, ताधे ××× तिण्हं घादिकम्माणं ट्ठिदिबंधो अंतोमुहुत्तो । तिण्हं घादिकम्माणं ट्ठिदिसंतकम्मं अंतोमुहुत्तं ।" इति । अयं च चरमस्थितिबन्धो ज्ञानावरणपञ्चकस्य दर्शनावरणचतुष्कस्याऽन्तरायपञ्चकस्य च सर्वजघन्यो ज्ञातव्यः । उक्तं च कर्मप्रकृतिटीकायां श्रीमदुपाध्यायपुङ्गवैः-"ज्ञानावरणपञ्चकदर्शनावरणचतुष्काऽन्तरायपञ्चकसातवेदनीययशःकीर्त्युच्चैर्गोत्राणां सूक्ष्मसम्परायक्षपकश्चरमस्थितिबन्धे वर्तमानो जघन्यस्थितिबन्धकः, तद्बन्धकेष्वस्यैवाऽतिविशुद्धत्वात् ।" इति । तथा सूक्ष्मसम्परायचरमसमय एव ज्ञानावरणादीनां चतुर्दशानां जघन्याऽनुभागबन्धो जायते । अवादि च कर्मप्रकृतिटीकायाम्-"ज्ञानावरणपञ्चकदर्शनावरणचतुष्टयाऽन्तरायपञ्चकरूपाणां चतुर्दशानां प्रकृतीनां क्षपकः स्वबन्धव्यवच्छेदसमये वर्तमानः समयमेकं तथा, तद्बन्धकेषु तस्य विशुद्धतमत्वात् ।" इति । इदमत्राऽवधेयम् सूक्ष्मसम्परायचरमसमये केवलज्ञानावरणकेवलदर्शनावरणयोरनुभागबन्धो जघन्यो भवन्नपि सर्वघाती भवति, बन्धे तयोरनुभागस्य देशघातित्वाऽनुपलम्भात् । शेषाणां द्वादशानां प्रकृतीनामनुभागबन्धो देशघाती भवति, अनिवृत्तिकरणेऽपि देशघातित्वप्रतिपादनात् ।

अथाऽघातिकर्मणां स्थितिबन्धं भणति–'णामदुगस्स' इत्यादि, 'नामद्विकस्य' नामगोत्ररूपस्य 'बन्धः' स्थितिबन्धः सूक्ष्मसम्परायगुणस्थानकचरमसमयेऽष्टमुहूर्तो भवति, योऽनिवृत्तिबादरसम्परायगुणस्थानकचरमसमयेऽन्तर्वर्षप्रमाण आसीत्, स क्रमेण हीयमान इदानीमष्टमुहूर्तप्रमाणो जायत इत्यर्थः । 'तइयस्स' इत्यादि, 'तृतीयस्य' वेदनीयस्य स्थितिबन्धो 'द्वादश मुहूर्ताः' द्वादशमुहूर्तप्रमाणो भवति । उक्तं च कषायप्राभृतचूर्णौ "जाधे चरिमसमयसुहुमसांपराइयो जादो, ताधे णामागोदाणं ठिदिबंधो अट्ठ मुहुत्ता, वेदणीयस्स ठिदिबंधो बारस मुहुत्ता ।" इति ।

अयं स्थितिबन्धो यशःकीर्त्युच्चैर्गोत्रयोः सातवेदनीयस्य च सर्वजघन्यो ज्ञातव्यः ।

तदानीमेव च यशःकीर्त्युच्चैर्गोत्रयोः सातवेदनीयस्य च सर्वोत्कृष्टाऽनुभागबन्धो जायते । प्रतिपादितं च कर्मप्रकृतिटीकायाम्–"तथाऽप्रमत्तसंयतो देवायुष उत्कृष्टाऽनुभागस्वामी सर्वेभ्यस्तद्बन्धकेभ्योऽस्याऽतिविशुद्धत्वात् । सातवेदनीययशःकीर्त्युच्चैर्गोत्राणां सूक्ष्मसम्परायचरमसमये वर्तमानस्तथा, तद्बन्धकेभ्योऽस्यैवातिविशुद्धत्वात् ।" इति ।

'संतं' इत्यादि, सूक्ष्मसम्परायगुणस्थानकचरमसमये 'सत्त्वं' स्थितिसत्त्वं तुर्वाक्यभेदे 'अघातिनां' नामगोत्रवेदनीयरूपाणां कर्मणाम् 'असंख्येयवर्षाणि' असंख्येयवर्षमात्रं भवति ।

तदानीं यथासमयं चतुरो वारानुपशमश्रेणिमारुह्य क्षपकश्रेणिं शीघ्रं प्रतिपन्नस्य गुणितकर्मांशस्य जीवस्य सातवेदनीययशःकीर्त्युच्चैर्गोत्राणामुत्कृष्टप्रदेशसत्त्वं भवति । यदुक्तं कर्मप्रकृतिचूर्णौ–"गुणियकम्मंसिगो चत्तारि वारे कसाए उवसामेत्ति, उवसामेंतस्स बहुगा पुग्गला लब्भंतित्ति काउं ततो खिप्पमेव खवणाए अब्भुट्ठितो, तस्स सुहुमरागस्स सुहुमरागचरिमसमते वट्टमाणस्स साय-जस-उच्चागोयाणं उक्कोसं पदेससंतं ।" इति । तथा तदानीमेव गुणितकर्मांशस्य जीवस्य निद्राद्विकाऽसातवेदनीय-नीचैर्गोत्र-प्रथमवर्जसंस्थानपञ्चकाऽनाद्यसंहननपञ्चकाऽशुभवर्णादिनवकोपघाताऽप्रशस्तविहायोगत्यपर्याप्ताऽस्थिराऽशुभ-दुर्भग-दुःस्वराऽनादेयाऽयशःकीर्तिरूपाणां द्वात्रिंशत्प्रकृतीनामुत्कृष्टप्रदेशसंक्रमो जायते । उक्तं च कर्मप्रकृतिचूर्णौ "कम्मचउक्के' दंसणावरणवेतणिज्जणामगोतेसु 'असुभाणं अबज्झमाणीण' णिद्दादुगअसातावेयणिज्जआदिल्लवज्जसंठाणसंघयणं कुवण्णणावगं उवघातअपसत्थविहायगतिअपज्जत्तगअथिरादिछक्कणीतागोत एयासिं बत्तीसाए कंमाणं खवगस्से 'सुहुमरागंते' सुहुमरागस्स चरिमसमए उक्कोसो पदेससंकमो, गुणितकंमंसितस्स गुणसंकमेण लब्भति संछोभ इत्यर्थः ।" इति ।

निश्चयनयमाश्रित्य व्यवच्छिद्यमानः सूक्ष्मसम्परायचरमसमय एव ज्ञानावरणपञ्चकदर्शनावरणचतुष्काऽन्तरायपञ्चकोच्चैर्गोत्रयशःकीर्त्तीनां बन्धो व्यवच्छिन्नः, एवं व्यवच्छिद्यमाने मोहनीयस्योदयसत्त्वेऽपि व्यवच्छिन्ने ॥२१५-२१६॥

यन्त्रकम् (गाथा-२१५-२१६)

सूक्ष्मसम्परायाद्धायां समयाधिकावलिकाशेषायाम्

(१) संज्वलनलोभस्य जघन्यस्थित्युदीरणा ।
(२) संज्वलनलोभस्य जघन्या-ऽनुभागोदीरणा ।
(३) गुणितकर्मांशस्य जीवस्य लोभस्योत्कृष्टप्रदेशोदीरणा ।
(४) सञ्ज्वलनलोभस्य जघन्यस्थितिसंक्रम ।
(५) संज्वलनलोभस्य जघन्या-ऽनुभागसंक्रम ।
(६) निश्चयनयमाश्रित्य संज्वलनलोभस्योदीरणा व्यवच्छिद्यमाना व्यवच्छिन्ना ।

सूक्ष्मसम्परायाद्धायाश्चरमसमये

(७) संज्वलनलोभस्य जघन्याऽनुभागोदय ।
(८) गुणितकर्मांशजीवस्य सञ्ज्वलनलोभस्योत्कृष्टप्रदेशोदय ।
(९) ज्ञानावरण-दर्शनावरणाऽन्तरायाणां स्थितिबन्धोऽन्तर्मुहूर्तमात्र , स च सर्वजघन्य ।
(१०) ज्ञानावरणदर्शनावरणाऽन्तरायाणां स्थितिसत्त्वमन्तर्मुहूर्तमात्रम् ।
(११) ज्ञानावरणदर्शनावरणा-ऽन्तरायाणां जघन्यो-ऽनुभागबन्ध ।
(१२) नामगोत्रयोरष्टमुहूर्तमात्र (८) स्थितिबन्ध ।
(१३) वेदनीयस्य द्वादशमुहूर्तप्रमाण (१२) स्थितिबन्ध ।
(१४) यशःकीर्त्युच्चैर्गोत्रयो सातवेदनीयस्य च सर्वजघन्यस्थितिबन्ध ।
(१५) यशःकीर्त्युच्चैर्गोत्रसातवेदनीयानामुत्कृष्टा-ऽनुभागबन्ध ।
(१६) नामगोत्रवेदनीयानां स्थितिसत्त्वमसङ्ख्येयवर्षाणि ।
(१७) गुणितकर्मांशजीवस्य यशःकीर्त्युच्चैर्गोत्रसातवेदनीयानामुत्कृष्टप्रदेशसत्त्वम् ।
(१८) गुणितकर्मांशजीवस्य निद्राद्विकाऽसातवेदनीय-नीचैर्गोत्र-प्रथमवर्जसंस्थानपञ्चकप्रथमवर्जसंहननपञ्चका-ऽशुभवर्णादिनवकोपघाताऽप्रशस्तविहायोगत्यपर्याप्ता-ऽस्थिरा-ऽशुभ-दुर्भग-दुःस्वरा-ऽनादेया-ऽयशःकीर्त्तिरूपाणां द्वात्रिंशत्प्रकृतीनाम (३२) उत्कृष्टप्रदेशसंक्रम ।
(१९) निश्चयनयमाश्रित्य-(अ) मोहनीयस्योदयसत्त्वे व्यवच्छिद्यमाने व्यवच्छिन्ने ।
(ब) ज्ञानावरणपञ्चक दर्शनावरणचतुष्का-ऽन्तरायपञ्चकोच्चैर्गोत्रयशःकीर्त्तीनां बन्धोऽपि व्यवच्छिद्यमानो व्यवच्छिन्न ।

अथ किट्टिक्षपणां निगमयन्नाह

खविआ एगारस किट्टी अणुहवणेण संकमेणं य ।
दुखणूणदुआली संकमेण य अणुहवणेण सुहुमाओ ॥२१७॥ (गीतिः)

क्षपिता एकादश किट्टयोऽनुभवनेन संक्रमेण च ।
द्विक्षणोनद्वयावलिके संक्रमेण चाऽनुभवनेन सूक्ष्मा ॥२१६॥ इति पदसंस्कार ।

'खविआ' इत्यादि, 'क्षपिताः' विनाशिताः' एकादश किट्टयः' क्रोधप्रथमसंग्रहकिट्टिप्रभृति-लोभद्वितीयसंग्रहकिट्टिपर्यवसाना एकादशसंख्यकाः संग्रहकिट्टयः 'अनुभवनेन' विपाकोदयस्वरूपेण वेदनेन 'संक्रमेण च' यथासंभवमन्यसंग्रहकिट्टिषु संक्रान्त्या च । इदमुक्तं भवति-क्रोधप्रथम-संग्रहकिट्टयादि वेदनाद्धाप्रथमसमयतः प्रभृति स्वस्ववेदनाद्धाचरमसमयं यावत् तत्तत्संग्रहकिट्टय-वान्तरकिट्टीरुदयेन वेदयमानोऽन्यसंग्रहकिट्टयवान्तरकिट्टितया च परिणमयन् क्षपयति स्म, एतच्च प्राग् विस्तरेण परिभावितम् । 'दुखपूण०' इत्यादि, 'द्विक्षणोनद्व्यावलिके' द्विसमयोनद्व्यावलि-कानद्धाः किट्टयः, स्वस्ववेदनाद्धायां क्षीणायामपि या द्विसमयोनद्व्यावलिकाबद्धाः किट्टयस्तेतत्संग्रह-किट्टिस्वरूपेण तिष्ठन्ति स्म, ता इत्यर्थः, 'संक्रमेण' वेद्यमानसंग्रहकिट्टौ संक्रमेण क्षपिताः, स्वस्व-वेदनाद्धायां क्षीणायां द्विसमयोनद्व्यावलिकानद्धकिट्टीनां संक्रमेणैव क्षपणासंभवात् । चकारोऽनुक्त-समुच्चयार्थको भिन्नक्रमश्च, स चैकादशसंग्रहकिट्टिप्रथमस्थितिचरमावलिकागतावान्तरकिट्टीर्लोभ-तृतीयसंग्रहकिट्टिश्चाऽपि संक्रमेणैव क्षपयति स्मेति सञ्चिनोति । 'अनुभवनेन' विपाकोदयस्वरूपेण वेदनेन 'सूक्ष्माः' सूक्ष्मकिट्टयः क्षपिताः, न तु परत्र संक्रमेण, पतद्ग्रहाऽभावात् । उक्तं च कषाय-प्राभृते

"पढमं विदियं तदियं वा वेदेंतो वि संछुहंतो वा ।
चरिमं वेदयमाणो खवेदि उभएण सेसाओ ॥१॥

एवं तच्चूर्णावपि-" पढमं कोहस्स किट्टिं वेदेंतो वा खवेदि, अधवा अवेदंतो संछुहंतो। जे दो आवलियबंधा दुसमयूणा, ते अवेदेंतो खवेदि, केवलं संछुहंतो चेव । पढमसमयवेदगप्पहुडि जाव तिस्से किट्टीए चरिमसमयवेदगो त्ति ताव एदं किट्टिं वेदेंतो खवेदि । एवमेदं पि पढमकिट्टिं दोहिं पयारेहिं खवेदि-किंचि कालं वेदेंतो, किंचि कालमवेयेंतो संछुहंतो । जहा पढमकिट्टिं खवेदि, तहा विदियं तदियं चउत्थं जाव एक्कारसमि त्ति, बारसमीए बादरसांपराइयकिट्टीए अव्ववहारो । 'चरिमं वेदेमाणो' त्ति अहिप्पाओ-जा सुहुमसांपराइयकिट्टी, सा चरिमा, तदो तं चरिम-किट्टिं वेदेंतो खवेदि, ण संछुहंतो । सेसाणं किट्टीणं दो दो आवलियबंधे दुसमयूणे चरिमे संछुहंतो चेव खवेदि, ण वेदेंतो । चरिमकिट्टिं वज्ज दो आवलियदुसम-यूणबंधे च वज्ज जं सेसकिट्टीणं, तमुभएण खवेदि ।" इति ॥२१७॥

मोहनीयस्य सर्वथा क्षपणां व्याहृत्य किट्टिवेदनकालस्या-ऽल्पबहुत्वं भणति, अन्यथा किट्टिवेदनकालानुगमो न स्यात् , किं क्रोधप्रथमसंग्रहकिट्टिवेदनकालोऽल्प आसीत् ? उत सूक्ष्म-किट्टिवेदनकालः ?आहोस्विद् इतरसंग्रहकिट्टिवेदनकाल इति ?

सुहुमगकिट्टीवेयणकालत्तो जाव कोहपढमाए ।
वेयणकालं कालो अहिओ पच्छाणुपुव्वीए ॥२१८॥

सुहुमकिट्टिवेदनकालतो यावत् क्रोधप्रथमाया ।
वेदनकालं कालोऽधिक पश्चानुपूर्व्या ॥२१८॥ इति पदसंस्कार. ।

'सुहुम०' इत्यादि, प्राकृतत्वात् स्वार्थिकः कप्रत्ययः, सूक्ष्मकिट्टिवेदनकालतः प्रभृति 'क्रोधप्रथमायाः' क्रोधप्रथमसंग्रहकिट्टया वेदनकालं यावत् 'कालः' किट्टिवेदनकालः 'अधिको' विशेषाधिको भवति । इदमुक्तं भवति लोभस्य सूक्ष्मकिट्टिवेदनाद्धा सर्वस्तोका भवति, ततो लोभस्य द्वितीयसंग्रहकिट्टिवेदनाद्धा विशेषाधिकाऽभिधातव्या, आधिक्यं च संख्येयतमभागेन बोद्धव्यम् । एवमग्रेऽपि । ततोऽपि लोभस्य प्रथमसंग्रहकिट्टिवेदनाद्धा विशेषाधिका वाच्या । ततो मायायास्तृतीयसंग्रहकिट्टिवेदनाद्धा विशेषाधिका वक्तव्या । ततो मायाद्वितीयसंग्रहकिट्टिवेदनाद्धा विशेषाधिकाऽभिधेया । ततो मायाप्रथमसंग्रहकिट्टिवेदनाद्धा विशेषाधिका निगदितव्या । ततो मानतृतीयसंग्रहकिट्टिवेदनाद्धा विशेषाधिका वक्तव्या । ततो मानद्वितीयसंग्रहकिट्टिवेदनाद्धा विशेषाधिका कथयितव्या । ततो मानप्रथमसंग्रहकिट्टिवेदनाद्धा विशेषाधिकाऽभिधातव्या । ततः क्रोधतृतीयसंग्रहकिट्टिवेदनाद्धा विशेषाधिका भणितव्या । ततः क्रोधद्वितीयसंग्रहकिट्टिवेदनाद्धा विशेषाधिका व्याहर्तव्या । ततोऽपि क्रोधप्रथमसंग्रहकिट्टिवेदनाद्धा विशेषाधिका प्ररूपयितव्या । यदुक्तं कषायप्राभृतचूर्णौ—**पच्छिमकिट्टिमंतोमुहुत्तं वेदयदि, तिस्से वेदगकालो थोवो, एक्कारसमोए किट्टीए वेदगकालो विसेसाहिओ, दसमोए किट्टीए वेदगकालो विसेसाहिओ, णवमोए किट्टीए वेदगकालो विसेसाहिओ। अट्ठमीए किट्टीए वेदगकालो विसेसाहिओ। सत्तमोए किट्टीए वेदगकालो विसेसाहिओ, छट्ठीए किट्टीए वेदगकालो विसेसाहिओ, पंचमोए किट्टीए वेदगकालो विसेसाहिओ, चउत्थीए किट्टीए वेदगकालो विसेसाहिओ, तदियाए किट्टीए वेदगकालो विसेसाहिओ, विदियाए किट्टीए वेदगकालो विसेसाहिओ, पढमाए किट्टीए वेदगकालो विसेसाहिओ। विसेसो संखेज्जदिभागो।"** इति ।

आवश्यकादिग्रन्थाभिप्रायेण मोहनीयस्य क्षपणेत्थं प्रतिपादनीया

तथया हास्यषट्कस्य क्षपणातः परं पुरुषवेदं खण्डत्रयं करोति । तत्र खण्डद्वयं युगपत्क्षपयति, तृतीयखण्डं तु संज्वलनक्रोधे प्रक्षिपति । ततः संज्वलनक्रोधं खण्डत्रयं करोति । द्वे खण्डे युगपत्क्षपयति, तृतीयखण्डं तु माने प्रक्षिपति । ततः संज्वलनमानं खण्डत्रयं करोति । खण्डद्वयं युगपत् क्षपयति, एकखण्डं तु मायायां प्रक्षिपति । ततः संज्वलनमायां त्रीणि खण्डानि करोति, खण्डद्वयं युगपत्क्षपयति, एकखण्डं तु संज्वलनलोभे प्रक्षिपति । ततः संज्वलनलोभं खण्डत्रयं करोति । द्वे खण्डे युगपत् क्षपयति । एकखण्डं तु संख्येयानि खण्डानि करोति, तेभ्य एकं संख्येयतमखण्डं मुक्त्वा शेषाणि सर्वखण्डानि पृथक् पृथक् कालभेदेन क्षपयति बादरसम्परायः । ततः सूक्ष्मसम्परायगुणस्थानकवर्ती क्षपक एकं संख्येयतमभागमसंख्येयानि खण्डानि करोति,

तान्यपि समये समय एकैकं क्षपयति । क्षपितलोभश्च यथाख्यातचारित्री छद्मस्थवीतरागो भवति ।
४ अक्षराणि त्वेवम्- "ताहे णपुंसगवेदं, ताहे इत्थिवेदं, ताहे छक्कं हास-रति-अरति-भय-सोग-दुगंछाओ, ताहे पुमवेदं तिन्नि भागे करेति । दो भागे जुगवं, एगं संजलणकोहे छुभति । ताहे संजलणकोहं तिन्नि भागे करेति, दो भागे जुगवं खवेति, एगं भागं संजलणे माणे छुभइ । ताहे तं पि तिन्नि भागे करेति । दो भागे जुगवं खवेति । एगं संजलणमायाए छुहइ, ताहे तं पि तिन्नि खंडाइ करेति, दो भागे जुगवं खवेति, एगं संजलणे लोमे छुहइ, ताहे तं पि तिन्नि भागे करेति, दो भागे जुगवं खवेति, एगं भागं संखेज्जाइं खंडाइं करेति । एत्थ बादरसंपरायो खवओ ताहे खवेति, (एगं संखिज्जइमं भागं मोत्तूण सव्वं खवेति) जं संखेज्जतिमं खंडं, तं असंखेज्जे भागे करेति । तेऽवि कमेण खवेति, तत्थ खवगो सुहुमसंपराओ । जाहे तं पि खवितं भवति, ताहे खवगणियण्ठो लब्भति ।" इति ॥२१८॥

सूक्ष्मसम्परायगुणस्थानकं यावदेवस्तादुक्ता सर्वा प्ररूपणा पुरुषवेदक्रोधोदयेन प्रतिपन्नस्य ज्ञातव्या । क्षपकश्रेणिं पुनः कश्चिज्जन्तुः पुरुषवेदक्रोधोदयेन प्रतिपद्यते, कश्चित्पुनः पुरुषवेदमानोदयेना-ऽऽरोहति, अन्यः पुरुषवेदमायोदयेन, इतरः पुरुषवेदलोभोदयेन, परस्तु स्त्रीवेदक्रोधोदयेन । पुरुषवेदोदयवत् स्त्रीवेदोदयस्यापि चत्वारो विकल्पा वक्तव्याः, एवं नपुंसकवेदोदयस्या-ऽपि चत्वारो विकल्पा भणितव्याः । इत्थं सर्वसंख्यया विकल्पा द्वादश भवन्ति । तत्र सूक्ष्मसम्परायगुणस्थानकं यावत् पुरुषवेदक्रोधोदयेन क्षपकश्रेणिं प्रतिपन्नस्य मोहनीयक्षपणाविधिर्दर्शितः । सम्प्रति भिन्नभिन्नकषायोदयेन भिन्नभिन्नवेदोदयेन च क्षपकश्रेणिं प्रतिपद्यमानानां क्रियाभेदो वक्तव्यः, अन्यथा तन्निर्णयो न स्यात् । न च त्रिकालमाश्रित्य सर्वक्षपकाणामनिवृत्तिकरणे परिणामसादृश्यात् क्रियाभेदः कथं घटेत् ? इति वाच्यम्, करणपरिणामानां सादृश्येऽपि भिन्नभिन्नवेदकषायोदयलक्षणसहकारिकारणोपलम्भेन क्रियाभेदे विरोधा-ऽभावात् । तत्र सर्वेषां क्षपकाणां पुरुषवेदादिभिः क्रोधादिभिश्च क्षपकश्रेणिं प्रतिपन्नानामन्तरकरणक्रियातः प्राक् कश्चिदपि भेदो नास्ति । उक्तञ्च कषायप्राभृतचूर्णौ-"अंतरे अकदे णत्थि णाणत्तं ।" इति अन्तरकरणे क्रियमाणे यो भेद उपलभ्यते, तं प्रदिदर्शयिषुः प्रथमं तावत् प्रथमस्थितिभेदमाविष्करोति

माणादीहिं चडिआणं पढमठिई उ माणपहुडीणं ।
कोहादिगदुतिखवणद्धाजुअकोहपढमठिइपमाणा ॥२१९॥ (गीतिः)

मानादिभिरारूढाना प्रथमस्थितिस्तु मानप्रभृतीनाम् ।
क्रोधाद्येकद्वित्रिक्षपकाद्धायुतक्रोधप्रथमस्थितिप्रमाणा ॥२१९॥ इति पदसंस्कार ।

'माणा०' इत्यादि, 'मानादिभिः' मानमायालोभलक्षणैः कषायैः' आरूढानां' क्षपकश्रेणिं

प्रतिपन्नानां क्षपकाणां 'मानप्रभृतीनां' मान-माया-लोभरूपाणां कषायाणां प्रथमस्थितिस्तु 'क्रोधाद्येक-द्वि-त्रिक्षपणाद्धायुतक्रोधप्रथमस्थितिप्रमाणा' क्रोधादीनां—क्रोध-मान-मायानाम् एक-द्वि-त्रिक्षपणाद्धायुक्तक्रोधप्रथमस्थितिप्रमिता भवति । इदमुक्तं भवति—एकस्य—क्रोधस्य याऽन्तर्मुहूर्तप्रमाणा क्षपणाद्धा, तया युक्ताऽन्तरकरणे क्रियमाणे क्रोधप्रथमस्थितिर्यावती भवति, तावती मानोदयेन क्षपकश्रेणिं समारुढस्य जीवस्य मानस्य प्रथमस्थितिर्भवति ।

ननु क्रोधोदयारुढः क्रोधप्रथमस्थितिं वेदयन्नेव यथायोग्यं संक्रमेण वेदनेन च क्रोधसंग्रहकिट्टित्रयं क्षपयति । तेन क्रोधक्षपणाद्धायाः क्रोधप्रथमस्थितावेवा-ऽन्तर्भावसम्भवात् क्रोधक्षपणाद्धायुतक्रोधप्रथमस्थितिप्रमाणा मानप्रथमस्थितिरित्यत्र क्रोधक्षपणाद्धायुतेति विशेषणस्य वैयर्थ्येना-ऽनुपादेयत्वमिति चेत्, नैवम्, यतोऽन्तरकरणे क्रियमाणे क्रोधोदयाऽऽरूढस्य जीवस्याऽन्तरकरणस्याऽधस्ताद् यावती क्रोधस्थितिर्भवति, यस्यां च स्थितोऽन्तरकरणं कृत्वा ततो यथाक्रमं वेदत्रिकं क्षपयित्वा-ऽश्वकर्णकरणाद्धां च समाप्य किट्टिकरणाद्धायाश्चरमसमयं प्राप्नोति, तावती स्थितिः क्रोधप्रथमस्थितिरत्र विवक्षिता । द्वितीयस्थितितो दलं गृहीत्वा क्रोधसंग्रहकिट्टित्रयस्य यथाक्रमं प्रथमस्थितिं कृत्वा वेदयन् सङ्क्रमेण यावता कालेन क्रोधं क्षपयति, तावान् कालस्तु क्रोधक्षपणाद्धा व्यपदिश्यते । एवमग्रेऽपि मानादीनां क्षपणाद्धा व्याख्येया । इत्थमन्तरकरणक्रियाप्रारम्भप्रथमसमयप्रभृतिकिट्टिकरणचरमसमयपर्यवसानाद्धा क्रोधप्रथमस्थितिः, क्रोधप्रथमसंग्रहकिट्टिवेदनाद्धाप्रथमसमयप्रभृतितृतीयसंग्रहकिट्टिवेदनाद्धाचरमसमयपर्यवसाना तु क्रोधक्षपणाद्धेति विवेकः, तेन क्रोधक्षपणाद्धा क्रोधप्रथमस्थितौ ना-ऽन्तर्भवति । अनन्तर्भावाद् न विशेषणस्य वैयर्थ्यम्, अवैयर्थ्याच्च नाऽनुपादेयतेत्यलं प्रसङ्गेन ।

मानोदयारुढः क्रोधक्षपणाद्धायुक्तक्रोधप्रथमस्थितिप्रमाणां मानप्रथमस्थितिं वेदयन् यथाक्रमं वेदत्रयस्य क्रोधस्य च क्षपणामश्वकर्णकरणाद्धां किट्टिकरणाद्धां च परिसमापयति । तस्य जीवस्य क्रोधस्य प्रथमस्थितिर्न भवति । यदाहुः कषायप्राभृतचूर्णौ—"अ तरकरणे कदे कोहस्स पढमट्ठिदी णत्थि, माणस्स अत्थि । सा केम्महंतो ? जद्देही कोहेण उवट्ठिदस्स कोहस्स पढमट्ठिदी कोहस्स चेव खवणद्धा, तद्देही चेव एगाहंती माणेण उवट्ठिदस्स माणस्स पढमट्ठिदी ।" इति ।

मायोदयेन क्षपकश्रेणिं समारुढस्य जीवस्य मायायाः प्रथमस्थितिः क्रोधमानक्षपणाद्धायुक्तक्रोधप्रथमस्थितिप्रमिता भवति । क्रोधक्षपणाद्धा प्राग् व्याख्याता । मानसंग्रहकिट्टित्रयं वेदनेन संक्रमेण च यावता कालेन क्षपयति, तावान् कालो मानक्षपणाद्धा व्यपदिश्यते । इत्थं क्रोधस्य क्षपणाद्धा मानस्य क्षपणाद्धा क्रोधोदयेन चाऽऽरूढस्य क्रोधप्रथमस्थितिरित्येतत्त्रयप्रमाणा मायोदयेन समारुढस्य मायायाः प्रथमस्थितिर्भवति । उक्तञ्च कषायप्राभृतचूर्णौ—"कोहेण उवट्ठिदस्स

जम्महंतो कोहस्स पढमट्ठिदी, कोहस्स चेव खवणाद्धा माणस्स च खवणाद्धा, मायाए उवट्ठिदस्स एम्महंतो मायाए पढमट्ठिदी ।" इति ।

लोभोदयेन क्षपकश्रेणिं समधिगतस्य जन्तोर्लोभस्य प्रथमस्थितिः क्रोध-मान-माया-सम्बन्धिक्षपणाद्धा-ऽन्वितक्रोधप्रथमस्थितिप्रमाणा भवति । प्रत्यपादि च कषायप्राभृतचूर्णौ—"जद्देहो कोहेण उवट्ठिदस्स कोहस्स पढमट्ठिदी, कोहस्स माणस्स मायाए च खवणाद्धा, तद्देहो लोभेण उवट्ठिदस्स पढमट्ठिदी ।" इति। अत एव द्वाचत्वारिंशत्तमगाथोक्ता-ल्पबहुत्वं सूपपद्यते ॥२१९॥

अथ मानादिकषायोदयेन प्रतिपन्नानां क्षपकाणां क्रियाभेदमभिधित्सुराह

इग-दु-ति-खवणं किच्चा कमेण हयकण्णकिट्टिकरणाइं ।
माणाईहिं चडिओ करइ विणासइ तओ सेसं ॥२२०॥

एक-द्वि-त्रि-क्षपणा कृत्वा क्रमेण हयकर्ण-किट्टिकरणे ।
मानादिभिरारूढ करोति विनाशयति ततः शेषम् ॥२२०॥ इति पदसंस्कार ।

'इगदु०' इत्यादि, तत्र 'मानादिभिः' मानमायालोभलक्षणैः कषायैः 'आरूढः' क्षपकश्रेणिं प्रतिपन्नः 'एक-द्वि-त्रि-क्षपणाम्' एकश्च द्वौ च त्रयश्चेत्येकद्वित्रयः, तेषां क्षपणा, ताम् , ततश्चायमर्थः—एकस्य-क्रोधस्य, द्वयोः-क्रोधमानयोः, त्रयाणां-क्रोधमानमायानां क्षपणां-विनाशं 'कृत्वा' विधाय 'क्रमेण हयकर्णकिट्टिकरणे' क्रमेणाऽश्वकर्णकरणं किट्टिकरणं च करोति 'विणासइ' इत्यादि, तत्र 'ततः' किट्टिकरणाद्धापरिसमाप्तेः परं 'शेषं' यथासंभवं मानादित्रयरूपं मायालोभरूपं वा लोभलक्षणं वा मोहनीयं 'विनाशयति' यथाक्रमं किट्टिस्वरूपेण क्षपयति । अयमस्य भावार्थः—क्रोधोदयेन समारूढः पुरुषवेदक्षपणा-ऽनन्तरं यदा-ऽश्वकर्णकरणाद्धायां संज्वलनचतुष्कस्या-ऽपूर्वस्पर्धकानि निर्वर्तयति, तदा मानोदयेन क्षपकश्रेणिं प्रतिपन्नः संज्वलनक्रोधं पूर्वस्पर्धकस्वरूपेणैव क्षपयति, प्रकारान्तरा-ऽसंभवात् । ततः क्रोधोदयारूढः संज्वलनचतुष्कस्य किट्टिकरणाद्धामारभते, मानोदयप्रतिपन्नस्तु क्षपितक्रोधो-ऽश्वकर्णकरणाद्धामारभते, तत्र च संज्वलनत्रिकस्या-ऽपूर्वस्पर्धकानि करोति । तेन मानोदयारूढस्य जीवस्यैकस्य क्रोधस्य क्षपणाद्धानन्तरमश्वकर्णकरणाद्धा प्रवर्तत इति सूपपन्नम् । ततः क्रोधोदयेन प्रतिपन्नस्य क्रोधसंग्रहकिट्टित्रयवेदनकाललक्षणः क्रोधक्षपणाकालः प्रवर्तते, मानोदयेन तु प्रतिपन्नस्य किट्टिकरणाद्धा प्रवर्तते, तदानीं च संज्वलनत्रिकस्य नवानामेव संग्रहकिट्टीनां निर्वर्तनं संभवति, क्रोधस्य प्रागेव स्पर्धकस्वरूपेण क्षीणत्वात् । तच्च त्र्यशीतितमगाथया दर्शितम् । ततः क्रोधोदयेन समारूढो मानसंग्रहकिट्टिप्रथमस्थितिं कृत्वा मानक्षपणाद्धामारभते, तदानीमेव च मानोदयारूढोऽपि मानक्षपणाद्धामुपक्रमते । समवादि च कषायप्राभृतचूर्णौ—"जम्हि कोहेण उवट्ठिदो अस्सकण्णकरणं करेदि, माणेण उवट्ठिदो तम्हि काले कोहं खवेदि, कोहेण उव-

ट्ठिदस्स जा किट्टीकरणद्धा, माणेण उवट्ठिदस्स तम्हि काले अस्सकण्णकरणद्धा। कोहेण उवट्ठिदस्स जा कोहस्स खवणद्धा, माणेण उवट्ठिदस्स तम्हि काले किट्टीकरणद्धा। कोहेण उवट्ठिदस्स जा माणस्स खवणद्धा, माणेण उवट्ठिदस्स तम्हि चेव काले माणस्स खवणद्धा।" इति। मानक्षपणाद्धाप्रथमसमये तु मानोदयाऽऽरूढस्य किट्टिवेदनाद्धाप्रथमसमये मोहनीयस्य स्थितिसत्त्वं चतुर्वार्षिकं जायते, क्रोधतृतीयसंग्रहकिट्टिवेदनाद्धाचरमसमये मोहनीयस्थितिसत्कर्मणश्चतुर्वार्षिकत्वप्रतिपादनात्। प्रमाणं च कषायप्राभृतचूर्णौ–"माणेण उवट्ठिदस्स पढमसमयकिट्टीवेदगस्स ट्ठिदिसंतकम्मं चत्तारि वस्साणि।" इति। ततः परं सर्वप्ररूपणा क्रोधोदयारूढवदविशेषेण कर्तव्या। उक्तं च कषायप्राभृतचूर्णौ–"एत्तो पाए जहा कोहेण उवट्ठिदस्स विही, तहा माणेण उवट्ठिदस्स।" इति

अथ मायोदयेन प्रतिपन्नस्य विशेषोऽभिधीयते–क्रोधोदयारूढः पुरुषवेदक्षपणाऽनन्तरं यदाऽश्वकर्णकरणाद्धायां संज्वलनचतुष्कस्याऽपूर्वस्पर्धकानि करोति, तदा मायोदयारूढः क्षपकः पूर्वस्पर्धकस्वरूपेणैव क्रोधं संक्रम्य क्षपयति। ततः क्रोधोदयारूढः किट्टिकरणाद्धां प्रवर्तयति, मायोदयारूढस्तु पूर्वस्पर्धकस्वरूपेणैव मानं संक्रम्य क्षपयति। ततः क्रोधोदयाऽऽरूढः क्रोधसंग्रहकिट्टित्रयं क्षपयति, तदानीं मायोदयप्रतिपन्नस्त्वश्वकर्णकरणाद्धामारभमाणो मायालोभयोरपूर्वस्पर्धकानि करोति। इत्थं द्वयोः=क्रोधमानयोः क्षपणानन्तरं मायोदयेन प्रतिपन्नस्याऽश्वकर्णकरणाद्धा प्रवर्तते। ततः क्रोधोदयारूढो मानं क्षपयति, मायोदयेन समारूढस्तु मायालोभयोः षट् संग्रहकिट्टीः करोति। ततः क्रोधोदयेन प्रतिपन्नो मायाकिट्टीर्वेदयन् मायां विनाशयति, मायोदयेन क्षपकश्रेणिमधिगतोऽपि मायायाः किट्टीर्वेदयन् मायां क्षपयति। न्यगादि च कषायप्राभृतचूर्णौ–"कोहेण उवट्ठिदो जम्हि अस्सकण्णकरणं करेदि, मायाए उवट्ठिदो तम्हि कोहं खवेदि। कोहेण उवट्ठिदो जम्हि किट्टीओ करेदि, मायाए उवट्ठिदो तम्हि माणं खवेदि। कोहेण उवट्ठिदो जम्हि कोधं खवेदि, मायाए उवट्ठिदो तम्हि अस्सकण्णकरणं करेदि। कोहेण उवट्ठिदो जम्हि माणं खवेदि, मायाए उवट्ठिदो तम्हि किट्टीओ करेदि। कोहेण उवट्ठिदो जम्हि मायं खवेदि, तम्हि चेव मायाए उवट्ठिदो मायं खवेदि।" इति। मायाकिट्टिवेदनाद्धाप्रथमसमये तु मायोदयाऽऽरूढस्य जीवस्य मोहनीयस्य स्थितिसत्त्वं द्विवार्षिकं भवति, क्रोधोदयारूढस्य मानतृतीयसंग्रहकिट्टिवेदनाद्धाचरमसमये स्थितिसत्कर्मणो द्विवार्षिकत्वसंस्तवात्। अभ्यधायि च कषायप्राभृतचूर्णौ–"मायाए उवट्ठिदस्स पढमसमयकिट्टीवेदगस्स वे वस्साणि मोहणीयस्स ट्ठिदिसंतकम्मं।" इति। ततः परं क्षपितमायः क्रोधोदयारूढवद् मायोदयारूढोऽपि लोभं क्षपयति। उक्तञ्च कषायप्राभृतचूर्णौ–"एत्तो पाए लोभं खवेमाणस्स णत्थि णाणत्तं।" इति।

सम्प्रति यो लोभोदयेन क्षपकश्रेणिं प्रतिपद्यते, तस्य भेदो दर्श्यते–क्रोधोदयारूढः पुरु-

पवेदक्षपणा-ऽनन्तरमश्वकर्णकरणाद्धायां संज्वलनचतुष्कस्या-ऽपूर्वस्पर्धकानि करोति, लोभोदया-रूढः पूर्वस्पर्धकस्वरूपेणैव संज्वलनक्रोधं क्षपयति । ततः क्रोधोदयारूढः संज्वलनचतुष्कस्य किट्टीः करोति, लोभोदयेन प्रतिपन्नस्तु पूर्वस्पर्धकस्वरूपेणैव मानं क्षपयति । ततः क्रोधोदयेन क्षपकश्रेणिं समारूढः क्रोधं क्षपयति, लोभोदयेन क्षपकश्रेणिमधिगतस्तु पूर्वस्पर्धकस्वरूपेणैव मायां क्षपयति, क्रोधोदयेन क्षपकश्रेणिं समारूढो मानं क्षपयति, लोभोदयारूढस्त्वश्वकर्णकरणाद्धामारभमाणो लोभस्या ऽपूर्वस्पर्धकानि निर्वर्तयति । इत्थं त्रयाणां क्रोधमानमायानां क्षपणातः परं लोभो-दयारूढो-ऽश्वकर्णकरणाद्धामारभते । ततः क्रोधोदयारूढो मायां क्षपयति, लोभोदयेन प्रतिपन्नस्तु संज्वलनलोभस्य तिस्रः संग्रहकिट्टीः करोति । ततः क्रोधोदयेन क्षपकश्रेणिमधिगतः किट्टिगतं लोभं क्षपयति, लोभोदयारूढोऽपि किट्टिगतं लोभं क्षपयति । अभिहितं च कषायप्राभृतचूर्णौ—"कोहेण उवट्ठिदो जम्हि अस्सकण्णकरणं करेदि, लोभेण उवट्ठिदो तम्हि कोहं खवेदि । कोहेण उवट्ठिदो जम्हि किट्टीओ करेदि, लोभेण उवट्ठिदो तम्हि माणं खवेदि । कोहेण उवट्ठिदो जम्हि कोहं खवेदि, लोभेण उवट्ठिदो तम्हि मायं खवेदि । कोहेण उवट्ठिदो जम्हि माणं खवेदि, लोभेण उवट्ठिदो तम्हि अस्सकण्ण-करणं करेदि । कोहेण उवट्ठिदो जम्हि मायं खवेदि, लोभेण उवट्ठिदो तम्हि किट्टीओ करेदि । कोहेण उवट्ठिदो जम्हि लोभं खवेदि, तम्हि चेव लोभेण उवट्ठिदो लोभं खवेदि ।" इति । लोभं क्षपयतो जीवस्य किट्टिवेदनाद्धाप्रथमसमये मोहनीयस्थितिसत्त्वमे-कवर्षमात्रं भवति । उक्तं च कषायप्राभृतचूर्णौ—"लोभेण उवट्ठिदस्स पढमसमयकिट्टी-वेदगस्स मोहणीयस्स ट्ठिदिसंतकम्ममेकं वस्सं ।" इति । ततः क्रोधोदयारूढवत् ताव-दवसेयम् , यावत्सूक्ष्मसम्परायचरमसमयः ॥२२०॥

भिन्नभिन्नकषायोदयेन क्षपकश्रेणिं प्रतिपन्नानां क्रियाभेदो दर्शितः । सम्प्रति भिन्नभिन्न-वेदोदयेन क्षपकश्रेणिं समारूढानां क्रियाभेदमाविश्चिकीर्षुः प्रथमतस्तावत् स्त्रीवेदोदयेन प्रतिपन्नस्य जीवस्य क्रियाभेदं दर्शयति

इत्थी खलु पुरिसुदयेणं पडिवन्नस्स इत्थिखवणांतं ।
पढमठिइं ठावेइ अवेओ सत्त जुगवं विणासेइ ॥२२१॥ (गीतिः)

स्त्री खलु पुरुषोदयेन प्रतिपन्नस्य स्त्रीक्षपणान्ताम् ।
प्रथमस्थितिं स्थापयत्यवेदः सप्त युगपद् विनाशयति ॥२२१॥ इति पदसंस्कारः ।

'इत्थी' इत्यादि, 'स्त्री' स्त्रीवेदोदयेन क्षपकश्रेणिं समारूढो जीवः 'खलु' खलुर्वाक्याल-ङ्कारे, पुरुषवेदोदयेन प्रतिपन्नस्य जन्तोः 'स्त्रीक्षपणान्तां' स्त्रियाः स्त्रीवेदस्य क्षपणा-क्षपणाकालोऽन्ते यस्याः, सा, ताम् 'प्रथमस्थितिं' प्रस्तुतत्वात् स्त्रीवेदस्य प्रथमस्थितिं स्थापयति, पुरुषवेदोदया-

रूढस्या-ऽन्तरकरणक्रियाप्रथमसमयप्रभृतिस्त्रीवेदक्षपणाद्विचरमसमयपर्यवसाना पुरुषवेदस्य यावती प्रथमस्थितिर्भवति, तावतीं प्रथमस्थितिं स्त्रीवेदस्य स्त्रीवेदोदयारूढो जीवः स्थापयतीत्यर्थः। उक्तं च कषायप्राभृतचूर्णौ "जद्देही पुरिसवेदेण उवट्ठिदस्स इत्थीवेदस्स खवणाद्धा, तद्देहि इत्थीवेदेण उवट्ठिदस्स इत्थीवेदस्स पढमट्ठिदी।" इति। अत एव द्वाचत्वारिंशत्तमगाथया प्रतिपादितं प्रथमस्थित्यल्पबहुत्वं सूपपद्यते। अन्तरकरणनिष्पादनतः पूर्वं क्रियाभेदो नास्ति। अन्तरकरणं विधाय निरुक्तस्त्रीवेदप्रथमस्थितिं वेदयन् पुरुषवेदोदयाऽऽरूढवद् नपुंसकवेदं परिक्षप्य ततः स्त्रीवेदं क्षपयति। स्त्रीवेदप्रथमस्थितेश्चाऽऽवलिकाद्वये शेषे स्त्रीवेदस्यागालो व्यवच्छिद्यते। ततः परं स्त्रीवेदप्रथमस्थितौ समयाधिकावलिकाशेषायां स्त्रीवेदस्य जघन्यस्थित्युदीरणा भवति। उक्तं च कर्मप्रकृतिचूर्णौ—"ताए पढमठितीए समयाहियावलियसेसाए मिच्छत्तस्स, तिण्हं वेयाणं, चउण्हं संजलणाणं, सम्मत्तस्स य जहण्णिया ठितिउदीरणा भवति।" इति। तदानीमेव जघन्या-ऽनुभागोदीरणा गुणितकर्मांशस्य च क्षपकस्योत्कृष्टप्रदेशोदीरणा जायते। उक्तं च कर्मप्रकृतिचूर्ण्यामनुभागोदीरणाऽधिकारे प्रदेशोदीरणा-ऽधिकारे च "पञ्चविहअंतराइय-केवलणाण-केवलदंसणावरण-चउण्हं संजलणाणं णवण्हं णोकसायाणं एयासि वीसाए पगईणं अप्पप्पणो उदीरणंते जहण्णिया अणुभागउदीरणा होति। ××× वेयाणं तिण्हं पि अप्पप्पणो समयाहियावलियचरिमसमयवेयगो।" इति। तथैवा-ऽभिहितं कषायप्राभृतचूर्णावप्यनुभागोदीरणाधिकारे प्रदेशोदीरणाधिकारे च—"इत्थिवेदस्स जहण्णाणुभागउदीरणा कस्स? इत्थिवेदखवगस्स समयाहियावलिय चरिमसमयसवेदस्स। ×× इत्थिवेदस्स उक्कस्सिया पदेसुदीरणा कस्स? खवगस्स समयाहियावलियचरिमसमयइत्थिवेदगस्स।" इति।

ततः परं यदा स्त्रीवेदस्य चरमस्थितिखण्डं संक्रमयति, तदा तस्य जीवस्य स्त्रीवेदस्य जघन्यस्थितिसंक्रमो भवति। तदानीमेव च स्त्रीवेदस्य चरमाऽनुभागखण्डं संक्रमयतो जघन्या-ऽनुभागसंक्रमोऽपि भवति। अत्र श्रीमन्मलयगिरिपादादयस्तु स्त्रीवेदोदयारूढस्यैव जघन्यस्थितिसंक्रमो भवति, नाऽन्यवेदोदयारूढस्य, स्त्रीवेदोदयारूढस्योदयोदीरणाभ्यां प्रभूतायाः स्थितेस्त्रोटनादित्याहुः। उक्तं च तैः कर्मप्रकृतिवृत्तौ—"स्त्रीवेदेन च प्रतिपन्नो नपुंसकवेदक्षयानन्तरमन्तर्मुहूर्तेन कालेन स्त्रीवेदं क्षपयति। एतावता च कालेनोदयोदीरणाभ्यां बह्वी स्थितिस्त्रुट्यति। यद्यपि च पुरुषवेदेनापि प्रतिपन्नस्यैतावान् कालो लभ्यते, तथापि तस्य स्त्रीवेदसत्के उदयोदीरणे न भवत इति। स्त्रीवेदप्रतिपन्नस्यैव स्त्रीवेदस्य जघन्यस्थितिसंक्रमः, न शेषस्य।" इति। एवमनुभागसंक्रमोऽपि जघन्यः स्त्रीवेदोदयारूढस्यैव बोद्धव्यस्तेषां मतेन। अन्ये तु त्रयाणामन्यतमेन वेदेन प्रतिपन्नस्य चरमस्थिति-

खण्डं संक्रमयतो जीवस्य स्त्रीवेदस्य जघन्यस्थितिसङ्क्रमो भवति । इयं च तेषां युक्तिः—स्त्रीवेदोदयारूढो यस्मिन् स्थाने स्त्रीवेदं सर्वथा संक्रमयति, तस्मिन्नेव स्थाने पुरुषवेदोदयारूढो नपुंसकवेदोदयारूढश्चाऽपि । तदेवं वेदत्रयारूढानामेकस्मिन् स्थाने स्त्रीवेदस्य सर्वथा संक्रमणादन्यतमवेदेनारूढानां क्षपकाणां स्त्रीवेदस्य जघन्यस्थितिसंक्रमो भवति, स्थित्युदयोदीरणयोः सत्योरपि ताभ्यां स्थितिघाताऽभावात् । उक्तं च कर्मप्रकृतिचूर्णिटिप्पनके श्रीमन्मुनिचन्द्रसूरिपादैः—"**स्त्रीवेदस्य तु वेदत्रयेणारूढस्य जघन्यस्थितिसंक्रमो लभ्यते । सर्वत्रापि स्वस्थाने एव तस्य क्षयादिति** ।"卐 एवमनुभागसंक्रमोऽपि द्रष्टव्यः ।

तदानीं यथा पुरुषवेदोदयारूढस्य गुणितकर्मांशस्य स्त्रीवेदस्योत्कृष्टप्रदेशसंक्रमो भवति, न तथा स्त्रीवेदोदयारूढस्य स्त्रीवेदस्योत्कृष्टप्रदेशसंक्रमः, उदयोदीरणाभ्यां कतिपयानां दलानां क्षपितत्वात् ।

स्त्रीवेदप्रथमस्थितिचरमसमये स्त्रीवेदस्य जघन्याऽनुभागोदयो गुणितकर्मांशजन्तोश्चोत्कृष्टप्रदेशोदयो जायते । तदानीमेव स्त्रीवेदस्य जघन्यस्थितिसत्त्वं जघन्याऽनुभागसत्त्वं च भवतः । यदुक्तं कषायप्राभृतचूर्णौ स्थितिविभक्त्यधिकारेऽनुभागविभक्त्यधिकारे च—"**इत्थिवेदस्स जहण्णट्ठिदिविहत्ती कस्स ? चरिमसमयइत्थिवेदोदयक्खवयस्स । ××××इत्थिवेदस्स जहण्णयमणुभागसंतकम्मं कस्स ? खवयस्स चरिमसमयइत्थिवेदयस्स** ।" इति ।

निश्चयनयमाश्रित्य तदानीमेव व्यवच्छिद्यमानः पुरुषवेदस्य बन्धो व्यवच्छिन्नः, स्त्रीवेदस्य चोदयसत्त्वे व्यवच्छिद्यमाने व्यवच्छिन्ने । उक्तं च सप्ततिकाचूर्णौ—"**एमेव इत्थिवेएण वि उवट्ठियस्स, नवरि नपुंसगवेओ पढमं खिज्जइत्ति । तओ अंतोमुहुत्तेण इत्थिवेयस्स उदयसंतक्खओ पुरिसवेयबंधवोच्छेए य जुगवं भवइ** ।" इति ।

'**अवेआ**' त्ति 'अवेदा' न विद्यते वेदो-वेदोदयो यस्याः, साऽवेदा, अपगतवेदा मानुषीत्यर्थः, स्त्रीवेदं परिक्षप्याऽन्तर्मुहूर्तकालेन 'सत्त' इत्यादि, 'सप्त' हास्यषट्कपुरुषवेदरूपाणि सप्तकर्माणि युगपत् सर्वात्मना क्षपयति, नाऽवशिष्यते समयोनद्व्यावलिकाबद्धः पुरुषवेदः, अन्तर्मुहूर्तात् प्रागेव स्त्रीवेदक्षयचरमसमये पुरुषवेदबन्धोच्छेदात् । पुरुषवेदोदयारूढस्तु वेदोदयचरमसमये समयोनावलिकाद्वयबद्धनूतनपुरुषवेददलं मुक्त्वा शेषं पुरुषवेदं हास्यषट्केन सह परिक्षप्य ततोऽवेदभावे तावता

卐जयधवलाकारैरप्युक्तम्—"इत्थित्थिवेदोदयक्खवयस्सेत्ति वयणं सेसवेदोदयक्खवयपडिसेहफलं । णिरत्थयमिदं विसेसणं, अण्णवेदोदएण वि चढिदस्स खवयस्स जहण्णट्ठिदिसंकमाविरोहादो । ण च सोदय-परोदएहिं चढिदाण खवयाणमित्थिवेदचरिमट्ठिदिखंडयम्मि विसरिसभावो अत्थि, णवुंसयवेदस्सेव तदणुवलभादो । तम्हा अण्णदरवेदोदइल्लस्स खवयस्सेत्ति सामित्तणिद्देसो कायव्वो त्ति । एत्थ परिहारो—सच्चमेदमुदाहरणमेत्तं तु इत्थिवेदोदयक्खवयावलंवणं, णेदं तंतमिदि घेत्तव्वं । ×××××××× तम्हा सोदए वा परोदएण वा पयदसामित्तमविरुद्धं ।"इति ।

उवट्ठियस्स नपुंसक-इत्थिवेयसंतक्खए पुरिसवेयबंधवोच्छेए य जुगवं कए तस्स एक्कारससंतं ।" इति ।

'अवगय०' इत्यादि, स्त्रीवेदनपुंसकवेदक्षयानन्तरम् 'अपगतवेदः' अपगतो व्यवच्छिन्नो वेदो-वेदोदयो यस्य, स जीवोऽपगतवेदः, व्यवच्छिन्नवेदोदयो जीव इत्यर्थः, अन्तर्मुहूर्तकालेन 'सत्त' पुरुषवेद-हास्यषट्कलक्षणानि सप्तसङ्ख्यानि कर्माणि युगपत् सर्वात्मना क्षपयति, अन्तर्मुहूर्तात् प्रागेव नपुंसकवेदक्षयचरमसमये पुरुषवेदबन्धोच्छेदेन समयोनद्व्यावलिकाबद्धपुरुषवेदस्यावशिष्टत्वाभावात् । उक्तं च कषायप्राभृतचूर्णौ-"तदो अवगयवेदो सत्त कम्मंसे खवेदि । सत्तण्हं कम्माणं तुल्ला खवणद्धा ।" इति । एवं सप्ततिकावृत्त्यादावपि । ॥२२२॥

भिन्नभिन्नवेदोदयेन प्रतिपन्नानां क्रियाभेददर्शनात् स्त्रीवेदनपुंसकवेदोदयारूढानां जीवानां पुरुषवेदस्य जघन्यस्थितिबन्धो न भवतीत्याविश्चिकीर्षुराह

इत्थीसंढाणं पुरिसस्स जहण्णो न होइ ठिइबंधो ।
सेसं तु पुरिसवेअव्व भासियं वेदणाणत्तं ॥२२३॥

स्त्रीषण्ढयोः पुरुषस्य जघन्यो न भवति स्थितिबन्धः ।
शेषं तु पुरुषवेदवद् भाषितं वेदनानात्वम् ॥ २२३ ॥ इति पदसंस्कारः ।

'इत्थी०' इत्यादि, 'स्त्रीषण्ढयोः' स्त्रीवेदोदयेन प्रतिपन्नस्य नपुंसकवेदोदयाऽऽरूढस्य चेत्यर्थः 'पुरुषस्य' पुरुषवेदस्य जघन्यस्थितिबन्धो-ऽष्टवर्षप्रमाणो न भवति । कथमेतदवसीयते ? इति चेत्, उच्यते-पुरुषवेदस्य जघन्यस्थितिबन्धः पुरुषवेदोदयारूढस्य प्रथमस्थितिचरमसमये भवति स्म, स्त्रीनपुंसकवेदोदयेन प्रतिपन्नानां क्षपकाणां वेदस्य प्रथमस्थितिः पुरुषवेदोदयारूढवेद-प्रथमस्थितितः संख्येयभागप्रमाणया हास्यषट्कक्षपणाद्धया हीना भवति, सा च प्राग् दर्शिता द्वाचत्वारिंशत्तमगाथयाऽनन्तरोक्तगाथाद्वयेन च । पुरुषवेदस्य चरमस्थितिबन्धस्तु वेदप्रथम-स्थितिचरमसमये भवति । तेन स्त्रीनपुंसकोदयप्रतिपन्नानां पुरुषवेदस्य चरमबन्धः पुरुषवेदोदया-रूढतोऽर्वाग् भवति, अर्वाक् च विशुद्धेरल्पत्वात् पुरुषवेदोदयारूढवज्जघन्यस्थितिबन्धो न भवति । उपलक्षणमेतद्, तेन स्त्रीवेदनपुंसकवेदोदया-ऽऽ-रूढानां पुरुषवेदस्य जघन्यानुभागबन्धोऽपि न भवति । तथा प्रागुक्ताः पुरुषवेदस्य जघन्यस्थित्युदीरणा-जघन्याऽनुभागोदीरणोत्कृष्टप्रदेशोदीरणा-जघन्यानुभागोदयोत्कृष्टप्रदेशोदया न भवन्ति, पुरुषवेदोदयाभावात्, पुरुषवेदस्य च जघन्यस्थिति-सत्ता-जघन्यानुभागसत्ता-जघन्यप्रदेशसत्ता - जघन्यस्थितिसंक्रम-जघन्या-ऽनुभागसंक्रम - जघन्यप्रदेश-संक्रमा न भवन्ति, पुरुषवेदोदयचरमसमयबन्धमाश्रित्य निरुक्तानां लाभात् ।

'सेसं' इत्यादि, उपर्युक्तादन्यच्छेषम्, तच्च पुरुषवेदवदवसेयम्, विशेषाऽभावात् । अथ निगम-यति-'भासियं' इत्यादि, 'भाषितं' कथितं 'वेदनानात्वं' वेदमाश्रित्य क्रियाभेदः, भिन्नभिन्नवेदो-दयेन समारूढानां क्षपकाणां क्रियभेदः प्रतिपादित इत्यर्थः । पश्यन्तु पाठका यन्त्रकम्-३० ॥२२३॥

भिन्नभिन्नकषायोदयेन भिन्नभिन्नवेदोदयेन च क्षपकश्रेणिं प्रतिपन्नानां कर्मक्षपणायाश्चित्रम्

नपुंसकवेदोदयारूढ
स्त्रीवेदोदयारूढः
पुरुषवेदोदयारूढः
क्रोधोदयारूढ
मानोदयारूढ
मायोदयारूढ
लोभोदयारूढ

सङ्केतस्पष्टीकरणम्

वामपार्श्वे नपुंसकवेदोदयारूढस्य जीवस्य नपुंसकवेदस्य प्रथमस्थिति स्तोका दर्शिता, सा च स्त्रीवेदप्रथमस्थितिप्रमाणा। तस्मात् कारणात् स्त्रीवेदनपुंसकवेदयोः प्रथमस्थितिर्मिथस्तुल्या भवति। ततो हास्यषट्कक्षपणाकालमात्रेण संख्येयभागेनाधिका पुरुषवेदस्य प्रथमस्थितिर्भवति, यत स्त्रीवेदस्य प्रथमस्थितिः पुरुषवेदोदयारूढस्त्रीवेदक्षपणाद्धाचरमसमयपर्यवसाना, पुरुषवेदस्य तु प्रथमस्थितिर्हास्यषट्कक्षपणाद्धाचरमसमयपर्यवसाना। (गाथा. ४२, २२१, २२२)।

१=नपुंसकवेदप्रथमस्थितिचरमसमयः, तदानीं स्त्रीवेद-नपुंसकवेदलक्षण वेदद्वयं युगपत क्षपयति। तदानीमेव नपुंसकवेदस्य जघन्यानुभागोदयो जघन्यस्थितिसत्त्व जघन्यानुभागसत्त्व गुणितकर्मांशस्य च जीवस्य तदुत्कृष्टप्रदेशोदयः, पुरुषवेदस्य च बन्धोच्छेदो वाच्य ।

२=तदानीं स्त्रीवेदोदयारूढ पुरुषवेदोदयारूढश्च नपुंसकवेद सर्वथा क्षपयत ।

कालेन पुरुषवेदं सर्वथा क्षपयति स्म । उक्तञ्च कषायप्राभृतचूर्णौ—"तदो अवगतवेदो सत्तकम्मंसे खवेदि । सत्तण्हं पि कम्माणं तुल्ला खवणद्धा ।" इति । एवं सप्ततिकावृत्त्यामप्युक्तम् ॥२२१॥

अथ नपुंसकवेदोदयेन क्षपकश्रेणिं प्रतिपन्नस्य क्रियाभेदो द्रष्टव्यः । तत्रा-ऽन्तरकरणनिष्पादनतः प्राक् क्रियाभेदो नास्ति । अन्तरकरणक्रियाप्रारम्भतो यः क्रियाभेदः, तं दर्शयति

संढो ठावइ पढमठिइं इत्थीपढमठिइमिअं खवइ ।
वेअदुगं जुगवं अवगयवेओ सत्त परिखवइ ॥२२२॥

षण्ढः स्थापयति प्रथमस्थितिं स्त्रीप्रथमस्थितिमितां क्षपयति ।
वेदद्विकं युगपदपगतवेदः सप्त परिक्षपयति ॥२२२॥ इति पदसंस्कारः ।

'संढो' इत्यादि, 'षण्ढः' नपुंसको-नपुंसकवेदोदयेन क्षपकश्रेणिं प्रतिपन्नो जीव इत्यर्थः, 'प्रथमस्थितिं' नपुंसकवेदस्या-ऽऽदिमस्थितिं स्त्रीवेदप्रथमस्थितिप्रमितां स्थापयति, स्त्रीवेदोदयेन क्षपकश्रेणिं प्रतिपन्नो यावतीं स्त्रीवेदस्य प्रथमस्थितिं स्थापयति, नपुंसकवेदोदयाऽऽरूढोऽपि नपुंसकवेदस्य तावतीं प्रथमस्थितिं स्थापयति, पुरुषवेदस्त्रीवेदयोः प्रथमस्थितिं न स्थापयति । उक्तं च कषायप्राभृतचूर्णौ "जम्महंतो इत्थीवेदेण उवट्ठिदस्स इत्थीवेदस्स पढमट्ठिदी, तम्महंतो णवुंसयवेदेण उवट्ठिदस्स णवुंसयवेदस्स पढमट्ठिदी ।" इति । अत एव द्वाचत्वारिंशत्तमगाथोक्ताल्पबहुत्वं संपद्यते ।

ततः क्रमेण प्रथमस्थितिचरमसमयं प्राप्तो जीवो 'वेदद्विकं' स्त्रीवेदनपुंसकवेदलक्षणं युगपद् 'परिक्षपयति' सर्वात्मना विनाशयति, न तु पुरुषवेदोदयारूढवद् नपुंसकवेदं यथास्थानं परिक्षिप्य ततः स्त्रीवेदं क्षपयतीत्यर्थः । अयं भावः—नपुंसकवेदोदयारूढोऽप्यन्तरकरणक्रियां परिसमाप्य नपुंसकवेदं क्षपयितुमारभते, तं च प्रतिसमयमसंख्येयगुणक्रमेण क्षपयन् गच्छति । यदा पुरुषवेदोदयारूढो नपुंसकवेदं सर्वथा क्षपयति स्म, न तदा-ऽय नपुंसकवेदोदयारूढो नपुंसकवेदं सर्वात्मना क्षपयति, किन्तु ततः प्रभृति नपुंसकवेदेन सह स्त्रीवेदमपि क्षपयितुमुपक्रमते । उक्तं च कषायप्राभृतचूर्णौ—"जद्देही पुरिसवेदेण उवट्ठिदस्स णवुंसयवेदस्स खवणद्धा, तद्देही णवुंसयवेदेण उवट्ठिदस्स णवुंसयवेदस्स खवणद्धा गदा, ण ताव णवुंसयवेदो खीयदि, तदो से काले इत्थिवेदं खवेदुमाढत्तो णवुंसयवेदं पि खवेदि ।" इति । ततो वेदद्वयं क्रमेण क्षपयन् नपुंसकवेदप्रथमस्थितौ द्व्यावलिकाशेषायां नपुंसकवेदस्यागालो व्यवच्छिद्यते ।

ततः परं नपुंसकवेदप्रथमस्थितौ समयाधिकावलिकाशेषायां नपुंसकवेदस्य जघन्यस्थित्युदीरणा जायते । तदानीमेव नपुंसकवेदस्य जघन्या-ऽनुभागोदीरणा गुणितकर्मांशस्य च जीवस्योत्कृष्टप्रदेशोदीरणा जायते । उक्तं च कषायप्राभृतचूर्णावनुभागोदीरणा-ऽधिकारे प्रदेशोदीरणाऽवसरे च—"णवुंसयवेदस्स जहण्णाणुभागुदीरणा कस्स? णवुंसयवेदखव-

चरस्स समयाहियाऽऽवलियचरिमसमयसवेदगस्स। ×× णवुंसयवेदस्स उक्कस्सिया पदेसुदीरणा कस्स ? खवगस्स समयाहियावलियचरिमसमयणवुंसयवेदगस्स ।" इति । तथैव कर्मप्रकृतिचूर्णावपि ततः परं यदा नपुंसकवेदोदयारूढो नपुंसकवेदस्य चरमस्थितिखण्डं संक्रमयति, तदा तस्य जीवस्य नपुंसकवेदस्य जघन्यस्थितिसंक्रमो भवति, पुरुषवेदोदयारूढस्य तु स न भवति वा । अत्रेयं युक्तिः—यदा जीवः पुरुषवेदोदयेन क्षपकश्रेणिमारोहति, स यस्मिन् स्थाने नपुंसकवेदं सर्वथा क्षपयति, तत ऊर्ध्वमन्तर्मुहूर्तं गत्वा नपुंसकवेदोदयारूढो नपुंसकवेदं सर्वात्मना क्षपयति । अर्वाक् चाऽल्पविशुद्धत्वेन पुरुषवेदोदयारूढो नपुंसकवेदस्य स्थितिं सर्वजघन्यां न करोति, नपुंसकवेदोदयारूढस्त्वन्तर्मुहूर्तमूर्ध्वं गत्वा स्त्रीवेदेन सह नपुंसकवेदं सर्वथा क्षपयन् नपुंसकवेदस्य सर्वजघन्यां स्थितिं संक्रमयति, अन्तर्मुहूर्तकाले प्रभूतविशुद्ध्या प्रभूतायाः स्थितेरपवर्तितत्वात् । उक्तञ्च श्रीमुनिचन्द्रसूरिपादैः कर्मप्रकृतिचूर्णिटिप्पनके—"यदा पुरुषवेदेन स्त्रीवेदेन चोदयमागतेन क्षपकश्रेणिमारोहति जन्तुः, तदा नपुंसकवेदस्य स्वस्थान एव क्षयादजघन्यस्थितिसंक्रमः । तदा तस्य मनागशुद्धत्वेन सर्वजघन्यनपुंसकवेदस्थितिकरणाऽभावात् । यदा तु नपुंसकवेदोदयेनारोहति, तदा नपुंसकवेदं जुगवं खवेति त्ति वचनात् स्त्रीवेदेन सह क्षयं नयतीति तदा तस्य जघन्यस्थितिसंक्रमो लभ्यते, शुद्धत्वेन स्थितीनां बह्वपवर्तितत्वात् ।" इति । एवं नपुंसकवेदोदयारूढस्य नपुंसकवेदस्य जघन्याऽनुभागसंक्रमोऽपि वाच्यः । यदुक्तं कषायप्राभृतचूर्ण्याम्—णवुंसयवेदयस्स जहण्णाणुभागसंतकम्मं कस्स ? खवगस्स चरमसमयणवुंसयवेदयस्स ।" इति ।

नपुंसकवेदप्रथमस्थितिचरमसमये नपुंसकवेदस्य जघन्याऽनुभागोदयो गुणितकर्मांशस्य च जन्तोरुत्कृष्टप्रदेशोदयो जायते । तदानीं च सर्वसंक्रमेण नपुंसकवेदं स्त्रीवेदं च पुरुषवेदे संक्रम्य सर्वात्मना क्षपयति । उक्तं च कषायप्राभृतचूर्णौ—"पुरिसवेदेण उवट्ठिदस्स जम्हि इत्थीवेदो खीणो, तम्हि चेव णवुंसयवेदेण उवट्ठिदस्स इत्थिवेद-णवुंसयवेदा च दो वि सह खिज्जंति ।" इति । एवं सप्ततिकावृत्तावपि—"यदा तु नपुंसकवेदेन प्रतिपद्यते, तदा प्रथमतः स्त्रीवेद-नपुंसकवेदौ युगपत् क्षपयति ।" इति ।

यथा पुरुषवेदोदयारूढस्य चरमस्थितिखण्डसंक्रमे नपुंसकवेदोत्कृष्टप्रदेशसंक्रमः प्राग् दर्शितः, न तथा नपुंसकवेदोदयप्रतिपन्नस्य नपुंसकवेदस्योत्कृष्टप्रदेशसंक्रमो भवति, कतिपयानां दलिकानामुदयोदीरणाभ्यां क्षपितत्वात् ।

निश्चयनयमाश्रित्य तदानीमेव व्यवच्छिद्यमानः पुरुषवेदस्य बन्धो व्यवच्छिन्नः, एवं व्यवच्छिद्यमाने नपुंसकवेदस्योदयसत्त्वेऽपि व्यवच्छिन्ने । उक्तं च सप्ततिकाचूर्णौ—"णपुंसगवेएण

२=स्त्रीवेदप्रथमस्थितिचरमसमय, तदानीं स्त्रीवेदं सर्वथा क्षपयति, स्त्रीवेदस्य जघन्यानुभागोदयो जघन्यस्थितिसत्त्वं जघन्यानुभागसत्त्व गुणितकर्मांशस्य च तदुत्कृष्टप्रदेशोदय, पुरुषवेदस्य च बन्धोच्छेद ।

३=तदानीं पुरुषवेदोदयारूढ· स्त्रीवेदं सर्वात्मना क्षपयति ।

४=स्त्रीवेदोदयारूढो नपुंसकवेदोदयारूढश्चा-ऽवेदो हास्यषट्क पुरुषवेदञ्च क्षपयन्तौ तदानीं सर्वथा युगपत क्षपयत ।

५=पुरुषवेदोदयारूढस्य पुरुषवेदप्रथमस्थितिचरमसमय:, तदानीं हास्यषट्क निरशेषं क्षीणम, समयोनद्व्यावलिकानद्धनूतनदल च वर्जयित्वा शेष पुरुषवेद· क्षीण. (गाथा ५७) तथा पुरुषवेदस्य जघन्यानुभागोदयो गुणितकर्मांशस्य जीवस्य तदुत्कृष्टप्रदेशोदयोऽष्टवार्षिक स्थितिबन्ध· संज्वलनाना षोडशवर्षप्रमाण स्थितिबन्ध:, व्यवच्छिद्यमानश्च पुरुषवेदस्य बन्धो व्यवच्छिन्न ।

चित्रे पुरुषवेदप्रथमस्थितित क्रोधोदयारूढाश्वकर्णकरणाद्धाकिट्टिकरणाद्धारूपसंख्येयभागेनाऽधिका क्रोधोदयारूढक्रोधप्रथमस्थितिर्दर्शिता (गाथा–४२) । मानोदयारूढमानप्रथमस्थितिः क्रोधोदयारूढक्रोधक्षपणाद्धायुक्तक्रोधप्रथमस्थितिप्रमाणा, तेन क्रोधोदयारूढक्रोधप्रथमस्थितितो मानोदयारूढमानप्रथमस्थिति सख्येयभागेनाऽधिका । मायोदयारूढमायाप्रथमस्थिति क्रोधोदयारूढक्रोधमानक्षपणाद्धायुक्तक्रोधप्रथमस्थितिप्रमाणा, तेन मानोदयारूढमानप्रथमस्थितितो मायोदयारूढमायाप्रथमस्थिति· संख्येयभागेनाऽधिका । लोभोदयारूढलोभप्रथमस्थिति· क्रोधमानमायाक्षपणाद्धायुक्तक्रोधप्रथमस्थितिप्रमाणा, तेन लोभोदयारूढप्रथमस्थितिर्मायोदयारूढमायाप्रथमस्थितित· संख्येयभागेनाऽधिका । (गाथा–४२, २१९)

मानादिभि· क्षपकश्रेणिं प्रतिपन्ना क्रोधादीन् पूर्वस्पर्धकस्वरूपेणैव क्षपयित्वा-ऽश्वकर्णकरणं किट्टिकरणं चारभन्ते (गाथा २२०) ।

क=क्रोधतृतीयसंग्रहकिट्टिवेदनाद्धाचरमसमय·, तदानीं सञ्ज्वलनचतुष्कस्य स्थितिबन्धो द्विमासप्रमाण, क्रोधस्य जघन्यस्थितिबन्धो जघन्याऽनुभागबन्धश्च । सञ्ज्वलनचतुष्कस्य स्थितिसत्त्व चत्वारि वर्षाणि ।

ख=मानतृतीयसंग्रहकिट्टिवेदनाद्धाचरमसमय, तदानीं सञ्ज्वलनत्रिकस्य स्थितिबन्ध एकमासमात्र, मानस्य जघन्यस्थितिबन्धो जघन्यानुभागबन्धश्च, सञ्ज्वलनत्रिकस्य स्थितिसत्त्व वर्षद्वयमात्रम् ।

ग=मायातृतीयसंग्रहकिट्टिवेदनाद्धाचरमसमय, तदानीं सञ्ज्वलनद्विकस्य स्थितिबन्ध पञ्चदश दिवसा, मायाया जघन्यस्थितिबन्धो जघन्यानुभागबन्धश्च सञ्ज्वलनद्विकस्य स्थितिसत्त्वमेकवर्षप्रमाणम् ।

घ=लोभद्वितीयसंग्रहकिट्टिवेदनाद्धाचरमसमय, तदानीं लोभस्य स्थितिबन्ध स्थितिसत्त्व चान्तर्मुहूर्तम्, अनिवृत्तिबादरसम्परायाख्य-नवमगुणस्थानकस्य च समाप्ति



तदेवं समाप्तः षष्ठोऽधिकारः । तत्समाप्तौ च समाप्तो मोहनीयक्षपणाविधिः । मोहनीये च क्षीणे परेषां कर्मणां विनाशोऽवश्यंभावी । यदुक्तं श्रीतत्त्वार्थसूत्रभाष्यकारैः

"पूर्वार्जितं क्षपयतो यथोक्तैः क्षयहेतुभिः ।
संसारबीजं कात्स्न्येन मोहनीयं प्रहीयते ॥१॥
ततोऽन्तरायज्ञानघ्न-दर्शनघ्नान्यनन्तरम् ।
प्रहीयन्तेऽस्य युगपत् त्रीणि कर्माण्यशेषतः ॥२॥
गर्भसूच्यां विनष्टायां यथा तालो विनश्यति ।
तथा कर्म क्षयं याति मोहनीये क्षयं गते ॥३॥" इति ।

तेन शेषाणां त्रयाणां घातिकर्मणां क्षपणप्रक्रियां दिदर्शयिषुः सप्तमाऽधिकारं विवर्णयति

सेकालेऽवगयकसायगुणं लहए स पत्तहक्खायो ।
ठिइरसरहियं तइयं बंधइ पयइप्पएसेहिं ॥२२४॥

अनन्तरकाले-ऽपगतकषायगुणं लभते स प्राप्ता-ऽथाख्यातः ।
स्थितिरसरहितं तृतीयं बध्नाति प्रकृतिप्रदेशाभ्याम् ॥२२४॥ इति पदसंस्कारः ।

'सेकाले' इत्यादि, 'अनन्तरकाले' मोहनीयनिश्शेषक्षयानन्तरसमय इत्यर्थः 'स' जितमोहः क्षपकः 'प्राप्ता-ऽथाख्यातः' मोहनीयपरिक्षयात् प्राप्तं=लब्धम् अथाख्यातम्=अथशब्दोऽत्र याथातथ्ये, आङ् अभिविधौ, आ समन्ताद् याथातथ्येन=कषायोदयाभावेन निरतिचारत्वात् पारमार्थिकरूपेण ख्यातं तदथाख्यातं येन, स प्राप्ता-ऽथाख्यातः, 'अपगतकषायगुणं' पदैकदेशे पदसमुदायस्योपचाराद् अपगतकषायगुणस्थानकं क्षीणमोहगुणस्थानकमित्यर्थः, 'लभते' अश्नुते । ननु प्राप्तक्षीणकषायगुणस्थानकः किं करोति? इत्यत आह-'ठिइ०' इत्यादि, स्थितिरसरहितं 'तृतीयं' सातवेदनीयकर्म प्रकृतिप्रदेशाभ्यां बध्नाति, तद्बन्धस्य योगनिमित्तकत्वात् । इदमुक्तं भवति-स्थितिबन्धो रसबन्धश्च कषायप्रत्ययौ । क्षीणकषायगुणस्थानके च कषायाभावात् स्थितिरसौ न बध्येते । प्रकृतिबन्धः प्रदेशबन्धश्च योगप्रत्ययौ । क्षीणकषायगुणस्थानके च गात्रसञ्चारादिरूपयोगसद्भावात् सातवेदनीयस्य प्रकृतिबन्धः प्रदेशबन्धश्च जायते । अयं च सातवेदनीयबन्ध ईर्यापथिककर्मबन्ध उच्यते । अयम्भावः-"ईर गतिप्रेरणयोः" इत्यस्माद् भावे घ्यण्प्रत्ययः, ईरणम्-ईर्या=गमनम् , तस्यास्तया वा पन्थाः-ईर्यापथः, तत्र भवम् ईर्यापथिकम् । व्युत्पत्तिनिमित्तमेतद्, यतस्तिष्ठतोऽपि तद्भवति । प्रवृत्तिनिमित्तं तु गात्रसञ्चारादिरूपेण योगेन यत्कर्म बध्यते, तदीर्यापथिकम्, योगनिमित्तकमित्यर्थः । तच्च प्रथमसमये बध्यते, कषायाभावेन स्थित्यभावाद् द्वितीयसमये वेद्यते, तृतीयसमये चा-ऽकर्मतामेति । तच्च प्रकृतितः सातवेदनीयं भवति, स्थितितो द्विसमयस्थितिकमनुभावतोऽनुत्तरोपपातिकसुखातिशायि, प्रदेशतश्चः स्थूल-रूक्ष-शुक्ल-मन्द-महाव्यय-बहुप्रदेशम् ।

तथा चोक्तम् आचाराङ्गटीकायां श्रीमद्भिः शीलाङ्काचार्यपादैः—"तदेवं सूक्ष्मतरगात्रसञ्चाररूपेण योगेन यत्कर्म्म बध्यते, तदीर्यापथिकम्—ईर्याप्रभवम्, ईर्याहेतुकमित्यर्थः, तच्च द्विसमयस्थितिकम्, एकस्मिन् समये बद्धं द्वितीयसमये वेदितं तृतीयसमये तदपेक्षया चाऽकर्मतामेति। कथमिति? उच्यते-यतस्तत्प्रकृतितः सातवेदनीयमकषायत्वात् स्थित्यभावेन बध्यमानमेव परिशटति, अनुभावतोऽनुत्तरोपपातिकसुखातिशायि, प्रदेशतः स्थूलरूक्षशुक्लादिबहुप्रदेशमिति।" इति।

तथैव सूत्रकृताङ्गवृत्तावपि—"याऽसावकषायिणः क्रिया, तया यद् बध्यते कर्म, तत्प्रथमसमय एव बद्धं स्पृष्टं चेतिकृत्वा तत्क्रियैव बद्धस्पृष्टेत्युक्ता, तथा द्वितीयसमये वेदितेत्यनुभूता, तृतीयसमयेऽतिजीर्णा। एतदुक्तं भवति कर्म योगनिमित्तं बध्यते, तत्स्थितिश्च कषायायत्ता, तदभावाच्च न तस्य साम्परायिकस्येव स्थितिः, किन्तु योगसद्भावाद् बध्यमानमेव स्पृष्टतां-संश्लेषं याति। द्वितीयसमये त्वनुभूयते, तच्च प्रकृतितः सातवेदनीयं स्थितितो द्विसमयस्थितिकमनुभावतः शुभानुभावमनुत्तरोपपातिकदेवसुखातिशायि, प्रदेशतो बहुप्रदेशमस्थिरबन्धं बहुव्ययं च।" इति।

तथा श्रीमच्छीलाङ्काचार्यैरीर्यापथिककर्मप्रतिपादिकेयं गाथा दर्शिता—

"अप्पं बायरमउयं बहुं च लुक्खं च सुक्किलं चेव।
मंदं महव्वतं ति य सातबहुलं तं कम्मं ॥१॥"

अथाऽस्या अर्थः प्रतिपाद्यते—ईर्यापथिककर्म सातवेदनीयं 'अप्पं' ति 'अल्पं' स्तोकं स्थितितः, कषायाभावेन स्थितिबन्धस्याऽयोग्यत्वात् प्रथमसमये कर्मरूपेण परिणतस्य द्वितीयसमये वेदितस्य तृतीयसमये चाऽकर्मतामापन्नस्याऽल्पत्वमुच्यत इत्यर्थः। बादरं=स्थूलं परिणामतः, तथाविधसूक्ष्मपरिणामविरहात्। न चाऽनुभागतो बादरं कुतो न भण्यते, सूक्ष्मसम्परायतोऽनन्तगुणविशुद्धेरुपलम्भाद्? इति वाच्यम्, कषायाभावेन तत्प्रत्ययाऽनुभागबन्धस्याऽभावात्।

नन्वेवं तर्हि कार्मणवर्गणास्कन्धाः कर्मत्वेन परिणमनकाले सर्वजीवाऽनन्तगुणाऽनुभागका भवन्ति, अन्यथा कर्मत्वेन परिणत्यनुपपत्तेरिति। तत् कथमुपपद्येताऽनुभागबन्धाऽभावः? इति चेत्, भण्यते—इह जघन्यानुभागबन्धस्यानजघन्यवर्गणातोऽनन्तगुणहीनरसविशिष्टकार्मणवर्गणास्कन्धानामपि बन्धो न विरुध्यते, यतो यद्यपीर्यापथिककर्मणो जघन्यानुभागबन्धस्थानाद्यवर्गणातोऽनन्तगुणहीनरसता भवति, केवलयोगप्रत्ययत्वात्, तथापि नामप्रत्ययोत्कृष्टवर्गणातो योगप्रत्ययाद्यस्पर्धकाद्यवर्गणाया अनन्तगुणत्वादीर्यापथिककर्मस्कन्धाः सर्वजीवानन्तगुणरसाऽविभागकाः। उक्तश्च कर्मप्रकृ-

तिचूर्णिटिप्पनके श्रीमुनिचन्द्रसूरिपादैः—"तत्र च योऽकषायावस्थाभावी, तस्य जघन्यस्पर्धकाद्यवर्गणाऽपि नामप्रत्ययिकस्पर्धकोत्कृष्टवर्गणातोऽनन्तगुणरसाविभागा, कषायप्रत्ययिकसर्वजघन्यानुभागस्थानकजघन्यस्पर्धकाद्यवर्गणातः पुनरनन्तगुणहीनरसाविभागा, तुच्छरसत्वाद् योगप्रत्ययिकबन्धस्य ।" इति । कषायप्रत्ययजघन्यरसबन्धस्थानतश्चाऽस्य बन्धस्याऽनन्तगुणहीनत्वात् कषायप्रत्ययानुभागबन्धरहितत्वाच्चाऽनुभागबन्धो नास्तीति भणितम् । अत एव यथा स्थित्यपेक्षयेर्यापथिककर्माऽल्पं भणितम्, तथा रसाऽपेक्षयाऽप्यल्पं बोध्यम् । उक्तञ्च कर्मप्रकृतिचूर्णिटिप्पनके—"अल्पं स्तोकं कषायाभावेन तत्प्रत्ययस्थित्यनुभागापोढतया अल्पस्थित्यनुभागत्वात् । तथाहि—तत्कर्म प्रथमसमये बद्धम्, द्वितीयसमये वेदितं तृतीयसमये निर्जीर्यत इति । अनुभागतस्तु कषायप्रत्ययसर्वजघन्यानुभागस्थानस्य सर्वजघन्यस्पर्धकादप्यनन्तगुणहीनरसमिति ।" इति ।

'मउअं' ति मृदु अनुभावतः, मृद्वनुभावकमित्यर्थः । उक्तञ्चाचाराङ्गवृत्तौ—"बादरं परिणामतोऽनुभावतो मृद्वनुभावम् ।" इति । यद्वा स्वरूपदर्शकं विशेषणमिदं मृदुस्पर्शप्रतिपादकम्, तैजसवर्गणाया उपरितनकार्मणादिवर्गणागतपुद्गलेषु मृदुस्पर्शस्याऽवस्थितिदर्शनात् । उक्तं च वर्गणाधिकारे श्रीमदुपाध्यायपादैः—'तत्र मृदुलघुरूपौ द्वौ स्पर्शाववस्थितौ" । इति । न चेतद् व्याख्यानमसिद्धमिति वाच्यम्, ग्रन्थान्तरेऽपि तथाव्याख्यातत्वात् । उक्तं च कर्मप्रकृतिचूर्णिटिप्पनके "मृदु, कर्कशादिस्पर्शाभावेन ।" इति ।

'बहुअं' ति बहु प्रदेशतः । इदमुक्तं भवति—सकषायजीवैर्बध्यमानसातवेदनीयप्रदेशतः संख्यातगुणाः प्रदेशाः क्षीणमोहप्रभृतिगुणस्थानके बध्यन्ते, सातवेदनीयरूपस्यैकस्यैव कर्मणो बध्यमानत्वेन सर्वेषां गृह्यमाणप्रदेशानां सातवेदनीयरूपत्वात् सकषायगुणस्थानकेषु तु यथासंभवमष्टानां सप्तानां षण्णां कर्मणां बध्यमानत्वेन प्रदेशानां यथाविभागं तत्तत्कर्मरूपेण परिणम्यमानत्वात् क्षीणकषायादिगुणस्थानकापेक्षया तत्र वेदनीयप्रदेशानां स्तोकत्वोपलम्भात् । इत्थं सकषायप्रदेशबन्धतोऽकषायसातवेदनीयप्रदेशबन्धस्य संख्यातगुणत्वाद् ईर्यापथिककर्मणो बहुत्वं सुनिरूपितं भवति । चशब्दोऽनुक्तसमुच्चयार्थकः, तेन सुगन्धि सुच्छायं चेत्यपि ज्ञातव्यम् । 'लुक्खं' ति रूक्षं स्पर्शतः, चिरकालावस्थानगुणाऽननुगतत्वात् । 'सुक्किलं' ति शुक्लं वर्णतः, ईर्यापथिककर्मस्कन्धाः शुक्लवर्णा भवन्तीत्यर्थः । एवकारोऽवधारणे, स च सर्वत्र सम्बन्धनीयः, ततोऽल्पमेव बादरमेवेत्यवं सर्वत्र विपक्षक्षेपो द्रष्टव्यः । 'मंदं' ति मन्दं लेपतः, स्थूलचूर्णमुष्टिमृष्टकुड्यापतितलेपवत् । 'महव्वयं' ति महाव्ययम्, एकसमयेनैव सर्वप्रदेशानां निःशेषतो निर्जीर्णत्वदर्शनात् । 'सातबहुलं' ति सातबहुलमनुत्तरोपपातिकसुखातिशायित्वात् ॥२२४॥

अथ क्षीणकषायगुणस्थानके स्थितिघातादीन् विवर्णयिषुराह

होज्जा पुव्वव्व छकम्माणं ठिइरसविघायगुणसेढी ।
दलिअं पडुच्च गुणसेढिनिज्जरा उण असंखगुणा ॥२२५॥

भवन्ति पूर्ववत् षट्कर्मणां स्थितिरसविघातगुणश्रेणयः ।
दलिकं प्रतीत्य गुणश्रेणिनिर्जरा पुनरसंख्यगुणा ॥२२५॥ इति पदसंस्कारः ।

'होज्जा' इत्यादि, तत्र 'षट्कर्मणां' ज्ञानावरण-दर्शनावरणा-ऽन्तराय-वेदनीय-नाम-गोत्राणां 'स्थितिरसविघातगुणश्रेणयः' स्थितिघातो रसघातो गुणश्रेणिश्च पूर्ववद् भवन्ति । इदमुक्तं भवति—क्षीणकषायगुणस्थानके त्रयाणां घातिकर्मणामन्तर्मुहूर्तप्रमाणं स्थितिखण्डं घातयति, अनुभागखण्डेन पुनः सत्तागताऽनुभागस्य बहुनन्तभागान् घातयति । तथा नाम-गोत्र-वेदनीयानां स्थितिखण्डमसंख्यातवर्षप्रमाणं घातयति, तथा तेषामेवा-ऽशुभप्रकृतीनां सत्तागता-ऽनुभागस्य बहुनन्तभागाननुभागखण्डेन विनाशयति । तथा स्थितिघातं कुर्वन् प्रदेशाग्रमुत्कीर्यमाणदलस्या-ऽसंख्येयभागप्रमाणं दलं गृहीत्वोदयनिषेके स्तोकं दलं ददाति, ततो-ऽसंख्येयगुणं द्वितीयनिषेके ददाति । ततो-ऽपि तृतीयनिषेके-ऽसंख्येयगुणं निक्षिपति । एवमसंख्येयगुणक्रमेण तावत् प्रक्षिपति, यावत् क्षीणकषायगुणस्थानकतो विशेषाधिकाद्धायां गुणश्रेणिचरमनिषेकलक्षणगुणश्रेणिशिरः । ततो बहुसंख्येयभागमात्रदलाद् दलमादायगुणश्रेणिचरमनिषेकतो-ऽसंख्येयगुणं दलं गुणश्रेणिशिरस उपरितने प्रथमनिषेके प्रक्षिपति, । ततो विशेषहीनक्रमेण तावद्ददाति, यावदतीत्थापना-ऽप्राप्ता भवति । शेषा घातिकर्मणां प्ररूपणाऽस्मत्कृतोपशमनाकरणटीकायां दर्शनमोहक्षपणाधिकारे प्रतिपादितसम्यक्त्वमोहनीयक्षपणावदवसेया, विशेषाभावात् ।

अथ सूक्ष्मसम्परायतो गुणश्रेणौ विशेषं दर्शयति—'दलिअं' इत्यादि, 'दलिकं' प्रदेशाग्रं 'प्रतीत्य' आश्रित्य 'गुणश्रेणिनिर्जरा' सूक्ष्मसम्परायचरमसमयभाविगुणश्रेणिनिर्जरातः क्षीणकषायप्रथमसमयभाविगुणश्रेण्या कर्मप्रदेशानां परिशाटनम् 'असंख्यगुणा' असंख्येयगुणं भवति, पुनर्वाक्यभेदे, यदुक्तं तत्त्वार्थसूत्रे—"सम्यग्दृष्टि-श्रावक-विरता-ऽनन्तवियोजक-दर्शनमोहक्षपकोपशमकोपशान्तमोहक्षपक-क्षीणमोह-जिनाः क्रमशोऽसंख्येयगुणनिर्जराः ।" इति । ॥२२५॥

उक्तविधिना तावद् निरूपणीयम् यावत् क्षीणकषायगुणस्थानकस्य बहुसंख्येयभागा गता भवन्ति । तत एकस्मिन् संख्येयतमभागे शेषे यद्भवति, तद्दर्शयितुकाम आह

सेसम्मि संखभागे खीणकसायस्स हणइ झाणेण ।
अन्तिमखंडेणं तस्स उवरिमठिइं तिघाईण ॥२२६॥

शेषे संख्येयभागे क्षीणकषायस्य हन्ति ध्यानेन ।
अन्तिमखण्डेन तस्योपरितनस्थितिं त्रिघातिनाम् ॥२२६॥ इति पदसंस्कारः ।

'सेसम्मि' इत्यादि, तत्र 'क्षीणकषायस्य' क्षीणकषायगुणस्थानकाद्धाया अन्तर्मुहूर्तप्रमाणायाः 'संख्यभागे' संख्येयतमभागे शेषे 'अन्तिमखण्डेन' त्रयाणां घातिकर्मणां चरमस्थितिखण्डेन 'त्रिघातिनां' त्रयाणां घातिकर्मणां ज्ञानावरण-दर्शनावरणाऽन्तरायरूपाणां 'तस्य' तच्छब्दस्य पूर्ववस्तुपरामर्शित्वेनाऽनन्तरोक्तक्षीणकषायस्य परामर्शात् क्षीणकषायगुणस्थानकस्योपरितनस्थितिं ध्यानेन 'हन्ति' विनाशयति । 'झाणेण' इत्यनेन कर्मक्षये हेतुरुक्तः, ध्यानमन्तरेण कर्मोन्मूलनाऽनुपपत्तेः ।

अत्र कर्मक्षये ध्यानस्य हेतुत्वप्रतिपादिका तत्त्वार्थवृत्त्युक्तकारिका

"प्राप्नोति परं ह्लादं हिमातपाभ्यामिव विमुक्तम् ।
तेन ध्यानेन यथाख्यातेन च संयमेन घातयति ॥
शेषाणि घातिकर्माणि युगपदपरज्ञनानि ततः ।
कात्स्न्र्यान्मस्तकशूच्यां यथा हतायां हतो भवति तालः ।
कर्माणि क्षीयन्ते तथैव मोहे हते कात्स्न्र्यात् ॥" इति ।

तथैवोक्तं ध्यानशतकेऽपि

जह चिरसंचियमिंधणमनलो पवणसहिओ दुयं दहइ ।
तह कम्मेंधणममियं खणेण झाणाणलो डहइ ॥१॥
जह वा घणसंघाया खणेण पवणाहया विलयमिंति ।
झाणपवणावहूया तह कम्मघणा विलिज्जंति ॥२॥" इति ।

इदमत्र हृदयम्—संख्यातैः स्थितिघातसहस्रैः क्षीणकषायगुणस्थानकस्य बहुसंख्यातभागेषु गतेषु सत्सु घातिकर्मणामन्तर्मुहूर्तप्रमाणं चरमस्थितिखण्डं घातयन् गुणश्रेणिनिक्षेपस्य संख्येयतमभागमपि विनाशयति, ध्यानमुपगतः क्षीणकषायगुणस्थानकस्योपरितनीर्घातिकर्मणां गुणश्रेणिसंख्येयतमभागमात्रीस्ततश्च संख्येयगुणा अन्याः स्थितीश्चरमस्थितिखण्डेन घातयतीत्यर्थः । दलनिक्षेपक्रमस्तु मोहनीयचरमस्थितिखण्डवत् संभवति । त्रयाणां घातिकर्मणां चरमस्थितिखण्डे घातिते ज्ञानावरणपञ्चक–दर्शनावरणषट्का-ऽन्तरायपञ्चकरूप-षोडशप्रकृतीनां स्थितिसत्त्वं शेषक्षीणकषायगुणस्थनकालप्रमाणं जायते, नवरं निद्राद्विकस्य समयोनं भवति । ततः परं घातिकर्मणां स्थितिघातो न भवति। तच्च वक्ष्यत्यष्टाविंशत्यधिकद्विशततमगाथायाम् । शेषाणां त्रयाणामघातिकर्मणां तु भवत्येव । उक्तं च सप्ततिकाचूर्णौ—"एवं खीणकसायद्धाअंतोमुहुत्तपमाणमेत्ताए संखेज्जेसु भागेसु गतेसु संखेज्जइमे सेसे पंचणाणावरण-छदंसणावरण-पंचण्हमंतराइगाणं एएसिं सोलसण्हं कम्माणं ठितिसंतकम्मं सव्वोवट्टणाए उव्वट्टेत्तु सेसखीणकसायद्धासमं करेइ । तओ पभिइं एयासिं ठितिघाओ फिट्टो, सेसाणं

अत्थि चेव । नवरिं निद्दादुगस्स एक्केण समएण ऊणियठिर्इं ठवेइ, दलियं पडुच्च, कालो उ तुल्लो ।" इति ॥२२६॥

ननु भवता प्रोक्तम्–ध्यानेन क्षीणकषायगुणस्थानस्योपरितनीं घातिकर्मस्थितिं विनाशयतीति । तत् किं नाम ध्यानम् ? कतिविधं च तत् ? इति चेत्, उच्यते–ध्यायते=चिन्त्यते तत्त्वमनेनेति ध्यानम् ,एकाग्रचिन्तानिरोध इत्यर्थः । अग्रम्=आलम्बनम् , एकं च तदग्रं चेत्येकाग्रम् । चलं चित्तमेव चिन्ता, तस्य निरोधः=एकत्र व्यवस्थापनमन्यत्राऽप्रचारः, एकाग्रे=एकावलम्बने चिन्तानिरोध इत्येकाग्रचिन्तानिरोधः । एवंस्वरूपं ध्यानं चतुर्विधम्, आर्त-रौद्र-धर्म्य-शुक्लभेदात् । किन्तु द्वयोरेव धर्म्य-शुक्लाख्ययोर्निर्वाणसाधनत्वेन कर्मक्षयकारणत्वम् , शेषयोस्तु भवकारणत्वेन कर्मबन्धप्रयोजकता । यदुक्तं ध्यानशतके

"अट्टं रुद्दं धम्मं सुक्कं झाणाइ तत्थ अंताइं ।
निव्वाणसाहणाइं भवकारणमट्टरुद्दाइं ॥१॥" इति ।

इह च कर्मक्षयस्याऽधिकृतत्वात् कर्मक्षयकारणलक्षणविशेषणं पुरस्कृत्य ध्यानस्य द्वैविध्यं प्रतिपिपादयिषुराह

कम्मक्खयकारणं झाणं दुविहं धम्मसुक्कभेअत्तो ।
एक्केक्कं होइ चउविहं णायव्वं पवयणत्तो ॥२२७॥

कर्मक्षयकारणं ध्यानं द्विविधं धर्म्यशुक्लभेदात् ।
एकैकं भवति चतुर्विधं ज्ञातव्यं प्रवचनतः ॥२२७॥ इति पदसंस्कारः ।

'कम्म०' इत्यादि, 'कर्मक्षयकारणं' ज्ञानावरणादिकर्मविनाशनिबन्धनं 'ध्यानम्' उक्तशब्दार्थं 'द्विविधं' द्विप्रकारं भवति, धर्म्यशुक्लभेदात् । तत्र धर्मात्-क्षमादिलक्षणादनपेतं धर्म्यम् , "हृद्य-पद्य-तुल्य-मूल्य-वश्य-पथ्य-वयस्य-धेनुष्या-गार्हपत्य-जन्य-धर्म्यम्" (सिद्धहेम०७-१-११) इति निपातनाद् यप्रत्ययान्तः । शुचम्-अष्टविधकर्मलक्षणां क्लमयति=ग्लपयति=निरस्यतीति शुक्लम्, यद्वा शुक्लं-निर्मलं कर्मक्षयहेतुत्वात् । यद्वा शोधयत्यष्टप्रकारं कर्ममलमिति शुक्लम् । अथ धर्म्यस्य शुक्लस्य च ध्यानस्य चातुर्विध्यमुपवर्णयति-'एक्केक्कं' इत्यादि, 'एकैकं' धर्म्यं शुक्लं च प्रत्येकं पुनः 'चतुर्विधं' चतुष्प्रकारं भवति, 'ज्ञातव्यं' तच्च बोध्यं 'प्रवचनतः' जिनेन्द्रप्रणीताऽऽगमतः, न विस्तरेण प्रदर्श्यत इति भावः ।

अथ ध्यानद्वयस्य किञ्चित् स्वरूपं वर्ण्यते, अन्यथा मन्दबुद्धिजनानां तद्विषयकबोधो न स्यात् । तत्राद्यं धर्म्यध्यानं चतुर्विधमाज्ञाविचया-ऽपायविचय-विपाकविचय-संस्थानविचयभेदात् ।

तत्रादौ तावद् आज्ञाविचयः पुद्गलकर्माण्याज्ञाप्यन्ते प्राणिनोऽनयेत्याज्ञा सर्वज्ञप्रणीतागम इत्यर्थः, तस्या विचयः=पर्यालोचनमित्याज्ञाविचयः । तथाहि केवलालोकेन विनाशिता-ऽशेषसंशय-

तिमिराणां तीर्थकृतां सुनिपुणां सूक्ष्मद्रव्याद्युपदर्शकत्वात् मत्यादिप्रतिपादकत्वाच्च, द्रव्यार्थादेशापेक्षयाऽनाद्यपर्यवसितां, सर्वजीवनिकायहिताम्, अनेकान्तपरिच्छेदात्मिकां, महार्घ्यां सर्वोत्तमत्वाद्, अपरिमिताम् एकसूत्रस्याऽनन्तार्थकत्वाद्, अजितां परप्रवचनैरपराजितत्वाद्, महार्थां पूर्वापराविरोधित्वादनुयोगद्वारात्मकत्वान्नयगर्भत्वाच्च, महानुभावां चतुर्दशपूर्वविदां सर्वलब्धिसम्पन्नत्वात् प्रभूतकार्यकरणाच्च, महाविषयां सकलद्रव्यादिविषयत्वाद्, अकुशलजनदुर्ज्ञेयां नैगमादिनय–भङ्ग–प्रमाण–गमगहनामाज्ञां चिन्तयेत् । यः पुनर्ज्ञानावरणोदयेन मतिदौर्बल्यात् तथाविधाचार्याभावाद् वा ज्ञेयगहनत्वाद्वोपयुक्तोऽपि दुरधिगम्यां भगवदाज्ञां नाऽवबुध्यते, सोऽपीत्थं ध्यायेत्–परैरनुपकृतेऽपि धर्मोपदेशादिना परानुग्रहोद्युक्तानां जितरागद्वेषाणामवितथवादिनां भगवतां तीर्थकृतां वचनमवितथमेव, रागद्वेषाऽभावेनवितथकारणाऽनुपलम्भादिति । उक्तं च ध्यानशतके

"सुनिउणमणाइनिहणं भूयहियं भूयभावणमहग्घं ।
अमियमजियं महत्थं महाणुभावं महाविसयं ॥१॥
झाइज्जा निरवज्जं जिणाणमाणं जगप्पईवाणं ।
अणिउणजणदुण्णेयं नय-भंग-पमाण-गमगहणं ॥२॥
तत्थ य मइदोब्बलेण तव्विहायरियविरहओ वा वि ।
णेयगहणत्तणेण य णाणावरणोदएणं च ॥३॥
हेऊदाहरणासंभवे य सइ सुट्ठु जं न बुज्झेज्जा ।
सव्वण्णुमयमवितहं तहावि तं चिंतए मइमं ॥४॥
अणुवकयपराणुग्गहपरायणा जं जिणा जगप्पवरा ।
जियरागदोसमोहा य णऽण्णहावादिणो तेणं ॥५॥" इति ।

अथ द्वितीयमपायविचयाख्यं धर्मध्यानमुच्यते–अपायाः=विपदः शारीरमानसानि दुःखानीत्येकार्थाः, तेषां विचयः=चिन्तनम् । तथाहि–इह खलु जन्मजरामरणसंव्याप्तसंसारसागरे सांसारिकसुखेष्ववितृप्तचेतसः सत्त्वा रागद्वेषकषायाऽऽश्रवादिषु प्रवर्तन्ते, ते च नरकादिगतिषु चङ्क्रम्यन्ते । केचित् पुनरिहैव कृतवैरानुबन्धाः परस्परमाक्रोशवधाद्यपायभाजो दृश्यन्ते क्लिश्यन्ते चेत्यादि भवचक्रे भ्रमतां जन्तूनामिहलोकपरलोकापायांश्चिन्तयतोऽपायविचयाख्यधर्मध्यानं भवति । उक्तं च ध्यानशतके

"रागद्दोसकसायाऽऽसवादिकिरियासु वट्टमाणाणं ।
इह-परलोयावाए झाइज्जा वज्जपरिवज्जी ॥१॥"

तथा चात्र श्रीकलिकालकल्पतरुकल्पानां श्रीमद्हरिभद्रसूरीश्वराणां तट्टीका–"रागद्वेषकषायाऽऽश्रवादिक्रियासु प्रवर्तमानानामिहपरलोकापायान् ध्यायेत्,

यथा रागादिक्रिया ऐहिका-ऽऽमुष्मिकविरोधिनी, उक्तं च

"रागः सम्पद्यमानोऽपि दुःखदो दुष्टगोचरः ।
महाव्याध्यभिभूतस्य कुपथ्यान्नाभिलाषवत् ॥१॥ तथा
द्वेषः सम्पद्यमानोऽपि तापयत्येव देहिनम् ।
कोटरस्थो ज्वलन्नाशु दावानल इव द्रुमम् ॥२॥ तथा
दृष्ट्यादिभेदभिन्नस्य रागस्यामुष्मिकं फलम् ।
दीर्घः संसार एवोक्तः, सर्वज्ञैः सर्वदर्शिभिः ॥३॥ इत्यादि, तथा
"दोसानलसंतत्तो इह लोए चेव दुक्खिओ जीवो ।
परलोगंमि य पावो पावइ निरयानलं तत्तो ॥१॥"

इत्यादि, तथा कषायाः क्रोधादयः, तदपायाः पुनः–

कोहो पीइं पणासेइ माणो विणयनासणो ।
माया मित्ताणि नासेइ, लोभो सव्वविणासणो ॥१॥
कोहो य माणो य अणिग्गहीया माया य लोहो य पवड्ढमाणा ।
चत्तारि एए कसिणा कसाया सिंचंति मूलाइं पुणब्भवस्स ॥२॥"

तथा-ऽऽश्रवाः–कर्मबन्धहेतवो मिथ्यात्वादयः, तदपायाः पुनः

"मिच्छत्तमोहियमई जीवो इहलोग एव दुक्खाइं ।
निरओवमाइं पावो पावइ पसमाइगुणहीणो ॥१॥" तथा
"अज्ञानं खलु कष्टं क्रोधादिभ्योऽपि सर्वपापेभ्यः ।
अर्थं हितमहितं वा न वेत्ति येनावृतो लोकः ॥१॥" तथा
"जीवा पाविंति, इहं पाणवहादविरईए पावाए ।
नियसुयघायणमाई दोसे जणगरहिए पावा ॥१॥
परलोगंमि वि एवं आसवकिरियाहि अज्जिए कम्मे ।
जीवाण चिरमवाया निरयाइगई भमंताणं ॥२॥" इत्यादि ।

आदिशब्दः स्वगता-ऽनेकभेदव्यापकः, प्रकृति-स्थित्यनुभावप्रदेशबन्ध-भेदग्राहकं इत्यन्ये, क्रियास्तु कायिक्यादिभेदाः पञ्च, एताः पुनरुत्तरत्र न्यक्षेण वक्ष्यामः । विपाकः पुनः

'किरियासु वट्टमाणा काइगमाईसु दुक्खिया जीवा ।
इह चेव य परलोए संसारपवड्ढया भणिया ॥१॥"

ततश्चैवं रागादिक्रियासु वर्तमानानामपायान् ध्यायेत्, किंविशिष्टः सन्नित्याह-'वर्ज्यपरिवर्जी' तत्र वर्जनीयं वर्ज्यम्-अकृत्यं परिगृह्यते, तत्परिवर्जी-अप्रमत्त इति गाथार्थः ।" इति ।

अथ विपाकविचयाख्यं तृतीयं धर्मध्यानमुच्यते-वि=विविधो विशिष्टो वा पाको विपाकः-अनुभाव इत्यर्थः, नरकादिगतिषु कर्मणां विपाकस्य विचयः-पर्यालोचनमिति विपाकविचयः । ज्ञानावरणादिकमष्टप्रकारकं कर्म प्रकृतिस्थित्यनुभागप्रदेशभेदभिन्नमिष्टानिष्टविपाकपरिणामं जघन्यमध्यमोत्कृष्टस्थितिकं विविधविपाकम् । तद्यथा-ज्ञानावरणाद् दुर्मेधस्त्वम्, दर्शनावरणाच्चक्षुरादिवैकल्यं निद्राद्युद्भवश्च, असातवेदनीयाद् दुःखं सातवेदनीयात्सुखम्, मोहनीयाद् विपरीतग्राहिता चारित्रनिर्वृत्तिश्च, आयुषोऽनेकभवप्रादुर्भावः, नाम्नो-ऽशुभप्रशस्तदेहादिनिर्वृत्तिः, गोत्रादुच्चनीचकुलोत्पत्तिः, अन्तरायादलाभ इत्यादिकर्मविपाकं चिन्तयतो विपाकविचयाख्यं तृतीयं धर्मध्यानं भवति । उक्तं च ध्यानशतके

"पयइ-ठिइ-पएसा-ऽणुभावभिन्नं सुहासुहविहत्तं ।
जोगाणुभावजणियं कम्मविवागं विचिंतेज्जा ॥१॥

अथ संस्थानविचयनामधेयं चतुर्थं धर्मध्यानमुच्यते-संस्थानम्-आकारविशेषो लोकस्य द्रव्याणां च । संस्थानस्य विचयो-अनुसारणमिति संस्थानविचयः । न केवलं लोकस्य द्रव्याणां च संस्थानं चिन्तयेच्चतुर्थधर्मध्यानोपगतः, अपि तु षड्द्रव्याणां लक्षणा-ऽऽसन-विधान-प्रमाणानि तयोत्पादव्ययादिपर्यायानपि चिन्तयेत् । उक्तं च

"जिणदेसियाइ लक्खणा-संठाणा-ऽऽसण-विहाण-माणाइं ।
उप्पायट्ठिइभंगाइ पज्जवा जे य दव्वाणं ॥१॥" इति ।

इह लक्षणं धर्मास्तिकायादीनां गत्यादि । तथा संस्थानं मुख्यवृत्त्या पुद्गलरचनाकाररूपं परिमण्डलाद्यजीवानाम्, उक्तं च "परिमंडले य वट्टे तंसे चउरंस आयते चेव ।" इति । जीवशरीराणां च समचतुरस्रादि, उक्तञ्च

"समचउरंसे नग्गोहमंडले साइ वामणे खुज्जे ।
हुंडे वि संठाणे जीवाणं छ मुणेयव्वा ॥१॥" इति ।

तथा धर्माधर्मयोरपि लोकक्षेत्रा-ऽपेक्षया संस्थानं भावनीयम् । लोकसंस्थानं चेत्थं भावनीयम्-अधोलोको वेत्रासनसंस्थानः, तिर्यग्लोकः पुनर्झल्लरीसंस्थानः, ऊर्ध्वलोकस्तु मृदङ्गसंस्थानः । यदुक्तं जीवसमासे

"हेट्ठा मज्झे उवरिं वेत्तासण-झल्लरी मुइंगनिभो ।
मज्झिमवित्थाराहिय चोद्दसगुणमायओ लोओ ॥१॥"

आसनानि चाऽऽधारलक्षणानि, धर्मा-ऽस्तिकायादीनां लोकाकाशादीनि स्वस्वरूपाणि वा। तथा विधानानि-धर्मास्तिकायादीनां भेदाः। प्रमाणानि च धर्मास्तिकायादीनामेवात्मीयानि, तथा धर्मास्तिकायादीनामुत्पादस्थितिव्ययादिपर्यायाः। उत्पादादिपर्यायेषु चेयं युक्तिश्शास्त्रवार्तासमुच्चये प्रतिपादिता **श्रीहरिभद्रसूरिपादैः**

"घट-मौलि-सुवर्णार्थी नाशोत्पत्तिस्थितिष्वयम्।
शोक-प्रमोद-माध्यस्थं जनो याति सहेतुकम् ॥१॥
पयोव्रतो न दध्यत्ति न पयो-ऽत्ति दधिव्रतः।
अगोरसव्रतो नोभे, तस्मात्तत्त्वं त्रयात्मकम् ॥२॥" इति।

इह धर्मास्तिकायो विवक्षितसमयसम्बन्धरूपा-ऽपेक्षयोत्पद्यते, तदनन्तरा-ऽतीतसम्बन्धरूपा-ऽपेक्षया तु नश्यति, धर्मास्तिकायत्वेन तु नित्य इति।

पञ्चास्तिकायमयो लोकः, स च कालतो-ऽनाद्यनिधनः। क्षेत्रतश्च लोकस्त्रिविधः, अधोलोकादिभेदैः। तत्राऽप्यष्टानां क्षितीनां घर्माद्यानां पृथ्वीनामेकविंशतेर्घनोदधिघन-वाततनुवातात्मकानां घर्मादिसप्तपृथिवीवलयानां जम्बूद्वीपप्रभृतिस्वयम्भूरमणद्वीपपर्यवसानाना-मसंख्येयद्वीपानां लवणप्रभृतिस्वयंभूरमणपर्यवसानानामसंख्येयानां सागराणां सीमन्तकप्रभृत्यप्रति-ष्ठानावसानानां चतुरशीतिलक्षाणां (८४,००,०००) निरयाणामसंख्येयानां ज्योतिष्कादिसम्बन्धि-विमानानां द्वासप्ततिलक्षोत्तरसप्तकोटीनाम् (७,७२,००,०००) असुरादिदशनिकायसम्बन्धिनां भव-नवास्यालयरूपभवनानामसंख्येयानां व्यन्तरनगराणां स्थानानि, व्योमादिप्रतिष्ठानं च लोकस्थिति-विधानमित्यादि चिन्तयतो जीवस्य चतुर्थं धर्मध्यानं भवति। किञ्च साकाराद्युपयोगलक्षणो जीवो नित्य औदारिकादिशरीरेभ्यः पृथग्भूतो-ऽमूर्तः स्वज्ञानावरणादिकर्मणां कर्तोपभोक्ता चाऽस्ति। तस्य जीवस्य स्वकर्मजनितो जन्मादिजलो व्यसनशतश्वापदः कषायपातालो मोहनीयकर्मावर्तो महा-भयानको ज्ञानावरणकर्मोदयजनिताऽज्ञानवायुप्रेरितसंयोगवियोगवीचिमन्तानोऽनाद्यपर्यवसितोऽशुभः संसारसागरो-ऽस्तीत्यादि चतुर्थधर्मध्यानोपगतो ध्यायति। किं बहुना भाषितेन, निश्शेषं जीवा-ऽजीव-पुण्य-पापा-ऽऽश्रव-संवर-निर्जरा-बन्ध-मोक्षाख्य-नवपदार्थविस्तरोपेतं द्रव्यास्तिकायादिसर्व-नयसमन्वितं जिनेन्द्रभाषितं सिद्धान्तं ध्यायतो जीवस्य चतुर्थं धर्मध्यानं भवति। यदुक्तं ध्यान-शतके

"पंचत्थिकायमइयं लोगमणाइणिहणं जिणक्खायं।
णामाइभेयविहियं तिविहमहोलोयभेयाइं ॥१॥
खिइ-वलय-दीव-सागर-निरय-विमाण-भवणाइसंठाणं।
वोमाइपइट्ठाणं निययं लोगट्ठिइविहाणं ॥२॥

उवओगलक्खणमणाइनिहणमत्थंतरं सरीराओ ।
जीवमरूविं कारिं भोयं च सयस्स कम्मस्स ॥३॥

तस्स य सकम्मजणियं जम्माइजलं कसायपायालं ।
वसणसयसावयमणं मोहावत्तं महाभीमं ॥४॥

अण्णाणमारुएरियसंजोगविजोगवीइसंताणं ।
संसारसागरमणोरपारमसुहं विचिंतेज्जा ॥५॥

किं बहुणा ? सव्वं चिय जीवाइपयत्थवित्थरोवेयं ।
सव्वनयसमूहमयं झाएज्जा समयसब्भावं ॥६॥" इति ।

अथ धर्मध्यानस्य ध्यातारो निगद्यन्ते—अप्रमत्तगुणस्थानकवर्तिप्रभृतिक्षीणकषायगुणस्थानकवर्तिपर्यवसाना जीवा धर्मध्यानस्य ध्यातारः । ते च दर्शन-ज्ञान-चारित्रलक्षणरत्नत्रय-वैराग्यभावनाभिर्भावितात्मानोऽनियते च देशे काल आसने वर्तमाना वाचनापृच्छनाद्यालम्बनयुक्तास्तेजःप्रभृतिलेश्याका भवन्ति । उक्ताश्च ध्यानशतके भावना-देश-काला-ऽऽसना-ऽऽलम्बन-लेश्याः । अक्षराणि त्वेवम्

"पुव्वकयब्भासो भावणाहिं झाणस्स जोग्गयमुवेइ ।
ताओ य नाण-दंसण-चरित्त-वेरग्गनियता (जणिया) ओ ॥१॥

णाणे णिच्चब्भासो कुणइ मणोधारणं विसुद्धिं च ।
नाणगुणमुणियसारो तो झाइ सुनिच्चलमईओ ॥२॥ (इति ज्ञानभावना)

संकाइदोसरहिओ पसम-थेज्जाइगुणगणोवेओ ।
होइ असंमूढमणो दंसणसुद्धीइ झाणंमि ॥३॥ (इति दर्शनभावना)

नवकम्माऽणायाणं पोराणविणिज्जरं सुभाऽऽयाणं ।
चारित्तभावणाए झाणमयत्तेण य समेइ ॥४॥ (इति चारित्रभावना)

सुविदियजगस्सभावो निस्संगो निब्भओ निरासो य ।
वेरग्गभावियमणो झाणंमि सुनिच्चलो होइ ॥५॥ (इति वैराग्यभावना)

निच्चं चिय जुवइ-पसू-नपुंसग-कुसीलवज्जियं जईणो ।
ठाणं वियणं भणियं विसेसओ झाणकालंमि ॥६॥

थिरकयजोगाणं पुण मुणीण झाणे सुनिच्चलमणाणं ।
गामंमि जणाइण्णे सुण्णे रण्णे व ण विसेसो ॥७॥

तो जत्थ समाहाणं होज्ज मणो-वयण कायजोगाणं ।
भूओवरोहरहिओ सो देसो झायमाणस्स ॥८॥ (इति ध्यातुर्देशः प्रतिपादितः)
कालो-ऽवि सो चिय जहिं जोगसमाहाणमुत्तमं लहइ ।
न उ दिवस-निसावेलाइनियमणं झाइणो भणियं ॥९॥ (इति कालो ध्यातुः)
जच्चिय देहावत्था जिया ण झाणोवरोहिणी होइ ।
झाइज्जा तदवत्थो ठिओ निसण्णो निव्वण्णो व ॥१०॥
सव्वासु वट्टमाणा मुणओ जं देस-काल-चेठासु ।
वरकेवलाइलाभं पत्ता बहुसो समियपावा ॥११॥ (इति ध्यातुरासनानि)
आलंबणाइ वायण-पुच्छण-परियट्टणा-ऽणुचिंताओ ।
सामाइयाइयाइं सद्धम्मावस्सयाइं च ॥१२॥
विसमंमि समारोहइ दढदव्वालंबणो जहा पुरिसो ।
सुत्ताइकयालम्बो तह झाणवरं समारुहइ ॥१३॥ (इति ध्यायकस्यालम्बनानि)
होंति कमविसुद्धाओ लेसाओ पीय-पम्ह-सुक्काओ ।
धम्मज्झाणोवगयस्स तिव्वमंदाइभेयाओ ॥१४॥ (इति ध्यायिनो लेश्याः)

नन्वेते जीवा धर्मध्यानोपगता इत्येतत् कथमवसीयते ? इति चेत्, उच्यते लिङ्गेन । अयं भावः=लिङ्ग्यतेऽनेनेति लिङ्गम् । यथा धूमात्मकलिङ्गेन पर्वतो वह्निमानिति ज्ञायते, तथैव श्रद्धानादिलिङ्गैर्ज्ञायन्ते, यदेते जीवा धर्मध्यायिन इति । तच्च लिङ्गमागमोपदेशत आज्ञानिसर्गतश्च तीर्थङ्करप्ररूपितद्रव्यादिपदार्थानां श्रद्धानम्, अवितथा एत इत्यादिलक्षणं, जिनसाधुगुणोत्कीर्तनप्रशंसाविनयदानसम्पन्नता श्रुत-शील-संयमरमणञ्च । उक्तं च ध्यानशतके

"आगमउवएसा-ऽऽणाणिसग्गओ जं जिणप्पणीयाणं ।
भावाणं सद्दहणं धम्मज्झाणस्स तं लिङ्गं ॥१॥
जिणसाहूगुणकित्तण-पसंसणा-विणय-दाणसंपण्णो ।
सुअसीलसंजमरओ धम्मज्झाणी मुणेयव्वो ॥२॥" इति ।

अत्र आगमः सूत्रम्, तदनुसारेण कथनमुपदेशः, निसर्गः–स्वभावः ।

तदेवं गतं धर्मध्यानम् ।

इह पूर्वधरेतरः क्षपको धर्मध्यानबलेन मोहनीयकर्म निश्शेषतो विनाश्य क्षीणकषायगुणस्थानकं प्रतिपद्यते । पूर्ववित्क्षपकस्तु शतकलघुचूर्णिकाराद्यभिप्रायेण शुक्लध्यानेनाऽपि मोहनीयं परिक्षपय्य क्षीणकषायगुणस्थानकं प्रतिपद्यते । तत्त्वार्थसूत्रकृदाद्यभिप्रायेण सर्वे धर्मध्यानोपगता एव मोहनीयं क्षपयन्ति, ततः क्षीणकषाया भवन्ति, उपशान्तमोहप्रभृतिगुणस्थानेषु

शुक्लध्यानस्वीकारात् । क्षीणकषायगुणस्थानके तु सर्वेषां सतेनाद्यशुक्लध्यानद्वयमपि भवति । अतः शुक्लध्यानद्वयं सप्रभेदं प्ररूप्यते

शुक्लध्यानम् शुक्लध्यानं चतुर्विधम्, पृथक्त्ववितर्कसविचारादिभेदात् । तत्राद्यं पृथक्त्ववितर्कसविचारम्, द्वितीयमेकत्ववितर्काऽविचारम्, तृतीयं सूक्ष्मक्रियमप्रतिपाति चतुर्थं च व्युपरतक्रियमनिवर्तीति ।

अथ प्रथमं शुक्लध्यानं पृथक्त्ववितर्कसविचारं विविच्यते पृथक्त्वं=भेदः, वितर्क्यते=आलोच्यते पदार्थो येन स वितर्कः, करणे घञ्प्रत्ययः, मतिज्ञानविकल्प इत्यर्थः, तदनुगतं श्रुतमपि वितर्को व्यपदिश्यते, तदभेदात् । अथ व्युत्पत्त्यन्तरं दर्श्यते–विगतं तर्क=वितर्कं संशयविपर्ययाऽपेतं श्रुतज्ञानमित्यर्थः । विचरणं=विचारः, अर्थव्यञ्जनयोगेषु संक्रान्तिरित्यर्थः, तत्राऽर्थः परमाण्वात्मादिः, व्यञ्जनम्=अर्थस्य वाचको शब्दः, योगः=मनोवाक्काययोगस्वरूपः, तेषु संक्रान्तिर्विचार उच्यत इति यावत् । अर्थाद् व्यञ्जने संक्रामति, व्यञ्जनादर्थे, मनोयोगात् काययोगे, काययोगाद् वाग्योगे, वाग्योगात् काययोग इत्यादौ संक्रामति । ततश्च पृथक्त्वेन=एकद्रव्याश्रितानामुत्पादादिपर्यायाणां भेदेन पृथुत्वेन वा विस्तीर्णभावेनेत्यन्ये वितर्कः=श्रुतं यस्मिन् ध्याने तत्पृथक्त्ववितर्कम्, यद्वा पृथक्त्वेन=एकद्रव्याश्रितानामुत्पादादिपर्यायाणां भेदेन पृथुत्वेन वा वितर्को=विकल्पः पूर्वगतश्रुतालम्बनो नानानयानुसरणलक्षणो यस्मिन् ध्याने, तत्पृथक्त्ववितर्कम् । विचारेण=अर्थादिषु संक्रान्त्या सह वर्तते, तत् सविचारम्, अर्थाद् व्यञ्जनं संक्रामति व्यञ्जनादर्थमित्यादि, तेनेदं सविचारमुच्यत इत्यर्थः, पृथक्त्ववितर्कं च तत् सविचारं चेति पृथक्त्ववितर्कसविचारं प्रथमशुक्लध्यानमित्यर्थः । यदुक्तं ध्यानशतके -

"उप्पायठितिभंगाइ पज्जयाणं जमेगदव्वंमि ।
नाणानयाणुसरणं पुव्वगयसुयाणुसारेणं ॥१॥
सवियारमत्थ-वंजण-जोगंतरओ तयं पढमसुक्कं ।
होति पुहुत्तवियक्कं सवियारमरागभावस्स ॥२॥" इति ।

तथैव तद्वृत्तावप्युक्तं कलिकालतमोदिवाकरैः श्रीमद्धरिभद्रसूरिपादैः–"विचारः=अर्थव्यञ्जनयोगसंक्रम इति, आह च–अर्थ-व्यञ्जन-योगान्तरतः–अर्थः=द्रव्यं, व्यञ्जनं=शब्दः, योगः-मनःप्रभृति, एतदन्तरतः=एतावद्भेदेन सविचारम्, अर्थाद्व्यञ्जनं संक्रामतीति विभाषा, तकम्–एतद् प्रथमशुक्लं आद्यशुक्लं भवति । किं नामेत्यत आह–पृथक्त्ववितर्कं सविचारं, पृथक्त्वेन भेदेन विस्तीर्णभावेनाऽन्ये वितर्कः श्रुतं यस्मिन् तत्तथा ।" इति ।

अथ प्रकारान्तरेण व्युत्पाद्यते-पृथक्त्वम्=अनेकत्वं तेन सहगतो वितर्कः=पृथक्त्ववितर्कः, पृथक्त्वमेव वा वितर्को-वितर्कपुरोगं=पृथक्त्ववितर्कम्, पृथक्त्वञ्चा-ऽत्र परमाणुजीवादावेकद्रव्य उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यादिपर्यायाऽनेकनयार्पितत्वम् । पृथक्त्वेन पृथक्त्वे वा तस्य चिन्तनं वितर्कसहचरितं पृथक्त्ववितर्कम्, पृथक्त्ववितर्कं च तत् सविचारं चेति पृथक्त्ववितर्कसविचारम् । इदमुक्तं भवति–त्रयाणां योगानामन्यतमे योगे वर्तमान उत्तमसंहननो जीवः प्राक् परमाण्वात्मादिकवाचकशब्दं गृह्णाति । ततस्तेत्स्वरूपं चिन्तयति, ततस्तत्पर्यायं चिन्तयति, ततस्तदर्थं नानानयैः पूर्वगतभङ्गिश्रुतज्ञानबलेन पूर्ववित् तदितरस्तु मरुदेव्यादिवदन्यथा चिन्तयति, "पूर्वगतश्रुतानुसारेण पूर्वविदः, मरुदेव्यादीनां त्वन्यथा ।" इति ध्यानशतकवृत्तौ प्रतिपादनात् । ग्रन्थान्तराभिप्रायेण तु मरुदेव्यादीनां निश्चयतो भावश्रुतयोगस्वीकाराद् न विरुध्यते तेषामपि यथोक्तश्रुतज्ञानबलेन चिन्तनम् । यदुक्तमुपदेशरहस्यवृत्तौ–"येषामपि मरुदेव्यादीनां व्यवहारतो नोपलभ्यन्त एते, तेषामपि निश्चयत एतत्सर्वमभ्युपगन्तव्यम्, तत्फलस्य संपन्नत्वात्, अत एवाद्ये पूर्वविद इत्यादिकमुपपद्यते, केवलज्ञानप्राप्तियोग्यतयाऽनुमीयमानस्याऽऽद्यशुक्लद्वयस्य तत्र भावतः पूर्ववित्त्वं विनाऽसंभवात् ।" इति । ततः शब्दार्थयोः स्वरूपनिर्णयचिन्ताप्रतिबन्धः प्रणिधानम् । ततोऽन्तर्मुहूर्तकाले गते पर्यायान्तरं चिन्तयति, अथवा द्रव्यान्तरं गुणान्तरं वा, तेनेदं ध्यानं सपृथक्त्वमुच्यते । कश्चित्पुनरर्थादर्थान्तरं गच्छति, शब्दाच्छब्दान्तरे संक्रामति । अन्यः पुनः पूर्वयोगतो-ऽन्यतरस्मिन् योगे वा संक्रामति, तेनेदं ध्यानं सविचारं भण्यते । श्रुतज्ञानबलेन चिन्तयति, तेन सवितर्कमुच्यते । उक्तं च गुणस्थानकक्रमारोहे

"स्वशुद्धात्मानुभूतात्मभावश्रुतावलम्बनात् ।
अन्तर्जल्पो वितर्कः स्यात् यस्मिंस्तत्सवितर्कजम् ॥१॥
अर्थादर्थान्तरे शब्दाच्छब्दान्तरे च संक्रमः ।
योगाद्योगान्तरे यत्र सविचारं तदुच्यते ॥२॥
द्रव्याद् द्रव्यान्तरं याति गुणाद्याति गुणान्तरम् ।
पर्यायादन्यपर्यायं सपृथक्त्वं भवत्यतः ॥३॥" इति ।

संक्षेपत एकस्मिन् परमाण्वादौ द्रव्य उत्पाद-स्थिति-भङ्ग-मूर्ता-ऽमूर्त-नित्या-ऽनित्यादिपर्यायाणां द्रव्यास्तिकादिनानानयैश्चिन्तनपरं प्रथमशुक्लध्यानम् ।

न च अर्थादर्था-ऽन्तरं गच्छतो जन्तोर्ध्यानविनाशो भवेदिति वाच्यम्, चित्तस्याऽन्यत्र गमनाऽभावेन ध्याननाशाऽभावात् ।

अथ द्वितीयं शुक्लध्यानमेकत्ववितर्काऽविचारं निरूप्यते

एकत्वेन=अभेदेन=उत्पादादिपर्यायाणामन्यतमैकपर्यायालम्बनतयेत्यर्थो वितर्कः–व्यञ्जन-

रूपोऽर्थरूपो वा यस्य तत्तथा, इदमपि पूर्वगतश्रुतानुसारेणैव भवति, न विद्यते विचारः=अर्थ-व्यञ्जनयोरेकतरस्मादितरत्र तथा मनःप्रभृतीनामन्यतमादन्यत्र सञ्चारो निर्वातगृहगतप्रदीपस्येव यस्य तदविचारम् । एकत्ववितर्कं च तदविचारं चेत्येकत्ववितर्का-ऽविचारं द्वितीयशुक्लध्यानमुच्यते । उक्तञ्च

"जं पुण सुनिप्पकंपं निवायसरणप्पदीवमिव चित्तं ।
उप्पाय-ठिइ-भंगाइयाणमेगंमि पज्जाए ॥१॥
अवियारमत्थवंजणजोगंतरओ तयं बिइयं सुक्कं ।
पुव्वगयसुयालंबणमेगत्तवियक्कमवियारं ॥२॥" इति ।

इदमुक्तं भवति-एकस्य भाव एकत्वम्, एकत्वगतो वितर्क एकत्ववितर्कः । यत्रैक एव योगस्त्रयाणामन्यतमस्तथा-ऽर्थो व्यञ्जनं चैकमेव पर्याया-ऽन्तरा-ऽनर्पितमेकपर्यायचिन्तनम्=उत्पादव्ययध्रौव्यादिपर्यायाणामेकस्मिन् पर्याये निर्वातगृहप्रतिष्ठितप्रदीपवद् निष्प्रकम्पं पूर्वगतश्रुतानुसारि चित्तं निर्विचारमर्थव्यञ्जनयोगान्तरेषु तदेकत्ववितर्का-ऽविचारम् ।

अत्र द्वितीयध्याने एकं द्रव्यं पर्यायं गुणं वा चिन्तयति, तेन एकत्वपदमुपादीयते । एकयोगेन निश्चलस्य चिन्तयतो-ऽर्थाद् व्यञ्जने व्यञ्जनादर्थे योगादन्ययोगे संक्रमणं=विचारो न भवतीत्यविचारपदमुपादीयते, श्रुतानुसारेण चिन्त्यते, तेन वितर्कपदोपादानम् । उक्तं च गुणस्थानक्रमारोहे

"निजात्मद्रव्यमेकं वा पर्यायमथवा गुणम् ।
निश्चलं चिन्त्यते यत्र, तदेकत्वं विदुर्बुधाः ॥१॥
यद्व्यञ्जनार्थयोगेषु परावर्तविवर्जितम् ।
चिन्तनं तदविचारं स्मृतं सद्ध्यानकोविदैः ॥२॥
निजशुद्धात्मनिष्ठं हि भावश्रुता-ऽवलम्बनात् ।
चिन्तनं क्रियते यत्र सवितर्कं तदुच्यते ॥३॥

तथा तत्त्वार्थटीकायामपि श्रीसिद्धसेनगणिभिः

"क्षीणकषायस्थानं, तत् प्राप्य ततो विशुद्धलेश्यः सन् ।
एकत्ववितर्काऽविचारं ध्यानं ततो-ऽध्येति ॥१॥
एकार्थाश्रयमिष्टं योगेन च केनचित् तदेकेन ।
ध्यानं समाप्यते यत् कालोऽल्पोऽन्तर्मुहूर्तश्च ॥२॥
श्रुतमुच्यते वितर्कः, पूर्वाभिहितार्थनिश्चितमतेश्च ।
ध्यानं तदिष्यते येन तेन सवितर्कमिष्टं तत् ॥३॥

धिकावलिकामात्रे शेषे'त्रिघातिनां'ज्ञानावरण-दर्शनावरणा-ऽन्तरायरूपाणां कर्मणां 'ह्रस्वस्थित्युदीरणा' जघन्यस्थित्युदीरणा भवति । समयाधिकावलिकाप्रमाणस्थितिसत्त्वस्य चरमनिषेकत उदीरणा-प्रयोगेणोदयनिषेके दलं निक्षिपतो जन्तोरेकस्थितिप्रमाणा जघन्यस्थित्युदीरणा जायत इत्यर्थः । उपलक्षणमेतद्, तेन तदानीमेव केवलज्ञानावरण-केवलदर्शनावरण-पञ्चाऽन्तरायाणां, सर्वोत्कृष्टचतुर्दश-पूर्वधरं च प्रतीत्य मति-श्रुतज्ञानावरण-चक्षुरचक्षुर्दर्शनावरणानां, प्राप्तपरमावधिकस्यात्मनो-ऽवधिज्ञा-नावरणा-ऽवधिदर्शनावरणयोर्विपुलमतिमृतश्च मनःपर्यवज्ञानावरणस्य जघन्याऽनुभागोदीरणा जायते। गुणितकर्मांशस्य च शीघ्रं क्षपकश्रेणिमारूढस्य ज्ञानावरणपञ्चक-दर्शनावरणचतुष्क-पञ्चाऽन्तराय-रूपचतुर्दशप्रकृतीनामुत्कृष्टप्रदेशोदीरणा जायते, नवरं लब्धावधिज्ञानस्य जन्तोरवधिज्ञानावरणा-ऽवधिदर्शनावरणयोरुत्कृष्टप्रदेशोदीरणा न भवति, अवधिप्राप्तौ प्रभूतानां कर्मपुद्गलानां परिशटनात्, तथा सर्वेषां क्षपकाणां चतुर्दशानां मतिज्ञानावरणादीनां जघन्यस्थितिसंक्रमो जघन्या-ऽनुभागसंक्रमश्च जायत इत्युपलक्ष्यते। यदुक्तं कर्मप्रकृतिचूर्णौ-चक्खुदंसणावरण-अचक्खुदंसणावरण-केव-लदंसणावरण-पंचअंतराइय-पंचविहणाणावरणजहण्णियठिदिसंकमसामी खीण-कसातो समयाहियावलियसेसे वट्टमाणो । ××× अंतरकरणे कए उवरि जासिं घातिकम्माणं जहिं जहण्णगो ठितिसंकमो भणितो, तासिं अप्पप्पणो ठाणे तहिं जहण्णाणुभागसंकमो । के ते ? भण्णइ—णवणोकसाया चत्तारि संजलणा णिद्दा पयला पंचणाणावरण चत्तारि दंसणावरण पंच अंतरायमिति-एतेसिं एगूणतीसाए पगतीण अंतरकरणस्स उवरिं जहण्णगठितिसंकमो भवति । ××छउमत्थखीणरागेत्ति खीणकसाय त्ति 'चउदस समयाहियावलियठितिए' (पञ्च)णाणावरण-दंसणावर-णचउक्कं पंचण्हमंतराइयाणं एयासिं चोदसण्हं कम्माणं समयाहियावलियसेसाए ठितिए जहण्णिया ठितिउदीरणा भवति ।×××सुयकेवलि = चउद्दसपुव्वी सव्वु-क्कोसपज्जवेहिं तस्स मई-सुय-चक्खु-अचक्खुणं उदीरणा मंदत्ति काउं तेण आभि-णिबोहियणाणावरण-सुयणाणावरण-चक्खुदंसणावरणाणं अचक्खुदंसणावरणाणं जहण्णाणुभागुदीरणा खवणाए अब्भुट्ठियस्स खीणकसायस्स समयाहियावलिया-सेसे वट्टमाणस्स । 'विपुलपरमोहिगाणं मणणाणोहीदुगस्सावि' त्ति—विपुलमण-पज्जवणाणिस्स मणपज्जवणाणावरणस्स तस्सेव खीणकसायस्स । ओहिणाणावर-णाणं ओहिदंसणावरणाणं वि परमोहिस्स खीणकसायस्स समयाहियावलिय-सेसे वट्टमाणस्स ।' ××चउण्हं णाणावरणीयाणं तिण्हं दंसणावरणीयाणं सुतके-वली वा इयरो वा सव्वे वि उक्कोस (पएस) उदीरणासामी, मणपज्जवणाणाव-रणीयस्स वि लद्धिसहिओ वा इयरो वा उक्कोसउदीरणासामी ।ओहिनाण-ओहि-दंस-णावरणीयाणं (जस्स) लंभो णत्थि,तस्स उक्कोसिया पदेसउदीरणा । लद्धिसहि-

यरस बहुया ओहिदुगावरणपएसा खिज्जंति त्ति णेच्छिज्जइ लद्धी । एवं संखेवेण भणियं, तहावि असंमोहणिमित्तं विसेसयरं भणामि-ओहिणाणावरणवज्जाणं चउण्हं णाणावरणाणं चक्खु-अचक्खु-केवलदंसणावरणीयाणं एतेसिं सत्तण्हं उक्कोसिया पदेसउदीरणा समयाहियावलियसेसे छउमत्थस्स, तस्सेव ओहिदुगस्स ओहिरहियस्स उक्कोसिया पदेसुदीरणा ।" इति

तदानीं व्यवच्छिद्यमाना घातित्रयस्योदीरणा व्यवच्छिन्ना ॥२२८॥

ततः परं केवलमुदयेन घातिकर्मत्रयं वेदयन् क्षीणकषायगुणस्थानस्य द्विचरमसमयं प्राप्नोति, तदा निद्राद्विकक्षयं ततश्च चरमसमये चतुर्दशप्रकृतीनां क्षयं प्रदिदर्शयिषुराह

वोच्छिन्ना सन्तुदया निद्दुगस्स तु दुचरिमसमये-ऽन्ते ।
णाणंतरायचउदंसणाण फिट्टन्ति सन्तुदया ॥२२९॥

व्यवच्छिन्नौ सत्तोदयौ निद्राद्विकस्य तु द्विचरमसमये ऽन्ते ।
ज्ञानावरणाऽन्तरायचतुर्दर्शनावरणाना भ्रश्यत सत्तोदयौ ॥ २२९ ॥ इति पदसंस्कार ।

'वोच्छिन्ना' इत्यादि, तत्र 'दुचरिमसमये' त्ति 'द्विचरमसमये' द्वितीयश्चरमो यस्माद् =यत आरभ्य चरमसमयो द्वितीयो भवति, स द्विचरमः पृषोदरादित्वात् तीयलोपः, यदि वा द्वौ चरमौ यस्माद्=यत आरभ्य द्वौ समयौ चरमौ भवतः, स द्विचरमः, ततः समयशब्देन सह कर्मधारयसमासाद् द्विचरमसमयः, उभयथाऽपि सामयिक्या परिभाषया चरमसमयादनन्तरं पाश्चात्यः समयः, तस्मिन्, क्षीणकषायगुणस्थानस्य चरमसमयादनन्तरप्राक्तनसमय इत्यर्थः, 'निद्राद्विकस्य' निद्राप्रचलाख्यस्य 'सन्तुदया' त्ति गाथायां सदिति निर्देशस्य भावप्रधानत्वेन सदित्यनेन सत्ताया व्याख्येयत्वात् सत्तोदयौ व्यवच्छिन्नौ भवतः, ततः परं निद्राद्विकं सत्कर्मणि न दृश्यत इत्यर्थः । उक्तं च कषायप्राभृतचूर्णौ–"तदो दुचरिमसमये निद्दापयलाणुदयसंतवोच्छेदो ।" इति । एवं कर्मप्रकृत्यादावपि । तुशब्दो विशेषार्थकः, स चा-ऽन्येषामाचार्याणां मतेन निद्राद्विकस्य सत्त्वमेव व्यवच्छिद्यते, उदयस्तु पूर्वमपि क्षीणकषायगुणस्थानके न भवतीति विशिनष्टि, यदुक्तं श्रीमन्मलयगिर्याचार्यपादैः सप्ततिकाभाष्यवृत्तौ–"तस्य च मोहवर्जशेषकर्मणां स्थितिघातादयः पूर्ववत्प्रवर्तन्ते, यावत् क्षीणमोहाद्धायाः संख्येया भागा गच्छन्त्येको-ऽवतिष्ठते । तस्मिंश्च भागे ज्ञानावरणाऽन्तरायपञ्चक-दर्शनावरणचतुष्क-निद्राद्विकरूपाणां षोडशप्रकृतीनां स्थितिं सर्वाऽपवर्तनयाऽपवर्त्य क्षीणमोहाद्धासमां विधत्ते, केवलं निद्राद्विकस्य स्वरूपं प्रतीत्यैकसमयोनां कर्मत्वमात्रा-ऽपेक्षया तु तुल्यां, कोऽर्थः ? क्षीणमोहस्य द्विचरमसमये निद्राद्विकस्य दलिकं स्तिबुकाः दर्शनावरणप्रकृतिचतुष्के सङ्क्रमयिष्यन्ति, संक्रमच्च दलिकं किञ्चित् स्वरूपं जहातीति

निद्राद्विकत्वलक्षणस्वकीयरूपावस्थानमाश्रित्य समयोना क्षीणमोहाद्धासमा स्थितिः । अथ च संक्रमान्त्यसमये प्रकृतिचतुर्दशकरूपतया (प्रकृतिचतुष्करूपतया) स्थित्वा तेन साकं क्षेष्यतीति, परप्रकृतिरूपकर्मत्वमात्रापेक्षया तुल्येति, तदुक्तं कर्मप्रकृतिटीकायाम्–'अनुदयवतीर्हि चरमसमये स्तिवुकसंक्रमेणोदयवतीषु प्रकृतिषु मध्ये प्रक्षिपति, तत्स्वरूपेण वा-ऽनुभवति, तेन चरमसमये तासां दलिकं स्वरूपेण न प्राप्यते, किन्तु पररूपेण' इत्यादि । एवमग्रेऽप्यनुदयवत्कर्मणां समयोनता भावनीया । सा च क्षीणाद्धाऽऽद्यान्तर्मुहूर्त्तमाना, ततः प्रभृति च तासां स्थितिघातादयः स्थिताः, शेषाणां तु भवत्येव । ताश्च प्रकृतीर्निद्राद्विकवर्जमुदयोदीरणाभ्यां वेदयमानस्तावद् गतो यावत् समयाधिकावलिकामात्रं शेषः, तत्रोदीरणा निवृत्ता, तत आवलिकां यावदुदयेनैव केवलेन वेदयते, यावत् क्षीणमोहाद्धाया द्विचरमसमयः । तत्र च निद्राद्विकं स्तिवुकसंक्रमेणोदयवतीषु प्रकृतिषु संक्रान्तत्वात् स्वरूपसत्तापेक्षया क्षीणम् । अत एव 'उदये पुण खवगाणं चत्तारि उ दंसणावरणे' इति सूत्रेण क्षपकश्रेण्यां निद्राद्विकोदयः प्रागन्यषेधि–यत उदयवतीनां प्रकृतीनां प्राक्संक्रमाभावात्स्वरूपेण प्रान्त्यसमयं यावद्दलिकं दृश्यते, एतयोश्च दलिकं द्विचरमसमय एव क्षीणं, अतो ज्ञायते–निद्राद्विकस्य क्षपकश्रेणावुदयो नास्तीति । तदुक्तं चूर्णौ "दुचरिमसमए एवं निद्दादुगं खीणं उदयाभावाउ' अत्र 'उदयाभावाउ' इति यस्मादेतयोः क्षपकश्रेणावुदयाभावोऽत एते स्तिवुकसंक्रान्त्या द्विचरमसमय एव क्षीणे इत्यर्थः ।" इति

केषाञ्चिदाचार्याणामभिप्रायेण क्षीणकषायगुणस्थानकद्विचरमसमये निद्राद्विकेन सह देवगति-देवानुपूर्वी-वैक्रियशरीरा-ऽऽहारकशरीर-वज्रर्षभनाराचवर्जसंहननपञ्चका-ऽनुदितसंस्थानपञ्चकरूपचतुर्दशप्रकृतयो-ऽपि सत्त्वतो व्यवच्छिद्यन्ते, अतीर्थकरप्रतिपत्तुस्तु जिननामकर्मणो-ऽपि सत्त्वतो व्यवच्छेद इति। यदुक्तमावश्यकचूर्णौ–"अन्ने भणंति–जत्थ निद्दं पयलं च खवेति, तत्थ नामस्स इमाओ पयडीओ खवेति, तं जहा–देवगति देवाणुपुव्वी विउव्वियदुगं पढमवज्जाइं पंच संघयणाइं पंच संठाणाइं तित्थगरनामं जदि अतित्थगरो ।" इति । अन्यत्रा-ऽपि प्रतिपादितम्

"वीसमिऊण नियंठो दोहि उ समएहिं केवले सेसे ।
पढमं निद्दं पयलं नामस्स इमाउ पयडीओ ॥१॥
देवगइ–आणुपुव्वी-वेउव्विय-संघयणपढमवज्जाइं ।
अन्नयरं संठाणं तित्थयराहारनामं च ॥२॥"

एवं बृहत्कल्पवृत्तावप्यभिहितम् ।

ततः परं क्षीणकषायगुणस्थानकचरमसमये केवलज्ञानावरणकेवलदर्शनावरण-दान-लाभ-भोगोपभोग-वीर्या-ऽन्तरायाणां तथा सर्वोत्कृष्टचतुर्दशपूर्वधरं प्रतीत्य मतिज्ञानावरण-श्रुतज्ञानावरण-चक्षुर्दर्शनावरणाचक्षुर्दर्शनावरणानां, प्राप्तावधिज्ञानांश्च जीवानाश्रित्याऽवधिद्विकस्य तथा विपुलमतिं प्रतीत्य मनःपर्यवज्ञानावरणस्य जघन्यानुभागोदयो जायते, तथा गुणितकर्मांशस्य शीघ्रं क्षपकश्रेणिमारूढस्य चतुर्दशप्रकृतीनां मतिज्ञानावरणादीनामुत्कृष्टप्रदेशोदयो जायते, नवरं प्राप्ताऽवधिलब्धिकस्य न वाच्यः, अवधिप्राप्तौ प्रभूतानां प्रदेशानां परिशटनात्। उक्तञ्च कर्मप्रकृतिवृत्तौ—"नवरं ज्ञानावरणपञ्चकाऽन्तरायपञ्चक-दर्शनावरणचतुष्टय-वेदत्रय-संज्वलनलोभ-सम्यक्त्वानामुदीरणाव्यवच्छेदे सति परत आवलिकां गत्वा-अतिक्रम्य तस्या आवलिकायाश्चरमसमये जघन्यानुभागोदयो वाच्यः। XXX 'आवरण' त्ति आवरणं-पञ्चप्रकारं ज्ञानावरणं चतुष्प्रकारं दर्शनावरणं 'विग्घ' त्ति पञ्चप्रकारमन्तरायं एतासां चतुर्दशप्रकृतीनां लघुक्षपणया-शीघ्रक्षपणार्थं अभ्युद्यतस्य। द्विविधा हि क्षपणा लघुक्षपणा चिरक्षपणा च। तत्र योऽष्टवार्षिक एव सप्तमासाभ्यधिकः संयमं प्रतिपन्नः, तत्प्रतिपत्त्यनन्तरं चाऽन्तर्मुहूर्तेन क्षपकश्रेणिमारभते। तस्य या क्षपणा, सा लघुक्षपणा। यस्तु प्रभूतेन कालेन संयमं प्रतिपद्यते, संयमप्रतिपत्तेरप्यूर्ध्वं प्रभूतेन कालेन क्षपकश्रेणिमारभते, तस्य या क्षपणा, सा चिरक्षपणा। तथा च प्रभूताः पुद्गलाः परिशटन्ति, स्तोका एव च शेषा भवन्ति। ततो न तथा उत्कृष्टः प्रदेशोदयो लभ्यते, तत उक्तं लघुक्षपणयाऽभ्युत्थितस्येति। तस्य गुणितकर्मांशस्य क्षीणमोहगुणस्थानकचरमसमये गुणश्रेणिशिरसि वर्तमानस्योत्कृष्टप्रदेशोदयो भवति। नवरं 'ओहीण णोहिलद्धिस्स' त्ति अवध्योरवधिज्ञानावरणाऽवधिदर्शनावरणयोरनवधिलब्धिकस्या-ऽवधिलब्धिरहितस्य क्षपणायोत्थितस्योत्कृष्टः प्रदेशोदयो वाच्यः। अवधिज्ञानं ह्युत्पादयतो बहवः पुद्गलाः परिशटन्ति-क्षीयन्ते। ततो नाऽवधियुक्तस्योत्कृष्टप्रदेशोदयलाभ इत्यनवधिलब्धियुक्तस्येत्युक्तम्।" इति।

तदानीमेव मूलकर्माऽपेक्षया ज्ञानावरण-दर्शनावरण-ऽन्तरायाणामुत्तरकर्मापेक्षया च पञ्चज्ञानावरण-चतुर्दर्शनावरण-पञ्चाऽन्तरायाणां जघन्यस्थित्युदयो भवति, कर्मप्रकृतिवृत्तौ श्रीमन्मलयगिरिपादैः "★षट्त्रिंशत्प्रकृतीनां जघन्यः स्थित्युदयः समयमात्रैकस्थित्युदय-

★ षट्त्रिंशत्प्रकृतयो नामत पुनरिमा. ज्ञानावरणपञ्चकं दर्शनावरणचतुष्कं सातवेदनीयमसातवेदनीय संज्वलनलोभो वेदत्रिकं सम्यक्त्वमोहनीयं मिथ्यात्वमोहनीयं चत्वार्यायुष्काणि मनुष्यगति-पञ्चेन्द्रियजाति-त्रस-बादर-पर्याप्त-सुभगा-ऽऽदेय-यशःकीर्तयो जिननामोच्चैर्गोत्रमन्तरायपञ्चकं चेति।

प्रमाणो वेदितव्यः, समयमात्रा चैका स्थितिः चरमस्थितिरवसेया ।" इत्युक्तत्वाद् निरुक्तकर्मणां च चरमस्थितेः क्षीणकषायचरमसमय एव लभ्यमानत्वात् ।

ग्रन्थान्तराभिप्रायेण तु निरुक्तकर्मणां जघन्यस्थित्युदयः स्वोदीरणाव्यवच्छेदात् परमावलिकां यावत् प्रतिसमयं भवति, उदीरणाऽपवर्तनयोर्व्यवच्छिन्नत्वेन केवलोदयेन प्रतिसमयमेकैकस्याः स्थितेः क्षयात् ※ ।

एवमेवेह ग्रन्थे मोहनीयस्य जघन्यस्थित्युदयः सूक्ष्मसम्परायचरमावलिकाचरमसमये नामगोत्रयोश्चाऽयोगिकेवलिगुणस्थानचरमसमये प्रथममतेन भावनीयः, द्वितीयमतेन तु मोहनीयस्य जघन्यस्थित्युदयः सूक्ष्मसम्परायचरमावलिकाप्रमाणे काले नामगोत्रयोश्चाऽयोगिकेवलिगुणस्थानाद्धाप्रमाणेऽन्तर्मुहूर्तकाले प्रतिपादनीयः ।

उक्तनीत्या पुरुषवेदादीनामपि जघन्यस्थित्युदयः स्वमत्या यथास्थानं परिभावनीयः ।

निश्चयनयमाश्रित्य क्षीणकषायगुणस्थानकचरमसमये क्षीयमाणानि त्रीणि घातिकर्माणि निश्शेषतः क्षीणानि, तदभिधातुकाम आह 'अन्ते' क्षीणकषायगुणस्थानकचरमसमये 'णाणंत०' त्ति पदैकदेशे पदसमुदायोपचारात् ज्ञानावरणा-ऽन्तराय-चतुर्दर्शनावरणानां=मति-श्रुता-ऽवधि-मनःपर्याय-केवलज्ञानावरण-चक्षुरचक्षुरवधिकेवलदर्शनावरण-दान-लाभ-भोगोपभोग-वीर्यान्तरायरूपाणां चतुर्दशप्रकृतीनामित्यर्थः, 'सन्तुदया' त्ति प्राकृतत्वाद् "द्विवचनस्य बहुवचनम्"(सिद्धहेम०८-३-१३०) इत्यनेन सूत्रेण बहुवचनम्,सत्तोदयौ'छिद्यन्ति' त्ति 'अपयत': व्यवच्छिद्येते । उक्तं च **सप्ततिकाचूर्णौ–"आवरणमंतराए छउमत्थो चरिमसमयम्मि त्ति एयासिं चोद्दसण्हं पगडीणं उदयसंतखओ खीणकसायस्स चरिमसमए भवति ।"** इति । तथैवोक्तं **कषायप्राभृतचूर्णावावश्यकचूर्णौ** चाऽपि । इत्थं क्षीणमोहगुणस्थानकचरमसमये शेषाणि त्रीणि घातिकर्माणि परिक्षीयन्ते । न च तदानीमेव घातिकर्मवदघातिकर्माणि कुतो न परिशटन्ति, कर्मत्वनोभयेषामप्यविशेषत्वाद् ? इति वाच्यम् , अघातिकर्मणां तदानीं पल्योपमा-ऽसंख्येयभागप्रमाणस्थितेः सद्भावेन कर्मा-ऽपेक्षयाऽविशेषत्वे-ऽपि नाम-गोत्रा-ऽऽयुर्वेदनीयानां प्रशस्ताऽप्रशस्तत्वेना-ऽप्रशस्तज्ञानावरणादितो विलक्षणत्वात् । तद्यथा–मोहनीयस्या-ऽप्रशस्ततरत्वात् सूक्ष्मसम्परायगुणस्थानक एव तत्क्षयो जातः । ज्ञानावरणादीनामप्रशस्तत्वात् क्षीणकषायगुणस्थानके तद्विनाशो जायते । अघातिकर्मणां तु प्रशस्ताऽप्रशस्तत्वात् क्षीणकषायगुणस्थानकेऽपि तत्क्षयो न भवति, किन्त्वयोगिकेवलिगुणस्थानके । एवमघातिकर्मणां प्रशस्ताप्रशस्तत्वप्रयुक्तवैचित्र्यस्य सद्भावात् क्षीणकषायगुणस्थानके तानि निश्शेषतो न क्षीयन्ते ।

※ उक्तञ्च धवलाकारैरपि "णाणावरणीय-दंसणावरणीय-अंतराइयाणं जहण्णट्ठिदिउदओ कस्स ? चरिम(समय)छदुमत्थमादि काढूण जाव आवलियचरिमसमयछदुमत्थो त्ति ।"

निश्चयनयाऽभिप्रायेण यस्मिन्नेव समये आवरणक्षयः, तस्मिन्नेव समये केवलज्ञान-मुत्पद्यते, क्रियाकाल-निष्ठाकालयोरैक्येन क्षीयमाणस्य क्षीणत्वात् ।

व्यवहारनयाऽभिप्रायेण तु यस्मिन् समये आवरणक्षयः, तदनन्तरसमये केवलज्ञान-स्योत्पत्तिः, क्रियाकाल-निष्ठाकालयोर्भेदेना-ऽऽवरणक्षयसमये क्षीयमाणत्वात् क्षीयमाणस्य चा-ऽक्षीण-त्वात् । उक्तश्च श्रीविशेषावश्यकभाष्ये

"आवरणक्खयसमए निच्छइनयस्स केवलुप्पत्ती ।
तत्तो-ऽणंतरसमए ववहारो केवलं भणइ ॥१॥" इति ।

भावार्थः पुनरयम्—श्रुताख्यप्रमाणविषयीभूतस्यानन्तधर्मात्मकस्य वस्तुनः स्वाभिप्रेतैकांऽशस्तदितरांऽशौदासीन्यतो नीयते—ज्ञायते येना-ऽभिप्रायविशेषेण, स नयः, स च यद्यपि द्रव्यार्थिकः पर्यायार्थिकश्च, निश्चयो व्यवहारश्च, द्रव्यात्मको भावात्मकश्च, क्रियात्मको ज्ञानात्मकश्चेत्यादि-विविधरूपः शास्त्रान्तरेषु दृश्यते,तथाप्यत्र व्यवहार-निश्चयौ विविच्येते, तयोरेवा-ऽत्राऽधिकृतत्वात् ।

तत्रादौ तावद् व्यवहारनयाभिप्रायो व्यक्तीक्रियते-तथाहि—यदविद्यमानम्, तदुत्पद्यते, न तु विद्यमानम् , असत्कार्यवादी हि व्यवहारनयः । तत्राऽनुमानप्रमाणमाह-यद् विद्यमानम्, न तत् केन-चित् क्रियते, यथा पूर्वनिष्पन्नो घटः । अथ कृतमपि क्रियते, तदा क्रियतां नित्यमिति क्रियाव्या-पारानुपरमप्रसङ्गः, किञ्चैवं सति नैकस्याऽपि कार्यस्याऽनन्तकालेनाऽपि परिसमाप्तिः स्यात्, अपिच यदि कृतमपि क्रियते, तर्हि घटादिकार्यं उत्पाद्ये चक्रभ्रमणादिक्रियाया वैयर्थ्या-ऽऽपत्तिः, कार्यस्य प्रस्तुतक्रियायाः प्रागेव सत्त्वात् । प्रत्यक्षविरोधश्च सत्कार्यवादे, यतः पूर्वं मृत्पिण्डाद्यवस्थायामस-देव घटादिकार्यं कुम्भकारादिव्यापारेणोत्पद्यमानं दृश्यते ।

ननु यस्मिन्नेव समये कार्यं प्रारभ्यते, तस्मिन्नेव समये निष्पद्यते, अतो निष्पन्नमेव तत् क्रियते, क्रियाकाल-निष्ठाकालयोरभेदात् । इत्थं च सदुत्पद्यत इति चेत्, न, उत्पद्यमानानां हि घटादीनां प्रदीर्घः क्रियाकालः प्रत्यक्षप्रतीतः, यतो मृदानयन-तत्पिण्डविधान-चक्रारोपण-शिवकादिविधानादिचिर-कालेनैव घटाद्युत्पत्तिर्दृश्यते, न तु घटाद्यारम्भकाल एव ।

ननु भवतु नाम दीर्घः क्रियाकालः, घटादिकार्यं त्वारम्भसमयेऽप्युपलभ्यत इति चेत्, मैवम्, यतः क्रियारम्भकाले घटादिकार्यनिष्पत्तिर्न दृष्टा केनचित्, नाऽपि शिवक-स्थास-कोश-कुशू-लादिकाले, किन्तु दीर्घक्रियाकालपरिसमाप्तिसमये घटादिकार्यं दृश्यते, तस्मात् क्रियाकालपर्यन्त एव घटादिकार्यसत्त्वं युज्यते, न तु पूर्वम्, तत्रा-ऽनुपलभ्यमानत्वात् । तदेवं क्रियाकाले कार्यं ना-स्ति, अनुपलभ्यमानत्वात्, किन्तु तन्निष्ठाकाल एव, तत्रैवोपलब्धेः । ततो ना-ऽऽवरणं क्षीयमाणं क्षीणम्, क्रियाकाले तस्य क्षीयमाणत्वात्, निष्ठाकाल एव च क्षीणत्वात्, क्रियाकाल-निष्ठाकाल-योश्चाऽत्यन्तं भेदात् । तयोरैक्ये तु क्रियाकालेऽपि कार्यस्य सत्त्वात् क्रियावैयर्थ्यप्रसङ्गः ।

न च समानकालभाविनोः क्रिया-कार्ययोः कार्यकारणभावो युज्यत इति वाच्यम्, समानकालभाविनोः सव्येतरगोविषाणयोः परस्परं कार्यकारणभावप्रसङ्गात् । न चाऽऽवरणे क्षीयमाणे केवलज्ञानोत्पत्तिर्युक्तेति वाच्यम्, क्षीयमाणस्य क्रियाकालत्वात् तत्काले च कार्यसत्त्वाभ्युपगमे कार्यकारणभावव्यवस्थाभङ्गप्रसङ्गात् । इत्थं क्षीयमाणतानन्तरसमये क्षीण एव तदावरणे केवलज्ञानं युज्यते, अस्य निष्ठाकालत्वात् । क्रियाकाल-निष्ठाकालयोश्चैक्यं प्रतिविहितमेव, इति व्यवहारनयः ।

अथ निश्चयनयः परिभाव्यते—यदसत्कार्यवादिना व्यवहारनयेनाऽभिधीयते-यदविद्यमानम् तदुत्पद्यते, न तु विद्यमानमिति, तत्र सत्कार्यवादी निश्चयनयो ब्रूते—विद्यमानमेवोत्पद्यते, नाऽविद्यमानम्, प्रमाणयति च नाऽविद्यमानमुत्पद्यते, अभावत्वात्, खपुष्पवद् । अथाऽविद्यमानमपि जायते, तर्हि खरविषाणमपि जायताम्, असत्त्वाविशेषात् । अपि चाऽसत्कार्यवादिना नित्यकरणादयो ये दोषा उद्भाविताः, ते तत्पक्षेऽपि समाना एव । तथाहि—अत्राऽपि शक्यते वक्तुमिदम्—यद्यसत् क्रियते, तर्हि क्रियतां नित्यम्, असत्त्वाऽविशेषात् । न चैवमेकस्या-ऽपि कार्यस्याऽनन्तेना-ऽपि कालेन परिसमाप्तिर्युज्यते, खरविषाणदेश्ये चाऽसति कार्ये क्रियावैफल्यमित्यादि । किञ्च व्यवहारनयमतेनोक्तदोषाणां दुष्परिहार्यतरत्वम् । विद्यमानस्यैव कार्यस्य केनाऽपि पर्यायविशेषेण करणं सम्भवति, लोकेऽपि सतामाकाशादीनां पर्यायविशेषा-ऽऽधाना-ऽपेक्षया करणस्य रूढत्वात् । खरविषाणकल्पे त्वसति कार्ये न केना-ऽपि प्रकारेण करणं संभवति ।

अथोत्पद्यमानानां घटादीनां प्रदीर्घः क्रियाकालः प्रत्यक्षप्रतीत इति यदुक्तम्, तत्रोच्यते—प्रतिसमयमुत्पद्यमानानां परस्परविलक्षणानां मृत्खनन-संहरण-रासभपृष्ठारोपण-ऽम्भःसेचन-परिमर्दन-पिण्डविधान-भ्रमण-चक्रारोपण-शिवक-स्थास-कोश-कुशूलादिकार्याणां यदि प्रदीर्घः क्रियाकालो दृश्यते, तर्हि घटस्य किमायातम् । अयमत्र भावः—प्रतिसमयं विलक्षणा एव क्रियाः, विलक्षणान्येव च मृत्खननादीनि कार्याणि, घटस्तु चरमसमये प्रारब्धः, तत्रैव च परिसमाप्तः । ततश्च प्रतिसमयभिन्नानामनेककार्याणां यदि दीर्घः क्रियाकालो भवति, तर्हि चरमैकक्रियाक्षणमात्रभाविनि घटे दीर्घक्रियाकालप्रेरणं व्यवहारनयस्याऽल्पज्ञतां सूचयति ।

अथ क्रियारम्भकाले घटादिकार्यनिष्पत्तिर्न दृष्टा केनचिदित्यादिकं यदुक्तम्, तत् प्रतिविधीयते-न खलु प्रारम्भकाले घटः प्रारब्धः, किन्तु मृत्खनन-चक्रमस्तकमृत्पिण्डारोपणादिकार्याणि प्रारब्धानि, न चाऽन्यारम्भेऽन्यद् दृष्टम्, पटारम्भे घटवत् । न हि शिवकादयो घटः, अतः शिवकादिकाले घटदर्शनं कथं स्यात् ? अन्यारम्भकालेऽन्यस्य दर्शनानुपपत्तेः । व्यवहारनयस्तु प्रतिसमयकार्यकोटीनिरपेक्षत्वेन स्थूलमतित्वात् प्रतिसमयं शिवकादिकार्यसम्बन्धिनमपि कालं घटकालमध्यवस्यति, तेन शिवकादिकालेऽपि घटदर्शनम-

मिकाङ्क्षति । अयम्भावः-प्रतिसमयमपरा-ऽपराण्येव शिवकादीनि कार्याण्युत्पद्यन्ते दृश्यन्ते च, तानि च तथोत्पद्यमानानि व्यवहारनयो नाऽवबुध्यते, घटोत्पत्तिनिमित्तैवेयं सर्वाऽपि मृच्चक्रचीवरादिसामग्रीत्येवं केवलघटाभिलाषयुक्तत्वात्, ततस्तन्निरपेक्ष एव स्थूलमतितया सर्वमपि कालं घटकालत्वेन मन्यते, ततश्च प्राक्तनक्रियासमयेष्वनुत्पन्नत्वाद् घटमदृष्ट्वैवं ब्रूते-क्रियाकाले घटात्मकं कार्यं न दृश्यत इति, इदं तु नाऽवबुध्यते, यदुत-चरमक्रियासमय एव घटः प्रारभ्यते, प्राक्तनक्रियाकाले तु शिवकादीन्येवा-ऽऽरभ्यन्ते, अन्यारम्भे चाऽन्यद् न दृश्यत एवेति । ननु यदि प्रथमसमयादारभ्या-ऽपरा-ऽपराणि शिवकादीनि कार्याण्यारभ्यन्ते, तर्हि कोऽयश्चरमसमयनियमः, येन प्रथमसमये घटादीनि कार्याणि न समुत्पद्यन्त इत्युच्यत इति चेत्, न, न ह्यकारणं कार्यमुत्पद्यते, अतिप्रसङ्गात् । तेनाऽन्त्यसमय एव घटादिकार्यस्य कारणं विद्यते, अतस्तत्रैव कार्यमुत्पद्यते, अन्वयव्यतिरेकाभ्यां कार्यकारणभावस्य गम्यमानत्वात् । इत्थञ्च दीर्घक्रियाकालपरिसमाप्तिसमये घटादिकार्यं दृश्यत इत्युक्तम्, तद्युक्तमेव, तदानीमेव तस्य प्रारब्धत्वात् । तच्च कार्यं क्रियासमये क्रियमाणं कृतमेव, समयस्य निरंशत्वात् । यच्च कृतम्, तत् सदेव । ततः सदेव क्रियते, नाऽसत्, यच्च सत्, तदुपलभ्यत एव । इत्थं क्रियाकाल-निष्ठाकालयोरभेदः । ततश्च यस्मिन्नेव समय आवरणक्षयः, तस्मिन्नेव समये केवलज्ञानोत्पादः, क्रियाकाल-निष्ठाकालयोर्भेदे त्वन्यत्र काले क्रिया, अन्यत्र च कार्योत्पत्तिरिति स्यात्, तच्च न युक्तम्, क्रियाविरहेऽपि कार्योत्पत्त्यभ्युपगमप्रसङ्गेन क्रियाप्रारम्भात्पूर्वमपि कार्योत्पत्तिप्रसङ्गात् ।

ननु व्यवहारनयेनाऽऽवरणस्य क्षये केवलज्ञानोत्पत्तिरिष्यते. न त्वावरणे क्षीयमाणे । तत्र विकल्पद्वयमवतरति-किमावरणक्षयकाले क्रिया समस्ति, नवा ? यदि नास्ति, तर्हि क्रियां विना-ऽऽवरणक्षये कोऽन्यः हेतुः ? न कोऽपीत्यर्थः, अथाऽस्त्यावरणक्षयकाले तद्धेतुभूता क्रिया, तथा च तत्क्षयो विधीयते, तर्हि बलादायातं क्रियाकाल-निष्ठाकालयोरैक्यम् ।

किञ्च यदि क्रियाकालेऽप्यावरणक्षयो नास्ति, तर्हि पश्चादप्यसौ न स्यात्, अक्रियत्वात् । यदि च द्वितीयसमये क्रियाव्युपरत्यामक्रियस्य सत आवरणक्षयोऽभ्युपगम्यते, तर्हि क्रियाविन्तप्रथमसमये क्रियाया वैयर्थ्यं स्यात्, तामन्तरेणाऽप्यावरणक्षयोपपत्तेः, क्रियाविरहितद्वितीयसमयवद् ।

अन्यच्च श्रीविवाहप्रज्ञप्तौ "णिज्जरिज्जमाणे णिज्जिण्णे" इत्युक्तम्, अतः क्षीयमाणं क्षीणमेवेति न क्रियाकाल-निष्ठाकालयोर्भेदः । एवमावरणक्षीयमाणतासमय आवरणस्य क्षीणत्वेन प्रतिबन्धकविरहात् केवलज्ञानोत्पत्तिः केन निवारयितुं शक्यते ? यदि चावरणक्षीयमाणतासमये प्रतिबन्धकाभावेऽपि केवलज्ञानं नोत्पद्यते, तदुत्तरकाले तु पश्चादुत्पद्यते, तर्ह्यकारणः स्यात् केवलोत्पादः, ततश्चाकारणत एव तद्विनाशः सम्पद्येत । तस्मात् केवलज्ञानस्य तदावरणस्य च प्रकाश-तमसोरिव युगपदेवोत्पाद-विना-

श्यमभ्युपगन्तव्यौ, यथा हि यस्मिन्नेव समये तमसो विनाशः, तस्मिन्नेव समये प्रदीपादिप्रकाशस्योत्पत्तिर्भवति । एवमत्रापि यस्मिन्नेव समय आवरणस्य क्षयः, तस्मिन्नेव समये केवलज्ञानस्योत्पत्तिः, तत्र हि समय आवरणस्य क्षीयमाणस्य क्षीणत्वात् केवलज्ञानस्योत्पद्यमानस्योत्पन्नत्वात् ।

तदेवं दर्शितौ निश्चयनय-व्यवहारनया आक्षेपपरिहाराभ्याम् । जिनमतं तूभयनयात्मकम् । तेन क्रियाकाल-निष्ठाकालयोर्भेदाभेदः । ततश्च निश्चयनयेन क्षीणकषायचरमसमये केवलज्ञानस्योत्पत्तिः, व्यवहारनयेन त्वनन्तरसमये, तन्मतेन च साऽनन्तरगाथायां प्रतिपादयिष्यत इत्यलं विस्तरेण ॥२२९॥

क्षीणकषायचरमसमयमाश्रित्य यन्त्रकम्

(१) केवलज्ञानावरण-केवलदर्शनावरण-पञ्चाऽन्तरायाणा जघन्याऽनुभागोदयो जायते

(२) सर्वोत्कृष्टचतुर्दशपूर्वधरस्य मतिज्ञानावरण-श्रुतज्ञानावरण-चक्षुर्दर्शनावरणा-ऽचक्षुर्दर्शनावरणानां जघन्याऽनुभागोदयो भवति ।

(३) विपुलमतिमन पर्यायज्ञानभृतो जीवस्य मन पर्यायज्ञानावरणस्य जघन्यानुभागोदयो जायते ।

(४) गुणितकर्मांशस्य शीघ्रक्षपणायोद्यतस्य मतिज्ञानावरण-श्रुतज्ञानावरण-मन पर्यवज्ञानावरण-केवलज्ञानावरण-चक्षुर्दर्शनावरणा-ऽचक्षुर्दर्शनावरण-केवलदर्शनावरण-पञ्चाऽन्तरायरूपाणां द्वादशप्रकृतीनामुत्कृष्टप्रदेशोदयो भवति ।

(५) गुणितकर्मांशस्याऽवधिलब्धिरहितस्य शीघ्र क्षपकश्रेणिमारूढस्याऽवधिज्ञानावरणाऽवधिदर्शनावरणयोरुत्कृष्टप्रदेशोदयो भवति ।

(६) त्रीण्यपि घातिकर्माणि क्षीयमाणानि सर्वथा क्षीणानि ।

(७) निश्चयनयाभिप्रायेणाऽऽवरणक्षयसमय एव केवलज्ञानमुत्पद्यते ।

समाप्तः सप्तमाधिकारः ।



सम्प्रत्यष्टमाऽधिकारं प्रतिपिपादयिषुरादौ तावद् व्यवहारनयमतमाश्रित्य केवलज्ञानादिलाभं समर्थयति

सेकाले पावेइ सजोगिगुणं लहइ केवलं णाणं ।
तह केवलं दरिसणं णिरन्तरायं च वीरियमणंतं ॥२३०॥ (गीतिः)

अनन्तरकाले प्राप्नोति सयोगिगुणं लभते केवलं ज्ञानम् ।
तथा केवलं दर्शनं निरन्तरायञ्च वीर्यमनन्तम् ॥२३०॥ इति पदसंस्कारः ।

'सेकाले' इत्यादि, 'अनन्तरकाले' घातिकर्मक्षयादनन्तरसमये जीवः 'सयोगिगुणं' पदैकदेशे पदसमुदायोपचारात् सयोगिगुणस्थानकं 'प्राप्नोति' आसादयति । तत्र मनःपर्ययज्ञानिभिरनुत्तरदेवादिभिर्वा मनसा पृष्टो व्याकरणाय मनोवर्गणापुद्गलानादाय मनोयोगं युनक्ति केवली भगवान्, तेन भगवतो मनोयोगो घटते । देशनाऽऽमन्त्रणादौ वाग्योग्यपुद्गलानादाय वचनयोगं प्रयुनक्ति । तत्राऽपि च सत्यवाग्योगोऽसत्यामृषवाग्योगश्चेति द्वा एव वाग्योगौ भगवतः, नेतरौ द्वौ भेदौ, वीतरागत्वात् सर्वज्ञत्वाच्च । आगमनादौ च काययोगः, तद्यथा-भगवान् कार्यवशतः कुतश्चित् स्थानाद् विवक्षिते स्थाने समागच्छेत्, यदि वा क्वापि गच्छेत्, अथवा तिष्ठेत्, ऊर्ध्वस्थानेन वाऽवतिष्ठेत निषीदेद्वा, तथाविधश्रमापगमाय त्वग्वर्तनं वा कुर्यात्, अथवा विवक्षिते स्थाने तथाविधसम्पातिकसत्त्वाकुलां भूमिमवलोक्य तत्परिहाराय जन्तुरक्षानिमित्तमुल्लङ्घनं प्रलङ्घनं वा कुर्यात् । एवं भगवतः केवलिनः योगत्रयस्य सद्भावात् योगेन सह वर्तत इति सयोगी, यद्वा योगो वीर्यपरिस्पन्द इति सुप्रसिद्धम्, सह योगेन वर्तन्त इति सयोगा मनोवाक्कायाः, ते सन्त्यस्येति सयोगी, "अनोऽनेकस्वरात्" (सिद्धहेम० ७ २-६) इत्यनेन सूत्रेण इन्प्रत्ययः । सयोगिनो गुणस्थानकं सयोगिगुणस्थानकम्, तत् क्षीणघातिकर्मा लभते । ननु सयोगिगुणस्थानकं लभमानः पुनः किमासादयति ? इत्यत आह-'लहइ'इत्यादि, 'लभते' आसादयति केवलं ज्ञानं तथा केवलं दर्शनं निरन्तरायं च वीर्यमनन्तम्, तथाशब्द-चकारशब्दौ समुच्चयार्थौ, अनन्तपदं च अन्त्यदीपकन्यायेन प्रत्येकमभिसम्बध्यते, ततश्चायमर्थः-अनन्तकेवलज्ञानमनन्तकेवलदर्शनं निरन्तरायञ्चाऽनन्तवीर्यं प्राप्तसयोगिकेवलिगुणस्थानकोऽश्नुत इति । उक्तं च तत्त्वार्थसूत्रवृत्तौ श्रीमद्भिः सिद्धसेनगणिपादैः

"तस्य हि तस्मिन् समये केवलमुत्पद्यते गततमस्कम् ।
ज्ञानं च दर्शनं चावरणद्वयसङ्क्षयोच्छुद्धम् ॥१॥

वीर्यं निरन्तरायं भवत्यनन्तं तथैव तस्य तदा ।
कल्पातीतस्य महात्मनोऽन्तरायक्षयः कार्त्स्न्यात् ॥२॥" इति ।

तदानीं च मूलकर्मा-ऽपेक्षया चत्वार्यघातिकर्माण्युत्तरकर्मा-ऽपेक्षया तु पञ्चनवतिः कर्माणि जरद्वस्त्रकल्पानि जायन्ते । प्राप्तकेवलज्ञानकेवलदर्शनो भगवान् त्रिकालसहितं सर्वलोकालोकं युगपत् पश्यति । यदवादि तत्त्वार्थसूत्रवृत्तौ

चित्रं चित्रपदनिमं त्रिकालसहितं ततः सलोकमिमम् ।
पश्यति युगपत्सर्वं सालोकं सर्वभावज्ञः ॥१॥" इति

तथैवावश्यकाऽनिर्युक्त्यामपि

"संभिन्नं पासंतो लोगमलोगं च सव्वओ सव्वं ।
तं नत्थि जं न पासइ, भूयं भव्वं भविस्सं च ॥१॥" इति ।

स च भगवान् केवलज्ञानेन सर्वं जानीत इति सर्वज्ञ उच्यते, केवलदर्शनेन सर्वं पश्यतीति सर्वदर्शी भण्यते, यदुक्तं वाचकमुख्यैः श्रीप्रशमरतौ

"कृत्स्ने लोकालोके व्यतीतसाम्प्रतभविष्यतः कालान् ।
द्रव्य-गुण-पर्यायाणां ज्ञाता द्रष्टा च सर्वार्थैः ॥१॥" इति ।

सयोगिगुणस्थानकप्रथमसमये महात्मनः केवलज्ञानोपयोगो भवति, द्वितीयसमये केवलदर्शनोपयोगः, तृतीयसमये पुनः केवलज्ञानोपयोगः, चतुर्थसमये केवलदर्शनोपयोगः, एवंक्रमेण ज्ञानदर्शनोपयोगौ परावर्तेते ।

अथ केवलज्ञानादीनां स्वरूपं किञ्चिदुच्यते—केवलम्=असहायं=मत्यादिज्ञानरहितम् , ज्ञानं=संवेदनम् , केवलं च तज्ज्ञानं चेति केवलज्ञानम् , तच्चानन्तम् , अपर्यवसानत्वादनुच्छेदित्वाच्च । यद्वा सर्वजीवाजीवादिद्रव्याणां प्रयोगविस्रसोभयजन्योत्पादव्ययध्रौव्यादिपर्यायाणां भावस्य परिच्छित्तेः कारणं केवलज्ञानं भवति, क्षेत्रादीनामपि द्रव्यत्वात् केवलज्ञानं सर्वद्रव्य-क्षेत्र-काल-भावपरिच्छेदकं भवति । इत्थं च ज्ञेयस्या-ऽऽनन्त्यात् केवलज्ञानमप्यनन्तं सुनिश्चितं भवति । तच्च शाश्वतमप्रतिपाति च, तत्र शश्वद् भवं शाश्वतम् , सदोपयोगवदित्यर्थः, प्रतिपतनशीलं प्रतिपाति, न प्रतिपाति=अप्रतिपाति, सदा-ऽवस्थायीत्यर्थः । उक्तं चागमे—"तं चेव केवलणाणं सव्वदव्वाणं परिणामस्स सव्व-भावाणं च परिणामस्स विन्नत्तिकारणं भवति, एगगहणे तज्जातीयाणं सव्वेसिंति काऊण दव्वभावग्गहणेण सव्वखेत्तपरिणामस्स सव्वकालपरिणामस्स य दोण्ह वि विन्नत्तिकारणं भवति । जम्हा य सव्वदव्व-खेत्त-काल-भावाणं चउण्ह वि सव्वपरिणामाणं विन्नतिकारणं भवति । अतो तं केवलणाणं अणंतं दट्ठव्वं ति । तत्थ दव्वपरिणामो णाम—दव्वं दुविहं भवति । तं जहा-जीवदव्वं अजीवदव्वं च,

तस्स दुविहस्सावि दव्वस्स जो उप्पायट्ठितिभंगेहिं पज्जायभावो सो दव्वपरिणामो भवति, तत्थ खेत्तग्गहणेण आगासत्थिकायस्स गहणं कयं, तस्स खेत्तपरिणामो परपच्चइओ पोग्गलत्थिकायादिणो दव्वे पडुच्च भवतीति तत्थ कालपरिणामो णाम समयावलियमुहुत्तादी अणेगभेदो भवति, भावपरिणामो णाम एगगुण-कालादी अणेगभेदो दट्ठव्वो त्ति । एतेसिं चउण्ह वि दव्व-खेत्त-काल-भावाणं जो परिणामो, तस्स सव्वपरिणामस्स विन्नत्तिकारणमणंतं केवलणाणं भवतीति । तत्थ विन्नत्तिकरणं विन्नत्तिकारणं वा, जाणितव्वगसामत्थजुत्तं ति वा, विन्नत्ति-हेउभूयं ति वा एगट्ठा, जहा य केवलणाणं भवति, तहा सासतं अपडिवादी एगविहं च भवति । तत्थ एगविहं णाम आभिणिबोहियनाणादिभे-दविउत्तं ति वुत्तं भवति ।" इति ।

एवं केवलदर्शनमपि प्रतिपादनीयम् ।

न च ज्ञानदर्शनयोरेकतरोपयोगेन सकललोकालोकप्रत्यक्षसंभवेऽन्यस्य वैयर्थ्यापत्तिरिति वाच्यम् , आगमग्रन्थेषूपयोगद्वयस्य ज्ञानदर्शनलक्षणस्य क्रमेण प्रतिपादितत्वात् । उक्तं च

केवलनाणुवउत्ता जाणंती सव्वभावगुणभावे ।
पासंति सव्वओ खलु केवलदिट्ठी हिऽणंताहिं ॥१॥" इति ।

अनन्तवीर्यस्योपलक्षणत्वाद् अनन्तदान-लाभ-भोगोपभोगलब्धय आविर्भवन्तीत्युपलक्ष्यते, दानान्तरायाणां संक्षीणत्वात् ।

ईर्यापथिककर्मबन्धस्तु क्षीणकषायवद् भवति ।

अर्हद्भक्तिप्रमुखविंशतिपुण्यस्थानविशेषाऽऽराधनाद् येन प्राक् तीर्थकृन्नामकर्म समुपार्जितम् , तस्य निरुक्तनामकर्मण उदयो भवति, तदुदयाच्च भूमिमस्पृशन् कनककमले स्वपादौ निदधन् सुरासुरनरेन्द्रैः स्तूयमानश्चतुस्त्रिंशदतिशयसमन्वितोऽष्टमहाप्रातिहार्यश्रीयुक्तः पृथ्वीतले धर्मतीर्थं प्रवर्तयन् सद्देशनाभिश्च तीर्थकृन्नामकर्म वेदयन् विहरति । उक्तं च गुणस्थानकक्रमारोहे

"स सर्वातिशयैर्युक्तः, सर्वामरनरैर्नतः ।
चिरं विजयते सर्वोत्तमं तीर्थं प्रवर्तयन् ॥१॥
वेद्यते तीर्थकृत्कर्म, तेन सद्देशनाभिः ।
भूतले भव्यजीवानां प्रतिबोधादि कुर्वता ॥२॥" इति ।

सयोगिगुणस्थानकप्रथमसमये तीर्थकृत्कर्मण उत्कृष्टस्थित्युदयोदीरणे भवतः ॥२३०॥

अथ त्रयोदशगुणस्थानकस्य कालं गुणश्रेणिं च प्रदर्शयितुकाम आह

हस्सो भिन्नमुहुत्तं जेट्ठो देसूणपुव्वकोडी से ।
कालो अवट्ठिया गुणसेढी आयोजिकाअ परि ॥२३१॥

ह्रस्वो भिन्नमुहूर्तं ज्येष्ठो देशोनपूर्वकोटिस्तस्य ।
कालोऽवस्थिता गुणश्रेणिरायोजिकायां परि ॥२३१॥ इति पदसंस्कारः ।

'हस्सो' इत्यादि, 'ह्रस्वः' जघन्यो 'भिन्नमुहूर्तम्' अन्तर्मुहूर्तम् 'ज्येष्ठः' उत्कृष्टो 'देशोनपूर्वकोटिः' साधिकाऽष्टवर्षन्यूनपूर्वकोटिवर्षप्रमाणो भवति । कः? इत्याह–'से कालो' त्ति 'तस्य' लब्धसयोगिगुणस्थानस्य कालः । भावार्थः पुनरयम्–यथाऽपूर्वकरणगुणस्थानकवर्ती जघन्यत एकसमयं संयतत्वेन स्थित्वा पञ्चत्वं गच्छति, न तथा प्राप्तसयोगिगुणस्थानकः, किन्तु जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्तं सयोगित्वेन स्थित्वाऽयोगिगुणस्थानकं सम्प्राप्य निर्वाणमेति । तेन सयोगिगुणस्थानकस्य जघन्यकालोऽन्तर्मुहूर्तं भवति । यः पूर्वकोटिवर्षायुष्को सप्तमासाऽभ्यधिकवर्षाष्टके प्राप्तसंयमः क्षपकश्रेणिमारोहति, सोऽन्तर्मुहूर्तकालेन सयोगिगुणस्थानकं समासाद्योत्कृष्टतो देशोनपूर्वकोटिवर्षाणि तत्र तिष्ठति, ततः शैलेशीं प्रतिपद्य निःश्रेयसमश्नुते । एवं सयोगिगुणस्थानकस्योत्कृष्टकालः साधिकवर्षाष्टकन्यूनपूर्वकोटिवर्षप्रमाणो लभ्यते ।

सम्प्रति सयोगिगुणस्थानके गुणश्रेणिं प्रपञ्चयति–'अवट्ठिया'इत्यादि, 'अवस्थिता' प्रदेशाग्रमाश्रित्य कालं च प्रतीत्याऽवस्थिता गुणश्रेणिर्भवति । किं सर्वत्र सयोगिगुणस्थानकेऽवस्थिता गुणश्रेणिर्भवति ? इति चेत्, न, किंतर्हि ? इत्याह 'आयोजिकाअ परि' त्ति 'आयोजिकायाः परि' परिशब्देन वर्ज्यवर्जकभावसम्बन्धो द्योत्यते । तेन आयोजिकाशब्दात् "पर्यपाभ्यां वर्ज्ये" (सिद्धहेम०२-२-७१) इत्यनेन सूत्रेण पञ्चमी विभक्तिः, आयोजिकां वर्जयित्वेत्यर्थः, वक्ष्यमाणाऽऽयोजिकाकरणात् प्राक् सर्वत्र सयोगिगुणस्थानके गुणश्रेणिरवस्थिता भवतीति फलितार्थः । इदमत्र हृदयम्–सयोगिकेवलिगुणस्थानकप्रथमसमयतः प्रभृति क्षीणकषायगुणस्थानकगुणश्रेण्यपेक्षया संख्येयगुणहीनः सयोगिकेवलिगुणश्रेणिनिक्षेपो भवति । स चाऽवस्थितः,पूर्वपूर्वसमये क्षीणे उपर्युपरि वर्धनात् । तदेवं कालतोऽवस्थिता गुणश्रेणिः । तथा सयोगिप्रथमसमये क्षीणकषायगुणश्रेण्यां परिणमनाय गृहीतदलतोऽसंख्येयगुणं दलं गृह्णाति, छद्मस्थपरिणामतः केवलिपरिणामानां विशुद्धतमत्वेनेव क्षीणकषायगुणश्रेणितः सयोगिगुणस्थानकगुणश्रेणेः शास्त्रेऽसंख्येयगुणत्वप्रतिपादनात् । दलञ्च गृहीत्वा गुणश्रेणिशिरो यावदसंख्येयगुणक्रमेण प्रक्षिपति । द्वितीयसमयेऽपि तावदेव दलं गृहीत्वा गुणश्रेणिशिरो यावदसंख्येयगुणक्रमेण दलं प्रक्षिपति, परिणामानामवस्थितत्वात् । एवं प्रतिसमयं तावदेव दलं गृहीत्वा गुणश्रेणिशिरो यावदसंख्येयगुणक्रमेण निक्षिपति । एवं गुणश्रेण्यर्थं प्रतिसमयं दलिकमवस्थितं तावद् गृह्णाति, यावदायोजिकाकरणं नारभते । तेन दलिकाऽपेक्षया सयोगिगुणस्थानगुणश्रेणिरायोजिकाकरणतः प्रागवस्थिता भवति ॥२३१॥

नन्वायोजिकाकरणं कदा करोति ? इत्यत आह

आयोजिगाकरणमाउगम्मि अंतोमुहुत्तसेसम्मि ।
करए अहवा आवस्सयकरणमवस्सकरणं वा ॥२३२॥
आवज्जियकरणं वा-ऽऽवज्जीकरणं तओ समुग्घायं ।
कुणए जस्साउत्तो तईआईइं पहूआइं ॥२३३॥

आयोजिकाकरणमायुष्यन्तमुहूर्तशेषे ।
करोत्यथवा-ऽऽवश्यककरणमवश्यकरणं वा ॥२३२॥
आवर्जितकरणं वा-ऽऽवर्जीकरणं ततः समुद्घातम् ।
करोति यस्यायुस्तस्तृतीयादीनि प्रभूतानि ॥२३३॥ इति पदसंस्कारः ।

'आयोजि०' इत्यादि, तत्रा-ऽन्तर्मुहूर्तशेषे आयुष्यायोजिकाकरणं करोति, अयम्भावः-सर्वोऽपि केवली भगवान् जघन्यतो-ऽन्तर्मुहूर्तकालमुत्कृष्टतश्च देशोनपूर्वकोटिवर्षप्रमाणं कालं विहृत्य स्वायुष्यन्तर्मुहूर्तमात्रे शेषे आन्तर्मौहूर्तिकमायोजिकाकरणमुदयावलिकायां कर्मपुद्गलनिक्षेपव्यापाररूपमुदीरणाविशेषात्मकमारभते । इयमत्र व्युत्पत्तिः=आ-मर्यादया योजनं-केवलिदृष्ट्या शुभानां योगानां व्यापार इत्यायोजिका, "भावे" (सिद्धहेम०५-३-१२२) सूत्रेण भावे णकप्रत्ययः, आयोजिकायाः करणमित्यायोजिकाकरणम् । उक्तं च श्रीमन्मलयगिरिपादैः-"**इह सर्वोऽपि सयोगिकेवली समुद्घातादर्वाक् आयोजिकाकरणमान्तर्मुहूर्तिकमुदयावलिकायां कर्मपुद्गलप्रक्षेपव्यापाररूपमुदीरणाविशेषात्मकमारभते । अथ आयोजिकाकरणमिति कः शब्दार्थः? उच्यते, आङ् मर्यादायाम्, आ-मर्यादया केवलिदृष्ट्या योजनं व्यापारणं, शुभानां योगानामिति गम्यते, आयोजिका, तस्याः करणमायोजिकाकरणम् ।**" इति ।

'अहवा' इत्यादि, अथवाशब्दो मतान्तरद्योतकः, अथवा-ऽन्ये प्राहुः-स्वायुष्यन्तर्मुहूर्तशेषे केवली भगवान् आवश्यककरणं करोतीति । कः शब्दार्थः? उच्यते-अवश्यंभावः=आवश्यकम्, "**चोरादेः**" (सिद्धहेम०७-१-७३) इति सूत्रेण भावे अकञ्प्रत्ययः, आवश्यकेन=अवश्यंभावेन करणमित्यावश्यककरणम्, यथा लोके साटकेन कक्षां बद्ध्वा ततः परं कृतावश्यककक्षाबन्धकरणो योद्धुमुपक्रमते तथा-ऽन्तर्मुहूर्तायुःशेषेण सर्वकेवलिना सिध्यता प्रथममेवेदं करणमवश्यं कर्तव्यमित्यावश्यककरणम् । यदुक्तमावश्यकचूर्णौ-"**सर्वे च भगवन्तः केवलिनस्तीर्थकराश्च नियमादावश्यकरणं कुर्वन्ति ।**" इति ।

'अवस्सकरणं वा' वाशब्दो मतान्तरद्योतकः, एवमग्रेऽपि, अथवैके भणन्ति-सयोगीकेवली भगवानन्तर्मुहूर्तप्रमाण आयुषि शेषे-ऽवश्यकरणं करोतीति, सर्वकेवलिभिः सिद्धयद्भिरवश्यंक्रियमाणत्वादवश्यकरणमिति व्यपदिश्यते, अवश्यंक्रियत इत्यवश्यकरणमिति व्युत्पत्तेः । अस्यथापि चाऽऽवश्य-

कचूर्णौ—"स्वोपात्तमनुष्यायुषोऽन्तःप्रक्षयवशाद् मुक्तस्याऽन्तमुहूर्तशेषे सिध्यत्पर्यायाभिमुखा अवश्यकरणं कुर्वन्तीति । कथमिदमवश्यकरणमिति प्रश्ने, प्रदर्श्यते—अन्वर्थत्वादवश्यकरणसंज्ञायाः भास्करवत्, अवश्यकरणीयत्वादवश्यकरणम् । कथमियमन्वर्थेति दृश्यते—अर्थमनुगता या संज्ञा साऽन्वर्था, अर्थमङ्गीकृत्य प्रवर्तत इत्यर्थः । कथम् ? इह यथा भास्करसंज्ञा अन्वर्था, कथमन्वर्था ? भासं करोतीति भास्करः इति यो भासनार्थः, तमङ्गीकृत्य प्रवर्तते इत्यन्वर्था, तथाऽवश्यकरणमिति इयं संज्ञा अन्वर्था, कथमिति चेत्, ब्रूमहे- अवश्यंक्रियते इत्यवश्यकरणं इति योऽवश्यकरणार्थोऽवश्यकर्तव्यता, तमङ्गीकृत्य प्रवर्तते, यस्मात्, तस्मात् सर्वकेवलिभिः सिद्ध्यद्भिरवश्यं क्रियमाणत्वादवश्यकरणमित्यन्वर्थसंज्ञासिद्धिः ।" इति ।

'आवज्जि०' इत्यादि, तत्र 'वा' अथवा परे भणन्ति-'आवर्जितकरणं' करोतीति । नन्वावर्जितकरणं कुतो व्यपदिश्यते ? इति चेद्, उच्यते—आवर्जितस्य=तथाभव्यत्वेन मोक्षगमनं प्रत्यभिमुखीकृतस्य करणं=शुभयोगव्यापारणमित्यावर्जितकरणम् । यदवादि कषायप्राभृतचूर्णौ—"अंतोमुहुत्ते आउगे सेसे तदो आवज्जिदकरणे कदे तदो केवलिसमुग्घादं करेदि।" इति । तथैवावश्यकवृत्तावपि—"केचिदावर्जितकरणमित्याहुः । अयं शब्दार्थः—आवर्जितः=अभिमुखीकृतः । आवर्जितस्य=तथाभव्यत्वेन मोक्षगमनं प्रति अभिमुखीकृतस्य करणं=क्रिया—शुभयोगव्यापारणम् आवर्जितकरणम् ।" इति ।

'आवर्जीकरणम्' काकाक्षिगोलकन्यायेन वाशब्दोऽत्राऽऽपि सम्बध्यते, वा=अथवा विशेषावश्यकभाष्यकारादयो हरिभद्रसूरिपादादयश्च भणन्ति केवली भगवानन्तर्मुहूर्तमात्र आयुषि शेष आवर्जीकरणं करोतीति । उक्तञ्च भाष्यकृद्भिः

"तत्थाउयसेसाहियकम्मसमुग्धायणं समुग्घाओ ।
तं गन्तुमणो पुव्वं आवज्जीकरणमब्भेइ ॥१॥" इति ।

एवं श्रीमद्हरिभद्रसूरिपादैरप्यावश्यकवृत्तौ—"इह समुद्घातं प्रारभमाणः प्रथममेवाऽऽवर्जीकरणमभ्येति ।" इति । नन्वावर्जीकरणं कुतो व्यवह्रियते ? इति चेद्, भण्यते-आवर्जनम्=आवर्जः, आपूर्वकाद् वर्जिधातोर्भावे घञ्प्रत्ययः, आत्मानं प्रति मोक्षस्याऽभिमुखीकरणम्=आत्मनो मोक्षं प्रत्युपयोग इत्यर्थः, मयाऽधुनेदं कर्तव्यमित्येवंरूपः, यद्वा आवर्ज्यते=अभिमुखीक्रियतेऽनेनेत्यावर्जः, उदयावलिकायां कर्मप्रक्षेपरूपो व्यापार इत्यर्थः, यदुक्तं भाष्यकृद्भिः—

आवज्जणमुवओगो वावारो वा तदत्थमाईए ।
अंतोमुहुत्तमेत्तं काउं कुरुए समुग्घायं ॥१॥" इति ।

आवर्ज्यो वा घ्यण्प्रत्ययान्तशब्दः, तदर्थस्तु मोक्षं प्रत्यभिमुखीकर्तव्य इति, अनावर्जस्या-ऽऽनावर्ज्यस्य वा-ऽऽवर्जस्या-ऽऽवर्ज्यस्य वा करणम्, अभूततद्भावविवक्षायां "**कृभ्वस्तिभ्यां कर्मकर्तृभ्यां प्रागतत्त्वे च्विः**" (सिद्धहेम० ७-२-१२६) इत्यनेन च्विप्रत्यये सत्यावर्जीकरणमिति ।

नन्वावर्जीकरणशब्दव्युत्पत्त्यवसरे आवर्जः=उदयावलिकायां कर्मप्रक्षेपरूपव्यापार इत्युक्तम्, तच्चा-ऽयुक्तम्, आवर्जीकरणात्पूर्वमप्युदीरणायाः प्रवर्तमानत्वेनोदयावलिकायां कर्मप्रक्षेपरूपव्यापारस्य पूर्वमपि प्रवृत्तत्वेन विशेषाभावादिति चेत्, उच्यते–सत्यमेतद्, किन्त्वावर्जीकरणात्पूर्वं या प्रदेशोदीरणा भवति, सा स्तोका भवति, आवर्जीकरणे त्वधिका । कथमेतदवसीयते ? इति चेत्, उच्यते-कर्मप्रकृतिचूर्णिकारैस्तीर्थकृन्नामकर्मणो जघन्यप्रदेशोदीरणा-ऽऽवर्जीकरणात् प्राग् दर्शिता । अक्षराणि त्वेवम्–"**तित्थकरनामाए पढमसमते केवलिमादिकाउं जाव आओजीकरणस्स अकारगो ताव जहण्णपदेसुदीरणा ।**" इति । तेन ज्ञायते-आवर्जीकरणे प्रदेशोदीरणा विशिष्टा जायत इति । ततश्चोदयावलिकायां कर्मप्रक्षेपरूपव्यापारस्य पूर्वं सत्त्वे-ऽप्यावर्जीकरणाऽवस्थायां शुभयोगव्यापारविशेषेण विशिष्टप्रदेशोदीरणायाः सद्भावात् समस्ति विशेषो-ऽत्र । अस्ति च सयोगिकेवलिनो-ऽपि विशुद्धितारतम्यहेतुः शुभयोगव्यापारविशेषः । न च सयोगिकेवल्यादीनां वीतरागाणामेकस्यैव संयमस्थानस्य तत्र तत्र प्रतिपादनादावर्जीकरणे विशुद्धितारतम्यमसिद्धमिति वाच्यम्, संयमस्थानस्यैकत्वेन तदाश्रितविशुद्धितारतम्यस्या-ऽभावे-ऽपि शुभयोगव्यापारविशेषाधीनस्य तस्या-ऽक्षतत्वस्या-ऽभ्युपगमनीयत्वात्, सयोगिकेवलिनो हि विशुद्धेः सदैकरूपत्वाऽभ्युपगमे तु तच्चरमसमये मनुष्यगत्यादीनां द्वाषष्टिप्रकृतीनामुत्कृष्टप्रदेशोदीरणा नोपपद्येत, अपि तु सर्वदैव सयोग्यवस्थायां सम्पद्येत, विशुद्धेरविशेषत्वाभ्युपगमात् । तच्च नेष्टम्, यतो विशुद्धिविशेषमाश्रित्य सयोगिकेवलिचरमसमय एव मनुष्यगत्यादीनामुत्कृष्टप्रदेशोदीरणा तत्र तत्र प्रतिपाद्यते । तथा चोक्तं श्रीकर्मप्रकृतिवृत्तौ–"**सयोगिकेवली 'अन्ते'–चरमसमये, उदीरको यासां ता योग्यन्तोदीरकास्तासां–मनुजगतिपञ्चेन्द्रियजात्यौदारिकसप्तकतैजससप्तकसंस्थानषट्कप्रथमसंहननवर्णादिविंशत्यगुरुलघूपघातपराघातविहायोगतिद्विकत्रसबादरपर्याप्तप्रत्येकस्थिरास्थिरशुभाशुभसुभगादेययशःकीर्त्तिनिर्माण-तीर्थकरोच्चैर्गोत्राणां द्विषष्टिसंख्यानां प्रकृतीनां सयोगिकेवली चरमसमये उत्कृष्टप्रदेशोदीरकः । तथा केवलिनः स्वरद्विकप्राणापानयोः 'निजकान्ते'–स्वस्वनिरोधकाले उत्कृष्टा प्रदेशोदीरणा । तथाहि स्वरनिरोधकाले सुस्वरदुःस्वरयोः, प्राणापाननिरोधकाले च प्राणापाननाम्न उत्कृष्टा प्रदेशोदीरणा । इह सर्वकर्मणामुत्कृष्टप्रदेशोदीरणायामेषा परिभाषा–यो यः स्वस्वोदीरणाधिकारी, स तस्य कर्मणः सर्वविशुद्ध उत्कृष्टप्रदेशोदीरणास्वामी वेदितव्यः।**" इति । तदेवं सयोगिनो

विशुद्धितारतम्यहेतोः शुभयोगव्यापारविशेषस्य सिद्धौ शुभयोगव्यापारविशेषादावर्जीकरणे विशिष्टा प्रदेशोदीरणा निराबाधा सिध्यति । ततश्च युज्यत एव निरुक्त आवर्जशब्दार्थः ।

नन्वेवं तह्यावर्जीकरणं कुर्वन्नुदयावलिकायां कर्मदलं क्षपयति, ततश्चैवा-ऽऽयुषा सह समानानि शेषकर्माणि भविष्यन्ति, किं वक्ष्यमाणेन समुद्घातेनेति वाच्यम्, आवर्जीकरणे विशिष्टप्रदेशोदीरणासद्भावे-ऽपि तादृशविशिष्टस्थितिघातादीनां समुद्घातेन विना-ऽनुपपत्तेः ।

इदं चा-ऽऽवर्जीकरणमान्तमुहूर्तिकं भवति, यदुक्तं **श्रीप्रज्ञापनासूत्रे—"कइसमइए णं भंते ? गोयमा ! असंखेज्जसमइए अंतोमुहुत्तिए आउज्जीकरणे पन्नत्ते ।"** इति ।

न च **प्रज्ञापनादिष्वा**वर्जीकरणस्य कालोऽभिहितः, किन्तु य आचार्या आयोजिकाकरणादिकं करोतीति ब्रुवते, तेषां मतेना-ऽऽयोजिकाकरणादिकालः कियद्भवति ? इति न निश्चीयत इति वाच्यम्, शब्दभेदेन भेदेऽप्यर्थभेदाऽभावात् । न च **"तं गंतुमणो पुव्वं आवज्जीकरणमब्भेइ ।"** इति वचनात् केवलिसमुद्घातकारिण एव जीवस्या-ऽऽवर्जीकरणं भवति, न त्वन्येषां जीवानामिति समस्त्यर्थभेदोऽपीति वाच्यम्, तादृशवाक्यानां तादृशनियमपरत्वे मानाऽभावात्, प्रत्युत ननु यदि सर्वोऽपि केवल्यावर्जीकरणं कुरुते, तर्हि समुद्घातस्य कारकः किं पूर्वमावर्जीकरणं कुरुते, उत समुद्घातमित्याशङ्कान्युदासाय समुद्घातात् प्रागावर्जीकरणं करोतीति नियमप्रदर्शनपरत्वस्य तादृशवाक्यानां समर्थनीयत्वात् ।

निरुक्तकरणप्रथमसमये नाम-गोत्र-वेदनीयानां प्रदेशाग्रमुत्कीर्योदयनिषेके स्तोकं निक्षिपति । ततो द्वितीयनिषेकेऽसंख्येयगुणं प्रदेशाग्रं प्रक्षिपति । एवं तावद्वक्तव्यम्, यावत् शेषसयोगिगुणस्थानकाला-ऽयोगिगुणस्थानकालतो विशेषाधिके काले गुणश्रेणिशिरः प्राप्यते । अयं च गुणश्रेणिनिक्षेपः प्राक्प्रतिपादितसयोगिगुणश्रेणिनिक्षेपतः प्रदेशाग्रमाश्रित्या-ऽसंख्येयगुणम्, कालं प्रतीत्य पुनः संख्यातगुणहीनो भवति, यतः सयोगिगुणश्रेणितो-ऽयोगिगुणश्रेणिः प्रदेशानाश्रित्या-ऽसंख्येयगुणा, कालं प्रतीत्य पुनः संख्यगुणहीना भवति । गुणश्रेणिशिरस्तः परमुपरितन एकस्मिन्निषेकेऽसंख्यातगुणं दलं प्रक्षिपति, तत ऊर्ध्वं विशेषहीनक्रमेण प्रक्षिपति । एवमयोगिगुणस्थानकस्य गुणश्रेणिं निरुक्तकरणकाले विरचयति, अयोगिगुणस्थानके तु केवलं प्रतिसमयमसंख्येयगुणं निर्जरयति । यदुक्तं **प्रज्ञापनावृत्तौ श्रीमद्धरिभद्रसूरिपादैः—तेषु च शैलेशीसमयेषु 'पुव्वरइयं च णं कम्मं' ति आउज्जीकाले चेव गुणसेढी करेति ।"** इति ।

उक्तकरणं विधाय केवलिसमुद्घातमारभते, तं विवर्णयिषुराह—**'तओ'** इत्यादि, **'ततः'** उक्तकरणसम्पादनानन्तरं सयोगिकेवली समुद्घातं करोति, कः ? इत्याह—**'जस्सा०'** इत्यादि, यस्य सयोगिकेवलिनः 'आयुष्टः' आयुष्ककर्मतः 'तृतीयादीनि' वेदनीयादीनि कर्माणि 'प्रभूतानि' अधिकस्थितिकानि भवन्ति, स समुद्घातं करोति, न त्वायोजिकाकरणवत् सर्वे

केवलिनः। ननु समुद्घात इति कः शब्दार्थः ? इति चेत्, उच्यते-सम्यक्=अपुनर्भावेन उत्=प्राबल्येन घातो=वेदनीयादीनां कर्मणां हननं=विनाशो यस्मिन् प्रयत्नविशेषे, स समुद्घात इत्युच्यते,अथ व्युत्पत्त्यन्तरं दर्श्यते सं=सामस्त्येन उत्=प्राबल्येन घातो-हननं=शरीराद् बहिर्जीवप्रदेशानां निस्सारणमिति समुद्घातः, "हनंक् हिंसागत्योः" इति हन्धातोर्गत्यर्थकत्वाद् निस्सारणस्य चा-ऽपि गतिविशेषत्वात्। अयं भावः-प्रभूतस्थितिकस्य वेदनीयादेरायुषा सह समीकरणार्थं जीवप्रदेशानामूर्ध्वमधस्तिर्यक् शरीराद् बहिर्निःसारणं समुद्घात उच्यत इति यावत्, यथा चा-ऽऽर्द्रशाटिका विस्तारिता सती क्षिप्रं शुष्यति, तथैव विस्तारितानां जीवप्रदेशानां कर्मोदकं शीघ्रं शुष्यति, यदुक्तं श्रीभद्रबाहुस्वामिभिः

"नाऊण वेअणिज्जं अइबहुअं आउअं च थोवागं।
गंतूण समुग्घायं खवंति कम्मं निरवसेसं ॥१॥
जह उल्ला साडोआ आसु सुक्कइ विरल्लिआ संती।
तह कम्मलहुअसमए वच्चंति जिणा समुग्घायं ॥२॥" इति।

तथैवाऽऽवश्यकचूर्ण्यामपि-"सिग्घं कम्मं खविज्जति तो समुग्घाओ समो आयुषो कर्मणां उद्घातः समुद्घातः, सव्वे जोवपदेसे विसारेति।" इति। एवमन्यत्राऽप्युक्तम्

"आयुषि समाप्यमाने शेषाणां कर्मणां समाप्तिः।
न स्यात् स्थितिवैषम्याद् गच्छति ततः समुद्घातम् ॥१॥
स्थित्या च बन्धनेन च समोक्रियार्थं हि कर्मणां तेषाम्।
अन्तर्मुहूर्तशेषे तदा-ऽऽयुषि समुज्जिघांसति सः ॥२॥
आर्द्रं विरल्लितं सद् वस्त्रं मङ्क्ष्वेव ननु विनिर्वाति।
संवेष्टितं तु न तथा, तथा हि कर्मणां मूर्त्तत्वात् ॥३॥"
स्नेहक्षयसाम्यात् (स्थितिबन्धहेतुर्हि) स्नेहः स च हीयते समुद्घातात्।
क्षोणस्नेहं शटति हि, भवति तदल्पस्थिति च शेषम् ॥४॥
आयुष्कस्या-ऽपि विरल्लितस्य न ह्रास्यते स्थितिः कस्मात्।
इति वा चोद्यं चरमशरीरो-ऽनुपक्रमायुर्यत् कञ्चुकवत् ॥५॥" इति।

येषां महात्मनामायुष्ककर्मतो वेदनीयमधिकस्थितिकं भवति, ते नियमात् समुद्घातं कुर्वन्ति,येषां पुनरायुष्ककर्मणा सह स्वभावत एव समस्थितिकानि वेदनीयादिकानि कर्माणि जायन्ते, ते समुद्घातं न कुर्वन्ति। न्यगादि चाऽऽवश्यकचूर्णौ-"येषां बहु सवेद्यमस्ति, आयुश्चाल्पमवतिष्ठते, ते नियमात्समुद्घातं कुर्वन्ति। नेतर इति।" अतीतकालेऽनन्तकेवलिनः समुद्घातमकृत्वा सिद्धिं प्राप्ताः, यदुक्तं प्रज्ञापनासूत्रे

जस्साउएण तुल्लाति वन्धणेहिं ठितीहि य ।
भवोवग्गहकम्माइं समुग्घायं से ण गच्छइ ॥१॥
अगंतूणं समुग्घातं अणंता केवली जिणा ।
जरमरणविप्पमुक्का सिद्धिं वरगइं गया ॥२॥" इति ।

अत्र वध्यन्त इति बन्धनानि "भुजिपत्यादिभ्यः कर्मापादाने"(सिद्धहेम०५-३-१२८) इत्यनेन कर्मणि अनप्रत्ययः, कर्मपुद्गला इत्यर्थः, तैः, शेषं सुगमम् ।

उक्तञ्च वाचकमुख्यैरपि–"यस्य पुनः केवलिनः कर्म भवत्यायुषोऽतिरिक्ततरम् ।
स समुद्घातं गतवानथ गच्छति तत्समीकर्तुम् ॥१॥" इति ।卐

तत्राप्यावश्यकचूर्णिकाराभिप्रायेण येषां महात्मनामन्तर्मुहूर्तात्प्रभृति षण्मास आयुषि शेषे केवलज्ञानमुत्पन्नम्, ते नियमात् समुद्घातमारभन्ते, शेषास्तु विभाषया, केचिदारभन्ते, केचिद् नेत्यर्थः, यद्वा शेषा नाऽऽरभन्त इत्यर्थः । उक्तं चाऽऽवश्यकचूर्णौ–"येऽन्तर्मुहूर्तमादिकृत्वोत्कर्षेण आ मासेभ्यः षड्भ्य आयुषोऽवशिष्टेभ्यः अभ्यन्तरे आविर्भूतकेवलपर्यायाः, ते नियमात्समुद्घातं कुर्वन्ति, ये तु षण्मासेभ्यः उपरिष्टादाविर्भूतकेवलज्ञानाः शेषास्ते समुद्घातकाद्[समुद्घातकरणाद्]बाह्याः, ते समुद्घातं न कुर्वन्तीत्यर्थः, अथवाऽयमर्थः–शेषाः समुद्घातं प्रति भाज्याः, कस्मात् ? यस्मात् षाण्मासिकाऽवशिष्टे आयुषि आविर्भूतकेवलज्ञानपर्यायेभ्यः केवलिभ्यः सकाशात् षड्भ्यो मासेभ्यः ये उपरि समयोत्तरवृद्ध्याऽवशिष्टे आयुषि शेषे आविर्भूतकेवलिनः, ते शेषाः समुद्घातं प्रति भाज्याः । केचित्समुद्घातं कुर्वन्ति, केचिन्नेति ।" तथैव गुणस्थानकक्रमारोहवृत्तावपि

"तथैवाऽन्यत्रापि-'छम्मासाउसेसे, उत्पन्नं जेसिं केवलं नाणं ।
ते नियमा समुद्घाया सेसा समुग्घायभइयव्वा ॥१॥"❀

卐उक्तं च मूलाराधनाकारैरपि "जेसिं आउसमाइं णामगोदाइं वेदणीयं च ।
ते अकदसमुग्घादा जिणा उवणमंति सेलेसिं ॥१॥
जेसिं हवंति विसमाणि णामगोदाउवेदणीयाणि ।
ते तु कदसमुग्घादा जिणा उवणमंति सेलेसिं ॥२॥
ठिदिसंतकम्मसमकरणत्थं सव्वेसिं तेसिं कम्माणं ।
अंतोमुहुत्तसेसे जंति समुग्घादाउम्मि ॥३॥" इति ।

❀उक्तं च मूलाराधनाकारैरपि "उक्कस्सएण छम्मासाउगसेसम्मि केवली जादा ।
वच्चंति समुग्घादं सेसा भज्जा समुग्घादे ॥१॥" इति ।

धवलाकारास्तु "यतिवृषभोपदेशात्सर्वघातिकर्मणां क्षीणकषायचरमसमये स्थितेः साम्याभावात् सर्वेऽपि कृतसमुद्घाताः सन्तो निवृत्तिमुपढौकन्ते । येषामाचार्याणां लोकव्यापिकेवलिषु विंशतिसंख्यानियमस्तेषां मतेन केचित् समुद्घातयन्ति केचिन्न समुद्घातयन्ति ।" इत्याहुः ।

गुणस्थानकक्रमारोहग्रन्थे तु

"यः षण्मासाधिकायुष्को लभते केवलोद्गमम् ।
करोत्यसौ समुद्घातमन्ये कुर्वन्ति वा नवा ॥१॥" इत्युक्तम् । तच्चमत्र केवलिनो बहुश्रुता वा विदन्ति ।

केचिदाहुः—जघन्यतो-ऽन्तर्मुहूर्तमात्र आयुषि शेष उत्कृष्टतः पुनः षण्मासप्रमाण आयुषि शेषे समुद्घातं करोतीति, तन्न समीचीनम्, यतो-ऽन्तर्मुहूर्तमात्र आयुषि शेष आयोजिकाकरणं कृत्वा समुद्घातमारभते, तेन समुद्घातप्रारम्भे तस्यायुः षण्मासमात्रं न संभवति । किञ्च भगवता-ऽऽर्यश्यामेन प्रज्ञापनायामायोजिकाकरणानन्तरं प्रातिहारिकपीठफलकादीनां प्रत्यर्पणमेवोक्तम्, न तु ग्रहणम्, तेना-ऽन्तर्मुहूर्तमात्रशेषायुष्कः समुद्घातमारभते, न तु षाण्मासिकायुष्कः । यदि षट्सु मासेसु शेषेसु समुद्घातमारभेत, तर्हि षट्सु मासेसु कदाचिदपान्तराले वर्षाकालसम्भवात् तन्निमित्तं पीठफलकादीनामादानमप्युपपद्येत, न च तत्सूत्रसम्मतमिति कृत्वोत्कृष्टतः षण्मासेषु शेषेसु समुद्घातं करोतीति मतं निरस्तम् । उक्तं च भाष्यकारैः

कम्मलहुआए समओ भिन्नमुहुत्तावसेसओ कालो ।
अन्ने जहन्नमेयं छम्मासुक्कोसमिच्छंति ॥१॥
तत्तोऽनंतरसेलेसीवयणओ जं च पाडिहारीणं ।
पच्चप्पणमेव सुए इहरा गहणं पि होज्जाहि ॥२॥" इति ।

इह कर्मलघुतानिमित्तं समुद्घातस्य समयः=अवसरो भिन्नमुहूर्त्तविशेषकालः, शेषं सुगमम् ॥

ननु प्रभूतस्थितिकस्य वेदनीयादेरायुषा सह समीकरणार्थं समुद्घातारम्भ इति भवता यत् प्रोक्तम्, तदयुक्तम्, कृतनाशादिदोषप्रसङ्गात् । तद्यथा—प्रभूतकालोपभोग्यस्य वेदनीयादेः स्तोकेन कालेना-ऽपगमसम्पादनात् कृतनाशः, तथोपगमे च वेदनीयादिवच्च कृतस्या-ऽपि कर्मक्षयस्य पुनर्विनाशसम्भवेन मोक्षे-ऽपि कर्मोत्पत्त्या ततः पुनश्च्युतिः प्रसज्येतेति चेत्, न, कृतनाशादिदोषा-ऽप्रसङ्गात्, तथाहि—यथा प्रतिदिवसं सेतिकापरिभोग्येन वर्षशतपरिभोग्यस्य कल्पिताहारस्य भस्मकव्याधिना तत्सामर्थ्यतः स्तोकदिवसैर्निःशेषतः परिभोगान्न कृतनाशोपगमः, तथा कर्मणो-ऽपि वेदनीयादेस्तथाविधशुभाध्यवसायानुबन्धादुपक्रमेण साकल्यतो-ऽनुभवान्न कृतनाशलक्षणदोषः प्रसज्यते । द्विविधो हि कर्मणो-ऽनुभवः, प्रदेशतो विपाकतश्च । तत्र प्रदेशतः सकलमपि कर्म्मा-ऽनुभूयते, न तदस्ति किञ्चित्कर्म, यत्प्रदेशतो-ऽप्यननुभूतं सत् क्षयमुपयाति, ततः कथं कृतनाशदोषापत्तिः ? अत्र क्षयो नाम बन्धपरिणामेन जीवप्रदेशैः सह परिणतानां कर्मपुद्गलानां बन्धप्रतिपक्षमोक्षपरिणामैः प्रक्षिप्यमाणानां तेषां जीवप्रदेशतो निर्मूलतो-ऽपगमनम्, सर्वथा नाशस्तु

ना-ऽभ्युपगम्यते स्याद्वादवादिभिः, जीवप्रदेशतः पृथग्भूतानामकर्मस्वरूपेण परिणतानामपि कर्मपुद्गलानां पुद्गलस्वरूपेण परिक्षया-ऽनुपलम्भात् "ना-ऽसतो विद्यते भावो, ना-ऽभावो विद्यते सतः" इतिन्यायात् । तेन यथा मणेर्मलादेर्व्यावृत्तिः क्षय इति व्यपदिश्यते, तथैवाऽऽत्मप्रदेशतः कर्मणामपगमनं क्षय इति परिभाष्यते । स च क्षयः प्रदेशतो विपाकतश्च भवति । विपाकतः कर्मणो-ऽनुभवस्तु भजनीयः, किञ्चित्कर्म विपाकतो-ऽनुभूतं सत् क्षयमुपगच्छति, किञ्चित्पुनः विपाकतो-ऽननुभूतमेव, अन्यथा मोक्षा-ऽभावः प्रसज्येत । तथाहि-यदि विपाकानुभवत एव सर्वकर्मदलं परिक्षपणीयमिति नियमः स्यात्, तर्ह्यसंख्यातेषु भवेषु तथाविधविचित्रा-ऽध्यवसायविशेषैर्नरकगत्यादिकं कर्मोपार्जितम्, तस्य नैकस्मिन् मनुष्यादावेव भवेऽनुभवः, स्वस्वभवनिबन्धनत्वात् तथाविधविपाकानुभवस्य । क्रमेण च स्वस्वभवा-ऽनुगमेना-ऽनुभवे नारकादिभवेषु चारित्रा-ऽभावेन प्रभूततरकर्मसन्तानसञ्चयात्, तस्या-ऽपि च स्वस्वभवा-ऽनुगमेना-ऽनुभवोपगमात् कुतो मोक्षः ? तस्मात् सर्वं कर्म विपाकतो भजनयाऽनुभूयते, प्रदेशतः पुनरवश्यमेवा-ऽनुभवनीयमित्यभ्युपगन्तव्यम् , यदुक्तं श्रीविवाहप्रज्ञप्तौ-"तत्थ णं जं तं पएसकम्मं, तं णियमा वेयइ, तत्थ णं जं अणुभागकम्मं, तं अत्थेगइअं वेएइ, अत्थेगइअं णो वेएइ।" इति । एवं च न कश्चिद् दोषः । न च तथापि दीर्घकालभोग्यतया यद् वेदनीयादिकं कर्मोपार्जितम्, अथ च परिणामविशेषादुपक्रमेणा-ऽर्वागेव तदनुभवति, ततः कथं न कृतनाशदोषप्रसङ्गः ? इति वाच्यम् , बन्धकाले तथाविधा-ऽध्यवसायवशत आदावुपक्रमयोग्यस्यैव बन्धात् , उक्तं च भाष्यकृद्भिः-

"उदयक्खयक्खयोवसमोवसमा जं च कम्मुणो भणिया ।
दव्वादिपंचगं पति जुत्तमुवक्कमणमत्तो-ऽवि ॥१॥" इति ।

किञ्च जिनवचनप्रामाण्यादपि वेदनीयादिकर्मणामुपक्रमो मन्तव्यः । न चैवं कर्मक्षयस्योपक्रमहेतुर्येन मोक्षतः पुनश्च्युतिप्रसङ्गः, मोक्षाद्धि प्रच्यावयितुं रागादयः समर्थाः, ते च निर्मूलकाषं कषिता इति भवता यदुक्तं 'तथोपगमे वेदनीयादिवच्च कृतस्याऽपि कर्मक्षयस्य' इत्यादि, न तत्सम्यगुपपन्नमिति स्थितम् ।

ननु यदा वेदनीयादिकमतिप्रभूतं सर्वस्तोकं चा-ऽऽयुष्कम् ,तदा समधिकवेदनीयादिघातार्थं समुद्घातमारभताम्, वेदनीयादिकस्य सोपक्रमत्वात् । यदा त्वधिकमायुष्कं स्तोकञ्च वेदनीयादिकम् , तदा का वार्ता ?, न खल्वायुष्कस्य घाताय समुद्घातः कल्पते, चरमशरीरिणामायुषो निरुपक्रमत्वात्, "चरमसरीरा य निरुवक्कम्मा ।" इति वचनात् , तदयुक्तम् , एवंविधभावस्य कदाचनाऽप्यभावात् । तथाहि सर्वदैव वेदनीयाद्येवायुषः सकाशादधिकस्थितिकं भवति, न तु कदाचिदपि वेदनीयादित आयुष्कम् । न च कुतो-ऽयं नियमः, येन वेदनीयादित आयुष्कमधिकस्थितिकं न भवति ? इति वाच्यम् , तथारूपजीवपरिणामस्वाभाव्यात् । इदमुक्तं भवति-यथा-ऽऽयुर्व-

जीनां ज्ञानावरणादिकर्मणां सप्तानां ध्रुवबन्धः, आयुषस्त्वध्रुवबन्धः, सोऽपि नियत एव काले स्व-भवत्रिभागादिविशेषरूपे, उक्तं च "सिय तिभागे सिय तिभागतिभागे।" इति। तत्र बन्ध-वैचित्र्यनियमे न स्वभावात् परः कश्चिद् हेतुरस्ति, तथैवेहाऽप्यायुषो वेदनीयादितोऽ-विकस्थितिकत्वा-ऽभावे स्वभावविशेष एव नियामकः प्रतिपत्तव्यः। इत्थंभूत एवात्मनः परि-णामः, येन जीवस्या-ऽऽयुष्कं वेदनीयादिभिस्तुल्यं न्यूनं वा भवति, न कदाचना-ऽप्यधिकम्।

ननु कृतकृत्योऽपि सयोगिकेवली भगवान् समुद्घातं करोतीति न युज्यते, कृतकृत्यत्व-व्याघातप्रसङ्गादिति चेत्, न, समुद्घातेनैवा-ऽऽयुष्कतोऽधिकस्थितिकानां वेदनीयादीनां कर्मणां क्षपणीयत्वेनैकान्ततः कृतकृत्यत्वा-ऽसिद्धेः। न चैतदनिष्टम्, धर्मदेशनादिनैवोदीर्णतीर्थ-कृन्नामकर्मणः क्षपणीयत्वेना-ऽप्येकान्ततो भगवतः कृतकृत्यत्वा-ऽसिद्धेरिष्टत्वात्, यदुक्तं विशेषावश्यकभाष्ये

नेगंतेण कयत्थो जेणोदिन्नं जिणिंदनामं से।
तदवंझफलं तस्स य, खवणोवओयमेव जओ॥१॥" इति।

रागद्वेषराहित्यलक्षणं तु कृतकृत्यत्वं तत्र भगवति निराबाधमेव।

ननु वेदनीयादीनां प्रभूतस्थितिकानामायुषा सह समीकरणार्थं समुद्घातारम्भः, तत्र भवतु नाम समुद्घातेन नाम-गोत्रयोः कर्मक्षपणा, तदुदीरणायाः प्रवृत्तत्वात्, वेदनीयस्य तूदीरणा-ऽभा-वात् कथं युज्येत तत्क्षपणा? इति चेत्, मैवम्, यतो न केवलमुदीरणयैव कर्मक्षपणा भवति, अपि त्वपवर्तनादिभिरपि। वक्ष्यन्ते च समुद्घातावस्थायां स्थितिघातादयः, न हि वेदनीयस्य स्थितिघातादयो व्यवच्छिन्नाः, तेन भवन्त्येव समुद्घातावस्थायां वेदनीयस्य स्थितिघातादयोऽपवर्त-नादिभिः, ततश्च न किञ्चिदनुपपन्नम्। न च यद्यपवर्तनादिभिर्जायमानस्थितिघातादीनाश्रित्य समुद्घातो भण्यते, तर्ह्यपूर्वकरणादिष्वपि समुद्घातव्यवहारः स्यादिति वाच्यम्, विशिष्टप्रयत्नेन शरीराद् बहिर्जीवप्रदेशानां यन्निस्सारणम्, तत्प्रयोज्यस्य प्राबल्येन घातस्य समुद्घातत्वविवक्षणात्। यत्तु प्रज्ञापनावृत्तौ समुद्घातशब्दप्रतिपादना-ऽवसरे "प्राबल्येन कथं घात इति चेत्, उच्यते इह वेदनादिसमुद्घातपरिणतो बहून् वेदनीयादिकर्मप्रदेशान् कालान्त-रानुभवयोग्यानुदीरणाकरणेनाकृष्योदयावलिकायां प्रक्षिप्या-ऽनुभूय च निर्जरय-तीत्युक्तम्, तदपि तत्र वेदनादिसमुद्घातेषु यस्य यस्य कर्मणो घात उदीरणायाः प्रयोजकत्वं सम्भ-वति, तत्तत्कर्मघाते तद् योज्यम्। विशिष्टप्रयत्नेन शरीराद् बहिर्निस्सारणस्य कर्मघातप्रयोजकत्वं तु वेदनादिसर्वसमुद्घातेष्वपि समस्ति, न तत्र कस्यचित् विप्रतिपत्तिः ॥२३२-२३३

ननु यः केवली भगवान् समुद्घातं करोति, स कथं करोति? इति पृष्टे भणति

दंड-कवाड-पयर-लोगपूरणाणि कमसो चउखणेसु
पढमसमये पएसा वित्थारइ बहुअसंखभागमिआ ॥२३४॥ (गीतिः)

दण्ड-कपाट-प्रतर-लोकपूरणानि क्रमशश्चतु क्षणेषु ।
प्रथमसमये प्रदेशान् विस्तारयति बहुसंख्यभागमितान् ॥२३४॥ इति पदसंस्कारः ।

'दंड०' इत्यादि, पूर्वगाथातः' कुणए' इति क्रियापदमनुवर्तते । दण्ड-कपाट-प्रतर-लोकपूरणानि 'क्रमशः' क्रमेण 'चतुःक्षणेषु' चतुर्षु समयेषु करोति समुद्घातगतो जीवः । तद्यथा—प्रथमसमये दण्डं करोति, द्वितीयसमये कपाटम् , तृतीयसमये प्रतरम् , चतुर्थे च समये लोकपूरणं करोति । इदमत्र हृदयम्-प्रथमसमय औदारिककाययोगस्थो बाहल्यतः स्वशरीरप्रमाणमूर्ध्वमधश्च लोकान्तपर्यन्तमात्मप्रदेशानां दण्डं करोति, अथ दण्ड इति को-ऽर्थः ? दण्ड इव दण्डः । क उपमार्थः ? यथा मूल-मध्या-ऽग्रयुगूर्ध्वाधःसमप्रदेशः परिवृत्तपर्यायो दण्डो भवति, तथैव समुद्घातकरणवशादूर्ध्वमधश्च लोकान्तं प्राप्तानां बाहल्यतः स्वशरीरावगाहनागतानामात्मप्रदेशानां दण्डाकारेणाऽवस्थानाद् दण्डत्वसिद्धिः । द्वितीयसमय औदारिकमिश्रकाययोगस्थः पूर्वपश्चिमदिशोर्दक्षिणोत्तरदिशयोर्वाऽऽत्मप्रदेशानां तिर्यक्प्रसारणेन लोकान्तगामिनं कपाटं करोति । अथ कपाट इति कोऽर्थः ? कपाट इव कपाटः । अयमुपमार्थः-यथा पूर्वपश्चिमदिशोस्तिर्यग् विस्तीर्णो दक्षिणोत्तरदिशोर्ह्रस्व ऊर्ध्वा-ऽधोदिशयोरुच्छ्रितः, यद्वा-ऽपागुदग्दिशोस्तिर्यग्विस्तीर्णः प्राग्प्रत्यग्दिशोर्ह्रस्व ऊर्ध्वा-ऽधोदिशयोरुच्छ्रितः कपाटः शब्यते, तथैव समुद्घातकरणवशात् पूर्वपश्चिमदिशयोर्दक्षिणोतरदिशोर्वा बाहल्यतः स्वशरीरावगाहनाप्राप्तानामायामतश्चतुर्दशरज्जुषु विस्तृतानां विष्कम्भतश्च लोकान्तं यावद् निर्गतानामात्मप्रदेशानां कपाटाऽऽकारेण दर्शनात् कपाटत्वसिद्धिः । तृतीयसमये कार्मणकाययोगस्थः पूर्वपश्चिमयोर्दक्षिणोत्तरयोर्दिशोर्वा-ऽऽत्मप्रदेशानां प्रसारणेन लोकान्तप्रापि प्रतरं करोति । अथ च प्रतरमिति को-ऽर्थः ? प्रतरमिव प्रतरम् । अयमुपमार्थः—यथा घननिचितनिरन्तरप्रचिताऽवयवसंस्थितं परिवृत्तं स्थालकं स्फटकं वा लोके प्रतरं भण्यते, तथा समुद्घातकरणवशाद् निर्गतानामात्मप्रदेशानां प्रतरसंस्थानेनाऽवस्थानात् प्रतरत्वं सिध्यति । यदभिहितमावश्यकचूर्णौ—"अथ तृतीयसमये प्रतरं कुर्वन्ति, तत्सामायिकश्च कार्मणकाययोगो भवति । अथ प्रतरमिति कोऽर्थः ? प्रतरमिव प्रतरम् । क उपमानार्थः ? यथा-घननिचितावयवसंस्थितं परिवृत्तं स्थालकं स्फलकं वा लोके प्रतरमित्युच्यते, तथाऽऽकारमपरमपि [तथा आकाशमपि] परस्परप्रदेशासंसर्ग(ा)विच्छेदपरिवृत्तपर्यायेणा-ऽवस्थितं प्रतरमिति प्रसिद्धम् ।" इति । इदमेव प्रतरं कैश्चिदाचार्यै रुचकशब्देन व्यवह्रियते, यदाहुः श्रीतत्त्वार्थवृत्तिकाराः श्रीसिद्धसेनगणिपादाः—"दण्ड-कपाटक-रुचकक्रिया-जगत्पूरणं चतुःसमयम् ।" इति । अन्यैश्च मन्थानशब्देन व्यपदिश्यते, यदाहुः श्रीहरिभद्रसूरिपादाः—"तृतीयसमये तदेव कपाट दक्षिणोत्तरदिग्द्वयप्रसारणान्मन्थसदृशं मन्थानं करोति ।" इति ।

चतुर्थसमये कार्मणकाययोगस्थो लोकपूरणं करोति, प्रतरावस्थावामपूरितान्यवकाशान्तराणि पूरयित्वा केवली सर्वविश्वव्यापी भवति । इह जीवसमासवृत्तौ श्रीमलधारिहेमचन्द्रसूरिपादैराक्षेप-परिहाराभ्यां तृतीयसमये-ऽन्तराणामुद्धरणमित्थं दर्शितम्–"ननु लोकमध्ये स्थितो यदा केवली समुद्घातं करोति, तदा तृतीयेऽपि समये लोकः पूर्यत एव, किं चतुर्थसमयेऽन्तरपूरणेनेति, नैतदेवं, लोकस्य मध्यं हि मेरुमध्य एव सम्भवति, तत्र च प्रायः समुद्घातकर्तुः केवलिनोऽसम्भव एव, अन्यत्र च समुद्घातं कुर्वतोऽस्य तृतीयसमयेऽन्तराण्युद्धरन्त्येवेति परिभावनीयम् ।" इति ।

अथ समुद्घातकरणे दण्डादीनि कुर्वतो महात्मनो विधिविशेषं प्रदर्शयितुकाम आदौ तावत् प्रथमसमये प्रवर्तमानं विधिं भणति–'पढमसमये' इत्यादि, 'प्रथमसमये' समुद्घातकरणाऽद्धायाः प्रथमसमये 'बहुसंख्यभागमितान् प्रदेशान्' असंख्येयभागमात्रभागान् जीवप्रदेशान् स्वशरीरे परित्यज्य शेषान् बहुसंख्येयभागमितान् जीवप्रदेशान् बाहल्यतः स्वशरीरमान ऊर्ध्वमधश्च लोकान्तगामिनि चतुर्दशरज्ज्वायामे दण्डाकारे 'विस्तारयति' प्रसारयति । यदुक्तमावश्यकचूर्णौ "अथ दंडककरणे को विधिरिति प्रश्ने ब्रूमहे-इह व्यावहारिकनयवशात ये असंख्येया जीवप्रदेशाः, ते सर्वेऽपि बुद्ध्या असंख्येया भागाः कृताः, तत्र प्रथमसमये दण्डकाकाराणामसंख्येया भागा निर्गच्छन्ति, असंख्येयभागोऽवतिष्ठते, ततस्तैरेव असंख्येयैर्जीवप्रदेशभागैः स्वशरीरान्निर्गतैर्हि दंडकमभिनिर्वर्तयंतः अष्टौ जीवमध्यप्रदेशान् सांततिकपरस्परावियोगिनो रुचकसंस्थितान् चत्रिवैडूर्यपटलयोरुभयो रत्नाद्यवस्थायिषु रुचकसंस्थितलोकमध्यप्रविष्टाष्टाकाशप्रदेशेषु संस्थाप्य चतुर्दशरज्ज्वायतं दंडकं कुर्वन्तीति ।" न च कुतो जीवप्रदेशदण्डस्य स्वशरीरविष्कम्भबाहल्योपेतत्वमेव, न तु तन्न्यूनाऽतिरिक्तविष्कम्भबाहल्ययुक्तत्वमिति वाच्यम् , जीवस्या-ऽनुश्रेणिगमनस्वभावत्वात् । इहा-ऽनुश्रेणिगमनं नाम यास्वाकाशश्रेणिषु जीवोऽवगाढः, ता अपरित्यज्याऽऽत्मनो गमनम् ।

बहुसंख्येयभागमात्रजीवप्रदेशान् विस्तारयन्नपि दण्डावस्थायां लोका-ऽसंख्येयभागमात्रं क्षेत्रं व्याप्नोति, न त्वधिकम् ॥२३४॥ अथ दण्डं कुर्वतः स्थित्यनुभागयोर्विनाशं दर्शयति

ठिइसंतस्स असंखंसा ठिइखंडेण णासइ रसं तु ।
घायेइ बहुअणंतंसमितं अणुभागखंडेणं ॥२३५॥

स्थितिसत्त्वस्या-ऽसंख्यांशान् स्थितिखण्डेन नाशयति रसं तु ।
घातयति बह्वनन्तांशमितमनुभागखण्डेन ॥२३५॥ इति पदसंस्कार ।

'ठिइसंतस्स' इत्यादि, 'स्थितिसत्त्वस्य' वेदनीयादिकर्मणां स्थितिसत्तायाः 'असंख्यांशान्' असंख्येयभागान् स्थितिखण्डेन 'नाशयति' विघातयति, वेदनीयादिकर्मणां स्थितेरसंख्येयभागान् कृत्वैकमसंख्येयभागं तत्रैव विमुच्य बहुसंख्येयभागान् स्थितिखण्डेन घातयतीत्यर्थः ।

'रसं' इत्यादि, रसं त्वनुभागसत्त्वस्य बह्वनन्तांशमितमनुभागखण्डेन घातयति। इदमुक्तं भवति-अशुभकर्मणां सत्तागताऽनुभागस्याऽनन्तान् भागान् कृत्वैकानन्ततमभागप्रमितमनुभागं तत्रैव परित्यज्य बह्वनन्तभागमात्रमनुभागमनुभागखण्डेन विनाशयति। यदुक्तमावश्यकचूर्णौ-"तस्येदानीं मनुष्याऽवस्थायां या पल्योपमा-ऽसंख्येयभागमात्रा कर्मत्रयसत्के-कर्मस्थितिरवतिष्ठते, सा बुद्ध्या असंख्येयभागाः क्रियन्ते, ततः प्रथमसमये दंडक-कारक(ः)सत्कर्मस्थितेरसंख्येयान् भागान् हन्ति, असंख्येयभागोऽवतिष्ठते, यश्चामुष्यामवस्थायां कर्मत्रयानुभवः, स बुद्ध्या अनन्तभागाः क्रियन्ते, ततो-ऽसद्वेद्य-न्यग्रोध-सादि-कुब्ज-वामन-हुंडसंस्थान-वज्रनाराच-नाराचाऽर्धनाराच-कीलिका-ऽसंप्राप्तसृपाटिकासंहनना-ऽप्रशस्तवर्ण-गन्ध-रस-स्पर्शोपघाता-ऽप्रशस्तविहायोगत्यपर्याप्तकाऽस्थिराऽशुभ-दुर्भग-दुःस्वरा-ऽनादेया-ऽयशःकीर्त्ति-नीचैर्गोत्रसंज्ञिकानां पञ्चविंशतेरप्रशस्तानां प्रकृतीनां प्रथमसमये दंडककारका(को)ऽनुभवस्याऽनन्तान् भागान् हन्ति, अनन्तभागोऽवतिष्ठते।" इति

तथैव कषायप्राभृतचूर्ण्यामप्यशुभप्रकृतीनामनुभागघातो दर्शितः। अक्षराणि त्वेवम्-"पढमसमए दंडं करेदि। तम्हि ठिदीए असंखेज्जे भागे हणइ। सेसस्स च अणुभागस्स अप्पसत्थाणमणंते भागे हणादि।" इति।

आवश्यकचूर्णिकारादयस्तु प्रशस्तानामप्येकोनचत्वारिंशत्कर्मणामनुभागो-ऽप्रशस्तप्रकृत्यनुभागमध्ये प्रवेशेन घात्यत इति मन्यन्ते। तथा च तद्ग्रन्थः-"तत्सामयिकमेव सद्वेद्य-मनुष्य-देवगति-पञ्चेन्द्रियजात्यौदारिक-वैक्रियाऽऽहारक-तैजस-कार्मणशरीर-समचतुरस्र-संस्थानौदारिक-वैक्रियका-ऽऽहारकशरीराङ्गोपाङ्गवज्रर्षभनाराचसंहनन-प्रशस्तवर्ण-गन्ध-रस-स्पर्श - मनुष्यदेवगतिप्रायोग्या -ऽऽनुपूर्व्यगुरुलघु-पराघाता - ऽऽतपोद्योतो-च्छ्वास-प्रशस्तविहायोगति-त्रस-बादर-पर्याप्त-प्रत्येकशरीर-स्थिर-शुभ-सुभग-सुस्वराऽऽदेय - यशःकीर्त्ति-निर्माण - तीर्थकरोच्चैर्गोत्रसंज्ञिकानामेकोनचत्वारिंशतः प्रशस्तानामपि योऽनुभवः, तस्याऽप्रशस्तप्रकृत्यनुभवघाता-ऽनुप्रवेशेनैव घातनं ज्ञेयम्, समुद्घातमाहात्म्यमेतद्।" इति।

नन्वेकोनचत्वारिंशच्छुभप्रकृतिषु मध्य आतपोद्योतयोर्ग्रहणं व्यर्थम्, अनिवृत्तिकरणे तयोः क्षयस्यैकोनचत्वारिंशत्तमगाथया प्रतिपादितत्वादिति चेत्, उच्यते-कार्मग्रन्थिकाऽभिप्रायेण तत्र तयोः क्षीणत्वेऽप्यावश्यकनिर्युक्तिकाराद्यभिप्रायेण न तयोस्तत्र क्षयो जातः, तदभिप्रायकमिह तयोर्ग्रहणम्, न तु कार्मग्रन्थिका-ऽभिप्रायकम्। तेन तयोर्ग्रहणं न व्यर्थम्। पूर्वत्र तु पञ्चविंशत्यशुभप्रकृतिषु मध्येऽप्रशस्तविहायोगत्यपर्याप्तनामकर्मणोर्ग्रहणं कार्मग्रन्थिकाऽभिप्रायकम्, आवश्यकनिर्युक्तिकाराद्यभिप्रायेणाऽनिवृत्तिकरण एव तयोः

क्षयस्यैकोनचत्वारिंशत्तमगाथायाष्टीकायां दर्शितत्वात् । इत्थमेकत्रा-ऽऽतपोद्यतयोरन्यत्र चाऽप्रशस्तविहायोगत्यपर्याप्तनामकर्मणोर्ग्रहणेनावश्यकचूर्णिकृता मतद्वयं ज्ञापितमित्यस्माकं प्रतिभाति । तत्त्वं तु केवलिनो बहुश्रुता वा विदन्ति ।

स्थितिघातो रसघातश्च प्रतिसमयं भवति, न तु प्रत्यन्तर्मुहूर्तम् । एवं स्थितिघातरसघातौ तावद्वक्तव्यौ, यावत् समुद्घातस्य पञ्चमसमयः, कषायप्राभृतचूर्णिकारमतेन तु यावच्चतुर्थसमयः ॥२३५॥

अथ समुद्घातकरणस्य द्वितीयसमये कार्यविशेषं जिज्ञापयिषुराह

वीयसमये कवाडे वित्थारइ बहुअसंखभागमिआ ।
जीवपएसा ठिइघाओ रसघाओ य पुव्वव्व ॥२३६॥

द्वितीयसमये कपाटे विस्तारयति बह्वसंख्यभागमितान् ।
जीवप्रदेशान् स्थितिघातो रसघातश्च पूर्ववत् ॥२३६॥ इति पदसंस्कार ।

'वीयसमये' इत्यादि, 'द्वितीयसमये' समुद्घातस्य द्वितीयस्मिन् समये प्राङ्मुक्ताऽसंख्येयभागस्य बह्वसंख्यभागमितान् 'जीवप्रदेशान्' आत्मप्रदेशान् कपाटे विस्तारयति । इदमुक्तं भवति–दण्डं कुर्वता प्रथमसमये येऽसंख्येयभागमात्राः प्रदेशा विमुक्ताः, तेषामसंख्येयभागान् कृत्वैका-ऽसंख्येयतमभागं तत्रैव शरीरे परित्यज्य शेषान् बह्वसंख्येयभागमात्रानात्मप्रदेशान् निष्क्रमयति । तेन प्रथमसमये निष्क्रमितप्रदेशतो द्वितीयसमये निष्क्रम्यमाणप्रदेशा असंख्येयगुणहीना भवन्ति । तान्निष्क्रमितान् जीवप्रदेशान् पूर्वपश्चिमदिशोर्दक्षिणोत्तरदिशयोर्वा प्रसारयन् पार्श्वतो लोकान्तगामिनं कपाटं करोति । उक्तञ्चाऽऽवश्यकचूर्णौ–"अथ कपाटकरणे को विधिरिति प्रश्ने ब्रूमहे, अतः प्रथमसमयनिर्गतात्मप्रदेशसकाशात् योऽसंख्येयभागोऽवतिष्ठते इत्युक्तं, स बुद्धया पुनरपि असंख्येयान् भागान् गतः, ततो द्वितीयसमये कपाटकारकाणां असंख्येया भागा निष्क्रामंति, असंख्येयभागोऽवतिष्ठते, अनेकैरसंख्येयैर्भागैर्निर्गतैरेतैः कपाटकं कुर्वन्ति । तत्र ये निर्गतास्ते प्रथमसमयनिर्गतात्मप्रदेशसकाशात् असंख्येयगुणहीना असंख्येयभाग इत्यर्थः ।" इति ।

कपाटस्थोऽपि लोकस्याऽसंख्येयभागमात्रं क्षेत्रं व्याप्नोति, किन्तु दण्डस्थजीवस्य क्षेत्रतः कपाटस्थस्य क्षेत्रमसंख्येयगुणं भवति, दण्डबाहल्यतः कपाटबाहल्यस्याऽसंख्येयगुणत्वात् ।

अत्र प्रेरको भणति–ननु प्रथमसमयतो द्वितीयसमयेऽसंख्येयगुणं क्षेत्रमसंख्यगुणहीना जीवप्रदेशाः कथं व्याप्तुमर्हन्ति ? इति, उच्यते–द्वितीयसमये पूर्वपश्चिमदिशोर्दक्षिणोत्तरदिशयोर्वा यथा शरीरावच्छिन्नदण्डक्षेत्रतो जीवप्रदेशा विस्तृणन्ति तथा शरीराऽनवच्छिन्नदण्डक्षेत्रतोऽपि । तत्र तदानीं शरीरावच्छिन्नदण्डगता-ऽवगाहनातो निर्गत्य ये प्रदेशा पूर्वपश्चिमदिशोर्दक्षिणोत्तर-

दिशयोर्वा विस्तृणन्ति, ते प्रथमसमये स्वशरीरतो निर्गत्य दण्डाकारेण संस्थितेभ्यः प्रदेशेभ्योऽसंख्यातगुणहीना भवन्ति, यतः प्रथमसमये शरीरगतजीवप्रदेशानां बहुसंख्येयभागमात्रा दण्डात्मकक्षेत्रं व्याप्ताः, द्वितीयसमये तु प्रथमसमयमुक्तैका-ऽसंख्येयभागस्य बहुसंख्येयभागप्रमिता जीवप्रदेशा शरीरतो विनिर्गताः । किन्त्वनुश्रेणिगमनादुपर्यधश्च शरीरा-ऽनवच्छिन्नदण्डगताऽवगाहनातो-ऽपि निर्गत्य प्रदेशाः प्रभूतं कपाटक्षेत्रं व्याप्नुवन्ति, ते च प्रभूताः । इत्थं प्रथमसमयतो द्वितीयसमये शरीरतो निष्क्रम्यमाणानामपूर्वाणां जीवप्रदेशानामसंख्येयगुणहीनत्वेऽपि न विरुध्यतेऽसंख्येयगुणक्षेत्रस्य व्यापनम् । एवमग्रेऽपि ।

अथ कपाटं कुर्वतो महात्मनो स्थितिघातं रसघातं चाऽतिदिदिक्षुराह—'ठिइघाओ' इत्यादि, स्थितिघातो रसघातश्च पूर्ववद् भवतः । अयं भावः—प्रथमसमये या-ऽसंख्येयभागप्रमाणा स्थितिः परित्यक्ता, तस्या असंख्येयभागान् कृत्वैकमसंख्येयभागं सत्कर्मणि विमुच्य बहुसंख्येयभागान् विनाशयति कपाटस्य कारकः । तथा प्रथमसमये योऽनन्ततमभागप्रमाणोऽनुभागः सत्कर्मणि परित्यक्तः, तस्याऽनन्तभागान् कृत्वैकमनन्ततमभागं सत्कर्मणि परित्यज्य बह्वनन्तभागान् विनाशयति । न्यगादि चा-ऽऽवश्यकचूर्णौ—"अथ द्वितीयसमये कपाटकारकस्य स्थित्यनुभावघातने को विधिरिति प्रश्नेऽभिदध्महे प्रथमसमयघातितसत्कर्मस्थितेः सकाशात् योऽसंख्येयभागोऽवतिष्ठते इत्युक्तं असावपि बुद्ध्या पुनरसंख्येयभागाः क्रियन्ते, तस्य कपाटकारको-ऽप्यसंख्येयान् भागान् हन्ति, असंख्येयभागो-ऽवतिष्ठते, ततो-ऽनुभवस्यापि प्रथमसमयघातनानुभवसकाशात् योऽवशिष्टो-ऽनन्तोऽनुभवोऽवतिष्ठत इत्युक्तं, असावपि बुद्ध्या पुनरनन्तभागाः क्रियन्ते, तस्य कपाटकारोऽनन्तान् भागान् हन्ति, पुनरनन्तभागोऽवतिष्ठते ।" इति । तथैव कषायप्राभृतचूर्णावपि—"तदो विदियसमए कवाडं करेदि । तम्मि सेसिगाए ठिदीए असंखेज्जे भागे हणइ । सेसस्स च अणुभागस्स अप्पसत्थाणमणंते भागे हणइ ।" इति । आवश्यकचूर्णिकृदादयो महर्षयस्तु कपाटं कुर्वन् शुभप्रकृतीनामप्यनुभागमशुभप्रकृत्यनुभागघातना-ऽनुप्रवेशनेन घातयतीति मन्यन्ते । अक्षराणि त्वेवम्—"अयमपि चाऽप्रशस्तप्रकृत्यनुभवघातनानुप्रवेशनेनैव प्रशस्तप्रकृत्यनुभवघातनं करोतीति ज्ञेयम् ।" इति ॥ २३६ ॥

एतर्हि समुद्घातस्य तृतीयसमये प्रतरं कुर्वतः क्रियाविशेषं दर्शयति

तइयसमये बहुअसंखभागमेत्ता-ऽप्पणो पएसा य ।
वित्थारइ पयरे ठिइरसाण घाओ उ पुव्वव्व ॥२३७॥

अथ समुद्घातं प्रतिपन्नस्य चतुर्थसमये कार्यविशेषं व्याजिहीर्षुराह

वित्थारेइ चउत्थसमये बहुअसंखभागमिआ ।
जगपूरणे पएसा ठिइरसघाओ उ पुव्वव्व ॥२३८॥ (उपगीतिः)

विस्तारयति चतुर्थसमये बह्वसंख्येयभागमितान् ।
जगत्पूरणे प्रदेशान् स्थितिरसघातस्तु पूर्ववद् ॥२३८॥ इति पदसंस्कारः ।

'वित्थारेइ' इत्यादि, तत्र 'चतुर्थसमये' समुद्घातस्य चतुर्थसमये बह्वसंख्येयभागमितान् 'प्रदेशान्' जीवप्रदेशान् जगत्पूरणे विस्तारयति, तृतीयसमयोद्धरितावकाशान्तरेषु स्वात्मप्रदेशान् प्रसार्य निखिलं लोकं स्वात्मप्रदेशैः पूरयतीत्यर्थः, तदानीमेकैकजीवप्रदेश एकैका-ऽऽकाशप्रदेशमवगाह्य तिष्ठति । भावार्थः पुनरयम्–प्रतरं कुर्वता ये-ऽसंख्येयभागमात्रप्रदेशाः स्वशरीरे परित्यक्ताः, तेषामसंख्येयभागान् कृत्वैका-ऽसंख्येयभागगतान् स्वशरीरावगाहनीया-ऽवकाशप्रमाणान् जीवप्रदेशान् तत्रैव शरीरे स्थाप्य शेषान् बह्वसंख्येयभागप्रमितान् जीवप्रदेशान् निष्क्रम्य तृतीयसमयोद्धरितावकाशान्तराणि पूरयति । इत्थं समुद्घातकरणस्य चतुर्थसमये केवली भगवान् निखिललोकव्यापी भवति । यदभिहितम् आवश्यकचूर्णौ–"**ततस्तृतीयसमयनिर्गतात्मप्रदेशसकाशात् यो-ऽसंख्येयभागोऽवतिष्ठते इत्युक्तम्, असावपि बुद्ध्या पुनरप्यसंख्येया भागाः क्रियन्ते, ततश्चतुर्थसमये लोकपूरकाणामसंख्येयभागा निष्क्रामन्ति, असंख्येयभागोऽवतिष्ठते, ततस्तैरसंख्येयभागैर्निष्क्रान्तैरेते लोकनिष्कुटान् पूरयंति, तत्र ये निष्क्रान्तास्ते तृतीयसमयनिष्क्रान्तात्मप्रदेशसकाशादसंख्येयगुणहीनाः, यश्चाऽधुना-ऽसंख्येयभागोऽवतिष्ठते-ऽसौ स्वशरीरावगाह्यावकाशप्रमाण इति ।**"

'ठिइरस०' इत्यादि, 'स्थितिरसघातस्तु' समुद्घातकरणस्य चतुर्थसमये स्थितिघातो रसघातश्च पूर्ववद् भवति, तुर्वाक्यभेदे । अयमत्राशयः-तृतीयसमये परित्यक्तैका-ऽसंख्येयभागप्रमाणस्थितेरसंख्येयभागान् कृत्वैकमसंख्येयभागं सत्कर्मणि प्रतिष्ठाप्य तदानीं शेषानसंख्येयभागान् घातयति, तथा तृतीयसमये सत्कर्मणि मुक्ता-ऽनुभागस्या-ऽनन्तभागान् कृत्वैकमनन्ततमभागं सत्कर्मणि विहाय चतुर्थसमये शेषाननन्तान् भागान् घातयति, यन्निगदितम् आवश्यकचूर्णौ–"**अथ चतुर्थसमये लोकपूरकस्य स्थित्यनुभागघातने को विधिः? इत्यभिलपामः-ततस्तृतीयसमयघातितसत्कर्मस्थितेः सकाशाद् यो-ऽवशिष्टो-ऽसंख्येयभागो-ऽवतिष्ठते इत्युक्तम्, असावपि बुद्ध्या पुनरसंख्येयभागाः क्रियन्ते, तस्य लोकपूरको-ऽसंख्येयान् भागान्हन्ति, असंख्येयभागो-ऽवतिष्ठते। ततोऽनुभवस्याऽपि तृतीयसमयघातितानुभवसकाशात् योऽवशिष्टोऽनन्तोऽनुभवोऽवतिष्ठते इत्युक्तं असावपि बुद्ध्या पुनरनन्तभागाः क्रियन्ते, तस्य लोकपूरकोऽनन्तान् भागान् हन्ति, अनन्तभागोऽवतिष्ठते ।**" इति ।

अत्रा-ऽपि प्रशस्तप्रकृतीनामनुभागमप्रशस्तप्रकृत्यनुभागघातना-ऽनुप्रवेशेन घातयतीति मन्यन्त आवश्यकचूर्णिकारादयः। तथा चाऽत्र आवश्यकचूर्णिः—"अयमपि च अप्रशस्तप्रकृत्यनुभवघातना-ऽनुप्रवेशनेन प्रशस्तप्रकृत्यनुभवघातनं करोतीति ज्ञेयम्।" इति। कषायप्राभृतचूर्णौ लोके पूर्णे योगस्यैकवर्गणा भवति, तेन सर्वात्मप्रदेशेषु योगस्तुल्यो भवतीत्युक्तम्। तथा चाऽत्र कषायप्राभृतचूर्णिः—"लोगे पुण्णे एक्का वग्गणा जोगस्स त्ति समजोगो त्ति णायव्वो।" इति। अयं भावः—समुद्घातस्य चतुर्थसमये लोकप्रमाणनिखिलात्मप्रदेशेषु योगाऽविभागास्तुल्या भवन्ति, न त्वेकोत्तरवृद्ध्या वर्गणारूपेण तिष्ठन्ति, तेन स्पर्धकान्यपि न भवन्ति। इत्थं सर्वात्मप्रदेशेषु योगाऽविभागानां तुल्यत्वाद् एकैव वर्गणा भवति, ततो योगः सर्वत्र समानो भवति। यदा पञ्चमसमये लोकपूरणमुपसंहृत्य प्रतरं करोति, तदा पुनरेकोत्तरवृद्ध्या योगाऽविभागा वर्गणारूपेण प्रादुर्भवन्ति, योगस्पर्धकानि लभ्यन्त इत्यर्थः। इत्थं पुनरात्मप्रदेशेषु योगो विषमो भवति ॥२३८॥

अथ लोकपूरणा-ऽवस्थायां स्थितिसत्त्वं जगत्पूरणादीनाञ्च संहरणं व्याजिहीर्षुराह

तइयाईणं अंतोमुहुत्तमेत्ता ठिई उ आउत्तो।
संखगुणा तत्तो संहरए जगपूरणाईणि ॥२३९॥

तृतीयादीनामन्तर्मुहूर्तमात्री स्थितिस्तु आयुष्टः।
सङ्ख्यगुणा ततः संहरति जगत्पूरणादीनि ॥२३९॥ इति पदसंस्कारः।

'तइयाईणं' इत्यादि, 'तृतीयादीनां' नाम-गोत्र-वेदनीयानां स्थितिरन्तर्मुहूर्तमात्रा भवतीति शेषः, तुः पुनरर्थे भिन्नक्रमश्च, 'आयुष्टः' आयुष्कस्थितितः पुनः संख्यगुणा भवति, अत्राप्यायुषा सह समाना न जातेत्यर्थः। उक्तं च कषायप्राभृतचूर्णौ—"लोगे पुण्णे अंतोमुहुत्तं ठिदिं ठवेति, संखेज्जगुणमाउआदो।" इति। 卐तथैवा-ऽऽवश्यकचूर्णावपि—"एवं पूर्णलोकस्य कर्मत्रयसत्कर्म आयुषः सकाशात् संख्येयगुणं जातं अनुभवोऽनन्तः।" इति।

अथ विस्तारितानात्मप्रदेशान् पञ्चमसमयात्प्रभृति प्रतिलोमं संकोचयतीत्येतदभिधित्सुराह—'तत्तो' इत्यादि, 'ततः' समुद्घातस्य चतुर्थसमयात् परं 'जगत्पूरणादीनि' जगत्पूरण-प्रतर-कपाट-दण्डरूपाणि 'संहरति' यथोक्तक्रमात् प्रतिलोममुपसंहरति। एतदुक्तं भवति समुद्घातगतो

卐 धवलाकारास्तु महावाचकाऽऽर्यनन्दीनामभिप्रायेणा-ऽऽयुष्कत शेषकर्माणि सख्येयगुणानि भवन्ति समुद्घातचतुर्थसमये, आर्यमङ्क्षूणामभिप्रायेण पुनरायुष्कतुल्यस्थितिकानि भवन्तीति वदन्ति। अक्षराणि त्वेवम्—"महावाचयाणमज्जमखुसमणाणमुवदेसेण लोगे पुण्णे आउसमं करेदि। महावाचयाणमज्जणंदीणं उवदेसेण अंतोमुहुत्तं ट्ठवेदि संखेज्जगुणमाउआदो।" इति।

तृतीयसमये बह्वसंख्येयभागमात्रानात्मन प्रदेशांश्च ।
विस्तारयति प्रतरे स्थितिरसयोर्वातस्तु पूर्ववत् ॥२३७॥ इति पञ्चसंस्कार. ।

'तइय०' इत्यादि, 'तृतीयसमये' समुद्घातस्य तृतीयसमये बह्वसंख्येयभागमात्रान् 'आत्मनः' जीवस्य प्रदेशान् दक्षिणोत्तरदिशयोः पूर्वापरदिशोर्वा विस्तारयति, चकारः पादपूरणे । इदमुक्तं भवति-कपाटं कुर्वता द्वितीयसमये येऽसंख्येयभागमात्राः स्वशरीरे प्रदेशाः परित्यक्ताः, तेषामसंख्येयभागान् कृत्वैकाऽसंख्येयभागं तत्रैव शरीरे विमुच्य शेषान् बह्वसंख्येयभागान् निष्क्रमयति, ते च निष्क्रमिताः प्रदेशा द्वितीयसमयनिष्क्रमितप्रदेशतोऽसंख्येयगुणहीना भवन्ति । तान् निष्क्रमितान् जीवप्रदेशान् दक्षिणोत्तरदिशयोः प्राक्प्रत्यग्दिशोर्वा प्रसारयन् द्वितीयसमयकृतकपाटं लोकान्तप्रापि प्रतरं करोति, अवकाशान्तराणि तूद्धरन्ति । उक्तं चाऽऽवश्यकचूर्णौ-"अथ तृतीयसमये प्रतरपूरकाणां को विधिरिति प्रश्ने प्रतिब्रूमहे, ततो द्वितीयसमये निर्गतात्मप्रदेशसकाशात् योऽसंख्येयभागोऽवतिष्ठते इत्युक्तं असावपि बुद्ध्या पुनरसंख्येयभागाः कृताः, ततस्तृतीयसमये प्रतरकारकाणामसंख्येयभागा निष्क्रामन्ति, असंख्येयभागोऽवतिष्ठते, तैरसंख्येयैर्भागैर्निर्गतैरेतैः प्रतरं पूरयंति । तत्र ये निष्क्रान्तास्ते द्वितीयसमयनिष्क्रान्तात्मप्रदेशसकाशादसंख्येयगुणहीनाः ।" इति । तृतीयसमये प्रतराकारेण जीवप्रदेशान् विस्तारयन् भगवान् लोकस्य बह्वसंख्येयभागान् स्पृशति, यतोऽवकाशान्तराणामपूरितत्वादसंख्येयभागो न स्पृश्यते । उक्तञ्चाऽऽवश्यकवृत्तौ-"तृतीयसमये तदेव कपाटं दक्षिणोत्तरं पूर्वापरं वा दिग्द्वयप्रसारणात् मथिसदृशं मन्थानं लोकान्तप्रापिणमारचयति, एवं च प्रायो लोकस्य बहु पूरितं भवति, मन्थान्तराण्यपूरितानि जीवप्रदेशानामनुश्रेणिगमनात् ।" इति । एवं प्रज्ञापनावृत्तावपि ।

न च प्रमाणतयोपन्यस्तग्रन्थे मन्थानकारकस्य लोकबह्वसङ्ख्यभागमात्रं क्षेत्रं प्रतिपादितम्, न तु प्रतरकारकस्येति वाच्यम्, शब्दभेदेन भेदेऽप्यर्थभेदेन भेदाऽभावात् । न चाऽस्तीहाऽर्थभेदेन भेदे किञ्चित् प्रमाणम् । न च स्वदेहप्रमाणबाहल्यादखण्डदण्डावच्छिन्नरूपात् कपाटमध्यभागादेव कपाटस्य मन्थानीकरणम्, न त्वखण्डस्य कपाटस्य । एवञ्च लोकान्तगामी पूर्वापरविस्तीर्णो दक्षिणोत्तरविस्तीर्णो वैकः कपाटः, इतरस्तु दक्षिणोत्तरविस्तीर्णः पूर्वापरविस्तीर्णो वा । इत्थं कपाटद्वयात्मक एव मन्थानः । ततश्च तृतीयसमयेऽवकाशान्तराण्यप्युद्धरन्ति, चतुर्थसमये तु तत्पूरणं भवति । एवमष्टसामयिकत्ववचनमपि न विरुध्यत इत्यस्त्यर्थभेदेन भेदे प्रमाणमिति वाच्यम्, एतादृशमन्थानार्थाऽभ्युपगमे मथिकरणावस्थायां स्नातकस्य लोकाऽसंख्येयभागप्रमाणावगाहनाप्रसङ्गेन व्याख्याप्रज्ञप्तिवृत्तिग्रन्थोक्तवचनेन सह विरोधोद्भवात् । तथाहि- भवदभिप्रायेण मन्थानकरणकाले स्नातकस्यावगाहना लोकाऽसंख्येयभागमात्री स्यात्, लोकाऽसंख्ये-

यमागऽयमात्राऽवगाहनाया अपि लोकाऽसंख्येयभागमात्रत्वात् । ततश्च व्याख्याप्रज्ञप्तिवृत्तौ श्रीमदभयदेवसूरिपादैः "असंखेज्जेसु भागेसु होज्जत्ति मथिकरणकाले बहोर्लोकस्य व्याप्तत्वेन स्तोकस्य चाऽव्याप्ततयोक्तत्वाल्लोकस्याऽसंख्येयेषु भागेषु स्नातको वर्तते ।" इति यदुक्तम् , तेन सह विरोधः स्यात् । तत ऊर्ध्वमधश्च लोकान्तगामिनस्तथा पूर्वापरदिशोर्दक्षिणोत्तरयोर्वा लोकान्तप्राप्तस्याऽखण्डस्य कपाटस्य तृतीयसमये मन्थानीकरणमभ्युपगन्तव्यम् । एवं च सुविव्यक्त्यैव स्नातकस्य मथिकरणकाले लोकबह्वसंख्येयभागमभागाऽवगाहना, जीवप्रदेशानामनुश्रेणिगमनेन बहोर्लोकस्य पूरितत्वाद्वक्राग्रान्तराणां चाऽपूरितत्वात् । किञ्च प्रतरमेव केचिद् मन्थानं प्राहुरन्ये तु रुचकमिति प्राग् दर्शितम् । तदेवं शब्दभेदेऽपि नास्तीहाऽर्थभेदः । ननु स्यादेवम् , किन्तु मन्थानमिव मन्थानं करोतीति तत्र तत्र प्रतिपाद्यते, तर्हि तत्र क उपमार्थो घटते, न ह्यखण्डकपाटाद् मन्थाने क्रियमाणे मन्थानाऽऽकृतिः सम्पद्यते ? इति चेत्, उच्यते-मथ्यतेऽनेनेति मन्थानः, "संस्तुस्पृशि०" (उणादि०२७६) इति सूत्रेण मन्थिधातोरानप्रत्ययः, यथा मन्थानेन दधिवनावस्था प्रच्याव्यते, तथा समुद्घाततृतीयसमयतत्कावस्थाविशेषेणाऽघातित्रयस्य स्थिति-रसौ ह्रास्येते । तदेवं घटत उपमार्थ इत्यस्माकं मतिः । तत्त्वं तु केवलिनो बहुश्रुता वा जानन्ति ।

अथ प्रतरं कुर्वतः स्थितिघातं रसघातं चाऽतिदिशति–'ठिइ०' इत्यादि, स्थितिरसयोर्घातस्तु पूर्ववज्ज्ञातव्य इति शेषः, तुर्वाक्यभेदे । इदमुक्तं भवति–समुद्घातकरणस्य द्वितीयसमये या स्थितिर्विमुक्ता, तस्या असंख्येयभागान् कृत्वैकाऽसंख्येयभागं सत्कर्मणि विहाय बह्वसंख्येयभागान् विनाशयति प्रतरं निर्वर्तयन् , तथा सत्कर्मणि द्वितीयसमये परित्यक्ताऽनुभागस्याऽनन्तान् भागान् कृत्वैकमनन्ततमभागं सत्कर्मणि विमुच्य शेषाननन्तान् भागान् विघातयति । यथाह चाऽऽवश्यकचूर्णौ–"अथ तृतीयसमये प्रतरपूरकस्य स्थित्यनुभवघातने को विधिरिति प्रश्नेऽभिसंवादोयते, ततो द्वितीयसमयघातितसत्कर्मस्थितेः सकाशात् योऽसंख्येयभागोऽवशिष्टो–ऽवतिष्ठत इत्युक्तं, असावपि बुद्ध्या पुनरसंख्येयभागाः क्रियन्ते, तस्य प्रतरपूरकोऽसंख्येयान् भागान् हन्ति, असंख्येयभागो-ऽवतिष्ठते, ततो-ऽनुभवस्याऽपि द्वितीयसमयघातितानुभवसकाशात् यो-ऽवशिष्टो-ऽनन्तो-ऽनुभवो-ऽवतिष्ठते इत्युक्तं, असावपि बुद्ध्या पुनरनन्तभागाः क्रियन्ते, तस्य प्रतरपूरको-ऽनन्तभागान् हन्ति, अनन्तभागो-ऽवतिष्ठते । इति । तथैव कषायप्राभृतचूर्णावपि– "तदो तदियसमए मंथं करेदि, ठिदिअणुभागे तहेव णिज्जरयदि ।" इति ।

आवश्यकचूर्णिकारादीनामभिप्रायेण तदानीं प्रशस्तप्रकृत्यनुभागस्याऽप्यप्रशस्तप्रकृत्यनुभागघातनाऽनुप्रवेशेन घातनं भवति, यदुक्तमावश्यकचूर्णौ "अयमपि चाऽप्रशस्तप्रकृत्यनुभवघातनानुप्रवेशनेनैव प्रशस्तप्रकृत्यनुभागघातनं करोतीति ज्ञेयम्" इति ॥२३७॥

जीवः समुद्घातस्य पञ्चमसमयेऽन्तराणां प्रदेशान् संहृत्य प्रतरे तिष्ठति, षष्ठे समये प्रतरस्थः प्रदेशान् संहृत्य कपाटे वर्तते, सप्तमसमये कपाटं संकोच्य दण्डे तिष्ठति, अष्टमसमये तु दण्डं संहृत्य स्वशरीरस्थो भवति , यदुक्तं वाचकमुख्यैः

"दण्डं प्रथमे समये कपाटमथ चोत्तरे तथा समये ।
मन्थानमथ तृतीये लोकव्यापी चतुर्थे तु ॥१॥
संहरति पञ्चमे त्वन्तराणि मन्थानमथ पुनः षष्ठे ।
सप्तमके तु कपाटं संहरति ततोऽष्टमे दण्डम् ॥२॥" इति ॥२३९॥

अथ समुद्घातस्य पञ्चमादिसमयेषु क्रियाविशेषं प्रतिपिपादयिषुरादौ तावत् पञ्चमसमयभाविनं क्रियाविशेषं प्रतिपादयति

पंचमसमये पयरे ठान्तो बहुसंखभागपमियठिइं ।
नासइ रसं तु रससंतस्स बहुअणंतभागमियं ॥२४०॥

पञ्चमसमये प्रतरे तिष्ठन् बहुसंख्यभागप्रमितस्थितिम् ।
नाशयति रसं तु रससत्त्वस्य बह्वनन्तभागमितम् ॥२४०॥ इति पदसंस्कारः ।

'पंचम०' इत्यादि, 'पञ्चमसमये' समुद्घातस्य पञ्चमसमये 'प्रतरे' जगत्पूरणं संहृत्य प्रतरे तिष्ठन् केवलिभगवान् 'बहुसंख्यभागप्रमितस्थितिं' स्थितिसत्ताया बहून् संख्येयभागान् 'नाशयति' विघातयति, 'रसम्' अनुभागं 'तु' तुः पुनरर्थे, रससत्त्वस्य बह्वनन्तभागमितं नाशयति, काकाक्षिगोलकन्यायेन 'नासइ' इति पदस्या-ऽत्राऽपि योजनात् । अयं भावः-चतुर्थसमये परित्यक्तस्य स्थितिसत्कर्मणः संख्येयभागान् कृत्वा पञ्चमसमये प्रतरस्थ एकं संख्येयभागं सत्कर्मण्यवस्थाप्य शेषान् संख्येयान् भागान् विनाशयति, तथा प्राङ्मुक्तस्या-ऽनुभागस्या-ऽनन्तान् भागान् कृत्वैकमनन्ततमभागं सत्कर्मण्यवस्थाप्य शेषान् बहूननन्तभागान् विनाशयति, यदभिहितम् आवश्यकचूर्णौ "अतश्चतुर्थसमयघातितस्थितिसत्कर्मणः सकाशात् या असंख्येयभागप्रमाणाऽवशिष्टा स्थितिरवतिष्ठत इत्युक्तं, सा बुद्ध्या संख्येया भागाः क्रियन्ते । पंचमसमये प्रतरस्थः संख्येयान् भागान् हन्ति, संख्येयभागोऽवतिष्ठते, चतुर्थसमयघातिताऽनुभवसकाशात् अनन्तोऽवशिष्टो-ऽनुभवो-ऽवतिष्ठते इत्युक्तं असावपि बुद्ध्या अनन्ता भागाः क्रियन्ते, तस्य पंचमसमये प्रतरस्थो-ऽनन्तान् भागान् हन्ति, अनन्तभागोऽवतिष्ठते ।" इति ॥२४०॥

अधुना समुद्घाताद्धायाः षष्ठे समये कार्यविशेषं प्रतिपादयति

छट्ठखणे ठान्तो उ कवाडगा ठिइं रसं य पुव्वव्व ।
नासइ ठिइरसघायद्धा खलु अंतोमुहुत्तमिआ ॥२४१॥

षष्ठक्षणे तिष्ठंस्तु कपाटे स्थितिं रसं च पूर्ववत्।
नाशयति स्थितिरसघाताद्धा खल्वन्तर्मुहूर्तमिता ॥२४१॥ इति पदसंस्कारः।

'छट्ठक्खणे' इत्यादि, 'षष्ठक्षणे' समुद्घातकरणस्य षष्ठे समये 'कपाटे' अन्तरं संक्षिप्य कपाटे तिष्ठंस्तु स्थितिं रसं च पूर्ववद् नाशयति। प्रागेकसामयिकी स्थितिघाताद्धा रसघाताद्धा चाऽऽसीत्, अतः प्रभृति यो विशेषः, तं दर्शयति—'ठिइ०' इत्यादि, अद्धापदस्य प्रत्येकं सम्बन्धात् स्थितिघाताद्धा रसघाताद्धा च 'खलु' निश्चयेन 'अन्तर्मुहूर्तमिता' अन्तर्मुहूर्तप्रमाणा भवति, न तु सामयिकी। अयमस्य भावः—पञ्चमे समये सत्कर्मणि स्थापितस्थितेः संख्येयान् भागान् कृत्वा षष्ठे समये कपाटस्थ एकं संख्येयभागं तत्रैव विमुच्य शेषान् संख्येयान् भागान् घातयितुमुपक्रमते, तेभ्यः प्रतिसमयं कतिपयं दलमुत्किरति, अन्तर्मुहूर्ते पूर्णे तु संख्यातभागाः निःशेषतो घात्यन्ते, तेन सप्तमादिसमयेष्वभिनवस्थितिं घातयितुं न गृह्णाति, किन्तु प्राग् गृहीतामेव दलिकोत्किरणेन घातयति। तथा पञ्चमसमये भुक्ता-ऽनुभागस्याऽनन्तान् भागान् कृत्वा षष्ठे समये कपाटस्थ एकमनन्ततमभागं सत्कर्मण्येव निधाय शेषाननन्तान् भागान् घातयितुमुपक्रमते, अन्तर्मुहूर्तकालेन निरशेषतो विनाशयति, प्राक्तनेषु पञ्चसु समयेषु तु स्थितिघाताद्धा रसघाताद्धा चैकसामयिकी समासीत्। उक्तं चाऽऽवश्यकचूर्णौ—"एषु दण्डकादिषु पंचसु समयेषु सामायिकं कण्डकमुत्कीर्णमितिकृत्वा समये समये स्थित्यनुभवघातो ज्ञेयः। अथ किमिदं कण्डकमिति प्रश्ने ब्रूमहे-कण्डकमिव कण्डकं, कः उपमार्थः? यथा लोके नरोः खण्डभागाः अंशाः कण्डकमित्यभिधीयते, तथा कर्मतरोरपि खण्डं कण्डकमिति सिद्धं, अतः परं षष्ठसमयादारभ्य स्थितिकण्डकमनुभागकण्डकं वा अन्तर्मुहूर्तकमुत्किरति। कण्डकं यतः किरति-क्षिपति-विनाशयतीत्यर्थः।" इति।

कषायप्राभृतचूर्णिकाराणामभिप्रायेण दण्डादीनि कुर्वतः समयचतुष्टये स्थितिघातकालोऽनुभागघातकालश्चैकसामयिकः, पञ्चमसमयात्प्रभृति त्वान्तर्मौहूर्तिकः। तथा च तद्ग्रन्थः—"एदेसु चदुसु समएसु अप्पसत्थकम्मंसाणमणुभागस्स अणुसमयओवट्टणा, एगसमइओ ठिदिखंडयस्स घादो। एत्तो सेसिगाए ठिदीए संखेज्जे भागे हणइ। सेसस्स अणुभागस्स अणंते भागे हणइ। एत्तो पाए ठिदिखंडयस्स अणुभागखंडयस्स च अंतोमुहुत्तिया उक्कीरणद्धा।" इति। तत्त्वं तु केवलिनो बहुश्रुता वा विदन्ति ॥२४१॥

इदानीं सप्तमसमये-ऽष्टमसमये चाऽवस्थाविशेषं समुद्घातसमयाष्टके च योगं चिन्तयति

सत्तमसमये दंडे ठाअइ अट्ठमखणे सरीरत्थो।
पढमट्ठमसमयेसुं जोगो ओरालिओ होइ ॥२४२॥
सत्तम-छट्ठ-बिइयसमयेसुं मिस्सो य कम्मणो जोगो।
तइय-तुरिय-पंचमसमयेसु निरुम्भेइ तो जोगं ॥२४३॥

सप्तमसमये दण्डे तिष्ठत्यष्टमक्षणे शरीरस्थः ।
प्रथमाऽष्टमसमययोर्योग औदारिको भवति ॥२४२॥
सप्तम-षष्ठ-द्वितीयसमयेषु मिश्रश्च कार्मणो योगः ।
तृतीय-तुरिय-पञ्चमसमयेषु निरुणद्धि ततो योगम् ॥२४३॥ इति पदसंस्कारः ।

'सत्तम०' इत्यादि, 'सप्तमसमये' समुद्घातस्य सप्तमसमये 'दण्डे' कपाटं संहृत्य दण्डे तिष्ठति, दण्डस्थस्य महात्मनः स्थितिघातोऽनुभागघातश्च पूर्वारब्धौ एव प्रवर्तेते, तयोरद्धाया आन्तर्मौहूर्तिकत्वात् ।

'अट्ठम०' इत्यादि, तत्र 'अष्टमक्षणे' समुद्घातस्या-ऽष्टमे समये 'शरीरस्थः' स्वशरीरप्रविष्टा-ऽऽत्मप्रदेशको भवतीति शेषः । अत्रा-ऽपि स्थितिघातोऽनुभागघातश्च पूर्वारब्धौ एव प्रवर्तेते । अन्तर्मुहूर्ते पूर्णे स्थितिघातोऽनुभागघातश्च पूर्णौ भवतः । ततः पुनरन्यत्स्थितिखण्डमनुभागखण्डं च घातयितुमुपक्रमते । तच्चा-ऽन्तर्मुहूर्तकालेन निःशेषतो विनाशयति । एवमान्तर्मौहूर्तिकः स्थितिघातकालोऽनुभागघातकालश्च तावदवगन्तव्यौ, यावत् सयोगिगुणस्थानकचरमसमयः । तावति कालेऽमूनि सर्वाणि स्थितिखण्डान्यनुभागखण्डानि च संख्येयानि व्यतिक्रामन्ति, यदभिहितम् आवश्यकचूर्णौ—"तदनेन विधिना-ऽन्तर्मुहूर्तपूरणाचरमसमयाऽनन्तरमेव कृत्स्नं कण्डकं उत्कीर्णमित्यवसेयं उत्कीर्णं नष्टमित्यर्थः । एवं प्रतिसमयम-न्तर्मुहूर्तिकः स्थित्यनुभवकण्डकघातको ज्ञेयः तावद्यावत् सयोगिनोऽन्त्यसमय इति । एवमेतानि सर्वाण्यपि संख्येयानि स्थित्यनुभवकण्डकानि ज्ञेयानि ।" इति ।

तावत्काले सर्वाण्यमूनि स्थितिकण्डकान्यनुभागकण्डकानि चा-ऽसंख्येयानि व्यतिक्रामन्तीति ग्रन्थान्तरे दृश्यते, तथा चात्र श्रीमलयगिरीया-ऽऽवश्यकवृत्तिः—"अतः परं षष्ठसमयादारभ्य स्थितिकण्डकमनुभागकण्डकं चाऽन्तर्मुहूर्तेन कालेन विनाशयति, षष्ठादिषु च समयेषु कण्डकस्य प्रतिसमयमेकैकं शकलं तावदुत्किरति, यावदन्तर्मुहूर्तचरमसमये सकलमपि तत्कण्डकमुत्कीर्णं भवति । एवमन्तर्मुहूर्तिकानि स्थितिकण्डकान्यनुभागकण्डकानि च घातयन् तावद्वेदितव्यः, यावत्सयोग्यवस्थाचरमसमयः । सर्वाण्यपि चामूनि स्थित्यनुभागकण्डकान्यसंख्येयान्यवगन्तव्यानि" इति । तत् त्वशुद्धं प्रतिभाति, स्थितिखण्डस्या-ऽऽवलिका-ऽसंख्येयभागमात्रत्वस्वीकारप्रसङ्गात् । कथम् ? इति चेद्, उच्यते—समुद्घातचतुर्थसमये वेदनीयादीनां कर्मणां स्थितिसत्त्वमायुष्कस्थितिसत्कर्मतः संख्येयगुणं जायते । तच्च दर्शितमेकोनचत्वारिंशदधिकद्विशततमगाथया । आयुष्कस्थितिसत्कर्म त्वन्तर्मुहूर्तप्रमाणं भवति, अन्तर्मुहूर्तमात्र आयुषि शेषे समुद्घातारम्भात् । तेन वेदनीयादीनां स्थितिसत्कर्म समुद्घातपञ्चमादिसमयेषु संख्येयावलिकातोऽधिकं न भवति । यदि समुद्घातभवनात् परमसंख्येयानि स्थितिखण्डानि व्यतिक्रमेयुः, तर्हि संख्येयावलि-

कानामसंख्येयैर्विभजनादेकस्थितिखण्डमावलिकाऽसंख्येयभागमात्रं स्यात् । तस्मात् संख्येयस्थिति-खण्डानि व्यतिक्रामन्तीत्यावश्यकचूर्णिकारादीनां वचनं न्याय्यं प्रतीयते । एवमनुभाग-खण्डान्यपि संख्येयानि प्रकारान्तरेण साधयितव्यानि ।

अथ समुद्घातावस्थायां योगश्चिन्त्यते न तावद् मनोयोगो वाग्योगो वा संभवति, प्रयोजना-ऽभावात् । उक्तं च धर्मसारप्रकरणे "मनोवचसी तु तदा न व्यापारयति, प्रयोजना-ऽभावात् ।" इति । तथैव आवश्यकचूर्ण्यामपि "तत्थ समुग्घातस्स मणवइजोगो णत्थि ।" इति । काययोगो-ऽप्यौदारिकादिर्ना-ऽवस्थितः सर्वेषु समयेषु, किं तर्हि ? इत्याह 'पढम०' इत्यादि, 'प्रथमाष्टमसमययोः' समुद्घातस्य प्रथमसमये-ऽष्टमसमये च 'योग औदा-रिकः' औदारिककाययोगो भवति ।

'सत्तम०' इत्यादि, 'सप्तम-षष्ठ-द्वितीयसमयेषु' समुद्घातप्रतिपन्नस्य सप्तमसमये षष्ठसमये द्वितीयसमये च 'मिश्रः' औदारिकमिश्रकाययोगो भवति । चकारः समुच्चये, स चोत्तरत्र योज्यः । 'कम्मणो' इत्यादि, तत्र 'तृतीय-तुरिय-पञ्चमसमयेषु' समुद्घातं गतस्य जीवस्य तृतीयस-मये चतुर्थसमये पञ्चमसमये च 'कार्मणो योगः' कार्मणकाययोगो भवति, बहिरेवौदारिकाद् बहुतरव्या-पारभावेन कार्मणकाययोगमात्रचेष्टनात् । कार्मणकाययोगी च नियमतोऽनाहारको भवति । तेन तृतीय-चतुर्थ-पञ्चमसमयेषु समुद्घातगतो नियमतो-ऽनाहारको भवति । उक्तञ्चोमास्वातिपादैः—

"औदारिकप्रयोक्ता प्रथमाष्टमसमययोरसाविष्टः ।
मिश्रौदारिकयोक्ता सप्तम-षष्ठ-द्वितीयेषु ॥१॥
कार्मणशरीरयोगी चतुर्थके पञ्चमे तृतीये च ।
समयत्रयेऽपि तस्मिन् भवत्यनाहारको नियमात् ॥२॥" इति ।

एवं भाष्यकृद्भिरपि

"न किर समुग्घायगओ मणवइजोगप्पओयणं कुणइ ।
ओरालियजोगं पुण जुंजइ पढमट्ठमे समए ॥१॥
उभयव्वावाराओ तम्मीसं बीय-छट्ठ-सत्तमए ।
ति-चउत्थ-पंचमे कम्मयं तु तम्मत्तचेट्ठाओ ॥२॥" इति

'निरुम्भइ' इत्यादि, तत्र 'तो' त्ति 'ततः' समुद्घातनिवृत्तितः परं 'जोगं' ति मनोवा-क्काययोगलक्षणं योगं निरुणद्धि । अयं भावः—समाप्तसमुद्घातः केवली भगवान् कारणवशाद् योगत्रयं प्रयुङ्क्ते । कथम् ? इति चेत्, उच्यते—अनुत्तरसुरादिपृष्टः सत्यमसत्यामृषं वा मनोयोगं प्रयुङ्क्ते, आमन्त्रणादौ सत्यमसत्यामृषं वा वाग्योगं प्रयुङ्क्ते, काययोगञ्च फलकप्रत्यर्पणादौ । न्यगादि च भाष्यकारैः—

विणिवत्तसमुग्घाओ तिन्नि वि जोए जिणो पउंजेज्ज ।
सच्चमसच्चामोसं च सो मणं तह वईजोगं ॥१॥
ओरालियकाओगं गमणाइ पाडिहारियाणं वा ।
पच्चप्पणं करेज्जा जोगनिरोहं तओ कुणए ॥२॥" इति ।

एवमावश्यकचूर्णिकारैरप्युक्तम्—"ततो पडियागतो तिविहं पि जोगं जुंजति, वइजोगस्स सच्चाइजोगं जुंजति, चउत्थं आमंतणादी, मणे वि एते चेव जोगे दोण्णि, ते पुण किह होज्ज ? मणसा पुच्छेज्ज कोइ, तेसिं मणसा वागरेति, अणुत्तरो अण्णो वा देवमणुयो, कायजोगं गच्छेज्ज वा चिट्ठणठाणणिसीयणतुयट्टणाणि गच्छणे उक्खेवणसंखेवणउल्लंघणपल्लंघणातिरियणिक्खेवणादीणि, पाडिहारियं वा पीठकादि पच्चप्पिणेज्जा ।" इति । अयं सयोगी केवली भगवान् निर्वाणं यियासुः समुद्घाततः प्रतिनिवृत्तोऽन्तर्मुहूर्तमास्ते, ततो योगं निरोद्धुं प्रयतते । कुतः ? इति चेत् ? उच्यते—सति योगे द्विसामयिकस्थितिकस्य सातवेदनीयकर्मबन्धस्य प्रवृत्तत्वेन कर्मादानसन्ततिसद्भावादात्मनो मोक्षो न स्यात् । अतो योगनिमित्तकबन्धरोधार्थं लेश्यानिरोधार्थं च योगनिरोधमारभते, यदभ्यधायि सिद्धसेनीयतत्त्वार्थवृत्तौ

स ततो योगनिरोधं करोति लेश्यानिरोधमभिकाङ्क्षन् ।
समयसमयस्थितिबन्धं योगनिमित्तं स हि रुरुत्सन् ॥१॥
समये समये कर्मादाने सति सन्ततेर्न मोक्षः स्यात् ।
यद्यपि हि न मुच्यन्ते, स्थितिक्षयात् पूर्वकर्माणि ॥२॥
नोकर्मणाणि वीर्यं योगद्रव्येण भवति जीवस्य ।
तस्याऽवस्थाने ननु सिद्धः समयस्थितिर्बन्धः ॥३॥" इति ।

तत्र योगनिरोधव्याख्यानं द्विविधम्, संक्षेपविस्तरभेदात् । संक्षिप्तव्याख्यानं मूले न दर्शितम्, सुगमत्वात् । तथाहि—समुद्घाततो निवृत्तोऽन्तर्मुहूर्ते गते योगनिरोधं कुर्वन् प्रथममेव याऽसौ शरीरसम्बद्धा मनःपर्याप्तिः, यया च पूर्वं मनोद्रव्यग्रहणं कृत्वा भावमनः प्रयुक्तवान्, कर्म्मसंयोगविघटनाय मन्त्रसामर्थ्येन विषमिव स भगवाननुत्तरेणाऽचिन्त्येन निरावरणेन करणवीर्येण तद्व्यापारं निरुणद्धि । तद्यथा—पर्याप्तसंज्ञिपञ्चेन्द्रियजघन्ययोगिनो यो मनोयोगो भवति, ततोऽप्यसंख्येयगुणहीनं मनोयोगं प्रतिसमयं निरुन्धन्नन्तर्मुहूर्तेन कालेन सर्वथा निरुणद्धि । ततः पर्याप्तद्वीन्द्रियजघन्यवचनयोगतोऽसंख्येयगुणहीनं वचनयोगं प्रतिसमयं निरुन्धानोऽन्तर्मुहूर्तकालेन निःशेषतो निरुणद्धि । एवं प्रथमसमयोत्पन्नसूक्ष्मपनकस्य जघन्ययोगतोऽसंख्येयगुणहीनं काययोगं प्रतिसमयं निरुन्धानोऽन्तर्मुहूर्तेन सर्वथा निरुणद्धि, यदुक्तं विशेषावश्यकभाष्ये—

"पज्जत्तमित्तसन्निस्स जत्तियाइं जहन्नजोगिस्स ।
होंति मणोदव्वाइं तव्वावारो य जम्मत्तो ॥१॥
तदसंखगुणविहीणं समए समए निरुंभमाणो सो ।
मणसो सव्वनिरोहं कुणइ असंखेज्जसमएहिं ॥२॥
पज्जत्तमेत्तबिंदियजहन्नवइजोगपज्जया जे उ ।
तदसंखगुणविहीणे समए समए निरुंभंतो ॥३॥
सव्ववइजोगरोहं संखाईएहिं कुणइ समएहिं ।
तत्तो य सुहुमपणयस्स पढमसमयोववन्नस्स ॥४॥
जो किर जहन्नजोगो तदसंखेज्जगुणहीणमेक्केक्के ।
समए निरुंभमाणो देहतिभागं च मुंचंतो ॥५॥
रुंभइ स कायजोगं संखाईएहिं चेव समएहिं ।
तो कयजोगनिरोहो सेलेसीभावयामेइ ॥६॥" इति ।

तथैवोक्तं प्रज्ञापनायामपि-"से णं भंते ! जहा सजोगी सिज्झति जाव अंतं करेति ? गो० ! नो इणट्ठे समट्ठे, से णं पुव्वमेव सण्णिस्स पंचिंदियपज्जत्तयस्स जहण्णजोगिस्स हेट्ठा असंखेज्जगुणपरिहीणं पढमं मणजोगं निरुंभति, ततो अणंतरं बेइंदियपज्जत्तगस्स जहण्णजोगिस्स हेट्ठा असंखिज्जगुणपरिहीणं दोच्चं वतिजोगं निरुंभति । ततो अणंतरं च णं सुहुमस्स पणगजीवस्स अपज्जत्तयस्स जहण्णजोगिस्स हेट्ठा असंखेज्जगुणपरिहीणं तच्चं कायजोगं निरुंभति ।" इति ।

योगनिरोधस्य विस्तृतव्याख्याने तु द्विविध उपदेश,एकस्तावदावश्यकचूर्णिकारादीनाम्, अपरः पुनः कषायप्राभृतचूर्णिकारादीनाम् । इहा-ऽऽवश्यकचूर्णिकारादीनामभिप्रायेण योगनिरोधं विस्तरतः प्रथमं व्याख्यास्यते, ततः कषायप्राभृतचूर्णिकारादीनां मतेन । ननु द्विविध उपदेशः प्रामाणिको भवितुं ना-ऽर्हति, तीर्थकृद्गणधरादीनामेकतरस्यैवोपदेशस्य संभवेन तस्यैव प्रामाण्यसंभवादिति चेत्, उच्यते-सत्यमेतद्-तीर्थकृदादीनामेकतर एवोपदेश आसीदिति । किन्तु सम्प्रति केवलिनः श्रुतकेवलिनश्चाभावाद् न के-ऽप्याचार्या इदं वक्तुं समर्थाः, अयमेवोपदेशः सत्यः, अन्यो-ऽसत्य इति । तेन यथासम्प्रदायमुपदेशः प्राप्तः, तथैव तं समर्थयन्ति । अत उभावप्युपदेशौ शास्त्रे निबन्द्धव्यौ, अन्यथैकतरस्य निबन्धनेनेतरस्योपदेशस्य लोपः प्रसज्येत, न चेष्टापत्तिः, केवलिश्रुतकेवलिविरहेणैदंयुगीनानाञ्चा-ऽऽचार्याणां तथाविधविशिष्टज्ञानाभावेना-ऽसत्येतरोपदेशलोपस्या-ऽनिवारणात् ॥२४२-२४३॥

अथ प्रथमत आवश्यकचूर्णिकारादीनां मतेन योगनिरोधं विभणिषुराह

वायरवय-मण-उस्सास-कायजोगा निरुम्भइ कमेण ।
तत्तो सुहुमवयण-मण-तनुजोगा त्ति इगउवएसो ॥२४४॥

बादरवचो-मन-उच्छ्वास-काययोगान् निरुणद्धि क्रमेण ।
ततः सूक्ष्मवचन-मनस्तनुयोगानित्येकोपदेशः ॥२४४॥ इति पदसंस्कारः ।

'वायर०' इत्यादि, 'बादरवचो-मन-उच्छ्वास-काययोगान्' समुद्घातं गत्वाऽगत्वा वा बादरवचोयोगं बादरमनोयोगमुच्छ्वासं बादरकाययोगं च 'क्रमेण' परिपाट्या निरुणद्धि । 'तत्तो' त्ति 'ततः' बादरयोगनिरोधतः परं 'सूक्ष्मवचन-मनस्तनुयोगान्' "द्वन्द्वादौ द्वन्द्वान्ते च श्रूयमाणं पदं प्रत्येकं सम्बध्यते ।" इति न्यायात् सूक्ष्मवचनयोगं सूक्ष्ममनोयोगं सूक्ष्मतनुयोगं च क्रमेण निरुणद्धि, 'इति' इतिशब्दः समाप्तिद्योतकः, समाप्तः 'एक उपदेशः' आवश्यकचूर्णिकारादीनामभिप्रायः । अयं भावः-समुद्घातं परिसमाप्य समुद्घातमप्रतिपन्नस्त्वायोजिकाकरणं विधायाऽन्तर्मुहूर्तं गत्वा केवली भगवान् बादरकाययोगबलेन बादरवचनयोगं निरोद्धुमुपक्रमते, अन्तर्मुहूर्तेन कालेन वचनयोगं सर्वथा निरुणद्धि । ततोऽन्तर्मुहूर्तमास्ते, योगनिरोधं न करोतीत्यर्थः । ततो बादरकाययोगोपष्टम्भाद् बादरमनोयोगं निरोद्धुमारभते, अन्तर्मुहूर्तकालेन निःशेषतो बादरमनोयोगं निरुणद्धि । उक्तं च तत्त्वार्थवृत्तौ

"बादरतन्वा पूर्वं वाङ्मनसे बादरे स निरुणद्धि क्रमेणैव ।
आलम्बनाय करणं हि तदिष्टं तत्र वीर्यवतः ॥१॥" इति ।

मनोयोगनिरोधानन्तरमन्तर्मुहूर्तं स्थित्वा बादरकाययोगबलेनोच्छ्वासं निरोद्धुमुपक्रमते, अन्तर्मुहूर्तकालेन चोच्छ्वासं सर्वात्मना निरुणद्धि । ततोऽन्तर्मुहूर्तं विश्रम्य बादरकाययोगबलेन बादरकाययोगं निरोद्धुं प्रवर्तते, अन्तर्मुहूर्तकालेन तं सर्वात्मना निरुणद्धि, यदुक्तम् आवश्यकचूर्णौ–"ततः स्वशरीरं प्रविष्टोऽन्तर्मुहूर्तमास्ते, तत उपर्यनन्तरसमय एव बादरवाग्योगान् रोद्धुमारब्धः, ततोऽन्तर्मुहूर्तपूरणसमय एव बादरकाययोगबलाधानाद् बादरवाग्योगो निरुध्यमानो निरुद्धः, ततो बादरवाग्योगं निरुध्याऽन्तर्मुहूर्तमास्ते, न बादरयोगनिरोधः प्रवर्तत इत्यर्थः, तत उपर्यनन्तरं बादरमनोयोगं निरोद्धुमारब्धः, ततोऽन्तर्मुहूर्तस्याऽन्त्ये समये बादरकाययोगोपष्टम्भात् बादरमनोयोगो निरुध्यमानो निरुद्धः । ततोऽन्तर्मुहूर्तं स्थित्वोपर्यनन्तरसमय एव उच्छ्वासनिःश्वासौ निरोद्धुमारब्धः, ततोऽन्तर्मुहूर्तस्याऽन्त्ये समये बादरकाययोगोपष्टम्भात् उच्छ्वासनिःश्वासौ निरुध्यमानौ निरुद्धौ, ततोऽन्तर्मुहूर्तं स्थित्वोपर्यनन्तरसमय एव बादरकाययोगं निरोद्धुमारब्धः, ततोऽन्तर्मुहूर्तस्याऽन्त्ये समये बादरकाययोगो निरुध्यमानो निरुद्धः, तत्स्थः तमेव क्षपयतीति

अयुक्तमिति चेत्, न, दृष्टत्वात्, तद्यथा–कारपत्रिकः क्रकचेन स्तंभे छिदिक्रियां प्रारभमाणः तत्स्थस्तमेव छिनत्ति, तथा काययोगोपष्टंभात् काययोगनिरोधोऽप्यवसेयः।” इति।

अत्र श्रीशतकचूर्णिकारादयस्तु सूक्ष्मकाययोगोपष्टम्भेन बादरकाययोगं निरुणद्धीत्यभिदधते। तथा चाऽत्र श्रीशतकचूर्णिः

“बादरतणुमवि णिरुंभइ तओ सुहुमेण कायजोगेण।
ण णिरुज्झए उ सुहुमो जोगो सइ बायरे जोगे॥१॥” इति।

बादरकाययोगनिरोधप्रथमसमयतः प्रभृत्यन्तर्मुहूर्तं यावत् पूर्वस्पर्धकानामधस्तात् योगस्याऽपूर्वस्पर्धकानि करोति। तत ऊर्ध्वं योगस्य किट्टीः कर्तुमारभते, अन्तर्मुहूर्तकालेन च सर्वेषां पूर्वाऽपूर्वस्पर्धकानां किट्टीः करोति, योगस्पर्धकानि च स्वरूपतो निश्शेषं नाशयति, यदुक्तं श्रीतत्त्वार्थवृत्तौ–

“नाशयति काययोगं स्थूलं सोऽपूर्वफड्डुकीकृत्य।
शेषस्य काययोगस्य तथा किट्टीश्च स करोति॥१॥” इति 卐।

किट्टिकरणचरमसमयादनन्तरमन्तर्मुहूर्तं यावत् किट्टिगतयोगो भवति, तदानीं च न किञ्चिदपि करोति, यदुक्तं श्रीमन्मलयगिरिपादैः पञ्चसंग्रहवृत्तौ–“किट्टिकरणाऽवसानानन्तरं च पूर्वस्पर्धकान्यपूर्वस्पर्धकानि च नाशयति। तत्समयादारभ्य च अन्तर्मुहूर्तं यावत् किट्टिगतयोगो भवति। न चात्र किञ्चिदपि करोति।” इति। ततः सूक्ष्मकाययोगबलेन सूक्ष्मवचनयोगं निरोद्धुमारभते, अन्तर्मुहूर्तेन च कालेन सर्वथा निरुणद्धि। ततोऽन्तर्मुहूर्तमास्ते, नाऽन्यसूक्ष्मयोगनिरोधे प्रयतते, ततः सूक्ष्मकाययोगबलाधानात् सूक्ष्ममनोयोगं निरोद्धुमारभते। अन्तर्मुहूर्तकालेन सूक्ष्ममनोयोगं सर्वात्मना निरुणद्धि, निरुद्धसूक्ष्ममनोयोगोऽन्तर्मुहूर्तमास्ते, अन्ययोगनिरोधं न करोति। ततोऽन्तर्मुहूर्तप्रमाणकालस्योपर्यनन्तरसमये सूक्ष्मकाययोगोपष्टम्भात् सूक्ष्मकाययोगं निरोद्धुमारभते, उक्तं च आवश्यकचूर्णौ–“अत्र काययोगं निरुंधन् पूर्वस्पद्र्धकानामधस्तादपूर्वस्पद्र्धकानि करोति। अथ किमिदं स्पद्र्धकमिति प्रश्ने व्याचक्ष्महे-स्पर्धकमिव स्पद्र्धकं, क उपमार्थः? यथा लोके शालिफलककणशानां समुदायात् मुष्टिर्भवति, या स्पद्र्धकमिति शब्दते, कथमिति तद्विवृण्महे-‘स्पर्द्ध-संहर्षे’ इति शब्दाद् भवति स्पर्धकं संहर्षः समुदायः पिण्ड

卐 मूलाऽऽराधनकारा अपि सूक्ष्मकाययोगबलेन बादरकाययोगं निरुणद्धीति मन्यन्ते, तथा च तद्ग्रन्थ –

“बादरवचिजोग बादरेण कायेण बादरमणं च।
बादरकाय पि तधा रुंभदि सुहुमेण काएण॥१॥” इति।

क्रियन्ते। न चैवंभूतान्यनादौ संसारे भ्रमताऽऽत्मना कदाचिदपि कृतानि, तेनाऽपूर्वस्पर्धकानि व्यपदिश्यन्ते ॥२४७॥

नन्वपूर्वस्पर्धककरणे को विधिः? इति पृष्ट आह

पुव्वगफड्डाणं पढमवग्गणाअ विरियाविभागाणं।
तह जीवपएसाणं ओकड्ढिज्जा असंखंसं ॥२४८॥

पूर्वस्पर्धकानां प्रथमवर्गणाया वीर्याऽविभागानाम्।
तथा जीवप्रदेशानामपकर्षत्यसंख्यांशम् ॥२४८॥ इति पदसंस्कारः।

'पुव्वग०' इत्यादि, पूर्वस्पर्धकानां प्रथमवर्गणायाः 'वीर्याऽविभागानां' योगाऽविभागानां तथा 'जीवप्रदेशानां' पूर्वस्पर्धकप्रतिबद्धानां जीवप्रदेशानाम् 'असंख्यांशम्' असंख्येयभागमपकर्षति। उक्तं च कषायप्राभृतचूर्णौ—"**पढमसमए अपुव्वफद्दयाणि करेदि पुव्वफद्दयाणं हेट्ठदो। आदिवग्गणाए अविभागपडिच्छेदाणमसंखेज्जदिभागमोकड्डदि। जीवपदेसाणं च असंखेज्जदिभागमोकड्डदि।**" इति। इदमुक्तं भवति-पूर्वस्पर्धकेषु लोकाकाशप्रदेशप्रमिता जीवप्रदेशास्तिष्ठन्ति। तत्र पूर्वस्पर्धकप्रथमादिवर्गणाभ्यो-ऽसंख्येयभागप्रमाणान् जीवप्रदेशानपकृष्य पूर्वस्पर्धकजघन्यवर्गणागतवीर्या-ऽविभागसत्काऽसंख्येयभागप्रमाणवीर्या-ऽविभागविशिष्टान्यपूर्वस्पर्धकानि निर्वर्तयति। ततः पूर्वस्पर्धकप्रथमवर्गणागतवीर्या-ऽविभागतोऽसंख्येयगुणहीना वीर्या-ऽविभागा अपूर्वस्पर्धकचरमवर्गणायां भवन्ति। ते-ऽपि पुनरसंख्येयलोकाकाशप्रदेशप्रमिताः। एवमपूर्वस्पर्धकप्रथमवर्गणायामप्यसंख्येयलोकाकाशप्रदेशराशिप्रमाणा वीर्या-ऽविभागा भवन्ति। किन्त्वयं विशेषः—प्रथमा-ऽपूर्वस्पर्धकप्रथमवर्गणायां वीर्याऽविभागाः स्तोका भवन्ति, ततो द्वितीयवर्गणायामेकेनाधिका वीर्याविभागा भवन्ति, ततोऽप्येकेना-ऽधिकास्तृतीयवर्गणायां भवन्ति। एवमेकोत्तरवृद्ध्या-ऽग्रे-ऽपि वर्गणा वक्तव्याः।

अथ व्यवहारनयेनाऽपकृष्टजीवप्रदेशानां प्रक्षेपो निगद्यते—अपूर्वस्पर्धककरणप्रथमसमये पूर्वस्पर्धकेभ्योऽसंख्येयभागप्रमितान् जीवप्रदेशानादाया-ऽपूर्वस्पर्धकप्रथमवर्गणायां प्रभूतानात्मप्रदेशान् ददाति, अल्पयोगे परिणम्यमानजीवप्रदेशानां प्रभूतत्वसंभवात्। ततो विशेषहीनानपूर्वस्पर्धकस्य द्वितीयवर्गणायामात्मप्रदेशान् ददाति, ततो-ऽपि विशेषहीनांस्तृतीयवर्गणायाम्। एवं विशेषहीनक्रमेण तावद् ददाति, यावदपूर्वस्पर्धकचरमवर्गणा। अपूर्वस्पर्धकचरमवर्गणातः पूर्वस्पर्धकप्रथमवर्गणायामसंख्यातगुणहीनानात्मप्रदेशान् ददाति। तत ऊर्ध्वं विशेषहीनक्रमेण तावद् ददाति, यावत् पूर्वस्पर्धकचरमवर्गणा। अत्र जीवप्रदेशान् ददातीत्यनेन तावन्तो जीवप्रदेशाः प्रथमादिवर्गणागतयोगाऽविभागेषु परिणमन्तीति ग्राह्यम्, न ह्यमूर्तानां जीवप्रदेशानामादानप्रदानौ संभवतः परमार्थतः। प्रथमसमये क्रियमाणान्यपूर्वस्पर्धकानि सूचिश्रेणेरसंख्येयभागमात्राणि भवन्त्यपि पूर्वस्पर्धकानामसंख्येयभागप्रमाणानि भवन्ति ॥२४८॥

मुहूर्त इति । कियन्ति पुनः स्पर्द्धकानि करोतीति प्रश्ने ब्रूमहे—श्रेण्या असंख्येयभागमात्राणि, श्रेणिवर्गमूलस्या-ऽप्यसंख्येयभागमात्राणि, पूर्वस्पर्द्धकानामप्यसंख्येयभागमात्राणि । एवमपूर्वस्पर्द्धककरणे समाप्ते अत ऊर्ध्वमुपर्यनन्तरसमयमेव कृष्टीः कर्तुमारब्धोऽन्तर्मुहूर्तेन सर्वाः करोति ।

अथ किमिदं कृष्टिरिति प्रश्नेऽभिधीयते, कर्मणः कर्शनं कृष्टिः, अल्पीकरणमित्यर्थः, अथ कृष्टेः करणे को विधिरिति प्रश्ने व्याचक्ष्महे—पूर्वस्पर्द्धकानामपूर्वस्पर्धकानां चाधस्तात् या आदिवर्गणाः, तासामविभागपरिच्छेदा ये, तेषामयं योगजधर्मानुग्रहात् असंख्येयान् भागान् कर्षति, असंख्येयभागं स्थापयति । जीवप्रदेशानामप्यसंख्येयान् भागान् कर्षति, असंख्येयं भागं स्थापयति । एवमाकृष्याकृष्य प्रथमसमये कृष्टीः करोति । अथ द्वितीयसमये प्रथमसमयाकृष्टानामविभागपरिच्छेदानामसंख्येयेभ्यो भागेभ्यः सकाशात् असंख्येयगुणहीनं भागमाकर्षयति, असंख्येयभागमाकर्षयतीत्यर्थः, जीवप्रदेशानामपि प्रथमसमयाकृष्टजीवप्रदेशासंख्येयभागसकाशादसंख्येयगुणं भागमाकर्षयति, असंख्येयान् भागानाकर्षयतीत्यर्थः । एवमनेन विधिना-ऽऽकृष्या-ऽऽकृष्य कृष्टीः करोति । एवं समये२ कृष्टयः क्रियमाणाः क्रियन्ते तावद्यावच्चरमसमयकृष्टिरिति । तत्र प्रथमसमयाः(...ये) कृष्टयःकृता असंख्येयगुणास्ततो द्वितीयसमये असंख्येयगुणहीनाः । एव समये समये असंख्येयगुणहीनया श्रेण्या कृतास्तावद्यावदन्तर्मुहूर्त इति, तत्र याः कृष्टयः प्रथमसमयकृतास्ता असंख्येयगुणाः कृताः द्वितीयसमयकृताभ्यः सकाशाद् ।

अथ याः द्वितीयसमयकृतास्ताः प्रथमसमयकृतकृष्टिप्रमाणाः कथं भवंतीति प्रश्नेऽभिधीयते—पल्योपमस्य(.. स्या-)संख्येयभागेन गुणिताः प्रथमसमयकृताः कृष्टयः श्रेण्या असंख्येयभागप्रमाणाः, एवं द्वितीयादिष्वपि समयेषु श्रेण्या असंख्येयभागप्रमाणाः तावद्यावत्कृष्टिकरणस्या-ऽन्त्यसमय इति एवं सर्वा अपि कृष्टयः श्रेण्या असंख्येयभागप्रमाणाः पूर्वस्पर्धकेभ्योऽपूर्वस्पर्धकेभ्यश्चासंख्येयभाग इति । सर्वासां कृष्टीनामसङ्ख्येयभागप्रमाणतुल्यत्वात् सर्वस्याः कृष्टिगतायाः असंख्येयतायाः तुल्यत्वमिति चेत् , न, पूर्वाभ्यः पूर्वाभ्यः सकाशाद् उत्तराभ्य उत्तराभ्यो असङ्ख्येयगुणहीनयोः(...या) श्रेण्या कृतत्वमित्युक्तत्वात् । एवं कृष्टिकरणावसानानन्तरसमये पूर्वस्पर्धकान्यपूर्वस्पर्धकानि च नश्यन्ति, अतोऽनन्तरसमय एव सूक्ष्मवाग्योगं निरोद्धुमारब्धः, ततो-ऽन्तर्मुहूर्ते पूर्णे सूक्ष्मकाययोग-

बलाभिधानात् सूक्ष्मवाग्योगो निरुध्यमानो निरुद्धः, ततो निरुद्धवाग्योगोऽन्तर्मुहूर्तमास्ते, न सूक्ष्मयोगनिरोधं प्रति वर्त्तते इत्यर्थः। तत उपर्यनन्तरसमय एव सूक्ष्ममनोयोगं निरोद्धुमारब्धः, ततोऽन्तर्मुहूर्त्ते पूर्णे सूक्ष्मकाययोगोपष्टम्भात् सूक्ष्ममनोयोगो निरुध्यमानो निरुद्धः। ततोऽन्तर्मुहूर्त्तं स्थित्वा उपर्यनन्तरसमय एव सूक्ष्मकाययोगं निरोद्धुमारब्धः।" इति।

सूक्ष्मकाययोगं निरुन्धानः प्रथमसमये किट्टीनामसंख्येयभागान् नाशयति, एकं चाऽसंख्येयभागं मुञ्चति। द्वितीयसमये प्राङ्मुक्तस्यैकभागस्याऽसंख्येयान् भागान् विनाशयति, एकं च परित्यजति, एवंक्रमेण किट्टीस्तावद् नाशयति, यावत् सयोगिगुणस्थानकचरमसमयः, यदुक्तं पञ्चसङ्ग्रहवृत्तौ-"सूक्ष्मकाययोगं निरुन्धानः प्रथमसमये किट्टीनामसंख्येयान् भागान् नाशयति, एकस्तिष्ठति। द्वितीयसमये तस्यैवैकस्य भागस्योद्धरितस्य संबन्धिनोऽसंख्येयान् भागान् नाशयति, एक उद्धरति। एवं समये समये किट्टीस्तावन्नाशयति, यावत्सयोग्यवस्थाचरमसमयः।" इति।

सूक्ष्मकाययोगं च निरुन्धानो वक्ष्यमाणस्वरूपं सूक्ष्मक्रियाऽप्रतिपाति शुक्लध्यानं ध्यायति, यदभिहितम् आवश्यकचूर्णौ-"ततोऽन्तर्मुहूर्ते पूर्णे सूक्ष्मकाययोगोपष्टम्भात् सूक्ष्मकाययोगो निरुध्यमानो निरुद्धः। अस्यामवस्थायां सूक्ष्मक्रियाप्रतिपातिध्यानं ध्यायति।" इति। तृतीयशुक्लध्यानसामर्थ्याच्च वदनोदरादिविवरपूरणेन संकुचितदेहत्रिभागवर्तिप्रदेशो भवति।

गुणस्थानकक्रमारोहे तु योगनिरोध इत्थं प्रतिपादितः

"बादरे काययोगेऽस्मिन् स्थितिं कृत्वा स्वभावतः।
सूक्ष्मीकरोति वाक्चित्तयोगयुग्मं स बादरम् ॥१॥
त्यक्त्वा स्थूलं वपुर्योगं सूक्ष्मवाक्चित्तयोः स्थितिम्।
कृत्वा नयति सूक्ष्मत्वं, काययोगं तु बादरम् ॥२॥
सुसूक्ष्मकाययोगेऽथ स्थितिं कृत्वा पुनः क्षणम्।
निग्रहं कुरुते सद्यः सूक्ष्मवाक्चित्तयोगयोः ॥३॥
ततः सूक्ष्मे वपुर्योगे स्थितिं कृत्वा क्षणं हि सः।
सूक्ष्मक्रियं निजात्मानं चिद्रूपं विन्दति स्वयम् ॥४॥" इति।

तत्त्वं तु केवलिनो बहुश्रुता वा विदन्ति।

नन्वयुक्तमिदं योगनिरोधव्याख्यानम्, सतो हि निरोधः संभवति। न चाऽत्र बादरकाययोगे सूक्ष्मकाययोगे वा वर्तमानस्य महात्मनो मनोयोगो वचनयोगो वा संभवति, एककालावच्छेदेनैकस्यैव योगस्य सिद्धान्ते प्रतिपादितत्वात्, अतोऽसतो मनोयोगस्य वाग्योगस्य वा निरोधो

न संभवतीति चेत् ? उच्यते- सत्यमेतद् , एककालावच्छेदेन एक एव योगः प्रवर्तमानो भवति, किन्तु मनोयोगस्य वचनयोगस्य काययोगस्य चोत्पादिका या शक्तिः, तस्या निरोधं करोत्यन्तर्मुहूर्तशेषायुष्कः सयोगिकेवली । तत्र पूर्वं बादरयोगोत्पादिकां शक्तिं रुणद्धि, ततः सूक्ष्मयोगोत्पादिकां शक्तिं निरुणद्धि । कारणे कार्योपचाराच्च बादरमनो-वचन-काययोगं सूक्ष्ममनो-वचन-काययोगं च निरुणद्धीति व्यपदिश्यत इति न कश्चन दोषः ॥२४४॥

सम्प्रति द्वितीयोपदेशेन योगनिरोधं विवर्णयितुकामः प्राह

रुम्भइ बायरमण-वय-उस्सास-तणू कमेण बीयमया ।
बायरतणूअ भिन्नमुहुत्तेणऽन्तोमुहुत्तमच्चासं ॥२४५॥ (गीतिः)

रुणद्धि-बादरमनो-वच-उच्छ्वास-तनू क्रमेण द्वितीयमतात् ।
बादरतन्वा भिन्नमुहूर्तेनाऽन्तर्मुहूर्तमत्यासम् ॥२४५॥

'रुम्भइ०'इत्यादि, तत्र 'द्वितीयमतात्' कषायप्राभृतचूर्णिकारादीनां मतमपेक्ष्य 'बादरमनो-वच-उच्छ्वास-तनूः' बादरपदस्य प्रत्येकमभिसम्बन्धाद् बादरमनोयोगं बादरवचनयोगं बादरोच्छ्वासं बादरकाययोगं च क्रमेण 'बादरतन्वा' बादरकाययोगबलेना-ऽन्तर्मुहूर्तमत्यासं 'भिन्नमुहूर्तेन' अन्तर्मुहूर्तकालेन निरुणद्धि । अयम्भावः-क्रियाऽव्यवधायका-ऽर्थे वर्तमानाद् अतिपूर्वकाद् असिधातोः "कालेन तृष्यस्वः क्रियाऽन्तरे"(सिद्धहेम०५-४-८२) इत्यनेन णम् प्रत्ययः, यत आन्तर्मोहूर्तिकयोगनिरोधक्रियाऽन्तर्मुहूर्तकाला-ऽत्यासेन व्यववीयते । ततश्चायमर्थः—बादरमनोयोगं निरुध्य अन्तर्मुहूर्तं व्यतिक्रम्य बादरवचनयोगमन्तर्मुहूर्तेन निरुणद्धि । ततो बादरवचनयोगं निरुध्याऽन्तर्मुहूर्तं व्यतिक्रम्य बादरोच्छ्वासमन्तर्मुहूर्तकालेन निरुणद्धि । एवमग्रेऽपि । तथाहि—समुद्घाताद् निवृत्तोऽन्तर्मुहूर्तं विश्रम्य योगनिरोधमारभते । तत्र योजनं योगः, जीवस्य परिस्पन्द इति यावत् । स च त्रिविधः, मनो-वचः-कायभेदात् । तत्रा-ऽप्येकैको द्विविधः, सूक्ष्म-बादरभेदात् । योगनिरोधात् प्राक् सर्वत्र बादरयोग एवा-ऽऽसीत् । सम्प्रति केवली भगवान् बादरकाययोगोपष्टम्भाद् बादरमनोयोगं निरोद्धुमुपक्रमते, अन्तर्मुहूर्तकालेन च निरुणद्धि । ततो बादरमनोयोगनिरोधानन्तरमन्तर्मुहूर्तं गत्वा बादरकाययोगमवष्टभ्या-ऽन्तर्मुहूर्तकालेन बादरवचनयोगं निरुणद्धि । ततोऽन्तर्मुहूर्तं व्यतिक्रम्य बादरकायायोगेनान्तर्मुहूर्तेन सर्वथा बादरोच्छ्वासं निरुणद्धि । ततोऽन्तर्मुहूर्तमतीत्य बादरकाययोगेन बादरकाययोगमन्तर्मुहूर्तकालेन सर्वथा निरुणद्धि । अभ्यधायि च कषायप्राभृतचूर्णौ—"एत्तो अंतोमुहुत्तं गंतूण बादरकायजोगेण बादरमणजोगं णिरुंभइ । तदो अंतोमुहुत्तेण बादरकायजोगेण बादरवचिजोगं णिरुंभइ । तदो अंतोमुहुत्तेण बादरकायजोगेण बादरउस्सासणिस्सासं णिरुंभइ । तदो अंतोमुहुत्तेण बादरकायजोगेण तमेव बादरकायजोगं णिरुंभइ ।" इति । तथैवोक्तं प्रशमरतिवृत्तिकारैः श्रीमद्हरिभद्रसूरीश्वरैरपि—"अन्तर्मुहूर्तचतुष्टयसमन्वितेषु प्रथमं मनोयोगं बादरं

(१), एवं बादरवाग्योगं (२) ततः उच्छ्वासं (३) ततः काययोगं (४) अपान्तराले एकैकस्य २ अन्तर्मुहूर्तस्य विश्रम्यैवेत्यष्टावन्तर्मुहूर्ता इति ।" ॥२४५॥

अभिहितो बादरयोगनिरोधः कषायप्राभृतचूर्णिकारादीनामभिप्रायेण, साम्प्रतं तन्मतेन सूक्ष्मयोगनिरोधं विवर्णयिषुराह

सुहुमेण कायजोगेण कमा सुहुमाणि चउमणाईणि ।
रुम्भइ गंतूणं गंतूणं अंतोमुहुत्तं तु ॥२४६॥

सूक्ष्मेण काययोगेन क्रमात् सूक्ष्माणि चतुर्मनआदीनि ।
रुणद्धि गत्वा गत्वा-ऽन्तर्मुहूर्तं तु ॥२४६॥ इतिपदसंस्कारः ।

'सुहुमेण' इत्यादि, 'सूक्ष्मेण काययोगेन' सूक्ष्मकाययोगबलेन क्रमात् सूक्ष्माणि 'चतुर्मनआदीनि' चतुःसंख्याकानि मनोयोगवचनयोगोच्छ्वासकाययोगरूपाणि 'अन्तर्मुहूर्तं तु' अन्तर्मुहूर्तप्रमाणं तु कालं गत्वा गत्वा 'रुणद्धि' निरुणद्धि । भावार्थः पुनरयम्—बादरकाययोगनिरोधाऽनन्तरमन्तर्मुहूर्तं गत्वा सूक्ष्मकाययोगबलात् सूक्ष्ममनोयोगं निरुणद्धि । ततः सूक्ष्ममनोयोगनिरोधानन्तरमन्तर्मुहूर्तकालेन सूक्ष्मकाययोगोपष्टम्भात् सूक्ष्मवचनयोगं निरुणद्धि, ततः सूक्ष्मवचनयोगनिरोधानन्तरमन्तर्मुहूर्तकालेन सूक्ष्मकाययोगोपष्टम्भात् सूक्ष्मोच्छ्वासं निरुणद्धि । ततोऽन्तर्मुहूर्तं गत्वा सूक्ष्मकाययोगबलेन सूक्ष्मकाययोगमपि निरुणद्धि । उक्तं च कषायप्राभृतचूर्णौ "तदो अंतोमुहुत्तं गंतूण सुहुमकायजोगेण सुहुममणजोगं णिरुंभइ । तदो अंतोमुहुत्तेण सुहुमकायजोगेण सुहुमवचिजोगं णिरुंभइ । तदो अंतोमुहुत्तेण सुहुमकायजोगेण सुहुमउस्सासं णिरुंभइ । तदो अंतोमुहुत्तं गंतूण सुहुमकायजोगेण सुहुमकायजोगं णिरुंभमाणो इमाणि करणाणि करेदि ××।" इति ॥२४६॥

अथ सूक्ष्मकाययोगं निरुन्धानो यत्करोति, तदाह

सुहुमं सरीरजोगं णिरुंभमाणो अपुव्वफड्डाणि ।
कुणइ पढमसमया पहुडि पुव्वफड्डाण हेट्ठम्मि ॥२४७॥

सूक्ष्मं शरीरयोगं निरुन्धानोऽपूर्वस्पर्धकानि ।
करोति प्रथमसमयात् प्रभृति पूर्वस्पर्धकानामधस्तात् ॥२४७॥ इति पदसंस्कारः ।

'सुहुमं' इत्यादि, सूक्ष्मकाययोगाऽवलम्बनेनैव सूक्ष्मं 'शरीरयोगं' काययोगं निरुन्धानः 'प्रथमसमयात्' सूक्ष्मकाययोगनिरोधप्रथमसमयतः प्रभृति 'पूर्वस्पर्धकानां' योगस्य पूर्वस्पर्धकानामधस्तात् अपूर्वस्पर्धकानि 'करोति' निर्वर्तयति । इदमुक्तं भवति पर्याप्तिपर्यायेण परिणतात्मना पूर्वमेव योगनिर्वृत्त्यर्थं यानि योगस्पर्धकान्युपात्तानि, यानि चाऽनादौ संसारे पुनः पुनर्योगनिर्वर्तनार्थं पूर्वमुपात्तान्यात्मना, तानि सर्वाणि पूर्वस्पर्धकानि व्यपदिश्यन्ते । तेषां स्वरूपं तु बन्धनकरणादितोऽवसेयम् । तानि पूर्वस्पर्धकान्यधुना सूक्ष्मीकृत्याऽपूर्वस्पर्धकानि

इत्यनर्थान्तरं, अथ केषां संवर्ग इति प्रश्ने व्याचक्ष्महे-इह यथा बहूनां समुदायः क्षणे (कंडकं) संभवति। बहूनां च काण्डकस्थकाणशानां [शालिफलकणानां] समुदायात् मुष्टिरिति भवति, तथा शालिफलकणतुल्यानामसंख्येयानां लोकानां ये प्रदेशास्तत्प्रमाणप्रमितानामविभागपरिच्छेदानां भावपरमाणुसंज्ञितानां समुदायात् काणसतुल्या वर्गणा भवति । एवमसंख्येया वर्गणा श्रेण्या असंख्येयभागप्रमाणा एकजीवे भवन्ति। तासां च बहुकाण्डस्थकणकाणशसमुदायोत्पन्नमुष्टितुल्यानां असंख्येयानां वर्गणानां श्रेण्याः असंख्येयभागमात्राणां समुदायादेकं स्पर्धकं भवति। एवमसंख्येयानि स्पर्धकानि श्रेण्या असंख्येयभागमात्राण्येकजीवे सन्ति ।

अथ किमिदं पूर्वस्पर्धकानि अपूर्वस्पर्धकानीति च प्रश्ने व्याचक्ष्महे-यानि पर्याप्तिपर्यायेण परिणमितात्मना पूर्वमेव योगनिर्वर्तनार्थमुपात्तानि, यानि चानादौ संसारे पुनः पुनर्योगनिर्वृत्त्यर्थं पूर्वमुपात्तान्यात्मना, तानि पूर्वस्पर्धकानि इत्यभिधीयंते, तानि च स्थूलानि। यान्यधुना क्रियन्ते, तानि सूक्ष्माणि, न च तथालक्षणानि अनादौ संसारे परिभ्रमता आत्मना कदाचिदप्युपात्तानि इत्यतोऽपूर्वस्पर्धकानि व्याख्यायन्ते ।

अथाऽपूर्वस्पर्धककरणे को विधिरिति प्रश्नेऽभिदध्महे-अधस्तात्पूर्वस्पर्धकानामादिवर्गणा यास्तासां अविभागपरिच्छेदा ये, तेषामयं योगजधर्मानुग्रहादसंख्येयान् भागानाकर्षति, असंख्येयभागं स्थापयति, जीवप्रदेशानामपि च असंख्येयभागमाकर्षयति ❀, असंख्येयान् भागान् स्थापयति, एवं प्रथमसमये, द्वितीयसमये प्रथमसमयाकृष्टाविभागपरिच्छेदानां असंख्येयेभ्यो भागेभ्यः सकाशादसंख्येयगुणहीनं भागमाकर्षयति, असंख्येयभागमाकर्षयतीत्यर्थः, जीवप्रदेशानामपि च प्रथमसमयाकृष्टजीवप्रदेशासंख्येयभागसकाशादसंख्येयगुणभागमाकर्षयति, असंख्येयभागानाकर्षयतीत्यर्थः। एतेन विधिनाऽऽकृष्य योगजधर्मानुग्रहादपूर्वस्पर्धकानि करोति। एवं समये समये भागं करोति, यावत्पूर्णोऽन्त-

❀ ननु किं नाम जीवप्रदेशानामाकर्षणम् ? न चाऽऽत्मप्रदेशानामवगाहनां द्वित्रिभागप्रमाणां कर्तुं जीवप्रदेशानां सङ्कोचनं तदिति वाच्यम्, सूक्ष्मक्रियाऽप्रतिपातिध्यानसामर्थ्येन निरुक्ताऽवगाहनानिर्वृत्तेर्वक्ष्यमाणत्वादिति चेत्, उच्यते प्रथमसमयेऽसंख्येयभागमात्रजीवप्रदेशान् पूर्वस्पर्धकप्रथमवर्गणातोऽसंख्येयगुणहीने योगे परिणमयति, ततोऽसंख्येयगुणाञ्जीवप्रदेशान् पूर्वस्पर्धकप्रथमवर्गणातोऽसंख्येयगुणहीने योगे द्वितीयस्मिन् समये परिणमयति, ततोऽप्यसंख्येयगुणाञ्जीवप्रदेशास्तृतीयसमये। एवमग्रेऽपि। इत्थं हीने हीनतरे योगे जीवप्रदेशानां परिणमनं जीवप्रदेशानामाकर्षणमुच्यते, योगस्याऽल्पीकरणं तु योगाऽविभागानामाकर्षणं भण्यत इत्यलं विस्तरेण ।

नन्वपूर्वस्पर्धकानि कियन्तं कालं केन च क्रमेण करोति, एवं जीवप्रदेशांश्च केन क्रमेणाऽप-कर्षति ? इत्यत आह

कुणए अपुव्वफड्डाणि मुहुत्तंतो असंखगुणहाणीए ।
तह जीवपएसा उ असंखेज्जगुणक्कमेण ओकड्ढिज्जा ॥२४९॥ (आर्यागीतिः)

करोत्यपूर्वस्पर्धकानि मुहूर्तान्तरसंख्यगुणहान्या ।
तथा जीवप्रदेशास्त्वसंख्येयगुणक्रमेणा-ऽपकर्षति ॥२४९॥ इति पदसंस्कारः ।

'कुणए' इत्यादि, तत्र 'मुहूर्तान्तः' अन्तर्मुहूर्तम् 'असङ्ख्यगुणहान्या' असङ्ख्यातगुण-हीनक्रमेणा-ऽपूर्वस्पर्धकानि 'करोति' निर्वर्तयति । भावार्थः पुनरयम् प्रथमसमये यावन्त्यपूर्वस्पर्धकानि करोति, ततोऽसंख्येयगुणहीनानि प्रथमसमयकृता-ऽपूर्वस्पर्धकानामधस्ताद-पूर्वस्पर्धकानि द्वितीयसमये करोति । ततो-ऽप्यसंख्येयगुणहीनानि तृतीयसमये, एवमसंख्येय-गुणहीनक्रमेणा-ऽपूर्वस्पर्धकानि तावत् करोति, यावदन्तर्मुहूर्तचरमसमयः । 'तह' इत्यादि, अपूर्वस्पर्धकानि कुर्वन् जीवप्रदेशांस्त्वसंख्येयगुणक्रमेणा-ऽपकर्षति, तुर्वाक्यभेदे । अयं भावः- अपू-र्वस्पर्धकानि कुर्वन् प्रथमसमये यावतो जीवप्रदेशानपकर्षति, ततो द्वितीयसमये-ऽसंख्येयगुणा-ञ्जीवप्रदेशानपकर्षति, ततोऽपि तृतीयसमयेऽसंख्येयगुणान् । एवमसंख्येयगुणक्रमेण तावद-पकर्षति, यावदन्तर्मुहूर्तचरमसमयः । उक्तं च कषायप्राभृतचूर्णौ-"एवमन्तोमुहुत्तम-पुव्वफद्दयाणि करेदि असंखेज्जगुणहीणाए सेढीए, जीवपदेसाणं च असंखेज्जगुणाए सेढीए ।" इति । ॥२४९॥ अथ योगस्याऽपूर्वस्पर्धकानां प्रमाणमभिधित्सुराह-

इह सेढिवग्गमूलस्स असंखंसो अपुव्वफड्डाइं ।
हुन्ते असंखभागो पुव्विल्लाणं वि फड्डाणं ॥२५०॥

इह श्रेणिवर्गमूलस्या-ऽसङ्ख्यांशोऽपूर्वस्पर्धकानि ।
भवन्त्यसङ्ख्यभागः पूर्वेषामपि स्पर्धकानाम् ॥२५०॥ इति पदसंस्कारः ।

'इह' इत्यादि, 'इह' योगनिरोधप्रकरणेऽपूर्वस्पर्धकानि 'श्रेणिवर्गमूलस्य' सूचिश्रेणिप्रथम-वर्गमूलस्य 'असंख्यांशः' असंख्येयभागमात्राणि भवन्ति ।

ननु योगस्य पूर्वस्पर्धकान्यपि सूचिश्रेणिप्रथमवर्गमूलाऽसंख्येयभागमात्राणि सन्ति, तदुभयेषां को विशेषः ? इत्यत आह-'असंखभागो' इत्यादि, अपूर्वस्पर्धकानि पूर्वेषामपि स्पर्ध-कानाम् 'असंख्यभागः' असंख्येयभागप्रमाणानि भवन्ति, नाऽधिकानीत्यर्थः । उक्तं च कषाय-प्राभृतचूर्णौ-"अपुव्वफद्दयाणि सेढीए असंखेज्जदिभागो । सेढिवग्गमूलस्स वि असंखेज्जदिभागो । पुव्वफद्दयाणं पि असंखेज्जदिभागो सव्वाणि अपुव्वफद्-याणि ।" इति ॥२५०॥

अपूर्वस्पर्धककरणाद्धामन्तमुहूर्तप्रमाणां व्यतिक्रम्य सयोगिकेवली योगकिट्टीः करोतीत्येतद्-मिथित्सुराह

तत्तो पुव्वाऽपुव्वेहिं फड्डेहिं कुणेइ किट्टीओ ।
हेट्ठम्मि अपुव्वाणं सेढिअसंखेज्जभागमिआ ॥२५१॥

तत पूर्वापूर्वेभ्य स्पर्धकेभ्य करोति किट्टीः ।
अधस्तादपूर्वेषां श्रेण्यसख्येयभागमिता ॥२५१॥ इति पदसस्कार ।

'तत्तो' इत्यादि, 'ततः' अपूर्वस्पर्धककरणाद्धासमाप्तितः परं पूर्वापूर्वेभ्यः स्पर्धकेभ्यः 'अपूर्वेषाम्' अपूर्वस्पर्धकानामधस्तात् 'श्रेण्यसंख्येयभागमिताः' सूचिश्रेणेरसंख्येयभागप्रमाणाः 'किट्टीः' योगस्य किट्टीः 'करोति' निर्वर्तयति । ननु का नाम किट्टिः ? इति चेत् , उच्यते-एकोत्तरवृद्धिं परित्यज्या-ऽसंख्येयगुणहीनैकैकवर्गणास्थापनेन योगस्य कर्शनं कृष्टिः=अल्पीकरण-मित्यर्थः । तथाहि—अपूर्वस्पर्धककरणाद्धायां पूर्वस्पर्धकतो-ऽसंख्येयगुणहीनं योगं कृत्वा योगा-ऽवि-भागानामेकोत्तरवृद्धया वर्गणाः स्थापयित्वा सूचिश्रेणेरसंख्यभागप्रमाणाभिर्वर्गणाभिरेकैकाऽपूर्वस्पर्धकं रचयति स्म । तानि च सर्वाणि निर्वर्त्यमानान्यपूर्वस्पर्धकानि सूचिश्रेणेरसंख्येयभागप्रमाणानि जायन्ते स्म । किट्टिकरणकाले-ऽपूर्वस्पर्धकप्रथमवर्गणातो-ऽप्यसंख्येयगुणहीनं योगं कृत्वा योगाऽविभागा-नामेकोत्तरवृद्धिं विहायोत्कृष्टकिट्टितोऽसंख्येयगुणहीनक्रमेण किट्टीस्तावत् स्थापयति, यावत् प्रथम-किट्टिः, यद्वा जघन्यकिट्टितो ऽसंख्येयगुणक्रमेण तावत् स्थापयति, यावदुत्कृष्टकिट्टिः । उत्कृष्ट-किट्टावप्यपूर्वस्पर्धकप्रथमवर्गणातोऽसंख्येयगुणहीना वीर्याऽविभागा भवन्ति । अनेन क्रमेण योगस्या-ऽल्पीकरणं किट्टिरिति व्यपदिश्यते ॥२५१॥

ननु किट्टिकरणाद्धाप्रथमसमये किट्टिकरणे को विधिः ? इत्यत आह

ओकड्ढए अपुव्वाइवग्गणाए असंखभागमिआ ।
अविभागे तह जीवपएसा वि असंखभागमिआ ॥२५२॥

अपकर्षत्यपूर्वादिवर्गणाया असख्यभागमितान् ।
अविभागास्तथा जीवप्रदेशानप्यसख्यभागमितान् ॥२५२॥ इति पदसस्कार ।

'ओकड्ढए' इत्यादि, तत्र 'अपूर्वादिवर्गणायाः' किट्टिकरणप्रथमसमयेऽपूर्वस्पर्धकप्रथम-वर्गणायाः 'असङ्ख्यभागमितान्' असंख्येयभागप्रमितान् 'अविभागान्' वीर्या-ऽविभागान् 'अपकर्षति' आकर्षति । 'तह' इत्यादि, 'तथा' तथाशब्दः समुच्चये, 'जीवप्रदेशानप्यसंख्यभागमितान्' पूर्वाऽ-पूर्वस्पर्धकप्रतिवद्धानां लोकाकाशप्रदेशप्रमितानामात्मप्रदेशानामप्यसंख्येयभागप्रमितान् जीवप्रदेशाना-कर्षतीत्यर्थः । उक्तञ्च कषायप्राभृतचूर्णौ—"अपुव्वफद्दयाणमादिवग्गणाएअविभागपडि-च्छेदाणमसंखेज्जदिभागमोकड्डदि । जीवपदेसाणमसंखेज्जदिभागमोकड्डदि ।" इति ।

पूर्वापूर्वस्पर्धकेभ्योऽसंख्येयभागमितान् जीवप्रदेशानादाया-ऽपूर्वस्पर्धकप्रथमवर्गणाया असंख्येयभागप्रमाणवीर्या-ऽविभागकाः किट्टीः करोति, तेन चरमकिट्टावप्यपूर्वस्पर्धकप्रथमवर्गणातो-ऽसंख्येयगुणहीना वीर्याऽविभागा भवन्ति ।

अथ योगकिट्टिषु जीवप्रदेशानां प्रक्षेपक्रमोऽभिधीयते—किट्टिकरणाद्धाप्रथमसमये पूर्वापूर्वस्पर्धकेभ्यो-ऽसंख्येयभागप्रमितान् जीवप्रदेशान् गृहीत्वा प्रथमकिट्टौ प्रभूतान् जीवप्रदेशान् निक्षिपति । ततो विशेषहीनान् द्वितीयकिट्टौ निक्षिपति, ततोऽपि तृतीयस्यां किट्टौ विशेषहीनान् । एवमुत्तरोत्तरकिट्टौ विशेषहीनक्रमेण तावन्निक्षिपति, यावच्चरमकिट्टिः । चरमकिट्टिर्नाम किट्टिषु सर्वप्रभूतवीर्याऽविभागका किट्टिः । प्रथमकिट्टिर्नाम किट्टिषु सर्वाऽल्पवीर्याऽविभागका किट्टिः । चरमकिट्टितोऽपूर्वस्पर्धकप्रथमवर्गणायामसंख्येयगुणहीनान् जीवप्रदेशान् प्रक्षिपति । ततो विशेषहीनान् द्वितीयवर्गणायां निक्षिपति । तत उपरि विशेषहीनक्रमेण प्रक्षिपति ॥२५२॥

ननूत्तरोत्तरसमये किमधिका अधिकतराः किट्टीः करोति, उत हीना हीनतराः ? एवं जीवप्रदेशान् किं वृद्धिक्रमेणाऽपकर्षति, आहोस्विद् हीनक्रमेण, कियतीश्च सर्वाः किट्टीः करोति ? इति पृष्टे गाथाद्वयेन प्रतिवक्ति

अंतोमुहुत्तकालमसंखगुणूणक्कमेण किट्टीओ ।
करए ओकड्ढइ जीवपएसे उण असंखगुणणाए ॥२५३॥ (गीतिः)
किट्टीगुणगारो पल्लासंखंसो हवन्ति किट्टीओ ।
सेढीअसंखभागो अपुव्वफड्डाण उण असंखंसो ॥२५४॥ (गीतिः)

अन्तर्मुहूर्तकालमसंख्यगुणोनक्रमेण किट्टीः ।
करोत्यपकर्षति जीवप्रदेशान् पुनरसंख्यगुणनया ॥२५३॥
किट्टिगुणकारः पल्या-ऽसंख्यांशो भवन्ति किट्टयः ।
श्रेण्यसंख्यभागो-ऽपूर्वस्पर्धकानां पुनरसंख्यांशः ॥२५४॥ इति पदसंस्कारः ।

'अंतो०' इत्यादि, 'अन्तर्मुहूर्तकालं' अन्तर्मुहूर्तं यावद् 'असङ्ख्यगुणोनक्रमेण' असंख्येयगुणहीनक्रमेण 'किट्टीः' अपूर्वकिट्टीः 'करोति' निर्वर्तयति । 'अपकर्षति' आकर्षति जीवप्रदेशान् पुनः 'असङ्ख्यगुणनया' प्रतिसमयमसंख्येयगुणकारेण । उक्तं च कषायप्राभृतचूर्णौ—"एत्थ अंतोमुहुत्तं किटीओ करेदि, असंखेज्जगु[णही]णाए सेढीए, जोवपदेसाणमसंखेज्जगुणाए सेढीए ।" इति । इदमत्र तात्पर्यम्—किट्टिकरणप्रथमसमये सूचिश्रेण्यसंख्येयभागप्रमाणाः किट्टीः करोति, ताश्च प्रभूताः, ततो द्वितीयसमये-ऽसंख्येयगुणहीना अपूर्वाः किट्टीः करोति, ततो-ऽपि तृतीयसमये-ऽसंख्येयगुणहीनाः । एवमसंख्येयगुणहीनक्रमेण तावत् करोति, यावदन्तर्मुहूर्तप्रमाणायाः किट्टिकरणाद्धायाश्चरमसमयः । तथा योगा-ऽविभागानाश्रित्य प्राक्तनसमयकृतजघन्यकिट्टितो-ऽप्यसंख्येय-

गुणहीना तात्कालिकोत्कृष्टा किट्टिर्भवति । तथा किट्टिकरणाद्धाप्रथमसमये-ऽसंख्येयभागप्रमितान् यान् जीवप्रदेशानपकर्षति, ते स्तोकाः, ततो द्वितीयसमये-ऽसंख्येयगुणान् जीवप्रदेशानपकर्षति, ततोऽप्यसंख्येयगुणांस्तृतीयसमये । एवमसंख्येयगुणक्रमेण तावदपकर्षति, यावत् किट्टिकरणा-द्धायाश्चरमसमयः ।

प्रथमसमये किट्टिषु जीवप्रदेशानां निक्षेपविधिः प्रागभिहितः । सम्प्रति शेषसमयेषु भण्यते-प्रथमसमयतो द्वितीयसमयेऽसंख्येयगुणान् जीवप्रदेशानाकृष्य द्वितीयसमये क्रियमाणायां प्रथमाऽ-पूर्वकिट्टौ प्रभूतान् जीवप्रदेशान् निक्षिपति, ततो द्वितीया-ऽपूर्वकिट्टौ विशेषहीनान् । एवं विशेष-हीनक्रमेण तावत् प्रक्षिपति, यावच्चरमाऽपूर्वकिट्टिः । चरमा-ऽपूर्वकिट्टितः प्रथमसमयकृतायां प्रथमपूर्वकिट्टावसंख्येयभागहीनान् जीवप्रदेशान् निक्षिपति, तत ऊर्ध्वं विशेषहीनक्रमेण तावत् प्रक्षि-पति, यावच्चरमपूर्वकिट्टिः । स्पर्धकेषु निक्षेपः प्रथमसमयवद् वक्तव्यः । एवं शेषेषु सर्वेषु समयेषु निक्षेपोऽभिधातव्यः, नवरं पूर्वपूर्वसमयत उत्तरोत्तरसमयेऽपूर्वाः किट्टीरसंख्येयगुणहीनक्रमेण निर्वर्त-यति, जीवप्रदेशान् पुनरसङ्ख्यातगुणक्रमेणा-ऽपकर्षति ।

'किट्टी०' इत्यादि, किट्टिगुणकारः 'पल्या-ऽसङ्ख्यांशः' पल्योपमा-ऽसंख्येयभागमात्रो ज्ञात-व्य इति गम्यते, उक्तं च कषायप्राभृतचूर्णौ-"**किट्टीगुणगारो पलिदोवमस्स असंखे-ज्जदिभागो ।**" इति, इह किट्टिगुणकार इत्युक्ते (१) तात्कालिककिट्टिराशौ येन गुणकारेण गुणिते प्राक्तनसमयकृतकिट्टिराशिः प्राप्यते, स गुणकारः पल्योपमा-ऽसंख्येयभागप्रमाणः किट्टिगुणकारो बोद्धव्यः ।

(२) यद्वैकं जीवप्रदेशमाश्रित्य प्रथमकिट्टिगतयोगाऽविभागा येन गुणकारेण गुणिताः सन्तो द्वितीयकिट्टिगता योगा-ऽविभागा भवन्ति, स गुणकारः पल्योपमा-ऽसंख्येयभागप्रमाणः किट्टिगुणकार इति व्यपदिश्यते । अयं गुणकारो द्वितीयादिकिट्टिष्वपि तावदभिधातव्यः, यावच्चर-मकिट्टिः । चरमकिट्टिगतैकजीवप्रदेशस्थवीर्या-ऽविभागाः पल्योपमाऽसंख्येयभागेन गुणिता अपूर्वस्प-र्धकप्रथमवर्गणागतैकजीवप्रदेशस्थवीर्या-ऽविभागा भवन्ति । ततो द्वितीयादिवर्गणास्वनन्तरानन्तरे-णैकजीवप्रदेशस्थवीर्या-ऽविभागा विशेषाधिका भवन्ति ।

(३) यद्वा प्रथमकिट्टिगतसकलजीवप्रदेशानां सकलवीर्याऽविभागा येन गुणकारेण गुणिताः सन्तो द्वितीयकिट्टिगतसकलजीवप्रदेशानां सकलवीर्याविभागा जायन्ते, स गुणकारः पल्योपमाऽसंख्येयभाग-प्रमितः किट्टिगुणकार इति व्यवह्रियते । एवं द्वितीयकिट्टिगतसकलजीवप्रदेशप्रतिबद्धसर्ववीर्या-ऽवि-भागा येन गुणकारेण गुणितास्तृतीयकिट्टिगतसकलजीवप्रदेशप्रतिबद्धसर्ववीर्याऽविभागा भवन्ति, स पल्योपमा-ऽसंख्येयभागमात्रः किट्टिगुणकारः । एवमग्रेऽपि वक्तव्यः । इदं त्ववधेयम् चरम-किट्टितः प्रथमा-ऽपूर्वस्पर्धकप्रथमवर्गणागतसमस्तजीवप्रदेशप्रतिबद्धसकलवीर्याविभागा असंख्येयगुण-हीना भवन्ति, आत्मप्रदेशानामसंख्येयगुणहीनत्वात् ।

अथ किट्टिकरणाद्धायां निर्वर्तितकिट्टीनां प्रमाणं व्याहरति–'हवन्ति' इत्यादि, तत्र 'किट्टयः' योगकिट्टयः 'श्रेण्यसङ्ख्यभागाः' सूचिश्रेणेरसंख्येयभागप्रमाणा 'भवन्ति' जायन्ते । नन्व-पूर्वस्पर्धकान्यपि सूचिश्रेणेरसंख्येयभागमात्राणि जायन्ते स्म, तेभ्यः किं किट्टयो हीनाः, उता-ऽधिकाः? न तावदधिकाः, किं तर्हि ? इत्याह–'अपुव्वफड्डाण' इत्यादि, अपूर्वस्पर्धकानां 'पुनः' पुनश्शब्दो वाक्यभेदे 'असङ्ख्यांशः' असंख्येयभागप्रमिताः किट्टयो भवन्ति, ना-ऽधिकाः । उक्तं च कषायप्राभृतचूर्णौ–"किट्टीओ सेढीए असंखेज्जदिभागो । अपुव्वफद्दयाणं पि असंखेज्जदिभागो । ।" इति । तथा किट्टिकरणाद्धायां निर्वर्तिताः सर्वाः किट्टयः सूचिश्रेणि-प्रथमवर्गमूलस्या-ऽसंख्येयभागप्रमिता एव भवन्तीति फलितार्थः, कथमेतदवसीयते ? इति चेत्, उच्यते-अपूर्वस्पर्धकानां सूचिश्रेणिप्रथमवर्गमूलसत्काऽसंख्येयभागप्रमाणत्वं प्राक्प्रतिपादितम् , निर्व-र्तितकिट्टीनां चा-ऽपूर्वस्पर्धकसत्का-ऽसंख्येयभागमात्रत्वेन सुतरां सूचिश्रेणिप्रथमवर्गमूला-ऽसंख्येय-भागप्रमितत्वं सिध्यति ।

जीवप्रदेशानाश्रित्य प्रथमकिट्टितः प्रभृति चरमकिट्टिं यावद् विशेषहीनक्रमेण किट्टयस्ति-ष्ठन्ति, वीर्याऽविभागानाश्रित्य पुनरसङ्ख्यातगुणक्रमेण विद्यन्ते ॥२५३–२५४॥

अथ किट्टिकरणाद्धायां समाप्तायां यद्भवति, तद्व्याजिहीर्षुराह

किट्टीकरणे समत्ते सेकाले विणासइ सजोगी ।
सव्वाणि उभयफड्डाइं जोगो तस्स किट्टिगओ ॥२५५॥

किट्टिकरणे समाप्ते-ऽनन्तरकाले विनाशयति सयोगी ।
सर्वाण्युभयस्पर्धकानि योगस्तस्य किट्टिगत ॥२५५॥ इति पदसंस्कार ।

'किट्टी०' इत्यादि, 'किट्टिकरणे समाप्ते' अन्तर्मुहूर्तप्रमाणायां किट्टिकरणाद्धायां समाप्तायाम् 'अनन्तरकाले' अनन्तरसमये 'सयोगी' निरुध्यमानसूक्ष्मकाययोगो महात्मा सयोगिकेवली भगवान् 'सर्वाण्युभयस्पर्धकानि' समस्तानि पूर्वाऽपूर्वस्पर्धकानि विनाशयति, सर्वाणि पूर्वापूर्वस्पर्धकानि किट्टितया परिणमयतीत्यर्थः ।

'जोगो' इत्यादि, योगस्तु समाप्तकिट्टिकरणस्य 'तस्य' सूक्ष्मकाययोगं निरुन्धानस्य महात्मनः 'किट्टिगतः' ततः प्रभृत्यन्तर्मुहूर्तं यावत् किट्टिगतो भवति । अभिहितञ्च कषायप्राभृत-चूर्णौ–"किट्टीकरणद्धे णिट्ठिदे से काले पुव्वफद्दयाणि अपुव्वफद्दयाणि च णासेदि । अंतोमुहुत्तं किट्टीगदजोगो होदि ।" इति ।

लब्धकिट्टिगतयोगो महात्मा सयोगिगुणस्थानकद्विचरमसमयं यावत् सर्वकिट्टीनामसंख्ये-यभागप्रमिताः किट्टीर्विनाशयति, चरमसमये बहुसंख्येयभागमिता विनाशयति । उक्तं चकषा-यप्राभृतचूर्णौ–"किट्टीणं चरिमसमये असंखेज्जे भागे णासेदि ।" इति ।

अत्र किट्टीर्नाशयति नाम तथाविधप्रभूतयोगा-ऽविभागककिट्टिष्ववस्थितान् जीवप्रदेशा-नल्पतरयोगा-ऽविभागकिट्टिषु परिणमयति । न च तावतीषु किट्टिषु स्थिताः प्रदेशा निर्योगकाः क्रियन्त इत्यर्थो गृह्यते, एकस्मिन्नात्मनि जीवप्रदेशानां सयोगत्वाऽयोगत्वाऽनुपपत्तेः ॥२५५॥

ननु सूक्ष्मकाययोगं निरुन्धानः किं ध्यानं ध्यायति ? इत्यत आह -

सुहुमतणुं रुम्भन्तो झायइ सुहुमकिरियं अपडिवाइ ।
चरिमे समये सव्वाओ किट्टीओ विणासेइ ॥२५६॥

सूक्ष्मतनु रुन्धानो ध्यायति सूक्ष्मक्रियमप्रतिपाति ।
चरमे समये सर्वा किट्टीर्विनाशयति ॥२५६॥ इति पदसंस्कार ।

'सुहुमतणु' इत्यादि, 'सूक्ष्मतनुं' सूक्ष्मकाययोगं 'रुन्धानः' निरुन्धानः सयोगिकेवली महात्मा सूक्ष्मक्रियमप्रतिपाति ध्यानं ध्यायति । उक्तं च कषायप्राभृतचूर्णौ-"सुहुमकिरिय-ऽपडिवादिझाणं झायदि ।" इति ।

एवं तत्त्वार्थवृत्तावपि

"तमपि स योगं सूक्ष्मं निरुन्धन् सर्वपर्यायाऽनुगतम् ।
ध्यानं सूक्ष्मक्रियमप्रतिपात्युपयाति वितमस्कम् ॥१॥" इति ।

सप्तविंशत्यधिकद्विशततमगाथाटीकायां प्राक्प्रतिज्ञातम्, शेषं शुक्लध्यानद्वयमग्रे यथावसरं वक्ष्यत इति । अतस्तृतीयं सूक्ष्मक्रियमप्रतिपातिशुक्लं विवर्णयामः, चतुर्थन्त्वग्रेऽयोगिकेवलि-गुणस्थानकाऽधिकारे वक्ष्यामः ।

सूक्ष्मा क्रिया=काययोगलक्षणा यस्मिन् ध्याने, तत् सूक्ष्मक्रियम्, प्रतिपततीत्येवंशीलं प्रतिपाति, न प्रतिपातीत्यप्रतिपाति, एतद्ध्यानानन्तरं व्युपरतक्रिया-ऽनिवृत्तिध्यानोपलम्भेना-ऽधः-प्रतिपाता-ऽभावात् । सूक्ष्मक्रियं च तदप्रतिपाति चेति सूक्ष्मक्रिया-ऽप्रतिपाति । सूक्ष्मकाययोगं निरुन्धान इदं तृतीयशुक्लध्यानमुपगच्छति, यदवादि ध्यानशतके -

"निव्वाणगमणकाले केवलिणो दरनिरुद्धजोगस्स ।
सुहुमकिरियानियट्टिं तइयं तणुकायकिरियस्स ॥१॥" इति ।

नन्वेकाग्रचिन्तानिरोध इति ध्यानशब्दार्थः, तर्हि केवलिनो मनसो-ऽभावाद् ध्यानं कथमि-ष्यते ? इति चेत्, उच्यते-समीचीनमेतद् केवलज्ञानदर्शनोपयोगेन प्रत्यक्षीकृतसकलपदार्थस्य केवलिन एकाग्रचिन्तानिरोधलक्षणं ध्यानं न घटत इति, किन्तु (१) ध्यानमिव ध्यानमिति व्युत्प-त्तिसमाश्रयणाद् न कश्चिद् दोषः । क उपमार्थः ? उच्यते-यथा पृथक्त्ववितर्कसविचारैकत्ववितर्काऽविचाररूपशुक्लध्यानद्वय धर्मध्यानं चोपगतो जीवादिपदार्थांश्चिन्तयन् कर्माणि क्षपयति, तथा सूक्ष्म-क्रिया-ऽप्रतिपातिध्यानोपगतो मनसो-ऽभावेना-ऽसत्यामपि चिन्तायां कर्माणि क्षपयति । अतः कर्म-

दहनसामान्याद् युक्तमेव भगवतो ध्यानम् , यदभिहितम् आवश्यकचूर्णौ–"इह यथा पृथक्त्वैकत्ववितर्कपूर्वशुक्लध्यानद्वयपरिणत आत्मा-ऽर्थान् चिन्तयन् साम्परायिकं दहति, यथा वा धर्मस्य ध्याने परिणतः कर्मपर्वतं क्षपयति, तथा सूक्ष्मक्रिया-ऽप्रतिपाति-व्युपरतक्रियानिवृत्तिध्यानद्वयपरिणितो-ऽप्यात्मा असत्यामपि चिन्तायां कर्म क्षपयतीत्यतः कर्मक्षपणसामान्यात् ध्यानमिव ध्यानमिति सिद्धम् ।" इति । न च ध्यानस्य कर्मक्षपणसामर्थ्यमसिद्धमिति वाच्यम्, पूर्वमहर्षिभिर्ध्याने कर्मविनाशसामर्थ्यस्य प्रतिपादित्वात् । तथा चाऽत्र ध्यानशतकम्-

"अंबर-लोह-महीणं कमसो जह मल-कलंक-पंकाणं ।
सोज्झावणयणसोसे साहेंति जला-ऽणलाइच्चा ॥१॥
तह सोज्झाइसमत्था जीवंबर-लोह-मेइणिगयाणं ।
झाण-जल-ऽणलसूरा कम्म-मल-कलंक-पंकाणं ॥२॥
तापो सोसो भेओ जोगाणं झाणओ जहा निययं ।
तह ताव-सोस-भेया कम्मस्स वि झाइणो नियमा ॥३॥" इति ।

(२) यद्वा यथा छद्मस्थस्य सुनिश्चलं मनो ध्यानं भण्यते, तथैवा-ऽस्य सयोगिकेवलिनो योगत्वा-ऽव्यभिचारात् सुनिश्चलः कायो ध्यानमुच्यते, इत्थं युक्तमेव भगवतो ध्यानम् , निश्चलत्वसामान्यात् , तथा चोक्तं ध्यानशतके

"जह छउमत्थस्स मणोझाणं भण्णइ सुनिच्चलो संतो ।
तह केवलिणो काओ सुनिच्चलो भन्नइ झाणं ॥१॥" इति ।

(३) अथवा मनोविशेष एव ध्यानमित्यनैकान्तिकम् । इदमुक्तं भवति–यथा ध्यै चिन्तायाम्, तथा ध्यैधातुः काययोगनिरोधेऽपि, नानार्थत्वाद् धातूनाम् , यदुक्तं

"निपाताश्चोपसर्गाश्च धातवश्चेति त्रयः ।
अनेकार्थाः स्मृताः लोके पाठस्तेषां निदर्शनम् ॥१॥" इति ।

अतः सयोगिकेवलिनां कायनिरोधप्रयत्नस्वरूपं ध्यानमुपपद्यते । उक्तं च विशेषा-ऽऽवश्यकभाष्यकारमहर्षिभिः

"झाणं मणोविसेसो तदभावे तस्स संभवो कत्तो ।
भण्णइ भणियं झाणं समए तिविहे वि करणंमि ॥१॥
सुदढप्पयत्तवावारणं निरोहो व विज्जमाणाणं ।
झाणं करणाणमयं न उ चित्तनिरोहमित्तागं ॥२॥
होज्ज न मणोमयं वाइयं च झाणं जिणस्स तदभावे ।
कायनिरोधपत्तयस्स भावमिह को निवारेइ ॥३॥

जइ छउमत्थस्स मणोनिरोहमेत्तप्पयत्तयं झाणं ।
कह कायजोगरोहप्पयत्तयं होइ न जिणस्स ? ॥४॥" इति ।

तथैव गुणस्थानकक्रमारोहेऽपि

"छद्मस्थस्य यथा ध्यानं मनसः स्थैर्यमुच्यते ।
तथैव वपुषः स्थैर्यं ध्यानं केवलिनो भवेत् ॥१॥"

किञ्च जीवो योगसद्भावाज्जिनागमवचनप्रामाण्याच्च सिध्यति सयोगिकेवलिनो ध्यानम् । तृतीयशुक्लध्यानोपगतः काययोगे परमशुक्ललेश्यायां च वर्तते, यदुक्तं ध्यानशतके

"पढमं जोगे जोगेसु वा मयं बितियमेकजोगम्मि ।
तइयं च कायजोगे सुहुमजोगम्मि य चउत्थं ॥१॥
सुक्काए लेसाए दो ततियं परमसुक्कलेसाए ।
थिरयाजियसेलेसिं लेसाईयं परमसुक्कं ॥२॥" इति ।

तृतीयशुक्लध्यानं ध्यायन् वेदनीयादीनां च स्थितिघातादीन् कुर्वन् योगकिट्टीश्च विनाशयन् सयोगिगुणस्थानकचरमसमयं प्राप्नोति, तदानीं योगं निर्मूलतो नाशयति, तद्वयाजिहीर्षुराह—'चरिमे' इत्यादि, 'चरमे समये' सयोगिकेवलिगुणस्थानकस्यान्त्यसमये 'सर्वाः' अशेषाः 'किट्टीः' योगकिट्टीः 'विनाशयति' निःशेषतो नाशयति, इत्थं निश्चयनयमाश्रित्य सयोगिकेवलिगुणस्थानकचरमसमये सर्वात्मना योगकिट्टिनाशो जायमानो जातः । तदेवं समर्थितो योगनिरोधः ।

अथ सयोगिकेवलीचरमसमयेऽयोगिकेवलिकालतुल्यस्थितिकरण-जघन्यस्थितिसंक्रमादयो भण्यन्ते सयोगिकेवलिगुणस्थानकचरमसमये चरमस्थितिघातेन नाम-गोत्र-वेदनीयानामयोगिगुणस्थानकोपरितनस्थितिं घातयित्वोदये स्तोकं दलं ददाति, ततो-ऽनन्तरे द्वितीयस्मिन्निषेके-ऽसंख्येयगुणं दलं ददाति । ततो-ऽपि तृतीयनिषेके-ऽसंख्येयगुणं ददाति । एवमसंख्येयगुणक्रमेण तावद् ददाति, यावदयोगिकेवलिगुणस्थानकस्य चरमसमयः ।

इत्थं सयोगिगुणस्थानकचरमसमये सर्वाण्यपि कर्माण्ययोगिकेवलिगुणस्थानककालसमस्थितिकानि जातानि, येषां च कर्मणामयोग्यवस्थायामुदयाऽभावः, तेषां स्थितिं स्वरूपं प्रतीत्य समयोनां विदधाति । सामान्यतः सत्ताकालं तु प्रतीत्या-ऽयोग्यवस्थासमानानीति । कुतः ? इति चेत्, उच्यते—अनुदयवत्यः प्रकृतयश्चरमसमये स्तिबुकसंक्रमेणोदयवतीषु संक्रमिष्यन्ति, तेन चरमसमये स्वरूपेण न प्राप्स्यन्ते, किन्तूदयवत्प्रकृतिरूपेण प्राप्स्यन्ते । तेनोदयवतीनां प्रकृतीनां दलिकं कालमाश्रित्या-ऽयोगिचरमसमयं यावत् स्वस्वरूपेण स्थास्यति, उदयरहितानां प्रकृतीनां दलिकं तु द्विचरमसमयं-यावत् स्वरूपेण, चरमसमये स्तिबुकसंक्रमणेन तासां संक्रमयिष्यमाणत्वेन परस्वरूपेणोपलम्भात् ।

यद्वा येषां कर्मणामयोगिकेवलिगुणस्थानकेऽुदयो भवति, तेषामयोगिकेवलिगुणस्थानकाल-

प्रमाणा स्थितिर्भवति, येषां तूदयो न भवति, तेषां निषेकमाश्रित्य समयोना भवति, प्रथमनिषेकस्य स्तिबुकसंक्रमेण संक्रान्तत्वात् । कालमाश्रित्य त्वयोगिगुणस्थानककालप्रमाणा भवति, यथा बन्धेऽबाधास्थितौ दलाऽभावेऽपि स्थितिश्चरमनिषेकमाश्रित्य भण्यते, तथैवात्राऽपि चरमनिषेकमाश्रित्य स्थितिरयोगिगुणस्थानकालप्रमाणा भण्यते । प्रत्यपादि च सप्ततिकाचूर्णौ–"**तस्स चरिमसयोगिकेवलिस्स कम्माणि उव्वट्टिज्जमाणाणि उव्वट्टिज्जमाणाणि सव्वोवट्टणाए उव्वट्टियाणि अजोगिकेवलिकालसमठितियाणि जायाणि । जेसिं कम्माणं अजोगिम्मि उदओ नत्थि, तेसिं ठितिं समऊणं ठवेइ दलिअं पडुच्च न कालं ।**" इति ।

तथा सयोगिगुणस्थानकचरमसमये नरकद्विक-तिर्यग्द्विक-पञ्चेन्द्रियजातिरहितशेषजातिचतुष्टय-स्थावर-सूक्ष्म-साधारणा-ऽऽतपोद्योतनामानि वर्जयित्वा शेषाणां नामकर्मनवतिप्रकृतीनां (९०) वेदनीयद्विकस्य गोत्रद्विकस्य च जघन्यस्थितिसंक्रमो भवति । अभ्यधायि च कर्मप्रकृतिचूर्णौ–"**चरिमसजोगे जा अत्थि, तासिं सो चेव 'जोगंतिया चउणउती पुव्ववण्णिया, तासि सो चेव सजोगिकेवली चरिमोवट्टणे वट्टमाणो सामो ।**" इति । तदानीमेव मनुष्यगति-पञ्चेन्द्रियजात्यौदारिकसप्तक-तैजससप्तक-प्रथमसंहनन-संस्थानषट्क-वर्णादिविंशतिक-प्रशस्ताऽप्रशस्तखगति-पराघातोपघाता-ऽगुरुलघु-तीर्थङ्कर-निर्माण-त्रस-बादर-पर्याप्त-प्रत्येक-स्थिराऽस्थिर-शुभा-ऽशुभ-सुभगा-ऽऽदेय-यशःकीर्त्युच्चैर्गोत्ररूपाणां द्वाषष्टिप्रकृतीनां (६२) जघन्यस्थित्युदीरणा । गुणितकर्मांशस्य च महात्मन एतासां प्रकृतीनामुत्कृष्टप्रदेशोदीरणा जायते । इह कर्मप्रकृतिचूर्णिकारादिभिः स्वरद्विकस्योच्छ्वासस्य च प्रकृत्युदीरणोत्कृष्टप्रदेशोदीरणे क्रमेण वाग्योगनिरोधकाल उच्छ्वासनिरोधकाले च दर्शिते, अक्षराणि त्वेवम्–"**उस्सासणामस्स आणापाणुपज्जत्तीए पज्जत्ता सव्वे उदीरगा सुस्सरदुस्सराणं भासापज्जत्तीए पज्जत्तगा उदीरगा । 'सव्वणूणुस्सासो भासा वि य जा ण रुज्झंति' सव्वण्णूणं केवलीणं उस्सासभासातो जाव ण निरुज्झंति, ताव उदीरेति, परत्थ उदयाभावातो णत्थि उदीरणा । ××××सरणिरोहकालम्मि सुस्सरदुस्सराणं सो चेवुक्कोसपदेसुदीरतो(.. गो) आणपाणुणिरोहसमते सो चेव केवली आणपाणूणं ।**"इति । तेषां जघन्यस्थित्युदीरणा पुनः सयोगिकेवलिचरमसमये प्रोक्ता, अक्षराणि त्वेवम्- "**मणुयगति-पंचिंदियजाति-उरालियसत्तगं छसंठाण-पढमसंघयणं उवघायं परघायं उस्सासं पसत्थापसत्थविहायगति-तसं बायरं पज्जत्तगं पत्तेयसरीरं सुभगं सुसरं दुसरं आएज्जं जसं तित्थकरं उच्चागोयं, एत्ताओ बत्तीसं धुवोदीरणातेतीससहितातो पणसट्ठि होंति । एतासिं उदीरणंते त्ति सयोगिकेवलिचरमसमये जहण्णिया ठिदिउदीरणा होइ ।**" इति । तदत्र प्रकृत्युदीरणाभावे कथं स्थित्युदीरणा भवति ? इति वयं न विद्मः तेषां कोऽभिप्राय इति ।

*अतो वयमपि तथैव दर्शयामः । न चैकान्तेन युक्त्युपन्यास आग्रहः कार्यः, अतीन्द्रियपदार्थेषु तर्काणामकिञ्चित्करत्वाद् आगमोपपत्तिगम्यमानत्वाच्च तत्त्वस्य, यदुक्तं योगबिन्दौ दुःषमान्धकारप्रदीपैर्जिनप्रवचनकुशलैः **श्रीहरिभद्रसूरिपादैः**

"यत्नेनाऽनुमितोऽप्यर्थः कुशलैरनुमातृभिः ।
अभियुक्ततरैरन्यैरन्यथैवोपपाद्यते ॥१॥
ज्ञायेरन् हेतुवादेन पदार्था यद्यतीन्द्रियाः ।
कालेनैतावता प्राज्ञैः कृतः स्यात्तेषु निश्चयः ॥२॥
न चैतदेवं यत्तस्माच्छुष्कतर्कग्रहो महान् ।
मिथ्याभिमानहेतुत्वात्त्याज्य एव मुमुक्षुभिः ॥३॥" इति ।

उक्तश्चाऽन्यत्राऽपि- "आगमश्चोपपत्तिश्च सम्पूर्णं दृष्टिलक्षणम् ।
अतीन्द्रियाणामर्थानां सद्भावप्रतिपत्तये ॥१॥" इति ।

एवं चरमसमये पञ्चषष्टिप्रकृतीनां जघन्यस्थित्युदीरणा भवति ।

अथवा कर्मप्रकृतिचूर्णिकारादिभिर्यदुक्तं सयोगिकेवलिगुणस्थानकचरमसमये उच्छ्वासस्य जघन्यस्थित्युदीरणा भवतीति, तत् सामान्येना-ऽभिहितम्, "व्याख्यानतो विशेषप्रतिपत्तिर्नहि संदेहादलक्षणम् ।" इति न्यायेनोच्छ्वासं निरुन्धानस्य सयोगिकेवलिनश्चरमसमये उच्छ्वासस्य जघन्यस्थित्युदीरणा भवति । एवं वाग्योगं निरुन्धतः सयोगिकेवलिनश्चरमसमये सुस्वर-दुःस्वरयोर्जघन्यस्थित्युदीरणा भवतीति व्याख्येयम् ● । तत्त्वं तु केवलिनो बहुश्रुता वा विदन्ति ।

*धवलाकारास्तु सुस्वरदुःस्वरयोरुच्छ्वासस्य च प्रकृत्युदयं क्रमेण वाग्योगनिरोधकालमुच्छ्वासनिरोधकालं च यावत् प्रतिपादयन्ति । अक्षराणि त्वेवम् "उस्सासस्स आणापाणपज्जत्तीए पज्जत्तयदो जाव चरिमसमयउस्सासणिरोहकारओ त्ति ताव वेदओ । ××× सुस्सरदुस्सराणं को वेदओ ? भासापज्जत्तीए पज्जत्तदो जाव भासाणिरोहस्स अकारओ त्ति" इति । एवमुत्कृष्टप्रदेशोदीरणामपि निरूपयन्ति । किन्तु प्रकृत्युदीरणां जघन्यस्थित्युदीरणां च सयोगिकेवलिचरमसमयं यावद् व्याहरन्ति । अक्षराणि त्वेवम् "उस्ससणामाए मिच्छाइट्ठिपहुडि जाव सजोगि चरिमसमओ त्ति [उदीरणा] ××× सुस्सरदुस्सराणं मिच्छाइट्ठिप्पहुडि जाव सजोगिकेवलिचरमसमओ त्ति उदीरणा । ××× अगुरुलघुअ--उवघाद-परघाद-उस्सास-पसत्थापसत्थविहायगदि--तस-बादर-पज्जत्त-पत्तेयसरीर--थिराथिर-सुहासुह-सुभग-सुस्सर-दुस्सर-आदेज्ज-जसगित्ति-तित्थयर-णिमिणणामाणं जहण्णट्ठिदिउदीरओ को होदि ? चरिमसमयसजोगी ।" इति । इत्थं वाग्योगोच्छ्वासयोः प्राग् निरुद्धत्वात् सुस्वर-दुःस्वरोच्छ्वासानां प्रकृत्युदयं विना सयोगिकेवलिचरमसमये तेषां प्रकृत्युदीरणा जघन्यस्थित्युदीरणा च कथं भवेताम्? उदयाभावे उदीरणाऽयोगादिति नाऽवबुध्यते तदभिप्रायः ।

●व्याख्यातश्चैतदर्थः सत्कर्मपञ्जिकायामपि "एत्थ जाव सयोगिकेवलिचरिमसमयो ता उस्सासमुदीरेदि त्ति उत्ते उस्सासणिरोहं करेंतकेवलिचरिमसमयो जाव तावेदस्सुस्सासुदीरणा जीव-पदेसाणं परिप्फंदमुस्सासरूवं च करेदि । तत्तो परं ते दोण्णि वि कज्जाणि करेदुमसत्था होदूण तत्थ फलं सगरूवेण पदेसणिज्जरं ण करेदि त्ति वत्तव्वं ॥" इति ।

तथा तैजससप्तक-मृदु लघुवर्जशुभवर्णादिनवका-ऽगुरुलघु-स्थिर-शुभ-सुभगा-ऽऽदेय-यशःकीर्ति-निर्माणोच्चैर्गोत्र-तीर्थकरनाम्नां पञ्चविंशतिसंख्यकानामुत्कृष्टा-ऽनुभागोदीरणा, कृष्ण-नील-दुरभिगन्ध-तिक्त-कटु-शीत-रूक्षा-ऽस्थिरा-ऽशुभरूपाणां च नवानां प्रकृतीनां जघन्यानुभागोदीरणा भवति। उक्तञ्च कर्मप्रकृतिचूर्णौ "सजोगिकेवलिस्स अंते सव्वोवट्टणाए वट्टमाणस्स सुभपगतीणं, कयरासिं? भन्नइ-तेजतिगसत्तगं सुभवन्नेक्कारसगं मउय-लहुयहीणं अगुरुलहुगं थिर-सुभ-सुभगं आदेज्जं जसं निमिणं उच्चागोयं तित्थकरनामाणं एयासि पणुवीसाणं पगतीणं उक्कोसाणुभागउदीरणा लब्भति। कक्खडगुरुगहीणं कुवण्णणवगं अथिरं असुभं एतेसिं णवण्हं कम्माणं सजोगिकेवलिचरिमसमए जहण्णाणुभागुदीरणा।" इति।

सयोगिकेवलिगुणस्थानकचरमसमये औदारिकसप्तक-तैजससप्तक-प्रथमसंहनन-संस्थानषट्क-वर्णादिविंशतिक-प्रशस्ता-ऽप्रशस्तखगति-पराघातोपघाता-ऽगुरुलघु-निर्माण-प्रत्येक-स्थिरा-ऽस्थिर-शुभा-ऽशुभरूपाणां द्विपञ्चाशत्प्रकृतीनां(५२)जघन्यस्थित्युदयो गुणितकर्मांशस्य च महात्मन उत्कृष्टप्रदेशोदयो भवति, सुस्वरदुःस्वरयोरुच्छ्वासस्य च जघन्यस्थित्युदयो गुणितकर्मांशस्य चोत्कृष्टप्रदेशोदयः प्रागेव क्रमेण वाग्योगनिरोधचरमसमये उच्छ्वासनिरोधचरमसमये च भवति स्म। तथा तैजससप्तक-मृदुलघुवर्जशुभवर्णादिनवकाऽगुरुलघु-स्थिर-शुभ सुभगा-ऽऽदेय-यशः कीर्ति-निर्माण-तीर्थङ्करोच्चैर्गोत्र लक्षणानां पञ्चविंशतिप्रकृतीनामुत्कृष्टानुभागोदयो कृष्ण-नील-दुरभिगन्ध-तिक्त-कटु-शीत-रूक्षा-ऽस्थिरा-ऽशुभरूपाणां च नवानां जघन्याऽनुभागोदयो भवतः, उदीरणातुल्यत्वात्तयोः ॥२५६॥

अथ सयोगिकेवलिगुणस्थानकचरमसमये उदयविच्छेदं गाथात्रयेण प्रतिपादयति

चरिमसमये सजोगिस्स य अण्णयरस्स वेयणीयस्स।
ओरालियदुग-तेजस-कम्मण-संठाणछक्काणं ॥२५७॥
तह पढमसंघयण-वण्णचउक्काण तह दोण्ह खगईणं।
अगुरुलहुय-उवघाय-परघाय-निम्माणणामाणं ॥२५८॥
पत्तेय-थिरा-ऽथिर-णामाण तह सुहा-ऽसुहाण वोच्छिण्णो।
उदओ पुव्वं चिय सुसर-दुस्सरुस्सासणामाणं ॥२५९॥

चरमसमये सयोगिनश्चा-ऽन्यतरस्य वेदनीयस्य।
औदारिकद्विक-तैजस-कार्मण-संस्थानषट्कानाम् ॥२५७॥
तथा प्रथमसंहनन-वर्णचतुष्कयोस्तथा द्वयोः खगत्योः।
अगुरुलघूपघात-पराघात-निर्माणनाम्नाम् ॥२५८॥

प्रत्येक-स्थिरा-ऽस्थिरनाम्नां तथा शुभा-ऽशुभयोर्व्यवच्छिन्न ।
उदय पूर्वमेव सुस्वर-दुस्स्वरोच्छ्वासनाम्नाम् ॥२५१॥ इति पदसंस्कार ।

'**चरिमसमये**' इत्यादि, तत्र 'सयोगिनश्च' सयोगिकेवलिनश्चरमसमये च 'अन्यतरस्य वेदनीयस्य' साता-ऽसातयोरन्यतरवेदनीयकर्मणः 'औदारिकद्विक-तैजस-कार्मण-संस्थानषट्कानाम्' औदारिकद्विकस्य=औदारिकशरीरौदारिकाङ्गोपाङ्गरूपस्य तैजसस्य=तैजसशरीरनामकर्मणः कार्मणस्य=कार्मणशरीरनामकर्मणः संस्थानषट्कस्य=समचतुरस्र-न्यग्रोधपरिमण्डल-सादि-वामन-कुब्ज-हुण्डलक्षणस्य च, तथा 'प्रथमसंहनन-वर्णचतुष्कयोः' प्रथमसंहननस्य=वज्रर्षभनाराचस्य वर्णचतुष्कस्य=वर्ण-गन्ध-रस-स्पर्शाख्यस्य च, तथा 'द्वयोः खगत्योः' प्रशस्तविहायोगतेरप्रशस्तविहायोगतेश्च 'अगुरुलघूपघात-पराघात-निर्माणनाम्नाम्' अगुरुलघुनामकर्मण उपघातनामकर्मणः पराघातनामकर्मणो निर्माणनामकर्मणश्च 'प्रत्येक-स्थिरा-ऽस्थिरनाम्नां' प्रत्येकनामकर्मणः स्थिरनामकर्मणो-ऽस्थिरनामकर्मणश्च 'शुभा-ऽशुभयोः' शुभनामकर्मणो-ऽशुभनामकर्मणश्चोदयो व्यवच्छिन्नः । तत्रैकतरं वेदनीयं यदयोगिकेवलिना न वेदयितव्यम् , तत् सयोगिकेवलिचरमसमय उदयतो व्यवच्छिद्यते,अयोगिगुणस्थानके वेदनीयोदयस्य परावृत्तेरभावात् । तथा नामकर्मणोऽप्युक्तौदारिकद्विकादिप्रकृतयो व्यवच्छिन्नोदया भवन्ति, उत्तरत्रोदया-ऽभावात् ।

इह मूले सयोगिकेवलिगुणस्थानकचरमसमये नामकर्मणः सप्तषष्टिभेदानाश्रित्य षड्विंशतिनामकर्मोत्तरप्रकृतीनामुदयविच्छेदो-ऽभिहितः, त्र्यधिकशतभेदांस्त्ववलम्ब्य द्वापञ्चाशत्प्रकृतीनामुदयविच्छेदो वक्तव्यः, औदारिकद्विकमपनीयौदारिकशरीरौदारिकाङ्गोपाङ्गौदारिकौदारिकबन्धनौदारिकतैजसबन्धनौदारिककार्मणबन्धनौदारिकतैजसकार्मणबन्धनौदारिकसंघातनलक्षणौदारिकसप्तकस्य तैजस-कार्मणलक्षणशरीरद्वयमपनीय तैजसशरीर-तैजसतैजसबन्धन-तैजसकार्मणबन्धन-तैजससंघातन-कार्मणशरीर-कार्मणकार्मणबन्धन-कार्मणसंघातनाख्यतैजससप्तकस्य वर्णचतुष्कञ्चा-ऽपनीय कृष्ण-नील-लोहित-हारिद्र-शुक्ल-तिक्त-कटु-कषाया-ऽम्ल-मधुर-सुरभि-दुरभि-गुरु-लघु-मृदु-खर-शीतोष्ण-स्निग्ध-रूक्षरूपविंशतिप्रकृतीनां प्रक्षेपात् ।

ननु सयोगिकेवलिचरमसमये सुस्वर-दुःस्वरोच्छ्वासनामकर्मणामप्युदयविच्छेदः कुतो नोक्तः ? इत्यत आह-'पुव्वं' इत्यादिः, पूर्वमेव 'सुस्वर-दुःस्वरोच्छ्वासनाम्नां' सुस्वरनामकर्मणो दुःस्वरनामकर्मण उच्छ्वासनामकर्मणश्चोदयो व्यवच्छिन्नः, वाग्योगनिरोधकाले सुस्वर-दुःस्वरयोरुच्छ्वासनिरोधकाले चोच्छ्वासस्योदयो व्यवच्छिन्न इत्यर्थः । यदुक्तं सप्ततिकाचूर्णौ-"तम्मि चेव समए ओरालिय-तेया-कम्मइगसरीरसंबद्धाणं बंधण-संघाय छन्हं संठाणाणं पढमसंघयण-ओरालियंगोवंगं वण्ण-गंध-रस-फास-अगुरु० उवघाय-पराघाय-विहग०२-पत्तेय-थिराथिर-सुभासुभ-निमेणणामाणं एएसिं कम्माणं उदओदीरणाणं वोच्छेओ, ऊसास-सरा हेट्ठओ निरुद्धा ।" इति । अत्र चूर्णिकारैर्नामकर्मण एवोदयोदीरणाविच्छेदः प्रदर्शितः, तेना-ऽन्यतरवेदनीयस्योदयविच्छेदो नोल्लिखितः ।

सयोगिचरमसमये सर्वथोच्छ्वासनिरोधं मन्यन्त आवश्यकचूर्णिकारादय इत्यस्माकं मतिः। यदुक्तमावश्यकचूर्णौ—"ताहे आणपाणुणिरोहं काउं अजोगो भवति।" इति।

सूक्ष्मक्रिया-ऽप्रतिपातिध्यानसामर्थ्येन संस्थानप्रमाणमुच्छ्रायप्रमाणं च क्रमेण ह्रासयतः केवलिनश्चरमसमये यत् संस्थानप्रमाणमुच्छ्रायप्रमाणं च भवति, तदुच्छ्रायप्रमाणतस्त्रिभागहीनौ संस्थानोच्छ्रायौ निरुद्धयोगस्य महात्मनः सयोगिकेवलिचरमसमये भवतः, यतो मुखश्रवणोदरादिविवराणि स्वात्मप्रदेशैः पूरितानि भवन्ति, यदुक्तमावश्यकचूर्णौ—"जाइं च से सरीरे कम्मणिव्वत्तियाइं मुहसवणसिरोदरादिच्छिद्दाइं ताणि वियोएमाणो ते तिभागूणं पदेसोगाहणं करेति।" इति। एवं वाचकमुख्यैरपि—

"चरिमभवे संस्थानं यादृग् यस्योच्छ्रयप्रमाणं च।
तस्मात् त्रिभागहीनावगाहसंस्थानपरिणाहः ॥१॥" इति ॥२५७-२५८-२५९॥

अथ सयोगिकेवलिगुणस्थानचरमसमये ये सप्त पदार्था युगपद् व्यवच्छिद्यन्ते, तान् व्याजिहीर्षुराह—

किट्टी जोगो ठिइरसघाओ णामदुगुदीरणा लेसा।
बंधो तइयज्झाणं य सत्त अन्तम्मि वोच्छिण्णा ॥२६०॥

किट्टयो योग स्थितिरसघातो नामद्विकोदीरणा लेश्या।
बन्धस्तृतीयध्यानं च सप्ता-ऽन्ते व्यवच्छिन्ना ॥२६०॥ इति पदसंस्कारः।

'किट्टी' इत्यादि, 'किट्टयः' प्राग्निरूपितशब्दार्थाः सर्वा योगकिट्टयः 'योगः' जीवप्रदेशपरिस्पन्दनलक्षणः करणवीर्यमित्यर्थः, स्थितिरसघातो 'नामद्विकोदीरणा' नाम-गोत्रयोरुदीरणा 'लेश्या' शुक्ललेश्या 'बन्धः' सातवेदनीयस्यैर्यापथिकबन्धः 'तृतीयध्यानं' सूक्ष्मक्रिया-ऽप्रतिपातिनामधेयं ध्यानं च सर्वसङ्ख्यया 'सप्त' सप्तसङ्ख्यकाः पदार्था 'अन्ते' सयोगिकेवलिगुणस्थानकस्य चरमसमये युगपद् 'व्यवच्छिन्नाः' अपुनर्भाविना-ऽपगता भवन्ति। न चैषा सप्तपदार्थव्यवच्छित्तिः स्वमनीषिकया-ऽभिहिता, पूर्वमहर्षिभिरुक्तत्वात्। तथा चा-ऽऽहुः श्रीमन्मलयगिरिपादाः—"तस्मिंश्च सयोग्यवस्थाचरमसमये सूक्ष्मक्रिया-ऽप्रतिपातिध्यानं सर्वाः किट्टयः सद्वेद्यबन्धो नामगोत्रयोरुदीरणा योगः शुक्ललेश्या स्थित्यनुभागघातश्चेति सप्तपदार्थाः युगपद्व्यवच्छिद्यन्ते।" इति। भावार्थः पुनरयम्—सयोगिगुणस्थानकचरमसमये सर्वा योगकिट्टयो व्यवच्छिद्यन्ते, सर्वथा तन्नाशस्य दर्शितत्वात्। योगकिट्टीनां व्यवच्छिन्नत्वाद् योगोऽपि व्यवच्छिद्यते। न च किट्टीनां नाशेन योगव्यवच्छेदोऽनुक्तः सिद्धः, कुतः पदार्थान्तरत्वेनोपदिश्यत इति वाच्यम्, मन्दबुद्धिजनानां सुखावबोधाय प्रतिपादितत्वेन विरोधा-ऽभावात्। करणवीर्यरूपस्य योगस्य व्यवच्छेदात् स्थितिघातरसघातलक्षणा-ऽपवर्तना, उदीरणा लेश्या बन्धश्च निवर्तन्ते, तेषां योगनिमित्तत्वात् "निमित्ता-ऽभावे नैमित्तिकस्याप्यभावः" इति न्यायोपलम्भाच्च। तृतीयध्यानस्य फलं योग-

निरोधः, तेन योगनिरोधलक्षणफले समुत्पन्ने तत्कारणं सूक्ष्मक्रिया-ऽप्रतिपातिध्यानं निवर्तते, प्रयोजनसिद्धेः । इत्थं सूक्ष्मक्रियाऽप्रतिपातिध्यानबलेन निरुद्धकाययोगो विगतलेश्यो देहे स्थितोऽपि निर्वाणं यियासुः केवलज्ञानी भगवान् निष्क्रियो भवति । उक्तं च

"ध्याने दृढा-ऽर्पिते परमात्मनि ननु निष्क्रियो भवति कायः ।
प्राणापाननिमेषोन्मेषवियुक्तो मृतस्येव ॥१॥
ध्याना-ऽर्पितोपयोगस्या-ऽपि न वाङ्-मनसक्रिये यस्मात् ।
अन्तर्वर्त्तित्वादुपरमतस्तेन तयोर्ध्यानेन निरोधनं नेष्टम् ॥२॥
सततं तेन ध्यानेन निरुद्धे सूक्ष्मकाययोगेऽपि ।
निष्क्रियदेहो भवति स्थितो-ऽपि देहे विगतलेश्यः ॥३॥" इति ॥२६०॥

तदेवं समर्थितोऽष्टमोऽधिकारः ।

सयोगिकेवलिगुणस्थानकचरमसमये प्रवर्तमानपदार्थानां यन्त्रकम् ।

(१) उदयवतीना प्रकृतीनामयोगिगुणस्थानकाद्धाप्रमाणा स्थितिं विदधाति ।

(२) अनुदयवतीना प्रकृतीनामयोगिगुणस्थानकाद्धापेक्षया समयोना स्थितिं निर्वर्तयति ।

(३) नरकद्विक-तिर्यग्द्विक-पञ्चेन्द्रियवर्जजातिचतुष्टय-स्थावर-सूक्ष्म-साधारणा-ऽऽतपोद्योतवर्जानां शेषाणां नामकर्मनवतिप्रकृतीनां (९०) वेदनीयद्विक-गोत्रद्विकयोश्च जघन्यस्थितिसक्रमो भवति ।

(४) मनुष्यगति-पञ्चेन्द्रियजात्यौदारिकसप्तक-तैजससप्तक-प्रथमसहनन-सस्थानषट्क-वर्णादिविंशतिक-खगतिद्विक-पराघातोपघातोच्छ्वासा-ऽगुरुलघु-तीर्थङ्कर-निर्माण-त्रस-बादर-पर्याप्त-प्रत्येक-स्थिरा-ऽस्थिर-शुभा-ऽशुभ-सुभग-सुस्वर-दुःस्वरा-ऽऽदेय-यशःकीर्त्युच्चैर्गोत्ररूपाणां पञ्चषष्टिप्रकृतीनां (६५) जघन्यस्थित्युदीरणा भवति ।अथवा सुस्वर-दुःस्वरोच्छ्वासवर्जाना निरुक्तमनुष्यगत्यादीना जघन्यस्थित्युदीरणा भवति ।

(५) अनन्तरोक्तपञ्चषष्टिप्रकृतीनाम् (६५) उत्कृष्टप्रदेशोदीरणा गुणितकर्मांशजीवस्य भवति ।अथवा सुस्वर-दुःस्वरोच्छ्वासवर्जानां शेषाणा द्वाषष्टिप्रकृतीनाम् (६२) उत्कृष्टप्रदेशोदीरणा भवति ।

(६) तैजससप्तक-मृदुलघुवर्जशुभवर्णादिनवका-ऽगुरुलघु-स्थिर-शुभ-सुभगा-ऽऽदेय-यशःकीर्त्ति-निर्माणोच्चैर्गोत्र-तीर्थंकरनाम्ना पञ्चविंशतिकर्मणाम् (२५) उत्कृष्टानुभागोदीरणा भवति ।

(७) अनन्तरोक्तानां पञ्चविंशतिप्रकृतीनामुत्कृष्टानुभागोदयो भवति ।

(८) कृष्ण-नील-दुरभिगन्ध-तिक्त-कटु-शीत-रूक्षा-ऽस्थिरा-ऽशुभरूपाणां नवप्रकृतीनां (९) जघन्या-ऽनुभागोदीरणा भवति ।

(९) अनन्तरोक्तनवप्रकृतीना जघन्या-ऽनुभागोदयो भवति ।

(१०) औदारिकद्विक-तैजस-कार्मणशरीर-सस्थानषट्क-प्रथमसहनन-वर्णचतुष्क-खगतिद्विका-ऽगुरुलघूपघात-पराघात-निर्माण-प्रत्येक-स्थिरा-ऽस्थिर-शुभा-ऽशुभा-ऽन्यतरवेदनीयरूपाणा सप्तविंशतिप्रकृतीनाम् (२७) उदयो व्यवच्छिद्यते । नामकर्मणस्त्र्यधिकशतभेदाँस्त्वाश्रित्य त्रिपञ्चाशत्प्रकृतीनामुदयो व्यवच्छिद्यते ।

(११) चरमभवाऽपेक्षया देहः सस्थानत उच्छ्रायतश्च त्रिभागहीनो भवति ।

(१२) सप्तपदार्थाना व्यवच्छित्ति । तद्यथा

(१) योगकिट्टीना सर्वथा विनाश । (२) योगस्य विनाश । (३) स्थितिघात-रसघातयोर्विच्छेदः ।
(४) नामगोत्रयोरुदीरणाया व्यवच्छेद । (५) शुक्ललेश्याया उच्छेद ।
(६) सातवेदनीयबन्धस्योच्छेद । (७) सूक्ष्मक्रिया-ऽप्रतिपातिध्यानस्या-ऽपगम ।

सम्प्रति नवममधिकारमयोगिगुणस्थानकाख्यं प्रतिपादयितुकाम आह

सेकाले लहइ अजोगिगुणट्ठाणमुवयाइ झाणं च ।
वोच्छिण्णकिरियमंतोमुहुत्तपमिअं च सेलेसिं॥२६१॥

अनन्तरकाले लभते-ऽयोगिगुणस्थानकमुपयाति ध्यानं च ।
व्यवच्छिन्नक्रियमन्तर्मुहूर्तप्रमितां च शैलेशीम् ॥२६१॥ इति पदसंस्कारः ।

'सेकाले' इत्यादि, 'अनन्तरकाले' सयोगिकेवलिगुणस्थानचरमसमयादनन्तरसमय इत्यर्थः, 'अयोगिगुणस्थानकं' योगः-मनोवाक्कायव्यापाररूपो विद्यते-ऽस्येति योगी "अतो-ऽनेक-स्वरात्" (सिद्धहेम० ७-२-६) इतिसूत्रेण इन्प्रत्ययः, न योगीत्ययोगी,तस्य गुणस्थानमित्ययोगि-गुणस्थानम्, तत् 'लभते' प्राप्नोति । तदानीं चा-ऽन्यत्किं प्राप्नोति ? इत्यत आह-'उवयाइ झाणं च' इत्यादि, 'उपयाति' प्राप्नोति ध्यानं च 'व्यवच्छिन्नक्रियम्' व्यवच्छिन्नक्रियाऽप्रतिपाति चतुर्थशुक्लं 'अन्तर्मुहूर्तप्रमितां च' ह्रस्वाक्षरपञ्चकोच्चारणकालप्रमाणां च शैलेशीम्, चकारः समुच्चये । उक्तं च भाष्यकृद्भिः

"रुंभइ स कायजोगं संखाईएहि चेव समएहिं ।
तो कयजोगनिरोहो सेलेसीभावणामेइ ॥१॥
तणुरोहारंभाओ झायइ सुहुमकिरियाणियट्टिं सो ।
वुच्छिन्नकिरियमप्पडिवाइं सेलेसिकालम्मि ॥२॥" इति ।

एवमावश्यकचूर्णिकारैरपि निगदितम्-"पच्छा समुच्छिन्नकिरियं झाणं अणुप्प-विट्ठो जावतिएणं कालेणं अतुरियं अविलंबितं ईसीपंचरहस्सक्खरा 'क ख ग घ ङ' एते उच्चारिज्जंति, एवतिकालं सेलेसिं पडिवज्जदि ।" इति ।

ननु किं नाम व्युच्छिन्नक्रियमप्रतिपाति ध्यानम् ? इति चेत्, उच्यते-व्युच्छिन्ना=व्युपरता क्रिया=सूक्ष्मकाययोगलक्षणा यस्मिन्, तत्, न प्रतिपतनशीलमित्यप्रतिपाति । उक्तं च तत्त्वार्थ-वृत्तौ

"कायिकी च यदेषाऽपि सूक्ष्मोपरमति क्रिया ।
अनिवर्ति तदभ्युक्तं ध्यानं व्युपरतक्रियम् ॥१॥ इति ।

ननु मनसो-ऽभावेन योगा-ऽभावेन च प्रयत्नविशेषाऽभावादयोगिनो ध्यानं कथं भवितुम-र्हति ? इति चेत्, उच्यते-पूर्वप्रयोगात् सिध्यत्ययोगिनो ध्यानम्, यथा कुलालचक्रं भ्रमणनि-मित्तदण्डादेः क्रियानिवर्तने-ऽपि पूर्वा-ऽभ्यासाद् भ्राम्यति, तथा मनःप्रभृतिसर्वयोगोपरमे-ऽपि पूर्वविहितध्यानसंस्कारादयोगिनो ध्यानं भवतीत्यर्थः । (२) तथा जीवोपयोगरूपभावमनः-सत्त्वादयोगिनो ध्यानं भवितुमर्हति (३) तथा ध्यानकार्य-कर्मनिर्जरणे हेतुत्वादयोगिनोध्यानमुपप-

द्यते, यथा पुत्रकार्यादपुत्रोऽपि पुत्रो भण्यत इति । किञ्च (४) ध्यैधातोरनेकार्थत्वेन 'ध्यै अयोगित्वे' इत्यभ्युपगमाद् (५) जिनागमवचनप्रामाण्याच्चा-ऽयोगिनो ध्यानं सिध्यति । उक्तं च विशेषावश्यकभाष्ये

"पुव्वप्पओगओ वि य कम्मविणिज्जरणहेउतो वा वि ।
सद्दत्थबहुत्ताओ तह जिणचंदागमाओ य ॥१॥
चित्ताभावे वि सया सुहुमोवरयकिरियाइ भण्णंति ।
जीवोवओगसब्भावओ भवत्थस्स झाणाइं ॥२॥" इति ।

अत्र पूर्वप्रयोगादिति हेतुः कारणोपपत्तये, पूर्वसंस्काररूपहेत्वनपायात् । जीवोपयोगरूपभावमनःसद्भावादिति द्वितीयो हेतुर्लक्षणोपपत्तये, भावमनःस्थैर्यरूपलक्षणोपपत्तेः । ध्यानकार्य-कर्मनिर्जरणे हेतुत्वादिति हेतुर्व्यवहारोपपत्तये । अनेकार्थत्वादिति शब्दा-ऽर्थोपपत्तये, जिनागमवचनप्रामाण्यादिति च प्रमाणोपपत्तय इति ज्ञातव्यम् ।

अत्र सूक्ष्मग्रहणात् सूक्ष्मक्रिया-ऽनिवर्तिनो ग्रहणम्, उपरतग्रहणाद् व्युपरतक्रियाऽप्रतिपातिनो ग्रहणम् ।

व्युपरतक्रियाऽनिवर्तिध्याने वर्तमानस्य महात्मनो बन्ध-लेश्या-योगादयो न भवन्ति, सयोगिकेवलिचरमसमये व्यवच्छिन्नत्वात् , उक्तं च शतकचूर्णौ–

"जोगाभावाओ पुण दुसमयठितो ण कम्मबन्धो त्ति ।
झाणप्पसंहारा तिभागसंकुचियनियदेहो ॥१॥
लेसाकरणणिरोहो जोगणिरोहो य तणुणिरोहेण ।
अह भणिओ विन्नेओ बन्धणिरोहो वि य तहेव ॥२॥
एसो अजोगिभावो जोगणिरोहेण पत्तगुणणामो ।
अप्पडिवायज्झाणो सव्वण्णू सव्वदंसी य ॥३॥" इति ।

ननु यदि चित्ता-ऽभावेऽप्ययोगिनो ध्यानमिष्यते, तर्हि सिद्धस्य कथं नेष्यते ? इति चेत् , उच्यते–सिद्धानां प्रयत्नविशेषाभावात् कर्मनिर्जरादिप्रयोजनाभावाच्च न सिद्धानां ध्यानं भवितुमर्हति, उक्तं च विशेषावश्यकभाष्ये

"जइ अमणस्स वि झाणं केवलिणो कोस तं न सिद्धस्स ? ।
भण्णइ जं न पयत्तो तस्स जओ न य निरुद्धव्वं ॥१॥"

तथा चात्र तट्टीका–"यद्यमनस्कस्या-ऽपि केवलिनो ध्यानमिष्यते, तर्हि सिद्धस्य किमिति नाभ्युपगम्यते ? भण्यते-ऽत्रोत्तरम्, यद्-यस्मात् तस्य सिद्धस्य कारणा-ऽभावेन प्रयत्नो नास्ति, न च योगलक्षणं निरोद्धव्यमस्ति, अतः प्रयत्नाभावात् प्रयोजनाभावाच्च न सिद्धस्य ध्यानमिति ।" इति ।

इत्थं शैलेशीं प्राप्तः चतुर्थं व्यवच्छिन्नक्रिया-ऽप्रतिपातिशुक्लध्यानं ध्यायति । उक्तं च

तस्सेव य सेलेसीगयस्स सेलोव्व णिप्पकंपस्स ।
वोच्छिन्नकिरियमप्पडिवाइज्झाणं परमसुक्कं ॥१॥" इति ।

ननु का नाम शैलेशी ? उच्यते-शिलाभिर्निर्वृत्ताः शैलाः=पर्वताः, शैलानामिशः शैलेशः=मेरुपर्वतः, तस्येयं शैलेशी, मेरुवद् निष्कम्पत्वात् स्थिरतेत्यर्थः । अथवा 'शील समाधौ' इति धात्वर्थदर्शनात् शीलं समाधानम्, तच्च निश्चयतः सर्वसंवरः, तस्य ईशः=स्वामी शीलेशः, सयोगिकेवलिनो योगनिमित्तककर्मादानोपलम्भात् निःशेषतः संवरो नासीत्, अयोगिना भगवता तु योगस्या-पि निरुद्धत्वाद् भवति सकलसंवरस्तस्य महात्मनः । शैलेशस्येयमवस्था=शैलेशी । उक्तं च श्रीमद्भाष्यकृद्भिः

सेलेसो किल मेरू सेलेसी होइ जा तदचलया ।
होउं व असेलेसो सेलेसीहोइ थिरयाए ॥१॥
सीलं व समाहाणं निच्छयओ सव्वसंवरो सो य ।
तस्सेसो सीलेसो सीलेसी होइ तयवत्था ॥२॥" इति

अथ शैलेश्याः कालो भण्यते नाऽतिशीघ्रैर्नाऽतिस्थिरैः, किन्तु मध्यमरीत्या यावता कालेन 'अ इ उ ऋ लृ' इत्येतानि पञ्च ह्रस्वाऽक्षराण्युद्गीर्यन्ते, तावान् शैलेश्याः कालो बोद्धव्यः । उक्तं च विशेषावश्यकभाष्ये

"हस्सक्खराइं मज्झेण जेण कालेण पंच भण्णंति ।
अत्थइ सेलेसिगओ तत्तियमेत्तं तओ कालं ॥१॥" इति ॥२६१॥

ननु शैलेशीप्राप्तोऽयोगिकेवली भगवान् किं करोति ? इत्यत आह

पुव्वरइयकम्मं खवइ असंखगुणक्कमेण गयलेसो ।
दुचरिमसमये संठाण-अथिर-संघयणछक्कं तु ॥२६२॥
अगुरुलहुचउक्कं पणतणुसंघाया खगइ-सुरदुगं च ।
वीसा वण्णाई तह बंधणपन्नरसगं निमिणं ॥२६३॥
अंगोवंगतिगं तह परोयतिगं सुसरमपजत्तं ।
सायं व असायं वा नीअं छिज्जन्ति सन्तत्तो ॥२६४॥

पूर्वरचितकर्म क्षपयत्यसङ्ख्यगुणक्रमेण गतलेश्य ।
द्विचरमसमये संस्थाना-ऽस्थिर-संहननषट्कं तु ॥२६२॥
अगुरुलघुचतुष्कं पञ्चतनुसंघातानि खगति-सुरद्विकं च ।
विंशतिर्वर्णादयस्तथा बन्धनपञ्चदशकं निर्माणम् ॥२६३॥

अङ्गोपाङ्गत्रिकं तथा प्रत्येकत्रिक सुस्वरमपर्याप्तम् ।
सात वा-ऽसात वा नीच व्यवच्छिद्यन्ते सत्तात ॥२६४॥ इति पदसंस्कार ।

'पुव्वरइय०' इत्यादि, 'पूर्वरचितकर्म' पूर्वम्-आयोजिकाकरणादिकाले गुणश्रेणिं कुर्वता यदसंख्येयगुणक्रमेण रचितमायुर्वर्जवेदनीयादीनां कर्मदलम् , आयुस्तु गुणश्रेण्यभावेनाऽसंख्येयगुणक्रमेण दलिकरचनाऽभावात् , तत् पूर्वरचितकर्म, यदुक्तं **प्रज्ञापनावृत्तौ श्रीमद् हरिभद्रसूरिपादैः–"पुव्वरइयं च णं कम्मं' आउज्जो [जोवा न भेदोपचारे] काले चेव गुणसेढीं करेति, गुणप्पहाणा सेढीए, आउकम्मसमयमित्तकालं गुणसेढिं रएति, पढमसमए वेदणीयादिकम्मपदेसे थोवे रएति, बितियादिसु असंखिज्जगुणेए रएति ।"** इति । 'गतलेश्यः' गता=अपगता लेश्या यस्य, स गतलेश्यः, अलेश्यो-ऽयोगिकेवली भगवानित्यर्थः, असङ्ख्यगुणक्रमेण क्षपयति, अयोगिप्रथमसमये स्थितिक्षयेणोदयवतीनां विपाकतो-ऽनुदयवतीनां च स्तिबुकसंक्रमेण संक्रम्य प्रदेशतो वेदनीयादिप्रकृतीनां पूर्वरचितकर्मदलं स्तोकं विनाशयति, ततो द्वितीयसमये-ऽसख्येयगुणं क्षपयति, ततोऽपि तृतीयसमये-ऽसंख्येयगुणम् । एवमुत्तरोत्तरसमयेऽसंख्येयगुणक्रमेण दलं क्षपयतीत्यर्थः । यदवादिषुस्तत्रभवन्त **आर्य-श्यामाः प्रज्ञापनायाम्–"××× अजोगयं पाउणित्ता ईसिं हस्सपचक्खरुच्चारणद्धाए असंखेज्जसमइयं अंतोमुहुत्तियं सेलेसिं पडिवज्जइ, पुव्वरइयगुणसेढीयं च णं कम्मं, तोसे सेलेसिमद्धाए असंखेज्जाहिं गुणसेढीहिं (असंखेज्जे) कम्मखंधे खवयति ।"** इति । तथैव **श्रीमन्तो भाष्यकृतो-ऽपि**

"तदसंखेज्जगुणाए गुणसेढीए रइयं पुरा कम्मं ।
समए समए खवियं कमसो सेलेसिकालेणं ॥१॥" इति ।

एवं स्थितिघातादिरहितोऽयोगिकेवली भगवान् स्थितिक्षयेणोदयवतीनां प्रदेशाग्रं विपाकतोऽनुदयवतीनां पुनः प्रकृतीनां वेद्यमानप्रकृतिषु स्तिबुकसंक्रमेण संक्रम्य प्रतिसमयमसंख्येयगुणक्रमेण क्षपयन्नयोगिगुणस्थानकस्य द्विचरमसमयमुपगच्छति, तदानीं तस्य महात्मनः कतीनां प्रकृतीनां सत्ताविच्छेदो जायते ? इत्यत आह–'**दुचरिम०**' इत्यादि, 'द्विचरमसमये' द्वितीयश्चरमो यस्मात्=यत आरभ्या-ऽन्तिमसमयो द्वितीयो भवति, स द्विचरमसमयः, तस्मिन् , अयोगिगुणस्थानकस्य चरमसमयात् प्राक्तनसमय इत्यर्थः 'संस्थाना-ऽस्थिर-संहननषट्कं तु' षट्कशब्दस्य प्रत्येकं सम्बन्धात् संस्थानषट्कं=समचतुस्र-न्यग्रोधपरिमण्डल-सादि-वामन-कुब्ज-हुण्डसंस्थानाख्यम्, अस्थिरषट्कम्=अस्थिरोपलक्षितं षट्कम्=अस्थिरा-ऽशुभ-दुर्भग-दुःस्वरा-ऽनादेया-ऽयशःकीर्त्तिरूपम्, संहननषट्कं=वज्रर्षभनाराच-ऋषभनाराच-नाराचा-ऽर्धनाराच-कीलिका-सेवार्तसंहननरूपम्, तुर्वाक्यभेदे, 'अगुरुलघुचतुष्कम्' अगुरुलघूपघातपराघातोच्छ्वासाख्यं, 'पणतणुसंघाया' त्ति प्राकृतत्वात् पुंस्त्वनिर्देशः, 'पञ्चतनुसंघातानि पञ्चशब्दस्य प्रत्येकमभियोजनात् पञ्चतनवः=औदारिक-

वैक्रिया-ऽऽहारक-तैजस-कार्मण-शरीररूपाः, 'पञ्चसंघातानि'=औदारिक-वैक्रिया-ऽऽहारक-तैजस-कार्मण-संघातलक्षणानि 'खगतिसुरद्विकं च' द्विकशब्दस्य प्रत्येकं सम्बन्धात् खगतिद्विकं=प्रशस्तविहायोगत्यप्रशस्तविहायोगतिरूपं सुरद्विकं=देवगति-देवानुपूर्वीलक्षणम् , चकारः समुच्चयार्थः, 'वीसा वण्णाई' त्ति 'विंशतिर्वर्णादयः' कृष्ण-नील-लोहित-हारिद्र-शुक्लवर्ण-सुरभि-दुरभिगन्ध-तिक्त-कटु-कषायाऽऽम्ल-मधुररस-गुरु-लघु-मृदु-खर-शीतोष्णस्निग्धरूक्षस्पर्शाख्याः प्रकृतयः 'तथा' तथाशब्दः समुच्चये 'बन्धनपञ्चदशकं' बन्धनानां पञ्चदशकमिति बन्धनपञ्चदशकम्, पञ्चदशानां बन्धनामौदारिकौदारिकौदारिकतैजसौदारिककार्मणौदारिकतैजसकार्मण-वैक्रियवैक्रिय-वैक्रियतैजस-वैक्रियकार्मण-वैक्रियतैजसकार्मणा-ऽऽहारकाहारका - ऽऽहारकतैजसा-ऽऽहारककार्मणा-ऽऽहारकतैजसकार्मणतैजसतैजस-तैजसकार्मण-कार्मणकार्मणाख्यानां समुदाय इति यावत् , 'निमोणं' निर्माण-नामकर्म 'अंगोवंगतिग' त्ति 'अङ्गोपाङ्गत्रिकम्' औदारिक-वैक्रिया-ऽऽहारका-ऽङ्गोपाङ्गरूपं 'पत्तेयतिगं' ति 'प्रत्येकत्रिकं' प्रत्येकोपलक्षितत्रिकं=प्रत्येकनामकर्म स्थिरनामकर्म शुभनामकर्म चेत्यर्थः, 'सुस्सरं' सुस्वरनामकर्म 'अपर्याप्तम्' अपर्याप्तनामकर्म च 'सायं' इत्यादि, 'सातं वा' सातवेदनीयं वा 'असातं वा' असातवेदनीयं वा, सातवेदनीयोदयेन शैलेशीं प्रतिपन्नस्या-ऽसातवेदनीयमसातवेदनीयोदयेन पुनः शैलेशीमधिगतस्य सातवेदनीयमित्यर्थः, 'नीचं' नीचैर्गोत्रं चेत्येताः सर्वसंख्यया द्व्यशीतिप्रकृतयः 'सन्तत्तो' त्ति सत्तातः 'छिद्यन्ते' स्वरूपसत्तामधिकृत्य क्षप्यमाणाः क्षपिता इत्यर्थः, चरमसमये स्तिबुकसंक्रमेणोदयवतीषु मूलप्रकृत्यभिन्नासु परप्रकृतिषु तासां संक्रमणात् । प्रत्यपादि च कर्मस्तवे

"देवदुगपणसरीरं पंचसरीरस्स बंधणं चेव ।
पंचेव संघाया संठाणा तह य छक्कं च ॥१॥
तिन्नि य अंगोवंगा संघयणं तह य होइ छक्कं च
पंचेव य वण्णरसा दो गंधा अट्ठ फासा य ॥२॥
अगुरुलहुयचउक्कं विहायगइदुगथिराथिरं चेव ।
सुहसुस्सरजुयला वि य पत्तेयं दूभगं अजसं ॥३॥" इति ।

श्रीकर्मस्तवकृद्भिरष्टचत्वारिंशदधिकशतप्रकृतीराश्रित्य सत्ताविच्छेदोऽभिहित इति तैर्बन्धनपञ्चकस्यैव सत्ताविच्छेदो दर्शितः, अस्माभिस्त्वष्टापञ्चाशदुत्तरशतप्रकृतीरवलम्ब्य सत्ताविच्छेदः प्रतिपादित इति बन्धनपञ्चदशकस्य सत्ताविच्छेदः प्ररूपितः । इदमत्राऽवधेयम्—प्रागनुपार्जिता-ऽऽहारकसप्तकस्य जीवस्या-ऽऽहारकसप्तकस्य सत्ताविच्छेदो न द्रष्टव्यः, तस्य तत्सत्कर्माऽभावात् ।

तदनन्तरमयोगिगुणस्थानकचरमसमये त्रस-बादर-पर्याप्त-सुभगा-ऽऽदेय-यशःकीर्ति-मनुष्यगति-मनुष्यायुः-पञ्चेन्द्रियजाति-जिननामकर्मोच्चैर्गोत्रा-ऽन्यतरवेदनीयरूपाणां द्वादशप्रकृतीनां जघन्य-

स्थित्युदयोगुणितकर्मांशस्य च भगवतो मनुष्यायुर्नर्जशेषाणामेकादशानां प्रकृतीनामुत्कृष्टप्रदेशोदयो जायते ॥२६२-२६३-२६४॥

अथ चतुर्दशा-ऽयोगिगुणस्थानकचरमसमय उदयसत्त्वविच्छेदमस्पृशद्गतिं च विभणिषुराह

चरिमग्गि णरतसतिगं पणिंदियुच्चजससुभगआइज्जं ।
सायमसायं व जिणं वा एगूणा य उदयत्तो ॥२६५॥
णरअणुपुव्वी सत्ताच्छेअं बिंति इयरे दुचरिमखणे ।
सिज्झइ खणेण समयप्पएसअंतरमफुसमाणो ॥२६६॥

चरमे नरत्रसत्रिकं पञ्चेन्द्रियोच्चयश सुभगादेयम् ।
सातमसातं वा जिनं वैकोनाश्चोदयत ॥२६५॥
नरानुपूर्वीसत्ताच्छेदः ब्रुवन्तीतरे द्विचरमक्षणे ।
सिध्यति क्षणेन समयप्रदेशान्तरमस्पृशन् ॥ २६६ ॥ इति पदसंस्कारः ।

'चरिमग्गि' इत्यादि, 'छिज्जन्ति सन्तत्तो' इतिपदद्वयं पूर्वतो-ऽनुवर्तते, 'चरमे' अयोगिकेवलिगुणस्थानकस्य चरमसमये 'नरत्रसत्रिकं' त्रिकशब्दस्य प्रत्येकं योजनात् नरत्रिकं=मनुष्यगति-मनुष्याऽऽनुपूर्वी-मनुष्याऽऽयुराख्यं त्रसत्रिकं—त्रस-बादर-पर्याप्तलक्षणं 'पञ्चेन्द्रियोच्चयशस्सुभगा-ऽऽदेयम्' पञ्चेन्द्रियादयः कृतसमाहारद्वन्द्वसमासाः प्रथमया निर्दिष्टाः,पञ्चेन्द्रियजाति-रुच्चैर्गोत्रं यशःकीर्तिनामकर्म सुभगनामकर्मा-ऽऽदेयनामकर्म च'सातमसातं वा'वाकारो विकल्पार्थकः, सातोदयेन शैलेशीं प्रतिपन्नस्य सातम्, असातोदयेनाऽधिगतस्य त्वसातम् , एकतरस्य द्विचरमसमये व्यवच्छेदात् 'जिणं वा' त्ति अत्राऽपि वाकारो विकल्पार्थकः, 'जिनं' जिननामकर्म तीर्थकृत आश्रित्य, सामान्यकेवलिनस्तु प्रतीत्य तन्नेति सर्वसङ्ख्यया तीर्थकृत आश्रित्यैतास्त्रयोदश प्रकृतयः सामान्यकेवलिनश्च प्रतीत्य द्वादश प्रकृतयः सत्तातः छिद्यन्तेऽपुनर्भावेन क्षीयन्ते । उक्तं च **विशेषावश्यकभाष्यकृद्भिः**

"मणुयगइजाइतसबायरं च पज्जत्तसुभयमाएज्जं ।
अन्नयरवेयणिज्जं नराउमुच्चं जसो नाम ॥१॥
संभवओ जिणनाम नराणुपुव्वी य चरिमसमयम्मि ।
सेसा जिणसंताओ दुचरिमसमयम्मि निट्ठंति ॥२॥" इति ।

तथैव **श्रीमन्मलयगिरिपादैरपि—"चरमसमये च सातासाता-ऽन्यतरवेदनीय-मनुष्यगति-मनुष्यानुपूर्वी-मनुष्यायुः-पञ्चेन्द्रियजाति-त्रस-सुभगा-देय-यशःकीर्त्ति-पर्याप्त-बादर-तीर्थकरोच्चैर्गोत्ररूपाणां त्रयोदशप्रकृतीनां सत्ताव्यवच्छेदः ।"** इति ।

तन्त्वौदारिकशरीरादिवद् मनुष्यानुपूर्वीनामकर्माऽयोगिकेवलिद्विचरमसमय एव सर्वथा परिक्षपणीयम्, उदयाभावात्, चरमसमये तत्सत्ताविच्छेदः कथं घटां प्राञ्चति ? इति चेत्, उच्यते—आनुपूर्वीनामानि सर्वत्र स्वस्वगतिसहगतान्येव परिक्षीयन्ते, यथाऽनिवृत्तिबादरसम्पराये नरकानुपूर्वी-तिर्यगानुपूर्व्यौ स्वस्वगतिसहचरिते क्षीणे, तथैवेहाऽपि मनुष्यानुपूर्वी मनुष्यगत्या सह क्षयं गच्छति। मनुष्यगतिश्च चरमसमये क्षीयते, उदयवत्त्वात् तस्याः, तेन मनुष्यानुपूर्व्यपि चरमसमये क्षीयते, यदुक्तं सप्ततिकाभाष्यवृत्तौ श्रीमेरुतुङ्गसूरिपादैः-"अन्ये त्वाचक्षते-आनुपूर्व्यो हि सर्वत्र स्वस्वगतिसहचरिता एव। अतो यथा नरकगति-तिर्यग्गती स्वस्वानुपूर्वीभ्यां सहा-ऽनिवृत्तिबादरसम्पराये क्षीयेते, अतोऽत्र त्रयोदशप्रकृतिक्षयो, द्विचरमसमये तु द्विसप्ततिक्षयः।" इति।

अथ चरमसमय उदयविच्छेदं भणति-'एगूणा' इत्यादि, 'एकोनाः' अनुपदं या मनुष्यगत्याद्य उक्ताः, ता एकया=मनुष्यानुपूर्वीलक्षणया प्रकृत्या ऊनाः—हीना उदयतो व्यवच्छिद्यन्ते, द्वादशप्रकृतय उदयतोऽपगच्छन्तीत्यर्थः, आनुपूर्वीनाम्नः क्षेत्रविपाकित्वेन भवाऽऽपान्तराल भावेव तदुदयो भवति, तेन भवस्थस्याऽयोगिकेवलिनो मनुष्यानुपूर्व्या उदयो न संभवतीति द्वादश प्रकृतयो मनुष्यगति-मनुष्यायुः-पञ्चेन्द्रियजाति-त्रस-बादर-पर्याप्त सुभगाऽऽदेय-यशःकीर्त्युच्चैर्गोत्राऽन्यतरवेदनीयतीर्थकृत्कर्मरूपा अयोगिगुणस्थानकचरमसमय उदयतो व्यवच्छिद्यन्ते, एतावतीनां प्रकृतीनामुदयविच्छेदो जायत इत्यर्थः। उक्तं च श्रीकर्मस्तवे

"अन्नयरवेयणीयं मणुयाऊ मणुयगइ य बोद्धव्वा।
पंचिंदियजाई वि य तस-सुभगाऽऽएज्ज-पज्जत्तं ॥१॥
बायर जसकित्ती वि य तित्थयरं उच्चगोययं चेव।
एया बारस पयडी अजोगिचरिमंमि वोच्छिन्ना ॥२॥" इति।

इदमत्राऽवधेयम्—अतीर्थकृद्भिः सामान्यकेवलिभिस्तीर्थकृन्नामकर्मवर्जा अनन्तरोक्ता एकादश प्रकृतय उदयतो व्यवच्छिद्यन्ते।

अथ सत्ताविच्छेदं मतान्तरं दर्शयति—'मणुआणु०' इत्यादि, तत्र 'द्विचरमक्षणे' अयोगिकेवलिगुणस्थानकद्विचरमसमये 'मनुजानुपूर्वीसत्ताच्छेदं' मनुष्यानुपूर्व्याः सत्ताविच्छेदम् 'इतरे' अन्ये आचार्या 'ब्रुवन्ति' वदन्ति, उदयाऽभावात्। तेन तेषामाचार्याणां मतेनाऽयोगिकेवलिगुणस्थानकद्विचरमसमये * त्रिसप्ततिप्रकृतीनां सत्ताविच्छेदो जायते, चरमसमये तु द्वादशप्रकृतीनाम्। उक्तं च श्रीमलयगिरिपादैः पञ्चसंग्रहवृत्तौ—"अन्ये पुनराहुः—मनुष्यानुपूर्व्या द्विचरमसमये व्यवच्छेदः, उदयाभावात्। उदयवतीनां हि स्तिबुकसंक्रमाभावात् स्वस्वरूपेण

* नामकर्मणस्त्र्यधिकशतभेदांस्त्वाश्रित्य त्र्यशीति प्रकृतय. सत्तातो व्यवच्छेदं यान्ति।

चरमसमये दलिकं दृश्यते एवेति युक्तस्तासां चरमसमये सत्ताऽव्यवच्छेदः । आनुपूर्वीनाम्नां तु चतुर्णामपि क्षेत्रविपाकितया भवापान्तरालगतावेवोदयः, तेन न भवस्थस्य तदुदयसम्भवः, तदसम्भवाच्चाऽयोग्यवस्थाद्विचरमसमये एव मनुष्यानुपूर्व्याः सत्ताऽव्यवच्छेदः इति तन्मतेन द्विचरमसमये त्रिसप्ततिप्रकृतीनां सत्ताऽव्यवच्छेदः,चरमसमये द्वादशानामिति ।" इदन्त्वत्रध्येयम्-सामान्यकेवलिनोऽधिकृत्य चरमसमय एकादशप्रकृतीनां सत्ताविच्छेदस्तेषां मतेन भवति । तत्त्वं त्वत्र केवलिनो बहुश्रुता वा विदन्ति ।

अथ क्षीणेष्वघातिकर्मसु यद्भवति, तद्वक्तुकाम आह–'सिज्झइ' इत्यादि, तत्र 'क्षणेन' एकवचननिर्देशाद् एकसमयेन समयप्रदेशान्तरमस्पृशन् 'सिध्यति' केवलज्ञानोपयागेनोपयुक्त ऋजुश्रेण्या सिद्धिं गच्छति । उक्तं च कषायप्राभृतचूर्णिकारैः–"सेलेसिं अद्धाए झीणाए सव्वकम्मविप्पमुक्को एगसमएण सिद्धिं गच्छइ ।" इति । तथैवाऽऽह भगवान् भाष्यकारः–

"रिउसेढीपडिवन्नो समयपएसंतरं अफुसमाणो ।
एगसमएण सिज्झइ अह सागारोवउत्तो सो ॥१॥"इति ।

ऋजुश्रेण्या समयान्तरं स्वा-ऽवगाढप्रदेशान्तरञ्चा-ऽस्पृशन्नेव यावत्स्वाकाशप्रदेशेष्ववगाढः,तावतः प्रदेशानवगाहमानः केवलज्ञानोपयुक्तो लोकान्तं गच्छतीत्यर्थः । यदुक्तमावश्यकचूर्णौ–"जथा उज्जुसेढिपत्तो जत्तिए जीवो अवगाहे, तावतियाए अवगाहणाए उड्ढं उज्जुगं गच्छति, ण वंकं, अफुसमाणगतो,बितियं समयं ण फुसति,अहवा जेसु अवगाढो जे य फुसति,उड्ढमवि गच्छमाणो तत्तिए चेव आगासपदेसे फुसे माणो गच्छति, सरीरेऽपि ण ततो-ऽधिके परिपेरंतेण वहिं, एगसमएणं असरीरेणं अकुडिलेण वा उड्ढं गंता,न तिर्यग् अधो वा भ्रमति वा,सागारोवउत्ते सिज्झति ।" इति ।

क्षीणेष्वघातिकर्मसु जीव-चरमभवशरीरयोर्वियोगः सिध्यमानस्य गतिर्लोकान्तप्राप्तिश्चेत्येतत्त्रयमेकसमयेनाऽचिन्त्यसामर्थ्याद् युगपद् भवति । यदुक्तं श्रीतत्त्वार्थभाष्ये–"कर्मक्षये देहवियोग-सिध्यमानगति-लोकान्तप्राप्तयो ऽस्य युगपदेकसमयेन भवन्ति ।" इति । केचिदाहुः–कर्मक्षयकालो देहवियोगादिसमकाल एव भवतीति । उक्तञ्च सप्ततिकाचूर्णौ–"ततो कम्मविमोक्खसमए चेव उड्ढं गच्छति लोकान्तम् ।" इति । मतद्वयमपि तत्त्वार्थवृत्तौ सङ्गृहीतम् । अक्षराणि त्वेवम्–तदनन्तरमिति कृत्स्नकर्मक्षयानन्तरं अनुसन्ततमेव मुक्तः सन्नूर्ध्वमेव गच्छतिXXXतस्य अचिन्त्यसामर्थ्याच्चैतत् सर्वं युगपद् भवति देहवियोगादि । केचिदाहुः कर्मक्षयकालश्च देहवियोगादिसमकाल एव भवतीति ।" इति । अयमत्र विवेकः-व्यवहारनयेन क्रियाकाल-निष्ठाकालयोर्भेदः, निश्चयनयापेक्षया त्वभेदः । तेन प्रथममतेन कर्मक्षयानन्तरं देहवियोगादि भवति, द्वितीयमतेन तु सर्वं युगपद् भवति ।

नन्वकर्मकस्य महात्मनः सिद्धिगमने को हेतुः ? सकर्मकस्यैव संसारे गमनादिक्रियादर्शनादिति चेत्, उच्यते-पूर्वप्रयोगादसङ्गत्वाद् बन्धच्छेदात् तथागतिपरिणामाच्च सिध्यतो महात्मनो गतिर्न विरुध्यते, यदुक्तं वाचकमुख्यैः-"**तदनन्तरमूर्ध्वं गच्छन्त्यालोकान्तात् । पूर्वप्रयोगाद् असङ्गत्वात् बन्धच्छेदात् तथागतिपरिणामाच्च ।**" इति ।

तथाहि-(१) यथा कुलालचक्रं चक्रभ्रमणहेतुकुलालदण्डादिव्यापारोपरमे-ऽपि पूर्वप्रयोगाद् भ्राम्यति, तथा योगनिरोधाऽभिमुखस्य क्रियया=योगेन यः प्रयोगो जनितः, स क्षीणे-ऽपि योगे गतिहेतुर्भवति, तेन पूर्वप्रयोगेणा-ऽकर्मणोऽपि सिध्यमानस्य गतिर्भवति । यथा च धनुषा पुरुषप्रयत्नेन प्रेरितस्येषोर्गतिकारणविरमे-ऽपि पूर्वप्रयोगाद् गतिर्जायते, तथैव कर्मविमुक्तस्य सिध्यमानस्य जीवस्य गतिर्जायते । उक्तं च **श्रीमद्भाष्यकृद्भिः**

"जह धणु पुरिसपयत्तेरिएसुणो भिण्णदेसगमणं तु ।
गइकारणविगमम्मि वि सिद्धं पुव्वप्पओगाओ॥१॥
जहवा कुलालचक्कं किरियाहेउविरमे वि सकिरियं ।
पुव्वप्पओगओ च्चिय तह किरिया मुच्चमाणस्स ॥२॥" इति ।

(२) अथ युक्त्यन्तरमुपवर्ण्यते-असङ्गत्वाद् गुरुमृत्तिकालेपलिप्ता-ऽ-धोनिमग्नक्रमाऽपनीतमृत्तिकालेपजलमर्यादोर्ध्वगामितथाविधा-ऽलाबुवत् सिध्यमानस्य गतिर्भवति । इदमुक्तं भवति-यथा गुरुमृत्तिकालेपैरालिप्तमलाबु घनमृत्तिकालेपवेष्टनोत्पादितगौरवेन जले निमज्जति, तस्या-ऽद्भिर्लेपा-ऽपगमे च लेपसङ्गविनिर्मुक्तं जलस्योर्ध्वतलं यावत् स्वभावतो गच्छति । एवं जीवो-ऽप्यष्टविधकर्ममृत्तिकावेष्टितः, तत्सङ्गाच्च संसारसागरस्य भवजले निमज्जति, कर्मसङ्गाच्चा-ऽधस्तिर्यगूर्ध्वं च गच्छति, अष्टविधकर्ममृत्तिकालेपविगमे च सिध्यमानो महात्मा स्वभावत ऊर्ध्वं गच्छति, ऊर्ध्वगौरवधर्मत्वात् जीवानाम् । उक्तं च **आवश्यकनिर्युक्तिकारैः**

"जह ते सलाभकाले च्चेव तहा गइसभावयाभिंति ।
परिणमइ तग्गइं वा लेवा-ऽवगमे जहालाबुं ॥१॥" इति । ❀

(३) अथ तृतीया युक्तिः प्रदर्श्यते-छिन्नबन्धनत्वात् सिध्यमानस्य जीवस्य गतिर्जायते, एरण्डफलवत् । इयमत्र भावना-बध्यतेऽनेनेति बन्धनम्-यथैरण्डफलस्या-ऽऽतपशुष्ककोशरूपबन्धनापगमे गतिर्भवति, तथैव सिध्यतो जीवस्य कर्मबन्धनोच्छेदे गतिः संजायते । उक्तं चावश्यकनिर्युक्तीकारैः

❀ एवं मूलराधनाकारैरप्युक्तम्
संगजहणेण लहुदयाए उड्ढं पयादि सो जीवो ।
जध लाउगो अलेप्पो उप्पददि जले निबुड्डो वि ॥१॥" इति ।

"एरण्डाइ फलं जह बन्धच्छेएरियं दुयं जाइ ।
तह कम्मबंधणच्छेयणेरिओ जाइ सिद्धो वि ॥१॥" इति ।

(४) अथ चतुर्थी युक्तिर्विविच्यते-कर्मविमुक्तो जीवः सकृदूर्ध्वं गच्छति, तथास्वाभाविकपरिणामाद्, अग्निधूमवत् । अयमस्य भावार्थः—यथा अग्निर्धूमश्च स्वभावत ऊर्ध्वं गच्छति, तथैव जीवोऽपि स्वभावत ऊर्ध्वं गच्छति, ऊर्ध्वगौरवधर्मत्वात् । न च जीवानामूर्ध्वगौरवधर्मत्वे संसारिणामधस्तिर्यग् च गतिः कुतो जायते ? इति वाच्यम्, तस्याः कर्मोपाधिजन्यत्वात् । तद्यथा—कर्मरहितानां जीवानामूर्ध्वं गतिर्भवति । कर्मसङ्गात्तु तिर्यगूर्ध्वमधश्च गतिरनियमेन भवति । यदुक्तं तत्त्वार्थभाष्यकारैः

तदनन्तरमेवोर्ध्वमालोकान्तात् स गच्छति ।
पूर्वप्रयोगाऽसङ्गत्वबन्धच्छेदोर्ध्वगौरवैः ॥१॥
कुलालचक्रे दोलाया-मिषौ वाऽपि यथेष्यते ।
पूर्वप्रयोगात् कर्मेह तथा सिद्धगतिः स्मृता ॥२॥
मृल्लेपसङ्गनिर्मोक्षाद्, यथा दृष्टाऽप्स्वलाबुनः ।
कर्मसङ्गविनिर्मोक्षात् तथा सिद्धगतिः स्मृता ॥३॥
एरण्डयन्त्रपेडासु बन्धच्छेदाद् यथा गतिः ।
कर्मबन्धनविच्छेदात् सिद्धस्यापि तथेष्यते ॥४॥
ऊर्ध्वगौरवधर्माणो जीवा इति जिनोत्तमैः ।
अधोगौरवधर्माणः पुद्गला इति चोदितम् ॥५॥
यथाऽधस्तिर्यगूर्ध्वं च लोष्टवाय्वग्निवीतयः ।
स्वभावतः प्रवर्तन्ते, तथोर्ध्वं गतिरात्मनाम् ॥६॥
अतस्तु गतिवैकृत्यमेषां यदुपलभ्यते ।
कर्मणः प्रतिघाताच्च प्रयोगाच्च तदिष्यते ॥७॥
अधस्तिर्यगथोर्ध्वं च जीवानां कर्मजा गतिः ।
ऊर्ध्वमेव तु तद्धर्मा भवति क्षीणकर्मणाम् ॥८॥" इति ।

ननु कर्मरहितानां जीवानां स्वभावत एव ऊर्ध्वं गतिर्भवति, तर्हि लोकान्तादूर्ध्वमलोके कुतो न गच्छन्ति कर्मविमुक्ता जीवाः ? इति चेत्, उच्यते-धर्मास्तिकायो हि गत्युपग्राहकः । लोकस्योर्ध्वं धर्मास्तिकाया-ऽभावेन गत्युपग्राहकाभावात् परतः सिध्यमानानां जीवानां गतिर्न भवति, अलाबुवत् । इदमुक्तं भवति-यथा-ऽलाबु मृत्तिकालेपा-ऽपगमादूर्ध्वं गच्छत् स्वयमेव जलमस्तकप्रविष्टं भवति, न परतो गच्छति, उपग्राहकजलद्रव्या-ऽभावात् । एवं सिध्यमानो जीवोऽपि लोकान्तादूर्ध्वं गत्युपग्राहकधर्मास्तिकायाऽभावाद् न याति, यदुक्तं तत्त्वार्थभाष्ये—

"ततोऽप्यूर्ध्वगतिस्तेषां कस्मान्नास्तीति चेन्मतिः ।
धर्मास्तिकायस्याभावात्, स हि हेतुर्गतेः न परः ॥१॥" इति ॥२६५-२६६॥

अयोगिगुणस्थानके प्रतिपादितपदार्थानां यन्त्रकम् ।

(१) अयोगिगुणस्थानकप्रथमसमय एव व्युपरतक्रियाऽनिवृत्तिशुक्लध्यानं प्रतिपद्यते ।
(२) अयोगिगुणस्थानकप्रथमसमय एव शैलेशीमुपगच्छति ।
(३) शैलेश्याः कालोऽन्तर्मुहूर्तमात्रं, स च अइउऋऌ इत्येतदक्षरपञ्चकोच्चारणकालप्रमितो ज्ञेयः ।
(४) प्रतिसमयमसंख्येयगुणक्रमेण दलिकं निर्जरयति ।
(५) द्विचरमसमये संस्थानषट्का-ऽस्थिरषट्क-संहननषट्का-ऽगुरुलघुचतुष्क-पञ्चशरीर-पञ्चसंघातन-खगति-द्विक-देवद्विक-वर्णादिविंशतिक-पञ्चदशबन्धन-निर्माणाङ्गोपाङ्गत्रिक-प्रत्येक-स्थिर-सुस्वर-शुभा-ऽपर्याप्त-नीचैर्गोत्रा-ऽन्यतरवेदनीयरूपाणां द्व्यशीतिप्रकृतीनां (८२) सत्ताव्यवच्छेदः ।
(६) चरमसमये मनुष्यत्रिक-त्रसत्रिक-पञ्चेन्द्रियजाति-सुभगा-ऽऽदेय-यशःकीर्ति-तीर्थङ्करनामोच्चैर्गोत्रा-ऽन्यतरवेदनीयाख्यानां त्रयोदशप्रकृतीनां (१३) सत्ताविच्छेदः ।
(७) अन्येषां मतेन द्विचरमसमये मनुष्यानुपूर्वी सत्त्वतो व्यवच्छिद्यते, उदयाभावात् ।
(८) तदनन्तरं समय-प्रदेशान्तरमस्पृशन्नेकसमयेन लोकान्तं गच्छति ।
(९) एकस्मिन्नेव समये देहवियोग-सिध्यमानगति-लोकान्तप्राप्तयः । निश्चयनयापेक्षया तु कर्मक्षय-देहवियोगादि सर्वं युगपद् भवति ।
(१०) सिध्यमानस्य गतिः-पूर्वप्रयोगादसङ्गत्वाद् बन्धच्छेदात्तथागतिपरिणामाच्च ।

अथ सिद्धानामवस्थितिं निरूपयति

कम्मट्ठगक्खयत्तो लद्धा जीवेहि जेहि अट्ठगुणा ।
ईसीपब्भाराए उड्ढं ते-ऽवट्ठिआ हुन्ति ॥२६७॥

कर्मा-ऽष्टकक्षयाल्लब्धा जीवैर्यैरष्टगुणाः ।
ईषत्प्राग्भाराया ऊर्ध्वं ते-ऽवस्थिता भवन्ति ॥२६७॥ इति पदसंस्कारः ।

'कम्मट्ठ०' इत्यादि, 'कर्माष्टकक्षयाद्' ज्ञानावरण-दर्शनावरण-वेदनीया-ऽऽयुर्नाम-गोत्रा-ऽन्तरायकर्मनाशाद् यैर्जीवैः 'लब्धाः' प्राप्ता 'अष्टगुणाः' अनन्तज्ञान-दर्शन-क्षायिकसम्यक्त्व-क्षायिकचारित्राव्याबाधसुखा-ऽक्षयस्थित्यमूर्तानन्तावगाहना-ऽनन्तवीर्याख्याः 'ते' लब्धाऽष्टगुणाः सिद्धा ईषत्प्राग्भाराया ऊर्ध्वमवस्थिताः 'सन्ति' वर्तन्ते, नेह संसारे प्रच्यवन्ते, कर्मबीजस्य दग्धत्वात् ।

अथ विस्तरेण व्याख्यायते—मूलकर्मा-ऽपेक्षया मोहनीयकर्म सूक्ष्मसम्परायगुणस्थानकचरमसमये निःशेषतो क्षयमुपगतम् । क्षीणकषायगुणस्थानकचरमसमये ज्ञानावरण-दर्शनावरणा-ऽन्तरायकर्माणि क्षीणानि, अयोगिचरमसमये च नामागोत्र-वेदनीयरूपाणि चत्वारि कर्माणि युगपद् विनष्टानि ।

उत्तरकर्माऽपेक्षया त्वनन्तानुबन्धिनश्चत्वारो मिथ्यात्व-मिश्र-सम्यक्त्वमोहनीयानि चेति

मोहनीयकर्मणः सप्त प्रकृतयोऽविरतसम्यग्दृष्टि-देशविरत-प्रमत्ता-ऽप्रमत्तगुणस्थानकानामन्यतमे गुणस्थाने क्षपिताः । ततोऽनिवृत्तिबादरसम्परायगुणस्थानकस्य बहुषु संख्येयभागेषु गतेष्वप्रत्याख्यानावरणाः क्रोधादयश्चत्वारः प्रत्याख्यानावरणाश्च क्रोधादयश्चत्वारो नाशमापादिताः, ततो नरकगति-नरकानुपूर्वी-तिर्यग्गति-तिर्यगानुपूर्व्य एकेन्द्रिय-द्वीन्द्रिय-त्रीन्द्रिय-चतुरिन्द्रियरूपा चतुर्जातिर आतपमुद्योतं स्थावरं सूक्ष्मं साधारणं निद्रानिद्राप्रचलाप्रचलास्त्यानर्द्धयश्च विलयं प्रापिताः, ततो नपुंसकवेद उन्मूलितः, ततः क्रमेण स्त्रीवेदो हास्यषट्कं पुरुषवेदः संज्वलनः क्रोधो मानो माया चेति सर्वसंख्ययाऽनिवृत्तिबादरसम्परायगुणस्थानके षट्त्रिंशत्प्रकृतयो समूलकाषं कषिताः । ततः सूक्ष्मसम्परायगुणस्थानकचरमसमये संज्वलनलोभः परिक्षपितः । ततः क्षीणकषायगुणस्थानकस्य द्विचरमसमये निद्राप्रचलाख्यं निद्राद्विकं प्रलयं प्रापितम्, चरमसमये तु ज्ञानावरणपञ्चक-दर्शनावरणचतुष्का-ऽन्तरायपञ्चकरूपाश्चतुर्दश प्रकृतयो समूलकाषं कषिताः । अयोगिकेवलिनो द्विचरमसमये देवगतिरौदारिकादिशरीरपञ्चकमङ्गोपाङ्गत्रयमौदारिकौदारिकादिबन्धनपञ्चदशकमौदारिकादिसंघातपञ्चकं संहननषट्कं संस्थानषट्कं वर्णादिविंशतिकं देवानुपूर्वी प्रशस्तखगतिरप्रशस्तखगतिरगुरुलघूपघातं पराघातमुच्छ्वासं निर्माणं प्रत्येकं स्थिरं शुभं सुस्वरमपर्याप्तमस्थिरा-ऽशुभ-दुर्भग-दुःस्वरा-ऽनादेया-ऽयशःकीर्तिरूपं प्रकृतिषट्कमन्यतरं वेदनीयं नीचैर्गोत्रं चेति द्वयशीतिः प्रकृतय उन्मूलिताः, तीर्थकरा-ऽयोगिकेवलिचरमसमये च नामकर्मणो मनुष्यगति-पञ्चेन्द्रियजाति-मनुष्यानुपूर्वी-त्रस-बादर-पर्याप्त-सुभगा-ऽऽदेय-यशःकीर्ति-तीर्थकरनामकर्माण्यन्यतरवेदनीयमुच्चैर्गोत्रं मनुष्यायुश्चेति सर्वसंख्यया त्रयोदशप्रकृतयो नाशमापादिताः, अतीर्थकरा-ऽयोगिकेवलिचरमसमये त्वेता एव द्वादश तीर्थकरनामकर्मवर्जाः ।

एवमष्टकर्मक्षयाद् अष्टौ गुणाः प्रादुर्भवन्ति ।

तत्र (१) ज्ञानावरणकर्मक्षयात् सिद्धानामनन्तं केवलज्ञानं भवति (२) दर्शनावरणकर्मक्षयात् सिद्धानामनन्तं केवलदर्शनं भवति । (३) दर्शनमोहनीयक्षयात् क्षायिकं सम्यक्त्वम् (४) चारित्रमोहनीयक्षयाच्च क्षायिकं चारित्रं जायते । यदवाचि गुणस्थानकक्रमारोहे–

अनन्तं केवलज्ञानं ज्ञानावरणसंक्षयात् । अनन्तं दर्शनं चैव दर्शनावरणक्षयात् ॥१॥
शुद्धसम्यक्त्वचारित्रे क्षायिके मोहनिग्रहात् । xxxxxxxxx ॥२॥" इति ।

अत्र बहु वक्तव्यमस्ति, तत्त्वध्यात्ममतपरीक्षादिग्रन्थान्तरतोऽवसेयम् ।

(५) वेदनीयक्षयादनन्तमनुपममव्याबाधं शाश्वतं च सिद्धानां सुखं भवति, तथा चोक्तमागमे

"न वि अत्थि माणुसाणं तं सोक्खं न वि य सव्वदेवाणं ।
जं सिद्धाणं सोक्खं अव्वाबाहं उवगयाणं ॥१॥
सुरगणसुहं समत्तं सव्वद्धापिंडियं अणंतगुणं ।
न य पावइ मुत्तिसुहं णंताहि वि वग्गवग्गूहिं ॥२॥

सिद्धस्स सुहो रासी सव्वद्धापिंडितो जइ हवेज्जा ।
सोऽणंतवग्गभइतो सव्वागासे न माइज्जा ॥३॥
जह नाम कोइ मिच्छो नगरगुणे बहुविहे वियाणंतो ।
न चएइ परिकहेउं उवमाइ तहिं असंतीए ॥४॥
जह सव्वकामगुणियं पुरिसो भोत्तूण भोअणं कोइ ।
तण्हा छुहा विमुक्को अच्छिज्ज जहाअमिअतत्तो ॥५॥
इअ सव्वकालतित्ता अउलं निव्वाणमुवगया सिद्धा ।
सासयमव्वाबाहं चिट्ठंति सुही सुहं पत्ता ॥६॥" इति ।

(६) आयुःक्षयादक्षयस्थितिः (७) विघ्नक्षयादनन्तं वीर्यम् (८) नामगोत्रयोश्च क्षयाद् अमूर्ता-ऽनन्ताऽवगाहना । यदुक्तं गुणस्थानकक्रमारोहे—

"×××अनन्तो सुखवीर्ये च वेद्यविघ्नक्षयात् क्रमात् ॥१॥
आयुषः क्षीणभावत्वात् सिद्धानामक्षया स्थितिः ।
नामगोत्रक्षयादेवा-ऽमूर्ताऽनन्ताऽवगाहना ॥२॥" इति । अन्यत्राऽप्युक्तम्—
"तस्स वरनाण-दंसणवर-सुह-सम्मत्त-चरण-निच्चठिई ।
अवगाहणा अणंतामुत्ताणं खइयविरिअं च ॥१॥
नाणावरणाईणं कम्माणं अट्ठ जे ठिआ दोसा ।
तेसु गएसु पणासं एए अट्ठ वि गुणा जाया ॥२॥" इति ।

मोहनीयकर्मक्षयजन्यं गुणद्वयं क्षायिकसम्यक्त्वचारित्राख्यम्, नाम-गोत्रक्षयजन्यस्त्वेक एवाऽमूर्ता-ऽनन्ता-ऽवगाहनाख्य इत्यत्र परिभाषैव शरणम् । नन्ववगाहना कथमात्मनो गुणः ? तस्य व्योमगुणत्वेन व्यवस्थितत्वात् । यदवादि वाचकमुख्यैः श्रीतत्त्वार्थसूत्रे "आकाशस्याऽवगाहः ।" इति । न च व्योम्नः सामान्यतो-ऽवगाहनागुणवत्त्वेऽप्यनन्तानामेकत्रा-ऽवगाहनाऽऽत्मनोऽसाविति वाच्यम्, अनन्तानामप्यमूर्तत्वेन प्रतिघाता-ऽभावेन व्योम्नैवैकत्राऽवगाहनादानादिति चेत्, न, प्रतिघातस्य नामकर्मोपनीतशरीरजनितत्वेन शरीरा-ऽभावप्रयुक्तप्रतिघाता-ऽभावेन निरुक्ता-ऽवगाहनायाः सम्भवात्, तस्याश्चा-ऽऽत्मगुणत्वात् । न च तथापि तदवगाहनाया नामकर्मक्षयजन्यत्वमस्तु, न गोत्रक्षयजन्यत्वमिति वाच्यम्, नामगोत्रयोर्मिलितयोरेव तत्र तत्रोपन्यासबलेनैकस्मिन् गुणे नाम-गोत्ररूपकर्मद्वयक्षयजन्यत्वयोजनात्, गोत्रकर्मक्षयजन्यस्य विशेषव्यवहाराऽभावभाजो गुणस्य सत्त्वे-ऽपि प्राधान्येन नामकर्मक्षयजन्यस्या-ऽवगाहनागुणस्यैव वा गोत्रजन्यत्वस्वीकारात् ।

अष्टविधकर्मक्षयाद् यैः सिद्धैरेते केवलज्ञानादयो-ऽष्टौ गुणाः प्राप्ताः, ते ईषत्प्राग्भाराया ऊर्ध्वं स्थिताः सन्ति, न पुनरिह संसारे समागच्छन्ति, कर्मबीजस्या-ऽत्यन्तं दग्धत्वात् यदवादि तत्त्वार्थभाष्यकारैः

"दग्धे बीजे यथाऽत्यन्तं प्रादुर्भवति नाङ्कुरः ।
कर्मबीजे तथा दग्धे नारोहति भवाङ्कुरः ॥१॥" इति ।

नन्वीषत्प्राग्भारा किंस्वरूपा ? इति चेत्, उच्यते-सर्वार्थसिद्धवरविमानादूर्ध्वं लोकस्य मूर्धन्यायामविष्कम्भाभ्यां पञ्चचत्वारिंशद्योजनलक्षप्रमाणा (४५,००,०००), उत्तानच्छत्राकृतिः परिधिगणितेनैकोनपञ्चाशदधिकद्विशतोत्तरत्रिंशत्सहस्राधिकद्वाचत्वारिंशच्छतसहस्राधिकैककोटीयोजनप्रमिता (१,४२,३०, २४९), मध्यभागे योजनाऽष्टकबाहल्या-ऽऽयामविष्कम्भाभ्यां चा-ऽष्टयोजनप्रमाणा, ततो मध्यभागात् परतः सर्वासु दिक्षु विदिक्षु च क्रमशः प्रतियोजनमङ्गुलपृथक्त्वेन हीना हीनतरा प्रान्ते चा-ऽङ्गुलसंख्येयभागप्रमाणा सती मक्षिकापत्रादपि तनुतरा भवति, औपपातिकसूत्रे तु "अंगुलस्स असंखेज्जभागं बाहल्लेणं पण्णत्ता" इत्युक्तम्, एवं प्रज्ञापनादिसूत्रेष्वपि । इयञ्च पृथिवीकायिकैर्निर्वर्तिता मनोहरा सुरभिश्च । तथा चोक्तमावश्यकनिर्युक्तौ

"ईसीपब्भाराए सीआए जोअणम्मि लोगंतो ।
बारसहिं जोयणेहिं सिद्धी सव्वत्थसिद्धाओ ॥१॥
निम्मलदगरयवन्ना तुसारगोखीरहारसरिवन्ना ।
उत्ताणयछत्तयसंठिआ अ भणिआ जिणवरेहिं ॥२॥
एगा जोयणकोडी बायालीसं च सयसहस्साइं ।
तीसं चेव सहस्सा दो चेव सया अउणवन्ना ॥३॥
बहुमज्झदेसभाए अट्ठेव च जोयणाइ बाहल्लं ।
चरिमंतेसु अ तणुई अंगुलसंखिज्जई भागं ॥४॥
गंतूण जोयणं जोयणं तु परिहाइ अंगुलपुहुत्तं ।
तीसे वि अ पेरंते मच्छिअपत्ताउ तणुअयरा ॥५॥" इति ।

एवंभूताया ईषत्प्राग्भारायाः पृथिव्या ऊर्ध्वं सिद्धाः स्थिताः, इदं तु सामान्येन सिद्धानामवस्थानं भणितम्, विशेषतः पुनरेवंभूताया ईषत्प्राग्भारायाः पृथिव्या उपरि यद्योजनम्, तस्य योजनस्य यः क्रोशः, तस्योपरितने षड्भागे स्वचरमभवसंस्थानस्य त्रिभागहीना-ऽवगाहनया सिद्धा अवतिष्ठन्ते । यदुक्तमागमे

ईसीपब्भाराए उवरिं खलु जोअणस्स जो कोसो ।
कोसस्स य छब्भाए सिद्धाणोगाहणा भणिआ ।" इति ।

ननु प्रस्तुतगाथया कर्माष्टकप्रक्षयादनन्तज्ञानाद्यष्टगुणसंप्राप्तिलक्षणो मोक्षः प्रतिपाद्यते, स च विचार्यमाणो निरुक्तलक्षणो नोपपद्यते, किन्तु बुद्ध्यादिविशेषगुणोच्छेदरूप इत्याद्याहुर्नैयायिकादयः । तथाहि- ...दत्य-...विमोक्षोऽपवर्गः (गो० १-१-२२) इति गोतमसूत्रे तत्सर्वनाम्ना सर्वेषामात्मविशेषगुणानां बोधनाद् नवानामात्मविशेषगुणानां बुद्ध्यादीनामत्यन्तोच्छेदो मोक्ष

इति सिध्यति, यदुक्तं श्रीजयन्तभट्टैर्न्यायमञ्जर्याम्–"तदिति प्रक्रान्तस्य दुःखस्यावमर्शः न च मुख्यमेव दुःखं बाधनास्वभावमवमृश्यते, किन्तु तत्साधनं तदनुषक्तं च सर्वमेव, तेन दुःखेन वियोगोऽपवर्गः, अस्ति च प्रलयवेलायामात्मनो दुःखवियोगः, स त्वपवर्गो न भवति, सर्गसमये पुनरक्षीणकर्माशयाऽनुरूपशरीरादिसम्बन्धे सति दुःखसम्भवादतस्तद्व्यावृत्त्यर्थमत्यन्तग्रहणम् , आत्यन्तिकी दुःखव्यावृत्तिरपवर्गो न सावधिका। द्विविधदुःखावमर्शिना सर्वनाम्ना सर्वेषामात्मगुणानां दुःखवदवमर्शादत्यन्तग्रहणेन च सर्वात्मना तद्वियोगाऽभिधानान्नवानामात्मगुणानां बुद्धि-सुख-दुःखेच्छा–द्वेष-प्रयत्न-धर्मा-ऽधर्म-संस्काराणां निर्मूलोच्छेदोऽपवर्ग इत्युक्तं भवति ।

यावदात्मगुणाः सर्वे नोच्छिन्ना वासनादयः ।
तावदात्यन्तिको दुःखव्यावृत्तिर्नाऽवकल्पते ॥१॥
धर्माऽधर्मनिमित्तो हि सम्भवः सुखदुःखयोः ।
मूलभूतौ च तावेव स्तम्भौ संसारसद्मनः ॥२॥
तदुच्छेदे तु तत्कार्यशरीराद्यनुपप्लवात् ।
नात्मनः सुख दुःखे स्त इत्यसौ मुक्त उच्यते ॥३॥
इच्छा-द्वेष–प्रयत्नादि भोगायतनबन्धनम् ।
उच्छिन्नभोगायतनो नात्मा तैरपि युज्यते ॥४॥
प्राणस्य क्षुत्पिपासे द्वे लोभमोहौ च चेतसः ।
शीता-ऽऽतपौ शरीरस्य षड्र्मिरहितः शिवः ॥५॥

तदेवं नवानामात्मगुणानां निर्मूलोच्छेदोऽपवर्ग इति यदुच्यते, तदेवेदमुक्तं भवति–तदत्यन्तवियोगोऽपवर्ग इति ।"

एवं व्योमशिवाचार्यैरपि प्रशस्तपादभाष्यस्य व्योमवत्याख्यवृत्तौ प्रतिपादितम् "नवानामात्मविशेषगुणानामत्यन्तोच्छित्तिर्मोक्ष इति ।"

प्रमाणयन्ति च नवानामात्मविशेषगुणानां सन्तानोऽत्यन्तमुच्छिद्यते, सन्तानत्वादिति, नाऽयं हेतुरसिद्धः, व्याप्यत्वेनाऽभिमतस्य सन्तानत्वस्य बुद्ध्यादिलक्षणे पक्षे प्रवर्तमानत्वात् । नाऽपि विरुद्धः, सपक्षे प्रदीपादावुपलम्भात् । नाऽप्यनैकान्तिकः, विपक्षे परमाण्वादाववृत्तेः, नाऽपि कालात्ययापदिष्टः, विपरीतार्थोपस्थापकयोः प्रत्यक्षा-ऽऽगमयोरनुपलम्भात् । नाऽपि सत्प्रतिपक्षः, साध्याभावसाधकाऽनुमाना-ऽसम्भवात् ।

आगमो-ऽप्यत्र "न ह वै सशरीरस्य प्रियाप्रिययोरपहतिरस्ति, अशरीरं वावसन्तं प्रियाप्रिये न स्पृशतः ।" इति सुखादेरभावबोधकः ।

न च सन्तानोच्छेदे कश्चिद् हेतुर्वाच्यः, निर्हेतुकविनाशस्य प्रतिषेधादिति वाच्यम्, तत्त्वज्ञानस्य मिथ्याज्ञानव्यवच्छेदक्रमेण निःश्रेयसहेतुत्वेन प्रतिपादनात्। उपलब्धश्च मिथ्याज्ञाननिवृत्तौ सम्यग्ज्ञानस्य सामर्थ्यं शुक्तिकादौ। न चोत्तरकालभाविना मिथ्याज्ञानेनाऽपि सम्यग्ज्ञानस्य निवृत्तिः सम्भवति, तत्सन्तानोच्छेदस्य विवक्षितत्वात्। यथा हि सम्यग्ज्ञानाद् मिथ्याज्ञानसन्तानोच्छेदः क्रियते, नैवं मिथ्याज्ञानात् सम्यग्ज्ञानसन्तानोच्छेदः, सम्यग्ज्ञानस्य यथार्थविषयत्वेन बलीयस्त्वाद्। निवृत्ते च मिथ्याज्ञाने तन्मूलका रागादयोऽपयन्ति, कारणाभावे कार्यस्याऽनुत्पादात्, रागाद्यपाये च तत्कार्यरूपा मनोवाक्कायप्रवृत्तिर्व्यावर्तते, तद्व्यावृत्तौ च धर्माऽधर्मयोरनुत्पत्तिः। आरब्धशरीरेन्द्रियविषयकार्ययोर्धर्माऽधर्मयोः सुखादिफलोपभोगात् प्रक्षयः, अनारब्ध-तत्कार्ययोश्च सञ्चितयोरपि तयोरुपभोगादेव प्रक्षय इति तत्त्वज्ञानस्य मिथ्याज्ञानव्यवच्छेदक्रमेण मोक्षहेतुत्वमस्ति। यदाहुर्न्यायभाष्यकाराः **"यदा तु तत्त्वज्ञानान्मिथ्याज्ञान[1]मपैति, तदा मिथ्याज्ञानाऽपाये दोषा[2]अपयन्ति, दोषाऽपाये प्रवृत्ति[3]रपैति, प्रवृत्त्यपाये जन्मा[4]ऽपैति, जन्माऽपाये दुःख[5]मपैति, दुःखापाये च आत्यन्तिकोऽपवर्गः निःश्रेयसमिति।"**

एवमेव **वैशेषिकदर्शनप्रशस्तपादभाष्येऽपि** प्रतिपादितम् **"ज्ञानपूर्वकात्तु कृतादसङ्कल्पितफलाद्विशुद्धे कूले जातस्य दुःखविगमोपायजिज्ञासोराचार्यमुपसङ्गम्योत्पन्नषट्पदार्थतत्त्वज्ञानस्याऽज्ञाननिवृत्तौ विरक्तस्य रागद्वेषाद्यभावात् तज्जयोर्धर्माधर्मयोरनुत्पत्तौ पूर्वसञ्चितयोश्चोपभोगान्निरोधे सन्तोषसुखं शरीरपरिच्छेदं चोत्पाद्य रागादिनिवृत्तौ निवृत्तिलक्षणः केवलो धर्मः परमार्थदर्शनजं सुखं कृत्वा निवर्तते। तदा निरोधात् निर्बीजस्याऽऽत्मनः शरीरादिनिवृत्तिः, पुनः शरीराद्यनुत्पत्तौ [6]दग्धेन्धनवदुपशमो मोक्ष इति।"**

इहाऽऽरब्धशरीरादिधर्माधर्मवत् सञ्चितयोरपि धर्माऽधर्मयोरुपभोगादेव प्रक्षयो भणितः, आगमश्चात्र **"नाऽभुक्तं क्षीयते कर्म कल्पकोटिशतैरपि"**[7] इत्येवंरूप एतदर्थसंवादकः। अनुमानमप्यस्ति पूर्वकर्माण्युपभोगादेव क्षीयन्ते, कर्मत्वात्, यद् यत् कर्म, तत् तद् उपभोगादेव क्षीयते, यथाऽऽरब्धशरीरं कर्म, तथा चैतद् कर्म। तस्मादुपभोगादेव क्षीयते कर्म। न चोपभोगात्

(१) देहादिष्वात्मबुद्ध्यादिकं मिथ्याज्ञानम् (२) मिथ्याज्ञानादनुकूलेषु रागः, प्रतिकूलेषु च द्वेषः, रागद्वेषाधिकाराच्चाऽसूयेर्ष्या माया लोभादयो दोषाः (३) इह प्रवृत्तिसाधनौ धर्माऽधर्मौ प्रवृत्तिशब्देनाऽभिहितौ, यथाऽन्नसाधना प्राणा "अन्नं वै प्राणिनः प्राणा" इति। (४) शरीरेन्द्रियबुद्धीनां निकायविशिष्टः प्रादुर्भावो जन्म।" (५) बाधनालक्षणं प्रतिकूलवेदनीयं दुःखम्। (६) यथा दग्धेन्धनस्याऽनलस्योपशमः = ज्वालादिभी रहितस्या ऽवस्थानम्, तद्वदत्यन्त विशेषगुणैर्वियुक्तस्या-ऽऽत्मनो-ऽवस्थानं मोक्ष इति।

(७) उद्धृतोऽयं श्लोक प्रशस्तपादभाष्यस्योमवत्यादावपि।

प्रक्षये कर्मान्तरस्योत्पत्तेरवश्यंभावात् संसारानुच्छेदः । अयं भावः—"मा हिंस्यात् सर्वभूतानि" इति श्रुतिसद्भावात् प्राणिमात्रस्य वधोऽनिष्टः । उपभोगस्तु प्राण्युपमर्दनादिकं विना न संभवतीत्युपार्जितप्राणिवधादिनिमित्तककर्मफलोपभोगाय जन्मान्तरमावश्यकम् । तत्राऽप्युपभोगेन पुनः प्राणिवधादिनिमित्तककर्मोपार्जनं स्यात्, तत्फलोपभोगाय पुनर्जन्मान्तरमावश्यकमिति कथं संसारस्योच्छेदः स्यादिति वाच्यम्, [1]समाधिबलादुत्पन्नतत्त्वज्ञानस्याऽवगतकर्मसामर्थ्योत्पादितयुगपदशेषशरीरद्वाराऽवाप्ताऽशेषभोगस्य कर्मान्तरोत्पत्तिनिमित्तमिथ्याज्ञानजनिताऽनुसन्धानविकलस्य कर्मान्तराऽनुत्पत्त्या संसारच्छेदोपपत्तेः ।

एतदुक्तं भवति समाधिबलाल्लब्धतत्त्वज्ञानो योगी निखिलनिजकर्मसामर्थ्यं ज्ञात्वा तदुपभोगयोग्यानि तेषु तेषूपपत्तिस्थानेषु तानि तानि सेन्द्रियाणि शरीरादीनि निर्माय सकलकर्मफलमनुभवति । न च तत्प्रवृत्तिः पुनर्जन्मने कल्पते, क्षीणक्लेशत्वात्, यदुक्तं **श्रीगोतमेन "न प्रवृत्तिः प्रतिसन्धानाय क्षीणक्लेशस्य ।"** (गौ०४-१-६४) इति ।

न च मिथ्याज्ञानाभावे तत्त्वज्ञानिन उपभोगाऽभिलाषस्यैवाऽसम्भवात् कायव्यूहद्वारा सञ्चितयोर्धर्माधर्मयोरुपभोगो नोपपद्यत इति वाच्यम्, यत उपभोगं विना कर्मणां प्रक्षयाऽनुपपत्तितस्तत्त्वज्ञानिनस्तदुपभोगाऽभिलाषाभावेऽपि कर्मक्षयार्थित्वेन तस्य तत्र[2] प्रवृत्तिर्घटते, वैद्योपदेशेना-ऽऽतुरस्येवौषधाचरणे, यथैव ह्यातुरस्याऽनभिलषितकटुककाथाद्याचरणे व्याधिप्रक्षयार्थं प्रवृत्तिर्दृश्यते, तद्व्यतिरेकेण व्याधिप्रक्षयोऽनुपपन्नः, तथैवाऽत्राऽपि ।

ननु तत्त्वज्ञानादेव सञ्चितकर्मक्षयोऽस्तु, यदुक्तं **व्यासमुनिना भगवद्गीतायाम्**—

"यथैधांसि समिद्धोऽग्निर्भस्मसात् कुरुतेऽर्जुन ।
ज्ञानाग्निः सर्वकर्माणि भस्मसात् कुरुते तथा ॥१॥"

इति चेत्, न, तत्त्वज्ञानस्य साक्षात् कर्मविनाशे व्यापाराऽभावात् । तत्त्वज्ञानं हि निखिलशरीरोत्पत्तिद्वारेणोपभोगात् कर्मणां विनाशे व्याप्रियत इत्यग्निरिवोपचर्यत इति व्याख्येयं भगवद्गीतावचनम्, न तु साक्षात् । ततश्च '**नाऽभुक्तं कर्म**' इत्यादिना सह "**यथैधांसि**" इत्याद्यस्य न कश्चिद् विरोधः । न च तत्त्वज्ञानिना कर्मविनाशस्तत्त्वज्ञानाद्भवतु, इतरेषान्तूपभोगादिति वाच्यम्, ज्ञानेन कर्मविनाशे प्रसिद्धोदाहरणाऽभावात् ।

केचित्तु विद्यमानान्यपि कर्माणि न जन्मान्तरशरीराण्यारभन्ते, मिथ्याज्ञानजनितसंस्कारस्य सहकारिणो विरहादित्याहुः, तदुक्तं **न्यायमञ्जर्यां श्रीजयन्तभट्टैः "तदन्ये न मन्यन्ते, न सर्वात्मना कर्मणां दाहः, किन्तु स्वरूपेण सतामपि सहकारिवैकल्यात् स्वकार्य-**

१ उक्तं च प्रशस्तपादभाष्यव्योमवत्याम् "समाधिबलादुत्पन्नतत्त्वज्ञानो हि कर्मणाञ्च सामर्थ्यं विदित्वा युगपच्छरीराणि निर्मायोपभोग······।" इति । (२) कर्मफलोपभोगे

करणोदासीनता तेषां भवति, भृष्टानामिव बीजानामङ्कुरकरणकौशलहानिः, यतः सामग्री कार्यस्य जनिका, न केवलं कारणमतो न कर्माण्येव केवलानि फलोपभोगयोग्यशरीरेन्द्रियादिजन्मनिमित्ततामुपयान्ति, किन्तु मिथ्याज्ञानेन दोषैश्च सहितानि, तदुक्तम् 'अविद्यातृष्णे धर्माधर्मौ च जन्मकारण"मिति तत्त्वविदश्च तत्त्ववित्त्वादेव नाऽविद्या मिथ्याज्ञानात्मिका भवति, दोषाणां तु प्रशमे दर्शित एव क्रमः, तदभावे भवन्तावपि धर्माऽधर्मौ न बन्धाय कल्पेते, न हि स्वकार्यमङ्कुरादि कुसूलवर्तीनि बीजानि जनयितुमुत्सहन्ते, भृष्टबीजानामपि स्वरूपशक्तिरपि तानवं गता, तद्वत्कर्मणां स्वरूपशक्तिशैथिल्यं मा भूत्, तथापि कुसूलवर्तिबीजवत् सहकारिवैधुर्यात् कार्या-ऽनारम्भः ।" इति ।

तन्न, अनुत्पादितकार्यस्य कर्मलक्षणस्य जन्यभावस्या-ऽप्रक्षयाद् नित्यत्वप्रसक्तेः, प्रतियोगितासम्बन्धेन ध्वंसत्वाऽवच्छिन्नं प्रति तादात्म्यसम्बन्धेन जन्यभावत्वेन हेतुत्वमिति कार्यकारणभावलोपापत्तेश्च ।

नन्वनागतयोर्धर्माऽधर्मयोरुत्पत्तिप्रतिषेधे सति तत्त्वज्ञानिनां नित्य-नैमित्तिकाऽनुष्ठानं किमर्थम्? इति चेत्, प्रत्यवायपरिहारार्थमिति ब्रूमः । न च मिथ्याज्ञाना-ऽभावे दुष्कर्मणोऽभावात् कस्य परिहारार्थं नित्यनैमित्तिकाऽनुष्ठानमिति वाच्यम्, यतो मिथ्याज्ञानाऽभावे [1]काम्यनिषिद्धाचरणनिमित्तस्यैव प्रत्यवायस्याऽभावः, न पुनर्नित्यनैमित्तिकादिविहिताऽननुष्ठाननिमित्तस्य, अकुर्वन् विहितं कर्म प्रत्यवायेन लिप्यत इत्यागमात् । तदुक्तञ्च

नित्यनैमित्तिकैरेव कुर्वाणो दुरितक्षयम् ।
ज्ञानं च विमलीकुर्वन्नभ्यासेन तु पाचयेत् ॥१॥
अभ्यासात् पक्वविज्ञानः[2]कैवल्यं लभते नरः ।
केवलं काम्ये निषिद्धे च प्रवृत्तिप्रतिषेधतः ॥२॥

तथा च

नित्य-नैमित्तिके कुर्यात् प्रत्यवायजिहासया ।
मोक्षार्थी न प्रवर्त्तेत तत्र काम्य-निषिद्धयोः ॥१॥

न चेत्थं मिथ्याज्ञानध्वंसादिक्रमेण विशेषगुणोच्छेदविशिष्टात्मस्वरूपमुक्त्यभ्युपगमे तादृशमुक्तेस्तत्त्वज्ञानकार्यत्वादनित्यत्वमिति वाच्यम्, यतः किं विशेषगुणोच्छेदस्याऽनित्यत्वमापाद्यते, तद्विशिष्टात्मनो वा? न तावत् प्रथमो विकल्पः, यतो विशेषगुणोच्छेदः प्रध्वंसरूपः । जन्यस्य भावस्यैव विनाशित्वं प्रसिद्धम्, न तु ध्वंसस्य । नाऽपि द्वितीयविकल्पः, यतस्तद्विशिष्टात्मनो

(१) काम्य=याग, निषिद्धं=विप्रवधादि ।
(२) कैवल्य=सकलात्मविशेषगुणोच्छेदविशिष्टात्मस्वरूप निःश्रेयसम् ।

भावत्वेऽपि नित्यत्वेन कार्यत्वाभावान्नाऽनित्यत्वम् । न च तथापि बुद्ध्यादिविनाशे तद्वत् आत्मनोऽपि नाशः स्यादेवेति वाच्यम्, गुणगुणिनोस्तादात्म्याऽभावात् ।

अत्र प्रतिविधीयते [1]यत्तावदुक्तम् '**नवानामात्मविशेषगुणानां सन्तानोऽत्यन्तमुच्छिद्यते, सन्तानत्वादित्यत्रा-ऽऽत्मनः** किं सर्वथा भिन्नानां बुद्ध्यादिविशेषगुणानां सन्तानस्योच्छेदः साध्यते, उता-ऽभिन्नानाम्, आहोस्वित् कथञ्चिद् भिन्नानाम् ?

तत्र प्रथमपक्षे तावदाश्रयाऽसिद्धो हेतुः, आत्मतोऽत्यन्तभिन्नानां बुद्ध्यादिविशेषगुणानामसत्कल्पत्वात् सन्तानस्य धर्मिणोऽसिद्धेः । तथा तेषां भवन्मते स्वसंवेदितत्वाऽनभ्युपगमात् ज्ञानान्तरग्राह्यत्वे चा-ऽनवस्थादिदोषप्रसङ्गात्, अज्ञातानाञ्च सत्त्वासिद्धेः पुनरप्याश्रयासिद्धः 'सन्तानत्वाद्' इति हेतुः ।

ना-ऽपि द्वैतीयिकः पक्षः कक्षीकरणार्हः, आत्मनः सर्वथा-ऽभिन्नानां बुद्ध्यादिविशेषगुणानामुच्छेदसाधने तद्वत् आत्मनोऽप्युच्छेदः स्यात् । ततश्च कस्याऽसौ मोक्षः ?

ना-ऽपि तार्तीयिकः पक्षः, कथञ्चिद्भेदस्य तु नैयायिक-वैशेषिकादिभिरनभ्युपगमात्, तदभ्युपगमेऽपि सर्वथा तदुच्छेदाऽसिद्धिः, कथञ्चिदनुच्छेदस्याऽप्येवं प्रसिद्धेः । तथा-ऽभ्युपगमे चा-ऽस्मन्मतमेवा-ऽङ्गीकृतं प्रेक्षावता । अभ्युपगम्यत एव हि स्याद्वादवादिभिर्गुणगुणिनोः कथञ्चिद्भेदः, तेन "**नट्ठम्मि य छउमत्थिए नाणे**" इत्यागमात् क्षायोपशमिकमत्यादिज्ञानानां विनाशेऽपि मोक्षावस्थायां क्षायिककेवलज्ञानस्या-ऽनुच्छेदः ।

किञ्च सन्तानत्वं हेतुत्वेनोपादीयमानं किं सामान्यरूपमभिप्रेतम्, उत विशेषरूपम् ? तत्र प्रथमपक्षे स्वरूपासिद्धो हेतुः, बुद्ध्यादिविशेषगुणेषु तेजोद्रव्यविशेषे च सत्तासामान्यव्यतिरेकेणाऽपरसामान्यस्याऽसम्भवात् । न च सन्तानत्वस्य सत्तारूपपरसामान्यरूपत्वे न तस्य स्वरूपासिद्धत्वमिति वाच्यम्, यतः सत्तासामान्यरूपत्वे सन्तानत्वस्य 'सत् सत्' इति प्रत्ययहेतुत्वमेव स्यात्, न पुनः 'सन्तानः सन्तानः' इति प्रत्ययहेतुत्वम्, अन्यथा द्रव्यगुणकर्मस्वरूपादेव 'सत् सत्' इति प्रत्ययोपपत्तेः सत्ताकल्पनाया वैयर्थ्यम् ।

किञ्च सत्तासामान्यरूपत्वे गगनादिना व्यभिचारः, [2]अत्यन्तोच्छेदा-ऽभावेऽपि गगनादौ सत्तासामान्यरूपस्य सन्तानत्वस्य हेतोः सद्भावात् ।

अपि च सन्तानत्वसामान्यस्य बुद्ध्यादिषु वृत्तिमत्ता समवायेन भवतेष्यते, समवायस्य च **सम्मतितर्कादिवृत्तिग्रन्थेषु** न्यक्षेण निषिद्धत्वात् पुनरपि सन्तानत्वहेतोः स्वरूपासिद्धता ।

नाऽप्यपरसामान्यरूपं सन्तानत्वं सम्भवति, यतो विशेषगुणाश्रिता जातिः खलु सन्तानत्वं न साधर्म्यदृष्टान्ते तेजोद्रव्ये प्रदीपादावस्ति, गुणवृत्तित्वात्, तेन साधनविकलो दृष्टान्तः ।

(१) पृ० ५०८ पं० २५ ।　　(२) साध्याभावे-ऽपि ।

अथ विशेषरूपं सन्तानत्वं हेतुः । तत्र विकल्पचतुष्कमवतरति—(१) किमुपादानोपादेयभूतबुद्धयादिक्षणलक्षणप्रवाहरूपम् ?(२) उत कार्यकारणभावलक्षणप्रवाहरूपम् ? (३) आहोस्वित् स्वतन्त्रम् अपरापरक्षणोत्पत्तिमात्रम् ? (४) अथवा एकाश्रया-ऽपरापरक्षणोत्पत्तिमात्रम् ? इति ।

तत्र न तावदाद्यो विकल्पः, तादृशसन्तानत्वस्याऽन्यत्रा[१]-ऽप्रवृत्त्या-ऽसाधारणाऽनैकान्तिकत्वाद् अभ्युपगमविरोधप्रसङ्गाच्च । अभ्युपगमविरोधश्चेत्थम् न खलु नैयायिक-वैशेषिकादिभिर्बु-द्ध्यादिक्षणानामुपादानोपादेयभावः स्वीक्रियते, तस्य सौगतानां सम्मतत्वात्, नैयायिकादिभिस्तु समवायिकारणाऽऽत्मतो—ऽसमवायिकारणा-ऽऽत्म-मनःसंयोगतो-ऽदृष्टादेश्च निमित्तकारणादात्मगुणोत्पत्तिस्वीकारात् ।

एतेनैव द्वितीयपक्षोऽपि प्रतिविहितः, बुद्ध्यादिक्षणानां कार्यकारणभावस्य तैरनङ्गीकारात् । प्रलयप्रलीन-बुद्ध्यादेरप्यात्मन एव पुनर्बुद्ध्याद्युत्पादाङ्गीकारात् ।

तृतीयपक्षेऽपि व्यभिचारः, अपरा-ऽपरेषामुत्पादुकानां घट-पट-कटादीनां सन्तानत्वेऽप्यत्यन्तमनुच्छेदात् ।

चतुर्थपक्षोऽपि न रमणीयः, यतस्तादृशं सन्तानत्वं नास्ति प्रदीप इति साधनविकलो दृष्टान्तः । परमाणुपाकजरूपादिभिश्च व्यभिचारी हेतुः, तथाविधसन्तानत्वस्य तत्र सद्भावेऽप्यत्यन्तोच्छेदाभावात् ।

अपि च सन्तानत्वमपि भविष्यति, अत्यन्तानुच्छेदश्चाऽपीति, विपर्यये हेतोर्बाधकप्रमाणाऽभावेन सन्दिग्धविपक्षव्यावृत्तिकत्वादनैकान्तिकः ।

विरुद्धश्चाऽयं सन्तानत्वहेतुः, शब्द-बुद्धि-प्रदीपादिष्वप्यत्यन्तानुच्छेदवत्स्वेव सन्तानत्वस्य व्यवस्थानात् । न ह्येकान्तनित्येष्विवैकान्ता-ऽनित्येष्वप्यर्थक्रियाकारित्वलक्षणं सत्त्वं संभवति,तत्र तत्र स्याद्वादग्रन्थेषु प्रतिपिद्धत्वात् । साध्यवैकल्यं च दृष्टान्तस्य, प्रदीपादेरत्यन्तोच्छेदा-ऽभावात्, तैजसपरमाणूनां खलु भास्वररूपपरित्यागेनाऽन्धकाररूपतया-ऽवस्थानात् । न च प्रदीपादीनामुत्तरपरिणामस्या-ऽप्रत्यक्षत्वेन तेषामुच्छेदो विनिश्चेतुं शक्यः, अन्यथा परमाणूनां पारिमाण्डल्यगुणाधारतया प्रत्यक्षतो-ऽगृहीतानामसत्त्वं प्रसज्येत । अथ तेषां तद्रूपतया-ऽनुमानात् प्रतिपत्तेर्नाऽयं दोष इति चेत्, प्रकृतेऽप्यनुमानात् सा प्रतिपत्तिः किं नेष्यते । यथाहि स्थूलकार्यप्रतिपत्तिस्तदपरसूक्ष्मकारणमन्तरेणाऽसम्भविनी परमाणुसत्तामवबोधयति, तथा मध्यस्थितिदर्शनं पूर्वापरकोटिस्थितिमन्तरेणाऽसम्भवि तां साधयतीति ।

न च ध्वस्तस्या-ऽपि प्रदीपस्य विकारान्तरेणा-ऽवस्थाना-ऽभ्युपगमे प्रत्यक्षबाधेति वाच्यम्, [२]वारिस्थिते [३]तेजसि भास्वररूपा-ऽभ्युपगमेऽपि तद्बाधोपपत्तेः । अथोष्णस्पर्शस्य भास्वररूपाधिकरणतेजोद्रव्याऽभावेऽसम्भवादनुमानतस्तत्रानुद्भूतभास्वररूपस्य परिकल्पनम्,तर्हि प्रदीपादेरनुपादनोत्प-

(१) दृष्टान्ते प्रदीपे (२) उष्णवारिस्थिते । (३) वह्नौ ।

त्तिवदन्त्यावस्थातोऽपरा-ऽपरपरिणामा-ऽऽधारत्वमन्तरेण सत्त्वकृतकत्वादेरनुपपत्तेरत्यन्ता-ऽनुच्छेदो-ऽपि परिकल्प्यताम्, अविशेषात् । प्रयोगश्चाऽयम्-पूर्वापरस्वमात्रपरिहारा-ऽङ्गीकारस्थितिलक्षणपरिणामवान् प्रदीपः, सत्त्वात् कृतकत्वाच्च, घटादिवद् । इत्थमनुमानतोऽपि प्रदीपादिसन्ताना-ऽनुच्छेदः किं न कल्प्यते, अन्यथा सन्तानचरमक्षणस्य क्षणान्तरा-ऽजनकत्वेना-ऽर्थक्रियाकारित्वविरहादसत्त्वे सिद्धे पूर्वपूर्वक्षणानामपि तथाभूतत्वप्रसङ्गाद् विवक्षितक्षणस्याऽप्यसत्त्वं स्यात् । ततश्च दृष्टान्तस्य प्रदीपस्य बुद्ध्यादिपक्षस्य चाऽसत्त्वप्रसङ्गात् कथमनुमानं प्रवर्तेत ? इत्थं शब्द-बुद्धि-प्रदीपादीनां सत्त्वसाधने नात्यन्तिक उच्छेदोऽभ्युपगन्तव्यः, अन्यथा विवक्षितक्षणेऽपि सत्त्वाभावः स्यात् । तदेवं सर्वत्रा-ऽत्यन्ताऽनुच्छेदवत्स्वेव बुद्धिप्रदीपादिषु सन्तानत्वस्य वृत्तेः कथं न तस्य विरुद्धत्वम् ?

सत्प्रतिपक्षश्चाऽयं सन्तानत्वहेतुः,तथाहि-बुद्ध्यादिसन्तानो नाऽत्यन्तोच्छेदवान् , सर्वप्रमाणा-ऽनुपलभ्यमानतथोच्छेदत्वात् । यो हि सर्वप्रमाणानुपलभ्यमानतथोच्छेदः,न स तत्त्वेना-ऽभ्युपगम्यः, यथा पार्थिवपरमाणुपाकजरूपादिसन्तानः ,तथा चाऽयम् , तस्मान्ना-ऽत्यन्तोच्छेदवानिति ।

न च नवानामात्मविशेषगुणानां सन्तानोऽत्यन्तमुच्छिद्यते, सन्तानत्वादित्यनुमानप्रमाणादेव सन्तानोच्छेदोपलब्धेः सर्वप्रमाणा-ऽनुपलभ्यमानतथोच्छेदत्वमसिद्धमिति वाच्यम् , अस्या-ऽनेकदोषदुष्टत्वेना-ऽननुमानत्वप्रतिपादनात् ।

कालात्ययापदिष्टश्चायं सन्तानत्वहेतुः, विपरीतार्थोपस्थापकोक्ता-ऽनुमानेन बाधितपक्षनिर्देशानन्तरं प्रयुक्तत्वात् ।

किञ्च नवानामात्मविशेषगुणानां सन्तानो-ऽत्यन्तमुच्छिद्यते, सन्तानत्वादित्यनुमानात् किमिन्द्रियजानां बुद्ध्यादीनामुच्छेदः साध्यमानोऽस्ति ? उता-ऽतीन्द्रियाणाम् ?

तत्राद्यपक्षे सिद्धसाधनम् ,अस्माभिरपि तत्र बुद्ध्यादिगुणानामिन्द्रियजानामुच्छेदस्वीकारात् ।

द्वितीयपक्षोऽपि न निरवद्यः,अतीन्द्रियाणां तेषामत्यन्तोच्छेदे मुक्तौ कस्यचिदपि प्रवृत्त्यनुपपत्तेः। सर्वो हि मोक्षार्थी निरतिशयसुखज्ञानादिप्राप्त्यभिलाषेणैव प्रवर्तते, न पुनः सकलबुद्ध्यादिविशेषगुणोच्छेदाभिलाषेण, तादृशोच्छेदस्य केनचिदप्यनभिलषणीयत्वात् । न कोऽपि स्वात्मानं शिलाशकलकल्पमपगतसकलसंवेदनं जडं सम्पादयितुं प्रयतते । यदि मोक्षावस्थायां स्वात्मा पाषाणदेशीयो जडो भवेत् , तर्हि कृतं मोक्षेण, संसार एव वरमस्तु । अत एव भव पहासोऽपि श्रूयते

वरं वृन्दावने रम्ये शृगालैश्च सहोषितम् ।
न तु वैशेषिकीं मुक्तिं गौतमो गन्तुमिच्छति ॥१॥" इति

अपि च उपहासं विदधता महाकविश्रीहर्षेणा-ऽपि नैषधमहाकाव्ये भणितम्—

मुक्तये यः शिलात्वाय शास्त्रमूचे सचेतसाम् ।
गोतमं तमवेक्ष्यैव यथा वित्थ तथैव सः ॥१॥" इति

'भवत्पठिता-ऽऽगमस्त्वन्यथा-ऽपि व्याख्यातुं शक्यते । तथाहि-सशरीरस्य=गतिचतुष्टय-वर्तिन आत्मनः प्रिया-ऽप्रिययोः=परस्परा-ऽनुपक्तयोः सुख-दुःखयोः, अपहतिः=अभावो नास्ति, संसारिणां कदाचिदपि केवलं सुखं केवलं वा दुःखं नास्तीत्यर्थः, अशरीरं=गतिचतुष्टया-ऽन्यतमा-ऽवर्तिनं तु वावसन्तं=चद्रूक्, अतिशयेन वसन्तं प्रियाप्रिये=परस्परानुषक्ते सुखदुःखे न स्पृशतः, आत्मस्वरूपत्वेन सदैव केवलसुखस्यैव सद्भावादिति ।

ननु परस्पराऽनुपक्तत्वं कुतो बुध्यते, न च द्वन्द्वसमासकरणात् तद् गम्यत इति वाच्यम्, यतो यथा धवखदिरौ छिन्धीत्यादौ छिदायाः प्रत्येकमन्वयो भवति, तथाऽत्रापि परस्परा-ऽननुपक्तयोः सुखदुःखयोर्ग्रहणं स्यादिति चेत्, उच्यते-एकसत्त्वेऽप्युभयं नास्तीति प्रतीतिबलात् घटवत्यपि भूतले घटपटौ न स्त इति वाक्याद् यथा घटपटोभयत्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकाऽभावो बुध्यते, तथैव मुक्तौ सुखादिसत्त्वेऽपि तात्पर्यवशादुक्तश्रुत्या प्रियाऽप्रियोभयत्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकाभावः प्रतिपाद्यते । तेन

"सुखमात्यन्तिकं यत्र बुद्धिग्राह्यमतीन्द्रियम् ।
तं वै मोक्षं विजानीयात् दुष्प्रापमकृतात्मभिः ॥१॥ इति

स्मृतिरप्युक्तार्थानुपातिनी सङ्गच्छते ।

यद्वा-ऽप्रियशब्दसान्निध्याद् भवदुदितागमस्थौ प्रियाऽप्रियशब्दौ वैषयिकसुख-दुःखप्रतिपादनपरौ व्याख्यायेते, ततोऽपि न काचिद् विप्रतिपत्तिः ।

किञ्च मुक्तौ बुद्ध्यादिविशेषगुणानामभावः किं कारणाऽभावादिष्यते ? उत विरुद्धत्वादिष्यते ? न तावत् प्रथमविकल्पः, न हि ज्ञानादिविशेषगुणत्वावच्छिन्नं प्रति शरीरादेर्निमित्तकारणत्वम्, ईश्वरज्ञानादिके व्यभिचारात्, किन्त्विन्द्रियजबुद्ध्यादिविशेषगुणत्वावच्छिन्नं प्रत्येव शरीरादेर्निमित्तकारणत्वमभ्युपगन्तव्यम्, न तु मोक्षावस्थाज्ञानसुखादिकत्वावच्छिन्नं प्रत्यपि । न च संसारावस्थाज्ञानसुखादिकस्य शरीरादिनिरूपितकार्यत्वम्, मोक्षावस्थाज्ञानसुखादिकस्य त्वन्यनिरूपितकार्यत्वमिति मोक्षावस्थाज्ञानसुखादिकं प्रति कारणान्तरकल्पने गौरवमिति वाच्यम्, **"मोक्षे सुखमनुत्तमम्"** इत्याद्यागमबलेन मुक्तौ ज्ञानसुखादीनां सिद्धौ तदुत्पत्तेरन्यथानुपपत्त्या कल्पिते कारणे कल्पनागौरवस्य प्रामाणिकत्वेन दूषणत्वविरहात् ।

ननु तथापि मुक्तावपि बुद्ध्यादिगुणानां जन्यभावत्वात् तेषां ध्वंसः स्यात्, ततश्च न

(१) पृ० ५०८ प० ३० ।

तेषामनन्तत्वम्, यतः प्रतियोगितासम्बन्धेन ध्वंसत्वावच्छिन्नं प्रति तादात्म्यसम्बन्धेन जन्यभावत्वेन कारणमिति कार्यकारणभाव इति चेत्, न, अभाववत् कस्यचिद् भावस्या-ऽप्यविनाशसम्भवाद् जन्यभावत्वेन नाशहेतुत्वे मानाभावाच्च। एतदुक्तं भवति-यथा जन्यस्य ध्वंसस्य विनाशा-ऽभावेन विनाश-जन्याभावयोः कार्यकारणभावो न सम्भवति, तथैवा-ऽऽगमसिद्धस्य मुक्ताऽवस्थाज्ञानसुखादिकस्य विनाशाभावेन विनाश-जन्यभावयोरपि न कार्यकारणभावः। ननु यद्येवं नाश-जन्यभावयोः कार्यकारणभावविरहः, तर्हि यथा जन्यस्य कस्यचिद् घटाद्यात्मकभावस्य नाशो भवति, कस्यचिच्च मुक्तावस्थाज्ञानसुखादिकस्य न भवति, तथा-ऽजन्यस्याऽपि कस्यचिद् नाशः, कस्यचिच्च नेति चेत्, मैवम्, नाशकारणानां नाश्यनिष्ठतयैव हेतुत्वेन दोषा-ऽभावात्। अयं भावः—मुद्गरसंयोगादेः कारणतानियामकेन सम्बन्धविशेषेण स्वसमवायिसंयोगादिना नाश्ये घटादौ वृत्त्या घटादिनाशं प्रति मुद्गरसंयोगादेर्नाशकारणता, तेन ना-ऽजन्यस्य नाशा-ऽऽपत्तिः, नाशकारणविरहात्, एवमेव मुक्तावस्थायां न ज्ञानसुखादिनाशा-ऽऽपत्तिः। न च शरीराद्यभावस्य तादृशज्ञानसुखादिविनाशं प्रति हेतुता समस्तीति वाच्यम्, अभावस्य तुच्छत्वेन नाशकारणत्वा-ऽयोगात्।

अपि च प्रतियोगितासम्बन्धेन नाशं प्रति जन्यभावत्वेन हेतुत्वे स्वीकृते कारणता-ऽवच्छेदको जन्यत्वं न प्रागभावप्रतियोगित्वं ग्रहीतुं शक्यते, गुरुभूतत्वात्, किन्तु कालिकसम्बन्धेन घटत्वादिमत्त्वस्य कारणतावच्छेदकत्वकल्पनमुचितम्, लघुभूतत्वात्। एतदुक्तं भवति-कालिकसम्बन्धेन घटत्वादिमत्त्वस्य जन्यमात्रवृत्तिता नैयायिकैः स्वीक्रियते, काला-ऽतिरिक्तनित्यपदार्थे तु वृत्तिः कालिकसम्बन्धेन ना-ऽभ्युपगम्यते "नित्येषु कालिका-ऽयोगात्" इति वचनात्। ततश्च प्रतियोगितासम्बन्धेन नाशं प्रति जन्यभावत्वं हेतुरित्यत्र प्रागभावप्रतियोगित्वा-ऽपेक्षया लघुत्वेन कालिकसम्बन्धेन घटत्वादिमत्त्वस्यैव कारणतावच्छेदकत्वकल्पनमुचितम्, तत्रा-ऽपि घटत्वादिमत्त्वस्यैवाऽवच्छेदकत्वं न पटत्वादिमत्त्वस्येति विनिगमनाविरहात्, घटत्व-पटत्वादिमत्त्वादीनामवच्छेदकत्वं वाच्यम्। तथा च सत्यवच्छेदकानां नानात्वं स्यात्।

किञ्च जन्यभावत्वेन नाशहेतुत्वेऽपि मुक्तौ न सुखादिध्वंसः, यतो योग्यविभुविशेषगुणान् स्वोत्तरवर्तियोग्यविभुविशेषगुणा नाशयन्तीति नैयायिकसिद्धान्तसद्भावात् प्रतियोगितासम्बन्धेन योग्यात्मविशेषगुणनाशं प्रत्यैकाधिकरण्यावच्छिन्नस्वपूर्ववृत्तितासम्बन्धेन योग्यविशेषगुणत्वेन हेतुत्वमित्यपि नैयायिकमते कार्यकारणभावोऽस्ति, मुक्तौ तु योग्यविशेषगुणोत्पत्त्यभावाद् न पूर्वविशेषगुणानां नाशः स्यात्। ततश्च मुक्त्यवस्थायामप्यनन्तज्ञानादिकं निराबाधम्। अनन्तातीन्द्रियज्ञानसद्भावश्च यथा भवति, तथा सयोगिकेवलि-गुणस्थानाधिकारे आगमरीत्या दर्शितः। अनन्तातीन्द्रियसकलपदार्थविषयकज्ञानसाधकमनुमानप्रमाणमप्यस्ति। तद्यथा—ज्ञानतारतम्यं क्वचिद् विश्रान्तम्, तारतम्यशब्दवाच्यत्वात्, परिमाणवदिति।

अथ विरुद्धत्वाद् मुक्तौ ज्ञानाद्यभाव इष्यत इति चेत्, न, स्वरूपेण कस्यचित् विरोधा-ऽभावात्। प्रतिबन्धककर्मापायोपेतस्यात्मनः स्वरूपमेवाऽनन्तज्ञानादिविशिष्टत्वम्, न च स्वरूपेण सह विरोधो न्याय्यः। अभ्युपगते च विरोधे महेश्वरज्ञानादीनामप्यभावः प्रसज्येत, अविशेषात्।

अन्यच्च प्रदीपनिर्वाणवादिनः सौगताद् भवतः को विशेषः, सौगतेन हि स्वरूपेणा-ऽऽत्मनोऽसत्त्वमभ्युपगतम्, यदुक्तं सौन्दरनन्दमहाकाव्ये श्रीमदश्वघोषेण–

"यस्मिन्न जातिर्न जरा न मृत्युर्न व्याधयो ना-ऽप्रियसम्प्रयोगः।
नेच्छाविपन्नप्रियविप्रयोगः क्षेमं पदं नैष्ठिकमच्युतं तत् ॥१॥
दीपो यथा निर्वृत्तिमभ्युपेतो नैवावनिं गच्छति नान्तरिक्षम्।
दिशं न काञ्चिद्विदिशं न काञ्चित् स्नेहक्षयात् केवलमेति शान्तिम् ॥२॥
एवं कृती निर्वृत्तिमभ्युपेतो नैवावनिं गच्छति नान्तरिक्षम्।
दिशं न काञ्चिद्विदिशं न काञ्चित् क्लेशक्षयात् केवलमेति शान्तिम् ॥३॥"
इति।

भवता तु सतोऽप्यस्यात्मनो बुद्ध्यादिगुणविकलत्वमभ्युपगम्यते, बुद्ध्यादिगुणविकलतायाश्च प्रमाणाभावादसत्त्वम्। बुद्ध्यादिगुणविकलत्वं हि स्वरूपं केन प्रमाणेन प्रतीयते–किं प्रत्यक्षेणाऽनुमानेन वा? अथ प्रत्यक्षेण, तर्हि किमिन्द्रियप्रत्यक्षेण, उत योगिप्रत्यक्षेण। न तावदाद्येन, मोक्षे तस्या-ऽसम्भवात्। नाऽपि द्वितीयेन, योगिभिरात्मनोऽनन्तज्ञानादिमत्त्वेन प्रतीतेः।

नाऽप्यनुमानतः प्रतीयते, यत इन्द्रियप्रत्यक्षाभावे भवन्मते-ऽनुमानस्या-ऽनुदयः "तत्पूर्वकं त्रिविधमनुमानम्" (गौ-१-१-५) इति गौतमवचनात्।

[1]यदुक्तम् "तत्त्वज्ञानस्य मिथ्याज्ञानव्यवच्छेदक्रमेण निःश्रेयसहेतुत्वेन प्रतिपादनात्" इत्यादि, तदुपपन्नम्, सकलबुद्ध्यादिगुणोच्छेदस्तु नोपपद्यते, तत्त्वज्ञानाद् विपर्ययज्ञान-व्यावृत्तिक्रमेण धर्मा-ऽधर्मयोस्तत्कार्यस्य शरीरादेरभावेप्यनन्तातीन्द्रियजसकलपदार्थविषयकसम्यग्ज्ञानप्रशमसुखादिसन्तानस्य व्यावृत्तेरभावात्।

[2]यच्चोक्तम्-"आरब्धशरीरेन्द्रियविषयकार्ययोर्धर्माधर्मयोः सुखादिफलोपभोगात् प्रक्षयः" इत्यादि, तदप्यपेशलम्, तदुपभोगसमयेऽपरकर्मनिमित्तस्या-ऽभिलाषपूर्वकस्य मनोवाक्कायव्यापारस्वरूपस्य सम्भवादविकलकारणस्य प्रचुरतरकर्मणः सद्भावात् कथमात्यन्तिकप्रक्षयः स्यात्।

[3]यच्चोपभोगात् सकलकर्मप्रक्षयेऽनुमानमुपन्यस्तम्, तदप्यसुन्दरम्, यतः कर्मत्वहेतुः सन्तानत्ववदसिद्ध्याद्यनेकदोषदुष्टः, तेन न प्रकृतसाध्यसाधकः।

(१) पृ० ५०९ पं० २। (२) पृ० ५०९ पं० ९ (३) पृ० ५०९ पं० २४।

[1]यच्च "**समाधिबलादुत्पन्नतत्त्वज्ञानस्य०**" इत्यादि प्रोक्तम्, तदप्यसङ्गतम्, अभिलाषरूपरागाद्यभावे भवदभिप्रायेण ऋद्धिविशेषवता योगिना तत्त्वज्ञानादवगतकर्मसामर्थ्येन नानाशरीराणि विधाया-ऽङ्गनाद्युपभोगा-ऽसम्भवात्, तत्सम्भवे वा-ऽवश्यंभावी नृपत्यादेरिवाऽतिभोगिनो योगिनोऽपि प्रचुरतरकर्मोत्पादः ।

[2]यच्च "**यत उपभोगं विना कर्मणां प्रक्षयाऽनुपपत्तितस्तत्त्वज्ञानिनस्तदुपभोगाऽभिलाषाभावेऽपि तत्र कर्मक्षयार्थित्वेन तस्य प्रवृत्तिर्घटते वैद्योपदेशेनाऽऽतुरस्येवौषधाचरणे**" इत्याद्युक्तम् तदप्यभिधानमात्रम्, आतुरोऽपि नीरुग्भावाभिलाषेणैव प्रवर्तत औषधाद्याचरणे । न च मुमुक्षोर्मुक्तिसुखाऽभिलाषेण प्रवर्तमानस्य सरागत्वं स्यादिति वाच्यम्, सूक्ष्मसम्पराये रागविगमस्य प्राक् प्रसाधितत्वात् । अतः कथं प्रोक्तदृष्टान्तादभिलापरहितस्य तत्त्वज्ञानिनस्तत्त्वज्ञानमात्रात् कर्मक्षयार्थितया स्त्र्याद्युपभोगः साधयितुं शक्यः, दृष्टान्त दार्ष्टान्तिकयोर्वैषम्यात् ।

[3]यच्चोक्तम् '**तत्त्वज्ञानस्य साक्षात् कर्मविनाशे व्यापाराभावात् । तत्त्वज्ञानं हि निखिलशरीरोत्पत्तिद्वारेणोपभोगात् कर्मणां विनाशे व्याप्रियते**" इत्यादि, तदप्यविचारिताऽभिधानम्, दृष्टविपरीतकल्पनाप्रसङ्गात्, मनुष्यादिशरीरादिसत्त्वे च शूकरादिशरीरा-ऽनुत्पत्तेः । इदमुक्तं भवति वामदेव**सौभरिप्रभृतीनां** कायव्यूहश्रवणात् तत्त्वज्ञानेन तत्तत्फलोपभोगोचितकायं निर्माय भोगेन कर्मक्षयो भवतीति परमतम्, एतच्चा-ऽयुक्तम्; नह्येकदैकस्य जीवस्यानेकान्यौदारिकादिशरीराणि दृष्टानि, कायव्यूहाभ्युपगमे तु दृष्टविपरीतानामेकदैव शूकर-खर-मृग-तुरगमनुजादिनानाशरीराणां कल्पनं प्रसज्यते । किञ्च तत्त्वज्ञानिनां तत्तच्छरीरफलोपभोगाय शूकर-तुरङ्ग-विहङ्ग-शृगाल-बिडाल-कुक्कुरादिशरीरपरिग्रहोपगम एकस्मिन् भवे भवसहस्रसाङ्कर्यं स्यात् । तथा केषाञ्चित् तत्त्वज्ञानिनां नरकादिदुःखजनकब्रह्महत्यादिप्रयोजकादृष्टस्य सद्भावे नारक-ब्रह्मघातकादिशरीरोपग्रहः स्यात् । न चाऽस्त्वेतद्, का विप्रतिपत्तिः ? इति वाच्यम्, ब्रह्मघातिनां तत्त्वज्ञानानुपपत्तेः । न च नरकादिदुःखजनक-ब्रह्महत्यादिप्रयोजकादृष्टस्याऽभावे सत्येव तत्त्वज्ञानोत्पत्तिरस्ति, ततश्च न तत्त्वज्ञानिनां नारक-ब्रह्मघातकादिशरीरपरिग्रह इति वाच्यम्, तुल्यन्यायेन शूकरतुरङ्गकुरङ्गशरीरोत्पादका-ऽदृष्टविरह एव तत्त्वज्ञानोत्पत्तिरिति वक्तुं शक्यत्वात् । न च "**नाऽभुक्तं क्षीयते कर्म**" इति स्मृत्या सह विरोधः स्यादिति वाच्यम्, "**व्याख्यानतो विशेषप्रतिपत्तिः**" इति न्यायेन प्रारब्धकर्मपरत्वेन व्याख्यानात् । तदेवं सकलकर्म न केवलं सुखदुःखादिफलोपभोगात् क्षीयते, न वा तत्त्वज्ञानात् । किन्तु प्रारब्धं कर्म सुखदुःखादिफलोपभोगाद् नश्यति, सञ्चितं तु मिथ्याज्ञाननिवृत्त्यादिक्रमेण पापक्रियानिवृत्तिलक्षणचारित्रोपबृंहितात् तत्त्वज्ञानात् प्रणश्यति, यतस्तादृगस्तत्त्वज्ञान-

(१) पृ० ५१० प० ६ । (२) पृ० ५१० प० १४ (३) पृ० ५१० प० २१ ।

स्थेयान् प्रभावः, यत्तस्मिन्नुदिते चिरकालसञ्चितान्यपि कर्माण्यपि सहसैव विलयं गच्छन्ति । तेन "यथैधांसि" इत्यादि, शैलेशीकरणसर्वसंवररूपचारित्रोपबृंहिततत्त्वज्ञानाग्नेः साक्षात् सञ्चितकर्मक्षये कारणतेति व्याख्येयम् , न तु परम्परया कायव्यूहद्वारा । एवञ्च–

"भिद्यते हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्वसंशयाः ।
क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन् दृष्टे परावरे ॥१॥" इति श्रुतिवचनमपि सङ्गच्छेत ।

किञ्च तादृशतत्त्वज्ञानस्य सञ्चितकर्मक्षये सामर्थ्यमुष्णस्पर्शदृष्टान्तेन बोध्यम् । तथाहि-तादृशतत्त्वज्ञानस्या-ऽऽगामिकर्माऽनुत्पादसामर्थ्यवत् सञ्चितकर्मप्रक्षयेऽपि सामर्थ्यं समस्त्येव, यथा भाविशीतस्पर्शाऽनुत्पत्तौ समर्थस्योष्णस्पर्शस्य पूर्वप्रवृत्तशीतस्पर्शनाशेऽपि सामर्थ्यं दृष्टम् ।

इदन्त्ववधेयम्–परिणामिजीवादिपदार्थसार्थविषयमेव ज्ञानं तत्त्वज्ञानम् , न त्वेकान्तनित्यानित्यात्मादिविषयकम् , तस्य विपरीतार्थग्राहकत्वेन मिथ्यात्वव्यपदेशात् । मिथ्याज्ञानस्य तु मुक्तिहेतुत्वं परैरपि नेष्यते ।

[१]यच्चोक्तं "तत्त्वज्ञानिनां कर्मविनाशस्तत्त्वज्ञानाद्भवतु" इति,तदुपपन्नम् , सम्यग्दर्शनचारित्रोपबृंहितसम्यग्ज्ञानस्य भूत-भाविकर्मसम्बन्धप्रतिघातकत्वेन मुक्तिं प्रत्यवन्ध्यकारणत्वात् ।

[२]यत्तु "इतरेषान्तूपभोगाद्" इत्यभिहितम् , तदनुपपन्नम् , उपभोगेन कर्मक्षयानुपपत्तेर्दर्शितत्वात् [२]।

[३]यत्तु तत्त्वज्ञानिनां नित्यनैमित्तिकानुष्ठानं प्रतिपादितम् , तदिष्टमेव स्याद्वादवादिनाम् , केवलज्ञानोत्पत्तेः प्राक् काम्यनिषिद्धानुष्ठानपरिहारेण नित्यनैमित्तिकयोर्ज्ञानावरणादिदुरितक्षयनिमित्तत्वाद् मोक्षप्राप्तिहेतुत्वाच्च । किन्तु केवलज्ञानलाभोत्तरकालं शैलेशीकरणावस्थायां सकलभवोपग्राहिकर्मनिर्जरस्वरूपायां सर्वक्रियाप्रतिषेध एव स्याद्वादवादिभिरभ्युपगम्यते; ततश्च नाऽदृष्टस्योत्पत्तिः, आत्यन्तिक्यास्तन्निमित्तप्रवृत्तिनिवृत्तेः ।

[४]यच्चोक्तम् "न चेत्थं मिथ्याज्ञानध्वंसादिक्रमेण विशेषगुणोच्छेदविशिष्टात्मस्वरूपमुक्तयभ्युपगमे तादृशमुक्तेस्तत्त्वज्ञानकार्यत्वादनित्यत्वमिति वाच्य"मित्यादि,तद् न युक्तम् , विशेषगुणोच्छेदविशिष्टात्मस्वरूपमुक्तेः प्रतिविहितत्वात् , बुद्धयादीनामात्यन्तिकोच्छेदस्य प्रमाणबाधितत्वात् , आत्मनश्चैकान्तनित्यत्वविरहात् , बुद्धयादीनां च कथञ्चिदात्मना सह तादात्म्यात् ।

नन्वेवं यदि स्याद्वादवादिभिर्बुद्धि–सुख-दुःखेच्छा-द्वेष-प्रयत्न-धर्माऽधर्म-संस्काराणां विशेषगुणानामुच्छेदो मोक्षो नेष्यते, तर्हि धर्मा-ऽधर्मादीनां तत्रा-ऽनुवृत्तिप्रसक्त्या संसार-मोक्षयो-

(१) पृ० ५१० पं० २४ । (२) पृ० ५१७ पं० २५ । (३) पृ० ५११ पं० १५ । (४) पृ० ५११ पं० २५ ।

रविशेषः स्यादिति चेत् , मैवम् , यद्यप्युक्तचर्चया मत्रात्मना बुद्ध्यादिविशेषगुणानामुच्छेदो मोक्षः प्रतिषिध्यते, तथापि कथञ्चित् तेषामुच्छेद इष्यत एव ।

तथाहि–बुद्धिशब्देन ज्ञानमुच्यते, तच्च पञ्चविधम् , मति-श्रुता-ऽवधि मनःपर्याय-केवल-भेदात् । तत्राद्यं ज्ञानचतुष्कं केवलज्ञानलाभकाले व्यवच्छिद्यते, क्षायोपशमिकत्वात् । यदुक्तमाव-श्यकनिर्युक्तौ–"उप्पन्नंमि अणंते नट्ठम्मि अ छाउमत्थिए नाणे ।" इति । केवलज्ञानं तु निखिलद्रव्यपर्यायसाक्षात्कारिस्वरूपं क्षायिकत्वेन निष्कलङ्कात्मस्वरूपत्वात् समस्त्येव ।

सुखं तु वैषयिकं तु तत्र नास्ति, तन्निमित्तस्य वेदनीयस्य समूलकाषं कषितत्वात् । यत्तु निरतिशयमक्षयमनपेक्षमनन्तं सुखम् , तत् तत्र प्रभूतं विद्यते ।

दुःखं तु न विद्यते,तस्या-ऽधर्ममूलत्वात् , तदुच्छेदाच्च तदुच्छेदोपपत्तेः । नन्वेवं सुखमपि न सम्भवति, तन्मूलस्य धर्मस्योच्छेदात् । न च धर्मस्योच्छेदोऽसिद्ध इति वाच्यम् "पुण्य-पापक्षयो मोक्षः" इत्यागमवचनेन तत्सिद्धेरिति चेत् , मैवम् , वैषयिकस्य सुखस्य धर्ममूल-त्वादस्तु तदुच्छेदः, न पुनरनपेक्षस्याऽपि सुखस्योच्छेदः ।

इच्छाद्वेषयोस्तु समस्त्येवाऽभावः; तयोर्मोहभेदत्वात् , मोहस्य च समूलकाषं कषितत्वात् ।

प्रयत्नश्च क्रियाव्यापारगोचरो नास्ति, कृतकृत्यत्वात् । वीर्यान्तरायक्षयोपनतस्तु भवत्येव, दानादिलब्धिवद् ।

धर्मा-ऽधर्मयोस्तु पुण्यपापा-ऽपरपर्याययोरुच्छेदो भवत्येव, तदभावे मोक्षस्याऽसम्भवात् ।

संस्कारस्तु मतिज्ञानविशेषोऽस्ति; मतिज्ञानस्य च क्षीणकषायगुणस्थानके "नट्ठम्मि अ छाउमत्थिए नाणे" इति वचनाद् व्यवच्छित्तेः संस्कारोऽप्युच्छिद्यते ।

केचिद् नैयायिक-वैशेषिकादयः पुनः प्राहुः–समानकालीनसमानाधिकरणदुःखप्रागभावा-ऽसमानदेशो दुःखध्वंसो मोक्ष इति । तत्र च यद् यत् स्वसमानकालीनस्वसमानाधिकरणदुःखप्राग-भावसमानदेशमिदानीन्तनदुःखध्वंसादि , तत्तद्भिन्नो दुःखध्वंसो मोक्ष इति वक्तव्यम् , अन्यथा चरमदुःखध्वंससमानकालीनसमानाधिकरणदुःखप्रागभावस्या-ऽप्रसिद्धिप्रसङ्गः । वस्तुतस्तु समानका-लीनविशेषणस्या-ऽनावश्यकतया समानाधिकरणदुःखप्रागभावा-ऽसहवृत्तिदुःखध्वंसो मोक्ष इति निर्दुष्ट लक्षणम् । इह दुःखध्वंस इत्युक्तौ संसारिणामपि यत्किञ्चिद् दुःखादीनामात्मविशेषगुणानां ध्वंस सद्भावात् संसारिणामपि मुक्त-व्यपदेशः स्यादित्यतिव्याप्तिवारणाय वृत्यन्तम् । तत्रा-ऽप्यसहवृ-त्तीत्येतावन्मात्रेऽभिहिते-ऽसम्भवः स्यात् , दुःखध्वंसस्य केनचिदत्यन्ताभावादिना सहवृत्तित्वात् । अभावाऽसहवृत्तीतिकथनेऽप्यसम्भवदोषस्तदवस्थ एव । प्रागभावा-ऽसहवृत्तीतिभणनेऽपि संयोगादि-प्रतियोगिकप्रागभावादिकमादाया-ऽसम्भवः, दुःखध्वंसकालेऽपि संयोगादय उत्पत्स्यन्त इति प्रतीतेः सर्वजनप्रसिद्धत्वेन संयोगादिप्रागभावसहवृत्तित्वाद् दुःखध्वंसस्येति प्रतियोगितया दुःखपदो-पादानम् ।

तथा महाप्रलयमभ्युपगच्छतां नैयायिकानां मतेन चरममुक्तजीवगतदुःखध्वंसस्य दुःखप्रागभावा-ऽसहवृत्तितायाः सत्त्वे-ऽपि द्विचरमादिमुक्तगतदुःखध्वंसे दुःखप्रागभाववृत्तितायाः सत्त्वादव्याप्तिः । तेन समानाधिकरणेति दुःखप्रागभावस्य विशेषणम् । सामानाधिकरण्यञ्च विशेष्यीभूतदुःखध्वंसनिरूपितं बोध्यम् ।

प्रमाणयन्ति च प्राञ्चः—दुःखसन्ततिरत्यन्तमुच्छिद्यते, सन्ततित्वात् , प्रदीपसन्ततिवदिति । तदसत् , सन्तानत्वहेतोरनेकदोपदुष्टतया प्राक्प्रदर्शितत्वात् ।

आत्मकालाऽन्यवृत्तिध्वंसप्रतियोग्यवृत्ति दुःखत्वं दुःखप्रागभावाऽनधिकरणवृत्तिध्वंसप्रतियोगिवृत्ति, सत्कार्यमात्रवृत्तित्वात्, प्रदीपत्ववदिति **श्रीवर्धमानप्रभृतयः** प्राहुः ।

अथादौ तावत् पक्षो विचार्यते—आत्मकालतोऽन्यो य आकाशादिः, तद्वृत्तिर्यः शब्दादिध्वंसः, तत्प्रतियोगिनो ये शब्दादयः, तत्रा-ऽवृत्ति दुःखत्वमिति पक्षः ।

अथ पदकृत्यम्—दुःखत्वमित्युक्तौ शब्दादिवृत्तित्वेनाऽर्थान्तरम् , तद्वारणाय पक्षविशेषणम् , बाधस्या-ऽस्फूर्तिदशायां तत्सामर्थ्यात् । बाधज्ञाने जाते तु व्यर्थं स्यात्, उक्तं च **श्रीपद्मनाभमिश्रेणाऽपि प्रशस्तपादभाष्यस्य सेतुव्याख्यायाम्—"ननु बाधादेव शब्दवृत्त्यर्थान्तरवारणे आत्मकालान्यवृत्तिध्वंसप्रतियोग्यवृत्तीति पक्षविशेषणं वर्द्धमानोपाध्यायैः किमुपात्तमिति चेन्न, बालान् प्रति बाधस्फुरणार्थं तदुपादानात्, बाधबोधवतां तस्य वैयर्थ्यात् , अन्यथा महानसादिवह्निरहितपर्वतो वह्निमान् धूमादित्यनुमानापत्तेः ।" इति ।** तत्राऽप्यवृत्तिदुःखत्वमित्येतावन्मात्रे भणिते आश्रयासिद्धिः, दुःखत्वस्य दुःखवृत्तित्वात् । ध्वंसप्रतियोग्यवृत्तिदुःखत्वेत्युक्तावप्याश्रयासिद्धिस्तदवस्था, दुःखत्वस्य दुःखध्वंसप्रतियोगिवृत्तित्वात् । काला-ऽन्यवृत्तिध्वंसप्रतियोग्यवृत्तिदुःखत्वेत्युक्तावप्याश्रयासिद्धिर्न निवर्तते । तथाहि—काला-ऽन्यो य आत्मा, तद्वृत्तिर्यो दुःखध्वंसः, तत्प्रतियोगिवृत्तित्वाद् दुःखत्वस्याश्रयासिद्धिस्तदवस्था। आत्माऽन्यवृत्तीत्याद्यभिधाने-ऽपि सैवाश्रया-ऽसिद्धिः, तद्यथा—आत्मा-ऽन्यो यः खण्डकालः, तद्वृत्तिर्यो दुःखध्वंसः, इदानीं दुःखं ध्वस्तमिति खण्डकाले दुःखध्वंसप्रतीतेः, तत्प्रतियोगिवृत्तित्वाद् दुःखत्वस्याऽऽश्रयासिद्धिर्न निवर्तते ।

न चाऽऽत्मकालपदोपादाने-ऽप्यात्मकालतो-ऽन्या दिक् तदुपाधिः कालोपाधिरात्मोपाधिर्वा, तद्वृत्तिर्यो दुःखध्वंसः, तत्प्रतियोगिदुःखवृत्तित्वाद् दुःखत्वस्या-ऽऽश्रयासिद्धिस्तदवस्थैवेति वाच्यम् , उपलक्षणेन तद्ग्रहणात् । अयम्भावः—कालेत्युपलक्षणम् , तेन दिक् तदुपाधिः कालोपाधिश्च गृह्यन्ते । आत्मेत्युपलक्षणम् , तेन तदुपाधेः शरीरादेर्ग्रहणम् , तेन ना-ऽऽश्रयासिद्धिः ।

अथ साध्यं विचार्यते—दुःखप्रागभावा-ऽनधिकरणं महाप्रलयः, तद्वृत्तिर्यो दुःखध्वंसः, तत्प्रतियोगिदुःखनिरूपितवृत्तिताऽस्ति दुःखत्वे, दुःखत्वस्य दुःखे वर्तमानत्वात् ।

दुःखप्रागभावा-ऽनधिकरणत्वञ्चेह दुःखप्रागभावा-ऽधिकरणभिन्नत्वम् , तेनात्मा दुःखप्रागभावा-ऽनधिकरणं न भवत्येव, अन्यो-ऽन्याभाववृत्तेः सामयिकया अनङ्गीकारेण दुःखप्रागभावा-ऽधिकरणस्या-ऽऽत्मनो दुःखप्रागभावा-ऽनधिकरणत्वा-ऽसम्भवात् । एवञ्चात्मनो दुःखप्रागभावा-ऽनधिकरणत्व-विरहाद् न प्रत्येकमुक्त्या-ऽर्थान्तरम् ।

यद्यप्येवं व्याख्याते व्योमादिर्दुःखप्रागभावानधिकरणं भवत्येव, तथा-ऽपि तद्वृत्तिध्वंसप्रति-योगिवृत्तित्वं बाधितमेवेति पक्षधर्मतामाहात्म्येन कालविशेष एव गृह्यते, न त्वाकाशादिः स एव च सर्वमुक्तिकालः, स एव च महाप्रलयकालः ।

ननु दिगेव तथा कुतो न भवति, कालवद् दिशो-ऽपि सर्वा-ऽऽधारत्वेन चरमदुःखध्वंसा-ऽऽधारत्वसम्भवात् ? इति चेत्, न, दिग्द्रव्यस्यैकत्वेन दुःखप्रागभावाधिकरणस्य तद्भिन्नत्वाऽसम्भवात्।

अथ दिगुपाधिः कोऽपि दुःखप्रागभावानधिकरण-दुःखध्वंसाधिकरणं भविष्यतीति चेत् , न, तादृशो दिगुपाधिः कोऽपि सृष्टिदशायां नास्ति । प्राच्यादय एव दिगुपाधयः, ते च दुःखप्राग-भावा-ऽधिकरणमेव, महाप्रलयदशायां तु प्रमाणाभाव एव दिगुपाधौ, प्राच्यादिव्यवहाराभावात् । प्रस्तुतप्राच्यादेस्तत्राऽङ्गीकरणे-ऽपि तस्य दुःखप्रागभावा-ऽधिकरणत्वमेव । अन्यप्राच्यादेस्तद्विल-क्षणस्य दिगुपाधेर्वा-ऽङ्गीकारे प्रमाणाभावः । तस्मात् काल एव गृह्यते । न च कालस्या-ऽप्येक-त्वेन दुःखप्रागभावा-ऽधिकरणत्वात् कथं तद्भिन्नत्वम् ? इति वाच्यम् , कालोपाधिविशेषस्य तथा-त्वात् । स च 'तदानीं महाप्रलयो भविष्यती'ति प्रतीतिबलाद् चरमध्वंसरूपः स्वीकार्यः ।

अथ पदकृत्यम्—वृत्तिमदित्युक्तौ सिद्धसाधनम् , दुःखत्वस्य दुःखे विद्यमानत्वात् । प्रतियोगि-वृत्तीत्युक्तावपि सिद्धसाधनम् , दुःखा-ऽत्यन्ता-ऽभावप्रतियोगिनि दुःखे विद्यमानत्वाद् दुःखत्वस्य । दुःखध्वसप्रतियोगिवृत्तीत्यभिधाने-ऽपि सिद्धसाधनं तदवस्थम्, यत्किञ्चिद्दुःखध्वंसस्य स्वीकृत-त्वेन दुःखध्वंसप्रतियोगिदुःखनिरूपितवृत्तिताया दुःखत्वे सत्त्वात् । प्रागभावानधिकरणवृत्तिध्वंसे-त्याद्युक्तौ दृष्टान्तासिद्धिः, प्रदीपा-ऽवयवानां प्रदीपप्रागभावा-ऽनधिकरणत्वविरहात् । दुःखप्राग-भावानधिकरणेत्याद्यभिधाने तु भवत्येव सङ्गतिः । यतः प्रदीपावयवा दुःखप्रागभावा-ऽनधिकरण-भूताः,तद्वृत्तिर्यः प्रदीपध्वंसः, तत्प्रतियोगिप्रदीपनिरूपितवृत्तितायाः प्रदीपत्वे सत्त्वात् । दुःखानधि-करणेत्याद्युक्तौ खण्डप्रलयकालेऽपि सर्वमुक्तिसिद्धिः स्यात् , अदृष्टाद्यतिरिक्तानां दुःखादीनां तत्र विरहात् । तेन दुःखप्रागभावानधिकरणेत्याद्युक्तम् , लभ्यते च खण्डप्रलये दुःखप्रागभावः, दुःखा-द्युत्पादकाऽदृष्टस्य सत्त्वात् । दुःखप्रागभावा-ऽनधिकरणवृत्त्यभावप्रतियोगिवृत्तीत्युक्तौ दुःखा-ऽन्योन्या-भावमादाय प्रकृता-ऽन्यसिद्धेः, तथाहि-दुःखप्रागभावा-ऽनधिकरणं व्योम, तद्वृत्तिर्यो दुःखान्यो-न्याभावः, तत्प्रतियोगि दुःखम् , तन्निरूपितवृत्तिता दुःखत्वे संसारावस्थायामपि समस्ति । तस्माद् दुःखप्रागभावा-ऽनधिकरणवृत्तिध्वंसप्रतियोगिवृत्तीति सूपपन्नम् ।

अथ हेतोः पदकृत्यम्—वृत्तित्वेत्युक्तौ आत्मत्वे व्यभिचारि,आत्मत्वस्याऽऽत्मनि वृत्तित्वात् । तद्यथा-हेतुः समस्त्यात्मत्वे,साध्यं तु नास्ति,आत्मत्वस्य तादृशध्वंसाप्रतियोगिवृत्तित्वात् । तेन कार्यपदोपादानम् । कार्यवृत्तित्वेत्यभिधाने—ऽनन्तत्वे व्यभिचारि, ध्वंसा-ऽप्रतियोगित्वरूपस्या-ऽनन्तत्वस्या-ऽकार्ये आत्मादाविव कार्यध्वंसे-ऽपि सत्त्वात् । अयम्भावः ध्वंसस्या-ऽविनाशशालित्वादनन्तत्वं कार्यभूतध्वंसे वर्तत एव । तेना-ऽनन्तत्वे कार्यवृत्तित्वं हेतुः समस्ति, साध्यं तु तादृशध्वंसप्रतियोगिवृत्तित्वं नास्ति, अनन्तत्वस्य तादृशध्वंसा-ऽप्रतियोगिवृत्तित्वात् । मात्रपदोपादाने तु न व्यभिचारः । अनन्तत्वस्याऽऽत्मादौ नित्ये-ऽपि विद्यमानत्वेन कार्यमात्रवृत्तित्वविरहात् । न च दुःखत्वादीनां कालाख्यनित्यपदार्थवृत्तित्वात् कार्यमात्रवृत्तिताऽसिद्धेति वाच्यम् , असाधारणवृत्तेर्विवक्षितत्वात् । न च सुखत्व-धर्मत्वा-ऽधर्मत्व-द्वेषत्वादिषु व्यभिचार इति वाच्यम् , पक्षसमत्वात् । कार्यमात्रवृत्तित्वेत्युक्तौ ध्वंसत्वे व्यभिचारः, ध्वंसस्य कार्यत्वेन ध्वंसत्वे कार्यमात्रवृत्तिताऽस्ति, किन्तु तत्र साध्यं नास्ति, ध्वस्तस्य ध्वंसाभावेन ध्वंसत्वस्य तादृशध्वंसाप्रतियोगिवृत्तित्वात् । तद्व्यभिचारवारणाय सदिति कार्यस्य विशेषणम् ।

तदेवं सर्वमुक्तिसिद्धौ चैत्रदुःखत्वादिकं पक्षीकृत्य तत्तन्मुक्तिः साध्या, प्रयोगश्चेत्थम्—चैत्रदुःखत्वं चैत्रदुःखप्रागभावानधिकरणवृत्तिध्वंसप्रतियोगिवृत्ति, सत्कार्यमात्रवृत्तित्वात् ।

अथोक्तानुमानमित्थं प्रतिविधातव्यम्—निरुक्तानुमानमसत् (१) बाधात् (२) अप्रयोजकत्वात् (३) अनभिमतसिद्धिप्रसङ्गाच्च । (१) तथाहि—दुःखप्रागभावा—ऽनधिकरणवृत्तिर्यो दुःखध्वंसः, तस्य दुःखप्रागभावा-ऽनधिकरणे वृत्तिरभावीयविशेषणतासम्बन्धेनाऽभ्युपगम्यते यदि, तदा बाधः, दुःखध्वंसस्य तत्समवायिकारणे एव तेन सम्बन्धेन वृत्तेः, न तु महाप्रलयेऽपीति नैयायिकैरभ्युपगतत्वात् । यत्किञ्चित्सम्बन्धमात्रेण त्वभ्युपगमे तदभाववद्वृत्तितादिरूपव्यभिचारितादिसम्बन्धेन दुःखध्वंसस्या-ऽऽकाशादावपि वृत्तेर्न प्रकृतसिद्धिः ।

कालिक-दैशिकविशेषणतान्यतरसम्बन्धेन वृत्तित्वोक्तावपि कालोपाधिजन्यपदार्थवृत्तित्वेन न प्रकृतसिद्धिः । तथाहि-यथा कालिकसम्बन्धेनाऽष्टद्रव्यातिरिक्तस्य कालस्या-ऽधिकरणत्वं भवति, तथैव कालिकसम्बन्धेन स्वसमानकालीनजन्यपदार्थमात्रस्याऽप्यधिकरणत्वं नैयायिकैः स्वीक्रियते, यत इदानीं तदानीमित्यादिप्रतीतिविषयता-ऽष्टद्रव्यातिरिक्तकालस्य न जन्यभाववैशिष्ट्यमन्तरेणेति जन्यभावः कालावच्छेदकः । ततश्च जन्यभावस्याऽपि कालत्वमिति कालकृतविशेषणात्मकेन कालिकसम्बन्धेन स्वकालीनजन्यपदार्थमात्रस्या-ऽधिकरणत्वम् । तेन प्रस्तुताऽनुमाने कालिकसम्बन्धेन दुःखध्वंसस्य दुःखप्रागभावा-ऽनधिकरणे जन्यपदार्थे वृत्तेर्न प्रकृतसिद्धिः, सृष्टावपि तत्सत्त्वात्।

(२) न केवलं हेतुसाध्ययोः सहचारभूयोदर्शनमेव साध्यसिद्ध्यर्थमुपयुज्यते, किन्तु व्यभिचारशङ्कायामुपस्थितायां सत्यां तन्निवर्तकतर्कोऽपि । स तु इह नास्ति, कार्यकारणादिभावविरहात् ।

तद्यथा-व्यभिचारशङ्का पुनरित्थम्, अस्तु सत्कार्यमात्रवृत्तित्वम्, माऽस्तु दुःखप्रागभावाऽनधिकरण-वृत्तिध्वंसप्रतियोगिवृत्तित्वमिति, तस्यामुपस्थितायां न तद्वारकः कोऽपि कार्यकारणभावादिमूलक-तर्को लभ्यते, वह्निधूमादिवत् हेतुसाध्ययोः कार्यकारणभावादिविरहात् ।

(३) अप्रयोजकत्वेऽपि सत्साध्यसाधकभावा-ऽभ्युपगमे त्वनभिमतसिद्धिप्रसङ्गः । अनभिमत-साध्यं प्रत्यपि निरुक्तहेतोरविशेषात् । तद्यथा,-आत्मकाला-ऽन्यवृत्तिप्रागभावप्रतियोगिवृत्ति-दुःखत्वं दुःखध्वंसाऽनधिकरणवृत्तिप्रागभावप्रतियोगिवृत्ति, सत्कार्यमात्रवृत्तित्वात्,प्रदीपत्ववदित्य-नुमानेन यस्मात् पूर्वं न कस्यचिद् दुःखस्योत्पत्तिः, तादृशः कालः सिध्यति,एवं दुःखस्थाने सुखादिकं प्रक्षिप्याऽऽत्मकालान्यवृत्तिप्रागभावप्रतियोगिवृत्ति, सत्कार्यमात्रवृत्तित्वात् , प्रदीपत्ववदित्यनुमानेन यत्पूर्वं न कस्यचित् सुखादेरुत्पत्तिः तादृशकालः सिध्यति, ततश्च संसारस्य सादित्वं सिध्यति, तच्चा-ऽनभिमतम् ।

प्राभाकरास्तु प्राहुः-आत्यन्तिकदुःखप्रागभावो मोक्ष इति । न च यद्यात्यन्तिकदुः-खप्रागभावो मोक्ष इत्यभ्युपगम्यते, तर्हि दुःखप्रागभावस्यानादित्वाऽतः प्रवृत्तत्वात् कृत्यसाध्यत्वे-नाऽपुरुषार्थत्वं प्रसज्यत इति वाच्यम् ,यतो दुःखप्रागभावस्या-ऽनादित्वेऽपि प्रतियोगिजनका-ऽधर्मवि-नाशद्वारा तत्संरक्षणीयत्वरूपं कृतिसाध्यत्वं समस्ति । तथाहि कृत्यधीनतत्त्वज्ञानेना-ऽधर्मनाशे सम्पन्ने तदुत्तरक्षणे दुःखसामग्रीविरहेण दुःखानुत्पत्तौ दुःखप्रागभावपरिपालनं संपद्यते । तदेवं क्षेमस्वरूपजन्यता प्रागभावेऽपि समस्ति, तेन समस्त्येव प्रागभावस्य कृतिसाध्यत्वम् , लोकेऽपि यथा सुवर्णप्राप्तौ कृतिर्दृश्यते, तथा सुवर्णादिसंरक्षणेऽपि । ततश्च ना-ऽपुरुषार्थत्वापत्तिः ।

एतत्सर्वमप्यसारम्, यतो-ऽनादिः सान्तोऽभावः प्रागभावः, स च नियमेन स्वप्रतियोगि-नमुत्पादयति, स्वप्रतियोग्युत्पादे च पुनः संसारित्वापत्तिः । न च सहकारिणो विरहेण प्रागभावेन स्वप्रतियोगिदुःखं नोत्पाद्यत इति वाच्यम् , तथासति तादृशप्रागभावस्य भाविकालेऽप्यन्तविरहेण तस्याऽत्यन्ताभावत्वप्रसङ्गः । अत्यन्ताभावस्य च नित्यत्वेन कृतिसाध्यत्वविरहाद् न पुरुषार्थत्वम् ।

किञ्चा-ऽऽत्यन्तिकदुःखप्रागभावो मोक्ष इति कथने कः प्रतियोगी ? न तावत् समानाधि-करणं भाविदुःखम्, मुक्तौ तस्याऽसत्त्वात् । भाविदुःखसद्भावे तु पुनरावृत्तिप्रसङ्गः । नाऽपि समाना-धिकरणमतीतं वर्तमानं वा दुःखं प्रतियोगितया वक्तुं शक्यते,तत्प्रतियोगिकप्रागभावस्य विनष्टत्वात् । नाऽपि व्यधिकरणं दुःखं प्रतियोगि, अन्यवृत्तिदुःखस्यान्यवृत्त्यत्यन्ताभावनिरूपितैव प्रतियोगिता, न त्वन्यवृत्तिप्रागभावनिरूपिता, प्रागभावस्य स्वप्रतियोगिसमवायिदेश एव वृत्तेरभ्युपगमात् । नाऽपि सामानाधिकरण्यवैयधिकरण्यविवक्षाशून्यं दुःखमात्रं प्रतियोगीति वक्तुं शक्यते, स्वपरा-ऽवृत्तेर्दुःखस्याऽप्रामाणिकत्वात् ।

अपरञ्च मोक्षस्य तादृशात्यन्तिकदुःखप्रागभावरूपत्वकल्पने कदाप्यजन्यस्य दुःखस्यासत्त्वेन तत्प्रागभावस्याप्यलीकप्रतियोगिकत्वादसत्त्वम् , तथा च तद्रूपमोक्षस्याप्यसत्त्वापत्तिः ।

ननु यद्येवमात्यन्तिकदुःखप्रागभावो न कृतिसाध्यः, तर्हि दुःखानुत्पादमुद्दिश्य प्रायश्चित्तादौ कथं प्रवृत्तिः, दुःखानुत्पादस्य दुःखप्रागभावस्वरूपत्वात् तस्य चाऽसाध्यत्वात् ? इति चेत् , कामम् , प्रायश्चित्तेन पापध्वंसद्वारा कियन्तं कालं दुःखप्रागभावाऽनुपालनमस्त्येव, किन्तु नैतावता तस्यालीकप्रतियोगिकत्वम् , पापान्तरमासाद्य प्रागभावेन दुःखजननात् । न हि भाविनि मरणे ज्ञातेऽपि प्रकृतरोगिणे भेषजदानस्य वैफल्यम् । मोक्षे तु कदापि दुःखजननं न संभवति, ततश्चाऽत्यन्ताभावत्वव्यपदेशप्रसङ्गः । दुःखोत्पत्तिसम्भवे च पुनः संसारापत्तिः ।

केचित् तु नैयायिका आहुः—दुःखाऽत्यन्ताभावो मोक्ष इति । दुःखेनाऽत्यन्तं विमुक्तश्चरतीति श्रुतेः । तदप्यतिमन्दम् ,अत्यन्ताभावस्य नित्यत्वेन कृतिसाध्यत्वविरहात् । न चा-ऽत्यन्ताभावसम्बन्धः साध्यत इति वाच्यम् , उत्पत्तिमतो भावस्य नाशनियमेन तादृगुत्पत्तिमत्सम्बन्धनिवृत्तौ मुक्तानामपि संसारित्वप्रसङ्गात् । न च दुःखसाधनध्वंस एव स्ववृत्तिदुःखा-ऽत्यन्ताभावसम्बन्धः, तन्निवृत्तिश्च न भवति, ध्वंसस्या-ऽविनाशित्वात् , ततश्च न पुनः संसारित्वप्रसङ्ग इति वाच्यम् , दुःखसाधनध्वंसात्मकसम्बन्धसम्बद्धदुःखात्यन्ताभावस्य मोक्षत्वकल्पना-ऽपेक्षया लाघवाद् विशिष्टदुःखसाधनध्वंसस्यैव मोक्षत्वकल्पनाया न्याय्यत्वात् ।

अथास्तु विशिष्टदुःखसाधनध्वंसो मोक्ष इत्यपि न युक्तिसङ्गतम् , यतो दत्तफलानां दुःखसाधनानामदृष्टानां निवृत्तिरयत्नसिद्धा । अदत्तफलानां तु निवृत्तिरनागतदुःखा-ऽनुत्पत्तिमभिसन्धाय समीहिता , तेन दुःखानुत्पाद एव प्रयोजनम् , स च दुःखप्रागभावस्वरूपः, तस्य च मोक्षत्वानुपपत्तिः प्राग्दर्शितैव ।

अथ भवति दुःखध्वंसस्तोमो मोक्ष इत्याहुः केचित् । यत्किञ्चिद्दुःखध्वंसो-ऽस्मदादिसंसारिणामप्यस्ति, तेन कथितः स्तोम इति । तन्न, यतः स्तोमः कथमपि मोक्षोपायत्वेनाभिमततत्त्वज्ञानादिना न साध्यः, समग्रसंसारकाले भिन्नभिन्नकालोत्पन्नतत्तद्दुःखध्वंसानां स्तोमान्तर्गतत्वेन तत्तत्कालीनदुःखोपभोगादिभिरेव निष्पन्नत्वात् । तत्त्वज्ञानोत्तरमपि तस्य(=तत्त्वज्ञानस्य)दुःखप्रयोजकदुरितविध्वंसकत्वेन दुःखानुत्पादसम्पादकत्वमेवेति कथं दुःखध्वंसस्तोमस्य साध्यत्वम् ?

अपि च तादृक्स्तोमस्य यावत्त्वसंख्यारूपत्वे तस्याऽपेक्षाबुद्धिजन्यत्वेन न मोक्षोपायत्वेनाभिमततत्त्वज्ञानादिसाध्यत्वम् । तत्तद्दुःखध्वंसस्वरूपत्वे तु दुःखस्य योग्यविभुविशेषगुणत्वेन तद्ध्वंसस्य स्वतस्तृतीयक्षणनिष्पन्नत्वाद् न मोक्षोपायभूततत्त्वज्ञानसाध्यतेति कथमपि न मोक्षो दुःखध्वंसस्तोमरूपो घटां प्राञ्चति ।

(इति नैयायिकाद्यभिमतमोक्षस्वरूपप्रतिविधानम् ।)

तौतातितास्त्वाहुः-नित्यनिरतिशयसुखाभिव्यक्तिर्मोक्ष इति। यदुक्तं "विज्ञानमानन्दं ब्रह्म" इति। अयम्भावः-संसारावस्थायामविद्यासंसर्गस्य प्रतिबन्धकत्वात् परमानन्दस्वभावतायाः प्रतिपत्तिर्न भवति। यदाऽविद्याया विनिवृत्तिः, तदा परमानन्दस्वभावतायाः स्वरूपेणाऽभिव्यक्तिर्भवति, यथा रज्ज्वादिद्रव्यस्याविद्यातस्तत्त्वाग्रहणा-ऽन्यथाग्रहणाभ्यां स्वरूपं न प्रकाशते, किन्तु सर्पादिस्वरूपं प्रकाशते। अविद्याया निवृत्तौ तु तस्य स्वरूपं प्रकाशत एव। एवं ब्रह्मणोऽप्यनाद्यविद्यासंसर्गात् तत्त्वाग्रहणा-ऽन्यथाग्रहणाभ्याम् आनन्दस्वभावता न प्रकाशते, मुमुक्षुप्रयत्नेन तु यदाऽनाद्यविद्या विनिवर्तते, तदाऽऽनन्दस्वरूपप्रतिपत्तिर्भवति, सैव मोक्षः। दृश्यते च श्रुतिः-"आनन्दं ब्रह्मणो रूपं तच्च मोक्षेऽभिव्यज्यते।" इति। न चेह श्रुतौ 'ब्रह्मणः' इत्यस्य षष्ठ्यन्तत्वेन षष्ठ्या ज्ञाप्यते ब्रह्मणा सह भेदः, न त्वभेद इति वाच्यम्, 'राहोः शिरः' इत्यादिवदभेदेऽपि षष्ठीदर्शनात्।

ननु नित्यसुखस्यात्माऽभिन्नत्वेनात्मनश्चाऽनुभूयमानत्वेन नित्यसुखस्य सदैवानुभवः प्रसज्येत, सुखमात्रस्य स्वगोचरसाक्षात्कारजनकत्वनियमादिति चेत्, सत्यम्, सुखमनुभूयत एव। न च तर्ह्यहं जानामीत्यनुव्यवसायवद् अहं सुखमित्यपि प्रत्ययः कुतो न भवति? इति वाच्यम्, यतोऽविद्यादोषात् भ्रमादेवा-ऽनुभूयमानस्याऽपि सुखस्य सुखत्वेना-ऽननुभवनात् सुखत्वेन वा दुःखत्वेन वा प्रतीतेः, यथा भ्रमदशायां विशेष्यत्वेनाऽनुभूयमानाया अपि रज्ज्वा रज्जुत्वेना-ऽननुभवनात् सर्पत्वेन प्रतीतेः, योगाभ्यासेनाऽविद्यानिवृत्तितोऽपगते भ्रमे स्वरूपलाभात् सुखत्वेना-ऽनुभवो भवत्येव।

प्रमाणञ्चात्र-ऽऽत्मा सुखस्वभावः, अत्यन्तप्रियबुद्धिविषयत्वात्, अनन्यपरतयोपादीयमानत्वाच्च, वैषयिकसुखवत्। यद् यद् एवंविधम्, तत् तत् सुखस्वभावम्, यथा वैषयिकं सुखम्, तथा चा-ऽऽत्मा, तस्मात् सुखस्वभाव आत्मा। न चा-ऽत्यन्तप्रियबुद्धिविषयत्वमसिद्धम्, सर्वजनैः स्त्री-धन-पुत्रादिसर्वपदार्थत आत्मनोऽत्यन्तप्रियत्वस्या-ऽनुभवात्। उक्तञ्च "(१)बृहदारण्यके-"तदेतत्प्रेयः पुत्रात्प्रेयः, अन्यस्मात् सर्वस्मादन्तरतरं यदयमात्मा...आत्मानमेव प्रियमुपासीत।" इति। एवं सर्ववेदान्तसिद्धान्तसंग्रहेऽप्युक्तम्-

"आत्मनः सुखरूपत्वादानन्दत्वं स्वलक्षणम्।
परप्रेमास्पदत्वेन सुखरूपत्वमात्मनः ॥१॥
सुखहेतुषु सर्वेषां प्रीतिः सावधिरीक्ष्यते।
कदापि नाऽवधिः प्रीतेः स्वात्मनि प्राणिनां क्वचित् ॥२॥
आत्मा-ऽतः परमप्रेमास्पदः सर्वशरीरिणाम्।
यस्य शेषतया सर्वमुपादेयत्वमृच्छति ॥ ३ ॥
एष एव प्रियतमः पुत्रादपि धनादपि।
अन्यस्मादपि सर्वस्मादात्मायं परमान्तरः ॥ ४ ॥" इति

(१) बृहदारण्यके ३-९-२८। (२ १-४-८।

अनन्यपरतयोपादीयमानत्वहेतुरपि नाऽसिद्धः, तथाहि—लोके स्त्रीपुत्रधनादिकमप्यात्मार्थमुपादीयते, आत्मा तु नाऽन्यार्थमुपादीयते । उक्तं च **सर्ववेदान्तसिद्धान्तसंग्रहे**ऽपि

"प्रवृत्तिश्च निवृत्तिश्च यच्च यावच्च चेष्टितम् ।
आत्मार्थमेव ना-ऽन्यार्थं नातः प्रियतमं(मः)परः ॥१॥" इति ।

तथाऽऽत्मा सुखस्वभावः, मुख्यप्रेयोबुद्धिविषयत्वाद् निरुपचरितप्रियशब्दवाच्यत्वाद्वा, रागिणां वैषयिकसुखवत् ।

तथा मुमुक्षुप्रवृत्तिरिष्टार्थप्राप्त्यर्था, प्रेक्षापूर्वकारिप्रवृत्तित्वात्, कृषीवलादिप्रेक्षापूर्वकारिप्रवृत्तिवत् । एवञ्च शास्त्रीय उपदेश इष्टार्थप्राप्त्यर्थः, उपदेशत्वात्, अन्योपदेशवत् । प्रतिपादितं चैतत् **वात्स्यायनभाष्ये**ऽपि **"नोभयमनर्थकम्"** । (अ० १ आ० १ सू० २२) इति मोक्षसुखा-ऽनभ्युपगमे तु तत्प्रवृत्त्युपदेशयोर्वैफल्यप्रसङ्गः ।

निरतिशयत्वञ्च सुखस्यानुमानतोऽपि सिद्धम् । तद्यथा सुखतारतम्यं क्वचिद्विश्रान्तम्, तारतम्यशब्दवाच्यत्वात्, परिमाणतारतम्यवदिति । एवंविधैरनुमानैः सुखस्वभावताप्रतीतिः ।

अत्र प्रतिविधीयते—यत् तावत् **"विज्ञानमानन्दं ब्रह्म"**त्याद्यागमवचनेनोक्तानुमानैश्चात्मनः सुखस्वभावत्वं प्रतिपाद्यते, तत्सुखं किमनित्यं समस्ति ? उत नित्यम् ? न तावत् प्रथमपक्षः, आत्मनस्तत्स्वभावत्वेन तस्या-ऽप्यनित्यत्वप्रसङ्गात् ।

अथ नित्यमिति चेत्, तत्र विकल्पद्वयमवतरति—नित्यसुखमात्मस्वरूपं किं स्वप्रकाशकम् ? उत तद्भिन्नप्रमाणान्तरप्रमेयम् ? न तावत् प्रथमविकल्पः, आत्मस्वरूपवत् स्वप्रकाशसुखानुभवस्यैव सदैव सत्त्वेन मुक्तसंसारिणोरविशेषप्रसङ्गात् । न चा-ऽनाद्यविद्यया-ऽऽच्छादितत्वात् स्वप्रकाशा-ऽऽनन्दसंवेदनं संसारिणां न भवति, योगाभ्यासेन त्वनाद्यविद्यानिवृत्तौ आच्छादकाभावात् स्वप्रकाशा-ऽऽनन्दसंवित्तिर्जायत एव । उक्तं च—**सिद्धान्तबिन्दा**वपि—**"यद्यपि संसारदशायामविद्यावृतस्वभावत्वादात्मा परमानन्दरूपतया न प्रथते** (प्रकाशते)**, तथापि तत्त्वविद्यया-ऽविद्यानिवृत्तौ स्वप्रकाशतया स्वयमेव परमानन्दस्वरूपतया प्रकाशते।"**इति वाच्यम्, यत आच्छाद्यतेऽप्रकाशस्वभावं वस्तु, स्वप्रकाशं तु केनाच्छाद्यते । ननु सविता तत्प्रकाशश्च स्वप्रकाशः, आच्छाद्यते च मेघादिना, ततः कुत उच्यते—स्वप्रकाशं तु केना-ऽऽच्छाद्यते ? इति चेत्, उच्यते—नहि मेघादिना स्वप्रकाशः सविता तत्प्रकाशो वा-ऽऽव्रियते, आवृतत्वे हि दिवसरजन्योरविशेषः स्यात्, दृश्यते च विशेषः, तस्माद् न स्वप्रकाशो केनाचिदाव्रियते ।

अस्तु वा मेघादिना स्वप्रकाशस्य सवितुस्तत्प्रकाशस्य चा-ऽऽवरणम्, तयोर्व्यतिरिक्तत्वाद् मेघादेः, अविद्यायास्तु तुच्छरूपत्वात् न तस्या आवृत्तिलक्षणाऽर्थक्रियाकारित्वम्, यत् तुच्छ-

रूपम् , न तद् अर्थक्रियाकारि, यथा मृगतृष्णिकाजलम् , तुच्छरूपा चा-ऽविद्या भवद्भिरिष्टा। तस्माद् न तया-ऽऽव्रियते सुखम् । उक्तञ्चा-ऽन्यत्रा-ऽपि-

"मेघा अपि रवेरन्ये स्वरूपेण च वास्तवाः ।
तत्त्वान्यत्वाद्यचिन्त्यया तु ना-ऽविद्या-ऽऽवरणक्षमा ॥१॥" इति ।

नाऽपि द्वितीयविकल्पः, प्रत्यक्षादिप्रमाणबाधितत्वात् । तथाहि- न तावत् प्रत्यक्षप्रमाणेन मोक्षे नित्यसुखं व्यवस्थाप्यते, अस्मदादीन्द्रियजन्यप्रत्यक्षस्य तत्र व्यापाराभावात् ,योगिप्रत्यक्षं त्वेवं प्रवर्तते, उता-ऽन्यथे-यद्यपि विवादास्पदम् ।

नापि नित्यसुखं व्यवस्थापयितुमुपन्यस्तानुमानप्रमाणानि समर्थानि,तेषां प्रतिविधास्यमानत्वात् ।

"विज्ञानमानन्दं ब्रह्म" इत्याद्यागमो-ऽपि न नित्यसुखं साधयितुमलम् , तस्यैव प्रामाण्या-ऽसम्भवात् । गुणवद्वक्तृणामेव वचनस्य हि प्रामाण्यम् , भवता तु स्वागमोऽपौरुषेयोऽभ्युपगम्यते । न चा-ऽपौरुषेयत्वेनैव प्रामाण्यमिति वाच्यम् , अपौरुषेयत्वस्य निर्युक्तिकत्वात् । तथाहि-वचनं खलु वक्त्रोच्चार्यमाणमेव । अथ वचनञ्च, अवक्तृकं चेति माता मे वन्ध्येतिवत् कथं न व्याहतम् ?

अस्तु वाऽऽगमस्य प्रामाण्यम् , किन्त्वसा आगमोऽन्यथाऽपि व्याख्यातुं शक्यते, अत्यन्तदुःखाभावे गौणार्थे सुखशब्दवृत्तित्वाऽभ्युपगमात् । तथाहि-लोके न केवलं मुख्य एव शब्दानां प्रयोगः, किन्तु गौणेऽपि । यथा ज्वररोगादिसंतप्ता जना ज्वराद्यपगमे सुखिनो वयं जाताः, तथा काष्ठादिपरिहारे सुखिनो वयं सम्पन्नाः । अभिहितञ्च न्यायवात्स्यायनभाष्ये-ऽपि "आत्यन्तिके च संसारदुःखाभावे सुखवचनाद् आगमेऽपि सत्यविरोधः । यद्यपि कश्चिदागमः स्याद् मुक्तस्यात्यन्तिकं सुखमिति । सुखशब्द आत्यन्तिके दुःखाभावे प्रयुक्त इत्येवमुपपद्यते । दृष्टो हि दुःखादेरभावे सुखशब्दप्रयोगो बहुलं लोके ।" इति । एवं श्रीव्योमाचार्यैरप्युक्तम् "मुख्ये हि बाधकोपपत्तेः गौण इति । तथाहि दुःखाभावेऽयमानन्दशब्दः प्रयुक्तो दृष्टः, सुखशब्दो दुःखाभावे, यथा भाराक्रान्तस्य वाहिकस्य तदपाय इति ।"

एवमन्यत्रा-ऽप्युक्तम्-

"चिरज्वरशिरोत्र्यादिव्याधिदुःखेन खेदिताः ।
सुखिनो वयमद्येति तदपाये प्रयुञ्जते ॥१॥" इति ।

तथैव "तृषा शुष्यत्यास्ये पिबति सलिलं स्वादु सुरभि,
क्षुधार्तः सन् शालीन् कवलयति शाकादिवलितान् ।
प्रदीप्ते रागाग्नौ सुदृढतरमाश्लिष्यति वधूं,
प्रतीकारो व्याधेः सुखमिति विपर्यस्यति जनः ॥१॥" इति ।

तदेवं मुक्तात्मनि सुखं नैकान्तेनानित्यम् ,नाप्येकान्तेन नित्यम् ,किन्तु नित्यानित्यमेव । द्रव्यतो

नित्यं पर्यायतश्चाऽनित्यं सुखमात्मनि स्वीक्रियते स्याद्वादिभिः । ननु सुखस्य नित्यानित्यत्वे आत्मनस्तत्स्वभावत्वेन तस्याऽपि तथात्वप्रसङ्ग इति चेत् ,सत्यमेतत् ,किन्त्विष्टापत्तिरेषा, आत्मनस्तथात्वात् । आत्मन एकान्तनित्यत्वाभ्युपगमे तु वैषयिकभोगादेरप्यनुपपत्तिर्दर्शयिष्यते[1] ।

न च द्रव्यतः सुखस्य नित्यत्वे कथितयोर्द्वयोर्नित्यत्वपक्षसंभविनो[2] विकल्पयोरन्यतरस्याऽभ्युपगमे कथं न दोषप्रसक्तिः ? इति वाच्यम् ,यतः प्रथमविकल्पस्याऽभ्युपगमे कर्मणामावारकत्वेनाऽभिमतत्वाद् दोषाभावः । द्वितीयविकल्पस्त्वनभ्युपगममात्रादेव निरस्तः । अयम्भावः—प्रथमविकल्पे **नैयायिकादिभिर्भट्टसर्वज्ञादीन्** प्रत्येवा-ऽऽवारका-ऽविद्यायास्तुच्छत्वं वक्तुं शक्यते, **स्याद्वादिभिस्तु** ज्ञानावरणादिकर्मणामावारकत्वेनाऽभ्युपगमः,तानि च कर्माणि सुखत आत्मतश्चाऽर्थान्तराणि,ततश्च युज्यते तेषामावारकत्वं मेघादिवत् । द्वितीयविकल्पस्त्वनभ्युपगममात्रादेव निरस्तः ।

अथ **नैयायिकादयः** शङ्कन्ते—ननु मोक्षावस्थायां नित्यानित्यसुखाभ्युपगमे तद्रागेण प्रवृत्तौ मोक्षाभावः प्रसज्यते, रागस्य बन्धहेतुत्वाद् । निरानन्ददुःखनिवृत्तेरभ्युपगमे तु रागाभावात् स्यादेव मोक्षः । न च निरानन्दनिर्विज्ञानमोक्षाऽभ्युपगमे प्रेक्षावतां तत्र प्रवृत्तिर्न स्यात् , तथाहि—ते सोपाधिक-सावधिक-परिमिता-ऽऽनन्दनिष्यन्दात् निर्विण्णाः स्वर्गादप्यधिकमनवधिकनिरतिशयनैसर्गिकानन्दतज्ज्ञानरूपप्रधानप्रयोजनपूर्त्यर्थमेव प्रवर्तन्ते । यदि च मोक्षावस्थायां न सुखं न च ज्ञानम् , तदाऽऽत्मा जडः पाषाणनिर्विशेष एव भवेत् , एवञ्च ते निर्णयेयुः कृतमपवर्गेण, संसार एव वरमस्तु । यत्र तावदन्तराऽन्तरा दुःखकलुषितमपि कियदपि सुखमनुभुज्यते । चिन्तनीयं तावदिदम्—किमल्पसुखानुभवो भव्यः ? उत सर्वसुखोच्छेदः ? इति सुखरूपप्रयोजनविरहात् प्रेक्षावतां मोक्षे प्रवृत्तिरनुपपन्नेति वाच्यम्—यतो न प्रयोजनाऽनुवर्ति प्रमाणं भवितुमर्हति, यदि केभ्यश्चिद् निरानन्दो मोक्षो न रोचते, कामं मा रोचताम् , न त्वप्रमाणक आनन्दस्तत्र कल्पयितुं योग्यः । अपि च प्रेक्षावन्तो लाभातिरेकाकाङ्क्षिणः । ते खलु एवं विचारयन्ति-दुःखसंस्पर्शशून्यशाश्वतिकसुखसंभोगाऽसंभवाद् दुःखस्य चा-ऽवश्यहातव्यत्वादनयोः सुखदुःखयोरेकभाजनपतितविषमधुनोर्मधूत्पन्नसुखकणिकापेक्षविषप्रयोज्यतीव्रतरमरणादिदुःखजनकयोरिव विवेकहानस्य दुःशक्यत्वाद् उभेऽपि सुखदुःखे त्यज्येतामिति ससाराद् मोक्षः श्रेयान् , यतस्तत्र दुःखं सर्वथा न स्यात् । वरमियती कादाचित्की सुखकणिका परित्यक्ता, न तत्कृते दुःखभार इयान् व्यूढः । ततश्च स्थितमेतद्—निरानन्दमोक्षेऽपि न प्रेक्षावतां प्रवृत्तिर्विरुध्यत इति, सुखात्मकमोक्षाभ्युपगमे तु तद्रागेण तत्र प्रवृत्तौ कुतो मोक्षः ? इति ।

अत्रोच्यते-यो हि सांसारिकसुखविषयरागः, स एव रागो बन्धनात्मकः, तस्य विषयाऽर्जनरक्षणादिप्रवृत्तिद्वारेण संसारहेतुत्वात् । अनन्ते च सुखे यद्यपि रागः, तथापि नासौ बन्धना-

(१) पृ० ५३५ प० २७ (२) पृ० ५२७ प० १७

त्मकः, इन्द्रियविषयार्जनादिनिवृत्तिहेतुत्वात् । स्पृहामात्रोऽप्यसावसज्ञानुष्ठाने सति परां कोटिमारूढस्य निवर्तते,यदुक्तम् **"मोक्षे भवे च सर्वत्र निःस्पृहो मुनिसत्तमः ।"** इति ।

अपि च न्यायमतेन दुःखनिवृत्त्यात्मकमोक्षेऽङ्गीकृतेऽपि दुःखविषयकद्वेषेण मोक्षे प्रवर्तमानस्य मुमुक्षोर्मोक्षाभावः प्रसज्यते, रागवद् द्वेषस्यापि बन्धहेतुत्वात् ।

नतु रागद्वेषौ हि संसारकारणमित्यवबोधति मुमुक्षुः, ततश्च स कथं दुःखद्वेषं कुर्यात् ? द्वेषं विनैवतस्य मोक्षार्थप्रवृत्तिर्भवतीत्यर्थः । भवतु वा मोक्षस्य दुःखनिवृत्तिरूपत्वाद् दुःखनिवृत्तेश्च दुःखद्वेषमूलकत्वेन द्वेष आवश्यकः, तथापि न स बन्धहेतुः । द्वेषो हि स बन्धहेतुः, य उत्पन्नः सन् स्वविषये मनोवाक्कायैः शास्त्रविरुद्धां प्रवृत्तिं कारयति, शास्त्रविरुद्धार्थाचरणे चाऽधर्मोत्पत्तिद्वारेण शरीरादिग्रहणम्, तन्निबन्धनसुखदुःखे जायेते । अयं तु मुमुक्षोर्विषयेषु द्वेषः सकलप्रवृत्तिविरोधित्वाद् धर्माधर्माऽनुत्पत्तौ शरीराद्यभावप्रयोजकत्वाद् न केवलं बन्धनिरोधाय, किन्तु स्वात्मघाताय प्रवर्तत इति चेत्, न, यतो मोक्षसुखार्थकरागेऽपि समानमेव ।

[1]यच्चोक्तं **"दुःखसंस्पर्शशून्यशाश्वतिकसुखसम्भोगाऽसम्भवादि"** त्यत्र शाश्वतिकं नाम किमनाद्यनिधनम् ? यद्वा-ऽऽदिमदपि प्रध्वंसवदपर्यवसानं सुखं विवक्षितम् ? तत्र प्रथमविकल्पे तादृशसुखं तावत् प्रेक्षावतामुपादित्सागोचरो न भवति, नित्यसिद्धत्वेन विषयसिद्धेस्तदिच्छाप्रतिबन्धकत्वात् । द्वितीयविकल्पे दुःखसंस्पर्शशून्यं तादृशं सुखं संभवत्येव, आत्मनो मूलभूतस्वाभाविकसुखाऽभावे संसारावस्थायां सुखाभासस्यानुपपत्तेः । अपर्यवसानं च तत् विनाशकारणाभावात् । तस्य विनाशकारणं हि वेदनीयादिकर्म, विनाशश्चात्र तिरोभावो बोध्यः, वेदनीयादिकर्म च समूलकाषं कषितम्, मिथ्यात्वा-ऽविरति-कषाय-योगलक्षणानां च कर्मोत्पत्तिकारणानामभावाद् न पुनरपि कर्मनिर्मितिः । न च सादित्वाऽभ्युपगमे तदुत्पादककारणमावश्यकम्, इह तु कारणाभावः, तेन तादृशसुखोत्पत्तिरनुपपन्नेति वाच्यम्, सादित्वस्यात्राविर्भावरूपत्वात्, स्वाभाविकसुखस्य च तस्य सकलकर्मोपरमप्रयोज्यत्वात् ।

[2]यदपि **"सुखदुःखयोश्चैकभाजनपतितविषमधुनोर्मधूत्पन्नसुखकणिकापेक्षविषप्रयोज्यतीव्रतरमरणादिदुःखजनकयोरिव विवेकहानस्य दुःशक्यत्वाद् उभेऽपि सुखदुःखे त्यज्येता"** मित्युक्तम्, तदप्यसारम्, वैषयिकसुखस्य तादृशत्वात् । वैषयिकं सुखं हि मधुदिग्धधाराकरालमण्डलाग्रग्रासवद् दुःखरूपं भवति, अतो युक्ता मुमुक्षूणां तज्जिहासा, किन्तु सा-ऽऽत्यन्तिकसुखलिप्सूनामेव मुमुक्षूणां सम्भवति, न तु दुःखाभावकाङ्क्षिणाम् । येऽपि विषमधुनी एकत्र पात्रे सम्पृक्ते परित्यज्येते, तेऽपि जीवनादिसुखलिप्सयैव ।

किञ्च प्राणिना संसारावस्थायां दुःखनिवृत्तेरिष्टत्वेऽपि सुखनिवृत्तिरनिष्टा, तथैव मोक्षा-

(१) पृ० ५२९ प० २१ । (२) पृ० ५२९ प० २२ ।

वस्थायामपि दुःखनिवृत्तेरिष्टत्वे-ऽपि सुखनिवृत्तिरनिष्टा । ततो यदि त्वदभिमतो मोक्षः केवल-दुःखाभावरूपः स्यात्, तदा न प्रेक्षावतामिह प्रवृत्तिः स्यात्, सुखहानेरनिष्टत्वादनिष्टे चा-ऽप्रवृत्तेः ।

न च यथा रागान्धतया पारदार्ये भाविनरकादिदुःखा-ऽनुबन्धित्वं न वेद्यते, तथा सुख-हानेरनिष्टत्वं विरागिभिर्न वेद्यते, ततश्च प्रवृत्तेरव्याघात इति वाच्यम्, वैषयिकसुखेऽनिष्टत्वप्रतिसन्धा-नेऽपि मुमुक्षूणां प्रशमप्रभवसुखेऽनिष्टत्वा-ऽप्रतिसन्धानात् । न च मोक्षावस्थायां दुःखाभाव एव परमसुखम्, न तद्व्यतिरिक्तम्, दुःखाभावेऽपि सुखशब्दप्रयोगादिति वाच्यम्, यतो-ऽदुःखितस्य भवदभिप्रायेण दुःखाभावात्मकसुखवतो-ऽपि जीवस्य विशिष्टमधुरशब्दादिविषयोपभोगेन सुखाति-शयस्यानुभविकत्वेन दुःखाभावे सुखत्वापादनं निर्युक्तिकम् । तथाहि—यत्राऽपि क्षुत्पिपासापीडितस्य जनस्या-ऽन्नपानादिप्राप्तौ तृप्तौ सत्यां क्षुत्पिपासादिदुःखं निवर्तते, तत्रापि शष्कुल्याद्यन्नविशेषा-ऽऽम्लमधुरादिपानविशेषैः सुखविशेषो जायत एव, दृश्यते च लौकिकानां जनानां सुखार्थमन्नपाना-दिविशेषोपादानम् । न चोचिता दृष्टविपरीतकल्पना । तथा सुखस्य भावरूपत्वाद् युज्यते तत्रा-ऽन्नपानादिविशेषसामग्र्याऽतिशया-ऽऽधानम्, दुःखाभावस्य तु तुच्छत्वेन न युज्यते तत्रा-ऽतिश-याधानम् ।

येऽपि प्राहुः—यदापि पूर्वं दुःखं नास्ति, तदा-ऽप्यभिलाषस्य दुःखस्वभावत्वात् तन्निवर्ह-णस्वभावं सुखमिति, तेऽपि न सम्यक् प्रतिपन्नाः । तथाहि अभिलाषाख्यदुःखनिवृत्तिरेव सुख-मिति तेषां मतमेवंरूपम् यस्यैव यत्रा-ऽभिलाषः, स एव तद्विषयोपभोगेन सुखी, नान्य इति विषया अभिलाषं निवर्त्य तमेव सुखयन्ति । अन्यथा यदेकस्य सुखसाधनम्, तत् सर्वेषामप्य-विशेषेण स्यात् । न च तथा भवति । यदुक्तम्

"एकस्य विषयो यः स्यात् स्वाभिप्रायेण पुष्टिकृत् ।
अन्यस्य द्वेष्यतामेति स एव मतिभेदतः ॥१॥" इति ।

एवमेकपुरुषे-ऽपि यदा कामनिवृत्त्या सुखित्वम्, तदापि यस्यैव विषयस्याभिलाषो निवृत्तः, स एव तस्य सुखसाधनम्, नान्यो विषयः । तस्मादभिलाषनिवृत्तिरेव सुखमिति । तदसङ्गतम्, निरभि-लाषस्यापि जनस्य विषयविशेषोपभोगे सति विशेषाह्लादोत्पत्तेर्दर्शनात् । न च तत्राऽकामस्या-ऽपि जीवस्य विशिष्टविषयसम्पर्केण कामा-ऽभिव्यक्तौ जातायां विषयोपभोगद्वारेण तन्निवृत्तिरेव सुखमिति वाच्यम्, यतो नाऽवश्यं विषयोपभोगोऽभिलाषनिवर्हणः । उक्तञ्च महाभारते

न जातु कामः कामानामुपभोगेन शाम्यति ।
हविषा कृष्णवर्त्मेव भूय एवा-ऽभिवर्धते ॥

श्रीपतञ्जलिनाप्युक्तम् "भोगाभ्यासमनुवर्धन्ते रागाः कौशलानि चेन्द्रियाणाम् ।" इति ।

पाराशर्यो-ऽप्याह

तृष्णाखनिरगाधेयं दुष्पूरा केन पूर्यते ।
या महद्भिरपि क्षिप्तैः पूरणैरेव खन्यते ॥१॥ इति

किञ्चा-ऽभिलापनिवृत्तिरन्यथाऽपि=विषयेषु दोषदर्शनादितोऽपि सम्भवति । विषयेषु दोषाश्चेत्थं द्रष्टव्याः

असौ तरलताराक्षी पीनोत्तुङ्गघनस्तनी ।
विलुप्यमाना कान्तारे विहगैरद्य दृश्यते ॥१॥
विभाति बहिरेवास्याः पद्मगन्धनिभं वपुः ।
अन्तर्मज्जास्थिविण्मूत्रमेदः कृमिकुलाकुलम् ॥२॥
अस्थीनि पित्तमुच्चाराः क्लिन्नान्यन्त्राणि शोणितम् ।
इति चर्मपिनद्धं सत्कामिनीति विधीयते ॥३॥
मेदोग्रन्थी स्तनौ नाम तौ स्वर्णकलशौ कथम् ।
विष्ठादृतौ नितम्बे च कोऽयं हेमशिलाभ्रमः ॥४॥
मूत्रासृग्द्वारमशुचि च्छिद्रं क्लेदि जुगुप्सितम् ।
तदेव हि रतिस्थानमहो पुंसां विडम्बना ॥५॥
प्रीतिर्यथा निजास्योत्थं लिहतः शोणितं शुनः ।
शुष्केऽस्थनि तथा पुंसः स्वधातुस्पन्दिनः स्त्रियाम् ॥६॥
व्यात्तानना विवृत्ताक्षी विवर्णा श्वासघुर्घुरा ।
कथमद्य न रागाय म्रियमाणा तपस्विनी ॥७॥
अहो व्रणे वराकोऽयमकाले तृषितः फणी ।
प्रसारितमुखोऽप्यास्ते शोणितं पातुमागतः ॥८॥
किमनेनापराद्धं नः स्वभावो वस्तुनः स्वयम् ।
स्पृश्यमानो दहत्यग्निरिति कोऽस्मै प्रकुप्यति ॥९॥
नानुकूलः प्रिये हेतुः प्रतिकूलो न विप्रिये ।
स्वकर्मफलमश्नामि कः सुहृत्कश्च मे रिपुः ॥१०॥" इति ।

विषयदोषदर्शनप्रयुक्ताभिलापनिवृत्तिसुखं तु विषयोपभोगाधीनाभिलापनिवृत्तिसुखापेक्षया-ऽतिविशिष्टतरम् । किन्तु भवन्मते तत्कथं संघटेत् ? यतो भवन्मतमनुसृत्य विषयेषु दोषदर्शनेन जायमानं सुखं विषयोपभोगोत्पन्नसुखेन तुल्यं स्यात्, सुखत्वेनभिमताभिलापनिवृत्तेरभावरूपाया अविशेषात् । न चैकत्रा-ऽभिलापातिरेकात् तन्निवृत्तौ सुखातिरेकाभिमानः, अन्यत्रा-ऽन्यथेति वाच्यम्, यतोऽभिलाषातिरेकेण प्रयत्नन्तं प्राप्तोऽर्थो न तथा प्रीणयति, यथाऽप्रार्थितः प्रवासादिनोपनतः । लोकव्यवहारोऽप्येवमेव, यत्नसहस्रेण प्राप्तः क्लेशप्राप्तोऽयमिति, न तेन तथा

सुखिन:, यथाऽप्रार्थितप्राप्तेन। तन्न दुःखाभावमात्रं सुखं वक्तुं युज्यते नाप्यभिलाषनिवृत्तिमात्रम्, किन्तु तद्व्यतिरेकेण स्वरूपतः सुखमस्तीति, तदेवं सिद्धो मोक्ष आनन्दस्वरूपः, तद्रागेण च तत्र प्रवृत्तिर्न बन्धाय कल्पते, वैषयिकसुखरागविरहात्।

ननु नैयायिकमते दुःखेन निर्विण्णस्य मुमुक्षोरिच्छाविच्छेदाद् वैराग्यमपि जायते, ततश्च मोक्षः। परमानन्दलिप्सूनां स्याद्वादिनां मतेन तु मुमुक्षोरिच्छावत्त्वाद् वैराग्यव्याहतिः स्यात्, ततः कुतस्तेषां मोक्षः? इति चेत्, न, दुःखद्वेषे सति प्रशान्तत्वव्याघातप्रसङ्गेन मोक्षाभावप्रसक्तेः। अयं भावः न केवलं विरक्तानामेव मोक्षेऽधिकारः, किन्तु प्रशान्तानामपि। यथा सुखेच्छावत्त्वाद् मुमुक्षोर्वैराग्यव्याघातप्रसङ्ग उपपाद्यते, तथैव दुःखद्वेषमन्तरेण न मुमुक्षोर्दुःखनाशानुकूलः प्रयत्न इति द्वेषराहित्यलक्षणप्रशान्तत्वस्य व्याघातः प्रसज्यते। ततश्च प्रशान्तत्वव्याहत्या कुतो मोक्षः? एतेन यत्तु -योगर्द्धिसाध्यनिरतिशयानन्दमयीं जीवन्मुक्तिमुद्दिश्य प्रवृत्तः कारणवशात् परममुक्तिमासादयतीति न युक्तम्, विरक्तानां मोक्षेऽधिकारादिति तदपि निरस्तम्।

किञ्च नेच्छाविच्छेदसामान्यं वैराग्यपदार्थः, येन निरतिशयानन्दलिप्सूनां वैराग्यहान्या मोक्षो न स्यात्, किन्तु वैषयिकसुखेच्छाविच्छेदस्य वैराग्यपदार्थत्वम्। यदि इच्छाविच्छेदसामान्यस्य वैराग्यपदार्थत्वम्, तदा नैयायिकानां मतेन चरमदुःखध्वंसरूपमुक्त्यामिच्छया प्रवृत्तिर्न स्यात्। किन्तु दुःखद्वेषादेव दुःखध्वंसानुकूलप्रयत्नः स्यात्। न च दुःखद्वेषाद् दुःखनाशानुकूलप्रयत्नो भवत्येवेति वाच्यम्, मूर्च्छा-मरणादौ प्रवृत्तिप्रसङ्गात्। न च जायत एव बहुतरदुःखजर्जरकलेवराणां मरणादौ प्रवृत्तिरिति वाच्यम्, तस्या अविवेकप्रवृत्तित्वात्। ननु पुरुषार्थत्वे विवेकाऽनुपयोग इति चेत्, सत्यमेव, पशुकल्पानां जनानां न विवेकोपयोगः, न तु प्रेक्षावताम्, प्रेक्षावन्तो हि यावत् प्रयोजनं प्रमायैव प्रवर्तन्ते। तदुक्तम्—

"दुःखाभावोऽपि नाऽवेद्यः पुरुषार्थतयेष्यते।
न हि मूर्च्छाद्यवस्थार्थं प्रवृत्तो दृश्यते सुधीः॥१॥" इति।

अथ पुनर्नैयायिकादयः शङ्कन्ते—अस्तु कुतश्चिद् मोक्षे नित्यसुखम्, तस्य संवेदनं किं नित्यमस्ति, ? उताऽनित्यम्? नित्यमिति चेत्, मुक्त-संसारिणोरविशेषप्रसङ्गः, सुख-तत्संवेदनयोरुभयोरपि नित्यत्वेन संसारावस्थायामपि तत्सत्त्वात्। अपि चेन्द्रियजन्यसुखेन नित्यसुखस्य साहचर्याऽनुभवप्रसङ्गाद् नित्याऽनित्यसुखद्वयोपलम्भः स्यात्, इन्द्रियजन्यदुःखेन च साहचर्याऽनुभवप्रसङ्गाद् सुख-दुःखयोर्युगपद् ग्रहणं स्यात्, नित्यसुखस्य सदैव सत्त्वात्। यदुक्तं न्यायवात्स्यायनभाष्ये—"सुखवन्नित्यमिति चेत्, संसारस्थस्य मुक्तेनाऽविशेषः, यथा मुक्तः सुखेन तत्संवेदनेन च सन्नित्येनोपपन्नस्तथा संसारस्थोऽपि प्रसज्येत इति, उभयस्य नित्यत्वात्। अभ्यनुज्ञाने च धर्माधर्मफलेन साहचर्यं यौगपद्यं गृह्येत। यदिदमुत्पत्तिस्थानेषु धर्माधर्मफलं सुखं दुःखं वा संवेद्यते पर्यायेण, तस्य च नित्यसंवेदनस्य च सह-

भावो योगपद्यं गृह्येत, न सुखाभावो ना-ऽनभिव्यक्तिरस्ति, उभयस्य नित्यत्वात् ।" इति ।

अथ वदेत् संसारावस्थायां नित्यसुखसंवेदनस्य प्रतिबद्धत्वाद् न मुक्तसंसारिणोरविशेषप्रसङ्गः, नवा सुखद्वयोपलम्भः, नाऽपि सुखदुःखयोर्युगपद्ग्रहणमिति चेत् , न, नित्यसुखनित्यसंवेदनं केन प्रतिबध्यते ? (१)किं शरीरादिना ?(२) अथवा वैषयिकसुखानुभवेन ?(३) उताऽविद्यया ? उतस्विद् बाह्यव्यासङ्गेन ?

(१) न तावत् प्रथमविकल्पः, शरीरादेर्भोगार्थत्वाद् भोगस्य च सुखदुःखसंवेदनादिरूपत्वाद् न तेन प्रतिबध्यते, न हि यद् यदर्थम् , तत् तस्यैव प्रतिबन्धकः । यदाहुर्न्यायवात्स्यायनभाष्यकाराः "शरीरादिसम्बन्धः प्रतिबन्धहेतुरिति चेत् , न,शरीरादीनामुपभोगार्थत्वात् विपर्ययस्य चाऽननुमानात् । स्यान्मतम् , संसारावस्थस्य शरीरादिसम्बन्धो नित्यसुखसंवेदनहेतोः प्रतिबन्धकः, तेनाऽविशेषो नास्तीति, एतच्चाऽयुक्तम् , शरीरादय उपभोगार्थाः , ते भोगप्रतिबन्धं करिष्यन्तीत्यनुपपन्नम् ।" इति । शरीरादेः सुखप्रतिबन्धकत्वाभ्युपगमे तु शरीरादिघातकस्य हिंसाफलं न स्यात् , लोके प्रतिबन्धकविघातकस्योपकारित्वेन प्रसिद्धेः ।

(२) अथ वैषयिकसुखा-ऽनुभवेनेत्यपि न युक्तम् , यतः सुखसंवेदनस्याऽनुत्पत्तिलक्षणो विनाशलक्षणो वा प्रतिबन्धो भवितुमर्हति, किन्तु न प्रकृतेऽन्यतरलक्षणः प्रतिबन्धः संभवति, सुख-तत्संवेदनयोरुभयोरपि नित्यत्वस्वीकारात् ।

(३) ना-ऽपि तृतीयविकल्पः,अविद्यायास्तुच्छत्वेन सुखज्ञानप्रतिबन्धलक्षणार्थक्रियाकारित्वविरहात् ।

(४) नाऽपि तुर्यो विकल्पः, यतो व्यासङ्गो नाम आत्मनो रूपादिविषयज्ञानोत्पत्तौ विषयान्तरे ज्ञाना-ऽनुत्पत्तिः, अथवेन्द्रियस्यैकस्मिन् विषये ज्ञानजनकत्वेन प्रवृत्तस्य विषयान्तरे ज्ञानाऽजनकत्वम् । न चा-ऽनयोरन्यतरो व्यासङ्गो युज्यते, सुखस्य तत्संवेदनस्य चोभयोर्नित्यत्वाऽभ्युपगमात् ।

तदेवं नित्यसुखसंवेदनस्य नित्यत्वे दुष्परिहार्या दोषाः ।

अथाऽस्तु नित्यसुखसंवेदनमनित्यमिति चेत् , तर्हि मोक्षावस्थायां तदुत्पत्तिकारणं वक्तव्यम् , अनित्यस्याऽनुत्पत्तिधर्मकत्वाऽनुपपत्तेः । न च योगजधर्मापेक्ष आत्ममनःसंयोगोऽसमवायिकारणमिति वाच्यम् , मुक्तौ योगजधर्मस्या-ऽसम्भवात् ।

अथाद्यं संवेदनं योगजधर्मादुत्पद्यते , तत उत्तरोत्तरं विज्ञानं पूर्वपूर्वत उत्पद्यत इत्यप्यसारम् , प्रमाणा-ऽभावात् । तथाहि न हि शरीरसम्बन्धानपेक्षं किञ्चिदपि विज्ञानं ज्ञानोत्पत्तौ सहकारिकारणम् , शरीरसम्बन्धाऽपेक्षस्यैव ज्ञानस्य ज्ञानान्तरोत्पत्तिं प्रति सहकारित्वदर्शनात् ।

न च मुक्तौ नित्यशरीरादीनां कल्पनया-ऽनित्यसंवेदनोपपत्तिः स्यादिति वाच्यम् , यतः शरीरादीनां कार्यत्वेन न नित्यत्वम् , प्रमाणबाधितत्वात् ।

असदेतत् सर्वम्, अस्मदभिप्राया-ऽपरिज्ञानेन प्रलपितत्वात्, न हि स्याद्वादिभिरेकान्तेन नित्यं सुखसंवेदनं स्वीक्रियते, ना-ऽप्येकान्ततोऽनित्यम्, किन्तु सुखवद् नित्यानित्यमभ्युपगम्यते, अतो न कश्चन दोषः।

द्रव्यतो नित्यं पर्यायतश्चा-ऽनित्यं सुखज्ञानादिकमात्मनि स्वीकुर्वतां स्याद्वादिनामयं विवेकः सङ्ग्रहनयानुसारेण आत्मनः सुखज्ञानादिस्वभावः सेन्द्रियशरीराद्यपेक्षाकारणरूपावरणेन प्रच्छाद्यते गृहा-ऽवस्थितप्रकाश्यपदार्थप्रकाशकत्वस्वभावः प्रदीप इव तदावारकशरावादिना, सेन्द्रियशरीराद्यपेक्षाकारणरूपा-ऽऽवरणापगमे तु जीवस्य विशिष्टप्रकाश्यपदार्थप्रकाशकत्वस्वभावो-ऽयत्नसिद्धः,शरावाद्यपगमे प्रदीपस्येवेति। अत एव कथञ्चिद् नित्यत्वपक्षे न दोषः।

न च शरीराद्यपेक्षाकारणविरहाद् मुक्तौ सुखज्ञानादिकं न सम्भवतीति वाच्यम्, यत आवृतसुखज्ञानादिकं प्रत्येव शरीरादीनां कारणता, न त्वनावृतसुखज्ञानादिकं प्रति। ततश्च मुक्तौ न सुखज्ञानादिकं विरुध्यते। यदि सेन्द्रियशरीरादिरूपाणामावारकाणामभावात् सुखज्ञानादीनामभावः प्रेर्यते, तर्हि तुल्ययुक्त्या प्रदीपावारकाणां शरावादीनामभावे प्रदीपोच्छेदप्रसङ्गः। ननु शरावादीनां प्रदीपं प्रति न जनकत्वमिति न शरावाद्यभावे प्रदीपस्याऽभावः, सुखज्ञानादिकं प्रति तु शरीरादीनां जनकत्वमिति स्यादेव शरीराद्यभावे सुखज्ञानाद्यभाव इति चेत्, उच्यते यद्यपि शरावादीनां प्रदीपं प्रति न जनकता, तथाप्यावृतप्रदीपपरिणतिं प्रति न केनचित् निवारयितुं शक्या, यदि चा-ऽऽवृतप्रदीपपरिणतिं प्रति शरावादीनां जनकत्वं न स्यात्, तदा शरावादीनामावारकत्वमपि न भवेत्। तस्मात् प्रदीपं प्रति शरावादीनां जनकत्वविरहेऽप्यावृतप्रदीपपरिणतिं प्रति जनकताऽस्ति, एवं प्रकृतेऽप्यावृतसुखज्ञानादिकं प्रति शरीरादीनां कारणत्वमस्त्येव, न त्वनावृतसुखज्ञानादिकं प्रति। ततश्च न काचिदनुपपत्तिरिति। अपि चोपलभ्यते संसारावस्थायामपि वासीचन्दनकल्पानां समवृत्तीनां विशिष्टध्याना-ऽवस्थितानां सेन्द्रियशरीरादिव्यापाराऽजन्यः परमाह्लादरूपोऽनुभवः, तस्यैव भावनावशादुत्तरोत्तरावस्थामासादयतः परमकाष्ठागतिः संभाव्यत एव।

ऋजुसूत्रादिनयानुसारेण त्वात्मनः स्वरूपभूतानन्दज्ञानादिस्वरूपता मोक्षावस्थायामुत्पद्यत एव, शुद्धनयैरुत्तरोत्तरविशुद्धपर्यायमात्राभ्युपगमाद्, सुखज्ञानादीनां क्षणस्वरूपतायाः क्षणसत्तयाऽपि सिद्धेः, तस्याः क्षणतादात्म्यनियतत्वात्, क्षणस्वरूपे तथादर्शनात्। यद्येकान्तनित्यस्या-ऽप्रच्युतानुत्पन्नस्थिरैकस्वभावता आत्मनो-ऽभ्युपगम्यते, तर्हि तस्य वैषयिकसुखदुःखोपभोगोऽपि नोपपद्यते, आत्मनि तादृशोपभोगस्वरूपस्य प्राक्तनाऽभोगस्वरूपतो भिन्नत्वात्। स च स्वरूपभेदोऽप्रच्युतानुत्पन्नस्थिरैकस्वभावात्मनि कथं सङ्गच्छेत ? एकस्वभावस्याऽन्यस्वभावस्वीकारेण स्वस्वभावपरित्यागप्रसक्तेः, सुखज्ञानादिकं चोत्तरसुखज्ञानाद्युत्पादनस्वभावम्, यच्च यदा यत्स्वभावम्, तत् तदा तदुत्पादने ना-ऽन्यापेक्षम्, यथाऽन्त्या बीजादिकारणसामग्र्यङ्कुरोत्पादने। तदुपाद-

नस्वभावश्च पूर्वसुखज्ञानादिक्षणः । अत एव कथञ्चिदनित्यत्वपक्षे न कश्चिद् दोषः । न च संसारावस्थायां चरमज्ञानादिक्षणस्योत्तरसुखज्ञानाद्युत्पादनस्वभावता-ऽसिद्धेति वाच्यम् , यतोऽजनकत्वेन तस्याऽर्थक्रियाकारित्वविरहादवस्तुत्वापत्तेस्तज्जनकस्य द्विचरमसुखज्ञानादिक्षणस्या-ऽवस्तुत्वम् , ततश्च तज्जनकस्य त्रिचरमसुखज्ञानादिक्षणस्येत्येवं निखिलसन्तानस्या-ऽवस्तुत्वप्रसङ्गः ।

"कृतश्चायं विवेको मुक्तिद्वात्रिंशिकायामपि
ऋजुसूत्रादिभिर्ज्ञानसुखादिकपरम्परा ।
व्यङ्ग्यमावरणोच्छित्त्या सङ्ग्रहेणोच्यते सुखम् ॥ १ ॥" इति ।

व्यवहारनयानुसारेण तु प्रयत्नसाध्यः कर्मक्षयो मोक्षः । कर्मक्षयश्चाऽस्मिन् ग्रन्थे विस्तरेण दर्शित एव ।

यच्चा-ऽनन्यत्वेन श्रुतौ श्रवणम् "विज्ञानमानन्दं ब्रह्म" इति । तदपि नास्मदभ्युपगमबाधकम् , समस्तज्ञेयव्यापिनो ज्ञानस्या-ऽवैषयिकस्य चा-ऽऽनन्दस्य स्वसंवेदितस्य मोक्षावस्थायां सकलकर्मरहितात्मस्वरूपब्रह्मा-ऽभेदेन कथञ्चिदभीष्टत्वात् ।

[1]यच्चोक्तम् "मुमुक्षुप्रयत्नेन तु यदाऽनाद्यविद्या विनिवर्तते, तदा-ऽऽनन्दस्वरूपप्रतिपत्तिर्भवति, सैव मोक्षः" इत्यभिहितम् , तत्तु युक्तमेव, अष्टविधपारमार्थिककर्मप्रवाहरूपाऽनाद्यविद्याविलयेना-ऽनन्तसुखज्ञानादिस्वरूपप्रतिपत्तिलक्षणमोक्षप्राप्तेरिष्टत्वात् । नवरं कर्मप्रवाहरूपा-ऽनाद्यविद्या परिणामिनी पौद्गलिकी आत्मतो व्यतिरिक्ता वस्तुस्वरूपा प्रतिपत्तव्या, न तु तुच्छरूपा । या च "आनन्दं ब्रह्मणो रूपं तच्च मोक्षेऽभिव्यज्यते ।" इति श्रुतिर्दर्शिता , साऽपि नाऽस्मत्पक्षबाधिका, अभिव्यक्तेः स्वसंविदिता-ऽऽनन्दस्वरूपतया तदवस्थायामात्मन उत्पत्तेरभ्युपगमात् ।

[3]ये पुनरेकान्तनित्यसुखसिद्ध्यर्थमनुमानप्रयोगाः प्रदर्शिताः, ते तु न युक्ताः, हेतोरनैकान्तिकत्वादिदोषा-ऽऽक्रान्तत्वात् । तथाहि—आत्मा सुखस्वभावः, अत्यन्तप्रियबुद्धिविषयत्वात् , अनन्यपरतयोपादीयमानत्वाच्चेत्यत्र अत्यन्तप्रियबुद्धिविषयत्वमनन्यपरतयोपादीयमानत्वञ्च यत्साधनमुपन्यस्तम् , तदनैकान्तिकम् , दुःखाभावेऽपि तस्य सद्भावात् ।

अत्यन्तप्रियबुद्धिविषयत्वञ्चा-ऽसिद्धम् , दुःखितायामप्रियबुद्धेरपि सद्भावात् ।

अनन्यपरतयोपादीयमानत्वमप्यसिद्धम् , सुखाद्यर्थमुपादानात् ।

एतेन [4]यदपि "आत्मा सुखस्वभावः, वस्तुत्वे सति मुख्यप्रेयोबुद्धिविषयत्वाद् निरुपचरितप्रेयोबुद्धिविषयत्वाद्वा" इत्युक्तम् , तदपि प्रत्युक्तम् , प्रागुक्ताशेषदोषानुषङ्गात् । मुख्यप्रेयोबुद्धिविषयत्वं निरुपचरितप्रेयः शब्दवाच्यत्वञ्चाऽसिद्धम् , दुःखितायां तदभावात् ।

विरुद्धञ्च हेतुद्वयम् , सुखस्वभावत्वविपरीतताया दुःखाभावस्वभावताया एवा-ऽस्मात् सिद्धेः, तथाहि -अयमात्मा दुःखाभावस्वभावः, वस्तुत्वे सति मुख्यप्रेयोबुद्धिविषयत्वाद् निरुपचरितप्रेयःशब्दवाच्यत्वाद्वा रागिणां वैषयिकदुःखाभाववदिति ।

(१) पृ० ५२६ प० ७ (२) पृ० ५२६ पं० ८ । (३) पृ० ५२६–५२७ (४) पृ० ५२६ प० १८ ।

[1]यदभिहितम् "मुमुक्षुप्रवृत्तिरिष्टार्थप्राप्त्यर्था, प्रेक्षापूर्वकारिप्रवृत्तित्वात्" इत्यादि, तदप्यपेशलम्, प्रवृत्त्युपदेशयोरन्यथासिद्धत्वात्। भवेत् साध्यसिद्धिः, यदि प्रेक्षावतां प्रवृत्त्युपदेशयोरिष्टार्थप्राप्त्यर्थत्वं भवेत्, तयोस्त्वन्यथाऽपि दर्शनाद् न प्रकृतसाध्यसाधकत्वम्। तथाहि-न हि प्रेक्षावतां केवलं प्रवृत्त्युपदेशयोरिष्टप्राप्त्यर्थत्वम्, अपि त्वातुराणां चिकित्साशास्त्रार्था-ऽनुष्ठायिनामनिष्टप्रतिषेधाया-ऽपि प्रवृत्त्युपदेशौ दृश्येते, अतः कथमिष्टप्राप्त्यर्थता प्रवृत्त्युपदेशलक्षणहेतुद्वयेन सिद्ध्यति?

किञ्चा-ऽत्रेष्टशब्देन किमभिप्रेतप्रयोजनमभिधीयते? उत सुखम्? यदि प्रथमपक्षः, तर्हि कथमात्मनः सुखस्वभावत्वं सिध्येत्? साङ्ख्यादिमान्या-ऽपवर्गसिद्धिप्रसङ्गश्च, अन्यमताऽनुयायिनां साङ्ख्यादीनामपि मुमुक्षूणां प्रवृत्त्युपदेशयोस्तदिष्टाऽपवर्गलक्षणप्रयोजनसाधकत्वात्। न च प्रवृत्तेः प्रेक्षावत्त्वविशेषणोपादानाद् न साङ्ख्यादिमान्या-ऽपवर्गसिद्धिप्रसङ्ग इति वाच्यम्, प्रेक्षावदप्रेक्षावतोर्विवेकस्याऽशक्यत्वात्। तद्यथा-न हि भवन्मतानुयायिनः प्रेक्षावन्तो न सांख्यमतानुसारिण इति विवेकः कर्तुं शक्यः, प्रमाणबाधितैकान्तनित्यत्वादिस्वभावाङ्गीकारेण सर्वेषामप्यप्रेक्षावत्त्वसिद्धेः।

अथेष्टशब्देन सुखमभिधीयते, तर्हि साध्यविकलं दृष्टान्तम्, न हि कृषीवलादीनां कृष्यादिप्रवृत्तिः सुखार्था भवति, धान्यादिफलनिष्पत्त्यर्थत्वात्तस्याः।

[2]यच्च "सुखतारतम्यं क्वचिद्विश्रान्तम्, तारतम्यशब्दवाच्यत्वा" दित्युक्तम्, तदप्युक्तिमात्रम्, परत्वादिना व्यभिचारात्, परापरादिबुद्धिप्रकर्षसमधिगतो हि परत्वादिप्रकर्षस्तारतम्यवाच्यो न क्वचिद् विश्राम्यति।

किञ्च दुःखेऽप्येवं परमप्रकर्षः प्रसज्यते। तथाहि-दुःखतारतम्यं क्वचिद् विश्रान्तम्, तारतम्यशब्दवाच्यत्वात्, परिमाणतारतम्यवत्। न च दुःखपरमप्रकर्षो भवद्भिरपीष्ट इति दुःखपरमप्रकर्षेणापि व्यभिचारः।

साध्यतां वोक्तानुमानैर्मोक्षावस्थायां सुखम्, तत्र नित्यानित्यसुखस्य सत्त्वात्। न त्वेकान्तनित्यसुखम्, तस्य प्रमाणबाधितत्वात्।

(इति तौतातितामिमतमोक्षस्वरूपस्य प्रतिविधानम्।)

ये पुनर्वेदान्तिन आहुः-अविद्यायां निवृत्तायां विज्ञानसुखात्मकः केवल आत्मा मोक्ष इति, तेऽपि निरस्ताः, ज्ञानसुखात्मकब्रह्मणो नित्यत्वे मुक्तसंसारिणोरविशेषापातात्, तादृशा-ऽऽत्मनश्च कृतिसाध्यत्वविरहात्। न च ज्ञानसुखात्मकब्रह्मणो नित्यत्वेन साध्यत्वविरहे-ऽप्यविद्यानिवृत्तिः कृतिसाध्येति वाच्यम्, अविद्याया असत्त्वेन नित्यनिवृत्तत्वात्, अनिर्वचनीयतायाश्चा-ऽनिर्वचनीयत्वात्। एतदुक्तं

(१) पृ० ५२७ पं० ८। (२) पृ० ५२७ पं० १२।

भवति–अविद्या किं सद्रूपा स्वीक्रियते ? उता-ऽसद्रूपा ? न तावत् प्रथमपक्षः, ब्रह्मण इव तस्या अपि निवृत्तेरसम्भवात् ,तन्निवृत्त्यभ्युपगमे चा-ऽविशेषेण ब्रह्मणो-ऽपि निवृत्तिप्रसङ्गात् । यदि चा-ऽसत्त्वरूपा, तदा सा नित्यनिवृत्ता, न तन्निवृत्तिः कृतिसाध्या । नन्वविद्या न सद्रूपा, ना-ऽसद्रूपा, किन्त्वनिर्वचनीयेति चेत्, मैवम्, यया-ऽनिर्वचनीयतया-ऽविद्या तत्कार्याणि चा-ऽनिर्वचनीयानि भण्यन्ते, सा निर्वचनीया न वा ? प्रथमपक्षे सत्त्वेन निर्वचनीया चेत्, तर्ह्यद्वैतभङ्गः, ब्रह्मभिन्नायास्तस्या अपि सत्त्वोपगमात् । असत्त्वेन चेत्, तर्हि कथं तया खरविषाण-कल्पया-ऽविद्यया उपरञ्जनम् ?

अथाऽनिर्वचनीयता-ऽप्यनिर्वचनीयेति द्वितीयपक्षः समाश्रियते, तदा-ऽनिर्वचनीयताया निर्वक्तुमशक्यत्वेन स्वरूपतो-ऽपहारः ।

(इति वेदान्तिस्वीकृतमोक्षस्वरूपस्य प्रतिविधानम् ।)

त्रिदण्डिनस्त्वाहुः आनन्दमयपरमात्मनि जीवात्मलयो मोक्ष इति । तत्र यदि परमात्मनि जीवात्मलयो नाम घ्राण-रसन-चक्षुः-श्रोत्र-स्पर्शाख्य-पञ्चज्ञानेन्द्रिय-वाक्पाणि-पाद-पायूपस्थ-लक्षणपञ्चकर्मेन्द्रिय-मनः-शब्द-स्पर्श-रूप-रस-गन्धतन्मात्रावस्थित-पृथिव्यप्-तेजो-वाय्वाकाशरूप-पञ्चभूतात्मकलिङ्गशरीरा-ऽपगमेन जीवात्मनः परमात्मत्वावाप्तिः, तर्हि सिद्धान्त एव, नामकर्म-क्षयेण स्याद्वादिभिरपि तत्स्वीकारात् । अथ यदि लयो नामोपाधिशरीरनाश औपाधिकजीवस्य नाश इति चेत्, न, जीवनाशस्य सर्वैः प्रेक्षावद्भिरकाम्यत्वेन तादृशमोक्षस्य पुरुषार्थत्वं न स्यात् । केषाञ्चिद् दुःखजर्जरितानां जीवनाशः काम्यत्वेन दृश्यत इति तु प्रेक्षावतां पर्षदि वक्तुं न युज्यते, अविवेकिनां तथाप्रवृत्तेः ।

किञ्च परमात्मनि परमब्रह्मस्फुल्लिङ्गकल्पजीवात्मलयो मोक्ष इत्यभ्युपगमे परमात्मन उपचय-प्रसङ्गः स्यात्, घृतादौ घृतान्तरप्रवेशवत्, अपि चोपचये सैव ब्रह्मसत्तेति वक्तुं न शक्यते, सत्तान्तरस्वीकारे च भवत्सिद्धान्तपरित्यागापत्तेः ।

(इति त्रिदण्डिमतानुयायिमोक्षस्वरूपखण्डनम् ।)

सौगतास्तु प्राहुः– निरुपप्लवा चित्तसन्ततिर्मोक्ष इति । उक्तञ्च

"चित्तमेव संसारो रागादिक्लेशवासितम् ।
तदेव तैर्विनिर्मुक्तं भवान्त इति कथ्यते ॥१॥" इति ।

अयं भावः–ज्ञानक्षणप्रवाहव्यतिरिक्तस्या-ऽऽत्मनोऽसम्भवात् कस्या-ऽनन्तज्ञानसुखादिस्व-भावत्वं संभवति ? मुक्तिस्त्वात्मदर्शिनो न भवत्येव, यतो य आत्मानं स्थिरत्वादिस्वरूपं पश्यति, तस्यात्मनि स्थिरत्वादिगुणदर्शनेन स्नेहो भवति, स्नेहाच्च सुखादिषु तृष्णाशीलः सन् सुखादिषु

तत्साधनेषु च दोषानुपेक्ष्य शुचित्वादिगुणानारोपयति । गुणांश्च पश्यन्'ममेद'मित्याद्यध्यवस्यन् सुखसाधनान्युपादत्ते,ततो यावदात्मदर्शनम् ,तावत् संसार एव। यदुक्तं प्रमाणवार्त्तिके श्रीधर्मकीर्त्तिना–

यः पश्यत्यात्मानं तत्राऽस्याहमिति शाश्वतः स्नेहः ॥ (१–२१९)
स्नेहात् सुखेषु तृष्यति तृष्णा दोषांस्तिरस्कुरुते ।
गुणदर्शी परितृष्यन् ममेति सुखसाधनान्युपादत्ते ॥ (१–२२०)
तेना-ऽऽत्माभिनिवेशो यावत् तावत् स संसारे ।
आत्मनि सति परसंज्ञा स्वपरविभागात् परिग्रहद्वेषौ ॥ (१–२२१)
अनयोः सम्प्रतिबद्धाः सर्वे दोषाः प्रजायन्ते ।" इति ।

तथा च तदीया श्रीमनोरथनन्दिकृता वृत्तिः–"यः पश्यत्यात्मानं तत्राऽऽत्मनोऽस्य द्रष्टुरहमिति शाश्वतो-ऽनपायी स्नेहो भवति । स्नेहाद्=आत्मस्नेहात्सुखेषु तृष्यति=तृष्णावान् भवतीति, तृष्णा च सुखसाधनत्वेनाऽध्यवसितानां वस्तूनां दोषानशुचित्वादीन् तिरस्कुरुते–प्रच्छादयति दोषतिरस्करणात् । गुणदर्शी–शुचित्वेनेष्टगुणान् पश्यन् परितृष्यन् ममेति='ममेदं सुख'मिति गच्छमानस्तस्य=सुखस्य साधनानि गर्भगमनादीन्युपादत्ते । तेना-ऽऽत्मदर्शनमूलत्वेन जन्मादेरात्माभिनिवेशो यावत्तावत् स=आत्मदर्शी संसार एव । न केवलं जन्मप्रबन्धस्तस्य दोषा अपि समस्ताः सन्तीत्याह–आत्मनि सति ततो-ऽन्यस्मिन् परसंज्ञा=परबुद्धिर्भवति । स्वपरविभागाच्च कारणात् स्वपरयोर्यथाक्रमं परिग्रहो–ऽभिष्वङ्गो द्वेषः=परित्यागस्तौ भवतः । अनयोरनुनयप्रतिषेधयोः सम्प्रतिबद्धाः सर्वे दोषा=रागमात्सर्येर्ष्यादयः प्रजायन्ते ।" इति ।

नैरात्म्यभावनातस्तु निरुपप्लवचित्तसन्ततिलक्षणो मोक्षो जायत एव ।

नन्ववच्छेदकतादिसम्बन्धेन ज्ञानं प्रति तादात्म्यादिना शरीरादेः कारणत्वाद् मुक्त्यवस्थायां शरीरादिनिमित्तकारणविरहे ज्ञानस्य सम्भव एव नास्तीति कुतश्चित्सन्ततेः सम्भवः ? इति चेत् मैवम् , यतो न ज्ञानं प्रति नैयायिकादिवत् शरीरादीनां कारणत्वमभ्युपगम्यते, किन्तु पूर्वपूर्वविज्ञानक्षणानामेवोत्तरोत्तरविज्ञानक्षणं प्रति कारणत्वम् । न च सुषुप्तौ ज्ञाना-ऽभावेन तदुत्तरं कारणविरहाद् ज्ञानसन्ततिर्व्यवच्छिद्येतेति वाच्यम् , तत्राऽपि ज्ञानस्य सत्त्वात् । न च सुषुप्तावस्थायां ज्ञानसद्भावे जाग्रदवस्थातो विशेषो न स्यात् , उभयत्राऽपि स्वसंवेद्यज्ञानस्य सद्भावा-ऽविशेषादिति वाच्यम् ,यतः सुषुप्तौ [१]मिद्धेना-ऽभिभूतत्वं ज्ञानस्या-ऽस्ति, अतो विशेषोऽस्त्युभयोरवस्थयोः । न च तया-ऽप्यभिभूतज्ञानक्षणतो रागद्वेषकलुषितज्ञानक्षणतश्च क्रमेण कथमनभिभूतज्ञानक्षणस्य रागद्वेषविनिर्मुक्तज्ञानक्षणस्य चोत्पत्तिः स्याद् ? इति वाच्यम् , पूर्वपूर्वज्ञानक्षणानां तत्तदतिशयवत्त्वेना-

(१) अतिजाड्येनातिनिद्रया वा ।

ऽविशिष्टादपि विशिष्टोत्पत्तेः स्वीकारात् । तथा-ऽविशिष्टात् सुप्तज्ञानक्षणतः सोपप्लवज्ञानक्षणतश्च क्रमेण विशिष्टं जाग्रज्ज्ञानं निरुपप्लवज्ञानं चोत्पद्यते ।

न च नैरात्म्यदर्शनभावनामुपगच्छतां सौगतानां निरन्वयविनश्वरचित्तसन्ततौ 'बद्धोऽहं मोक्ष्यामी'त्यादिकमुद्दिश्य यत्नो न स्यादिति वाच्यम् , अध्यवसायानुसारेणाऽपि यत्नात् ।

एतदुक्तं भवति न केवलं यथावस्त्वेव यत्नः, अपि तु यथाऽध्यवसायमपि । यथा रज्जुमपि सर्पत्वेनाऽध्यवस्यतस्तत्परित्यागः, तथैव बद्धोऽहं मोक्ष्यामीत्यादिव्यापारः स्यादेव । तथाहि—निरन्वयचित्तसन्तत्यामुत्तरोत्तरक्षणानामत्यन्तनानात्वे-ऽपि दृढतरैकत्वाध्यारोपेणा-ऽऽत्माभिसन्धानात् तस्य मिथ्याऽध्यारोपस्य व्यवच्छेदार्थमसत्यपि निरंशादिस्वमात्रे मोक्तर्यात्मनि नैरात्म्याभ्यासस्वरूपो यत्नः कर्तव्यः । यदुक्तं प्रमाणवार्तिके

मिथ्याध्यारोपहानार्थं यत्नो-ऽसत्यपि मोक्तरि ॥(१।१९४)

नैरात्म्यभावनालक्षणयत्नविरहे त्वात्माभिसन्धाना-ऽनिवृत्तेरिन्द्रियादिषूपभोगकारणत्वेन गृहीतेष्विन्द्रियादिष्वात्मीयबुद्धेर्निवारयितुमशक्यत्वात् स्नेहसद्भावेन वैराग्यस्याऽसम्भवात् कुतो मोक्षः ? यदुक्तं प्रमाणवार्तिके

उपभोगाश्रयत्वेन गृहीतेष्विन्द्रियादिषु ।
स्वत्वधीः केन वार्येत वैराग्यं तत्र तत्कृतः ॥१॥ (१।२२९)

नन्विन्द्रियादिषु नोपभोगाश्रयत्वबुद्धिनिबन्धनस्वत्वबुद्धित आत्मीयस्नेहो जायते , येनाऽयं दोषो भवेत् , किन्तु तत्र गुणदर्शनत आत्मीयस्नेहः प्रभवति,अतस्तद्विरुद्धे दोषदर्शने स्नेहनिवृत्तितो वैराग्यमुपपद्यते । इन्द्रियादिषु च दोषदर्शनं स्वयमेव भाव्यम् । एवं वैराग्योपपत्तेर्मुक्तिरप्युपपन्नेति चेत् , न, यत उपभोगाश्रयत्वबुद्धिनिबन्धनस्वत्वबुद्धित एव स्नेहस्याऽऽविर्भावोऽभ्युपगन्तव्यः । यथा-ऽऽत्मीयचक्षुरादिषु काणत्वादिदोषदर्शने-ऽपि स्नेहस्याविर्भावः, परकीयेषु चक्षुरादिषु गुणदर्शनेऽपि स्नेहाभावः । आत्मीयेष्वप्यतीतेषु स्वदेहच्युतेषु चाऽङ्गावयवेषु गुणदर्शनेऽप्यात्मीयबुद्धिपरित्यागाद् न स्नेहो भवति । तस्मादुपभोगाश्रयत्वबुद्धिनिबन्धनस्वत्वबुद्धितः स्नेहो भवति । ततश्च वैराग्यव्याहतिः, तद्व्याहतेश्च कुतो मोक्षः ?

न च तद्भावनाऽभावेऽपि कायक्लेशलक्षणतपसः सकलकर्मप्रक्षयाद् मोक्षो भविष्यति, किं नैरात्म्यभावनया ? इति वाच्यम् , यतः कायक्लेशस्य कर्मफलत्वेन नारकादिकायसन्तापवत् तपस्त्वमनुपपन्नम् । किञ्च विचित्रशक्तिकं कर्म भवति,अन्यथा विचित्रसुखदुःखप्रदानाद्यनुपपत्तिः स्यात् । तच्च कथमेकस्मात् कायक्लेशमात्रात् क्षयं गच्छेत् , अतिप्रसङ्गात् ? यदुक्तं प्रमाणवार्त्तिके

फलवैचित्र्यदृष्टेश्च शक्तिभेदो-ऽनुमीयते ।
कर्मणां तापसंक्लेशात् नैकरूपात् ततः क्षयः ॥''(२-२७५) इति ।

न च तपः कर्मशक्तीनां संकरेण क्षयकरणशीलमिति कृत्स्नैकरूपादपि तपसो विचित्रशक्तिकानां कर्मणां क्षय इति वाच्यम्, एवमभ्युपगमे स्वल्पक्लेशेनैवैकोपवासादिना-ऽप्यशेषस्य कर्मणः क्षयापत्तिः, अन्यथा शक्तिसाङ्कर्या-ऽनुपपत्तिः, अन्यत्रा-ऽप्युक्तम्—

"कर्मक्षयाद्धि मोक्षः स च तपसस्तच्च कायसन्तापः ।
कर्मफलत्वान्नारकदुःखमिव कथं तपस्तत् स्यात् ॥१॥
अन्यदपि चैकरूपं तच्चित्रक्षयनिमित्तमिह न स्यात् ।
तच्छक्तिसंकरक्षयकारीत्यपि वचनमात्रं तु ॥२॥
अक्लेशात् स्तोकेऽपि क्षीणे सर्वक्षयप्रसङ्गो यत् ।" इति ।

तस्माद् नैरात्म्यभावनाप्रकर्षविशेषतो निरुपप्लवा चित्तसन्ततिर्मोक्ष इति स्थितम् ।

अथ प्रतिविधीयते [1]यत् तावदुक्तम्—'ज्ञानक्षणप्रवाह०' इत्यादि, तदविचारिताऽभिधानम्, ज्ञानक्षणप्रवाहव्यतिरिक्तं मौक्तिककणनिकरानुस्यूतैकसूत्रकल्पमन्वयिद्रव्यमात्मानमन्तरेण कृतनाशा-ऽकृता-ऽऽगमादिदोषप्रसङ्गात् स्मरणाद्यनुपपत्तेश्च ।

एतदुक्तं भवति बौद्धास्तावज्ज्ञानक्षणपरम्परामात्रमेवात्मानं मन्यन्ते, न तु मुक्ताफलजाता-ऽनुस्यूतैकसूत्रकल्पमेकमन्वयि द्रव्यम् । अतस्तन्मते पूर्वज्ञानक्षणेन यत् सदनुष्ठानम्, असदनुष्ठानं वा कृतम्, तत्फलं न भुङ्क्ते पूर्वज्ञानक्षणः, तस्य निरन्वयविनष्टत्वात् । उत्तरक्षणेन च फलोपभोगस्वीकारे-ऽकृताऽऽगमः, तेन स्वयं तादृशानुष्ठानाकरणे-ऽपि तत्फलस्योपभोगात् ।

अथ संसारभङ्गदोषः—पूर्वकर्मानुसारेणैव जन्मान्तरं भवति । पूर्वज्ञानक्षणानां तु निरन्वयविनाशाद् न तेषां कश्चिदप्यभिसम्बन्ध उत्तरज्ञानक्षणैः सह । अतः केनोपभुज्यते पूर्वकर्माणि जन्मान्तरे ? तदुपभोगाऽभावे च किं जन्मान्तरम् ? तदभावे च संसारविलोपापत्तिः ।

मोक्षभङ्गदोषः—अपुनर्भावेन कर्मबन्धनाद् विमुक्तिर्मोक्षपदार्थः, स च बौद्धमते न घटते, आत्मन एवा-ऽभावात् । तथाहि—बौद्धमते-ऽन्वयिद्रव्यमात्मैव नास्ति, ततश्च कः प्रेत्य सुखीभवनाय यतिष्यते । संसारी ज्ञानक्षणः कथमपरज्ञानक्षणसुखाय यतिष्यते, ? न हि दुःखी देवदत्तो यज्ञदत्तसुखाय चेष्टमानो दृष्टः, क्षणस्य तु दुःखं स्वरसविनाशित्वात् तेनैव सार्धं ध्वस्तम् । न च सन्तानेन पूर्वोत्तरक्षणेषु सुख-दुःखाद्युपपत्तिरिति वाच्यम्, सन्तानस्या-ऽवास्तवत्वात्, वास्तवत्वे तु संज्ञान्तरेणा-ऽऽत्मन एवा-ऽभ्युपगमप्रसङ्गात् ।

अथ स्मृत्यनुपपत्तिः,—पूर्वबुद्ध्यनुभूते-ऽर्थे नोत्तरबुद्धीनां स्मृतिः सम्भवति, ततो-ऽन्यत्वात्, सन्तानान्तरबुद्धिवत् । न ह्यन्यदृष्टो-ऽर्थो-ऽन्येन स्मर्यते, अन्यथैकेन दृष्टो-ऽर्थः सर्वैः स्मर्येत । स्मरणा-ऽभावे च कौतस्कुती प्रत्यभिज्ञाप्रसूतिः, तस्याः स्मरणा-ऽनुभवयोरुभयोः सतोरेव सम्भवात् ।

(१) पृ० ५३८ प० २७

पदार्थदर्शनप्रबोधितप्राक्तनसंस्कारस्य हीन्द्रियव्यापारवतः प्रमातुः 'स एवा-ऽयमि'त्याकारेण प्रत्यभिज्ञा समुत्पद्यते ।

ननु स्यादयं दोषः, यद्यविशेषेणा-ऽन्यदृष्टं परः स्मरतीत्युच्येता-ऽस्माभिः । अस्मत्कथनं त्वेवम् स्मरणक्षणस्याऽनुभवकारिक्षणेन सह कार्यकारणभावस्वीकारात् स्मृतिरुपपद्यते । तत्रैकसन्तानपतितानां क्षणानां तदुत्पत्तिसम्बन्धेन सम्बद्धानां पूर्वोत्तरक्षणयोर्हेतुहेतुमद्भावो निर्विवादः । तथा चानुभूतविज्ञानक्षणस्य स्वसन्तानेऽनुभवात्मकस्मृतिबीजाधायकत्वम् । अतो ना-ऽनुपपत्तिः स्मरणस्य, कालान्तरे स्मृत्यात्मककार्योत्पत्तेः । तदुक्तं बोधिचर्यावतारपञ्जिकायाम्—"कार्यकारणभावप्रतिनियमादेव स्मृत्यभावो-ऽपि निरस्तः । एकस्यानुगमात्मनो-ऽभावात् न स्मर्ता कश्चिदिह विद्यते, किं तर्हि ? स्मरणमेव केवलमारोपवशात् स्मर्यमाणवस्तुविषयम् । न च अत्र स्मर्तुरभावेऽपि कश्चिद् व्याघातः । अनुभूते हि वस्तूनि विज्ञानसंताने स्मृतिबीजाऽऽधानात् कालान्तरेण संततिपरिपाकहेतोः स्मरणं नाम कार्यमुत्पद्यते ।' इति चेत्, न, यतस्तादृशान्यत्वस्याऽपरान्यत्वाऽविशेषात्, भवन्मते कारणस्य निरन्वयनाशाच्च कार्यस्येतरस्य च कारणेन सह समानरूपेणात्यन्तासम्बद्धत्वम् । फलतः कार्यवदितरस्यापि स्मरणत्वापत्तिः, इतरवद् वा कार्यस्याऽपि स्मरणत्वानुपपत्तिस्तदवस्थैव ।

अपि चानुभवक्षणस्य निरन्वयनाशात् तत्सन्ताने स्मृतिबीजाधानानुपपत्तिरेव, अन्यथा तत्सन्तान इतरसन्तानयोरनुभवक्षणासम्बद्धत्वाविशेषेणेतरसन्ताने कथं स्मृतिबीजाधानस्य नापत्तिः ?

अपि च कार्यकारणभावात् स्मृतिरित्यत्र न कश्चिद् वादिप्रतिवादिप्रसिद्धो दृष्टान्तो-ऽस्ति ।

ननु यथा रक्तकर्पासबीजे उप्ते फलं रक्तवर्णं लभ्यते, तथैव यस्मिन् सन्ताने वासनाऽधिवसति, तत्रैव कर्मवासनायाः फलं भवति । यदुक्तम्

"यस्मिन्नेव हि संताने आहिता कर्मवासना ।
फलं तत्रैव संधत्ते कर्पासे रक्तता यथा ॥१॥" इति ।

तदेवं सन्तानेऽनुभव-स्मरणयोरैकाधिकरण्यमिति चेत्, न, यत एतत् सर्वमप्यसुन्दरम्, साधनदूषणयोरसम्भवात् । तद्यथा—अन्वयाद्यसम्भवाद् न साधनम्, नहि 'यत्र यत्र कार्यकारणभावः, तत्र तत्र स्मृतिः, कर्पासे रक्ततावदि'त्यन्वयः सम्भवति, ना-ऽपि 'यत्र यत्र स्मृत्यभावः, तत्र तत्र न कार्यकारणभावः' इति व्यतिरेकः ।

'यत्र यत्रा-ऽन्यत्वम्, तत्र तत्र न स्मृतिरि'त्यत्र चासिद्धयाद्युद्भावनाद् न दूषणम् । न हि 'तनो-ऽन्यत्वात्' इति हेतोः कर्पासे रक्ततावदित्यनेन कश्चिद् दोषः प्रतिपाद्यते, भवन्मते कर्पासस्याऽपि क्षणिकत्वेन कालभेदेन तस्या-ऽन्यत्वात् ।

किञ्च यद्यन्यत्वे-ऽपि कार्यकारणभावात् स्मृतेरुत्पत्तिरिष्यते, तदा शिष्या-ऽऽचार्यादिबुद्धीनामपि कार्यकारणभावसद्भावेन स्मृत्यादिप्रसङ्गः, न चैकसन्तानत्वे सतीति विशेषणाद् नोक्तप्रसङ्ग इति वाच्यम्, भेदा-ऽभेदपक्षाभ्यां तस्योपेक्षणात्। तथाहि–क्षणपरम्परातस्तस्या-ऽभेदे हि क्षणपरम्परैव सः। तथा च सन्तान इति न किञ्चिदतिरिक्तमुक्तं स्यात्। भेदे तु किं पारमार्थिको-ऽपारमार्थिको वा-ऽसौ भेदः? अपारमार्थिकत्वेऽस्य तदेव दूषणम्, अकिञ्चित्करत्वात्।

पारमार्थिकत्वे किं स्थिरो वा क्षणिको वा? क्षणिकत्वे सन्तानिनिर्विशेषो-ऽयम्। स्थिरश्चेत्, आत्मैव संज्ञान्तरेण प्रतिपन्न इति।

एवं स्मृतिर्न घटतेऽन्वयिद्रव्या-ऽऽत्मभावे।

अपि च स्मृत्यभावे निहितप्रत्युन्मार्गणप्रत्यर्पणादिव्यवहाराणां लोपः स्यात्।

[1]यच्चोक्तं "**मुक्तिस्तत्त्वात्मदर्शिनो न भवत्येव, यतो य आत्मानं स्थिरत्वादिरूपं पश्यति**" इत्यादि, तत् सत्यम्, किन्त्वज्ञो जनो यः स्वं स्थिरं मन्यमानो दुःखानुषक्तं च साधनं स्थिरसुखसाधनत्वेन पश्यन् मोहात् सांसारिकेषु सुखसाधनेषु प्रवर्तते, अपथ्यादौ मूर्खाऽऽतुरवत्, तस्यैव मुक्तिर्न भवति, यस्तु हिताहितविवेकज्ञोऽतात्त्विक-तादात्विकसुखसाधनं स्त्र्यादिकं परित्यज्यात्मस्नेहात् तात्त्विका-ऽऽत्यन्तिकसुखसाधने मोक्षमार्गे प्रवर्तते, पथ्यादिषु चतुरातुरवत्, तस्य मुक्तिर्निष्प्रत्यूहैव। उक्तञ्च

"**तदात्वसुखसंज्ञेषु भावेष्वज्ञोऽनुरज्यते।**
हितमेवानुरुध्यन्ते प्रपरीक्ष्य परीक्षकाः॥१॥" इति।

[2]यच्च "**पूर्वपूर्वविज्ञानक्षणानामेवोत्तरोत्तरविज्ञानक्षणं प्रति कारणत्व**"मित्युक्तम्, तदप्यन्वयिद्रव्यस्वीकृत्यैवोपपन्नम्, अन्वयिद्रव्याऽस्वीकारे तु बन्धमोक्षादिव्यवस्थाऽपि नोपपद्यते। निरन्वये हि चित्तसन्ताने-ऽन्यो बद्धः, अन्यश्च मुच्यत इत्यापद्यते। अथ सन्तानैक्याद् बद्धस्यैव मुक्तिः? इति चेत्, न, यतो यदि सन्तानोऽक्षणिकपरमार्थसन्, तदा-ऽऽत्मैव सन्तानशब्देन प्रोक्तः, अथ संवृतिसन्, तदा सन्तानस्य परमार्थासत्त्वाद् 'अन्यो बद्धोऽन्यश्च मुच्यते' इति तदवस्थम्। ततश्च बद्धस्य मुक्त्यर्थः प्रयासो न स्यात्।

[3]यच्च "**पूर्वपूर्वज्ञानक्षणानां तत्तदतिशयवत्त्वेन**"इत्याद्युक्तम्, तदपि कथमुपपद्येत, यद्यतिशया-ऽऽधायकत्वेना-ऽवस्थितमन्वयिद्रव्यं न स्वीक्रियेत? न च सन्ताना-ऽपेक्षया–ऽतिशयो युक्त इति वाच्यम्, तस्यैवा-ऽवास्तवत्वात्।

[4]यच्च "**निरन्वयचित्तसन्तत्यामुत्तरोत्तरक्षणानामत्यन्तनानात्वे-ऽपि दृढतरै-**

(१) पृ० ५३८ पं० २८ (२) पृ० ५३९ पं० २४ (३) पृ० ५३९ पं० ३० (४) पृ० ५४० पं० ८

ज्ञानात् प्रलपितम्, यतो न सुरूपत्वादिगुणदर्शनेन स्नेहो भवतीत्यस्माभिरिष्यते, किन्तूपभोगाश्रयेषु तादात्विकसुखाख्यगुणदर्शनात् स्नेहो भवति। विवेकिनां चोपभोगाश्रयेषु दुःखहेतुत्वाख्यमात्यन्तिकं दोषं पश्यतां नोपभोगाश्रयेषु तादात्विकसुखाख्यस्य गुणस्य दर्शनमस्ति। तेन तन्निबन्धनस्नेहस्य व्यावृत्तेः कथं दोषदर्शनं स्नेहस्य बाधकं न स्यात्?

ननु तद्दोषं पश्यतां यद्यपि तत्कालेऽनुरागिणी मतिश्चलिता, तथापि तत्रासौ नैव सर्वथा विरक्तः, पुनस्तद्गुणलेशदर्शनेनाऽनुरागसम्भवात्। यदुक्तं प्रमाणवार्तिके—

यद्यप्येकत्र दोषेण तत्क्षणं चलिता मतिः॥ (१।२४१)
विरक्तो नैव तत्राऽपि कामीव वनितान्तरे।"

इति चेत्, न, अज्ञ एव ह्युपभोगाश्रयेषु तादात्विकदुःखहेतुत्वाख्यस्य दोषस्य दर्शनेन विरक्तः सन् तादात्विकसुखहेतुत्वाख्यस्य गुणस्य दर्शनात् पुनरनुरज्यते। हेयोपादेयतत्त्वज्ञस्तु दुःखहेतुत्वाख्यस्याऽऽत्यन्तिकदोषस्य दर्शनेन विरक्तो न तादात्विकसुखहेतुत्वाख्यस्य तादात्विकगुणस्य दर्शनात् पुनस्तत्रानुरज्यते, आत्यन्तिकसुखसाधनेषु तस्यात्यन्तिकसुखहेतुत्वाख्यगुणदर्शनसद्भावेन तादात्विकगुणदर्शनविरहात्।

नन्पभोगाश्रयेष्विन्द्रियादिषु दुःखहेतुत्वं पश्यन् विरज्यतेऽसौ, तर्ह्यात्मन्यपि विरज्यताम्, दुःखहेतुत्वस्य तत्राऽप्यविशेषात्। तत्रा-ऽविरागे त्वन्यत्रा-ऽपि न विरज्येत, विशेषा-ऽभावादिति चेत्, उच्यते—किमेतदज्ञमात्मानं प्रतीत्य भण्यते? उत प्राज्ञम्? यदि प्रथमपक्षः, तर्हि विरज्यत एव, हेयोपादेयतत्त्वज्ञानविकलानां दुःखहेतौ स्वात्मनि वैराग्यात् स्वात्मघातादौ प्रवृत्तेः। अथ द्वितीयः पक्षश्चेत्, तर्हि हेयोपादेयतत्त्वज्ञा न विरज्यन्ते, यतस्तैस्तत्र न दुःखहेतुत्वं प्रतिसन्धीयते, किन्त्वात्यन्तिकसुखहेतुत्वमभिसन्धीयते।

[1]यच्चोक्तं "कायक्लेशस्य कर्मफलत्वेन" इत्यादि, तदप्यचर्चिता-ऽभिधानम्, हिंसादिविरतिरूपव्रतोपबृंहकस्य कायक्लेशस्य कर्मफलत्वे-ऽपि तपस्त्वा-ऽविरोधात्। व्रता-ऽविरोधी हि कायक्लेशः कर्मनिर्जराहेतुत्वात् तपो-ऽभिधीयते। न चैवं नारकादिकायक्लेशस्य तपस्त्वप्रसङ्ग इति वाच्यम्, तस्य हिंसाद्यावेशप्रधानतया तपस्त्वविरोधात्। अतः प्रेक्षावतां नारकक्लेशेन समानता मुमुक्षुकायक्लेशस्या-ऽऽपादयितुं न शक्या।

यच्च शक्तिसङ्करपक्षे "[2]स्वल्पक्लेशेनैवै०" इत्यादि प्रोक्तम्, तत् सत्यमेव, विचित्रकर्मफलदानसमर्थानां कर्मणां शक्तिसङ्करे सति सूक्ष्मसम्परायचरमसमये क्षीणमोहान्त्यसमये-ऽयोगिकेवलिचरमसमये वा-ऽपलेशतः स्वल्पेनैव ध्यानरूपेण तपसा प्रक्षया-ऽभ्युपगमात्। किन्तु निरुक्तशक्तिसङ्करो बहुतरकायक्लेशसाध्य इति युक्तस्तदर्थोऽनेकविधोपवासादिकायक्लेशाद्यनुष्ठानप्रयासः, तमन्तरेण तत्सङ्करा-ऽनुपपत्तेः।

(१) पृ० ५४० पं० २६। (२) पृ० ५४१ प० ३।

अपरे पुनराहुः—प्रदीपनिर्वाणवत् सर्वथा ज्ञानसन्तानोच्छेदो मोक्ष इति । प्रमाणञ्चा-ऽत्र खड्गिनो निराश्रवं चित्तं नोपादेयक्षणमारभते; सहकारिरहितत्वात् ,तादृशदीपशिखावदिति । इह खड्गिशब्देन प्रत्येकबुद्धो ग्राह्यः ।

अथ प्रतिविधीयते—बौद्धमते विनाशस्य निर्हेतुकत्वस्वीकाराद् उक्तस्वरूपमोक्षा-ऽभ्युपगमे मोक्षोपायस्य वैयर्थ्यप्रसङ्गः ।

यच्च "**खड्गिनो निराश्रवम्**" इत्याद्यनुमानप्रमाणमुपन्यस्तम्, तदसङ्गतम् , बुद्धचित्तेन हेतोरनेकान्तात् । हितैषित्वा-ऽभावे सतीति विशेषणोपादानाद् न व्यभिचार इति चेत् , न,हितैषित्वा-ऽभावस्या-ऽसिद्धत्वात् । समानं हि हितैषित्वं खड्गि-सुगतयोरात्म-जगद्विषयम् । ननु जगद्विषयहितैषित्वाऽभावे सतीति विशेषणमुपादेयम् , खड्गिनि तु जगद्विषयहितैषित्वाभावोऽस्त्येव, तस्या-ऽऽत्ममात्रविषयहितैषित्वात् , ततश्च न व्यभिचार इति चेत् , मैवम् , यतः सुगतस्य कृत-कृत्येषु हितैषित्वाभावेन तस्या-ऽपि सकलजगद्विषयहितैषित्वविरहाद् न व्यभिचारस्य परिहारः । कृतकृत्येष्वपि हितैषित्वाऽभ्युपगमे तु कृतकृत्यत्वव्याघातप्रसङ्गः । न च देशतः कृतकृत्येषु सुग-तस्य हितैषित्वमस्ति,खड्गिनस्तु नेति वाच्यम्,खड्गिनोऽप्युत्तरेषु स्वचित्तेषु हितैषित्वस्योपलम्भात् । इत्थं खड्गिनो न हितैषित्वाभावः सिद्धः ।

नापि चरमत्वविशेषणं देयमिति वाच्यम् , तस्या-ऽप्यसिद्धत्वात् प्रमाणाऽभावाच्च । ननु निराश्रवं खड्गिचित्तं चरमम् , स्वोपादेया-ऽनारम्भकत्वात् , वर्त्तिस्नेहादिशून्यप्रदीपादिक्षणवदिति चेत् ,न,अन्योन्याश्रया-ऽऽपत्तेः । तथाहि—सिद्धे सति हि तस्य स्वोपादेया-ऽनारम्भकत्वे चरमत्वस्य सिद्धिः, चरमत्वसिद्धौ च स्वोपादेयानारम्भकत्वसिद्धिः ।

किञ्चा-ऽन्त्यचित्क्षणस्यार्थक्रियाकारित्वविरहेऽवस्तुत्वप्रसङ्गः, '**यत् सत् , तत् करोती**'ति स्वीकारात् । अन्त्यचित्क्षणस्या-ऽवस्तुत्वे च तज्जनकस्योपान्त्यचित्क्षणस्याऽप्यवस्तुत्वप्रसङ्गः, अवस्तु-जनकत्वात् , ततस्तज्जनकस्येत्येवं निःशेषचित्सन्तानस्या-ऽवस्तुत्वप्रसक्तिः ।

न च स्वसन्तानवर्तिचित्क्षणस्या-ऽजनकत्वे-ऽपि सन्तानान्तरवर्तियोगिज्ञानस्य जननाद् ना-ऽशेषस्य चित्सन्तानस्या-ऽवस्तुत्वप्रसक्तिरिति वाच्यम् ,रसादेरेककालस्य रूपादेरव्यभिचार्यनुमा-नामावप्रसङ्गाद् । एतदुक्तं भवति—यथा-ऽन्त्यचित्क्षणस्य सजातीयकार्या-ऽजनकत्वे-ऽपि विजातीय-योगिज्ञानजनकत्वमभ्युपगम्यते, तथैव रूपादेः सजातीयरूपाद्याख्यकार्या-ऽजनकत्वेऽपि विजातीय-रसादिलक्षणकार्यस्य जनकत्वमभ्युपगन्तव्यम् । ततश्च तमस्विन्यामाम्रफलरसा-ऽऽस्वादनाद् रूपानुमानमव्यभिचारि न स्यात् । तथा-ऽनभ्युपगमे तु न विरुध्यते-ऽव्यभिचार्यनुमानम् , एक-सामग्र्यधीनत्वेन रूपरसयोर्नियमेन रूपरसलक्षणकार्यद्वयजननात् । स्वीक्रियते च भवता रसा-ऽऽ-स्वादनादव्यभिचारि रूपानुमानम् । ततश्चैकसामग्र्यधीनत्वेन रूपरसयोर्नियमेन कार्यद्वया-ऽऽरम्भ-

कत्वाध्यारोपेणात्माभिसन्धानात्" इत्याद्युक्तम्, तदपि वचनमात्रम् । एवमभ्युपगते कुतो नैरात्म्यदर्शनम् ? अथा-ऽस्ति शास्त्रसंस्कारजमिति चेत्, तर्हि नैकत्वाध्यवसायो-ऽस्खलद्रूपः, ततः कुतो मुक्त्यर्थं प्रवृत्तिः ? किञ्चा-ऽसति पूर्वोत्तरज्ञानक्षणव्यापकेऽन्वयिनि द्रव्य आत्मनि स्वसंविदितैकत्वप्रत्ययस्य प्रत्यक्षस्या-ऽनुपपत्तिः स्यात् । अथाऽसत्यप्यात्मन्यारोपितैकत्वविषयः प्रत्ययः प्रादुर्भविष्यतीति चेत्, न, यतः स्वात्मनि 'यत् सत्, तत् क्षणिक'मित्यनुमानात् क्षणिकत्वं निश्चिन्वतः समारोपितैकत्वविषयकविकल्पस्वरूपप्रत्ययस्य निवृत्तिप्रसङ्गः, निश्चया-ऽऽरोपमनसोर्विरोधात् । निवर्तत एवा-ऽऽरोपितैकत्वमिति चेत्, तर्हि [1]सहजस्या-[2]ऽऽभिसंस्कारिकस्य चात्मदर्शनस्या-ऽभावात् तदैव तन्मूलरागादिनिवृत्तितो मोक्षः स्यात् । न चायमेकत्वविषयः प्रत्ययः प्रतिसंख्यानेन निवर्त्तयितुमशक्यत्वान्मानसो विकल्पः । तथाहि- अनुमानबलात् क्षणिकत्वं विकल्पयतोऽपि नैकत्वप्रत्ययो निवर्तते, प्रत्यक्षबुद्धित्वात् । शक्यन्ते तु प्रतिसंख्यानेन निवारयितुं कल्पनाः, न पुनः प्रत्यक्षबुद्धयः । ततो यथा-ऽश्वं विकल्पयतो-ऽपि गोदर्शनाद् न गोप्रत्ययात्मको विकल्पः, तथा क्षणिकत्वं विकल्पयतोऽप्येकत्वदर्शनाद् नैकत्वप्रत्ययात्मकविकल्पः । न चा-ऽयं प्रत्ययो भ्रान्तः, भ्रान्तत्वे तु सकलस्या-ऽपि प्रत्यक्षस्य भ्रान्तत्वप्रसङ्गः, बाह्या-ऽभ्यन्तरेषु भावेष्वेकत्वग्राहकत्वेनैवा ऽशेषप्रत्यक्षाणां प्रवृत्तिप्रतीतेः । ततश्च प्रत्यक्षस्याऽभ्रान्तत्वविशेषणं यदुक्तम्, तदसंभाव्येव स्यात् । तदेवमेकत्वग्राहिणः स्वसंवेदनप्रत्यक्षस्या-ऽभ्रान्तस्य कथञ्चिदेकत्वमन्तरेण नोपपत्तिः तेन नैकत्वाभावः ।

किञ्चा ऽनुभूयमानस्या-ऽप्येकत्वस्या-ऽनेकत्वेन सह विरोधाभ्युपगमे ग्राह्यग्राहकसंवित्तिलक्षणविरुद्धरूपत्रयाध्यासितज्ञानस्यैकत्वविरोधः स्यात्, एकनीलाद्यर्थक्षणस्या-ऽपि चैकदा स्वपरकार्यजनकत्वाजनकत्वलक्षणविरुद्धधर्मद्वया-ऽध्यासितस्यैकत्वविरोधः प्रसज्येत ।

[3]यच्च "नैरात्म्याभ्यासादिरूपो यत्नः कर्त्तव्यः" इत्युक्तम्, तदपि न सङ्गतम्, नहि नैरात्म्या-ऽभ्यासोऽपि कालान्तरा-ऽवस्थाव्यनुसन्धातारं विनोपपद्यते ।

तथा यो हि निगडादिभिर्बद्धः, तस्यैव मोक्षकारणपरिज्ञाना-ऽनुष्ठानाऽभिसन्धिव्यापारे सति मोक्ष इत्यैकाधिकरण्ये सत्येव बन्धमोक्षव्यवस्था लोके प्रसिद्धा । इह त्वन्यः क्षणो बद्धः, अन्यस्य च मुक्तिकारणपरिज्ञानम्, इतरस्य चा-ऽनुष्ठाना-ऽभिसन्धिर्व्यापारश्चेति वैयधिकरण्यात् सर्वमयुक्तम् ।

किञ्च सर्वो-ऽपि प्रेक्षापूर्वकारी 'किञ्चिदिदमतो मम स्यात्' इत्यनुसन्धानेनैव प्रवर्तते । इह च कस्तथाविधो मार्गा-ऽभ्यासे प्रवर्त्तमानो 'मोक्षो मम स्यादि' त्यनुसन्दध्यात्– किं क्षणः ? सन्तानो वा ? न तावत् प्रथमपक्षः, तस्यैकक्षणस्थायित्वेन निर्विकल्पतया चैतावतो व्यापारान्

(१) भ्रान्तजनसम्बन्धिन । (२) पण्डितजनसम्बन्धिनः । (३) पृ० ५४०_पं० १ ।

र्तुमसमर्थत्वात् । नाऽपि द्वैतीयिकः पक्षः, तस्य सन्तानिव्यतिरिक्तस्य सौगतैरनभ्युपगमात् ।

किञ्चैकान्ता-ऽनित्यत्वे वस्तुनोऽर्थक्रियाकारित्वविरहाद् नैरात्म्यभावना मिथ्यारूपैव । मिथ्याज्ञानस्य च न सौगतैरप्यभ्युपगम्यते निःश्रेयसहेतुत्वम् ।

किञ्च निरन्वयविनश्वरत्वाभ्युपगमे मोक्षार्थः प्रयासो व्यर्थ एव स्यात्, तथाहि- रागाद्युपरमो हि भवन्मते मोक्षः, तत्र यद्युपरमो नाम रागादिक्षणविनाशः, तदा स निर्हेतुकतया-ऽयत्नसिद्धः, तेन तदर्थो-ऽनुष्ठानादिप्रयासो व्यर्थ एव स्यात् ।

अथ रागाद्युपरमो नाम भाविरागादिक्षणस्या-ऽनुत्पादः, स च साध्यो-ऽनुष्ठानादिनेति न वैयर्थ्यमनुष्ठानादीनामिति चेत्, न, उत्पादाभावो ह्यनुत्पादः, तस्याप्यभावरूपत्वात् कथमनुष्ठानादिनोत्पत्तिः ? एतेन सन्तानोच्छेदस्तदनुत्पादो वा मोक्ष इत्यपि प्रत्युक्तम्, क्षणोच्छेदा-ऽनुत्पादवत् सन्तानोच्छेदा-ऽनुत्पादयोरप्यभावरूपत्वेन कुतश्चिदुत्पत्तेरनुपपत्तेः ।

[1]यच्च "उपभोगाश्रयत्वेन गृहीतेषु" इत्याद्युक्तम्, तदप्यविचारिताभिधानम्, हेयोपादेयतत्त्वज्ञा ह्यात्यन्तिकसुखसाधनमुपभोगाश्रयमात्मीयं चा-ऽभिमन्यन्ते, न तादात्विकसुखसाधनम्, ते हि विवेकिन एवं भावयन्ति– इदं राज्यादिकं न सुखाय भवति, यतो-ऽनेके लुण्टाकाः शत्रवो राज्यमाक्रामन्ति, तद्वारणचिन्ता चाहर्निशं भवति । तदेवं राज्यं नैहिकसुखाय भवति । नाऽपि राज्येन पारलौकिकं सुखं भवति, राज्योपभोगनिमित्तका-ऽशुभकर्मोपार्जनेन नरकगत्यादौ गमनात् । ना-ऽपि तरलताराक्षी कामिनी सुखाय भवति, यतः कामिन्याः प्रीतिः स्वपतिं प्रत्यपि मरुद्धूतध्वजाऽञ्चलवद् चपला । चपलत्वाच्च प्रीतेर्यस्मिंस्तस्या अनुरागः, स्वार्थव्याघाते तस्यैवोपघाताय यतते सा । अपि च दन्तच्छदच्छद्मना पिशितं वितन्य मत्स्यान् इव मनुष्यादीन् नरकादिदुर्गतिजाले पातयति । तेन स्त्रीरपि नैहिकपारलौकिकसुखाय भवति ।

मुक्तिरमणी तु रत्नत्रयसाध्या नित्यानन्दमयी, यत्र कदाचिदपि दुःखकणिका न भवतीति ।

एवं भावयतां तेषां राज्ययोषित्प्रमुखेषु दुःखहेतुषु सुखलेशसाधनत्वसद्भावे-ऽप्यन्यदात्यन्तिकसुखसाधनं रत्नत्रयं पश्यतां कुतस्तेष्वात्मीयबुद्धिः, यतस्ततो निवृत्तिर्न स्यात् ।

ननु तथापि लेशतः सुखहेतुत्वस्याऽपि तत्र सम्भवेन दुःखहेतुत्वे यावतां-ऽशेन सुखहेतुता, तावतां-ऽशेनेन्द्रियादीन् स्वोपकारकान् मन्यमानस्तेष्वात्मीयबुद्धिं न परित्यजतीति चेत्, न, तेषां सुखलेशसाधनत्वज्ञानेना-ऽन्यस्य चात्यन्तिकसुखसाधनस्य निर्विपाऽन्नस्यैव दर्शनेन सुखलेशसाधनस्य विषयुक्तक्षीरादिवत् परित्यागात् ।

[2]यच्चोक्तम् "काणत्वादिदोषदर्शनेऽपि" इत्यादि । तदप्यस्मदभिप्रायाऽनभि-

(१) पृ० ५४० प० १५ (२) पृ० ५४० पं० २१ ।

कत्वमुररीकर्तव्यम् ,तथा-ऽभ्युपगते च समानकारणसामग्रीजन्यत्वेना-ऽन्त्यचित्क्षण-योगिज्ञानक्षणयो-रपि कार्यद्वया-ऽऽरम्भकत्वं कुतो न स्यात् ? स्यादेवेत्यर्थः । अपि च कथं सजातीयकार्ये-ऽनुपयोगि-नश्चरमज्ञानक्षणस्य विजातीयकार्ये भवत्युपयोगः ? तस्मान्न ज्ञानसन्तानोच्छेदो मोक्षः,किन्त्वनन्त-ज्ञानादिस्वरूपः ।

(इति सौगता-ऽभिमतमोक्षस्वरूपप्रतिविधानम् ।)

अन्ये पुनराहुः—स्वातन्त्र्यं मोक्ष इति । तत्र यदि स्वातन्त्र्यं प्रभुता, तदा मदः । अथ चेत् कर्मनिवृत्तिः,तदा-ऽस्माकमेव सिद्धान्तः,व्यवहारनयेन कर्मक्षयस्य मोक्षत्वेन प्रतिपादितत्वात्[1] ।

चार्वाकास्तु—आत्महानं मोक्ष इत्याहुः, तन्न, यतो वीतरागजन्मा-ऽदर्शनन्यायेना-ऽऽत्मनो नित्यत्वं सिद्धम् , नित्यत्वेन च सिद्धस्या-ऽऽत्मनः सर्वथा हातुमशक्यत्वम् । पर्यायार्थतया त्वात्महानेऽप्यात्महानस्या ऽनुद्देश्यत्वम् ।

साङ्ख्यास्तु—प्रकृतिपुरुषविवेकख्यातिबलेनोपरतायां प्रकृतौ पुरुषस्य स्वरूपेणा-ऽवस्थानं मोक्ष इति ब्रुवते ।

एतदुक्तं भवति-साङ्ख्यमते पञ्चविंशतिस्तत्त्वानि । यदुक्तं साङ्ख्यकारिकायामीश्वरकृष्णैः—

"मूलप्रकृतिरविकृतिर्महदाद्याः प्रकृतिविकृतयः सप्त ।
षोडशकस्तु विकारो न प्रकृतिर्न विकृतिः पुरुषः ॥१"॥ इति ।

तत्र प्रीत्यप्रीतिविषादात्मकानां लाघवोपष्टम्भगौरवधर्माणां परस्परोपकारिणां त्रयाणां गुणानां सत्त्व-रजस्तमसां साम्यावस्था प्रकृतिः । यदुक्तं श्रीकपिलेन सूत्रम् "सत्त्वरजस्तमसां साम्यावस्था प्रकृतिः···" इत्यादि (१–६१) । सत्त्वादिकं त्वीश्वरकृष्णैः कारिकाया-मित्थं व्याख्यातम्

"सत्त्वं लघु प्रकाशकमिष्टमुपष्टम्भकं चलं च रजः ।
गुरु वरणकमेव तमः प्रदीपवच्चा-ऽर्थतो वृत्तिः ॥१॥" इति ।

प्रकृतिश्च प्रधानमव्यक्तञ्चेत्यनर्थान्तरम् । सा चा-ऽनादिमध्यान्ता-ऽनवयवा साधारणा-ऽश-ब्दा-ऽस्पर्शा-ऽरूपा-ऽव्यया । एवंविधा च प्रकृतिः सर्वोत्पत्तिमतां निमित्तमस्ति । यदुक्तं श्रीवाच-स्पतिमिश्रेण साङ्ख्यतत्त्वकौमुद्याम्—"विश्वस्य कार्यसंघातस्य सा मूलम्, न त्वस्या मूलान्तरमस्ति,अनवस्थाप्रसङ्गात् । न चा-ऽनवस्थायां प्रमाणमस्तीति भावः ।"इति ।

प्रकृतेर्बुद्धिरुत्पद्यते, सा च महदित्यपरपर्याया । यो-ऽयमध्यवसायो गवादिषु प्रतिपत्तिः—एवमेतद् , नाऽन्यथा, गौरेवाऽयम् , नाश्वः, स्थाणुरेवा-ऽयम् , न पुरुष इत्येषा बुद्धिः,तस्यास्त्वष्टौ रूपाणि । तत्र धर्म-ज्ञान-वैराग्यैश्वर्याख्यानि चत्वारि सात्त्विकानि, तत्प्रतिपक्षभूतानि त्वधर्मा-दीनि चत्वारि तामसानि ।

(१) पृ० ५३६ प० १ ।

बुद्धेः कार्यो-ऽहङ्कारः । स चा-ऽभिमानात्मकः, अहं शब्दे, अहं स्पर्शे, अहं गन्धे, अहं रसे, अहमीश्वरः, असौ मया हतः, ससत्त्वो-ऽहं हनिष्यामीत्यादिप्रत्ययरूपः । अहङ्कारात् पञ्चतन्मात्राण्युभयं चेन्द्रियमिति कार्यद्वयमुत्पद्यते । तत्र पञ्चतन्मात्राणि शब्दतन्मात्रादीन्यविशेषरूपाणि सूक्ष्मपर्यायवाच्यानि । शब्दतन्मात्राच्छब्द उपलभ्यते, एवं स्पर्श-रूप-रस-गन्ध-तन्मात्रेभ्यः स्पर्शादय उपलभ्यन्ते ।

अथोभयेन्द्रियं बाह्या-ऽभ्यन्तरभेदेनैकादशविधम् । तत्र चक्षुः श्रोत्रं घ्राणं रसनं त्वगिति पञ्चज्ञानेन्द्रियाणि वाक्पाणिपादपायूपस्थाः पञ्च कर्मेन्द्रियाणि । एकादशं च मनः ।

पञ्चतन्मात्रेभ्यः पञ्च महाभूतानि समुत्पद्यन्ते । तथाहि—शब्दतन्मात्रादाकाशं शब्दगुणम्, शब्दतन्मात्रसहितात् स्पर्शतन्मात्राद् वायुः शब्दस्पर्शगुणः, शब्दस्पर्शतन्मात्रसहिताद् रूपतन्मात्रात् तेजः शब्दस्पर्शरूपगुणम्, शब्द-स्पर्श-रूपतन्मात्रसहिताद् रसतन्मात्रादापः शब्द-स्पर्श-रूप-रसगुणाः, शब्द-स्पर्श-रूप-रसतन्मात्रसहिताद् गन्धतन्मात्रात् शब्द-स्पर्श-रूप-रस-गन्धगुणा पृथिवी जायते ।

पुरुषस्त्वमूर्तश्चेतनः साक्षादकर्ता-ऽभोक्ता निष्क्रियो निर्गुणो नित्यः, यदुक्तं श्रीविज्ञानभिक्षुणा साङ्ख्यप्रवचनभाष्ये—"प्रकृतेः कार्यो महान् महत्तत्त्वम्, महदादीनां स्वरूपं विशेषश्च वक्ष्यते, महतश्च कार्यो-ऽहङ्कारः । अहङ्कारस्य कार्यद्वयम्, तन्मात्राण्युभयमिन्द्रियञ्च । तत्रोभयमिन्द्रियं बाह्या-ऽभ्यन्तरभेदेनैकादशविधम् । तन्मात्राणां कार्याणि पञ्चस्थूलभूतानि । स्थूलशब्दात् तन्मात्राणां सूक्ष्मभूतत्वमभ्युपगतम् । पुरुषस्तु कार्यकारणविलक्षणः ।" इति ।

प्रकृति-पुरुषयोः संयोगस्त्वन्धपङ्गुवत् । यदुक्तम् ईश्वरकृष्णैः साङ्ख्यकारिकायाम्—"पङ्ग्वन्धवदुभयोरपि संयोगस्तत्कृतः सर्गः ।" इति । पुरुषस्य च चैतन्यशक्तिर्विषयपरिच्छेदशून्या, अर्था-ऽध्यवसायस्य बुद्धिव्यापारत्वात् । बुद्धिस्तूभयमुखदर्पणाकारा, ततस्तस्यां चैतन्यशक्तिः प्रतिबिम्बते, इन्द्रियद्वारेण च बुद्धौ सुख-दुःखादयो विषया प्रतिसङ्क्रामन्ति । ततः सुख्यहं दुःख्यहमित्युपचारः । आत्मा हि स्वं बुद्धितोऽव्यतिरिक्तं मन्यते । मुख्यतस्तु बुद्धेरेव विषयपरिच्छेदः । तथा चाहुः सांख्यतत्त्वकौमुद्यां श्रीवाचस्पतिमिश्राः—"सर्वो व्यवहर्ता-ऽऽलोच्य मत्वा 'अहमत्रा-ऽधिकृतः' इत्यभिमत्य 'कर्तव्यमेतन्मया' इत्यध्यवस्यति, ततश्च प्रवर्तते इति लोकसिद्धम् । तत्र यो-ऽयं कर्तव्यमिति विनिश्चयश्चितिसन्निधाना-ऽऽपन्नचैतन्याया बुद्धेः सो-ऽध्यवसायः—बुद्धेरसाधारणो व्यापारः ।" इति ।

अचेतना-ऽपि बुद्धिश्चिच्छक्तिसन्निधानाच्चैतन्यवतीव प्रतिभासते । यदुक्तं साङ्ख्यकारिकायामीश्वरकृष्णैः—"तस्मात्तत्संयोगादचेतनं चेतनावदिव लिङ्गम् ।" इति । अनुमानप्रमाणमप्यस्ति—अचेतना ज्ञानादयः, उत्पत्तिमत्त्वादिति ।

यदा तु "दुःखहेतुरियं प्रकृतिः, ना-ऽनया सह संसर्गो युक्तः" इति विवेकख्यातिर्भवति, तदा प्रकृतिर्निवर्तते,कृतकार्यत्वात् । यथा पारिषद्यान् नृत्यं दर्शयित्वा नृत्याद् नर्तकी निवर्तते । यदुक्तं साङ्ख्यकारिकायाम् **"रङ्गस्य दर्शयित्वा निवर्तते नर्तकी यथा नृत्यात् ।**

पुरुषस्य तथा-त्मानं प्रकाश्य विनिवर्तते प्रकृतिः ॥१॥" इति ।

निवृत्तायां च प्रकृतौ च पुरुषस्य स्वरूपेणा-ऽवस्थानं मोक्ष इति । स्वरूपं च चेतनाशक्तिरपरिणामिन्यप्रतिसंक्रमा प्रतिदर्शितविषयाऽनन्ता च, अतस्तदात्मक एव मुक्तात्मा. न पुनरानन्दादिस्वभावः, तस्य प्रकृतिकार्यत्वात्, तस्याश्च निवृत्तत्वात् । ननु पुरुषो निर्गुणोऽपरिणामी,कथं तस्य मोक्षः, मुचेर्बन्धनविश्लेषार्थत्वात्, सवासनक्लेशकर्माशयानां च बन्धनसमाम्नातानां पुरुषेऽपरिणामिन्यसम्भवात् ? अत एव न तस्य प्रेत्यभावा-ऽपरनामा संसारोऽप्यस्ति, निष्क्रियत्वादिति चेत्, न, यतः प्रकृतिरेव नानाश्रया सती बध्यते संसरति मुच्यते चेति, पुरुषे तु बन्ध-मोक्ष संसारा उपचर्यन्ते । यथा जयपराजयौ भृत्यगतावपि स्वामिन्युपचर्येते, जयपराजया-ऽऽश्रयेण भृत्यानां तद्भागित्वात् जय-पराजयफलस्य च शोकलाभादेः स्वामिनि सम्बन्धात्, तथा भोगापवर्गयोः प्रकृतिगतयोरपि विवेकाग्रहात् पुरुषे सम्बन्ध इति ।

अत्र प्रतिविधीयते—या खलु प्रकृत्यादिप्रक्रिया दर्शिता,सा-ऽनुपपन्नैव । अनुपपत्तिस्त्वग्रे दर्शयिष्यते । यच्चोक्तम् **"प्रकृति-पुरुषयोः संयोगस्त्वन्धपङ्गुवत् ।"** इति, तदयुक्तम्, यतस्तयोः संयोगः केन कृतः, किं प्रकृत्या ? आहोस्विद् आत्मना ? न तावत् प्रकृत्या, तस्याः सर्वगतत्वेन मुक्तात्मनो-ऽपि तत्संयोगप्रसङ्गात् । अथा-ऽऽत्मना, तर्हि स शुद्धचैतन्यस्वरूप आत्मा किमर्थं प्रकृतिमादत्ते ? अथा-ऽस्तु वा केनचित् कृतः संयोगः, किन्त्वसौ संयोगः किं सहेतुको निर्हेतुको वा ? यदि निर्हेतुकः, तदा मुक्तात्मनोऽपि तथाविधसंयोगो बलादापद्यते । अथ सहेतुकश्चेत्,तर्हि तादृशसंयोगहेतुः किं प्रकृतिरस्ति ? उता-ऽऽत्मा? सांख्यैरन्यस्य कस्यचिदप्यनभ्युपगमात् ।

आद्यपक्षे, सा प्रकृतिर्यथा संसार्यात्मनः प्रकृतिसंयोगे हेतुः, तथा मुक्तात्मनो-ऽपि स्यात्, कूटस्थनित्यशुद्धचैतन्यस्वरूपत्वेनोभयोरप्यविशेषात्, नियामका-ऽभावाच्च ।

अथ द्वितीयपक्षश्चेत्, तर्हि स आत्मा प्रकृत्यात्मनोः संयोगे हेतुत्वं प्रतिपद्यमानः किं स्वयं प्रकृतिसंयुक्तः सन् हेतुर्भवति ? उत तद्वियुक्तः ? आद्ये तस्या-ऽपि प्रकृतिसंयोगः कथम् ? इत्यनवस्था । द्वितीये पुनः स प्रकृतिरहित आत्मा शुद्धचैतन्यस्वरूपः सन् किमर्थं प्रकृत्यात्मनोः संयोगे हेतुत्वं प्रतिपद्यत इति वक्तव्यम्, यदि निष्प्रयोजनम्, तर्हि मुक्तात्मनो-ऽपि प्रकृतिसंयोगप्रसङ्गः । यदि सप्रयोजनम्, तर्ह्युल्लेखनीयं 'किं तत् प्रयोजनम्' इति । ननु पुरुषस्य दिदृक्षासद्भावात् प्रयोजनरूपेण दर्शनमिति चेत्, न, मुक्तानामपि दिदृक्षास्वीकारप्रसङ्गेन दर्शनापत्त्या तेषामपि प्रकृतिसंयोगप्रसक्तेः ।

(१) पृ० ५४९ प० १९ ।

न चानाद्यबद्धस्यैव पुरुषस्य दिदृक्षा भवति, बद्धमुक्तस्य तु बद्धावस्थाया दर्शनसंपादनेन दिदृक्षाया-स्तृप्तत्वात् सा न मुक्तावस्थायां भवतीति न मुक्तानां दिदृक्षास्वीकारप्रसङ्गः, अतो नोक्तापत्तिरिति वाच्यम्, यतो-ऽनाद्यबद्धस्या-ऽपि पुरुषस्येन्द्रियादिरहितत्वेन न तस्य दिदृक्षा संभवति । अपि च नाऽदृष्टे वस्तुनि दिदृक्षा संभवति, इह तु भवता-ऽदृष्टायां प्रकृतौ दिदृक्षाऽभ्युपगम्यते, तच्चायुक्तम् ।

ननु 'द्रष्टुमिच्छा' दिदृक्षेति कृत्वा सहजैवेह दिदृक्षा, सा चेन्द्रियादिविरहे प्राग्दर्शनविरहे चाऽपि न विरुध्यत इति चेत्, मैवम्, यतो दिदृक्षायाः सहजत्वा-ऽभ्युपगमे आत्मनस्तन्निवृत्तिर्न स्यात्, आत्मनः स्वाभाविकगुणत्वेन तस्य स्वीकार्यत्वात् । नहि आत्मनः कश्चित् स्वाभाविकगुणो विनिवर्तते । अस्तु वा तन्निवृत्तिः, किन्तु तन्निवृत्त्यभ्युपगमे आत्मनो-ऽपि निवृत्तिप्रसङ्गः, अभिन्नत्वात् ।

ननु दिदृक्षानिवृत्तौ सत्यामप्यात्मनो न निवृत्तिः, भव्यत्ववदिति चेत्, मैवम्, दृष्टान्तदार्ष्टान्तिकयोर्वैषम्यात् । तथाहि—भव्यत्वं न केवलजीवरूपम्, किन्तु कर्मबद्धजीवरूपम् । दिदृक्षा तु केवलजीवरूपा, अनादिकालतः पुरुषस्य महदादीनां सम्बन्धाभावे-ऽपि दिदृक्षास्वीकारात् । इत्थं दृष्टान्तदार्ष्टान्तिकयोर्वैषम्याद् न युज्यते वक्तुम् 'भव्यत्ववदि' ति । अपि च महदाद्यभावे-ऽबद्धस्य यथा दिदृक्षा स्वीक्रियते, तथा बद्धमुक्तस्याऽपि स्वीकर्तव्या, उभयत्राऽपि महदाद्यभावस्याविशेषात् ।

नन्वेवंस्वभावैव दिदृक्षा, या महदादिविकारदर्शनादूर्ध्वं कैवल्यावस्थायां निवर्तत इति चेत्, न, यतः कैवल्यावस्थातः पूर्वं दिदृक्षायाः सद्भावः, पश्चाच्चाऽभावः इत्यत्र किं प्रमाणम् ?

किञ्च महदादिनिवृत्तौ सत्यां कैवल्यावस्थायां दिदृक्षाया निवृत्तेरभ्युपगमात् सा प्रकृतिस्वरूपा प्रकृतितुल्या वा स्यात्, पुरुषस्वरूपाऽभ्युपगमे दिदृक्षानिवृत्त्या पुरुषस्य कूटस्थनित्यत्वव्याघातप्रसङ्गात् । एवञ्च प्रकृतिवद् दिदृक्षा पुरुषतो व्यतिरिक्ता सिध्येत्, ततश्च पुरुषस्य दिदृक्षेति वक्तुं न युज्येत ।

किञ्च दिदृक्षा प्रकृतिस्वरूपाऽपि न सम्भवति, अबद्धस्य प्रकृतिविरहदशायामपि तदभ्युपगमात् । ना-ऽपि प्रकृतितुल्या काचिदतिरिक्ता, प्रकृति-पुरुषाभ्यामन्यस्य साङ्ख्यैरनभ्युपगमात् । तस्मादसत्कल्पा दिदृक्षेति पर्यवस्यति ।

अथा-ऽस्तु कल्पिता दिदृक्षेति चेत्, न, यतः कल्पितायां कथं प्रमाणप्रवृत्तिः ? तदेवं दिदृक्षाया अनुपपन्नत्वेन तत्प्रयोज्यस्य दर्शनस्याऽप्यनुपपत्तेर्न युज्यते पुरुषस्य प्रकृतिसंयोगे हेतुता ।

किञ्चायमात्मा प्रकृतिमुपाददानः पूर्वावस्थां किं जहात्यथवा ? आद्यपक्षे आत्मनोऽनित्यत्वापत्तिः । द्वितीये तु तदुपादानमेव दुर्घटम्, नहि बाल्यावस्थामपरित्यजन् देवदत्तस्तरुणत्वं प्रतिपद्यते । तन्न साङ्ख्यमते प्रकृतिसंयोगो घटते ।

अपि चा-ऽन्धपङ्गुवदिति यो दृष्टान्तः प्रोक्तः, सोऽपि प्रकृतेऽसङ्गत एव, दृष्टान्त-दार्ष्टान्तिकयोर्वैषम्यात् । तथाहि—अन्धपङ्ग्वोश्चेतनत्वाद् 'इदमित्थमेवा-ऽऽ।दिष्टं कार्यं सेत्स्यती'त्य-वधार्या-ऽन्यो-ऽन्यापेक्षयोः तयोः प्रवृत्तिर्युक्ता, न तु प्रकृति-पुरुषयोः, प्रकृतेरचेतनत्वात् । एतेन प्रकृत्युपधानविलये स्वरूपेणा-ऽऽत्मनो-ऽवस्थानं मोक्ष इत्यपि निरस्तम् , यतः संयोगस्यानुपपन्न-त्वाद् वियोगो दुर्घटः, संयोगपूर्वकत्वाद्वियोगस्य ।

[1]यच्चोक्तं "पुरुषस्य च चैतन्यशक्तिर्विषयपरिच्छेदशून्या" इति, तदप्यविचारिताभि-धानम् , यतश्चिच्छक्तिर्विषयपरिच्छेदशून्या चेति परस्परविरुद्धं वचः । 'चितै संज्ञाने' चेतनम् चित्यते वा-ऽनयेति भावे करणे वा क्विप्प्रत्ययः । यदि सा स्वपरपरिच्छेदात्मिका ना-ऽभ्युपग-म्यते, तदा सा चिच्छक्तिरेव न स्यात् , घटवत् । न चा-ऽमूर्तायाश्चिच्छक्तेर्बुद्धौ प्रतिबिम्बोदय-द्वारा विषयपरिच्छेदारोपो भवतीति वाच्यम् , प्रतिबिम्बस्य मूर्तधर्मत्वेनाऽमूर्तचिच्छक्तेराकाशवत् प्रतिबिम्बानुपपत्तेः।

अपि च कर्तृत्व-भोक्तृत्वादिधर्मविरहेण पुरुषस्य सुखदुःखभोगाश्रयत्वव्यवहारो नोपपद्येत । न चाऽऽरोपिततद्भोगसम्बन्धेन तथाव्यवहारोपपत्तिः स्यादिति वाच्यम् , आरोपितसम्बन्धार्थमपि तथाभोगानारोपापेक्षया तथाभोगारोपस्य वैलक्षण्यप्रयोजकत्वेन पुरुषस्य नूतनस्वरूपापन्नत्वस्यावश्यक-त्वात् , अप्रच्युतप्राचीनरूपस्य च सतः पुरुषस्या-ऽऽरोपितस्यापि सुखदुःखादिभोगस्य व्यपदेशानर्ह-त्वात् । तत्प्रच्यवने तु प्राक्तनरूपत्यागेनोत्तररूपाध्यासितत्वेन परिणामान्तरापत्त्या कूटस्थनित्यत्व-हानिः । न च यथा स्फटिकादीनां तथापरिणाममन्तरेणा-ऽपि जपाकुसुमादीनामुपधानेन स्फटिका-कादौ रक्तिमाद्यारोपो भवत्येव, तथैव पुरुषस्य परिणाममन्तरेणा-ऽपि सुखादिभोगशालिप्रकृत्युपधा-नेन भोगारोपो भविष्यतीति वाच्यम् , स्फटिकादावपि तथापरिणामेनैव रक्तिमारोपसमर्थनात् , अन्यथा कथमन्धोपलादौ नारोपः ? तथापरिणामा-ऽभ्युपगमे च बलादायातं चिच्छक्तेरारोपितकर्तृ-त्वादिधर्मविशिष्टपरिणामिनित्यत्वम् ।

[2]यच्च "अचेतना-ऽपि" इत्यादि प्रोक्तम् , तदप्ययुक्तम् ,न हि चैतन्यवति पुरुषे प्रति-सङ्क्रान्ते दर्पणस्य चैतन्या-ऽवाप्तिः,चैतन्या-ऽचैतन्ययोरपरावर्तिस्वभावत्वेन शक्रेणा-ऽप्यन्यथा कर्तु-मशक्यत्वात् ।

किञ्च शरीरादेरप्येवं चेतनत्वप्रतीतिप्रसङ्गः,चेतनत्वसंसर्गस्याऽविशेषात् । न च शरीराद्यसम्भवी बुद्ध्यादेरात्मना संसर्गविशेषो-ऽस्तीति वाच्यम् ,यतः कथञ्चित्तादात्म्यं विना को-ऽन्यः संसर्गविशेषः ? आत्मा-ऽदृष्टकृतकत्वादिविशेषस्य च शरीरादावपि भावात् । अपि च "अचेतनाऽपि चैतन्यव-तीव प्रतिभासते" इत्यत्रेव शब्देनाऽऽरोपो ध्वन्यते । न चा-ऽऽरोप उपपद्यते, तस्य बाधज्ञान-

(१) पृ० ५४९ प० २० । (२) पृ० ५४९ प० २१ ।

निवर्त्यत्वात्। तथाहि-साङ्ख्यमते विवेकख्यातिदशायां बाधज्ञानस्य सत्त्वेनारोपनिवृत्तिः स्यात्, तथा च सति तत्र प्रारब्धकर्माधीनसुखदुःखभोगे चैतन्यसंवेदनानुपपत्तिः स्यात्।

[1]यच्च **"अचेतना ज्ञानादय उत्पत्तिमत्त्वादि"**त्यनुमानप्रमाणमुपन्यस्तम्, तदप्यसुन्दरम्, यतो हेतोरनुभवेन सह व्यभिचारः, तस्य चेतनत्वेऽप्युत्पत्तिमत्त्वात्। न चा-ऽनुभवः कथमुत्पत्तिमान्? इति वाच्यम्, परापेक्षत्वाद् बुद्ध्यादिवत्। न च परापेक्षत्वमसिद्धमिति वाच्यम् **"बुद्ध्यध्यवसितमर्थं पुरुषश्चेतयते।"** इति वचनोपलम्भात्। बुद्ध्यध्यवसितार्थानपेक्षत्वे त्वनुभवस्य, सर्वत्र सर्वदा पुंसो-ऽनुभवप्रसङ्गेन सर्वस्य सर्वदर्शित्वापत्तेस्तदुपाया-ऽनुष्ठानवैयर्थ्यप्रसङ्गः।

यदि पुनरनुभवसामान्यं नित्यमनुत्पत्तिमदेवेति मतम्, तदा ज्ञानादिसामान्यमपि नित्यत्वादनुत्पत्तिमद् भवेत्, ततश्चाऽसिद्ध उत्पत्तिमत्त्वादिति हेतुः।

अथ ज्ञानादिविशेषाणामुत्पत्तिमत्त्वात् प्रोक्तहेतुर्ना-ऽसिद्ध इति चेत्, न, यतस्तुल्यन्यायेनाऽनुभवविशेषाणामप्युत्पत्तिमत्त्वं सिद्ध्यति, ततश्चोत्पत्तिमत्त्वहेतुरनैकान्तिकः कथं न स्यात्? स्यादेवेत्यर्थः। न चाऽनुभवस्य विशेषा न सन्तीति वाच्यम्, वस्तुत्वविरोधात्। तद्यथा-नाऽनुभवो वस्तु, विशेषकूटरहितत्वात्, खरविषाणवत्। न चोक्तहेतुरात्मना व्यभिचारी, तस्याऽपि सामान्यविशेषात्मकत्वात्।

अपि चोत्पत्तिमत्त्वहेतुः कालात्ययापदिष्टः, ज्ञानादीनां स्वसंवेदनप्रत्यक्षत्वेन चेतनत्वप्रसिद्धेः प्रत्यक्षबाधितपक्षा-ऽनन्तरं प्रयुक्तत्वात्। तदेवं नाऽचेतना ज्ञानादयः, स्वसंविदितत्वाद्, अनुभववत्। ततश्च चिच्छक्तेरेव विषयाध्यवसायो घटते, न तु तद्व्यतिरिक्ताया जडरूपाया अन्यस्याः कस्याश्चित्।

अत एव धर्माद्यष्टरूपताऽपि बुद्धेरित्यप्यभिधानमात्रमेव, धर्मादीनामात्मधर्मत्वात्।

[2]यच्च **"एवंविधा च प्रकृतिः सर्वोत्पत्तिमतां निमित्त"**मित्यादि प्रोक्तम्, तदुक्तवता भवता संज्ञान्तरेण कर्मैव प्रतिपन्नम्, तस्यैवैवंविधत्वादचेतनत्वाच्च।

[3]यच्च **"बुद्धेः कार्योऽहङ्कारः"** इत्यादि प्रोक्तम्, तदप्यसङ्गतम्, अहङ्कारस्याऽभिमानात्मकत्वेनाऽऽत्मधर्मस्या-ऽचेतनत उत्पादाऽयोगात्।

[4]यच्च **"वाक्-पाणि-पाद-पायूपस्थाः पञ्च कर्मेन्द्रियाणि'** इत्यभिहितम्, तदप्यपेशलम्, इतरा-ऽसाध्यकार्यकारित्वविरहात्। तद्यथा—परप्रतिपादना—ऽऽदान-विहरण मलोत्सर्गादयोऽन्यैरपि शरीरा-ऽवयवैरङ्गुल्यादिभिः साधयितुं शक्यन्ते, ततश्च न केवलं वागादिभिः साध्यन्ते। तेन वागादीनामिन्द्रियत्वव्यपदेशो नोचितः। यदीतरा-ऽसाध्यकार्यकारित्वविरहेऽपि वागादीनामिन्द्रियत्वं परि-

(१) पृ० ५४९ प० ३१ (२) पृ० ५४८ पं० २४। (३) पृ० ५४९ पं० २। (४) पृ० ५४९ पं० ८

कल्प्यते, तर्ह्यन्या-ऽङ्गोपाङ्गादीनामिन्द्रियत्वव्यपदेशः केन वार्यते ? अन्याऽङ्गोपाङ्गादीनामिन्द्रियत्वस्वीकारे त्विन्द्रियसंख्या प्रतिनियता न स्यात् ।

[1]यच्च व्योमादीनां शब्दादितन्मात्रजन्यत्वं प्रतिपादितम्, तदपि न सङ्गतम्, प्रतीतिविरोधात् ।

किञ्च भवता शब्दादितन्मात्रं व्योमादिकार्यस्य परिणामिकारणं स्वीक्रियते, आकाशस्य च गुणोऽपि शब्द एवोररीक्रियते । तच्चाऽयुक्तम्, नहि परिणामिकारणं स्वकार्यस्य गुणो भवितुमर्हति, ततः "शब्दगुणमाकाश"मिति वाङ्मात्रमेव ।

[2]यत्तु "**यदा तु दुःखहेतुरियं प्रकृतिः,नाऽनया सह संसर्गो युक्तः इति विवेकख्यातिर्भवति,तदा प्रकृतिर्निवर्तते**"इत्याद्युक्तम्,तदप्ययुक्तिकाऽभिधानम्, तत्र हि केयं विवेकख्यातिर्नाम ? प्रकृति-पुरुषयोः स्वेन स्वेन रूपेणाऽवस्थितयोर्भेदेन प्रतिभासनमिति चेत्, सा कस्य, प्रकृतेः पुरुषस्य वा ? ततोऽन्यस्य सांख्यैरनभ्युपगमात् । न तावत् प्रकृतेः, विवेकख्यातेः 'प्रकृतेरहं पृथक्' इत्याकारकत्वेनैतादृशविवेकख्यातेः प्रकृतेरसंभवात् । नाप्यात्मनः, तस्य संवेदनधर्मरहितत्वात् । न च प्रकृतौ जायमानाऽपि सा पुरुषे समारोप्यत इति वाच्यम्, प्रकृतेस्तदसंभवस्योक्तत्वात् । अस्तु वा यस्य कस्यचिद् विवेकख्यातिः, किन्तु प्रकृतिर्यथा विवेकख्यातिजन्मतः प्राक् कृतेऽपि शब्दाद्युपलम्भे पुनस्तदर्थं प्रवर्तते,तथा विवेकख्यातौ जातायामपि पुनस्तदर्थं प्रवर्त्स्यति, प्रवृत्तिलक्षणस्य स्वभावस्याऽनपेतत्वात् ।

[3]यत्तु "**यथा पारिषद्यान् नृत्यं दर्शयित्वा नृत्याद् नर्तकी निवर्तते**"इति दृष्टान्त उपन्यस्तः,सोऽपि भवदिष्टविघातकारी, नर्तकी खलु यथा नृत्यं पारिषद्येभ्यो दर्शयित्वा निवृत्ताऽपि तत्कुतूहलात् पुनः प्रवर्तते,तथा प्रकृतिरपि पुरुषायात्मानं दर्शयित्वा निवृत्ताऽपि पुनः कुतो न प्रवर्तेत ?

अथ वदेत्—प्रकृतिः कुलवधूवद् लज्जाशीलाऽस्ति । तथाहि-असूर्यम्पश्या हि कुलवधूस्त्रपा-ऽऽक्रान्ता प्रमादाद् विगलितशिरोञ्चला चेदालोक्यते परपुरुषेण, तदाऽसौ तथा प्रयतते, यथा प्रमत्तामेनां पुरुषान्तराणि न पुनः पश्यन्ति । एवं प्रकृतिरपि कुलवधूतोऽप्यधिका विवेकेन न पुनर्द्रक्ष्यत इति, तदयुक्तम्, स्वभावत्यागस्याऽसम्भवात् । एतदुक्तं भवति—दृष्टाऽपि प्रकृतिः संसारदशावद् मोक्षेऽप्यात्मनो भोगाय स्वभावतो वायुवत् प्रवर्तते, प्रवृत्त्यात्मकस्वभावस्य नित्यत्वेन तदा-ऽपि सत्त्वात् । न खलु प्रवृत्तिस्वभावो वायुरन्येन दृष्टः सँस्तं प्रति निजस्वभावादुपरमति । ततश्च कुतो मोक्षः स्यात् ? तदा तत्स्वभावस्याऽसत्त्वे तु प्रकृतेर्नित्यैकरूपताहानिः, पूर्वस्वभावत्यागेनोत्तरस्वभावोपादानस्य नित्यैकरूपतायां विरोधात् । ननु प्रकृतेः परिणामिनित्यत्वा-ऽभ्युपगमे न विरोध इति चेत्, उच्यते—प्रकृतेः परिणामिनित्यत्वं यथाऽभ्युपगम्यते, तथा-ऽऽत्मनो-ऽपि परिणामिनित्यत्वं स्वीक्रियताम्, तस्याऽपि प्राक्तनसुखाद्युपभोक्तृत्वस्वभावपरित्यागेन मोक्षे तदभोक्तृत्व-

(१) पृ० ५४९ पं० १ (२) पृ० ५५० पं० २ । (३) पृ० ५५० प० ३ ।

स्वभावा-ऽभ्युपगमात्, अमुक्तत्वादिस्वभावपरिहारेण मुक्तत्वादिस्वभावोपादानाच्च। सिद्धे चात्मनः परिणामिनित्यत्वे सुखज्ञानादिपरिणामैः परिणामित्वं तस्याऽभ्युपगन्तव्यम्; अन्यथा मोक्षाभावः। ततश्च साङ्ख्यपरिकल्पितो मोक्षो न घटां गच्छति। किन्तु यथोक्तोऽनन्तसुखज्ञानादिस्वरूपः।

[1]यच्च "प्रकृतिरेव नानाश्रया सती बध्यते संसरति मुच्यते च" इत्यादि प्रोक्तम्, तदप्यपेशलम्, यतो-ऽनादिभवपरम्परानुवर्तिन्या प्रकृत्या सह पुरुषस्य यो विवेकाग्रहलक्षणोऽविष्वग्भावः, स एव बन्धपदार्थः, न तदन्यः कश्चित्। तस्मात् पुरुषस्य बन्धः। अथ च यस्य बन्धः, तस्यैव मोक्षः, बन्ध-मोक्षयोरैकाधिकरण्यात्। तस्मात् पुरुषस्यैव मोक्षः ॥२६७॥

(इति साङ्ख्यस्वीकृतमोक्षस्वरूपप्रतिविधानम्)

तदेवं प्रतिपादिताः सिद्धानामष्टौ गुणा अनन्तज्ञानादयः। सम्प्रति श्रेणिप्रतिपत्तौ मतद्वयं दिदर्शयिषुराह–

एगभवे दो सेढी खलु कम्मग्गंथियाहिपायेणं।
आगमअहिपायेणं पुण सेढी हवइ अण्णयरा ॥२६८॥

एकभवे द्वे श्रेणी खलु कार्मग्रन्थिकाभिप्रायेण।
आगमाभिप्रायेण पुन श्रेणिर्भवत्यन्यतरा ॥२६८॥ इति पदसंस्कारः।

'एगभवे' इत्यादि, 'एकभवे' एकस्मिन् भवे कार्मग्रन्थिकाभिप्रायेण खलु 'द्वे श्रेणी' उपशमश्रेणिः क्षपकश्रेणिश्च भवतः। आगमाभिप्रायेण पुनरेकस्मिन् भवे 'अन्यतरा' उपशमश्रेणि-क्षपकश्रेण्योरेकतरा श्रेणिर्भवति। अयं भावः-एकस्मिन् भव उत्कृष्टतो द्विरुपशमश्रेणिं प्रतिपद्यते जीव इति तूभयसम्मतम्। किन्तु कार्मग्रन्थिका आहुः–यस्मिन् भवे द्वौ वारा उपशमश्रेणिं यो जीवः प्रतिपद्यते, स एव तस्मिन् भवे तृतीयवारमुपशमश्रेणिं क्षपकश्रेणिं वा न प्रतिपद्यते। यस्त्वेकवारमुपशमश्रेणिं समारोहति, तस्य भवेदपि क्षपकश्रेणिस्तस्मिन् भव इति। यदुक्तं **सप्ततिकाचूर्णौ**–"**उक्कोसेणं एगभवे दो वाराओ उवसमसेढिं पडिवज्जति, जो दुवे वारे उवसमसेढिं पडिवज्जइ, तस्स णियमा तम्मि भवे खवगसेढी नत्थि। जो एकसिं उवसमसेढिं पडिवज्जइ, तस्स खवगसेढी होज्जा वा।**" इति। **सैद्धान्तिकास्त्वाहुः**–यस्मिन् भवे सकृदप्युपशमश्रेणिं यो जीवः प्रतिपद्यते, तस्मिन् भवे स क्षपकश्रेणिं न प्रतिपद्यत इति। यदुक्तं **बृहत्कल्पभाष्ये**–

"**एवं अप्परिवडिए सम्मत्ते देवमणुयजम्मेसु।**
अन्नयरसेढिवज्जं एगभवेणं च सव्वाइं ॥१॥" इति।

तथैवाऽन्यत्राऽप्युक्तम्

"**मोहोपशम एकस्मिन् भवे द्विः स्यादसन्ततम्।**
यस्मिन् भवे तूपशमः क्षयो मोहस्य तत्र न ॥१॥" इति ॥२६८॥

(१) पृ० ५४० पं० ११

सम्प्रति शिष्यप्रशिष्यादिवंशे शास्त्रार्थस्याऽव्यवच्छेदायाऽन्तिममङ्गलं कुर्वन् स्वस्य चोपकारिणो गुरून् स्तुवन्नाह

कम्ममलविमुक्को सिरिवीरो जयइ सिरिपेमसूरीसो ।
जयए तह तस्सिस्सो पण्णासो भाणुविजयक्खो ॥२६१॥

कर्ममलविमुक्तः श्रीवीरो जयति श्रीप्रेमसूरीशः ।
जयति तथा तच्छिष्यः पन्न्यासो भानुविजयाख्यः ॥२६१॥ इति पदसंस्कारः ।

'कम्म'० इत्यादि 'कर्ममलविमुक्तः' कर्म–ज्ञानावरणादिकम्, तदेव मलं कर्ममलम्, तेन विमुक्तः=विरहितः, क्षपकश्रेणिसरसि शुक्लध्यानसलिलेन प्रक्षालितकर्ममल इत्यर्थः, 'श्रीवीरः' तत्र "राजृ दीप्तौ" विराजते=शोभते घनघातिकर्मसंघातविदारणाऽनन्तरप्राप्तातुलकेवलश्रिया प्रकाशते वाऽनन्यमहातपस्तेजसेति वीरः, विपूर्वकराजृधातोरौणादिकडप्रत्ययो दीर्घत्वं च बाहुलकात् । यद्वा "ईरिक् गति-कम्पनयोः" वि=विशेषेण=अपुनर्भावेन ईर्ते=याति शिवं कम्पयत्यास्फोटयत्यपनयति कर्म वेति वीरः "लिहादिभ्यः" (सिद्धहेम० ५-१-५०) इत्यनेन सूत्रेण कर्तर्यच्प्रत्ययः । यद्वा "ईरण् क्षेपे" वि=कियत्कालार्पितकर्मसाध्यपेक्षया विशेषत ईरयति=क्षिपति=तिरस्करोत्यशेषाणि कर्माणीति वीरः, कर्तर्यच्प्रत्ययः । यद्वा विदारयति कर्मारिसंघातमिति वीरः, पृषोदरादित्वाद् इष्टरूपनिष्पत्तिः, अथवाऽन्तरङ्गमोहमहीपतिमहाबलनिर्दलनार्थमनन्तं तपोवीर्यं व्यापारयतीति वीरः । यदुक्तम्–

विदारयति यत्कर्म तपसा च विराजते ।
तपोवीर्येयुतस्तस्माद्वीर इति स्मृतः ॥१॥ इति ।

यद्वा "शूरश्चारभटो वीरो विक्रान्तश्चाथ···।"(श्लोकाङ्कः ३६५) इत्यभिधानचिन्तामणिकोशवचनाद् वीरयति स्म कषायोपसर्गपरिषहादिशत्रुवर्गमभिभवति स्मेति वीरः,पूर्ववत् कर्तर्यच्प्रत्ययः,यद्वा वीरयति स्म रागादिशत्रून् प्रति पराक्रमयति स्मेति वीरः,अच्प्रत्ययः पूर्ववत् । अथवा ईरणम्–ईरः, "भावाऽकर्त्रोः" (सिद्धहेम० ५-३-१८) इत्यनेन भावे घञ्प्रत्ययः, ज्ञानमित्यर्थः, "सर्वे गत्यर्था ज्ञानार्थाः" इति वचनात् । ततो वि=विशिष्ट ईरो–ज्ञानं यस्य, स वीरः, आभिरुक्ताभिर्व्युत्पत्तिभिर्भगवतश्चरमजिनेश्वरस्य स्वार्थसम्पदं बोधितवान् । यद्वाऽण्यन्तईर्धातुः,वि=विशेषेण ईरयति=मोक्षं प्रति भव्यप्राणिनो गमयतीति वीरः, कर्तर्यच्प्रत्ययः पूर्ववद् । यदिवा वि=विशिष्टा निखिलभुवनजनमनश्चमत्कारिणी ईः=लक्ष्मीः तां राति=भव्येभ्यः प्रयच्छतीति वीरः, "रांक् दाने"इति धातोः"आतो डोऽह्वावामः"(सिद्धहेम० ५-१-७६) इत्यनेन सूत्रेण कर्तरि डप्रत्ययः । आभ्यां द्वाभ्यां व्युत्पत्तिभ्यां भगवतः परार्थसम्पत्तिं ज्ञापितवान् । श्रिया=समस्तजगज्जन्तुजातचेतश्चमत्कारिपरमार्हन्त्यमहामाहात्म्यविस्तारयशोकवृक्षाद्यष्टमहाप्रातिहार्यशोभया चतुस्त्रिंश-

दतिशयशोभया वा लोकालोककलितभावकलापकलनैककुशलविमलकेवलज्ञानलक्ष्म्या वा युक्तो वीरः श्रीवीरः,जयति=इन्द्रिय-विषय-कषाय-परिषहोपसर्ग-घातिकर्मादिशत्रुगणपरिजयात् सर्वानप्यतिशेते ।

अथ स्वस्योपकारिणो गुरुवर्यान् स्तौति–'सिरि०' इत्यादि, 'श्रीप्रेमसूरीशः' श्रीमद् विजयप्रेमसूरीश्वरो 'जयति' इन्द्रियविषयादिरिपुपरिजयाद् अतिशेते । अयं भावः–चरमतीर्थपतेः **श्रीवर्धमानस्वामिनः** पट्टधरो गणभृत् **श्रीसुधर्मस्वामी** जातः, तदनु पट्टधराः **श्रीमज्जम्बूस्वामिप्रभवस्वामिप्रभृतयो** जाताः । ततः क्रमेण श्रीवीरात् त्रयःसप्ततितमः (७३) पट्टधरो न्यायाम्भोनिधिः प्रतिक्षिप्तलुम्पाकमतो विशुद्धचारित्रो **विजयानन्दसूरीश्वरोऽभूत्** । तत्पट्टधरो निःस्पृहशिरोमणि-सच्चारित्रचूडामणि-श्रीमद्विजय**कमलसूरीश्वर** आसीत्, तत्पट्टधरः पाठकवर्य-श्रीमद्**वीरविजय**विनेयरत्न-परमगीतार्थेऽशेषशेमुषीशालिकुलविद्वस्यमान-सकलागमरहस्यवेदि-भीमकान्तादिगुणगरिष्ठश्रीमद्**विजयदानसूरीश्वरोऽभूत्** । तत्पट्टधरः सिद्धान्तमहोदधि–कर्मशास्त्रनिष्णात–**कर्मसिद्धि–संक्रमकरण मार्गणाद्वारा**दिग्रन्थरचयितृ–श्रीमद्**विजयप्रेमसूरीश्वरो** विषयकषायेन्द्रियादिशत्रुगणपरिजयाद् अतिशेते । युक्ता हि तेषां स्तवना, प्रव्रज्याप्रदानसम्यग्ज्ञानदानादितस्तेषामासन्नोपकारित्वात् ।

अथ स्वप्रगुरुं स्तौति-'तह'इत्यादि-'तथा'तथाशब्दः समुच्चये, 'तच्छिष्यः'तस्य=अनन्तरोक्त-श्रीमद्विजय**प्रेमसूरीश्वरस्य** 'शिष्यः' अन्तेवासी पन्न्यासो "भानुविजयाख्यः" तपस्तेजसा निर्जितभानुधामा **भानुविजयनामा** स्याद्वादनयप्रमाणविशारद-प्रवचनप्रभावक-तपोरत्न-पञ्च-**सूत्र-ललितविस्तरा**द्यनेकग्रन्थविवेचको ' जयति ' आचाम्लवर्धमानतपआदिविप्रकृष्टतपश्चरणेन तर्कशास्त्राध्ययनाध्यापनादिना च नक्तंदिवं विषयेन्द्रियादिरिपुनिकरपरिजयाद् अतिशेते ॥२६९॥

सम्प्रति क्षपकश्रेणिग्रन्थपदार्थसंग्रहकारान् प्राह

इह खवणपयत्था संगहिया तस्सिससुप्पसिस्सेहि ।
जयघोस-सुधम्माणंद-हेमचंद-गुणरयणेहि ॥२७०॥

इह क्षपणपदार्थाः सङ्गृहीतास्तच्छिष्य-सुप्रशिष्यैः ।
जयघोष सुधर्मानन्द-हेमचन्द्र-गुणरत्नैः ॥२७०॥ इति पदसंस्कारः ।

'इह' इत्यादि,इह 'क्षपणपदार्थाः' प्रस्तुतत्वात् कर्मक्षपणापदार्थाः 'संगृहीताः' **कर्मप्रकृति-सप्ततिका-कषायप्राभृतादि-तच्चूर्णि-तद्वृत्ति-तट्टिप्पनकादिभ्यः** समाहृताः, कैः ? इत्याह-'**तस्सिसस०**' इत्यादि, 'तच्छिष्य-सुप्रशिष्यैः' तस्य=पन्न्यासश्रीमद्**भानुविजयस्य**, शिष्यश्च सुप्रशिष्याश्च शिष्यसुप्रशिष्याः, तैः, 'जयघोष-सुधर्मानन्द हेमचन्द्र-गुणरत्नैः' तत्पुरुषगर्भद्वन्द्वसमासत्वात् पदैकदेशेन च पदसमुदायस्य गम्यमानत्वाद् **मुनिश्रीजयघोषविजयेन** शोभनेन **मुनिश्रीधर्मानन्दविजयेन मुनिश्रीहेमचन्द्रविजयेन मुनिगुणरत्नविजयेन** च मल्लक्षणेन ।

अयम्भावः स्याद्वादनयप्रमाणविशारदवर्मदेशनादक्ष–पन्न्यासश्रीमद्भानुविजयगणिवराणां शिष्यः प्रशान्तमूर्त्तिः स्वाध्यायरसिको मुनिश्रीधर्मघोषविजयः, तस्य शिष्यो दाक्षिण्यनिधिर्ऋजुस्वभाव आगमकर्मप्रकृत्यादिग्रन्थपटुर्वैयावृत्त्यादिना लब्धगच्छाधिपतिप्रसादो मुनिश्रीजयघोषविजयः। तयोक्तपन्न्यासप्रवराणां शिष्यः कर्मप्रकृतिप्रभृतिद्रव्यानुयोगे गणितानुयोगे चाऽप्रतिमशेमुषीशाली शङ्कोत्थानतत्समाधानकुशलो मुनिश्रीधर्मानन्दविजयः। तथोक्तपन्न्यासप्रवराणां प्रथमशिष्यः पन्न्यासपदालङ्कृतः सम्पादितगच्छप्रीतिः स्वाध्यायचरण-करणेष्वनन्यप्रेरकः श्रीमत्पद्मविजयगणिरासीत्, तच्छिष्यो देशनादक्षो गणितानुयोगेऽपि प्रत्युत्पन्नमतिः शान्तस्वभावो मुनिश्रीहेमचन्द्रविजयः। तथा स्याद्वादनयप्रमाणविशारदादिविशेषणविशिष्टोक्तपन्न्यासप्रवराणां शिष्यो मदीयगुरुवर्यो भीमभवोदध्युद्धारको ज्येष्ठसहोदरवरोऽष्टमतपआदिविप्रकृष्टतपश्चारी मुनिमतल्लजो जिनेन्द्रविजयः, तच्छिष्यो गुणरत्नविजयो मन्दलक्षणः। एतैश्चतुर्भिर्मुनिभिः सुविहितगच्छनायकश्रीमद्विजयप्रेमसूरीश्वरप्राध्यापितैः कर्मप्रकृति-सप्ततिका-कषायप्राभृतादिग्रन्थेभ्यः कर्मक्षपणापदार्थाः संगृहीताः,न तु कपोलकल्पिताः। एतेन ग्रन्थस्य सर्वज्ञमूलकत्वं दर्शितम् ॥२७०॥

अथ पदार्थसंग्रहानन्तरं किम्? इत्याह

तत्तो य खवगसेढी जिणिन्दसिस्सगुणरयणविजयेणं।
रइया एत्थ बहुसुया किवाअ खलियं विसोहन्तु ॥२७१॥

ततश्च क्षपकश्रेणिर्जितेन्द्रशिष्यगुणरत्नविजयेन।
रचिताऽत्र बहुश्रुता कृपाया स्खलितं विशोधयन्तु ॥२७१॥ इति पदसंस्कारः।

'तत्तो' इत्यादि, 'ततः' कर्मक्षपणापदार्थसंग्रहणानन्तरं 'जितेन्द्रशिष्यगुणरत्नविजयेन' जितेन्द्रस्य=अनन्तरोक्तविशेषणविशिष्टस्य मुनिराजश्रीजिनेन्द्रविजयनाम्नः पूज्यगुरोः शिष्येण=अन्तेवासिना गच्छाधिपचरणयुगलमुपासमानेन गुणरत्नविजयेन मन्दलक्षणेन 'क्षपकश्रेणिः' प्रस्तुतग्रन्थस्वरूपा रचिता।

सम्प्रत्यात्मन औद्धत्यं परिहरन् बहुश्रुतेषु बहुमानं प्रकटयन् संशोधनविषये च प्रार्थनां विदधानः प्राह–'एत्थ' इत्यादि, 'अत्र' क्षपकश्रेण्याख्यग्रन्थे 'बहुश्रुताः' आगमविदः 'कृपायाः' अत्र 'गम्ययपः कर्माधारे' (सिद्धहेम० २-२-७४) इत्यनेन सूत्रेण कर्मणि पञ्चमी विभक्तिः, ममोपरि कृपां विधायेत्यर्थः, 'स्खलितं' कृतप्रयत्नस्यापि छद्मस्थस्याऽऽवरणादिसामर्थ्यादनाभोगकृतं स्खलनं 'परिशोधयन्तु' अपनयन्तु, यत्र स्खलनं स्यात्, तत्रेदं पदं न सम्यक्,इदं तु सम्यगित्यश्रुतानुसारिपदमपनीय श्रुतानुसारिपदं प्रक्षिपन्तु, न पुनस्तैरुपेक्षारूपोऽप्रसादः कर्तव्य इति भावः। ॥२७१॥

अथ प्रशस्तिः

नौमि श्रीवीरनाथं गणधरसुनुतं पादयुग्मं यदीयं
शक्रेन्द्रादिद्युनाथैः स्तुत इह भरते तीर्थनाथोऽन्तिमो यः ।
प्राप्ता भव्याश्च यस्यामृतसमवचसा बोधिरत्नं त्वनेके ,
प्रव्रज्यां यस्य पार्श्वे शिवसदनकलां चोररीकृत्य सिद्धाः ॥१॥　　(स्रग्धरा)

आसीच्छ्रीवीरविभोः पट्टे गणभृत् सुधर्मनामा सः ।
तत्त्वादर्शि विशालं यद्दब्धं द्वादशाङ्गमद्भुतम् ॥२॥　　(गीतिः)

तत्पट्टधरा जैनप्रवचनलक्ष्म्या विलासिनो ददताम् ।
श्रीजम्बूस्वामि-प्रभवप्रभु-शय्यम्भवाद्याः शम् ॥३॥　　(विपुलार्या)

यद्विद्याच्छवितो भगः किमुत खं भीत्याऽधिगम्याऽटति, ।
शुभ्रो यद्यशउच्चयः किमुत खे पर्येति चन्द्रच्छलात् ।
कर्मारेर्हतये व्यधुः किमुत ये कर्मप्रकृत्यायुधं
दधुस्ते शिवशर्मसूरिगुरवः कर्मप्रणाशे बलम् ॥ ४ ॥　　(शार्दूलविक्रीडितम्)

दब्धः सप्ततिकाग्रन्थो यैर्भङ्गप्रतिपादकः ।
नित्यं मयि प्रसीदन्तु ते तद्ग्रन्थविधायिनः ॥५॥　　(अनुष्टुप्)

संदर्भो निर्मितो यैर्गुणगणनिकरैः प्राभृतान्तः ★ कषायो
यत्कीर्तिज्योतिपेदं त्रिभुवनभवनं शुभ्ररूपं चकास्ति ।
यद्वज्ञानेन मूढान् भुवनभविजनान् ये प्रकाशं च निन्युः,
सत्सूरीन्द्रान् स्तुवे तान् गुणधरविबुधान् कर्ममर्मापहत्यै ॥६॥　　(स्रग्धरा)

संक्षिप्य शतकादीन् ❀ यैर्निर्मितः पञ्चसंग्रहः ।
सर्वदा विजयन्तां ते, श्रीचन्द्रर्षिमहत्तराः ॥७॥　　(अनुष्टुप्)

श्रुतपारगतः प्रज्ञाशाली मङ्गुप्रभुर्जयतु धीरः ।
श्रीनागहस्तिदेवो जयताच्छ्रीकर्ममर्मविज्ञश्च ॥ ८ ॥　　(गीतिः)

दब्धा चूर्णिर्जिनमतबुधैर्यैर्जनानां हिताय ,
श्रेणिग्रन्थे जडमतिरहं चूर्णिमाश्रित्य येषाम् ।
जातः शक्तो बलविरहितो यष्टियोगात् यथा स्यात् ,
कर्मज्ञांस्तान् शमदमयुतांश्चूर्णिकारान् स्तुवेऽहं ॥ ९ ॥　　(मन्दाक्रान्ता)

★ कषायप्राभृतग्रन्थ. । ❀ शतक सप्ततिका–कषायप्राभृत सत्कर्म–कर्मप्रकृतिग्रन्थान् ।

कुशाग्रधीभिर्निरमायि यैर्ज्ञैः सुभव्यसन्दोहसरोजसूर्यैः ।
सुटिप्पनं श्रीशतकादिचूर्णेर्जयन्तु ते श्रीमुनिचन्द्रपादाः ॥१०॥ (उपेन्द्रवज्रा)

यैश्चारित्रेण तुल्यो न भवति ★कमनस्तस्य वै हंसगत्वाद्
येषां क्षान्त्या तु साम्यं व्रजति च न *विधुस्तस्य संग्रामकृत्त्वात् ।
यैः सच्छीलेन तुल्यो न भवति गिरिशो रागवत्त्वाद् भवान्यां
ते सूरीन्द्रा भवेयुः सुमलयगिरयः सुप्रसन्नाः सदैव ॥११॥ (स्रग्धरा)

विद्वन्मन्याः कुपक्षाः स्ववचनपटुतां दर्शयन्तो जगत्यां
यै रेवन्तप्रतापैः कलितिमिरहरैश्चक्रिरे कौशिकौघाः ।
यैः प्राप्तं प्राज्ञवर्यैः खलु विजयपदं कोविदानां सभायां
जीयासुस्ते यशोभाग्विजयपदयुताः पाठका वन्दनीयाः ॥१२॥ (स्रग्धरा)

वीराद्द्वित्तुरङ्गमसंगितपट्टे (७२)श्रुतोदधिर्धीरः ।
न्यायाम्भोधिर्जीयाच्छ्रीविजयानन्दसूरीशः ॥ १३ ॥ (पथ्यार्या)

तत्पट्टधरो जयतात् स श्रीमद्विजयकमलसूरीशः ।
मेरुरिव विबुधसेव्यो यो गम्भीरश्च जलधिरिव ॥१४॥ (पथ्यार्या)

तत्साम्राज्ये श्रीवीरविजयसंज्ञाः स्वशिष्यदानयुताः ।
पाठकवर्याः कामं रेजुः कुमतेभहर्यक्षाः ॥१५॥ (विपुलार्या)

सज्ज्ञानं दर्शनं सत् सुविमलचरणं चेति रत्नत्रयीयं
प्राप्ता भव्यैर्यतोऽब्धेरिव किल भपतिः श्रीः सुधा चाऽऽदितेयैः ❀ ।
शुद्धं मार्गं क्रियाख्यं प्रकटयति तु गौर्यस्य हेलेरिव रा,
जीयात् सद्दानसूरिः स विजयकमलाचार्यसत्पट्टधारी ॥१६॥ (स्रग्धरा)

चारित्रांशन्विते यच्छशधर उदिते तस्य पट्टाद्रिशृङ्गे ,
भव्यव्राताब्धिवेला विपुलशमयुता प्राज्यमुल्लासमाप्ता ।
यः पूज्यः प्रीतिपात्रं रविरिव समभूत् साधुकोकव्रजानां
विश्वे सिद्धान्तविज्ञो जयतु स सुगुरुः प्रेमसूरीशवर्यः ॥ १७ ॥ (स्रग्धरा)

श्री कर्मसिद्धिगुम्फः सुमार्गणाद्वारविवरणग्रन्थः ।
संक्रमकरणग्रन्थश्च विरचितास्तेन बुद्धिमता ॥ १८ ॥ (पथ्यार्या)

★ महा * विष्णु ❀ सुरैः ।

यस्योपास्तिमवाप्य वै चरणयोर्लब्ध्वा यदीयां कृपां
भव्यानामुपकारिका क्षपकसच्छ्रेणिर्मया गुम्फिता ।
एषा येन विशोधिता सुगुरुणा स्वोपज्ञटीकायुता,
जीयात् कर्मकृतान्तवित् स **विजयश्रीप्रेमसूरीश्वरः** ॥२०॥ (शार्दूलविक्रीडितम्)

यद्यङ्गुल्याऽऽकाशो मेयः प्रसृतादिभिश्च पाथोधिः ।
स्यां च यदि सहस्रमुखस्तदा समर्थस्तदुपकृतीर्वक्तुम् ॥२१॥ (गीति)

बुद्धिः कर्कशतर्कतर्कणकलाढ्या विद्यते यस्य हि,
मुक्तिस्त्रीं तपसा सदा जिगमिषोः कायः कृशो यस्य च ।
सन्ति प्रव्रजिता अनेकतरुणाः श्रुत्वा च यद्देशनां
नः पायात् प्रगुरुः स **भानुविजयः** पन्न्यासवर्यो गणी ॥२२॥ (शार्दूलविक्रीडितम्)

तच्छिष्यो मम पूज्यो गुरुः सहोदरचरो तपश्चारी ।
भवजलधितारणतरीतुल्य**जितेन्द्रविजयो** जयतु ॥२३॥ (पथ्यार्या)

श्रीमत्सिद्धान्तमहोदधि**विजयप्रेमसूरि**वर्याणाम् ।
पूज्यानामादेशात् तदीयसत्प्रेरणातश्च ॥२४॥ (,,)

रचिता **जितेन्द्रविजया**न्तिपदा साधु**गुणरत्नविजयेन** ।
स्वोपज्ञवृत्तियुक्ता क्षपकश्रेणिर्मयाविहिताय ॥२५॥ (पथ्यार्या युग्मम)

संशोधितेयं **विजयोदयसूरी**शैर्विशारदैर्न्यायि ।
आगम-कर्मप्रकृतिग्रन्थेषु तथा विपश्चिद्भिः ॥२६॥ (,,)

मुनिवर**जयघोषविजय-धर्मानन्द-मुनिहेमचन्द्रैश्च** ।
अन्यैश्च साधुवृषभैः परोपकारव्यसनभाग्भिः ॥२७॥ (युग्मम्)

छाद्मस्थ्याद् मतिमान्द्याद् वा यत्किञ्चिद् विरुद्धमागमतः ।
स्यादुक्तं तच्छोध्यं बहुश्रुतैर्मयि कृपां कृत्वा ॥२८॥ (पथ्यार्या)

मारुधरपिण्डवाडानगरस्थायिजनपङ्क्तिरत्नाभ्याम् ।
श्रीहीराचन्द-श्राद्धवरअचलदासतातकाभ्यां तु ॥२९॥ (गीति)

चारुदिवाली-**नन्दी**जननीकाभ्यां क्रमेण पुत्राभ्याम् ।
श्रेष्ठिश्रेष्ठरतनचन्द्राख्य-श्रेष्ठिबुधचन्दनामभ्याम् ॥३०॥ (गीति)

नमिजिनमन्दिरनिर्मापयितृभ्यामुद्यापनादिकारिभ्याम् ।
श्रीवृत्तियुतेक्षपकश्रेणिमुद्रापिता स्ववित्तेन ॥३१॥ (गीति)

तथाहि

कर्मेन्धनं ज्वलितमाशु जिनेन येन,
ध्यानानलेन समवापि शिवं च येन ।
यज्जापसिंहनदनेन पलायते च,
कर्मद्विपोऽनवरतं स नमिर्न इष्टाम् ॥ १ ॥ (वसन्ततिलका)

तद्बिम्बदर्शनात् सर्वो लोकः सम्यक्त्वमश्नुताम् ।
क्षपकश्रेणिमारुह्य सम्प्राप्नोतु शिवश्रियम् ॥ २ ॥ (अनुष्टुप्)

समस्ति श्रीमदर्बुदाचल-राणकपुरादिमहातीर्थपरिमण्डितश्रीमरुधराऽपरनामराजस्थानदेशे श्रीविश्वानन्ददायकचरमशासनपतिश्रीवर्धमानप्रभुप्रासादपरिभूषितं प्रकृष्टपुण्यभाक्प्राणि-परिवृतं पिण्डवाडा(पिण्डरवाटक)नामनगरम् । तत्राऽवात्सीत् श्रेष्ठिश्रेष्ठसमनाजीनामाऽऽर्हतो धर्मकर्मरतः । तस्य धर्मोत्साही व्यवहारिहीरकः हीराचन्दनामा पुत्रः समजायत । तस्य हीराचन्दाख्यश्रेष्ठिनः सुपात्रदानादिना स्वकर्मतिमिरहरणदीपावलीव दिवालिनाम्नीभार्या शीलालङ्कारधारिणी विंशतिस्थानकतपो-वार्षिकतप-उपधानतपःप्रभृतिविकृष्टतपश्चारिणी सज्जनश्रेणिरत्नं रतनचन्दनामानं भरतजनतारागणचन्द्रं भरतचन्द्रनामानममृतसुखाकाङ्क्षी अमृतलालाभिधं च त्रीणि पुत्ररत्नानि धरमीनाम्नीं च पुत्रीं प्रासूत । तत्राद्यस्य जिनधर्मपरायणा शीलादिविशिष्टगुणालङ्कारालङ्कृता गुरुजनोपासिका धरमीनाम्नी सधर्मिणी, यस्याः पञ्चमङ्गलमहाश्रुतस्कन्धोपचार-रूपोपधानतपःसमाप्तितः परमुपधानतपःकारितपस्विजनेषु बहुधनव्ययेन प्रथमतो मालारोपणं व्यधापि जिनधर्मानुरागरञ्जितेन तेन व्यवहारिणा । तस्य रतनचन्दाख्यस्य श्रेष्ठिनः पुत्री हेमकान्तिर्हेमलता सम्प्रत्यपि नन्दति ।

इह च पिण्डवाडानगरे सनरूपजीनामा ★मुत्तविंशीयोऽन्यो महेभ्यः समासीत् । तेन चतुःषष्ट्यधिकैकोनविंशतितमवैक्रमाब्दे (१९६४) ध्वजारोपणप्रसङ्गे एकपञ्चाशदधिकसप्तशतरूप्यकाणि (७५१) श्रीसङ्घाय समर्प्य कुलपरम्परागतं जिनप्रासादस्योपरि ध्वजारोपणं व्यधत्त । तस्य च पुत्रः स्थैर्येऽचल इव अचलदासनामाऽजायत । अचलदासनाम्नश्च श्रेष्ठिनो धर्मकार्यनन्दिनी नन्दीनाम्नी जायाभूरिसुभाग्याऽभवत् । यया पञ्चशताचाम्ल-वार्षिकतप-उपधानतपो—विंशतिस्थानकतपःसिद्धचक्रसमाराधन-नवनवतिश्रीशत्रुञ्जयमहातीर्थयात्राद्यनेकधर्मकृत्यानि व्यदधत स्वजीवने । किञ्च षोडशाधिकद्विसहस्रतमवर्षे (२०१६)श्रीवर्धमानस्वामिप्रतिष्ठाप्रसङ्गे ध्वजारोपणोत्सर्पणाऽवसरे ❀ 'ध्वजारोपणलाभविरह आजीवनं सहकारफलं नास्वादये' ति स्वदृढसंकल्पः प्रकटितो यया प्रशान्तस्वभावाय सज्जनसगणचन्द्राय स्वपुत्राय खुबचन्दाभिधाय धरमी-फुली-छोगीत्येतास्यश्च स्वपुत्रीभ्यः । तस्या नन्दीश्रमणोपासिकायाः पुत्रस्य श्रेष्ठिखुबचन्दनाम्नो दान-शील-तपःप्रभृतिविशिष्टगुण-

★ मरुदेशवर्तीय ❀ 'उच्छामणी वधते' इति भाषायाम् ।

विभूपिता धर्मपरायणा **चदामी**नाम्नी गृहिणी कुलाचारचरणवर्या समस्त्यद्यापि । तथा दीनताग्रीष्महेमन्त इव **हेमन्तः** पुण्यपृथ्वीन्द्र इव **नरेन्द्रश्च** सुखयन्ती **दमयन्ती** धर्मवसुमती **हसुमती** च पुत्रपुत्र्यो विनयान्विता नन्दन्ति ।

एकदा पुण्यप्राप्तसमृद्धिशालिभ्यां श्रेष्ठि**खुबचन्द-रतनचन्द**नामभ्यां क्रमेण श्यालभगिनीपतिभ्यामग्निरथविश्रामस्थाने (स्टेशन) **सिरोहीरोड**नामकेऽनेकयात्रिकाणामर्हद्दर्शनविरहं संलक्ष्य सम्यग्दर्शनादिविशुद्धये भव्यं नव्यं जिनमन्दिरं निर्मापयितुं सङ्कल्पः कृतः । ततश्चतुर्दशाधिकविंशतिशततमवैक्रमाब्दे (२०१४)श्री**सिरोहीरोडा**भिधेऽग्निरथविश्रामस्थाने रम्ये भूमिभागे जिनप्रासादनिर्मापणार्थं शिलारोपणं व्यधत्त ताभ्याम् । ततः क्रमेण सपादलक्षरूप्यकव्ययेन महामण्डपमण्डितं चारुपञ्चालिकापरिवृतं तुङ्गतोरणराजिष्णु साक्षात्सिद्धालयोपमं श्रीजिनगेहं निर्माप्य तत्र वैराग्यवारांनिधिश्रीमद्**विजययशोदेवसूरिवर**-श्रीमद्**मानविजया**द्येकादशपन्न्यासप्रवराऽनेकस्थविर-बाल-युव-वृद्ध-शतातीतशिष्यप्रशिष्यमुनिव्रातपरिवृतैः प्रतिक्षिप्तलुम्पाकमत-न्यायाम्भोधिश्रीमद्**विजयानन्दसूरीश्वर**पट्टधरनिःस्पृहशिरोमणि-सच्चारित्रचूडामणि-श्रीमद्**विजयकमलसूरीश्वर**पट्टधारि-पाठकवरश्रीमद्**वीरविजय**विनेयरत्न-सकलागमरहस्यज्ञ-परमगीतार्थाऽशेषशेमुषीशालिकुलविद्वस्यमान-श्रीमद्**विजयदानसूरीश्वर**पट्टधरैः स्वगुरुप्रदत्तसिद्धान्तमहोदधिपदधारिभिर्गच्छाधिपतिभिः श्रीमद्**विजयप्रेमसूरीश्वरैः** प्रतिष्ठापितम् **अर्बुदाचल**तीर्थात्समानीतं प्रशमरसकन्दकल्पं **श्रीनाथनमिनाथ**मूलनायकबिम्बं षोडशोत्तरविंशतिशततमविक्रमीयवर्षे (२०१६)माघवमासे शुक्लपक्षे चतुर्थ्यां तिथौ शुभे च मुहूर्ते महता महेन । तदानीमन्यान्यपि प्रतिष्ठापितानि दर्शनमात्राद् दुरितध्वंसीनि श्रेष्ठिरतनचन्द-खुबचन्दद्रव्यनिर्मापितानि चत्वारि**श्रीचन्द्रप्रभस्वाम्यादि**बिम्बानि । अपि च तद्दिने हर्षातिरेकेण चतुर्विधः सङ्घोऽनेकविधसामग्रीभिर्मिष्टान्नादिभिः सत्कारितः सन्मानितश्च विनयवचनप्रतिपत्त्या पुण्यभाग्भ्यां ताभ्याम् । तदनु तद्वर्षे तन्मासतत्पक्षस्य षष्ठ्यां तिथ्यां श्री**पिण्डवाडा**नगरस्थद्विपञ्चाशद्देवकुलिकाकलितविश्वानन्ददायकजिनमन्दिरे **श्रीवीरविभु**मूलनायकबिम्बस्य प्रतिष्ठावसरे एकाधिकपञ्चसप्ततिसहस्ररूप्यकोत्सर्पणेन स्वमातृमनोरथपूरणायोत्तुङ्गप्रासादशिखरे ध्वजारोपणं कृतवान् सोत्साहस्तज्जिनगेहे निर्मापितैकदेवकुलिको वदान्यः **खुबचन्द**नामा श्रेष्ठी ।

ततः सप्तदशाधिकविंशतिशततमे (२०१७)वैक्रमाब्दे श्री**पिण्डवाडा**नगरे वर्षावासं कृतवति गच्छाधिपतौ श्रीमद्**विजयप्रेमसूरीश्वर**प्रभौ वन्दनादिकार्यार्थमागतवन्तौ श्रेष्ठी**रतनचन्द्र-खुबचन्द**नामानौ । श्रुतश्च पूज्यगच्छाधिपतिश्रीमुखात् प्राचीनकर्मशास्त्राधारेण सरलसुबोधपद्धत्या बहुविस्तराभिनवकर्मशास्त्राणां निर्माणोदन्तः । ततः श्रुतभक्तिनिभृतचेतसौ तिमिकोशतज्ञतरलकमलाव्ययेन सुवर्णगिरिवत् स्थिरां मोक्षश्रियं प्राप्तुकामौ तौ दशसहस्राणि रूप्यकाणि **क्षपक-**

श्रेणिग्रन्थरत्नमुद्रणाद्यर्थं कर्मशास्त्रप्रकाशनप्रवणायै प्रकाशकसंस्थायै दातुं निश्चितवन्तौ । ततः कालान्तरे हृद्रोगेन कालं गतेऽपि वदान्ये रतनचन्दाख्ये तदीयेन स्वीयेन च द्रव्येण पञ्चशताचामलसिद्धचक्रतपआराधनादिनिमित्तकसाधर्मिकवात्सल्यशान्तिस्नात्रमहोत्सवपूर्वकोद्यापनादिकानि पुण्यकार्याणि व्यदधत खुबचन्दाभिधेन श्रेष्ठिना विंशत्यधिकविंशतिशततमवैक्रमाब्दे (२०२०) पिण्डवाडानगरे वर्षावासं कृतवति गच्छाधिपतौ । एष चैकसप्तत्यधिकद्विशतमूलगाथाकः (२७१)अनुमानतः सपादसप्तदशसहस्रश्लोकप्रमाणया सयन्त्रचित्रकस्वोपज्ञवृत्त्या विभूषितः क्षपकश्रेणिग्रन्थस्तयो रतनचन्द खुबचन्दश्रेष्ठिपुङ्गवयोर्द्रव्यसाहाय्येन प्रकाश्यत इति कृतसुकृतौ तावन्ये च भव्यात्मानोऽस्याः पठनपाठनस्वाध्यायादिना क्रमेण शुक्लध्यानेन क्षपकश्रेणिमारुह्य निःश्रेयसमश्नुवतामिति ।

स्वोपज्ञवृत्तियुक्ता क्षपकश्रेणिरनुमानतः प्रमिता ।
श्लोकैः सपादसप्तदशसहस्रैरस्त्यनुष्टुब्भिः ॥३२॥ (विपुलार्या)

शिशुचेष्टाप्येषा मम न भवति हास्यास्पदं कृतिनां
यस्माद्धि यथाशक्ति शुभे यतनीयमिति ते प्राहुः ॥३३॥ (उपगीतिः)

यावद् घण्टायेतेऽर्केन्दू सुरगिरिगजे जयतु तावत् ।
इभगजयुगनयनमिते २४८८ वीराब्दे निर्मिता वृत्तिः ॥३४॥ (पथ्यार्या)

स्वोपज्ञक्षपकश्रेणिवृत्तिरचनेन तु गुणरत्नेन ।
कुशलं यदापि तेन क्षपकश्रेणि जगत् समारुह्यात् ॥३५॥ (गीति)

इति समाप्ता प्रशस्ति ।

तत्समाप्तौ च समाप्ता

श्रीमत्तपोगच्छगगनाङ्गणदिनमणि-सुविहितगच्छाधिपति-सिद्धान्तमहोदधि-सच्चारित्रचूडामणि-कर्मशास्त्रनिष्णात--प्रातःस्मरणीयाचार्यशिरोमणि–श्रीमद् विजयप्रेमसूरीश्वरान्तेवासि-स्याद्वादनयप्रमाणविशारद-पन्न्यासप्रवरश्रीमद् भानुविजयगणिवर्यशिष्यप्रशिष्य-श्रीमद्गच्छनायकप्राध्यापित-वाचयममतल्लिका-जयघोषविजय-धर्मानन्दविजय-हेमचन्द्रविजय-गुणरत्नविजयसंगृहीतकर्मक्षपणापदार्थकाया मुनिपुङ्गवजितेन्द्रविजयचरणारविन्दचञ्चरीकायमाणा-ऽन्तिषदा मुनि-गुणरत्नविजयेन विरचिताया. क्षपकश्रेणे स्वोपज्ञवृत्ति. ।

परिशिष्टानि

INDEXES

प्रथमं परिशिष्टम्

:: क्षपकश्रेणिमूलगाथाः ::



पणमिअ सिरिपासजिणं सुरअसुरणरिंदवंदिअं णाहं ।
वुच्छामि खवगसेढिं सपरहिअट्ठं गुरुपसाया ॥ ॥
तत्थ य पंच अहिगारा अहापवत्तकरणं तहं हवेइ ।
करणमपुव्वं हवए सवेअअणियट्टिकरणं च ॥२॥
हयकण्ण-किट्टिकरण-तयणुहव-अवगयकसायअद्धा य ।
तह अत्थि सजोगिगुणट्ठाणमजोगिगुणठाणं च ॥३॥
अणचउग दिट्ठितिगं च खविअ उज्जमइ सेसखवणाए
आढवइ अप्पमत्तो अहापवत्तकरणं समणो ॥४॥
परिणामट्ठाणाइं अणुसमयमसंखलोगमेत्ताणि ।
छड्ढमुहाऽणंतगुणा सोही तिरिया उ छट्ठाणा ॥५॥
करणस्स पढमसमये सव्वत्थोवा जहण्णिया सोही ॥
तो पढमसंखभागं जाव जहण्णा अणंतगुणा ॥६॥
तत्तो पढमे समये उक्कोसा होअए अणंतगुणा ।
तो उवरि पढमसमये होइ जहण्णा अणंतगुणा ॥७॥
एवं हेट्ठे उवरि य जाव जहण्णाऽत्थि चरिमसमयम्मि
तत्तो सेसुक्कोसा कमेण हुन्ते अणंतगुणा ॥८॥
मणवयणोरालाणं जोगे वट्टेइ अण्णयरे ।
सुअउवजोगे मइसुअचक्खुअचक्खुसु वा इगकसाये
॥ ९ ॥ (उद्गीति)

पुरिसाईणं वेअे अण्णयरम्मि य विसुज्झयरसुक्काए ।
पयइठिइरसपएसा पडुच्च णेयाणि बन्धुदयसंताइं
॥१०॥ (आर्यागीति.)

सेकाले कुणइ अपुव्वकरणमे अम्मि होअइ विसोही ।
गोमुत्तिकमेण जहण्णा उक्कोसा अणन्तगुणा ॥११॥
बीयकरणपढमसमयओ ठिइघाओ सुहासुहाण तहा ।
गुणसंकमो असुहपयडीणं अणुभागघाओ य ॥१२॥
अप्पो य ठिइबंधो गुणसेढि त्ति अहिगारपंचतयं ।
जुगवं पयट्टइ तओ णाम अपुव्वकरणं अत्थि ॥१३॥
उक्कोसं ठिइखण्डं पि पल्लसंखेज्जभागमाणं खु ।
खंडइ अवरत्तो संखेज्जगुणं जाव तक्करणं ॥१४॥
असुहपयडीण दलिअं तु असंखगुणं पखिवइ अन्नासुं ।
बज्झंतीसु सपयडीसु अणुखणं स गुणसंकमो णेयो ॥१५॥
(गीति)

खंडइ अणंतभागा रसस्स णत्थि य सुहाण रसघाओ ।
एक्केक्कम्मि ठिइविघाये रसघाया सहस्साइं ॥१६॥
बंधो अंतोकोडाकोडी सत्ताउ संखगुणहीणो ।
पुण्णे ठिइबंधे अण्णो होज्जइ पल्लसंखभागोणो ॥१७॥
(गीति)

गुणसेढीए आयामो हवए करणदुगऽहिओ गलिओ ।
खिवइ दलं कमसो घेत्तूण-ऽणुसमयं असंखगुणणाए
॥१८॥ (गीतिः)

उव्वट्टणाअ खु असंखगुणा ओवट्टणा तओ सत्ता ।
जं उक्किण्णरसं असंखसो उव्वट्टणाअ होएइ ॥१९॥
(गीतिः)

पढमसेऽपुव्वस्स उ वे णिद्दा सुरगइप्पमिइतीसा ।
छट्ठंसे हासरइभयदुगुञ्छाऽन्ते य बंधत्तो ॥ २० ॥

वोच्छिज्जंति छ हासाई उदयत्तो य ठिइबंधो ।
पढमसमयओ चरिमसमयम्मि संखेज्जगुणहीणो
॥२१॥ (उपगीति)

जं ठिइसंतं अंतोकोडाकोडी अपुव्वआइखणे ।
तं संखेज्जगुणूणं अंते संखठिइघायेहिं ॥ २२ ॥

सेकाले अणियट्टिं णासेउ आढवेइ ठिइखंडं ।
तं हस्सत्तो संखेज्जभागअहियं तु उक्कोसं ॥ २३ ॥

पढमखणे देसोवसमणानिकायणनिहत्तिकरणाइं ।
वोच्छिन्नाइं अंतोलक्खं पढमो उ ठिइबंधो ॥२४॥

जं ठिइसंतं अंतोकोडाकोडी अपुव्वपढमखणे ।
होज्जा तं अंतोकोडी अनियट्टिपढमखणम्मि ॥२५॥

पढमे ठिइखंडे पुण्णे तुल्लं हवइ संतकम्मं तु ।
सव्वेसिं जीवाणं ठिइखंडं च वि हवइ तुल्लं ॥२६॥

संखठिइबंधगमणे असण्णितुल्लो पहवइ ठिइबंधो ।
चउतिदुएगिंदियतुल्लो बंधो अंतरे य बहुबंधा ॥२७॥
(गीति.)

ठिइबंधबहुसहस्सेसु गयेसु होइ जं तु एक्केक्कं ।
तं भणिहामो णत्थि विसेस णियमो कहिमु वयं ॥२८॥

एग-दिवड्ढ-दु-पल्लाणि वीसगाणं च तीसगाणं च ।
मोहस्स य परिवाडीअ दुगस्स उ सखगुणहीणो ॥२९॥
सव्वेसिगतिभागुत्तरपल्लाइ खलु वीसगाईण ।
ताउ पर तीसाण तहेव सव्वेज्जगुणहीणो ॥ ३० ॥
मोहस्स पल्लमेत्तो सेसाण पल्लसखभागमिओ ।
ताउ पर सव्वेसिं कम्माण सखगुणहीणो ॥ ३१ ॥
पुणग वधेऽगुहस्स तु वीसगाइण सखगुणो ।
तो वीसगाण जायइ पलियअसखेज्जभागमिओ ॥३२॥
(उपगीति)

तो तीसगाण पल्लस्स असखसो तओ य मोहस्स ।
पल्लअसखसोऽन्तोऽल्लक्खव सत च सत्तण्ह ॥ ३३ ॥
ताउ असखगुणो एक्काहारेणेइ तीसगाण अहो ।
मोहट्ठिइबधो तो वीसगहेट्ठा कमा असखगुणो ॥३४॥
(गीति

तो वेयणिज्जबधो सेसाणं तीसगाण उवरिं तु ।
तो सत्तीसगाण ठिइबधो वीसगाण अहो ॥३५॥
ताहे वीसगबधा तइयस्स विसेसअहिगो खु ।
एवंकमेण गच्छइ बंधो अह भणिमु ठिइसत ॥३६॥
(उपगीति)

तत्तो असण्णितुल्ल ठिइसत ताउ बधव्व ।
ता णेय जावतप्पबहुत्त खलु ण पाविज्ज ॥३७॥
(उपगीति)

चरिमप्पबहुत्ताउ असंखखणपबद्धुदीरणा होइ ।
नोऽट्ठकसाया खवए जहण्णठिइसकमो चरिमे ॥३८॥
तो थावरतिरिनिरयायवदुगसाहारणेगविगलाइ ।
थीणद्धितिग च खवइ तो वधइ देसघाईणि ॥३९॥
दाणतरायमणपज्जवाण तो लाभओहिदुगकम्माण ।
तो सुअअचक्खुभोगाण नओ चक्खुस्स अहुवभोगमईण
॥४०॥ (आर्यागीति)

तो वीरियस्स रसबधो हवए देसघाई उ ।
तो तरसपयडीण-ऽन्तर कुणेइ ठिइबधकालेण ॥४१॥
(उद्गीति)

भिन्नमुहुत्त उदियाण आवलिया पराण पढमठिई ।
सढ्ढीण समाऽन्ना पुरिसाईण कमसो विसेसऽहिया
॥४२॥ (गीति

सुदयाण पयडीणं पढमठिईए खिवेइ उक्किण्ण ।
दलिय बज्झतीण अबाहुवरिमचीयगठिईए ॥४३॥

मोहस्स संखवरिसा बधो इगठाणिआ य बधुदया ।
तस्सेव आणुपुव्वीसकमणमसकमो य लोहस्स॥४४॥
(गीति)

तह आवलिगासु छसु उदीरणा संढवेअखवणा य ।
कयअतराण सत्तऽहिगाग जुगव पयट्टंते ॥४५॥
कयअंतराण मोहस्स बधुदयसंकमा रसे होन्ति ।
कमसो अणतगुणसेढीए अह ते दले भणिमो ॥४६॥
होन्ति पएसे कमसो बधउदयसकमा असखगुणा ।
सेकाले सेकाले रसबधुदया अणतगुणहीणा ॥४७॥
(गीतिः)

रससकमो उ खण्डे पुण्णे होज्जइ अणंतगुणहीणो ।
सेकाले सेकाले पएसबंधो चउविहो य ॥४८॥
सेकाले सेकाले पएसउदयो असखगुणो ।
सेकाले सेकाले दलसकमण असखगुण ॥४९॥
(उपगीतिः)

सबइ बहुगो उदयो तत्तो बधो-ऽत्थि ताउ अणुभागे ।
सेकाले उदयो तत्तो बधो-ऽणतगुणहीणो ॥५०॥
ठिइखडेसु गयेसु सढ सव्व खवेइ तत्तो थिं ।
खवणद्धासखसे बधो संखवरिसा तिघाईण ॥५१॥
(गीति)

तत्तो ठिइखडपुहुत्तेणं इत्थिं खवेइ णिस्सेस ।
ताहे सत मोहस्स संखवासपमिअं होइ ॥५२॥
सेकाले खवए सत्तणोकसायेऽप्पबहुअं च ।
मोहस्स ट्ठिइबधो थोवो घाईण सखगुणो ॥५३॥
(उपगीति)

तो वीसाण असंखगुणो तो तइयस्स खलु विसेसहिओ ।
ठिइसतं मोहस्सऽप्पं घाईण असखगुण ॥५४॥
तो वीसाण असखगुण तो तइयस्स खलु विसेसऽहिअ
खवणद्धासखसेऽघाईणं सखवासिगो बधो ॥५५॥
(गीति)

खवणाद्धासंखसेसुं सतं सखवासिअ घाईण ।
आगालो पडिआगालो सेसे आलिगादुगे वोच्छिन्ना
॥५६॥ (आर्यागीति)

समयाहिअआवलिसेसाअ जहण्णा उदीरणा होई ।
चरिमे समयूणदुआवलिबद्ध तदुदयट्ठिई सेसा ॥५७॥
(गीतिः)

पुरिसस्स अट्ठवरिसा सोलसवरिसाणि संजलणाणं ।
बंधो सतं घाइअघाईण संख-ऽसंखवासाइ ॥५८॥
(गीति)

हयकण्णादोलोव्वट्टणउव्वट्टणकरणअद्धा ।
हयकण्णकरणकालस्स तिन्नि णामाणि णेयाणि ।५९।
(उपगीति)

ठिइसत संखसहस्सवासमेत्त तयाणि मोहस्स ।
अंतोमुहुत्तऊणो सोलसवासपमिओ बंधो ॥ ६० ॥

रससत माणस्सप्पमह विसेसाहिअक्कमेण खलु ।
होज्जाइ कोहमायालोहाण तव्व बंधो वि ॥ ६१ ॥

रससंड कोहाईण कमेण विसेसअहिअमह ।
घाइअ ऽवसेसफड्डाइ लोहाईण ऽणंतगुणणाए ॥६२॥
(उद्गीति)

संजलणजहण्णगपुव्वफड्डगत्तो अणंतगुणहीण ।
करए उक्कोसमपुव्वफड्डग त कय न पुव्व ति ॥६३॥
(गीति)

ताणि अपुव्वाणिगदुगुणहाणिफड्डाणऽसंखइमभागो ।
एत्थ पुण भागहारो ओकड्ढणाओ असंखगुणो ॥६४॥

सो पुण असंखभागो पल्लपढमवग्गमूलस्स ।
कमसो अपुव्वगाणाइवग्गणाऽत्थि य विसेसऽहिआ
॥६५॥ (उपगीति)

कोहाईण अपुव्वाणि फड्डगाइ अणुकमेण ।
कुणए विसेसअहियाइ पढमखणे य अस्सकण्णस्स
॥६६॥ (उद्गीतिः)

अणुभागे चरिमअपुव्वाण हवइ पढमवग्गणा तुल्ला ।
लोहाईण अणूए अविभागा खलु विसेसअहियकमा ।
॥६७॥ (गीति)

देइ अपुव्वेसु विसेसूणकमेण दल तओ देइ ।
पुव्वाईअ असंखगुणूण सेसासु उण विसेसूण ॥६८॥
(गीति.)

दीसइ दलिअ पुव्वापुव्वेसु फड्डगेसु गोपुच्छेण ।
पुव्वाईअ अपुव्वाइत्तो दीसइ असंखभागविहीणं
॥६९॥ (आर्यागीति)

पढमसमये अपुव्वाणि फड्डगाइं अणंतभागमिआइं ।
हेट्ठाणि पराण उदिण्णाइं बंधो तहेवऽणंतगुणूणो
॥७०॥ (आर्यागीति)

अणुसमयमसंखगुणं दलिअं घेत्तूण पकुणेइ ।
पडिसमयमपुव्वाणि खलु असंखेज्जगुणहीणाइ
॥७१॥ (उपगीति.)

तक्कालिएसु देइ अपुव्वेसु दलं विसेसूणं ।
तो पुव्विल्लअपुव्वाईअ असंखगुणहीणदल ॥७२॥
(उपगीति.)

तत्तो विसेसहीणकमेणं जा पुव्वअन्तिमगा ।
दीसइ दलिअं पुव्वापुव्वेसु विसेसहीणकम ॥७३॥
(उपगीतिः)

इगखंडे पुण्णेऽप्पाबहुगं अट्ठारसपयाण ।
कोहाईण अपुव्वाइं फड्डाइ विसेसअहियाइं ॥७४॥
(उद्गीति)

तत्तो एगदुगुणहाणिफड्डगाइ असंखगुणिआणि ।
तत्तो अणंतगुणिआ इगफड्डगवग्गणा होन्ति ॥७५॥
तत्तो य वग्गणा कोहअपुव्वगफड्डगाणऽणंतगुणा ।
माणाईण अपुव्वगफड्डाण वग्गणा विसेसऽहिआ ॥७६॥
(गीति)

लोहस्स पुव्वफड्डाणि अणंतगुणाणि वग्गणा सि च ।
एव जाव अणंतगुणा कोहस्स खलु वग्गणा होंति ॥७७॥
(गीति)

चरिमे समये मोहस्स अट्ठवासपमिओ हवइ बंधो ।
इयराण संखवाससहस्साइ भणिमु ठिइसत ॥ ७८ ॥

घाईण संखवाससहस्साणि पराण उण असंखसमा ।
एव हयकण्णकरणअद्ध खलु परिसमावेइ ॥७९॥
पुण्णे हयकण्णे आढवेइ किट्टिकरणं तम्मि ।
निव्वत्तइ पुव्वापुव्वफड्डगत्तो य किट्टीओ ॥ ८० ॥
(उपगीति)

जेट्ठा किट्टी उ अणंतगुणूणा पढमवग्गणाहिंतो ।
किट्टीओ फड्डस्स अणंतिमभागपमिआ होंति ॥८१॥
एगेगस्स कसायस्स तिण्णि तिण्णि अहवाऽणंता ।
संगहकिट्टी तिन्नि अवतरकिट्टी अणंताओ ॥ ८२ ॥
(उपगीति)

कोहाईणं उदयेण पडिवन्नस्स कमसो हि ।
बारस णव च्छ तिण्णि य संगहकिट्टीउ जायन्ते ।
॥८३॥ (उपगीति)

एगेगाए संगहकिट्टीअ अवतराअ उ अणंता ।
होंति य किट्टीओ पडिसमयमसंखगुणहीणाओ ॥८४॥

दलिअं तु पडिखण उक्किरइ असंखगुणिअं च किट्टीण ।
अह किट्टीण अणुभागाप्पाबहुअं भणिज्जेइ ॥ ८५ ॥
लोहस्स पढमसंगहकिट्टीअ जहण्णगाअ खलु ।
थोवा रसाविभागा तत्तो बिइयाअऽणंतगुणिआऽत्थि
॥८६॥ (उद्गीति)
एवं जाव चरमकिट्टीए बीयपढमाअऽणंतगुणा ।
पुव्वंव्व जाव अंतिमकिट्टीए ताउ तइयाए ॥८७॥
पढमाअऽणंतगुणिआ जावं चरिमाअ एवं च ।
मायाए तिण्ह किट्टीसुं णेआ अणंतगुणणाए ॥८८॥
(उद्गीति)
तत्तो माणगकोहाण तिण्ह रसाविभागा य ।
कमसो उ जाव कोहुक्कोसाए होज्जऽणंतगुणा ॥८९॥
(उपगीतिः)
अह संगहकिट्टीअंतराण तहऽवंतरंतराण खलु ।
भणिहामो अप्पाबहुअं ज अत्थि सुअअणुरूवं ॥९०॥
तत्थ य लोहपढमऽवंतरकिट्टीअंतराउ आढविऊण ।
कोहचरिमऽवंतरकिट्टिअंतर जावऽणंतगुणिअं णेयं
॥९१॥ (आर्यागीति)
तो लोहस्स पढमसंगहकिट्टीअंतर अणंतगुण ।
तो बीयअंतरमह तइयकिट्टीअंतर अणंतगुणं ॥९२॥
(गीति)
अह लोहगमायाणंतरं अणंतगुणिअं तहेवियराण ।
कोहचरिमाउ लोहअपुव्वाइमवग्गणान्तर विण्णेयं ।
॥९३॥ (आर्यागीतिः)
अह संगहकिट्टीण पएसअप्पाबहुत्त तु ।
माणस्स पढमसंगहकिट्टीअ पएसगा थोवा ॥ ९४ ॥
(उपगीतिः)
तत्तो बीयाए उ विसेसऽहिया होन्ति माणस्स ।
तो तइआए अहिआ तो कोहस्स विइयाअ अब्महिआ
॥९५॥ (उद्गीति)
तो तइआए अहिआ तो मायाएऽहिआ कमा तीसु ।
तो लोहस्स कमेण तीसु विसेसाहिआ तत्तो ॥९६॥
कोहस्स पढमसंगहकिट्टीए होंति संखगुणा ।
एवमवंतरकिट्टीणऽप्पाबहुअं मुणेयव्वं ॥९७॥
(उपगीतिः)
लोहजहण्णगकिट्टिपहुडिकोहुक्कोसकिट्टिअंतासु ।
सव्वासुं देइ दल विसेसहीणक्कमेण खलु ॥९८॥
लोहस्स जहण्णगकिट्टित्तो कोहस्स जेट्ठकिट्टीए ।
दलिअं परंपराअ वि दिज्जेइ विसेसहीणं हि ॥९९॥
दलिय तु दिस्समाणं लोहजहण्णाउ पहुडि कोहस्स ।
उक्कोसं किट्टिं जाव विसेसूणक्कमेणऽत्थि ॥१००॥
किट्टी कुणमाणो ओवट्टइ मोहस्स ठिइरसा णियमा ।
सो य न उव्वट्टइ ओवट्टइ उव्वट्टइ परो उ ॥१०१॥
बीयाइखणेसु असंखगुणक्कमेणं दल तु घेत्तूणं ।
कुणइ अहो संगहकिट्टीण अपुव्वा असंखगुणहीणा
॥१०२॥ (गीति)
देइ अपुव्वंतत्तो पुव्वाईए असंखभागूणं ।
पुव्वंताउ अपुव्वाईअ असंखंस उत्तरं दलिअं ॥१०३॥
(गीतिः)
सेसासु विसेसूणं तेणं तेवीसउट्टकूडाणि ।
होन्ते दीसइ दलिअं सव्वत्थ अणंतभागूण ॥१०४॥
नरतिरियइगपणिंदितसदुओरालियसरीरजोगेसु ।
मणवयजोगचउक्के नपुंचउकसायमग्गणासुं च
॥१०५॥ (गीति)
णाणाणाणदुगाविरइसामइअचक्खुदुगछलेसासु ।
भवमिच्छुवसमवेयगखाइअसम्मेसु सण्णिइयरासु
॥१०६॥ (गीति)
आहारम्मि य बद्धपएसा होअन्ति णियमत्तो ।
किट्टीकाराणं किट्टिवेअगाणं च सतम्मि ॥१०७॥
(उपगीति)
निरयसुरविगलपुढवीजलानलपवणवणस्सईसु तह ।
वेउव्वाहारगदुगकम्मणजोगित्थिपुरिसवेएसु ॥१०८॥
(गीतिः)
ओहिविहंगमणेसु तह देसविरइपरिहारछेएसुं ।
ओहिगदंसणमिस्सासायणणाहारगेसु भयणाए
॥१०९॥ (गीति)
केवलदुगअभवियसुहुमअहक्खायेसु णियमत्तो ।
बद्धपएसा णत्थि य सते सभवअभावत्तो ॥११०॥
(उपगीतिः)
सायासायेसुं पज्जत्तापज्जत्तगेसुं च ।
एगिंदियाण य असंखिज्जेसु भवेसु णियमत्तो ॥१११॥
(उपगीति)
अणुत्तरवुड्ढीए संखतसभवेसु वद्धदलमत्थि ।
सतम्मि सव्वलिंगेसु कम्मसिप्पगुरुठिइरसेसुं वा
॥११२॥ (गीतिः)

सवगाणं संते णियमत्तो कड्डियदलिअं तु वट्टेइ ।
सव्वठिईसु तह सव्वासु किट्टीसु णियमेणं ॥११३॥
किट्टीकरणे पुव्वापुव्वाइं फड्डगाणि अणुहवइ ।
पढमट्ठिईअ आवलिगासेसाए समत्तद्धा ॥११४॥
किट्टिकरणस्स चरिमे बंधो मोहस्स चउमासा ।
अंतोमुहुत्तअहिया पराण सखिज्जसहस्सवासाइं
॥११५॥ (उद्गीति)

ठिइसंत मोहस्सऽडवासा अंतोमुहुत्तअब्भहिआ ।
घाईण संखवरिससहस्साणि असंखवच्छराऽन्नाणं
॥११६॥ (गीतिः)

तत्तो य कोहपढमं ओकड्ढित्तु करेइ पढमठिइं ।
वेयइ बंधो मोहस्स उ चउमासा पराण पुव्वुत्तो
॥११७॥ (गीति)

वेइज्जमाणकिट्टीअ दलमसंखगुणणाअ पढमठिईए।
चरिमणिसेगा बीयपढमे असंखगुणमुवरि उ विसे-
सूणं ॥११८॥ (आर्यागीति)

वेइज्जमाणकिट्टीए सव्वठिईसु होन्ति सव्वा किट्टी ।
नवरं उदये खलु मज्झिमात्थि सव्वा पराण बिइयठिईए
॥११९॥ (आर्यागीति)

ठिइसंत मोहस्स वरिसट्ठग देसघाइ रससंतं ।
णवरं समयूणा-लिगाए कोहस्स सव्वघाइ भवे
॥१२०॥ (गीति)

कोहाइपढमसंगहकिट्टीए बहुअसंखभागमिआ ।
मज्झिमकिट्टी वज्झते वेइज्जति कोहपढमाए ॥१२१॥
(गीति)

कोहपढमाअ हेट्ठिमणुभया थोवा तओ हविज्जति ।
अहिआ हेट्ठिमुदिण्णा तत्तो उवरिल्लअणुभया अहिआ
॥१२२॥ (गीति)

तत्तो उवरिमुदिण्णा विसेसअहिया हवन्ति तत्तो वि ।
होति असखेज्जगुणा उभयाउ अवन्तरा किट्टी ॥१२३॥
मोहस्सऽणुभागाण अणुसमयोवट्टणा गुरु किट्टी ।
गोमुत्तियाअ उदये बंधेऽणुखणं अणंतगुणहीणा ॥१२४॥
(गीति)

गोमुत्तीअ पडिखणं बंधे उदये अणंतगुणहीणा ।
हस्सा णासइ संगहकिट्टीणुवरिमअसंखंसं ॥१२५॥
संगहकिट्टीग दल हेट्ठे संकामए ण उण उवरिं ।
संकामइ तास दल तावं जाव संगहेट्ठिमापढमा ॥१२६॥
(गीतिः)

जं संगहकिट्टिं अणुहवए तयणंतराअ इयरत्तो ।
संकामइ दलिअं संखगुणं अप्पबहुअं भणिमो ॥१२७॥
कोहबिइयतइयत्तो माणगपढमाअ माणगतिगत्तो ।
मायापढमाए मायाअ तिगत्तो य लोहपढमाए॥१२८॥
(गीति)

लोहपढमाउ तव्विइयाए ताउ च्चिअ तइयाए ।
संकामेइ पएसा विसेसअहिअक्कमेण तत्तो वि
॥१२९॥ (उद्गीति)

कोहपढमाउ माणपढमाअ संखेज्जगुणिआ तो ।
तइयाअ विसेसहिआ तो सखगुणा य कोहबिइयाए
॥१३०॥ (उद्गीतिः)

बंधपएसा णिव्वत्तए अपुव्वा अवन्तरा किट्टी ।
पढमाण चउण्ह अवन्तरकिट्टीअंतरेसु तु ॥१३१॥
गंतूण असखगुणिअपल्लपढमवग्गमूलठाणाणि ।
एगेगवअपुव्वं किट्टिं खलु किट्टिअंतरे कुणइ
॥१३२॥ (गीति)

बवाइपुव्वकिट्टीअ पएसग्गं बहुं देइ ।
तत्तो विसेसहीणक्कमेण जा हेट्ठिमा अपुव्वाए
॥१३३॥ (उद्गीति)

तत्तो अपुव्वकिट्टीअ अणंतगुणं तओ दलिअं देइ ।
पुव्वाअ अणंतगुणूण एव जाव बंधचरिमकिट्टी
॥१३४॥ (रिपुच्छन्द)

कुणए वज्जिय कोहपढमं तु एगारसाण हेट्ठम्मि ।
तहऽवतरकिट्टीअंतरेसु संकमदला अपुव्वाओ ॥१३५॥
(गीति.)

संकमओ णिव्वत्तिज्जमाणकिट्टीसु संगहंतरजत्तो ।
होंति अवंतरकिट्टी अंतरजाओ असखगुणिआऽपुव्वा
॥१३६॥ (आर्यागीतिः)

संगहअंतरजासु णिखेवो किट्टिकरणव्व बंधव्व ।
परजासु पल्लमूलासखसो अंतरं णवरं ॥१३७॥
कोहगबद्धदलं पंचमआवलियाअ सव्वकिट्टीसु ।
माणाईण वि बद्धदलिअ जहासंभव णेयं ॥१३८॥
उदयठिईए छण्ह आवलियाण हवन्ति अच्छूढा।
समयपबद्धा छूढा सेसा तह सव्वभवबद्धा ॥१३९॥
एगाठिईअ इगाहियकमेण खलु समयमेत्तपबद्धाण ।
होज्जन्ति सेसगाइ जेट्ठाउ पलियअसखभागस्स
॥१४०॥ (गीति)

इगसमयपबद्धस्स उ सेसेण ठिई जुआऽप्पगाऽणेगाणं ।
होन्ति असंखगुणा पल्लअसंखंसपमिआण य असंखसा
॥१४१॥ (आर्यागीतिः)

खणभवपबद्धसेसाणि इगठिईए इगाहिअक्कमेणं ।
समयाहिअउदयावलिय वज्जिय सव्वगठिईसुं
॥१४२॥

जाण समयपबद्धाण सेसाणि इगठिईअ ते थोवा ।
तेसु अहिआ आवलिअसंखंसे उ दुगुणा य जवमज्झं
॥१४३॥ (ललिता)

सेसाणि जट्ठिईए मा सामण्णा परा असामण्णा ।
एगा इगाहिअकमा निरन्तराऽऽवलिअसंखभागमिआ
॥१४४॥ (गीतिः)

एक्केक्केण थोवा ताअ कमेणं विसेसअहिआओ ।
आवलिअसंखभागे दुगुणा तह होइ जवमज्झा॥१४५॥

एवइ असमयपाउग्गे आवलियाअसंखभागट्ठाणे ।
पल्लासंखंसो त्ति विमेमो णेयो इआणि भणिमो अण्ण
॥१४६॥ (आर्यागीतिः)

णिल्लेवणठाणाइ पल्लस्स असंखभागमेत्ताणि ।
अण्णे भणंति कम्मअवट्ठाणम्मि उ असंखसा ॥१४७॥

जीवस्स जहण्णगणिल्लेवणठाणे अईअकालम्मि ।
णिल्लेवियाण समयपबद्धाणाऽप्पो गओ कालो
॥१४८॥

तत्तो बीये अहिओ तत्तो तइये विसेसहिओ ।
पलिओवमस्स य असंखेज्जंसे होअए दुगुणो
॥१४९॥ (उपगीति)

ठाणअसंखंसे जवमज्झं पल्लस्स छेदणअसंखंसो ।
णाणागुणहाणी तो असंखगुणमंतरं दुगुणहाणीणं ।
॥१५०॥ (आर्यागीति)

एवं भवबद्धाण परं लहु णिल्लेवणट्ठाण ।
गंतुं असंखठाणाणुवरिं एगत्थ होणइ जवमज्झ ॥१५१॥
(उद्गीति)

गापढ़ेसेण अईएऽप्पा णिल्लेविया उ समयपबद्धा ।
कमसो अहिया ठाणअसंखंसे च दुगुणा तहा जवमज्झं
॥१५२॥ (आर्यागीति)

णाणंतराणि पल्लस्स छेयणअसंखभागमेत्ताणि ।
तो एगअंतरमणंतगुणं भणियं सुअम्मि खलु ॥१५३॥

एगसमईयोऽणुसमयणिल्लेवणकालगो पहूओऽईयो
दुगुणूणो

आवलिअसंखभागे जेट्ठो आवलिअसंखंसो ॥१५४॥
(गाथा)

एगसमयंतरेणं अप्पा णिल्लेवियक्खणपबद्धा ।
कमसो अहिआ दुगुणा पल्लासंखेज्जभागम्मि ॥१५५॥

जवमज्झं ठाणअसंखेज्जइभागे तहेव भवबद्धा ।
गुरु णिल्लेवणअंतरमसंखभागो उ पल्लस्स ॥१५६॥

समयम्मि पहुडि इगाओ पल्लासंखंसखणभवपबद्धा ।
णिल्लेविज्जन्ति इगेगेण णिल्लेविया थोवा ॥१५७॥

कमसो अहिआ पल्लअसंखसम्मि दुगुणा तहा जवमज्झं ।
णाणंतरेहिं एगंतरछेयणयाइ खलु असंखगुणाइ॥१५८॥
(आर्यागीतिः)

जेट्ठोऽणुसमयणिल्लेवणकालोऽप्पो तओ इगे समये ।
णिल्लेविया उ भवबद्धा तत्तो य समयपबद्धा ॥१५९॥

तो खणपबद्धसेसयरहियठिई ताउ वग्गमूलं च ।
पल्लस्स तो पएसगुणहाणिठाणंतरं तत्तो ॥१६०॥

भवबद्धाणं णिल्लेवणठाणाइं कमा असंखगुणाइ ।
समयपबद्धाण णिल्लेवणठाणाणि उण विसेसहिआइ
॥१६१॥ (आर्यागीतिः)

अणुसमयअवेयणकालोऽसंखगुणो उ खणपबद्धस्स ।
अंतोकम्मठिईए तोऽणुसमयवेयणअनेहो ॥१६२॥

ताउ अवेयणकालो सव्वो तो सव्वगो उ वेयणकालो ।
कमसो य असंखगुणो तो कम्मठिई विसेसअहिया
होज्जा ॥१६३॥(आर्यागीति.)

जा दुचरिमममयमसंखगुणूणकमेण कोहपढमाए ।
नट्ठा किट्टी पढमखणावधअसंखभागपमिया ता ॥१६४॥
(गीति.)

वेइज्जंताइठिईअ दुआवलिसेसयाअ आगालो ।
छिण्णो खणुत्तरावलिसेसाअ जहण्णुदीरणाऽन्तुदओ
॥१६५॥ (गीति)

अंतोमुहुत्तहीणा बंधो मोहस्स सयदिणा घाईण ।
अंतोमुहुत्तहीणा दसवासा संखयासपमिओऽन्नाण
॥१६६॥ (आर्यागीति)

संतं मोहस्सतोमुहुत्तहीणअडमासहिगछदा ।
घाइअघाईण कमा संखासंखवरिसा णेयं ॥१६७

सेकाले ओकड्ढित्तु विइयकिट्टिं कुणेइ पढमठिइं ।
ताहे चेव स वेयइ बीय कोहस्स किट्टिं तु ॥ १६८ ॥

वेइज्जमाणकिट्टीअ पढमसमयम्मि पुव्वकिट्टीए ।
सेसं दुखणूणदुआवलिबद्धं उदयआवलिगयं च ॥१६९॥ [गीतिः]
बंधो उदओ णासो संकमणमपुव्वकिट्टिणिव्वत्ती ।
किट्टीअप्पाबहुअं पएसथोवबहुअं च पढमव्व ॥१७०॥ (गीति)
वेइज्जमाणगस्स कसायस्स अणुहवए उ जं किट्टिं ।
तं चेव बंधइ परं पढमं बवए न परं ॥१७१॥
चरिमे बंधो मोहस्स देसऊणा दिणा असीई उ ।
घाईणद्पुहुत्तं परा ग संखियसहस्सवरिसाइं ॥१७२॥ (गीति)
मोहस्स देसऊणा चउमासऽहिअपणहायणा घाईणं ।
संखसहस्सवरिसगाइं इयराण असंखवरिसा संतं ॥१७३॥ (आर्यागीति)
सेकाले तइयं किट्टिं ओकड्ढित्तु आइमठिइं तु ।
कुणए वेयइ बीयव्व य सेसपरूवणा णेया ॥१७४॥
चरिमुदये संजलणाण ठिइबंधो दुमासिओ होइ ।
ठिइसंत पुण चत्तारि होइ वरिसाणि मोहस्स ॥१७५॥
सेकाले माणपढमकिट्टिं ओकड्ढिऊण पढमठिइं ।
कुणए वेयइ सव्वो य विही कोहपढमव्व णायव्वो ॥१७६॥ (गीति)
चरिमुदये संजलणतिगस्स उ पण्णासवासरा बंधो ।
अंतोमुहुत्तऊणा चत्ता मासा हवइ संतं ॥१७७॥
सेकाले माणबिइयकिट्टिं ओकड्ढिऊण पढमठिइं ।
करए वेयइ अण्णो सव्वो वि विही य पुव्वव्व ॥१७८॥
अंतम्मि मोहबंधो चत्तालीसा दिणा उ देसूणा ।
संतं देसूणा बत्तीसा मासा कसायाणं ॥१७९॥
सेकाले माणतइयकिट्टिं उक्किरिय करइ पढमठिइं ।
वेयइ मोहस्स उ बंधो मासोऽन्तम्मि दुवरिसा संत ॥१८०॥ (गीति)
सेकाले मायाऽऽइमकिट्टिं उक्किरिय करइ पढमठिइं ।
वेयइ अण्णो सव्वो य विही पुव्वव्व णायव्वो ॥१८१॥
संजलणदुगस्स उ बंधो देसूणपणवीसदिवसाइं ।
चरिमे संत देसूणवीसमासा मुणेयव्वं ॥१८२॥
सेकाले पढमठिइं मायाबीयाउ करइ अणुहवएऽन्ते ।
देसूणा वीसदिणा बंधो मोहस्स सोलमासा संत ॥१८३॥ (आर्यागीति)

सेकाले पढमठिइं मायातइयाउ कुणइ अणुहवए ।
पण्णरसदिणा बंधो संजलणदुगस्स चरिमुदये ॥१८४॥
घाईणं मासपुहुत्त इयराणं च संखवरिसाणि ।
ठिइसंत दुण्ह संजलणाणं होइ इगवासो ॥१८५॥
घाइअघाईण कमा संखासंखियसमासहस्साइं ।
सेकाले पढमठिइं कुणेइ लोहपढमाउ वेयइ या ॥१८६॥ (गीति)
चरिमे बंधो लोहस्स मुहुत्तन्तो तहेव संतं पि ।
बंधो घाईण दिणपुहुत्तमघाईण वच्छरपुहुत्तं ॥१८७॥ (गीति)
घाईणं संत संखसहस्साणि वरिसाण होज्जेइ ।
तिण्ह अघाईण असंखेज्जाइं वच्छराणि खलु ॥१८८॥
सेकाले लोहबिइयमोकड्ढित्तु पढमठिइं तु करिज्जा ।
वेयइ ताहे लोहबिइयातइयाउ कुणइ य सुहुमकिट्टी ॥१८९॥ (आर्यागीतिः)
सुहुमा किट्टीओ तइयाए हेट्ठम्मि कुणइ खलु खवगो ।
ता सुहुमा कोहपढमसंगहकिट्टिव्व पण्णत्ता ॥१९०॥
लोहस्स बिइयकिट्टित्तो तइयाअ तह सुहुमकिट्टीसुं ।
तइयत्तो सुहुमासुं संकमइ दल न अण्णत्थ ॥१९१॥
सुहुमासु तइयत्तोऽप्प बीयाउ तइयाअ संखगुणं ।
तो बीयत्तो सुहुमासु दलं संकमइ संखगुणं ॥१९२॥
थोवा आसि अवन्तरकिट्टी कोहपढमाअ कोहखये ।
माणपढमाअ माणे खीणे मायापढमगाए ॥१९३॥
मायाणासे लोहपढमाअ पढमखणकयसुहुमकिट्टी ।
कमसो अब्भहियाओ संगसंखेज्जइमभागेणं ॥१९४॥
करइ सुहुमकिट्टीउ असंखगुणूणक्कमेण अणुसमयं ।
पडिसमयमसंखगुणक्कमेण दल देइ सुहुमासु ॥१९५॥
पढमसुहुमाअ देइ दल बहु उवरिं विसेसहीणकमेण ।
बायरपढमाअ असंखगुणूण उवरिमासु य विसेसूण ॥१९६॥ (आर्यागीति)
बीयाइखणेसु अपुव्वा पुव्वाणऽन्तरेसु हेट्ठे य ।
कुणए हेट्ठेऽप्पा ताउ अंतरेसुं असंखगुणा ॥१९७॥
देइ दलिअं अपुव्वसुहुमकिट्टित्तो अणंतराए उ ।
पुव्वसुहुमकिट्टीए हीणमसंखेज्जभागेणं ॥१९८॥
पुव्वाउ असंखसाहिय अणंतरअपुव्वकिट्टीए ।
सेसासुं पुव्वापुव्वासु कमेण विसेसूणं ॥१९९॥

पढमसुहुमाउ चरिमं जाव दीसइ दलं विसेसूणं।
तो य असंखगुणं बायरपढमाउ उवरिं विसेसूणं ॥२००॥ (गीति.)

जा आवलितिगसेसा पढमठिई ताव संकमेइ दलं।
बीयत्तो तइयाए तओ परं संकमेइ सुहुमासु ॥२०१॥ (गीति)

समयाहियआवलिसेसाए विइयातइयगाण सव्वदलं।
संकामइ सुहुमासुं वज्जिय णववद्धमावलिगयं च ॥२०२॥ (गीति)

लोहस्स मुहुत्तंतो बंधो घाईण दिवसंतो।
खवइ अघाईणं वासंतो अह भणिमु ठिइसंतं ॥२०३॥ (उपगीति)

लोहस्स मुहुत्तंतो संखसहस्सवरिसा य घाईणं।
होज्जेइ अघाईण उण असंखेज्जवरिसा चरिमे ॥२०४॥

सेकाले सुहुमगुणट्ठाणं पडिवज्जए तयाणि च।
गुणसेढिं करइ सुहुमकिट्टी उक्किरिय वेयइ य ॥२०५॥

सुहुमगुणत्तो गुणसेढीणिक्खेवो विसेसअब्भहिओ।
तत्थ असंखगुणकमेणं णिक्खिविज्जा पएसग्गं ॥२०६॥

चरिमाउ असंखगुणं अंतरआइम्मि ताउ य विसेसूणा।
उवरिं तओ बीयाइम्मि ताउ संखगुणहीणयं तो हीणं ॥२०७॥ (आर्यागीतिः)

दीसइ अंतरपढमे जाव दलमसंखगुणकमेणं तत्तो।
हीणकमेणं बीयाइम्मि असंखगुणमुवरि उ विसेसूणं ॥२०८॥ (आर्यागीति)

बीयाइठिइघायेसुं गुणसेढिउवरिल्लपढमणिसेगं।
जाव दिज्जं दीसइ च असंखगुणकमा तो हीणं ॥२०९॥ (आर्यागीति.)

सुहुमद्धा थोवा तत्तो गुणसेढी विसेसअब्भहिया।
तत्तोऽन्तर पढमखंडं तह संतं कमेण संखगुणं ॥२१०॥ (गीतिः)

सुहुमाण हेट्ठिमा उवरिल्लाय असंखभागमेत्ताओ।
न अणुहविज्जन्ते सेसा वेइज्जंति किट्टीओ ॥२११॥

हेट्ठिल्ला अणुदिण्णा थोवा तत्तो विसेसअहियाओ।
उवरिल्ला तत्तो य असंखेज्जगुणा उदिण्णाओ ॥२१२॥

सुहुमद्धाए संखेज्जइभागे सेसगे विणासेइ।
गुणसेढिसंखभागं अन्तिमखण्डं विघायंतो ॥२१३॥

चरिमे खंडे णट्ठे उ णत्थि मोहस्स ठिइघाओ।
ठिइसंतं पुण सुहुमद्धापमियं होइ मोहस्स ॥२१४॥ (उपगीति.)

समयाहियआवलिसेसम्मि ठिइउदीरणा जहण्णंते।
तिण्हं घाईणं बंधो तह संतं मुहुत्तंतो ॥२१५॥

णामदुगस्स अडमुहुत्ता तह तइयस्स बारसमुहुत्ता।
बंधो संतं तु अघाईण असंखेज्जवासाणि ॥२१६॥

खविओ एगारस किट्टी अणुहवणेण संकमेणं च।
दुखणूणदुआवलिया य संकमेणऽणुहवेण सुहुमाओ ॥२१७॥ (गीति)

सुहुमगकिट्टीवेयणकालत्तो जाव कोहपढमाए।
वेयणकालं कालो अहिओ पच्छाणुपुव्वीए ॥२१८॥

माणाईहिं चडिआण पढमठिई उ माणपमुहीणं।
कोहाइएगदुतिखवणद्धाजुअकोहपढमठिइमाणा ॥२१९॥ (गीति)

एगदुतिखवणं किच्चा कमेण हयकण्णकिट्टिकरणाइं।
माणाईहिं चडिओ करइ विणासइ तओ सेसं ॥२२०॥

इत्थी खलु पुरिसुदयेणं पडिवण्णस्स इत्थिखवणंतं।
पढमठिइ ठावइ अवेआ सत्त जुगवं विणासेइ ॥२२१॥ (गीति)

संढो ठावइ पढमठिइं इत्थीपढमठिइमियं खवइ।
वेअदुगं जुगवं अवगयवेओ सत्त परिखवइ ॥२२२॥

इत्थीसंढाण पुरिसस्स जहण्णो न होइ ठिइबंधो।
सेसं तु पुरिसवेअव्व भासिअं वेअणाणत्तं ॥२२३॥

सेकालेऽवगयकसायगुणं लहए स पत्तहक्खायो।
ठिइरसरहियं तइयं बंधइ पयडप्पएसेहिं ॥२२४॥

होज्जा पुव्वव्व छकम्माणं ठिइरसविघायगुणसेढी।
केवलिअ पडुच्च गुणसेढिनिज्जरा उण असंखगुणा ॥२२५॥

सेसम्मि संखभागे खीणकसायस्स हणइ झाणेण।
अन्तिमखंडेणं तस्स उवरिमठिइ तिघाईण ॥२२६॥

कम्मखयकारणं झाणं दुविहं धम्मसुक्कमेअत्तो।
एक्केक्कं होइ चउविहं णायव्वं पवयणत्तो ॥२२७॥

चरिमे खंडे उक्किण्णम्मि तिघाईणं णत्थि ठिइघाओ।
समयहियआवलिसेसे हस्सठिइउदीरणा तिघाईणं ॥२२८॥ (गीति)

वोच्छिण्णा संतुदया निद्दुगस्स उ दुचरिमसमयेऽन्ते।
णाणंतरायचउदंसणाण किट्टति सन्तुदया ॥२२९॥

सेकाले पावेइ सजोगिगुणं लहइ केवलं णाणं ।
तह केवल दरिसणं णिरन्तरायं च वीरियमणंत
॥२३०॥ (गीतिः)

हस्सो भिन्नमुहुत्तं जेट्ठो देसूणपुव्वकोडी से ।
कालो अवट्ठिया गुणसेढी आयोजिकाअ परि ॥२३१॥

आयोजिगाकरणमाउगम्मि अंतोमुहुत्तसेसम्मि ।
करए अहवा आवस्सयकरणमवस्सकरण वा ॥२३२॥

आवज्जियकरणं वा-ऽऽवज्जीकरण तओ समुग्घायं ।
कुणए जस्साउत्तो तइआईह पहूआइं ॥२३३॥

दण्ड-कवाड-पयर-लोगपूरणाणि कमसो चउखणेसु ।
पढमसमये पएसा वित्थारइ बहुअसंखभागमिआ
॥२३४॥ (गीति)

ठिइसंतस्स असखंसा ठिइखडेण णासइ रस तु ।
घायेइ बहुअणतसमिअ अणुभागखडेणं ॥२३५॥

बीयसमये कवाडे वित्थारइ बहुअसखभागमिआ ।
जीवपएसा ठिइघाओ रसघाओ य पुव्वव्व ॥२३६॥

तइयसमये बहुअसखभागमेत्ताऽप्पणो पएसा य ।
वित्थारइ पयरे ठिइरसाण घाओ उ पुव्वव्व ॥२३७॥

वित्थारेइ चउत्थसमये बहुअसंखभागमिआ ।
जगपूरणे पएसा ठिइरसघाओ उ पुव्वव्व ॥२३८॥
(उपगीतिः)

तइयाईणं अतोमुहुत्तमेत्ता ठिई उ आउत्तो ।
संखगुणा तत्तो संहरए जगपूरणाईणि ॥२३९॥

पंचमसमये पयरे ठान्तो बहुसंखभागपमियठिइ ।
नासइ रसं तु रससंतस्स बहुअणतभागमिय ॥२४०॥

छट्ठखणे ठान्तो उ कवाडम्मि ठिइं रस च पुव्वव्व ।
नासइ ठिइरसघायद्धा खलु अतोमुहुत्तमिआ ॥२४१॥

सत्तमसमये दडे ठाअइ अट्ठमखणे सरीरत्थो ।
पढमट्ठमसमयेसु जोगो ओरालिओ होइ ॥२४२॥

सत्तमछट्ठबिइयसमयेसु मिस्सो य कम्मणो जोगो ।
तइय-तुरिय-पचमसमयेसु निरुम्भेइ तो जोगं ॥२४३॥

बायरवयमणउस्सासकायजोगा निरुम्भइ कमेण ।
तत्तो सुहुमवयणमणतणुजोगा त्ति इगउवएसो ॥२४४॥

रुम्भइ बायरमण-वय-उस्सास-तणू कमेण बीयमया ।
बायरतणूअ भिन्नमुहुत्तेणऽन्तोमुहुत्तमच्चासं ।
॥२४५॥ (गीति)

सुहुमेण कायजोगेण कमा सुहुमाणि चउमणाईणि ।
रुम्भइ गंतूण गतूण अंतोमुहुत्त तु ॥२४६॥

सुहुमं सरीरजोगं णिरुम्भमाणो अपुव्वफड्डाणि ।
कुणइ पढमसमया पहुडि पुव्वफड्डाण हेट्ठम्मि ॥२४७॥

पुव्वगफड्डाण पढमवग्गणाअ विरियाविभागाणं ।
तह जीवपएसाण ओकड्ढिज्जा असखंसं ॥२४८॥

कुणए अपुव्वफड्डाणि मुहुत्तंतो असंखगुणहाणीए ।
तह जीवपएसा उ असंखेज्जगुणक्कमेण ओकड्ढिज्जा
॥२४९॥ (आर्यागीति.)

इह सेढिवग्गमूलस्स असंखंसो अपुव्वफड्डाण ।
हुन्ते असंखभागो पुव्विल्लाण पि फड्डाण ॥२५०॥

तत्तो पुव्वाऽपुव्वेहिं फड्डेहिं कुणेइ किट्टीओ ।
हेट्ठम्मि अपुव्वाण सेढिअसखेज्जभागमिआ ॥२५१॥

ओकड्ढए अपुव्वाइवग्गणाए असखभागमिआ ।
अविभागे तह जीवपएसा वि असखभागमिआ॥२५२॥

अतोमुहुत्तकालमसंखगुणूणक्कमेण किट्टीओ ।
करए ओकड्ढइ जीवपएसे उण असंखगुणणाए
॥२५३॥ (गीति)

किट्टीगुणगारो पल्लासंखसो हवन्ति किट्टीओ ।
सेढीअसखभागो अपुव्वफड्डाण उण असंखसो॥२५४॥
(गीतिः)

किट्टीकरणे सम्मत्ते सेकाले विणासइ सजोगी ।
सव्वाणि उभयफड्डाइं जोगो तस्स किट्टिगओ ॥२५५॥

सुहुमतणु रुम्भन्तो झायइ सुहुमकिरिय अपडिवाइं ।
चरिमे समये सव्वाओ किट्टीओ विणासेइ ॥२५६॥

चरिमसमये सजोगिस्स य अण्णयरस्स वेयणीयस्स ।
ओरालियदुग तेअय कम्मण-सठाणछक्काण ॥२५७॥

तह पढमसघयणवण्णचउक्काण तह दोण्ह खगईण ।
अगुरुलहुयउवघायपरघायनिम्माणणामाणं ॥२५८॥

पत्तेयथिराथिरणामाण तह सुहासुहाण वोच्छिज्जणो ।
उदओ पुव्व चिअ सुसरदुस्सरुस्सासणामाण ॥२५९॥

किट्टी जोगो ठिइरसघाओ णामदुगुदीरणा लेसा ।
बधो तइयज्झाण च सत्त अतम्मि वोच्छिण्णा ॥२६०॥

सेकाले लहइ अजोगिगुणट्ठाणमुवयाइ झाण च ।
वोच्छिन्नकिरियमतोमुहुत्तपमिअ च सेलेसिं ॥२६१॥

पुव्वरइयकम्म खवइ असखगुणक्कमेण गयलेसो ।
दुचरिमसमये संठाणअथिरसंघयणछक्क तु ॥२६२॥

अगुरुलहुचउक्क पणतणुनामा खगइदुरदुग च ।
बीसा वण्णाई तह बंधणपज्जत्तगं निमिणं ॥२६३॥
अंगोवंगतिगं तह पत्तेयतिगं सुसरमपज्जत्तं ।
सायं व असायं वा नीअं छिज्जन्ति सन्तत्तो ॥२६४॥
चरिमम्मि णरतसतिगं पणिंदियुच्चजससुभगआइज्जं ।
सायमसायं व जिणं वा एगूणा य उदयत्तो ॥२६५॥
णरआणुपुव्वीसत्ताच्छेअं विंति इयरे दुचरिमखणे ।
सिज्झइ खणेण समयप्पएसअंतरमफुसमाणो ॥२६६॥
कम्मट्ठगक्खयत्तो लद्धा जीवेहिं जेहिं अट्ठगुणा ।
ईसीपब्भाराए उड्ढ तेऽवट्ठिआ हुन्ति ॥२६७॥

एगभवे दो सेढी खलु कम्मगगथियाहिपायेण ।
आगमअहिपायेणं पुण सेढी हवइ अण्णयरा ॥२६८॥
कम्ममलविमुक्को सिरिवीरो जयउ सिरिपेमसूरीसो ।
जयए तह तस्सिसो पण्णासो भाणुविजयक्खो ॥२६९॥
इह खवणपयत्था संगहिया तस्सिस्ससुप्पसिस्सेहिं ।
जयघोस सुधम्माणंद-हेमचंदगुणरयणेहिं ॥२७०॥
तत्तो य खवगसेढी जिणन्दसिस्सगुणरयणविजयेणं ।
रइया एत्थ बहुसुया किवाअ खलियं विसोहन्तु ॥२७१॥

卐

तृतीयं परिशिष्टम्

अकारादिक्रमेण क्षपकश्रेणिमूलगाथानामाद्यांशाः



चतुर्थं परिशिष्टम्

क्षपकश्रेणिमूलग्रन्थस्य च्छन्दसां सूची

(१) आर्यागीतिच्छन्दः (स्कन्धच्छन्द)

यस्य प्रथमेऽर्धे द्वात्रिंशद् (३२) मात्रा, एवं चरमार्धेऽपि, तद् आर्यागीतिच्छन्दः ❀। तस्मिंश्च गाथा – १०, ४०, ५६, ६९, ७०, ९१, ९३, ११८, ११९, १३६, १४१, १४६, १५०, १५२, १५८, १६१, १६३, १६६, १७३, १८३, १८६, १९६, २०७, २०८, २०९, २३९।

(२) उद्गीतिच्छन्दः

यस्य प्रथमेऽर्धे सप्तविंशतिः (२७) मात्राः, चरमेऽर्धे तु त्रिंशत् (३०), तद् उद्गीतिच्छन्दः। तस्मिंश्च गाथाः – ९, ४१, ६२ ६६, ७४, ८६, ८८, ९५, ११५, १२९, १३०, १३३, १५१।

(३) उपगीतिच्छन्द

यस्य प्रथमेऽर्धे सप्तविंशतिमात्रा (२७), एवं चरमेऽर्धेऽपि, तद् उपगीतिच्छन्द। तस्मिंश्च गाथाः – २१, ३२, ३६, ३७, ४९, ५३, ५६, ६५, ७१, ७२, ७३, ८०, ८२, ८३, ८९, ९३, ९७, १०७, ११०, १११, १४६, २०३, २१४, २३८।

(४) गाथच्छन्द

यस्य प्रथमेऽर्धेऽष्टत्रिंशद् (३८) मात्रा, चरमेऽर्धे तु सप्तविंशतिः (२७), तद् गाथच्छन्द। तस्मिंश्च गाथा – १५४

(५) गीतिच्छन्दः

यस्य प्रथमेऽर्धे त्रिंशद् (३०) मात्राः, एवं चरमेऽर्धेऽपि, तद् गीतिच्छन्द। तस्मिंश्च गाथा – १५, १७, १८, १९, २७, ३४, ४२, ४४, ४७, ५१, ५५, ५७, ५८, ६३, ६७, ६८, ७६, ७७, ९२, १०२, १०३, १०५, १०६, १०८, १०९, ११२, ११६,

❀ विशेषार्थिना कलिकालसर्वज्ञश्रीमदाचार्यहेमचन्द्रसूरीश्वररचितछन्दोनुशासनमत्रावलोकनीयम्।

११७, १२०, १२१, १२२, १२४, १२६, १२८, १३२, १३५, १४०, १४४, १६४, १६५, १६६, १७०, १७२, १७६, १८०, १८६, १८७, २००, २०१, २०२, २१०, २१७, २१९, २२१, २२८, २३०, २३४, २४५, २५३, २५४।

(६) पथ्यार्याच्छन्द

यस्य प्रथमेऽर्धे त्रिंशद् (३०) मात्रा, चरमेऽर्धे तु सप्तविंशति (२७), उभयोश्चाऽर्धयोः द्वादशमात्रासमनन्तरं यतिर्भवति, तत् पथ्यार्याछन्दः, तस्मिंश्च गाथा-१, २, ३, ४, ५, ६, ७, ८, १३, १४, २२, ३०, ३१, ३५, ३८, ३९, ४३, ४५, ४८, ८४, ९६, १०१, १०४, १२३, १२५, १२७, १३७, १३९, १४५, १४८, १५५, १५६, १६७, १७८, १८१, १८३, १८८, १९३, २०५, २१२, २१८, २२०, २३१, २३३, २३७, २३६, २४१, २५२, २६०, २६३, २६४, २६५, २६६, २६७, २६८, २६९, २७१।

(७) रिपुच्छन्द -

यस्य प्रथमेऽर्धे एकत्रिंशद् (३१) मात्रा, एवं चरमार्धेऽपि, तद् रिपुच्छन्द। तस्मिंश्च गाथा-१३४

(८) ललित च्छन्द

यस्य प्रथमेऽर्धे एकत्रिंशद् (३१) मात्राः, एवं चरमेऽपि, तद् ललिताच्छन्दः। तस्मिंश्च गाथा-१४३। इदमत्राऽवधेयम्-रिपुच्छन्दसि सप्तमगणः पञ्चमात्र, ललिताच्छन्दसि तु तृतीयगण।

(९) विपुलार्याच्छन्द

इदं छन्दः पथ्यार्याछन्दोवद् भवति, नत्र रस्मिंश्चाद्यद्वादशमात्राः संलङ्घ्य यतिर्भवति। विपुलार्याच्छन्दसि च शेषा अष्टाशीतिर्गाथा भवन्ति।



चतुर्थं परिशिष्टम्

अकारादिक्रमेण क्षपकश्रेणिटीकाऽन्तः प्रमाणतया समुद्धृतानां ग्रन्थानां नाम्नां सूचिः

卐 दक्षिणपार्श्वे पृष्ठाङ्को दर्शित.। ★ यत्र ' ' एतच्चिह्नं दृश्यते, तत्र वामपार्श्वस्थपृष्ठाङ्कत प्रभृति दक्षिणपार्श्वस्थपृष्ठाङ्कं यावत् पृष्ठाङ्का बोध्याः।

षष्ठं परिशिष्टम्

अकारादिक्रमेण क्षपक.श्रेणिटीकाऽन्तर्गतानां ग्रन्थकृन्नाम्नां सूची

सप्तमं परिशिष्टम्

क्षपकश्रेणिटीकाऽन्तर्गतानि व्याकरणसूत्राणि

सप्तमं परिशिष्टम्

क्षपकश्रेणिटीकागता न्यायाः

अष्टमं परिशिष्टम्

क्षपकश्रेणिटीकागतानि गणितप्रकरणसूत्राणि

[illegible]

नवमं परिशिष्टम्

अशीतितमगाथैकाशीतितमगाथापूर्वार्ध-द्व्यशीतितमगाथा त्र्यशीतितमगाथा चतुरशीतितमगाथापूर्वार्ध-षडशीतितमगाथाप्रभृतित्रिनवतितमगाथापर्यवसानाभिर्गाथाभिः प्रतिपादितस्य पदार्थस्य संवादकं श्रीमन्मुनिचन्द्रसूरिपादविरचितशतकचूर्णिटिप्पनम्

ततोऽसावन्तर्मुहूर्तमनुसमयविहिता(त)पूर्वापूर्वस्पर्धकसमूहं प्रतिसंज्वलनकषायं संग्रहनयाभिप्रायतः तिस्रस्तिस्र इति द्वादशकिट्टीर्युगपत् करोति, तुल्यान्तराणामनन्तानामपि एकनया गणनाद्, व्यक्तितः पुनरेकैकाऽनन्तशः इति । किट्टयो नाम एकैकरसाविभागोत्तरपरमाणुप्रचयरूपवर्गणासमूहस्वभावानां कषायरसस्पर्धकाना दलिकस्याऽपवर्तनया त्याजितस्पर्धकरूपस्य परस्परमनन्तगुणरसान्तरतयाऽविभागास्तथाहि-लोभस्य पूर्वस्पर्धकानां प्राग्विहितापूर्वस्पर्धकानां च दलिकमादाय सर्वजघन्यापूर्वस्पर्धकादिवर्गणातोऽनन्तगुणहीनां तुल्यरसदलिकसंचयात्मिकां प्रथमकिट्टिं करोति । एवमतोऽपि अनन्तगुणरसान्तरां द्वितीयां, ततोऽपि तृतीयामेवं यावत् प्रथमत्रिभागान्त्यकिट्टीमिति । एताश्च कथंचित् तुल्यान्तरगुणकारतया अनन्ता अपि एकैवेति । यथा लोभस्य तिस्रोऽऽ ... .. । एवं प्रथमविभागान्त्यकिट्टीतोऽनन्तगुणवृद्धरसाविभागां यथोत्तरमनन्तगुणाभ्यधिकानन्तान्तरालकिट्टीसमूहस्वभावां द्वितीयामेव तृतीयां च करोति । यथा लोभस्य तिस्रोऽनन्ता वा, तथा प्रत्येकं पश्चानुपूर्व्या मायादीनामपि । परं द्वादशाऽपि संग्रहकिट्टयः स्वस्थानसदृशावान्तरकिट्टीगुणकारा उत्तरोत्तरं च स्वस्थानादनन्तगुणवृद्धान्तराला । तथाहि-द्वादशानां सम्हकिट्टीनामेकादशान्तराणि । एकादश चान्तरगुणकारास्तत्र लोभस्य प्रथमसंग्रहकिट्टयाश्चरमकिट्टी यदनन्तराशिगुणिता तस्यैव द्वितीयसंग्रहकिट्टया प्रथमकिट्टी भवति, स प्रथमः । अयं च सर्वासामपि संग्रहकिट्टीनां स्वस्थानकिट्टीगुणकारेभ्योऽनन्तगुणः । एवमस्या एव संग्रहकिट्टया यदनन्तराशिगुणिता चरमकिट्टी एतत्तृतीयकिट्टयादिकिट्टी भवति, स द्वितीय, एष च प्राग्गुणकारादनन्तगुण, एव तृतीयादयोऽपि यथोत्तरमनन्तगुणास्तावन्नेयाः, यावद् क्रोधस्याः संग्रहकिट्टयाः क्रोधद्वितीयाया चरमकिट्टीगुणकार एकादश इति । ये तु सर्वास्वपि संग्रहकिट्टीषु स्वस्थानेऽवान्तरकिट्टीनां यथोत्तरमनन्तगुणा अपि गुणकारास्ते सर्वेऽपि प्रथमद्वितीयकिट्टयन्तरगुणकारादपि अनन्तगुणहीनाः। अत एव सामान्यतः प्रथमात् संग्रहकिट्टयन्तरगुणकारादनन्तगुणहीनेन एकेन गुणकारेण गुणिततया वृद्धिभावात् सदृशान्तरतायां अनन्तानामपि संग्रहाभिप्रायतो अवान्तरकिट्टीनामेकत्वम् । यश्च संग्रहकिट्टीना परस्परं विशेष्य (ष), सो अन्यस्मादन्तरगुणकारादेकादशभेदादिति । पुनरपि स्फुटतरावबोधाय असद्भावकल्पनया किञ्चिदुच्यते । किल द्वादशस्वपि संग्रहकिट्टीषु अनन्ता अपि अवान्तरकिट्टयस्तिस्रस्तिस्र इति षट्त्रिंशत्, अत्र च प्रथमकिट्टी अनन्तरसाऽपि किल दशरसाविभागा एतद्द्विगुणाविभागा द्वितीया, तच्चतुर्गुणाविभागा तृतीया, एव यथोत्तरमनन्तगुणा अपि अवान्तरकिट्टय पूर्वपूर्वद्विगुणगुणकारगुणिततया द्वितीयादीना संग्रहकिट्टीना प्रथमकिट्टीरेकादशापि परिहृत्य तावत्नेया(था?)वच्चरमाऽवान्तरकिट्टीत्ति । एताः पुनरेकादशापि संग्रहकिट्टयन्तरगुण-

कारैरनन्तानन्तरूपैरपि कोटिदशकादिकैर्यथोत्तरमनन्तगुणैरपि दशगुणे. कोटीकोटिसहस्रदशकपर्यन्तैरेकादशभिरादितोऽपि चरमाऽवान्तरकिट्टीगुणकारादनन्तगुणैरपि साधिकपञ्चगुणै (५ $\frac{६२६४५}{६५५३६}$)प्राच्यचरमकिट्टीनां गुणनेन भवन्ति। अत्र च गुणकारसंदृष्टिः॥

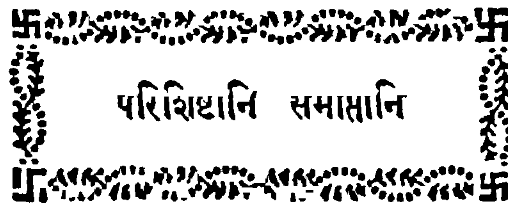
१०	२०	८० कोटयः१०	कोटि ८०० ८	कोटि ६४०० १६

एवं द्विगुणद्विगुणगुणकारगुणिततयाऽन्तरान्तरा च संग्रहकिट्टयन्तरानुगता यावत् ।

सोलस दोत्ति (दोन्नि) सयाइ सत्तंतरि हु ति तहसहस्साइ । सत्तट्ठीलवखेहिं समग्गला एगकोडी य ॥

(१, ६७, ७७, २१६) इत्यन्तिमः पञ्चत्रिंशत्तमो द्विचरमावान्तरकिट्टीगुणकारस्तावत् स्वयमभ्यूह्य गुणितफलानुगता सुधिया वाच्येति (?) । एताश्च द्वादश कोपसंज्वलनोदयेन क्षपकश्रेणिमारोहतो भवन्ति । मानसंज्वलनोदयेन क्षपितसंज्वलनकोपस्य शेषमानादित्रयस्य नव । मायोदयेन तु क्षीणाद्यद्वयस्य षट् । लोभोदयेन चाद्यत्रयक्षये केवललोभस्य तिस्रः । तदुक्तं

बारस नव छ त्तिन्नि य किट्टीओ होंति अहवणंताओ एक्केक्कम्मि कसाये तिगतिगमहवा अणंताओ ॥१॥★



★ कषायप्राभृतगाथा—१६३

अशुद्धिमार्जनपत्रकम्

पृष्ठम्	पङ्क्ति	अशुद्धि	शुद्धिः
२	१४	०भागमे	ह्यागमे
२	२५	श्रीपाश्व०	श्रीपार्श्व०
३	४	दीक्षा्याजा०	दीक्षा०व्याजा०
३	१७	पन्न्यासपादो	पन्न्यासवर्यो
९	१	यथा कारः	खवगसेढी
९	१५	"कायंव्व सेकाले"	"सेकाले कुणइ"
१०	६	अयोगिकेवलिगुणस्थानकश्च	अयोगिगुणस्थानकश्च
११	११	सत्तागत्त०	सत्तागत०
११	२०	०सम०	०पक्ष०
२०	५	पराघा आदेयो	पराघातमुच्छ्वास- सुपघात त्रसचतुष्क सुभगमादेयं
२०	६	त्रिंश०	नामकर्मणस्त्रिंश०
२२	६	व्यवछिन्ना	०व्यवच्छिन्ना
२२	१६	आउणाणि	आउगाणि
२२	२७	उपरितना०	उपरितनी०
२४	१०	०नन्तरससमय०	०नन्तरसमय०
२५	२२	वि	पि
२५	२६	स्थितिं घातयति	स्थितेर्विनाशः
२७	२०	० णऽस० खिवइ	०ण दलिअं तु असंखगुण पखिवइ
२७	२१	वधतासु	वज्झतीसु
२७	२१	॥१५॥ (उद्गीति)	॥१५॥ (गीति)
२८	३	०पकृतीनां	०प्रकृतीना
२८	७	च	य 卐
२८	२१	द्विक्त०	द्विरुक्त०
२९	२	पूण्णे	पुण्णे
३०	१	०प्रेदशतो	०प्रदेशतो
३०	११	कथपुन०	कथं पुन०
३०	२७	यन्त्रकम	यन्त्रकाणि

पृष्ठम्	पङ्क्ति	अशुद्धि.	शुद्धि
३१	११	उवट्टणाअ	उव्वट्टणाअ
३१	१६	०भावने त्रिसमये	०भावनत्रिसमये
३२	१५	बन्धोऽयो०	बन्धोऽयथो०
३२	१७	छड्डसे	छड्ड से
३३	४	गुणसक्रमेण	गुणसंक्रमेण
३३	२३	ठिइघायसंखेहिं	सखठिइघायेहिं
३३	२५	स्थितिघातसख्यै	सख्यस्थितिघातैः
३३	२६	यत्स्थितित्वम्	यत्स्थितिसत्त्वम्
३४	२	षष्ठया व"	षष्ठया वा"
३४	३	स्थितिघातसख्यैः	सख्यस्थितिघातै
३४	५	उपलक्ष लक्ष्यते	×
३४	८	०द्वय	०ध्रुय
३४	१०	०ट्टि विणासेउं	०ट्टिं णासेउ
३४	१२	विनाशयितुं	नाशयितु
३४	२६	०तश्चऽनन्त०	०तश्चाऽनन्त०
३४	२८	विणा०	णासेउं
३४	२९	विनाश-	नाश-
३५	१	अनिवृत्ति०	सवेदानिवृत्ति० ★
३५	२	किमपूव०	किमपूर्व०
३६	६	सागरोपम०	सागरोवम०
३६	१२	पदसस्कारः	पदसंस्कारः
३६	२२	पूण्णे	पुण्णे
३६	२३	य	च △
३७	१६	ठिइबधसंख०	सखठिइबंध०
३७	१८,२०	स्थितिबन्धसंख्य०	सख्यस्थितिबन्ध०
३७	२०	सख्यातेषु	सख्यातसहस्रेषु
३७	२६	०प्रातमृ०	०प्राभृत०
३८	१६	०त्रिसमाग०	०त्रिसप्तभाग०
३८	१८	मोहनीयस्यसा०	मोहनीयस्य सा०
३८	२५	०सप्तमात्र.	०सप्तभागमात्रः

❀ सर्वत्र पृष्ठशिरस्युपन्यस्तसूक्ष्माक्षरपङ्क्तिर्न पङ्क्त्यङ्को बोध्य.।

卐 इय शुद्धि १११, १३०, १४१, १५२ गाथास्वपि बोध्या।

△ इय शुद्धि २६, २९, ३३, ३९, ५३, ७७, ८५, ८८, १०५, १०७, १६०, १६१, १८०, १८५, २०२, २०५, २०९, २१७, २४१, २६० गाथास्वपि बोध्या।

★ इय शुद्धिः ३७, ३९, ४१, ४३, ४५, ४७, ४९, ५१, ५३, ५५, ५७, ५९, ६१, ६३, ६५, ६७, ६९, ७१, ७३, ७५, ७७, ७९, ८१, ८३, ८५, ८७, ८९, ९१, ५४ष्वपि बोध्या।

३६	८	४०	३०
३९	११	४०	२०
३९	२०	०सहस्सेसु	०सहस्सेसु
३९	२१	नियमो	नियमः
४०	३	पुण्णे	पुण्णे
४०	४	वक्तव्यम	वक्तव्यम्
४०	२०	पलिओवम०	पलिओवम०
४०	२९	४० सा० को०	४० सा० को० को०
४१	२७	मोहणीयस्य	मोहणीयस्स
४२	७	नामद्विक-ज्ञाना-वरणचतुष्क०	नामादिद्विकज्ञाना-वरणादिचतुष्क०
४२	८	०त्रिमागुत्तर०	०त्रिभोगोत्तर०
४२	१२	गदाणि, तदो	गदाणि, णामागोदाण पलिदोवमस्स सखे-ज्जदिभागो बंधो,तदो
४३	२३	पल्योपमा०	पल्या०
४४	२४	पल्योपमाऽस०	पल्योपमसं०
४५	२४	०बन्धेषु सहस्रेषु	बन्धसहस्रेषु
४६	१६	मोहनीयस्य	मोहनीयस्य बन्ध
४६	२९	वर्द्धिक्कतेसु	वडिक्कतेसु
४७	५	कमेणऽसखगुणो	कमा असंखगुणो
४७	६	सख्येयगुण	संख्यगुण
४७	७	क्रमे गुण	क्रमादसख्यगुणः
४७	२९	'कमेण'	'कमा'
४८	१२	उ	तु
४८	२६	वेदनीयास्या०	वेदनीयस्या०
५०	१८	सागरोमगत	०सागरोपमगत०
५५	१६	०मत्त्वतोज्ञाना०	०मत्वतो ज्ञाना०
५६	१४	सख्येयगुण.	विशेषाधिक
५६	२१	पल्यास०	पल्यस०
५८	२१	०चूर्णि	चूर्णि-
५८	२३	०चूर्णि०	०चूर्णि०
५८	२४	ट्ठितिबधंति	ट्ठितिं बन्धन्ति
५९	२३	०णबणोवकसाया	०णवणोकसाया
५९	२४	०जहण्णाट्ठिगति०	०जहण्णगट्ठिति०
६१	२३	०स्थावराऽऽपोद्योो०	०स्थावराऽऽतपोद्यो०
६२	७	०सूक्ष्म०	०सूक्ष्म०
६२	२३	थीणखवेति	थीण खवेति
६३	७	थीणागिद्धीय	थीणगिद्धी य
६५	११	०संख्यातसहस्रेषु गतेषु	०पृथक्त्वे गते

६५	२३	देशघाती	देशघाती
६६	२८	भिन्नमुहूर्त०	भिन्नमुहूर्त०
६८	८,१४	बधंतीण	बज्झतीण
६८	१२	महार्थन्तेन	महत्तेन
६८	२६	०नुकीर्य	०नुत्कीर्य
६९	२,१४	०प्रकृतिप्रथम-स्थितौ यत्र	प्रकृतेरेव प्रथम-स्थितौ
६९		चित्रम्	\oooooooooooooooooo/
७०	१४	०बनीत्य०	०नीयन्य०
७१	१६	०मेपमतरादो	०मेवमंतरादो
७१	१९	पट्ठोऽधिकार	पट्ठोऽधिकार'
७२	८	सख्यातवार्षिक	सख्यातवार्षिक
७२	१३	०युदामायव्याहरति	०युदामाय व्याहरति
७४	२७	०विधश्च	०र्चिवञ्च
७५	१	रससकमा०	रससंकमा०
७५	११	०नुभामकमो	०नुभागसकमो
७७	२१	रसबन्धोऽल्प	रसबन्ध. प्रभूत'
७७	२१	रसोदयोऽल्प	रसोदय प्रभूत
७८	१९	रसोदय स्तोक	रसोदयः प्रभूतः
७९	३	नपुसकवेद	नपुंसकवेद
७९	४	सर्वसक्रमण	सर्वसक्रमेण
७६	१९	खिवेड	खवेड
८०	७	मोहस्य	मोहस्स
८०	१५	०पदेसक्रमो	०पदेसंकमो
८१	५	।।५४।।	।।५५।। (गीति)
८१	६	तु	च
८२	१५	०बन्धत.	०सत्त्वत'
८२	२५	सख्येवर्ष०	सख्येयवर्ष०
८३	५	आलिदुगे य सेसगे	सेसे आलिगादुगे
८३	६	०वार्षिक	०वार्षिक
८३	७	आवलिकाद्विके च शेषे	शेष आवलिकाद्विके
८३	१४	जदा ।	जाद ।
८४	२	पुरिसवेदस्स	पुरिसवेदस्स
८४	७	बद्ध ।।५७।।	बद्ध तदुदयट्ठिई सेसा ।।५७।। (गीति.)
८४	९	बद्धमुदयस्थिति	बद्धं तथोदयस्थितिः
८५	३	जहण्णं	जहण्णो
८५	११	तता	ततो
८५	२५	५च०	५च०
८५	३१	०लभादा	लंभादो ।

८६	२०	०वलिकायां शे०	०वलिकाशे०
८६	२८	संक्रामगि	संक्रामति
८७	६,७	०सक०	सक०
८७	११	०प्रकृतिकारा०	०प्रकृतिचूर्णिकारा०
८७	२५	गुणिनाकर्मांशस्य	गुणितकर्मांशस्य
८८	४	हास्यषट्कं	हास्यषट्क
८९	१७	बन्धं स्थिति०	०बन्धं संज्वलनानां बन्धं षट्कर्मस्थिति०
९०	१२	०त्तूदीरणा	०त्तूदीरणाया
९०	२२	विघ्न	विघ्नः
९१	८	०सहस्रस्थितिन्धेषु	०सहस्रस्थितिबन्धेषु
९१	३४	चक्ष तिः	चक्ष त्तिः
९२	३	सहेत्वौ०	सहैत्वो०
९२	१४	जघन्ययोगिना	जघन्ययोगिना च
९३	१२	चतु०	तृतीयाधिकारश्चतु०
९३	१२	०पर्यसान.	०पर्यवसानः
९३	१२	धिकाश्चे०	धिकारश्चे०
९३	१४	०कर द्वयो	०करणे पृथक्पृथगधिकारत्वेन सवे ग्रानिवृत्तिकरणाद्वयो
९३	१९,२७	०वट्टणाउ०	०वट्टणाउ०
९३	२८	ह्निनोनि	ह्निनोति
९३	२९	ह्धिातो	ह्धिातो
९४	३	सप्तवीति	सप्ति गीती
९४	४	कप्यते	कर्प्यते
९४	९	०नुभागे खण्डे	०नुभागखण्डे
९४	११	भावकर्त्री	भावा कर्त्रीः
९४	१४	रज्वोः	रज्वाः
९४	२१	यन्त्रकाणि	यन्त्रके
९५	१	०सत्पयो०	सत्त्वयो०
९५	८	सञ्वलन	सञ्ज्वलन०
९६	९,१०	०द्दी०	०ई०
९७	१७	गृहीतव्यम्	ग्रहीतव्यम्
९८	१५	,,	,,
९९	५	०खण्ड	०खण्डे
९९	१०	गृहीतव्यम्	ग्रहीतव्यम्
१०२	१२	०द्धायामेव	०द्धायामेव
१०२	२३	०स्तृतीय	०स्तृतीया
१०३	३	०ाक्रमण	०ाक्रमेण
१०३	४	०चोत्तरसा०	०कोत्तररसा०
१०३	१४	मनुभागो०	मनुभागा०
१०३	२४	दरम्परोनिधा	परम्परोपनिधा
,,	२७	०स्यप्रथम०	०स्य प्रथम०
१०५	२	०लब्धिस्तद्०	०स्तद्०
१०५	१३,१५	०ज्यते	०ज्यन्ते
१०५	१३,१५	लब्धश्च०	लब्धाश्च०
,,	१४	द्वितीयगुण०	द्वितीयद्विगुण०
१०५	२५	पुन	पुन.
१०६	३०	०र्धकचतुस्पर्थ०	०स्पर्धकचतुर्थ०
१०६	३०	षटत्रिंश०	षट्त्रिंश०
१०८	६	द्वितीय	द्वितीया
१०९	१	अनिवृत्तिकरणा०	अश्वकर्णकरणा०
११०	४	३९८×(२ ४−१	३९२×(२) ४−१
१०९	२३	पुनरसखेय०	पुनरसंख्येय०
११२	५	०वर्गणातस्तत्०	०वर्गणातस्तु०
११२	१२	प्रथमवगणायां	प्रथमवर्गणायां
११२	१४	न्यास	न्यासः
,,	१७	रसा ·····भवन्ति ।	भवन्ति ।
११३	१	पूव०	पूर्व०
११३	५	०विभागान् " उत्कृष्ट०	०विभागेषु विशोधितेषु शेषा रसाविभागा जघन्यपरित्तासंख्येयतमस्पर्धकप्रथमवर्गणायामुत्कृष्ट०
११३	९	जघन्यपरिता०	जघन्यपरित्ता०
११५	९,१२	भवन्ति ।	वक्तव्या ।
११६	२०	न यावन्त.	तेन यावन्तः
११६	२१	वर्गणात	वर्गणायां
११६	२९	वर्गणाणतो	वर्गणातो
११६	१,३४	०स्पर्धके	०स्पर्धकादिमवर्गणायां
१२०	१०	रसम्पर्धक०	रसस्पर्धक०
१२०	२३	इदुमुक्त	इदमुक्त
१२१	७	रसविभागा	रसाविभागा
१२४	१६	कषाया०	कषाय०
१२५	२१	पुनरसख०	पुनरसख्य०
१२५	२६	उत्कर्पणाय०	उत्कर्षणाय०
१२६	२१	पूर्वस्पर्धकानां	पूर्वस्पर्धकानाम्
१२६	२७	ओकड्डुक्कडणा०	ओकड्डणुक्कड्डणा०
१२६	२९	ओवट्टिदेसु	ओवट्टिदेसु
१२७	६	०ास्त्रिगुणा	०ास्त्रिगुणा
१२८	११	उक्तं ' इति ।	×
१२९	६	(गीति.)	(उद्गीतिः)

१३१	८	०स्पधक०	०स्पर्धक०
१३१	१२	०विभागा	०विभागा'
१३१	२९	०पञ्चदशा०	०चतुर्दशा०
१३१	३०	०विंशतितमा०	०षोडशा०
१३२	४	एकविंशतितम्	एकविंशतितमम्
१३२	१७	चतुर्विंशतितम्	चतुर्विंशतितमम्
१३२	१३	त्रिंशत्तम	त्रिंशत्तमम्
१३२	१८	पञ्चत्रिंशत्तम्	पञ्चत्रिंशत्तमम्
१३४	५	कपाय०	कषाय०
,,	१८	सप्ततिम०	सप्ततितम०
१३४	२०	चूणि	चूर्णि.
१३५	२४	दलम	दलम्
१३५	२६	एवाचय०	एकचय०
१३६	३	विशेपश्चो०	विशेषश्चा०
१३६	८,६,१२	दिस्सइ	दीसइ
१३७	२७	०स्पधेकभ्य:	स्पर्धकेभ्य:
१३९	१०	पुव्वचरिमाआ	पुव्वअन्तिमगा
१३९	११	दिस्सइ	दीसइ
१३९	१४,२१	यावत्पूर्वचरमा	यावत्पूर्वान्तिमा
१४०	४	०क्षप गणा	०क्षेप गणा
१४०	१४	'दिस्सइ'	'दीसइ'
१४०	२२	सेसासु	सेसासु
१४१	५,९,२३	०दीण	०ईण
१४१	२४	०रूपाणां	०रूपाणाम्
१४२	१०-११	गाण' त्ति ···	(१) गाण त्ति . स्वार्थे कश्च वा (सिद्ध-हेम० ८-२-१६०)
१४२,	१७	माणादीण	माणाईण
१४२	२५	०स्पर्धगत०	०स्पर्धकगत०
१४४	२५,२६	वस्स०	०वास०
१४५	१३	परा इ	पराण उण असंखसमा
१४५	१५	परे णि	परेषां पुनरसङ्ख्यसमा: ।
१४५	२२	असं०	'पुनरसङ्ख्यसमा'' असं०
१४६	१५	मोहोशमना०	मोहोपशमना०
१४७	१७	पण्णोक०	पडनोक०
१४७	२५	०प्रभूत्व०	०प्रभूतत्व०
१५१	२	०मुदयेण	०मुदयेन
१५१	१७	०चूर्णो	०चूर्णौ
१५१	२०	सग्रह०	संग्रह०
१५२	३	कोहादीण	कोहाईण
१५२	२१	उ	तु
१५३	१८	किट्टीसु मुणेया	किट्टीसु' णेया
१५३	२८	०गुणा	०गुणा:
१५४	२	०रसविभागेभ्यो	०रसाविभागेभ्यो
१५४	१७	किट्टयन्तस्य	किट्टयन्तरस्य
१५८	९	०चूर्णि	चूर्णि:–
१५८	११	अतराइणाम	अतराइ णाम
१६०	२८	०गण	०गुण
१६२	२७,२८	उपरि 'पदस्य	उपरि भण्य-मानस्य लोभमाययोरन्त-रमनन्तगुणमित्यस्य लोभ-तृतीयसंग्रहकिट्टयन्तरपदेन सिद्धत्वादुपरितनपदस्य
१६३	१८	०न्तरगुण	०न्तरमनन्तगुणं
१६६	९	०णंगुण	०णतगुण
१६७	११,१७,१९	०किट्टि	०किट्टि
१६७	३०	लाभ०	लोभ०
१६७	३५	अंस	अंश
१६८	८,२६,३१	तद्दरसा०	तद्रसा०
१७४	१३	०किट्ट	०किट्टि
१७६	२२	किट्टियन्तरम्	किट्टयन्तरम्
१७७	२८	०वान्त०	०वान्तर०
१७८	३	उ	तु
१७८	२०	०बहुत्व भणना०	०बहुत्वभणना०
१८१	१४	परिमणयति	परिणमयति
१८१	१६	ततोऽपि	तदपि
१८५	२५,२७	०कलक्ष०	०कादशलक्ष०
१८६	६	२२२००३५ / २	२ / २२२००३५
,,	१९	हीनानि	हीनानि लोभप्रथम-संग्रहकिट्टिद्वितीयावान्तरकिट्टौ
१८७	१८	विभज्यन्ते	गुण्यन्ते
१९१	९	०क्रमणैव	०क्रमेणैव
१९१	२२	परिणनाय	परिणमनाय
१९१	२२	भवन्ति ।	भवन्ति । इहाऽसत्क-ल्पनया दर्शितसङ्ख्याकानि मायाकिट्टितया परिणतानि दलिकानि सञ्ज्वलनचतुष्क-किट्टितया परिणमनाय गृहीत-सकलदलिकानां किञ्चिदधि-काष्टभागप्रमाणानि भवन्ति, किन्तु तानि परमार्थत किञ्चि-न्न्यूनाष्टभागप्रमाणानि ।

अशुद्धिसंमार्जनपत्रकम्

		१४११९८१४००	१४११९८१४४०
१९४	१६	संज्वलंचं०	संज्वलनचं०
१९९	३०	॥१०१॥(उपगीतिः)	॥१०१॥
२००	६	किट्टिकारे०	ननु किट्टिकारे०
,,	१२	कोव .... प्र०	कोधप्र०
२०१	१४	०ही०	०ई०
२०२	४,५	तदानींतनास्त्र०	तदानींतनीण्व०
२०२	२५	०मापूर्वा०	०मपूर्वा०
२०४	२८	,,	,,
२०५	८	पूर्वापूर्वसू०	पूर्वापूर्वासू०
२०८	१२	प्रतिपादित्वात्	प्रतिपादितत्वात्
,,	१६	०मेकोन०	०मेकाधस्तना-पूर्वान्तरकिट्टिदलमेकोन०
२१३	२५	०चयान्	०चयान्
२१४	२१	०मग्गणासुं य	०मग्गणासुं च
२१९	१८	सम्मते	सम्मत्ते
२२३	२५	०मणस्सु	०मणेसु
२२७	२	सव्वलिंगेसु	सव्वलिंगेसु च
२३०	२९	जीव	जीव
२३३	१८	(उद्गीतिः)	(उद्गीति)
२३४	८	चेव	ताहे चेव
२३५	१०	मासा	मासा.
२३७	७	०तमया	०तम्या
२३७	२२	॥११८॥(गीति)	॥११८॥(आर्यागीति)
२३८	२३	०वेद्यसंग्रह०	वेद्यमानसंग्रह०
२३९	२५	गोः	गोः
२४७	५	गोमूत्रधारा	मूत्रधारा
२४७	५	कया	गोमूत्रिकया
२४७	१२	०तना	०तनी
२४९	१०,१४	०गोपुच्छकारो	०गोपुच्छाकारो
२५४	१६	०तना असंख्येय०	०तन्योऽसंख्येय०
२५४	२६	०तनास्व०	०तनीष्व०
२५५	३,८	०तनानां	०तनीनां
२५५	६,२०	०तना असंख्येय०	०तन्योऽसंख्येय०
२५५	२२	०पूर्वावन्तर०	०पूर्वावान्तर०
२५६	३०	चोपरितनाना	चोपरितनीनां
२५९	११	०हानित्रिभाग०	०हानित्रिभाग०
२६०	१६	बंधादि०	बंधाइ०
२६०	२३	देई	देइ
,,	२३	तओ देई	तओ दलिअं देइ
२६०	२५		

२६०	२६	(उद्गीतिः)	(रिपुच्छन्द)
,,	२८	०नाऽपूर्वस्याः	०न्यपूर्वस्याः
,,	२९	ततो ददाति	ततो दलिकं ददाति
२६१	२	'बंधादि'०	'बंधाइ'०
२६१	४	०स्वरुपेण	०स्वरूपेण
२६१	५	०रुपो स्वरुपश्च	०रूपोऽपूर्वावान्तर-किट्टिस्वरूपश्च
२६१	८	'अधस्तना'	'अधस्तनी'
२६१	११	प्रथमा ०सं	प्रथमबन्धपूर्वा-वान्तरकिट्टितोऽस०
२६१	११	बन्धाऽवा०	बन्धापूर्वाऽवा०
२६६	१२	बोद्धव्य।	बोद्धव्य।
२६९	१२	प्राग क्षया	अनन्तवृद्धि-हान्यपेक्षया
२७१	२,३	अन्त्य चया	×
२७१	२८	निर्वत्य	निर्वर्त्य
२७१	३०	०किट्टय	०किट्टयो
२७२	२३	०मयदल	०मयचयदल
२७३	१५	अन्त्य पात्	×
२७४	२	(४)	(५)
२७८	२	बन्धपूर्वावान्त०	बन्धपूर्वापूर्वावान्त०
२८४	१९	पंचमं ... तु	कोहगवद्धदलं पचमआवलियाम
२८४	२०	माणादीण	माणाईण
२८४	२१	पञ्च......कं तु	क्रोधवद्धदलं पञ्चमावलिकायां
२८४	२३	'पचम लं तु	'कोहग०' इत्यादि, 'क्रोधबद्धदल'
२८७	१	०निरुपणम्	०निरूपणम्
२८७	१०	सञ्चितयत्स०	सञ्चितस्य यत्स०
२८९	७	०विशिष्ठा	०विशिष्टा
२८९	१३	पदसंसकरः	पदसंस्कारः
२९०	३०	०पर्पणेना०	०पकर्षणेना०
२९१	२	०परितना	०परितनी
२९१	५	०क्षयेनो०	०क्षयेणो०
२९१	८,१६,	०प्रवर्द्ध०	०पवर्द्ध०
२९१	२२	०ण सेसाणिगठि०	०णसेसाणि इगट्ठि०
२९१	२३	(गीति)	(ललिता)
२९२	४	दोसु	दोसु
२९२	२३	०प्रवद्धा गच्छन्ति	प्रवद्धा हीयमाना गच्छन्ति

२९७	१६	द्वैतीयीक	द्वैतीयिक
३०१	२२	०स्तिसृभिः सा०	०स्तिसृभिर ना०
३०७	१०	०तमभागेऽस०	तमभागप्रमाणेष्वस०
३०८	७	॥१५१॥	॥१५१॥ (उद्गीतिः)
३०९	२६	०ह्वय	०द्धय
३०९	३०	त्वकत्र	त्वेकत्र
३१०	९	छेदृणा०	छेअणा०
३१०	२६	०नन्तरान्तरेण	०नन्तरानन्तरेण
३११	१४	०ह्वय	०द्धय
३११	२९	पल्लस्य	पल्लस्स
३१२	१५	०ईओ	०ईओ दुगुणूणो
३१२	१६	आलि गीति)	आवलिअसख-भागे जेट्ठो आवलि-असखसो ॥ १५४ (गाथा)
३१२	१७	०तीत)	०तीतो द्विगुणोन
३१२	१८	आव ज्येष्ठः	आवलिकाऽसख्य-भागे ज्येष्ठ आवलिकाऽसख्यागः
३१३	४	'आलिअसंखसे त्ति 'दुगुणूणो' इत्यादि,	तत्र
३१३	२२	'आव०' तत्र	'जेट्ठो' इत्यादि,
३१५	२०	ताभ्यो०	न ताभ्यो
३१६	४	भवप्रद्धाश्च	भवप्रवद्धाश्च
३१८	३०	०मस्थिति०	०रमस्थिति०
३२१	१९	द्विगुणहान्यर०	द्विगुणहान्योर०
३२३	२	(गाथा-१५७)	(गाथा-१५७-१५८)
३२३	१९	असख्येय०	असख्येय०
३२५	१३	वेइज्ज०	वेइज्ज०
३२८	२४	प्रतिबद्धहुदलं	प्रतिबद्धबहुदलं
३२९	१३	पश्च श्रित्य	आगालविच्छेदादिक समाश्रित्य
३२९	१७	(गाथा-१६६)	(गाथा-१६५)
३२९	३०	ताहे च एव	ताहे चेव स
३२९	३२	चेव	चेव स
३३०	११	तु 'वेदयति'	तु स 'वेदयति'
३३०	२२	०णत्वात्	०णतत्वात्
३३२	२०	०श्चाऽसख्येय०	०श्चाऽसख्येय०
३३४	२०	गहकिट्टीए	सगहकिट्टीए
३३५	१५	वेइज्ज०	वेइज्ज०
३३६	१९	चरिमे	चरमे
३३७	१६	चतुर्भिर्मासै०	चतुर्भिर्मासै०
३३७	२८	०चूण	०चूर्णी
३४०	६	एव जघन्या०	एवं संज्वलनक्रोधस्य जघन्यस्थित्युदयो जघन्या०
३४०	१६	उण	पुण
३४१	२४	०स्य क्रोधतृतीय०	०स्य क्रोधतृतीय०
३४७	४	मज्झो विही	मज्झो वि विही
३४७	६,१६	सर्वो	सर्वोऽपि
३४९	४	मासोऽन्ते	मासोऽन्तम्नि
३४९	४	॥१२८॥	॥१२८॥ (गीतिः)
३४९	२३	०मानस्य जघन्या०	०मानस्य जघन्य-स्थित्युदयो जघन्या-
३५०	१०	०विशति०	०विंशति०
३५१	१२	पढ-	पढम-
३५१	२४	०प्रथमस०	०प्रथमसं०
३५३	१८	लोभतृतीम०	लोभतृतीयसं०
३५४	२५	देगाता०	देगोता०
३५६	७	ओक-	ओकड्-
३५६	१५	०मायाया जघन्या०	०मायाया जघ-न्यस्थित्युदयो जघन्या०
३५८	२०	०नुभागदयश्च	नुभागोदयश्च
३५९	२४	वि	पि
३६१	१	लोभथम०	लोभप्रथम०
३६१	३२	०मोक्कड्ढितु	सोकड्ढित्तु
३६४	९	सुहुमापराइय०	सुहुमसांपराइय०
३६५	९	प्राग	प्राग्
३६५	२२	०विंशति०	०विंशति०
३६६	८	किट्टिमश्चतु०	किट्टिमध्यश्चतु०
३६६	१२	०सख्येयभाग०	सख्येयभाग०
३६७	२१	वादर०	बायर०
३७२	११,२६,	०पदध्न०	०पदध्न०
३७५	८	मध्यखण्डदल	मध्यमखण्डदलं
३७७	६	प्रक्षिप्यत	प्राक्षिप्यत
३८०	३०	०किट्टीनि०	०किट्टीनि०
३८०	३०	ल्पा	अल्पा
३८२	१०	०सपराइयो	०सांपराइयो
३८२	१९	सर्वाः	प्रदेशापेक्षया सर्वा
३८४	१३	तदेव	तदेवं
३८५	१३	०नेकोत्तरवृद्धया	०नेकोत्तरवृद्धया०

३८५	१६	पूर्वापूर्वमूक्ष्म०	पूर्वापूर्वसूक्ष्म०
३८९	२३	अन्तवर्गम्	अन्तर्वर्गम्
३९०	१०	तयाणिय	तया णि च
३९०	२४	तओ ताउ	चरिमओ बीयाइम्मि उ
३९०	२८	ततो स्मात्	चरिमतो द्वितीयादौ तु
३९१	२४	अन्तकरण०	अन्तरकरण०
३९२	२९	सखेज्जदिभागमेत्तमेवत्र	सखेज्जदिभागमेत्तमेव
३९३	२१०	दलनस्तु०	दलतस्त्वेकसख्येयभागमात्र
४००	९	विवातगो	विवायगो
४०२	४	ठिइसत उग	ठिइसत पुण
४०४	५	०भागोऽयोगु०	०भागोदयो गु०
४०५	५	मुँहूर्ता	मुहूर्ता
४०५	१०	०च्चैगोत्रयो	०च्चैर्गोत्रयो
४०६	३३	०दुआळी	णेण०दुआवलिया य संकमेणऽगुइवेण
४०६	३५	०के नेन	०के च संक्रमेणानुभवेन
४०७	१२	अनुभवनेन	अनुभवेन
४०९	२६	मागाशीहिं	मागाईहिं
४०९	२७	कोहाडिग०	कोहाइएग०
"	"	०ठिइपमाणा	०ठिइमाणा
"	२९	०प्रमाणा	०माना
४१०	३	"	"
४१२	२४	माय खवेदि	माय खवेदि
४१४	३१	अन्ये तु	अन्ये तु प्राहुः
४१५	२	भवति	भवतीति
४१६	२	उदयश्च	उक्तश्च
४१७	२०	०वेदस्य भा गो०	०वेदस्य जघन्यस्थितिसत्त्वं जघन्यानुभागसत्त्वं जघन्यानुभागो०
४१८	१३	वेदणाणत्त	वेअणाणत्तं
४२१	२८	०मेवेत्यव	०मेवेत्येव
४२२	३०	०स्थि	०स्थिति
४२३	१	किट्टिवेदनाद्धा०	अपगतकषाया०
४२३	२५	घातिकर्मणा	घातिकर्मणां
४२३	२६	०ज्ञतमगाथायाम	०ज्ञततमगाथाया
४३२	१५	०विशप०	०विशेष०
४३४	२५	समयहिअआलि०	समयहिआवलि०
४३५	२८	वट्टमाणस्स	वट्टमाणस्स
४३५	३१	दंस-णावर०	दसणावर०
४३६	५	उक्कसिया	उक्कोसिया
४४२	२६	श्रीविवाहप्रज्ञप्तौ	श्रीव्याख्याप्रज्ञप्तौ
४४३	६	जिनमत	जिनमत
४४४	१७	केवलिनः	केवलिनो
४४६	१८	दानान्तरायाणा	दानान्तरायादीनां
४४३	२२	०प्रतिहाय०	०प्रातिहार्य०
४४७	८	०मयोगीगुण०	सयोगिगुण०
४४८	५	तईआईइ	तइआईइं
४४८	९	यस्यायुस्त्त०	यस्यायुष्टस्तु०
४५१	५	०नेति चाच्यम,	०नेति चेत्, न,
४५१	२०	०गुणम्	गुणः
४५१	२२	०ज्ञानश्रित्य	०ज्ञानाश्रित्य
४५३	३१	धवलाकरास्तु	धवलाकारास्तु
४५३	३१	सर्वघातिकर्मणां	सर्वाघातिकर्मणां
४५५	१३	श्रीविवाइप्रज्ञप्तौ	श्रीव्याख्याप्रज्ञप्तौ
४५८	२६	०नित	०मितं
४६२	३०	व्याख्याहप्रज्ञप्ति०	व्याख्याप्रज्ञप्ति०
४७२	३	०तनुजोगा	०तणुजोगा
४७७	२५	कायायोगे०	काययोगे०
४७८	३	०मुंहुर्ता	०मुहूर्ता
४८०	५	ओकड्ढिज्जा	ओकड्ढिज्जा
४८०	२०	वि	पि
४८२	१४	गाथाद्वयन	गाथाद्वयेन
४८४	५	'अपुव्वफड्डाण'	'अपुव्वफड्डाण'
४८४	२४	समातकिट्टिकरणस्य'तस्य'	'तस्य' समाप्तकिट्टिकरणस्य
४९०	२५	चिय	चिअ
४८५	६	अमडिवाइ	अपडिवाइ
४८५	२९	०द्वय	द्वय
४९७	२७	समचतुस्र-	समचतुरस्र-
४९९	२	स्थित्युदयोगुणित०	स्थित्युदयो गुणित०
५००	२४	नरआगु०	परअणु०
५०४	२४	०वेदनीया०	वेदनीयमोहनीया०
५०४	३०	नाम ' रूपाणि	वेदनीयाऽऽयुष्क-नाम-गोत्ररूपाणि
५०५	२५	तत्त्वख्यात्मत०	तत्त्वख्यात्ममत०
५०६	१०	(६) आयुःक्षयादक्षयस्थितिः, (६) विघ्नक्षयादनन्तं वीर्यम्,	(७) विघ्नक्षयादनन्तं वीर्यम् (७) आयु क्षयादक्षयस्थितिः
५०८	१५	सन्तानत्वादिति	सन्तानत्वात्, प्रदीपसन्तानवदिति

५१२	१५	०च्छेदः, तेन	०च्छेद, तथा गुणानां कथञ्चिदुच्छेद-वदनुच्छेदोऽपि, तेन
५१५	२१	प्रथम……	यत नहि प्रथमविकल्प-कस्य कारणत्वाऽभावः ? शरीरादेरिति चेत्, मैवम्, न हि
५१७	६	यद्युक्तं	यदुक्तं
५२०	२१	०ऽसमाने देशे	०ऽसमानदेशे
५२४	२६	अन्यवृत्ति०	यतोऽन्यवृत्ति०
५२५	३	कामम्	सत्यम्
५२५	६	वैफत्यम्।	वैफल्यम्।
५२५	१५	इत्यपि	इति, तदपि
५२७	६	०प्रेयशब्द०	०प्रेय शब्द०
५२८	३१	द्रव्यतो	तत्र द्रव्यतो
५२९	११	नित्यानित्यसुख०	सुख०
५२९	२५	व्यूढ।	व्यूढो वोढव्यः।
५३०	२३	०रचैकभाजन०	०रेकभाजन०
५३२	२८	सुखत्वेनभिमता०	सुखत्वेनाभिमता०
५३३	३०	योगपद्यं	यौगपद्य
५३४	२	,,	,,
५३६	२७	०प्रेयः शब्द०	०प्रेय शब्द०
५३९	१६	०भिनिवेश	०भिनिवेशो
५४०	१२	०त्तरि… त्वेन	०त्तरोपभोगाश्रयत्वेन
५४०	२१	परकीयेपु	परकीयेषु
५४१	३	एव	यत एव
५४२	१२	हेतो नाम	हेतोः स्मरणं नाम
५४४	१४	प्रत्यचक्षस्य	प्रत्यक्षस्य
५४५	१२	गृहतेपु	गृहीतेष्वि०

५४६	३	भवती	भवतीति
५४७	१७	०दिति	०दिति सिद्धमिति चेत्,
५४८	१२	प्रकृतिपुरुपवि०	वि०
५५०	५	तथा प्रकारस्य	तथात्मान प्रकारस्य
५५०	१५	अनुपपात्त०	अनुपपत्ति०
५५१	२	वद्धावस्थाया	वद्धावस्थायां
५५२	२९	इत्यत्रेव शब्देन	इत्यत्रेवशब्देन प्रदीपसन्तानवदिति
५५३	३	०संवदेना०	सवेदना०
५५४	९	०भिवनाम्	०भिधान
५५८	१९	चिता०	रचिता० म
५५९	८	०मद्भुतम्	०माश्चर्यम्
५६०	२७५	०योगात्	०योगाद्
५६२	५	इष्टाम	ईष्टाम्
५६३	३०	तिमिकोशतङ्ग०	तिमिकोशतरङ्ग०
५६५	को०२ पं० ५ २४	ठिइवधो	ठिइवंधो,
५६७	१ ११	०दोलोव्वट्टणा०	०दोलोवट्टणा०
५६७	२ ३८	०मसख०	०मसंख०
५६९	१ ३२	भागाण	भागाणं
५७३	२ २१	अपव्वफग्गुण	अपुव्व फग्गुण
५७४	२ ९	०धम्माणद०	धम्माणद
५७५	२ २३	जेट्ठो	जेट्ठा
५७८	२ ६	तस्मिश्च	तस्मिंश्च
५८०	२ २०	पञ्चसग्रहकाराः	पञ्चसग्रहकारा
५८१	१ ५	श्रीवधमान०	श्रीवर्धमान०
५८१	२ ३	०चूर्णिकारा	०चूर्णिकारा १२
५८२	१ १७	१४१	१५, १४१
१६	१२	महीना	महिना

खवगसेढी(क्षपकश्रेणि)ग्रन्थनी मूलगाथाओनो गुजरातीमां

ભાવાનુવાદ

ખવગશ્રેઢી-ભાવાનુવાદ

(૧) સુરેન્દ્રો, અસુરેન્દ્રો અને નરેન્દ્રોથી વંદન કરાયેલ **શ્રીપાર્શ્વનાથ** ભગવંતને મન–વચન–કાયાથી નમસ્કાર કરી સ્વપરના હિત માટે ગુરુમહારાજની કૃપાથી ક્ષપકશ્રેણિ ગ્રંથને કહીશ

(૨–૩) ક્ષપકશ્રેણિગ્રંથમાં **નવઅધિકાર** છે. તે આ પ્રમાણે:

૧ **યથાપ્રવૃત્તકરણ.**	૫ **કિટ્ટિકરણાદ્ધા.**
૨ **અપૂર્વકરણ.**	૬ **કિટ્ટિવેદનાદ્ધા.**
૩ [1]**સવેદાનિવૃત્તિકરણ.**	૭ **અપગતકષાયાદ્ધા.**
૪ **અશ્વકર્ણકરણાદ્ધા.**	૮ **સયોગિકેવલિગુણસ્થાનક.**

૯ **અયોગિગુણસ્થાનક.**

(૪) અનંતાનુબંધિ ક્રોધ–માન–માયા–લોભ તથા મિથ્યાત્વમોહનીય–મિશ્રમોહનીય–સમ્યક્ત્વમોહનીય આ **દર્શનસપ્તકનો ક્ષય કરીને,** જઘન્યથી (ઓછામા ઓછા) અન્તર્મુહૂર્ત કાળ પછી અને ઉત્કૃષ્ટથી (વધારેમાં વધારે) સાધિક (કંઈક અધિક) ૩૩ સાગરોપમ કાળ પછી **શેષકર્મના ક્ષય માટે** જીવ–**આત્મા પ્રયત્ન કરે** છે. શેષકર્મોના ક્ષય માટે પ્રયત્ન કરતો તે આત્મા ૬ ઠ્ઠા અને ૭ મા ગુણસ્થાનકને અનેકવાર સ્પર્શે છે. પછી ૭ મા ગુણસ્થાનકે તે શ્રમણાત્મા **યથાપ્રવૃત્તકરણ** કરે છે.

(૫) **અધ્યવસાયો** અંતર્મુહૂર્તપ્રમાણ યથાપ્રવૃત્તકરણના દરેક સમયમાં અસંખ્ય-લોકાકાશના પ્રદેશપ્રમાણ અધ્યવસાયો હોય છે અને તે યથાપ્રવૃત્તકરણના પ્રથમ સમયથી માંડીને ઉત્તરોત્તરસમયે વિશેષાધિક હોય છે.

પૂર્વપૂર્વસમયની અપેક્ષાએ ઉત્તરોત્તર સમયે વિચારાતી અધ્યવસાયોની વિશુદ્ધિ **ઉર્ધ્વમુખી–વિશુદ્ધિ** કહેવાય છે, પ્રસ્તુત યથાપ્રવૃત્તકરણમા તે દરેક સમયે અનંતગુણી હોય છે. આ અનંતગુણી ઉર્ધ્વમુખી વિશુદ્ધિ એક જીવની અપેક્ષાએ સમજવી. અનેક જીવોની અપેક્ષાએ તે [2]**ષટ્સ્થાનપતિત** જાણવી. વિવક્ષિત એક સમયમાં અસંખ્યેય–લોકાકાશપ્રદેશપ્રમાણ અધ્યવસાયોની પરસ્પર વિચારાતી વિશુદ્ધિ તિર્યઙ્મુખી વિશુદ્ધિ કહેવાય છે. તે અનેક જીવોની અપેક્ષાએ જ સમજવી. આ **તિર્યઙ્મુખી વિશુદ્ધિ ષટ્સ્થાનપતિત** હોય છે.

૧ વેદના ઉદયવાળું અનિવૃત્તિકરણ, અનિવૃત્તિકરણગુણસ્થાનકના બહુસંખ્યાતભાગો સુધી વેદનો ઉદય હોય છે.

૨. ૧ અનંતભાગ, ૨ અસંખ્યાતભાગ, ૩ સંખ્યાતભાગ, ૪ સંખ્યાતગુણ, ૫ અસંખ્યાતગુણ, ૬ અનંતગુણ.

(૬-૭-૮) યથાપ્રવૃત્તકરણના પ્રથમસમયે જઘન્યવિશુદ્ધિ સૌથી થોડી હોય છે. તેના કરતાં બીજાસમયે જઘન્ય વિશુદ્ધિ અનંતગુણી હોય છે. તેના કરતા ત્રીજાસમયે અનંતગુણી, એ રીતે યથાપ્રવૃત્તકરણના પ્રથમસંખ્યાતમા ભાગ સુધી જઘન્યવિશુદ્ધિ અનંતગુણી અનંતગુણી કહેવી. યથાપ્રવૃત્તકરણના પ્રથમસંખ્યાતમા ભાગના ચરમસમયની વિશુદ્ધિ કરતાં [1]નીચે યથાપ્રવૃત્તકરણના પ્રથમસમયે ઉત્કૃષ્ટ વિશુદ્ધિ અનંતગુણી હોય છે. તેના કરતાં યથાપ્રવૃત્તકરણના પ્રથમસંખ્યાતમા ભાગના ઉપરના પ્રથમસમયે જઘન્યવિશુદ્ધિ અનંતગુણી હોય છે. એ રીતે નીચે ઉપર ક્રમશઃ ઉત્કૃષ્ટ અને જઘન્યવિશુદ્ધિ યથાપ્રવૃત્તકરણના ચરમસમય સુધી કહેવી યથાપ્રવૃત્તકરણના ચરમસમયની જઘન્યવિશુદ્ધિથી યથાપ્રવૃત્તકરણના ચરમસંખ્યાતમા ભાગના પ્રથમસમયે ઉત્કૃષ્ટવિશુદ્ધિ અનંતગુણી હોય છે તેના કરતા બીજાસમયે ઉત્કૃષ્ટવિશુદ્ધિ અનંતગુણી હોય છે. આ રીતે યથાપ્રવૃત્તકરણના ચરમસંખ્યાતમા ભાગના ચરમસમય સુધી ઉત્કૃષ્ટ વિશુદ્ધિ અનંતગુણી અનંતગુણી કહેવી

(૯-૧૦) યથાપ્રવૃત્તકરણ કરતો જીવ, મનોયોગ-વચનયોગ-ઔદારિકકાયયોગ, આ **ત્રણ યોગોમાંથી** ગમે તે **એક યોગમાં,** સંજ્વલનક્રોધ-માન-માયા-લોભ, આ **ચાર કષાયમાંથી** ગમે તે **એક કષાયમાં,** તેમજ **શ્રુતોપયોગમાં** વર્તતો હોય છે. **મતાંતરે** મતિ-શ્રુત-ચક્ષુદર્શન-અચક્ષુદર્શન આ ચાર ઉપયોગમાંથી કોઈ **એક ઉપયોગમાં** વર્તે છે. પુરુષવેદ-સ્ત્રીવેદ-નપુંસકવેદ, આ **ત્રણ વેદમાંથી કોઈ એક વેદમાં** અને પૂર્વ પૂર્વસમયથી ઉત્તરોત્તરસમયે **વિશુદ્ધતર શુક્લલેશ્યામાં** વર્તે છે.

પ્રકૃતિ, સ્થિતિ, રસ અને પ્રદેશને આશરીને બંધ, ઉદય, સત્તા સુગમ હોવાથી સ્વયં જાણી લેવી.

(૧૧) યથાપ્રવૃત્તકરણના અનંતરસમયે ક્ષપક આત્મા **અપૂર્વકરણ** કરે છે. અપૂર્વકરણમાં અધ્યવસાયોની વિશુદ્ધિ ગોમૂત્રિકાના આકારપ્રમાણે જઘન્ય અને ઉત્કૃષ્ટ અનંતગુણી હોય છે જેમ ગોમૂત્રની ધારા પ્રથમ ડાબી બાજુ પડે, પછી વક્રાકૃતિથી જમણી બાજુ પડે, પછી ફરી ડાબી બાજુ પડે તે જ રીતે અપૂર્વકરણમાં પ્રથમસમયની જઘન્ય વિશુદ્ધિ કરતા ઉત્કૃષ્ટવિશુદ્ધિ અનંતગુણી હોય છે. તેના કરતાં બીજાસમયે જઘન્યવિશુદ્ધિ અનંતગુણી હોય છે. તેના કરતાં તે જ બીજાસમયે ઉત્કૃષ્ટ વિશુદ્ધિ અનંતગુણી હોય છે. તેના કરતાં ત્રીજા સમયે જઘન્યવિશુદ્ધિ અનંતગુણી હોય છે આ ક્રમથી અપૂર્વકરણના ચરમસમયસુધી જઘન્ય-ઉત્કૃષ્ટ વિશુદ્ધિ હોય છે. તેથી [2]ગોમૂત્રિકાની ઉપમાથી વિશુદ્ધિક્રમ બતાવ્યો છે

પાંચ અપૂર્વ અધિકાર :

(૧૨-૧૩) અપૂર્વકરણના પ્રથમસમયથી જ (૧) શુભ તેમજ અશુભકર્મોની પલ્યોપમના સંખ્યાતમા ભાગપ્રમાણ **સ્થિતિનો ઘાત.** (૨) અબધ્યમાન અશુભકર્મના પ્રદેશોનો **ગુણસંક્રમ.** (૩) અશુભકર્મના **રસનો ઘાત.** (૪) **અપૂર્વસ્થિતિબંધ** અને

૧ જુઓ – ક્ષપકશ્રેણિ ટીકા પૃ. ૧૬ ઉપરનુ ચિત્ર

૨. ગોમૂત્રિકાકૃતિ માટે જુઓ ક્ષપકશ્રેણિ ટીકા પૃ:૨૪૭.

(૫) **ગુણશ્રેણિ.** આ પાંચ પહેલા કદી પ્રાપ્ત નહિ થયેલા અપૂર્વઅધિકાર અહીં એકી સાથે પ્રવર્તે છે. તેથી આ કરણ અપૂર્વકરણ કહેવાય છે

(૧૪) ૧ **સ્થિતિઘાત :** સ્થિતિઘાત એટલે સ્થિતિસત્તાના અગ્રિમભાગમાંથી સ્થિતિને ઘટાડવી તે આ પ્રમાણે – જઘન્ય સ્થિતિખંડ પલ્યોપમના સંખ્યાતમા ભાગપ્રમાણ હોય છે. તેમજ ઉત્કૃષ્ટ સ્થિતિખંડ પણ પલ્યોપમના સંખ્યાતમા ભાગપ્રમાણ હોય છે. તેમાં જઘન્ય કરતા ઉત્કૃષ્ટ સ્થિતિખંડ સંખ્યાતગુણો હોય છે. ઉક્ત સ્થિતિખંડમાથી દરેક સમયે થોડા થોડા કર્મ પ્રદેશો ગ્રહણ કરી નીચેની સ્થિતિમાં નાંખી અંતર્મુહૂર્તકાળમાં વિવક્ષિત સ્થિતિખંડની સર્વસ્થિતિમાથી સર્વપ્રદેશોને ખાલી કરી નાંખે છે. તેથી એટલી સ્થિતિ સત્તામાંથી ઓછી થાય છે. આ રીતે જીવ અપૂર્વકરણમાં સંખ્યાતા–સ્થિતિઘાતો કરે છે.

(૧૫) ૨ **ગુણસંક્રમ :** સત્તામાં રહેલી અબધ્યમાન અશુભપ્રકૃતિઓના દલિકને બધ્યમાન સ્વજાતીયપ્રકૃતિમાં દરેક સમયે અસંખ્યગુણ અસંખ્યગુણ દલિકોને નાંખે– સંક્રમાવે છે. દા. ત. સત્તામા રહેલ અપ્રત્યાખ્યાનાવરણ કષાયના દલિકોને વર્તમાનમા બંધાતી મોહનીયની પ્રકૃતિઓમાં સંક્રમાવે.

(૧૬) ૩ **રસઘાત :** રસઘાત એટલે રસને ઘટાડવો. દરેક અંતર્મુહૂર્તે સત્તામા રહેલ અશુભપ્રકૃતિઓના બહુઅનંતભાગપ્રમાણ રસનો ક્ષપક નાશ કરે છે. એક સ્થિતિઘાત દરમ્યાન આવા **હજારો રસઘાત** થાય છે. શુભપ્રકૃતિઓના રસનો ઘાત થતો નથી.

(૧૭) ૪ **અપૂર્વસ્થિતિબંધ :** અપૂર્વકરણના પ્રથમસમયે સ્થિતિબંધ અંતઃ–કોટાકોટીસાગરોપમપ્રમાણ થાય છે. સ્થિતિસત્તા પણ અંતઃકોટાકોટીસાગરોપમપ્રમાણ હોય છે. પણ સ્થિતિસત્તા કરતા સ્થિતિબંધ સંખ્યાતગુણહીન હોય છે. અપૂર્વકરણના પ્રથમસમયે શરૂ થયેલો સ્થિતિબંધ અંતર્મુહૂર્ત સુધી ચાલે છે. અંતર્મુહૂર્ત પૂર્ણ થયા પછી, પૂર્વકરતા પલ્યોપમના સંખ્યાતમા ભાગપ્રમાણ ઓછો એવો બીજો નવો સ્થિતિબંધ શરૂ થાય છે. તે પણ અંતર્મુહૂર્ત સુધી ચાલે છે. અપૂર્વકરણમા આવા અપૂર્વ સ્થિતિબંધો સંખ્યાતા થાય છે.

(૧૮) ૫ **ગુણશ્રેણિ :** ગુણશ્રેણિ એટલે અસંખ્યગુણક્રમે દલિકોની રચના. અપૂર્વ-કરણમાં સત્તાગતકર્મદલિકોમાંથી પ્રતિસમય અસંખ્યગુણ કર્મપ્રદેશોને ગ્રહણ કરીને અંતર્મુહૂર્તપ્રમાણ નિષેકોના ઉદયનિષેકથી માંડી છેલ્લા નિષેક સુધી અસંખ્યગુણ ક્રમે દલિકોની રચના જીવ કરે છે, પણ અનુદયવતી પ્રકૃતિઓના પ્રદેશોને ઉદયાવલિકાના ઉપરના નિષેકથી માંડીને ગુણશ્રેણિના ચરમનિષેક સુધી ગુણશ્રેણિના આયામમાં અસંખ્યેયગુણના ક્રમે નાંખે છે. ગુણશ્રેણિનો આયામ (નિક્ષેપ) અપૂર્વકરણ અને અનિવૃત્તિકરણ આ બે કરણના કાળથી કંઈક અધિક હોય છે. આ ગુણશ્રેણિ આયામ ગલિતાવશેષ હોય છે એટલે કે જેમ જેમ એક એક નિષેક અનુભવાતો જાય, તેમ તેમ આયામ ઓછો થતો જાય.

(૧૯) સત્તામાં રહેલા મોહનીયકર્મના પ્રદેશોમાંથી અસંખ્યાતમા ભાગ જેટલા પ્રદેશોને ઉખેડીને (લઈને) તેમાંના અસંખ્યાતમાભાગપ્રમાણ પ્રદેશોની જીવ ઉદ્વર્તના કરે

છે. બાકીના બહુઅસંખ્યાતભાગોની અપવર્તના કરે છે. તેથી ઉદ્‌વર્તનામાં જેટલા પ્રદેશો હોય છે તેના કરતાં અપવર્તનામાં અસંખ્યગુણા હોય છે. તેના કરતાં સત્તાગત (નહિ ઉખેડેલા) પ્રદેશો અસંખ્યાતગુણા હોય છે.

(૨૦-૨૧) અહીં અપૂર્વકરણના સરખા સાતભાગ કલ્પીએ તો તેમાંનાં **પહેલા ભાગના અંતે** નિદ્રા અને પ્રચલાનો બંધ વિચ્છેદ થાય છે, દેવદ્વિક, પંચેન્દ્રિયજાતિ, વૈક્રિયદ્વિક, આહારકદ્વિક, તૈજસકાર્મણશરીર, સમચતુરસ્રસંસ્થાન, વર્ણ, ગંધ, રસ, સ્પર્શ, શુભખગતિ, નિર્માણ, અગુરુલઘુ, ઉપઘાત, પરાઘાત, શ્વાસોશ્વાસ, જિનનામ, ત્રસદશકની નવ (યશકીર્તિ સિવાય) આ ત્રીસ પ્રકૃતિઓનો **છઠ્ઠા ભાગના અંતે** બંધ વિચ્છેદ થાય છે. અપૂર્વકરણના **ચરમસમયે** હાસ્ય, રતિ, ભય, જુગુપ્સા-આ ચાર પ્રકૃતિઓનો બંધ વિચ્છેદ થાય છે અને હાસ્ય, રતિ, શોક, અરતિ, ભય, જુગુપ્સા આ છ પ્રકૃતિઓનો **ઉદય** વિચ્છેદ થાય છે.

(૨૨) અપૂર્વકરણના પ્રથમસમયે થતા **સ્થિતિબંધ** કરતા તેના ચરમસમયે સંખ્યાતગુણહીન સ્થિતિબંધ થાય છે. અપૂર્વકરણના પ્રથમસમયે જે અંતઃકોડાકોડી સાગરોપમપ્રમાણ **સ્થિતિસત્તા** હતી તે સંખ્યાતસ્થિતિઘાતોથી ઓછી કરાતી કરાતી ચરમસમયે સંખ્યાતગુણહીન થાય છે.

(૨૩) અપૂર્વકરણની સમાપ્તિના અનંતરસમયે જીવ **અનિવૃત્તિકરણ** કરે છે. તેમાં અપૂર્વકરણની જેમ નવા સ્થિતિખંડનો અને રસખંડનો નાશ કરવાનો પ્રારંભ કરે છે. અહીં જઘન્યસ્થિતિખંડ કરતાં ઉત્કૃષ્ટ સ્થિતિખંડ સંખ્યાતભાગમાત્ર જ અધિક હોય છે. જે અપૂર્વકરણમાં સંખ્યાતગુણ અધિક હતો

(૨૪) અનિવૃત્તિકરણના પ્રથમસમયે સર્વકર્મોના સર્વદલિકોની દેશોપશમના, નિધત્તિ અને નિકાચના વિચ્છેદ પામે છે. અર્થાત્ અનિવૃત્તિકરણના પ્રથમસમયથી દેશથી ઉપશમિત નિદ્ધત અને નિકાચિત પ્રદેશો સત્તામાં રહેતા નથી તેમજ નવા બંધાતા કર્મ-પ્રદેશોની દેશોપશમના નિધત્તિ કે નિકાચના થતી નથી. અનિવૃત્તિકરણમાં પ્રથમસ્થિતિબંધ અંતર્લક્ષસાગરોપમ-લાખ સાગરોપમથી પણ ઓછો હોય છે.

(૨૫) અપૂર્વકરણના પ્રથમસમયે જે સ્થિતિસત્તા અંતઃકોડાકોડીસાગરોપમપ્રમાણ હતી. તેના કરતા અનિવૃત્તિકરણના પ્રથમસમયે સ્થિતિસત્તા સંખ્યાતગુણહીન રહે છે.

(૨૬) અનિવૃત્તિકરણનો પ્રથમસ્થિતિખંડ નષ્ટ થયે છતે એકી સાથે પ્રવેશેલા સર્વ જીવોના પરસ્પર સ્થિતિસત્તા અને સ્થિતિખંડ તુલ્ય હોય છે

(૨૭) અનિવૃત્તિકરણમા સંખ્યાતા સ્થિતિબંધો ગયા (થયા) પછી જ્યારે અનિ-વૃત્તિકરણના કાળનો સંખ્યાતમો ભાગ બાકી રહે ત્યારે આયુષ્યસિવાયના સાતકર્મનો સ્થિતિબંધ અસંજ્ઞિપંચેન્દ્રિયના સ્થિતિબંધની તુલ્ય થાય છે. ત્યારબાદ સંખ્યાતસ્થિતિ-બંધો ગયા (થયા) પછી ચતુરિન્દ્રિયના સ્થિતિબંધ તુલ્ય, ત્યારબાદ સંખ્યાતસ્થિતિબંધો ગયા (થયા) પછી ત્રીન્દ્રિયના સ્થિતિબંધ તુલ્ય ત્યારબાદ સંખ્યાત સ્થિતિબંધો ગયા

(થયા) પછી દ્વીન્દ્રિયના સ્થિતિબંધ તુલ્ય અને ત્યારબાદ સંખ્યાત સ્થિતિબંધો ગયા (થયા) પછી એકેન્દ્રિયના સ્થિતિબંધની તુલ્ય સ્થિતિબંધ થાય છે.

(૨૮-૨૯ ૩૦-૩૧) હવે અનિવૃત્તિકરણમાં સંખ્યાતહજાર સ્થિતિબંધો ગયા બાદ જે સ્થિતિબંધાદિ એક એક વસ્તુ બને છે તે કહીશું. પણ સંખ્યાતહજાર સ્થિતિબંધોના ગમનનો નિયમ કોઈ કોઈ વિશેષ સ્થળે લાગુ ન પાડવો.

સ્થિતિબંધ : એકેન્દ્રિયજીવના સ્થિતિબંધ સમાન સ્થિતિબંધ થયા બાદ સંખ્યાતા હજાર સ્થિતિબંધો ગયા (થયા) પછી નામ-ગોત્રકર્મનો એક પલ્યોપમ, જ્ઞાનાવરણ દર્શનાવરણ, વેદનીય અને અંતરાયનો દોઢ પલ્યોપમ અને મોહનીયનો બે પલ્યોપમ સ્થિતિબંધ થાય છે. ત્યારપછી દરેક અંતર્મુહૂર્તે નામગોત્રનો ઉત્તરોત્તર સ્થિતિબંધ સંખ્યાતગુણહીન થાય છે. બાકીના પાંચકર્મોનો પહેલાંની જેમ પલ્યોપમનો સંખ્યાતમો ભાગ હીન થાય છે. આ ક્રમે સંખ્યાતહજાર સ્થિતિબંધો ગયા (થયા) પછી નામગોત્રનો સ્થિતિબંધ પલ્યોપમના સંખ્યાતમા ભાગપ્રમાણ થાય છે. જ્ઞાનાવરણાદિ ચાર કર્મોનો એક પલ્યોપમ અને મોહનીયનો એકતૃતીયાંશઅધિક એક પલ્યોપમ ($1\frac{1}{3}$) થાય છે. ત્યારપછી દરેક અંતર્મુહૂર્તે જ્ઞાનાવરણાદિ ચારનો પણ ઉત્તરોત્તર સ્થિતિબંધ સંખ્યાતગુણહીન થાય છે. મોહનીયનો પહેલાંની જેમ પલ્યોપમનો સંખ્યાતભાગહીન થાય છે. આ ક્રમે પણ સંખ્યાતાહજાર સ્થિતિબંધો ગયા પછી મોહનીયનો સ્થિતિબંધ એક પલ્યોપમપ્રમાણ થાય છે. બાકીના છ કર્મોનો પલ્યોપમના સંખ્યાતમા ભાગપ્રમાણ થાય છે. ત્યારબાદ દરેક અંતર્મુહૂર્તે સાતે કર્મોનો ઉત્તરોત્તર સ્થિતિબંધ સંખ્યાતગુણહીન થાય છે.

(૩૨-૩૩) મોહનીયનો એક પલ્યોપમપ્રમાણ સ્થિતિબંધ પૂર્ણ થયા પછી થતા સ્થિતિબંધનું **અલ્પબહુત્વ આ પ્રમાણે હોય છે** નામગોત્રનો સ્થિતિબંધ **થોડો.** તેના કરતાં જ્ઞાનાવરણાદિ ચારકર્મોનો **સંખ્યાતગુણો.** તેથી મોહનીયનો **સંખ્યાતગુણો.** આ ક્રમે સંખ્યાતહજાર સ્થિતિબંધ ગયા પછી નામગોત્રનો સ્થિતિબંધ પલ્યોપમના અસંખ્યાતમા ભાગપ્રમાણ થાય છે અને ત્યારપછી એ બન્ને કર્મોનો ઉત્તરોત્તર સ્થિતિબંધ અસંખ્યાતગુણહીન થાય છે. અને શેષકર્મોનો પૂર્વવત્ સંખ્યાતગુણહીન થાય છે. ત્યારબાદ સંખ્યાતહજાર સ્થિતિબંધો ગયા (થયા) પછી જ્ઞાનાવરણાદિ ચારકર્મોનો સ્થિતિબંધ પલ્યોપમના અસંખ્યાતમા ભાગપ્રમાણ થાય છે અને તે પછી આ ચારનો સ્થિતિબંધ ઉત્તરોત્તર અસંખ્યેયગુણહીન થાય છે એ જ રીતે સંખ્યાતહજાર સ્થિતિબંધો થયા પછી મોહનીયનો સ્થિતિબંધ પણ પલ્યોપમના અસંખ્યાતમા ભાગપ્રમાણ થાય છે. અને ત્યારે સાતકર્મોની **સ્થિતિસત્તા** અંતર્લક્ષસાગરોપમ એટલે કે લાખ સાગરોપમથી પણ ઓછી રહે છે. હવેથી સાતેકર્મનો ઉત્તરોત્તર સ્થિતિબંધ અસંખ્યેયગુણહીન થાય છે.

(૩૪) ત્યારબાદ સંખ્યાતહજાર સ્થિતિબંધો ગયા પછી મોહનીયનો સ્થિતિબંધ **એકીસાથે** ઘટીને જ્ઞાનાવરણાદિ ચારના સ્થિતિબંધ કરતા અસંખ્યેયગુણહીન થાય છે ત્યારબાદ સંખ્યાતહજાર સ્થિતિબંધો ગયા પછી મોહનીયનો સ્થિતિબંધ **એકીસાથે** ઘટીને

નામગોત્રના સ્થિતિબંધ કરતા અસંખ્યેયગુણહીન થાય છે. તેથી સ્થિતિબંધનું **અલ્પબહુત્વ** આ પ્રમાણે બને–મોહનીયનો સ્થિતિબંધ થોડો. તેના કરતાં નામગોત્રનો અસંખ્યગુણો. તેના કરતાં જ્ઞાનાવરણાદિ ચારનો અસંખ્યગુણો.

(૩૫–૩૬) ત્યારબાદ સંખ્યાતહજાર સ્થિતિબંધો ગયા પછી જ્ઞાનાવરણ, દર્શનાવરણ અને અંતરાય આ ત્રણનો સ્થિતિબંધ એકીસાથે ઘણો ઓછો થવાથી તેના કરતાં વેદનીયનો સ્થિતિબંધ અસંખ્યેયગુણ થાય છે. ત્યારબાદ સંખ્યાતહજાર સ્થિતિબંધો ગયા (થયા) પછી નામગોત્રના સ્થિતિબંધ કરતાં જ્ઞાનાવરણાદિ ત્રણનો સ્થિતિબંધ એકીસાથે ઘટીને અસંખ્યગુણહીન થાય છે અને તે વખતે વેદનીયનો સ્થિતિબંધ નામગોત્રના સ્થિતિબંધ કરતાં વિશેષાધિક હોય છે. અહીં સ્થિતિબંધનુ **અલ્પબહુત્વ** આ પ્રમાણે છે મોહનીયનો સ્થિતિબંધ થોડો. તેના કરતા જ્ઞાનાવરણાદિ ત્રણનો અસંખ્યેયગુણ. તેના કરતાં નામગોત્રનો અસંખ્યગુણ. તેના કરતા વેદનીયનો વિશેષાધિક આમ અનિવૃત્તિકરણમાં ઉત્તરોત્તર સ્થિતિબંધો થયા કરે છે **સ્થિતિબંધ**

(૩૭) **સ્થિતિસત્તા :** ઉપર્યુક્ત અલ્પબહુત્વના ક્રમથી સંખ્યાતહજાર [illegible] થયા પછી **સાતકર્મની સ્થિતિસત્તા** અસંજ્ઞીના સ્થિતિબંધતુલ્ય થાય છે ત્યારપછી છેલ્લા અલ્પબહુત્વસુધી જે રીતે સ્થિતિબંધો કહી ગયા છીએ તે જ રીતે **સ્થિતિસત્તા** પણ સમજવી

(૩૮) સ્થિતિસત્તાના છેલ્લા અલ્પબહુત્વ બાદ સંખ્યાતહજાર સ્થિતિઘાત થયા પછી અસંખ્યાતસમયપ્રબદ્ધ કર્મદલિકોની **ઉદીરણા** થાય છે. ત્યારબાદ સંખ્યાતહજાર [1]સ્થિતિઘાત થયા પછી ચાર અપ્રત્યાખ્યાનાવરણકષાય, ચાર પ્રત્યાખ્યાનાવરણકષાય આ આઠ પ્રકૃતિઓનો સત્તામાંથી ક્ષય થાય છે અને તે જ સમયે આ કષાય અષ્ટકનો જઘન્યસ્થિતિસંક્રમ થાય છે.

૧૬ પ્રકૃતિનો ક્ષય અને મોહકર્મનું અંતરકરણ :

(૩૯–૪૦–૪૧) ત્યારબાદ સંખ્યાતહજાર [1]**સ્થિતિઘાત થઈ ગયા પછી** સ્થાવર, સૂક્ષ્મ, તિર્યંચગતિ, તિર્યંચાનુપૂર્વી, નરકગતિ, નરકાનુપૂર્વી, આતપ, ઉદ્યોત, સાધારણ, એકેન્દ્રિય, દ્વીન્દ્રિય, ત્રીન્દ્રિય, ચતુરિન્દ્રિય જાતિ, અને થીણદ્ધિત્રિક **આ સોળ પ્રકૃતિઓનો** ક્ષપક આત્મા સત્તામાંથી ક્ષય કરે છે. ત્યારબાદ સંખ્યાતહજાર સ્થિતિઘાત થયા પછી દાનાન્તરાયાદિ પ્રકૃતિઓનો દેશઘાતી રસ બાંધે છે. તે આ રીતે **૧૬ પ્રકૃતિઓનો ક્ષય** થયા બાદ સંખ્યાત**હજાર સ્થિતિઘાત** થયા પછી દાનાંતરાય અને મનઃપર્યવજ્ઞાનાવરણનો દેશઘાતી રસ બાંધે છે. ત્યારબાદ સંખ્યાતહજાર સ્થિતિઘાત થઈ ગયા પછી **લાભાંતરાય, અવધિજ્ઞાનાવરણ** તથા **અવધિદર્શનાવરણનો** દેશઘાતી રસ બાંધે છે ત્યારબાદ સંખ્યાતહજાર સ્થિતિઘાત થઈ ગયા પછી **શ્રુતજ્ઞાનાવરણ** અને **અચક્ષુદર્શનાવરણનો** દેશઘાતી રસ બાંધે છે ત્યારબાદ સંખ્યાતહજાર સ્થિતિઘાત થઈ ગયા પછી **ચક્ષુદર્શનાવરણનો** દેશઘાતી રસ બાંધે છે. ત્યારબાદ સંખ્યાતહજાર સ્થિતિઘાત થઈ ગયા પછી **ઉપભોગાંતરાય** અને **મતિજ્ઞાનાવરણનો** દેશઘાતી રસ બાંધે છે ત્યારબાદ સંખ્યાતહજાર સ્થિતિઘાત થઈ

૧ સ્થિતિબંધ સાથે સ્થિતિઘાત પણ થાય છે અને તે બન્નેનો કાળ પણ સરખો છે.

ગયા પછી **વીર્યાંતરાયનો** દેશઘાતી રસ બાંધે છે ત્યારબાદ સંખ્યાતહજાર સ્થિતિઘાત થઇ ગયા પછી સંજ્વલનચતુષ્ક અને નવ નોકષાય આ **મોહનીયની ૧૩ પ્રકૃતિઓનું અંતરકરણ** કરે છે. અર્થાત્ ઉપર નીચેની સ્થિતિ છોડી વચ્ચેની અંતર્મુહૂર્તપ્રમાણ સ્થિતિગત દલિકોને સમયે સમયે ખાલી કરે છે. આ અંતરકરણની ક્રિયા એક સ્થિતિબંધના અંતર્મુહૂર્તપ્રમાણ કાળમાં સમાપ્ત થાય છે.

(૪૨) અંતરકરણક્રિયા વખતે ઉદયવાળી પ્રકૃતિઓની [1]પ્રથમસ્થિતિ અંતર્મુહૂર્ત પ્રમાણ અને અનુદયવતી પ્રકૃતિઓની પ્રથમસ્થિતિ આવલિકા પ્રમાણ હોય છે. **નપુંસકવેદ** અને **સ્ત્રીવેદની** પ્રથમસ્થિતિ સૌથી **થોડી** તથા બન્નેની **પરસ્પરતુલ્ય.** તેના કરતા **પુરુષવેદની** પ્રથમસ્થિતિ **વિશેષાધિક.** તેના કરતાં ક્રોધ, માન, માયા અને લોભની પ્રથમસ્થિતિ ક્રમશઃ વિશેષાધિક હોય છે.

(૪૩) અંતરકરણ કરતી વખતે ઉપર નીચેની સ્થિતિની વચ્ચેની અંતર્મુહૂર્ત પ્રમાણ સ્થિતિમાથી પ્રદેશોને ઉપાડી ઉપાડીને ઉદયવાળી પ્રકૃતિઓની પ્રથમસ્થિતિમાં નાંખે અને બધ્યમાનપ્રકૃતિઓની અબાધારહિત દ્વિતીયસ્થિતિમા નાંખે છે.

(૪૪-૪૫) અંતરકરણની ક્રિયા પૂર્ણ થયા પછી **મોહનીયનો** (૧) સંખ્યાતવર્ષ-પ્રમાણ **સ્થિતિબંધ** (૨) એકઠાણીયો **રસબંધ** (૩) એકઠાણીઓ **રસોદય** (૪) આનુપૂર્વી **સંક્રમ** (૫) લોભનો **અસંક્રમ** (૬) નવા બંધાતાં સર્વકર્મોની બંધાયા બાદ છ આવલિકા ગયા પછી **ઉદીરણા** અને (૭) નપુંસકવેદની **ક્ષપણા** આ **સાત અધિકારો**—વસ્તુઓ એકી સાથે પ્રવર્તે છે—થાય છે.

(૪૬) અંતરકરણની ક્રિયા પૂર્ણ કરનાર જીવનો વિવક્ષિત કોઇ એક સમયે, મોહનીયકર્મનો **રસબંધ, રસોદય** અને **રસસંક્રમ** અનુક્રમે અનંતગુણ હોય છે હવે દલિકોને આશ્રીને બંધ-ઉદય અને સંક્રમ કહીશું

(૪૭-૪૮-૪૯) **પ્રદેશબંધ, પ્રદેશોદય** અને **પ્રદેશસંક્રમ** અનુક્રમે અસંખ્યાત-ગુણ હોય છે. પૂર્વ પૂર્વ સમયની અપેક્ષાએ ઉત્તરોત્તર સમયે મોહનીયનો **રસબંધ** અને **રસોદય** અનંતગુણહીન હોય છે. રસખંડનો ઘાત થયા બાદ **રસસંક્રમ અનંતગુણહીન** થાય છે. અને ઉત્તરોત્તર સમયે **પ્રદેશબંધ** યોગના અનુસારે ચાર પ્રકારે થાય છે. તે આ પ્રમાણે—અસંખ્યાતભાગવૃદ્ધ, સંખ્યાતભાગવૃદ્ધ, સંખ્યાતગુણવૃદ્ધ અને અસંખ્યાતગુણવૃદ્ધ **અથવા** અસંખ્યાતભાગહીન, સંખ્યાતભાગહીન, સંખ્યાતગુણહીન અને અસંખ્યાતગુણહીન પ્રદેશબંધ થાય છે **તેમજ** યોગ જો અવસ્થિત હોય તો **અવસ્થિત** પ્રદેશબંધ પણ થાય છે. ઉત્તરોત્તરસમયે **પ્રદેશોદય** અને **પ્રદેશસંક્રમણ** અસંખ્યાતગુણ અસંખ્યાતગુણ હોય છે.

(૫૦) વિવક્ષિત કોઇ એક સમયમા મોહનીયનો **રસોદય** વધારે હોય છે. તેના કરતાં તે જ સમયે **રસબંધ** અનંતગુણહીન હોય છે. તેના કરતા અનંતર સમયે **રસોદય**

૧. અંતરકરણની નીચેની સ્થિતિ એ **પ્રથમસ્થિતિ** અને ઉપરની સ્થિતિ એ **દ્વિતીયસ્થિતિ,** જુઓ ક્ષપકશ્રેણિ ટીકામા ચિત્ર નં ૭

અનંતગુણહીન હોય છે તેના કરતાં તે જ સમયે **રસબંધ** અનંતગુણહીન હોય છે.

(૫૧-૫૨) અંતરકરણ ક્રિયા પૂર્ણ થયા બાદ સંખ્યાતહજાર **સ્થિતિખંડો** ગયા પછી ક્ષપક **નપુંસકવેદને** સર્વથા ખપાવે છે. ત્યારબાદ **સ્ત્રીવેદને** ખપાવવાનો પ્રારંભ કરે છે સ્ત્રીવેદની ક્ષપણાના કાળનો સંખ્યાતમો ભાગ વીત્યા પછી જ્ઞાનાવરણ-દર્શનાવરણ-અંતરાય આ **ત્રણ ઘાતિકર્મનો સ્થિતિબંધ** સંખ્યાતવર્ષપ્રમાણ થાય છે. ત્યારબાદ સ્થિતિખંડ-પૃથક્ત્વ ગયા પછી સ્ત્રીવેદને સર્વથા ખપાવી દે છે અને ત્યારે **મોહનીયકર્મની સ્થિતિસત્તા** સંખ્યાતવર્ષની રહે છે.

(૫૩-૫૪-૫૫) સ્ત્રીવેદનો સર્વથા ક્ષય કર્યાબાદ જીવ સાત નોકષાયના ક્ષયનો પ્રારંભ કરે છે. તે વખતે **સ્થિતિબંધ** અને **સ્થિતિસત્તાનુ અલ્પબહુત્વ** આ પ્રમાણે હોય છે: મોહનીયનો સ્થિતિબંધ **થોડો.** તેના કરતાં બાકીના ત્રણ ઘાતિકર્મોનો **સંખ્યાત-ગુણ.** તેના કરતાં નામગોત્રનો **અસંખ્યાતગુણ** અને તેના કરતાં વેદનીયનો **વિશેષાધિક** હોય છે મોહનીયની **સ્થિતિસત્તા** થોડી તેના કરતાં બાકીના ત્રણ ઘાતિકર્મોની **અસંખ્ય-ગુણી.** તેના કરતાં નામગોત્રની **અસંખ્યગુણી** અને તેના કરતાં વેદનીયની **વિશેષાધિક** હોય છે સાત નોકષાયની ક્ષપણાના કાળનો સંખ્યાતમો ભાગ ગયા પછી ત્રણ અઘાતિકર્મોનો સ્થિતિબંધ સંખ્યાતવર્ષપ્રમાણ થાય છે.

(૫૬) સાત નોકષાયના ક્ષપણાદ્ધા(ક્ષપણા કાળ)ના સંખ્યાતભાગો ગયા પછી ત્રણ ઘાતિકર્મની **સ્થિતિસત્તા** સંખ્યાતા વર્ષોની રહે છે.

પુરુષવેદની પ્રથમસ્થિતિ બે આવલિકાપ્રમાણ બાકી રહે ત્યારે પુરુષવેદનો આગાલ-પ્રત્યાગાલ વિચ્છેદ પામે છે. બીજી સ્થિતિમાથી ઉદીરણાકરણદ્વારા પ્રદેશોનું ઉદયમાં આવવું તે **આગાલ.** પ્રથમસ્થિતિમાંથી ઉદ્વર્તનાકરણદ્વારા બીજી સ્થિતિમાં પ્રદેશોનુ જવું તે **પ્રત્યાગાલ.**

(૫૭-૫૮) પુરુષવેદની સમયાધિક એક આવલિકાપ્રમાણ પ્રથમસ્થિતિ બાકી રહે ત્યારે પુરુષવેદની જઘન્યસ્થિત્યુદીરણા અને જઘન્યાનુભાગોદીરણા થાય છે. એક સમયન્યૂન બે આવલિકાપ્રમાણ કાળમાં બંધાયેલું પુરુષવેદનુ દલિક અને પુરુષવેદની ઉદયસ્થિતિ, પુરુષવેદની પ્રથમસ્થિતિના ચરમસમયે બાકી રહે. તે સિવાયના સાતે નોકષાયના સર્વ-પ્રદેશોનો ક્ષય થાય છે તે વખતે પુરુષવેદનો **સ્થિતિબંધ** આઠ વર્ષ પ્રમાણ, સંજ્વલન-ચતુષ્કનો સોળવર્ષપ્રમાણ થાય છે. ઘાતિકર્મની **સ્થિતિસત્તા** સંખ્યાતવર્ષ અને અઘાતિ-કર્મની અસંખ્યાતવર્ષ હોય છે.

(૫૯) પુરુષવેદના ઉદયવિચ્છેદના અનંતરસમયે જીવ **અશ્વકર્ણકરણ** કરે છે. પુરુષવેદોદયના વિચ્છેદ પછી સંજ્વલનક્રોધના ઉદયના બાકી રહેલા 'કઈક અધિક ત્રીજા ભાગપ્રમાણકાળ'ને અશ્વકર્ણકરણાદ્ધા કહેવાય. તેનાં ત્રણ નામો છે. (૧) [1]**અશ્વકર્ણ-કરણાદ્ધા** (૨) [2]**આદોલકરણાદ્ધા** (૩) **અપવર્તનોદ્વર્તનકરણાદ્ધા.**

૧ જુઓ-ક્ષપકશ્રેણિ ટીકામા ચિત્ર નં. ૧૦. ૨ જુઓ-ચિત્ર નં. ૧૧.

આ નામો સાર્થક છે. જેમ ઘોડાનો કાન મધ્યભાગમાં પહોળો હોય છે, પછી સાંકડો થતો જાય છે, એ જ રીતે પુરુષવેદનો ઉદયવિચ્છેદ થયા બાદ એક રસઘાત સમાપ્ત થયે છતે ક્રોધ, માન, માયા અને લોભનો રસ અનુક્રમે અનંતગુણહીન(ઓછો) બને છે. **અથવા** પુરુષવેદોદયના વિચ્છેદ થયા પછી પૂર્વસ્પર્ધકો કરતાં અનંતગુણહીન રસવાળાં અપૂર્વસ્પર્ધકો કરે છે. તેથી પણ આ પ્રક્રિયાના કાળને અશ્વકર્ણકરણાદ્ધા કહેવાય છે

આદોલકરણાદ્ધાનો અર્થ પણ આ રીતે સમજવો. આદોલ એટલે હીંચકો. વૃક્ષની શાખાને હીંચકો બંધાય ત્યારે બન્ને બાજુની દોરીની વચ્ચેનો ભાગ વધુ પહોળો હોય છે. ત્યાર બાદ નીચે સુધી સંકોચાતો ઓછો થતો જાય છે.

અપવર્તન એટલે ઓછું થવું. **ઉદ્વર્તન** એટલે વધવું. પુરુષવેદોદયના વિચ્છેદ પછી એક રસઘાત થયે છતે સંજ્વલન ક્રોધ-માન-માયા-લોભનો ક્રમશઃ રસ અનંતગુણહીન બને છે તથા લોભ-માયા-માન-ક્રોધનો અનુક્રમે અનન્તગુણવૃદ્ધ (અધિક) બને છે અથવા પૂર્વસ્પર્ધકો કરતાં અપૂર્વસ્પર્ધકોનો રસ અનંતગુણ**હીન** હોય છે અને અપૂર્વસ્પર્ધકો કરતાં પૂર્વસ્પર્ધકોનો રસ અનંતગુણ**અધિક** હોય છે તેથી અપવર્તનોદ્વર્તનકરણકાળ કહેવાય છે.

(૬૦) અશ્વકર્ણકરણના પ્રથમસમયે મોહનીયની સ્થિતિસત્તા સંખ્યાતહજારવર્ષ હોય છે અને ચારે પ્રકારના સંજ્વલનકષાયનો બંધ અંતર્મુહૂર્તન્યૂન ૧૬ વર્ષ પ્રમાણ થાય છે.

(૬૧) **રસસત્તાનું અલ્પબહુત્વ-માન**ની રસસત્તા થોડી. તેના કરતાં **ક્રોધ, માયા** અને **લોભ**ની અનુક્રમે વિશેષાધિક હોય છે. એ રીતે **રસબંધ**નું પણ **અલ્પબહુત્વ** જાણવું.

(૬૨) ક્રોધ, માન, માયા અને લોભનો રસખંડ અનુક્રમે વિશેષાધિક હોય છે. પ્રથમ રસખંડનો ઘાત થયા પછી લોભ-માયા-માન-ક્રોધના બાકી રહેલા સ્પર્ધકો અનુક્રમે અનંતગુણાં હોય છે.

(૬૩) સંજ્વલનકષાયના જઘન્ય પૂર્વસ્પર્ધક કરતા ઉત્કૃષ્ટ અપૂર્વસ્પર્ધકને પણ અનંતગુણહીન રસવાળું કરે છે આવા સ્પર્ધક શ્રેણિ સિવાયની કોઈ પણ અવસ્થામાં પહેલાં ન કરેલાં હોવાથી અપૂર્વસ્પર્ધક કહેવાય છે.

(૬૪-૬૫) અપૂર્વસ્પર્ધકો એક દ્વિગુણહાનિસ્પર્ધકોના અસંખ્યાતભાગપ્રમાણ હોય છે. અહીં ભાગહાર (ભાજક) ઉત્કર્ષણાપકર્ષણભાગહારથી અસંખ્યાતગુણ અને પલ્યોપમના પ્રથમવર્ગમૂળના અસંખ્યાતમા ભાગપ્રમાણ હોય છે.

ઉત્તરોત્તર અપૂર્વસ્પર્ધકની પ્રથમવર્ગણાઓ વિશેષાધિક હોય છે.

(૬૬) અશ્વકર્ણકરણના પ્રથમસમયે અનુક્રમે ક્રોધ-માન-માયા-લોભના અપૂર્વ-સ્પર્ધકો વિશેષાધિક હોય છે.

(૬૭) ચારે સંજ્વલનકષાયના ચરમઅપૂર્વસ્પર્ધકની પ્રથમવર્ગણાઓ રસની અપેક્ષાએ તુલ્ય હોય છે. લોભાદિની જઘન્યવર્ગણામાં **રસના અવિભાગો** અનુક્રમે વિશેષાધિક હોય છે. અર્થાત્ લોભના પ્રથમઅપૂર્વસ્પર્ધકની જઘન્યવર્ગણામાં રસાવિભાગો થોડા. તેના કરતાં

માયાના પ્રથમઅપૂર્વસ્પર્ધકની જઘન્યવર્ગણામાં વિશેષાધિક. તેના કરતાં માનની જઘન્ય-વર્ગણામાં વિશેષાધિક. તેના કરતાં ક્રોધની જઘન્યવર્ગણામાં રસાવિભાગો વિશેષાધિક હોય છે.

(૬૮) ક્ષપકશ્રેણિ ઉપર આરોહણ કરતો આત્મા અપૂર્વસ્પર્ધકોમાં વિશેષહીનક્રમે દલિક આપે છે (નાંખે છે). અપૂર્વસ્પર્ધકની ચરમવર્ગણા કરતાં પૂર્વસ્પર્ધકની પ્રથમવર્ગણામાં અસંખ્યાતગુણહીન દલિક આપે છે. ત્યાર બાદ પૂર્વસ્પર્ધકની બધી વર્ગણાઓમાં વિશેષહીનક્રમે દલિક આપે છે.

(૬૯) અપૂર્વસ્પર્ધકની જઘન્યવર્ગણાથી માંડી પૂર્વસ્પર્ધકની ચરમવર્ગણા સુધી દશ્યમાન દલિક ગોપુચ્છાકારે (ગાયના પુંછડાના આકારે) ક્રમશઃ વિશેષહીન હોય છે. અપૂર્વસ્પર્ધકોમાં વર્તમાનમાં અપાતું જ દલિક દશ્યમાન દલિક. પૂર્વસ્પર્ધકોમાં [1]દશ્યમાન દલિક એટલે વર્તમાનમાં અપાતાં દલિકની સાથે સત્તામાં રહેલું જુનું દલિક. પ્રથમઅપૂર્વ-સ્પર્ધકની પ્રથમવર્ગણાનાં દલિકો કરતાં પ્રથમપૂર્વસ્પર્ધકની પ્રથમવર્ગણામાં દશ્યમાન દલિકો અસંખ્યાતભાગહીન હોય છે.

(૭૦) **અશ્વકર્ણકરણના પ્રથમસમયે** અપૂર્વસ્પર્ધકો અને અનંતભાગપ્રમાણ નીચેના મંદરસવાળા પૂર્વસ્પર્ધકો **ઉદયમાં** હોય છે. એ રીતે **બંધ** પણ સમજવો. માત્ર વિશેષતા એ કે ઉદય કરતાં બંધમાં અનંતગુણહીનરસ હોય છે.

(૭૧-૭૨-૭૩) પ્રતિસમય અસંખ્યાતગુણક્રમે દલિકો લઈને ક્ષપક આત્મા અસખ્યાત-ગુણહીન નવાં અપૂર્વસ્પર્ધકો કરે છે.

વિવક્ષિત કોઈ એક સમયે બનાવાતાં અપૂર્વસ્પર્ધકોમાં અનુક્રમે વિશેષહીન દલિકો આપે છે. અને ચરમઅપૂર્વસ્પર્ધકની ચરમવર્ગણા કરતાં પૂર્વસમયે બનાવેલ પ્રથમઅપૂર્વસ્પર્ધકની પ્રથમવર્ગણામા અસંખ્યગુણહીન દલિકો આપે છે. ત્યાર બાદ પૂર્વસ્પર્ધકની ચરમવર્ગણા સુધી ક્રમશ· વિશેષહીન વિશેષહીન દલિકો આપે છે **પૂર્વ-અપૂર્વ** બધાં સ્પર્ધકોમાં દશ્યમાનદલિક અનુક્રમે વિશેષહીન વિશેષહીન હોય છે

(૭૪-૭૫-૭૬-૭૭) અશ્વકર્ણકરણાદ્ધામાં એક રસખંડનો ઘાત થયા બાદ **અઢાર પદોનું અલ્પબહુત્વ** આ રીતે હોય છે (૧) **ક્રોધના** અપૂર્વસ્પર્ધકો થોડાં. (૨) તેના કરતાં **માનના** વિશેષાધિક (૩) તેના કરતાં **માયાના** વિશેષાધિક. (૪) તેના કરતાં **લોભના** વિશેષાધિક. (૫) તેના કરતાં **એકદ્વિગુણહાનિના** સ્પર્ધકો અસખ્યાતગુણાં, કારણ કે અપૂર્વસ્પર્ધકો એકદ્વિગુણહાનિના સ્પર્ધકોના અસંખ્યાતમા ભાગપ્રમાણ જ કરાય છે. (૬) તેના કરતા **એકસ્પર્ધકની** વર્ગણાઓ અનંતગુણી. (૭) તેના કરતાં **ક્રોધના સર્વ અપૂર્વસ્પર્ધકોની** વર્ગણાઓ અનંતગુણી. (૮) તેના કરતાં **માનના અપૂર્વસ્પર્ધકોની** વર્ગણાઓ વિશેષાધિક. (૯) તેના કરતાં **માયાના અપૂર્વસ્પર્ધકોની** વર્ગણાઓ વિશેષાધિક. (૧૦) તેના કરતાં **લોભના અપૂર્વસ્પર્ધકોની** વર્ગણાઓ વિશેષાધિક. (૧૧) તેના કરતાં

૧. જુઓ-'ક્ષપકશ્રેણિ' ટીકા ચિત્ર નં ૧૩.

પૂર્વસ્પર્ધકો અનંતગુણાં. (૧૨) તેના કરતાં **તેની વર્ગણાઓ** અનંતગુણી. (૧૩) તેના કરતા **માયાના પૂર્વસ્પર્ધકો** અનંતગુણાં. (૧૪) તેના કરતાં **તેની વર્ગણાઓ** અનંતગુણી. (૧૫) તેના કરતાં **માનના પૂર્વસ્પર્ધકો** અનંતગુણાં. (૧૬) તેના કરતાં **તેની વર્ગણાઓ** અનંતગુણી. (૧૭) તેના કરતાં **ક્રોધના પૂર્વસ્પર્ધકો** અનંતગુણાં. (૧૮) તેના કરતાં **તેની વર્ગણાઓ** અનંતગુણી.

(૭૮) અશ્વકર્ણકરણના ચરમસમયે મોહનીયનો-સંજ્વલનક્રોધાદિ ચાર કષાયનો સ્થિતિબંધ આઠ વર્ષ પ્રમાણ થાય છે. અને બાકીના કર્મોનો સંખ્યાતહજાર વર્ષ હોય છે.

(૭૯) **સ્થિતિસત્તા:** ચાર ઘાતિકર્મની સ્થિતિસત્તા સંખ્યાતહજાર વર્ષ અને ત્રણ અઘાતિકર્મોની અસંખ્યાતા હજાર વર્ષ થાય છે. આ રીતે ક્ષપક આત્મા અશ્વકર્ણકરણનો કાળ પૂર્ણ કરે છે.

(૮૦) અશ્વકર્ણકરણ પૂર્ણ કરીને આત્મા કિટ્ટિકરણાદ્ધામાં પ્રવેશ કરે છે. કિટ્ટિકરણકાળમાં આત્મા પૂર્વ-અપૂર્વસ્પર્ધકોમાંથી કિટ્ટિઓ કરે છે. **કિટ્ટિ એટલે** જે વર્ગણા એકોત્તર રસાવિભાગના ક્રમવાળી હતી. તેનો રસ ઘટાડવાથી પૂર્વપૂર્વકરતાં અનંતગુણ આંતરાવાળા સરખા રસાવિભાગોને ધરનાર કર્મપ્રદેશોનો સમૂહ.

(૮૧) લોભના પ્રથમઅપૂર્વસ્પર્ધકની પ્રથમવર્ગણા કરતાં ઉત્કૃષ્ટરસવાળી પણ કિટ્ટિ રસની અપેક્ષાએ અનંતગુણહીન હોય છે. ચારે કષાયની કિટ્ટિઓ એકસ્પર્ધકની વર્ગણાના અનંતમા ભાગ પ્રમાણ હોય છે.

(૮૨) એક એક કષાયની **ત્રણ અથવા અનંત** કિટ્ટિઓ થાય છે. **ત્રણ** કિટ્ટિઓ થાય છે તે **સંગ્રહકિટ્ટિઓ** અને **અનંત** કિટ્ટિઓ થાય છે તે **અવાંતરકિટ્ટિઓ** કહેવાય છે.

(૮૩) **ક્રોધના ઉદયે** ક્ષપકશ્રેણિ માંડનારને **૧૨** સંગ્રહકિટ્ટિઓ થાય. **માનના ઉદયે** શ્રેણિ માંડનારને **૯** સંગ્રહકિટ્ટિઓ થાય. **માયાના ઉદયે** શ્રેણિમાંડનારને **૬** સંગ્રહ કિટ્ટિઓ અને **લોભના ઉદયે** શ્રેણિપર ચઢનારને **૩** સંગ્રહકિટ્ટિઓ થાય છે.

(૮૪) એક એક સંગ્રહકિટ્ટિમાં અનંત અવાંતરકિટ્ટિઓ હોય છે. દરેક સમયમાં અપૂર્વઅવાન્તરકિટ્ટિઓ અસંખ્યાતગુણહીન થાય છે. અર્થાત્ પ્રથમસમયે જેટલી કિટ્ટિઓ કરે છે, તેના કરતાં બીજા સમયે અસંખ્યાતગુણહીન, તેના કરતાં ત્રીજા સમયે અસંખ્યાતગુણહીન. એમ ઉત્તરોત્તર સમયે અસંખ્યાતગુણહીન અપૂર્વકિટ્ટિઓ કરે છે.

(૮૫) પૂર્વ પૂર્વ સમય કરતા ઉત્તરોત્તર સમયે કિટ્ટિઓ માટે દલિક અસંખ્યાતગુણ ગ્રહણ કરે છે. હવે કિટ્ટિઓના રસનું અલ્પબહુત્વ કહેવાય છે.

(૮૬-૮૭-૮૮-૮૯) **લોભની પ્રથમસંગ્રહકિટ્ટિની** પ્રથમ અવાંતરકિટ્ટિમાં **રસાવિભાગો થોડા,** તેના કરતાં બીજી અવાંતરકિટ્ટિમાં અનંતગુણા. તેના કરતાં ત્રીજી અવાંતરકિટ્ટિમાં અનંતગુણા. એ રીતે લોભની પ્રથમસંગ્રહકિટ્ટિની છેલ્લી અવાંતરકિટ્ટિ સુધી સમજવું. તેના કરતાં લોભની **બીજી સંગ્રહકિટ્ટિની** પ્રથમઅવાંતરકિટ્ટિમાં રસાવિભાગો અનંતગુણા. તેના કરતાં બીજી અવાંતરકિટ્ટિમાં અનંતગુણા. આ રીતે લોભની બીજી સંગ્રહ-

કિટ્ટિની ચરમઅવાંતરકિટ્ટિ સુધી સમજવું. તેના કરતા લોભની ત્રીજી સંગ્રહકિટ્ટિની પ્રથમ અવાતરકિટ્ટિમાં રસાવિભાગો અનંતગુણા. આ રીતે લોભની ત્રીજી સંગ્રહકિટ્ટિની ચરમ-અવાતરકિટ્ટિ સુધી સમજવું. એ જ રીતે **માયાની** ત્રણ કિટ્ટિઓ, માનની ત્રણ કિટ્ટિઓ અને ક્રોધની ત્રણ કિટ્ટિઓની અવાંતરકિટ્ટિઓમાં રસાવિભાગોનું અલ્પબહુત્વ કહેવું.

(૯૦) હવે સંગ્રહકિટ્ટિઅંતર અને અવાંતરકિટ્ટિઅંતરનું અલ્પબહુત્વ કહીશું.

સંગ્રહકિટ્ટિઅંતર વિવક્ષિત સંગ્રહકિટ્ટિની છેલ્લી અવાંતરકિટ્ટિના રસાવિભાગો જે ગુણક દ્વારા ગુણવાથી અનંતર ઉપરની સંગ્રહકિટ્ટિની પ્રથમઅવાંતરકિટ્ટિના રસાવિભાગો પ્રાપ્ત થાય તે **ગુણક સંગ્રહકિટ્ટિઅંતર** કહેવાય.

અવાંતરકિટ્ટિઅંતર તે તે સંગ્રહકિટ્ટિની વિવક્ષિત અવાંતરકિટ્ટિના રસાવિભાગો જે ગુણક દ્વારા ગુણવાથી તે વિવક્ષિત અવાંતરકિટ્ટિની અનંતર ઉપરની અવાંતરકિટ્ટિના રસાવિભાગો પ્રાપ્ત થાય તે **ગુણક અવાંતરકિટ્ટિઅંતર** કહેવાય

(૯૧-૯૨-૯૩) **કિટ્ટિઅંતરોનું અલ્પબહુત્વ** લોભની પ્રથમસંગ્રહકિટ્ટિનું પહેલું અવાતરકિટ્ટિઅંતર અલ્પ–નાનું તેના કરતા બીજુ અવાતરકિટ્ટિઅંતર અનંતગુણ. તેના કરતા ત્રીજુ અનંતગુણ આ રીતે લોભની પ્રથમસંગ્રહકિટ્ટિના છેલ્લા અવાંતરકિટ્ટિઅંતર સુધી સમજવું. તેના કરતા લોભની બીજી સંગ્રહકિટ્ટિનું પહેલું અવાંતરકિટ્ટિઅંતર અનંતગુણ છે તેના કરતા બીજુ અવાંતરકિટ્ટિઅંતર અનંતગુણું, આ રીતે લોભની બીજી સંગ્રહકિટ્ટિના છેલ્લા અવાંતરકિટ્ટિઅંતર સુધી અલ્પબહુત્વ સમજવું. લોભની ત્રીજી સંગ્રહ-કિટ્ટિ, માયાની ૧ લી, ૨જી, ૩જી, માનની ૧લી, ૨જી, ૩જી, ક્રોધની ૧લી, ૨જી, ૩જી સંગ્રહકિટ્ટિનાં અવાંતરકિટ્ટિઅંતરો ક્રમશઃ અનંતગુણા કહેવાં–સમજવાં. ક્રોધની ત્રીજી સંગ્રહ-કિટ્ટિના છેલ્લા અવાંતરકિટ્ટિઅંતર કરતા લોભનું પહેલું સંગ્રહકિટ્ટિઅંતર અનંતગુણ જાણવું. તેના કરતા લોભનું બીજુ સંગ્રહકિટ્ટિઅંતર અનંતગુણું છે. આ રીતે **લોભની** ત્રીજી, માયાની ૧લી, ૨જી, ૩જી માનની ૧લી, ૨જી, ૩જી, ક્રોધની ૧લી, ૨જી, ૩જી સંગ્રહકિટ્ટિઓનાં અંતરો ક્રમશઃ અનંતગુણા કહેવાં. ખાસ યાદ રાખો લોભની પહેલી સંગ્રહકિટ્ટિનું પહેલું અવાંતરકિટ્ટિઅંતર **એટલે** લોભની પહેલી સંગ્રહકિટ્ટિની **પહેલી અવાંતરકિટ્ટિ અને બીજી અવાંતરકિટ્ટિવચ્ચેનો ગુણક.** લોભની પહેલી સંગ્રહકિટ્ટિનું છેલ્લુ અવાંતર-કિટ્ટિઅંતર એટલે લોભની પહેલી સંગ્રહકિટ્ટિની **ઉપાંત્ય** અવાંતરકિટ્ટિ અને **અંત્ય** અવાંતરકિટ્ટિ વચ્ચેનો ગુણક. લોભનું પહેલુ સંગ્રહકિટ્ટિઅંતર એટલે લોભની પહેલી સંગ્રહકિટ્ટિની છેલ્લી અવાંતરકિટ્ટિ અને લોભની બીજી સંગ્રહકિટ્ટિની પ્રથમઅવાન્તરકિટ્ટિ વચ્ચેનો ગુણક. આ રીતે બાકીના કિટ્ટિઅંતરો પણ સમજવા

(૯૪-૯૫-૯૬-૯૭) **સંગ્રહકિટ્ટિઓના પ્રદેશોનું અલ્પબહુત્વ** . **માનની પહેલી** સંગ્રહકિટ્ટિના સમપ્રદેશો થોડા. તેના કરતા **માનની બીજી** સંગ્રહકિટ્ટિના પ્રદેશો વિશેષાધિક. તેના કરતાં **માનની ત્રીજી** સંગ્રહકિટ્ટિના પ્રદેશો વિશેષાધિક. તેના કરતાં **ક્રોધની બીજી** સંગ્રહકિટ્ટિના પ્રદેશો વિશેષાધિક. તેના કરતા **ક્રોધની ત્રીજી** સંગ્રહકિટ્ટિના

પ્રદેશો વિશેષાધિક. તેના કરતાં **માયાની પહેલી** સંગ્રહકિટ્ટિના પ્રદેશો વિશેષાધિક. તેના કરતાં **માયાની બીજી** સંગ્રહકિટ્ટિના પ્રદેશો વિશેષાધિક. તેના કરતાં **માયાની ત્રીજી** સંગ્રહકિટ્ટિના પ્રદેશો વિશેષાધિક. તેના કરતાં **લોભની પહેલી** સંગ્રહકિટ્ટિના પ્રદેશો વિશેષાધિક. તેના કરતાં **લોભની બીજી** સંગ્રહકિટ્ટિના પ્રદેશો વિશેષાધિક. તેના કરતાં **લોભની ત્રીજી** સંગ્રહકિટ્ટિના પ્રદેશો વિશેષાધિક. તેના કરતાં **ક્રોધની પહેલી** સંગ્રહકિટ્ટિના પ્રદેશો **સંખ્યાતગુણ** હોય છે. ઉપર્યુક્ત અલ્પબહુત્વ **કિટ્ટિવેદકની** અપેક્ષાએ જાણવું. **કિટ્ટિકારકની** અપેક્ષાએ અહીં વિશેષ એ સમજવું કે જ્યાં ચારે કષાયની પહેલી સંગ્રહકિટ્ટિ કહેવામાં આવી છે, ત્યાં ત્રીજી અને જ્યાં ત્રીજી કહેવામા આવી છે ત્યાં પહેલી સંગ્રહકિટ્ટિ કહેવી. આ રીતે તે તે સંગ્રહકિટ્ટિઓની અવાંતરકિટ્ટિઓનુ પણ કિટ્ટિવેદક અને કિટ્ટિકારકની અપેક્ષાએ અલ્પબહુત્વ કહેવું.

(૯૮-૯૯ ૧૦૦) **એક એક અવાંતરકિટ્ટિમાં અપાતું દલિક** લોભની પહેલી સંગ્રહકિટ્ટિની પહેલી અવાંતરકિટ્ટિથી માંડી ક્રોધની ત્રીજી સંગ્રહકિટ્ટિની છેલ્લી અવાંતરકિટ્ટિ સુધી દરેક અવાંતરકિટ્ટિમાં અનુક્રમે વિશેષહીન દલિક અપાય છે. **પરંપરોપનિધાથી** પણ લોભની પહેલી સંગ્રહકિટ્ટિની પહેલી અવાતરકિટ્ટિ કરતાં ક્રોધની છેલ્લી અવાતરકિટ્ટિમાં પણ કર્મદલિકો વિશેષહીન જ અપાય છે. એ જ રીતે દશ્યમાનદલિક પણ સર્વ કિટ્ટિઓમાં વિશેષહીનક્રમે હોય છે.

(૧૦૧) કિટ્ટિઓ કરતો જીવ મોહનીયના સ્થિતિ અને રસની નિયમા અપવર્તના કરે પણ ઉદ્વર્તના ન કરે. કિટ્ટિકરણની પૂર્વ અવસ્થામાં રહેલા જીવો ઉદ્વર્તના અપવર્તના બન્ને કરે છે.

(૧૦૨) કિટ્ટિકરણના દ્વિતીયાદિ સમયોમા દરેક સમયે અસખ્યગુણ દલિક લઈને તે તે સગ્રહકિટ્ટિની નીચે અસંખ્યાતગુણહીન અપૂર્વઅવાંતરકિટ્ટિઓ કરે છે.

(૧૦૩-૧૦૪) **દ્વિતીયાદિ સમયોમાં દીયમાન દલિક** છેલ્લી અપૂર્વઅવાંતરકિટ્ટિમાં જેટલું દલિક આપે છે તેના કરતાં પહેલી પૂર્વઅવાતરકિટ્ટિમાં અસખ્યાતભાગહીન આપે છે અને છેલ્લી પૂર્વઅવાંતરકિટ્ટિમાં જેટલુ દલિક આપે છે તેના કરતાં ઉપરની અનતર પહેલી અપૂર્વઅવાંતરકિટ્ટિમાં અસખ્યાતભાગઅધિક આપે છે. બાકીની બધી પૂર્વાપૂર્વ અવાંતરકિટ્ટિઓમાં અનુક્રમે વિશેષહીન દલિક આપે છે. **તાત્પર્ય એ છે** કે લોભની પહેલી સંગ્રહકિટ્ટિની નીચે કરાતી અપૂર્વકિટ્ટિઓમા જે પ્રથમ અપૂર્વઅવાંતરકિટ્ટિ હોય છે, તેમાં સૌથી વધારે દલિકો આપે છે. તેના કરતા બીજી અપૂર્વઅવાંતરકિટ્ટિમા અનતભાગહીન, તેના કરતાં ત્રીજી અપૂર્વઅવાંતરકિટ્ટિમાં અનતભાગહીન દલિકો આપે છે. આમ ક્રમશઃ છેલ્લી અપૂર્વઅવાંતરકિટ્ટિ સુધી અનતભાગહીન દલિકો આપે છે.

લોભની પહેલી સંગ્રહકિટ્ટિની છેલ્લી અપૂર્વઅવાંતરકિટ્ટિ કરતાં લોભની બીજી સગ્રહકિટ્ટિની પહેલી પૂર્વઅવાતરકિટ્ટિમાં અસખ્યાતભાગહીન દલિકો (પ્રદેશો) આપે છે ત્યાર બાદ વિશેષહીનક્રમે ઉત્તરોત્તર પૂર્વઅવાતરકિટ્ટિમા લોભની પહેલી સગ્રહકિટ્ટિની છેલ્લી પૂર્વ-

અવાંતરકિટ્ટિ સુધી દલિકો આપે છે. લોભની પહેલી સંગ્રહકિટ્ટિની છેલ્લી પૂર્વઅવાંતરકિટ્ટિ કરતાં લોભની બીજી સંગ્રહકિટ્ટિની પહેલી અપૂર્વઅવાંતરકિટ્ટિમાં અસંખ્યાતભાગઅધિક દલિકો નાંખે છે. ત્યાર બાદ ઉત્તરોત્તર અપૂર્વઅવાંતરકિટ્ટિમાં વિશેષહીનક્રમે નાંખે છે. આ રીતે શેષ સંગ્રહકિટ્ટિની અવાંતરકિટ્ટિઓમાં પણ દલિકપ્રક્ષેપનો ક્રમ સમજવો. આ રીતે દલિકપ્રક્ષેપ કરવાથી કિટ્ટિકરણના દ્વિતીયાદિ સમયે ૧૨ સ્થાનોમાં અસંખ્યાતભાગહીન અને ૧૧ સ્થાનોમાં અસંખ્યાતભાગઅધિક દીયમાન દલિક હોય છે. શેષ સ્થાનોમાં વિશેષહીન ક્રમે હોય છે. તેથી દીયમાનદલિકના ૨૩ ઉષ્ટ્રકૂટ ઊંટના શિખરો (ઢેકા) થાય છે. [1]ગોબીના રણના ઊંટની પીઠનો ભાગ ઊંચો હોય છે પછી ક્રમશઃ નીચો થતો જાય છે. સ્થાનવિશેષમાં શરૂઆત કરતાં વધારે નીચો થયા પછી થોડો થોડો નીચો થઈ ઊંચો થાય (જો કે ઊંચાઈ થોડી થોડી વધે છે પરંતુ તેની અહીં અપેક્ષા-વિવક્ષા નથી) ત્યાર બાદ પુનઃ ક્રમશઃ નીચો થાય છે. તેમ અહીં લોભની પહેલી સંગ્રહકિટ્ટિની પહેલી અપૂર્વઅવાંતરકિટ્ટિમાં દીયમાન દલિક સૌથી વધારે હોય છે. ત્યાર પછી ક્રમશઃ વિશેષહીન થતું જાય છે. અપૂર્વઅવાંતરકિટ્ટિ અને પૂર્વઅવાંતરકિટ્ટિની સંધિ થયે છતે લોભની પહેલી સંગ્રહકિટ્ટિની પહેલી પૂર્વઅવાંતરકિટ્ટિમાં દીયમાન દલિક અસંખ્યાતભાગહીન હોય છે ત્યાર બાદ વિશેષહીન વિશેષહીન થતું જાય છે. પૂર્વ-અપૂર્વાવાંતરકિટ્ટિની સંધિ થયે છતે લોભની બીજી સંગ્રહકિટ્ટિની પહેલી અપૂર્વઅવાંતરકિટ્ટિમાં અસંખ્યાતભાગઅધિક દીયમાન દલિક હોય છે. ત્યાર બાદ ઉત્તરોત્તર અપૂર્વઅવાંતરકિટ્ટિમાં દીયમાનદલિક વિશેષહીન વિશેષહીન હોય છે. આ રીતે દીયમાનદલિક ઉષ્ટ્રકૂટના આકારતુલ્ય થાય. અહીં ઊંટની પીઠનાં ઊંચાણ અને નીચાણવાળાં સ્થાનો ઉષ્ટ્રકૂટ તરીકે ગણવા. માત્ર ઊંચાણવાળાં સ્થાનો ગણીએ તો અગિયાર જ ઉષ્ટ્રકૂટ થાય. બારે સંગ્રહકિટ્ટિની પૂર્વ-અપૂર્વ અવાતરકિટ્ટિઓમાં અનુક્રમે અનંતભાગહીન દશ્યમાન દલિક હોય છે

(૧૦૫-૧૦૬-૧૦૭) હવે ગત્યાદિ માર્ગણાઓમાંથી કઈ માર્ગણાઓમા બંધાએલ દલિક નિયમા કે વિકલ્પે હોય તે બતાવાય છે. મનુષ્યગતિ-તિર્યંચગતિ-એકેન્દ્રિય-પંચેન્દ્રિય-ત્રસકાય-ઔદારિકકાયયોગ-ઔદારિકમિશ્રકાયયોગ, સત્ય-અસત્ય-સત્યાસત્ય અને અસત્યામૃષા એમ ચાર મનોયોગ, એ જ પ્રમાણે ચાર વચનયોગ-નપુંસકવેદ-ક્રોધ-માન-માયા-લોભ-મતિજ્ઞાન-શ્રુતજ્ઞાન-મત્યજ્ઞાન-શ્રુતાજ્ઞાન-અવિરતિ-સામાયિકસંયમ-અચક્ષુદર્શન-છ લેશ્યા-ભવ્ય-મિથ્યાત્વ-ઔપશમિકસમ્યક્ત્વ ક્ષાયોપશમિકસમ્યક્ત્વ, ક્ષાયિકસમ્યક્ત્વ-સંજ્ઞી-અસંજ્ઞી અને આહારક આ **૪૨ માર્ગણાઓમાં બંધાયેલું મોહનીયકર્મનું દલિક કિટ્ટિ કરનાર અને કિટ્ટિવેદનારને સત્તામાં નિયમા હોય છે.**

(૧૦૮-૧૦૯) નરકગતિ-દેવગતિ-દ્વીન્દ્રિય-ત્રીન્દ્રિય-ચતુરિન્દ્રિય-પૃથ્વીકાય-અપ્કાય-તેઉકાય-વાયુકાય-વનસ્પતિકાય-વૈક્રિયકાયયોગ-વૈક્રિયમિશ્રકાયયોગ-આહારકકાયયોગ-આહારકમિશ્રકાયયોગ-કાર્મણકાયયોગ-સ્ત્રીવેદ-પુરુષવેદ-અવધિજ્ઞાન-વિભંગજ્ઞાન-મન:-

૧. જુઓ-ક્ષપકશ્રેણિ ટીકામાં ચિત્ર નં. ૧૬.

પર્યવજ્ઞાન – દેશવિરતિ – પરિહારવિશુદ્ધિસંયમ–છેદોપસ્થાપનીયસંયમ –અવધિદર્શન– મિશ્ર–સાસ્વાદનસમ્યક્ત્વ અને અનાહારક આ **૨૭ માર્ગણાઓમાં** બંધાયેલું મોહનીયનું દલિક કિટ્ટિકારક અને કિટ્ટિવેદકને સત્તામાં ભજનાએ (વિકલ્પે) હોય છે.

(૧૧૦) કેવલજ્ઞાન–કેવલદર્શન–અભવ્ય સૂક્ષ્મસંપરાય અને યથાખ્યાતસંયમ આ **પાંચમાર્ગણાઓમાં** બંધાયેલું **મોહનીયનું** દલિક કિટ્ટિકારક અને કિટ્ટિવેદકને સત્તામાં નિયમા હોતું નથી, કારણ કે **કેવલજ્ઞાન–કેવલદર્શન** માર્ગણામાં જીવ હજી ગયો જ નથી **સૂક્ષ્મસમ્પરાય–યથાખ્યાત**માર્ગણામાં જીવનું ગમન વિકલ્પે સંભવિત છે પણ ત્યાં મોહનીયનો બંધવિચ્છેદ હોય છે. અને **અભવ્ય** જીવને તો ક્ષપકશ્રેણિની જ પ્રાપ્તિ થતી નથી.

(૧૧૧) શાતા અને અશાતાવેદનીયના ઉદયમાં, પર્યાપ્ત–અપર્યાપ્ત જીવભેદોમાં, એકેન્દ્રિયના અસંખ્યાતાભવોમાં બંધાયેલું મોહનીયનું દલિક કિટ્ટિકારક અને કિટ્ટિવેદકને સત્તામાં નિયમા હોય છે.

(૧૧૨) એકથી માંડીને ત્રસકાયના સંખ્યાતા ભવોમાં બંધાયેલું મોહનીયનું દલિક કિટ્ટિકારક અને કિટ્ટિવેદકને સત્તામાં હોય છે. તાપસ–નિર્ગ્રન્થાદિ સર્વલિંગોમાં, અંગારાદિકર્મ અને શિલ્પમાં તથા ઉત્કૃષ્ટસ્થિતિબંધકાળે, ઉત્કૃષ્ટરસબંધકાળે બંધાયેલું મોહનીયનું દલિક કિટ્ટિકારક અને કિટ્ટિવેદકને સત્તામાં ભજનાએ (વિકલ્પે) હોય છે.

(૧૧૩) ક્ષપકની સત્તામાં નિયમા કહેલું દલિક ક્ષપકની સર્વસ્થિતિઓ અને સર્વકિટ્ટિઓમાં નિયમા હોય છે.

(૧૧૪) કિટ્ટિકરણાદ્ધામાં પૂર્વ–અપૂર્વ રસસ્પર્ધકોને અનુભવે છે અર્થાત્ તે ઉભય સ્પર્ધકોનો ઉદય હોય છે. ક્રોધની પ્રથમસ્થિતિ એક આવલિકાપ્રમાણ બાકી હોય ત્યારે **કિટ્ટિકરણાદ્ધા** સમાપ્ત થાય છે.

(૧૧૫) કિટ્ટિકરણના ચરમસમયે **મોહનીયનો સ્થિતિબંધ** અંતર્મુહૂર્ત અધિક ચાર મહીના અને શેષ કર્મોનો સંખ્યાતહજાર વર્ષ થાય છે.

(૧૧૬) કિટ્ટિકરણના ચરમસમયે **મોહનીયની સત્તા** ૮ વર્ષ, શેષ ત્રણ ઘાતિકર્મની સંખ્યાત હજારવર્ષ અને અઘાતિકર્મની અસંખ્યાતવર્ષ હોય છે.

(૧૧૭) કિટ્ટિકરણના અનંતર સમયે ક્રોધની પહેલી સંગ્રહકિટ્ટિની સર્વ અવાંતર–કિટ્ટિઓમાથી પ્રદેશો ખેંચી [1]અંતર્મુહૂર્ત સ્થિતિના ઉત્તરોત્તર નિષેકમાં અસંખ્યેયગુણક્રમે નાંખીને ક્રોધની પહેલી સંગ્રહકિટ્ટિની [2]પ્રથમસ્થિતિ રચે છે અને તે જ સમયથી તેને

૧ કિટ્ટિકરણના ચરમસમય પછીનો ક્રોધનો જે વેદનકાલ બાકી રહે છે તેના ત્રણ ભાગ કરવા. તેમાના પહેલા ભાગ કરતા બીજો વિશેષહીન બીજા કરતા ત્રીજો વિશેષહીન તેમાંના એક આવલિકા અધિક પહેલા તૃતીય ભાગપ્રમાણ અંતર્મુહૂર્ત જાણવુ. એ રીતે માન–માયા–લોભની તે તે સંગ્રહકિટ્ટિની પ્રથમસ્થિતિનુ અંતર્મુહૂર્ત સમજવુ.

૨. જુઓ ચિત્ર ક્ષપકશ્રેણિ ટીકા પૃ. ૨૪૪.

અનુભવે છે. ત્યારે મોહનીયનો સ્થિતિબંધ ચાર મહીના અને શેષ કર્મોનો પૂર્વે કહી ગયા છીએ તે પ્રમાણે જાણવો.

(૧૧૮) વેદ્યમાનસંગ્રહકિટ્ટિનું દલિક પ્રથમસ્થિતિમાં અસંખ્યગુણક્રમે હોય છે. પ્રથમસ્થિતિના ચરમનિષેક કરતા દ્વિતીયસ્થિતિના પ્રથમનિષેકમાં અસંખ્યગુણ દલિક (પ્રદેશો) હોય છે. તેના ઉપરના દ્વિતીયાદિનિષેકોમાં વિશેષહીનક્રમે હોય છે.

(૧૧૯) વેદ્યમાનસંગ્રહકિટ્ટિની પ્રથમ અને દ્વિતીય બન્ને સ્થિતિના બધા નિષેકોમાં બધીય અવાતરકિટ્ટિઓ હોય છે. માત્ર ઉદયસમયે અસખ્યાતભાગપ્રમાણ તીવ્રરસવાળી અને મંદરસવાળી અવાતરકિટ્ટિઓ મધ્યમરસવાળી થઈ જતી હોવાથી મધ્યમઅવાંતર–કિટ્ટિઓ હોય છે.

(૧૨૦) કિટ્ટિવેદનના પ્રથમસમયે **મોહકર્મની સ્થિતિસત્તા** આઠવર્ષ હોય છે અને **રસસત્તા** દેશઘાતી હોય છે. માત્ર એક સમય ન્યૂન ઉદયાવલિકામાં સર્વઘાતી રસસત્તા હોય છે.

(૧૨૧) ક્રોધ–માન–માયા–લોભની પહેલી સંગ્રહકિટ્ટિની અસંખ્યાતભાગપ્રમાણ તીવ્રરસવાળી અને મંદરસવાળી અવાંતરકિટ્ટિઓ છોડીને બહુઅસખ્યાતભાગપ્રમાણ મધ્યમ રસવાળી કિટ્ટિઓ બંધાય છે. ક્રોધની પહેલી સંગ્રહકિટ્ટિની બહુઅસંખ્યાતભાગપ્રમાણ મધ્યમ અવાંતરકિટ્ટિઓ અનુભવાય છે. બંધ કરતાં ઉદયમા કિટ્ટિઓ વિશેષાધિક હોય છે.

(૧૨૨–૧૨૩) જે અસંખ્યાતભાગપ્રમાણ **મંદરસવાળી** અવાંતરકિટ્ટિઓ બંધાતી નથી તેમજ અનુભવાતી પણ નથી તે નીચેની **અનુભય અવાંતરકિટ્ટિ** કહેવાય છે અને તેવી **તીવ્રરસવાળી** ઉપરની **અનુભય** અવાંતરકિટ્ટિ કહેવાય છે.

જે તીવ્રરસવાળી અવાંતરકિટ્ટિઓ માત્ર અનુભવાય છે તે **ઉપરની ઉદીર્ણ અવાંતરકિટ્ટિઓ કહેવાય.** જે અસંખ્યાતભાગપ્રમાણ **મંદરસવાળી** અવાંતરકિટ્ટિઓ માત્ર અનુભવાય છે તે **નીચેની ઉદીર્ણ** અવાંતરકિટ્ટિઓ કહેવાય અને જે અવાંતર-કિટ્ટિઓ બંધાય છે અને અનુભવાય પણ છે તે **ઉભયઅવાંતર**કિટ્ટિઓ કહેવાય છે. **અલ્પબહુત્વ ક્રોધની** પ્રથમસંગ્રહકિટ્ટિની નીચેની અનુભય **અવાંતરકિટ્ટિઓ** સૌથી થોડી તેના કરતાં નીચેની ઉદીર્ણ અવાંતરકિટ્ટિઓ વિશેષાધિક. તેના કરતાં ઉપરની અનુભય અવાંતરકિટ્ટિઓ વિશેષાધિક. તેના કરતાં **ઉપરની ઉદીર્ણ** અવાતરકિટ્ટિઓ વિશેષાધિક. તેના કરતાં **ઉભય** અવાંતરકિટ્ટિઓ અસંખ્યાતગુણી હોય છે.

(૧૨૪) કિટ્ટિવેદનના પ્રથમસમયથી **મોહનીયકર્મના અનુભાગની** અનુસમય **અપવર્તના** થાય છે એટલે કે મોહનીયનો રસ સમયે સમયે **અનંતગુણહીન** કરાય છે પહેલાં અંતર્મુહૂર્તે અંતર્મુહૂર્તે અનંતગુણહીન કરાતો હતો.

કિટ્ટિવેદનકાલના દરેક સમયમાં ઉત્કૃષ્ટ અવાંતરકિટ્ટિ ઉદયમાં અને બંધમાં **ગોમૂત્રિ-કાના** જેવા ક્રમથી અનંતગુણહીન રસવાળી હોય છે. એટલે કે કિટ્ટિવેદનાદ્ધાના **પ્રથમ-સમયે ઉદયમાં** રહેલી **ઉત્કૃષ્ટ** અવાંતરકિટ્ટિ સૌથી વધારે રસવાળી. તેના કરતાં **તે જ**

સમયે બંધમાં રહેલી ઉત્કૃષ્ટ અવાંતરકિટ્ટિ અનંતગુણહીનરસવાળી. તેના કરતાં **બીજા સમયે** ઉદયમાં રહેલી ઉત્કૃષ્ટ અવાંતરકિટ્ટિ અનંતગુણહીનરસવાળી હોય છે. તેના કરતાં **તે જ સમયે બંધમાં** વર્તતી ઉત્કૃષ્ટ અવાંતરકિટ્ટિ અનંતગુણહીનરસવાળી હોય છે. તેના કરતાં **ત્રીજા સમયે ઉદયમાં** રહેલી ઉત્કૃષ્ટ અવાંતરકિટ્ટિ અનંતગુણહીનરસવાળી હોય છે. તેના કરતાં **તે જ સમયે બંધમાં** વર્તતી ઉત્કૃષ્ટ અવાંતરકિટ્ટિ અનંતગુણહીનરસવાળી હોય છે. આ ક્રમથી દરેક સમયે ઉદય અને બંધમાં ઉત્કૃષ્ટ અવાંતરકિટ્ટિ અનંતગુણહીન-રસવાળી હોય છે, તેથી ગોમૂત્રિકાની ઉપમાથી ક્રમ દર્શાવ્યો છે.

(૧૨૫) કિટ્ટિવેદનકાળમાં દરેક સમયે બંધ અને ઉદયમાં **જઘન્ય અવાંતરકિટ્ટિ** ગોમૂત્રિકાના જેવા ક્રમે અનંતગુણહીનરસવાળી હોય છે. એટલે કે કિટ્ટિવેદનકાળના **પહેલા સમયે** બંધમાં જઘન્ય અવાંતરકિટ્ટિ સૌથી વધારે રસવાળી. તેના કરતાં **તે જ સમયે** ઉદયમાં જઘન્ય અવાંતરકિટ્ટિ અનંતગુણહીનરસવાળી. આ ક્રમથી ઉત્તરોત્તર સમયે બંધ અને ઉદયમાં જઘન્ય અવાંતરકિટ્ટિ અનંતગુણહીનરસવાળી હોય છે. તેથી ઉક્તક્રમ ગોમૂત્રિકાની ઉપમાથી બતાવવામાં આવ્યો છે. કિટ્ટિવેદનના દરેક સમયે બારે સંગ્રહ-કિટ્ટિઓની ઉપરની તીવ્રરસવાળી અસંખ્યાતભાગપ્રમાણ અવાંતરકિટ્ટિઓનો નાશ કરે છે અર્થાત્ વધારે રસવાળી કિટ્ટિઓને ઓછા રસવાળી બનાવે છે.

(૧૨૬) કિટ્ટિવેદનાદ્ધામા સંગ્રહકિટ્ટિઓના પ્રદેશોને નીચે સંક્રમાવે પણ ઉપર નહિ. એટલે કે ઓછા રસવાળી સંગ્રહકિટ્ટિઓમાં સંક્રમાવે. નીચેની પણ બધી કિટ્ટિઓમાં નહિ પરંતુ પોતાની નીચેની એક પહેલી સંગ્રહકિટ્ટિ સુધી સંક્રમાવે. દા. ત. ક્રોધની પહેલી સંગ્રહકિટ્ટિના પ્રદેશો ક્રોધની બીજી, ત્રીજી અને માનની પહેલી સંગ્રહકિટ્ટિમાં સંક્રમાવે. ક્રોધની બીજી સંગ્રહકિટ્ટિના પ્રદેશો ક્રોધની ત્રીજી અને માનની પહેલી સંગ્રહકિટ્ટિમાં સંક્રમાવે.

(૧૨૭) આત્મા જે સંગ્રહકિટ્ટિને અનુભવતો હોય, તે સંગ્રહકિટ્ટિની અનંતરસંગ્રહ-કિટ્ટિમાં અન્યસંગ્રહકિટ્ટિ કરતાં સંખ્યાતગુણા પ્રદેશો સંક્રમાવે છે. હવે **સંક્રમાવાતા પ્રદેશોનું અલ્પબહુત્વ** કહીશું.

(૧૨૮-૧૨૯ ૧૩૦) **અલ્પબહુત્વ** (૧) ક્રોધની બીજી સંગ્રહકિટ્ટિમાંથી માનની પહેલી સંગ્રહકિટ્ટિમાં સૌથી થોડા **પ્રદેશો** સંક્રમાવે. (૨) તેના કરતાં ક્રોધની ત્રીજી સંગ્રહ-કિટ્ટિમાંથી માનની પહેલી સંગ્રહકિટ્ટિમાં વિશેષાધિક સંક્રમાવે. (૩) તેના કરતાં માનની પહેલી સંગ્રહકિટ્ટિમાથી માયાની પહેલી સંગ્રહકિટ્ટિમાં વિશેષાધિક સંક્રમાવે. (૪) તેના કરતાં માનની બીજી સંગ્રહકિટ્ટિમાંથી માયાની પહેલી સંગ્રહકિટ્ટિમાં વિશેષાધિક સંક્રમાવે. (૫) તેના કરતાં માનની ત્રીજી સંગ્રહકિટ્ટિમાંથી માયાની પહેલી સંગ્રહકિટ્ટિમાં વિશેષાધિક સંક્રમાવે છે. (૬) તેના કરતાં માયાની પહેલી સંગ્રહકિટ્ટિમાંથી લોભની પહેલી સંગ્રહ-કિટ્ટિમાં વિશેષાધિક સંક્રમાવે. (૭) તેના કરતાં માયાની બીજી સંગ્રહકિટ્ટિમાંથી લોભની પહેલી સંગ્રહકિટ્ટિમા વિશેષાધિક સંક્રમાવે. (૮) તેના કરતાં માયાની ત્રીજી સંગ્રહકિટ્ટિમાંથી લોભની પહેલી સંગ્રહકિટ્ટિમાં વિશેષાધિક સંક્રમાવે. (૯) તેના કરતાં લોભની પહેલી

સંગ્રહકિટ્ટિમાંથી લોભની બીજી સંગ્રહકિટ્ટિમાં વિશેષાધિક સંક્રમાવે. (૧૦) તેના કરતાં લોભની પહેલી સંગ્રહકિટ્ટિમાંથી લોભની ત્રીજી સંગ્રહકિટ્ટિમાં વિશેષાધિક સંક્રમાવે છે. (૧૧) તેના કરતાં ક્રોધની પહેલી સંગ્રહકિટ્ટિમાંથી માનની પહેલી સંગ્રહકિટ્ટિમાં **સંખ્યાતગુણા** સંક્રમાવે છે. (૧૨) તેના કરતાં ક્રોધની પહેલી સંગ્રહકિટ્ટિમાંથી ક્રોધની ત્રીજી સંગ્રહકિટ્ટિમાં વિશેષાધિક સંક્રમાવે છે. (૧૩) તેના કરતાં ક્રોધની પહેલી સંગ્રહકિટ્ટિમાંથી ક્રોધની બીજી સંગ્રહકિટ્ટિમાં **સંખ્યાતગુણા પ્રદેશો** સંક્રમાવે છે.

(૧૩૧) બંધ(બંધાતા)પ્રદેશોમાંથી ચારે પ્રથમસંગ્રહકિટ્ટિઓની અવાંતરકિટ્ટિઓનાં આંતરાઓમાં અપૂર્વઅવાંતરકિટ્ટિઓ બનાવે છે. તેને બંધઅપૂર્વઅવાંતરકિટ્ટિઓ કહેવાય.

(૧૩૨) એક એક બંધઅપૂર્વઅવાંતરકિટ્ટિ પલ્યોપમના અસંખ્યાતા પ્રથમવર્ગમૂળપ્રમાણ અવાંતરકિટ્ટિઅંતરો ગયા પછી બનાવે છે.

(૧૩૩-૧૩૪) **બંધઅવાંતરકિટ્ટિઓમાં દલનિક્ષેપ** બંધની પહેલી [1]પૂર્વઅવાંતરકિટ્ટિમાં જીવ કર્મપ્રદેશો (દલિકો) વધારે આપે (નાંખે) છે. ત્યાર બાદ બંધઅપૂર્વઅવાંતરકિટ્ટિની નીચેની પલ્યોપમના અસંખ્યાતા પ્રથમવર્ગમૂળપ્રમાણ બંધપૂર્વઅવાંતરકિટ્ટિઓ સુધી વિશેષહીનક્રમે પ્રદેશોનો પ્રક્ષેપ કરે છે. ત્યાર પછી બંધપ્રથમઅપૂર્વઅવાંતરકિટ્ટિમા અનંતગુણા પ્રદેશો (કર્મદલિકો) આપે છે ત્યાર બાદ બંધપૂર્વઅવાંતરકિટ્ટિમાં અનંતગુણહીન પ્રદેશો આપે છે. ત્યાર બાદ બંધપૂર્વઅવાંતરકિટ્ટિમાં વિશેષહીન પ્રદેશો આપે છે. આ રીતે બંધ ઉત્કૃષ્ટ અવાંતરકિટ્ટિ સુધી દલિકો આપે છે.

(૧૩૫) **સંક્રમપ્રદેશોમાંથી અપૂર્વઅવાંતરકિટ્ટિઓ** ક્રોધની પહેલી સંગ્રહકિટ્ટિને છોડીને બાકીની ૧૧ સંગ્રહકિટ્ટિઓની નીચે અને તેની અવાંતરકિટ્ટિઓનાં આંતરાઓમા સંક્રમપ્રદેશોમાથી અપૂર્વઅવાંતરકિટ્ટિઓ બનાવે છે.

(૧૩૬) **અલ્પબહુત્વ** સંગ્રહકિટ્ટિઓની નીચે સંક્રમપ્રદેશોમાંથી બનાવાતી અપૂર્વઅવાતરકિટ્ટિઓ કરતાં અવાંતરકિટ્ટિઓનાં આંતરાઓમાં બનાવાતી અપૂર્વઅવાંતરકિટ્ટિઓ અસંખ્યગુણી હોય છે.

(૧૩૭) **દલિકપ્રક્ષેપ** સંગ્રહકિટ્ટિઓની નીચે બનાવાતી અપૂર્વઅવાંતરકિટ્ટિઓમાં પ્રદેશો(કર્મદલિક)નો નિક્ષેપ કિટ્ટિકરણની જેમ સમજવો. અવાંતરકિટ્ટિઓનાં આંતરાઓમાં બનાવાતી અપૂર્વઅવાંતરકિટ્ટિઓમાં પ્રદેશોનો નિક્ષેપ બંધઅપૂર્વઅવાંતરકિટ્ટિઓની જેમ સમજવો. માત્ર અંતર પલ્યોપમના વર્ગમૂળના અસંખ્યાતમા ભાગપ્રમાણ કહેવું, જે બંધઅપૂર્વઅવાંતરકિટ્ટિઓમા નિક્ષેપ કહેતી વખતે પલ્યોપમના અસંખ્યાતા પ્રથમવર્ગમૂળપ્રમાણ કહેવામાં આવ્યુ હતું.

૧. ક્રોધની પ્રથમસંગ્રહકિટ્ટિની સર્વ અવાંતરકિટ્ટિઓના અસંખ્યાતમા ભાગપ્રમાણ તીવ્ર અને મંદ રસવાળી અવાંતરકિટ્ટિઓ છોડીને જે અવાતરકિટ્ટિઓ બંધાય છે, તે બંધઅવાતરકિટ્ટિ કહેવાય છે. તેમાં પહેલા બનાવેલી કે સંક્રમપ્રદેશોથી બનાવાતી અવાતરકિટ્ટિઓ બધી **બંધપૂર્વઅવાંતરકિટ્ટિ** કહેવાય અને જે બંધપ્રદેશોમાંથી નવી જ બનાવાય, તેને **બંધઅપૂર્વઅવાંતરકિટ્ટિ** કહેવાય.

(૧૩૮) કોઈ વિવક્ષિત સમયે બંધાયેલું ક્રોધનું દલિક પાંચમી આવલિકામાં સંક્રમ દ્વારા બારે સંગ્રહકિટ્ટિઓમાં હોય છે. તે આ રીતે–વિવક્ષિત સમયે બંધાયેલું ક્રોધની પહેલી સંગ્રહકિટ્ટિનું દલિક એક આવલિકા સુધી એમને એમ જ રહે છે, (બીજે ક્યાંય તેનો સંક્રમ થતો નથી.) કારણ કે **બંધાવલિકાગત** સકળકરણને અયોગ્ય છે. બીજી આવલિકાના પ્રથમ સમયથી માનની પહેલી સંગ્રહકિટ્ટિ સુધી એનો સંક્રમ થાય માનની પહેલી સંગ્રહકિટ્ટિમાં આવેલું ક્રોધનું દલિક એક આવલિકા સુધી ત્યાં જ રહે છે, કારણ કે **સંક્રમાવલિકાગત** સકલકરણને અયોગ્ય છે. માનમાં આવેલું ક્રોધનું દલિક ત્રીજી આવલિકાના પ્રથમસમયે માયાની પહેલી સંગ્રહકિટ્ટિ સુધી સંક્રમાવે છે. તે દલિકને ચોથી આવલિકાના પ્રથમસમયે લોભની પહેલી સંગ્રહકિટ્ટિ સુધી સંક્રમાવે છે. પાંચમી આવલિકાના પ્રથમસમયે લોભની બીજી અને ત્રીજી સંગ્રહકિટ્ટિમાં સંક્રમાવે છે. આમ **ક્રોધનું** બદ્ધદલિક પાંચમી આવલિકાના પ્રથમસમયે **બારે સંગ્રહકિટ્ટિઓમાં** હોય છે. **માનનું** ચોથી આવલિકામાં **નવ સંગ્રહકિટ્ટિઓમાં, માયાનું** ત્રીજી આવલિકામાં છ સંગ્રહકિટ્ટિઓમા, અને **લોભનું** બીજી આવલિકામાં ત્રણ કિટ્ટિઓમાં હોય છે.

(૧૩૯) વિવક્ષિત સમયે બંધાયેલાં દલિકોનો સમૂહ તે **સમયપ્રબદ્ધ કહેવાય** અને વિવક્ષિત ભવમાં બંધાયેલા દલિકોનો સમૂહ **ભવબદ્ધ** કહેવાય છે. ઉદયનિષેકમાં છ આવલિકાના સમયપ્રબદ્ધો ઉદીરણાથી અપ્રક્ષિપ્ત હોય છે, કારણ કે ઉદીરણા છ આવલિકા પછી થાય છે. શેષ સર્વ સમયપ્રબદ્ધો તથા ભવબદ્ધો પ્રક્ષિપ્ત–ઉદયનિષેકમાં નાંખેલા હોય છે.

(૧૪૦-૧૪૧-૧૪૨-૧૪૩) વિવક્ષિત કોઈ એક સ્થિતિમાં (નિષેકમાં) જઘન્યથી **એક સમયપ્રબદ્ધ** હોય છે. બે સમયપ્રબદ્ધો, ત્રણ સમયપ્રબદ્ધો, ચાર સમયપ્રબદ્ધો, એમ એક એક વૃદ્ધિવાળા સમયપ્રબદ્ધો ઉત્કૃષ્ટથી પલ્યોપમના અસંખ્યાતમા ભાગપ્રમાણ હોય છે. વિવક્ષિત સમયે બંધાયેલા પ્રદેશો ઉદયદ્વારા સાંતરનિરંતર ભોગવાતા ભોગવાતા બાકી રહેલા અને અનંતર સમયે જે સર્વથા ભોગવાઈ જવાના હોય, તે પ્રદેશો ભોગકાળના પૂર્વ સમયે **સમયપ્રબદ્ધશેષક કહેવાય.** એ જ રીતે વિવક્ષિત ભવમાં બંધાયેલા પ્રદેશો ભોગકાળના અનંતર પૂર્વ સમયે **ભવબદ્ધશેષક કહેવાય. અલ્પબહુત્વ**–એકસમયપ્રબદ્ધશેષકવાળી સ્થિતિઓ થોડી. તેના કરતા અસંખ્યસમયપ્રબદ્ધશેષકવાળી સ્થિતિઓ અસંખ્યાતગુણી. તેના કરતાં પલ્યોપમના અસંખ્યાતમા ભાગપ્રમાણસમયપ્રબદ્ધશેષકવાળી સ્થિતિઓ અસંખ્યાતગુણી હોય છે, કારણ કે તેવી સ્થિતિઓ સત્તાગતસ્થિતિઓના બહુઅસંખ્યાતભાગપ્રમાણ હોય છે. **એક સમયપ્રબદ્ધશેષક** જઘન્યથી માત્ર **એક સ્થિતિમાં** હોય છે અને ઉત્કૃષ્ટથી એક સમય અધિક ઉદયાવલિકા છોડીને **સર્વ સ્થિતિમાં** હોય છે. જે સમયપ્રબદ્ધોનાં શેષકો **એક સ્થિતિમાં** હોય તે સમયપ્રબદ્ધો **અલ્પ.** તેના કરતાં જે સમયપ્રબદ્ધોનાં શેષકો **બે સ્થિતિમાં** રહેલાં હોય તે સમયપ્રબદ્ધો **વિશેષાધિક.** આ રીતે **અનંતરોપનિધાએ** વિશેષાધિક વિશેષાધિક સમયપ્રબદ્ધો કહેવા. આમ પ્રથમસ્થાનથી આવલિકાના અસંખ્યાતમા ભાગ પ્રમાણ સ્થાનો જઈએ ત્યારે સમયપ્રબદ્ધો દ્વિગુણ થાય છે. ત્યાંથી ફરી આવલિકાના અસં-

ખ્યાતભાગપ્રમાણ સ્થાનો જઈએ ત્યારે ફરી સમયપ્રબદ્ધો દ્વિગુણ થાય છે. આ રીતે આવલિકાના અસંખ્યાતમા ભાગપ્રમાણ દ્વિગુણવૃદ્ધિનાં સ્થાનો જઈએ ત્યારે **યવમધ્ય** પ્રાપ્ત થાય છે. યવમધ્યની ઉપર અનંતરોપનિધાએ સમયપ્રબદ્ધો વિશેષહીન વિશેષહીન હોય છે. પરપરોપનિધાએ આવલિકાના અસંખ્યાતમા ભાગે દ્વિગુણહીન દ્વિગુણહીન હોય છે.

(૧૪૪) જે સ્થિતિમા સમયપ્રબદ્ધશેષક હોય તે **સામાન્ય સ્થિતિ કહેવાય.** જે સ્થિતિમા સમયપ્રબદ્ધશેષક ન હોય, તે **અસામાન્ય સ્થિતિ કહેવાય.** જઘન્યથી **એક અસામાન્ય સ્થિતિ** હોય એટલે કે આજુબાજુમાં સામાન્યસ્થિતિ અને વચ્ચે એક અસામાન્યસ્થિતિ. એ રીતે આજુબાજુ સામાન્ય સ્થિતિ અને વચ્ચે નિરંતર બે અસામાન્ય સ્થિતિઓ, નિરંતર ત્રણ અસામાન્ય સ્થિતિઓ હોય છે, એ પ્રમાણે એકોત્તરવૃદ્ધિના ક્રમે ઉત્કૃષ્ટથી આવલિકાના અસંખ્યાતભાગપ્રમાણ નિરંતર અસામાન્યસ્થિતિઓ હોય છે.

(૧૪૫) એક એક અસામાન્ય સ્થિતિઓ સૌથી થોડી. તેના કરતા નિરંતર બબ્બે અસામાન્યસ્થિતિઓ વિશેષાધિક. તેના કરતાં નિરંતર ત્રણ ત્રણ અસામાન્ય સ્થિતિઓ વિશેષાધિક. આ રીતે વિશેષાધિક વિશેષાધિક હોય છે. આવલિકાના અસંખ્યાતમા ભાગપ્રમાણ સ્થાનો જઈએ ત્યારે દ્વિગુણ થાય છે. આવા દ્વિગુણવૃદ્ધિનાં આવલિકાના અસંખ્યાતમા ભાગપ્રમાણ સ્થાનો જઈએ ત્યારે યવમધ્ય પ્રાપ્ત થાય છે.

(૧૪૬) હવે **અભવ્યપ્રાયોગ્ય વિષયક પ્રરૂપણા** કરીએ છીએ–અભવ્યપ્રાયોગ્ય પ્રરૂપણા એટલે ભવ્ય અને અભવ્યને આશરીને જે પ્રરૂપણા તુલ્ય હોય તેવી અક્ષપક જીવોને આશરીને પ્રરૂપણા. ક્ષપકને આશરીને સમયપ્રબદ્ધો વગેરે જે જે બાબતોમા **આવલિકાનો** અસંખ્યાતમો ભાગ કહ્યો છે તે તે બાબતોમાં **પલ્યોપમનો** અસંખ્યાતમો ભાગ કહેવો. હવે અભવ્યપ્રાયોગ્ય નિર્લેપનસ્થાનાદિ બીજી વસ્તુઓ કહીશુ કે જે ક્ષપકને આશરીને કહી નથી.

(૧૪૭) પલ્યોપમના અસંખ્યાતમા ભાગપ્રમાણ **નિર્લેપનસ્થાનો છે. કેટલાકના મતે** નિર્લેપનસ્થાનો [1]**કર્મ અવસ્થાનકાળના** બહુ અસંખ્યાતભાગપ્રમાણ હોય છે. **તાત્પર્ય** એ છે કે વિવક્ષિત સમયે બાંધેલું કર્મ થોડું થોડું સાંતર–નિરંતર ભોગવાતું શ્રેણિ સિવાયની અવસ્થામાં વહેલામાં વહેલું પલ્યોપમના અસંખ્યાતભાગહીન કર્મ અવસ્થાનકાળ પછી સર્વથા નિર્લેપિત–ખાલી થાય છે. **ઉત્કૃષ્ટથી** કર્મઅવસ્થાનકાળના ચરમસમયે નિર્લેપિત થાય છે. એટલે પલ્યોપમના અસંખ્યાતમાભાગ જેટલા નિર્લેપનસ્થાનો પ્રાપ્ત થાય છે, **કેટલાકના મતે** વિવક્ષિત સમયે જે કર્મ બંધાય તે વહેલામાં વહેલું પલ્યોપમના અસંખ્યાતમા ભાગ સુધી થોડું થોડુ સાંતર નિરંતર ભોગવાયા પછી સર્વથા નિર્લેપિત થાય છે. તેથી તેમના મતે કર્મઅવસ્થાનકાળના ઘણા અસંખ્યાતભાગપ્રમાણ નિર્લેપનસ્થાનો પ્રાપ્ત થાય છે.

(૧૪૮–૧૪૯ ૧૫૦) એક જીવની અપેક્ષાએ ભૂતકાળમાં જઘન્ય–નિર્લેપનસ્થાનમાં [2]**નિર્લેપિત સમયપ્રબદ્ધોનો** પસાર થયેલો કાળ સૌથી ઓછો. તેના કરતાં બીજા નિર્લેપન-

૧. તે તે કર્મની સ્થિતિ. ૨. સત્તામાથી ખાલી થયેલા.

સ્થાને વિશેષાધિક. તેના કરતાં ત્રીજા નિર્લેપનસ્થાને વિશેષાધિક. આ ક્રમથી પલ્યોપમના અસંખ્યાતમા ભાગના નિર્લેપનસ્થાને નિર્લેપિતસમયપ્રબદ્ધો પ્રથમસ્થાન કરતાં દ્વિગુણ (બમણા) થાય છે. ત્યાર બાદ પુનઃ પલ્યોપમનો અસંખ્યાતભાગ જઈએ ત્યારે ફરી દ્વિગુણ થાય. આ રીતે દ્વિગુણવૃદ્ધિનાં અસંખ્યાતાં સ્થાનો છે. એ જ રીતે યવમધ્યની ઉપર જઈએ ત્યારે દ્વિગુણહાનિનાં સ્થાનો પ્રાપ્ત થાય છે, પહેલેથી સર્વ નિર્લેપન સ્થાનોનાં અસંખ્યાતમા ભાગપ્રમાણ નિર્લેપન સ્થાનો જઈએ, ત્યારે યવમધ્ય પ્રાપ્ત થાય છે. નાનાદ્વિગુણવૃદ્ધિ-હાનિનાં સ્થાનો પલ્યોપમના [1]અર્ધછેદનકના અસંખ્યાતમા ભાગપ્રમાણ હોય છે. તેના કરતાં બે દ્વિગુણવૃદ્ધિ કે હાનિની વચ્ચેના આંતરામાં રહેલાં સ્થાનો અસંખ્યાતગુણાં હોય છે.

(૧૫૧) એવી રીતે **નિર્લેપિત ભવબદ્ધોનો** પણ વ્યતિક્રાંત કાળ જાણવો. પરંતુ ભવબદ્ધોનું જઘન્યનિર્લેપનસ્થાન, **સમયપ્રબદ્ધોનાં** અંતર્મુહૂર્તના સમય પ્રમાણ અસંખ્યાતાં નિર્લેપનસ્થાનોની ઉપર હોય છે. **બન્નેનું યવમધ્ય** એક જ સ્થાને પ્રાપ્ત થાય છે.

(૧૫૨-૧૫૩) વિવક્ષિત સમયે બંધાયેલા સમયપ્રબદ્ધો પોતાનામાંથી ફક્ત એક જ કર્મપ્રદેશ બાકી રહેવા દ્વારા નિર્લેપિત થયા હોય તેવા સમયપ્રબદ્ધો થોડા. તેના કરતાં બે કર્મપ્રદેશ શેષ રહેવા દ્વારા નિર્લેપિત થયેલા સમયપ્રબદ્ધો વિશેષાધિક. આ રીતે વિશેષાધિક સ્થાનો **અનંતાં** કહેવાં. પ્રથમસ્થાનથી સર્વસ્થાનોનો અસંખ્યાતમો ભાગ જઈએ ત્યારે સમયપ્રબદ્ધો દ્વિગુણ થાય, ફરી એટલાં સ્થાનો જઈએ ત્યારે પુનઃ દ્વિગુણ થાય, આ રીતે અસંખ્યાતાં દ્વિગુણવૃદ્ધિનાં સ્થાનો જઈએ ત્યારે સર્વ સ્થાનોના અસંખ્યાતમા ભાગના સ્થાને યવમધ્ય પ્રાપ્ત થાય છે. અલ્પબહુત્વ—નાનાદ્વિગુણહાનિનાં સ્થાનો થોડા, કારણ કે તે અસંખ્યાતાં છે. તેના કરતાં એક દ્વિગુણવૃદ્ધિ કે હાનિના આંતરામાં રહેલાં સ્થાનો અનંતગુણાં છે, કારણ કે તે અભવ્યથી અનંતગુણાં છે.

(૧૫૪) આગળ પાછળના સમયોમા [2]અનિર્લેપન સ્થિતિનો ઉદય હોય અને વચમાં જે એક, બે, વગેરે સમયો સુધી નિર્લેપન-સ્થિતિનો નિરંતર ઉદય હોય તે **અનુસમય નિર્લેપનકાળ** કહેવાય. ભૂતકાળમાં એક સામયિક અનુસમય નિર્લેપન કાળ સૌથી વધારે વ્યતિક્રાંત થયો છે. નિરંતર બે, નિરંતર ત્રણ આદિ સમયવાળો અનુસમય નિર્લેપનકાળ વિશેષહીન વિશેષહીન વ્યતિક્રાંત થયો છે પ્રથમ સ્થાનથી આવલિકાના અસંખ્યાતમા ભાગ-પ્રમાણ સ્થાનો જઈએ ત્યારે અનુસમયનિર્લેપનકાળ દ્વિગુણહીન થાય છે. ફરી તેટલાં સ્થાનો જઈએ ત્યારે પુનઃ દ્વિગુણહીન થાય. આ ક્રમે ઉત્કૃષ્ટ અનુસમયનિર્લેપન કાળ સુધી કહેવું ઉત્કૃષ્ટ અનુસમયનિર્લેપન કાળ પણ આવલિકાના અસંખ્યાતમા ભાગપ્રમાણ છે.

૧. કોઈ એક વિવક્ષિત સંખ્યાને એક સંખ્યા સુધી અર્ધા અર્ધા કરતા જેટલા અર્ધ ભાગો થાય, તેને અર્ધછેદનક કહેવાય. દા ત ૧૬ સંખ્યાના ૪ અર્ધ ભાગો—૮-૪-૨-૧ આ પ્રમાણે થાય. ૧૬ નાં અર્ધછેદનક ૪ કહેવાય.

૨. સ્થિતિ ભોગવવા દ્વારા સમયપ્રબદ્ધોમાથી સર્વથા કર્મપ્રદેશો ખાલી ન થતા હોય, થોડા પણ સત્તામા બાકી રહી જતા હોય તેવી સ્થિતિનો ઉદય

(૧૫૫-૧૫૬) અતીતકાળમાં એક સમયના આતરે નિર્લેપિત-કરાયેલા સમયપ્રબદ્ધો થોડા, બે સમયના આંતરે નિર્લેપિત સમયપ્રબદ્ધો વિશેષાધિક આ ક્રમે પલ્યોપમના અસંખ્યાતમા ભાગપ્રમાણ સ્થાનો જઈએ, ત્યારે પ્રથમસ્થાનથી દ્વિગુણ સમયપ્રબદ્ધો થાય. ફરી એટલાં સ્થાનો જઈએ ત્યારે એના કરતાં દ્વિગુણ થાય. આવાં દ્વિગુણવૃદ્ધિસ્થાનો સર્વ સ્થાનોના અસંખ્યાતમા ભાગપ્રમાણ જઈએ ત્યારે યવમધ્ય આવે. આ જ રીતે **ભવબદ્ધો** પણ જાણવા. નિર્લેપનમાં એકાદિસમયનુ જે આતરું પડે છે, તે ઉત્કૃષ્ટથી પલ્યોપમના અસંખ્યાતભાગપ્રમાણ જાણવું.

(૧૫૭-૧૫૮) એક સમયમા એકથી માડી પલ્યોપમના અસંખ્યાતમા ભાગપ્રમાણ **સમયપ્રબદ્ધો** અને **ભવબદ્ધો** નિર્લેપિત કરાય છે. અતીતકાળમા એક સમયમાં નિર્લેપિત કરાયેલા ૧-૧ સમયપ્રબદ્ધો કે ભવબદ્ધો થોડા. તેના કરતાં એક સમયમાં નિર્લેપિત કરાયેલા ૨-૨ સમયપ્રબદ્ધો કે ભવબદ્ધો વિશેષાધિક. આ ક્રમે પલ્યોપમના અસંખ્યાતમા ભાગપ્રમાણ સમયપ્રબદ્ધો કે ભવબદ્ધો પ્રથમસ્થાન કરતા દ્વિગુણ થાય. ફરી તેટલાં સ્થાનો જઈએ ત્યારે દ્વિગુણ થાય આવા દ્વિગુણવૃદ્ધિસ્થાનો પલ્યોપમના અસખ્યાતમા ભાગપ્રમાણ જઈએ ત્યારે યવમધ્ય પ્રાપ્ત થાય છે. અલ્પબહુત્વ -નાનાદ્વિગુણવૃદ્ધિ-હાનિનાં સ્થાનો થોડાં. તેના કરતાં એક દ્વિગુણવૃદ્ધિ કે હાનિના આંતરામાં રહેલા સ્થાનોનાં **અર્ધછેદનકો** પણ અસંખ્યાતગુણાં હોય છે.

(૧૫૯ ૧૬૩) **અલ્પબહુત્વ**-(૧) ઉત્કૃષ્ટ અનુસમય નિર્લેપન કાળ થોડો. (૨) તેના કરતા એક સમય નિર્લેપિત ભવબદ્ધો અસંખ્યાતગુણા. (૩) તેન કરતાં એક સમયમાં નિર્લેપિત સમયપ્રબદ્ધો અસંખ્યાતગુણા. (૪) તેના કરતાં સમયપ્રબદ્ધશેષકથી રહિત સ્થિતિઓ (અસામાન્યસ્થિતિઓ) અસખ્યાતગુણી. (૫) તેના કરતાં પલ્યોપમનું પ્રથમવર્ગમૂળ અસખ્યાતગુણ (૬) તેના કરતાં સ્થિતિનિષેકોના પ્રદેશોની દ્વિગુણ-હાનિનાં સ્થાનો અસંખ્યાતગુણા. (૭) તેના કરતાં ભવબદ્ધોનાં નિર્લેપનસ્થાનો અસખ્યાતગુણાં. (૮) તેના કરતાં સમયપ્રબદ્ધના નિર્લેપનસ્થાનો વિશેષાધિક (૯) તેના કરતા કર્મઅવસ્થાનકાળમાં એક સમયપ્રબદ્ધનો અનુસમયવેદનકાળ (નિરંતરવેદનકાળ) અસંખ્યાતગુણો. (૧૦) તેના કરતાં કર્મ અવસ્થાનકાળમાં એક સમયપ્રબદ્ધનો નિરંતરઅવેદનકાળ અસંખ્યાતગુણો. (૧૧) તેના કરતાં કર્મઅવસ્થાન કાળમાં સાતર નિરંતર સમુદિત (ભેગો મળીને) એક સમયપ્રબદ્ધનો અવેદનકાળ અસંખ્યાતગુણો (૧૨) તેના કરતાં કર્મઅવસ્થાનકાળમાં સાતરનિરંતર સમુદિત-એક સમયપ્રબદ્ધનો વેદનકાળ અસંખ્યાતગુણો (૧૩) અને તેના કરતાં કર્મ-અવસ્થાનકાળ વિશેષાધક છે.

(૧૬૪) કિટ્ટિવેદનકાળના **પ્રથમસમયે** ક્રોધની ૧ લી સંગ્રહકિટ્ટિની અસંખ્યાતભાગપ્રમાણ (ગા. ૧૨૫) જે અવાતરકિટ્ટિઓનો નાશ કરાય છે. તે સૌથી **વધારે.** તેના કરતાં **બીજા સમયે** નાશ કરાતી કિટ્ટિઓ અસંખ્યાતગુણહીન. તેના કરતાં **ત્રીજા સમયે** નાશ કરાતી કિટ્ટિઓ અસંખ્યાતગુણહીન. આ રીતે ઉત્તરોત્તર સમયે અસંખ્યાતગુણહીનક્રમે અવાંતરકિટ્ટિઓનો નાશ કરાય છે. ક્રોધની પહેલી સંગ્રહકિટ્ટિવેદનકાળના દ્વિચરમસમય સુધી

નાશ કરાયેલી ક્રોધની પહેલી સંગ્રહકિટ્ટિની અવાંતરકિટ્ટિઓ, કિટ્ટિવેદનના પ્રથમસમયે નહીં બંધાતી અવાંતરકિટ્ટિઓના અસંખ્યાતમા ભાગપ્રમાણ હોય છે. આ રીતે શેષ સંગ્રહકિટ્ટિની નાશ કરાયેલી અવાંતરકિટ્ટિઓ તે તે સંગ્રહકિટ્ટિવેદનકાળના દ્વિચરમસમય સુધી જાણવી.

(૧૬૫) વેદ્યમાન (અનુભવાતી) સંગ્રહકિટ્ટિની પ્રથમસ્થિતિ બે આવલિકાપ્રમાણ બાકી રહે ત્યારે વેદ્યમાન સંગ્રહકિટ્ટિનો **આગાલ વિચ્છેદ પામે** છે. એક સમય અધિક આવલિકા પ્રમાણ શેષ હોય ત્યારે **જઘન્યસ્થિતિની ઉદીરણા થાય** છે અને **ઉદયનો** એ છેલ્લો સમય હોય છે.

(૧૬૬-૧૬૭) **સ્થિતિબંધ તથા સ્થિતિસત્તા**–ક્રોધની ૧લી સંગ્રહકિટ્ટિના ઉદયના છેલ્લા સમયે **મોહનીયનો સ્થિતિબંધ અંતર્મુહૂર્તન્યૂન ૧૦૦ દિવસપ્રમાણ, જ્ઞાનાવરણ, દર્શનાવરણ** અને **અંતરાયનો અંતર્મુહૂર્તન્યૂન ૧૦ વર્ષપ્રમાણ શેષ ત્રણ અઘાતિકર્મનો સંખ્યાતવર્ષપ્રમાણ** થાય છે.

મોહનીયની **સ્થિતિસત્તા** ૬ વર્ષ અને અંતર્મુહૂર્તન્યૂન ૮ મહિના. બાકી રહેલાં ત્રણ ઘાતિકર્મોની સંખ્યાતવર્ષ અને અઘાતિકર્મોની અસંખ્યાતવર્ષ જાણવી.

(૧૬૮) **ક્રોધની ૨ જી સંગ્રહકિટ્ટિનું વેદન**–અનંતર સમયે ક્રોધની ૨ જી સંગ્રહકિટ્ટિની સર્વ અવાંતરકિટ્ટિઓમાંથી પ્રદેશો ખેંચીને [1]અંતર્મુહૂર્તસ્થિતિના ઉત્તરોત્તર નિષેકમાં અસંખ્યાતગુણક્રમથી નાખી ૨ જી સંગ્રહકિટ્ટિની પ્રથમસ્થિતિ કરે છે. અને તે જ સમયથી ક્રોધની ૨ જી સંગ્રહકિટ્ટિને અનુભવવા માંડે છે.

(૧૬૯) વેદ્યમાન સંગ્રહકિટ્ટિના પ્રથમસમયે, વેદ્યમાન સંગ્રહકિટ્ટિની પહેલાંની સંગ્રહકિટ્ટિનું બે સમયન્યૂન બે આવલિકામાં નવું બંધાયેલું અને ઉદયાવલિકામાં રહેલું **દલિક શેષ રહે**, કારણ કે બાકીનું સર્વ દલિક સ્વવેદનના ચરમસમયે એની પછીની સંગ્રહકિટ્ટિરૂપે પરિણામ પામી જાય છે.

(૧૭૦) કિટ્ટિઓનો બંધ, ઉદય, નાશ, સંક્રમ, અપૂર્વઅવાંતરકિટ્ટિઓનું બનાવવું, અવાંતરકિટ્ટિઓનું અલ્પબહુત્વ અને સંગ્રહકિટ્ટિઓના પ્રદેશોનું અલ્પબહુત્વ **ક્રોધની ૧ લી સંગ્રહકિટ્ટિના વેદનકાળમાં** જે પ્રમાણે કહ્યું છે **તે પ્રમાણે** ક્રોધની ૨ જી સંગ્રહકિટ્ટિના વેદનકાળમા પણ સમજવું.

(૧૭૧) **વેદ્યમાનકષાયની** જે સંગ્રહકિટ્ટિ **અનુભવાતી** હોય, તે જ સંગ્રહકિટ્ટિ **બંધાય. અવેદ્યમાનકષાયની** ૧ લી જ સંગ્રહકિટ્ટિ બંધાય, પણ અન્ય સંગ્રહકિટ્ટિઓ બંધાતી નથી.

(૧૭૨-૧૭૩) **ક્રોધની ૨જી** સંગ્રહકિટ્ટિવેદનના ચરમસમયે **મોહનીયનો સ્થિતિબંધ** અંતર્મુહૂર્તન્યૂન ૮૦ દિવસ, શેષ **ત્રણ ઘાતિકર્મનો** વર્ષપૃથક્ત્વ, **ત્રણ અઘાતિનો** સંખ્યાત હજાર વર્ષ થાય છે **મોહનીયની સ્થિતિસત્તા** ૫ વર્ષ અને અંતર્મુહૂર્તન્યૂન

૧. એક આવલિકા અધિક બીજા તૃતીય ભાગપ્રમાણ જુઓ–ટિપ્પણ ૫ ૧૫ ઉપર

૪ મહિના. શેષ **ત્રણ ઘાતિકર્મોની** સંખ્યાત હજાર વર્ષ અને **ત્રણ અઘાતિકર્મોની** અસંખ્યાત-હજારવર્ષ હોય છે.

(૧૭૪) અનંતર સમયે **ક્રોધની ૩ જી સંગ્રહકિટ્ટિની** સર્વ અવાંતરકિટ્ટિઓમાંથી પ્રદેશો ખેંચીને [1]અંતર્મુહૂર્તસ્થિતિના ઉત્તરોત્તર નિષેકમાં અસંખ્યેયગુણક્રમે નાંખી **પ્રથમસ્થિતિ** કરે છે અને તે જ સમયથી અનુભવે છે.

(૧૭૫) ક્રોધની ૩ જી સંગ્રહકિટ્ટિવેદનના ચરમસમયે ચારે સંજ્વલનનો **સ્થિતિબંધ** ૨ મહિના અને **સ્થિતિસત્તા** ૪ વર્ષ હોય છે.

(૧૭૬-૧૭૭) અનંતર સમયે ક્રોધની ૧ લી સંગ્રહકિટ્ટિની જેમ **માનની** પ્રથમસ્થિતિ કરે અને તે જ સમયથી અનુભવે છે. કિટ્ટિવેદનના ચરમસમયે ૩ સંજ્વલનનો **સ્થિતિબંધ** અંતર્મુહૂર્તન્યૂન ૫૦ દિવસ અને સ્થિતિસત્તા અંતર્મુહૂર્તન્યૂન ૪૦ મહિના હોય છે.

(૧૭૮-૧૭૯) અનંતર સમયે ક્રોધની ૨ જી સંગ્રહકિટ્ટિની જેમ માનની ૨ જી સંગ્રહકિટ્ટિની પ્રથમસ્થિતિ કરે છે અને તે જ સમયથી અનુભવે છે. માનની ૨ જી સંગ્રહકિટ્ટિવેદનના ચરમસમયે સંજ્વલનકષાયનો સ્થિતિબંધ અંતર્મુહૂર્તન્યૂન ૪૦ દિવસ અને તેની સ્થિતિસત્તા અંતર્મુહૂર્તન્યૂન ૩૨ મહિના થાય છે.

(૧૮૦) અનંતર સમયે ક્રોધની ૩ જી સંગ્રહકિટ્ટિની જેમ **માનની ૩ જી** સંગ્રહ કિટ્ટિની **પ્રથમસ્થિતિ** કરે છે અને તે જ સમયથી વેદે છે. માનની ૩ જી સંગ્રહકિટ્ટિવેદનના ચરમસમયે મોહનીયનો **સ્થિતિબંધ** ૧ મહિનો અને **સ્થિતિસત્તા** ૨ વર્ષ રહે છે.

(૧૮૧-૧૮૨) અનંતર સમયે ક્રોધની ૧ લી સંગ્રહકિટ્ટિની જેમ **માયાની ૧ લી** સંગ્રહકિટ્ટિની પ્રથમસ્થિતિ કરે છે અને તે જ સમયથી વેદે છે. માયાની ૧ લી સંગ્રહકિટ્ટિવેદનના ચરમસમયે સંજ્વલન **માયા અને લોભનો** સ્થિતિબંધ અંતર્મુહૂર્તન્યૂન ૨૫ દિવસ અને સ્થિતિસત્તા અંતર્મુહૂર્તન્યૂન ૨૦ મહિના હોય છે.

(૧૮૩) અનંતરસમયે ક્રોધની ૨ જી સંગ્રહકિટ્ટિની જેમ **માયાની ૨ જી સંગ્રહકિટ્ટિની** પ્રથમસ્થિતિ કરે છે અને તે જ સમયથી વેદે છે. તેના ચરમસમયે મોહનીયનો સ્થિતિબંધ અંતર્મુહૂર્તન્યૂન ૨૦ દિવસ અને સ્થિતિસત્તા અંતર્મુહૂર્તન્યૂન ૧૬ મહિના થાય છે.

(૧૮૪-૧૮૫-૧૮૬) અનંતરસમયે ક્રોધની ૩ જી સંગ્રહકિટ્ટિની જેમ **માયાની ૩ જી** સંગ્રહકિટ્ટિની પ્રથમસ્થિતિ કરે છે અને તે જ સમયથી વેદે છે. માયાની ૩ જી સંગ્રહકિટ્ટિવેદનના ચરમ સમયે **૨ સંજ્વલનનો સ્થિતિબંધ** ૧૫ દિવસ, બાકીનાં ત્રણ ઘાતિકર્મોનો માસપૃથક્ત્વ, ૩ અઘાતિકર્મોનો સંખ્યાતવર્ષ તથા ૨ સંજ્વલનની **સ્થિતિસત્તા** ૧ વર્ષ, શેષ ત્રણ ઘાતિકર્મોની સંખ્યાત વર્ષ અને ત્રણ અઘાતિકર્મોની અસંખ્યાતવર્ષ હોય છે.

(૧૮૭-૧૮૮) અનંતરસમયે ક્રોધની ૧ લી સંગ્રહકિટ્ટિની જેમ **લોભની ૧ લી** સંગ્રહકિટ્ટિની પ્રથમસ્થિતિ કરે છે અને તે જ સમયથી વેદે છે લોભની ૧ લી સંગ્રહકિટ્ટિવેદનના ચરમસમયે **લોભનો** સ્થિતિબંધ તથા સ્થિતિસત્તા અંતર્મુહૂર્તપ્રમાણ શેષ ત્રણ **ઘાતિ-**

૧. એક આવલિકા અધિક ત્રીજા તૃતીયભાગ પ્રમાણ જુઓ-ટિપ્પણ પૃ. ૧૫ ઉપર.

કર્મોનો સ્થિતિબંધ દિવસ પૃથક્ત્વ, ત્રણ અઘાતિકર્મોનો વર્ષ પૃથક્ત્વ. શેષ ત્રણ ઘાતિકર્મોની સ્થિતિસત્તા સંખ્યાતવર્ષ અને અઘાતિકર્મોની અસંખ્યાતવર્ષ હોય છે.

(૧૮૯) અનંતરસમયે ક્રોધની ૨ જી સંગ્રહકિટ્ટિની જેમ **લોભની ૨ જી** સંગ્રહકિટ્ટિની પ્રથમસ્થિતિ કરે છે, અને તેજ સમયથી વેદવા માંડે છે તથા લોભની ૨ જી અને ૩ જી સંગ્રહકિટ્ટિમાંથી પ્રદેશો લઈને સૂક્ષ્મકિટ્ટિઓ કરે છે.

(૧૯૦) ક્ષપક આત્મા લોભની ત્રીજી સંગ્રહકિટ્ટિની નીચે જે સૂક્ષ્મકિટ્ટિઓ કરે છે, તે સૂક્ષ્મકિટ્ટિઓને ક્રોધની ૧ લી સંગ્રહકિટ્ટિ જેવી શાસ્ત્રમાં કહી છે.

(૧૯૧) લોભની ૨જી સંગ્રહકિટ્ટિમાંથી દલિક ૩જી સંગ્રહકિટ્ટિમાં અને સૂક્ષ્મકિટ્ટિઓમાં સંક્રમે છે. ૩જી સંગ્રહકિટ્ટિમાંથી સૂક્ષ્મકિટ્ટિઓમાં જ સંક્રમે છે, અન્યત્ર સંક્રમતું નથી.

(૧૯૨) લોભની ૩જી સંગ્રહકિટ્ટિમાંથી સૂક્ષ્મકિટ્ટિઓમાં સંક્રમતું દલિક અલ્પ. તેના કરતા ૨જી સંગ્રહકિટ્ટિમાંથી ૩જીમાં સંક્રમતું દલિક સંખ્યાતગુણ. તેના કરતાં ૨જી સંગ્રહકિટ્ટિમાંથી સૂક્ષ્મકિટ્ટિઓમાં સંક્રમતું દલિક સંખ્યાતગુણું હોય છે

(૧૯૩-૧૯૪) **સૂક્ષ્મકિટ્ટિઓનું પ્રમાણ**-ક્રોધની ૧લી સંગ્રહકિટ્ટિની અવાંતરકિટ્ટિઓ થોડી તેના કરતા ક્રોધનો ક્ષય થયા પછી માનની ૧ લી સંગ્રહકિટ્ટિની અવાંતરકિટ્ટિઓ વિશેષાધિક. તેના કરતાં માનનો ક્ષય થયા પછી માયાની ૧લી સંગ્રહકિટ્ટિની અવાંતરકિટ્ટિઓ વિશેષાધિક તેના કરતા માયાનો નાશ થયા પછી લોભની ૧લી સંગ્રહકિટ્ટિની અવાંતરકિટ્ટિઓ વિશેષાધિક. તેના કરતા સૂક્ષ્મકિટ્ટિકરણના પ્રથમસમયે સૂક્ષ્મકિટ્ટિઓ વિશેષાધિક હોય છે. અહીં સર્વત્ર વિશેષાધિક એટલે સંખ્યાતભાગઅધિક એમ સમજવું.

(૧૯૫) ઉત્તરોત્તર સમયે અસંખ્યગુણહીનક્રમથી સૂક્ષ્મકિટ્ટિઓ કરે છે તથા ઉત્તરોત્તર સમયે અસંખ્યાતગુણક્રમથી પ્રદેશોને સૂક્ષ્મકિટ્ટિઓમાં આપે છે

(૧૯૬) **સૂક્ષ્મ અને બાદર કિટ્ટિઓમાં દલિકપ્રક્ષેપ** ૧લી સૂક્ષ્મકિટ્ટિમાં વધારે પ્રદેશો આપે છે. તેના કરતાં ૨જી સૂક્ષ્મકિટ્ટિમા વિશેષહીન પ્રદેશો આપે છે. તેના કરતાં ૩જીમા વિશેષહીન આ રીતે છેલ્લી સૂક્ષ્મકિટ્ટિ સુધી વિશેષહીનક્રમથી પ્રદેશો આપે છે, છેલ્લી સૂક્ષ્મકિટ્ટિ કરતાં બાદર પ્રથમકિટ્ટિમા એટલે કે લોભની ૩જી સંગ્રહકિટ્ટિની ૧લી અવાંતરકિટ્ટિમા અસંખ્યાતગુણહીન પ્રદેશો આપે છે. ત્યાર બાદ દ્વિતીયાદિ અવાંતરકિટ્ટિઓમાં વિશેષહીન વિશેષહીન આપે છે.

(૧૯૭) સૂક્ષ્મકિટ્ટિકરણના દ્વિતીયાદિ સમયોમા પૂર્વસૂક્ષ્મકિટ્ટિઓની નીચે અને પૂર્વ સૂક્ષ્મકિટ્ટિઓનાં આંતરાઓમાં અપૂર્વસૂક્ષ્મકિટ્ટિઓ કરે છે. પૂર્વસૂક્ષ્મકિટ્ટિઓની નીચે જે અપૂર્વસૂક્ષ્મકિટ્ટિઓ કરાય છે, તેના કરતા પૂર્વસૂક્ષ્મકિટ્ટિઓના આંતરાઓમાં કરાતી અપૂર્વસૂક્ષ્મકિટ્ટિઓ અસંખ્યગુણી હોય છે.

(૧૯૮-૧૯૯) **પૂર્વ-અપૂર્વસૂક્ષ્મકિટ્ટિઓમાં દલિકપ્રક્ષેપ**-અપૂર્વસૂક્ષ્મકિટ્ટિની અપેક્ષાએ તેની અનંતર પૂર્વસૂક્ષ્મકિટ્ટિમાં પ્રદેશો અસંખ્યાતભાગહીન આપે છે. પૂર્વસૂક્ષ્મકિટ્ટિની અપેક્ષાએ અનંતર અપૂર્વસૂક્ષ્મકિટ્ટિમાં પ્રદેશો અસંખ્યાતભાગઅધિક આપે છે. બાકીની સર્વ પૂર્વ-અપૂર્વકિટ્ટિઓમાં અનુક્રમે વિશેષહીન વિશેષહીન પ્રદેશો આપે છે.

(૨૦૦) **દશ્યમાનદલિક** સૂક્ષ્મકિટ્ટિકરણકાળમાં ૧લી સૂક્ષ્મકિટ્ટિથી માંડી છેલ્લી સૂક્ષ્મકિટ્ટિ સુધી અનુક્રમે દશ્યમાન દલિક વિશેષહીન વિશેષહીન હોય છે. છેલ્લી સૂક્ષ્મકિટ્ટિની અપેક્ષાએ બાદર પ્રથમકિટ્ટિમા દશ્યમાન દલિક અસખ્યગુણુ હોય છે. ત્યાર પછી ઉત્તરોત્તર બાદરકિટ્ટિમાં વિશેષહીન વિશેષહીન હોય છે.

(૨૦૧) લોભની ૨જી સગ્રહકિટ્ટિની પ્રથમસ્થિતિ ત્રણ આવલિકા પ્રમાણુ બાકી રહે ત્યાંસુધી ૨જી સંગ્રહકિટ્ટિમાંથી દલિક ૩જી સગ્રહકિટ્ટિમાં પણુ સંક્રમે છે. ત્યાર બાદ સૂક્ષ્મકિટ્ટિઓમાં જ સંક્રમે છે.

(૨૦૨–૨૦૩) લોભની ૨જી સંગ્રહકિટ્ટિની પ્રથમસ્થિતિ સમયાધિક આવલિકા પ્રમાણુ બાકી રહે ત્યારે ઉદયાવલિકામાં રહેલા અને એક સમયન્યૂન બે આવલિકામાં બધાયેલાં દલિકો છોડીને લોભની ૨જી સગ્રહકિટ્ટિ અને ૩જી સંગ્રહકિટ્ટિના શેષ સર્વ પ્રદેશોને સૂક્ષ્મકિટ્ટિઓમા સંક્રમાવી દે છે. લોભની ૨જી સંગ્રહકિટ્ટિની સમયાધિક આવલિકાપ્રમાણુ પ્રથમસ્થિતિ બાકી રહે એટલે કે ૨જી સંગ્રહકિટ્ટિના ઉદયનો ચરમસમય હોય ત્યારે લોભનો (મોહનીયનો) સ્થિતિબંધ અંતર્મુહૂર્ત, બાકીના ત્રણુ ઘાતિકર્મોનો અંતર્દિવસ (દિવસની અદર) અને ત્રણુ અઘાતિકર્મનો અતર્વર્ષ (વર્ષની અંદર) થાય છે. હવે સ્થિતિસત્તા કહીશું.

(૨૦૪) લોભની ૨જી સંગ્રહકિટ્ટિવેદનના ચરમસમયે લોભની સ્થિતિસત્તા અંતર્મુહૂર્ત, બાકીના ત્રણુ ઘાતિકર્મોની સંખ્યાતવર્ષ અને શેષ ત્રણુ અઘાતિકર્મોની અસખ્યાતવર્ષ રહે છે.

(૨૦૫) અનંતરસમયે ક્ષપક આત્મા સૂક્ષ્મસમ્પરાયગુણુસ્થાનક પ્રાપ્ત કરે છે. તે જ વખતે સૂક્ષ્મકિટ્ટિઓમાંથી પ્રદેશો ખેચીને ગુણુશ્રેણિ કરે છે અને તે જ સમયથી સૂક્ષ્મકિટ્ટિઓને અનુભવે છે

(૨૦૬–૨૦૭) સૂક્ષ્મસપરાયગુણુસ્થાનકના કાળ કરતાં ગુણુશ્રેણિનિક્ષેપ(આયામ) વિશેષાધિક છે. તેના ઉત્તરોત્તર નિષેકમાં અસખ્યાતગુણુક્રમથી પ્રદેશોનો નિક્ષેપ કરે છે ગુણુશ્રેણિના ચરમનિષેક કરતા અસખ્યગુણુપ્રદેશો [1]અતરકરણુના પ્રથમનિષેકમાં નાંખે છે. ત્યાર બાદ તેના ઉત્તરોત્તર નિષેકમાં વિશેષહીન વિશેષહીન પ્રદેશો નાખે છે. અંતરકરણુના ચરમનિષેક કરતા દ્વિતીયસ્થિતિના ૧લા નિષેકમાં સખ્યાતગુણુહીન પ્રદેશો આપે છે. ત્યાર બાદ ઉત્તરોત્તર નિષેકમા વિશેષહીન વિશેષહીન પ્રદેશો આપે છે.

(૨૦૮) સૂક્ષ્મસંપરાયના ૧લા સમયથી માંડીને અંતરકરણુના પ્રથમનિષેક સુધી દશ્યમાન દલિક અસખ્યાતગુણુક્રમે હોય છે, ત્યાર બાદ અંતરકરણુના ચરમનિષેક સુધી ઉત્તરોત્તર નિષેકમા વિશેષહીન હોય છે. અતરકરણુના ચરમનિષેક કરતાં ૨જી સ્થિતિના પ્રથમનિષેકમાં દશ્યમાનદલિક અસંખ્યગુણું હોય છે ત્યાર બાદ ઉત્તરોત્તર નિષેકમા વિશેષહીન વિશેષહીન હોય છે.

---

૧ જો કે સૂક્ષ્મસપરાયગુણુસ્થાનકના ૧ લા સમયે અતરકરણુના બધા નિષેકોમા દલનિક્ષેપ થતો હોવાથી અંતરકરણુ રહેતું નથી, છતા અનિવૃત્તિકરણુમા જે અતરકરણુ કરાયું હતું, તેનાથી ગુણુશ્રેણિના નિષેકો છોડી બાકીના નિષેકો 'भूतपूर्वकस्तद्वपचारः' એ ન્યાયે અંતરકરણુના નિષેકો કહેવાય છે.

(૨૦૯) દ્વિતીયાદિ સ્થિતિઘાત વખતે ઉદયસમયથી માંડી ગુણશ્રેણિના ઉપરના પ્રથમનિષેક સુધી દીયમાન અને દૃશ્યમાન દલિક અસંખ્યાતગુણક્રમે હોય છે. ત્યાર બાદ ઉત્તરોત્તર નિષેકમાં વિશેષહીન વિશેષહીન હોય છે.

(૨૧૦) સૂક્ષ્મસંપરાયગુણસ્થાનકનો કાળ અલ્પ. તેના કરતાં ગુણશ્રેણિનો આયામ (નિક્ષેપ) વિશેષાધિક. તેના કરતાં અંતરકરણના નિષેકો સંખ્યાતગુણા. તેના કરતાં સૂક્ષ્મસંપરાયગુણસ્થાનકમાં ઘાત કરાતો પ્રથમસ્થિતિખંડ સંખ્યાતગુણો. તેના કરતાં મોહનીયની સ્થિતિસત્તા સંખ્યાતગુણી.

(૨૧૧) સૂક્ષ્મકિટ્ટિઓના અસંખ્યાતભાગપ્રમાણ નીચેની મંદરસવાળી અને ઉપરની તીવ્રરસવાળી કિટ્ટિઓ અનુભવાતી નથી. બાકીની મધ્યમરસવાળી કિટ્ટિઓ અનુભવાય છે.

(૨૧૨) **અલ્પબહુત્વ**–નીચેની અનુદીર્ણસૂક્ષ્મકિટ્ટિઓ થોડી તેના કરતાં ઉપરની અનુદીર્ણસૂક્ષ્મકિટ્ટિઓ વિશેષાધિક તેના કરતાં ઉદીર્ણસૂક્ષ્મકિટ્ટિઓ અસંખ્યાતગુણી.

(૨૧૩) સૂક્ષ્મસંપરાયગુણસ્થાનકનો સંખ્યાતમો ભાગ બાકી રહે ત્યારે ક્ષપક આત્મા મોહનીયના અંતિમ સ્થિતિખંડનો ઘાત કરતો મોહનીયની ગુણશ્રેણિના સંખ્યાતમા ભાગનો પણ નાશ કરે છે.

(૨૧૪) મોહનીયના ચરમસ્થિતિખંડનો નાશ કર્યા બાદ તેનો સ્થિતિઘાત થતો નથી. બાકીનાં કર્મોનો પૂર્વની જેમ થયા કરે છે મોહનીયનો ચરમસ્થિતિઘાત થયા બાદ તેની સ્થિતિસત્તા સૂક્ષ્મસંપરાયગુણસ્થાનકના શેષકાળપ્રમાણ હોય છે.

(૨૧૫-૨૧૬) સૂક્ષ્મસંપરાયનો સમયાધિક આવલિકાપ્રમાણ કાળ બાકી રહે ત્યારે મોહનીયકર્મ (લોભ)ની જઘન્યસ્થિતિની ઉદીરણા થાય છે. સૂક્ષ્મસંપરાયના ચરમસમયે **ત્રણ ઘાતિકર્મનો બંધ** અંતર્મુહૂર્ત. **નામગોત્રનો** ૮ મુહૂર્ત અને વેદનીયનો ૧૨ મુહૂર્ત થાય છે ત્રણ ઘાતિકર્મોની **સ્થિતિસત્તા** સંખ્યાતાવર્ષ અને અઘાતિકર્મોની અસંખ્યાતવર્ષ હોય છે.

(૨૧૭) ૧૧ સંગ્રહકિટ્ટિઓનો (લોભની ૩જી સિવાય) ક્ષય(વિનાશ) અનુભવ અને સંક્રમથી થાય છે, બે સમયન્યૂન બે આવલિકામાં બંધાયેલાં ૧૧ સંગ્રહકિટ્ટિઓના દલિકોનો અને લોભની ૩જી સંગ્રહકિટ્ટિનો ક્ષય ફક્ત સંક્રમથી થાય છે સૂક્ષ્મકિટ્ટિઓનો અનુભવથી (ઉદય દ્વારા) ક્ષય થાય છે.

(૨૧૮) સૂક્ષ્મકિટ્ટિવેદનના કાળથી માંડીને ક્રોધની ૧લી સંગ્રહકિટ્ટિના વેદનકાળ સુધી પશ્ચાનુપૂર્વીથી વેદનકાળ વિશેષાધિક હોય છે.

(૨૧૯) **માનના ઉદયે** ક્ષપકશ્રેણિ માંડનારને **માનની પ્રથમસ્થિતિ ક્રોધના** ક્ષપણાદ્ધાસહિત ક્રોધની પ્રથમસ્થિતિપ્રમાણ, **માયાના ઉદયે** ક્ષપકશ્રેણિ માંડનારને **માયાની પ્રથમસ્થિતિ ક્રોધ અને માનના** ક્ષપણાદ્ધાસહિત ક્રોધની પ્રથમસ્થિતિપ્રમાણ, **લોભના ઉદયે** ક્ષપકશ્રેણિ માંડનારને લોભની પ્રથમસ્થિતિ **ક્રોધ-માન-માયાના** ક્ષપણાકાળસહિત ક્રોધની પ્રથમસ્થિતિપ્રમાણ હોય છે.

(૨૨૦) માનના ઉદયથી ક્ષપકશ્રેણિ માંડનાર ક્રોધનો ક્ષય કરી, માયાના ઉદયથી ક્ષપકશ્રેણિ પર ચડનાર ક્રોધ અને માનનો નાશ કરી અને લોભના ઉદયથી આરોહણ કરનાર

ક્રોધ–માન–માયાનો વિનાશ કરી ક્રમશઃ અશ્વકર્ણકરણ અને કિટ્ટિકરણ કરે છે. ત્યાર બાદ મોહનીયકર્મને કિટ્ટિસ્વરૂપે ખપાવે છે.

(૨૨૧) **પુરુષવેદના ઉદયથી** ક્ષપકશ્રેણિ માંડનાર આત્મા જે સ્થાને સ્ત્રીવેદને સર્વથા ખપાવે છે, તે સ્થાન સુધી સ્ત્રીવેદથી શ્રેણિ માંડનાર આત્મા સ્ત્રીવેદની પ્રથમસ્થિતિ કરે છે. સ્ત્રી–વેદોદયના વિચ્છેદ પછી અંતર્મુહૂર્ત બાદ સાત નોકષાયને એકીસાથે ખપાવે છે.

(૨૨૨) સ્ત્રીવેદના ઉદયથી ક્ષપકશ્રેણિ માંડનાર સ્ત્રીવેદની જેટલી પ્રથમસ્થિતિ રાખે છે, તેટલી નપુંસકવેદના ઉદયથી ક્ષપકશ્રેણિ માંડનાર નપુંસકવેદની પ્રથમસ્થિતિ રાખે છે અને નપુંસકવેદ તેમજ સ્ત્રીવેદને એકીસાથે ખપાવે છે. વેદોદયના વિચ્છેદ પછી અંતર્મુહૂર્ત બાદ સાત નોકષાયનો એકીસાથે નાશ કરે છે.

(૨૨૩) સ્ત્રીવેદ અને નપુંસકવેદના ઉદયથી ક્ષપકશ્રેણિ માંડનારને પુરુષવેદનો જઘન્ય સ્થિતિબંધ થતો નથી. બાકીની પ્રક્રિયા પુરુષવેદોદયથી ક્ષપકશ્રેણિ માંડનારની જેમ જાણવી. આ રીતે ભિન્ન ભિન્ન વેદના ઉદયથી ક્ષપકશ્રેણિ માંડનારનો પ્રક્રિયાભેદ કહ્યો.

(૨૨૪) સૂક્ષ્મસંપરાયના અનંતરસમયે યથાખ્યાતસંયમને પામતો ક્ષપક આત્મા ક્ષીણકષાયગુણસ્થાનકને પ્રાપ્ત કરે છે અને તે જ સમયથી સ્થિતિ–રસવિનાનું અને પ્રકૃતિ–પ્રદેશવાળું કર્મ (શાતા વેદનીય) બાંધે છે. આ કર્મબંધને ઈર્યાપથિક બંધ કહેવાય છે.

(૨૨૫) ત્રણ ઘાતિકર્મ અને ત્રણ અઘાતિકર્મના સ્થિતિઘાત, રસઘાત અને ગુણશ્રેણિ પૂર્વની જેમ કરે છે. દલિકની અપેક્ષાએ સૂક્ષ્મસંપરાય કરતાં ગુણશ્રેણિનિર્જરા અસંખ્યગુણી છે.

(૨૨૬) ક્ષીણકષાયગુણસ્થાનકનો સંખ્યાતમો ભાગ બાકી રહે, ત્યારે અંતિમસ્થિતિખંડ દ્વારા ક્ષીણકષાયગુણસ્થાનકની ઉપરની ત્રણ **ઘાતિકર્મોની સ્થિતિનો ધ્યાનદ્વારા** ઘાત કરે છે.

(૨૨૭) કર્મક્ષયનું કારણભૂત ધ્યાન બે પ્રકારે છે–(૧) ધર્મધ્યાન (૨) શુક્લધ્યાન આ બન્ને ધ્યાનના ૪–૪ પ્રકાર આગમશાસ્ત્રોથી જાણી લેવા.

(૨૨૮) ત્રણ ઘાતિકર્મના ચરમસ્થિતિખંડનો નાશ થયા બાદ તેનો સ્થિતિઘાત થતો નથી. ક્ષીણકષાયગુણસ્થાનકનો કાળ એક સમય અધિક એક આવલિકા બાકી રહે ત્યારે ઘાતિકર્મની જઘન્યસ્થિત્યુદીરણા થાય છે.

(૨૨૯) ક્ષીણકષાયગુણસ્થાનકના **દ્વિચરમસમયે** નિદ્રાદ્વિકનાં ઉદય અને સત્તા વિચ્છેદ પામે છે. **ચરમસમયે** ૫ જ્ઞાનાવરણ ૪ દર્શનાવરણ ૫ અંતરાય આ ૧૪ પ્રકૃતિઓનાં ઉદય અને સત્તા વિચ્છેદ પામે છે.

(૨૩૦) અનંતરસમયે ક્ષપક સયોગિકેવલિગુણસ્થાનક પ્રાપ્ત કરે છે અને તે જ સમયે અનંત કેવલજ્ઞાન, અનંત કેવલદર્શન અને અનંતવીર્યને પ્રાપ્ત કરે છે.

(૨૩૧) આ ગુણસ્થાનકનો જઘન્યકાળ અંતર્મુહૂર્ત અને ઉત્કૃષ્ટકાળ દેશોનપૂર્વક્રોટિ વર્ષ હોય છે આયોજિકાકરણ ન કરે ત્યાંસુધી આ ગુણસ્થાનકે ગુણશ્રેણિ અવસ્થિત હોય છે.

(૨૩૨) અંતર્મુહૂર્ત જેટલું આયુષ્ય બાકી રહે ત્યારે ક્ષપક **આયોજિકાકરણ** કરે છે.

કેટલાક આચાર્યો આ કરણને **આવશ્યકકરણ**, કેટલાક **અવશ્યકરણ** કેટલાક **આવર્જિતકરણ** અને કેટલાક **આવર્જીકરણ** કહે છે.

(૨૩૩) ત્યાર બાદ, જેમને વેદનીયાદિ કર્મોની સ્થિતિ આયુષ્ય કરતા અધિક હોય તે આત્માઓ કેવલિસમુદ્‌ઘાત કરે છે.

(૨૩૪-૨૩૫) **કેવલિસમુદ્‌ઘાત**-૪ સમયમાં અનુક્રમે **દંડ, કપાટ, પ્રતર** અને **લોકપૂરણ** કરે છે. **પ્રથમસમયે દંડ** કરતી વખતે એક અસંખ્યાતભાગપ્રમાણ જીવપ્રદેશોને સ્વશરીરમાં રહેવા દઈ બાકીના બહુઅસંખ્યાતભાગપ્રમાણ જીવપ્રદેશોને વિસ્તારે છે. અને ત્યારે સ્થિતિખંડ દ્વારા **સ્થિતિસત્તાના** ઘણા અસંખ્યાતભાગોનો અને રસખંડ દ્વારા **રસસત્તાના** ઘણા અનંત ભાગોનો નાશ કરે છે.

(૨૩૬) **બીજા સમયે કપાટ** કરતી વખતે, પહેલા સમયે બાકી રહેલા એક અસંખ્યાતમાભાગ પ્રમાણ પ્રદેશોના અસંખ્યાતા ભાગો કરી, એક અસંખ્યાતમો ભાગ પોતાના શરીરમા રાખી બાકીના બહુઅસંખ્યાતભાગપ્રમાણ આત્મપ્રદેશોને વિસ્તારે છે. સ્થિતિઘાત અને રસઘાત પૂર્વની જેમ કરે છે.

(૨૩૭) **ત્રીજા સમયે પ્રતર** કરતી વખતે, બીજા સમયે બાકી રહેલા પ્રદેશોના અસંખ્યાતભાગો કરી એક અસંખ્યાતમા ભાગને સ્વશરીરમાં રાખી બાકી રહેલા બહુ અસંખ્યાતભાગોને વિસ્તારે છે અહીં પણ સ્થિતિઘાત અને રસઘાત પૂર્વવત્ થાય છે.

(૨૩૮) **ચોથા સમયે લોકપૂરણ** કરતો જીવ ત્રીજા સમયે બાકી રહેલા એક અસંખ્યાતમા ભાગપ્રમાણ **સ્વપ્રદેશોને વિસ્તારે** છે, ત્યારે આત્માનો એક એક પ્રદેશ એક એક આકાશપ્રદેશ ઉપર હોય છે. અહીં સ્થિતિઘાત અને રસઘાત પૂર્વની જેમ થાય છે.

(૨૩૯) લોકપૂરણ વખતે વેદનીયાદિ કર્મોની સ્થિતિસત્તા અંતર્મુહૂર્તપ્રમાણ હોય છે અને તે આયુષ્યની સ્થિતિસત્તા કરતા સંખ્યાતગુણી હોય છે. ત્યાર બાદ પૂર્વોક્તક્રમથી ઊલટા ક્રમે લોકપૂરણ વગેરેને સંહરી લે છે.

(૨૪૦) **પાંચમા સમયે પ્રતરમાં વર્તતો** આત્મા ઘણા સંખ્યાતભાગપ્રમાણ **સ્થિતિનો** અને ઘણા અનંતભાગપ્રમાણ **રસનો ઘાત** કરે છે

(૨૪૧) **છઠ્ઠા સમયે કપાટમાં વર્તતો** પૂર્વવત્ સ્થિતિ અને રસનો નાશ કરે છે. માત્ર અહીંથી સ્થિતિઘાતઅદ્ધા અને રસઘાતઅદ્ધા અંતર્મુહૂર્ત પ્રમાણ હોય છે. પહેલા પાંચ સમયમા તે એક સામયિક હતો

(૨૪૨) **સાતમા સમયે** કપાટનું સંહરણ કરી દંડમાં વર્તે છે. **આઠમા સમયે** દંડનું સંહરણ કરી શરીરસ્થ જીવપ્રદેશોવાળો બને છે.

(૨૪૩) સમુદ્‌ઘાત અવસ્થામાં ૧લા અને ૮મા સમયે **ઔદારિકકાયયોગ**, ૨જા, ૬ઠ્ઠા અને ૭મા સમયે **ઔદારિકમિશ્રકાયયોગ** અને ૩જા, ૪થા તેમજ ૫મા સમયે **કાર્મણકાયયોગ** હોય છે. સમુદ્‌ઘાત પછી ક્ષપક **યોગનિરોધ** કરે છે

(૨૪૪) **ત્રિવિધ યોગનો નિરોધ**-સમુદ્‌ઘાત કરનાર સમુદ્‌ઘાતની સમાપ્તિ કરીને અને બીજા જીવો આયોજિકાકરણ કરીને અંતર્મુહૂર્ત પછી બાદરકાયયોગના બળથી અંત-

મુંહૂર્તકાળમાં **બાદરવચનયોગનો**, ત્યાર પછી અંતર્મુહૂર્ત સુધી વિશ્રામ કર્યા બાદ બાદરકાયયોગના બલથી અંતર્મુહૂર્તકાળમા **બાદરમનોયોગનો**, ત્યાર પછી અંતર્મુહૂર્ત સુધી વિશ્રામ કર્યા બાદ બાદરકાયયોગના બળથી અંતર્મુહૂર્તમા **ઉચ્છ્વાસનો** અને ત્યાર પછી અંતર્મુહૂર્ત સુધી વિશ્રામ કર્યા બાદ [1]બાદરકાયયોગના બળથી અંતર્મુહૂર્તમાં **બાદરકાયયોગનો** નિરોધ કરે છે. બાદરકાયયોગ નિરોધના પ્રથમ સમયથી અંતર્મુહૂર્ત સુધી **યોગનાં અપૂર્વસ્પર્ધકો** કરે છે ત્યાર બાદ અંતર્મુહૂર્ત સુધી **યોગની કિટ્ટિઓ** કરે છે કિટ્ટિકરણના અનંતરસમયે સૂક્ષ્મકાયયોગના બળથી **સૂક્ષ્મવાગ્યોગનો** નિરોધ કરે છે. ત્યાર બાદ અંતમુંહૂર્તસુધી વિશ્રામ કરી અંતર્મુહૂર્તકાળમા **સૂક્ષ્મમનોયોગનો** નિરોધ કરે છે ત્યાર બાદ અંતર્મુહૂર્ત સુધી વિશ્રામ કરી સૂક્ષ્મકાયયોગના નિરોધનો પ્રારંભ કરે છે. સૂક્ષ્મકાયયોગ-નિરોધના ૧લા સમયે યોગકિટ્ટિઓના ઘણા અસંખ્યાતભાગોનો નાશ કરે છે, એક અસંખ્યાત-ભાગ બાકી રાખે છે. ૨ જા સમયે તે ભાગના ઘણા અસંખ્યાતભાગોનો નાશ કરી એક અસંખ્યભાગ બાકી રાખે છે આ રીતે ઉત્તરોત્તર સમયે કિટ્ટિઓનો નાશ સયોગિકેવલિના ચરમસમય સુધી કરે છે. આવશ્યકચૂર્ણિકાર વગેરે મહર્ષિઓનો આ અભિપ્રાય છે.

(૨૪૫-૨૪૬-૨૪૭) **કષાયપ્રાભૃતચૂર્ણિકારનો અભિપ્રાય** : બાદરકાયયોગના આલંબનથી પહેલાં બાદરમનોયોગનો નિરોધ કરે ત્યાર બાદ અંતર્મુહૂર્ત સુધી વિશ્રામ કરી અંતમુંહૂર્તકાળમાં બાદરવચનયોગનો નિરોધ કરે, ત્યાર બાદ અંતર્મુહૂર્ત સુધી વિશ્રામ કરી બાદરકાયયોગના આલંબનથી અંતર્મુહૂર્તકાળમાં બાદરશ્વાસોશ્વાસનો નિરોધ કરે. ત્યાર બાદ અંતર્મુહૂર્તકાળ સુધી વિશ્રામ કરી બાદરકાયયોગથી બાદરકાયયોગનો નિરોધ કરે. ત્યાર બાદ અંતર્મુહૂર્ત પછી સૂક્ષ્મકાયયોગથી અંતર્મુહૂર્તકાળમાં સૂક્ષ્મમનોયોગનો, ત્યાર બાદ એ જ રીતે સૂક્ષ્મવચનયોગનો, ત્યાર બાદ એ જ પ્રમાણે સૂક્ષ્મ શ્વાસોશ્વાસનો નિરોધ કરે. ત્યાર બાદ અંતર્મુહૂર્ત પછી સૂક્ષ્મકાયયોગનો નિરોધ કરતો જીવ પ્રથમપૂર્વ-સ્પર્ધકની નીચે યોગનાં અપૂર્વસ્પર્ધકો કરે છે.

(૨૪૮-૨૪૯) પૂર્વસ્પર્ધકોની પ્રથમવર્ગણાના અસંખ્યાતમાભાગપ્રમાણ વીર્યાવિભાગો અને જીવપ્રદેશો ખેંચે છે અને તેનાં અપૂર્વસ્પર્ધકો કરે છે દ્વિતીયાદિ સમયથી **અસંખ્યગુણ-હીનક્રમથી** અપૂર્વસ્પર્ધકો બનાવે છે અને **આત્મપ્રદેશો અસંખ્યગુણક્રમથી** ખેંચે છે.

(૨૫૦) **યોગનાં અપૂર્વસ્પર્ધકોનું પ્રમાણ**–યોગનાં અપૂર્વસ્પર્ધકો સૂચિશ્રેણિના વર્ગમૂળના અસંખ્યાતમા ભાગપ્રમાણ અને પૂર્વસ્પર્ધકોના પણ અસંખ્યાતમા ભાગપ્રમાણ હોય છે.

(૨૫૧) અંતર્મુહૂર્ત સુધી યોગનાં અપૂર્વસ્પર્ધકો કર્યા પછી પૂર્વ-અપૂર્વસ્પર્ધકો-માંથી અપૂર્વસ્પર્ધકોની નીચે સૂચિશ્રેણિના અસંખ્યાતમા ભાગપ્રમાણ કિટ્ટિઓ કરે છે.

(૨૫૨) **યોગકિટ્ટિકરણના પ્રથમસમયે** અપૂર્વસ્પર્ધકોની પ્રથમવર્ગણાના અસં-ખ્યાતમા ભાગપ્રમાણ **વીર્યાવિભાગો** અને પૂર્વાપૂર્વસ્પર્ધકોમાં રહેલા સર્વાત્મપ્રદેશોમાથી અસંખ્યાતમા ભાગપ્રમાણ પ્રદેશોને ખેંચે છે.

૧ સૂક્ષ્મકાયયોગના બળથી બાદરકાયયોગનો નિરોધ કરે છે આ પ્રમાણે આવસ્યકટીકાકાર વગેરે મહાપુરુષો માને છે

(૨૫૩) અંતર્મુહૂર્તકાળ સુધી અસંખ્યગુણહીનક્રમે કિટ્ટિઓ કરે છે. અને જીવપ્રદેશોને અસંખ્યગુણક્રમે ખેંચે છે. **કિટ્ટિગુણકાર** પલ્યોપમના અસંખ્યાતમા ભાગપ્રમાણ છે. **કિટ્ટિ-ગુણકાર એટલે** (૧) ઉત્તરોત્તર સમયે કરાતી કિટ્ટિઓને જે ગુણક દ્વારા ગુણવાથી પૂર્વ-પૂર્વસમયે કરેલી **કિટ્ટિઓની સંખ્યા** પ્રાપ્ત થાય તે **ગુણક.** (૨) અથવા જીવના એક **પ્રદેશને** આશરીને વિવક્ષિત કિટ્ટિના વીર્યાવિભાગોને જે ગુણક દ્વારા ગુણવાથી તેની અનંતર ઉપરની કિટ્ટિના **રસાવિભાગો** પ્રાપ્ત થાય તે ગુણક. (૩) અથવા વિવક્ષિત કિટ્ટિમાં રહેલા સર્વ જીવપ્રદેશોના વીર્યાવિભાગોને જે ગુણક દ્વારા ગુણવાથી તેની અનંતર ઉપરની કિટ્ટિમાં રહેલા સર્વ પ્રદેશોના વીર્યાવિભાગો પ્રાપ્ત થાય તે ગુણક.

(૨૫૫) કિટ્ટિકરણની સમાપ્તિના અનંતરસમયે પૂર્વ-અપૂર્વસ્પર્ધકોનો નાશ કરે છે અને ત્યારથી માંડી અંતર્મુહૂર્ત સુધી કિટ્ટિગત યોગ પ્રવર્તે છે.

(૨૫૬) સૂક્ષ્મકાયયોગનો નિરોધ કરનાર જીવને **સૂક્ષ્મક્રિયાઽપ્રતિપાતી** નામનું ત્રીજું **શુક્લધ્યાન** હોય છે સયોગિકેવલિગુણસ્થાનકના ચરમસમયે બાકી રહેલી સર્વ યોગ-કિટ્ટિઓનો નાશ કરે છે.

(૨૫૭-૨૫૮-૨૫૯) **ઉદયવિચ્છેદ**-વેદનીયની બે પ્રકૃતિમાંથી એક (શાતા કે અશાતા), ઔદારિકશરીર, ઔદારિકઅંગોપાંગ, તૈજસકાર્મણશરીર, ૬ સંસ્થાન, ૧લું સંઘયણ, વર્ણ, ગંધ, રસ, સ્પર્શ, શુભાશુભખગતિ, અગુરુલઘુ, ઉપઘાત, પરાઘાત, નિર્માણ, પ્રત્યેક, સ્થિર, અસ્થિર, શુભ, અશુભ આ **૨૭ પ્રકૃતિના ઉદયનો વિચ્છેદ** થાય છે. [1]સુસ્વર, દુઃસ્વર અને ઉચ્છ્વાસનામકર્મનો ઉદયવિચ્છેદ પહેલાં થયેલો છે.

(૨૬૦) સયોગિકેવલિગુણસ્થાનકના ચરમસમયે (૧) **કિટ્ટિ** (૨) **યોગ** (૩) **સ્થિતિ-ઘાત અને રસઘાત** (૪) **નામ અને ગોત્રની ઉદીરણા** (૫) **લેશ્યા** (૬) **બંધ** (૭) **સૂક્ષ્મક્રિયાઽપ્રતિપાતી ધ્યાન** આ ૭ પદાર્થોનો વિચ્છેદ થાય છે.

(૨૬૧) અનંતરસમયે અયોગિકેવલિગુણસ્થાનકને સ્પર્શી **વ્યવચ્છિન્નક્રિયાઽપ્રતિ-પાતી** નામનું ચોથું **શુક્લધ્યાન અને** અંતર્મુહૂર્તકાલપ્રમાણ **શૈલેશી** પ્રાપ્ત કરે છે

(૨૬૨-૨૬૩-૨૬૪) અલેશી અને અયોગી કેવલિભગવાન આયોજિકાકરણ વખતે નવા રચાયેલા કર્મપ્રદેશોને અસંખ્યગુણક્રમથી ખપાવે છે. અયોગિકેવલિગુણસ્થાનકના દ્વિચરમ-સમયે (ઉપાન્ત્ય સમયે) ૬ સંસ્થાન, અસ્થિર, અશુભ, દુર્ભગ, દુઃસ્વર, અનાદેય, અપયશ ૬ સંઘયણ અગુરુલઘુ, ઉપઘાત, પરાઘાત, ઉચ્છ્વાસ ઔદારિકાદિ ૫ શરીર, ૫ સંઘાતન, શુભાશુભવિહાયોગતિ, દેવગતિ, દેવાનુપૂર્વી, ૫ વર્ણ, ૨ ગંધ, ૫ રસ, ૮ સ્પર્શ, ૧૫ બંધન, નિર્માણ, ૩ અંગોપાંગ, પ્રત્યેક, સ્થિર, શુભ, સુસ્વર, અપર્યાપ્ત, શાતા અથવા અશાતા, અને નીચગોત્ર **આ ૮૨ પ્રકૃતિઓનો સત્તામાંથી વિચ્છેદ** થાય છે.

૧ વચનયોગના નિરોધ વખતે સુસ્વરદુઃસ્વરનો અને ઉચ્છ્વાસનિરોધ વખતે ઉચ્છ્વાસનામકર્મનો ઉદય વિચ્છેદ થાય છે

(૨૬૫) અયોગિકેવલિગુણસ્થાનકના ચરમસમયે મનુષ્યગતિ, મનુષ્યાનુપૂર્વી, મનુષ્યાયુષ્ય, ત્રસ, બાદર, પર્યાપ્ત, પંચેન્દ્રિયજાતિ, યશકીર્તિ, સુભગ, આદેય અને શાતા કે અશાતા આ ૧૨ અને જિનનામ બાંધેલું હોય તો ૧૩ પ્રકૃતિઓનો સત્તામાંથી વિચ્છેદ થાય છે. (૧૩ પ્રકૃતિઓનો વિચ્છેદ તીર્થંકર ભગવાનને આશ્રયીને થાય) તથા મનુષ્યાનુપૂર્વી સિવાય ઉપર્યુક્ત પ્રકૃતિઓનો ઉદય વિચ્છેદ થાય છે.

(૨૬૬) કેટલાક આચાર્ય ભગવંતો કહે છે કે મનુષ્યાનુપૂર્વીની સત્તાનો પણ વિચ્છેદ અયોગિકેવલિગુણસ્થાનકના ચરમસમયે થાય છે. આ કર્મક્ષયની પ્રક્રિયાની અંતે સમયાંતર અને પ્રદેશાંતરને નહિ સ્પર્શતો આત્મા એ જ સમયે સિદ્ધ થાય છે.

(૨૬૭) જ્ઞાનાવરણાદિ આઠ કર્મના ક્ષયથી સિદ્ધ થયેલા આત્માઓ કેવલજ્ઞાનાદિ આઠ ગુણો પ્રાપ્ત કરે છે અને તેઓ **ઇષિત્પ્રાગ્ભારા** નામની પૃથ્વી ઉપર લોકાગ્રને સ્પર્શીને રહેલા છે.

જ્ઞાનાવરણના ક્ષયથી અનંતકેવલજ્ઞાન, **દર્શનાવરણના** ક્ષયથી અનંતકેવલદર્શન, **વેદનીયના** ક્ષયથી અનંત સુખ, **મોહનીયના** ક્ષયથી ક્ષાયિકસમ્યક્ત્વ-ક્ષાયિકચારિત્ર, **આયુષ્યના** ક્ષયથી અક્ષયસ્થિતિ, **નામ-ગોત્રના** ક્ષયથી અમૂર્ત-અનંતઅવગાહના અને **અંતરાયના** ક્ષયથી અનંતવીર્ય આ આઠ ગુણો તેમને પ્રાપ્ત થાય છે

(૨૬૮) **કાર્મગ્રંથિક** મતે એક ભવમાં બન્ને શ્રેણિ (ક્ષપકશ્રેણિ અને ઉપશમશ્રેણિ) હોઈ શકે છે. **સૈદ્ધાંતિક** મતે એક ભવમાં બેમાંથી કોઈ પણ એક જ શ્રેણિ હોય છે.

(૨૬૯) ક્ષપકશ્રેણિરૂપ સરોવરમાં કર્મમલને ધોઈ નાંખનાર **શ્રી વીરભગવંત જય પામો.** પરમગુરુ પૂ૦ આચાર્ય ભગવાન શ્રીમદ્ **વિજયપ્રેમસૂરીશ્વરજી મહારાજ** તથા તેમના અંતેવાસી શિષ્યરત્ન **પૂ૦ પં૦ ભાનુવિજયજી ગણિવર્ય** પણ **જય પામો.**

(૨૭૦) આ ગ્રંથમાં (૧) પૂ૦ પં૦ **ભાનુવિજયજી** ગણિવર્યના શિષ્યરત્ન પૂ૦ મુનિરાજશ્રી **ધર્મઘોષવિજયજી** મ૦ના શિષ્યરત્ન પૂ૦ મુનિરાજશ્રી **જયઘોષવિજયજી** મ૦, (૨) પૂ૦ પં૦ **ભાનુવિજયજી** ગણિવર્યના શિષ્યરત્ન પૂ૦ મુનિરાજશ્રી **ધર્માનન્દવિજયજી** મ૦, (૩) પૂ૦ પં૦ ભાનુવિજયજી ગણિવર્યના શિષ્યરત્ન સ્વર્ગગત પૂ૦ પં૦ **શ્રીપદ્મવિજયજી** ગણિવર્યના શિષ્યરત્ન પૂ૦ મુનિરાજશ્રી **હેમચંદ્રવિજયજી** મ૦, (૪) તથા પૂ૦ પં૦ શ્રી ભાનુવિજયજી ગણિવર્યના શિષ્યરત્ન મુનિરાજશ્રી **જિતેન્દ્રવિજયજી-મહારાજના** શિષ્ય **મુનિ ગુણરત્નવિજયે** કર્મપ્રકૃતિ, સપ્તતિકા, કષાયપ્રાભૃત વગેરે પ્રાચીન ગ્રંથોમાંથી કર્મક્ષપણાના પદાર્થોનો સંગ્રહ કર્યો છે

(૨૭૧) પદાર્થ સંગ્રહ કર્યા પછી પૂ૦ મુનિરાજશ્રી **જિતેન્દ્રવિજયજી** મ૦ના શિષ્ય **ગુણરત્નવિજયે** આ **ખવગસેઢી**(ક્ષપકશ્રેણિ)ગ્રંથની રચના કરી છે. આ ગ્રંથમાં છદ્મસ્થતાદિના કારણે થએલી સ્ખલનાઓ બહુશ્રુત-ગીતાર્થો કૃપા કરી સુધારે એ જ એક પ્રાર્થના.

ખવગસેઢી (ક્ષપકશ્રેણિ) મૂળ ગાથાઓનો ગુજરાતીમાં ભાવાનુવાદ સમાપ્ત.